हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

तृतीय भाग

['क्षंतव्य' से 'ह्वाना' तक, शब्दसंख्या–२१०००]

मूलसंपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट, रामचंद्र शुक्ल
अमीर सिंह, जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन, रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद
मंगलदेव शास्त्री
कृष्णदेवप्रसाद गौड़
हरवंशलाल शर्मा
शिवप्रसाद मिश्र
गोपाल शर्मा
भोलाशंकर व्यास (सह० संयो०)
कमलापति त्रिपाठी
धीरेंद्र वर्मा
नगेंद्र
रामधन शर्मा
शिवनंदनलाल दर
सुधाकर पांडेय
करुणापति त्रिपाठी (संयोजक, संपादक

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री
विश्वनाथ त्रिपाठी

भारत सरकार द्वारा आंशिक वित्तीय सहायता प्राप्त

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण (दूसरीं वार)

सं० २०४८ वि० सन् १९९२ ई०

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
मूल्य.. 250)...

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
मुद्रक श्रीनारायण, नागरी मुद्रण वाराणसी ।
प्रतियां—३१००

इस संस्करण के संबंध में

हिंदी शब्दसागर हिंदी का सबसे प्रामाणिक कोश है, जो भारतीय भाषाओं का दिशा निर्देशक है। इसका परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण सं० २०२४ वि०, सन् १९६७ ई० में निकला था। इसके भाग क्रमशः अनुपलब्ध होते जा रहे हैं, इसलिए सभा ने यह संकल्प लिया कि इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाय ताकि इसकी निरंतर उपलब्धता बनी रहे। तृतीय भाग का यह संस्करण इसी क्रम में उपलब्ध कराया जा रहा है। यद्यपि यह संस्करण इधर बहुत दिनों से छपकर तैयार था किंतु कुछ कारणों से पाठकों को उपलब्ध नहीं हो सका। इस संस्करण में छापे की भूलों इत्यादि को भी सुधारने का भरपूर प्रयास किया गया है।

आशा है, अपने गुण धर्म के कारण इस कोश का उपयोग और प्रयोग हिंदी जगत निरंतर करता रहेगा।

वसंत पंचमी
सं० २०४८ वि०

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी के मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्त्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है।...हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है।...आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिये जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनः संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ।४—३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए, करके देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुनः संपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुनः उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६४ प्रतिशत बोझ भी भारत सरकार ने वहन किया है। इसीलिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के संमुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हमें संकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदी जगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और संशोधन के लिये कोशशिल्प संबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस संशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, संत एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काव्य, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पौष, संवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पौष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पंडाल में काशी, प्रयाग एवं अन्यान्य स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नागरिकों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री पं० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री पं० सुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस संशोधित संवर्धित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों को एक एक फाउंटेनपेन, ताम्रपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा : सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्थान ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्थान ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अनूठे ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अप्रतिम है'।

शब्दसागर के द्वितीय खंड का उद्घाटनोत्सव नागरीप्रचारिणी सभाभवन में माननीय न्यायमूर्ति हरिश्चंद्रपति त्रिपाठी द्वारा १७ पौष, संवत् २०२३ को विशिष्ट विद्वानों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। इस खंड में 'उ' वर्ण से 'क्वैलिया' तक के शब्द हैं जिनकी संख्या मुहावरे, यौगिक एवं पर्याय को मिलाकर २०००० के लगभग है।

प्रस्तुत तृतीय खंड में 'क्षंतव्य' से 'छ्वाना' तक के शब्दों का संचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, यौगिक शब्द और मुहावरे तथा पर्यायवाची शब्दों से संवलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग २१००० है। अपने मूल रूप में यह अंश कुल ४२९ पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित संशोधित संस्करण में ५६८ पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप से नित्य सभा में पधार कर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते रहे हैं और पं० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हों, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं सनातन है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्वल होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी :
विजया दशमी, २०२४ वि०

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमश: ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं ।]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वाँ सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहबाद, प्र० सं०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद विहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्र प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खंड] संपा० आर० शाम शास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अष्टांग (शब्द०)	अष्टांग योगसंहिता
आँधी,	आँधी जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं०, १९५३ ई०
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनंदघन (शब्द०)	कवि आनंदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद, प्र० सं०
आर्द्रा,	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यो०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथमाला, बुलानाला, काशी प्र० सं०
इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ सं० ।
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय' प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०
एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०
कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०

कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढ़ी०	कढ़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट मिर्जापुर, प्र० सं०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बारावंकी, २००७ वि०
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बारावंकी २००७ वि०
कबीर मं०	कबीर मंसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेख्ते, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, सन् १९०८
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलानंद विहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कविंद (शब्द०)	कविंद कवि
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१-४भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०
काया०	कायकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ९वाँ सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेयराघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूंट
कोईकवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चंद हसीनों के खतूत पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, आठवा सं०
गंग ग्रं०	गंग कवित्त [ग्रंथावली] संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणी, प्र० सं०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी, प्र० सं०
गि० दा०, गि० दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला' भारती भंडार, इलाहाबाद प्र० सं०
गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाल०	गुलाल बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
ग्राम्या०	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०

घनानंद — घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद् वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी

घाघ० — घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

घासीराम (शब्द०) — घासीराम कवि

चंद — चंद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०

चंद्र० — चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०

चक्र० — चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०

चरण (शब्द०) — चरणदास

चरणचंद्रिका (शब्द०) — चरणचंद्रिका

चरण० बानी — चरणदास की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०

चाँदनी० — चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०

चिंता — चिंता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०

चिंतामणि — चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग

चिंतामणि (शब्द०) — कवि चिंतामणि त्रिपाठी

चित्रा० — चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

चुभते० — चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०

चोखे० — चोखे चौपदे, ,, ,, ,,

चोटी० — चोटी की पकड़, 'निराला,' किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०

छंद० — छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०

छत्र० — छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०

छिताई० — छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०

छीत० — छीत स्वामी, संपा० व्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत २०१२

जग० बानी — जगजीवन साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९, प्र० सं०

जग० श० — जगजीवन साहब की शब्दावली

जनानी० — जनानी ड्योढ़ी, अनु० यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ

जय० प्र० — जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०

जयसिंह (शब्द०) — जयसिंह कवि

जायसी ग्रं० — जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०

जायसी ग्रं० (गुप्त) — जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०

जायसी (शब्द०) — मलिक मुहम्मद जायसी

जिप्सी — जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०

जुगलेश (शब्द०) — जुगलेश कवि

ज्ञानदान — ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०

ज्ञानरत्न — ज्ञानरत्न, दरिया साहब, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

झरना — झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०

झाँसी० — झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि० सं०

टैगोर० — टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०

ठंडा० — ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०

ठाकुर० — ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१

ठेठ० — ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०

ढोला० दू० — ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०

तितली — तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०

तुलसीदास — तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०

तुलसी ग्रं० — तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०

तुरसी श०, तुलसी श० — तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९,१९११

तेग० (शब्द०) — तेगबहादुर

तेज० — तेजबिंदूपनिषद्

तोष (शब्द०) — कवि तोष

त्याग० — त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०

द० सागर — दरिया सागर, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०

दक्खिनी० — दक्खिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०

दरिया० बानी — दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
दश० — दशरूपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०
दशम० (शब्द०) — भाषा दशम स्कंध
दहकते० — दहकते अंगारे, नरोत्तम प्रसाद नागर अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद
दादू० — श्री दादूदयाल की बानी, सं० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं० — दादूदयाल ग्रंथावली
दादू० (शब्द०) — दादूदयाल
दिनेश (शब्द०) — कवि दिनेश
दिल्ली — दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या — दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्रं० — दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०) कवि दीनदयालु गिरि
दीप० — दीपशिखा. महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०, दीप ज० दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग
दूलह (शब्द०) — कवि दूलह
देव० ग्रं० — देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
देव (शब्द०) — देव कवि (मैनपुरीवाले)
देशी० — देशी नाममाला
दैनिकी — सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र०सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन० दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी काँकरौली, प्रथम सं०
द्वंद्व० — द्वंद्वगीत, रामधारीसिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
द्वि०अभि० ग्रं० द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विवेदी (शब्द०) — महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा० धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०, — धरम० धरमदास की शब्दावली
धूप० — धूप और धूआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर', अजंता प्रेस, लि०, पटना ४
नंद० ग्रं०, नंददास ग्रं० नंददास ग्रंथावली, संपा० व्रजरत्नदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नई० — नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
नट० — नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र. इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी० — नदी के द्वीप, 'अज्ञेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया० — नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
नागयज्ञ — जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०) नागरीदास कवि।
नाथ (शब्द०) — नाथ कवि
नाथसिद्ध०, — नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
नारायणदास (शब्द०) नारायणदास
नील० — नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०
नेपाल० — नेपाल का इतिहास, पं. बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, वंबई, १९६१ वि.
पंचवटी — पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र. सं०
पजनेश० — पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० सं०
पदमावत — पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा० पदुमावती, संपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्रं० पद्माकर ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०) पद्माकर भट्ट
प० रा०, प० रासो परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना. प्र. सभा, प्र० सं०
परमानंद० — परमानंदसागर
परमेश (शब्द०) — परमेश कवि
परिमल — परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे० — पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र. सं०, १९९९ वि.
पलटू० — पलटू साहब की बानी [१-३-भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई.
पल्लव — पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि० — पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०
परिजात० — पारिजातहरण
पार्वती — पार्वती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई.

पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपा० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबंध०	प्रबंधपद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला,' सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरणसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय राघव, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलों का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बाँकी० ग्रं०, बाँकीदास ग्रं०	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० रामनारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बंदन०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बांगेदरा	बांगेदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', गंगा ग्रंथकार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बी० रासो०	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा०, काशी, प्र० सं०
बीसल० रास	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपालसिंह ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध० च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बृहत्०	बृहत्संहिता
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मिणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाबाद, प्र० सं० १९३१ ई०
ब्रज०	ब्रजविलास, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्रं०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्तिसुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं० १९८३ वि०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक

भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रु०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं० १९९३ वि०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम सं० ।
भा० भू०, भारत नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं० १९८७ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्रं०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्रं०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी
भीखा श०, भीखा	शब्दावली प्र० सं०
भूषण ग्रं०	भूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्र० सं०
मति० ग्रं०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णविहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवंश राय, 'बच्चन', सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन', सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मनविरक्त०	मनविरक्तकरन गुटका सार (चरणदास)
मनु०	मनुस्मृति
मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
मलूक० बानी	मलूकदास की बानी, वेलवेडियर, प्रेस प्रयाग
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
महाराणाप्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९१ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव	मानव कवितासंकलन, भगवतीचरण वर्मा,
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, दि० सं०
मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन', भारतीय, ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
मुंशी अभि० ग्रं०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, संपा० डा० विश्वनाथ प्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
मृग०	मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वर नाथ 'रेणु' समता प्रकाशन, पटना,–४, प्र० सं०
मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णविहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अलमोड़ा, प्र० सं०
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांरो, संपा० महताबचंद्र खारैड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०

रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतीजीवन प्रेस काशी, प्र० सं० १६८२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागी अर्जुन, किताब महल इलाहाबाद, द्वि० सं०, १६५३ ई०
रतन० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०
रस०	रसमीमांसा, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, सं० बा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम
रस र०, रसरतन	रसरतन, सं० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १६६७ वि०, प्र० सं०
रा० रू०	राजरूपक, संपा० पं० रामवर्ण, ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, सं० मोती लाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०
रामकवि (शब्द०)	राम कवि
राम चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, सं० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
राम० धर्म	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सं० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्म संग्रह सं० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानंद	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, सं० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा. प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १६३६ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकभंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं० ।
रैं० बानी	रैंदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद ।
लक्ष्मण सिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लूलाल
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
लाल (शब्द०)	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, सं० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगर वधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १६४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास
ब्रज (शब्द०)	ब्रज (शब्द०)
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शंकर०	शंकरसर्वस्व, सं० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, आगरा, प्र० सं०
शकुं०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शार्ङ्गधर० सं०	शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, सं० १६७१
शिखर०	शिखर वंशोत्पत्ति, सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १६८५
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि
शुक्ल० अभि० ग्रंथ०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन
शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
शेर०	शेर ओ सुखन, भारतीय ज्ञान पीठ, काशी
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, सं० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी. प्र० सं०
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, सं० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं०
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी

संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्र० सं०
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० सं०
संतवाणी०, संत० सार०	संतवाणी-सार-संग्रह [२ भाग], वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी,	संन्यासी इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, सं० आचार्य नरेंद्र-देव, ना० प्र० सभा, वाराणसी
स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलालसिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सत्य०	कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवन, श्री बनरसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य समेलन प्रयाग, द्वि० सं०
सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविनास
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदूस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की वानी, वेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका; डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
साहित्य०	साहित्यालोचन
सुंदर० ग्रं०	सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०
सुंदरीसिंदूक (शब्द०)	सुंदरी सिंदूर
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुधाकर (शब्द०)	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), सं० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं० ।
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूरसागर, [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर० (राधा०)	सूरसागर, सं० राधाकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि
सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०
सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १९३४ ई०
सौ अजान०	सौ अजान और एक सुजान, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ।
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वमी हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० सं० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं०
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक
हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)
हम्मीर०	हम्मीरहठ, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग
ह० रासो	हम्मीर रासो, सं० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा काशी, प्र० सं०
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना

हिं० का० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य मे प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी
अ०	अरबी
अक० रूप	अकर्मक रूप
अनु०	अनुकरण शब्द
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक
अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप
अप०	अपभ्रंश
अर्ध मा०	अर्धमागधी
अव०	अवधी
अव्य०	अव्यय
इब०	इबरानी
उ०	उदाहरण
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
उड़ि०	उड़िया
उप०	उपसर्ग
उभ०	उभयलिंग
एकव०	एकवचन
कहावत	कहावत
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
[को०], (को०)	अन्य कोश
कोंक०	कोंकणी
क्रि०	क्रिया
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक
क्व०	क्वचित्
गीत	लोकगीत
गुज०	गुजराती
ची०	चीनी भाषा
छं०	छंद
जापा०	जापानी
जावा०	जावा द्वीप की भाषा
जी०, जीवन०	जीवनचरित्
ज्या०	ज्यामिति
ज्यो०	ज्योतिष
डिं०	डिंगल
त०	तमिल
तर्क०	तर्कशास्त्र
तु०	तुर्की
दू०	दूहा या दूहला
दे०	देखिए
देश०	देशज
देशी	देशी
धर्म०	धर्मशास्त्र
नाम०	नामधातु
ना० धा०	नामधातुज क्रिया
नामिक धातु	नामिक धातु
ने०	नेपाली
न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र

पं०	पंजाबी	यो०	यौगिक
परि०	परिशिष्ट	राज०	राजस्थानी
पा०	पाली	लश०	लशकरी
पुं०	पुंलिंग	ला०	लाक्षणिक
पुर्त०	पुर्तगाली	लै०	लैटिन
पु० हिं०	पुरानी हिंदी	व० कृ०	वर्तमान कृदंत
पू० हिं०	पूर्वी हिंदी	वि०	विशेषण
पृ०	पृष्ठ	वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक
प्रत्य०	प्रत्यय	वै०	वैदिक
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना	व्या०	व्याकरण
प्रा०	प्राकृत	(शब्द०)	शब्दसागर
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप	सं०	संस्कृत
फ०	फरांसीसी भाषा	संयो०	संयोजक अव्यय
फकीर०	फकीरों की बोली	संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
फा०	फारसी	स०	सकर्मक
बँग०	बँगला भाषा	सक० रूप	सकर्मक रूप
बरमी०	बरमी भाषा	सधु०	सधुक्कड़ी भाषा
बहुव०	बहुवचन	सर्व०	सर्वनाम
बुं० खं०	बुंदेलखंड की बोली	स्पे०	स्पेनी भाषा
बोल०	बोलचाल	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
भाव०	भाववाचक संज्ञा	स्त्री०	स्त्रीलिंग
भू०	भूमिका	हिं०	हिंदी
भू० कृ०	भूत कृदंत	(पु)	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
मरा०	मराठी	>	व्युत्पन्न
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा	√	धातुचिह्न
मला०	मलायम भाषा	*	संभाव्य व्युत्पत्ति
मि०	मिलाइए	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त		
मुहा०	मुहावरा		
यू०	यूनानी		

———

हिंदी शब्दसागर

क्ष

क्षंतव्य—वि० [सं० क्षन्तव्य] क्षमा करने के योग्य। क्षम्य। उ०—हो नहीं क्षंतव्य जो मेरे विगर्हित पाप, दो वचन अक्षय रहे यह ग्लानि, यह परिताप।—साम०, पृ० ५०।

क्षंता—वि० [सं० क्षन्तृ] क्षमाशील। क्षमा करनेवाला।

क्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. विध्वंस। विनाश। २.हानि। अंतर्धान। लोप। ३.खेत। ४.कृषक। किसान। ५. विष्णु का चौथा अवतार। ६. विद्युत। बिजली। ७.एक राक्षस [को०]।

क्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० क्षणिक] १. काल या समय का एक बहुत छोटा भाग।

विशेष—क्षण की मात्रा के विषय में बहुत मतभेद है। महाभाष्यकार पतंजलि के मत से काल का वह छोटा भाग जिसके टुकड़े या विभाग न हो सकें, क्षण है। उनके मतानुसार क्षण का काल के साथ वही संबंध है, जो परमाणु का द्रव्य के साथ है। किसी के मत से पल या निमिष का चतुर्थांश, और किसी के मत से दो दंड या मुहूर्त एक क्षण के बराबर है। अमर के अनुसार तीस कला या मुहूर्त के बारहवें भाग का एक क्षण होता है। पर न्याय के मत से महाकाल नित्य द्रव्य है और उसके भाग या अंश नहीं हो सकते, इसलिए क्षण कोई अलग पदार्थ नहीं।

यौ०—क्षणमात्र = थोड़ी देर।

२.काफ। ३. अवसर। मौका। ४. समय। वक्त। ५.उत्सव। हर्ष। आनंद।

क्षणतु—संज्ञा पुं० [सं०] घाव। जखम [को०]

क्षणद—संज्ञा पुं० [सं०] १.जल। २.ज्योतिषी। ३. वह जिसे रात को दिखाई न पड़ता हो। ४.रात को दिखाई न पड़ने का एक रोग। रतौंधी [को०]

क्षणदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.रात्रि। रात। २. हल्दी।

क्षणदाकर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

क्षणद्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत। बिजली।

क्षणन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोट पहुँचाना। प्रहार करना। २. हनन। वध करना [को०]।

क्षणनिःश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] सूँस नामक जलचर। शिशुमार [को०]

क्षणप्रकाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षणद्युति'।

क्षणप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली। विद्युत्।

क्षणभंग—संज्ञा पुं० [सं० क्षणभङ्ग] एक बौद्ध सिद्धांत जिसमें वस्तुओं की स्थिति एक क्षण की मानी गई है। इसे क्षणिकवाद भी कहते हैं।

विशेष—दे० 'क्षणिकवाद'।

यौ०—क्षणभंगवाद = क्षणिकवाद (बौद्ध)।

क्षणभंग[2](पु)—वि० [सं० क्षभङ्गुर] क्षण भर में नष्ट होनेवाला। अनित्य। नाशवान्। उ०—समर मरन पुनि सुरसरि तीरा। राम काज क्षणभंगु शरीरा।—तुलसी (शब्द०)।

क्षणभंगुर—वि० [सं० क्षणभङ्गुर] शीघ्र नष्ट होनेवाला। क्षण भर में नष्ट होनेवाला। अनित्य। उ०—सुख संपति दारा सुत हय गय हठ सबै समुदाय क्षणभंगुर ए सबै श्याम बिनु अंत नाहि सँग जाँय।—सूर (शब्द०)।

क्षणमूल्य—संज्ञा पुं० [सं०] नगद दाम। तुरंत ही दी जानेवाली कीमत।

विशेष—शाम शास्त्री ने इसका अर्थ कमीशन किया है।

क्षणरामी[1]—संज्ञा पुं० [सं० क्षणरामिन] कपोत। कबूतर।

क्षणविध्वंसी[1]—वि० [सं० क्षणविध्वंसिन्] क्षण भर में नष्ट होनेवाला।

क्षणविध्वंसी[2]—संज्ञा पुं० अनीश्वरवादी दार्शनिकों का एक समुदाय, जो यह मानता है कि संसार प्रति क्षण नष्ट होता और नया जन्म प्राप्त करता है।

क्षणस्थायी—वि० [सं० क्षणस्थायिन्) क्षणिक। क्षणभंगुर।

क्षणिक[1]—वि० [सं०] एक क्षण रहनेवाला। क्षणभंगुर। अनित्य।

क्षणिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्षणिकवाद'।

क्षणिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षणिक का भाव। क्षणभंगुरता।

क्षणिकवाद—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का एक सिद्धांत जिसमें प्रत्येक वस्तु को उसकी उत्पत्ति से दूसरे क्षण में नष्ट हो जानेवाला मानते हैं।

विशेष—इस मत के अनुसार प्रत्येक वस्तु में प्रतिक्षण कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है और उसकी अवस्था या स्थिति बदलती जाती है। इस सिद्धांत में सब पदार्थों को अनित्य मानते हैं। इसे क्षणिक या क्षणभंग भी कहते हैं।

क्षणिकवादी—संज्ञा पुं० [सं० क्षणिकवादिन्] १.क्षणिकवाद पर विश्वास रखने वाला व्यक्ति। उ०—बौद्ध धर्म से संबंधित। क्षणिकवादी और शून्यवादी मतों का उल्लेख आया है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२७।

क्षणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली। विद्युत्।

क्षणिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। क्षणदा।

क्षणी—वि० [सं० क्षणिन्] १. अवकाशयुक्त। २. क्षणस्थायी। ३. उत्सव या आनंदवाला [को०]।

क्षत[1]—वि० [सं०] जिसे क्षति या आघात पहुँचा हो। जो किसी प्रकार टूटा फूटा या चीरा फाड़ा हो।

क्षत[2]—संज्ञा पुं० १. घाव। जख्म। २. व्रण। फोड़ा। ३. एक प्रकार का फोड़ा जो गिरने, दौड़ने या किसी प्रकार का क्रूर कर्म करने से हृदय में हो जाता है। इसमें रोगी को ज्वर आता है और खाँसने से मुँह से रक्त निकलता है। ४. मारना। काटना। ५. क्षति या आघात पहुँचाना। ६. भय। खतरा। डर (को०)। ७ दुःख। कष्ट (को०)।

क्षतकास—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत या आघात से होनेवाली खाँसी [को०]।

क्षतघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुकरौंधा।

क्षतघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाह।

क्षतज[1]—वि० [सं०] १. क्षत से उत्पन्न। जैसे—क्षतज शोथ, क्षतज विद्रधि। २. लाल। सुर्ख। उ०—क्षतज नयन उर बाहु विशाला। हिमगिरि निभ तनु कछु इक लाला।—तुलसी (शब्द०)।

क्षतज[2]—संज्ञा पुं० १. रक्त। रुधिर। खून। २. मवाद। पीब। ३. एक प्रकार की खाँसी जो क्षत रोग में होती है। इसमें खखार के साथ रुधिर निकलता है और शरीर के जोड़ों में पीड़ा होती है। ४. सात प्रकार की प्यास में से एक, जो शरीर में शस्त्रों का घाव लगने या बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण लगती है। यह प्यास शरीर पर गीला कपड़ा लपेटने से बुझती है।

क्षतजतृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोट लगने या शरीर से अधिक रक्त निकल जाने से उत्पन्न प्यास।—माधव०, पृ० १०७।

क्षतजदाह—संज्ञा पुं० [सं०] किसी घाव के कारण होनेवाली जलन जिसमें दाह के कारण प्यास, मूर्च्छा और प्रलाप आदि उपद्रव होते हैं।—माधव०, पृ० १२०।

क्षतयोनि—वि० स्त्री० [सं०] जिस स्त्री का पुरुष के साथ समागम हो चुका हो।

क्षतरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] घाव का पूरा होना। घाव भरना [को०]।

क्षतविक्षत—वि० [सं०] १. जिसे बहुत चोटें लगी हों। घायल। लहूलुहान। २. जिसे बहुत आघात पहुँचा हो। जो बहुत नष्ट-भ्रष्ट किया गया हो।

क्षतवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीविका का नष्ट होना। रोजी का सहारा न रहना [को०]।

क्षतव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक से छह प्रकार के फोड़ों में से एक। किसी स्थान के कटने या उसपर चोट लगने के बाद उस स्थान के पक जाने को क्षतव्रण कहते हैं।

क्षतव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] अवकीर्ण व्रत।

क्षतसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] गतिहीनता। गमनशक्ति का नाश [को०]।

क्षतहर—संज्ञा पुं० [सं०] अगर का पेड़।

क्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जिसका विवाह से पहले ही किसी पुरुष से दूषित संबंध हो चुका हो।

क्षतारि—वि० [सं०] जेता। विजयी। विजेता [को०]

क्षताशौच—संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो किसी मनुष्य को घायल या जख्मी होने के कारण लगता है। इस अशौच में मनुष्य किसी प्रकार का श्रौत या स्मृति कार्य नहीं कर सकता।

क्षति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हानि। नुकसान। २ क्षय। नाश। ३. चोट। घाव (को०)। ४. ह्रास। न्यूनता। (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—पहुँचना।—पहुँचाना।—होना।

क्षतिग्रस्त—वि० [सं०] किसी प्रकार की क्षति उठानेवाला।

क्षतिपूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षति या हानि पूरी करना। मुआवजा।

क्षतोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उदररोग।

विशेष—इसमें अन्न के साथ रेत, तिनका, लकड़ी, हड्डी या काँटा आदि पेट में उतर जाने, अधिक जँभाई आने या कम भोजन करने के कारण आँते छिद जाती हैं और उनमें से जल रसकर गुदा के मार्ग से निकलता है। इसे परिस्राव्युदर भी कहते हैं।

क्षत्ता—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्तृ] १. द्वारपाल। दरवान। २. मछली। ३. नियोग करनेवाला पुरुष। ४. दासीपुत्र। ५. वह वर्णसंकर जिसकी उत्पत्ति क्षत्रिय माता और शूद्र पिता से हो। ६. ब्रह्मा (को०)। ७. कोचवान। सारथी (को०)। ८ रथ द्वारा युद्ध करनेवाला। रथी (को०)। ९. कोशाध्यक्ष (को०)। १०. क्षत करनेवाला। काटने या घाव करनेवाला (को०)।

क्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल। २ राष्ट्र। ३. धन। ४. शरीर। ५. जल। ६. तगर का पेड़ ७. [स्त्री० क्षत्रानी] क्षत्रिय।

क्षत्रकर्म—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रकर्मन्] क्षत्रियोचित कर्म। वह कर्म जिसका करना क्षत्रियों के लिये आवश्यक हो; जैसे, युद्ध से कभी न हटना, यथाशक्ति दान देना, शत्रुओं का दमन करना, इत्यादि।

क्षत्रधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों का धर्म। यथा—अध्ययन, दान, यज्ञ और प्रजापालन करना, विषय वासनाओं से दूर रहना, आदि।

क्षत्रधर्मा—वि० [सं० क्षत्रधर्मन्] १. क्षत्रियों के धर्म का पालन करनेवाला। २. वीर। योद्धा।

क्षत्रधृति—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो सावन की पूर्णिमा को किया जाता है।

क्षत्रप—संज्ञा पुं० [सं० या पु० फा०] ईरान के प्राचीन मांडलिक राजाओं की उपाधि। उ०—साम्राज्य में २१ प्रांत थे जिनपर क्षत्रपों (प्रांतीय शासकों) का शासन था।—आर्य० भा०, पृ० १९४।

विशेष—आगे चलकर भारत के शक तथा गुजरात के एक प्राचीन वंश के राजाओं ने भी यह उपाधि धारण कर ली थी।

क्षत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. शिवाजी की उपाधि।
क्षत्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रबन्धु] १. क्षत्रिय जाति का व्यक्ति (को०)। २. पतित, नाम मात्र का या कर्त्तव्यरहित क्षत्रिय।
क्षत्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का योग।
विशेष—दे० 'राजयोग'।
क्षत्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षत्रियों की विद्या। धनुर्विद्या।
क्षत्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मुचुकुंद का पेड़।
क्षत्रवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] तेरहवें मनु के पुत्र का नाम।
क्षत्रवृद्धि संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्षत्रवृद्ध'।
क्षत्रवेद—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्वेद।
क्षत्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ आदि जो केवल क्षत्रिय ही कर सकते हों। जैसे, अश्वमेध।
क्षत्रांतक—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रान्तक] परशुराम।
क्षत्राणी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षत्रियाणी] १. क्षत्रिय जाति की स्त्री। २. क्षत्रिय की स्त्री। ३. वीर स्त्री [को०]।
क्षत्रिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ।
क्षत्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० क्षत्रिया, क्षत्राणी] १. हिंदुओं के चार वर्णों में से दूसरा वर्ण।
विशेष—इस वर्ण के लोगों का काम देश का शासन और शत्रुओं से उसकी रक्षा करना है। मनु के अनुसार इस वर्ण के लोगों का कर्तव्य वेदाध्ययन, प्रजापालन, दान और यज्ञादि करना तथा विषयवासना से दूर रहना है। वशिष्ठ जी ने इस वर्ण के लोगों का मुख्य धर्म अध्ययन, शस्त्राभ्यास और प्रजापालन बतलाया है। वेद में इस वर्ण के लोगों की सृष्टि प्रजापति की बाहु से कही गई है। वेद में जिन क्षत्रिय वंश के नाम हैं, वे पुराणों में दिए हुए अथवा वर्तमान नामों से बिलकुल भिन्न हैं। पुराणों में क्षत्रियों के चंद्र और सूर्य केवल दो ही वंशों के नाम आए हैं। पीछे से इस वर्ण में अग्नि तथा और कई वंशों की सृष्टि हुई और शक आदि विदेशी लोग आकर मिल गए। आजकल इस वर्ण के बहुत से अवांतर भेद हो गए हैं। इस वर्ण के लोग प्रायः ठाकुर कहलाते हैं।
२. इस वर्ण का पुरुष। ३. राजा। ४. बल। शक्ति।
क्षत्रियका, क्षत्रिया, क्षत्रियिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षत्रिय जाति की स्त्री [को०]।
क्षत्री—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिन्] दे० 'क्षत्रिय'।
क्षदन—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत।
क्षप—संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।
क्षपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बौद्ध भिक्षु। २. अशौच। ३. नष्ट करना। दमन करना। ४. उपवास [को०]।
क्षपणक¹—वि० [सं०] निर्लज्ज।
क्षपणक²—संज्ञा पुं० १. नंगा रहनेवाला जैन यती। दिगंबर यती। २. बौद्ध संन्यासी या भिक्षु। ३. एक कवि जो विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से एक माना जाता है। इसने 'अनेकार्थ-ध्वनिमंजरी' नामक एक कोश बनाया था और उणादि-सूत्र पर एक वृत्ति लिखी थी।
क्षपणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जाल। २. पतवार। नाव खेने का डाँड़ा [को०]।
क्षपण्यु संज्ञा पुं० [सं०] अपराध [को०]।
क्षपांत—संज्ञा पुं० [सं० क्षपान्त] प्रभात। भोर।
क्षपांध्य—संज्ञा पुं० [सं० क्षपान्ध्य] रात में न दिखाई पड़ना। रतौंधी का रोग [को०]।
क्षपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात।
यौ०—क्षपाकर। क्षपाचर।
विशेष—'क्षपा' शब्द के अंत में पति या नाथ वाची शब्द जोड़ने से चंद्रमावाची शब्द बनता है। जैसे, क्षपाधिप, क्षपेश, क्षपाकर, आदि।
२. हल्दी। हरिद्रा।
क्षपाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. कपूर।
क्षपाघन—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण मेघ। काला बादल [को०]।
क्षपाचर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० क्षपाचरी] निशाचर। राक्षस।
क्षपाट—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।
क्षपानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। उ०—महामीचु दासी सदा पाइ धोवै। प्रतीहार ह्वै कै कृपा शूर सोवै। क्षपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको। करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको।—केशव (शब्द०)। २. कपूर।
क्षपापति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। २. कपूर।
क्षपित—वि० [सं०] नष्ट। विध्वस्त। दमित। दबाया हुआ [को०]।
क्षम¹—वि० [सं०] शक्त। योग्य। समर्थ। उपयुक्त।
विशेष—हिंदी में यह शब्द केवल समस्त पद या यौगिक शब्द के अंत में आता है। जैसे, अक्षम, सक्षम, कार्यक्षम आदि।
क्षम²—संज्ञा पुं० १. शक्ति। बल। २. योग्यता। उपयुक्तता। ३. युद्ध (को०)। ४. शिव (को०)।
क्षमणीय—वि० [सं०] क्षमा करने योग्य। माफ करने लायक।
क्षमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता। सामर्थ्य। शक्ति।
क्षमताशील—वि० [सं० क्षमता+शील] क्षमता वाला। योग्य। समर्थ। उ०—अक्षम क्षमताशील बने जावें दुविधा, भ्रम।—युगांत, पृ० १७।
क्षमना(पु)—क्रि० स० [हिं० क्षमा] क्षमा करना। माफ करना। उ०—क्षम अपराध देवकी मेरो लिख्यो न मेट्यो जाई। मैं अपराध कियो शिशु मारे कर जोरे बिललाई।—सूर (शब्द०)।
क्षमनीय¹(पु)—वि० [स० क्षमणीय] क्षमणीय। क्षमा करने योग्य।
क्षमनीय²—वि० [सं० क्षम] बलवान्। शक्तिशाली। उ०—अंत-रिच्छ गच्छनीनि यच्छन सुलच्छनीनि अच्छी अच्छी अच्छनीवि छवि छमनीय है।—केशव (शब्द०)।
क्षमवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० क्षमना] क्षमना का प्रेरणार्थक रूप। क्षमा करना। माफ कराना। उ०—बहुरि विधि जाय क्षमवाय कै रुद्र को विष्णु विधि रुद्र तहँ तुरंत आये।—सूर (शब्द०)।
क्षमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्त की एक प्रकार की वृत्ति जिससे

मनुष्य दूसरे द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को चुपचाप सह लेता है और उसके प्रतिकार या दंड की इच्छा नहीं करता। यह वृत्ति तितिक्षा के अंतर्गत मानी गई है। क्षांति। २. सहिष्णुता। सहनशीलता। ३. खैर का पेड़। ४. पृथिवी। ५. एक की संख्या। ६. वेत्रवती या वेतवा नदी का एक नाम। ७. दक्ष की एक कन्या का नाम। ८. दुर्गा का एक नाम। ९. ब्रह्मवैवर्त के अनुसार राधिका की एक सखी का नाम। १०. तेरह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति का नाम, जिसमें क्रम से दो नगण, एक जगण, एक तगण, और अंत में एक गुरु (न न ज त गु) होता है और सातवें तथा छठे वर्ण पर यति होती है। जैसे—न निज तिगम सुभाव छांड़ै खला। यद्यपि नित उठ पाव ताको फला। तिमि न सुजन समाज धारैं तमा। जग जिनकर सुसाज नीती क्षमा। ११. चंद्रशेखर के अनुसार आर्या नामक छद का एक भेद, जिसमें २२ गुरु और १३ लघु मात्राएँ होती हैं।

क्षमाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० क्षमा+ई (प्रत्य०)] क्षमा करने की क्रिया। उ०—केवल चरण गिरचो उत धाई। करहु नाथ अपराध क्षमाई।—रघुराज (शब्द०)।

क्षमाज—संज्ञा पुं० [सं०] पृथवी से उत्पन्न-मंगल ग्रह [को०]।

क्षमातल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वीतल। जमीन की सतह [को०]।

क्षमादंश—संज्ञा पुं० [सं०] सहिजन का पेड़।

क्षमाना¹(पु)—क्रि० स० [हिं० क्षमना] क्षमना का प्रेरणार्थक रूप। क्षमा कराना। माफ कराना। उ०—संत जाय सिगरे सिर नाये। निज अपराध अगाध क्षमाये।—रघुराज (शब्द०)।

क्षमाना²(पु)—क्रि० स० [हिं० क्षमा] क्षमा करना। माफ करना। उ०—तव हरि उनके दोप क्षमाए।—सूर (शब्द०)।

क्षमान्वित—वि० [सं०] दे० 'क्षमावान्' [को०]।

क्षमापन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षमा करने का काम। माफी। २. माफ कराने का काम। उ०—(क) इस नगर को परित्याग कर दूसरी ठौर इससे उत्तम रीति से कालयापन करें और परमेश्वर से स्वापराध क्षमापन के लिये प्रयत्न करें।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। (ख) सकल जाय ताके पद परहू। निज अपराध क्षमापन करहू।—रघुराज (शब्द०)।

क्षमाभुक्—संज्ञा पुं० [सं० क्षमाभुज्] पृथ्वीपति। भूपति। राजा [को०]।

क्षमाभुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल ग्रह। २. दे० 'क्षमाभुक्' [को०]।

क्षमाभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। भूभृत्। २. राजकुमार [को०]।

क्षमामंडल—संज्ञा पुं० [सं० क्षमामण्डल] पृथ्वी का घेरा। अवनिमंडल [को०]।

क्षमालु—वि० [सं०] क्षमाशील। क्षमावान्।

क्षमावना(पु)—क्रि० स० [हिं० क्षमना का प्रे० रूप] क्षमा करना। माफ कराना। उ०—(क) परी पाँइ अपराध क्षमावत सुनत मिलंगी धाय। सुनत वचन दूतिका वदन ते श्याम चले अकुलाय।—सूर (शब्द०) (ख) कह्यो कौन कीन्हों अपराधा। काह क्षमावहु केहि की बाधा।—रघुराज (शब्द०)।

क्षमावान्—वि० पुं० [सं० क्षमावत्] [स्त्री० क्षमावती] १. क्षमा करनेवाला। माफ करनेवाला। २. सहनशील। सहिष्णु। गमखोर।

क्षमाशील—वि० [सं०] १. माफ करनेवाला। क्षमावान्। २. शांतप्रकृति।

क्षमाष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में चतुर्दश ताल का एक भेद।

क्षमित—वि० [सं०] क्षमाप्राप्त। जो क्षमा किया गया हो।

क्षमितव्य—वि० [सं०] क्षमा करने योग्य। जो क्षमा किया जा सके।

क्षमिता—वि० [सं० क्षमितृ] क्षमा करनेवाला। क्षमाशील [को०]।

क्षमी—वि० [सं० क्षमिन्] १. क्षमाशील। क्षमावान्। माफ करनेवाला। उ०—सुर हरि भक्त असुर हरि द्रोही। सुर अति क्षमी असुर अति कोही।—सूर (शब्द०)। २. शांतप्रकृति। ३. समर्थ। सशक्त। उ०—मदन वदन लेत लाज को सदन देखि, यदपि जगत जीव मोहिवे को है क्षमी।—केशव (शब्द०)।

क्षम्य—वि० [सं०] माफ करने योग्य। जो क्षमा किया जाय।

क्षयंकर—वि० [सं० क्षयङ्कर] नाश करनेवाला। क्षयकारी। नाशक।

क्षय—संज्ञा पुं० [सं०] [भाव० क्षयित्व] १. धीरे धीरे घटना। ह्रास। अपचय। २. प्रलय। कल्पांत। ३. नाश। ४. घर। मकान। ५. निवासस्थान। रहने की जगह। ६. यक्ष्मा नामक रोग। क्षयी। ७. रोग। बीमारी। ८. अंत। समाप्ति। ९. नीति शास्त्र के अनुसार राजा के कृषि, वर्त्ती, दुर्ग, सेतु, हस्तिबंधन, खान, करग्रहण और सेना के समूह (अष्टवर्ग) का ह्रास या नाश। १०. साठ संवत्सरों में से अंतिम संवत्सर का नाम। यह वर्ष बहुत भयानक और उपद्रवकारी होता है। उ०—इस बारहवें युग के पिछले वर्ष का नाम क्षय है। यह क्षयकारक है।—वृहत्, पृ० ५४। ११. ज्योतिष में एक प्रकार का मास जो शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरंभ होकर अमावस्या तक रहता है।

विशेष—इस मास में दो संक्रांतियाँ होती हैं और इससे तीन मास पहले और तीन मास पीछे एक एक अधिमास पड़ता है। कार्तिक, अगहन और पूस के अतिरिक्त और कोई महीना क्षयमास नहीं हो सकता। सिद्धांत शिरोमणि के अनुसार यह मास प्रायः १४१ वर्ष के अंतर पर पड़ता है। इस मास में किसी प्रकार का मंगलकार्य करना निषिद्ध है। कोई कोई इसे अंहस्पति भी कहते हैं।

१२. जाति। वंश (को०)। १३. यमलोक। यत्यति (को०)। १४. गणित में ऋण का चिह्न या राशि (को०)। १५. हाथी के घुटने का एक भाग (को०)।

क्षयकर—वि० [सं०] दे० 'क्षयंकर' [को०]।

क्षयकाल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल। संहार का समय [को०]।

क्षयकास—संज्ञा पुं० [सं०] क्षयी रोग में होनेवाली खाँसी।

क्षयकासी—वि० [सं० क्षयकासिन्] क्षय रोग की अवस्था में खाँसी से पीड़ित। क्षयरोग से ग्रस्त।

क्षयण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शांत जलाशय । २. निवास का स्थान । ३. बंदरगाह या खाड़ी [को०] ।

क्षयतरु—संज्ञा पुं० [सं०] स्थाली का वृक्ष । बेलिया । पीपल ।

क्षयतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह चांद्र तिथि जिसमें प्रातःकाल सूर्योदय नहीं होता । तिथि क्रम में इसकी गणना नहीं की जाती । क्षयाह [को०] ।

क्षयथु—संज्ञा पुं० [सं०] खाँसी । कास । क्षय की खाँसी ।

क्षयनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती या डोडी का वृक्ष ।

क्षयपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णपक्ष । अँधेरा पक्ष ।

क्षयमास—संज्ञा पुं० [सं०] वह चांद्र मास जिसमें दो संक्रांतियाँ पड़ती हैं । यह मास १४१ वर्षों के पश्चात् आता है । कभी कभी यह उन्नीसवें वर्ष भी पड़ता है [को०] ।

क्षयरोग—संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष्मा का रोग । तपेदिक [को०] ।

क्षयरोगी—वि० [सं० क्षयरोगिन्] क्षयरोग से ग्रस्त [को०] ।

क्षयवान्—वि० [सं० क्षयवत्] [स्त्री० क्षयवती] नाशवान् । नष्ट होनेवाला ।

क्षयवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रलयकाल में चलनेवाली वायु । प्रलय की वायु [को०] ।

क्षयसंपद्—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षयसम्पत्] विनाश । सर्वनाश [को०] ।

क्षयाह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्षयतिथि' [को०] ।

क्षयिक—वि० [सं०] क्षयरोगग्रस्त । क्षयपीड़ित [को०] ।

क्षयित—वि० [सं०] १. नष्ट । २. क्षय रोग से पीड़ित [को०] ।

क्षयित्व—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय का भाव ।

क्षयिष्णु—वि० [सं०] क्षय होनेवाला । नष्ट होनेवाला ।

क्षयी[1]—वि० [सं० क्षयिन्] १. क्षय होनेवाला । नष्ट होनेवाला । २. क्षय रोग से ग्रस्त । जिसे क्षय या यक्ष्मा रोग हो ।

क्षयी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

विशेष—पुराणानुसार दक्ष के शाप से चंद्रमा को क्षय रोग हो गया था इसी से उसे क्षयी कहते हैं ।

क्षयी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षय] एक प्रसिद्ध रोग । यक्ष्मा । राजयक्ष्मा । क्षय । तपेदिक ।

विशेष—इस रोग में रोगी का फेफड़ा सड़ जाता है और सारा शरीर धीरे धीरे गल जाता है । इसमें रोगी का शरीर गरम रहता है, उसे खाँसी आती है और उसके मुँह से बहुत बदबूदार कफ निकलता है जिसमें रक्त का भी कुछ अंश रहता है । धीरे धीरे रक्त की मात्रा बढ़ने लगती है और रोगी कभी कभी रक्तवमन भी करता है । ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम 'यक्ष्माघ्न' है, जिससे जाना जाता है कि वैदिक काल में इसका रोगी मंत्रों से झाड़ा जाता था । चरक ने इस रोग का कारण वेगावरोध, धातुक्षय, दुःसाहस और विषमभक्षण आदि बतलाया है; और सुश्रुत के मत से इन कारणों के अतिरिक्त बहुत अधिक या बहुत कम भोजन करने से भी इस रोग की उत्पत्ति होती है. वैद्य लोग इसे महापातकों का फल समझते हैं और इसके रोगी की चिकित्सा करने के पहले उससे प्रायश्चित करा लेते हैं । मनु जी ने इसे पुरुषानुक्रमिक बतलाया है और इसके रोगी के विवाह आदि संबंध का निषेध किया है । डाक्टरी मत से इस रोग की तीन अवस्थाएँ होती हैं । आरंभिक अवस्था में रोगी को सूखी खाँसी आती है, थकावट मालूम होती है, नाड़ी तेज चलती है और कभी कभी मुँह से कफ के साथ रक्त भी निकलता है । मध्यम अवस्था में खाँसी बढ़ जाती है, रात को ज्वर रहता है, अधिक पसीना होता है, शरीर में बल नहीं रह जाता, छाती और पसलियों में पीड़ा होती है, मुँह से कफ की पीली गाँठें निकलती हैं और दस्त आने लगता है । इस अवस्था के आरंभ में यदि चिकित्सा का ठीक प्रबंध हो जाय, तो रोगी बच सकता है । अंतिम अवस्था में रोगी का शरीर बिलकुल क्षीण हो जाता है और मुँह से अधिक रक्त निकलने लगता है । उस समय यह रोग बिलकुल असाध्य हो जाता है । यदि अधिक प्रयत्न किया जाय, तो रोगी कुछ काल तक जी सकता है ।

क्षय्य—वि० [सं०] क्षय होने योग्य । जिसका क्षय हो सके ।

क्षर[1]—वि० [सं०] १. नाशवान् । नष्ट होनेवाला । उ०—क्षर देह यहीं का यहीं रहा ।—साकेत, पृ० १६३ । २. चल । जंगम ।

क्षर[2]—संज्ञा पुं० १. जल । २. मेघ । ३. जीवात्मा । ४. शरीर । ५. अज्ञान । ६. कार्य कारण रूप वस्तु या द्रव्य जिसका क्षण क्षण अवस्थांतर हुआ करता है ।

क्षरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रस रस के चूना । स्राव होना । रसना । २. झगड़ा । ३. विकार प्राप्त होना । नाश या क्षय होना । ४. छूटना ।

क्षरपत्रा, क्षरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षवपत्री' ।

क्षरित—वि० [सं०] टपका हुआ । चुआ हुआ । स्रवित [को०] ।

क्षरी—संज्ञा पुं० [सं० क्षरिन्] वर्षाकाल । बरसात ।

क्षव—संज्ञा पुं० [सं०] १. छींक । २. खाँसी । ३. राई [को०] ।

क्षवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपामार्ग । लटजीरा । २. राई । ३. लाही ।

क्षवकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] नकछिकनी नामक पौधा ।

क्षवथु—संज्ञा पुं० [सं०] नाक के ३१ प्रकार के रोगों में से एक प्रकार का रोग जिसमें छींकें बहुत अधिक आती हैं ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार अधिक तीक्ष्ण और चरपरे पदार्थ सूँघने, सूर्य की ओर देखने और नाक में अधिक बत्ती आदि ठूँसने से उसके अंदर का मर्मस्थान दूषित हो जाता है और अधिक छींकें आने लगती है । इसी को क्षवथु कहते हैं ।

क्षवपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षवपत्री' ।

क्षवपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रोणपुष्पी । गूमा ।

विशेष—द्रोणपुष्पी की पत्ती सूँघने से छींक आती है, इसीलिये उसे क्षवपत्रा कहते हैं । कोई कोई इसे 'क्षरपत्रा' भी कहते हैं ।

क्षविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वनभंटा । कटाई । बरहुँटा ।

विशेष—देखने में यह भटकटैया से मिलता जुलता होता है । इसके पत्ते बैंगन के पत्तों से मिलते हैं और फल भटकटैया के समान, पर उससे कुछ ही बड़े और चितकबरे होते हैं । यह

खाने में कड़ुआ, चरपरा और गरम होता है और भटकटैया के समान ओषधियों में काम आता है।

पर्या०—सर्वतनु। पीततंडुला। पुत्रप्रदा। बहुफला। गोधिनी।

क्षांत[1]—वि०[सं० क्षान्त] [क्षांता] १. क्षमाशील। क्षमा करनेवाला। २. सहनशील। सहिष्णु।

क्षांत[2]—संज्ञा पुं० १. एक ऋषि का नाम। २. उन सात व्याधों में से एक जिन्हें अपने गुरु गर्ग मुनि की गौएँ मार डालने के कारण शाप मिला था। ३. महादेव। शिव (को०)।

क्षांता—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षान्ता] पृथ्वी। भूमि [को०]।

क्षांति—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षान्ति] १. सहिष्णुता। सहनशीलता। उ०—छाई तत्र नितांत शांति महिता सर्वत्र ही क्षांति थी।—शकुं०, पृ० १९। २. क्षमा।

क्षांतु[1]—संज्ञा पुं० [सं० क्षान्तु] पिता। जनक [को०]।

क्षांतु[2]—वि० सहिष्णु। क्षमावान्। सहनशील [को०]।

क्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

क्षात्र[1]—वि० [सं०] क्षत्रिय संबंधी क्षत्रियों का जैसे—क्षात्रतेज, क्षात्रधर्म, क्षात्रगुण, आदि।

क्षात्र[2]—संज्ञा पुं० क्षत्रियत्व। क्षत्रीपन। क्षत्रिधर्म।

क्षात्रि—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रिय पुरुष और अक्षत्रिय स्त्री से जन्मी हुई संतान [को०]।

क्षाम[1]—वि० [सं०] [स्त्री० क्षामा] १. क्षीण। कृश। दुबलापतला यौ०— क्षामोदरी = पतली कमरवाली (स्त्री)।

२. दुर्बल। बलहीन। कमजोर। ३. अल्प। थोड़ा।

क्षाम[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु का एक नाम। २. क्षय। नाश।

क्षामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। धरती। भूमि [को०]।

क्षाम्य—वि०[सं०] क्षमा किए जाने योग्य। क्षमणीय।

क्षार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाहक. जारक, विस्फोटक या इसी प्रकार की और वानस्पत्य ओषधियों को जलाकर या खनिज पदार्थों को पानी में घोल और रासायनिक क्रिया द्वारा साफ करके तैयार की हुई राख का नमक।

विशेष—यह सूखा, साफ चमकीला, मैल काटनेवाला और कलम या रवे के रूप में होता है। डाक्टरी मत से क्षार उस पदार्थ को कहते हैं जो पानी में अच्छी तरह घुल सकता हो, अम्ल या तेजाब की शक्ति नष्ट करके उसका नमक बना सकता हो और भिन्न भिन्न वानस्पत्य रंगों को बदल सकता हो।

२. चक्रदत्त के अनुसार एक प्रकार की ओषधि जो मोखा नामक वृक्ष की पत्तियों के क्षार से बनती है। ३. नमक। ४. सज्जी। खार। ५. शोरा। ६. सुहागा। ७. भस्म। राख। ८. काच। शीशा। ९. गुड़। १०. काला नमक (को०)। ११. जल (को०) १०. किसी वस्तु का सत या स्वरस (को०)। १३. दुष्ट। ठग। धूर्त (को०)।

क्षार[2]—वि० १. क्षरणशील। २. खारा। ३. धूर्त।

क्षारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षार। २. सज्जी। ३. चिड़िया फँसाने का जाल। ४. मछली पकड़ने की खाँची या बोरी। ५. चिड़ियों का पिंजड़ा (को०)। ६. रस। अर्क (को०)। ७. धोबी। रजक (को०)। ८. मंजरी कलिका (को०)।

क्षारकर्दम, क्षारकर्द्दम—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

क्षारगुड़—संज्ञा पुं० [सं० क्षार + गुड़] चक्रदत्त के अनुसार एक ओषधि का नाम।

विशेष—यह ओषधि पंचमूलादि के २१ बार फूँके हुए भस्म को गुड़ के पानी में मिलाकर पकाने से बनती है। इसकी गोलियाँ रुद्राक्ष के बराबर बनती और अजीर्ण, पांडु, प्लीहा, अर्श शोथ, कफादि रोगों में उपकारी मानी जाती है।

क्षारगुण—संज्ञा पुं० [सं०] खारापन [को०]।

क्षारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रसेश्वर दर्शन के अनुसार पारे का पंद्रहवाँ संस्कार। २. (विशेषतः व्यभिचार का) दोषारोपण (को०)। ३. क्षार का निर्माण। खार बनाना। ४. टपकाना। चुआना (को०)

क्षारत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी, शोरा और सुहागा इन तीन क्षारों का समूह।

क्षारदशक—संज्ञा पुं० [सं०] दश क्षारों का समूह। सहिजन, मूली, पलास. चूका शाक या तिनपतिया, चित्रक, अद्रक, नीम, ईख, अपामार्ग और केले के क्षारों का समूह।

क्षारद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] मोरवा नाम का वृक्ष।

क्षारनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (पुराण के अनुसार) नरक की एक नदी का नाम [को०]।

क्षारपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ नामक साग।

क्षारपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ नामक साग।

क्षारपत्रा—संज्ञा पुं० [सं०] चिल्ली नामक साग।

क्षारपाक—संज्ञा पुं० [सं०] मोखा के पौधे से निकले हुए क्षार को कोरैया, पलाश, बहेड़ा, लोध, केला, चीता, कनेर आदि ओषधियों के साथ जल में पानी से बना हुआ पाक। यह छेदन, भेदन अर्थात् फोड़ा फुंसी के काम में आता है।

क्षारपाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

क्षारभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊसर जमीन [को०]।

क्षारमृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] खारी मिट्टी। रेह [को०]।

क्षारमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग।

क्षारलवण—संज्ञा पुं० [सं०] खारा नमक।

विशेष—वैद्यक में यह पेशाब और दस्त लानेवाला माना गया है।

क्षारवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सज्जीखार, सोहागा और शोरा इन तीनों का समूह। क्षारत्रय।

क्षारश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्रक्षार। २. पलास। ३. मोरवा। मुष्कक क्षुप।

क्षारषट्क—संज्ञा पुं० [सं०] छह प्रकार के क्षारों का समूह। धव, अपामार्ग, कोरैया, लांगली, तिल और मोखा, जिसके भस्म से क्षार निकलता है।

क्षाराक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] काच की बनी हुई नकली आँख [को०]।

क्षाराक्ष[२]—वि० बनावटी आँख लगानेवाला [को०]।
क्षारागद—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक औषध।
विशेष—यह पलास, नीम, देवदार, धव, आँवला, मिलावाँ, आम आदि कई लकड़ियों के भस्म को क्षारपाक की रीति से गोमूत्र में मिलाकर पकाने से बनती है। यह औषध अर्श, वातगुल्म, काश, अजीर्ण, संग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है।
क्षाराष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के क्षारों का समूह।
विशेष—पलास, हड़जोड़, चिचड़ा, इमली, तिल, मदार, जौ तथा सज्जीखार इस वर्ग के अंतर्गत हैं।
क्षारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूख। बुभुक्षा [को०]।
क्षारित—वि० [सं०] १. अपवादग्रस्त। दूषित। २. स्रावित। भरा हुआ।
क्षारोद—संज्ञा पुं० [सं०] खारा समुद्र। लवण समुद्र।
क्षारोदक क्षारोदधि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्षारोद' [को०]।
क्षाल—संज्ञा पुं० [सं०] क्षालन। धोना। साफ करना [को०]।
क्षालन—संज्ञा पुं० [सं०] धोना। निर्मल करना। साफ करना।
क्षालित—वि० [सं०] धुला हुआ। साफ किया हुआ। उ०—क्षालित शत तरंग तनु पालित अवगाहित निकली दुति निर्मल।—गीतिका, पृ० ८३।
क्षिण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] दे० 'क्षण'। उ०—वज्रहूँ ते तृण क्षिण में होई। तृण ते वज्र करै पुनि सोई।—कबीर बी०, पृ० १३०।
क्षित[१]—वि० [सं०] १. नष्ट। ध्वस्त। २. क्षीण। छीजा हुआ। ३. दुर्बल किया हुआ ४. दीन। हीन [को०]।
क्षित[२]—संज्ञा पुं० १. वध। २. आघात। क्षति। प्रहार [को०]।
क्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। क्षिति [को०]।
क्षिति—संज्ञा पुं० [सं] १. पृथिवी। २. वासस्थान। जगह। ३. गोरोचन ४. एक ऋषि का नाम। ५. पंचम स्वर की चार श्रुतियों में से पहली श्रुति। ६. क्षय। ७. प्रलय काल।
क्षितिक्षम—संज्ञा पुं० [सं०] खैर का पेड़।
क्षितिजंतु—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिजन्तु] केंचुवा।
क्षितिज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल ग्रह। २. नरकासुर। ३. केंचुआ। ४. वृक्ष। पेड़ ५. खगोल में वह तिर्यग् वृत्त जिसकी दूरी आकाश के मध्य से ९० अंश हो। ऊँचे स्थान पर खड़े होकर देखने से चारों ओर दिखाई पड़ता हुआ वह वृत्ताकार स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी दोनों मिले जान पड़ते हैं।
क्षितिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी की कन्या-सीता [को०]।
क्षितितनय—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।
क्षितितल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वीतल। धरातल [को०]।
क्षितिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] भूसुर। ब्राह्मण।
क्षितिधर—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। भूधर।
क्षितिप—संज्ञा पुं० [सं०] भूपति। राजा। उ०—सब हर्षनिमग्न हो गए, क्षितियों के मन भग्न हो गए।—साकेत, पृ० ३५६।
क्षितिपति संज्ञा पुं० [सं०] राजा। भूपति [को०]
क्षितीश, क्षितीश्वर—संज्ञा पुं० दे० 'क्षितिपपति' [को०]।
क्षित्यदिति—संज्ञा पुं० [सं०] देवकी का नाम, जो भगवान् कृष्ण की माता थीं [को०]।
क्षित्यधिप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्षितिपति' [को०]।
क्षिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोग। २. सूर्य। ३. सींग।
क्षिप[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकने की क्रिया। क्षेपण। २. अपमानित करना। झिड़कना [को०]।
क्षिप[२]—वि० १. क्षेपक। फेंकनेवाला। २. अपमान करनेवाला [को०]।
क्षिपक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० क्षिपिका] योद्धा। धनुर्धर [को०]।
क्षिपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना। डालना। २. भेजना। ३. अभियोग करना। भर्त्सना करना [को०]।
क्षिपणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ डाँड। चप्पू। २. अस्त्र। फेंककर प्रहार किया जानेवाला हथियार। जाल। ४. पुरोहित [को०]।
क्षिपणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाबुक का प्रहार। कशाघात [को०]।
क्षिपणु—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवा। पवन। दे० 'क्षिपणि' [को०]।
क्षिपण्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर २. वसंत ऋतु। ३. सुवास। सुगंध [को०]।
क्षिपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. फेंकना। डालना। २. रात।
क्षिप्त[१]—वि० [सं०] १. त्यक्त। २. विकीर्ण। उ०—क्षिप्त खिलौने देख हठीले बाल के, रख दे माँ ज्यों उन्हें सँभाल सँभाल के।—साकेत, पृ० ११५। ३. प्रवज्ञात। अपमानित। ४. पतित। ५. वात रोग से ग्रस्त। पागल। ६. स्थापित [को०]।
क्षिप्त[२]—संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक, जिसमें चित्त रजोगुण के द्वारा सदा अस्थिर रहता है। कहा गया है, यह अवस्था योग के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती। वि० दे० 'चित्तभूमि'।
क्षिप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात (को०)।
क्षिप्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना। डालना। २. कूट अर्थ को प्रकट करना [को०]।
क्षिप्र[१]—क्रि० वि० [सं०] १. शीघ्र। जल्दी। २. तत्क्षण। तुरंत।
क्षिप्र[२]—वि० [सं०] १. तेज। जल्द। जैसे- क्षिप्रहस्त, क्षिप्रहोम। २. चंचल।
क्षिप्र[३]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुश्रुत के अनुसार शरीर के एक सौ सात मर्म स्थानों में से एक, जो अँगूठे और दूसरी उँगली के बीच में है। २. एक मुहूर्त का पंद्रहवाँ भाग।
क्षिप्रकर—वि० [सं०] कुशल। मुस्तैद। उ०—मकरंद तबला के बजाने में क्षिप्रकर था।—श्यामा०, पृ० १०१।
क्षिप्रकारी—वि० [सं० क्षिप्रकारिन्] शीघ्र काम करनेवाला [को०]।
क्षिप्रचेता—वि० [सं० क्षिप्रचेतस्] सचेत। जागरूक। प्रत्युत्पन्न मति।
क्षिप्रपाकी—संज्ञा पुं० [सं०] गर्दभांड नाम का वृक्ष। पारस पीपल।
क्षिप्रमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रेंद्रिय संबंधी एक प्रकार का रोग।
क्षिप्रश्येन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया।

क्षिप्रहस्त[1]—वि० [सं०] शीघ्र या तेज काम करनेवाला ।

क्षिप्रहस्त[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि का एक नाम । २. एक राक्षस का नाम ।

क्षिप्रहोम—संज्ञा पुं० [सं०] सायंकाल और प्रातःकाल का होम, जो संक्षिप्त और जल्दी होता है ।

क्षिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विनाश । हानि । बर्बादी । २. आचार का उल्लंघन । अनौचित्य [को०] ।

क्षीण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० क्षीणा; भाव० संज्ञा क्षीणता, क्षैण्य] १. दुबला । पतला । २. सूक्ष्म । ३. क्षयशील । ४. घटा हुआ । जो कम हो गया हो । जैसे—क्षीणकोप, क्षीणवृत्ति । ५. निर्धन । संकटग्रस्त (को०) । ६. सुकुमार । नाजुक (को०) । ७. मृत । विध्वस्त (को०) ।

क्षीणकंठ—वि० [सं० क्षीणकण्ठ] १. जिसका गला सूख गया हो । सूखे गलेवाला । २ मंद आवाज वाला । उ०—क्षीणकंठ कर रहा पुकार, जलधर से बनकर जलधार ।—वीणा, पृ० ६ ।

क्षीणकाय—वि० [सं०] दुबले पतले शरीरवाला । दुर्बल [को०] ।

क्षीणचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० क्षीणचन्द्र] वह चंद्रमा जिसमें सात या इससे कम कलाएँ हों । (कृष्ण पक्ष की अष्टमी से शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक का चंद्रमा 'क्षीणचंद्र' कहलाता है ।)

क्षीणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्बलता । कमजोरी । २. दुबलापन । पतलापन । ३ सूक्ष्मता ।

क्षीणपाप—वि० [सं०] जिसके पाप नष्ट हो गए हों [को०] ।

क्षीणपुण्य—वि० [सं०] जिसके पुण्य समाप्तप्राय हों । जो पुण्य का फल भोग चुका हो [को०] ।

क्षीणप्रकृति—वि० [सं०] (राजा) जिसकी प्रकृति अर्थात् प्रजा दरिद्र हो । जिसकी प्रजा दिन पर दिन दुर्बल और दरिद्र होती जाती हो ।

क्षीणमध्य—वि० [सं०] पतली कमरवाला [को०] ।

क्षीणवासी—वि० [सं० क्षीणवासिन्] टूटे फूटे घर में रहनेवाला [को०] ।

क्षीणविक्रांत—वि० [सं० क्षीणविक्रान्त] शक्ति या पौरुषहीन [को०] ।

क्षीणवृत्ति—वि० [सं०] गरीब । कंगाल [को०] ।

क्षीणवीर्य—वि० [सं०] शक्तिहीन ।

क्षीणवृत्ति—वि० [सं०] जीविका के साधनों से रहित । बेरोजगार । बेकार [को०] ।

क्षीणसार—वि० [सं०] रसरहित । तत्वहीन । शुष्क (वृक्षादि) ।

क्षीणार्थ—वि० [सं०] स्वल्प धनवाला । धनरहित [को०] ।

क्षीन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीण] दे० 'क्षीण' । उ०—उपजत विनसत क्षीन भइ देहा । कलियुग आवै क्षीन सनेहा :—कबीर सा०, पृ० ५१ ।

क्षीव—वि० [सं०] दे० 'क्षीव' ।

क्षीयमाण—वि० [सं०] १. नित्य घटने या कम होनेवाला । २. नाशवान् । [illegible]शील

क्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] १. [illegible] पय । २. द्रव या तरल पदार्थ । ३. जल । पानी । ४. पेड़ों का रस या दूध । निर्यास । ५. खीर । ६. सरल नामक वृक्ष का गोंद ।

यौ०—क्षीरसार = मक्खन ।

क्षीरकंठ, क्षीरकंठक—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरकण्ठ, क्षीरकण्ठक] दुधमुँहा बच्चा [को०] ।

क्षीरकंद—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरकन्द] क्षीरविदारी ।

क्षीरकांडक—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरकाण्डक] १. थूहड़ । २. मंदार ।

क्षीरकाकोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षीरकाकोली' ।

क्षीरकाकोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की काकोली जड़ी जो हलकी और वीर्यवर्धक होती है और जिसके खाने से स्त्रियों का दूध बढ़ता है । यह अष्टवर्ग के अंतर्गत है ।

क्षीरखर्जूर—संज्ञा पुं० [सं०] पिंडखजूर ।

क्षीरघृत—संज्ञा पुं० [सं०] वह मक्खन जो दूध को मथकर निकाला गया हो । सुश्रुत के अनुसार यह मलरोधक, मूर्छा दूर करनेवाला और नेत्रों को हितकारी होता है ।

क्षीरज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शंख । ३. कमल । ४. दही । ५. मोती । मुक्ता (को०) । ६. समुद्रमंथन से उद्भूत अमृत या मक्खन (को०) । ७. शेषनाग (को०) । ८. समुद्री नमक (को०) ।

क्षीरज[2]—वि० [सं०] दूध से उत्पन्न या बना हुआ ।

क्षीरजा—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी ।

क्षीरतुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीरतुम्बी] कद्दू । लौकी [को०] ।

क्षीरतैल—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का औषध सिद्ध तैल ।

क्षीरदल—संज्ञा पुं० [सं०] मंदार । आक ।

क्षीरद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ ।

क्षीरधात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध पिलानेवाली धाय [को०] ।

क्षीरधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. क्षीरसागर । दुग्ध का समुद्र [को०] ।

क्षीरधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार एक प्रकार की कल्पित गौ, जो घड़े आदि को स्थापित करके बनाई और दान की जाती है । २. दूध देनेवाली गाय (को०) ।

क्षीरनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. क्षीरसागर [को०] ।

क्षीरनीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. आलिंगन । गले लगाना । २. मिल जाना । ३. दूध और जल (को०) । ४. दूध की तरह का जल (को०) ।

क्षीरप—संज्ञा पुं० [सं०] शिशु । बच्चा । बालक [को०] ।

क्षीरपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदार । आक ।

क्षीरपलांडु—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरपलाण्डु] सफेद प्याज ।

क्षीरपाक[1]—वि० [सं०] दूध में पकाया हुआ ।

क्षीरपाक[2]—संज्ञा पुं० वैद्यक में वह औषधि जो अठगुने दूध और जल में औटाकर तैयार की जाय ।

क्षीरपाकौदन—संज्ञा पुं० [सं० क्षीर + पाक + ओदन] दूध में पकाया हुआ चावल । खीर । जाउर । उ०—क्षीरपाकौदन अर्थात् दूध में पकाए हुए भात (जिसे खीर कहते हैं) का भी उल्लेख है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८० ।

क्षीरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखपुष्पी [को०]।

क्षीरभृत—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार वह ग्वाला या चरवाहा जो अपने वेतन स्वरूप केवल दूध ही ले।

क्षीरवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरविदारी [को०]।

क्षीरविदारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारी कंद से मिलती जुलती एक प्रकार की जड़ी जिसमें से दूध निकलता है। यह शूल और प्रमेह रोगों में उपकारी मानी जाती है।

पर्या०—इक्षुगंधा। क्षीरवल्ली। पयःकंदा। पयोलता।

क्षीरवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. उदुंबर। गूलर। २. महुआ। ३. अश्वत्थ। ४. खिरनी।

क्षीरव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] केवल दूध पीकर रहने का व्रत।

क्षीरशर—संज्ञा पुं० [सं०] मलाई। साढ़ी [को०]।

क्षीरशाक—संज्ञा पुं० [सं०] कच्चा फटा हुआ दूध। वैद्यक में इसे बहुत बलकारक माना गया है।

क्षीरषष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] दूध में पकाया हुआ साठी चावल का भात, जो ग्रहयज्ञ में बुध ग्रह को अर्पित किया जाता है।

क्षीरसंतानिका—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीरसन्तानिका] एक प्रकार का बिगड़ा हुआ दूध।

क्षीरस—संज्ञा पुं० [सं०] दूध या दही पर की मलाई।

क्षीरसागर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक, जो दूध से भरा हुआ माना जाता है। नारायण इसी समुद्र में शेषशय्या पर सोते हैं।

क्षीरसार—संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत। मक्खन [को०]।

क्षीरस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बढ़िया स्फटिक।

क्षीरहिंडीर—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरहिण्डीर] दूध का फेन [को०]

क्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली नाम की जड़ी।

क्षीराद—संज्ञा पुं० [सं०] दुधमुहाँ बच्चा [को०]।

क्षीराब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरसागर। दूध का समुद्र।

क्षीरिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प।

क्षीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिंड खजूर। २. वंशलोचन। ३. दूध से बना खाद्य पदार्थ (को०)। ४. खिरनी का पेड़ (को०)।

क्षीरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षीर काकोली। २. खिरनी। ३. दुद्धी नाम की लता। ४. वराहक्रांता।

क्षीरी¹—वि० [सं०] दूध देनेवाला। दूधयुक्त जिससे दूध निकले [को०]।

क्षीरी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] खीर।

क्षीरोद—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरसमुद्र।

यौ०—क्षीरोदतनय, क्षीरोदनंदन = चंद्रमा। क्षीरोदतनया, क्षीरोदसुता = लक्ष्मी।

क्षीरोदक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

क्षीरोदतनय—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा जो समुद्र का पुत्र और उससे उत्पन्न माना जाता है।

क्षीरोदतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी जो समुद्र की कन्या और उससे उत्पन्न या निकली हुई मानी जाती है।

क्षीरोदधि—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरसागर। क्षीरसमुद्र।

क्षीरोदन—संज्ञा पुं० [सं०] दूध में पकाया चावल। खीर।

क्षीव—वि० [सं०] मदोन्मत्त। मतवाला। उत्तेजित। मत्त [को०]।

क्षुण—संज्ञा पुं० [सं०] ठेरी का पेड़। रीठा [को०]।

क्षुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरती। भूमि [को०]।

क्षुण्ण—वि० [सं०] १. अभ्यस्त। २. टुकड़े टुकड़े या चूर्ण किया हुआ। ३. जिसका कोई अंग टूट या कट गया हो। खंडित। ४. अनुगत। ५. पराजित (को०)।

क्षुण्णक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ढोल जो अंत्येष्टि के समय बजाया जाता है [को०]।

क्षुत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छींक। २. भूख। क्षुधा।

यौ०—क्षुत्क्षाम = भूख से कृश। क्षुत्पिपासा = भूख प्यास। उ०—भाव मन की वेगयुक्त अवस्था विशेष है, वह क्षुत्पिपासा, काम वेग आदि शरीर वेगों से भिन्न है।—रस०, पृ० १६४।

क्षुत¹—संज्ञा पुं० [सं०] छींक।

क्षुत²Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद, क्षुत्] भूख। उ०—छूटे सर्व सबनि के सुख क्षुत पिपासा। विद्वद्विनोद गुणगीत विधान वासा।—केशव (शब्द०)

क्षुतक—संज्ञा पुं० [सं०] काली सरसों या राई [को०]।

क्षुतपियासⓅ—संज्ञा स्त्री० [क्षुत् + पिपासा] भूख प्यास। उ०—हरि अरु मृग जहँ इक सँग चरैं। क्षुतपियास नेंक न संचरैं।—नंद० ग्रं०, पृ० २६७।

क्षुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] छींकना। छींक [को०]।

क्षुद—संज्ञा पुं० [सं०] पिया हुआ गोधूमचूर्ण। चूर्ण। आटा [को०]।

क्षुद्र¹—वि० [सं०] १. कृपण। कंजूस। २. अधम। नीच। ३. अल्प। छोटा या थोड़ा ४. क्रूर। खोटा ५. दरिद्र। निर्धन।

क्षुद्र²—संज्ञा पुं० [सं०] १. चावल का कण। १. मधुमक्खी या बर्रे [को०]।

क्षुद्रक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम जो वर्तमान पंजाब के अंतर्गत है। २. क्षुद्र व्यक्ति। ३. तोना। एक परिमाण। ४. एक प्रकार का बाण (को०)।

क्षुद्रक—वि० क्षुद्र। निम्न।

क्षुद्रकुलिश—संज्ञा पुं० [सं०] वैक्रांतमणि [को०]।

क्षुद्रघंटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्रघण्टिका] १ एक प्रकार का प्राचीन आभूषण जो कमर में पहना जाता था। इसमें घुँघरू या घंटियाँ लगी रहती थीं, जो चलने में बजती थीं। घुँघरूदार करधनी। २. घुँघरू।

क्षुद्रचंचु—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्रचञ्चु] एक प्रकार का झाड़ [को०]

क्षुद्रचंदन—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्रचन्दन] लाल चंदन।

क्षुद्रजंतु—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्रजन्तु] बहुत छोटा और बिना हड्डी का जंतु या कीड़ा मकोड़ा।

क्षुद्रता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीचता। कमीनापन। २. ओछापन।
क्षुद्रतुलसी--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की बबुई तुलसी।
क्षुद्रदंशिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी। डाँस [को०]।
क्षुद्रधान्य--संज्ञा पुं० [सं०] कँगनी, चेना, कोदों आदि कुधान्य।
विशेष--वैद्यक के अनुसार इस प्रकार के धान्य रूखे, कसैले, हलके और वातकारक होते हैं।
क्षुद्रपति--संज्ञा स्त्री० [सं०] कुबेर। उ०--रुद्रपति, क्षुद्रपति, लोकपति, वोकपति, धरनिपति, गगनपति अगमबानी।--सूर (शब्द०)
क्षुद्रपत्रा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अमलोनी। नोनिया साग।
क्षुद्रपत्री--संज्ञा स्त्री० [सं०] वच।
क्षुद्रपद--संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक नाप जो १० अंगुल के बराबर होती है [को०]।
क्षुद्रपनस--संज्ञा पुं० [सं०] लकुच का पेड़ [को०]।
क्षुद्रपर्ण--संज्ञा पुं० [सं०] तुलसी [को०]।
क्षुद्रपिप्पली--संज्ञा स्त्री० [सं०] वनपीपर। वनपिप्पली [को०]।
क्षुद्रप्रकृति--वि० [सं०] ओछे या खोटे स्वभाववाला। नीच प्रकृति का।
क्षुद्रफल--संज्ञा पुं० [सं०] १. भूमिजंबु का वृक्ष [को०]
क्षुद्रफला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जामुन। २ इंद्रायण।
क्षुद्रबुद्धि--वि० [सं०] १. दुष्ट या नीच बुद्धिवाला। २. नासमझ। मूर्ख।
क्षुद्रम--संज्ञा पुं० [सं०] धातु आदि तौलने के लिये छह माशे की एक तौल, जिसे 'छदाम' कहते हैं।
क्षुद्रमुस्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] कसेरू।
क्षुद्ररस--संज्ञा पुं० [सं०] १. शहद मधु। २. विषयसुख [को०]।
क्षुद्ररोग--संज्ञा पुं० [सं०] छोटे रोग, सुश्रुत के अनुसार जिनकी संख्या ४४ (४८) है और जिनमें फोड़ा, फुंसी, मुँहासा, झाईं, कुनख आदि संमिलित हैं।
क्षुद्रल--वि० [सं०] (रोग और जानवर के लिये विशेषतः प्रयुक्त) मामूली। तुच्छ। बहुत छोटा [को०]।
क्षुद्रवर्वणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भिड़। बर्रे। २. डाँस [को०]।
क्षुद्रशर्करा संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चीनी [को०]।
क्षुद्रशार्दूल--संज्ञा पुं० [सं०] चीता। चित्रक [को०]।
क्षुद्रशीर्ष--संज्ञा पुं० [सं०] मयूरशिखा नाम का वृक्ष [को०]।
क्षुद्रश्वास--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्वास रोग।
विशेष--सुश्रुत के अनुसार यह अधिक भोजन या कम परिश्रम करने और दिन को सोने से होता है। माधव निदान में इसे रूखे पदार्थ खाने से और श्रम करने से प्रकट माना गया है।
क्षुद्रसुवर्ण--संज्ञा पुं० [सं०] पीतल।
क्षुद्रहा--संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्रहन्] शिव का एक नाम।
क्षुद्रांजन--संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्राञ्जन] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का अंजन जो धोये हुए आँवले आदि से बनाया जाता है।
क्षुद्रांत्र--[सं० क्षुद्रान्त्र] हृदय के पास की एक छोटी नाड़ी।
क्षुद्रा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। २. चँगेरी। अमलोनी। लोनी। ३. जटामासी। बालछड़ ४. एक प्रकार की मधुमक्खी जिसे 'सरघा' कहते हैं। ५. गवेधुक। कौड़ियाला। कोड़िल्ला। ६. कटकारी। ७ हिचकी। ८. प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो १६ हाथ लंबी, ४ हाथ चौड़ी और ४ हाथ ऊँची होती थी। यह केवल छोटी छोटी नदियों में चलती थी। ९. वेश्या। वारवधू (को०)। १०. लड़ाकू औरत (को०)। ११ विकलांग स्त्री (को०)। १२. नृत्यांगना। नाचनेवाली लड़की (को०)।
क्षुद्रात्मा--वि० [सं० क्षुद्रात्मन्] निम्न विचार का। निम्न प्रकृतिवाला [को०]।
क्षुद्रावली--संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्रघंटिका। किंकिणी। उ०--अंग अभूषण जननि उतारति। दुलरी ग्रीव माल मोतिन की केयूर लै भुज श्याम निहारति। क्षुद्रावली उतारति कटि तें सैंति धरति मन ही मन वारति।--सूर (शब्द०)।
क्षुद्राशय--वि० [सं०] नीचप्रकृति। कमीना। 'महाशय' का उलटा।
क्षुद्रिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] करधनी। किंकिणी। क्षुद्रघंटिका। उ०--मिलनस्मृति सी रहे यहाँ यह क्षुद्रिका। सीता देने लगीं स्वर्णमणिमुद्रिका।--साकेत, पृ० १२६। २. डंस। डाँस (को०)।
क्षुद्रेंगदी--संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्रेङ्गुदी] जवासा।
क्षुधा--संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० क्षुधित, क्षुधालु] भोजन करने की इच्छा। भूख।
क्षुधाक्षीण--वि० [सं०] भूख से कृश या दुर्बल।
क्षुधातुर--वि० [सं०] जिसे भूख लगी हो। भूखा।
क्षुधानिवृत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुधा की शांति। भूख का मिटाना। पेट भरना।
क्षुधार्त--वि०--भूख से कातर [को०]।
क्षुधार्दित--वि० [सं० क्षुधा+अर्दित] भूख से पीड़ित।
क्षुधालु--वि० [सं०] जिसे सदैव भूख लगी रहती हो। भुक्खड़।
क्षुधावंत--वि० [हिं० क्षुधा+वंत (प्रत्य० या सं० क्षुधावान् का बहु० व० क्षुधावन्त] क्षुधा से पीड़ित। भूखा। उ०--क्षुधावंत रजनीचर मेरे।--तुलसी (शब्द०)।
क्षुधावती--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विशेष प्रकार की तैयार की हुई औषध जिसके सेवन से भूख बढ़ती है।
क्षुधित--वि० [सं०] जिसे भूख लगी हो। भूखा। बुभुक्षित।
क्षुध्या(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुधा] दे० 'क्षुधा' उ०--अमृत फल से भोजन करहीं युगन युगन की क्षुध्या हरहीं।--कबीर सा०, पृ० १००२।
क्षुप--संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटी डालियोंवाला वृक्ष। पौधा। झाड़ी। २. श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम, जिसका जन्म सत्यभामा के गर्भ से हुआ था। ३. महाभारत के अनुसार प्रसंधि के पुत्र और इक्ष्वाकु के पिता का नाम।
क्षुपक--संज्ञा पुं० [सं०] झाड़ी। गुल्म [को०]।

क्षुपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षुपक'।

क्षुब्ध[1]—वि० [सं०] १. आंदोलित। चचल। अधीर। २. व्याकुल। विह्वल। ३. भयभीत। डरा हुआ। ४. कुपित। क्रुद्ध।

क्षुब्ध[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मथानी की डंडी। २. एक प्रकार का रतिबंध या कामशास्त्र की क्रिया।

क्षुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य के एक प्रकार के पारिषद् देवता।

क्षुभित—वि० [सं०] क्षुब्ध।

क्षुमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० क्षौम] १. बाण। २. एक प्रकार के पौधों की जाति जिनकी डाली पतली और सीधी तथा छाल रेशेदार और दृढ़ होती है जैसे, अलसी, पटसन, सन, इत्यादि। ३. अलसी। ४. सनई। ५. नील का पौधा।

क्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. छुरा। उस्तरा।

यौ०—क्षुरकर्म, क्षुरक्रिया = हजामत। क्षुरचतुष्टय = हजामत के लिये आवश्यक उस्तरा, जल, कुशतृण और ब्रश आदि ४ वस्तुएँ।

२. वह बाण जिसकी गाँसी की धार छुरे के सदृश होती है। ३. गोखरू। ४. पशुओं के पावँ का खुर। ५. शय्या का पावा। चारपाई का गोड़ा (को०)।

क्षुरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्षुर'।

क्षुरधान—संज्ञा पुं० [सं०] नाई की किसवत।

क्षुरधार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक नरक का नाम। २. एक प्रकार का बाण।

क्षुरधार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी धार छुरे की तरह तेज हो।

क्षुरपत्र[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० क्षुरपत्रा, क्षुरपत्री] जिसके पत्ते छुरे की तरह धारदार हों।

क्षुरपत्र[2]—संज्ञा पुं० १. शर नामक गुच्छ। २. क्षुरधार नामक बाण।

क्षुरपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पालकी नामक साग। पालक।

क्षुरपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पालकी नामक साग। पालक।

क्षुरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वचा। वच।

क्षुरप्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकार का बाण, जिसकी गाँसी की धार तेज छुरे की धार के समान होती है। २. खुरपा।

क्षुरभांड—संज्ञा पुं० [सं० क्षुरभाण्ड] दे० 'क्षुरधान'।

क्षुरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छुरी। चाकू। २. पालकी नामक साग। ३. मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार एक यजुर्वेदीय उपनिषद् का नाम। ४. एक प्रकार का मिट्टी का पात्र (को०)।

क्षुरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाइन। नाई जाति की स्त्री (को०)।

क्षुरी[1]—संज्ञा पुं० [सं० क्षुरिन्] [स्त्री० क्षुरिनी] १. नाई। हज्जाम। २. वह पशु जिसके पाँव में खुर हों।

क्षुरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] छुरी। चाकू।

क्षुल्ल—वि० [सं०] १. छोटा। २. थोड़ा (को०)।

क्षुल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'क्षुद्र'। २. छोटा शंख (को०)।

क्षुल्लतात—संज्ञा पुं० [सं०] पितृव्य। पिता का छोटा भाई (को०)।

क्षुवु—संज्ञा पुं० [सं०] १. छींक। २. राई। ३. साही।

क्षेतरपाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रपाल] दे० 'क्षेत्रपाल'। उ०—कलियुग क्षेतरपाल है क्या भैरो कोई भूत।—कबीर सं०, पृ० ५८८।

क्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ अन्न बोया जाता हो। खेत। २. समतल भूमि। ३. वह जगह जहाँ कोई चीज पैदा हो। उत्पत्तिस्थान। ४. स्थान। प्रदेश। जैसे,—हरिहर क्षेत्र। कुरुक्षेत्र। ५. पुण्यस्थान। तीर्थस्थान। ६. राशि (मेष आदि)। ७. स्त्री। जोरू। ८. शरीर। बदन। ९. गीता के अनुसार पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ, पाँचों कर्मेंद्रियाँ, मन, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संस्कार चेतनता और धृति। १०. अंतःकरण। ११. वह स्थान जो रेखाओं से घिरा हुआ हो।

यौ०—क्षेत्रभक्ति = खेतों का बँटवारा। क्षेत्रमिति = क्षेत्रगणित। क्षेत्ररुहा = एक तरह की ककड़ी। क्षेत्रव्यवहार = किसी क्षेत्र का वर्गफल आदि निकालना। क्षेत्रसंन्यास = किसी स्थानविशेष की सीमा के अंदर रहने का व्रत।

१२. बाड़ा। घेरा (को०)। १३. गृह। घर (को०)। १४. रेखाचित्र। रेखांकन (को०)। १५. अन्नसत्र (को०)।

क्षेत्रकर, क्षेत्रकर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] किसान। खेतिहर (को०)।

क्षेत्रगणित—संज्ञा पुं० [सं०] गणित विद्या की वह शाखा जिसमें क्षेत्रों के नापने और उनके क्षेत्रफल निकालने की विधि का वर्णन रहता है।

क्षेत्रज[1]—वि० [सं०] जो क्षेत्र से उत्पन्न हो।

क्षेत्रज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक। वह पुत्र जो किसी अयोग्य या असमर्थ पुरुष की बिना संतानवाली स्त्री अथवा मृत पुरुष की बिना संतानवाली विधवा के गर्भ और नियुक्त देवर आदि के वीर्य से उत्पन्न हो। इस प्रकार का पुत्र अपनी माता के पति के स्वत्व का अधिकारी माना जाता है। कलियुग में इस प्रकार का पुत्र उत्पन्न करना वर्जित है।

क्षेत्रजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफेद कंटकारी। २. एक प्रकार की ककड़ी। ३. गोमूत्र तृण। ४. शिल्पिका। शिल्पी घास।

क्षेत्रजात—वि० [सं०] परपुरुष द्वारा उत्पन्न (संतान) (को०)।

क्षेत्रज्ञ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर का अधिष्ठाता, जीवात्मा। २. परमात्मा। ३. किसान। खेतिहर। ४. साक्षी।

क्षेत्रज्ञ[2]—वि० [सं०] जानकार। ज्ञाता।

क्षेत्रदूतिका, क्षेत्रदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेतवर्ण की कंठकारी (को०)।

क्षेत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेत का रखवाला। क्षेत्रपाल २. खेतिहर। काश्तकार। ३. जीवात्मा। ४. परमात्मा।

क्षेत्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेत का रखवाला। क्षेत्ररक्षक। २. एक प्रकार के भैरव जो संख्या में ४९ हैं और पश्चिम के द्वारपाल माने जाते हैं। ३. द्वारपाल। ४. किसी स्थान का प्रधान प्रबंधकर्ता। स्वयंभू। भूमिया।

क्षेत्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी क्षेत्र का वर्गात्मक परिमाण जो प्रायः उसकी लंबाई और चौड़ाई के घात या गुणन से जाना जाता है। वर्गपरिमाण। रकबा।

क्षेत्रविद्¹—संज्ञा पुं० [सं०] जीवात्मा ।

क्षेत्रविद्²—वि० [सं०] जिसे स्थानों और मार्गों का पूरा ज्ञान हो ।

क्षेत्रहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खेत को नुकसान पहुँचाना ।

विशेष—कौटिल्य के समय में इस संबंध में ये नियम थे—खेत चर जाने पर पशुओं के मालिकों से दुगुना नुकसान लिया जाता था। यदि किसी ने कहकर करवाया हो तो उसपर १२ पण और जो रोज यही करे उसपर २४ पण जुर्माना किया जाता था। रखवालों को आधा दंड मिलता था ।

क्षेत्राजीव—संज्ञा पुं० [सं०] किसान । खेती करनेवाला [को०] ।

क्षेत्रादीपिक—संज्ञा पुं० [सं०] खेत में आग लगानेवाला ।

विशेष—प्राचीन काल में इसका दंड आग लगानेवाले को आग में जला देना था ।

क्षेत्राधिप—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार किसी राशि का स्वामी ।

क्षेत्रानुगत—वि० [सं०] कौटिल्य के अनुसार घाट या बंदरगाह पर लगा हुआ (जहाज) ।

क्षेत्रामलकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूँइआवला । भूम्यामलकी [को०] ।

क्षेत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] किसान । खेतवाला कृषक ।

क्षेत्रिय—¹ संज्ञा पुं० [सं०] १. चरागाह । २. परस्त्री से संबंध रखनेवाला पुरुष । ३. असाध्य रोग । कठिन रोग । ४. दवा । औषधि [को०] ।

क्षेत्रिय²—वि० खेत संबंधी या खेत में उत्पन्न । ३. क्षेत्र का अधिकारी । ४.(रोग) असाध्य । कठिन [को०] ।

क्षेत्री—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रिन्] १. खेत का मालिक । २. नियुक्ता स्त्री का विवाहित पति । नाममात्र का पति । उ०—जब इस गर्भवती के लेने से मुझे क्षेत्री कहलाने का डर है तो क्योंकर इसे स्वीकार कर सकता हूँ ।—शकुंतला, पृ० ९२ । ३. स्वामी । ४. आत्मा (को०) । ५. परमात्मा (को०) । ६. असाध्य वा कठिन रोग (को०) ।

क्षेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. शोक । २. रोदन [को०] ।

क्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना । २. ठोकर । घात । ३. अक्षांश । शर । ४. निंदा बदनामी कलंक । ५. दूरी । ६. बिताना । गुजारना । जैसे,—कालक्षेप । ७. फूल का गुच्छा । पुष्पस्तवक (को०) । ८. विलंब । देरी (को०) ९. घमंड । अहंकार (को०) । १०. अनादर । अपमान (को०) । ११. नाव का डाँडा खेना (को०) ।

क्षेपक¹—वि० [सं०] १. फेंकनेवाला २. मिलाया हुआ । मिश्रित । ३. निंदनीय ।

क्षेपक²—संज्ञा पुं० [सं०] १ केवट । मल्लाह । कर्णधार । २. (पुस्तक आदि में) ऊपर या पीछे से मिलाया हुआ अंश ।

क्षेपण²—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना । २. गिराना । ३. बिताना । काटना । गुजारना । ४. अपवाद । निंदा । ५. फेंकने की वस्तु । फेंकने का साधन(गोफन, ढेलवाँस आदि) । ६. विस्मृत करना । भूलना (को०) ।

क्षेपणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चप्पू । डाँड़ । २. मछली पकड़ने का जाल । ३. गोफन । गुलेल । ढेलवाँस [को०] ।

क्षेपणिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाव या जहाज चलानेवाला । मल्लाह । केवट ।

क्षेपणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का अस्त्र जो शत्रु पर फेंका जाता है । २. नाव का डाँड़ । बल्ली । उ०—अपनी इस नौका में मैं ही हूँ एकाकी, मेरे हाथों में है क्षेपणियाँ दुविधा की ।—अपलक, पृ० ६८ । ३. मछली फँसाने का जाल (को०) ।

क्षेपणीय वि० [सं०] फेंकने योग्य ।

क्षेप्ता—वि० [सं०क्षेप्तृ] १. फेंकनेवाला क्षेपण करनेवाला । २. तिरस्कार करनेवाला [को०] ।

क्षेप्य—वि० [सं०] १. फेंकने या कष्ट करने योग्य । २. रखने योग्य । भीतर रखने योग्य ३. जोड़ने योग्य [को०] ।

क्षेमंकर—वि० [सं० क्षेमङ्कर] शुभ या मंगल करनेवाला । हितावह कल्याणकर [को०] ।

क्षेमंकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०क्षेमङ्करी] १. एक प्रकार की चील जिसका गला सफेद होता है । क्षेमकरी । २. एक देवी का नाम ।

क्षेम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राप्त वस्तु की रक्षा । सुरक्षा ।

यौ०—योगक्षेम ।

२. कल्याण । कुशल । मंगल ३. अभ्युदय । ४. सुख । आनंद । ५. मुक्ति । ६. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म के नक्षत्र से चौथा नक्षत्र । ७. चोवा । ८. धर्म का एक पुत्र जो शांति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । ९. सुरक्षा । बचाव (को०) १०. आधार (को०) । ११. विश्राम का स्थान (को०) ।

क्षेम²—वि० १.सुखी । आनंदयुक्त । २. कल्याणकर । ३. सुरक्षाप्राप्त सुरक्षित । [को०] ।

क्षेमक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्लक्षद्वीप के एक वर्ष का नाम । २. शिव के एक गण का नाम । ३. एक राक्षस का नाम ४. एक नाग का नाम । ५. एक प्रकार का गंधद्रव्य । चोवा ।

क्षेमकर—वि० [सं०] दे० 'क्षेमंकर' [को०] ।

क्षेमकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा देवी [को०] ।

क्षेमकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के पौत्र का नाम, जो जनमेजय का सखा था । कहते हैं, अवध का खेरी या खीरी नामक नगर इसी ने बसाया था ।

क्षेमकल्याण—संज्ञा पुं० [सं० क्षेम + कल्याण] हम्मीर और कल्याण के संयोग से बना हुआ एक संकर राग ।—(संगीत) ।

क्षेमधूर्त—संज्ञा पुं० [सं] एक प्राचीन देश का नाम ।—क्षेमधूर्त, देश आदि देश २४-२५-२६ नक्षत्र में विराजमान हैं ।—बृहत्, पृ० ८६ ।

क्षेमवृति—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम, जिसने महाभारत के युद्ध में दुर्योधन का पक्ष लिया था ।

क्षेमफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] उदुंबर । गूलर ।

क्षेमरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह रात जिसमें चोरी आदि न हुई हो ।

क्षेमवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम जिसका वर्णन बौद्ध ग्रंथों में आया है और जो कदाचित् वर्तमान गोरखपुर जिले का क्षेमराजपुर है।

क्षेमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कात्यायिनी का एक नाम। २. एक अप्सरा का नाम।

क्षेमासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन, जिसमें दाहिने हाथ पर दाहिना पैर रखकर बैठते हैं। इस आसन से उपासना करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

क्षेमी—वि० [सं० क्षेमिन्] १. क्षेम से युक्त। सुरक्षित। निरापद। २. क्षेम कुशल करनेवाला। मंगलकारक। शुभदायक। उ०—जस तस करि हरि पूजन प्रेमी। लियो अंक धरि हरि पद क्षेमी।—रघुराज (शब्द०)। ३. कुशल चाहनेवाला। भलाई चाहनेवाला। उ०—ज्ञानविराग विवेक तप योग याग जप नेम। प्रेम अधिक सब तें अहै दायक क्षेमिन क्षेम।—रघुराज (शब्द०)।

क्षेमेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० क्षेमेन्द्र] काश्मीर का एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि, ग्रंथकार और इतिहासकार। यह हिंदू होने पर भी बौद्ध धर्म पर बहुत अनुराग रखता था। इसने कई शैव, वैष्णव और बौद्ध ग्रंथों की समालोचना की थी। इसका पूरा नाम क्षेमेंद्र व्यास दास था।

विशेष—भिन्न भिन्न समयों और स्थानों में क्षेमेंद्र नाम के और भी कई कवि तथा ग्रंथकार हो गए हैं।

क्षेम्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

क्षेम्य[2]—वि० १. मंगलदायक। हितकर। २. भाग्यवान्। किस्मतवर। ३. स्वास्थ्यवर्धक [को०]।

क्षेम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

क्षेय—वि० [सं०] क्षय किए जाने योग्य।

क्षैण्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीण का भाव। क्षीणता। क्षय।

क्षैत्र—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रसमूह। खेतों का समूह। २. खेत।

क्षैत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] अध्यात्मिकता। आत्मज्ञान [को०]।

क्षैप्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्वरा। शीघ्रता। २. व्याकरण में एक प्रकार की स्वरसंधि [को०]।

क्षैरेय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० क्षैरेयी] दूध का बना हुआ। दूध युक्त। [को०]।

क्षोड़—संज्ञा पुं० [सं० क्षोड] हाथी बाँधने का खूँटा। आलान।

क्षोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके। २. एक प्रकार की वीणा।

क्षोणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी।

यौ०—क्षोणिदेव = ब्राह्मण। भूसुर। क्षोणिप। क्षोणिपति। क्षोणिपाल = राजा। भूपाल। क्षोणिरुह = वृक्ष।

२. एक की संख्या।

क्षोणिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—क्षोणी में छाँडयो छप्यो क्षोणिप को छौना छोटो क्षोणिप क्षपण बाँको बिरद बहतु हौं।—तुलसी (शब्द०)।

क्षोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। जमीन। उ०—क्षोणी पर जो निज छाप छोड़ते चलते। पदपद्मों में मंजीर मराल मचलते।—साकेत, पृ० २०४।

क्षोणीपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नरेश। उ०—क्षोणी में के क्षोणीपति छाजै जिन्हैं छत्र छाया, क्षोणी क्षोणी छाये क्षिति आये निमिराज के।—तुलसी (शब्द०)।

क्षोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूर्ण। बुकनी। सफूफ। २. चूर्ण करने या पीसने का काम। ३. जल। पानी। ४. सिल या पत्थर जिसपर चूर्ण पीसा जाय (को०)।

क्षोदक्षम—वि० [सं०] परीक्षा में टिकने या साहस न छोड़नेवाला पक्का। ठोस [को०]।

क्षोदित[1]—वि० [सं०] पीसा हुआ। चूर्णित [को०]।

क्षोदित—संज्ञा पुं० १. चूर्ण। २. धूल। ३. आटा [को०]।

क्षोदिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोदिमन्] १. तुच्छता। लघुता। न्यूनता २. सूक्ष्मता। बारीकी [को०]।

क्षोभ—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० क्षुब्ध, क्षुभित] १. विचलता। खलबली। २. व्याकुलता। घबराहट। ३. भय। डर। ४. रंज। शोक। ५. क्रोध।

क्षोभक—संज्ञा पुं० [सं०] कामाख्या का एक पहाड़।

क्षोभक[2]—वि० [सं०] दे० 'क्षोभण'।

क्षोभकृत—संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरों में से छत्तीसवाँ संवत्सर।

क्षोभण[1]—वि० [सं०] १. क्षोभित करनेवाला। क्षोभक।

क्षोभण[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. काम के पाँच वाणों में से एक। २. विष्णु। ३. शिव।

क्षोभना—क्रि० अ० [सं० क्षोभ] क्षुब्ध होना।

क्षोभिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में निषाद स्वर की दो श्रुतियों में से अंतिम श्रुति।

क्षोभित—वि० [सं० क्षोभ] १. घबराया हुआ। व्याकुल। २. विचलित। चलायमान। उ०—एक दिवस प्रभु ध्यान लगाय, क्षोभित चित्त प्रसाद बनाय।—कबीर सा०, पृ० ४०५। ३. डरा हुआ। भयभीत। ४. क्रुद्ध।

क्षोभी—वि० [सं० क्षोभिन्] उद्वेगशील। व्याकुल। चंचल। उ०—हरि सुमिरन कीजै जिमि लोभी। निस दिन रहै द्रव्य हित क्षोभी।—रघुनाथ (शब्द०)।

क्षोम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्षौम'।

क्षोहणि—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] दे० 'अक्षौहिणी'। उ०—तेंतीस क्षोहणि दल तिन जीता। जमन केर सम्हर पर बीता।—कबीर सा०, पृ० ४६।

क्षौणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षोणी'।

क्षौणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथिवी।

यौ०—क्षौणीप्राचीर = समुद्र। क्षौणीपति = भूपति। क्षौणीधर = पर्वत।

२. एक की संख्या।

क्षौत्र—संज्ञा पुं० [सं०] छूरे, चाकू आदि की धार तेज करने का यंत्र। सान।

क्षौद्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षुद्र का भाव। क्षुद्रता। २. छोटी मक्खी का मधु जो पतला, ठंढा, हलका और क्लेदनाशक होता है। क्षुद्रा नामक मक्खियों का इकट्ठा किया हुआ मधु। ३. जल। ४. चपा का पेड़। ५. धूल। ६. मागधी माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।

क्षौद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहद। मधु। २. क्षुद्रक नामक प्राचीन देश जो वर्तमान पंजाब के अंतर्गत था।

क्षौद्रज—संज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्रा मक्खी का मोम।

क्षौद्रजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद की बनी शक्कर। मधु की शर्करा [को०]।

क्षौद्रधातु—संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी।

क्षौद्रप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमेह।

क्षौद्रेय—संज्ञा पुं० [सं०] मोम। क्षौद्रज।

क्षौम—संज्ञा पुं० [सं०] १. अलसी या सन आदि के रेशों से बुना हुआ कपड़ा। उ०—क्षौम के छत में लटकते गुच्छ हैं, सामने जिनके चमर भी तुच्छ हैं।—साकेत, पृ० १६। २. वस्त्र। कपड़ा। ३. घर या अटारी के ऊपर का कमरा। ४. रेशमी या ऊनी वस्त्र (को०)। ५. अलसी (को०)।

क्षौमक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्षौमका'।

क्षौमका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोवा। एक गंधद्रव्य।

क्षौमिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सन या अलसी के रेशे के तारों से बनी हुई करधनी। २. क्षौम वस्त्र की बनी हुई गुदड़ी या कथरी।

क्षौमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] टाट की बनी गुदड़ी। २. अलसी [को०]।

क्षौर—संज्ञा पुं० [सं०] हजामत।

क्षौरकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] हजामत। क्षौर।

क्षौरिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाई। हजामत।

क्ष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। धरती।

यौ०—क्ष्माधर = भूधर। पर्वत। क्ष्माधृति, क्ष्मापति, क्ष्मापाल = राजा।

२. एक की संख्या।

क्ष्वेड[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अव्यक्त शब्द या ध्वनि। २. विष। जहर। उ०—गरल हलाहल क्ष्वेड गर कालकूट रस भास। रस में विरस न घोरि वल चलियै बन करु वास।—नंददास (शब्द०)। ३. शब्द। ध्वनि। ४. कान का एक रोग जिसमें सनसनाहट भी सुनाई पड़ती है। ५. चिकनाई। चिकनाहट। ६. त्याग।

क्ष्वेड[2]—वि० [सं०] १. छिछोरा। नीच प्रकृति। २. कुटिल। कपटी।

क्ष्वेडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाँस। २. युद्ध की ललकार। ३. सिंहगर्जन [को०]।

क्ष्वेडित—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह की दहाड़। सिंहगर्जन [को०]।

क्ष्वेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रीड़ा। खेल। हँसी मजाक [को०]।

ख

ख—हिंदी वर्णमाला में स्पर्श व्यंजन के अंतर्गत कवर्ग का दूसरा अक्षर। यह महाप्राण है और इसका उच्चारण कंठ से होता है। क, ग, घ और ङ इसके सवर्ण हैं।

खं—संज्ञा पुं० [सं० खम्] १. शून्य स्थान। खाली जगह। २. बिल। छिद्र। ३. आकाश। ४. निकलने का मार्ग। ५. इंद्रिय। ६ बिंदु। शून्य। सिफर। ७. स्वर्ग। देवलोक। ८. सुख। ९. कर्म। १०. कुंडली में जन्मलग्न से दसवाँ स्थान। ११. अभ्रक। १२. ब्रह्मा। १३. मोक्ष। निर्वाण।

खंका—वि० [सं० कङ्काल] १. दुर्बल। बलहीन। २. खंख। छूछा।

खंकर—संज्ञा पुं० [सं० खङ्कर] घूँघर। बालों की लट। अलक [को०]।

खंख—वि० [सं० कङ्क] १ छूछा। खाली। २. उजाड़। वीरान। ३. धनहीन।

खंखड़—वि० [सं० खक्खट या० अनु] (पदार्थ) सूखने के कारण कड़ा। मुरझाया हुआ। दुर्बल। क्षीण। उ०—पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से कितना स्निग्ध है, यह वह न जानता था।—गोदान, पृ० ६।

खंखणा—संज्ञा स्त्री० [सं० खङ्खणा] घूँघरू, घंटी, नूपुर आदि की ध्वनि [को०]।

खंखर[1]—संज्ञा पुं० [सं० खङ्खर] दे० 'खंकर' [को०]।

खंखर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] पलास का वृक्ष [को०]।

खंखर[3]—वि० [हिं० खंख] दे० 'खंख'।

खंग—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] १. तलवार। उ०—भट चातक दादुर मोरन बोले। चपला चमकै न फिरै खँग खोले।—केशव (शब्द०)। २. गैंडा। ३. घाव। चीरा।

खंगड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० खक्खट] शुष्क। निष्क्रिय। उ०—बर्फिस्तान में ठिठुरोगे। जम के खंगड़ हो जाओगे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १९३।

खंगड़[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'अंगड़ खंगड़'।

खंगड़[3]—वि० उद्दंड। उग्र। उजड्ड।

खंगनखार—संज्ञा पुं० [देश०] पंजाब के पश्चिमी जिलों में होनेवाला एक प्रकार का पौधा जिसे जलाकर सज्जीखार तैयार करते हैं। इसकी सज्जी सबसे अच्छी समझी जाती है।

खंगर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] अधिक पकने के कारण परस्पर सटी हुई कई ईंटों का चक।

खंगर[2]—वि० बहुत सूखा। शुष्क। क्षीण।

मुहा०—खंगर लगना = सुखंडी रोग होना। दुर्बलता का रोग होना।

खंगलीला—संज्ञा स्त्री० [सं० खड्ग + लीला] असियुद्ध। तलवार की लड़ाई। उ०—खंगलीला खड़ी देखती रही मैं वहीं।—लहर, पृ० ७३।

खंचना(पु)—क्रि० स० [सं०√कृप्, प्रा०√खंच] १. तृप्त होना। संतुष्ट होना। उ०—करहा पाणी खंच पिउ त्रासा घणा सहेसि।—ढोला०, दू० ४२६। २. दे० 'खींचना'। उ०—(क) घायल ज्यूँ घन खचइ अंग।—बी० रासो, पृ० १००। (ख) द्विप दोय लक्ख धरि धातु खंचि।—हृ० रासो, पृ० ६०।

खंज¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का रोग जिसमें मनुष्य का पैर जकड़ जाता है और वह चल फिर नहीं सकता। वैद्यक के अनुसार इस रोग में कमर की वायु जाँघ की नसों को पकड़ लेती है, जिससे पैर स्तंभित हो जाता है। उ०—गूँगे कुबजे बावरे बहिरे वामन वृद्ध। यान लये जनि आइयो खोरे खंज प्रसिद्ध।—केशव (शब्द०)। २. लँगड़ा। पंगु। उ०—तारन की तरलाई सु तो तरुनी खग खंजन खंज किए हैं। गंग कुरंग लजात जुदे जलजातन के गुन छीन लिये हैं।—गंग ग्रं०, पृ० ११।

खंज²—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जन] खंजन पक्षी। उ०—आलिंगन दै अधर पान करि खंजन खंज लरे।—सूर (शब्द०)।

खंजक¹—वि० [सं० खञ्जक] लँगड़ा। पंगु।

खंजक²—संज्ञा पुं० [देश०] पिस्ते की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह बलूचिस्तान में होता है और इसमें रूमी मस्तगी के समान ही एक प्रकार का गोंद निकलता है। यह गोंद उतने काम का नहीं समझा जाता। इसकी पत्तियों के किनारे घोड़े की नाल के आकार में लाही लगती है। पत्तियाँ रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं।

खंजकारि—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जकारि] खसोरी।

खंजखेट—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जखेट] खंजन पक्षी। खँड़रिच [को०]।

खंजखेल—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जखेल] दे० 'खंजखेट' [को०]।

खंजड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खँजरी'।

खंजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध पक्षी। खँड़रिच।

विशेष—इसकी अनेक जातियाँ एशिया, युरोप और अफ्रिका में अधिकता से पाई जाती हैं। इनमें से भारतवर्ष का खंजन मुख्य और असली माना जाता है। यह कई रंग तथा आकार का होता है तथा भारत में यह हिमालय की तराई, आसाम और बरमा में अधिकता से होता है। इसका रंग बीच बीच में कहीं सफेद और कहीं काला होता है। यह प्रायः एक बालिश्त लंबा होता है और इसकी चोंच लाल और दुम हलकी काली झाईं लिए सफेद और बहुत सुंदर होती है। यह प्रायः निर्जन स्थानों में और अकेला ही रहता है तथा जाड़े के आरंभ में पहाड़ों से नीचे उतर आता है। लोगों का विश्वास है कि यह पाला नहीं जा सकता, और जब इसके सिर पर चोटी निकलती है, तब यह छिप जाता है और किसी को दिखाई नहीं देता। यह पक्षी बहुत चंचल होता है इसलिये कवि लोग इससे नेत्रों की उपमा देते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि यह बहुत कम और छिपकर रति करता है। कहीं कहीं लोग इसे 'खँड़रिच' या 'ममोला' कहते हैं।

पर्या०—खंजखेल। मुनिपुत्रक। भद्रनामा। रत्ननिधि। चर। काकछद्द। नीलकंठ। कणाटीर।

२. खँडरिच के रंग का घोड़ा। ३. 'गंगाधर' या 'गंगोदक' नामक छंद का एक नाम। ४. लँगड़ाते हुए चलना।

खंजनक—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जनक] दे० 'खंजन' [को०]।

खंजनरत—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जनरत] संत मैथुन। वस्त्रादावित्त मैथुन [को०]।

खंजनरति—संज्ञा पुं० [सं०] (खंजन की तरह का) बहुत ही गुप्त विहार।

खंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० खञ्जना] १. खंजन के सदृश एक पक्षी। २. सर्षप। सरसों [को०]।

खंजनाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० खञ्जनाकृति] खंजन के आकार से मिलता जुलता एक पक्षी।

खंजनासन—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जनासन] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन। इस आसन से उपासना करने पर विजयलाभ होता है।

खंजनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० खञ्जनिका] खंजन के आकार की एक चिड़िया जो प्रायः दलदलों में रहती है। इसे 'सर्पगी' भी कहते हैं।

खंजर¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० खंजर] कटार। पेशकब्ज।

मुहा०—खंजर तेज करना = मार डालने के लिये उद्यत होना।

क्रि० प्र०—उठाना।—खींचना।—चलाना।—फेरना।—बाँधना।

खंजर²—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० खञ्ज या खञ्जक + हिं० र (प्रत्य०)] सूखा हुआ पेड़ [को०]।

खंजर³†—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जन, प्रा० खंजरा] दे० 'खंजन'। उ०—मुख सिसहर खंजर नयण कुच श्रीफल कँठ कीर।—ढोला०, दू० १३।

खंजरीटक—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जरीटक] खंजरीट। खंजन [को०]।

खंजलेख—संज्ञा पुं० [सं० खञ्जलेख] खंजनपक्षी [को०]।

खंजा¹—वि० [सं० खञ्जक] खंज। लँगड़ा।

खंजा²—संज्ञा स्त्री० [सं० खञ्जा] वर्णार्ध सम वृत्तों में से एक वृत्त जिसके विषम पादों में ३० लघु और अंत में एक गुरु तथा सम पादों में २८ लघु और अंत में एक गुरु होता है। जैसे—नरधन जग महँ नित उठ गनपति कर जस बरनत प्रतिदिन सों। तन मन धन सन जपत रहत तिहिं भजन करत भल प्रति चित सों। किमि भरमत मन भजत न किमि तिहिं भज भज भज भज शिव धरि चित हीं। हर हर हर हर हर हर हर हर हर हर हर हर कह नितहीं।—छंदः०, पृ० २७२।

खंड—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] १. भाग। टुकड़ा। हिस्सा। उ०—प्रभु दोउ चाप खंड महि डारे।—मानस, १।२६२।

मुहा०—खंड खंड करना = चकनाचूर करना। टुकड़े टुकड़े करना।

२. ग्रंथ का विभाग या अंश। ३. देश। वर्ष। जैसे—भरतखंड (पौराणिक भूगोल में एक एक द्वीप के अंतर्गत नौ नौ या

सात सात खंड माने गए हैं) । नौ की संख्या । ५.गणित में समीकरण की एक क्रिया । ६. रत्नों का एक दोष जो प्रायः मानिक में होता है । ७.खाँड । चीनी । ८. काला नमक । ६. दिशा । दिक् । उ०—चारहु खंड भानु अस तपा । जेहि की दृष्टि रैन ससि छिपा ।—जायसी (शब्द०) । १०. समूह । उ०—तहँ स जंत उद्भट भट विकट सटपट परत खल खंड में ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८५ । ११. परशुराम । उ०-संग्राम पंड कैरवँ कि खंड वाण सेरिय ।—राज रू०, पृ० ६० । १२. मंजिल । मरातिब । उ०—नव नव खंड के महल बनाए । सोना केरा कलस चढ़ाए ।—कबीर० सा०, पृ० ५४३ ।

खंड²—वि० १. खंडित । अपूर्ण । उ०—अखंड साहब का नाम और सब खंड है ।—कबीर म०, पृ० १२१ । २. छोटा । लघु । ३. विकलांग । दोषयुक्त [को०] ।

खंड³—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] खाँड़ा । उ०—करै शंभु खंड वरिवंड चड दै कै जलधि उमंड को घमंड ब्रह्मंड मंड ।—गोपाल (शब्द०) ।

खंडकंद—संज्ञा पुं० [सं० खण्डकन्द] शकरकंद । खंडकर्ण [को०] ।

खंडक¹—वि० [सं० खण्डक] १. खंडन करनेवाला । किसी मत या विचार को काटनेवाला । २. खंड करनेवाला । विभाग करनेवाला । टुकड़ों में विभक्त करनेवाला । ३. दूर करने या हटाने वाला । [को०] ।

खंडक²—संज्ञा पुं० १. खंड । भाग । टुकड़ा । २. शर्करा । ईख की चीनी । ३. नखहीन प्राणी । वह प्राणी जिसे नाखून न हो [को०] ।

खंडकथा—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्डकथा] कथा का एक भेद । लघु कथा । छोटी कथा ।

विशेष—इसमें मंत्री अथवा ब्राह्मण नायक होता है और चार प्रकार का विरह रहता है । इसमें करुण रस प्रधान होता है । कथा समाप्त होने के पहले ही इसका ग्रंथ समाप्त हो जाता है ।

२. उपन्यास का एक भेद ।

विशेष—इसके प्रत्येक खंड में एक एक पूरी कहानी होती है और इसकी किसी एक कहानी का दूसरी कहानी के साथ कोई संबंध नहीं होता । इसके दो भेद हैं, सजात्य और वैजात्य । जिसमें सब कथाओं का आरंभ और अंत एक समान होता है, वह सजात्य कहलाती है । और जिसकी कथाएँ कई ढंग की होती हैं, उसे वैजात्य कहते हैं ।

खंडकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० खण्डकर्ण] १. शकरकंद । २. एक प्रकार का गाँठदार पौधा ।

खंडकालु—संज्ञा पुं० [सं० खण्डकालु] शकरकंद [को०] ।

खंडकाव्य—संज्ञा पुं० [सं० खण्डकाव्य] वह काव्य जिसमें 'काव्य' के संपूर्ण अलंकार या लक्षण न हों, बल्कि कुछ ही हों। जैसे, मेघदूत आदि ।

खंडज—संज्ञा पुं० [सं० खण्डज] १.एक प्रकार की शर्करा । २. गुड़ । भेली [को०] ।

खंडत(पु)—वि० [सं० खण्डित] दे० 'खंडित' ।

खंडतरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] फटी चटाई । उ०—ओछाओछ खंडतरि पालिआ चाह । आओर कहब कत अहिरिनी नाह ।—विद्यापति, पृ० ५६ ।

खंडताल—संज्ञा पुं० [सं० खण्डताल] संगीत में एकताला नामक ताल जिसमें केवल एक द्रुत होता है ।

खंडधारा—संज्ञा स्त्री० [खण्डधारा] कतरनी । कैंची [को०]।

खंडन—संज्ञा पुं० [सं० खण्डन] [वि० खंडनीय खंडित, खंडी] १. तोड़ने फोड़ने की क्रिया । २. भंजन छेदन । ३.किसी बात को अयथार्थ प्रमाणित करने की क्रिया । किसी सिद्धांत को प्रमाणों द्वारा असंगत ठहराने का कार्य । निराकरण । मंडन का उलटा । जैसे—उसने इस सिद्धांत का खूब खंडन किया है । ४.नृत्य में मुँह या ओठ इस प्रकार चलाना जिसमें पढ़ने, बड़बड़ाने या खाने आदि का भाव झलके । ५.निराश करना । हताश करना (को०) । ६.धोखा देना । वंचना (को०) । ७. बाधा देना । रुकावट करना (को०) । ८.हिसमिस करना । बर्खास्त करना (को०) । ९. विद्रोह । विरोध (को०) । १०. हटाना । दूर करना (को०) । ११.विनष्ट करना (को०) ।

खंडन²—वि० १. तोड़ने, काटने या हिस्सा करनेवाला । २ विनाश करनेवाला । विध्वंस करनेवाला [को०] ।

खंडनकार—संज्ञा पुं० [सं० खण्डनकार] १. खंडनखंडखाद्य के लेखक श्रीहर्ष । २. खंडन करनेवाला व्यक्ति या प्राणी (को०) ।

खंडनखंडखाद्य—संज्ञा पुं० [सं० खण्डनखण्डखाद्य] श्रीहर्ष कृत अद्वैत वेदांत का खंडन प्रधान ग्रंथ ।

खंडनमंडन—संज्ञा पुं० [सं० खण्डनमण्डन] वादविवाद । खंडन और मंडन ।

क्रि० प्र०—करना ।— होना ।

खंडनरत—संज्ञा पुं० [सं० खण्डनरत] ध्वंसकार्य में निपुण ।

खंडना(पु)—क्रि० स० [सं० खण्डन] १.खंडन करना । तोड़ना । टुकड़े टुकड़े करना । उ०—कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं ।—मानस, १। २६१ ।२. निराकरण करना । किसी बात को अयुक्त ठहराना । ३. उल्लंघन करना । न मानना । उ०—पिता वचन खंडै सो पापी, सोइ प्रह्लादहिं कीन्हौं ।—सूर०, १ । १०४ ।

खंडनी¹—स्त्री० स्त्री० [सं० खण्डन] मालगुजारी की किस्त । कर ।

खंडनी²—वि० [सं०] दे० 'खंडी, 'खंडिनी' ।

खंडनीय—वि० [सं० खण्डनीय] १. तोड़ने फोड़ने लायक । २. खंडन करने योग्य । निराकरण के योग्य । ३. जिसका खंडन हो सके । जो अयुक्त ठहराया जा सके ।

खंडपति—संज्ञा पुं० [सं० खण्डपति] राजा ।

खंडपरशु—संज्ञा पुं० [सं० खण्डपरशु] १. महादेव । शिव । उ०—खंडपरशु को शोभिजै सभा मध्य कोदंड । मानहु शेष अशेषधर धरनहार वरिवंड ।—केशव (शब्द०) । २. विष्णु । ३. परशुराम । ४. राहु । ५. वह हाथी जिसके दाँत टूटे हों ।

खंडपशु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खंडपरशु' [को०] ।

खंडपाल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डपाल] मिठाई बनाने और बेचनेवाला। हलवाई।

खंडप्रलय—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डप्रलय] वह प्रलय जो चतुर्युगी या ब्रह्मा का एक दिन बीत जाने पर होता है।

विशेष—इसमें समस्त भूतों का लय हो जाता है, केवल ब्रह्मा रह जाते हैं। पुराणानुसार इस प्रलय में सूर्य का तेज सहस्रगुना बढ़ जाता है और रुद्र समस्त प्राणियों का संहार कर डालते हैं।

२. संघर्ष। झगड़ा। लड़ाई [को॰]।

खंडप्रस्तार—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डप्रस्तार] संगीत में एक प्रकार का ताल।

खंडफण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डफण] एक प्रकार का साँप।

खंडफुल्ल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डफुल्ल] कूड़ा कर्कट।

खंडमंडल—वि॰ [सं॰ खण्डमण्डल] अर्ध या अपूर्ण घेरेवाला।

खंडमंडल[2]—संज्ञा पुं॰ अर्ध या अपूर्ण वृत्त [को॰]।

खंडमेरु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डमेरु] पिंगल की वह रीति जिसके द्वारा मेरु या एकावली मेरु के बनाए बिना ही मेरु का नाम निकल जाता है।

खंडमोदक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डमोदक] गुड़। एक प्रकार की शक्कर [को॰]।

खंडर[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डल = खंड, टुकड़ा] दे॰ 'खँडहर'।

खंडर[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डर] खाँड़ से बनी वस्तु। मिठाई [को॰]।

खंडरिच—संज्ञा पुं॰ [हि॰] खंजन पक्षी। वि॰ दे॰ 'खंजन'।

खंडल[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डल] खंड। टुकड़ा। भाग।

खंडल[2]—वि॰ [सं॰ खड्ग + ल (प्रत्य॰)] १. (पु) खड्ग धारण करनेवाला। २. विभाग या खंडवाला (डिं॰)।

खंडलवण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डलवण] काला नमक।

खंडवर्षा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डवर्षा] वह वर्षा जो सर्वत्र समान न हो। वह वृष्टि जिसमें कहीं पानी बरसे, कहीं पानी न बरसे [को॰]।

खंडविकार—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डविकार] चीनी। शक्कर [को॰]।

खंडविकृति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डविकृति] मिसरी [को॰]।

खंडवृष्टि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डवृष्टि] दे॰ खंडवर्षा' [को॰]।

खंडव्यायाम—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डव्यायाम] एक प्रकार का नृत्य जिसमें केवल कमर और पैरों को गति देते हैं।

खंडशः—क्रि॰ वि॰ [सं॰ खण्डशस्] खंड खंड करके। कई घंटों या भागों में बाँटकर। टुकड़े टुकड़े।

खंडशर्करा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डशर्करा] मिसरी [को॰]।

खंडशीला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डशीला] १. नष्ट चरित्रवाली स्त्री। व्यभिचारिणी। २. वेश्या।

खंडसर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डसर] साफ की हुई खाँड़। चीनी।

खंडा[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्ड] १. चावल का टुकड़ा। खुद। २. पंजाब में खेला जानेवाला 'लुकना मीची' नामक खेल। उ॰—एहु मन मारि गोइ लए गिंडा। एक पंच खिउँ खेलैं खंडा।—प्राण॰, पृ॰ ३१।

खंडा[2]†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] दे॰ 'खाँडा'।

खंडाभ्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डाभ्र] १. दाँत का एक रोग। २. बिखरे हुए बादल (को॰)। ३ दंतक्षत (रति)।

खंडाली—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डाली] १. तेल नापने का एक परिमाण। २. काम की इच्छा रखनेवाली स्त्री। ३. वह स्त्री, जिसका पति दुश्चरित्रता का दोषी हो (को॰)। ४. तालाब। झील (को॰)।

खंडिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डिक] १. काँख। कँखरी। २. वह विद्यार्थी जो किसी ग्रंथ को खंड खंड करके पढ़े। ३. एक ऋषि का नाम। ४. वह व्यक्ति जो चीनी बनाता हो [को॰]। ५. केराव या मटर (को॰)।

खंडिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डिका] १. काँख। कँखरी। २. संगीत में लय का एक प्रकार। ३. केराव की बनी एक भोज्य वस्तु [को॰]।

खंडिकोपाध्याय—संज्ञा पुं॰ [सं॰ खण्डिकोपाध्याय] १ खड़ी से पटिया पर लिखाने और पढ़ानेवाला आरंभिक सोपान का अध्यापक। क्रोधी शिक्षक। गुस्सैल मास्टर (को॰)।

खंडित—वि॰ [सं॰ खण्डित] १. टूटा हुआ। टुकड़े टुकड़े। भग्न। २. जो पूरा न हो। अपूर्ण। ३. ध्वस्त। नष्ट (को॰)। ४ लुप्त (को॰)। ५. त्यक्त (को॰)। ६. जिसका खडन या विरोध किया गया हो। निराकृत (को॰)। ७. प्रवंचित उपेक्षित (को॰)।

खंडितविग्रह—वि॰ [सं॰ खण्डितविग्रह] विकृतांग। विकलांग। विकृत अंगोंवाला [को॰]।

खंडितवृत्त—वि॰ [सं॰ खण्डितवृत्त] नष्ट चरित्रवाला। दुश्चरित्र। २. छोड़ा हुआ। त्यक्त [को॰]।

खंडितव्रत—वि॰ [सं॰ खण्डितव्रत] जिसका व्रत या नियम टूट गया हो। जिसने प्रतिज्ञा भंग की हो (को॰)।

खंडिता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डिता] वह नायिका जिसका नायक रात को किसी अन्य नायिका के पास रहकर सवेरे उसके पास आए और वह नायिका उस नायक में संभोग के चिह्न देखकर कुपित हो।

खंडिनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डिनी] पृथिवी। धरती।

खंडी[1]—वि॰ [सं॰ खण्डिन्] १. विभक्त। २. टुकड़े या हिस्सेवाला।

खंडी[2]—संज्ञा पुं॰ दाल की एक किस्म। वनमुद्ग [को॰]।

खंडी[3]†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्ड] १. गाँव के आस पास के वृक्षों का समूह। २. लगान या किराए की किस्त।

मुहा॰—खंडी करना = किस्त बाँधना।

३. चौथ। राजकर। उ॰—दतिया सु प्रथम दवा दई। खंडी सु मनमानी लई।—पद्माकर ग्रं॰, पृ॰ ६। (पु) ४. खंड। भाग। हिस्सा। उ॰—किल किलकत चंडी लहि निज खंडी उमडि उमंडी हरषित ह्वै।—पद्माकर ग्रं॰, पृ॰ २०।

खंडी[4]†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ खण्डिका] एक तोल या मान जो २० मन की होती है। उ॰—मनाँ सुँ या रूपा खंडियाँ सूँ सोना।

थे लाख्यां करोड़ अशरफियाँ करोड़ सूँ होना।—दक्खिनी०, पृ० २७७।

खंडीवन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं०खाण्डववन] दे० 'खांडववन'। उ०— खंडीवन जालवा अजन जेही तन ओपे।—रा० रू०, पृ०१६२।

खंडीर—संज्ञा पुं० [सं० खंडीर] पीले रंग का मुद्ग। पीली मूँग [को०]।

खंडेंदु—संज्ञा पुं० [सं० खण्डेन्दु] १. अपूर्ण चंद्र। २. अर्ध चंद्र [को०]।

खंडेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० खंडेश्वर] एक खंड का राजा।

खंडोद्भव, खंडोद्भूत—संज्ञा पुं० [सं० खंडोद्भव, खंडोद्भूत] खांड से उत्पन्न शक्कर या गुड़ आदि [को०]।

खंडोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० खंडोष्ठ] ओठ का एक रोग [को०]।

खंडौति(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० खण्डवत्] निराकरण। दे० 'खंडन'—३। उ०—चारिउ बेद किया खंडौति। जन रैदास करै डंडौति।—रै० बानी, पृ० ५७।

खंडच—वि० [सं० खण्डच] दे० 'खंडनीय' [को०]।

खंतरा—संज्ञा पुं० [सं० कान्तर या हिं० अंतरा] १. दरार। खोडरा। २. कोना। अंतरा। उ०—गुप्तचरों ने एक एक कोना खंतरा छान डाला, पर किसी को अविलाइनों का चिह्न भी हस्तगत न हुआ।—वेनिस०, (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः 'कोना' के साथ यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे—कोना खंतरा।

खंता†—संज्ञा पुं० [सं० खनित्र या हिं० खनना] [स्त्री० अल्पा० खंती] १. वह औजार जिससे जमीन आदि खोदी जाती हो। २. वह गड्ढा जिसमें से कुम्हार मिट्टी लाते हैं।

खंति¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ख्याति, राज० ख्यांत, खांत] १. लगन। प्रीति। उ०—मो मारू मिलिवातणी, खरी विलग्गी खंति।—ढोला०, दू० २३८। २. आकांक्षा। इच्छा। उ०—जब देहौं तब पुज्जिहै मो मन मझ्झह खंति।—पृ० रा०, १७।२७।

खंति²†—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार का वीडन। कमा। उ०— (क) खंति खग खोलि विहत्थं।—पृ०, रा०, १०। १८। (ख) खंति खग खुल्लि विहत्थं।—पृ० रा० (उदय०), पृ० २७६।

खंदक—संज्ञा स्त्री० [अ० खंदक] १. शहर या किले के चारों ओर खोदी हुई खाँई। २. बड़ा गड्ढा।

खंदाँ वि० [फा० खंदाँ] १. हँसता हुआ। मुसकुराता हुआ। हँसनेवाला। उ०—दिल सूँ खुर्रम, मुक सो खदाँ शाद माँ।—दक्खिनी०, पृ० १८१।

खंदा(पु)¹†—संज्ञा पुं० [हिं० खनना] खोदनेवाला। उ०—दैत्य दनन गजदंत उपारन केस केशअरि फंदा। सूरदास बलि जाइ यशोमति सुख के सागर दुख के खंदा।—सूर (शब्द०)।

खंदा²—संज्ञा पुं० [फ़ा० खंद] हँसी। खिलखिलाहट।

यौ०—खंदापेशानी = हँसमुख। हँसौहाँ।

खंदा³—वि० दे० 'खंदाँ'।

खंधक(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खंदक] दे० 'खंदक'। उ०—खंधक तीन ओर निर्मल जल भरी सुहाती।—प्रेमघन०, भा १, पृ० ६।

खंधा—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्धक प्रा०, खन्धा] आर्या गीति नामक छंद का एक भेद।

खंधार†—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड+धार] खंडाधीश। राजा। उ०— फिरइ वीनजला राजकुमार। पंड पंड का मील्या खंधार।— वी० रासो, पृ० १०।

खंधार†²—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्धावार] दे० 'खँधार'।

खंधार³—संज्ञा पुं० [सं० गान्धार] गांधार या कंदहार देशवासी जन। उ०—फिरंगान खंधार बलविक्रय जुरे सु सन्नद्ध।— प० रासो, पृ० ९०। २. गांधार देश।

खंधारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कंधारी'।

खंधासाहिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खंधा] खंधा या आर्या गीति नामक छंद का एक प्रकार।

खंधायची†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खंधायची'।

खंभ—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भ या स्तम्भ, प्रा० खंभ] १. स्तंभ। खंभा। २. सहारा। आसरा। उ०—बिन जोबन भइ आस पराई। कहाँ सो पूत खंभ होइ आई।—जायसी (शब्द०)।

खंभा—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भ, या स्तम्भ, प्रा० खम्भ] पत्थर या काठ का लंबा खड़ा टुकड़ा अथवा ईंट आदि की थोड़े घेरे की ऊँची खड़ी जोड़ाई जिसके आधार पर छत या छाजन रहती है। स्तंभ।

विशेष—जहाँ छत या छाजन के नीचे का स्थान कुछ खुला रखना होता है, वहाँ खंभों का व्यवहार किया जाता है। जैसे, ओसारे बरामदे, बारहदरी, पुल आदि में खंभे का व्यवहार भारतीय स्थापत्य में बहुत प्राचीन काल से है; तथा उसके भिन्न भिन्न विभाग भी किए गए हैं। जैसे, नीचे के आधार को कुंभी (कुंभिया) और ऊपर के सिरे की भरणी कहते हैं।

खंभाइच—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भावती] दे० 'खंभात'। उ०—तातें श्री गुसाईं जी खंभाइच पधारे।—दो सौ बावन० पृ० २०६।

खंभात—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भावती] १. गुजरात के पश्चिम प्रांत का एक राज्य जो इसी नाम के एक उपसागर के किनारे है। २. इस राज्य की राजधानी। ३. अरब सागर की एक खाड़ी [को०]।

खंभार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खँभार'।

खंभारा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भ] हाथी के रहने का स्थान। उ०—फूटा मदझर जुग जांण खंभारा।—रघु० रू०,पृ०१५४।

खंभावती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्कम्भावती] दे० 'खंभात'।

खंभिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्कम्भ या स्तंभ, प्रा० खंभ] छोटा खंभा। खंभे का अल्पार्थ सूचक।

खंभेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खंभ+एली (प्रत्य०)] दे० 'खंभिया'। उ०—कुटिया के ओसारे पर खंभेली के सहारे बैठते हुए जयनाथ ने कहा 'तो क्या होगा ?'—रति०, पृ० ४३।

खँखरा¹†—संज्ञा पुं० [देश०] १. ताँबे का बड़ा देग जिसमें चावल आदि पकाया जाता है। २. बाँस का टोकरा।

खँखरा³†—वि० दे० 'खाँखर'।

खंखार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खखार'।

खँखारना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खखार'।

खँगना—क्रि० अ० [सं० क्षयण या हिं० छीजना] कम होना। घट जाना। उ०—ऊखल में पुनि बाँधन लागी। खँगी युगांगुलि रजु पुनि माँगी।—विश्राम०, पृ० ३११।

खँगवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खाँग'।

खँगहा¹—वि० [हिं० खाँग+हा (प्रत्य०)] १. खाँगवाला। जिसे खाँग या निकले हुए दाँत हों। २. खँगैल।

खँगहा²—संज्ञा पुं० १. गैंडा। १. वाराह। शूकर।

खँगार†—संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रियों की एक गुजरातवासी शाखा तथा उसका राजा।

खँगारना†—क्रि० स० [सं० क्षालन से] सं० 'खँगालना'।

खँगालना—क्रि० स० [सं० क्षालन] १. हलका धोना। थोड़ा धोना। जैसे, लोटा खँगालना, गहना खँगालना। २. सब कुछ उठा ले जाना। खाली कर देना। जैसे,—रात को उनके घर चोर आए थे;सब खँगाल ले गए ३. मँझाना। ४. थहाना। उ०—अब जाओ उलझनों में न पड़, जंगलों को खँगाल कर देखो।—चोखे०, पृ० १६।

खँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खँगना] कमी। घटी। छीज। उ०—हिय हरषि शिशु मुख चूमि सुंदर सकल दुलरावें लगीं।—अनपार भै ज्योनार निज रुचि सरस तहँ रहै का खँगी।—विश्राम०, पृ० ४०३।

खँगुवा—संज्ञा पुं० [हिं० खाँग] गैंड़े की सींग। दे० 'खाँग'।

खँगैल—वि० [हिं० खाँग+ऐल (प्रत्य०)] १. खाँग रोग से पीड़ित। जिसके खुर पके हों। खँगहा। २. दँतैला। लंबे दाँतवाला (हाथी)।

खँगोरिया, खँगोरिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] हँसुली नाम का गहना।

खँघारना†—क्रि० स० [हिं० खँगालना] दे० 'खँगालना'।

खँचना¹†—क्रि० अ० [हिं० खाँचना] चिह्नित होना। निशान पड़ना। उ०—लाजमयी सुर वाम भई पछितान्यो स्वयंभू महा मन सेखैं। दूसरी ओर बनाइबो को त्रिवली खँची तीन तलाक की रेखैं।—शंभु कवि (शब्द०)।

खँचना²†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खिचना'।

खँचवाना—क्रि० स० [हिं० खाँचना] दे० 'खँचाना²'।

खँचाना¹†—क्रि० स० [हिं० खाँचना] १. अंकित करना। चिह्न बनाना। उ०—(क) राधिका की त्रिवली को बनाय विचारि विचारि यहै हम लेखें। ऐसी न और न और न और है तीन खँचाय दई बिधि रेखें।—कोई कवि (शब्द०)। (ख) रामानुज लघु रेख खँचाई। सो नहिं लाँघेउ अस मनुसाई।—तुलसी (शब्द०)। २. जल्दी जल्दी लिखना।

खँचाना²†—क्रि० स० दे० 'खींचना'।

खँचाना³—क्रि० स० [हिं० खाँचना का प्रे० रूप] अंकित करवाना खँचवाना।

खँचिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाँची+इया (प्रत्य०)] दे० 'खाँची'।

खँचुला†—संज्ञा पुं० [हिं० खाँचा+उला (प्रत्य०)] १. छोटी खाँची। २. खाँचा।

खँचुली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाँची] छोटी खाँची। खँचिया।

खँचैया†—वि० [हिं० खाँच+ऐया (प्रत्य०)] खींचनेवाला।

खँचोला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खँचुला'।

खँचोली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खँचुली'।

खँजड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खँजरी] दे० 'खँजरी¹'।

खँजरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० खंजरीट=एक ताल] डफली की तरह का एक छोटा बाजा।

विशेष—इसकी मेंडरा (गोलाकार काठ) चार या पाँच अँगुल चौड़ा और एक ओर चमड़े से मढ़ा तथा दूसरी ओर खुला रहता है। यह एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ की थाप से बजाई जाती है। साधु लोग प्रायः अपनी खँजरी के मेंडरे में एक प्रकार की हलकी झाँझ भी बाँध लेते हैं जो खँजरी बजाते समय आपसे आप आप बजती हैं।

खँजरी²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खंजर] १. खंजर का स्त्रीलिंग और अल्पार्थक रूप। २. एक प्रकार की लहरिएदार धारी जो रंगीन कपड़ों में होती है। ३. वह कपड़ा, विशेषतया रेशमी कपड़ा, जिसमें इस प्रकार की धारी हो।

खँड†—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] खाँड का हिंदी में प्रयुक्त समासगत रूप, जैसे—खँडपूरी, खँडवनी आदि।

खँडपूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाँड+पूरी] एक प्रकार की भरी हुई पूरी जिसके अंदर मेवे और मसाले के साथ चीनी भरी जाती है।

खँडवरा†—संज्ञा पुं० [हिं० खाँड+वरा या औरा (प्रत्य०)] दे० खँडौरा'। उ०—खाँड कीन्ह आमचुर परा। लौंग इलाची सों खँडवरा।—जायसी (शब्द०)।

खँडरा—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड+हिं० वरा] एक प्रकार का चौकोर बड़ा जो सूखा और गीला दोनों प्रकार होता है। उ०—खँडरा खाँड़ जो खंडे खंडे। बरी अकोतर से कहँ ढूंढे।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इसके बनाने के लिये पहले बेसन घोलकर उसे कड़ाही में पकाते हैं जिसे पाक उठाना कहते हैं। पाक तैयार हो चुकने पर उसे थाली में डालकर जमा देते हैं। ठंडा होकर जम जाने पर उसे चौकोर टुकड़ों में काटकर तेल में तल लेते हैं। इसी को सूखा खँडरा कहते हैं। पीछे इसे मसालों के साथ किसी काँजी या रसे में भिगो देते हैं।

खँडला†—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड+हिं० ला (स्वा० प्रत्य०)] टुकड़ा। कतरा।

खँडवानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाँड+पानी] १. वह पानी जिसमें खाँड़ या चीनी घोली हुई हो। शरबत। उ०—फड़ी सँवारी और फुलौरी। औ खँडवानी लाल बरौरी।—जायसी (शब्द०)। २. कन्या पक्षवालों की ओर से बरातियों को जलपान भोजन भेजने की क्रिया। उ०—बोली सबहि नारि कुँभिलानी। करहु सिंगार देहु खँडवानी।—जायसी (शब्द०)।

खँडविला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन, बड़हर, जड़हन मिला। औ संसारतिलक खँडविला।—जायसी (शब्द०)।

खँडसार—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड + शाला] खाँड या शक्कर बनाने का कारखाना। वह स्थान जहाँ खाँड़ बनती हो।

खँड़सारी—संज्ञा स्त्री० [देश० सं० 'खण्ड' से] एक प्रकार की चीनी। देशी चीनी। शक्कर।

खँडसाल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खँडसार'।

खँडहर—संज्ञा पुं० [सं० खंड + हिं० घर] किसी टूटे फूटे या गिरे हुए मकान का बचा हुआ भाग। खंडर।

खँड़हुला†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खँड़विला'

खँड़िया¹—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड + हिं० इया (प्रत्य०)] ईख को काटकर उसकी छोटी छोटी गंड़ेरियाँ या टुकड़े बनानेवाला व्यक्ति।

खँड़िया²—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड] टुकड़ा। खंड। जैसे—मछली की खँड़िया।

खँड़ुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० खंड] १. वह कुआँ जिसकी जगत पत्थर के ढोकों से बनाई गई हो। २. दे० 'कँडुआ'।

खँड़ौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० खाँड + औरा (प्रत्य०)] मिसरी का लड्डू। ओला। उ०—पुहुप सुरंग रस अमिरित साँधे। कै कै सुरग खँड़ौरा बाँधे।—जायसी (शब्द०)।

खँड़ौरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड हिं० औरी (प्रत्य०)] चावल के बड़े बड़े टुकड़े जो कूटने पर टूट जाते हैं।

खँदना—वि० [सं० खनन] खोदना।

खँदवाना—क्रि० स० [हिं० खँदना का प्रे० रूप] खोदवाना। खोदने के काम में लगाना।

खँधवाना—क्रि० स० [खँधियाना का प्रे० रूप] खाली कराना। उ०—कंचन के थैला अतर भरैला सुमन खँधवाये।—विश्राम (शब्द०)।

खँधार†—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्धावार] सेना का निवासस्थान। स्कंधावार। छावनी। उ०—कहाँ मोर सब दरब भँडारा। कहाँ मोर सब दरब खँधारा।—जायसी (शब्द०)।

खँधियाना†—क्रि० स० [हिं० खाली] [पदार्थ को पात्र में से बाहर) निकालना। खाली करना। रिक्त करना।

खँबायची, खँबायती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खम्माच'।

खँबार†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खँभार'।

खँभायची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खंभावती'। उ०—वग्गो राग खँभायची लग्गो केसर बोह।—रा० रू०, पृ० ३४७।

खँभायची कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खम्माच कान्हड़ा'।

खँभार¹Ⓤ†—संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ, प्रा० खोभ] १. अंदेशा। चिंता। २ घबराहट। व्याकुलता। ३. डर। भय। उ०—हरबर हरत खँभारु, निज शरणागत जनन को। भाषत अहो तुम्हार करउ अभय संसार ते।—रघुराज (शब्द०)। ४. शोक। उ०—कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर विधि, लोचननि चकाचौंधि चित्तन खँभारु सों।—तुलसी (शब्द०)।

खँभार²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खँभारि', 'खँभारी'।

खँभारि, खँभारी—संज्ञा स्त्री० [सं० काश्मरी, प्रा० कम्हरी] गंभारी नामक वृक्ष। वि० दे० गंभारी।

खँभावती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्कम्भावती] षाड़व जाति की एक रागिनी जो मालकोश राग की दूसरी स्त्री मानी जाती है। इसके गाने का समय आधी रात है।

खँभिया—संज्ञा स्त्री० [सं० खंभा + इया (स्त्र० प्रत्य०)] खंभा का अल्पार्थक रूप। छोटा पतला (विशेषतः काठ का) खंभा।

खँभेली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खंभेली'।

खँवाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० खाम्] वह गड्ढा जिसमें अनाज भरकर रखते हैं। खत्ता।

खँवँडा†—संज्ञा पुं० [हिं० खँवँ + ड़ा (प्रत्य०)] अनाज रखने का बड़ा गड्ढा। बड़ा खत्ता। बड़ी खँवँ।

खँसना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खसना'।

ख—संज्ञा पुं० [सं०] १. गड्ढा। गर्त। २. खाली स्थान। ३. निर्गम। निकास। ४. छेद। बिल। ५. इंद्रिय। ६. गले की वह नाली जिसमें प्राणवायु आती जाती है। ७. कुआँ। ८. तीर का घाव। ९. गाड़ी के पहिए की नाभि का छेद जिसमें धुरा रहता है। आखा। १०. आकाश। स्वर्ग। देवलोक। १३. कर्म। क्रिया। १४. जन्मकुंडली में दसवाँ स्थान। १५. शून्य। १६. बिंदु। सिफर। १७. ब्रह्म। १८. शब्द। १९. अभ्रक। २०. मोक्ष। निर्वाण। २१. नगर। शहर (को०)। २१. समझ। बोध (को०)। २२. झरना (को०)। २३. कूप। कुआँ (को०) २४. सूर्य (को०)। २५. क्षेत्र (को०)।

खई Ⓤ†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षयी] १. क्षयकारिणी क्रिया २. लड़ाई। युद्ध। ३. तकरार। झगड़ा। उ०—अंश परायो देत न नीके माँगत ही सब करत खई।—सूर (शब्द०)।

खए Ⓤ†—संज्ञा पुं० [सं० खः = आकाश] ऊपर। व्योम। उ०—खए लगि बाँह उसारि उसारि भए इत उत्त जवै रिसि धारि।—सुजान०, पृ० ३४।

खकक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश का घेरा। आकाशीय परिधि [को०]

खकामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

खकुंतल—संज्ञा पुं० [सं० खकुन्तल] शिव का एक नाम। व्योमकेश। कपर्दी [को०]।

खक्खट¹—वि० [सं०] १. ठोस। कड़ा। २. कठोर। कर्कश।

खक्खट²—संज्ञा पुं० दे० 'खँड़िया'।

खक्खर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिखारी की छड़ी। २. दे० 'खंकर' [को०]।

खक्खरⓊ²—संज्ञा पुं० [?] पंजाब का एक पुराना प्रदेश तथा वहाँ के निवासी। उ०—खक्खर को देस, वारयो भक्खर भगाना जू।—गंग ग्रं०, पृ० ९२।

खक्खा¹—संज्ञा पुं० [अ० कहकहा] जोर की हँसी। अट्टहास। कहकहा। उ०—पाइ कै खबर खूबी खुशी मानि खक्खा मारि, खलक के खाली करवे को खैर भैर सों।—रघुराज (शब्द०)।

खक्खा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० खत्री का ख, या 'खक्खर'] १. पंजाबी सिपाही।
विशेष-पंजाब के खत्री प्रायः अपने आप को 'खक्खा' कहा करते हैं; इसी से यह शब्द अनेक अर्थों में व्यवहृत होने लगा।
२. अनुभवी पुरुष। तजुर्बेदार आदमी। ३. बड़ा और ऊँचा हाथी।

खक्खासाहु—संज्ञा पुं० [हिं० खक्खा+साहु] १. वह मनुष्य जो व्यापार में बहुत चतुर हो २. खत्री जाति का व्यापारी।

खखड़ा—वि० [देश० खक्खड़] १. शुष्क। नीरस। २. छूछा। खोखला।

खखरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० खंखड] १. खँखरा। २. बाँस का बना हुआ बड़ा टोकरा।

खखरा[2]—वि० [हिं० खाँखर] झीना। अत्यंत महीन।

खखरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे और बेसन की बनी हुई पापड़ की तरह की हलकी पतली पूरी जो अलोनी होती है।

खखसा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खेकसा' या 'खेखसा'।

खखार—संज्ञा पुं० [अनु०] गाढ़ा थूक या कफ जो खखारने से निकले। कफ।

खखारना—क्रि० अ० [सं० कफ क्षारण] १. पेट की वायु को फेफड़े से इस प्रकार निकालना जिससे खरखराहट का शब्द हो तथा कभी कभी कफ या थूक भी निकले। २. दूसरे को सावधान करने के लिये गले से खरखराहट का शब्द निकालना।

खखेटना[1]ⓟ—क्रि० स० [देश०] १. दबाना। २. पीछा करना। ३. घायल करना। छेदना। उ०—बेई पठनेटे सेल साँगन खखेटे भूरि, धूरि सों लपेटे लेटे भेटे महाकाल के।—सूदन (शब्द०)।

खखेटना[2]ⓟ—क्रि० अ० [हिं० खखेटा] खटका होना। आशंका होना। उ०—सोच भयो सुरनायक के कलपद्रुम के हिय माँझ खखेट्यो।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १५०।

खखेटाⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० खखेटना] १. भगदड़। दौड़धूप। २. दाब। दबाव। ३. छिद्र। ४. आशंका। खटका।

खखेनाⓟ—क्रि० स० [देश०] दे० 'खखेटना'।

खखेरा—संज्ञा पुं० [देश०] उपहास। कलंक। लांछन।

खखोंडरा—संज्ञा पुं० [सं० ख+कोटर] १. पेड़ के कोटर में बना हुआ किसी पक्षी का घोंसला। २. उल्लू पक्षी का घोंसला।

खखोरना—क्रि० स० [देश०] अच्छी तरह ढूँढ़ना। सब जगह खोज डालना। छानबीन करना।

खखोल्क—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का नाम [को०]।
विशेष—इनकी मूर्ति काशी में स्थिति कही गई है। काशीखंड के ५० वें अध्याय में इनका विवरण है।

खगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० खगङ्गा] आकाशगंगा। मंदाकिनी।

खग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश में चलनेवाली वस्तु या व्यक्ति। २. पक्षी। चिड़िया। ३. गंधर्व। ४. बाण। तीर। ५. ग्रह। तारा। सितारा। ६. बादल। ७. देवता। ८. सूर्य। ९. चंद्रमा। १०. वायु। हवा। उ०—खग रवि खग शशि खग पवन खग अंबुद खग देव। खग विहंग हरि सुतरु तजि खग उर सेंवल सेव।—अनेकार्थ० (शब्द०) ११. महादेव (को०)। १२. शलभ (को०)।

खग[2]—वि० आकाशचारी। नभगामी [को०]।

खग[3]ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग, हिं० खंग] दे० 'खंग', 'खड्ग'। (क) हाजी गक्खर खान खाँति खग खोलि विहत्थं।—पृ० रा०, १० १८। (ख) नव ग्रहन मद्धि जनु सूर तोष। खग धंम कंम समर अदोष।—पृ० रा० ६।६।

खगकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़। उ०—बरणि न जाय समर खगकेतु—तुलसी (शब्द०)।

खगखान—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्षकोटर। पेड़ का खोंढ़र [को०]।

खगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद का नाम [को०]।

खगना—क्रि० स० [हिं० खाँग=काँटा] १. गड़ना। पैठना। चुभना। धँसना। उ०—कह ठाकुर नेह के नेजन की उर में अनी आवि खगी सो खगीं।—ठाकुर (शब्द०)। २. चित्त में बैठना। मन में बसना। असर करना। उ०-जाहीं सों लागत नैन ताही के खगत बैन नख शिख लौं सब गात ग्रसति।—सूर (शब्द०)। ३. लग जाना। लिप्त होना। अनुरक्त होना। उ०—प्रफुलित वदन सरोज सुंदरी अतिरस नैन रँगे। पुहुकर पुंडरीक पूरन मनो खंजन केलि खगे।—सूर (शब्द०)। ४. चिह्नित हो जाना। छप जाना। उपट आना। उभर आना। उ०—यह सुनि धावत धरनि चर की प्रतिमा खगी पंथ में पाई।—सूर (शब्द०)। ५. अटक रहना। अचल होकर रह जाना। अड़ जाना। उ०—करि कै महा घमसान। खगि रहे खेत पठान।—सूदन (शब्द०)।

खगनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०]।

खगपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. गरुड़।
विशेष—पक्षीवाची शब्दों के बाद स्वामीवाची या ध्वजावाची शब्द लगा देने से वह समस्त शब्द 'गरुड़' वाची हो जायगा। जैसे,—खगपति, खगराज, खगकेतु, खगनाथ, खगनायक।

खगवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] लकुच का फल [को०]।

खगवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी। धरती [को०]।

खगवार—संज्ञा स्त्री० [देश०] गले का हँसुली नामक आभूषण। खँगोरिया।

खगशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] पृश्निपर्णी लता [को०]।

खगस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का कोटर। खगखान। २. चिड़ियों का घोंसला [को०]।

खगहा—संज्ञा पुं० [हिं० खाँग=निकला हुआ पैना दाँत] गैंडा। उ०—खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा।—तुलसी (शब्द०)।

खगांतक—संज्ञा पुं० [सं० खगान्तक] खगों का अंत करनेवाला पक्षी। बाज। श्येन।

खगासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. उदयगिरि। उदयाचल नाम का पर्वत [को०]।

खगुण—वि० [सं०] जिस राशि का गुणक शून्य हो (गणित)।

खगेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० खगेन्द्र] गरुड़ [को०]।

खगेश—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

खगोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाशमंडल।

विशेष—यद्यपि आकाश की कोई आकृति नहीं है, तथा पिपरिमित दृग्रश्मि के कारण वह गोलाकार देख पड़ता है। जिस प्रकार विद्वानों ने पृथ्वी की गोलाई में विषुवत्‌रेखा, अक्षांश और देशांतर रेखाओं तथा ध्रुव की कल्पना की है, ठीक उसी प्रकार खगोल में भी रेखाओं और ध्रुवों की कल्पना की गई है। ज्योतिषियों ने ताराओं के प्रधान तीन भेद किए हैं—नक्षत्र, ग्रह और उपग्रह। नक्षत्र वह है जो सदा अपने स्थान पर अटल रहे। ग्रह वह तारा है जो अपने सौर जगत् के नक्षत्र की परिक्रमा करे। और उपग्रह वह है जो अपने ग्रह की परिक्रमा करता हुआ उसके साथ गमन करे। जिस तरह हमारे सौर जगत् का नक्षत्र हमारा सूर्य है, उसी तरह प्रत्येक अन्य सौर जगत् का नक्षत्र उसका सूर्य है। पृथिवी की दैनिक और वृत्ताकार गतियों के कारण इन नक्षत्रों के उदय में विभेद पड़ता रहता है। यद्यपि गगनमंडल सदा पूर्व से पश्चिम को घूमता हुआ दिखाई पड़ता है, पर फिर भी वह धीरे धीरे पूर्व की ओर खसकता जाता है। इसलिये ग्रहों की स्थिति में भेद पड़ा करता है। प्राचीन आर्य ज्योतिषियों ने कुछ ऐसे तारों का पता लगाया था जो अन्यों की अपेक्षा अत्यत दूर होने के कारण अपने स्थान पर अचल दिखाई पड़ते थे। उन लोगों ने ऐसे कई तारों के योग से अनेक आकृतियों की कल्पना की थी। इनमें वे आकृतियाँ जो सूर्य के मार्ग के आस पास पड़ती थीं, अट्ठाईस थीं। इन्हें वे नक्षत्र कहते थे। इन तारों से जड़ा हुआ गगनमंडल अपने ध्रुवों पर घूमता हुआ माना गया है। समस्त खगोल को आधुनिक ज्योतिर्विदों ने बारह वीथियों में विभक्त किया है, जिनमें प्रत्येक वीथी के अंतर्गत अनेक मंडल हैं। प्रथम वीथी में पशु, त्रिकोण, मेष, तिमि, यज्ञकुंड और यमी ये छह मंडल हैं। द्वितीय मे चित्रक्रमेल, ब्रह्म, वृष, घटिका, सुवर्णाश्रम और ग्राडक ये छह मंडल हैं। तृतीय में मिथुन, कालपुरुष, शश, कपोत, मृगव्याध, अर्णवयान, चित्रपट्ट, अभ्र और चत्वाल नाम के नौ मंडल है। चतुर्थ में वन मार्जार, कर्कट, मुनी, एकश्रृंगि, कृकलास और पतत्रिमीन मंडल नाम के छह मडल हैं। पचम वीथी मे सिंहशावक, सिंह, हृदसर्प, पष्ठौश और वायुयंत्र नाम के पांच मंडल हैं। षष्ठ में सप्तर्षि, सारमेय, करिमुंड, कन्या, करतल, कास्य, त्रिशंकु और मक्षिका आठ मंडल हैं। सप्तम में शिशुमार, भूतेश, तुला, शार्दूल, महिषासुर, वृत्त और घूम्राट नामक सात मंडल हैं। अष्टम में हरिकुल, किरीट, सर्प, वृश्चिक और दक्षिण त्रिकोण पांच मंडल हे। नवम वीथी में तक्षक, वीणा, सर्पधारि, धनुष, दक्षिण किरीट, दूरवीक्षण और वेदि सात मडल है। दशम में वक, शृगाल, वाण, गरुड, श्रविष्ठा, मयूर, मण[illegible] संघु, मयूर और अष्टांश नाम के दस मडल हैं। एकादश लोक[illegible] फालि, गोधा, पक्षिराज, अश्वतर, कुंभ, दक्षिण मी[illegible], सारस और चंचूभृत आठ मंडल हैं। और द्वादश वीथी में काश्यपीय, ध्रुवमाता, मीन, भास्कर, संपाति, ह्रद और ग्राव सात मंडल हैं। इन सब को लेकर बारह वीथियाँ और ८४ मंडल हैं। इनमें से प्राचीन भारतीय विद्वानों को शिशुमार (विष्णुपुराण), त्रिशंकु (वाल्मीकि), सप्तर्षि इत्यादि मंडलों का पता था। इन वीथियों को क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, आदि वीथियाँ भी कहते हैं। सूर्य के मार्ग में अट्ठाईस नक्षत्र पड़ते हैं, जिनके नाम अश्विनी आदि हैं। सूर्य मेष आदि बारह वीथियों में क्रमशः होकर जाता हुआ दिखाई पड़ता है, जिसे राशि या लग्न कहते हैं।

२. खगोल विद्या।

खगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खगोल' [को०]।

खगोलमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित ज्योतिष का वह अंग जिसमें तारों, नक्षत्रों की नाप जोख और गति, स्थिति आदि का विचार किया जाता है [को०]।

खगोलविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिससे खगोल अर्थात् ग्रह आदि की गति का ज्ञान प्राप्त हो। ज्योतिष।

खग्ग(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० खड्ग, प्रा० खग्ग] तलवार। उ०—हयं खग्ग लग्गं कटि तुट्टि थानं।—पृ० रा०, ६६।१३७८।

खग्गड—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बेतस्। नरकुल या सरकंडा [को०]।

खग्रास—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा ग्रहण जिसमें सूर्य या चंद्र का सारा मंडल ढँक जाय। पूरा ग्रहण।

खचन—संज्ञा पुं० [सं०] वि० खचित] १. बाँधने या जड़ने की क्रिया। उ०—सर्वसाधारण के मनोरंजनार्थ रत्न को जैसे कुंदन में खचित करना पड़ता है, वैसे ही काव्य को उक्त गुणों से अलंकृत करना चाहिए।—(शब्द०)। २. अंकित करने या होने की क्रिया। चित्रित होने की क्रिया। उ०—ध्यान रूपी चित्रालय में कौन कौन चित्र खचित हो गए।—(शब्द०)।

खचना[1](पु)—क्रि० अ० [सं० खचन = बाँधना, जड़ना] १. जड़ा जाना। उ०—मनि दीप राजहि भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची। मनिखंभ भीति विरंचि विरची कनकमनि मरकत खची। सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर अस्फटिकन रचे। प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन खचे।—तुलसी (शब्द०)। २. अंकित होना। चित्रित होना। उ०—देत भाँवरि कुंज मंडप पुलिन में वेदी रची। बैठे जो श्यामा श्याम बर त्रैलोक की शोभा खची।—सूर (शब्द०)। ३. रम जाना। अड़ जाना। उ०—आजु हरि ऐसो रास रच्यो।—गतगुन मद अभिमान अधिक रुचि लै लोचन मन तहुँ खच्यो।—सूर०, १०।११३६। ४. अटक रहना। फँसना। उ०—नैना पंकज पंज खचे। मोहन मदन श्याम मुख निरखत भ्रुवन विलास रचे।—सूर (शब्द०)।

खचना[2](पु)—क्रि० स० १. अंकित करना। २. जड़ना।

खचमस—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

खचर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. मेघ। ३. ग्रह। ४. नक्षत्र। ५. वायु। ६. पक्षी। ७. बाण। तीर। ८. राक्षस। ९. संगीत

दामोदर के अनुसार एक ताल का नाम जिसे रूपक भी कहते हैं। १०. कसीस।

खचर[2]—वि० आकाश में चलनेवाला। खेचर।

खचरा—वि० [हिं० खच्चर] १. वर्णसंकर। दोगला। २. दुष्ट। पाजी।

खचाखच—क्रि० वि० [अनु०] बहुत भरा हुआ। ठसाठस। जैसे,—देखते ही देखते सारा कमरा खचाखच भर गया।

खचाना(पु)—क्रि० स० [सं० √कृप; प्रा० √खंच] दे० 'खेंचना'।

मुहा०—अपनी खचाना = अपनी ही कही हुई बात को बार बार पुष्ट करते जाना, दूसरे के तर्क को कुछ न सुनना। उ०—सुनौ धौं दै कान अपनी लोक लोकन कीति। सूर प्रभु अपनी खचाई रही निगमन जीति।—सूर (शब्द०)।

खचारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० खचारिन्] १. स्कंद का नाम। २. दे० 'खचर[1]' [कौ०]।

खचारी[2]—वि० दे० 'खचर'।

खचावट—संज्ञा स्त्री० [सं० खचित] १. खचन। २. गठन। ३. लिखावट।

खचित—वि० [सं०] १. खींचा हुआ। चित्रित या लिखित। २. आबद्ध। जटित। ३. युक्त। संयुक्त। ४. परिपूर्ण। भरा हुआ (कौ०)। ५. विभिन्न प्रकार के तागों से तैयार या सिला हुआ (वस्त्र), (कौ०)।

खचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] अनहोनी और असंभव वार्ता अथवा वस्तु [कौ०]।

खचिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'खाँचिया'।

खचीना—संज्ञा पुं० [हिं० खाचना] १. रेखा। लकीर। २. चिह्न।

खचेरना—क्रि० स० [हिं० खींचना] घसीटना। बलपूर्वक खींचना।

खच्चर—संज्ञा पुं० [देश०] १. गधे और घोड़ी के संयोग से उत्पन्न एक पशु।

विशेष—यह पशु घोड़े से बहुत मिलता जुलता होता है। इसके कान आदि अवयव गधे के समान होते हैं, पर शक्ति इसकी घोड़े से भी कुछ अधिक होती है। यह दीर्घजीवी होता है, बहुत कम बीमार पड़ता है और अधिक परिश्रम कर सकता है, इसीलिये कई अवसरों पर यह घोड़े की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है। यह घोड़े की तरह समझदार होता है, और ऊँची नीची भूमि पर इसका पैर बहुत मजबूत बैठता है। फौजों में और पहाड़ों पर इससे बहुत काम निकलता है।

३. दे० 'खचरा'।

खज[1](पु)—वि० [सं० खाद्य, प्रा० खज्ज] खाने योग्य। जो खाया जा सके। भक्ष्य। उ०—चाली हंसन की चलै चरन चोंच करि लाल। लखि परिहै बक तव कला, भख मारत ततकाल। भख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सों धारत। विहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज विचारत। बरनै दीनदयाल बैठि हंसन की आली। मंद मंद पग देत अहो यह छल की चाली।—दीनदयालु (शब्द०)।

यौ०—खज अखज = भक्ष्याभक्ष्य।

खज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मथानी। मंथनचक्र। २. मंथन की क्रिया। ३. कलछुल। दर्वी। ४. संघर्ष। युद्ध [कौ०]।

खजक—संज्ञा पुं० [सं०] मथानी [कौ०]।

खजप—संज्ञा पुं० [सं०] तपाया हुआ मक्खन। घी [कौ०]।

खजमज—वि० [अनु०] खराब, भारी या गिरि हुई (तबीयत)।

खजमजाना—क्रि० अ० [अनु०] तबीयत का खराब या भारी होना।

खजल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओस। २. वर्षा। ३. कोहरा [कौ०]।

खजला—संज्ञा पुं० [हिं० खाजा] एक प्रकार का पकवान जिसे खाजा भी कहते हैं। उ०—गुपचुप्प गुना गुल पापरियाँ। खजला सुखाजूरि पड़ाखरियाँ।—सूदन (शब्द०)।

खजलिया—संज्ञा पुं० [देश०] अंगूर के पौधों का एक रोग जिसमें उसके पत्तों और डंठलों पर काली काली धूल सी जम जाती है और पत्ता धीरे धीरे सूखता जाता है।

खजहजा—संज्ञा पुं० [सं० खाद्याद्य, प्रा० खज्जाज्ज] खाने योग्य उत्तम फल या मेवा। उ०—(क) और खजहजा उनकर नाऊँ। देखा सब राजन अँबराऊँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) फरे खजहजा दाड़िम दाखा। जो वह पंथ जाइ सो चाखा।—जायसी (शब्द०)।

खजांची—संज्ञा पुं० [फ़ा० खजानची] कोषाध्यक्ष।

खजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मथानी। २. मथने का कार्य। मंथन। ३. दर्वी। ४ विनाश। विध्वंस। ५. संघर्ष। युद्ध [कौ०]।

खजाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी [कौ०]।

खजाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दर्वी। कलछुल [कौ०]।

खजाजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खजाका' [कौ०]।

खजानची—संज्ञा पुं० [फ़ा० खजानची] खजाने का अफसर। कोषाध्यक्ष।

खजाना—संज्ञा पुं० [अ० खजानह्] १. वह स्थान जहाँ धन संग्रह करके रखा जाय।—धनागार। २. वह स्थान जहाँ कोई चीज संग्रह करके रखी जाय। कोश। ३. राजस्व। कर। ४. आधिक्य। बाहुल्य। ५. बंदूक में बारूद रखने की जगह।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—जमा करना।—पहुँचना।

यौ०—खजाना अफसर = वह अधिकारी जिसके यहाँ जिले की सरकारी आय जमा होती है।

खजार—संज्ञा पुं० [अ० खजार] १. बहुत अधिक पानी मिला हुआ दूध [कौ०]।

खजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलछी। दर्वी (कौ०)।

खजित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शून्यवादी बौद्ध।

खजिल—वि० [फ़ा०] लज्जित। शर्मिंदा।

खजीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० खज़ीनह] खजाना। उ०—कायर भागा पीठ दै, सूर रहा रन माँहि। पट लिखाया गुरू पै खारा खजीना खाहि।—कबीर सा० सं० पृ० २९।

खजुआ[1]—संज्ञा पुं० [हिं० खाजा] खाजा नाम की मिठाई। खजला। उ०—दोना मेलि धरे हैं खजुआ। हौंस होय तौ ल्याऊँ पूवा।—सूर (शब्द०)।

खजुआ[2]—संज्ञा पुं० [सं० खाद्य, प्रा० खज्ज] भक्षणीय खाद्य वस्तु। पकवान।

खजुआ†—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] दे० 'खजुहा'।

खजुरहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खजूर] बंगाल की पहाड़ियों में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का खजूर।

विशेष—इसके पेड़ छह सात हाथ ऊँचे होते हैं। इसकी पत्तियाँ साधारण खजूर से कुछ छोटी होती हैं और चटाई आदि बनाने के काम में आती हैं। इसके फल में प्रायः बीज ही बीज होता है जिसके कारण यह खाने योग्य नहीं होता।

खजुरहटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खजूर] दे० 'खजुरहट'।

खजुरा†—संज्ञा पुं० [हिं० खजूर] सोने या चाँदी आदि का बना हुआ एक प्रकार का डोरा जिसके एक सिरे पर फुँदना होता है और जिससे स्त्रियाँ सिर की चोटी गूँथती हैं।

खजुराहा—संज्ञा पुं० [सं० खर्जूर वाहक] दे० 'खजुराहो'। उ०—यशोवर्मन् ने खजुराहे में एक मंदिर बनवाया।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ४८४।

खजुराही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खजूर] वह स्थान जहाँ खजूर के बहुत से पेड़ हों।

खजुराहो—संज्ञा पुं० [सं० खर्जूरवाहक] मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले का एक गाँव जो चंदेलों की सांस्कृतिक एवं धार्मिक राजधानी रहा है।

विशेष—यहाँ के मंदिर अपनी स्थापत्य कला की दृष्टि से दर्शनीय हैं। इनका निर्माण नवीं सदी से ११ वीं सदी माना जाता है। स्थानीय परंपरा के आधार पर यहाँ पहले ८५ मंदिर थे किंतु अब उनमें से २५ रह गए हैं जो अपनी विभिन्न दशाओं में सुरक्षित हैं।

खजुरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्जूरिका] १. एक प्रकार की खजूर जिसके फल बहुत छोटे होते हैं। २. खजूर नाम की मिठाई। ३. एक प्रकार की ईख जो सूरत के आस पास होती है।

खजुरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खजुली] दे० 'खजुली'।

खजुलाना—क्रि० स० [हिं० खुजलाना] दे० 'खुजलाना'।

खजुली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्जू] १. दे० 'खुजली'। २. एक प्रकार की घास जिसके छू जाने से खुजली उत्पन्न हो जाती है।

खजुली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाजा] खाजे की तरह की एक मिठाई जो चीनी में पगी होती है।

खजूर—संज्ञा पुं० [सं० खर्जूर] १. एक प्रकार का पेड़ जो अरब देशों, समुद्र के किनारे या रेतीले मैदानों में होता है।

विशेष—इस जाति के पेड़ सीधे खंभे की तरह ऊपर चले जाते हैं और उनके सिरे पर पत्तियाँ बहुत कड़ी, चार अंगुल से छह सात अंगुल तक लंबी, पतली और नुकीली होती हैं और एक सींके या छड़ी के दोनों ओर लगती हैं। पत्ते की वह छड़ी दो तीन हाथ तक लंबी होती है। खजूर कई प्रकार के होते हैं, जिनमें मुख्य दो हैं—एक जंगली, दूसरा देशी। जंगली खजूर को सेंधी, खरक आदि कहते हैं। यह बहुत ऊँचा नहीं होता और हिंदुस्तान के बंगाल, बिहार, गुजरात, कोरोमंडल आदि प्रदेशों में होता है। जंगली खजूर के पेड़ के साथ खजूर निकलते हैं, जिनमें से कड़ी गुठलियों के कारण खाने लायक नहीं होते। इसके रस से एक प्रकार का गुड़ बनता है और उसे भी खजूर कहते हैं। खजूर की ताड़ी चाहे जितनी मीठी होती है और उससे गुड़ तथा सिरका भी बनाया जाता है। अरब, अफ्रीका आदि देशों के खजूर को पिंड खजूर कहते हैं। इसका पेड़ चालीस पचास हाथ ऊँचा होता है और जब यह वर्ष के ऊपर का हो जाता है, तब इसके ऊपरी भाग में फल बहुत से गुच्छे लटकते दिखाई देते हैं। इस प्रकार के खजूर सिंध, पंजाब, गुजरात और दक्षिण में अधिक होते हैं। यहाँ इसकी खेती की जाती है। नये पौधे और नर पेड़ के फल के लिए मादा पेड़ के निकट कुछ नर पेड़ भी लगाने पड़ते हैं। नर और मादा भिन्न भिन्न पेड़ होते हैं और फूल तैयार होने पर नर पेड़ के फूलों को मादा पेड़ के फूलों पर छिड़क देना चाहिए। फल तोड़ने के बाद से लेकर फलने तक बहुत सुरक्षित रखे जाते हैं और उनको कड़ी धूप में सुखा देते हैं। फिर इन फलों को तेल में पकाते हैं और धूप में सुखाकर बहुत दिनों तक रखते हैं। इस प्रकार की खजूर को छुहारा कहते हैं। खजूर का पेड़ जब अधिक पुराना हो जाता है, तब वह फलने लगता है। पेड़ बहुत ऊँचा होने पर उसका सिरा काटा जाता है। फिर कुछ समय में उसमें से नयी पत्तियाँ निकलती हैं और कुछ समय के बाद फिर से कट जाती हैं। इस भाग को खजूर का सिरा कहते हैं। किंतु जो पेड़ के ऊपर की अधपकी और सूखी छाल उसी के ऊपर रहती हैं, उसे खुरदरा कहते हैं। इससे रस भी निकाला जाता है, उसे लोग मजदूरी आदि में काम में लाते हैं।

खजूर की लकड़ी इमारत के काम आती है और इससे कुछ चीजें बनाई जाती हैं। इसकी पत्तियों के डंठल से पंखे, चटाई आदि बनते हैं और उनकी टोकरी भी बनाई जाती है। इसकी छाल से एक प्रकार की रस्सी बनती है, जिसे जेवरी कहते हैं। इसकी छाल बहुत मजबूत होती है और काम आती है। इससे एक प्रकार का गोंद भी निकलता है, जिसे 'हुकुमखिल' कहते हैं और जो दवा के लिये काम आता है। इसकी नरम पत्तियाँ, जिन्हें माथी कहते हैं, तरकारी बनाकर खायी जाती हैं और उनकी तरकारी बनाई जाती है। इसकी छाल के रेशे से रस्सी बनाई जाती है। अरब में इसके फूल को गाभी कहते हैं, जिसे 'गफर' कहते हैं, एक प्रकार का गुलाब या केवड़े की तरह का अर्क निकाला जाता है। वैद्यक में इसका फल पुष्टिकारक, मूत्रावरोधकारक, रक्तपित्त, शीतकर और शक्तिवर्धक माना गया है।

२. एक प्रकार की मिठाई जो आटे और घी में शक्कर मिलाकर गूँधकर बनाई जाती है। यह खाने में खस्ता और स्वादिष्ट होती है।

खजूर छड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खजूर+छड़ी] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जिसपर खजूर की पत्तियों की तरह छड़ियाँ या धारियाँ होती हैं।

खजूरा—संज्ञा पुं० [हिं० खजूर] १. फूस से छाई हुई छत की बँडेर जो प्रायः खजूर की होती है। मँगरा। २. दे० 'कनखजूरा'।

खजूरी¹—वि० [हिं० खजूर+ई] (प्रत्य०)] १.खजूर संबंधी। खजूर का। २. खजूर के आकार का। खजूर की तरह का। ३. तीन लर का गूँथा हुआ। जैसे,—खजूरी चोटी, खजूरी डोरा।

खजूरी(पु)²—संज्ञा स्त्री० [हिं० खजूर] खजूर का फल। खजूर। उ०—कोइ बिजौर करौंदा जूरी। कोइ अमिली कोई महुअ खजूरी।—जायसी (शब्द०)। ३. दे० 'खजूर' उ०—कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १।

खजोहरा—संज्ञा पुं० [सं० खर्जु+वर, प्रा० खज्जु+हर] एक तरह का रोएँदार कीड़ा जिसके शरीर पर रेंगने या छू जाने से खुजली होने लगती है। उ०—डाल पर बड़ा सा आ खजोहरा।—कुकुर०, पृ० ४३।

खज्योति—संज्ञा पुं० [सं०] खद्योत। जुगनू [को०]।

खट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कफ। बलगम। २. अंधा कूआँ। ३. घूसा। मुक्का। ४. एक प्रकार की सुगंधित घास। ५.कुल्हाड़ी। ६ हल।

खट²—संज्ञा पुं० [सं० षट्] १. षाड़व जाति का एक राग।

विशेष—यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय प्रातःकाल एक दंड से पाँच दंड तक है। इसमें मध्य स्वर वादी होता है। कोई कोई इसे आसावरी, ललित, टोडी, भैरवी आदि रागिनियों से उत्पन्न संकर राग मानते हैं।

२. (पु) षट्। छह की संख्या। उ०—(क) येक वार रहस्यु खट मास।—बी० रासो, पृ० ३६। (ख) खट सरदार नमीठ खड़गे।—रा० रू०, पृ० २७६।

खट³—संज्ञा पुं० [अनु०] दो चीजों के परस्पर टकराने या किसी कड़ी चीज के टूटने से उत्पन्न शब्द।

यौ०—खटखट। खटपट। खटाखट।

मुहा०—खट से=तुरंत। तत्काल। जैसे—जरा याद दिलाते ही उसने खट से रुपए गिन दिए। उ०—दोनों छम्मीजान के साथ साथ पाटेनाले पर किसी हाफिज जी के वहतुल लुत्फ में खट से जा पहुँचे।—फिसाना०, भा० १. पृ० ८।

खट⁴—संज्ञा पुं० [हिं०] खाट शब्द का समास में व्यवहृत रूप। जैसे—खटमल, खटवारी, छपरखट आदि।

खटक¹—संज्ञा स्त्री० १. खटकना का भाव। २. खटका।

खटक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. शादी विवाह करानेवाला। घटक। २. आधी खुली मुट्ठी। ३.घूमा। मुष्टि [को०]।

खटकना—क्रि० अ० [अनु०] १.'खट' 'खट' शब्द होना। खटखटाहट होना। जैसे, किवाड़ खटकना। २. शरीर में किसी काँटे आदि के गड़ने या कंकरी, तिनका आदि बाहरी चीजों के आ पड़ने के कारण रह रहकर पीड़ा होना। जैसे,—पैर में काँटा खटकना या आँखों में सुरमा खटकना। ३. बुरा मालूम होना। खलना। जैसे—तुम्हारा यहाँ रहना सब को खटकता है। दे० 'आँख' में खटकना'। ४.विरक्त होना। उचटना। हटना। जैसे,—अब तो हमारा जी यहाँ से खटक गया। ५. डरना। भय करना। जैसे,—वह यहाँ आते हुए खटकते हैं। ६. परस्पर झगड़ा होना। आपस में लड़ाई होना। जैसे,—आजकल दोनों भाइयों में खटक गई है। ७. किसी प्रकार के अनिष्ट या अपकार का अनुमान होना। अनिष्ट की भावना या आशंका होना। जैसे,—हमें यह बात उसी समय खटकी थी; पर कुछ सोचकर हम चुप रह गए। ८.अनुपयुक्त जान पड़ना। ठीक न जान पड़ना। जैसे,—यह शब्द कुछ खटकता है, बदल दो।

संयो० क्रि०—जाना।

खटकनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० खटकना] खट खट। खट खट करती हुई आवाज। उ०—खटकनि ढालन की अरु झनकन तरवारन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३।

खटकरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० षट्कर्म] दे० षट्कर्म'। उ०—ज्ञानहीन के सुन खटकरमा। धर्मदास उनके ये धर्मा।—कबीर सा०, पृ० ८१६।

खटकरमी(पु)—वि० षट्कर्म करनेवाला। षट्राग फैलानेवाला।

खटकर्म—संज्ञा पुं० [सं० षट्कर्म] दे० 'षट्कर्म'। उ०—हमके तुमके सबके छूई एह खटकर्म बनाई।—सं० दरिया, पृ० ६३।

खटका—संज्ञा पुं० [हिं० खटकना] १. 'खट खट' शब्द। जैसे, जरा सा खटका होते ही पक्षी उड़ गए। २. डर। भय। आशंका। उ०—अब कोई खटका नहीं है; बासमती कुछ कर नहीं सकती।—अयोध्या (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।—मिटना।—होना।—पड़ना।—होना।

३. चिंता। फिक्र। जैसे,—तुम्हारे न आने के कारण रात भर सबको खटका लगा रहा।

क्रि० प्र०—लगना।—मिटना।—होना।—पड़ना।

४. किसी प्रकार का पेंच, कील या कमानी, जिसकी सहायता किसी प्रकार का आवरण खुलता या बंद होता हो अथवा इसी प्रकार का और कोई कार्य होता हो। जैसे,—(क) खटका दबाते ही दरवाजा खुल गया। (ख) खटका दबाते ही सारे कमरे में बिजली का प्रकाश हो गया।

क्रि० प्र०—दबाना।

मुहा०—खटके पर होना=खटके के सहारे रहना। जैसे—'कमरे के बीच खटके पर एक चौकोर पत्थर था, जो ऊपर से दबाते ही नीचे की ओर झुकने लगा।'

५. किवाड़े की सिटकिनी। बिल्ली।

क्रि० प्र०—गिराना।—लगाना।

६. बाँस का वह टुकड़ा जो फलदार वृक्षों में पक्षियों को डराकर उड़ाने के लिये बाँधा जाता है। इसके नीचे जमीन तक

लटकती हुई एक लंबी रस्सी बँधी रहती है, जिसे हिलाने या झटका देने से वह टुकड़ा किसी डाल या तने से टकराकर 'खट' 'खट' शब्द करता है। खटखटा। खड़खड़ा।

क्रि० प्र०—लगाना। बाँधना

खटकाना—क्रि० स० [हिं० खटकना] १. 'खट' 'खट' शब्द करना। किसी वस्तु पर इस प्रकार आघात करना जिसमें खट खट शब्द हो। जैसे,—किवाड़ खटकाना, जंजीर खटकाना। २ शंका उत्पन्न करना। भड़काना (क्व०)। ३. बिगाड़ करा देना। झगड़ा करा देना।

खटकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा। २.तीर चलाने का एक आसन। ३. बाण चलाने के समय हाथों की मुद्रा (को०)।

खटकीड़ा, खटकीरा—संज्ञा पुं० [हिं० खाट + कीरा] दे० 'खटमल'।

खटकना†—क्रि० स० [हिं० खटकना] दे० 'खटकना'। उ०—खटवर्क खटं सो विहू सूर वारे।—प० रासो, पृ० ८२।

खटक्किका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गवाक्ष। खिड़की [को०]।

खटक्रम†—संज्ञा पुं० [सं० षट् कर्म; प्रा० खटकम्म] दे० 'षट् कर्म'। उ०— खटक्रम सहित जे विप्र होते हरि भगति चित दृढ़ नाहीं रे।—रै० बानी, पृ० ४१।

खटखट—संज्ञा पुं० [अनु०] १. 'खट' 'खट' शब्द। २. झंझट। झमेला। जैसे—इस काम में बड़ी खटखट है; यह हमसे न होगा। ३. लड़ाई। झगड़ा। जैसे,—रात दिन की खटखट बुरी होती है।

खटखटा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खटका—६'।

खटखटाना—क्रि० स० [अनु०] १.खट खट शब्द करना। किसी वस्तु को ठोंकना या पीटना। खड़खड़ाना। जैसे—दरवाजा या कुंडी खटखटाना। स्मरण करना। याद दिलाना। जैसे—बीच बीच में उसे खटखटाए चलो, रुपया मिल ही जायगा।

खटखटिया†—संज्ञा पुं० [अनु०] खट खट शब्द करनेवाली काठ की चट्टी। कठवहीं। (बोल०)।

खटखटिया†—वि० [अनु०] दे० 'खटपटिया' (बोल०)।

खटखादक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शृगाल। सियार। २.कौआ। ३. पशु। जानवर। ४.शीशे का पात्र या बर्तन। ५. खानेवाला प्राणी [को०]।

खटना—क्रि० स० [देश० खट्टण] धन उपार्जन करना। कमाना। (पश्चिम) २. अधिक परिश्रम करना। कड़ी मेहनत करना। जैसे—दिन रात खट खट कर तो हमने मकान बनवाया और आप मालिक बनकर आ बैठे। ३. कठिन समय में ठहरे रहना। विपत्ति में पीछे न हटना। ४ प्राप्त करना। पाना। उ०—धन वे पुरुष बड़ा पणधारी, खालक सिरोमण सुजस खटै।—रघु० रू०, पृ० २४। ५. ढूढ़ना। खोजना। उ०— जित हर अपच्छन बीद खटै। किरमाल वहै वरमाल कटै।—रा० रू०, पृ० ३६।

खटपट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. अनबन। लड़ाई। झगड़ा। जैसे—(क) उन दोनों में न जाने क्यों खटपट हो गई है। (ख) रोज रोज की खटपट अच्छी नहीं। दो कठोर वस्तुओं के टकराने का शब्द। 'खट खट' का शब्द। उ०—अंग बचाय उछरि पग धरैं। झपटहि गदा गदा सों लरैं। खटपट चोट गदा फटकारी। लागन शब्द कोलाहल भारी।—लल्लू (शब्द०)। ३. झमेला। आल जाल। झंझट। बखेड़ा। उ०—ठाकुर कहत कोऊ हरि हरिदास जे वे तिनकों न व्यापें जे दुनी के खटपट हैं। ठाकुर श०, पृ० १३। ४. ऊहापोह। संशय। उ०—जो मन की खटपट मिटै, चटपट दरसन होय।—संतबानी, भा० १, पृ० ५६।

खटखटिया—वि० [हिं० खटपट] लड़ाई करनेवाला। झगड़ालू।

खटपटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खटपट' -१'। उ०—भीख मागि वरु खाय खटपटी नीक न लागै। भरी गोन गुड़ तजै तहाँ से साँझै भागै। —पलटू०, पृ० ७।

खटपद—संज्ञा पुं० [सं० षटपद] दे० 'षट्पद'।

खटपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० षट्पदी] दे० 'षट्पदी'।

खटपाटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाट + पाटी] खाट की पाटी। उ०—लचि लाय रही खटपाटी करौट लै मानो महोदधि को तट ज्यों। कटु बोल सुनो पटुता मुख की पटु दै पलटी पलटी पर ज्यों।—देव (शब्द०)।

मुहा० - खटपाटी लेना या लगना = हठ या क्रोध के कारण स्त्रियों का काम धधा छोड़ देना।

खटपापड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] करमई नाम का पेड़ जिसे अमली भी कहते हैं।

खटपूरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ + पूरा] मिट्टी तोड़कर बराबर करने की मुँगरी।

खटबुना—संज्ञा पुं० [हिं० खाट + बुनना] खाट या चारपाई आदि बुननेवाला।

खटमिलावाँ—संज्ञा पुं० [देश०] पियाल नामक वृक्ष जिसमें चिरौंजी होती है।

खटभेमल - संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़।

विशेष—यह हिमालय की तराई, आसाम, बंगाल और दक्षिण भारत में होता है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं और चारे के काम में आती हैं। जेठ से कुआर तक इसमें एक प्रकार के पीले छोटे फूल और तदुपरांत मटर के समान छोटे फल लगते हैं, जो पकने पर काले हो जाते हैं।

खटमल—संज्ञा पुं० [हिं० खाट + मल = मैल] मटमैले उन्नावी रंग का एक प्रसिद्ध कीड़ा जो गरमी में मैली खाटों, कुरसियों और बिस्तरों आदि में उत्पन्न होता है। खटकीड़ा। उड़स।

विशेष—यह अपने डंक द्वारा मनुष्य के शरीर से रक्त चूसता है। यह आकार में प्रायः उरद के दाने के बराबर होता है; और इसके अंडे बहुत छोटे छोटे और सफेद होते हैं। अंडे से निकलने के प्रायः तीन मास बाद यह पूरे आकार का होता है। इसे छूने से बहुत बुरी दुर्गंध निकलती है। बहुत अधिक गरमी या सरदी में यह मर जाता है।

खटमली—वि० [हिं० खटमल] खटमल के रंग का। गहरा उन्नाबी या खैरा (रंग)।

खटमिट्ठा—वि० [हिं० खट्टा + मीठा] कुछ खट्टा और कुछ मीठा। जिसमें खट्टा और मीठा दोनों स्वाद हों।

खटमीठा—वि० [हिं०] दे० 'खटमिट्ठा'।

खटमुख—संज्ञा पुं० [सं० षट्मुख] दे० 'षट्मुख'।

खटमुत्ता†—वि० [हिं० खाट + मूतना] खाट पर मूतनेवाला (बालक)।

खटरस—वि० [सं० षट्रस] दे० 'षट्रस'।

खटराग¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'षट्राग'।

खटराग²—[सं० षट्राग = कई चीजों का मेल] १. झंझट। बखेड़ा। उ०—प्यारी की गिलहरी क्या कम खटराग है न कि बच्चों का पालना।—फिसाना०, भा०, ३. पृ० २६०।
क्रि० प्र०—करना।—फैलाना।—मचाना।
२. अंगड़ खंगड़। काठ कबाड़। व्यर्थ और अनावश्यक चीजें।
क्रि० प्र०—फैलाना।

खटरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा।

खटलर—संज्ञा पुं० [देश०] सान धरनेवालों का एक औजार जो लकड़ी का होता है।

खटला¹—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के कानों का छेद जिसमें वे बालियाँ पहनती हैं।

खटला²—संज्ञा पुं० [सं० कलत्र] स्त्री और बाल बच्चे। परिवार। कुटुंब (दक्षिण)।

खटवांस†—संज्ञा पुं० [सं० खट्वा + वास] रूसकर खाट पर पड़ जाने की स्थिति। दे० 'खटवाट'। उ०—यहाँ वह खटवांस लेकर पड़ी अब पकवान कौन बनाये।—काया०, पृ० १२२।

खटवाट Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खटपाटी²'। उ०—मैं तोहि लागि लेति खटवाटू। खोजति पतिहि जहाँ लगि घाटू।—जायसी (शब्द०)।

खटवाटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खटपाटी'।

खटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खट्टा] १. खट्टापन। अम्लता। तुरशी। २. वह वस्तु जिसका स्वाद खट्टा हो। जैसे, आम, इमली आदि।
मुहा०—खटाई देना या खटाई में देना = गहने आदि को साफ करने के लिये खटाई में रखना। खटाई में डालना = बहुत दिनों तक व्यर्थ किसी चीज या काम को लेकर लटकाए रखना। झमेले में डालना। दुविधा में डालना। कुछ निर्णय न करना। खटाई में पड़ना = दुविधा में पड़ना। अनिश्चित दशा में होना।
विशेष—सोनारों को जब चीज बनाने को दी जाती है, तब तकाजा करने पर वे कभी कभी कह देते हैं कि वह अभी खटाई में पड़ी है।

खटाक—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'खटाका'।
मुहा०—खटाक से = दे० 'खट से'। उ०—लगे किवाड़ों को खटाक से खोल जोर से टकराता।—आर्द्रा, पृ० १३१।

खटाका—संज्ञा पुं० [अनु०] 'खट' का शब्द।

खटाखट¹—संज्ञा पुं० [अनु०] 'खट खट' का शब्द।

खटाखट²—क्रि० वि० १. खटखट शब्द के साथ। २. चटपट। जैसे,—तकाजा नहीं करना पड़ा; सूरत देखते ही उसने खटाखट रुपए गिन दिए। ३. जल्दी। शीघ्र।

खटाना¹—क्रि० अ० [हिं० खट्टा] किसी वस्तु में खट्टापन आ जाना। खट्टा होना। जैसे,—सिरके का खटाना।

खटाना²—क्रि० अ० [सं० स्कभ, > स्कब्ध, प्रा० खड्ड = ठहरा हुआ] १. निर्वाह होना। गुजारा होना। टिकना। निभना। उ०—(क) सहज एकाकिन के भवन, कबहुँ न नारि खटाहिं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ज्यों जल मीन कमल मधुपन को छिन नहिं प्रीति खटाति।—सूर (शब्द०)। २. परीक्षा में ठहरना। उ०—जो मन लागै रामचरन अस। ... ...द्वंद्वरहित गतमान ज्ञानरत विषयविरत खटाय नाना कस।—तुलसी (शब्द०)।

खटाना³†—क्रि० स० [हिं० खटना] श्रम में प्रवृत्त करना। मेहनत कराना।

खटापट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खटपट'।

खटापटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खटपट'।

खटमिठा—वि० [हिं०] दे० खट्टा मिठ्ठा'। उ०—खावते जुग सब चलि जावे। खटामिठा फिर पछतावे।—दक्खिनी०, पृ० १०५।

खटारना Ⓟ—क्रि० स० [सं० क्षालन या देश०] पखारना। धोना। उ०—इतना करि तब चरण खटारो। होय अधीन तब मन को मारो।—कबीर सा०, पृ० ५५८।

खटाल†¹—संज्ञा पुं० [बँ० कटाल] समुद्र की ऊँची लहर जो पूर्णिमा के दिन उठती है।

खटाल†²—संज्ञा पुं० [देश०] वह स्थान या घेरा जहाँ गाय भैंस आदि रखी जाती है।

खटाव¹—संज्ञा पुं० [हिं० खटाना] निर्वाह। गुजर। जैसे,—तुम्हारी ऐसी बुरी आदत है कि किसी के साथ तुम्हारा खटाव नहीं हो सकता। २. खटने या श्रम करने की स्थिति। ३. खट्टापन। खटास।

खटाव²—संज्ञा पुं० [देश०] वह खूँटा जिसे गाड़कर नाव बाँधते हैं।

खटास¹—संज्ञा पुं० [सं० खट्वाश] मुश्कबिलाई। गंधबिलाव।

खटास²—संज्ञा स्त्री० [हिं० खट्टा] खट्टापन। खटाई। तुरशी।

खटिक¹—संज्ञा पुं० [सं० खट्टिक] [स्त्री० खटकिन] हिंदुओं के अंतर्गत एक छोटी जाति जिसका काम फल तरकारी आदि बोना और बेचना है। बुंदेलखंड में इस जाति के लोग भंग और बिहार में ताड़ी भी बेचते हैं।

खटिक²—संज्ञा पुं० [सं०] अर्धविकसित हस्ताग्र। आधी खुली मुट्ठी [को०]।

खटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'खड़िया'। उ०—सेष सुद्धता, सुद्धि, सत्वगुन, संतनि के मन हास। सीपि चून, भोडर फटिक, खटिका फेन प्रकास।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ११२। २. कान का बाहरी छिद्र। कान का छेद (को०)।

खटिकायुग—संज्ञा पुं०[सं० खटिका + युग] खटिका नामक एक धातु-विशेष का काल या युग। उ०—द्वितीय कल्प के अंतिम भाग खटिका युग से एक भारी भूकंपों का सिलसिला शुरू हुआ।—भारत० नि०, पृ० १६।

खटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खड़िया [को०]।

खटिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाट + इया (प्रत्य०)] छोटी चारपाई या खाट। खटोली।

मुहा०—खटिया मचमचाती निकलना = मृत्यु प्राप्त करना। मृत्यु की स्थिति को प्राप्त करना (स्त्रियाँ)। उ०—अल्ला करे अठवारे ही खटिया मचमचाती निकले।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२८।

विशेष—इस शब्द के मुहावरों के लिये 'खाट' शब्द देखें।

खटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खड़िया [को०]।

खटीक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० खटिक] १. दे० 'खटिक[1]'। २. कसाई। बकरकसाई। उ०—कबीर गाफिल क्या करै आया काल नजीक। कान पकरि के लै चला, ज्यों अजयाहि खटीक।—कबीर सा०, सं०, पृ० ७६।

खटुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खटोला का अल्पा०] खटोली। खटिया। (बोल०)।

खटेटी†—वि० [हिं० खाट + एटी (प्रत्य०)] जिसपर बिछौना न हो। जैसे—खटेटी खटिया।

खटोलना—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खटोला'। उ०—चंदन खाट को बनल खटोलना तापर दुलहिन सूतल हो।—कबीर श०, पृ० २।

खटोला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० खाट + ओला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० खटोली] छोटी खाट या चारपाई।

यौ०—उड़न खटोला।

खटोला[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्राचीन देश का नाम जो बुंदेलखंड के अंतर्गत था। यहाँ भीलों की बस्ती अधिक थी। वर्तमान सागर, दमोह आदि जिले उसी के अंतर्गत हैं। उ०—पूछो जहाँ कुंड औ गोला। तजि बायें अँधियार खटोला।—जायसी (शब्द०)।

खटोली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खटोला[1]'।

खट्ट—वि० [सं०] खट्टा [को०]

खट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] खट्वा। चारपाई।

खट्टन[1]—वि० [सं०] नाटा। खर्व। ठिगना।

खट्टन[2]—संज्ञा पुं० बौना व्यक्ति। ठिगना आदमी [को०]।

खट्टना(पु)†—क्रि० स० [देश०] उपार्जन करना। जीतना।—रा० रू०, पृ० १६६।

खट्टा[1]—वि० [सं० कटु] कच्चे आम, इमली आदि के स्वाद का। तुर्श। अम्ल।

मुहा०—खट्टा होना = अप्रसन्न होना। नाराज होना। खट्टा खाना = अप्रसन्न रहना। मुँह फुलाना। जी खट्टा होना = चित्त अप्रसन्न होना। दिल फिर जाना।

यौ०—खट्टाचूक। खट्टामीठा। खट्टामिठा।

खट्टा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० खट्टा] नीबू की जाति का एक बहुत छोटा फल जिसे गलगल भी कहते हैं।

खट्टा[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलंग। चारपाई। २. एक प्रकार का तृण (को०)।

खट्टाचूक—वि० [हिं० खट्टा + चूक] बहुत अधिक खट्टा।

खट्टामीठा—वि० [हिं० खट्टा + मीठा] कुछ खट्टा और कुछ मीठा खटमिट्ठा।

मुहा०—जी खट्टामीठा होना = मुँह में पानी भर आना। जी ललचना।

खट्टाश—संज्ञा पुं० [सं०] गंधबिलाव। खटास [को०]।

खट्वाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा गंधबिलाव [को०]।

खट्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अरथी, जिसपर शव ले जाते हैं [को०]।

खट्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसाई। पशुघातक। २. शिकारी। बहेलिया ३. भैंस के दूध का मक्खन (को०)।

खट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी चारपाई। खटिया। २. अरथी। ३ कसाइन। कसाई की स्त्री [को०]।

खट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खट्टा] १. खट्टी नारंगी। २. एक प्रकार का बड़ा नीबू जिसका अचार पड़ता है और जो बहुत अधिक खट्टा होता है।

खट्टीमिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खट्टीमीठी'।

खट्टीमीठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खट्टी + मीठी] एक प्रकार की लता।

खट्टू[1]—संज्ञा पुं० [देश०] जैसलमेर में होनेवाला एक प्रकार का संगमरमर, जिसका रंग पीला होता है।

खट्टू[2]—संज्ञा पुं० [पं० खटना = रुपया पैदा करना] कमानेवाला। निखट्टू का उलटा।

खट्टेरक—[सं०] खर्व। ठिगना [को०]।

खट्वर—वि० [सं०] खट्टा। तुर्श [को०]।

खट्वांग—संज्ञा पुं० [सं० खट्वाङ्ग] १. एक सूर्यवंशीय पौराणिक राजा का नाम, जिसका वर्णन भागवत में आया है। २. चारपाई का पाया या पाटी ३. शिव के एक अस्त्र का नाम।

यौ०—खट्वांगधर। खट्वांगभृत = दे० 'खट्वांगी'।

४. एक प्रकार का पात्र जिसमें प्रायश्चित्त करते समय भिक्षा माँगी जाती है। ५. तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिससे देवता बहुत प्रसन्न होते हैं।

खट्वांगी—संज्ञा पुं० [सं० खट्वाङ्गिन] शिव [को०]।

खट्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खटिया। चारपाई। सुश्रुत के अनुसार फोड़ा आदि बाँधने की १४ प्रकार की पट्टियों में से एक, जिसका व्यवहार माथे या गले आदि को बाँधने के लिये किया जाता है। ३. दोला। झूला (को०)।

खट्वाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी खटिया [को०]।

खट्वाप्लुत—वि० [सं०] दे० 'खट्वारूढ' [को०]।

खट्वारूढ़—वि० [सं०] १. खाट पर पड़ा हुआ। पथभ्रष्ट। २. नीच कुत्सित। ३. पामर। दुर्जन। ४. मंदबुद्धि। जड़मति [को०]।

खट्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी खाट [को०] ।

खड़ंजा—संज्ञा पुं० [हिं० खड़ा + अंग] ईंटों की खड़ी चुनाई । खड़ी ईंटों का जोड़ना । (ऐसी जोड़ाई फर्श पर होती है ।)

क्रि० प्र०—जोड़ना ।

खड़—संज्ञा पुं० [सं० खड] १. धान की पेड़ी । पयाल । तृण । घास । उ०—आप लोग घास, खड़, सुतली और दूसरा दरकारी चीज का इंतजाम कर देगा' ।—मैला० पृ० ५ । ३. श्योनाक । ४. एक ऋषि का नाम । ५. चाँदी, सोने आदि की बुकनी, जिसकी सहायता से गिलट की हुई चीजों पर जिला करते हैं ।

खड़क—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'खटक' ।

खड़कना—क्रि० अ० [अनु०] [संज्ञा खड़खड़ाहट] 'खड़खड़' शब्द होना । वि० दे० 'खटकना' ।

खड़का—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खटका' ।

खड़काना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खटकाना' ।

खड़क्किका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गवाक्ष । खिड़की [को०] ।

खड़क्की—संज्ञा स्त्री० [सं०] झरोखा । खिड़की [को०] ।

खड़खड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'खटखट' ।

खड़खड़ा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दे० 'खटखटा' या 'खटका'–६ । २. काठ का एक प्रकार का ढाँचा जिसमें जोतकर गाड़ी के लिये घोड़े सधाए या निकाले जाते हैं ।

खड़खड़ाना¹—क्रि० अ० [हिं० खड़खड़] खड़खड़ शब्द करना । जैसे,—बाग में सूखी पत्तियाँ खड़खड़ा रही हैं ।

खड़खड़ाना²—क्रि० स० किसी वस्तु में खड़खड़ शब्द उत्पन्न करना । जैसे,—वह कुंडी खड़खड़ा रहा है ।

खड़खड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़खड़ाना] १. 'खड़खड़' शब्द । २. खड़खड़ाना का भाव या क्रिया ।

खड़खड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़खड़ाना] १. पालकी जिसे चार कहार उठाते हैं । पीनस । २. काठ का गाड़ीनुमा वह ढाँचा जिसमें जोतकर नए घोड़ों को गाड़ी खींचने योग्य बनाया जाता है ।

खड़ग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] दे० 'खड्ग' ।

खड़गी(पु)¹—वि० [सं० खड्गिन्] तलवार लिए हुए । तलवारवाला ।

खड़गी(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० खड्गी] गेंडा नामक जंतु ।

खड़जी—संज्ञा पुं० [सं० खड्गी] दे० 'खड़गी' । उ०—खड़जी खजाने, खरगोस खिलवतखाने, खोले खसखाने खाँसत खवीस हैं ।—भूषण (शब्द०) ।

खड़ना¹(पु)—क्रि० अ० [सं० खेटन, प्रा० खेटराड] चलना । गमन करना । उ०—(क) ढोलउ पुगल पंथसिरि आणंद अधिक खड़ंति ।—ढोला०, दू० ४२३ । (ख) पहला दल पेशोर थी, खड़ आया लाहोर ।—रा० रू०, पृ० २६ ।

खड़ना²(पु)—क्रि० स० चलाना । चलने के लिये प्रेरित करना । हाँकना । उ०—(क) इसवर सीय सेस चढ़े रथ ऊपर । तहक सारथी खड़े तुरंग ।—रघु० रू०, पृ० १०१ । (ख) खेता सर फिर राव खिसांणी । बल खड़िया देखवा सिवांणो । —रा० रू०, पृ० ६२ ।

खड़बड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. खड़खड़ । खटखट । २. व्यतिक्रम । गड़बड़ । उलटफेर । ३. हलचल । ४. दे० 'खटपट' ।

खड़बड़ाना¹—क्रि० अ० [अनु०] १. विचलित होना । घबराना । उ०—छत्री खेत बोहारिया, चढ़ा दई की गोद । कायर कापें खड़बड़ें, सूरा के मन मोद ।—दरिया० बानी, पृ० ११ । २. क्रमहीन होना । बेतरतीब होना ।

खड़बड़ाना²—क्रि० स० १. किसी वस्तु को उलट पलटकर 'खड़बड़' शब्द उत्पन्न करना । २. क्रमविहीन करना । उलट फेर करना । ३. विचलित करना । घबरा देना ।

खड़बड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़बड़ाना] 'खड़बड़ाना' का भाव । खड़बड़ी ।

खड़बड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़बड़ाना] १. व्यतिक्रम । उलटफेर । २. हलचल । घबराहट ।

खड़बिड़ा—वि० [हिं० खड्ड + सं० विघट, प्रा० बिहड़] ऊँचा नीचा । असमतल ।

खड़बोहड़ा—वि० [हिं०] दे० 'खड़बिड़ा' ।

खड़भड़—क्रि० वि० [अनु०] अस्तव्यस्त । इतस्ततः । उ०—हरि पाखें नहिं कहूँ ठाँम । पीव बिन खड़भड़ गाँव गाँव ।—दादू०, पृ० ६५९ ।

खड़मंडल—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड + मण्डल] १. गड़बड़ । घोटाला । २. अस्तव्यस्त । इतस्ततः ।

खड़सान—संज्ञा पुं० [हिं० खरसान] दे० 'खरसान' ।

खड़हड़—क्रि० वि० [अनु०] आवाज करती हुई । धड़ाम से । धमाके के साथ । उ०—ऊभी थी खड़हड़ पड़ी, जाणे उसी भुयंगि ।—ढोला०, दू० २३९ ।

खड़हड़ता(पु)—वि० [प्रा० खड़हड़] व्यग्र । हिलता डुलता । कंपित । उ०—सो थांमै भुजडंड सूं, खड़हड़तो ब्रहमंड ।—बांकी ग्रं०, भा० १, पृ० ६ ।

खड़हड़ना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] खटकना । गड़ना । चुभना । उ०—गया गलंती राति परजलती पाया नहीं । से सज्जण परभाति, खड़हड़िया खुरसाँण ज्यूं ।—ढोला०, दू० ३८० ।

खड़ा—वि० [सं० खडक = खम्भा, थूनी] [वि० स्त्री० खड़ी] १. धरातल से समकोण पर स्थिति । सीधा ऊपर को गया हुआ । ऊपर को उठा हुआ । जैसे,—खड़ी लकीर, खड़ा बाँस, झंडा खड़ा करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—रहना ।—होना ।

२. जो (प्राणी) पृथ्वी पर पैर रखकर टाँगों को सीधा करके अपने शरीर को ऊँचा किए हो । दंडायमान जैसे,—इतना सुनते ही वह खड़ा हो गया और चलने लगा ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।

मुहा०—खड़ा जवाब = तुरंत अस्वीकार । वह इनकार जो चटपट किया जाय । खड़ा दाँव = जूए का वह दाँव जो जुआरी उठते उठाते समय लगाते हैं । खड़ा होना = (१) सहायता देना ।

मदद करना। जैसे,—कोई किसी की विपत्ति में नहीं खड़ा होता। (२) किसी चुनाव में उम्मीदवार होना। खड़ी पछाड़ खाना=क्रोध या शोक से पृथ्वी पर गिर पड़ना। खड़ी लगाना=सिर्फ पाँव के सहारे खड़े तैरना। उ०—पानी ने बीस कदम पीछे हटा दिया। कभी मल्लाही चीरते थे, कभी खड़ी लगाते थे।—फिसाना०, भा०, ३, पृ० १३०। खड़ी सवारी=(किसी के आवागमन के संबंध में व्यंग्यार्थ प्रयुक्त) तुरंत। झटपट। शीघ्र। खड़े खड़े=(१) खड़े रहने की दशा में। जैसे,—खड़े खड़े पानी मत पीओ। (२) तुरंत। झटपट। जैसे,—यों खड़े खड़े कोई काम नहीं होता। खड़े घाट=(१) एक दिन के भीतर हो कराई जानेवाली कपड़ों की धुलाई। (२) झटपट। तुरंत। ढके पाँव=(१) बीच में बिना रुके या बैठे। (२) झटपट। तुरंत। खड़े बाल निगलना=अत्यंत हानि कर काम करना। अनुचित काम करना। उ०—खड़े बाल निगलनेवाले हैं।—चुभते०, पृ० ४।

३. ठहरा हुआ। टिका हुआ। रुका हुआ। स्थिर। जैसे,—इस तरह यहाँ दीवार कब तक खड़ी रहेगी। ४. प्रस्तुत। उपस्थित। उत्पन्न। तैयार। पैदा। जैसे,—दाम खड़ा करना झगड़ा खड़ा करना, मामला खड़ा करना। जैसे,—(क) उसने अपना दाम खड़ा कर लिया। (ख) उसने बीच में एक नई बात खड़ी कर दी। ५. संनद्ध। उद्यत। तैयार। जैसे,—(क) जिस काम के लिये आप खड़े होंगे, वह क्यों न होगा। (ख) बात समझते नहीं, लड़ने को खड़े हो जाते हो।

मुहा०—खड़ा दोना=मिठाई आदि जो किसी पीर को चढ़ाई जाय। ६. आरंभ। जारी। जैसे,—काम खड़ा करना। ७. (घर, दीवार आदि ऊँची वस्तुओं के विषय में) स्थापित निर्मित। उठा हुआ। जैसे,—इमारत खड़ी करना, तंबू खड़ा करना।

मुहा०—खड़ा करना=ठाँचा खड़ा करना। स्थूल रूप से आकार आदि बनाना। जैसे,—तुम्हारा कुरता खड़ा कर चुके हैं; सीना बाकी है।

८. जो उखाड़ा न गया हो। जो काटा न गया हो। जैसे,—खड़ी फसल, खड़ा खेत। ९. बिना पका। असिद्ध। कच्चा। जैसे,—खड़ा चावल। १०. समूचा। पूरा। जैसे—खड़ा चना चबाना। ११. जिसमें गति न हो। ठहरा हुआ। स्थिर। जैसे,—खड़ा पानी।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

खड़ाऊँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ+पाँव या 'खटखट' अनु०] पैर में पहनने के लिये तलुए के आकार की, काठ की पटरी। इसमें आगे की ओर एक खूँटी लगी होती है, जिसे पहनने के समय पैर के अँगूठे और उसके पास की उँगली में अटका लेते हैं। पादुका।

खड़ाका¹—संज्ञा पुं० [अनु०] १. खड़ खड़ शब्द। खटका। २. आघात। रव। प्रतिध्वनि। टकराहट। उ०—जीरन के ऊपर खड़ाके खड्गन के।—भूषण ग्रं०, पृ० ३३०।

खड़ाका²—क्रि० वि० चटपट। शीघ्रता से।

खड़ादसरंग—संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमें प्रतिद्वंद्वी की जाँघ में अपना हाथ अड़ाकर उसी के बल के उसके उस हाथ को, जो अपने पेट पर हो, दबाकर उसकी पीठ पर जाना और उसे मरोड़ा देकर गिराना पड़ता है। इसे हनुमंत बंध भी कहते हैं।

खड़ानन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० षडानन] दे० 'षडानन'।

खड़ा पठान—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज के पिछले भाग का मस्तूल।—(लश०)।

खड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० खडिका] खड़िया [को०]।

खड़िया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरिया] रुपया पैसा रखने की थैली। उ०—ता पाछे जब वैष्णव जाइवे को कहे तब कृष्ण भट रात्रि कों उनकी गाँठ खड़िया खोलि खरची बाँधि देते।—दो सौ० बावन०, भा० १, पृ० २७।

खड़िया²—संज्ञा स्त्री० [सं० खटिका, खड़िका] एक प्रकार की सफेद मिट्टी या पत्थर की जाति का एक बहुत मुलायम सफेद पदार्थ।

विशेष—यह जमीन के अंदर शंख, घोंघे आदि जानवरों की हड्डियों के चूने से आप ही आप जमकर बनता है। खड़िया इंगलैंड में लंडन के आसपास और फ्रांस के उत्तरी भाग में बहुत होती है। इससे दीवारों पर चूने की भाँति सफेदी की जाती है और अनेक प्रकार की धातुएँ साफ की जाती हैं। प्रायः काले तख्तों पर इससे लिखा भी जाता है। यह कई प्रकार की होती है।

२. एक प्रकार की खड़िया जो बहुत कड़ी होती है। खरिया। खड़ी। छुही। उ०—मोरियों पर ढकने के लिये सबखार का सफेद खड़िया पत्थर काम में आता था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १६।

विशेष—यह इमारतों में पत्थर के स्थान पर काम आती है। एक और प्रकार की खड़िया काली होती है जो स्लेट के अंतर्गत है।

मुहा०—खड़िया में कोयला=बेमेल बात। अच्छे के साथ बुरे का संयोग।

खड़िया³—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड या हिं० खड़ा] अरहर का वह पेड़ या बड़ा डंठल जिसमें पत्तियाँ या फलियाँ बिलकुल न हों। खाड़ी। रहठा।

खड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० खडी] खड़िया। खड़िया मिट्टी। छुही।

खड़ी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ा=सीधा] १. पहाड़। पर्वत। २. दे० 'बारहखड़ी'।

खड़ी चढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ी+चढ़ाई] बहुत थोड़ी ढालवाली सीधी चढ़ाव की भूमि।

खड़ी डंकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मालखँभ की एक कसरत।

खड़ीरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] खाबुड़ की सूखी हुई वह जमीन जो जल से जोती बोई जाती है। उ०—जेहल ताल खडीरा हुँ, तरवर लाकड़ होय।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १०।

खड़ी तैराकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] खड़े होकर जल में तैरने की क्रिया। खड़ी लगाना।

खड़ी नियाज—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ी + फा० नियाज] मनोरथ सिद्ध होने पर की जानेवाली मनौती, प्रार्थना या चढ़ावा।

खड़ी पाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] खड़ी सीधी रेखा (।) जो वाक्य समाप्त होने पर लगाई जाती है। पूर्ण विराम।

खड़ी बोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ी (या खरी?) + बोली (भाषा)] वर्तमान हिंदी का एक रूप जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है। २ह बोली जिसपर व्रज या अवधी आदि की छाप न हो। ठेठ हिंदी। आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है। परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप। वि० दे० 'हिंदी'।

विशेष—जिस समय मुसलमान इस देश में आकर बस गए, उस समय उन्हें यहाँ की कोई एक भाषा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। वे प्रायः दिल्ली और उसके पूरबी प्रांतों में ही अधिकता से बसे थे, और व्रजभाषा तथा अवधी भाषाएँ, क्लिष्ट होने के कारण अपना नहीं सकते थे, इसलिये उन्होंने मेरठ और उसके आसपास की बोली ग्रहण की, और उसका नाम खड़ी (खरी ?) बोली रखा। इसी खड़ी बोली में वे धीरे धीरे फारसी और अरबी शब्द मिलाते गए जिससे अंत में वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि हुई। विक्रमी १४वीं शताब्दी मे पहले पहल अमीर खुसरो ने इस प्रांतीय बोली का प्रयोग करना आरंभ किया और उसमें बहुत कुछ कविता की, जो सरल तथा सरस होने के कारण शीघ्र ही प्रचलित हो गई। बहुत दिनों तक मुसलमान ही इस बोली का बोलचाल और साहित्य में व्यवहार करते रहे, पर पीछे हिंदुओं में भी इसका प्रचार होने लगा। १५वीं और १६वीं शताब्दी में कोई कोई हिंदी के कवि भी अपनी कविता में कहीं कहीं इसका प्रयोग करने लगे थे, पर उनकी संख्या प्रायः नहीं के समान थी। अधिकांश कविता बराबर अवधी और व्रजभाषा में ही होती रही। १८वीं शताब्दी में हिंदू भी साहित्य में इसका व्यवहार करने लगे, पर पद्य में नहीं, केवल गद्य में; और तभी से मानों वर्तमान हिंदी गद्य का जन्म हुआ, जिसके आचार्य मुं० सदासुख, लल्लू जी लाल और सदल मिश्र माने जाते हैं। जिस प्रकार मुसलमानों ने इसमें फारसी तथा अरबी आदि के शब्द भरकर वर्तमान उर्दू भाषा बनाई, उसी प्रकार हिंदुओं ने भी उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान हिंदी प्रस्तुत की। इधर थोड़े दिनों से कुछ लोग संस्कृतप्रचुर वर्तमान हिंदी में भी कविता करने लग गए हैं और कविता के काम के लिये उसी को खड़ी बोली कहते हैं।

खड़ी मसकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ा + अ० मसकला = रेती] रुखानी की तरह का कुंद धार का एक औजार जिससे सिकली करनेवाले बरतन को खुरचकर जिला करते हैं।

खड़ी सकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ा + देश० सकी] कुश्ती का एक पेंच। विशेष—इसमें बाएँ हाथ से प्रतिद्वंद्वी की दाहिनी कलाई पकड़कर और दाहिने हाथ से उसकी कुहनी पकड़कर अपनी ओर खींचना, और अपने दाहिने पैर को उसके पैरों में डालकर उसकी पिंडली और एँड़ी को अपनी ओर खींचते हुए उसकी छाती पर धक्का देकर उसे चित्त गिरा देना पड़ता है।

खड़ी हुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] वह हुंडी जिसका रुपया चुकाया न गया हो।

खड़ु—संज्ञा पुं० [सं०] अरथी। टिकठी [को०]।

खड़ुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ा + उआ (स्वा० प्रत्य०)] हाथ या पाँव में पहनने का कड़ा। चूड़ा।

खड—संज्ञा स्त्री० [सं०] खड्ड। अरथी [को०]।

खड़ूला†—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ा + ऊला (स्वा० प्रत्य०] दे० 'खड़ुआ'। उ०—कोई कहे मैं इसका मामा। लाया खाड़ खड़ूले जामा। —सहजो०, पृ० २७।

खड्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध अस्त्र जिसका व्यवहार आजकल केवल पशुओं को बलि देने के लिये होता है। तलवार इसी का एक भेद है। खाँड़ा। २. गैंड़ा। ३. एक बुद्ध का नाम। ३. चोर। भटेऊर। एक गंध द्रव्य। ५. तंत्र के अनुसार शक्तिपूजा की एक मुद्रा। ६. लौह। लोहा (को०)। ७ गैंडे की सींग (को०)।

खड्गकोश—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग रखने का म्यान [को०]।

खड्गट—संज्ञा पुं० [सं०] काँस का एक भेद [को०]।

खड्गधर—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग धारण करनेवाला व्यक्ति [को०]।

खड्गधार—संज्ञा पुं० [सं०] बदरिकाश्रम के एक पर्वत का नाम।

खड्गधारा—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार की धार [को०]।

खड्गधारा व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत दुष्कर कार्य [को०]।

खड्गधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० खड्गधारिन्] [स्त्री० खड्गधारिणी]हाथ में खड्ग लिए हुए। खड्गपाणि।

खड्गधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०]१. छोटी असि। छुरिका। २. मादा। गैंडा [को०]।

खड्गधेनुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खड्गधेनु' [को०]।

खड्गपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कल्पित वृक्ष। विशेष—कहते हैं, यह वृक्ष यमराज के यहाँ है और इसकी डालियों में पत्तों की जगह तलवारें और कटार आदि लगी हुई हैं। पापियों को यातना देने के लिये इस वृक्ष पर चढ़ाया जाता है। गरुड़ पुराण में इसे असिपत्र भी कहा गया है।

२. तलवार की धार (को०)।

खड्गपाणि—वि० [सं०] खड्गधारी [को०]।

खड्गपिधान—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार का कोश। म्यान [को०]।

खडगपिधानक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० खड्गपिधान'।

खड्गपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की कटारी जो प्रायः एक हाथ लंबी और दो अंगुल चौड़ी होती थी और जिसका व्यवहार बहुत निकट आए हुए शत्रु पर प्रहार करने के लिये होता था।

खड्गपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खड्गपुत्र'।
खड्गप्रहार—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार की काट। खड्गाघात [को०]।
खड्गफल—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग की धार। खड्गधारा [को०]।
खड्गबंध—संज्ञा पुं० [सं० खड्गबन्ध] खड्ग की आकृति में लिखा गया काव्य (पद्य) जो चित्रकाव्य के अंतर्गत है।
खड्गलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवारों की पंक्ति या कतार [को०]।
खड्गविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार चलाने की कला या हुनर [को०]।
खड्गहस्त—वि० [सं०] १. दे० 'खड्गपाणि'। २. लड़ने के लिये तैयार। संघर्ष के लिये उद्यत [को०]।
खड्गाघात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खड्गप्रहार'। [को०]।
खड्गाधार—संज्ञा पुं० [सं०] खड्गकोश। म्यान [को०]।
खड्गारीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चमड़े की ढाल। २. असि पर चलने का एक प्रकार का धार्मिकव्रत करनेवाला व्यक्ति [को०]।
खड्गिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आखेट करनेवाला। शिकारी। २. तलवारधारी व्यक्ति (को०)। ३. भैंस के दूध का फेन। ४. कसाई।
खड्गी[1]—वि० [सं० खड्गिन्] [वि० स्त्री० खड्गिनी] खड्ग या असि धारण करनेवाला [को०]।
खड्गी[2]—संज्ञा पुं० १. वह जिसके पास खड्ग हो। खड्गधारी। २. गैंडा। ३. शिव।
खड्गीक—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा हँसुआ [को०]।
खड्ड[1]—संज्ञा पुं० [सं० गर्त, > प्रा० गड्ड अथवा, सं० खात] गड्ढा। गढ़ा।
खड्ड[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] खात में बहनेवाली सरिता। नदी। उ०—और उससे पहले खड्ड मिली।—किन्नर०, पृ० ४५।
खड्ढा—संज्ञा पुं० [सं० खात = खड्ड] १. गड्ढा। गढ़ा। २ बहुत अधिक रगड़ के कारण पड़ा हुआ चिह्न।
खण‡(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षण, प्रा० खण] दे० 'क्षण'। उ०—खण एक एक चूप मैं रहइगारी गांडू दे तत्व ही।—कीर्ति० पृ० ४२।
खणक—संज्ञा पुं० [सं० खनक] चूहा। मूसा (डिं०)।
खणनाड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षण + नाडिका] धर्म घड़ी (डिं०)।
खतंग[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कबूतर जिसका रंग कुछ मैलापन लिये हुए होता है।
खतंग[2]—वि० [सं० क्षताङ्ग] १. अंग में क्षत या घाव करनेवाला। चुभनेवाला उ०—(क) बूठा बाँण हुहूँ दलां छूटा मूट खतंग।—रा० रू०, पृ० ८३। (ख) खूनी न रही काय खतंगा खंजनां।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ३२। २. घायल क्षतांग। उ०—खित गहक सूर खतंग।—रघु० रू०, पृ० २२३।
खतंगर(पु)—वि० [देश० खतंग + र (प्रत्य०)] अंग में क्षत करनेवाला। तेज। तीक्ष्ण। उ०—राघव उमंग हँस हँस रहै खेलू सदा खतंगरो।—रघु० रू०, पृ० ४७।
खतँग(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] तरकस। तूणीर। उ०—तरकस पंच गिरंम तीर प्रति खतँग तीन सय। खुरासान कम्मांन पंच परमान मान जय।—पृ० रा० (उ०), ११।२१।
खत[1]—संज्ञा पुं० [अ० खत] १. पत्र। चिट्ठी। उ०—नहीं आता है अब करार मुझे। तेरे खत का है इंतजार मुझे।—शेर०, भा० १, पृ० ३६३।
यौ०—खतकिताबत = पत्रव्यवहार।
२. लिखावट। जैसे—मैं पहचानता हूँ, यह उन्हीं का खत है। ३. रेखा। लकीर। धारी। ४ दाढ़ी के बाल (डिं०)। ५. हजामत।
क्रि० प्र०—बनाना।—बनवाना।
मु०—खत बनाना = माथे के ऊपरी भाग के बालों को उस्तरे से बराबर करना।
७. दाढ़ी मूँछ (को०)। ८. कान से सटे हुए बालों का निचला भाग। कनपटी के बाल। उ०—सफाई उठ गई चेहरे की जब खत का निकाल आया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५८। ९. चिह्न। निशान (को०)। १०. परवाना। राज्यादेश (को०)।
खत[2]—संज्ञा पुं० [सं० क्षत] आघात। प्रहार।
खत[3](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षति] घाव। चोट। उ०—भरम काटि करि कलम छुरी छवि, तकि तृस्ना खत सारी।—धरनी०, पृ० ३।
खत[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति, प्रा० खिति] पृथिवी। जमीन। (डिं०)।
खतकश—संज्ञा पुं० [फ़ा० खतकश] बढ़इयों का एक औजार जिसके द्वारा वे लकड़ी पर निशान बनाते हैं [को०]।
खतकशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खतकशी] तस्वीर बनाने के लिये रेखाएँ खींचना [को०]।
खतकिताबत—संज्ञा पुं० [अ० खतकिताबत] पत्रव्यवहार। चिट्ठी पत्री। उ०—अधिकांश शिक्षितों के खतकिताबत में भी फारसी का प्रचार हुआ।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३९२।
खतखुतूत—संज्ञा पुं० [अ० खतखतूत] खतकिताब। चिट्ठीपत्री [को०]।
खतखोट‡—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षत + हिं० खुड्ड] घाव के ऊपर की सूखती हुई पपड़ी। खुरंड। उ०—तिय निज हिय जो लगि चलत पिय नखरेख खरौट। सूखन देति न सरसई खोंटि खोंटि खतखोट।—बिहारी (शब्द०)।
खतना—संज्ञा पुं० [अ० खतनह] मुसलमानों की एक रस्म, जिसमें उनके लिंग के अगले भाग का बढ़ा हुआ चमड़ा काट दिया जाता है। सुन्नत। मुसलमानी।
खतम—वि० [अ० खत्म] १. पूर्ण। उ०—तुमहिं कोरान खतम खतमाना।—धरनी०, पृ० १८। २. समाप्त। (पु)‡ ३. परम। अत्यंत। हद। उ०—खतम खुसी अनखूट खजाना, निरमल चंदमुखी ग्रह नार।—रघु० रू०, पृ० २२।
मुहा०—खतम करना = मार डालना। जैसे,—एक को तो यहीं खतम कर डाला है; एक बचा है सो देखा जायगा। खतम होना = मर जाना। प्राण निकल जाना।

खतमाना(पु)—क्रि० स० [अ० खत्म, खतम] समाप्त या पूर्ण करना। उ०—तुम्हहि कोरान खतम खतमाना।—धरनी०, पृ० १८।

खतमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। मेघ। २. धूम्र। धूआँ [को०]।

खतमी-संज्ञा स्त्री० [अ०] गुलखैरू की जाति का एक प्रकार का पौधा।

विशेष—यह कश्मीर और पश्चिम हिमालय में होता है। इसमें नीले, लाल, बैंगनी आदि कई रंगों के फूल होते हैं। पर सफेद फूल की खतमी सबसे अच्छी समझी जाती है। इसकी पत्तियाँ पीसकर लोग फोड़े पर लगाते हैं और इसके बीज और जड़ का व्यवहार ओषधियों में होता है। इसके बीज को तुख्म खतमी और जड़ को रेशा खतमी कहते हैं।

खतर—संज्ञा पुं० [अ० खतर] दे० खतरा'।

खतरनाक—वि० [फ़ा० खतरनाक] १. खतरे से युक्त। खतरावाला। २. भयजनक। आशंकामय।

खतरम्मा†—संज्ञा पुं० [हिं० खत्री] १. क्षत्रियों का समाज। २. वह वह स्थान जहाँ अधिकतर खत्री रहते हों।

खतरा—संज्ञा पुं० [अ० खतरह] १. डर। भय। खौफ। २. आशंका।

खतरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खत्री] खत्री जाति की स्त्री।

खतरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० खत्री+एटा (प्रत्य०)] खत्री। उ०—केते मुगलाने सेख पठाने सैयद वाने बाँधि चढ़े। कायथ खतरेटे लोह लपेटे देत चपेटे चाइ बढ़े।—सूदन (शब्द०)।

खता¹—संज्ञा स्त्री० [अ० खता] [वि० खतावार]। १. कसूर। अपराध। २. धोखा। फरेब।

मुहा०—खता खाना = धोखे में पड़ना। धोखे में पड़कर हानि उठाना।

३. भूल। चूक। गलती।

मुहा०—खता खाना = गलती करना। चूकना।

खता²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षत] क्षत। घाव। उ०—सोइ साधु को कह्यो बोलाई। कैसो चरणोदक दिय लाई। कह्यो साधु सब को मैं लायो। खता चरण लखि एक बचायो।—रघुराज (शब्द०)।

खता³—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चीन या चीन का एक प्रदेश [को०]।

खताई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खताई] दे० 'नानखताई'। उ०—सोयाबीन की खताइयाँ।—ज्ञानदान, पृ० १६३।

खताकार—वि० [फ़ा० खताकार] १. दोषी। अपराधी। मुजरिम। पापी। गुनहगार। पातकी [को०]।

खतावार(पु)—[अ० खता+फा० वार] दोषी। अपराधी।

खति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षति] क्षति। हानि। नुकसान। उ०—कहै पदमाकर त्यों बदन बिशाल होत लाल होत हेरी छल छिद्रन की खति की। गंगा जी तिहारे गुणगान करे अजगैबै आन होत बरषा मुआनँद की अति की।—पद्माकर (शब्द०)।

खतिया¹†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खाती'।

खतिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० खता] छोटा गड्ढा।

खतियाना—क्रि० स० [हिं० खाता] प्रति दिन के आय व्यय और क्रय विक्रय आदि को खाते में अलग अलग मद् में लिखना।

खतियौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खतियाना] १. वह बही या किताब जिसमें खतियाया जाय। खाता। २. खतियाने का काम। ३. पटवारी का वह कागज जिसमें प्रत्येक असामी का रकबा और लगान आदि दर्ज हों।

खतिलक—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

खतीब-वि० [अ० खतीब] १. खुतबा पढ़नेवाला। २. धर्मोपदेशक। ३. वक्ता [को०]।

खतीबा—संज्ञा स्त्री० [अ० खतीबह्] बोलनेवाली स्त्री। वक्तृत्व शक्ति से युक्त स्त्री। वक्त्री [को०]।

खतेआजादी—संज्ञा पुं० [फ़ा० खत+ए+आजादी] मुक्तिपत्र। बंधमुक्त करने का आदेशपत्र [को०]।

खतेगुलामी—संज्ञा पुं० [अ० खत-ए-गुलामी] दासतापत्र [को०]।

खतेनस्तालीक—संज्ञा पुं० [अ० खत-ए-नस्तालीक] सुंदर अक्षरोंवाली लिखावट जिसमें उर्दू की लीथो पद्धति से पुस्तकें छपती हैं [को०]।

खतेशिकस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह लिखावट या लेख जो बहुत टेढ़ा मेढ़ा हो। घसीट लिखावट [को०]।

खतौनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाता+औनी (प्रत्य०)] दे० 'खतियौनी'।

खत्ता—संज्ञा पुं० [सं० खात या गर्तक] [स्त्री० खत्ती] १. गड्ढा। २. अन्न रखने का स्थान। ३. नील या शोरा बनाने का गड्ढा।

खत्तिअ, खत्तिय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] दे० 'क्षत्रिय'। उ०—(क) परसुराम अरु पुरिस जेन खत्तिअ खअ करिअउ।—कीर्ति०, पृ० ८। (ख) खत्तिय वंस गहै कर कत्तिय।—प० रासो, पृ० ६०।

खत्म—वि० [अ० खत्म] दे० 'खतम'।

खत्रवट, खत्रवाट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्री+वट (प्रत्य०)] १. क्षत्रीपन। उ०—खत्रवट सरम सदा थां खोलें। औ हिंदवाण बचावौ ओलें।—रा० रू०, पृ० ७७। २ वीरता। (डिं०)।

खत्रिय—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] क्षत्रिय।—(डिं०)।

खत्री—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] [स्त्री० खतरानी] १. हिंदुओं में क्षत्रियों के अंतर्गत एक जाति जो अधिकतर पंजाब में बसती है। इस जाति के लोग प्रायः व्यापार करते हैं। २. क्षत्रिय (डिं०)। उ०—देख कहूँ सको देस, खत्री बीज गयो खेस।—रघु० रू०, पृ० ७६।

खत्री परदेदार—संज्ञा स्त्री० [हिं० खत्री] लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का ठप्पा, जिससे कपड़ों पर बेल बूटे छापे जाते हैं। यह ठप्पा तीन इंच से छह इंच तक लंबा होता है।

खत्रीवाट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० खत्री+वाट] दे० 'खत्रवट'।

खदंग—संज्ञा पुं० [फ़ा० खदंग] १. एक वृक्षविशेष जिसकी लकड़ी के बाण बनते हैं। २. छोटा बाण। नावक (को०)। ३. केकड़ा (को०)।

खदंगी(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खदंग] बाण। तीर। उ०—लाखन भीर बहादुर जगी। जँबुक कमानें तीर खदंगी।—जायसी (शब्द०)।

खद—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र या निषिद्ध] मुसलमान।—(डिं०)।

विशेष—'खद' शब्द का यह प्रयोग मिलता नहीं हाँ, रवद, रवद् और रींद आदि शब्द इस अर्थ में मिलते हैं। संभव है, लिपि के कारण 'रवद' का 'खद' हो गया हो।

खदखदाना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'खदबदाना'।

खदबद—संज्ञा स्त्री० [अनु०] खदखद या खदबद शब्द जो प्रायः किसी तरल पर गाढ़े पदार्थ को खौलाने से उत्पन्न होता है।

खदबदाना—क्रि० अ० [अनु०] खदबद शब्द करना, जो प्रायः किसी चीज के उबालने से उत्पन्न होता है।

खदरा†—संज्ञा पुं० [देश०] घास का एक भेद। खदी। उ०—समधिन के टुरवा खदर लुये आंइग, ओला गड़गे खदर बन के खोंभा। लानि देवे तें भइया बसुला वो विधना, हेरि देवे ओकर तन के खोभा।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १४२।

खदरा¹†—संज्ञा पुं० [हिं० खता या सं० गर्तक + हिं० रा (स्वा० प्रत्य०)] १. गड्ढा। २. बिना निकाला हुआ छोटा बैल। बछड़ा।

खदरा²†—वि० [सं० क्षुद्र] निकम्मा। रद्दी। बेकाम। जैसे, खदरा माल।

खदशा—संज्ञा पुं० [अ० खद्शह] १. भय। डर। आशंका। २. संदेह. शक (को०)।

खदान—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना या खान] वह गड्ढा जिसे खोदकर उसके अंदर से कोई पदार्थ निकाला जाय। खान।

खदिका—संज्ञा पुं० [सं०] भुना हुआ अन्न। लावा [को०]।

खदिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खैर का पेड़। २. खैर। कत्था। ३. चंद्रमा। ४. इंद्र ५. एक ऋषि का नाम।

खदिरचंचु—संज्ञा पुं० [सं० खदिरचञ्चु] वंजुल नाम का एक पक्षी।—वृहत्०, पृ० ४१०।

खदिरपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खदिरपत्री' [को०]।

खदिरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाजवंती या लजाधुर नाम की लता।

खदिरसार—संज्ञा पुं० [सं०] खैर। कत्था [को०]।

खदिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वराहक्रांता। २. लाजवंती। लजाधुर।

खदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो तालों में उत्पन्न होती है।

खदीजा—संज्ञा स्त्री० [अ० खदीजह्] हजरत मुहम्मद की पहली पत्नी [को०]।

खदीव—संज्ञा पुं० [तु०, फ़ा० खदीव] १. मिस्र के बादशाह की उपाधि। २. सामंत या मांडलीक राजा (को०)।

खदुका—संज्ञा पुं० [सं० खादक = अधमर्ण] १. महाजन से कर्ज लेकर व्यापार करनेवाला आदमी। २. ऋणी। कर्जदार। उ०—दो खेतवालों में सिवान का झगड़ा खड़ा करके उन्हें मुकदमें में वझा देना और उनमें से एक को खदुका बनाकर छील जाना।—रति०, पृ० ९६।

खदुहा†—संज्ञा पुं० [हिं० खदुका] छोटी जाति का या छोटा व्यापार करनेवाला मनुष्य।

खदूरवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की एक शक्ति का नाम।

खदेड़ना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खदेरना'।

खदेरना—क्रि० स० [हिं० खेदना] दूर करना। हटाना भगाना। उ०—भाजत हम सब तुरत खदेरत आवत माली।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३९।

खद्दर—संज्ञा पुं० [देश०] हाथ का काता और हाथ करघे पर बीना हुआ वस्त्र। खादी।

खद्योत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुगनूँ। २. सूर्य।

खद्योतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। १. एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल बहुत विषैला होता है।

खद्योतन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

खधूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का अग्निवाण। २. एक प्रकार का गंधद्रव्य [को०]।

खन(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० क्षण, प्रा० खन] १. क्षण। लहमा। २. समय। वक्त। ३. तुरंत। तत्काल। उ०—चेरी धाय सुनत खन धाई। हीरामन लै आय बोलाई।—जायसी (शब्द०)।

खन²†—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] (मकान का) खंड। मरातिब। तल्ला। मंजिल। जैसे,—चार खन का मकान। उ०—चार खन की अटारी के।—लक्ष्मण (शब्द०) (ख) सत्त खनै आवास।—पृ० रा०, १।४४। २. हिस्सा विभाग।

खन³†—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का वृक्ष जो 'खोर' की तरह का होता है। २. एक प्रकार का कपड़ा जिससे महाराष्ट्र में स्त्रियाँ चोली बनाती हैं।

खन⁴—संज्ञा स्त्री० [अनु०] रुपये, पैसे, चूड़ियों आदि के बजने की आवाज। खनक।

खनक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूहा। मूसा। २. सेंध लगानेवाला चोर। सेंधिया चोर ३. जमीन या खान खोदनेवाला आदमी। ४. वह स्थान जहाँ सोना आदि उत्पन्न होता हो ५. भूतत्वशास्त्र जाननेवाला व्यक्ति।

खनक²—संज्ञा स्त्री० [खन से अनु०] खनकाने की क्रिया या भाव। खनखनाहट।

खनक³—वि० जमीन खोदने या खननेवाला। उ०—हे खनक, किए जा कूप खनन, तू यहाँ बीच में ही न हार।—दैनिकी पृ० ३०।

खनकना—क्रि० अ० [अनु०] 'खन' 'खन' शब्द होना। खनखनाना। उ०—झाँझरियाँ झनकैंगी खरी, खनकैंगी चुरी तन कों तन तोरे।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १२१।

खनकाना—क्रि० स० [अनु०] 'खन' 'खन' शब्द उत्पन्न करना।

खनकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झनकार। खनक। उ०—खनकार भरी काँपती हुई तान हृदय खुभने लगी।—आँधी, पृ० ६१।

खनखजूरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कनखजूरा'।

खनखना—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह जिससे 'खन' 'खन' शब्द उत्पन्न हो। २. † एक प्रकार का झुनझुना।

खनखनाना¹—क्रि० अ० [अनु०] 'खनखन' शब्द होना। खनकना।

खनखनाना[२]—क्रि० स० 'खन' 'खन' शब्द उत्पन्न करना। जैसे—रुपया खनखनाना।

खनधक ⓤ—संज्ञा पुं० [अ० खदक] दे० 'खदक'। उ०—खनधक जल कन लै समीर सुभ लूह बनावत।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० १०।

खनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोदने खनने का कार्य। उ०—हे खनक किए जा कूप कनन।—दंनिकी, पृ० ३०। २. गाड़ना या दबाना (को०)।

खननहारीⓤ—वि० [सं० खनन + हिं० हारी (प्रत्य०)] १. खोदनेवाली। २. नाश करनेवाली। उ०—सो नंदकुल की खननहरी वृद्धि नित मो मैं रहै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १५७।

खननाⓤ†—क्रि० स० [सं० खनन] १. खोदना। उ०—(क) कीन्हेसि लोवा इंदुर चाटी। कीन्हेसि बहुत रहैं खनि माटी।—जायसी (शब्द०)। (ख) कूप खनि कत जाय रे नर जरत भुवन बुझाय। सूर हरि को भजन करि ले जन्म मरण नसाय।—सूर (शब्द०)। २. कोड़ना।

खनयित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] खंती नामक औजार।

खनवाना—क्रि० स० [हिं० खनना] खनना का प्रेरणार्थ रूप। किसी को खनन के काम में प्रवृत्त करना।

खनवारा†—वि० [हिं० खन + वारा] खनकनेवाला। खन् खन् करनेवाला। उ०—नख के गढ़ाइ दऊ गोखरू, खनवारे की छल्ला छाप।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८७७।

खनहन—वि० [सं० क्षीण + हीन] १. दुबला पतला। कमजोर। २. जिसमें भद्दापन न हो। खूबसूरत। सुंदर। जैसे,—खनहन मुखड़ा।

खनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खनना] १. खनने के काम की मजदूरी। २. खनने की स्थिति या क्रिया।

खनाना—क्रि० स० [हिं० खनना का प्रे० रूप] दे० 'खनवाना'। उ०—जाय खनावहु सागर साता।—कबीर सा०, पृ० १७।

खनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रत्नों की खान। २. गुफा। कंदरा। ३. गर्त। गड्ढा (को०)।

खनिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खनक' (को०)।

खनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालाब (को०)।

खनिज—वि० [सं०] खान से खोदकर निकाला हुआ। जैसे, खनिज पदार्थ।

खनिता—संज्ञा पुं० [सं०] खनने या खोदनेवाला व्यक्ति (को०)।

खनित्र, खनित्रक—संज्ञा पुं० [सं०] खंता नाम का खोदने का औजार। गैंती।

खनित्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा खंता या गैंती (को०)।

खनिभोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या उपनिवेश जिसमें धातुओं की खानें हों और जहाँ के निवासियों का निर्वाह खानों में काम करने से ही होता हो।

विशेष—कौटिल्य ने साधारणतः 'खनिभोग' की अपेक्षा धान्यपूर्ण प्रदेश को अच्छा कहा है, क्योंकि खानों से केवल कोश की वृद्धि होती है और धान्य से कोश और भांडार दोनों पूर्ण होते हैं। पर यदि प्रदेश बहुत मूल्यवान् पदार्थों की खानोंवाला हो तो वही अच्छा है।

खप—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी चोखी या पतली धारदार वस्तु का शरीर या गीली मिट्टी आदि में घुसने का शब्द। उ०—उन्होंने सूई में दवा भरी और निश्चित स्थान पर खप से सूई मारी।—विन्नत०, पृ० १६।

खपियाना†—क्रि० स० [हिं० खान या खाली] १. रिक्त करना। खाली करना।‡ २. खनना। खोदना।

खनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खनि' (को०)।

खनोनाⓤ—क्रि० स० [हिं० खनना] खनना। खोदना। उ०—रावे कत निकुंज ठाढ़ी रोवति। इंदु ज्योति मुखारविंद की चकित चहूँ दिशि जोवति। द्रुम शाखा अवलंब बेलि गहि नख सों भूमि खनोवति। मुकुलित कच तन घन की ओट ह्वै अँसुवन चीर निचोवति। सूरदास प्रभु तजी गर्व ते भये प्रेम गति गोवति।—सूर (शब्द०)।

खन्ना—संज्ञा पुं० [सं० खनन = काटना] १. चारा काटने का स्थान। २. खत्रियों की एक उपाधि।

खपचा—संज्ञा पुं० [तु० कमचा] १. बाँस की पटरी या लकड़ी का पटरा। उ०—ऐसा पहलवान था कि बस मैं क्या कहूँ। इधर देखो यह खपचे (हाथ से दिखाकर) यह कल्ला ठल्ला।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७१। २. लकड़ी की कलछी या पलटा।

खपची—संज्ञा स्त्री० [तु० कमची] १. बाँस की पतली तीली। कमठी। २. कबाब भूनने की सींख या सलाई। ३. बाँस की वह पतली पटरी जिससे डाक्टर या जर्राह टूटा हुआ अंग बाँधते हैं। ४. कोड़। गोद।

क्रि० प्र०—भरना = आलिंगन करना।

खपच्ची[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपची] दे० 'खपची'। उ०—बाँस की खपच्चियों पर लगे गन्ने के टुकड़ों पर मुनाफाखोरी बंद करो।—अभिशप्त, पृ० ५३।

खपच्ची[२]—वि० बाँस की पतली खपच्ची सा अर्थात्—दुबला पतला। दुर्बल।

खपट[१]—वि० [हिं० खपड़ा] खपड़े की तरह शुष्क। अत्यधिक वृद्ध। उ०—हीरा गया तो देखा कि अब्बासी और बूढ़ी खपट मुगलानी में गलखप हो रही है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१४।

खपटा[२]‡—संज्ञा पुं० [हिं० खपड़ा] दे० 'खपड़ा'।

खपटी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़ा] १. छोटा खपड़ा। २. तख्ते के छोटे छोटे टुकड़े जो कड़ियों के बीच में आड़ बंदी के लिये जड़े जाते हैं।

खपड़झारा†—संज्ञा पुं० [हिं० खपड + झारना] किसानों की एक रसम।

विशेष—प्रति वर्ष पहले पहल ऊख पेरने के समय यह रसम की जाती है। इसमें ब्राह्मणों और गरीबों को नया रस पिलाया जाता है और थोड़ा गुड़ बनाकर देवता के निमित्त प्रसाद बाँटा जाता है।

खपड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर, प्रा० खप्पर] १. मिट्टी का पका हुआ टुकड़ा जो मकान की छाजन पर रखने के काम आता है।
विशेष—यह प्रायः दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का खपड़ा चिपटा और चौकोर होता है, जिसे 'थपुआ' या 'पटरी' कहते हैं और दूसरे प्रकार का खपड़ा नाली के आकार का और लंबा होता है जिसे 'नरिया' कहते हैं। 'थपुआ' खपड़ा छाजन पर बिछाकर उनकी संधियों पर 'नरिया' खपड़ा औंधा कर रख देते हैं। भिन्न भिन्न स्थानों के खपड़ों के आकार प्रकार आदि में थोड़ा बहुत भेद होता है। नए ढंग के अँगरेजी खपड़े केवल थपुआ के आकार के होते हैं और उनमें नरिया की आवश्यकता नहीं होती।
क्रि० प्र०—छाना।
२. मिट्टी के घड़े के नीचे का आधा भाग जो गोल होता है। ३. मिट्टी का वह बरतन जिसमें भिखमंगे भीख माँगते हैं। खप्पर। ४. मिट्टी के टूटे हुए बरतन का टुकड़ा। ठीकरा। ५. कछुए की पीठ पर का कड़ा ढक्कन।

खपड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० क्षुरपत्र] वह तीर जिसका फल चौड़ा हो।

खपड़ा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] गेहूँ में होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

खपड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्पर] १. वह मिट्टी की हँड़िया जिसमें भड़भूँजे दाना भूनते हैं। २. नाँद की तरह का मिट्टी का छोटा बरतन। ३. दे० 'खोपड़ी'।

खपड़ैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़ा+ऐल (प्रत्य०)] दे० 'खपरैल'।

खपड़ोइया†—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्पर, मरा० खोपरा] नारियल की गिरी के ऊपर रहनेवाला कड़ा आवरण या छिलका।

खपड़ोई†—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्पर] १. दे० 'खोपड़ी'। २. 'खपड़ोइया'।

खपत—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपना] १. समावेश। समाई। गुंजाइश। २. माल की कटती या बिक्री। ३. खर्च। व्यय। ४. खपने या खपाने की क्रिया या स्थिति।

खपति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० √क्षप्] नाश। विनाश। क्षय। उ०—रक्खै जु साइ मिट्टै कवन, निमख माँहि उतपति खपति।—पृ० रा०, १०।३४।

खपती—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपना] दे० 'खपत'।

खपना[1]—क्रि० अ० [सं० क्षपण] [संज्ञा खपत] १. किसी प्रकार व्यय होना। काम में आना। लगना। कटना। जैसे—बाजार में माल खपना। व्याह में रुपया खपना। पूरी में घी खपना। २. चल जाना। गुजारा होना। समाई होना। निभना। जैसे—बहुत से अच्छे रुपयों में दो चार बुरे रुपए भी खप जाते हैं। ३. तंग होना। दिक होना। ४. क्षय होना। समाप्त होना। नष्ट होना। उ०—जो खेप भरे तू जाता है, वह खेप मियाँ मत जान अपनी। अब कोई घड़ी पल साइत में यह खेप बदन की है खपनी।—नजीर (शब्द०)। ५. करना। मृत्यु प्राप्त करना। जैसे—उस युद्ध में कई हजार आदमी खप गए।
संयो० क्रि०—जाना।

खपर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] दे० 'खप्पर'। उ०—बिरह बैठ उर खपर परोवा। भीजा नैन नीर जत रोवा।—चित्रा०, पृ० १७४। (ख) खपर हाथ मम भुजा अनंता।—कबीर सा०, पृ० २७४।

खपरट—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खपड़ा'।

खपरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खपड़ा'।

खपराग—संज्ञा पुं० [सं०] तम। अंधकार [को०]।

खपराली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्पर] खप्पर धारण करनेवाली जोगिनी, डाकिनी आदि। उ०—चौसठ लख खपराली हड़ हड़ हड़ हसे।—नट०, पृ० १६६।

खपरिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्परी] भूरे रंग का एक खनिज पदार्थ।
विशेष—वैद्यक में इसको जस्ते का उपधातु और क्षय, ज्वर, विष और कुष्ठ आदि का दूर करनेवाला माना गया है। यह आँख के अंजन और सुरमे आदि में भी पड़ता है। फारस आदि स्थानों में नकली खपरिया भी बनती है।
पर्या०—चक्षुष्य। दर्विका। रक्षक।

खपरिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़ा का अल्पा०] १. छोटा खपड़ा। २. एक प्रकार का कीड़ा जो चने की फसल में लगता है।

खपरिया[3]—संज्ञा पुं० [सं० कार्पटिक; प्रा० कप्पडिय] हाथ में खप्पर रखनेवाले भिक्षुकों का एक वर्ग जिसे 'खेवरा' भी कहते हैं।

खपरैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़ा+ऐल (प्रत्य०)] १. खपड़े की छाई हुई छत।
मुहा०—खपरैल डालना=खपड़े की छत छाना।
२. वह मकान जिसकी छत खपड़े से छाई हो। ३. खाड़ा।

खपरोही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोपड़ी] दे० 'खपड़ोई'। उ०—उसके मुर्दे के खपरोही में अपनी शुद्धि के लिये भीख माँगे।—श्यामा०, पृ० १०।

खपली—संज्ञा पुं० [हिं० खपड़ा] एक प्रकार का गेहूँ।
विशेष—यह बंबई, सिंध और मैसूर आदि प्रांतों में पैदा होता है और इसके दानों को भूसी से अलग करने में बड़ी कठिनाई होती है। इसे कहीं कहीं 'गोधी' या 'कफली' भी कहते हैं।

खपाच—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपची] १. रेशमवालों का एक औजार जो बाँस की दो खपचियों को तले ऊपर बाँधकर बनाया जाता है। २. दे० 'खपची'।

खपाची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खपची'।

खपाट—संज्ञा पुं० [हिं० खपची या कपाट] धौंकनी के मुँह पर लगे लकड़ी के छोटे डंडे, जिनके सहारे वह उठाई दबाई जाती है।

खपाना—क्रि० स० [सं० क्षपन, हिं० खपना का प्रे० रूप] १. किसी प्रकार का व्यय करना। काम में लाना। लगाना।
मुहा०—माथा या सिर खपाना=सिरपच्ची करना। मस्तिष्क से बहुत अधिक या व्यर्थ काम लेना। हैरान होना।
२. निर्वाह करना। निभाना। ३. नष्ट करना। समाप्त करना। उ०—(क) मनों मेघनायक ऋतु पावस बाण वृष्टि करि सैन खपायो।—सूर (शब्द०)। (ख) भूषण शिवाजी गाजी खाग सों खपाए खल खाने खाने खलन के खेरे भये खीस

हैं।—भूपण (शब्द०)। ४.तंग करना। दिक करना। ५. बेचना। विक्रय करना। ६. मार डालना। खत्म करना। उ०—सिरसवाह लघु मीर, वीर तुम वेग खपावहु।—प० रासो० पृ० ५६।

खपुग्रा[1]†—वि० [हिं० खपना = नष्ट होना] डरपोक। भगोड़ा। कायर। उ०—तुलसी करि केहरि नाद भिरे भट खाग खपे खपुग्रा करके। नख दंतन सों भुजदंड विहंडत, मुंड सों मुंड परे भरके।—तुलसी (शब्द०)।

खपुग्रा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० खपची] लकड़ी की वह खपची जो किसी दरवाजे के नीचे उसकी चूल की छेद में दृढ़ बैठाने के लिये लगाई या ठोंकी जाती है।

खपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १.गंधर्व मंडल जो कभी कभी ग्राकाश में उदय होता है ग्रौर जिसका उदय होने से ग्रनेक शुभाशुभ फल माने जाते हैं। २.पुराणानुसार एक नगर जो ग्राकाश में है ग्रौर जिसे पुलोमा ग्रौर कालका नाम की दैत्य कन्याग्रों के प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने बनाया था। ३.राजा हरिश्चंद्र की पुरी जो ग्राकाश में स्थिर मानी जाती है ४.सुपारी का पेड़ ५. भद्रमोथा। भद्रमुस्तक। ६. बाघनख। बघनख।

खपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्राकाशकुसुम। उ०—कोउ साहिब खपुष्प सम नाम धरचो मनमानो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१५। २.ग्रसंभव बात। ग्रनहोनी घटना।

खपूवा†—संज्ञा पुं० [सं० क्षप्, हिं० खप] खड्ग। खंग। उ०—ग्राप ग्रकेले द्वार पर खपूवा बाँधि के ग्रलीखान बैठ्यो।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ३०४।

खप्त†—संज्ञा पुं० [ग्र० खब्त] दे० 'खब्त'। उ०—दुनिया के स्वप्न ग्रौर खप्त बताकर उड़ा देते हैं।—वो दुनिया, पृ० १६८।

खप्पड़—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] दे० 'खप्पर'।

खप्पर—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] १.तसले के ग्राकार का मिट्टी का पात्र। २.काली देवी का वह पात्र जिसमें वह रुधिरपान करती है।

मुहा०—खप्पर भरना = खप्पर में मदिरा ग्रादि भरकर देवी पर चढ़ाना।

३.भिक्षापात्र। ४. खोपड़ी।

खफकान—संज्ञा पुं० [ग्र० खफ़कान] १. हृदय की धड़कन का रोग। हृत्कंप। २. २. वहशत। पागलपन [को०]।

खफकानी—वि० [ग्र० खफ़कानी] १.हृद्रोगी। हृदयरोगवाला। २.घबड़ानेवाला। वहशी [को०]।

खफगी—संज्ञा स्त्री० [फा० खफ़गी] १.ग्रप्रसन्नता। नाराजगी। उ०—सब जग से बोलो हो हमसे इतनी खफगी? हाय! उ०—कुंकुम, पृ० ६०। २. क्रोध। कोप।

खफा—वि० [ग्र० खफ़ा] १. ग्रप्रसन्न। नाराज। नाखुश। उ०— ए सनम तू ही मेरी शक्ल से रहता है खफा है ग्रजल भी तो खफा।—श्यामा०, पृ० १०२। २. क्रुद्ध। रुष्ट।

खफी—वि० [ग्र० खफ़ी] छिपा हुग्रा। गुप्त। उ०—फरामोश कर ग्राप उस जोक में खफी जिक्र ग्रो ही के जानो तुमें।—दक्खिनी०, पृ० २०८।

खफीफ—वि० [ग्र० खफ़ीफ] १.ग्रल्प। थोड़ा। कम। २. हलका ३. तुच्छ। क्षुद्र। ४.लज्जित। शर्मिंदा। ५.एक छंद या वह्न [को०]।

खफीफा—वि० स्त्री० [ग्र० खफ़ीफ़ह] एक दीवानी न्यायालय जिसमें लेने देने के छोटे वाद या केस सुने जाते हैं। २.इसकी ग्रपील नहीं होती। २.बदचलन या तुच्छ स्त्री।

खफ्फा—संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इस दाँव में विपक्षी की गरदन पर बाएँ हाथ से थपकी देकर तुरंत ग्रपने दाहिने हाथ में उसे इस प्रकार फाँस लेते हैं, जिसमें ग्रपनी कलाई उसके गले पर रहे; ग्रौर तब ग्रपने बाएँ हाथ से उसका दाहिना पहुँचा पकड़कर थोड़ा ऊपर उठाते या झटका देते हैं जिससे विपक्षी गिर पड़ता है।

खबर—संज्ञा स्त्री० [ग्र० खबर] [बहुव० ग्रखबार] १. समाचार। वृत्तांत। हाल।

क्रि० प्र०—ग्राना।—जाना।—पहुँचना। —पाना। —भेजना। मिलना।—लाना।—सुनना।

मुहा०—खबर उड़ना = चर्चा फैलना। ग्रफवाह होना। खबर फैलना = खबर उड़ना। खबर लेना = (१) समाचार जानना। वृत्तांत समझना। (२) दीन दशा पर ध्यान देना। सहायता करना या सहानुभूति दिखलाना। जैसे,—ग्राप तो कभी हमारी खबर ही नहीं लेते। (३) दंडित करना। सजा देना। जैसे,—ग्राज उनकी खूब खबर ली गई।

२. सूचना। ज्ञान। जानकारी। जैसे—(क) हमें क्या खबर कि ग्राप ग्राए हुए हैं। (ख) उन्हें इन बातों की क्या खबर है।

क्रि० प्र०—रखना।—होना।

३.भेजा हुग्रा समाचार। संदेसा।

क्रि० प्र०—ग्राना।—जाना।—भेजना।—मिलना ग्रादि।

४. चेत। सुधि। संज्ञा। जैसे,—उन्हें ग्रपने तन की भी खबर नहीं रहती।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

पता। खोज।

क्रि० प्र०—मिलना।—लगना।

६. मुहम्मद साहब का प्रवचन। हदीस (को०)।

खबरगीर[1]वि०—[फा० खबरगीर] १. खबर लेनेवाला। देख रेख करनेवाला। २. रक्षक। पालक।

खबरगीर[2]—संज्ञा पुं० जानकारी लेनेवाला व्यक्ति। गुप्चर।

खबरगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा० खबरगीरी] १. देखरेख। देखभाल। चौकसी। २. सहानुभूति ग्रौर सहायता। ३. पालन पोषण (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

खबरदार—वि० [फा० खबरदार] [संज्ञा खबरदारी] होशियार। सजग। चैतन्य। सावधान। उ०—गफलत न जरा भी हो खबरदार खबरदार।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२२।

खबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा० खबरदारी] सावधानी। होशियारी।

खबरदिहंदा—वि० [फा० खबर + दिहंदह] सूचना या खबर देनेवाला। सूचक [को०]।

खबरनवीस—वि० [फ़ा० खबरनवीस] सूचना या समाचार ले जाने या लिखनेवाला। उ०—समाचार देने और आदेश लेने के लिये प्रधान जासूस सरदार और खबरनवीस हाजिर हो गए।—मृग०, पृ० ७५।

खबरनवीसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खबरनवीसी] दे० 'अखबारनवीसी'। उ०— किसने मारी हाय हाय। खबरनवीसी हाय हाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६७८।

खबररसाँ- वि० [फ़ा०] संदेशवाहक। पत्रवाहक। सूचक [को०]।

खबरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० खबर] दे० खबर'। उ०—भूप द्वार तिन खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लीन बोलाई।—तुलसी (शब्द०)।

खबरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० खबर+हिं० इया (प्रत्य०)] दे० खबर'। उ०—पूछत चली खबरिया, मितवा तीर। हरषित अविहि तिरियवा, पहिरत चीर।—रहीम (शब्द०)।

खबरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० खबर+ई] दूत। संदेशवाहक।—(डिं०)

खबाष्प—संज्ञा पुं० [सं०] ओस। अवश्याय [को०]।

खबीस¹—संज्ञा पुं० [अ० खबीस] [भाव-खबासत; खबीसी] १. वह जो दुष्ट और भयंकर हो। भूत प्रेत आदि (को०)।

खबीस²—वि० १. अपवित्र। नापाक। गंदा। २. दुष्ट। फरेबी [को०]

खबीसन—संज्ञा स्त्री० [अ० खबीस] दुष्ट या फरेबी औरत। उ०— कुछ दिन हुए एक खबीसन आई थी, क्या जाने कौन साहब उसके मालिक थे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३५७।

खबीसी—संज्ञा स्त्री० [अ० खबीसी] दुष्टता। बदमाशी। फरेब। उ०—खुदी खबीसी छाँड सबी शद साधू खरत भी है।—कबीर सा०, पृ० ८८७। २. खबास औरत।

खब्त—संज्ञा पुं० [अ० खब्त] [वि० खब्ती] पागलपन। सनक। झक्क।

मुहा०—खब्त सवार होना = सनक चढ़ना। पागलपन रहना।

यौ०—खब्तुल हवास = खब्ती। विकृत बुद्धिवाला। पागल।

खब्ती—वि० [अ० खब्ती] जिसे खब्त हो। सनकी। सोदाई। पागल।

खब्बर, खब्बल— संज्ञा पुं० [देश०] दूब नाम की घास।

खब्बा—वि० [पं०] १. दाहिने का उलटा। बायाँ। २. बाएँ हाथ से काम करनेवाला।

खब्बाज—वि० [अ० खब्बाज] रोटी पकानेवाला। नानबाई [को०]।

खब्भड़ —वि० [अ० खब्बास या हिं० खाभड़] बुड्ढा और दुर्बल। दुबला पतला। उ०—वह गाय तो बिलकुल खब्भड़ हो गई है।

खभड़ना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खभरना'।

खभरना —क्रि० स० [हिं० भरना] १. मिश्रित करना। मिलाना। जैसे—गेहूँ के आटे में जौ का आटा खभरना। २. उथल पुथल मचाना। उ०—ओड़ि अदिन के ढाल ढकेला। मलों संरघा बलकरत वु देला। खभरि खेत तहँ परे बिचलाओ। सूबन के उर साल सलाया।—लाल (शब्द०)।

खभरुआ—वि० [हिं० खभरना] पुंश्चली स्त्री से उत्पन्न (बालक)। छिनाल का (लड़का)।

खभार— संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खँभार' उ०—जो जाकी ताकी सरन, ताको ताहि खभार।—दरिया० बानी, पृ० २१।

खभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह। नक्षत्र [को०]।

खभ्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० खभ्रान्ति] श्येन या चील की जाति का पक्षी [को०]।

खम¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० खम] १. टेढ़ापन। टेढ़ाई। कज। झुकाव।

मुहा०—खम खाना = (१) मुड़ना। झुकना। दबना। उ०—सूदन समर साहि सैन तून तून गनी हनी देह गोलिन न खाई खेत खम है।—सूदन (शब्द०)। (२) हारना। पराजित होना। नीचा देखना। उ० –पहर रात भर मार मचाई। मुरक्यो तुरक उहाँ खम खाई।—लाल (शब्द०)। खम ठोंकना = (१) लड़ने के लिये ताल ठोंकना। उ०—आए तहँ जहँ खल छलकारी। फेंट बाँधि खम ठोंकि खरारी।—लल्लू (शब्द०)। (२) दृढ़ता दिखलाना। खम ठोंककर = (१) ताल ठोंककर। (२) दृढ़ता या निश्चयपूर्वक। जोर देकर। जैसे—'मैं खम ठोंककर यह बात कह सकता हूँ'। खम बजाना या मारना = दे० 'खम ठोंकना'।

यौ०—खमदम। खमदार।

२ गाने के बीच बीच में वह विश्राम जो लय में लोच या लचक लाने के लिये किया जाता है।

क्रि० प्र०—लेना।

खम²—वि० [सं० क्षम, प्रा० खम] १. समर्थ शक्तिमान्। २. झुका हुआ। ३. वक्र। टेढ़ा।

खमकना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] खम खम शब्द करना। उ०—खमकत बीर करि करि सुचोख। लमकंत तुरंगम पाइ पोष।—सुजान०, पृ० ३८।

खमकरा†—संज्ञा पुं० [देश०] मकड़ा नाम की घास जो पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है। वि० दे० 'मकड़ा'।

खमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। रवि [को०]।

खमणी(पु)‡—वि० [सं० क्षम प्रा० खम + णी(प्रत्य०)] क्षमावती। क्षमाशीला। उ०—नमणी खमणी बहुगुणी, सुकोमली सु सुकच्छ। गोरी गंगा नीर ज्यूँ मन गरबी तन अच्छ।—ढोला०, दू० ४५२।

खमदम—संज्ञा पुं० [फ़ा० खम + दम] पुरुषार्थ। साहस।

खमदार—वि० [फ़ा० खमदार] १. झुका हुआ। टेढ़ा। उ०—वही दिलदार खुश आता है जो होवे बाँका। खूब लगती नहीं वह तेग जो खमदार नहीं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २०। १. पेंचदार। घुमावदार। घुँघराला। उ०—वह जुल्फ मेरे महरु खमदार कहाँ है।—कबीर मं०, पृ० ३२४।

खमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का मध्य भाग। सिर के ऊपर का केंद्रबिंदु [को०]।

खमना—क्रि० स० [सं० क्षम्, प्रा० खम] सहन करना। क्षमा

करना। उ०—न खमैं ताप हजार नर, जुदो जुदो डर जाग। —बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २५।

खमर ग्रालू‡—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कंद। उ०—नहीं तो कोठी के जंगल से 'खमर ग्रालू' उखाड़ लाएँगी।—मैला०, पृ० १३।

खमसना‡—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खमरना'।

खमसा¹—संज्ञा पुं० [ग्र० खमसह् = पाँच संबंधी] १. एक प्रकार की गजल जिसके प्रत्येक बंद में पाँच चरण होते हैं। २. संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें पाँच ग्राघात ग्रौर तीन खाली होते हैं। इसका बोल यह है—

+ ० १ २ ० ३ ४ ० +
धा, धा, केटे, ताग, तेरे केटे, तागर, देत, धा।

४. पाँचों उँगलियाँ (को०)।

खमसा²—वि० पाँच संबंधी। पाँच से संबंध रखनेवाला [को०]।

खमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा, प्रा० खमा] दे० 'क्षमा'। उ०—दौरि राज प्रथिराज सु ग्रायो। खमा खमा ग्रखैं उच्चायो।—पृ० रा० ४।४।

खमाच—संज्ञा स्त्री० [हिं० खम्माच] दे० 'खम्माच'।

खमाल‡¹—संज्ञा पुं० [देश०] खजूर के हरे फल जो पच्छिम में भेड़, बकरी ग्रौर गायों को खिलाए जाते हैं।

खमाल²—[ग्र० हम्माल] जहाज में ग्रसबाब की लदाई। लदनी।

खमियाजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खम्याजह्] १. ग्रँगड़ाई। २. जँभाई। जृंभा। ३. एक दंड जिसमें ग्रपराधी को शिकंजे में कस दिया जाता था। ४. करनी का फल। बदला ५. नतीजा। परिणाम। ६. कष्ट। दुःख। ७. दंड। सजा [को०]।

मुहा०—खमियाजा उठाना = करनी का फल पाना। दंड पाना।

खमीदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खमीदगी] वक्रता। टेढ़ापन [को०]।

खमीदा—वि० [फ़ा० खमीदह्] १. झुका हुग्रा। खमदार। २ वक्र। टेढ़ा [को०]।

खमीर—संज्ञा पुं० [ग्र० खमीर] १. गूँधे हुए ग्राटे का सड़ाव।

क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।

मुहा०—खमीर बिगड़ना = गूँधे हुए ग्राटे का ग्रधिक सड़ने के कारण बहुत खट्टा हो जाना। खमीर खट्टा होना = दे० 'खमीर बिगड़ना'।

२. गूँधकर उठाया हुग्रा ग्राटा। माया। ३. कटहल, ग्रनन्नास ग्रादि को सड़ाकर तैयार किया गया एक पदार्थ जो तंबाकू में उसे सुगंधित करने के लिये डाला जाता है। ४. स्वभाव। प्रकृति।

मुहा०—खमीर बिगड़ना = स्वभाव या व्यवहार ग्रादि में भेद पड़ना।

खमीरा¹—वि० [फ़ा० खमीरह्] [स्त्री० खमीरी] खमीर उठाकर बनाया या खमीर मिलाया हुग्रा। खमीरवाला। जैसे,—खमीरी रोटी। खमीरा तंबाकू।

खमीरा²—संज्ञा पुं० १. चीनी या शीरे में पकाकर बनाई हुई ग्रोषधि। जैसे, खमीरा बनफशा। २. पीने का सुगंधित तंबाकू [को०]।

खमीरी—वि० स्त्री० [फ़ा० खमीर] दे० 'खमीरा'।

खमीलन—संज्ञा पुं० [सं०] तंद्रा। झपकी [को०]।

खमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। शंकर। २. दिव्य शरीर या दिव्य पुरुष [को०]।

खमूली—संज्ञा [सं०] जलकुंभी लता [को०]।

खमो—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा सदाबहार पेड़।

विशेष—यह भारतवर्ष, बरमा ग्रौर ग्रंडमान टापू में समुद्र के मटियाले किनारों ग्रौर दरारों में उत्पन्न होता है। इसके छिलके में सज्जी का ग्रंश ग्रधिक होता है ग्रौर यह चमड़ा सिझाने के काम में ग्राता है। इससे एक प्रकार का रंग निकलता है जिसमें सूती कपड़े रँगे जाते हैं। इसके फल खाने में मीठे होते हैं ग्रौर खाए जाते हैं। इसकी डालियों से सूत की तरह पतली जटा निकलती है जिससे एक प्रकार का नमक बनता है। इसकी लकड़ी भी ग्रच्छी होती है, पर बहुत कम काम में ग्राती है। इसे भार ग्रौर राई भी कहते हैं।

खमोश—वि० [फ़ा० खमोश] दे० 'खामोश'।

खमोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खामोशी] दे० 'खामोशी'।

खमोस(पु)—वि० [फ़ा० खमोश] दे० 'खामोश'। उ०—हौं को करै खमोस होस ना तन को रखै। गगन गुफा के बीच पियाला प्रेम का चाखै।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० ६।

खम्माच—संज्ञा स्त्री० [हिं० खंभावती] मालकोस राग की दूसरी रागिनी।

विशेष—यह षाड़व जाति की रागिनी है ग्रौर रात के दूसरे पहर की पिछली घड़ी में गाई जाती है।

खम्माच कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० खम्माच + कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता है।

खम्मांच टोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खंभावती + टोरी] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो खंमावती ग्रौर टोरी से मिलकर बनती है।

खम्हाँ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० खंभा] दे० 'खंभा'। उ०—एही फिरिश्ता चारि कहाया। एही चारि खम्हाँ तन लाया।—सं० दरिया, पृ० ३१।

खम्माची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खम्माच'।

खयंग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] दे० 'खड्ग'। उ०—ऊमर ऊतावलि करइ पलाणियाँ पवंग। खुरसाणी सूधा खयँग चढ़िया दल चतुरंग।—ढोला०, दू० ६४०।

खय(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षय] १. विनाश। क्षय। २. प्रलय।

खया(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध] भुजमूल। खवा। उ०—कंदुक केलि कुशल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये।—तुलसी (शब्द०)।

खयानत—संज्ञा स्त्री० [ग्र०] १. धरोहर रखी हुई वस्तु न देना ग्रथवा कम देना। गबन। २ चोरी या बेईमानी।

खयाल—संज्ञा पुं० [ग्र० खयाल] दे० 'खयाल'। उ०—मैंने छोटी बड़ी

भेड़ का खयाल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ६६६।

खयालात—संज्ञा पुं० [अ० खयाल का बहुव०] अनेक विचार। ख्याल या विचारधारा। उ०—खयालात अपने निगाहें बिरानी, किसी को न मालूम अपना पराया।—हंस०, पृ० ४६।

खयाली—वि० [अ० खयाल] दे० 'ख्याली'।

मुहा०—खयाली पुलाव पकाना=दे० 'ख्याली पुलाव पकाना'।

खय्याम—संज्ञा पुं० [अ० खय्याम] फारसी के मधुवादी कवि अर्थात् मधुप्रेमी, शराब पीनेवाले व्यक्ति। उ०—सिर्फ खय्यामों की आवश्यकता है साकी हजारों सुराही लिए यहाँ तयार मिलेंगे।—किन्नर०, पृ० ३७।

खरंजा—संज्ञा पुं० [देश०] १. वह ईंट जो बहुत अधिक पकने के कारण जल गई हो। झाँवाँ। २. दे० 'खड़ंजा'।

खर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. गधा। २. खच्चर। ३. बगला। ४ कौवा। ५. एक राक्षस जो रावण का भाई था और पंचवटी में रामचंद्र के हाथ से मारा गया था। ६. तृण। तिनका। घास।

यौ०—खर कतवार=दे० 'खरपतवार'। उ०—गा सब जनम अबिरथा मोरा। कत मैं खर कतवार बटोरा।—चित्रा०, पृ० १३०। खरपतवार=फूड़ा करकट।

७. ६० संवत्सरों में से २५वाँ संवत्। इस वर्ष में बहुत उपद्रव होते हैं। ८. प्रलंबासुर का एक नाम। ९. छप्पय छंद का एक भेद। १०. एक चौकोर वेदी जिसपर यज्ञों में यज्ञपात्र रखे जाते हैं। ११. कंक। १२. कुरर पक्षी। १३. सूर्य का पार्श्वचर। १४. एक प्रकार का तृण या घास जो पंजाब, संयुक्त प्रांत और मध्य प्रदेश में होती है और जो घोड़ों के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है। १५. कुत्ता। श्वान (अनेकार्थ०)।

खर²—वि० [सं०] १. कड़ा। सख्त। २. तेज। तीक्ष्ण। ३. घना। मोटा। हानिकर। अमांगलिक। जैसे, खर मास। ५. तेज धार का। ६. आड़ा। तिरछा।

खर³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खराई'।

मुहा०—खर मारना=दे० 'खराई मारना'।

खर⁴†—संज्ञा पुं० [सं० खर=तेज] करारा। कुरकुरा।

मुहा०—(घी) खर करना=(घी) गरम करके तपाना।

खरक¹—संज्ञा पुं० [सं० खडक=स्थाणु] १. जंगलों आदि में लकड़ियों के खंभे गाड़कर और उनमें आड़ी बल्लियाँ बाँधकर घेरा और छाया हुआ स्थान जिनमें गौएँ रखी जाती हैं। इसे कहीं कहीं डाढ़ा भी कहते हैं। उ०—बछरा सखी एक भग्यो खरका तें महँ तोहि दौरि पछेरी कियो।—सेवक (शब्द०)। २. पशुओं के चरने का स्थान। ३. चीरे हुए पतले बाँसों को बाँधकर बनाया हुआ किवाड़ जिसे गरीब लोग अपने घरों में लगाते हैं। टट्टर।

खरक²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खटक' या 'खड़क'।

खरकता—संज्ञा पुं० [देश०] लटोरे की जाति का एक पक्षी।

खरकना¹(पु)—क्रि० अ० [अनु०] खर खर शब्द होना। खरखराना। खड़कना। उ०—बारहिं बार बिलोकत द्वारहिं, चौंकि परे तिनके खरके हूँ।—मतिराम (शब्द०)।

खरकना²—क्रि० अ० [हिं० खर] १. फाँस चुभने के कारण दर्द होना। फाँस चुभने का दर्द होना। ३. खड़कना। सरकना। चल देना। उ०—तुलसी करि केहरि नाद भिरे भट खग खगे, खपुआ खरके।—तुलसी (शब्द०)।

खरकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। दिनकर (को०)।

खरकवट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर=तिनका या आड़ा] दो अंगुल चौड़ी एक चिकनी पटरी जो करघे में दो खूँटियों पर अटकाकर आड़ी रखी जाती है और जिसपर ताना फैलाकर बुनाई होती है। इसका व्यवहार प्रायः गुलबदन आदि बुनने के समय होता है।

खरका¹—संज्ञा पुं० [हिं० खर] खड़ा तिनका।

मुहा—खरका करना=भोजन के उपरांत दाँतों में फँसे हुए अन्न आदि को तिनके से खोदकर निकालना।

खरका²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खरक'।

खरका³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खटका'। उ०—(क) चीतल चीत हिरंन पाइ खरके भजि जंते।—पृ० रा, ६।६४। (ख) कहै रनधीर भग जाय पात खरका ते।—रघु० रू०, पृ० २८४।

खरकुटी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गदहों का निवासस्थान २. नाई का निवास या दूकान ३. नाई का चमोटा जिसमें नाई औजार रखते हैं (को०)। किस्वत।

खरकुटी²—संज्ञा स्त्री० [सं० खर=तृण+कुटी] खर और पत्ते आदि से बनी झोपड़ी। उ०—राजगृह के चतुष्पथ पर एक खरकुटी थी।—वै० न०, पृ० ३२१।

खरकोण—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी।—(डिं०)।

खरकोमल—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ का महीना (को०)।

खरक्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खरकोण' (को०)।

खरखरा—वि० [हिं०] दे० 'खुरखुरा'।

खरखशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खरखशह्] १. झगड़ा। लड़ाई। २. भय आशंका। डर। ३. झंझट। बखेड़ा।

खरखोट—संज्ञा पुं० [हिं० खरा+खोटा] बुराई। बरबादी। हानि उ०—गाँठी बाँध्यो दाम सों परचो न फिरि खरखोट।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५५४।

खरखोकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर+खाना] खर, तृण आदि खानेवाली अग्नि। उ०—लागि दवार पहार ठही लहकी कपि लंक जथा खरखोकी।—तुलसी (शब्द०)।

खरग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] १. दे० 'खड्ग'। २. दे० 'खरक', 'खरिक' (अनेकार्थ०)।

खरगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खरकुटी'¹ (को०)।

खरगेह—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुटिया। तंबू। २. दे० 'खरकुटी'¹ (को०)।

खरगोश—संज्ञा पुं० [फ़ा० खरगोश] खरहा। चौगड़ा। वि०—दे० 'खरहा'।

खरघातन—संज्ञा [सं०] नागकेशर। नागचंपा [को०]।
खरच—संज्ञा पुं० [फ़ा० खर्च] दे० 'खर्च'।
मुहा०—खरच कर डालना(पु) = समाप्त करना। खपा डालना। मार डालना। उ०—यह बनियाँ कौन की हिमायत सों बोलत हैं। तातें याको तुरत ही खरच करि डारो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २४५।
खरचनहार—वि० [हिं० खरचना + हार (प्रत्य०)] खरच करनेवाला। व्यय करनेवाला। उ०—माया तो है राम की, मोदी सब संसार। जा को चिट्ठी ऊतरी सोई खरचनहार।—संतबाणी०, भा० १, पृ० ५७।
खरचना—क्रि० स० [फ़ा० खर्च, हिं० खरच या खर्च + ना (प्रत्य०)] १. व्यय करना। करन उठाना। लगाना। २. व्यवहार में लाना। बरतना।
खरचर्मा—संज्ञा पुं० [सं० खरचर्मन्] मगर। नक्र [को०]।
खरचा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खर्च] दे० 'खर्चा'।
खरची—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरच + ई] दे० 'खर्ची'। उ०—ता पाछें जब वैष्णवन जाइवे की कहे तब कृष्ण भट रात्रि को उनकी गाँठि खड़िया खोलि खरची बाँधि देतें।—दो सौ० बावन०, भा० १, पृ० २७।
खरचूर(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्जूर] एक प्रकार की चाँदी। रजत। उ०—राजा के भंडार महँ, धन और दरब कपूर। पूरन रतन पदारथ, गुलिक कनक खरचूर।—इंद्रा०, पृ० ८।
खरच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूमिसह वृक्ष २. कुंदर नामक तृण। ३. नक्र। मकर [को०]।
खरज—संज्ञा पुं० [सं० षड्ज] दे० 'षड्ज'। उ०—खरज साधे गाऊँ मैं श्रवगुन सुनहुऊँ सुनाऊँ।—एकतारी०, पृ० १०५।
खरजूर¹—संज्ञा पुं० [सं० खर्जूर] दे० 'खजूर'।
खरजूर²—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्जूर] एक प्रकार की चाँदी। उ०—खासा पट खरजूर, सुभूषण सारने। दीधो दौलट पूर बधाई दारनै।—रघु० रू०, पृ० ६३।
खरतनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरादना] दे० 'खरदनी'।
खरतर(पु)†—वि० [हिं० खर + तर] (प्रत्य०)] १. अधिक तीक्ष्ण। बहुत तेज। उ०—कया ताइ के खरतर करई। प्रेम कसौटी पोढ़ कै धरई।—जायसी (शब्द०)। २. लेनदेन में खरा। व्यवहार का का सच्चा या साफ।
खरतरगच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] जैन संप्रदाय की एक शाखा।
खरतल†—वि० [हिं० खरा] १. खरा। स्पष्टवादी। २. शुद्ध हृदयवाला। ३. मुरौवत न करनेवाला। शील संकोच न करनेवाला। ३. साफ। स्पष्ट।
क्रि० प्र०—कहना।—रहना।
४. प्रचंड। उग्र।
खरतवा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० खर + बथुआ] दे० 'खरतुआ'। उ०—मुक्ति सरूप भूप मन जीते आसा सकल जराए। भक्ति खेत में लोभ खरतवा ताकू रहन न पाए।—सहजो०, पृ० ५७।
३—३।

खरतुआ—संज्ञा पुं० [हिं० खर + बथुआ] बथुए की तरह की एक घास जो पंजाब और मध्यप्रदेश में अधिकता से होती है। इसे चमरबथुआ भी कहते हैं। उ०—खेत बिगारयो खरतुआ, सभा बिगारी कूर। भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में धूर।—कबीर सा० सं० भा० १, पृ० ३६।
खरदंड—संज्ञा पुं० [सं० खरदण्ड] पद्म। कमल।
खरदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरादना] खरादने का औजार। खराद। कजनी।
खरदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गूलर। कठूमर [को०]।
खरदा—संज्ञा पुं० [देश०] अंगूर का एक रोग जिसमें उसकी डालियों पर लाल रंग की बुकनी बैठ जाती है और पौधे की बाढ़ नष्ट हो जाती है।
खरदिमाग—वि० [फ़ा० खरदिमाग] गधे की तरह बुद्धिवाला। नितांत मूर्ख। उजड्ड [को०]।
खरदिमागी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खरदिमागी] नासमझी। मूर्खता। उजड्डपन [को०]।
खरदुक†—संज्ञा पुं० [सं० क्षिरोदक, हिं० खीरोदक] प्राचीन काल का एक प्रकार का पहनावा। उ०—चँदनौता औ खरदुक भारी। बाँसपूर झिलमिल कै सारी।—जायसी ग्रं०, पृ० १४५।
खरदूषण¹—संज्ञा पुं० [सं०] खर और दूषण नामक राक्षस जो रावण के भाई थे। १. धतूरा। ३. झरबेरी [को०]।
खरदूषण²—वि० जिसमें बहुत दोष हों।
खरदूषण(पु)³—संज्ञा पुं० [सं० खर = तीक्ष्ण + दोषन् = बाहु] तीखे करोंवाला सूर्य। उ०—नृप के खरदूषण ज्यों खरदूषण। तब दूर किए रवि के कुलभूषण।—रामचं०, पृ० ७२।
खरधार—संज्ञा पुं० [सं०] तेज धारवाला अस्त्र।
खरधावा†—संज्ञा पुं० [हिं० क्षर + धव] धव या धाव का पेड़ जिसकी लकड़ी नाव आदि बनाने के काम में आती है। वि० दे० 'धव'।
खरध्वंसी—संज्ञा पुं० [सं० खरध्वंसिन्]] १. रामचंद्र। २. कृष्णचंद्र।
खरना—क्रि० स० [हिं० खरा] ऊन को पानी में उबालकर साफ करना।
खरनाद¹—संज्ञा पुं० [सं०] गधे की आवाज। रेंकना।
खरनाद²—वि० गधे की तरह आवाजवाला [को०]।
खरनादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेणु का नाम का गंधद्रव्य।
खरनादी—वि० [सं० खरनादिन्] दे० 'खरनाद²'।
खरनाल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पद्म [को०]।
खरपत—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष। धोगर।
विशेष—यह वृक्ष रुहेलखंड, अवध, बरमा तथा नीलगिरि में अधिकता से होता है तथा जेठ बैसाख में फूलता और कातिक अगहन में फलता है। इसका फल मकोय के आकार का होता है और कच्चा खाया जाता है। इसकी पत्तियों को हाथी बहुत रुचि से खाते हैं। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता

है और इसमें से हरापन लिए हुए पीले रंग का एक प्रकार का गोंद निकलता है। इसे घोगर भी कहते हैं।

खरपा—संज्ञा पुं० [सं० खर्व] चौवगला।

खरपात—संज्ञा पुं० [सं० क्षर + हिं० पात] घास पात। घास फूस।

खरपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का बरतन [को०]।

खरपाल—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना हुआ बरतन। कठौता।

खरप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] कपोत। कबूतर [को०]।

खरब—संज्ञा पुं० [सं० खर्व] १. सौ अरब। संख्या का बारहवाँ स्थान २. बारहवें स्थान की संख्या।

खरबिरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + बिरई = बूटी] घास पात या जड़ी बूटी की दवा जो प्रायः देहाती लोग करते हैं।

खरबुजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खरबुज़ह्] दे० 'खरबूजा'।

खरबूजा—संज्ञा पुं० [हिं० खरबूजा] दे० 'खरबूजा'।

खरबूजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खरबुज़ह्] १. ककड़ी की जाति की एक बेल। २ इस बेल का फल।

विशेष—इसके फल गोल, बड़े मीठे और सुगंधित होते हैं। इसके बीच प्रायः नदियों के किनारे पूस माघ में गड्ढे खोदकर बो दिए जाते हैं, और घास फूस से ढक दिए जाते हैं, जिनसे शीघ्र ही बहुत बड़ी बड़ी बेलें निकलकर चारों ओर खूब फैलती हैं। चैत से आषाढ़ तक इसमें फल लगते हैं। इसकी सरदा, सफेदा, चितला आदि अनेक जातियाँ हैं। इसके बीज ठंढाई के साथ पीसकर पिए जाते हैं और कई तरह से चीनी आदि में पागकर खाए जाते हैं। बीजों से एक प्रकार का तेल भी निकल सकता है जो खाने और साबुन बनाने के काम में आ सकता है।

मुहा०—खरबूजे को देखकर खरबूजे का रंग पकड़ना = किसी एक व्यक्ति की देखादेखी या संग से दूसरे का भी वैसा ही हो जाना।

खरबूजी—वि० [हिं० खरबूजा] खरबूजे की तरह रंगवाला।

खरबोजना—संज्ञा पुं० [हिं० खार + बोझवा] रँगरेजों का वह मटघड़ा जिसपर रंग का माट रखकर रंग टपकाते हैं।

खरबोरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरभराना] खलबली। हलचल। उ०—फूलन देई की बरात में खरबोरिया मचिगो।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १००७।

खरब्बा—वि० [हिं० खराब] चरित्रहीन। बदचलन।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः स्त्रियों के लिये ही होता है।

खरभर—संज्ञा पुं० [अनु०] १. खरभर का शब्द। २. हौरा। शोर। गुल गपाड़ा। रौला। उ०—खरभर सुनत भए उठि ठाढ़े। सिथिलित अंग भंग सुख गाढ़े। हम्मीर०, पृ० १०। ३. हलचल। गड़बड़। उ०—होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा। दुई माथ केहि रतिनाथ जेहि कहँ कोपि कर धनुसर धरा।—तुलसी (शब्द०)।

खरभरना—क्रि० अ० [हिं० खरभर] दे० 'खरभराना'।

खरभराना—क्रि० अ० [हिं० खरभर] १. खरभर शब्द करना। २. शोर करना। रौला करना। ३. गड़बड़ या हलचल मचाना। चंचल होना। व्याकुल होना।

खरभरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरभर + ई] दे० 'खलबली'।

खरमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० खरमञ्जरी] अपामार्ग। चिचड़ा।

खरमंडल—संज्ञा पुं० [फ़ा० खर + सं० मण्डल] गोलमाल। विघ्न। गुलगपाड़ा। हौरा। उ०-जब कोई सुव्यवस्था की बात चली, कि खरमंडल मचा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८७।

खरमस्त—वि० [फ़ा० खरमस्तह्] दे० 'खरमस्ता'।

खरमस्ता—वि० [फ़ा० खरमस्तह्] १. दुष्ट। शरारती। २ कामुक। ३. मनवाला [को०]।

खरमस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खरमस्ती] १. दुष्टता। पाजीपन। शरारत। २ कामुकता (को०)। ३. मस्ती (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—सूझना।

खरमास—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खरवाँस'।

खरमिटाव—संज्ञा पुं० [हिं० खर + मिटाना] जलपान। कलेवा। उ०—हम खरमिटाव कइली है रहिला चबाय के। भेंवल धरल बा दूध में खाजा तोरे बदे।—बदमाश०।

खरमिटौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरमिटाव] दे० 'खरमिटाव'।

खरमुख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राक्षस का नाम जिसे केकय देश में भरत जी ने मारा था। २ तुरंगमुख। किन्नर (को०)।

खरमुख[2]—वि० गधे की तरह मुखाकृतिवाला। बदशक्ल। कुरूप [को०]।

खरमुहरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खरमोहरह्] छोटा घोंघा जो तालाबों में होता है। कौड़ी। कपर्दिका। उ०—एक खरमुहरा खर्च करना नहीं चाहता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६।

खरयान—संज्ञा पुं० [सं०] सवारी या गाड़ी जिसमें गदहे जुते हों [को०]।

खररश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] तिग्मरश्मि। सूर्य [को०]।

खररोमा—संज्ञा पुं० [सं० खररोमन्] एक प्रकार का सर्प [को०]।

खरल—संज्ञा पुं० [सं० खल] पत्थर की गहरी, गोल और लंबोतरी कूँड़ी जिसमें दस्ते से ओषधियाँ कूटी जाती हैं। खल।

मुहा०—खरल करना = ओषधि आदि को खरल में डालकर महीन पीसना। महीन कटना।

खरली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डाली'।

खरलोमा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खररोमा' [को०]।

खरवट—संज्ञा स्त्री० [देश०] काठ के दो टुकड़ों से बना हुआ एक तिकोना औजार जिसमें रेती जानेवाली वस्तु को फँसाकर उसे रेतते हैं।

खरवाँस—संज्ञा पुं० [हिं० खर + मास] पूस और चैत का महीना जब सूर्य धन और मीन का होता है। इन महीनों में मांगलिक कार्य करना वर्जित है।

खरवार—संज्ञा पुं० [सं० खर + वार] रवि भौम आदि अशुभ दिन।

खरशब्द—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुरर नाम का एक पक्षी। २. गर्दभ का स्वर [को०]।

खरशाक—संज्ञा सं० [सं०] भारंगी नाम का पौधा [को०]।

खरशाला—संज्ञा पुं० [सं०] गदहों के रहने का स्थान [को०]।

खरशिला—संज्ञा पुं० [सं०] मंदिर आदि की कुरसी का वह ऊपरी भाग जिसपर सारी इमारत खड़ी रहती है।

खरस—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़िर्स] रीछ। भालू। (कलंदरों की बोली)।

खरसा[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० षड्रस] एक प्रकार का भोज्य पदार्थ। उ०—भई मिथौरी सिरका परा। सोंठ लाय कै खरसा धरा।—जायसी (शब्द०)।

खरसा[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो आसाम और ब्रह्म देश की नदियों में पाई जाती है।

खरसा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] १. ग्रीष्म ऋतु। गरमी का दिन। २. अकाल। कहत।

खरसा[4]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़ारिश] खाज। खुजली। खारिश।

खरसान—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर+सान] एक प्रकार की सान जो अधिक तीक्ष्ण होती है। इस पर तलवार उतारी जाती है। उ०—(क) शिष साँडा गुरु मसकला चढ़ै शब्द खरसान। शब्द सहै सन्मुख रहै निपजै शिष्य सुजान।—कबीर (शब्द०)। (ख) बाना तेरे नैन की विसाल साल सौतिन के बलभद्र साने हैं सुहाग खरसान के।—बलभद्र (शब्द०)।

खरसार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा। इस्पात [को०]।

खरसुमा—वि० [फ़ा० खर+सुम] जिस (घोड़े) के सुम गधे के सुमों की भाँति बिलकुल खड़े हों।

खरसैला—वि० [हिं० खरसा=खाज+ऐल (प्रत्य०)] जिसे खुजली हुई हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः पशुओं के लिये होता है।

खरस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० खरस्कन्ध] १. पियाल या चिरौंजी का पेड़। २. खजूर वृक्ष [को०]।

खरस्पर्श—वि० [सं०] तीक्ष्ण। गरम (वायु) [को०]।

खरस्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जंगली चमेली। वनमल्लिका [को०]।

खरहर—संज्ञा पुं० [देश०] बलूत की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह हिमालय की तराई में होता है। इसकी पत्तियाँ बेर की पत्तियों से बड़ी होती हैं। फल बलूत ही के से होते हैं। इसकी कच्ची लकड़ी, जो सफेद होती है और पकने पर गहरी भूरी हो जाती है, खेती के औजार बनाने के काम में आती है। छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

खरहरना[1]—क्रि० अ० [हिं० खर=तिनका+हरना] झाड़ देना।

खरहरना[2]—क्रि० स० घोड़े के शरीर पर खरहरा करना। खरहरे से घोड़े का शरीर साफ करना।

खरहरना[3]Ⓟ—क्रि० अ० [सं० स्खलन, प्रा० खलण+हिं० हिलना, हलना या प्रा० खल खल] विचलित होना। कंपित होना। खड़बड़ाना। उ०—ते ऊँचे चढ़ि कै खरहरे। धमकि धमकि धरकन में परे।—नंद० ग्रं०, पृ० २२६।

खरहरा—संज्ञा पुं० [हिं० खरहरना] [स्त्री० अल्पा० खरहरी] १. रहठे या अरहर की डंठलों से बना हुआ झाड़ू जिसे कँबरा भी कहते हैं। २. एक चौकोर छोटी पटरी जिसमें धातु की बनी हुई, छोटे दाँतों की कंघियाँ होती हैं।

विशेष—यह घोड़े का बदन खुजलाने और उसमें से गर्द और धूल निकालने के काम में आती है। चमड़े के टुकड़े में एक विशेष प्रकार से लोहे के तार जड़कर भी खरहरा बनाया जाता है।

खरहरी[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक मेवा (कदाचित् खजूर या छुहारा।) उ०—(क) तहरी पाक लोने औ गरी। परी चिरौंजी और खरहरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) नरियर फरे फरी खरहरी। फरे जानु इंद्रासन पुरी।—जायसी (शब्द०)।

खरहरी[2]—वि० स्त्री० [हिं० खड़बड़] (खाट) जिसपर बिछावन न बिछाया गया हो। निखरहर (बोल०)।

खरहा—संज्ञा पुं० [हिं० खर+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० खरही] चूहे की जाति का, पर उससे कुछ बड़े आकार का एक जंतु। खरगोश। उ०—बीनो नाचे मुस मिरदंगी खरहा ताल बनावै।—संत० दरिया, पृ० १२६।

विशेष—इसके कान लंबे, मुँह और सिर गोल, चमड़ा नरम और रोएँदार, पूँछ छोटी और पिछली टाँगें अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं। यह संसार के प्रायः सभी उत्तरी भागों में भिन्न भिन्न आकार और वर्ण का पाया जाता है। यह जंगलों और देहातों में जमीन के अंदर बिल खोदकर झुंड में रहता है और रात के समय आस पास के खेतों, विशेषतः ऊख के खेतों को बहुत हानि पहुँचाता है। यह बहुत अधिक डरपोक और अत्यंत कोमल होता है और जरा से आघात से मर जाता है। यह छलाँगें मारते हुए बहुत तेज दौड़ता है। इसके दाँत बड़े तेज होते हैं। खरही छह मास के होने पर गर्भवती हो जाती है और एक मास पीछे सात आठ बच्चे देती है। दस पंद्रह दिन पीछे वह फिर गर्भवती हो जाती है और इसी प्रकार बराबर बच्चे दिया करती है। किसी किसी देश के खरहे जाड़े के दिनों में सफेद हो जाते हैं। इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। शास्त्रों के अनुसार यह भक्ष्य है और वैद्यक में इसका मांस ठंढा, लघु, शोथ, अतीसार पित्त और रक्त का नाशक और मलबद्धकारक माना गया है। इसे चौगुड़ा, लमहा और खरगोश भी कहते हैं। इसका संस्कृत नाम 'शश' है।

खरही[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर] (घास या अन्न आदि का) ढेर। समूह। राशि।

खरांडक—संज्ञा पुं० [सं० खराण्डक] शिव के एक अनुचर का नाम।

खरांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। खरकर। तिग्मरश्मि।

खरा—वि० [सं० खर=तीक्ष्ण] [वि० स्त्री० खरी] १. तेज। तीखा। चोखा। २. अच्छा। बढ़िया। स्वच्छ। विशुद्ध। बिना मिलावट का। 'खोटा' का उलटा। जैसे, खरा सोना। खरा रुपया। उ०—राजैं नवीन निकाई भरी रतिहू तें खरी वे दुहूँ परजंक में।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

मुहा०—खरा खोटा=भला बुरा। खरा खोटा परखना=अच्छे बुरे की पहचान करना। जी खरा खोटा होना=चित्त चलायमान

मान होना। मन डिगना। बुरी नीयत होना। खरे आए= अच्छे मिले। अच्छे आए (व्यंग्य)।

३. सेंककर कड़ा किया हुआ। करारा।

मुहा०—कान खरा करना=कान गरम करना। कान मलना।

४. जो झुकने या मोड़ने से टूट जाय। चीमड़। कड़ा। ५. जिसमें किसी प्रकार की बेईमानी न हो। जिसमें किसी प्रकार का धोखा न हो। जो व्यवहार में सच्चा और ईमानदार हो। साफ। छल-छिद्र-शून्य। जैसे,—खरा मामला। खरा आदमी।

मुहा०—खरा असामी=दे० 'खरा आदमी'। खरा आदमी=लेन देने में सफाई रखनेवाला आदमी। व्यवहार में सच्चा मनुष्य। ईमानदार। खरा खेल=साफ मामला। शुद्ध व्यवहार। खरा खेल फर्रुखाबादी=फर्रुखाबाद के रुपए की तरह शुद्ध और सच्चा व्यवहार।

विशेष—फर्रुखाबाद की टकसाल के रुपए किसी समय में बहुत खरा और चोखा समझा जाता था।

६. नकद (दाम)। उ०—मगर खरी मजदूरी और चोखा काम। हमारे वतन में बागवाँ रोज के रोज उजरत पाते है।—फिसाना०, भा० ३ पृ० ३१४।

मुहा०—रुपए खरे होना=रुपए मिलने का निश्चित होना। जैसे—तुम्हारे रुपए तो खरे हो गए; अब हमारा इनका मामला रह गया।

७. उचित बात कहने या करने में शील संकोच न करनेवाला। लगी लिपटी न कहनेवाला। स्पष्टवक्ता। जैसे, खरा कहैया। ८. (बात के लिये) यथातथ्य। सच्चा। अप्रिय सत्य। जैसे, खरी बात।

मुहा०—खरी सुनाना, खरी खरी सुनाना=सच्ची बात कहना, चाहे किसी को बुरा लगे चाहे भला। उ०—मैं लगी लिपटी नहीं रखती। खरी खरी कहती हूँ। दो टूक। या इधर या उधर।—सैर०, पृ० २६।

९. बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—(क) अरे परेखों को करै, तुहीं बिलोक बिचार। कहि नर केहि सर राखियो खरे बढ़े पर पार।—बिहारी (शब्द०)। (ख) रस के उपजावत पुंज खरे पिय लेत परे रस के चसके।—वृंद (शब्द०)।

खराई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरा+ई (प्रत्य०)] 'खरा' का भाव। खरापन।

खराई²—संज्ञा स्त्री० [देश०] सवेरे अधिक देर तक जलपान या भोजन आदि न मिलने के कारण जुकाम होना, गला बैठना या प्रकृति में होनेवाली इसी प्रकार की और कुछ गड़बड़ी।

मुहा०—खराई मारना=जलपान करना। कलेवा करना।

खराऊँ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खड़ाऊँ'।

खराकहैया—वि० [हिं० खरा+कहना+ऐया (प्रत्य०)] खरा कहनेवाला। स्पष्टवक्ता।—(बोल०)।

खरागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताड़ का वृक्ष। देवताड़क। जीमूत।

खराज—संज्ञा पुं० [अ० खराज] खिराज। राजकर। राजस्व। उ०—बहुत से हिंदू राजाओं से केवल खराज लेकर वह संतुष्ट हो गए।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ५०४।

खराद¹—संज्ञा पुं० [अ० खर्रात, फ़ा० खर्राद] एक औजार। चरख। खरसान। उ०—मानों खराद चढ़े रवि की किरणों गिरीं आनि सुमेरु के ऊपर।—पजनेस०, पृ० १३।

विशेष—इसपर चढ़ाकर लकड़ी, धातु आदि की सतह चिकनी और सुडौल की जाती है। चारपाई के पाये, डिबिया, खिलौने आदि बढ़ई खराद ही पर चढ़ाकर सुडौल और चमकीले करते हैं। ठठेरे भी बरतनों को चिकना करने और चमकाने के लिये उन्हें खराद पर चढ़ाते है।

मुहा०—खराद पर उतरना या चढ़ना=(१) ठीक होना। दुरुस्त होना। सुधरना (२) लौकिक व्यवहार में कुशल होना। अनुभव प्राप्त होना। खराद या खराद पर उतारना या चढ़ाना=ठीक करना सुधारना। दुरुस्त करना। सँवारना। उ०—खेंचि खराद चढ़ाये नहीं न सुढ़ार के ढारनि मध्य ढराए।—सरदार (शब्द०)।

खराद²—संज्ञा स्त्री० १. खरादने का भाव। १. खरादने की क्रिया। ३. ढंग। बनावट। गढ़न।

खरादना—क्रि०स० [हिं० खराद+ना (प्रत्य०)]। १. खराद पर चढ़ाकर किसी वस्तु को साफ और सुडौल करना। २. काट छाँटकर सुडौल बनाना।

खरादी—संज्ञा पुं० [हिं० खराद] जो खरादने का काम करे। खरादनेवाला।

खरापन—संज्ञा पुं० [हिं० खरा+पन] १. खरा का भाव। २. सत्यता। सच्चाई।

मुहा०—खरापन बघारना=सच्चाई की डींग मारना। बहुत अधिक सच्चा बनना।

३. उन्मत्तता।

खराब—[अ० खराब] १. बुरा। निकृष्ट। हीन। अच्छा का उलटा। जो बहुत दुरवस्था में हो। दुर्दशाग्रस्त। जैसे—मुकदमे लड़कर उन्होंने अपने आपको खराब कर दिया। ३. पतित। मर्यादाभ्रष्ट। दुश्चरित्र।

मुहा०—(किसी को) खराब करना=(१) (किसी परस्त्री के साथ) कुकर्म करना। (२) किसी को बुरे राह ले जाना। बदचलन या दुश्चरित्र बनाना। खराब होना=दुश्चरित्र होना। बदचलन होना।

४. विध्वस्त। बरबाद (को०)। ५. निर्जन। बीरान (को०)।

खराबा—संज्ञा पुं० [अ० खराबह्] १ निर्जन या अन्न जल से राहत स्थान। वीरान। २. खँडहर। उजाड़ [को०]।

खराबात—संज्ञा पुं० [फा० खराबात] १. मधुशाला। मदिरालय। २. जुआ खेलने का अड्डा। द्यूतगृह ३. कुलटा स्त्रियों का अड्डा। चकला [को०]।

खराबाती—वि० [फा० खराबाती] १. हर समय नशे में मस्त रहनेवाला। मदमस्त। उ०—मेरे शोखे खराबाती की कैफियत न कुछ पूछो। बहारे हुस्न को दो आंख उसने जब चरस खींचा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४८। २. जुआ खेलने का आदी। जुआड़ी (को०)।

खराबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खराबी] १. बुरापन। दोष। अवगुण २. दुर्दशा। दुरवस्था ३. विध्वंस। बरबादी (को०)।

क्रि० प्र०—आना ।—लाना ।—होना ।

मुहा०—खराबी में पड़ना = विपत्ति या दुर्दशा में फँसना ।

३. गंदगी । गलीज (कहारों की बोली) ।

विशेष—जब अगला कहार कहीं विष्ठा आदि पड़ा देखता है, तब पिछले कहार को सचेत करने के लिये इस शब्द का प्रयोग करता है ।

खराब्दांकुरक—संज्ञा पुं० [सं० खराब्दाङ्कुरक] लहसुनिया नाम का रत्न । वैदूर्यमणि ।

खरारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र । २. विष्णु भगवान । ३. कृष्णचंद्र । ४. बलराम (धेनुका असुर को मारने के कारण) । ५. एक छंद का नाम जो ३२ मात्राओं का होता है ।

खरायँध—संज्ञा स्त्री० [हिं० खार(क्षार) + गंध] १. मूत्र की दुर्गंध ।

खरारी—संज्ञा पुं० [सं० खरारि] दे० 'खरारि । उ०—ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी ।—मानस, १।१०६।

खरालक—संज्ञा पुं०[सं०] १. नापित । हज्जाम । २. नाई का सामान रखने का थैला । किसबत ।३. शिरोपधान । तकिया । ४. लोहे का वाण (कौ०) ।

खरालिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खरालक' (कौ०) ।

खराश —संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वह हलका घाव जो छिलन आदि के कारण हो जाता है । खरोंच । छिलन । ३. खुजली (कौ०) ।

खराश्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोचमस्तक । कृष्ण जीरक (कौ०) ।

खराह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा । अजवाइन (कौ०) ।

खरिक[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. वह ऊख जो खरीफ की फसल के बाद बोई जाय । २. एक प्रकार का मेवा । छुहारा । खरहरी । उ०—खरिक, दाख अरु गरी चिरारी । पिंड बदाम, लेहू बनवारी ।—सूर०, १०।३९६ ।

खरिक[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खरक', 'खरका' उ०—खरिक खिलावन गांइनि ठाढ़े । इत नँदलाल ललित लरिका उत गोप महावत ठाढ़े ।—छीत०, पृ० ३ ।

खरिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी का चूर्ण (कौ०) ।

खरिका[2]Ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खरक' । उ०—गयो हुतो चारन गो ग्वारन के संग आज खरिका में खेलत मों लरिका डरायोरी ।–दीन० ग्रं०, पृ० ६। २. दे० खरका ।

खरिचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खर्च] दे० 'खर्च' ।

खरिया[1]–संज्ञा स्त्री० [हिं० खर = घास + इया (प्रत्य०)] १. पतली रस्सी से बनी हुई जाली जो घास, भूसा आदि बाँधने के काम आती है । पाँसी । उ०—कृशगात ललात जो रोटिन को घर बात घरे खुरपा खरिया । —तुलसी (शब्द०) । २. झोली । थैली ।

खरिया[2]–संज्ञा स्त्री० [हिं० खार = राख] कंडे की राख ।

खरिया[3]–संज्ञा स्त्री०[देश०] १. वह लकड़ी जिसकी सहायता से नाँद में नील कसकर भरते या दबाते हैं । २. एक जंगली जाति ।

खरिया[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्डिका] दे० 'खड़िया' । उ०—खरिया, खरी, कपूर सब, उचित न पिय तिय त्याग । कै खरिया मोही मेलि, कै बिमल बिवेक बिराग ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२४ ।

खरियानⓊ–संज्ञा पुं० [सं० खल + स्थान, हिं० खलियान, खलिहान] दे० 'खलियान' । उ०—देखति हौं वृज की लुगाइन भयो घौं कहाँ खेत को, कहे तें खरियान की समझती ।— ठाकुर०, पृ० १५ ।

खरियाना†—क्रि० स० [हिं० खरिया = झोली] १. झोली में डालना । थैली में भरना । २. हस्तगत करना । ले लेना । ३. झोली में से गिराना ।

खरिहट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर इहट (प्रत्य०)] वह पतली लकड़ी या तिनका जिसमें एक डोरा बँधा रहता है और जिसकी सहायता कुम्हार बने हुए बर्तन आदि को चाक की मिट्टी से काटकर अलग करता है ।

खरिहान†—संज्ञा पुं० [हिं० खलिहान] दे० 'खलिहान' । उ०—गंग तीर मोरी खेती बारी जमुन तीर खरिहाना ।—कबीर ग्रं०, पृ० ६३ ।

खरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] गदही । गर्दभी । उ०—कह खगेस अस कवन अभागी । खरी सेव सुरधेनहु त्यागी ।—मानस ७।११० ।

खरी[2]†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख ।

खरी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० खली] दे० 'खली' ।

खरी–संज्ञा स्त्री० [सं० खण्डिका, हिं० खड़िया, खरिया] दे० 'खड़िया' । उ०—करम खरी कर, मोह थल, अंक चराचर जाल । हनत गुनत गुनि गुनि हनत जगत ज्योतिषी काल ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२३ ।

खरीकⓊ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खरका' ।

खरीखोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] स्पष्ट और कड़ी लगानेवाली बात ।

खरीजंघ—संज्ञा पुं० [सं० खरीजङ्घ] शिव का एक नाम (कौ०) ।

खरीता—संज्ञा पुं० [अ० खरीतह] [स्त्री० अल्पा० खरीती] १. थैली । खीसा । २. जेब । ३. वह बड़ा लिफाफा जिसमें किसी बड़े अधिकारी आदि की ओर से मातहत के नाम आज्ञापत्र आदि भेजे जायँ । दर्जियों की वह थैली जिसमें वे सूई डोरा रखते हैं । ४. सूई डोरा रखने की थैली (कौ०) ।

खरीतिया—संज्ञा पुं० [अ० खरीतह] मुसलमानी राजत्वकाल का एक प्रकार का कर । इसे अकबर ने उठा दिया था ।

खरीद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खरीद] १. मोल लेने की क्रिया । क्रय ।

यौ०—खरीद फरोख्त = क्रय विक्रय ।

२. मोल लिया हुआ पदार्थ । खरीदी हुई चीज । जैसे, यह दुशाला पचास रुपए की खरीद है ।

खरीदना—क्रि० स० [फ़ा० खरीदन] मोल लेना । क्रय करना ।

खरीदा[1]—सं[illegible] [illegible]रीदह] १. कुमारी कन्या । २. लज्जा–

खरीदारी--संज्ञा स्त्री० [फा० खरीदारी] मोल लेने की क्रिया। क्रय।

खरीफ--स्त्री० [अ० खरीफ] वह फसल जो आषाढ़ से आघे अगहन के बीच काटी जाय। इस फसल में धान, मक्का, बाजरा, उर्द, मोठ, मूँग आदि अन्न होते हैं। उ०--मुसलमान रबी मेरी हिंदू भया खरीफ।--पलटू०, पृ० ११७।

खरीम--संज्ञा स्त्री० [देश०] मुर्गी की जाति की एक चिड़िया जो प्रायः पानी के किनारे रहती है। इसके पर तीतर की तरह चितले होते हैं।

खरील--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जेवर जिसे स्त्रियाँ बेंदी की भाँति सिर पर पहनती हैं।

खरु¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्व। घोड़ा। २. दाँत। ३. गर्व। शान। ४. कामदेव। ५. शिव का एक नाम। ६. श्वेत वर्ण। ७. वर्जित वस्तुओं को लेने की आकांक्षा [को०]

खरु²--संज्ञा स्त्री० अपना पति स्वयं चुननेवाली कुमारी। पतिंवरा कन्या [को०]।

खरु³--वि० १. श्वेत। सफेद। २. मूर्ख। झगड़ालू। ३ क्रूर। कठोर। ४. वर्जित वस्तुओं को लेने का इच्छुक।

खरे†--संज्ञा पुं० [देश०] एक आने प्रति रुपए की दलाली।--(दलालों की बोली)।

खरेठ--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

खरेड़ी(पु)†--वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'खरहरी'। उ०--भाजन तो मृत्तिका के फूटे खाली धान नाहीं टूटी से खरेड़ी खाटमल सो लहत है।--राम० धर्म०, पृ० ६६।

खरेडुआ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खरोरी'।

खरेरा--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खरहरा'।

खरेला†--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फल। उ०--खरि खरेला दाख खिरनी आम स्रीफल लाइया।--घट०, पृ० ६१।

खरैया(पु)†--वि० [हिं० खरा=खड़ा+ऐया (प्रत्य०)] खड़े रहनेवाले। चुपचाप स्थित रहनेवाले। दर्शक। उ०--द्रौपदी विचारै रघुराज आज जाती लाज सब है खरैया पै न टेर को सुनैया है।--राम० धर्म०, पृ० २६७।

खरोंच--संज्ञा स्त्री० [अनुकरणमूलक देश०] १. नख आदि लगने या और किसी प्रकार छिलने का हलका चिह्न। खराश। २. पतौर नामक भोज्य पदार्थ जो अरुई आदि के पत्तों को पीठी या बेसन में लपेटकर तलने से बनता है। रिकवँच।

खरोंचना--क्रि० स० [सं० क्षुरण] खुरचना। करोना। छीलना।

खरोंट, खरोट(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खरोंच'।

खरोटना--क्रि० स० [हिं० खरोंट+ना (प्रत्य०)] दे० 'खरोंदना'। २. नाखून गड़ाकर शरीर में घाव करना।

खरोदक(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० क्षीरोदक] एक प्रकार का वस्त्र या पहिरावा। खरदुक। उ०--माणिक मोती चौक पुराई दीया खरोदक पहरराइ।--बी० रासो, पृ० १११।

खरोरा†--संज्ञा पुं० [हिं० खड़ौरा] दे० 'खँड़ौरा'।

खरोरी--संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ा] छकड़ा गाड़ी में दोनों ओर के वे खूँटे जिनपर रोक के लिये बाँस बँधे रहते हैं।

खरोश--संज्ञा पुं० [फा० खरोश] जोर की आवाज। हल्ला। शोर।

खरोष्ट्री--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खरोष्ठी'।

खरोष्ठी--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लिपि।

विशेष--अशोक के समय में यह लिपि भारत की पश्चिमोत्तर सीमा की ओर प्रचलित थी। यह लिपि फारसी की तरह दाहिने से बाएँ को लिखी जाती थी। इसे गांधार लिपि भी कहते हैं।

खरौंट, खरौटा†--संज्ञा स्त्री० [हिं० खरोंच] खरोच। खराश। उ०--मैं बरजी कै बार तू उत कित लेति करौंट। पखुरी गड़े गुलाब की परिहै गात खरौंट।--बिहारी (शब्द०)। (ख) कौन साँच करि मानिहै अलि अचरज की बात। ये गुलाब की पाँखरी परी खरौटे गात।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १४।

खरौटना--क्रि० स० [हिं० खरौंट] दे० 'खरोंचना'।

खरौंहा--वि० [हिं० खारा+औंहा (प्रत्य०)] कुछ कुछ खारा। कुछ नमकीन। उ०--स्याम सुरति करि राधिका तकति सरनिजा तीर। अँसुअन करति तरौंस को छिनक खरौंहो नीर।--बिहारी (शब्द०)।

खरौटा†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खरौंट'। उ०--पकरि मोहिं जल बीच हिलोरयो तोरयो गर को दाम। लरि कंकन को दियो खरौंटा मेरे मुख सुनु बाम।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ०११३।

खर्खोद--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का इंद्रजाल।

खर्ग(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खड्ग' उ०--दूसर खर्ग कंध पर दीन्हा। सुरजै वे ओड़न पर लीन्हा।--जायसी (शब्द०)।

खर्च--संज्ञा पुं० [अ० खर्च] १. किसी काम में किसी वस्तु का लगना। व्यय। सरफा। खपत। जैसे--(क) दस रुपए खर्च हो गए (ख) इस शहर में पानी का बहुत खर्च है।

क्रि० प्र०--करना।--देना।--बाँटना।--होना।

मुहा०--खर्च उठाना=व्यय का भार सहना। खर्च करना। जैसे--इस महीने में उन्हें बहुत खर्च उठाना पड़ा। खर्च चलना=व्यय का निर्वाह करना। आवश्यक व्यय के लिये धन देते रहना। खर्च में डालना=(१) व्यय करने के लिये विवश करना (२) किसी रकम को खर्च के मद में लिखना। खर्च निकलना=लागत प्राप्त होना। खर्च में पड़ना=(१)व्यय के लिये विवश होना। (२) किसी रकम का खर्च के मद में लिखा जाना।

यौ०--ऊपरी खर्च=नियमित से अतिरिक्त या अनिश्चित व्यय। फुटकर खर्च।

२. वह धन जो किसी काम में लगाया जाय जैसे--उनके पास कुछ भी खर्च नहीं है।

यौ०--खर्चखानगी=(१) निजी खर्चा। व्यक्तिगत व्यय। २. पारिवारिक या घरेलू खर्च।

खर्चना--क्रि० स० [अ० खर्च+हिं० ना (प्रत्य०)] दे० 'खरचना'।

खर्चा—संज्ञा पुं० [फा० खर्चह्] दे० 'खर्च'।

खर्ची—संज्ञा स्त्री० [हिं० खर्च] वह धन जो वेश्या आदि को कुकर्म कराने के लिये मिले। कसब कराने का पुरस्कार।

क्रि० प्र०—कमाना।

मुहा०—खर्ची पर चलना या जाना=धन के लिये कुकर्म या प्रसंग कराना।

खर्ची²—वि० दे० 'खर्चीला'।

खर्चीला—वि० [हिं० खर्च+ईला (प्रत्य०)] जो बहुत अधिक व्यय करे। खूब खर्च करनेवाला।

खर्ज—संज्ञा पुं० [हिं० खरज] दे० 'खरज', 'षडज'। उ०—तब लीनी कर कंजनि मुरली। खर्जादिक जु सप्त सुर जु रली।—नंद ग्रं०, पृ० ३१७।

खर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] खुजलाना। खुजलाने की क्रिया या भाव।

खर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी मिट्टी।

खर्जिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपदंश या गरमी नाम का रोग। २. गजक। चिखना (को०)।

खर्जु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खजूर का पेड़। २. खुजली। ३. धतूर का पौधा। ४. एक प्रकार का कीड़ा (को०)।

खर्जुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रमर्द। चकवड़। २. धतूरा। ३. मदार। आक (को०)।

खर्जुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चाँदी। २. खजूर (को०)।

खर्जू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खुजली। कंडू। २. एक कीटभेद (को०)।

खर्जूर—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर। २. चाँदी। ३. हरताल। ४. बिच्छू। ५. गर्भ (अनेकार्थ०)। ६. जरायु (अनेकार्थ०)। ७. शूद्र (अनेकार्थ०)। ८. धतूरा (को०)।

खर्जूरक—संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिक। बिच्छू (को०)।

खर्जूररस—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर का रस। ताड़ी। एक मादक पेय (को०)।

खर्जूररसज—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर के रस से बनी शर्करा या गुड़ (को०)।

खर्जूरवेध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का योग जिसमें विवाह होना वर्जित है। इसे एकार्गल भी कहते हैं।

खर्जूरिका—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर के रस से बनी हुई या खजूर के आकार की मिठाई (को०)।

खर्जूरी—स्त्री० संज्ञा [सं०] खजूर (को०)।

यौ०—खर्जूरीरस=खजूर की ताड़ी। खर्जूरीरसज=खजूर के रस का बना हुआ गुड़ या मिस्री।

खर्तल—वि० [हिं०] दे० 'खरतल'। उ०—जब ऐसे खर्तल मनुष्य का अंत में यह भेद खुला तो संसार में धर्मात्मा किसको कह सकते हैं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३३६।

खर्प—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] दे० 'खर्पर'। उ०—नरो ग्राह पात्रं करं खर्प जैसे।—ह० रासो, पृ० १५२।

खर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तसले के आकार का मिट्टी का बरतन। २. काली देवी का वह पात्र जिसमें वह रुधिर पान करती हैं। ३. भिक्षापात्र। ४. खोपड़ा। ५. चोर। ६. धूर्त। ७. खपरिया नामक उपधातु। ८. छाता (को०)।

खर्परिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छतरी। छाता (को०)।

खर्परी, खर्परीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खपरिया नाम की एक उपधातु (को०)।

खर्ब—वि० [सं०] छोटा। लघु। क्षुद्र। उ०—खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम।—मानस, ७। ५८। दे० खर्व।

खर्बूर—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का छिलका (को०)।

खर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिल्क। रेशम। २. ओज। शक्ति। ३. कठोरता। परुषता (को०)।

खर्राच—वि० [हिं०] दे० 'खर्राच'।

खर्राट—वि० [हिं०] दे० 'खुर्राट'।

खर्रा—संज्ञा पुं० [खर खर से अनु०] १. वह लंबा या बड़ा कागज जिसमें कोई भारी हिसाब या विवरण लिखा हो। २. एक प्रकार का रोग जिसमें पीठ पर छोटी छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं और चमड़ा कड़ा और खुरदुरा हो जाता है।

खर्राच—वि० [फा० खर्राच] खर्चीला। उ०—बेशक उसी ने तो चोरी लुके रुपए दे देकर मानिक को ऐसा खर्राच होने दिया था।—शराबी, पृ० १५५।

खर्राटा—संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो सोते समय नाक से, विशेषतः बलगमी आदमी की नाक से, निकलता है।

मुहा०—खर्राटा भरना, मारना या लेना=बेखबर सोना। उ०—मुगलानियाँ खर्राटे लेती थीं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २५।

खर्रात—संज्ञा पुं० [अ०] खराद का काम करनेवाला व्यक्ति। खरादी (को०)।

खर्राती—संज्ञा स्त्री० [अ०] खरादी का काम या पेशा (को०)।

खर्राद—संज्ञा पुं० [फा० खर्राद] खरादी। खरादी (को०)।

खर्व¹—वि० [सं०] जिसका अंग भग्न या अपूर्ण हो। न्यूनांग। २. छोटा। लघु। उ०—यहाँ खर्व नर रहते युग युग से अभिशापित।—ग्राम्या, पृ० १६। ३. वामन। बौना।

खर्व²—संज्ञा पुं० १. संख्या का बारहवाँ स्थान। सौ अरब। खरब। २. बारहवें स्थान की संख्या।

विशेष—वैदिक काल में संख्या का ३५वाँ स्थान खर्व कहलाता था।

३. कुबेर की नौ निधियों में से एक। ४. कूजा नाम का वृक्ष।

खर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहाड़ के ऊपर बसा हुआ गाँव। २. वह गाँव जो चार सौ गाँवों के बीच बसा हो। ३. दो सौ गाँवों के मध्य का प्रमुख ग्राम (को०)। ४. नदी के किनारे बसा हुआ कस्बा और गाँवनुमा बस्ती (को०)।

खर्वशाख—वि० [सं०] ठिगना। छोटे कद का (को०)।

खर्वित—वि० [सं०] छोटा या लघु किया हुआ। खर्व (को०)।

खर्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह अमावस्या जिसमें चतुर्दशी मिली हुई हो। ऐसी अमावस्या बहुत कम होती है। २. वह तिथि

जिसका कालमान पहले दिन की तिथि के कालमान से कुछ कम हो।

खर्बुज—संज्ञा पुं० [सं०] खरबूजा [को०]।

खर्वेतर—वि० [सं०] जो छोटा न हो। बड़ा [को०]।

खल¹—वि० [सं०] [भाव० खलता] १. क्रूर। कठोर। २. नीच। अधम। ३. दुर्जन। दुष्ट। ४. चुगलखोर। ५. निर्लज्ज। बेहया। ६. धोखेबाज। फरेबी।

खल²—संज्ञा पुं० १. सूर्य। २. तमाल का पेड़। ३. धतूरा। ४. खलिहान। ५. कोठिला। ६. धूलिपुंज। ७. युद्ध। लड़ाई। ८. तलछट। ९. पृथ्वी। १०. स्थान। ११. खरल।

मुहा०—खल करना = खल में महीन पीसना। खल होना = पिसना। चूर चूर होना। उ०—खल भई लोकलाज कुल कानी।—सूर (शब्द०)।

खल³—संज्ञा पुं० [सं० खल = खरल] १. पत्थर का बड़ा टुकड़ा। उ०—इतै मान यह सूर महा शठ हरिनग बदलि महा खल आनत।—सूर (शब्द०)। २. सोनारों का किटकिना नाम का ठप्पा।

खलई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खल + ई (प्रत्य०)] खलता। उ०—सीदत साधु साधुता सोचति खल विलसत हुलसति खलई है।—तुलसी (शब्द०)।

खलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] घड़ा। कुंभ [को०]।

खलक²—संज्ञा पुं० [अ० खल्क] १. सृष्टि का प्राणी या जीवधारी। २. दुनिया। संसार। जगत्। उ०—खलक है रैन का सपना समझ दिल कोई नहीं अपना।—कबीर म०, पृ० ११३।

खलक³ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० खलकना] खलकने का भाव या क्रिया।

खलकत—संज्ञा स्त्री० [अ० खिल्कत] १. सृष्टि। २. भीड़। झुंड। ३. जनसाधारण। जनता (को०)।

खलकना—क्रि० अ० [अनुध्व०] १. खल खल ध्वनि करना। २. छलकना। बहना। उ०—जस किलक बकबक मुख जपिक, भुव खलक रुधरक भभक भक।—रघु० रू०, पृ० २२३।

खलकानाⓟ—क्रि० स० [हिं० खलकना का प्रे० रूप] छलकाना। बहाना। उ०—हिरणाकुस नै हणे, निडर फाडै उर नखे। खलकाय रत खाल भरे डाचां पल भखे।—रघु० रू०, पृ० ४०।

खलक्कनाⓟ‡—क्रि० अ० [हिं खलकना] सं० 'खलकना'। उ०—जिण दीहे वण हर धरइ नदी खलक्कइ नीर। तिण दिन ठाकुर किम चलइ, घण किम बांधइ धीर।—ढोला० दू० ६१।

खलखल—क्रि० वि० [अनुध्व०] खल् खल् ध्वनि करता हुआ। उ०—फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खल खल।—अपरा, पृ० ४१।

खलखलाना—क्रि० अ० [अनु०] किसी द्रव पदार्थ का उबलना। खौलना।

खलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खल + ड़ी (प्रत्य०)] छाल। चमड़ा।

खलता¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता। नीचता। 'खल' का भाव।

खलता²—संज्ञा पुं० [हिं० खरीता] सिपाहियों का वह थैला जिसमें वे अपना जरूरी सामान रखते हैं। थैला। झोला।

खलताईⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० खल + ताति = हिं० ताई (प्रत्य०)] दे० 'खलता'। उ०—दंड दियें बिनु साधुनिह संग छूटत क्यों खल की खलताई।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८।

खलति—वि० [सं०] गंजा। खल्वाट [को०]।

खलतिक—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़ [को०]।

खलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] खलता। दुष्टता।

खलधान, खलधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] खलियान [को०]।

खलना¹—क्रि० अ० [सं० खर = तीक्ष्ण] बुरा लगना। नागवार मालूम होना। अप्रिय होना।

खलना²—क्रि० स० [हिं० खाली] पत्तर आदि को नली के रूप में बनाने के लिये मोड़ना या झुकाना।—(सोनारों की परिभाषा)।

खलना³—क्रि० स० [हिं० खल या खरल] १. खरल में डालकर घोंटना। २. नष्ट करना। पीस डालना। उ०—रावन सो रसराज सुभट रस सहित लंक खल खलतो।—तुलसी (शब्द०)।

खलना⁴ⓟ‡—क्रि० अ० [देश] दे० 'खिलना'। उ०—सा धन खलती कसोर ज्युं जाणिक बैठी ग्रीव को खोलि।—बी० रासो, पृ० ९३।

खलनायक—संज्ञा पुं० [सं० खल + नायक] नाटक या उपन्यास आदि में एक पात्र जो नायक का प्रतिद्वंद्वी और दुर्वृत्ति होता है। प्रतिनायक।

खलनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाली] सोनारों का एक औजार जिसपर रखकर घुंडी आदि बनाई जाती है।

खलपना—संज्ञा स्त्री० [सं० खल + हिं० पन (प्रत्य०)] खलता। दुष्टता। उ०—कपट रूप प्रलंब प्रवंचना, खलपना पशुपालक ग्राम का।—प्रिय०—पृ० १८।

खलपू—वि० [सं०] साफ करनेवाला। सफाई करनेवाला [को०]।

खलफ—संज्ञा पुं० [अ० खलफ] सुपुत्र। अच्छा बेटा। सपूत। उ०—खलफ चाँद सा ... नायब मनाव।—दक्खिनी० पृ० १३६।

खलबल—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] १. हलचल। उ०—खलबल परत सिसह पर बाजत निशान जब शब्द घरहरात।—अकबरी०, पृ० १०८। २. शोर। हल्ला। ३. कुलबुलाहट।

खलबलाना—क्रि० अ० [हिं० खलबल] १. खलबल शब्द करना। २. खौलना। ३. कुलबुलाना। हिलना। डोलना। ४. विचलित होना। घबड़ाना।

खलबलाहट—संज्ञा स्त्री० [खलबल + आहट (प्रत्य०)] बेचैनी। व्याकुलता। खलबली।

खलबली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खलबल] १. हलचल। २. घबराहट। व्याकुलता।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

खलभल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'खलबल'।

खलभलाना—क्रि० अ० [हिं० खलभल] दे० 'खलबलाना'।

खलभलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खलभल + आहट (प्रत्य०)] दे० 'खलबलाहट'।

खलभली— संज्ञा स्त्री० [हिं० खलभल] दे० 'खलबली' ।

खलभलाना—क्रि० अ० [हिं० खलबल या खलभल] तिलमिलाना । खलबली में पड़ना । विचलित होना । उ०—खलभलित शेष कवि गंग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो ।—अकबरी०, पृ० १४६ ।

खलमूर्ति —संज्ञा पुं० [सं०] पारा । पारद ।

खलयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] खलियान में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

खलल-संज्ञा पुं० [अ० खलल] १. रोक । अवरोध । रुकावट । बाधा ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।

२. विकार । खराबी (को०) ।

यौ०-खलल अंदाज=हस्तक्षेप या विरोध करनेवाला । बाधक । खलल अंदाजी=खलल या बाधा डालने का कार्य । खलल दिमाग=(१) पागलपन । सनक । (२) सनकी । पागल ।

खलसंसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट । बुरे लोगों का साथ [को०] ।

खलसा—संज्ञा स्त्री० [सं० खलिश] एक प्रकार की बड़ी मछली ।

विशेष —यह मछली समस्त उत्तर भारत, आसाम और चीन में होती है । इसमें काँटे अधिक होते हैं और जल से निकाल लेने पर भी यह कुछ समय तक जीती रहती है । वैद्यक के अनुसार इसका मांस रूखा और वात बढ़ानेवाला होता है ।

खलहलना(पु)†—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'खलखलाना' । उ०—घुरि अपाढ़ धड़क्या मेह । खलहल्या पाल्या वहि गई खेह ।—बी० रासो, पृ० ७० ।

खलहाण(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० खलिहान] दे० 'खलियान-१' उ०—हुवै खला थाणो खलहाणों । लेखा पखे सु धन लूटाणो ।—रा० रू०, पृ० २६० ।

खला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणिका । वेश्या ।—अनेकार्थ०, पृ० २७ ।

खलाइत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाल + इत (प्रत्य०)] धौंकनी । भाथी ।

खलाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खल + आई] (प्रत्य०)] खलता । दुष्टता । उ०-कान्ह कृपाल बड़े नतपाल गए खल खेचर खात खलाई । —तुलसी (शब्द०) ।

खलाड़ना†—क्रि० अ० [हिं० खलार से नाम०] खलाना । पचकाना । धँसाना । उ०—गाँव में लंगोटी चढ़ाए पेट खलाड़े, दुर्भिक्ष का रूप बनाए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६ ।

खलधारा— संज्ञा स्त्री० [सं०] चपड़ा । तेलचट्टा [को०] ।

खलाना†(पु)—क्रि० स० [हिं० खाली] १. पात्र आदि में से भरी हुई चीज बाहर निकालना । खाली करना । २. गड्ढा करना । गड्ढा बनाना । जैसे—कुआँ खलाना । ३. सोने के पत्तर को घुंडी आदि बनाने के लिये बीच में दबाकर कटोरी की तरह बनाना । ४ किसी फूली हुई सतह को नीचे की ओर धँसाना । पचकाना । जैसे—पेट खलाना । उ०-माँगत पेट खलाय । —तुलसी (शब्द०) ।

खलार†— वि० [हिं० खाला] नीचा । गहरा । जैसे,—खलार भूमि ।

खलाल¹— संज्ञा पुं० [अ० खलाल] धातु आदि का बना हुआ लंबा, नुकीला, छोटा टुकड़ा जिसमें दाँतों में फँसा हुआ अन्न आदि खोदकर निकालते हैं ।

खलाल²—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेल या अ० खलाल] (ताश आदि के खेल में) पूरी बाजी की हार । पूरी मात ।

क्रि० प्र०—करना ।—मानना ।

मुहा०—खलाल देना=मात करना ।

खलास¹—वि० [अ० खलास] १. छूटा हुआ । मुक्त । २. खतम । समाप्त ।

खलास²—संज्ञा पुं० मुक्ति । छुटकारा । रिहाई [को०] ।

खलासी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० खलास] मुक्ति । छुटकारा । छुट्टी ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।

खलासी²—संज्ञा पुं० [उर्दू] १. जहाज पर का वह नौकर जो पाल चढ़ाता, रस्से बाँधता तथा इसी प्रकार के और कार्य करता है । खेमा आदि खड़ा करने और असबाब ढोनेवाला नौकर ।

खलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० खली' [को०] ।

खलित(पु)-वि० [सं० स्खलित] १. चलायमान । चंचल । डिगा हुआ । उ०—दिग्गज चलित खलित मुनि आसन इंद्रादिक भय मान । —सूर (शब्द०) । २. गिरा हुआ । पतित ।

मुहा०—खलित होना=वीर्यपात होना । वीर्य निकल पड़ना । उ०—पारवती ऐसी पत्नी जाकी ताको मन क्यों डोला । खलित भए छवि देखि मोहिनी हा हा करि के बोला ।—कबीर (शब्द०) ।

खलिता(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० खलीता] दे० 'खलीता' । उ०—बिन पर से उड़ता है कैसा । खेल खेलते अविधे के खलिते में घुसा ।—दक्खिनी०, पृ० ६२ ।

खलिन— संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़े की लगाम । २. वह लोहा जिसमें लगाम बँधी रहती है और जो घोड़े के मुँह में रहता है ।

खलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जिसमें गाँव भर के लोगों का खलिहान हो ।—संपूर्णा०, अभि० ग्रं०, पृ० २४८ ।

खलियान—संज्ञा पुं० [सं० खल+स्थान] १. खेतों के पास का वह स्थान जहाँ फसल काटकर रखी, माँड़ी और बरसाई जाती है । अनाज और भूसा दोनों यहीं अलग अलग किए जाते हैं ।

मुहा०—खलियान करना=(१) काटी हुई फसल का ढेर लगाना । (२) तितर बितर करना । नष्ट करना ।

२. राशि । ढेर । जैसे—तुमने तो यहाँ कपड़ों का खलियान लगा रखा है ।

क्रि० प्र० —लगाना ।

खलियाना¹— क्रि० स० [हिं० खाल] खाल उतारना । मृत पशु के शरीर से खाल खींचकर अलगाना । चमड़ा अलग करना ।

खलियाना²†—क्रि० स० [हिं० खाली] खाली करना ।

खलिवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] मसूढ़ों का एक रोग ।

विशेष—इस रोग में वायु के प्रकोप से मसूढ़ों की जड़ का मांस बढ़ जाता है और बड़ी पीड़ा होती है ।

खलिश¹—संज्ञा पुं० [सं०] खलसा नाम की मछली ।

खलिश[2]—संज्ञा स्त्री० [फा० खलिश] वह कसक या पीड़ा जो किसी चीज के चुभने अथवा घाव आदि के भरने के उपरांत पीब आदि दूषित अंशों के बाकी रह जाने के कारण होती है। २. चिंता। फिक्र। उलझन (को०)।

खलिहान†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खलियान'।

खली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेल निकाल लेने पर तेलहन की बची हुई सीठी।

खली[2]—वि० [हिं० खलना] जो बुरा मालूम हो। खलने या खटकने वाला। उ०—करि रारि आगे खली दुष्ट होई।—विश्राम० (शब्द०)।

खली[3]—संज्ञा पुं० [सं० खलिन्] १. महादेव। २. एक प्रकार के दानव जिन्हें महाभारत के अनुसार वशिष्ठ देव ने मारा था।

खली[4]—वि० खल से युक्त। खलवाला (को०)।

खलीज—संज्ञा स्त्री० [अ० खलीज] खाड़ी।

खलीता[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० अल्पा० खलीती] १. दे० 'खरीता'। उ०—अमल खलीती धरि रही।—बी० रासो०, पृ० १७। २. ओहार। पर्दा। उ०—प्रेम के डोरि जतन से बाँधो। ऊपर खलीता लाल ओढ़ावो।—धरम०, पृ० ७४।

खलीता[2]—वि० [हिं० खाली] खाली। बेकार। व्यर्थ। उ०—सोवै खाय करै नहीं सुकृत खोवै दीह खलीता।—रघु० रू०, पृ० १६।

खलीन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खलिन' (को०)।

खलीफा—संज्ञा पुं० [अ० खलीफ़ह] १. अध्यक्ष। अधिकारी। २. कोई बूढ़ा व्यक्ति। ३. खुर्राट (दरजी)। ४. खानसामा। बावर्ची। ५. हज्जाम। नाई। ६. मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी (को०)।

खलु—अव्य०, क्रि० वि० [सं०] १. शब्दालंकार। २. प्रश्न। ३. प्रार्थना। ४. नियम ५. निषेध। ६. निश्चय। अवश्य। उ०—तव प्रभाव बड़वानलहि जारि सकै खलु तूल।—तुलसी (शब्द०)।

खलूरिका, खलूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ अस्त्र शस्त्र का अभ्यास या व्यायाम इत्यादि हो। अखाड़ा। व्यायामशाला।

खलेटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाल = नीचा] खलार भूमि या नीची ज़मीन। उ०—अब वह खेतों के बीच की पगडंडी छोड़कर एक खलेटी में आ गया था।—गोदान, पृ० ५।

खलेरा(पु)†—वि० [अ० खालह्] काला से उत्पन्न या संबद्ध। मौसेरा। उ०—ममेरा फुफेरा खलेरा घनेरा।—धरनी०, पृ० ८।

खलेल—संज्ञा पुं० [हिं० खली + तेल] खली आदि का वह अंश जो फुलेल में रह जाता है और निथारने या छानने पर निकलता है। फुलेल का गाज। उ०—सुख सनेह सब दियो दशरथहि खरि खलेल थिरथानी।—तुलसी (शब्द०)।

खल्क—संज्ञा स्त्री० [अ० खल्क] दे० 'खलक'। उ०—सयाने खल्क से यूँ भागते हैं कि जूँ आतिश सेती भागे है पारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४१।

खल्तमल्त—वि० [तु० खल्तमल्त] मिला जुला। मिश्रित। एकमएक। गड्डमड्ड (को०)।

खल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जहाँ कई खलिहान हों (को०)।

खल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कपड़ा। २. चमड़े की मशक। ३. चमड़ा। ४. चातक। ५. ओषधि कूटने का खल। खरल। ६. गड्ढा (को०)। ७ खाल। नहर (को०)।

खल्लड़—संज्ञा पुं० [सं० खल] १. चमड़े का मशक या थैला। २. ओषधि कूटने का खल। ३. चमड़ा। जैसे—मारते मारते खल्लड़ उधेड़ देंगे। ४. वह वृद्ध मनुष्य जिसका चमड़ा झूल गया हो।

खल्ला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० खाली] १. नृत्य में एक प्रकार का भाव जिससे पेट का खालीपन झलकता है। २. जूता।

खल्ला[2]—संज्ञा पुं० [सं० खल] खलियान।

खल्ला[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० खल्ल, देश० खल्ला = चमड़ा] जूता।

खल्लाक—संज्ञा पुं० [अ० खल्लाक़] सृष्टि को बनानेवाला—ईश्वर। उ०—बचावै कौन बिन खल्लाक बारी।—कबीर मं०, पृ० ५७५।

खल्लासर—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में दसवाँ योग।

खल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़ाही (को०)।

खल्लिट[1]—वि० [सं०] गंजा। खल्वाट (को०)।

खल्लीट[2]—संज्ञा पुं० दे० 'खल्लीट'।

खल्लिश—संज्ञा पुं० [सं०] खनसा नाम की मछली (को०)।

खल्ली[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक वायुरोग जिसमें हाथ पाँव मुड़ जाते हैं। उ०—शिरागत वायु के होने से खल्ली रोग को उत्पन्न करता है।—माधव०, पृ० १३६।

खल्ली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खली'।

खल्लीट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जिससे सिर के बाल झड़ जाते हैं। गंज।

खल्लीट[2]— वि० गंजा (को०)।

खल्व—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जिसके कारण सिर के बाल झड़ जाते हैं। २. एक प्रकार का धान। ३ चना।

खल्वाट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गंज रोग जिसमें सिर के बाल झड़ जाते हैं।

खल्वाट[2]—वि० जिसके सिर के बाल झड़ गए हों। गंजा।

खवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशलता (को०)।

खवा—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, प्रा० खंध] कंधा। भुजमूल। उ०—(क) कच समेटि कर भुज उलटि खए सीस पट टारि। काको मन बाँधै न यह जूरो बाँधनिहारि।—बिहारी (शब्द०)। (ख) माधव जी आवनहार भये। अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खए।—सूर (शब्द०) (ग) खए लगि बाहु उसारि उसारि। भए इतउत्त जबै रिस धारि।—सूदन (शब्द०)।

मुहा०—खवे से खवा छिलना = (बहुत अधिक भीड़ के कारण) कंधे से कंधा छिलना।

खवाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना] १. खाने की क्रिया। २. वह

धन आदि जो भोजन करने के पुरस्कार में दिया जाय। जैसे,—कलेवा खवाई।

विशेष—विवाह आदि के अवसर पर वर या वरपक्ष के लोगों को जलपान के समय कहीं कहीं नेग देने का नियम है।

खवाई[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाव का वह गड्ढा जिसमें मस्तूल खड़ा किया जाता है।

खवाना—क्रि० स० [हिं० खाना] भोजन कराना। खिलाना। उ०—कमलनैन को पान खवावत पहरावत उर माल।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२६।

खवारी—वि० [हिं० कवाड़] खोटा। बुरा। खराब।

खवारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशजल। वर्षा [को०]।

खवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख्वारी] दे० 'ख्वारी'। उ०—हूँ पत तूँ भ गुणा बलिहारी, खारी वातां कीध खवारी।—रघु० रू०, पृ० १६७।

खवाष्प—संज्ञा पुं० [सं०] अवश्याय। ओस [को०]।

खवास[1]—संज्ञा पुं० [अ० ख़वास] [स्त्री० खवासिन] १. राजाओं और रईसों आदि का खास खिदमतगार, जिसका काम कपड़े पहनाना, हुक्का भरना, पान लाना आदि है। २. खास लोग। मुख्य लोग (को०)। ३. गुणधर्म। खासियत (को०)।

खवास[2]—संज्ञा स्त्री० वह दासी जो राजा के पास एकांत में आती जाती हो। पासवान। रखेली। उ०—हुवे वसीरो वाणियो, पातर हुवै खवास। हुवै कीमियागार ठग, विप्र हूर जावै नास।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२।

खवास[3]—संज्ञा पुं० [अ० ख़वास = सेवक] वह जो सेवा करता हो। नापित। नाऊ।

खवासी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खवास + ई (प्रत्य०)] १. खवास का काम। खिदमतगारी। उ०—और आज्ञा करी जो अब तू हमारी खवासी करि।—दो सौ बावन०, पृ० १८१। २. चाकरी। नौकरी। उ०—उग्रसेन की करत खवासी।—विश्राम (शब्द०)। ३. हाथी के हौदे या गाड़ी आदि में पीछे की ओर वह स्थान जहाँ खवास बैठता है।

खवासी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अँगिया में का वह जोड़ जो बगल में रहता है।

खविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिर्विद्या। ज्योतिष [को०]।

खवी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खवीद = हरी घास या फसल] एक प्रकार की घास जिसे पंजाब में घटियारी कहते हैं।

विशेष—यह अगिया घास की तरह होती है और इसमें से सुगंध आती है। इसकी पत्तियाँ लंबी होती हैं जिनसे एक प्रकार का सुगंधित तेल निकलता है और औषध के काम में आता है। यह कराची से पेशावर और लुधियाना तक रेगिस्तान में और बलुई भूमि में उपजती है। इसे संस्कृत में 'भूस्तृण' कहते हैं।

खवैया—संज्ञा पुं० [हिं० √खा + वैया (प्रत्य०)] १. खानेवाला। अधिक खानेवाला। २. खिलानेवाला।

खश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खस'।

खशखाश—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़शख़ाश] पोस्ते का क्षुप और उसका बीज [को०]।

खशी—वि० [सं० खशिन्] हलका आसमानी रंग का [को०]।

खश्म—संज्ञा पुं० [फ़ा० खश्म, तुल० सं० खव्य = क्रोध] गुस्सा। कोप। रोष [को०]।

यौ०—खश्मगीन, खश्मनाक = गुस्से से भरा हुआ। प्रकुपित।

खश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा [को०]।

खष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोप। क्रोध। गुस्सा। २. क्रूरता। निर्दयता। ३. हिंसा [को०]।

खस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्तमान गढ़वाल और उसके उत्तरवर्ती प्रांत का प्राचीन नाम। २. इस प्रदेश में रहनेवाली एक प्राचीन जाति। उ०—*स्वपच सवर खस जमन जड़ पाँवर* कोल किरात। राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—व्रात्य क्षत्रिय से उत्पन्न इस जाति का वर्णन महाभारत और राजतरंगिणी में आया है। इस जाति के वंशज अब तक नेपाल और किस्तवाड़ (काश्मीर) में इसी नाम से विख्यात हैं और अपने आपको क्षत्रिय बतलाते हैं। ये लोग बड़े परिश्रमी और साहसी तथा प्रायः सैनिक होते हैं। इन्हीं को खासिया भी कहते हैं।

३. खुजली (को०)।

खस[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़स] १. गाँडर नामक घास की प्रसिद्ध सुगंधित जड़।

विशेष—यह घास भारत, बर्मा और लंका के मैदानों और छोटी पहाड़ियों पर विशेषतः नदियों और तालों के किनारे उत्पन्न होती है। गरमी के दिनों में कमरे आदि ठंढा रखने के लिये दरवाजों और खिड़कियों में इसकी टट्टियाँ लगाई जाती हैं। कहीं कहीं इसकी पंखियाँ और टोकरियाँ भी बनती हैं। इसका इत्र भी बहुत अच्छा बनता है और अधिक दामों में बिकता है। अनेक प्रकार की सुगंधियाँ बनाने के लिये विलायत में भी इसकी बहुत खपत होती है।

२. सूखी घास (को०)।

खसकंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० खसकना + अंत (प्रत्य०)] खसकने का काम।

खसकना—क्रि० अ० [अनु०] धीरे धीरे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। अपने स्थान से इधर उधर हट जाना। स्थानांतरित होना। सरकना। जैसे—(क) यह ईंट खसक गई है (ख) उधर बहुत जगह है, जरा खसक चलो। (ग) हमें देखते ही वे खसक गए।

संयो० क्रि०—आना।—चलना।—देना।—पड़ना।

विशेष—इस शब्द में 'गुप्त रूप से' या 'अनजान में' का भी कुछ भाव मिला हुआ है।

खसकवाना—क्रि० स० [हिं० खसकना का प्रे० रूप] खसकाने का काम दूसरे से कराना।

खसकाना—क्रि० स० [हिं० खसकना] १. खसकना का सकर्मक रूप।

स्थानांतरित करना। हटाना। २. गुप्त रूप से कोई चीज हटाना या देना। जैसे—उन्होंने सौ रुपए खसकाए, तब पिंड छूटा।

संयो० क्रि०—देना। जैसे—चार दिन पहले ही उन्होंने सब चीजें खसका दी थीं।

खसखस—संज्ञा स्त्री० [सं० खस्खस] पोस्ते का दाना।

विशेष—यह आकार में सरसों के बराबर और सफेद रंग का होता है। वैद्यक में इसे कफनाशक और मादक माना है और इसके अधिक सेवन से पुरुषत्व की हानि बतलाई गई है।

खसखसा—वि० [अनु०] [स्त्री० खसखसी] जिसके कण दबाने से बालू की तरह अलग अलग हो जायँ। भुरभुरा। उ०—बालू जैसी खसखसी, उज्ज्वल जैसी धूप। ऐसी मीठी कुछ नहीं जैसी मीठी चूप।—(शब्द०)।

खसखसी—वि० [हिं० खसखस] [स्त्री० खसखसी] खसखस की तरह का। बहुत छोटा ; जैसे—खसखसी दाढ़ी।

खसखाना—संज्ञा पुं० [फा० खसखानह्] खस की टट्टियों से घिरा हुआ स्थान। वह घर या कोठी जिसके चारों ओर खस की टट्टियाँ लगी हों। उ०—धाय धँसी खसखानन हाय निकुंजन पुंज फिरी भरमी मैं।—दत्त (शब्द०)।

खसखास—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खसखस'।

खसखासी¹—संज्ञा पुं० [हिं० खसखस] पोस्ते के फूल का रंग। हलका आसमानी रंग।

खसखासी²—वि० पोस्ते के फूल के रंग का। हलका आसमानी।

खसतिल—संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ता (को०)।

खसना(पु)—क्रि० अ० [देश० √खस (खसइ)=गिरता है अथवा हिं० खसकना] अपने स्थान से हटना। खसकना। गिरना। उ०—(क) खसी माल मूरति मुसुकानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सदा कहत कर जोरि वचन मृदु मनहुँ खसत मुख फूला। रघुराज (शब्द०)। २. कूदना। गिरना। फाँदना। उ०—अवलोकव नहि तनिक रूप आँखि अछइत कइसे खसव कूप। —विद्यापति, पृ० १६६।

खसनीव—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का गंधाबिरोजा जो शीराज से आता है।

खसपोश—वि० [फा० खस+पोश] घास फूस से ढँका हुआ। सूखी घास से ढँका हुआ (को०)।

खसफलक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ते के फल का दूध या रस। अफीम (को०)।

खसबो(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशबू] सुगंध। सौरभ।

खसम¹—संज्ञा पुं० [अ०] १. पति। खाविंद। उ०—जियत खसम किन भसम रमायो।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—खसम करना=किसी स्त्री का किसी पुरुष से पति संबंध स्थापित करना।

यौ०—खसमपीटी=पति की मृत्यु देखनेवाली। विधवा (गाली)। २. स्वामी। मालिक। उ०—खसम बिन तेली के बैल भयो।—कबीर (शब्द०)। ३. वैरी। दुश्मन। शत्रु (को०)।

खसम²—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम (को०)।

खसरा¹—संज्ञा पुं० [अ० खसरह] १. पटवारी का एक कागज जिसमें प्रत्येक खेत का नंबर, रकबा आदि लिखा रहता है।

यौ०—खसरा आबादी=गाँव की जनसंख्या और घर आदि के लेखाजोखा का विवरणपत्र जो पटवारी के पास रहता है। खसरा तकसीम=जमीन जायदाद के बँटवारे का खसरा।

२. किसी हिसाब किताब का कच्चा चिट्ठा।

खसरा²—संज्ञा पुं० [फा० खारिश] एक प्रकार की खुजली जिससे बहुत कष्ट होता है।

खसर्प, खसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

खसलत—संज्ञा स्त्री० [अ० खस्लत] स्वभाव। आदत। प्रकृति। गुण। खासियत।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

खसाना—क्रि० स० [हिं० खसना] नीचे की ओर ढकेलना या फेंकना। गिराना।

खसारा—संज्ञा पुं० [अ० खसारह्] हानि। घाटा। नुकसान (को०)।

खसासत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कृपणता। कंजूसी। २. नीचता। अधमता (को०)।

खसिंधु—संज्ञा पुं० [सं० खसिन्धु] चंद्रमा (को०)।

खसिया¹—वि० [अ० खस्सी] १. जिसके अंडकोश निकाल लिए गए हों। बधिया। २. नपुंसक। हिजड़ा।

खसिया²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० खसी] बकरा। उ०—कह कबीर वे दूनौ भूले रामहिं किनहुँ न पाया। वे खसिया वे गाय कटावैं बादे जन्म गँवाया।—कबीर (शब्द०)।

खसिया³—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक पहाड़ी का नाम जो आसाम में है। २. इस पहाड़ी के आसपास का प्रदेश। उ०—चला परवती लेइ कुमाऊँ। खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ।—जायसी (शब्द०)।

खसियाना†—क्रि० स० [हिं० खसी या खसिया] अंडकोश निकालकर या कूटकर पुंस्त्वहीन करना। बधिया करना। नपुंसक बनाना।

खसी—संज्ञा पुं०, वि० [अ० खस्सी] दे० 'खस्सी'।

खसीस—वि० [अ० खसीस] १. कंजूस। सूम। कृपण। २. कमीना। पामर। नीच (को०)।

खसोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खसोटना] १. बुरी तरह उखाड़ने या नोचने की क्रिया। २. बलपूर्वक लेने या छीनने की क्रिया।

खसोटना—क्रि० स० [सं० कृष्ट] १. बुरी तरह उखाड़ना या उचाड़ना। नोचना। जैसे—(क) बाल खसोटना। (ख) पत्ते खसोटना। २. बलपूर्वक लेना। छीनना।

खसोटा—संज्ञा पुं० [हिं० खसोटना] कुश्ती का एक पेंच।

खसोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खसोट'।

खस्खस—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोस्ता। खसखस (को०)।

खस्तगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खस्तगी] भुरभुरापन। खस्तापन (को०)।

खस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

ख़स्ता-वि० [फ़ा० ख़स्तह्] १. बहुत थोड़ी दाब से टूट जानेवाला। भुरभुरा।

यौ०—खस्ता कचौड़ी = एक प्रकार की छोटी कचौड़ी जो मोयन डालकर बनाई जाती है और बहुत भुरभुरी होती है।

२. जख्मी। घायल (कौ०) ३. दुर्दशाग्रस्त। बदहाल (कौ०)। थका हुआ। क्लांत (कौ०)।

यौ०—खस्तादिल = जिसका मन दुःखी हो। दुःखित हृदय। खस्ताहाल = दुर्दशाग्रस्त। अकिंचन। दरिद्र।

खस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यकांत मणि। २. चंद्रकांत मणि। चंद्रमणि। (कौ०)।

खस्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह कल्पित बिंदु जो सिर के ऊपर आकाश में माना गया है। शीर्षबिंदु। पादबिंदु का उलटा।

खस्सी[1]—संज्ञा पुं० [अ०] बकरा। उ०—देवी जी को खस्सी भेड़ा पीरन को नौ नेजा।—कबीर श०पृ० ४१।

मुहा०—खस्सी चढ़ाना = बकरे को बलिदान करना।

खस्सी[2]—वि० १. बधिया। २. हिजड़ा। नपुंसक।

खहखह—संज्ञा पुं० [अनु०] खिलखिलाकर हँसने की आवाज। कहकहा। उ०—कहकह सु बीर कहंत खहखह सु संभु हसंत।—प० रासो०, पृ० ८०।

खहदल†—संज्ञा पुं० [सं० खः] आकाश। उ०—धरण खहदल धड़हड़े।—रा० रू०, पृ० २८०।

खहर—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसका हर शून्य हो।

विशेष—इस राशि में कोई राशि जोड़ने या घटाने से भी यह राशि ज्यों की त्यों बनी रहती है, घटती या बढ़ती नहीं। जैसे—$\frac{४}{०}$, इसमें यदि $\frac{२}{१}$ जोड़ दिया जाय तो भी योग $\frac{४}{०}$ ही रहेगा; और यदि $\frac{२}{१}$ घटा भी दिया जाय तो भी $\frac{४}{०}$ ही शेष रहेगा।

($\frac{४}{०}+\frac{२}{१}=\frac{४}{०}+\frac{०}{०}=\frac{४}{०}$। $\frac{४}{०}-\frac{२}{१}=\frac{४}{०}-\frac{०}{०}=\frac{४}{०}$)।

खांड—संज्ञा पुं० [सं० खाण्ड] १. खंड खंड होने या अंतराल या व्यवधान होने की स्थिति। खंडित होने का कार्य। २. खाँड का बना पदार्थ मिश्री आदि (कौ०)।

खांडव—संज्ञा पुं० [सं० खाण्डव] १. कुरुक्षेत्र का एक प्राचीन वन।

विशेष—महाभारत और तैत्तिरीय आरण्यक में इसका वर्णन पाया जाता है। यह वन इंद्र द्वारा रक्षित था। अर्जुन और कृष्ण की सहायता पाकर अग्नि ने अर्जुन के बाण से प्रकट होकर इसे जलाया था। इंद्रप्रस्थ नगर इसी वन की भूमि में बसाया गया था।

२. खाँड़ का बना पदार्थ।

खांडवप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० खाण्डवप्रस्थ] एक स्थान जो धृतराष्ट्र द्वारा पांडवों को मिला था। पीछे पांडवों ने यहीं पर इंद्रप्रस्थ बसाया था।

खांडवराग—संज्ञा पुं० [सं० खाण्डवराग] खाँड़ से बना एक प्रकार का मिष्ठान्न। उ०—और कंद, मूल, फल, तिल, मधु, घृत मिलाकर खांडवराग तैयार किया जा रहा था।—वै० न०, पृ० ४१४।

खांडविक—संज्ञा पुं० [सं० खाण्डविक] मिठाई बनानेवाला हलवाई।

खांडिक—संज्ञा पुं० [सं० खाण्डिक] हलवाई। खांडविक।

खांडो—संज्ञा पुं० [सं० षाडव] दे० 'षाडव'।

खाँ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खान[3]'।

खाँबहादुर—संज्ञा पुं० [फ़ा० खाँ + तु० बहादुर] अँगरेजी राज्यकाल की एक उपाधि जो राजभक्त, वफादार मुसलमानों को दी जाती थी।

खाँई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खाई'।

खाँख†—संज्ञा स्त्री० [सं० खम्] छेद। सूराख।

खाँखर†—वि० [हिं० खाँख] १. जिसमें बहुत छेद हों। सूराखदार। जैसे—खाँखर बरतन। २. जिसकी बुनावट दूर दूर पर हो। जैसे—खाँखर कपड़ा, खाँखर खटिया ३. खोखला। पोला।

खाँग[1]—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग, प्रा० खग्ग] १. काँटा। कंटक।

क्रि० प्र०—गड़ना।—लगना।

२. काँटा जो तीतर, मुर्ग आदि पक्षियों के पैरों में निकलता है। ३. गैंडे के मुँह पर का सींग। ४ जंगली सूअर का वह दाँत जो मुँह के बाहर काँटे की तरह निकला होता है।

क्रि० प्र०—चलाना। मारना।

खाँग[2]—संज्ञा पुं० [सं० खञ्ज] खुरवाले पशुओं का एक रोग जिसमें उनके खुरों में घाव हो जाता है। खुरपका।

खाँग[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खँगना] १. त्रुटि। कमी। उ०—राम कहा कछु आहि न खाँगा। को राखै जो आपन माँगा।—चित्रा०, पृ० २२७।

खाँगड़—वि० [हिं० खाँग + ड़ (प्रत्य०)] १. जिसके खाँग हों। खाँगवाला। २. हथियारबंद। शस्त्रधारी। ३. बलवान्। ४ अक्खड़। उद्दंड।

खाँगड़ा—वि० [हिं०] दे० 'खाँगड़'।

खाँगना[1]—क्रि० अ० [सं० खञ्ज = लोंड़ा] लँगड़ा होना या चलने में असमर्थ होना। उ०—हौं अब कुशल एक पै माँगउ। प्रेम पंथ संत बाँधि न खाँगउ।—जायसी (शब्द०)।

खाँगना[2]†—क्रि० अ० [सं० क्षीण, हिं० छीजना] कम होना। घटना। उ०—कहहु सो पीर काह बिनु खाँगा। समुद सुमेरु आव तुम माँगा।—जायसी ग्रं०, पृ० ४६।

खाँगा†—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग, प्रा० खग्ग] खड्ग। खाँडा। उ०—खरदूषर त्रिसर पल झाल खाँगा पूर तन पहरियाँ।—रघु० रू०, पृ० १३१।

खाँगी[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खँगना] कमी। घाटा। त्रुटि।

खाँगी[2]†—वि० न्यून। कम। छोटा। त्रुटिपूर्ण।—सोरह सहस पदुमिनी माँगी। सबही दीन्ह न काहू खाँगी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४५।

खाँच[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० खाँचना] १. दो वस्तुओं के बीच की जगह। संधि। जोड़। २. खींचकर बनाया हुआ निशान। ३. पठन। खचन।

खाँच[2]†—संज्ञा पुं० [हिं०] खाँचा। १. लकड़ी आदि का महीन नुकीला लंबा खंड।

खाँचना(पु)†—क्रि० स० [कर्षण या कसेन = खींचना, अथवा खचन = बैठाना] [वि० खँचैया] १. अंकित करना। चिह्न बनाना। खींचना। उ०—आप कीय रेख खाँचि देव साखि दै चले। नाघिहैं ते भस्म होहिं जीव जे बुरे भले।—केशव (शब्द०)। २. खींच या कसकर बनाना। जैसे,—(क) जाली खाँचना। (ख) डलिया खाँचना। ३ जल्दी जल्दी या भद्दी लिखावट लिखना। ४. खचित या युक्त करना।

खाँचा—संज्ञा पुं० [हिं० खाँचना] [स्त्री० खाँची] १. पतली टहनी आदि का बना बड़ा टोकरा। झावा। २.बड़ा पिंजड़ा।

खाँचाताँण†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० खींचातान'। उ०—वड़े भार जूपै वहै करै न खाँचाताण।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४१।

खाँची†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाँचा का अल्पा०] खँचिया। छोटा खाँचा।

खाँटी—वि० (?) १. सुच्चा। साफ। बिना मिलावट का। २. निरा। बिलकुल। पूर्णतया।

खाँड - संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड] १. बिना साफ की हुई चीनी। कच्ची शक्कर। २, ईख के रस को पकाकर किया गया कुछ गीला और दानेदार पदार्थ जिससे शक्कर तैयार की जाती है। राव।

खाँडना†—क्रि० स० [सं० खण्ड = टुकड़ा] १. कुचल कुचलकर खाना। चबाना। उ०—काढ़े अधर डाभ जनु चीरा। रुहिर चुवै जो खाँडे बीरा।—जायसी (शब्द०)। २. खंड खंड करना। उ०—अमर सुजान मोहकम बहलोल खान, खाँड़े.छाँड़े डाँडे उमराव दिलीसुर के।—भूषण ग्रं०, पृ० २४१। ३. (दाँतो से) काटना। उ०—मेरे इनके बीच परौ जिनि अधर दसन खाँडोगी।—सूर० (राधा०), १५११।

खाँडर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड = टुकड़ा] टुकड़ा। अंश। खंड।

खाँडसारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] खाँड़ की बनी हुई शर्करा।

खाँड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] खड्ग(अस्त्र)। चौड़ी फलवाली तलवार। उ०—जाति सुर अरु खाँड़ै सूरा। अउ बुधिवंत सबई गुन पूरा।—जायसी (शब्द०)।

खाँड़ा²—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] भाग। टुकड़ा (विशेषतः चतुर्थांश)।

खाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] स्त्रियो के पहनने का वस्त्र। साड़ी। उ०—राती खोड़ी देखि कबीरा, देखि हुमारा सिंगारो। सरग-लोक थैं हम चलि आई, करन कबीर भरतारो।—कबीर ग्रं०, पृ० १८०।

खाँड़ो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'षाड़व'।

खाँद¹†—संज्ञा पुं० (सं० स्कन्ध) कंधा। उ०—लिए खाँदे ऊपर अज जान होर दिल।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

खाँद²†—संज्ञा पुं० [हिं०] पैरों से किसी स्थान की जमीन या घास-पात को कुचलने का निशाना।

खाँदना†—क्रि० स० [हिं०खाँद से नाम०] दे० 'खूँदना'।

[illegible]†—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध] कंधा। उ०—मो घर रा गाडा तणै, ता खांधे भर भार।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ४०।

[illegible]धना†—क्रि० स० [सं० खादन] खाना। भक्षण करना। उ०—जो तौ कर पग नहीं कहौ ऊखल क्यों बाँधौ। नैन नासिका मुखम चोरि दधि कौने खाँध्यो।—सूर०, १०।४०९५।

खाँप—संज्ञा स्त्री० [हिं०] टुकड़ा। फाँक।

खाँपण†—संज्ञा पुं० [अ० कफन] दे० 'कफन' उ०—मन चलाय खापण मही काढ़ै नफो कुचील।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६७।

खाँपना†—क्रि० स० [सं० क्षेपण, प्रा० खेप्पन] १. खोंसना। २. जड़ना। लगाना ३. चारपाई की बुनावट में, एक नुकीली कील से उसकी बुनन को कस या दबाकर दृढ़ करना। गठना।

खाँभ(पु)†¹—संज्ञा पुं० [हिं० खंभा] खंभा। स्तंभ। उ०—कीन्ह खाँभ दुइ जगत की ताईं।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३२।

खाँभ(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं० खाम] लिफाफा। उ०—ताहि पाणि तें लियो निकारी। बाँचन लागी खाँभ उघारी।—रघुराज (शब्द०)।

खाँभना—क्रि० स० [हिं० खाम, खाभ + ना (प्रत्य०)] लिफाफे में बंद करना। उ०—अस पाती लिखि खाँभी देवाना। चंद्र-हासकर दियो अज्ञाना।—रघुराज (शब्द०)।

खाँवाँ¹—संज्ञा पुं० [सं० खम्] अधिक चौड़ी और गहरी खाई। उ०—कचन के कोट पै कँगूरे अति रूरे बने, खांवाँ जल पूरे रक्षै सूरे शस्त्र धारे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

खावाँ²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटा पौधा जिसके फूल सफेद होते हैं।

खाँवाँ³—संज्ञा पुं० [सं० खात] खेत या जलस्थान के किनारे का कुल ऊँचा मिट्टी का घेरा। मेंड़।

खासना—क्रि० अ० [सं० कासन,प्रा० खाँसना] कफ या और कोई अटकी हुई चीज निकालने या केवल शब्द करने के लिये वायु को झटके के साथ कंठ से बाहर निकालना।

खाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० काश, कास] १. गले और श्वास की नलियों में फँसे या जमे हुए कफ अथवा अन्य पदार्थ को बाहर फेंकने के लिये झटके के साथ हवा निकालने की क्रिया। कास।

विशेष—यह क्रिया कुछ तो स्वाभाविक और कुछ प्रयत्न करने पर होती है जिसमें कुछ शब्द भी होता है। डाक्टरी मत से यह कलेजे और फेफड़े से संबंध रखनेवाला अनेक साधारण रोगों का चिह्न मात्र है।

२. वैद्यक के अनुसार एक स्वतत्र रोग।

विशेष—यह रोग श्वास की नलियाँ में धूआँ और धूल लगने, रूखा अन्न खाने, भोज्य पदार्थ के श्वास की नलियों में चले जाने या स्निग्ध पदार्थ खाकर ऊपर से जल पीने से उत्पन्न होता है। इसमें उदानवायु की अनुगत होकर प्राणवायु दूषित हो जाती है और वायु के जोर से खों खों शब्द के साथ कफ निकलता है। खाँसी होने पर गले में सुरसुराहट होती है भोजन गले में कुछ कुछ रुकता है। आवाज बिगड़ जाती है और अग्निमंदता तथा अरुचि हो जाती है। इसके बढ़ जाने से राजयक्ष्मा और उरःक्षत आदि भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। उत्पत्तिभेद से यह पाँच प्रकार की मानी गई है। यथा—

वातज, पित्तज, कफज, क्षयज और क्षतज। जिस खाँसी के साथ मुँह से कफ निकले, उसे तर, और जिसके साथ कुछ भी न निकले, उसे सूखी खाँसी कहते हैं।
३. खाँसी की क्रिया।
क्रि० प्र०—आना।—उठना।—होना।

खा—प्रत्य० [फ़ा० खा] खानेवाला। भक्षक। जैसे, शकरखा।

खाइन—वि० [अ० खाइन] रुपए पैसे में गड़बड़ी करनेवाला। खयानत करनेवाला। अर्थ संबंधी व्यवहार के अयोग्य [को०]।

खाई—संज्ञा स्त्री० [सं० खानि, प्रा० खाइँ] १ वह नहर जो किसी गाँव, किले, बाग या महल आदि के चारों ओर रक्षा के लिये खोदी गई हो। उ०—कबीर खाई कोट की पानी पिवै न कोय। जाय मिलै जब गंग से सब गंगोदक होय।—संतबानी, भा० १, पृ० ३०। २. खंदक। उ०—चहूँ ओर फिरि खाई। जिन देखो तिन खाई। (खाई की पहेली)—खुसरो (शब्द०)। ३. युद्धक्षेत्र में सुरक्षार्थ खोदे जानेवाले गड्ढे जिनमें छिपकर अपनी रक्षा और शत्रु पर आक्रमण किया जाता है। अँगरेजी में इसे 'ट्रेंच' कहते हैं।

खाऊ—वि० [हिं० √खा + ऊ (प्रत्य०)] १. बहुत खानेवाला। पेटू। २. घूस लेनेवाला। घूसखोर।
यौ०—खाऊ बीर = दूसरों का माल हड़प जानेवाला। खाऊ मीत = स्वार्थी मित्र। मतलबी दोस्त।

खाक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाक] १. धूल। रज। गर्द। २. राख। भस्म। ३. मिट्टी। मृत्तिका।

मुहा०—(कहीं पर) खाक उड़ना = बरबाद होना। तबाह होना। नाश होना। उजाड़ होना। जैसे,—अब वहाँ पर खाक उड़ रही है। खाक उड़ाना = खाक छानना। मारे मारे फिरना। वैसे वह इधर उधर खाक उड़ता फिरता है। (किसी की) खाक उड़ाना = उपहास करना। मिट्टी पलीद करना। धूल उड़ाना। छीट उड़ाना। जैसे,—लोगों ने उसकी खूब खाक उड़ाई। खाक करना = तबाह करना। नष्ट भ्रष्ट करना। खाक का पुतला = मनुष्य। आदमी।—आदमी है तो खाक का पुतला मगर बला की तबीयत पाई है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ७। खाक का पैवंद होना = मृत्यु होना। खाक चाटना = सिर नवाना। नम्रता करना। अनुनय विनय करना। खाक छानना = (१) अच्छी तरह तलाश करना। बहुत ढूँढना। जैसे,—कहाँ कहाँ की खाक छाना पर वह न मिला। (२) मारा मारा फिरना। आवारा फिरना। चारों ओर भटकते फिरना। जैसे,—वह नौकरी के लिये चारों ओर खाक छानता फिरा। खाक डालना = (१) छिपाना। दबाना। जैसे,—उसके ऐबों पर कहाँ तक खाक डाली जाय। (२) भूल जाना। गई गुजरी करना। जैसे,—पुरानी बातों पर खाक डालकर अब मेल कर लो। खाक बरसना = अच्छी दशा न रहना। नष्ट भ्रष्ट हो जाना। खाक में मिलना = बिगड़ना। बरबाद होना। चौपट होना। नष्ट भ्रष्ट होना। खाक में मिलाना = बिगाड़ना। तबाह करना। नष्ट भ्रष्ट करना। सत्यानाश करना। जैसे,—उसने सारी आबरू खाक में मिला दी। खाक सिर पर उड़ाना या डालना = शोक करना। रोना पीटना। खाक स्याह करना = नष्ट कर देना। बर्बाद कर देना।
यौ०—खाक पत्थर = व्यर्थ वस्तु। निकम्मी चीज।
४. भूमि। जमीन (को०)। ५. तुच्छ। अकिंचन। ६. कुछ नहीं। जैसे,—वे खाक पढ़ते लिखते हैं।

खाक अंदाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० खाक अंदाज] १. कूड़ा करकट रखने का पात्र। कूड़ाखाना। २. किले से शत्रु पर गोली आदि चलाने और कूड़ा करकट फेंकने के लिये बना सूराख। ३. चूल्हे से राख निकालने का छेद या बरतन [को०]।

खाकदान—संज्ञा पुं० [फ़ा० खाकदान] कूड़ाखाना। कूड़ाघर। २. संसार। दुनिया।

खाकनाय—संज्ञा पुं० [फ़ा० खाकनाए] धरती का वह तंग हिस्सा जो दो बड़े धरती के टुकड़ों को मिलाता है। स्थलडमरूमध्य।

खाकरोब—संज्ञा पुं० [फ़ा० खाकरोब] गलियों में झाड़ू देनेवाला।

खाकरोबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाकरोबी] झाड़ू लगाने का काम। सफाई करने का काम। उ०—खाकरोबी सब सूँ बेहतर या मुझे। ना छतर हो तख्त यो अफ सर मुझे।—दक्खिनी०, पृ० १८८।

खाकशी—संज्ञा पुं० [फ़ा० खाकशी] ओषधि के कार्य में प्रयुक्त होनेवाला खाकसीर का दाना [को०]।

खाकसार—वि० [फ़ा० खाकसार] १. विनीत। विनम्र। २. असहाय। निराश्रित। दीन [को०]।

खाकसारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाकसारी] १. विनम्रता। उ०—कितनी खाकसारी है, इसी को शराफत कहते हैं कि इंसान अपने को भूल न जाय।—काया०, पृ० ५५१। २. दीनता। निराश्रयता। असहायपन।

खाकसीर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाकशीर] एक ओषध जिसे खूबकलां भी कहते हैं।
विशेष—यह एक घास का बीज है जो मैदानों, बागों, जंगलों तथा पहाड़ों में होता है। इसकी पत्तियाँ लंबी और टहनी के दोनों ओर आमने सामने लगती हैं। फल झड़ जाने पर छोटी घुंडियाँ लगती हैं, जिनमें छोटे छोटे दाने झिल्ली में लिपटे रहते हैं। खाकसीर दो प्रकार की होती है—एक छोटी, दूसरी बड़ी। छोटी का रंग कुछ सुर्खी लिए होता है और बड़ी का रंग कुछ स्याही लिए होता है। बड़ी से छोटी अधिक कड़ई होती है। यह घास अरब फारस आदि देशों में होती है।

खाका—संज्ञा पुं० [फ़ा० खाकह] १ चित्र आदि का डौल, रेखाचित्र। ढाँचा। २. नकशा। मानचित्र।
क्रि० प्र०—उतारना।—खींचना।—बनाना।
मुहा०—खाका उड़ाना = (१) नकल उतारना। एक ही ढाँचे पर बनाना। (२) उपहास करना। निंदा करना। (३) धूल उड़ाना। बदनामी करना।

३. किसी काम का अनुमान। वह कागज जिसमें किसी काम के खर्च का अनुमान लिखा जाय। चिट्ठा। तखमीना। ४. कच्चा चिट्ठा। मसौदा। ५. किसी कहानी, लेख आदि का ढांचा।

ख़ाकान—संज्ञा पुं० [तु० ख़ाक़ान] १. महाराज। सम्राट्। शाहनशाह। २. तुर्की और चीन के पुराने शासकों की उपाधि [को०]।

ख़ाकानी—संज्ञा स्त्री० [तु० ख़ाक़ान+ई(प्रत्य०)] शाहनशाही। उ०—तुमने मंगोलों से सीखी रणचतुराई ओ खाकानी।—हंस०, पृ० १७।

ख़ाकिस्तर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़ाकिस्तर] १. जली हुई वस्तु का अवशेष। २. राख। भस्म [को०]।

ख़ाकिस्तरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़ाकिस्तरी] १. मटमैला रंग। २. मटमैले रंग की कोई भी वस्तु [को०]।

ख़ाकी¹—वि० [फ़ा० ख़ाक] १. मिट्टी के रंग का। भूरा। २. मिट्टी से संबंधित। मिट्टी का बना हुआ। मृण्मय [को०]। ३. बिना सींची हुई (भूमि)।

मुहा०—खाकी अंडा = (१) वह अंडा जो भीतर से बिगड़ गया हो और जिसमें से बच्चा न निकले। वयंडा। गंदा अंडा। (२) हरामजादा।

ख़ाकी²—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़ाक] १. एक प्रकार के वैष्णव साधु जो तमाम शरीर में राख लगाया करते हैं। २. मुसलमान फकीरों का एक संप्रदाय जो खाकी शाह का अनुयायी है। ३. पुलिस फौज आदि के सिपाहियों की वर्दी के लिये प्रयुक्त होनेवाला मटमैले रंग का मोटा वस्त्र।

ख़ाकेपा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़ाक-ए-पा] १. पदरज। पांव की धूल। २. अत्यंत विनीत या दीन व्यक्ति [को०]।

खाख†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़ाक] दे० 'खाक'। उ०—हुतभुक विच जल खाक ह्वै उडर्यो है दिन एक।—बांकी० ग्रं०, भा० २ पृ० ४१।

खाखर—संज्ञा पुं० [हिं०] एक पक्षी। उ०—खाखर लावा घेरे परे। जाला माँह परगट सब धरे।—चित्रा०, पृ० २५।

खाखरा¹Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] एक युद्धवाद्य। उ०—बज्जत सुगज्जत खाखरे। जे करत दिसि दिसि साकरे।—हिम्मत०, पृ० ७।

खाखरा²†—संज्ञा पुं० [देश० खखरग] १. सूखी और कड़ी रोटी। २. आटे को मोयन देकर घी में पकाया हुआ एक प्रकार का सूखा और कड़ा खाद्य पदार्थ। गुजरात में इसका विशेष चलन है।

खाखस†—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़शख़ाश] पोस्त का दाना। खसखास।

खाखीⓅ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़ाक, पुं० हिं० खाख+ई (प्रत्य०)] धूलि। भस्म। खाक। उ०—प्रेम का चोलना सत्त सेल्ही बनी, मान को मर्दि कै करै खाखी।—पलटू०, पृ० २६।

खाग¹Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग, प्रा० खग्ग] खड्ग तलवार। उ०—(क) विग्रहिया खागे समवादी।—रा० रू०, पृ० १४। (ख) गहूँ खाग सनमुक्ख दुहूँ अत गर्व सुद्ध द्रढ़।—हृ० रासो, पृ० २५।

खाग²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खाँग'।

ख़ाग³—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़ाग] मुर्गी का अंडा [को०]।

खागना¹—क्रि० अ० [हिं० खाँग = काँटा] चुभना। गड़ना। उ०—(क) शर सो प्रति वासर वासर लागैं। तन घाव नहीं मन प्राणन खागैं।—केशव (शब्द०)। (ख) नासा तिलक प्रसून पद विपर चिबुक चारु चित खाग।—सूर (शब्द०)।

खागना²—क्रि० अ० [हिं०] 'खाँगना'।

ख़ागीना—संज्ञा पुं० [सं० ख़ागीनह्] अंडे की बनी तरकारी आदि [को०]।

खाज¹—संज्ञा पुं० [सं० खर्जु] एक रोग जिसमें शरीर बहुत खुजलाता है। खुजली।

मुहा०—कोढ़ की खाज = दुःख में दुःख बढ़ानेवाली वस्तु। विपत्ति पर विपत्ति लानेवाली वस्तु। उ०—एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें, कोढ़ में की खाज सी सनीचरी है मीन की।—तुलसी (शब्द०)।

खाज²—संज्ञा पुं० [खाद्य, प्रा० खज्जा] खाद्य। चुग्गा उ०—वाका चेजा ऊजला, वाका खाज निषेद। जन दरिया कैसे बने, हंस बगुल के भेद।—दरिया० बानी, पृ० २२।

खाजा—संज्ञा पुं० [सं० खाद्यक प्रा० खज्जअ] १. भक्ष्य वस्तु। खाद्य पदार्थ। जैसे,—बिल्ली का खाजा। उ०—ये उन तौर काल कर खाजा।—घट०, पृ० २०६।

मुहा०—खाजा होना = शिकार होना।

२. एक प्रकार की मिठाई जो बारीक मैदे से बनाई जाती है। उ०—हम खरमिटाव कइली है रहिला चबाय के। भेवल धरल बा दूध में खाजा तोरे बदे।—बदमाश०, पृ० ६।

विशेष—गूँधे हुए मैदे को घी लगाकर सीधा बेलते हैं। फिर मोयन देकर उसे दोहर देते हैं और फिर बेलते हैं। इसी प्रकार बार बार बेलकर मोयन देते, दोहरते और फिर बेलते जाते हैं। अंत को उसे चौकोर बनाकर घी में तलते हैं और चीनी की चाशनी में पागते हैं। खाजा प्रायः दूध में भिगोकर खाया जाता है।

३. एक जंगली पेड़ जो बहुत बड़ा नहीं होता।

खाजिक—संज्ञा पुं० [सं०] भुना हुआ अन्न या धान्य [को०]।

ख़ाजिन—संज्ञा पुं० [अ० ख़ाज़िन] कोशाध्यक्ष। खजांची। कैशियर [को०]।

खाजीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० खाद्य] खाद्य पदार्थ।

मुहा०—खाजी जाना = मुँह की खाना। बुरी तरह परास्त और लज्जित होना। उ०—सानुज सगन ससचिव सुजोधन भए सुख मलिन खाई खाल खाजी।—तुलसी (शब्द०)।

खाट—संज्ञा स्त्री० [सं० खट्वा] चारपाई। पलँगड़ी। खटिया। माचा।

यौ०—खाटखटोला = बधना बोरिया। कपड़ा लत्ता। गृहस्थी का सामान। जैसे—बस अपना खाट खटोला ले जाओ।

मुहा०—(किसी की) खाट काटना = किसी का इतना बीमार पड़ना कि उसके मलमूत्र त्याग करने के लिये चारपाई की बुनावट काटनी पड़े। बहुत बीमार पड़ना। खाट पड़ना या

खाट पर पड़ना = बीमार पड़ना। बीमार होकर चारपाई पर पड़ना। खाट लगना या खाट से लगना = बहुत बीमार पड़ना। इतना बीमार पड़ना कि उठ बैठ न सकना। खाट से उतारा जाना = आसन्नमरण होना। मरने के समीप होना।

विशेष—हिंदू धर्म के अनुसार चारपाई पर मरना बुरा समझा जाता है। इससे जब प्राणी मरने के निकट होता है तब वह चारपाई से नीचे उतार दिया जाता है।

खाट[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अरथी [को०]।

खाटना[१](पु)†—क्रि० स० [हिं० खटना] उपार्जन करना। पैदा करना। उ०—सादूलो वन साहिबो खाटै पग पग खून।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २१।

खाटना[२](पु)† – क्रि० अ० निभना। टिकना। उ०—पिय बिन दिल मैं और न खाटा। सुंदर मन सब सौ भया खाटा।—सुंदर ग्रं०, भा० १, ३५।

खाटा[१](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] अरथी [को०]।

खाटा[२]—वि० [हिं०] दे० 'खट्टा'। उ०—(क) दादू बैद बिचारा क्या करै रोगी रहै न साच। खाटा मीठा चरपरा, माँगै मेरा वाच। दादू०, पृ० ३६। (ख) पिय बिन दिल में और न खाटा। सुंदर मन सन सब भया खाटा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

खाटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरथी। २. क्षत या घाव का चिह्न। ४. वहम। सनक। चलचित्तता [को०]।

खाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खाट। अरथी। खाटि [को०]।

खाटिन†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है।

खाटो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'खट्टा'।

खाड़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० खात] गड्ढा। गर्त। उ०—दुइ अस बहुत खाड़ खनि मूँदी। बहुर न निकसवार होय बूँदी।—जायसी (शब्द०)।

खाडव—संज्ञा पुं० [सं०] मिसरी [को०]।

खाडा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खाँड़ा' उ०—खाडो ग्राहो दुहूँ दिसि धारा।—कबीर सा०, पृ० ७६।

खाडव - संज्ञा पुं० [सं० षाडव] वह राग जिसमें केवल छह स्वर लगते हों। षाडव।

खाड़ी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाड़] समुद्र का वह भाग जो तीन ओर समुद्र से घिरा हो। आखाता। खलीज।

खाड़ी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोड़] अरहर का सूखा और बिना फल पत्ते का पेड़।

खाड़ी[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० काढ़ना] किसी चीज में से अंतिम बार निकाला हुआ रंग।

खाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० खांड] वे लंबी पतली लकड़ियाँ जिनके ऊपर रखकर खपड़े छाए जाते हैं।

खाड़ेती(पु)†—वि० [खड़ना = चलना] चलना। हाँकनेवाला। चलानेवाला। उ०—खाड़ेती खोटो हुवै, धवल न खोटो होय।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ४२।

खाढ़र—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खादर'।

खात[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोदना। खोदाई। २. तालाब। पुष्करिणी। ३. कुआँ ४. गड्ढा ५. वह गड्ढा जिसमें खाद बनाने के लिये कूड़ा और मैला आदि जमा किया जाता है।

खात[२]†—संज्ञा स्त्री० १. मद्य बनाने के लिये रखा हुआ महुए का ढेर। २. वह स्थान जहाँ मद्य बनाने के लिये महुआ रखा जाता है।

खात[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाद] दे० 'खाद'। उ०—कोदो निपजन काज खात धनसारहि डारत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ७८।

खात[४]—वि० [सं०] १. खाना हुआ। २. मैला। गंदा।

खातक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा तालाब। तलैया। २. खाई। परिखा। ३. ऋणी। अधमर्ण। कर्जदार। ४. खोदनेवाला व्यक्ति। खानक (को०)।

खातभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिखा। खाई। ३ कुएं का गड्ढा। खात।

खातम—संज्ञा पुं० [अ० खातम] १. अँगूठी। अंगुलीय। मुद्रा। २. मोहर लगाने की अँगूठी [को०]।

यौ०—खातमकार, खातमबंद = (१) मुहर की अँगूठी बनानेवाला। (२) हाथीदाँत के ऊपर नक्काशी करनेवाला।

खातमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खातमा] १. अंत। समाप्ति। २. परिणाम। नतीजा। अंजाम ३. मृत्यु। मौत।

खातर—अव्य० [फ़ा० खातिर] दे० 'खातिर'। उ०—सुनि सुनि प्रभु तेरो गुननि तुव खानर कै जात। —स० सप्तक, पृ० ३४५।

खातरूपकार—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का पात्र बनानेवाला कुम्हार। कुंभकार [को०]।

खातव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गणित जिससे पोखरे तालाब आदि का क्षेत्रफल जाना जाता है।

खाता[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृत्रिम तालाब या बावड़ी [को०]।

खाता[२]—संज्ञा पुं० [सं० खात] अन्न रखने का गड्ढा। बखार।

खाता[३]—संज्ञा पुं० [हिं० खात] १ वह बही या किताब जिसमें प्रत्येक आसामी या व्यापारी आदि का हिसाब मितिवार और ब्योरेवार लिखा हो।

मुहा०—खाता खोलना = (१) दे० 'खाता डालना'। (२) नया संबंध स्थापित करना। नया व्यवहार करना। खाता डालना = हिसाब खोलना। लेन देन आरंभ करना। खाता पड़ना = लेन देन आरंभ होना। खाते बाकी = वह रकम जो खाते में बाकी निकलती हो।

२. मद विभाग जैसे—धर्म खाता, खर्च खाता, माल खाता।

३. हिसाब। लेखा। उ०—तुमसे छिपा नहीं है मेरा लंबा चौड़ा खाता।—अपलक, पृ० १६।

खाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] खुदाई। खोदने की स्थिति [को०]।

खातिम—वि० [अ० ख़ातिम] १. खत्म या समाप्त करनेवाला। २. सबसे बादवाला। सबसे पीछेवाला [को०]।

खातिमा—संज्ञा पुं० [अ० खातिमह्] १. मृत्यु। मरण। २. आखीर। अंत। समाप्ति। ३. किसी पुस्तक का आखिरी अध्याय या परिच्छेद। ४. फल। परिणाम। नतीजा [को०]।

खातिर[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० खातिर] १. सत्कार। संमान। २. हृदय। मन (को०)। ३ आदर। लिहाज [को०]। ४. मन में उत्पन्न होनेवाला विचार। आकांक्षा। इच्छा (को०)।

यौ०—खातिरजमा। खातिरदार। खातिरनशी = बोधगम्य। हृदयंगम। खातिर शिकनी = अप्रसन्न या असंतुष्ट होना।

खातिर[2]—अव्य० वास्ते। लिये। कारण।

खातिरखाह—अव्य०, क्रि० वि० [फा० खातिरख़ाह] जैसा चाहिए वैसा। इच्छानुसार। यथेच्छ।

खातिरजमा—संज्ञा स्त्री० [अ० खातिरजमा] संतोष। इतमीनान। तसल्ली।

क्रि० प्र०—रखना या होना। उ०—पलटू खातिरजमा भइ सतगुरु के परसंग।—पलटू०, पृ० ४४।

खातिरदार—संज्ञा पुं० [फा० खातिरदार] आवभगत या आदर। करनेवाला [को०]।

खातिरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा० खातिरदारी] संमान। आदर। आवभगत। उ० मैंने अपनी दौलत इन झूठे खुशामदियों की खातिरदारी में खोई।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ७७।

खातिरन—क्रि० वि० [अ० खातिरन्] खातिर करने के लिये। दिल रखने के लिये [को०]।

खातिरी[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० खातिर] १. संमान। आदर। आवभगत। उ०—प्रचुर पठै परिचारक दल महँ खबरि बरातिन लीन्हीं। आवन की पुनि अशन शयन की सवन खातिरी कीन्हीं।—रघुराज (शब्द०)। २. तसल्ली। इतमीनान। संतोष।

खातिरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह फसल जो नदी के किनारे खाद के बल से या हाथ से पानी सींच सींचकर पैदा की जाय।

खाती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० खातिका] १. खोदी हुई भूमि। खंती। २. छोटा ताल। ३. जमीन खोदनेवाली एक जाति। खातिया। ४. बढ़ई। उ०—वेगि बोलाइ चहूँ दिस केरा। थवई खाती गुनी चितेरा।—चित्रा०, पृ० ४३। ५. मूर्तिकार। मूर्ति बनानेवाला। उ०—ईसीय न खाती को घड़इ। इसी अस्त्री नहीं रवि तलै दीठ।—वी० रासो, पृ० ४५।

खाती[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षत प्रा०, फा० खात = घाव, अपराध अथवा अ० खाती = जानकर अपराध करनेवाला] अपराध। घात। गलती। उ०—कान्ह के बल मोसों करी खाती। हरिहै कहा, गोप किहि वाती।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१।

खाती—वि० [अ० खाती] जान बूझकर अपराध करनेवाला [को०]

खातून—संज्ञा स्त्री० [तु० खातून] कुलीनललना। कुलांगना। भद्रमहिला। उ०—उनकी सी पाकीजा सिफत खातून दुनिया में कम होगी।—काया०, पृ० ५५२।

यौ०—खातूने अरब, खातूने काबा = फ़ातिमा का नाम। खातूने खाना—गृहिणी। गृहस्वामिनी। खातूने फलक—सूर्य। रवि। खातूने महफिल—सबसे मिलने जुलनेवाली स्त्री। सोसायटी गर्ल।

खातेदार—संज्ञा पुं० [हिं० खाता + फा० दार = वाला (प्रत्य०)] खाता खोलनेवाला व्यक्ति। लेन देन आरंभ करनेवाला व्यक्ति।

खात्मा—संज्ञा पुं० [अ० खातिमह्] दे० 'खातमा'। उ०—अब थोड़ा सा प्रस्तावना के खात्मा और कथाप्रवेश पर निहाज करना उचित है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४२१।

खात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. खनित्र। खंता। कुदाल। २. चौकोन बड़ा तालाब। ३. सूत। डोरा। ४. जगल। वन। अरण्य। ५. त्रास। भय। डर [को०]।

खाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। खाना [को०]।

खाद[2]—वि० भोजन के योग्य। खाने योग्य [को०]।

खाद[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० खाद्य] वह पदार्थ जो खेत में उसकी उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिये डाला जाता है। पाँस।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

विशेष—सब प्रकार की पत्तियाँ, डंठल, कूड़ा, कर्कट, कीचड़, पक्षियों और पशुओं का मलमूत्र तथा मृत शरीर आदि सभी चीजें सड़ गलकर बहुत अच्छी खाद का काम देती हैं। इनके अतिरिक्त चूना, खड़िया आदि खनिज पदार्थों और उनके क्षारों से भी खाद बनती है।

खादक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० खादिका] १. ऋण लेनेवाला। कर्ज लेनेवाला। अधमर्ण। २. किसी धातु का वह भस्म जो खाने के काम में आता हो।

खादक[2]—वि० खानेवाला। भक्षक।

खादन—संज्ञा पुं० [सं०] वि० खादनीय, खादित, खाद्य] १. भक्षण। भोजन। खाना २. दाँत (डिं०)। ३. भोजन करने की क्रिया या भाव (को०)।

खादनीय—वि० [सं०] भक्षणीय। खाने योग्य। खाद्य।

खादर—संज्ञा पुं० [सं० खात्र = तालाव अथवा डिं० खाड़] १. नदी, झील आदि के किनारे की वह नीची जमीन जिसमें वर्षा का पानी बहुत दिनों तक रुका रहता हो। बांगर का उलटा। तराई। कछार। उ०—(क) मेघ परस्पर यहै कहत हैं धोय करहु गिरि खादर।—सूर (शब्द०) (ख) रूमि रूँदि डारै खुरासान खूँदि मारै खाक खादर लौं झारै ऐसे साहु की बहार है।—भूषण (शब्द०) २. गर्त। गड्ढा २. पशुओं के चरने की जगह। चारागाह।

मुहा०—खादर लगना = पशुओं के चरने योग्य घास उगना।

खादि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भक्ष्य। खाद्य। २ जिरहबकतर। कवच। ३. हस्तत्राण। दस्ताना। ४. पैरों और भुजाओं में पहना जानेवाला एक आभूषण। उ०—एक का नाम खादि था जो

भुजाओं और पैरों में पहना जाता था।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ६६।

खादि[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० छिद्र] दोष। ऐब।

खादित—वि० [सं०] खाया हुआ। भक्षित।

खादिता—वि० [सं० खादितृ] खानेवाला। भक्षण करनेवाला [को०]।

खादिम—संज्ञा पुं० [अ० खादिम] १. नौकर। सेवक। उ०—रहते थे नव्वाब के खादिम।—कुकुर०, पृ० १५। २. दरगाह आदि में रहनेवाला। रक्षक।

खादिमा—संज्ञा स्त्री० [अ० खादिमह्] नौकरानी। सेविका।

खादिर[१]-वि० [सं०] खैर का बना हुआ। खदिर से उत्पन्न। खदिर संबंधी [को०]।

खादिर[२]—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० खादिरी] खैर। कत्था।

खादिरसार—संज्ञा पुं० [सं०] कत्था। खैर।

खादी[१]—वि० [सं० खादिन्] १. खानेवाला। भक्षक। २. शत्रु का नाश करनेवाला। रक्षक। ३. कँटीला।

खादी[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गजी या इसी प्रकार का और कोई मोटा कपड़ा। उ०—सब इक से होत न कहूँ, होत सबन में फेर। कपरो खादी बाफतो, लोह तवा शमशेर।—ब्रजा० वि० (शब्द०)। २. हाथ का काता और बुना हुआ एक प्रकार का मोटा वस्त्र खद्दर।

यौ०—खादी आश्रम = वह स्थान जहाँ खादी के वस्त्र तैयार और विक्रय किए जाते हों। खादी केंद्र = वह स्थान जहाँ खादी का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। खादीधारी = खादी के वस्त्र पहननेवाला। खादी भंडार—खादी की दूकान। खादी आश्रम।

खादी[३]—वि० [सं० खादी = दोष] १. दोष निकालनेवाला। छिद्रान्वेषी। २. जिसमें ऐब हो। दूषित।

खादुक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० खादुकी] १. जिसकी प्रवृत्ति सदा हिंसा की ओर रहे। हिंसालु। २. धोखेबाज। हानिकर (को०)।

खाद्य—वि० [सं०] खाने योग्य। भोज्य। भक्ष्य।

खाद्य[२]—संज्ञा पुं० वह जो खाया जाय। भोजन।

खाद्यमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० खाद्य + मन्त्रिन्] किसी देश या राज्य के खाद्य संबंधी विभाग का मंत्री।

खाद्यान्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जो खाने योग्य हो।

खाध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० खाद्य] दे० 'खाद्य'। उ०—सीस न देहि पतंग होइ तौ लगि लहै न खाध।—जायसी ग्रं०, पृ० ६५।

खाधना(पु)—क्रि० स० [सं० खादन] दे० 'खाना'। उ०—सूर जतन इण रौ करै, जिण रौ खाधौ अन्न।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ३।

खाधि(पु)—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] सं० 'खाधु'। उ०—करै खाधि अखाधि सनचारा।—संत० दरिया, पृ० २२१।

यौ०—खाधि अखाधि—भक्ष्याभक्ष्य।

खाधु(पु)†, खाधू (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० खाद्य] खाद्य। उ०—जोबन पंछी कुरंगिन खाधू।—जायसी (शब्द०)। (ख) भई व्याधि तृष्णा संग खाधू। सूझी मुक्ति न सूझै व्याधू।—जायसी (शब्द०)।

खाधुक(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० खाधु + क (प्रत्य०)] दे० 'खाधु'।

खान[१]—संज्ञा पुं० [हिं० खाना] १. खाने की क्रिया। भोजन। उ०—खान तजोंगी ओ पान तजोंगी ओ मान तजोंगी न काहू लजोंगी।—विश्राम० (शब्द०)। २. भोजन की सामग्री। ३. भोजन करने का ढंग या आचार।

यौ०—खानपान। जैसे,—उनका खानपान ठीक नहीं।

खान[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० खानि] १ वह स्थान जहाँ से धातु, पत्थर आदि खोदकर निकाले जायँ। खानि। आकर। खदान।

मुहा०—खान खुलना = खाने के खोदने का काम जारी होना।

२. आधारस्थान। उत्पत्तिस्थान। जैसे,—गुणों की खान। ३. जहाँ कोई वस्तु बहुत सी हो। खजाना। जैसे,—यहाँ क्या रुपए की खान खुली है।

खान[३]—संज्ञा पुं० [तातार या मंगोल काङ् = सरदार, तु० खान] १. सरदार। उमराव। उ०—मैन कै बरै तुहि मैन कहा मत मान। मोहि देखत बहुतै छले इनने खान खुमान।—रसनिधि (शब्द०)। २. पठानों की उपाधि।

खान[४]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाना] कोल्हू का वह छेद जिसमें ऊख की गँड़ेरियाँ या तेलहन भरकर पेरते हैं। खां। घर।

खान[५]—संज्ञा पुं० [सं०] खोदने का कार्य। खनन। खोदना। २. चोट। घाव [को०]।

खानक[१]—वि० [सं०] खनने या खोदनेवाला [को०]।

खानक[२]—संज्ञा पुं० १. खान खोदनेवाला व्यक्ति। बेलदार। ३. मेमार। राज। थवई। उ०—दारु कर्मकारऊ अरु खानक अरु दैवज्ञ सोहाये।—रघुराज (शब्द०)। ४. सेंध मारनेवाला चोर (को०)।

खानकाह—संज्ञा स्त्री० [अ० खानकाह] मुसलमान साधुओं या धर्मशिक्षकों के रहने का स्थान या मठ।

खानखानाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा० खान खानान] १. सरदारों का सरदार। बहुत ऊँचे दर्जे का सरदार। २. एक उपाधि जो मुगल राज्यों में मुसलमान सरदारों को दी जाती थी।

खानखानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खानखाना] शाहंशाही। साम्राज्य। उ०—हाथी घोड़े खाक के खाक खानखानी। कहै मलूक रहि जायगा औसाफ निसानी।—मलूक०, पृ० १५।

खानखाह—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'खाहमखाह'।

खानगाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'खानकाह'।

खानगी[१]—वि० [फ़ा०] जिससे बाहरवालों का कुछ संबंध न हो। निज का। आपस का। घरेलू। घर।

खानगी[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. केवल कसब करानेवाली और बहुत तुच्छ वेश्या। कसबी। २. रखेली। रखैल (को०) ३. गुप्त रूप से व्यभिचार करनेवाली। व्यभिचारिणी। उ०—लखनऊवाले तो गुप्त पुंश्चली गृहस्थियों ही को खानगी कहते हैं। परंतु इधर प्रत्यक्ष निम्न श्रेणी की निकृष्टतम वेश्याओं को।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५३।

खानजादा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ख़ानज़ादह्] १. अमीर का पुत्र। अमीरजादा। २. ऊँचे घराने का व्यक्ति। ३. ४. अच्छी जाति के वे हिंदू जिनके पूर्वजों ने मुसलमानों के राजत्वकाल में मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था। इनमें अधिकांश क्षत्रिय ही हैं।

खानदान—संज्ञा पुं० [फ़ा०ख़ानदान] [वि० खानदानी] वंश। कुल। घराना।

खानदानी—वि० [फ़ा०] १. ऊँचे वंश का। अच्छे कुल का। २. वंश परपरागत। पैतृक। पुश्तैनी। ३. (व्यंग्य) अकुलीन (को०)।

खानदेश—संज्ञा पुं० [देश० खाँद = जंगली जाति + देश] सतपुरा की पर्वतमाला के दक्षिण में बंबई प्रांत का एक प्रदेश।

खानपान—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न पानी। आबदाना। भोजन और जल। २. भोजन करने और जल पीने की क्रिया। खाना। पीना। ३. खाने पीने का ढंग या भोजन करने की रीति। खाने पीने का आचार। ४. खाने पीने का संबंध। खुर्दनोश। जैसे,—उनसे हमारा खानपान नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—चला आना।—होना।—रहना।

खानबहादुर—संज्ञा पुं० [फ़ा० खानबहादुर] एक खिताब जो ब्रिटिश शासन में भारत सरकार की ओर से मुसलमानों को दिया जाता था। खाँबहादुर।

खानम- संज्ञा स्त्री० [तु० खानम] १. खान की स्त्री। २. कुलीन या प्रतिष्ठित महिला। उ०—बादशाह की माता खानम को छह दिन तक ज्वर आता रहा।—हुमायूँ०, पृ० ६।

खानसामाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा० खानसामा] अँगरेजों, मुसलमानों आदि का भंडारी या भोजन बनानेवाला।

खानसाहब—संज्ञा पुं० [फ़ा० खानसाहब] १. पठानों के लिये प्रयुक्त आदरार्थक शब्द। २. एक उपाधि।

खाना¹—क्रि० स० [सं० खादन, पा० खाअन, खान] [प्रे० रूप खिलाना] १. आहार को मुँह में चबाकर निगलना। भोजन करना। भक्षण करना। पेट में डालना।

विशेष—इसका प्रयोग घन पदार्थों के लिये होता है, द्रव के लिये नहीं, यद्यपि किसी किसी के मुँह से (अधिकतर बंगाल में) 'जल खाना' आदि सुना जाता है।

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।—लेना।

यौ०—खाना कमाना। खाना पीना। खाना उड़ाना।

मुहा०—जिसका खाना, उससे गुर्राना = जिसका अन्न खाना, उसी को आँख दिखाना। उपकार न मानना। खाता कमाता आदमी = खाने पीने भर को कमानेवाला आदमी। वह मनुष्य जिसके पास धन संचित न हो। खाना कमाना = काम धंधा करके जीविका निर्वाह करना। मेहनत मजदूरी करके गुजर करना। खाने के दाँत और दिखाने के और = बाहर कुछ, अंदर कुछ। करना कुछ और, प्रगट करना कुछ और। खा पका जाना या डालना = खर्च कर डालना।। उड़ा डालना। खानापीना = (१) भोजन पान करना। (२) सुख से दिन बिताना। जैसे—लड़के वाले भूखों मरते हैं और आप खाता पीता है। खानापीना तहूकरना—क्रुद्ध या खिन्न करके खाने पीने को निरानंद कर देना। क्रोध या खेद उत्पन्न करना। खाने पीने से अच्छा या खुश-सुखसे जीवन निर्वाह करनेवाला। खाओ वहाँ, तो पानी पियो यहाँ—खाने के बाद पानी पीने के लिये भी वहाँ न ठहरो; तुरंत चले आओ। आने में क्षण भर की भी देर न करो। खाओ वहाँ, तो हाथ धोओ यहाँ = तुरंत चले आओ। खाना न पचना—चैन न पड़ना। जी न मानना। जैसे,—जबतक वह इधर उधर गप नहीं मारता, तबतक उसका खाना नहीं पचता।

विशेष—'खाना' क्रिया का प्रयोग कभी कभी अकर्मक के समान भी होता है। जैसे—वह खाने गया है।

२. हिंसक जंतुओं का शिकार पकड़ना और भक्षण करना। जैसे—उसे शेर खा गया।

मुहा०—खा जाना—मार डालना। जैसे-वह ऐसा ताकता है मानो खा जायगा। कच्चा खा जाना—मार डालना। प्राण ले लेना। जैसे—जी चाहता है, उसे कच्चा खा जाऊँ। खाने दौड़ना—चिढ़चिढाना। क्रुद्ध होना। जैसे—जब उसके पास रुपया माँगने जाते हैं, तब वह खाने दौड़ता है।

विशेष—विषैले कीड़ों के काटने के अर्थ में केवल 'काला' (साँप) के साथ इस क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे—तुझे काला खाय। उ०—(क) आजुहि मेरे घर खेलन आई। जात कहूँ कारे तेहि खाई।—सूर (शब्द०)। (ख) ताको माता खाई कारे। सो मर गई शाप के मारे।—सूर (शब्द०)। पर अलंकृत या मुहावरेदार भाषा में अत्युक्ति का भाव लेकर इस क्रिया से खटमल, मच्छड़ आदि का बहुत काटना भी व्यक्त किया जाता है। जैसे—(क) आज रात खटमलों ने खा डाला। (ख) यहाँ तो मच्छर खाए डालते हैं।

३. किसी इंद्रिय या अंग को उसके अरुचिकर विषय उपस्थित करके पीड़ित करना। तंग करना। दिक करना। कष्ट देना। जैसे—(क) तुम तो हमारे कान खा गए। (कड़े शब्द से)। (ख) क्यों सिर या जान खाते हो। ४. (कीड़ों का) किसी वस्तु को कुतरना या काटना। जैसे,—किताब को कीड़े खा गए। लकड़ी को दीमक खा गए। छुरी को मुर्चा खा गया। ५. मुँह में रखकर रस आदि चूसना। चबाना। जैसे—पान खाना, तंबाकू खाना। ६ नष्ट करना। बरबाद करना। सत्यानाश करना। जैसे-(क) तुम्हारी चालाकी तुम्हें खा गई। (ख) क्रोध मनुष्य को खा जाता है। (ग) विदेशी माल देशी कारीगरी को खा गया। ७. उड़ा देना। दूर कर देना। न रहने देना। जैसे,—चूना दीवार के रंग को खा गया। हजम करना। मार लेना। हड़प जाना। जैसे—वे कोठी का बहुत रुपया खा गए। ८. खर्च करना। उड़ाना। जैसे,—तनखाह में से कुछ बचाते भी हो कि सब खा डालते हो? १०. बेईमानी से रुपया पैदा करना। रिशवत आदि लेना। जैसे,—अमले और नौकर चाकर सब जगह खाते पीते हैं। ११. खर्च करवाना। रुपया लगाना। जैसे,—यह मकान उनकी सारी कमाई खा गया। १२. कमाना। कमाना।

अँटना। खपना। भरना। जैसे—छोटी सी कुप्पी पाँच सेर घी खा गई। । १३. किसी काम को करते हुए उसके किसी अंग को छोड़ जाना। जैसे,—लिखने पढ़ने में किसी अक्षर को छोड़ जाना। जैसे —तुम लिखने में कई अक्षर खा गए हो। १४. (आघात, प्रभाव आदि) सहना। बरदाश्त करना। प्रभाव पड़ने देना। जैसे—मार सहना लात खाना, छड़ी खाना, गाली खाना, चोट खाना, सरदी खाना, धूप खाना, हवा खाना, गम खाना, हार खाना आदि।

मुहा०—मुँह की खाना—(१) बुराई का ठीक बदला पाना। खूब नीचा देखना। किए का पूरा फल पाना। हार जाना।

खाना[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० खानह्] १. आलय। घर। मकान। जैसे, डाक खाना, दवाखाना, कूड़ाखाना आदि। २. किसी चीज के रखने का घर। केस। जैसे—चश्मे का खाना, घड़ी का खाना आदि। ३. आलमारी, मेज या संदूक आदि में चीजें रखने के लिये पटरियों या तख्तों के द्वारा किया हुआ विभाग। ४. सारणी या चक्र का विभाग। कोष्ठक।

क्रि० प्र०—बनाना।—पूरना।—भरना।

५. संदूक। पेटी।—(लश०)।

खानाआबाद—संज्ञा पुं० [फ़ा० खानह् आबाद] घर धनधान्य से पूर्ण रहे ऐसा आशीर्वादात्मक शब्द [को०]।

खानाआबादी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खानह् आबादी] १. घर के आबाद होने या बसने की स्थिति। समृद्धि। २. विवाह परिणय। शादी [को०]।

खानाखराब—वि० [फ़ा० खानह्खराब] [संज्ञा खानाखराबी] १. चौपट करनेवाला। सत्यानाशी। २. जिसके रहने का ठिकाना या घर बार न हो। आवारा।

खानाखुदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खानए खुदा] ईश्वर का निवास। उपासना गृह [को०]।

खानाजंगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खानह् जंगी] आपस की लड़ाई। परस्पर का झगड़ा।

खानाजाद[1]—वि [फ़ा० खानह्जादा] घर में पैदा या पाला पोसा हुआ। घरजाया (गुलाम)।

खानाजाद[2]—संज्ञा पुं० सेवक। गुलाम। दास। उ०—मन बिगरयौ ये नैन बिगारे। ये सब कहो कौन हैं मेरे खानाजाद बिचारे।—सूर (शब्द०)।

खानातलाशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खानह् तलाशी] किसी खोई, छिपी या अनजानी चीज के लिये मकान के अंदर छानबीन करना।

विशेष—यह क्रिया प्रायः राज्य या किसी बड़े अधिकारी की ओर से या आज्ञा से होती है।

खानादामाद—संज्ञा पुं० [फ़ा० खानह् दामाद] श्वसुर के घर रहनेवाला जामाता। घरजँवाई [को०]।

खानादार—वि० [फ़ा० खानह् दार] १. घरबारवाला। गृहस्थ। २. घर का मालिक।। गृहस्वामी। ३. दरबान। द्वारपाल [को०]

खानादारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खानह् दारी] गृहस्थी।

खानानशी—वि० [फ़ा० खानह् नशी] १. एकांतसेवी। विरक्त। २. घर में ही पड़ा रहनेवाला। बिना काम का। बेकार [को०]।

खानापीना—संज्ञा पुं० [हिं० खाना+पीना] खाने पीने का व्यवहार या संबंध। खान पान।

क्रि० प्र०—छूटना।

खानापुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना+पूरना अथवा फ़ा० खानह् पुरी] १. किसी चक्र या सारिणी (फारम या रजिस्टर) के कोठों में यथास्थान संख्या या वाक्य आदि लिखना। नकशा भरना। २. केवल दिखावे के लिये बेमन से काम करना [को०]।

खानापूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खानापुरी'।

खानाबदोश[1]—वि० [फ़ा० खानह् बदोश] जिसके रहने या ठहरने का कोई निश्चित स्थान न हो। जिसका घरबार न हो।

खानाबदोश[2]—संज्ञा पुं० एक जनजाति। स्थायी निवास रहित एक संचरणशील जाति जो कुछ समय के लिये जहाँ कहीं खेमे, सिरकी आदि डालकर दिन बिताती है।

खानाबदोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खानह् बदोशी] इधर उधर व्यर्थ घूमने या संचरणशील जीवन बिताने की स्थिति। उ०—खानाबदोशी जीवन के बारे में पूछने पर तरुण ने कहा।—किन्नर०, पृ० ४१।

खानाबरबाद—वि० [फ़ा० खानह् बरबाद] दे० 'खानाखराब'।

खानाबरबादी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खानह् बरबादी] १. आवारापन। २. बदकिस्मती। भाग्यहीनता [को०]।

खानाशुमारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खानह् शुमारी] किसी गाँव या नगर आदि के मकानों की गिनती का काम।

खानासाज—वि० [फ़ा० खानह् साज] घर का बना हुआ। गृह में निर्मित [को०]।

खानि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खान। खदान उ०—सो जहाँ हीराम की खानि हती तहाँ गयो—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १०३। २. गुफा। कंदरा (को०)।

खानि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० खानि या हिं० खान] १. उत्पत्तिस्थान। उपजने की जगह। उ०—दारिद बिदारिबे की प्रभु को तलास तो हमारे यहाँ अनगिन दारिद की खानि हैं।—दास (शब्द०)। २. वह जिसमें या जहाँ कोई वस्तु अधिकता से हो। खजाना। उ०—हा गुणखानि जानकी सीता।—तुलसी (शब्द०)। ३. ओर। तरफ। उ०—यम द्वारे में दूत सब करते पैंचा तानि। उनते कबहुँ न छूटता फिरता चारों खानि।—कबीर (शब्द०)। ४. प्रकार। तरह। ढंग। उ०—चार खानि जग जीव जहाना।—तुलसी (शब्द०)।

खानिक[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० खान] खदान। खान। उ०—सूझहिं रामचरित मणि मानिक। गुपत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।—तुलसी (शब्द०)।

खानिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दीवाल का छेद। सेंध [को०]।

खानिल—संज्ञा पुं० [सं०] सेंध मारनेवाला तस्कर [को०]।

खानेहार(पु)—वि० [हिं० खाना+हार (प्रत्य०)] भोजन करनेवाला।

खानेवाला। उ०--अरे हाँ रे पलटू जानै खानेहार और नहि स्वाद उसी का।--पलटू०, पृ० ७५।

खानोदक—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का वृक्ष [को०]।

खापा†—संज्ञा पुं० [हिं० खपना या खपाना] चोट। वार आघात।

खापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा [को०]।

खापट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खपटा] एक प्रकार की भूमि जिसमें लोहे का अंश अधिक होता है।

विशेष—इस भूमि की मिट्टी बहुत कड़ी और भारी होती है और पानी बरसने पर बहुत लसदार हो जाती है। ऐसी भूमि केवल बरसात में ही जोती जा सकती है और इसमें धान के अतिरिक्त और कोई चीज नहीं उपज सकती। इसकी मिट्टी से, जिसे कपास और काबिस भी कहते हैं, कुम्हार लोग बरतन बनाते हैं।

खापड़(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर, प्रा० खप्पर, खप्पड़, हिं० खपड़ा] खप्पर। भिक्षापात्र। खपड़ा।

खापर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खापट] १. दे० 'खापट'। २. ऊमड़ खाबड़ भूमि। ऊँची नीची जमीन।

खाफड़†—संज्ञा पुं० [हिं०] खप्पर या थाली में आने लायक खाना। भोजन। उ०--फरीदा घोर निमाणिया रे महलाँ माल न लाय। खाफड़ सेती राखले रे और फकीरा खुलाय।--राम० धर्म०, पृ० ३४।

खाब(पु)†[१]--संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वाब] स्वप्न। उ०--प्यारी के पायन की उपमा द्विज कों सब जानि परि जिमि खाब की। पंकज-पात की बात कहाँ जिन कोमलता लई जीति गुलाब की।—द्विज (शब्द०)।

खाब[२]†—संज्ञा पुं० [हिं० खाना] भोजन। खाना।

खाबड़ खूबड़--वि० [अनु०] जो सम न हो। ऊँचा नीचा।

विशेष--यह विशेषण प्रायः 'भूमि' के लिये ही आता है।

खाभा—संज्ञा पुं० [हिं० खामना] मिट्टी का वह बरतन जिससे तेली कोल्हू के नीचे के बरतन में से तेल निकालते हैं।

खाम[१]—संज्ञा पुं० [हिं० खामना] १. चिट्ठी का लिफाफा। उ०—बाँचत न कोऊ अब बँसई रहत खाम, युवती सकल जानि गई गति याकी हैं।—द्विजदेव (शब्द०)। २. संधि। जोड़। टाँका।

क्रि० प्र०—लगाना।

विशेष - कहीं कहीं यह शब्द स्त्रीलिंग भी बोला या लिखा जाता है।

खाम[२]†—संज्ञा पुं० [हिं० खभा] १. खंभा। स्तंभ। उ०—क्लेस भव के दे अर्वे तू भजन को दृढ़ खाम।—व्रज० ग्रं०, पृ० १६०। २. जहाज का मस्तूल (लश०)।

खाम[३](पु)†—वि० [सं० क्षाम] घटने या क्षीण होनेवाला। उ०—नाम रूप अरु लीला धामा। रहत नित्य ये पड़त न खामा।—विश्राम (शब्द०)।

खाम[४]--वि० [फ़ा० ख़ाम] १. जो पक्का न हो। कच्चा। २. जो दृढ़ या पुष्ट न हो। ३. जिसे तजुरबा न हो। अनुभवहीन। ४. बुरा। उ०—खुदा को समझना बड़ा काम है जिते का उसका के आगे खाम है।--दक्खिनी०, पृ० २९१।

खाम खयाल--संज्ञा पुं० [फ़ा० खामखयाल] व्यर्थ के विचार। गलत विचार। उ०--खाम खयाल करि दूरि दिवाना।—कबीर श०, पृ० ३०।

खाम खयाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खामख़याली] गलत धारणा। व्यर्थ विचार। उ० - देखती कला विधि के विधान में भी त्रुटियाँ, कल्पना सत्य ही खाम खयाली होती हैं।--नील०, पृ० ६०।

खामखाह, खामखाही—क्रि० वि० [फ़ा० ख्वाह-म-ख्वाह] दे० 'ख्वामख्वाह'।

खामण(पु)†—वि० [सं० स्कम्भन या फ़ा० खाम+(राज०) ण (प्रत्य०)] खाम करनेवाला। रोकनेवाला। उ०--रीत अनीत फैलियो रावण खमियो नहीं अमायां खामण।--रा० रू०, पृ० ३६४।

खामना—क्रि० स० [सं० स्कम्भन = मूँदना, रोकना, प्रा० खंभन] १. गीली मिट्टी या आटे आदि से किसी पात्र का मुँह बंद करना। २. चिट्ठी को लिफाफे में बंद करना।

खामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खामह्] कलम। लेखनी। उ०--पूछा ले हात में मुल्लाँ खामा। हकीकत क्या लिखूँ सो वो नामा।—दक्खिनी, पृ० २५०।

खामिंद(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० खाविंद] स्वामी। मालिक। उ०—खामिंद कब गोहरावैं चाकर रहैं हजूर।

खामियाजा--संज्ञा पुं० [फ़ा० खम्याजह्] नतीजा। परिणाम। उ०—इसका खामियाजा आप न उठाएँ तो कौन उठाए।—मान०, पृ० ३१५।

खामी--संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खामी] १. कचाई। कच्चापन। २. नातजरुबेकारी। ३. कमी। अपूर्णता।

खामोश—वि० [फ़ा० खामोश] चुप। मौन।

खामोशी –संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खामोशी] मौन। चुप्पी।

खायक†—वि० [सं० क्षय] खोटा। निकम्मा। उ०—खल खूनी है तो घण खायक। दुनिया दुज देवा दुखदायक।—रा० रू०, पृ० १७८।

खाया—संज्ञा पुं० [फ़ा० खायह्] अंडकोष।

यौ०—खायाबरदार = चापलूस। खुशामदी। खायाबरदारी = अनावश्यक चापलूसी। बहुत खुशामद।

खार[१]—संज्ञा पुं० [सं० क्षार, प्रा० खार] १. दे० 'क्षार'। २. सज्जी। ३. लोना। लोनी। कल्लर। रेह।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—खार लगना = छरछराना।

४. धूल। भस्म। राख। ५. एक प्रकार की झाड़ी जिससे खार निकलता है।

विशेष—यह पंजाब में नमक के पहाड़ के आसपास तथा पच्छिमी प्रांतों में होती है।

खार२—संज्ञा पुं० [फ़ा० खार] १. काँटा। कंटक। फाँस। २. मुर्गे, तीतर आदि पक्षियों के पैर का काँटा। खाँग। ३ डाह। जलन। द्वेष।

मुहा०—खार खाना = डाह करना। जलना। खार गुजरना = बुरा लगना। खटकना। खार निकलना = डाह या द्वेष मिटना। खार निकालना = बदला लेना। डाह या जलन मिटाना।

खारक—संज्ञा पुं० [सं० क्षारक, प्रा० खारक, फ़ा० खारिक] छोहारा। उ०—खारक दाख दबाय मरो किन ऊँटहि कँटकटारहि भावै।—केशव (शब्द०)।

खारच(पु)†—[अ० खारिज] १. खारिज। व्यर्थ या बेकार। उ०—दब दिए सारा दाहिया, अथवा खारच अंग।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २३। २. ऊसर। उ०—क्रमखाँरी मतवाल की, करसण खारच खेत।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ४६।

खारजार—संज्ञा पुं० [फ़ा० खारजार] काँटों से भरा स्थान। काँटों का जंगल। उ०—फिरे भई परेशान हो खारजार। जिधर जाय उधर सूँ होय मार मार।—दक्खिनी०, पृ० २३३।

खारदार—वि० [फ़ा० खार + दार (प्रत्य०)] कँटीला। काँटोंवाला। उ०—कंजा कंजई रंग में लपेट फलों को खारदार जिरहबख्तर पिन्हाया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

खारवा†—संज्ञा पुं० [देश०] खलासी। मल्लाह। जहाजी।

खारा१—वि० पुं० [सं० क्षार] [वि०, स्त्री० खारी] १. क्षार या नमक के स्वाद का। २ कड़ुआ। अरुचिकर। उ०—कृपासिंधु मैं देख विचारी। एहि मरने ते जीवन खारी।—विश्राम (शब्द०)।

खारा२—संज्ञा पुं० [सं० क्षारक] १. एक प्रकार का कपड़ा जो धारीदार होता है। २. [स्त्री० अल्पा० खारी] घास या सूखे पत्तों बाँधने के लिये जालदार बँधना, जिसे घसियारे या भड़भूँजे काम में लाते हैं। ३. वह जाली या थैला जिसमें भरकर तोड़े हुए आम पेड़ से नीचे लटकाए जाते हैं। ४. बाँस, सरकंडे या रहठे आदि का बड़ा और गहरा टोकरा। यह विशेषतः चौखूँटा होता है। झावा। खाँचा। ५. बाँस का बड़ा पिंजड़ा। ६. उलटे टोकरे के आकार का सरकंडे आदि का बना हुआ एक प्रकार का चौकोर आसन।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः खत्रियों में विवाह के अवसर पर वर और कन्या के बैठने के लिये होता है।

खारा३—संज्ञा पुं० [फ़ा० खारह्] कड़ा पत्थर। चट्टान [को०]।

खारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खारी'।

खारिक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्षारक, फ़ा० खारिक] छोहारा। खारक। उ०—(क) खारिक दाख खोपरा खीरा। केरा आम ऊख रस सीरा।—सूर०, १०। २२१। (ख) खारिक खाता न दारिउँ दाख न माखन हू सह मेटि इठाई।—केशव (शब्द०)।

खारिज—वि० [अ० खारिज] बाहर किया हुआ। निकाला हुआ। बहिष्कृत। २. भिन्न। अलग। ३. जिस (अभियोग) की सुनवाई न हो।

खारिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] खुजली। खाज।

खारिश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'खारिश'।

खारी१—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के मत से चार और किसी के मत से सोलह द्रोण की तौल।

खारी२—संज्ञा स्त्री० [हिं० खारा] एक प्रकार का क्षार लवण जो दवा के काम में आता है। संडास में मल गलाने के लिये भी इसे डालते हैं। उ०—लौंग सुपारी छाँड़ के, क्यों लादी खारी रे।—कबीर श०, पृ० ३७।

खारी३—वि० जिसमें खार का मेल हो। क्षारयुक्त। जैसे—खारी माट।

खारीमाट—संज्ञा पुं० [हिं० खारी + माट = मटका] नील का रंग तैयार करने का एक ढंग।

विशेष—इसमें एक बड़े मटके में लगभग चार मन पानी छोड़कर उसमें सेर भर कच्चा नील, चूना और सज्जी डालते हैं और थोड़ा गुड़ मिलाकर उठने के लिये रख देते हैं। गरमियों में यह एक दिन में और जाड़ों में तीन चार दिन में तैयार हो जाता है। अधिक जाड़े में इसे कभी कभी आग पर चढ़ा देते हैं।

खारुआँ, खारुवा—संज्ञा पुं० [सं० क्षारक] १. आल से बना हुआ एक प्रकार का रंग जिसमें मोटे कपड़े रंगे जाते हैं। २. इस रंग से रँगा हुआ एक प्रकार का मोटा कपड़ा जो विशेषतः काल्पी में तैयार होता है।

खारेजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खारिजा] एक प्रकार का जंगली कुसुम या बर्रे। बनबर्रे। बनकुसुम। कटियारी।

विशेष—यह पंजाब के मैदानों में उगता है और बर्रे की अपेक्षा अधिक कँटीला होता है। इसके दाने बहुत छोटे और निकम्मे होते हैं। और इसमें अनेक रंग के सुहावने फूल लगते हैं।

खारो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'खारा'।

खार्कार—संज्ञा पुं० [सं०] गदहे का रेंकना [को०]।

खार्जूर१—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर के रस से बनी हुई मदिरा जो प्रायः महुए की मदिरा के समान होती है। वैद्यक में इसे रुचिकर, कफघ्न, कषाय और हृद्य माना है।

खार्जूर२—वि० खजूर संबंधी। खजूर का [को०]।

खार्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रेतायुग। दूसरा युग।

खाल१—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षाल, प्रा० खाल] १. मनुष्य, पशु आदि के शरीर का ऊपरी आवरण। चमड़ा। त्वचा।

मुहा०—खाल उड़ाना = बहुत मारना या पीटना। खाल उधेड़ना या खींचना = (१) शरीर पर से कपड़ा खींचकर अलग कर देना। उ०—खाल खैंचि जम भुसा भरावैं, ऐंचि लेहि जस आरा।—धरम०, पृ० २७। (२) बहुत मारना पीटना या कड़ा दंड देना। खाल बिगड़ना = दुर्दशा कराने या दंडित होने की इच्छा होना। शामत आना।

२. किसी चीज का अंगीभूत आवरण। जैसे,—बाल की खाल। ३. आधा चरसा। अधौड़ी। ४. धौंकनी। भाथी। ५ मृत शरीर। उ०—कहि तू अपने स्वारथ सुख को गोकि कहा करिहै खलु खालहि।—सूर (शब्द०)।

खाल[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० खात, अ० खाली] १.नीची भूमि। २. खाड़ी खलीज। ३. खाली जगह। अवकाश। ४. गहराई। निचाई।

खाल[3]—संज्ञा पुं० [अ० खाल] १. शरीर का काला दाग। तिल। उ०—अंदाज से जियादा निपट नाज खुश नहीं। जो खाल अपने हद से बढ़ा सो मसा हुआ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२। २. अभिमान। अहंकार। गरूर (कौ०)। ३. माता का भाई। मामा (कौ०)।

खालखाल—वि० [अ० खाल खाल] बहुत कम। कहीं कहीं। कोई कोई [कौ०]।

खालड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाल + ड़ी (प्रत्य०)] खाल। खालड़ी। त्वचा। उ०—मानुष केरी खालड़ी ओढ़े देखा बैल।—कबीर मं०, पृ० ३६५।

खालफूँका—संज्ञा पुं० [हिं० खाल + फूँकना] धौंकनी धौंकनेवाला। भाथी चलानेवाला।

खालसा—वि० [अ० खालिसह् = शुद्ध, जिसमें किसी प्रकारका मेल न हो] १. जिसपर केवल एक का अधिकार हो। जैसे,—उनकी सारी जायदाद खालसा है। २ राज्य का। सरकारी।

मुहा०—खालसा करना = (१) स्वायत्त करना। जब्त करना। (२) नष्ट करना। चौपट करना। खालसे लगाना = दे० 'खालसा करना'।

खालसा[2]—संज्ञा पुं० सिखों का एक विशेष वर्ग या मंडल।

खाला[1]—वि० [हिं० खाल या खाली] [वि० स्त्री० खाली] नीचा। निम्न। मुहा०—खालाऊँचा = (१) जो समतल न हो। (२) भला बुरा या हानि लाभ।

खाला[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० खालह्] माता की बहिन। मौसी। मुहा०—खाला का घर = वह काम जिसके करने में अधिक परिश्रम न करना पड़े। सहज काम। उ०—यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।—कबीर सा० सं०, भा० १. पृ० ४७।

खालिक[1]—वि० [सं०] खलिहान की तरह। खलिहान जैसा (कौ०)।

खालिक[2]—संज्ञा पुं० [अ० खालिक] बनानेवाला। सिरजनहार। स्रष्टा। सृष्टिकर्ता। उ०—कबीर खालिक जागिया और न जागे कोइ। कै जागै विषई विष भरया कै दास बंदगी होइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २९।

खालिस—वि० [अ० खालिस] जिसमें कोई दूसरी वस्तु न मिली हो। शुद्ध। मिलावट से रहित।

खाली[1]—वि० [अ० खाली] १. जिसके अंदर कुछ न हो। जिसके अंदर का स्थान जो शून्य हो। भरा न हो। रीता। रिक्त।

क्रि० प्र०—करना। देना।—होना।

मुहा०—खाली करना = भीतर कुछ न रहने देना। भीतर की वस्तु या सार निकाल लेना। जैसे,—घड़ा खाली करना, संदूक खाली करना।

२. जिसपर कुछ न हो। जिसपर कोई वस्तु या व्यक्ति न हो। जैसे—कुरसी खाली करना, मेज खाली करना। ३. जिसमें कोई एक विशेष वस्तु न हो। किसी विशेष वस्तु से शून्य। जैसे, (क) जंगल जानवरों से खाली हो गया। (ख) हमारा मकान खाली कर दो।

मुहा०—हाथ खाली होना, खाली हाथ होना = (१) हाथ या मुट्ठी में रुपया पैसा न होना। अकिंचन या निर्धन होना। खुक्ख होना। जैसे—भाई आजकल हमारा हाथ खाली है; हम कुछ नहीं दे सकते। (२) हाथ में कोई हथियार न होना। (३) हाथ में लिया हुआ काम समाप्त होना। फुरसत मिलना। अवकाश मिलना। खाली पेट = बिना कुछ अन्न खाए हुए। निरन्ने पेट। बासी मुँह। जैसे,—खाली पेट पानी मत पीओ। खाली हाथ = (१) बिना मुट्ठी में कुछ दाम लिए। बिना कुछ रुपए पैसे के। जैसे,—खाली हाथ जाना ठीक नहीं। (ख) ब्राह्मण को खाली हाथ मत लौटाओ। (२) बिना किसी हथियार के। जैसे,—रात को जंगल में खाली हाथ निकलना अच्छा नहीं।

४. रहित। विहीन। जैसे,—(क) उनकी कोई बात मतलब से खाली नहीं होती। उ०—शुभ आचार धर्म को ज्ञानी रह्यो तनय ते खाली।—रघुराज (शब्द०)। ५. (व्यक्ति) जिसे कुछ काम न हो या जो किसी कार्य में न लगा हो। जैसे,—अब हम खाली हैं; लाओ तुम्हारा काम देख लें।

मुहा०—खाली बैठना = (१) कोई काम धाम न करना। (२) बेरोजगार रहना। बिना जीविका के रहना।

६. (वस्तु) जो व्यवहार में न हो या जिसका काम न हो। जैसे,—(क) चाकू खाली हो गया तो इधर लाओ। (ख) इतने खेत खाली पड़े हैं। ७. व्यर्थ। निष्फल। जैसे,—तुम्हारा प्रयत्न खाली न जायगा। उ०—पुनि लक्ष्मी हित उद्यम करै। अरु जब उद्यम खाली परै। तब वह रहै बहुत दुख पाई।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जाना। पड़ना।

मुहा०—निशाना या वार खाली जाना = निशाना या वार ठीक न बैठना। अस्त्र का लक्ष्य पर न पहुँचना। आक्रमण व्यर्थ होना। बात खाली जाना या पड़ना = वचन निष्फल होना। कहने के अनुसार कोई बात न होना। वादा झूठा होना। जैसे,-(क) हमारी बात खाली न जायगी; वह कल अवश्य आवेगा। (ख) अगर आज रुपया उनके यहाँ न पहुँचेगा; तो हमारी बात खाली जायगी। खाली दिन = वह दिन जिस दिन कोई नया या शुभ कार्य न किया जाय। जैसे,—कल तो बुध है, खाली दिन है; कल आरंभ करना ठीक नहीं है। खाली देना = जिसपर वार या आघात किया जाय, उसके वार को बचा जाना। साफ निकल जाना। खाली महीना या खाली चाँद = मुसलमानों का ग्यारहवाँ महीना जो अशुभ माना जाता है।

खाली[2]—क्रि० वि० केवल। सिर्फ। अकेले। जैसे—खाली रटने से काम न चलेगा; समझो।

खाली[3]—संज्ञा पुं० तबला, मृदंग आदि बजाने में वह ताल जो खाली छोड़ दिया जाता है और जिसमें बाएँ पर आघात नहीं लगाया

जाता। इसका व्यवहार ताल की गिनती ठीक रखने के लिये किया जाता है।

ख़ालू - संज्ञा पुं० [फा० ख़ालू] [स्त्री० ख़ाला] माता की बहन का पति। मौसा।

खाले—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'खाला' या 'खाल' (नीचा)। उ०—गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले। चलत कुमग पग परहि न खाले।—तुलसी (शब्द०)।

खाव¹—संज्ञा स्त्री० [सं० खम्] खाली जगह। अवकाश।

खाव²—संज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज की वह कोठरी जिसमें माल रखा जाता है।—(लश०)।

खावाँ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खाँवाँ'।

ख़ाविंद—संज्ञा पुं० [फा० ख़ाविंद] १. पति। खसम। उ०—खोलि पलक चित चेतै अजहूँ खाविंद सों लौ लावै।—कबीर श०, पृ० ३०।

मुहा०—खाविंद करना = नया पति करना।

२. मालिक। स्वामी।

ख़ाविंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० ख़ावंदी] १. स्वामित्व। पतित्व। २. कृपा। दया (को०)।

खावी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना] वह अन्न या धन जो मालिक अपने नौकरों को वर्ष के आरंभ में पेशगी देता है।

ख़ास¹—वि० [अ० ख़ास] १. विशेष। मुख्य। प्रधान। 'आम' का उलटा। उ०—सुधि किये बलि जाउँ दास आस पूजिहै खास खीन की।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—ख़ासकर = विशेषतः। प्रधानतः = ख़ास ख़ास = चुने चुने। चुनिंदे। अच्छे और प्रतिष्ठित। जैसे,—ख़ास ख़ास लोगों को न्योता दिया गया है।

२. निज का। आत्मीय। चाहता। प्रिय। जैसे,—यह ख़ास घर के आदमी हैं। उ०—खास दास रावरो निवास तेरो तासु उर तुलसी सो देव दुखी देखियत भारिये।—तुलसी (शब्द०)। ३. स्वयं। खुद। जैसे,—ख़ास राजा के हाथ से इनाम लूँगा। ४. ठीक। ठेठ। विशुद्ध। जैसे,—यह ख़ास दिल्ली की बोलचाल में लिखा गया है।

खास²—संज्ञा स्त्री० [अ० कीसा] १. गाढ़े कपड़े की वह थैली जिसमें घक्कर भरकर बोरे में भरी जाती है। २. कपड़े की वह थैली जिसमें बनिए नमक चीनी आदि रखते हैं।

ख़ासकलम—संज्ञा पुं० [अ० ख़ास + कलम] वह लेखक या सहायक जिसे बड़े लोग अपने निजी कार्यों के लिये रखते हैं। निज का मुंशी। प्राइवेट सेक्रेटरी।

ख़ासगी—वि० [अ० ख़ास + गी (प्रत्य०)] राजा या मालिक आदि का। निज का।

ख़ासतराश—संज्ञा पुं० [फा० ख़ास + तराश] वह नाई जो राजा के बाल बनाया करता हो।

ख़ासतहसील—संज्ञा स्त्री० [अ० ख़ास तहसील] वह तहसील जो उस स्थान में हो, जहाँ स्वयं राजा या प्रांत का शासक रहता हो। हुजूर तहसील। जिला तहसील।

ख़ासदान—संज्ञा पुं० [अ० ख़ास + फा० दान] गिलौरी का सामान रखने का डिब्बा। पानदान।

ख़ासनवीस—संज्ञा पुं० [अ० ख़ास + फा० नवीस] दे० 'ख़ासकलम'।

ख़ासपसंद—वि० [अ० ख़ास + फा० पसन्द] विशिष्ट लोगों को रुचनेवाला। उ०—इबारत वही अच्छी कही जायगी कि जो आमफहम और खासपसंद हो।—प्रेमघन०, पृ० ४०६।

ख़ासबरदार—संज्ञा पुं० [अ० ख़ास + फा० बरदार] वह सिपाही जो राजा की सवारी के साथ साथ सवारी के ठीक आगे आगे चलता है।

ख़ासबाजार—संज्ञा पुं० [अ० ख़ास + फा० बाज़ार] वह बाजार जो राजा के महल के सामने या निकट हो और जहाँ से राजा वस्तुएँ मोल लेता हो।

ख़ासमहल—संज्ञा पुं० [अ० ख़ास + महल] १. जनानखाना। अंतःपुर। २. प्रमुख बेगम। पटरानी (को०)।

ख़ासमहल—संज्ञा पुं० [अ० ख़ास + महाल] वह भूमि या संपत्ति जिसका प्रबंध सरकार स्वयं करे।

ख़ासह्—संज्ञा पुं० [अ० ख़ासह्] एक प्रकार का महीन और सफेद सूती कपड़ा। उ०—जिन तन पहने खासह् मलमल।—कबीर मं०, पृ० ४६०।

ख़ासा¹—संज्ञा पुं० [अ० ख़ासह्] १. राजा का भोजन। राजभोग। २. राजा की सवारी का घोड़ा या हाथी। ३. एक प्रकार का पतला सफेद सूती कपड़ा। उ०—(क) बिस्वा ओढ़े खासा मलमल।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५१। (ख) तब श्री गुसांई जी खासा को थान रुपैया नव को नारायनदास की नजरि करायो।—दो सौ बावन०, पृ० १२४। ४. मोयनदार पूरी।

ख़ासा²—वि० पुं० [अ० या उर्दू] [वि० स्त्री० ख़ासी] १. अच्छा। भला। उत्तम। २. स्वस्थ। तंदुरुस्त। नीरोग। ३. मध्यम श्रेणी का। ४. सुडौल। सुंदर। ५. भरपूर। पूरा।

ख़ासादार—संज्ञा पुं० [अ० ख़ासह् + फा० दार (प्रत्य०)] मुख्य प्रबंधक। प्रधान। उ०—और न अस्तबल के खासादार को इससे विशेष लाभ हुआ होगा।—किन्नर०, पृ० २६।

ख़ासियत—संज्ञा स्त्री० [अ० ख़ासियत] १. स्वभाव। प्रकृति। आदत। २. गुण। सिफत। हुनर।

खासिया—संज्ञा स्त्री० [सं० खश] १. आसाम की एक पहाड़ी का नाम। २. इस पहाड़ी में रहनेवाली एक जंगली जाति। खस।

खासियाना—संज्ञा पुं० [हिं० खासिया] एक प्रकार की मँजीठ जिसका रंग बहुत अच्छा होता है। यह खासिया से आती है।

ख़ासी¹—वि० स्त्री० [अ० ख़ासह] 'ख़ासा' का स्त्रीलिंग रूप। उ०—खासी परकासी पुनवासी चंद्रिका सी जाके बासी अविनासी अघनासी ऐसी काशी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२।

खासी²—संज्ञा स्त्री० [अ०] खास राजा के बाँधने की तलवार, ढाल या बंदूक।

खास्तई —संज्ञा पुं० [फ़ा० खास्तई] कबूतर का एक विशिष्ट रंग [को०]।

खास्सा—संज्ञा पुं० [अ० खास्सह] स्वभाव। आदत। बानि। प्रकृति।

खाह—अव्य० [फ़ा० ख़्वाह] दे० 'ख़्वाह'।

खाहनखाह, खाहमखाह—क्रि० वि० [फ़ा० ख्वाह-म-ख्वाह] दे० 'ख्वाहमख्वाह'।

खाहाँ—वि० [फ़ा० ख्वाहाँ] दे० 'ख्वाहाँ'।

खाहिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़्वाहिश] दे० 'ख़्वाहिश'।

खाहिशमंद—वि० [फ़ा० ख़्वाहिशमंद] दे० 'ख़्वाहिशमंद'।

खाहीनखाही—क्रि० वि० [फ़ा० ख़्वाहमख़्वाह] दे० 'ख़्वाहमख़्वाह'।

खिंकिर—संज्ञा पुं० [सं० खिङ्किर] लोमड़ी [को०]।

खिंखिर—संज्ञा पुं० [सं० खिङ्खिर] १. लोमड़ी। २. खटिया का पावा। ३. एक प्रकार का गंधद्रव्य [को०]।

खिंग—संज्ञा पुं० [फ़ा० खिंग] वह सफेद रंग का घोड़ा जिसके मुँह पर का पट्टा और चारों सुम गुलाबीपन लिए सफेद हों। नुकरा। उ०—हरे हरदिया हंस खिंग गर्रा फुलवारी।—सुजान, पृ० ८।

खिंगरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे की बनी हुई बहुत पतली और छोटी खस्ता पूरी या मठरी।

खिंचना—क्रि० अ० [सं० कर्षण] १ किसी वस्तु का इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना कि वह गति के समय अपने आधार से लगी रहे। घसिटना। जैसे,—यह लकड़ी कुछ उधर खिंच गई है। २. किसी कोश, थैले आदि में से किसी वस्तु का बाहर निकलना। जैसे,—दोनों तरफ से तलवारें खिंच गईं। ३. किसी वस्तु के एक या दोनों छोरों का एक या दोनों ओर बढ़ना। तनना। ४. किसी ओर बढ़ना या जाना। आकर्षित होना। प्रवृत्त होना।

मुहा०—चित्त खिंचना = मन मोहित होना।

५. सोखा जाना। खपना। चुसना। जैसे,—सोखता रखते ही उसमें सारी स्याही खिंच आई। ६. भभके आदि से अर्क या शराब आदि तैयार होना। ७. किसी वस्तु के गुण या तत्व का निकल जाना। जैसे,—उसकी सारी शक्ति खिंच गई।

मुहा०—पीड़ा या दर्द खिंचना = (औषध आदि से) दर्द दूर होना। जैसे,—उस लेप के लगाते ही सारा दर्द खिंच गया।

८. कलम आदि से बनकर तैयार होना। चित्रित होना। जैसे,—तसवीर खिंचना। ९. रुक रहना। रुकना।

मुहा०—हाथ खिंचना = देना आदि बंद होना जैसे,—अगर उधर से हाथ खिंचे, तो तुम भी बंद कर देना।

१०. माल की चलान होना। माल खपना। जैसे,—इस देश का सारा कच्चा माल विलायत को खिंचा जाता है। ११. अनुराग कम होना। उदासीन होना। १२. भाव तेज होना। महँगा होना। जैसे,—वर्षा न होने के कारण दिन पर दिन भाव खिंचता जाता है।

संयो०—क्रि० चुकना।—जाना।—पड़ना।

खिंचवा—वि० [हिं० खींचना] खींचनेवाला।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः नाव की गून अथवा खराद की बद्धी खींचनेवालों के लिये होता है।

खिंचवाना—क्रि० स० [हिं० 'खींचना' का प्रे० रूप] खींचने की प्रेरणा देना। खींचने का काम किसी अन्य से कराना।

खिंचाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खींचना] १. खींचने की क्रिया। २. खींचने का भाव। ३. खींचने की मजदूरी।

खिंचाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खिंचवाना'।

खिंचाव—संज्ञा पुं० [हिं० खिंचना] १ 'खींचना' का भाव। तनाव। २. नाराजगी।

खिंचावट, खिंचाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिंचना] १. खींचने का भाव। २. खींचने की क्रिया।

खिंचिया—वि० [हिं०] दे० 'खिंचवा'।

खिंडाना(पु)—क्रि० स० [सं० क्षिप्त] इधर उधर फैलाना। बिखेरना। बिखराना। छितराना।

खिंथा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० 'कन्था'] दे० 'कंथा'। उ०—नाँ तिसु खिंथा नाँ तिसु बस्तरु। नानक जोगी होया अस्थिरु।—प्राण०, पृ० १०६।

खिंवना(पु)—क्रि० अ० [देश०] दे० 'खिंचना'। उ०—खिंवि पर पखँ, झड़ धार खगँ। ललकार उचार अपार लगँ।—रा० रू०, पृ० ३५।

खिखिंद—संज्ञा पुं० [सं० किष्किन्ध] १. दक्षिण देश के एक पहाड़ का नाम, जहाँ वनवास के समय में कुछ दिन रामचंद्र जी ने निवास किया था। यह पहाड़ मैसूर राज्य के उत्तरी भाग में है। किष्किंध पर्वत। २. बीहड़ भूमि।

खिखि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोमड़ी [को०]।

खिचड़वार¹—संज्ञा पुं० [हिं० खिचड़ी + वार] मकर संक्रांति। इस दिन खिचड़ी दान की जाती है।

खिचड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर] १. एक में मिलाया या मिलाकर पकाया हुआ दाल और चावल।

क्रि० प्र०—उतारना।—चढ़ाना।—डालना।—भूनना।—पकाना।

मुहा०-पकना पकना = गुप्त भाव से कोई सलाह होना। ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकना = सब की संमति के विरुद्ध कोई कार्य होना। बहुमत के विपरीत कोई काम होना। ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाना = सब की संमति के विरुद्ध कोई कार्य करना। बहुमत के विरुद्ध कोई काम करना। खिचड़ी खाते पहुँचा उतारना = अत्यंत कोमल होना। बहुत नाजुक होना। खिचड़ी छुआना = नववधू से पहले पहल भोजन बनवाना।

२. विवाह की एक रसम जिसे 'भात' भी कहते हैं।

मुहा०—खिचड़ी खिलाना = वर और बरातियों को (कन्या पक्ष वालों का) कच्ची रसोई खिलाना।

३. एक ही में मिले हुए दो या अधिक प्रकार के पदार्थ। जैसे,—सफेद और काले बाल, या रुपए और अशरफियाँ; अथवा

जौहरियों की भाषा में एक ही में मिले हुए अनेक प्रकार के जवाहिरात। ४. मकर संक्रांति। इस दिन खिचड़ी दान की जाती है।

यौ०—खिचड़ी खिचड़वार।

५. बेरी का फूल।

क्रि० प्र०—ग्राना।

वह पेशगी धन जो वेश्या आदि को नाच ठीक करने के समय दिया जाता है। बयाना। साई।

खिचड़ी³—वि० [सं० कृसर] १. मिला जुला। गड्डमड्ड। २. गड़बड़। जैसे,—खिचड़ी बोली या भाषा।

खिचना—क्रि० ग्र० [हिं०] दे० 'खिचना'।

खिचरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिचड़ी] दे० 'खिचड़ी'।

खिचरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० खेचरी] दे० 'खेचरी मुद्रा'। उ०—छव चक्र श्रो पाँचो मुद्रा। खिचरी भोचरी कहि ग्रनुकारा।—सं० दरिया, पृ० ६।

खिचवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खिचवाना'।

खिचाव—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खिंचाव'।

खिजना—क्रि० ग्र० [हिं०] दे० 'खींजना'।

खिजवार—वि० [हिं० खीझ + वार (प्रत्य०)] खीजनेवाला। क्षुब्ध होनेवाला। उ०—दिन भर बाट बिलोकनहारे। गए बार खिजवार सिधारे।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २८२।

खिजमत, खिजमति—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खिदमत' उ०—साविए ऊगट मांजिराड खिजमति करइ ग्रनंत।—ढोला०, दू० ५३५।

खिजमतिया—संज्ञा पुं० [हिं० खिजमत + इया (प्रत्य०)] खिदमतगार। सेवक। टहलुवा। उ०—पहिरि पोसाक खास खिजमतिया सँग सँग बहुत जुरे।—सं० दरिया, पृ० १५६।

खिजर—संज्ञा पुं० [ग्र० खिजर] १. पथप्रदर्शक। मार्गदर्शक। रहनुमा। २. एक पैगंबर। वि० दे० 'खिज्र'। उ०—ग्राबेहयात जाके किसू ने दिया तो क्या। मानिंद खिजर जग में ग्रकेला जिया तो क्या।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ४१।

खिजल—संज्ञा पुं० संज्ञा [ग्र० खजल] लज्जा। शर्मिंदगी। उ०—खुरशीद खिजल होके छिपा ग्रब्र के ग्रंदर।—कबीर मं०, पृ० ३८६।

खिजलाना¹—क्रि० ग्र० [हिं० खीजना] झुँझलाना। चिढ़ना।

खिजलाना²—क्रि० स० [हिं० खीजना] 'खींजना' का प्रेरणार्थक रूप। दुखी करना। चिढ़ना।

खिजाँ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खिजाँ] १. वह ऋतु जिसमें पेड़ों के पत्ते झड़ जाते हैं। पतझड़ की ऋतु। २. ग्रवनति का समय।

खिजाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खिझाना'। उ०—देखो ग्राज तुमने मुझको बहुत खिजाया, पर चेत रखो, फिर मुझसे ऐसी बातें करोगी।—ठेठ०, पृ० १३।

खिजाब—संज्ञा पुं० [ग्र० खिजाब] सफेद बालों को काला करने की ग्रौषध। केश कल्प।

मुहा०—खिजाब करना = बालों में खिजाब लगाना।

खिज्र—संज्ञा पुं० [ग्र० खिज्र] १. मार्गदर्शक। २. एक पैगंबर जो ग्रमर माने जाते हैं।

विशेष—इनके बारे में कहा गया है कि ये ग्रमृत पीकर ग्रमर हो गए हैं। जल इन्हीं के ग्रधिकार में है ग्रौर ये भूले भटकों को राह बताते हैं।

३. एक समुद्र। कैस्पियन सागर। ४. दीर्घजीवी फरिश्ता [को०]।

खिज्रसूरत—वि० [ग्र० खिज्र + सूरत] साधु या संत की ग्राकृति का। साधु संतों जैसे रूपवाला [को०]।

खिझ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खीज'। उ०—मनु न मनावन कौं करै देतु रुठाइ रुठाइ। कौतुक लाग्यो प्यौ प्रिया खिझ हूँ रिझवति जाइ।—बिहारी (शब्द०)।

खिझना—क्रि० ग्र० [सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जइत] खीजना। उ०—सुंदर वा सों कितो खिझिए न तजै तऊ ग्रापने शील सुभाइन।—सुंदर (शब्द०)।

खिजना—क्रि० स० [सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जत] चिढ़ाना। दिक करना। उ०—मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।—सूर (शब्द०)।

खिझावना—क्रि० स० [हिं०] 'खिझाना'। उ०—निपट हमारे ख्याल परे हरि बन में निर्तहि खिझावत।—सूर (शब्द०)।

खिझुवर—वि० [हिं० खीझना] शीघ्र ग्रप्रसन्न होनेवाला। खीझनेवाला। चिढ़नेवाला।

खिझौना—वि० [हिं० खीझ + ग्रौना (प्रत्य०)] खिझानेवाला। चिढ़ानेवाला।

खिड़कना—क्रि० ग्र० [हिं० खिसकना] चल देना। चला जाना। खिसक जाना। उ०—क्षोभ भरी तिय को निरखि खिड़की सहचरि सोय।—नंददास (शब्द०)।

खिड़काना—क्रि० स० [हिं० खिसकाना] १. ग्रलग करना। टालना। टरकाना। हटाना। २. बेच डालना। ग्रौने पौने करना।

खिड़की—संज्ञा स्त्री० [सं० खटक्किका, देशी खडक्किग्रा, खडक्की] १. किसी मकान या इमारत की दीवार में प्रकाश ग्रौर वायु ग्राने के लिये बना हुग्रा छोटा दरवाजा। जहाज, रेल ग्रादि के डब्बे में बनाया हुग्रा वातायन। दरीचा। झरोखा।

मुहा०—खिड़की निकालना या फोड़ना = खिड़का बनाना।

२. नगर या किले का चोर दरवाजा। ३. खिड़की के ग्राकार का खाली स्थान।

यौ०—खिड़कीदार ग्रँगरखा = एक प्रकार का ग्रँगरखा जो ग्रागे ऊपर की ग्रोर खुला रहता है। खिड़कीदार पगड़ी = एक प्रकार की पगड़ी जिसमें ऊपर की ग्रोर कुछ भाग खुला रहता है। खिड़कीबंद मकान = वह मकान जो पूरा का पूरा एक किराएदार द्वारा लिया गया हो।

खिड़ना—क्रि० ग्र० [सं० खेल, प्रा० खिड्ड] खिलना। विकसित होना। उ०—सखी री ग्राज जन्मे लीलाधारी। तिमिर भजेंगी भक्ति खिड़ेगी परायन पर नारी।—सहजो०, पृ० ५८।

खित—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति] पृथ्वी। धरती। उ०—बरणमाल ज्यूँ ही ग्रसुरांण पड़ा। खित ग्रावृत मेन किसेन खड़ा।—रा० रू०, पृ० ३३।

खितवा—संज्ञा पुं० [ग्र० खुतबा] दे० 'खुतबा'। उ०—ग्रकबर साह जलालदी, खितवा वलो खुदाय।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६।

खिताव—संज्ञा पुं० [अ० खिताब] १. पदवी । उपाधि ।
क्रि० प्र०– देना ।—पाना ।—मिलना ।
२. मुखातिब होना । किसी की ओर मुँह करके उससे बातचीत करना (को०) ।

खितावी – वि० [अ० खिताबी] खिताब पाया हुआ । जिसे पदवी मिली हो ।

खित्ता—संज्ञा पुं० [अ० खित्तह्] प्रांत । देश । इलाका ।

खिदमत—संज्ञा स्त्री० [अ० खिद्मत] सेवा । टहल । सुश्रूषा ।

खिदमतगार—संज्ञा पुं० [फ़ा० खिद्मतगार] खिदमत करनेवाला । सेवक । टहलुवा ।

खिदमतगारी– संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खिद्मतगारी] सेवा । टहल ।

खिदमती—वि० [अ० खिद्मती] १. खिदमत करनेवाला । जो खूब सेवा करे । २. सेवा संबंधी, अथवा जो सेवा के बदले में प्राप्त हुआ हो । जैसे—खिदमती माफी, खिदमती जागीर ।

खिदर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० खदिर[दे० 'खदिर' । उ०—कुतक खिदर धव काठरा, विदर प जावण वेस । बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६ ।

खिदिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । हिमांशु । २. तपस्वी । तपसी । ३. दीन । ४. इंद्र (को०) ।

खिद्यमान—वि० [सं०] [वि० स्त्री० खिद्यमाना] खेदयुक्त । दुःखित । उ०—प्राते ही वे निपतित हुई छिन्नमूला लता सी पाँवों के संनिकट पति के हो महा खिद्यमाना ।—प्रिय०, पृ० ७३ ।

खिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याधि । रोग । २. दरिद्रता ।

खिन[१](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] क्षण । लमहा । उ०—एक खिन खिन माँझ पावें पद साहिबी को एक खिन खिन माहू होत लटपट हैं ।—ठाकुर०, पृ०··· ।
मुहा०—खिनखिन = प्रतिक्षण । हरदम ।

खिन[२]—वि० [सं० क्षीण, प्रा० क्षीण[क्षीण । खिन्न । दुर्बल । उ०—उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख । चातक बतिया ना रुचीं अन जल सींचे रूख ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०८ ।

खिनु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] दे० 'खिन' । उ०—मेलेसि चंदन मकु खिनु जागा । अधिको सूत सियर तन लागा ।—जायसी ग्रं०, पृ० २५२ ।

खिन्न—वि० [सं०] १. उदासीन । चिंतित । २. अप्रसन्न । नाराज । ३. दीन हीन । असहाय । उ०—गिरा अरथ जल बीचि सम, देखिअत भिन्न न भिन्न । बंदौ सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ।—मानस, १।१८ ।

खिपना(पु)—क्रि० अ० [सं० खिप्] १. खपना । २. मिल जुल जाना । तल्लीन होना । निमग्न होना । उ०—मदन महीपति के सदन समीप सदा दीपक ह्वै दूनी दिन दीपति सै दिपि रहै । सरस सुजान के परस रस जानि जानु जघन नितंब तीन्यो खेलही में खिपि रहे ।—देव (शब्द०) ।

खिपाना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खपाना' उ०—आगे लख दल किते भारि हरि असुर खिपाए ।—ह० रासो, पृ० १०५ ।

खिफ्फत—संज्ञा स्त्री० [अ० खिफ्फ़त] १. न्यूनता । कमी । २. लाज । शर्म । संकोच । ३. पछतावा । पश्चात्ताप (को०) ।

खियानत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खयानत' ।

खियाना[१]†—क्रि० अ० [सं० क्षय या हिं० खाना] रगड़ से या काम में आते आते कम हो जाना । घिस जाना । उ०– घास भुसा कहुँ ध्यान लगावहिं दाँत खियाने चरते ।—सं० दरिया, पृ० १३५ ।

खियाना[२]†—क्रि० स० [हिं० खाना] भोजन कराना । खिलाना । उ०—भोग भुगुति बहु भाँति उपाई । सबहिं खियावइ आपु न खाई ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ११३ ।

खियावाँ - संज्ञा पुं० [फ़ा० खियाँबाँ] १. उद्यान । बाग । २. फूल पत्ती लगाने की क्यारी ।

खियार—संज्ञा पुं० [अ० खियार] एक प्रसिद्ध फल । खीरा (को०)।

खियाल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ख्याल' ।

खिर—संज्ञा स्त्री० [देश०] जोलाहों की ढरकी जिसमें बाने का सूत रहता है और जो बुनते समय एक ओर से दूसरी ओर चलाई जाती है । इसे 'नार' भी कहते हैं ।

खिरक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] गाय भैंस आदि रखने का बाड़ा । गोशाला । उ०—मंदिर तें ऊँचे यह मंदिर हैं द्वारिका के ब्रज के खिरक मेरे हिय खरकत हैं ।—रसखान०, पृ० २७ ।

खिरका—संज्ञा पुं० [अ० खिरकह्] गुदड़ी । कंथा (को०) ।

खिरकी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खिड़की' । उ०—सेज ते बाल उठी हरुए हरुए पट खोल दिए खिरकी के ।—मति० ग्रं०, पृ० ३०८ ।

खिरचा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खरका' ।

खिरडरी†– संज्ञा स्त्री० [हिं० खैर + डली] सुगंधित मसाले मिलाकर बनाई हुई खैर की गोली ।

खिरद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खिरद] मेधा । बुद्धि । अक्ल ।
यौ०—खिरदमंद = बुद्धिमान । मेधावी । उ०—ऐ खिर मंदो मुबारक तो तुम्हें फर्जानगी । हम हों औ सहारा हो औ वहशत हो औ दीवानगी ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४३ ।

खिरना(पु)—क्रि० अ० [सं० क्षरण] १. नष्ट होना । मिटना । उ०—जे अक्खर खिरि जाहिंगे ओहि अक्खर इन महि नाहि ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३१० । २. गिरना । चूना । बिखरना । झरना । उ०—(क) मेहाँ वूठा अन बहल पल ताटा जल रेस । करसण पाका, कण खिरा, तद कउ वलण करेस ।—ढोला०, दू० २६४ । (ख) केहर कुंभ विदारियों गज मोती खिरियाह ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १८ ।

खिरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीरिणी] १. एक प्रकार का ऊँचा और छतनार सदाबहार पेड़ जिसके हीर की लकड़ी लाल रंग की चिकनी, कड़ी और बहुत मजबूत होती है और कोल्हू बनाने तथा इमारत के काम आती है । यह बड़ी सरलता से खरादी भी जा सकती है । २. इस वृक्ष का फल जो निमकौड़ी के आकार का, दुधिया और बहुत मीठा होता है और गरमी के दिनों में पकता है । ३. एक प्रकार का चावल । उ०—खरी

(खिरनी) नामक विशेष चावल का मूल्य २०० दीनार से ३६ दीनार हो गया।—ग्रादि०, पृ० ४६६।

खिरमन—संज्ञा पुं० [फ़ा० खिरमन] खलिहान। ढेर। उ०—भाव सस्ता हो या महँगा नहीं मौकूफ़ गल्ले पर। य सब खिरमन उसी के हैं खुदा है जिसके पल्ले पर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २५।

ख़िराज—संज्ञा पुं० [ग्र० खिराज] राजस्व। कर। मालगुजारी। उ०—पात न कँपावै लेत पराग खिराज, ग्रावत गुमान मरयो समीरन राज।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६८७।

क्रि० प्र०—लगाना।—बढ़ाना।—चढ़ाना।—देना।—लेना।

खिराम—संज्ञा पुं० [फ़ा० खिराम] मस्त चाल। धीमी चाल।

खिरामाँ—वि० [फ़ा० ख़िरामाँ] खिरामवाले। मस्ती की चालवाले। उ०—ग्रगो चलते थे यूसुफ शाद फरहाँ। खुशी करते हुए हँसते खिरामाँ।—दक्खिनी०, पृ० ३३८।

खिरिरना†—क्रि० वि० [ग्रनु०] १. छौंक के छाज में रखकर ग्रनाज को छानना जिसमें खराब दाने नीचे गिर पड़ें। २. खुरचना। खरोचना। उ०—सोई रघुनाथ कपि साथ पाथनाथ बाँधि ग्रायो, नाथ! भागे ते खिरिरि खेह खाहिगो। तुलसी गरब तजि मिलिबे को साज सजि, देहि सिय ना तो पिय पायमाल जाहिगो।—तुलसी (शब्द०)।

खिरेंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० खरयष्टिका] बला। बरियारा। बीजबंद।

खिरौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० खैर=कत्था+ग्रौरा (प्रत्य०)] कत्थे की टिकिया। उ०—पुहुप पंक रस ग्रमृत साँधे। कोइ यह सुरंग खिरौरा बाँधे।—जायसी (शब्द०)।

खिलंदरा†—वि० [सं० खेल] खिलाड़ी। खेल खेलनेवाला।

खिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊसर धरती। रेतीली भूमि। २. रिक्त स्थान। खाली जगह। ३. परिशिष्ट। ४. संकलन। ५. शून्यता। खालीपन। ६. शेष भाग। शेषांश। ७. ब्रह्मा। ८. विष्णु (कौ०)।

खिलग्रत—संज्ञा स्त्री० [ग्र० खिलग्रत] वह वस्त्र ग्रादि जो किसी बड़े राजा या बादशाह की ग्रोर से संमानसूचनार्थ किसी को दिया जाता है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—बखशना।—मिलना।—लेना।

खिलकत—संज्ञा स्त्री० [ग्र० खिलकत] १. सृष्टि। संसार। उ०—बंदे खुदा की रीत क्या खिलकत फना खोवे खुदी।—तुलसी० श०; पृ० २४। २. बहुत से लोगों का समूह। भीड़।

खिलकौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेल+कौरी (प्रत्य०)] खेल। खिलवाड़। उ०—बालकहू लगि लेयँ संग करि प्रिय खिलकौरिन।—श्रीधर (शब्द०)।

खिलखाना(पु)—संज्ञा पुं० [ग्र० खिल=यार, ग्रात्मीय+फ़ा० खानह=घर] पसारा। कुटुंब। उ०—दोस्त दिल तू ही मेरे किसका खिलखाना। नूरचश्म जिंद मेरे तू ही रहमाना।—दादू०, पृ० ६०४।

खिलखिलाना—क्रि० ग्र० [ग्रनु०] खिलखिल शब्द करके हँसना। जोर से हँसना। ग्रट्टहास करना।

खिलखिलाहट—संज्ञा स्त्री० [ग्रनु०] खिलखिलाकर हँसने का भाव।

खिलजी—संज्ञा पुं० [देश०] १. ग्रफगानिस्तान की सरहद पर रहनेवाली पठानों की एक जाति। २. भारतीय इतिहास का पठान राजवंश।

विशेष—ग्रलाउद्दीन इस वंश का बड़ा प्रसिद्ध सम्राट् हुग्रा है। इस वंश का राज्य भारत में सन् १२८८ ई० से सन् १३२१ ई० तक रहा।

खिलत, खिलती†—संज्ञा स्त्री० [ग्र० खिलग्रत] दे० 'खिलग्रत'। उ०—खिलत मिलति तिनकों नरपति सौं। जिमि वर देव ग्रमर वर रति सौं।—गोपाल (शब्द०)।

खिलना—क्रि० वि० [सं० स्खल] १. कली के दल ग्रलग ग्रलग होना। कली से फूल होना। विकसित होना। २. प्रसन्न होना। प्रमुदित होना। ३. शोभित होना। उपयुक्त होना। ठीक या उचित जँचना। जैसे—यह गमला यहाँ पर खूब खिलता है। ४. बीच से फट जाना। जैसे,—दीवार का खिल जाना। ५. ग्रलग ग्रलग हो जाना। जैसे,—चावल खिलना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना। उ०—हुस्नग्रारा खिली जाती थीं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २८६।—पड़ना।

खिलवत—संज्ञा स्त्री० [ग्र० खिलवत] जहाँ कोई न हो। एकांत। शून्य स्थान।

यौ०—खिलवतखाना।

खिलवतखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० खिलवतखानह्] वह स्थान जहाँ कोई गुप्त मंत्रणा या विवाद हो। एकांत स्थान। उ०-खड़जी खजाने खरगोस खिलवतखाने खीसें खोले खसराने खाँसत खबीस हैं।—भूषण (शब्द०)।

खिलवति—संज्ञा स्त्री० [ग्र० खिलवत] दे० 'खिलवत'।

खिलवती—संज्ञा पुं० [ग्र० खिलवत] मुसाहब। पारिषद। उ०—निज खिलवतिन में हास है, भय रूप दुर्जन पास है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६।

खिलवाड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खेलवाड़'।

खिलवाड़िन—वि० स्त्री० [हिं० खेलवाड़] क्रीड़ा करनेवाली। उ०—मित्र, खिलवाड़िन मैना क्या कहती है, सुनो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४०२।

खिलवाना[१]—क्रि० स० [हिं०खाना का प्रे० रूप] किसी को दूसरे से भोजन कराना।

खिलवाना[२]—क्रि० स० [हिं० खिलना का प्रे० रूप] विकसित कराना। प्रफुल्लित कराना।

खिलवाना[३]—क्रि० स० [हिं० खील] खीलें बनवाना। जैसे,—भड़भूजे के यहाँ से धान ग्रच्छी तरह खिलवा लेना।

खिलवाना[४]—क्रि० स० [हिं० 'खीलना' का प्रे० रूप] खीलें लगवाना। खील या तिनके गोदकर दोने ग्रादि का मुँह बंद करवाना।

खिलवाना[५]—क्रि० स० [हिं० खेल] दे० 'खेलवाना'।

खिलवार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खिलवाड़'।

खिलाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना] १. भोजन की क्रिया। खाने का काम। २. खिलाने का काम।

यौ०—खिलाई पिलाई = (१) खाना पीना। (२) खिलाना पिलाना।

खिलाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेलाना (खेल)] वह दाई या मजदूरनी जो बच्चों को खेलाती हो।

यौ०—दाई खिलाई।

खिलाड़[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खिलाड़ी'।

खिलाड़[2]—वि० स्त्री० बदचलन। पुंश्चली।

खिलाड़िन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेल + आड़ी प्रत्य०)] १. चुलबुली। नटखट। २ पुंश्चली। व्यभिचारिणी।

खिलाड़ी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० खेल + आड़ी (प्रत्य०)] [स्त्री० खिलाड़िन] १. खेल करनेवाला। खेलनेवाला। २. कुश्ती लड़ने, पटा बनेठी खेलने या इसी प्रकार के और काम करनेवाला। ३. जादूगर। बाजीगर।

खिलाड़ी[2]—संज्ञा पुं० [देश०] बैलों की एक जाति जो खानदेश, मैसूर और हैदराबाद के पहाड़ी भागों में होती है।

खिलाना[1]—क्रि० स० [हिं० खेलना] किसी को खेल में नियोजित करना। खेल कराना।

खिलाना[2]—क्रि० स० [हिं० खाना] 'खाना' का प्रेरणार्थक रूप। भोजन कराना।

यौ०—खिलाना पिलाना = भोजन कराना।

खिलाना[3]—क्रि० स० [हिं० खिलना] विकसित करना। फुलाना।

खिलाफ[1]—संज्ञा पुं० [अ० खिलाफ़] बेंत्र। बेंत का वृक्ष [को०]।

खिलाफ[2]—वि० जो अनुकूल न हो। विरुद्ध। उलटा।

यौ०—खिलाफकानून = अवैध। विधिविरुद्ध। खिलाफबयानी = झूठ कहना। गलत बयान देना। खिलाफमरजी = इच्छा के प्रतिकूल। खिलाफवरजी = अवज्ञा। अवमानना।

खिलाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० खिलाफ़त] १. प्रतिनिधित्व। स्थानापन्नता। २. खलीफा का पद। ३. मुहम्मद साहब के बाद उनका प्रतिनिधित्व। ४. विरोध।

यौ०—खिलाफत आंदोलन = सन् १९१८-२१ के बीच भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध छेड़ा गया एक आंदोलन जो खलीफा की गद्दीनशीनी के प्रश्न पर हुआ था।

खिलार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खिलाड़'। उ०—उन पीतम सों यों जा कहियो तुम बिन व्याकुल नार। 'हरीचंद' क्यों सुरति बिसारी तुम तो चतुर खिलार।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८।

खिलारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खील = भुना हुआ दाना] धनिया और खरबूजे, ककड़ी आदि के भुने हुए बीज जो भोजनोपरांत खाए जाते हैं।

खिलाल[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० खिलाल] १. (ताश आदि के खेल में) पूरी बाजी की हार। दे० 'खलाल'। २. मध्य। बीच। अंतर (को०)। ३. दाँत खोदने का तिनका। खरका (को०)।

खिलौना—संज्ञा पुं० [हिं० खेल + औना (प्रत्य०)] काठ, मोम, मिट्टी, कपड़े आदि की बनी हुई मूर्ति या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे बालक खेलते हैं।

मुहा०—हाथ का खिलौना = आमोद प्रमोद की वस्तु। वह व्यक्ति जिससे मन बहले। प्रिय व्यक्ति। जैसे,—अपने गुणों की बदौलत यह अमीरों के हाथ खिलौना बना रहता है।

खिल्त[1]—संज्ञा पुं० [अ० खिल्तह्] मिश्रण। मिलावट।

यौ०—खिल्तमिल्त = मिला हुआ। एकाकार।

खिल्त[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० खिल्त] वात, पित, कफ आदि रस या धातु। यूनानी मत से शरीर की चार धातुओं में से कोई एक धातु (को०)।

खिल्य[1]—वि० [सं०] खिल अर्थात् परिशिष्ट या पूरक ग्रंथ में कथित।

खिल्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरुस्थल। रेगिस्तान। २. सामान्य भूमि के बीच कोई चट्टान। ३. खारी नमक [को०]।

खिल्ला—वि० [सं० खिल] परती। खाली। बिना जोते बोए हुए। उ०—कोई किसान यदि नजराना देता तो वे खेत उसके नाम दर्ज हो जाते, नहीं तो खिल्ले पड़े रहते।—फूलो०, पृ० ८०।

खिल्ली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिलना] हँसी। हास्य। दिल्लगी। मजाक।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—करना।

यौ०—खिल्लीबाज = दिल्लगीबाज। खिल्लीबाजी = दिल्लगीबाजी। विनोद।

खिल्ली[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिलौरी] पान का बीड़ा। गिलौरी।

खिल्ली[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कील] कील। काँटा।

खिल्लो—वि० स्त्री० [हिं० खिलना = प्रसन्न होना] बहुत अधिक हँसनेवाली (स्त्री)।

खिवना(पु)—क्रि० अ० [क्षिप्, प्रा०, खिवण] चमकना। उ०—(क) च्यारह पासइ घण घणउ बीजलि खिवइ अगास। हरियाली रुति तउ भलई, वर संपति पिउ पास।—ढोला० दू० २६०। (ख) बिरहा रवि सों घट व्योम तच्यो बिजुरी सी खिवें इकलो छतियाँ।—घनानंद०, पृ० ८८।

खिवाही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईंट।

खिश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खिश्त] १. छोटा नेजा। शक्ति। २. इष्टका। ईंट [को०]।

खिश्तक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खिश्तक] १. कपड़े का वह टुकड़ा जो कुर्ते में बगल के नीचे लगाया जाता है। चौबगला। २. छोटी ईंट। छोटी ईंट [को०]।

खिसकना—क्रि० अ० [हिं० या अनु०] दे० 'खसकना'। उ०—भूलति नाहि भुलाए भटू सुधि सों सुधि जात सबै खिसकी सी।—रघुनाथ (शब्द०)।

खिसकाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खसकाना'।

खिसना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खसना'। उ०—जामी ठाकुर

आवि घरि काँई करइ विदेसि । दिन दिन जोवण तन खिसइ लाभ किसा कइ लेसि ।—ढोला०, दू० १७७ ।

खिसलन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'फिसलन' ।

खिसलना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'फिसलना' । उ०—बार बार ऊँचो कहूँ खिसनि खिसलि यह जात । मुरली हू की गूँथि दै नेक नहीं ठैरात ।—शकुंतला, पृ० ५१ ।

खिसलाना—क्रि० स० [हिं०] खिसलना का प्रेरणा० रूप ।

खिसलावा—संज्ञा पुं० [हिं० खिसलना या फिसलना] १. फिसलने या खिसलने का भाव । २. फिसलने या खिसलने की जगह ।

खिसलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिसलना या फिसलना] फिसलने या खिसलने का भाव ।

खिसाना१—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खिसियाना' । उ०—(क) दुरि गए कीर कपोत मधुप पिक सारंग सुधि बिसरी । उड़पति विद्रुम बिंब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी ।—सूर (शब्द०) । (ख) करँइ उपाय पात लता भूमि गाड़ पाइ,रहे वे खिसाद कह्यो इतनोइ कीजिए ।—प्रिया० (शब्द०)। (ग) तिन मधि को रानी । हो रानी पै निपट खिसानी ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०६ ।

खिसाना२—क्रि० स० [हिं० खिसकाना] १. सरकाना । हटाना । उ०—तो मो चरण खिसावै तासों वारै तो दीधी सीता । —रघु० रू०, पृ० १८० । २. हटाना । भगाना । उ०—दवाजे मीरां पीर खेत अजमेरि खिसाए ।—ह० रासो, पृ० ७३ ।

खिसारा—संज्ञा पुं० [फा०] घाटा । नुकसान । हानि ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—पड़ना ।—सहना ।

खिसारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खेसारी' ।

खिसिआनपन—संज्ञा पुं० [हिं० खिसिआना+पन] खिसियाना का भाव । खिसिआहट ।

खिसिआना१—क्रि० अ० [हिं० खीस=दाँत] १. लजाना । लज्जित होना । शरमाना । उ०—लाज लए प्रभु आवत नाहीं ह्वै जो रहे खिसिआने ।—सूर (शब्द०) । २. खफा होना । क्रुद्ध होना । रिसिआना ।

खिसिआना२—वि० लज्जित । शर्मिंदा । जैसे,—यह सुनकर वे तो खिसिआने से हो गए ।

खिसिआहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिसिआना+हट (प्रत्य०) खिसिआना का भाव । खिसिआनपन ।

खिसियाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खिसिआना' । क्रुद्ध होना । उ०—यासों हमरो कछु न बसाइ । यह कहि असुर रह्यो खिसियाइ ।—सूर०, ७।७ ।

खिसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिसियाना] १. लज्जा । शरम । उ०— (क) सब सिथिल तन मुकुलित विलोचन पुलक मुख गगि में खिसी । इमि निखिल निधुवन की कला पिय को हँसी तिय को खिसी ।—गुमान (शब्द०) । (ख) खिसी खलेल खान दर छाई । याद अनूप ग्रन्थ की आई ।—लाल (शब्द० । २, ढिठाई । धृष्टता । उ०—दुरै न निघरघटौ दिए, ए रावरी कुचाल । विष सी लागति है बुरी, हँसी खिसी की लाल ।—बिहारी (शब्द०) ।

खिसौहाँ—वि० [हिं० खीस+औहाँ (प्रत्य०)] खिसिआया हुआ । लज्जित और संकुचित । उ०—सहकि गाँसु और गहे रहे अधकहे बैन । देखि खिसौहैं पियनयन किए रिसौहैं नैन ।—बिहारी (शब्द०) ।

खींच—संज्ञा स्त्री० [हिं० खींचना] खींचना का भाव ।

खींचतान—संज्ञा स्त्री० [हिं० खींच+तान] १. किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये दो व्यक्तियों का एक दूसरे के विरुद्ध उद्योग । खींचाखींची । २. क्लिष्ट कल्पना द्वारा किसी शब्द या वाक्य आदि का अन्यथा अर्थ करना ।

खींचना—क्रि० स० [सं० कर्षण प्रा० कड्ढण, देशी खंचण, प्रे० खिंचवाना] १. किसी वस्तु को इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर करना कि वह गति के समय अपने आधार से लगी रहे । घसीटना । जैसे—(क) चारपाई इधर खींच लाओ । (ख) घड़े में हाथ डालकर उस चीज को खींच लो । २. किसी कोश, थैले आदि में से किसी वस्तु को बाहर निकालना । जैसे,—म्यान से तलवार खींचना । ३. किसी ऐसी वस्तु को छोर या बीच से पकड़कर अपनी ओर बढ़ाना जिसका दूसरा छोर दूसरी ओर अथवा नीचे या ऊपर हो । ऐंचना । जैसे, पंखे या खिड़की की डोरी खींचना । कुएँ से पानी खींचना । जैसे—रस्सी को बहुत मत खींचो, टूट जायगी । ४. आकर्षित करना । बलपूर्वक किसी ओर ओर ले जाना । किसी ओर बढ़ाना । किसी ओर प्रवृत्त करना ।

मुहा०—चित्त खींचना=मन को मोहित करना ।

५. सोखना । चूसना । जैसे—(क) मैदा बहुत घी खींचता है । (ख) अभी सोखता रख दो सब स्याही खींच ले । ६. भभके से अर्क, शराब आदि टपकाना । अर्क चुआना । ७. किसी वस्तु के गुण या तत्व को निकाल लेना । जैसे—इस कपड़े ने फूल की सारी सुगंध खींच ली ।

मुहा०-पीड़ा या दर्द खींचना=औषध आदि का दर्द दूर करना । जैसे—यह लेप सब दर्द खींच लेगा ।

८. कलम फेरकर लकीर आदि डालना लिखना । चित्रित करना । जैसे—तसवीर खींचना ।

यौ०—खींच खाँचकर=झटपट टेढ़ा सीधा लिखकर । जैसे—एक चिट्ठी में घंटा भर लगा दिया, खींच खाँचकर किनारे करो ।

९. रोक रखना । जैसे—जितना वाजबी देना है, उसमें से भी वह कुछ खींच रखना चाहता है ।

मुहा०—हाथ [illegible] ना या और कोई काम बंद करना । जैसे— [illegible] न अपना हाथ खींच लिया है; एक पैसा [illegible] ख) हम अपना हाथ खींच लेते [illegible] ।

१० [illegible] । व्यापार का माल में [illegible] । भनाव खींच रहा [illegible] —रखना ।—लेना ।

संयो० [illegible]

खींच [illegible] हिं०] दे० 'खीं [illegible]

खींचातान--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खींचतान'। उ०—जम द्वारे पर दूत सब, करते खींचातान। तिन तें कबहुँ न छूटता, फिरता चारो खान।--कबीर सा०, पृ० ७।

खींचातानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खींचतान'।

खीखर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वनबिलाव जिसे कटास भी कहते हैं।

खीच(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खिचड़ी' उ० —करमाँबाई जीच पवायो उठ परभात सवारे। शुचि संजम किरिया नहिं देखी प्रेम भक्ति के प्यारे।—राम० धर्म०, पृ० ५।

खीज—संज्ञा स्त्री० [हिं० खीजना] १.खीजने का भाव। झुँझलाहट। उ०—रीझ खीज मौज फौज दान औ कृपान ऊँचे जगत बखानें दोऊ हाथ गोपीनाथ के।—मतिराम (शब्द०)। २. चिढ़ाने का शब्द या वाक्य। वह बात जिससे कोई चिढ़े।

मुहा०—खीज निकालना=किसी को चिढ़ाने के लिये कोई नई बात निकालना।

खीजना—क्रि० अ० [सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जइ] दुखी और क्रुद्ध होना। झुँझलाना। खिजलाना।

खीझ(पु)†—संज्ञा स्त्री०[हिं०] दे० 'खीज। उ०—खीझहू में रीझिबे की बानि राम रीझत हैं, रीझे ह्वैहैं राम की दोहाई रघुराय जू।—तुलसी (शब्द०)।

खीझना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खीजना'। उ०—दीन के दयाल की अनूठी यह चाल आली, खीझत है मान गहे रीझत नवनि पै।— दीनदयालु (शब्द०)।

खीण(पु)—वि० [सं० क्षीण, प्र० खीण] दे० 'क्षीण'। उ०—हुए हिंदू बलहीण, धरा पण खीण सुरां भ्रम। मिटे वेद मरजाद, भेद गुण आदि पड़े भ्रम।—रा० रू०, पृ० २२।

खीन(पु)†—वि० [सं० क्षीण] [वि० स्त्री० खीनी] क्षीण। उ०—दीन मुहम्मद को करि खीन मलीन करौं मुख की छवि बाढ़ी।—हम्मीर०, पृ० १६। उ०—बसा लंक बरनै जग झीनी। तेहि तें अधिक लंक वह खीनी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७।

खीनता(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीणता] क्षीणता। कृशता।

खीनताई(पु)-संज्ञा स्त्री० [हिं० खीनता+ई (प्रत्य०) दे० 'क्षीनता'।

खीनि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'क्षीण'। उ०—भै ससि खीनि गहन। असि गही। बिछुरे नखत सेज भरि रही।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३६।

खीप—संज्ञा पुं० [देश०[१. एक प्रकार का घना सीधा पेड़। उ०— खीप पिंढ़ारू कोमल भिंडी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह सिंध, पंजाब, राजपूत और अफगानिस्तान की पथरीली और बलुई जमीन में होता है। इसकी पत्तियाँ छोटी और लंबोतरी होती हैं और इसमें जाड़े के दिनों में छोटे लंबे फूल निकलते हैं। इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ शीतल होती हैं और राजपूताने में चारे के काम में आती हैं। पंजाब में इसके रेशे से रस्सियाँ बनाई जाती हैं।

२. लज्जालु। लजाधुर। ३. गंधप्रसारिणी। गंधपसारा।

खीपट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षिप्त] बावला। पागल। उ०—ऊ दिन खीपट दूर गए अब सो दंड एकासी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १., पृ० ३३२।

खीमा—संज्ञा पुं० [हिं० खेमा] दे० 'खेमा'।

खीर[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीर] दूध में पकाया हुआ चावल।

विशेष—लोग प्रायः तीखुर, घीया (लौआ) या इसी प्रकार के और पदार्थ भी दूध में पकाते हैं, जिसे खीर कहते हैं।

मुहा०—संज्ञा खीर चटाना=बच्चे को पहले पहल अन्न खिलाना। अन्नप्राशन नामक संस्कार।

खीर[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीर] दूध। उ०—(क) भरत बिनय सुनि सबहि प्रसंसी। खीर नीर बिबरन गति हँसी।—मानस, २। ३१३। (ख) खीर खड़ानन को मद केशव सो पल में करि पान लियोई —केशव (शब्द०)।

खीरचटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खीर+चटाना] बच्चे को पहले पहल अन्न खिलाने का संस्कार। अन्नप्राशन।

खीरमोहन—संज्ञा पुं० [हिं० खीर+मोहन] छेने की बनी हुई एक प्रकार की बँगला मिठाई।

खीरा—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरक] बरसात में होनेवाला ककड़ी की जाति का एक फल।

विशेष—यह कुछ मोटा और एक बालिश्त तक लंबा होता है। इसकी तरकारी भी बनती है; परंतु अधिकतर लोग इसे नमक मिर्च के साथ कच्चा ही खाते हैं। इसके बीज दवा के काम में आते हैं। फल तथा बीजों की तासीर ठंढी है।

मुहा०—खीरा ककड़ी=अत्यंत तुच्छ वस्तु। गाजर मूली।

खीरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीर] चौपायों के थन के ऊपर का वह मांस जिसमें दूध बनता और रहता है। बाख।

खीरी[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीरिणी] खिरनी नाम का फल। उ०—कोइ दारिउँ, कोइ दाख औ खीरी। कोई सदाफर तुरँग गँभीरी।—जायसी (शब्द०)।

खीरोदक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० खीरोदक] दे० 'क्षीरोदक'। उ०—कहा भयो मेरो गृह माटी को। नवतन खीरोदक युवती पै भूपन हुतं न कहुँ माटी को।—सूर (शब्द०)।

खील[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिलना] भूना हुआ धान। लावा।

खील[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कील] १. कील। काँटा। मेख। २. लौंग नाम का जेवर जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं। ३. मांसकील।

खील[3]†—संज्ञा स्त्री० [देश०] भूमि जो बहुत दिनों तक परती पड़ी रहने के उपरांत पहले पहल जोती गई हो। नौतोड़।

खीलना—क्रि० स० [हिं० खील] तिनके गोदकर पत्ते के दोने आदि का मुँह बंद करना। खील लगाना।

खीला†—संज्ञा पुं० [हिं० कील] काँटा। मेख। कील। उ०—दादू खीला गाड़ि का निहचल थिर न रहाइ। दादू पग नहिं साँच के भरमइ दह दिसि जाइ।—दादू (शब्द०)।

खीली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खील] पान का बीड़ा। खिल्ली।

खील्यौरी(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] गड़ेरिया। उ०—ढोला, खील्यौरी

कहइ सु ँण कुढंगा वैंण। मारू म्हाँजी गोठणी, सैं मारू ँदा सैंण।—ढोला०, दू० ४३८।

खीवन—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीवन] मतवालापन। मस्ती।

खीवनि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीवन] दे० 'खीवन'। उ०—मेरे माई स्याम मनोहर जीवनि। निरखि नयन भूले ते बदन छवि मधुर हँसनि पै खीवनि।—सूर (शब्द०)।

खीवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीव = मस्त] शूर। वीर। सुभट। बहादुर।—(डिं०)।

खीश—संज्ञा पुं० [फ़ा० खेश] आत्मीय। स्वजन। उ०—सबी खीश बेगाना हमसे खफा। जो थे बावफा हों गए बेवफा।—दक्खिनी०, पृ० २११।

खीस¹(पु)—वि० [सं० किष्क = वध, नाश] नष्ट। बरबाद।—सती मरनु सुनि संभुगन, लगे करन मख खीस।—मानस, १।६४।

मुहा०—खीस जाना = नष्ट होना। उ०—कान्ह कृपाल बड़े नतपाल गए खल खेचर खीस खलाई।—तुलसी (शब्द०)। खीस डालना = नष्ट करना। उ०—काहे को निर्गुण ज्ञान गनत हो जित तित डारत खीस।—सूर (शब्द०)।

खीस²—संज्ञा स्त्री० [हिं० खीज] १. अप्रसन्नता। नाराजगी। २. क्रोध। रोष। गुस्सा।

खीस³—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिसिआना] 'खिसिआना' का भाव। लज्जा। शरम।

क्रि० प्र०—मिटाना।

खीस⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० कीश = बंदर] ओंठ से बाहर निकले हुए दाँत।

मुहा०—खीस काढ़ना, खीस निकालना, खीस निपोरना = (१) बेढंगे तौर से हँसना। (२) दीन होकर कुछ माँगना। (३) मर जाना।

खीस⁵—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खिसारह, खसारह] घाटा। हानि।

क्रि० प्र०—उठाना।—पड़ना।

खीस⁶—संज्ञा स्त्री० [देश०] गाय का वह दूध जो ब्याने के पीछे सात दिन तक निकलता है। पेउस।

खीसा¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० कीसह] [स्त्री० अल्पा० खीसी] १. थैला। थैली। २. जेब। पाकेट। खलीता। ३. एक प्रकार की कपड़े की थैली जिसे हाथ में पहनकर लोग बदन साफ़ करते हैं।

क्रि० प्र०—करना = खीसे से शरीर मलना।

खीसा²—संज्ञा पुं० [हिं० खीस] ओंठ के बाहर निकले हुए दाँत।

खीहा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का पक्षी। उ०—पिउ पिउ लागै करै पपीहा। तुही तुही कर गुडुरू खीहा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २९।

खुँखणी—संज्ञा स्त्री० [सं० खुङ्खुणी] वीणा का एक भेद [को०]।

खुँगाह—संज्ञा पुं० [सं० खुङ्गाह] काले रंग का घोड़ा [को०]।

खुँटकढ़वा—संज्ञा पुं० [हिं० खूँट + काढ़ना] कान की मैल निकालनेवाला। कनमैलिया।

खुँटफारी‡—वि० [हिं० खूँटा + फाड़ना] बहुत दुष्ट या पाजी। शरारती (बालक)।

खुँटिला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खुटिला'। उ०—मनि कुंडल खुँटिला औ खूँटी।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२३।

खुँटैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० खूँटी] एक प्रकार की दूब या घास जिसे चट्टू भी कहते हैं।

खुँड—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की मोटी घास।

विशेष—यह काली मिट्टी की भूमि में अधिकता से होती है। यह एक गज तक ऊँची होती है और इसका डंठल बहुत मोटा होता है। सूखने पर तो कभी नहीं, पर हरी रहने पर कभी कभी पशु इसे खा लेते हैं। इसे गूंड या गूनर भी कहते हैं।

२. एक प्रकार का पहाड़ी टट्टू जिसे गूँठ या गुंठा भी कहते हैं।

खुँडला—संज्ञा पुं० [सं० खण्डल] टूटा फूटा घर। छोटा भोड़ा।

खुँदवाना—क्रि० स० [सं० क्षुण्णन] कुचलवाना। दबवाना। रौंदवाना।

खुँदाना—क्रि० स० [सं० खुर्द] (घोड़ा) कुदाना।

खुँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खूँद'।

खुँबी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुमी'।

खुँभी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुमी'।

खुँभी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुमी'। उ०—पहिरे खुँभी सिंहल दीपी। जानहुँ भरी कचपची सीपी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९३।

खुआर(पु)—वि० [फ़ा० ख्वार] १. दुर्दशाग्रस्त। खराब। उ०—नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहि सहित सब होत खुआरू।—मानस, २।३०४। २. जिसकी कुछ भी प्रतिष्ठा न हो। बेइज्जत।

खुआरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख्वारी] १. बरबादी। खराबी। नाश। २. अनादर। अप्रतिष्ठा। बेइज्जती।

खुक्ख—वि० [सं० शुष्क या तुच्छ, प्रा० छुच्छ] ४. जिसके पास कुछ न हो। छूँछा। खाली। उ०—नेम अचार करैं कोउ कितनौ, कवि कोविद सब खुक्ख।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११। २. (ताश के खेल में) जो खिलाल हो गया हो।

खुक्खल—वि० [हिं० खुक्ख + ल (प्रत्य०)] शून्य। खाली। रिक्त। उ०—जब तक रुपया पास है तब तक सब कुछ है और खाुक्खल हो गए तो धता बोल दी।—सैर०, पृ० २१।

खुखंड—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की राई।

खुखड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० खाुक्ख] वह पेड़ जो घुन गया हो या जिसका गूदा सड़कर निकल गया हो।

खुखड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. तकुए पर चढ़ाकर ऊपर लपेटा हुआ सूत या ऊन जो बुनने के काम आता है। कुकड़ी। २. एक प्रकार की बड़ी छुरी जो प्रायः नेपाल में बनती है। ३. काग की तरह व्यवहृत घास का सूखा डंठल।

खुखला†—वि० [हिं०] दे० 'खोखला'।

खुखुड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुखाड़ी'।

खुगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुगीर] १. वह ऊनी कपड़ा जो घोड़ों के चारजामें के नीचे लगाया जाता है। नमदा। २. चारजामा। जीन।

मुहा०—खुगीर की भरती = बहुत ही अनावश्यक और व्यर्थ के लोगों या पदार्थों का संग्रह।

खुच्चड़, खुचर—संज्ञा स्त्री० [सं० कुचर = पराए दोष निकालनेवाला] व्यर्थ के दोष निकालने की क्रिया। झूठमूठ अवगुण दिखलाने का कार्य।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—लगाना।

खुचड़ी खुचरी—वि० [हिं० खुचर] व्यर्थ के दोष निकालनेवाला।

खुचुर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुचर'। उ०—मुझे क्या पड़ी थी जो खुचुर करती।—श्यामा०, पृ० ६४।

खुचुरी—वि० [हिं०] दे० 'खुचरी'।

खुजलाना¹—क्रि० स० [सं० खर्जु, खर्जन] [संज्ञा, खुजलाहट, खुजली] खटमल, मच्छड़ आदि के काटने के कारण या यों ही किसी अंग में सुरसुराहट मालूम होने पर नाखून आदि से उसे रगड़ना। खुजली मिटाने के लिये अँगुली आदि को अंग पर फेरना। सहलाना। जैसे,—(क) वह सिर खुजला रहा है। (ख) हिरन सींगों से एक दूसरे को खुजला रहे हैं।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

खुजलाना²—क्रि० अ० किसी अंग में सुरसुरी या खुजली मालूम होना। जैसे,—हमारे हाथ खुजला रहे हैं।

मुहा०—किसी काम के लिये कोई अंग खुजलाना = किसी काम के करने या होने के लिये किसी अंग का चंचल होना या फड़कना। किसी काम के किए या हुए बिना न रहा जाना। जैसे—(क) तुम्हें मारने के लिये हमारे हाथ खुजलाते हैं। (ख) मार खाने के लिये तुम्हारी पीठ खुजलाती है। (ग) बोले बिना तुम्हारा मुँह खुजलाता है।

खुजलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुजलाना] अंग में खटमल, मच्छड़, आदि के काटने या किसी कृमि के धीरे धीरे रेंगने का सा अनुभव। सुरसुरी। खुजली।

खुजली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुजलाना] १. खुजलाहट। सुरसुरी।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

२. एक रोग जिसमें शरीर बहुत खुजलाता है और उसपर छोटे छोटे दाने निकल आते हैं।

मुहा०—खुजली उठना = (१) दंड पाने की इच्छा होना। शामत आना (विशेषतः बालकों के लिये)। (२) प्रसंग कराने की इच्छा होना (बाजारू)। खुजली मिटना = (१) दंड मिलना। पिटना। (२) प्रसंग होना।

खुजवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खोजवाना'।

खुजाना—क्रि० स०, क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खुजलाना'। उ०—दग फरमायर सींगतें बायों रही खुजाय।—शकुंतला, पृ० ११६।

खुज्जाक—संज्ञा पुं० [सं०] देवताल वृक्ष [को०]।

खुज्झा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खूझा'।

खुझड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खूझा'।

खुझना†—क्रि० अ० [हिं० खीझना] झुँझलाना। खीझना। उ०—कहँ गुलाल राम नहिं जानत खुझिहैं हमरी बलाई। गुलाल०, पृ० २५।

खुझर—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० जड़] पेड़ की वह जड़ जो धरती के भीतर कम जाती है, ऊपर ही चारो ओर फैलती है।

खुटक(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अनु०, हिं० खटकना] खटका। आशंका। चिंता। उ०—मन में नेक खुटक जनि राखहु दीन बचन मुख ते तुम भाखहु।—सूर (शब्द०)। (ख) सोना फेंकने से मों को खुटक होगी, इससे इनका हाथों ही में रहना अच्छा है।—ठेठ०, पृ० १८।

खुटकना—क्रि० स० [सं० खुड् या खुण्ड] किसी वस्तु का शिरोभाग तोड़ना। किसी वस्तु को ऊपर ऊपर से तोड़ या लेना। खोंटना।

खुटका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खटका'।

खुटको(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] खटका। आशंका। उ०—मैं चंद्रावली की पाती वाके यारै सौंप देती तो इतनो खुटकोऊ न रहतो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४४१।

खुटचाल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोटी + चाल] १. दुष्टता। पाजीपन। उ०—करै क्यों न खुटचाल, पति सों पठै न कटुक तिय। चंद्रकला हरमाल, सदा एक परिवार है।—गुमान (शब्द०)। २. कुत्सित आचरण। खराब चालचलन। ३. उपद्रव। बखेड़ा। टंटा।

खुटचाली(पु)—वि० [हिं० खुटचाल + ई (प्रत्य०)] १. दुष्ट। पाजी। २. उपद्रवी। दुराचारी। बदचलन।

खुटना¹—क्रि० अ० [सं० खुड्] खुलना। उ०—तौ लगि या मन-सदन मैं, हरि आवैं केहि बाट। निपट विकट जौ लौं जुटैं, खुटहिं न कपट कपाट।—बिहारी (शब्द०)।

खुटना²†—क्रि० अ० [सं० तुड्, प्रा० खुट्ट. हिं० छुटना] अलग होना। पृथक होना। संबंध छोड़ देना।

खुटना³—क्रि० अ० [सं० खुड् या खोट] समाप्त होना। खतम होना।

खुटपन, खुटपना—संज्ञा पुं० [हिं० खोटा + पन, पना (प्रत्य०)] खोटापन। दोष। ऐब।

खुटवा†—वि० [हिं० खोटा] खोटा। बुरा। उ०—दरिया जो कहै दरे दालि भई, दर देखि परा खुटवा किहा जाना।—सं० दरिया, पृ० ६१।

खुटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोटाई] खोटापन। दोष। उ०—अरी मधुर अधरान तें, कटुक बचन मत बोल। तनक खुटाई तें घटे, लखि सुबरन को मोल।—रसनिधि (शब्द०)।

खुटाना‡—क्रि० अ० [सं० खुण्ड = खोंडा होना, या खोट] समाप्त होना। खतम होना। खुटना। उ०—जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानै जनु आयु खुटानी।—तुलसी (शब्द०)।

खुटिला—संज्ञा पुं० [देश०] करनफूल नामक कान का गहना। उ०—खुटिला सुभग जराइ के, मुकुतामनि छबि देत। प्रगट भयो घन मध्य ते, शशि मनु, नखत समेत।—सूर (शब्द०)।

खुटी☉‡— संज्ञा स्त्री० [देश०] साँकल। जंजीर। सिकड़ी। उ०— खुटी सिंकली सूता एकावली चुलिवलया मेवला चिका।— वर्ण०, पृ० ४।

खुटेरा—संज्ञा पुं० [सं० खदिर] खैर का पेड़।

खुट्टी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुट् से अनु०] १. रेवड़ी नाम की मिठाई जो तिल और चीनी या गुड़ से बनती है। २. बालकों की एक क्रिया जिससे वे परस्पर संबंधविच्छेद करते हैं। कुट्टी।

खुट्टी संज्ञा स्त्री० [हिं०] घाव से निकला हुआ वह मवाद जो सूखकर घाव के ऊपर ही जम जाता है। घाव पर जमी हुई पपड़ी। खुरंड।

खुठमेरा‡—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा या निकृष्ट धान।

खुड़दिया‡—संज्ञा पुं० [हिं० खुदरा] सर्राफ। टके कौड़ी बेचनेवाला। उ० ऐ दलाल ऐ खुड़दिया हूँडो बाल बजाज।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६३।

खुड़ला—संज्ञा पुं० [देश०] मुर्गियों का दरबा। चिड़ियाखाना (लश०)।

खुड़ग्रा‡— संज्ञा पुं० [देश०] वर्षा या जाड़े आदि से बचने के लिये विशेष प्रकार से सिर पर डाला हुआ कंबल या और कोई कपड़ा। घोघी।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

खुड्डी, खुड्ढी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गड्ढा] १. पाखाने में पैर रखने के पायदान। २. पायखाना फिरने का गड्ढा ३. छोटी या कटी हुई घास या दूब। उ०—जिसके नीचे की खुड्ढी घास में बैठकर एक दिन दो आने की विलायती मलाई की बर्फ खाई थी।—इत्यलम्, पृ० १७१।

खुतका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुतका'।

खुतबा—संज्ञा पुं० [अ० खुतबह्] १. तारीफ। प्रशंसा। २. सामयिक राजा की प्रशंसा जो हेतु से सर्वसाधारण को सुनाई जाय कि सब लोग उसकी सत्ता को मान लें।

मुहा०—किसी के नाम का खुतबा पढ़ा जाना = सर्वसाधारण को सूचना देने के लिये किसी के सिंहासनासीन होने की घोषणा होना (मुसल०)।

३. व्याख्यान। भाषण (कौ०)। ४. किसी किताब की भूमिका(कौ०)।

खुत्थ—संज्ञा पुं० [हिं० खूँटा या सं० कु (= पृथिवी) + उत्थित = कूत्थित] पेड़ की जड़ के ऊपर का भाग जो पेड़ काट लेने पर रह जाता है।

खुत्थी☉—संज्ञा स्त्री० [हिं०] सं० 'खुथी'।

खुथी☉‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० खूँटी] १. अरहर, ज्वार इत्यादि के पेड़ों का वह भाग जो फसल काट लेने पर पृथ्वी पर गड़ा रह जाता है। खूँथी। खूँटी। २. थाती। धरोहर। अमानत। ३. वह पतली लंबी थैली जिसमें रुपया भरकर कमर में बाँधते हैं। बसनी। हिमयानी। ४. धन। दौलत। संपत्ति। उ०—द्रौपदी की देह में खुथी ही कहा दुःशासन खरोई खिसानो खैंचि बसन न छूटयो है।—केशव (शब्द०)।

खुद—अव्य० [फ़ा० खुद] स्वयं। आप।

मुहा०—खुद ब खुद = आप से आप। बिना किसी दूसरे के प्रयास, यत्न या सहायता के। उ०—किसी तरह यह कमबख्त हाथ आता तो और राजपूत खुद ब खुद पस्त हो जाते।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२१।

यौ०—खुदग्रराइ, खुदइख्तियार = स्वतंत्र। स्वयं अधिकारप्राप्त। खुदइख्तियारी = स्वतंत्रता। मनचाहा करने का अधिकार। खुदकाश्त। खुदगरज। खुददार। खुददारी = आत्माभिमान। खुदनुमाई = आत्मगर्व और ऐश्वर्य का प्रदर्शन। खुदपरस्त। खुदफरामोश = गाफिल। खुद के प्रति विस्मृत। खुद ब खुद। खुदबी = घमंडी। गर्वीला। खुद मतलब। खुदमतलबी। खुदमुख्तार। खुदरंग। खुदसर। खुदसिताई = आत्मप्रशस्ति।

खुदका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुतका'।

खुदकाश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुद + काश्त] वह जमीन जिसे उसका मालिक स्वयं जोते बोए, पर वह सीर न हो।

खुदकुशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुद + कुशी] अपने हाथों अपने को मार डालना। आत्महत्या। उ०—आज खुदकुशी करने पर आमादा है आकाश।—ठडा०, पृ० ६३।

खुदगरज—वि० [फ़ा० खुद + गरज] [संज्ञा खुदगरजी] अपना मतलब साधनेवाला। स्वार्थी।

खुदगरजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुद + गरजी] स्वार्थपरता।

खुददार—वि० [फ़ा० खुद + दार (प्रत्य०)] १. स्वाभिमानी। आत्माभिमानी। २. आत्मनिग्रही (कौ०)।

खुदना—क्रि० अ० [हिं० खोदना] खोदा जाना।

खुदपरस्त—वि० [फ़ा० खुद + परस्त] १. अहंकारी। घमंडी। २. मतलबी। स्वार्थी।

खुदपसंद—वि० [फ़ा० खुद + पसंद] अपनी बात या पसंद पर डटने वाला। अपनी रुचि को तर्जीह देनेवाला। हठी। खुदराय। उ०—मैं तो खुदपसंद नहीं हूँ भाई जान।—सैर०, पृ० १२।

खुदपसंदी—स्त्री० [फ़ा० खुदपसंदी] १. आत्मानुराग। उ०—मगर ममन की तबीयत में खुदपसंदी बहुत है।—सैर०, पृ० १२। २. हठ। जिद। ३. घमंड। गर्व। गरूर।

खुदमुख्तार—वि० [फ़ा० खुद + मुख्तार] जिसपर किसी का दबाव न हो। अनिरुद्ध। स्वतंत्र। स्वच्छंद।

खुदमुख्तारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुद + मुख्तारी] स्वतंत्रता। निरंकुशता। स्वच्छंदता।

खुदरंग—वि० [फ़ा० खुद + रंग] अपने स्वाभाविक रंगवाला। जिस रंग पर दूसरे रंग की आभा न हो। उ०—नीचे खुदरंग हो गई धोती का फेंटा घुटने तक कसा हुआ।—भस्मावृत०, पृ० ५६।

खुदरा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र] थोक का उलटा। छोटी और साधारण वस्तु। फुटकर चीज।

यौ०—खुदराफरोश = छोटी छोटी वस्तुएँ बेचनेवाला। फुटकर चीजें बेचनेवाला।

मुहा०—खुदरा कराना = नोट या रुपया आदि भुनाना।

खुदराई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुद + राई] स्वेच्छाचार।—(दक्ख०)।

खुदराय—वि० [फ़ा० खुद+राय] स्वेच्छाचारी।—(क्व०)।

खुदरू—वि० [फ़ा० खुद+रू] स्वयं उगा हुआ। बिना जोता, बोया या रोपा हुआ। उ०—फिर बिना बोया जोता (खुदरू) चावल प्रादुर्भाव हुआ।—भा० इ० रू०, पृ० ४६।

खुदरो खुदरौ—वि० [फ़ा० खुद+रू] दे० 'खुदरू'।

खुदवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुदवाना] १. खुदवाने का भाव। २. खुदवाने की क्रिया। ३. खुदवाने की मजदूरी।

खुदवाना—क्रि० स० [हिं० खोदना] 'खोदना' का प्रेरणार्थक रूप। खोदने का काम करना।

खुदसर—वि० [फ़ा० खुदसर] १. उजड्ड। अक्खड़। २. बागी। ३. हुक्म न माननेवाला।

खुदसरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुदसरी] १. उच्छृंखलता। उद्दंडता। २. हुक्मउदूली। ३. बगावत [को०]।

खुदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुदा] स्वयंभू। ईश्वर। उ०—अरे किताब कुरान को खोज ले। अलख लखाए खुद खुदा भाई।—तुरसी० श०, पृ० १६।

यौ०—खुदा न ख्वास्ता (खास्ता)=ईश्वर ऐसा न करे। ईश्वर न करे ऐसा हो। खुदा हाफ़िज=ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे। यह पद विदा लेते देते समय कहा जाता है।

मुहा०—खुदा खुदा करके=बहुत कठिनता से। बड़ी मुशकिल से। खुदा की मार=ईश्वरीय प्रकोप—(शाप)। खुदा झूठ न बुलाए=मेरी बात अतिशयोक्ति न हो। बात यथार्थ से परे न हो।

खुदाई[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुदाई] १. ईश्वरता। २. सृष्टि।

खुदाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना] १. खोदने का भाव। २. खोदने का काम। ३. खोदने की मजदूरी।

खुदावंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुदावंद] १. ईश्वर। मालिक। अन्नदाता। ३. हुजूर। साहब। जनाब। श्रीमान्—(संमानसूचक)।

खुदाव—संज्ञा पुं० [हिं० खुदवाना] खुदाई का काम।

खुदी—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुदी] १. अहंभाव। अहंकार। आपा। उ०—जहाँ से जो खुद को जुदा देखते हैं। खुदी को मिटाकर खुदा देखते हैं।—हिम त०, पृ० ४८। २. अभिमान। घमंड। शेखी।

खुद्दक—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्रक] बौद्ध पिटकों में से सुत्त पिटक का एक निकाय। खुद्दक निकाय।

खुद्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्र] १. चावल, दाल, आदि के बहुत छोटे छोटे टुकड़े। २. ऊख के रस की तलछट।

खुधा†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुधा] दे० 'क्षुधा'। उ०—घर घर से चुटकी माँग लीजै। खुधा को चार डार दीजै।—पलटू०, पृ० ५४।

खुधाल—वि० [सं० क्षुधालु] भूखा। क्षुधाग्रस्त। बुभुक्षित। उ०—बयाल सियाल उनाल बयाकुल वारि बपाल खुधाल सयू।—राम० धर्म०, पृ० ३०४।

खुध्या(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुधा] [दे० 'क्षुधा'। उ०—निस बासुरि लागै नहीं नहि, लगै सीतल घाम। खुध्या तृपा लागै नहीं घटि घटि आतम राम।—दादू०, पृ० ६२०।

खुनक—वि० [फ़ा० खुनक] शीतल। ठंढा [को०]।

खुनकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुनकी] सरदी। ठंढक।

खुनखुना—संज्ञा पुं० [अनु०] लड़कों का एक खिलौना जो झुनझुन या खुनखुन शब्द करता है। घुनघुन। झुनझुना। उ०—यह उमर ऐसी ही है जिसमें सिवाय खुनखुना, लट्टू, गुड़ियों के और कुछ नहीं सुहाता।—श्यामा०, पृ० ५६।

खुनस(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० खिन्नमनस्] [वि० खुनसी] क्रोध। गुस्सा। रिस। उ०—(क) खेलत खुनस कबहुँ नहिं देखी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) इश्क मुश्क खाँसी खुनस, खैर खून मद पान। चतुर छिपावत है सही, आप परत हैं जान।—कोई कवि (शब्द०)।

खुनसना, खुनसाना(पु)†—क्रि० अ० [सं० खिन्नमनस्] क्रोध करना। गुस्सा होना। उ०—दुख सुख की बातें सबै जानें श्री रघुवीर। खुनसाने नहिं रह सके बोले कपि सब धीर।—हनुमान (शब्द०)।

खुनसी(पु)—वि० [हिं० खुनसाना] गुस्सा करनेवाला। क्रोधी।

खुनियाँ†—वि० [फ़ा० खूनी+हा (प्रत्य०)] जहाँ खून होता हो। खूनी। उ०—बहुत खूनियाँ जगह थी। इसी लिये साथ में सिपाही लोग थे।—मैला०, पृ० ३४८।

खुनी(पु)†—वि० [फ़ा० खूनी] खूनी। उपद्रवी। उ०—पाँच घोड़ चंचल घट भीतर मन गयंद बड़ खुनी।—मीखा श०, पृ० २६।

खुफिया—वि [अ० खुफ़ीयह] गुप्त। पोशीदा। छिपा हुआ।

यौ०—खुफियाखाना=वह स्थान जहाँ कुटनियाँ स्त्रियों को बहकाकर व्यभिचार कराने के लिये ले जाती हैं।

खुफिया पुलीस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुफियह+अं० पुलीस] गुप्त पुलीस। भेदिया। जासूस।

खुबना—क्रि० अ० [हिं० खुभना] दे० 'खुभना'। उ०—मगर साड़ी लेना जरूरी था। वह उसकी आँखों में खुब गई थी।—संन्यासी, पृ० १३१।

खुब्बाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० खुब्बाजी] चंगेल नामक पौधे का फल जो दवा के काम में आता है। वि० दे० 'चंगेल'।

खुभना—क्रि० अ० [अनु०] चुभना। घुसना। धँसना। उ०—सालति है नटसाल सी, क्यों हूँ निकसति नाहिं। मनमथ नेजा नोक सी, खुभी खुभी जिय माँहि।—बिहारी र०, दो० ६।

खुभराना (पु)‡—क्रि० अ० [सं० क्षुब्ध] उपद्रव के लिये घूमना। उमड़ना। इतराज फिरना। उ०—ऐयाँ गैयाँ बैयाँ लै लुगैयाँ लैयाँ पैयाँ चलो, बारौ ना अयैयाँ कहूँ जाट खुभरावै हौ।—सूदन (शब्द०)।

खुभिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुभना] दे० 'खुभी'।

खुभी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुभना] लौंग के आकार का, कान में पहनने का एक आभूषण जिसे लौंग भी कहते हैं। उ०—सालति है नटसाल सी क्यों हूँ निकसति नाहिं। मनमथ नेजा नोक सी, खुभी खुभी जिय माँहि।—बिहारी र०, दो० ६।

खुभी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुमी] दे० 'खुमी'।

खुम—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुम, तुल० सं० कुम्भ] १. घड़ा। मटका। २. मदिरा का मटका। उ०—निशिदिन ये खुम पर खुम ढलते। जी के सब अरमान निकलते।—दीप०, पृ० ५६।

यौ०—खुमकदा = मदिरालय। शराबखाना। खुमकश = पूरी मटकी पी जानेवाला। खुमखाना = शराबखाना।

३. मुर्गियों का दरबा। ४. भट्ठी।

मुहा०-खुम चढ़ाना = धोने के समय कपड़े को भट्ठी पर चढ़ाना।

खुमताल†—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुम + हिं० ताल] मदिरा का पात्र। शराब का बर्तन। उ०—बुला शाह मजलिस में संफोर कूँ दोनों भाई खुमताल खबतूर कूँ।—दक्खिनी०, पृ० २६०।

खुमरा—संज्ञा पुं० [अ० कुनबुर = अली (इमाम) का एकगुणनाम] [भाव० खुमरी] १. एक प्रकार के भीख माँगनेवाले मुसलमान फकीर जो प्रायः पश्चिम में होते हैं। २. एक मुसलमान जाति।

खुमरिहा†—वि० [अ० खुमार] जो खुमार में हो। जिसपर नशे की खुमारी हो। जिसकी खुमारी दूर न हुई हो। उ०-जहँ मद तहाँ कहाँ संभारा। कै सो खुमरिहा कै मँतवारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३७।

खुमान(पु)†—वि० [सं० आयुष्मान्] बड़ी आयुवाला। दीर्घजीवी।—(आशीर्वाद)

खुमानी—संज्ञा पुं० [फ़ा० खूबानी] दे० 'खूबानी'। उ०—अखरोट, खुमानी आदि भी प्रायः सभी पहाड़ों में सुगमता से उपजते हैं।—भारत० नि०, पृ० १६०।

खुमार—संज्ञा पुं० [अ० खुमार] दे० 'खुमारी'।

खुमारी—संज्ञा स्त्री० [अ० खुमार] १. मद। नशा। उ०—जब जान्यो व्रजदेव मुरारी। उतर गई तब गर्व खुमारी।—सूर (शब्द०) २. वह दशा जो नशा उतरने के समय होती है और जिसमें कुछ हल्की थकावट मालूम होती है। उ०—ध्रुव प्रहलाद विभीषण माते, माती शिव की नारी। सगुण ब्रह्म माते वृंदावन, अजहुँ न छूटि खुमारी।—कबीर (शब्द०) ३. वह दशा जो रात भर जागने से होती है। इसमें भी शरीर शिथिल रहता है।

क्रि० प्र०—उतरना।—चढ़ना।

खुमी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० कुमा] पत्र-पुष्प-रहित क्षुद्र उद्भिद की एक जाति जिसके अंतर्गत भूफोड़, ढिंगरी, कुकुरमुत्ता, गगनधूल आदि हैं।

विशेष—इस जाति के पौधों में हरे कोशाणु नहीं होते, जिनके द्वारा और पौधे मिट्टी आदि निरवयव द्रव्यों को अपने शरीर के धातु रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। इसी से खुमी जाति के पौधे, सफेद या मटमैले होते हैं और अपना आहार दूसरे पौधों या जंतुओं के जीवित या मृत शरीर से प्राप्त करते हैं। बरसात में भींगा, सड़ी लकड़ियों पर एक प्रकार की गोल और छोटी खुमी निकलती है, जिसे 'कठफूल' कहते हैं। यह प्रायः विषैली होती है। खुमी के शरीरकोष की बनावट और पौधों की सी नहीं होती। इसके कोशाणु सूत की तरह लंबे लंबे होते हैं। पर किसी किसी खुमी के कोशाणु गोल भी होते हैं। खुमी के दो मुख्य भेद हैं—एक वह जो दूसरे जीवित पौधों के रस से पलती हैं; और दूसरी वह जो सड़े गले या मृत शरीर से आहारसंग्रह करती हैं। पहले प्रकार की खुमी गेरुई आदि के रूप में अनाज के पौधों में देखी जाती है। दूसरे प्रकार की खुमी भूँफोड़, कठफूल, कुकुरमुत्ता आदि हैं। खुमी के अधिकांश पौधे अंगुल डेढ़ अंगुल से लेकर आठ आठ, दस दस अंगुल तक के दिखाई पड़ते हैं। ये छूने में कोमल और छाते के आकार के होते हैं। छतरी, की बनावट पर्तदार होती है। खुमी के कई भेद गूदेदार और खाने लायक होते हैं। जैसे, भूँफोड़, ढिंगरी (पंजाब) आदि। कई दुर्गंधयुक्त और विषैले होते हैं। जैसे,—कुकुरमुत्ता, कठफूल आदि। वैद्यक में खुमी विषैली और धर्मशास्त्र में अभक्ष्य मानी गई हैं। खाने योग्य खुमी (भूँफोड़) खूब गूदेदार और सफेद होती है। उसके डंठल में गोल गोल छल्ले से पड़े रहते हैं, और उसमें किसी प्रकार की गंध नहीं होती। खुमी बरसात में बहुत उपजती है।

पर्या०—छत्राक। कवक। शिलींध्र। उच्छिलींध्र। कुकुरमुत्ता। गगनधूल। रामछाता।

खुमी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुभना] १. वह सोने की कील जिसे लोग दाँतों में जड़वाते हैं। धातु का बना हुआ वह पोला छल्ला जो हाथी के दाँत पर चढ़ाया जाता है। उ०—गति गयंद कुच कुंभ किकणी मनहु घंट झहनावे। मोतिन हार जलाजल मानो खुमी दंत झलकावे।—सूर (शब्द०)।

खुम्हार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुमार] दे० 'खुमार'।

खुरंट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खुरंड'।

खुरंड—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुर (= खरोचना) + अण्ड अथवा देश०] घाव के ऊपर सूखकर जमा हुआ मवाद। सूखे घाव के ऊपर की पपड़ी।

खुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सींगवाले चौपायों के पैर की कड़ी टाप जो बीच से फटी होती है। गाय, भैंस आदि सींगवाले चौपायों के पैर का निचला छोर, जो खड़े होने पर पृथ्वी पर पड़ता है। सुम। टाप।

यौ०—खुरणस = चिपटी टेढ़ी नाकवाला। खुरन्यास = (१) खुर का रखना। (२) खुर रखने से बना निशान। खुरत्राण = नाल। खुरपदवी = घोड़े के पैर का निशान। खुरप्र = क्षुरप्र बाण। खुरबंदी = घोड़े बैल आदि के खुरों में नाल जड़ना।

२. चारपाई या चौकी के पाए का निचला छोर जो पृथ्वी से लगा रहता है। ३. नख नामक गंध द्रव्य। ४. छुरा। उस्तरा(को०)।

खुरक[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुटक] सोच। खटका। अंदेशा। उ०—मुआ न रहै खुरक जो अबहूँ काल सा आव। सत्रु अहै जेहि करिया काह सो बूड़ी नाव।—जायसी (शब्द०)।

खुरक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का पेड़। २. एक प्रकार का नृत्य।

खुरक राँगा—संज्ञा पुं० [सं० खुरक + हिं० राँगा] हिरनखुरी राँगा जो नर्म, सफेद और जल्दी गल जानेवाला होता है। इस राँगे का बंग उत्तम होता है।

खुरका—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो अफीम के पौधे को हानि पहुँचाती है।

खुरखुंद—संज्ञा पुं० [सं० खुर+हिं० खूँदना] दुष्टता। बदमाशी। पाजीपन। उ०—करत रहै खुरखुंद बड़ा सैतान है।—पलटू०, पृ० १००।

खुरखुर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो गले में कफ आदि रहने के कारण साँस लेते समय होता है। घरघर शब्द।

खुरखुरा—वि० [हिं० अनु० खरोचना] जो चिकना न हो। जिसको छूने से हाथ में कण या रवे गड़े। जिसकी सतह बराबर न हो असमतल। नाहमवार। खुरदरा।

खुरखुराना[1]—क्रि० अ० [हिं० खुरखुर से अनु०] १. खुरखुर शब्द करना। २. गले में कफ के कारण घरघराहट होना।

खुरखुराना[2]—क्रि० अ० [हिं० खुरखुरा] खुरखुरा मालूम होना। कण या रवे आदि गड़ना।

खुरखुराहट[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरखुरा+हट (प्रत्य०)] साँस लेते समय गले के शब्द में वह विकार, जो कफ आदि के कारण होता है।

खुरखुराहट[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरखुरा] खुरदरापन।

खुरचन—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरचना] १. जो वस्तु खुरचकर निकाला जाय। २. दूध पकाने के बरतन में से खुरचकर निकाली हुआ दूध का अंश जो जमा हुआ होता है। ३. कड़ाह से खुरचकर निकाला हुआ गुड़।

खुरचना—क्रि० अ० [सं० क्षरण या ध्वन्यात्मक अनु०] किसी जमी हुई वस्तु को उसके आधार पर से कुरेदकर अलग कर लेना। करोचना। करोना।

खुरचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरचना] १. छेनी की तरह का एक औजार जिससे कसेरे बरतन छीलकर साफ करते हैं। २. चमारों का एक औजार। ३. खुरचने का कोई औजार।

खुरचाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोटी+चाल] दुष्टता। पाजीपन। बदमाशी। शरारत।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।

खुरचाली–वि० [हिं० खुरचाल] खुरचाल करनेवाला। पाजी। दुष्ट।

खुरजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह झोला जिसमें जरूरी सामान रखकर घोड़ासवार अपने घोड़े पर रखता है। बड़ा थैला।

खुरट—संज्ञा पुं० [हिं० खुर+ट (विकारार्थक प्रत्य०) चौपायों के खुर की एक बीमारी। खुरहा। खुरा। खुरपका।

विशेष—दे० 'खुरपका'।

खुरतार—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर+ताड़न या ताल] टाप या खुर की चोट। सुम का आघात। उ०—(क) धुरवा धूरि उड़त रथ पायक घोरन की खुरतार।—सूर (शब्द०)। (ख) दलत मलत खुरतारनि पहार हय धुँधुरी सो भयो भानु नभ में नखत सों।—गुमान (शब्द०)।

खुरथर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खुरहर'। उ०—कहूँ महिष लोटहिं विष भरा। कहूँ रोझ डारहिं खुरथरा।—चित्रा०, पृ० २४।

खुरथी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलथी'।

खुरदनी—वि० [फ़ा० खुर्दनी] खाने योग्य। खाने की वस्तु उ०—वे मिहर गुमराह गाफिल, गोश्त खुरदनी।—दादू०, पृ०२५३।

खुरदरा—वि० [हिं०] दे० 'खुरखुरा'।

खुरदाँय—संज्ञा पुं० [हिं० खुर+दाना] कटी हुई फसल को, अन्न के दाने अलग करने के लिये, बैलों से कुचलवाना।

खुरदादी—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुर+दाद] भालू का जुलाब।—(कलंदरों की भाषा)।

खुरपका—संज्ञा पुं० [हिं० खुर+पकना] पशुओं का एक रोग।

विशेष—इसमें उनके मुँह और खुरों में दाने निकल आते हैं, और मुँह से बहुत लार बहती है, सारा बदन गरम हो जाता है, बहुत गरम साँस चलती है और पशु लँगड़ा कर चलने लगता है। यह रोग संसर्ग से बहुत जल्दी फैलता है।

खुरपा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुरप्र] स्त्री० अल्पा० खुरपी] १. लोहे का बना हुआ एक छोटा सा औजार जिसके एक सिरे पर पकड़ने के लिये लकड़ी की मुठिया लगी रहती है। इससे घास छीली और भूमि गोड़ी जाती है। २. चमारों का एक औजार जिससे वे चमड़े की सतह छीलकर साफ करते हैं।

खुरपात(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खुराफात'। उ०—मेरे ही किसी पाप से यह सब खुरपात उठ खड़ा हुआ।—नई०, पृ० ८३।

खुरपी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरपा] खुरपा का छोटा रूप। छोटे आकार का खुरपा। उ०—खुरपी लेकर आप निराती जब वे अपनी खेती है।—पंचवटी, पृ० १०।

खुरफ—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुरफ़ह्] लोनिया की तरह का एक साग जिसे कुलफा भी कहते हैं।

खुरफा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुरफ़ह्] कुलफे का साग।

खुरमा—संज्ञा पुं० [अ० खुरमा] १. छोहारा। उ०—मेरे घर कूँ मेहमान जो आयगा। कै यो शीर खुरमाँ बिने खायगा।—दक्खिनी०, पृ० ३३१। २. एक प्रकार का पकवान।

विशेष—यह मीठा और नमकीन दोनों प्रकार का होता है। इसमें पहले मोटे आटे को मोयन देकर दूध में सान लेते हैं और सानते समय यथारुचि मीठा या नमक मिला लेते है। फिर मोटी रोटी सा बेलकर उसके छोटे, कड़े, लंबे, तिकोने या चौकोर खंड बनाकर घी में छान लेते है। कोई कोई इसे सादे ही बनाकर चीनी में पाग लेते हैं।

खुरली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सैनिक व्यायाम। सैनिक अभ्यास। शस्त्राभ्यास [को०]।

खुरशाल—संज्ञा पुं० [सं०] शालिहोत्र (परिशिष्ट) में कथित खुरशाल देश का घोड़ा [को०]।

खुरशीद—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुरशीद] सूर्य। दिनकर। रवि। उ०—तुज हुस्न के खुरशीद का तिरलोक में ताबिश पड़े।—दक्खिनी०, पृ० ३२१।

खुरशेद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'खुरशीद'।

खुरसाँण—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुरासान] [खुरसाँणी] खुरासान के घोड़े। उ०—गया गलंती राति, परजलती पाया नहीं। से सज्जण परभाति, खड़हड़िया खुरसाँण ज्यूँ।—ढोला०, दू० ८८

खुरसौटा†—संज्ञा पुं० [सं० खुर+सीदित=पीड़ित अथवा सं० खुर +देश० सोटा] पशुओं के खुरों का एक रोग जिसे खुरपका कहते हैं।

विशेष—दे० 'खुरपका'।

खुरहर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर+हर (प्रत्य०)] १. खुर का चिह्न। जंगल आदि में पगडंडी की भाँति खुर से बना हुआ पतला रास्ता, जिसपर पशु चलते हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

२. तंग रास्ता। पगडंडी।

खुरहा—संज्ञा पुं० [हिं० खुर+हा (प्रत्य०)] पशुओं का 'खुरपका' नाम का रोग।

खुरहुर†—संज्ञा पुं० [हिं० खुर+हर] दे० 'खुरू'।

खुरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० खुरहा] पशुओं के खुरों का 'खुरपका' नाम का रोग। खुरहा। वि० दे० 'खुरपका'।

खुरा²—संज्ञा पुं० [सं० खुर] लोहे का एक काँटा जो हल में फाल या कुर्सी की दृढ़ता के लिये लगाया जाता है।

खुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर] वह रस्सी जिससे पशुओं के दोनों पैर परस्पर बाँध दिए जाते हैं।

खुराक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० खुराका] पशु [को०]।

खुराक²—संज्ञा पुं० [फा० खुराक] भोजन। खाना।

खुराकी¹—संज्ञा स्त्री० [फा० खुराक] वह नगद दाम जो खुराक के लिये दिया जाय।

खुराकी²—वि० अधिक खानेवाला।

खुराघात—संज्ञा पुं० [सं० खुर+आघात] खुर का प्रहार। सुम या टाप की मार।

खुराफात—संज्ञा स्त्री० [अ० खुराफत का बहु व०] १. बेहूदा और रद्दी बात। २. गाली गलौज।

क्रि० प्र०—बकना।

३. झगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

खुराफाती—वि० [अ० खुराफात] १. बेहूदा और रद्दी बात करनेवाला। २. गाली गलौज करनेवाला। ३. झगड़ा, बखेड़ा या उपद्रव करनेवाला।

खुरायल†—संज्ञा पुं० [हिं० खुर+आयल] वह खेत जो बोने के लिये तैयार हो।

खुरालक—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का बाण [को०]।

खुरालिक—संज्ञा पुं० [सं०] उस्तुरे का घर। नाई का सामान रखने की किसबत। २. लोहे का बाण। ३. तकिया [को०]।

खुरासान—संज्ञा पुं० [फा० खुरासान [वि० खुरासानी] फारस खुश का एक बड़ा सूबा।

विशेष—यह अफगानिस्तान के पश्चिम में बिलकुल सटा हुआ है। यहाँ की अजवाइन बहुत प्रसिद्ध और अच्छी होती है। खुरासानी घोड़ा और यहाँ की तलवार भी प्रसिद्ध थे।

खुरासानी—वि० [फा०] खुरासान संबंधी। खुरासान का। जैसे, खुरासानी अजवाइन।

खुराही—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर+फा० राह] कहारों की भाषा में रास्ते का ऊँचानीचापन सूचित करनेवाला एक शब्द।

खुरिया—संज्ञा स्त्री० [फा० (आब) खोरा] १. कटोरी। छोटी प्याली। २. घुटने के जोड़ पर की गोल हड्डी।

खुरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर] टाप का चिह्न। सुम का निशान।

मुहा०—खुरी करना=(१) घोड़े बैल आदि सुमवाले पशुओं का पैर से जमीन खोदना। उ०—वह चंचल बाजि करंत करी। —ह० रासो०, पृ० ७८। (२) बहुत जल्दी करना।

खुरी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] इतना तेज बहनेवाला पानी जिसके विरुद्ध नाव न चल या चढ़ सके—(मल्लाहों की भाषा)।

खुरी³—संज्ञा पुं० [सं० खुरिन्] खुरवाला पशु।

खुरुक—संज्ञा पुं० [हिं० खुटका] खुटका। खटका। आशंका। उ०—मोटे बड़े सोइ टोइ घरे। ऊबर दूबर खुरुकन चरे।—जायसी (शब्द०)।

खुरुचन, खुरुचनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरचना] १. किसी चीज का वह जमा हुआ भाग जो खुरचने से अलग हो सके। २. खुरचने का औजार।

खुरुहरा†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खरहरा'।

खुरू—संज्ञा पुं० [हिं० खुर] १. खुर या टापवाले पशुओं की खुर से भूमि खोदने की क्रिया जिसमें वे प्रायः डकारते या रँभाते भी हैं। चौपाए ऐसा क्रोध या प्रसन्नता के समय करते हैं। २. उपद्रव। नटखटी। बखेड़ा। टंटा। ३. सत्यानाश। ध्वंस।

खुरूरू—संज्ञा पुं० [देश०] नारियल की गये।—(बुंदेलखंड)।

खुर्द—वि० [फा० खुर्द] १. छोटा। लघु। 'कलाँ' का उलटा। २. कण। जर्रा।

खुर्दनी¹—वि० [फा० खुर्दनी] खाद्य। भोजन के योग्य।

खुर्दनी²—संज्ञा स्त्री० खाद्य पदार्थ। भोजन की वस्तु।

खुर्दबीन—संज्ञा स्त्री० [फा० खुर्दबीन] एक विशेष प्रकार के शीशे का बना हुआ वह यंत्र जिससे छोटी वस्तु बहुत बड़ी देख पड़ती है। सूक्ष्मदर्शक यंत्र।

खुर्दबुर्द—स्त्री० वि० [फा० खुर्दबुर्द] १. नष्ट भ्रष्ट। २. समाप्त। ३. गायब। उ०—बस, अब माल खुर्दबुर्द करने की कोई तदबीर करनी चाहिए।—श्री निवास ग्रं०, पृ० १२०।

खुर्दसाल—वि० [फा० खुर्दसाल] अल्पवयस्क। कमसिन। उ०— जो पड़ते दर्स जब ये खुर्दसाल। मस्जिद के दरमियान तख्ती कर्ते ले।—दक्खिनी०, पृ० ११५।

खुर्दसाली—संज्ञा स्त्री० [फा० खुर्दसाली] बाल्यावस्था। शिशुता। अल्पवयस्कता [को०]।

खुर्दा¹—संज्ञा पुं० [फा० खुर्दह्] १. छोटी मोटी चीज। २. टुकड़ा। कण (को०)। २. रेजगारी। रेजगारी। खेरीज (को०)। ३. अल्प मात्रा (को०)।

खुर्दाफरोश—संज्ञा पुं० [फा० खुर्दहफरोश] छोटी मोटी फुटकर चीजें बेचनेवाला। फुटकरिया।

खुर्दी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुर्दी] लघुता। छोटाई [को०]।

खुर्रम—वि० [फ़ा० खुर्रम] प्रसन्न। आनंदित। हर्षित। उ०—दिल सूँ खुर्रम, मुक सो खंवा आदमाँ।—दक्खिनी०, पृ० १८१।

खुर्रमी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्रसन्नता। आनंद। हर्ष।

खुर्राट—वि० [देश०] १. बूढ़ा। वृद्ध। २. अनुभवी। तजरुबेकार। ३. चालाक। काइयाँ। उ०—अनेक खुशामदी टट्टू और चापलूस खुर्राटों का वहीं जमघट रहता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८४।

खुर्राटा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'खर्राटा'।

खुर्री—वि० [हिं० खुली, खुरी] जिसपर बिछावन न हो। बिना बिस्तरवाली (खाट)। खरहरी। उ०— दिन के दिन बच्चा खुर्री खाट पर पड़ा माता को नैराश्य दृष्टि से देखा करता।—मान०, भा० ५, पृ० १०१।

खुर्शंद—वि० [फ़ा० खुर्शंद] प्रसन्न। हर्षित। आनंदी। उ०—घर बार रुपए पैसे में मत दिल को तुम खुर्शंद करो।—रामधर्म०, पृ० ९३।

खुलती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलथी'।

खुलना—क्रि० अ० [सं० खुड, खुल=भेदन] १. किसी वस्तु के मिले या जुड़े हुए भागों का एक दूसरे से इस प्रकार अलग होना कि उसके अंदर या उस पार तक आना, जाना, टटोलना, देखना आदि हो सके। छिपाने या रोकनेवाली वस्तु का हटना। अवरोध या आवरण का दूर होना जैसे,—किवाड़ खुलना, संदूक का ढक्कन खुलना।

विशेष—आवरण और आवृत तथा अवरोधक और अवरुद्ध दोनों के लिये इस क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे—मकान खुलना, संदूक खुलना, ढक्कन खुलना, मोरी खुलना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—खुलकर=बिना रुकावट के। खूब अच्छी तरह। जैसे,—खुलकर भूख लगना, खुलकर दस्त होना। खुलकर बैठना। खुला स्थान=अनावृत्त स्थान। ऐसा स्थान जो घिरा न हो

२. ऐसी वस्तु का हट जाना या तितरबितर हो जाना जो छाए या घेरे हो। जैसे—बादल खुलना। ३. दरार होना। शिगाफ होना। छेद होना। फटना। जैसे—एक ही लाठी में सिर खुल गया। ४. बाँधनेवाली या जोड़नेवाली वस्तु का हटना। बंधन का छूटना। जैसे—बेड़ी खुलना, गाँठ, खुलना, सीवन खुलना, टाँका खुलना। ५. किसी बाँधी हुई वस्तु का छूट जाना, जैसे—धोती खुलना। घोड़ा खुल गया।

मुहा०—खुल जाना=(१) गाँठ से जाता रहना। खो जाना। जैसे—आज बैठते ही १००) उसके भी खुल गए। (२) स्पष्ट हो जाना। छिपा न रहना। प्रकट हो जाना। उ०—वाह! सीधापन दो चार दिन में खुल जाएगा।—फिसाना०, भा० ३ पृ० १४१।

६. किसी क्रम का चलना या जारी होना। जैसे,—तनख्वाह खुलना। ७. ऐसी वस्तुओं का तैयार होना, जो बहुत दूर तक लकीर के रूप में चली गई हों और जिसपर किसी वस्तु का आना जाना हो। जैसे,—सड़क खुलना। नहर खुलना। उ०—यहाँ से रेल की एक नई लाइन खुलनेवाली है। ८. ऐसे नए कार्य का आरंभ होना जिसका लगाव सर्वसाधारण या बहुत लोगों के साथ रहे। जैसे,—कारखाना खुलना। स्कूल खुलना, दूकान खुलना। ९. किसी कारखाने, दूकान, दफ्तर या और किसी कार्यालय का नित्य का कार्य आरंभ होना। जैसे—अब तो दूकान खुल गई होगी; जाओ कपड़ा ले आओ। १०. किसी ऐसी सवारी का रवाना हो जाना, जिसपर बहुत से आदमी एक साथ बैठें। जैसे,—नाव खुलना। रेलगाड़ी खुलना। ११. किसी गूढ़ या गुप्त बात का प्रगट हो जाना। जैसे,—(क) अब तो यह बात खुल गई, छिपाने से क्या लाभ, (ख) इसका अर्थ कुछ खुलता नहीं।

मुहा०—खुले आम, खुले खजाने, खुले बाजार=सब के सामने। सब की जान में। छिपाकर नहीं। प्रकट में।

१२. अपने मन की बात साफ साफ कहना। भेद बताना। जैसे,—(क) तुम तो कुछ खुलते ही नहीं, हम तुम्हारा हाल कैसे जानें। (ख) मैं जब उससे खूब मिलकर बात करने लगा, तब वह खुल पड़ा।

संयो क्रि०—पड़ना।

मुहा०—खुलकर=बेधड़क। साफ साफ। जैसे—जो कहना हो खुलकर कहो। खुल खेलना=लज्जा या कलंक का भय छोड़कर कोई काम सबके सामने करना। उ०—जब मेरे सामने तुम्हारा यह हाल है तो वहाँ ··· तो और भी खुल खेलोगे।—सैर०, पृ० २०।

१३. सोहावना जान पड़ना। चटकीला लगना। देखने में अच्छा लगना। सुशोभित होना। खिलना। सजना। जैसे—यह टोपी सफेद कपड़े पर खूब खुलती है। उ०—तेरे श्याम बिंदुलिया बहुत खुली। गोरे गोरे मुख पर श्याम बिंदुलिया नैनन में प्यारे की घुली।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८६।

मुहा०—खुलता रंग=हलका सोहावना रंग। वह रंग जो बहुत गहरा न हो।

खुलवा—संज्ञा पुं० [देश०] गली हुई धातु को साँचे में भरने या ढालनेवाला।

खुलवाना—क्रि० स० [हिं० खोलना] 'खोलना' क्रिया का प्रेरणार्थक रूप।

खुला—वि० पुं० [हिं० खुलना] [स्त्री० खुली] १. बंधनरहित। जो बँधा न हो। २. आच्छादनरहित। ३. जिसे कोई रुकावट न हो। अवरोधहीन। ४. जो छिपा न हो। स्पष्ट। प्रकट। जाहिर।

मुहा०—खुले खजाने=सबके सामने। किसी से छिपाकर नहीं। खुले दिल=उदारतापूर्वक। खुलेबंद=बेधड़क। निःशंक। खुले मैदान=सबके सामने। खुले खजाने। खुला मैदान या स्थान=वह स्थान जहाँ चारों ओर से हवा आ सकती हो और दृष्टि के लिए कोई अवरोध न हो। खुली हवा=वह हवा जिसकी गति का अवरोध न होता हो।

खुलापल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० खुला+पल्ला] दोनों हाथों से एक साथ या केवल बाएँ हाथ से तबले पर खुली थाप देकर बजाना आरंभ करना—(संगीत)।

खुलासा[1]—संज्ञा पुं० [अ० खुलासह्] सारांश। संक्षेप।

खुलासा[2]—वि० [हिं० खुलना] १. खुला हुआ। २. अवरोधरहित। बिना रुकावट का। जैसे—खुलासा दस्त होना। ३. साफ साफ। स्पष्ट। ४. संक्षिप्त। सारांशरूप। जैसे—खुलासा हाल।

खुल्क—संज्ञा पुं० [अ० खुल्क] सुशीलता। सज्जनता। अखलाक। उ०-निवेड़े अपस मुख ते हर तन के न्याव। वंदे खुल्क मरहम सूँ हर दिल के घाव।—दक्खिनी०, पृ० १४१।

खुल्त—संज्ञा पुं० [अ०] अच्छा स्वभाव। उत्तम प्रकृति। २. साझा। भागीदारी (को०)।

खुल्द[1]—संज्ञा पुं० [अ० खुल्द] १. स्वर्ग। उ०—आज तो यह तख्तये खुल्द बन गई है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३४। २. अविनश्वरता। नित्यता।

खुल्द[2]—संज्ञा स्त्री० छछूँदर (को०)।

खुल्दा-संज्ञा पुं० [अ० खुल्दह्] कान का बुंदा। लटकन। झुमका (को०)

खुल्ल—वि० [सं०] १. क्षुद्र। नीच। २. छोटा। लघु (को०)।

यौ०—खुल्लतात = पिता का छोटा भाई। चाचा।

खुल्लम—संज्ञा पुं० [सं०] चौड़ा मार्ग। सड़क (को०)।

खुल्लमखुल्ला—क्रि० वि० [हिं० खुलना] प्रकाश्य रूप से। खुले आम।

खुवार—सं० [फ़ा० ख्वार] दे० 'ख्वार'। उ०—वेद भेद सब खुवार पत्थल जल मानी।—गुलाल०, पृ० १२७।

खुवारी—स्त्री० स्त्री० [फ़ा० ख्वारी] दे० 'ख्वारी'।

खुश—वि० [फ़ा० खुश] १. प्रसन्न। मगन मुदित। आनंदित। २. अच्छा।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्दों के आरंभ में ही आता है।

यौ०—खुश आमदीद = भले पधारे। स्वागत वाक्य। खुश आवाज = अच्छे स्वरवाला। सुरीला। खुशआवाजी = सुरीलापन। सुस्वरता। खुश इंतिजाम = प्रबंध में दक्ष। प्रबंधकुशल। खुशइंतिजामी—प्रबंधकौशल। प्रबंधदक्षता। खुशखरामी—सुंदर चाल। मोहक गति। खुशखुश—प्रसन्न चित्त से। हँसी खुशी से। खुशखुराक—खाने पीने का शौकीन। खुशखू—अच्छे स्वभाववाला। खुशगवार—(१) रुचिकर। (२) सुखद। आरामदेह। खुशगुजरान = संपन्न। खुशजायका—सुस्वादु। स्वादिष्ठ।

खुशकिस्मत—वि० [फ़ा० खुश + किस्मत] भाग्यवान्। अच्छी किस्मतवाला।

खुशकिस्मती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुश + किस्मत + ई (प्रत्य०)] सौभाग्य।

खुशकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुश्की] दे० 'खुश्की'।

खुशखत—वि० [फ़ा० खुशखत] १. जिसकी लिखावट सुंदर हो। २. सुंदर अक्षर लिखनेवाला।

खुशखबरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुश + खबरी] प्रसन्न करनेवाला समाचार। अच्छी खबर।

क्रि० प्र०—देना।—सुनना।—सुनाना।

खुशगुलू—वि० [फ़ा० खुशगुलू] सुरीले गलेवाला। खुश आवाज। मधुर कंठवाला। उ०—जहाँ कोई खुशगुलू मिले तुम वहीं उसी का बोल सुनो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १९४।

खुशतर—[फ़ा० खुशतर] बहुत अच्छा। श्रेष्ठतर (को०)।

खुशदामन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुश + दामन] सास। श्वश्रू (को०)।

खुशदिल—वि० [फ़ा० खुशदिल] १ जो प्रत्येक दशा में आनंदित रहे। सदा प्रसन्न रहनेवाला। २. हँसोड़। मसखरा।

खुशदिली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशदिली] १. आनंद। मस्ती। प्रसन्नता। २. मसखरापन। हँसोड़पन।

खुशनवीस—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुशनवीस] सुंदर अक्षर लिखनेवाला व्यक्ति। वह जिसकी लिखावट बढ़िया हो।

खुशनवीसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशनवीसी] सुंदर अक्षर लिखने की कला।

खुशनसीब—वि० [फ़ा० खुशनसीब] भाग्यवान्।

खुशनसीबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुश + नसीबी] सौभाग्य।

खुशनुमा—वि० [फ़ा० खुशनुमा] जो देखने में भला मालूम हो। सुंदर। मनोहर।

खुशनुमाई—वि० [फ़ा० खुश + नुमाई (प्रत्य०)] सुंदर होने का भाव। देखने में भला लगना (को०)।

खुशनूद—वि० [फ़ा० खुशनूद] प्रसन्न। संतुष्ट। रजामंद। उ०—वो खुशनूद अपना है कर जान शाह।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

खुशफाम—वि० [फ़ा० खुशफाम] सुंदर। प्रसन्नवदन। भव्य। उ०—वफादार खुशफाम, शीरीं कलाम। हुनर गँव के था समज में तमाम।—दक्खिनी०, पृ० ८६।

खुशबयान—वि० [फ़ा० खुशबयान] अच्छा भाषण करनेवाला। सुवक्ता। भाषण में कुशल (को०)।

खुशबयानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशबयान + ई (प्रत्य०)] सुंदर वार्ता माधुर्य। अच्छा भाषण (को०)।

खुशबू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशबू] सुगंध। सौरभ।

खुशबूदार—वि० [फ़ा० खुशबू + दार (प्रत्य०)] उत्तम गंधवाला। सुगंधयुक्त। सुगंधित।

खुशमिजाज—वि० [फ़ा० खुश + मिजाज] सदा प्रसन्न रहनेवाला। प्रसन्नचित्त। उ०—यद्यपि वे हँसमुख खुशमिजाज, मजाकपसंद थे।—अकबरी०, पृ० ६७।

खुशमिजाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशमिजाज + ई (प्रत्य०)] जिंदादिली। प्रसन्नता।

खुशरंग[1]—वि० [फ़ा० खुश + रंग] चटकीले रंगवाला। जिसका रंग बढ़िया हो।

खुशरंग[2]—संज्ञा पुं० चटकीला रंग।

खुशहाल—वि० [फ़ा० खुश + रंग] जिसकी स्थिति बहुत अच्छी हो। सुखी। संपन्न।

खुशहाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुश + हाली] उत्तम दशा। अच्छी अवस्था। संपन्नता।

खुशाव—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धान की निरौनी का एक ढंग, जिसका चलन कश्मीर देश में है।

खुशामद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशामद] वह झूठी प्रशंसा जो केवल दूसरे को प्रसन्न करने के लिये की जाय। चाटुता। चापलूसी।

खुशामदी—वि० [फ़ा खुशामद+ई (प्रत्य०)] १. खुशामद करनेवाला। चापलूस। चाटुकार।

यौ०—खुशामदी टट्टू।

२. सब प्रकार का काम करनेवाला। ऊँच नीच सब प्रकार की टहल वा सेवा करनेवाला।—(बुंदेलखंड)।

खुशामदी टट्टू—संज्ञा पुं० [हिं० खुशामदी+टट्टू] वह जिसकी जीविका केवल खुशामद से ही चलती हो। भारी खुशामदी।

खुशियाली†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशहाली] १. ग्रानंद। खुशी। प्रसन्नता। २. कुशल क्षेम। खैर ग्राफियत।

खुशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशी] १. ग्रानंद। प्रसन्नता।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।

मुहा०—खुशी खुशी=प्रसन्नता से। ग्रानंद सहित।

२. ठगों की भाषा में, उनका निशान ग्रौर कुल्हाड़ा जो उनके गरोह के ग्रागे चलता है।

खुश्क—वि० [फ़ा० खुश्क, तुल० सं० शुष्क] १. जो तर न हो। सूखा। शुष्क।

यौ०—खुश्कसाली।

२. जिसमें रसिकता न हो। सूखे स्वभाव का। ३. बिना किसी ग्रौर प्रकार की ग्राय या सहायता के। केवल। मात्र। जैसे—नौकर को खुश्क ४) मिलते हैं।

विशेष—इस ग्रर्थ में इसका प्रयोग केवल वेतन के लिये होता है।

खश्कसाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुश्कसाली] ग्रनावृष्टि।—मेंह चाहे जिस कदर बरसे काल न पड़ेगा ग्रौर खुश्कसाली हो तो काल कहीं लेने नहीं जाना है।—फिसाना०, भा० ३. पृ० ६१।

खुश्का—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुश्कह्] केवल पानी में उबालकर पकाया हुग्रा चावल। भात।

खुश्की—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुश्की] १. रूखापन। रुखाई। शुष्कता। नीरसता।

क्रि० प्र०—ग्राना।—लाना।

२. स्थल वा भूमि। (जल का विरोधी) जैसे—खुश्की के रास्ते से जाने में दस दिन लगेंगे। ३. वह सूखा ग्राटा जो गीले ग्राटे की लोई या पेड़े पर लगाया जाता है। पलेथन। ४. ग्रकाल। ग्रवर्षण। खुश्कसाली।

खुसटिया—वि० [हिं० खुसट x इया] (प्रत्य०)] खुसट का ग्रल्पार्थक। तुच्छ। उ०—डर से डबडब करते तारे देख तिमिर का सिंधु ग्रथाह। वह छोटी सी जान-खुसटिया, चौंक चीख हो गई तबाह।—प्रवासी०, पृ० ६०।

खुसफुसाहट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुसफुस+ग्राहट(प्रत्य०)] दे० 'खुसुर फुसुर'। उ०—बाहर कुछ खुसफुसाहट ग्रौर पैरों का शब्द सुनाई पड़ा।—झाँसी०, पृ० ६२।

खुसफैली†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशफ़ेली] ग्रानंद। तफ़रीह। ग्राराम। उ०—तो इतने में बड़ी खुशफ़ैली से काम चल जायगा।—गोदान, पृ० २६२।

खुसबोई(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशबू] दे० 'खुशबू'। उ०—है खुशबोई पास में जानि परै सोय। भरम लगे भटका फिरे तिरथ बरत सब कोय।—सं० दरिया, पृ० ३४।

खुसबोह†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशबू'। उ०—जाहर जस] खुसबोह जुत, सुदरा कुसम सुमोह। काँटा सूँ भूंडो, क्रपण वप ग्रपजस बदबोह।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ४८।

खुसरंग—वि० [फ़ा० खुशरंग] दे० 'खुशरंग'। उ०—कहैं दरिया गुन गुन खुसरंग है मस्त मन मगन दिल ऐन ग्रानी।—सं० दरिया, पृ० ७३।

खुसामत(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशामद] दे० खुशामद'। उ०—करत खुसामत तिनकी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५६।

खुसाल—वि० [फ़ा० खुशहाल] ग्रानंदित। मुदित। खुश।

खुसियाल(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशी+हाल] खुशी। प्रसन्नता। उ०—दाखी ग्ररज दुरग्ग यां, मद खेल करा मंधार। साहब मन खुसियाल सूँ जीवै साल हजार।—रा० रू०, पृ० १११।

खुसिहारी(पु)- संज्ञा स्त्री० [सं० कोशकार हिं० कुसवारी] दे० 'कुसवारी। उ०—खुसिहारी के किरिम महँ दिन्ह दिया है।—पलटू०, पृ० ६६।

खुसुर संज्ञा पुं० [फ़ा० खुसुर] श्वसुर। पत्नी का पिता। उ०—नव्वाब साहिब के वालिदे माजिद के साले का दामाद हूँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

खुसिया—संज्ञा पुं० [ग्र० खुसियह्] ग्रंडकोश। फोता।

यौ०—खुसिया बरदार=खुशामदी। चाटुकार खुसिया बरदारी=बहुत ग्रधिक खुशामद।

खुसी(पु)—वि० [फ़ा० खुश] प्रसन्न। खुश। उ०—जब तुम खुसी सुचित्त होन हौ, तब मैं सुरति मिलावौ।—जग० बानी, पृ० ११

खुसुरफुसुर[१]—संज्ञा स्त्री० [ग्रनु०] बहुत धीमी ग्रावाज से कही हुई बात। चुपके चुपके की बातचीत। कानाफूसी।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

खुसुरफुसुर[२]—क्रि० वि० बहुत धीमी ग्रावाज से। ग्रस्फुट स्वर से। सायँ सायँ। फुसफुस।

खुसूमत—संज्ञा स्त्री० [ग्र० खुसूमत] १. शत्रुता। वैर। २. लड़ाई। झगड़ा [को०]।

खुसूस—संज्ञा पुं० [ग्र० खुसूस] दे० 'खुसूसियत'।

खुसूसियत—संज्ञा स्त्री० [ग्र० खुसूसियत] दे० १. विशेषता। खास बात। २. प्रेमभाव। मेल [को०]।

खुसूसी—वि० [ग्र० खुसूसी] विशेष। खास [को०]।

खुस्याल—वि० [फ़ा० खुशहाल हिं० खुसियाल] दे० 'खुसाल' उ०—छुटन न पैयत छिनक बसि नेह नगर यह चाल। मारयो फिरि फिरि मारिए खूनी फिरत खुस्याल।—बिहारी (शब्द०)।

खुहार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुद्दी'।

खुही—संज्ञा स्त्री० [सं० खोलक] इस प्रकार का लपेटकर बनाया हुआ कंबल या कपड़ा जिसे सिर पर डाल लेने से शरीर का ऊपरी भाग शीत या वर्षा से बचा रहता है। (प्रायः अहीर, गड़ेरिए आदि इसका व्यवहार करते हैं) खोही। घोघी। खुड़आ। उ०—साँवरी कामरी की है खुही, बनि, साँवरे पै चली साँवरी ह्वै के।—पद्माकर (शब्द०)।

खूँखार—वि० [फ़ा० खूंख्वार] १. रक्तपान करनेवाला। खून पीनेवाला। २. भयंकर। डरावना। ३. क्रूर। निर्दय।

खूँखारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खूंख्वारी] निर्दयता। अत्याचार।

खूँट¹—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] १. छोर। कोना। उ०—पीतांबर को खूँट लै आए अवध विसेखि।—विश्राम (शब्द०)। २. भारी, चौकोर या गोल पत्थर जो मकान की मजबूती के लिये कोनों पर लगाया जाता है। ३. ओर। प्रांत। तरफ। उ०—दुइ ध्रुव दुहूँ खूँट बैसारे।—जायसी (शब्द)। ४. भाग। हिस्सा। जैसे,—खूँटैत। ५. बहुत छोटी पूरी जो देवी, देवता को चढ़ाने के लिये बनती है। ६. लकड़ी पर का महसूल। ७. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। उ०—कानन्ह कुंडल खूँट औ खूँटी। जानहु परी कचपची टूटी।—जायसी (शब्द०)।

खूँट²—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान का एक बड़ा गहना जो गोल दीए के आकार का होता है। विरिया। उ०—तेहि पर खूँट दीप दुई बारे। दुई ध्रुव दुहूँ खूँट बैसारे।—जायसी (शब्द०)।

खूट³—संज्ञा पुं० [देश०] आठ सेर की तौल जो घी, तेल आदि के लिये प्रचलित थी।

खूँट⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं० खूँटना] रोक। पूछताछ। जैसे,—वहाँ किसी तरह की खूँट पूछ नहीं होती; तुम डरते क्यों हो।

खूँट⁵—संज्ञा पुं० [हिं०] कान का मैल।

यौ०—खुँटकढ़वा।

खूँटना—क्रि० स० [सं० खण्डन=तोड़ना] १. कुछ पूछताछ करना। टोकना। २. छेड़छाड़ करना। उ०—गागरि मारै काँकरी सो लागै मेरे गात री। गैल माँझ ठाढो रहै मोहि खूँटै आवत जात री।—(शब्द०)। ३. कम होना। घटना। चुकना। ४. दे० 'खोंटना'।

खूँटा—संज्ञा पुं० [सं० क्षोड] [अल्पा० स्त्री० खूँटी] १. बड़ी मेख जिसको भूमि में गाड़कर उसमें किसी पशु को बाँधते हैं। २. कोई लकड़ी जो भूमि पर खड़ी गड़ी हो और जिसमें कोई वस्तु बाँधी या अटकाई जाय। ३. कोई खड़ी गड़ी हुई लकड़ी।

मुहा०—खूँटा गाड़ना=(१) सीमा निर्धारित करना। हद बाँधना। केंद्र निर्धारित करना। (२) बराबर एक ही स्थान पर दिखाई पड़ना। अड्डा या ठिकाना बना लेना। खूँटे के बल उछलना या कूदना=किसी आश्रय या आधार के बल पर कूदना।

खूँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खूँटा] १. छोटी मेख। २. नील, अरहर या ज्वार के पौधे का वह सूखा डंठल जो फसल काट लेने पर खेत में गड़ा रह जाता है। ३. गुल्ली। अंटी। ४. बालों के कड़े अंकुर जो मूँड़ने के पीछे रह जाते हैं या निकलते हैं।

मुहा०—खूँटी निकालना या लेना=ऐसा मूड़ना कि बाल की जड़ तक न रह जाय।

५. नील की दूसरी फसल जो एक बार फसल काट लेने पर उसकी जड़ से पैदा होती है। इसे दोरेजी भी कहते हैं। ६. सीमा। हद। ७. मेख के आकार का लकड़ी आदि का वह छोटा टुकड़ा जो किसी चीज में किसी दूसरी चीज के चटकाने आदि के लिये लगा रहता है। जैसे,—खड़ाऊँ की खूँटी। सितार की खूँटी।

मुहा०—खूँटी कसना=सितार आदि तंत्रवाद्यों के तार को खूँटी ऐंठकर कसना।

खूँटी उखाड़—संज्ञा पुं० [हिं० खूँटी+उखाड़ना] घोड़े की एक भौंरी जो पैरों में पुट्ठे के पास होती है और जिसका मुँह ऊपर की ओर होता है। जिस घोड़े को यह भौंरी होती है, वह बड़ा ऐबी समझा जाता है।

खूँटी गाड़—संज्ञा पुं० [हिं० खूँटी+गाड़ना] घोड़े की एक भौंरी जो पैरों में पुट्ठे के ऊपर होती है और जिसका मुँह नीचे की ओर होता है। जिस घोड़े को यह भौंरी होती है, वह कुछ ऐबी समझा जाता है।

खूँड़ा—संज्ञा पुं० [सं० क्षोड़=खूँटा] लोहे की वह पतली छड़ जिसमें नरा लगाकर जुलाहे ताना तनते हैं।

खूँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खूँड़ा] एक पतली लकड़ी जिसके सिर पर काँच का एक चुल्ला फोड़कर बाँध देते हैं। इसी चुल्ले में रेशम के महीन तागे डालकर जुलाहे ताना तनते हैं।

खूँथी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुर्थी'।

खूँद—संज्ञा स्त्री० [सं० √खुर्द, हिं० खूँदना] थोड़ी जगह में घोड़े का इधर उधर चलते रहना। उ०—करे चाह सों चुटकि कै खरे उड़ौहैं मैन। लाज नवाये तरफरत करत खूँद सी नैन।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—जब किसी घोड़े को सवार एक स्थान पर कुछ देर तक खड़ा रखना चाहता है, तब वह घोड़ा सीधा और चुपचाप खड़ा न रहकर थोड़ी सी जगह में ही आगे पीछे हटता और घूमता रहता है। इसी हटने और घूमने को खूँद कहते हैं।

खूँदना—क्रि० अ० [सं० क्षुण्णन अथवा क्षुण्ण=पिसा या कुचला हुआ। अथवा खुण्डन=तोड़ना] १. पैर उठा उठाकर जल्दी जल्दी भूमि पर पटकना। उछल कूद करना। २. पैरों से रौंदना। रौंद रौंदकर खराब कर देना। उ०—खमरा खोद खूँद छिमला सों। रौंद राठ मंज्या भौंरा सों।—लाल (शब्द०)। ३. कुचलना। कूटना।

खू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खू] स्वभाव। प्रकृति। आदत। टेव (को०)।

खूख—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कीड़ा जो चैती फसल को जाड़े म नाश करता है इसे खूखी भी कहते है। कूकी। कुकुही। गेरुई।

खूखू—संज्ञा पुं० [फ़ा० खूक] शूकर। सूअर।

खूच—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल डमरूमध्य।—(लश०)।

खूआ—संज्ञा पुं० [सं० गुह्य, प्रा० गुज्झ या सं० शुष्क] १. किसी फल आदि के अंदर का वह रेशेदार भाग जो निकम्मा समझकर फेंक दिया जाता है। जैसे,—नेनुए का खूआ।

खूटना[1]—क्रि० अ० [सं० खुण्डन] १. अवरुद्ध होना । रुक जाना । बंद हो जाना । उ०—छोड़ दई सरिता सब काम मनोरथ के रथ की गति खूटी ।—केशव (शब्द०) २ कम हो जाना । चुक जाना । खतम हो जाना । उ०—कागज गरे मेघ मसि खूटी सर दौ लागि जरे । सेवक सूर लिखै ते आधो पलक कपाट अरे ।—सूर (शब्द०)

खूटना[2]—क्रि० स० [सं० खण्ड] छेड़ना । उ०—असनेहिन हित नगर में सकत न कोऊ खूट । चतुर जगाती लाल दृग लेत सनेहिन लूट ।—रसनिधि (शब्द०) ।

खूद—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र] किसी वस्तु को छान लेने या साफ कर लेने पर निकम्मा बचा हुआ भाग । तलछट । मैल ।

खूदड़, खूदर—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र, हिं० खूद] दे० 'खूद' ।

खून—संज्ञा पुं० [फ़ा० खून] १. रक्त । रुधिर । लहू ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—चलना ।—जमना ।—निकलना ।—निकालना ।—बहना ।—बहाना ।

मुहा०—खून उबलना या खोलना = क्रोध से शरीर लाल होना । गुस्सा चढ़ना । आँखों में खून उतरना = अत्यंत क्रोध के कारण आँखें लाल हो जाना । खून जमना = अत्यधिक शीत के कारण रक्त प्रवाह का रुक जाना । खून के आँसू रोना = अत्यंत शोकार्त होना । खून का प्यासा = वध का इच्छुक । खून खुश्क होना या सूखना = अत्यंत भयभीत होना । खून सफेद हो जाना = सुजनता या स्नेह आदि का नष्ट हो जाना । खून सिर पर चढ़ना या सवार होना = किसी को मार डालने या किसी प्रकार का और कोई अनिष्ट करने पर उद्यत होना । खून बिगड़ना = (१) रक्त में किसी प्रकार का विकार होना । (२) कोढ़ी हो जाना । खून का जोश = वंश या कुल का प्रेम । खून बहाना = मार डालना । खून निकलवाना = फसद खुलवाना । खून पीना = (१) मार डालना (२) बहुत तंग करना । सताना । (३) बहुत दुःख सहना ।

२. वध । हत्या । कतल ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—खूनखराबा ।

खूनखराबा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० खून + खराबी] मारकाट ।

खूनखराबा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की वार्निश जो लकड़ी पर की जाती है ।

खूनखराबा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] मजीठ ।

खूनी—वि० [फ़ा०] १. मार डालनेवाला । हत्यारा । घातक । उ०—छुटन न पैयत छिनक बसि नेह नगर यह चाल । मारचो फिरि फिरि मारिये खूनी फिरत खुस्याल ।—बिहारी (शब्द०) । २. अत्याचारी । जालिम ।

खूब[1]—वि० [फ़ा० खूब] [संज्ञा खूबी] अच्छा । भला । उमदा । उत्तम ।

यौ०—खूबसूरत ।

खूब[2]—अव्य० साधुवाद । वाह । क्या । खूब । साधु ।

खूब[3]—क्रि० वि० पूर्ण रीति से । अच्छी तरह से ।

खूबकलाँ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खूबकलाँ] फारस देश के माजिंदरी नामक प्रांत में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास के बीज, जो पोस्ते के दानों के समान और गुलाबी रंग के होते हैं । खाकसीर ।

विशेष—दे० 'खाकसीर' ।

खूबड़खाबड़—वि० [अनु०] जो बराबर या समथल न हो । ऊँचा नीचा । विषम ।

खूबरू—वि० [फ़ा० खूबरू] [संज्ञा स्त्री० खूबरूई] सुंदर ।

खूबसूरत—वि० [फ़ा० खुबसूरती] सुंदर । रूपवान ।

खूबसूरती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खूबसूरत] सौंदर्य । सुंदरता ।

खूबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खूबानी] एक प्रकार का मेवा । जरदालू । कुशमाल ।

विशेष—इसका पेड़ काबुल की पहाड़ियों पर होता है । वहीं से यह मेवा भारत में आता है । इसे जरदालू भी कहते हैं । इसके फल सुखा लिए जाते हैं और इसके बीजों से तेल निकाला जाता है, जिसे 'कड़ुए बादाम का तेल' कहते हैं । इसके पेड़ से एक प्रकार का कतीरे की भाँति का गोंद निकलता है, जिसे 'चेरी गम' कहते हैं । इसके फल मई से सितंबर तक पकते हैं । इसका पेड़ मझोले डील का होता है और हर साल इसके पत्ते झड़ते हैं ।

खूबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खूब] १. भलाई । अच्छाई । अच्छापन । उम्दगी । २. गुण । विशेषता । विलक्षणता ।

खूरन—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुर] हाथियों के पैरों के नाखूनों की एक बीमारी जिसमें हाथी लँगड़ाने लगता है ।

खूलिंजान—संज्ञा पुं० [फ़ा० खूलंजान] कुलंजन । पान की जड़ [को०] ।

खूसट[1]—संज्ञा पुं० [सं० कौशिक] उल्लू । घुग्घू । उ०—होय उजियार बैठ जस तपै । खूसट मुँह न दिखावै छपै ।—जायसी (शब्द०)

खूसट[2]—वि० १. जिसे आमोद प्रमोद न भावे । शुष्कहृदय । अरसिक । मनहूस । २. बुड्ढा । खब्बीस । डोकरा ।

खूसर[1]—संज्ञा पुं० [हिं० खूसट] दे० 'खूसट' । उ०—राजमराल को बालक पेलि कै पालत लालत खूसर को ।—तुलसी (शब्द०) ।

खूसर[2]—वि० दे० 'खूसट' ।

खृष्टीय—वि० [अ० क्राइस्ट > हिं० खृष्ट + सं० ईय (प्रत्य०)] ईसा संबंधी । ईसा का । ईसाई ।

खेई—संज्ञा स्त्री० [देश०] झड़बेरी की सूखी झाड़ी । झाड़ झंखाड़ ।

खेऊ—संज्ञा पुं० [देश०] बरमा, स्याम और मनीपुर के जंगलों में होनेवाला एक बड़ा पेड़, जिसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है ।

विशेष—इस पेड़ का रस बनी बनाई वारनिश का काम देता है । जुलाई से अक्टूबर तक इसके पेड़ों से जो रस निकाला जाता है, वह उत्तम समझा जाता है ।

खेकसा—संज्ञा पुं० [देश०] परवल के आकार का एक फल जो तरकारी के काम आता है । ककोड़ा ।

विशेष—इसकी बेल प्रायः जंगलों और झाड़ियों में आपसे आप उगती है। यह बेल कुँदरू की बेल के समान होती है और इसमें पीले फूल लगते हैं। इसका कच्चा फल हरा होता है और पकने पर लाल हो जाता है। इसका स्वाद करेले से मिलता जुलता होता है और इसके ऊपरी भाग में मोटे, कड़े काँटे या रोएँ होते हैं। वैद्यक में इसे चरपरा, गरम, पित्त, वात और विष का नाशक, दीपन और रुचिकारक कहा है; और कुष्ठ, अरुचि, खाँसी और ज्वर को दूर करनेवाला माना है। इसके पत्ते वीर्यवर्धक, त्रिदोषनाशक और रुचिकारक होते हैं तथा कृमि, क्षय, हिचकी और ववासीर को दूर करते हैं।

खेखसा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खिकसा'।

खेचर¹—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० खेचरी] आकाशचारी।

खेचर—संज्ञा पुं० [सं०] १.वह जो आसमान में चले। आकाशचारी। २. सूर्य चंद्रादि ग्रह। ३. तारागण। ४.वायु। ५. देवता। ६.विमान। ७.पक्षी। ८.बादल। ९.भूत प्रेत। १०. राक्षस। ११. विद्याधर। १२. शिव। १३.पारा। १४. कसीस। तूतिया।

खेचरान्न—संज्ञा पुं० [सं०] खिचड़ी।

खेचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम। २.आकाशचारिणी स्त्री। परी। ३. आसमान में उड़ने की विद्या या शक्ति (को०)।

खेचरी गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार की योगसिद्ध गोली जिसके मुँह में रखने से आकाश में उड़ने की शक्ति आ जाती है।

खेचरी मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. योगसाधन की एक मुद्रा।

विशेष—योगी इस मुद्रा में जबान को उलटकर तालू से लगाते हैं और दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच मस्तक पर लगाते हैं। इस स्थित में चित्त और जीभ दोनों ही आकाश में स्थित रहते हैं, इसी लिये इसे 'खेचरी' मुद्रा कहते हैं। इसके साधन से मनुष्य को किसी प्रकार का रोग नहीं होता।

२. तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिसमें दोनों हाथों को एक दूसरे पर लपेट लेते हैं।

खेचरोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०)।

खेजड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] शमी का वृक्ष।

खेट—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेतिहरों का गाँव। खेड़ा। खेरा। २. घास। ३. बारहों ग्रह। ४. घोड़ा। ५. मृगया। शिकार। आखेट। ६. कफ। ७. ढाल। सिपर। ८ लाठी। छड़ी। ९. चमड़ा। १०. एक प्रकार का अस्त्र। ११. तृण। तिनका। १२. बलराम की गदा (को०)।

विशेष—समास के अंत में आने पर यह शब्द सदोषता, क्षुद्रता, भाग्यहीनता तथा ह्रास आदि अर्थ देता है; जैसे,—नगरखेटम्' अर्थात् अभागा नगर, क्षुद्र नगर।

खेटक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेड़ा। गाँव। २. सितारा। तारा। ३. बलदेव जी की गदा। ४. ढाल। ५. लाठी।

खेटक²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आखेटक] शिकार। मृगया।

खेटकी¹—संज्ञा पुं० [सं०] भड्डरी। भडेरिया। भड्डर। उ०—कोई पूछे चेटकीन कोई पूछे खेटकीन कोई नैठिकिन पूछै कोई पूछै काग तें।—रघुराज (शब्द०)।

खेटकी²—संज्ञा पुं० [सं० आखेटकी] १. शिकारी। अहेरी। २. वधिक।

खेटितान—संज्ञा पुं० [सं०] गीत वाद्य के द्वारा स्वामी को जगानेवाला—वैतालिक। चारण बंदीजन [को०]।

खेटिताल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खेटितान'।

खेटी¹—वि० [सं० खेटिन्] चरित्रहीन। कामी।

खेटी²—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैतालिक। चारण। २. नागरिक। नगरवासी [को०]।

खेड—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा गाँव। खेट। खेटक [को०]।

खेड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० खेटक] छोटा गाँव।

यौ०—खेड़ापति।

मुहा०—खेड़े की दूब = अत्यंत बलहीन। दुर्बल या तुच्छ। उ०—नंदनंदन ले गए हमारी सब ब्रजकुल की कब। सूरश्याम तजि और सूझै ज्यों खेड़े की दूब।—सूर (शब्द०)।

खेड़ा²—संज्ञा पुं० [देश०] कई प्रकार का मिला हुआ रद्दी और सस्ता अनाज, जो प्रायः पालतू चिड़ियों विशेषतः कबूतरों को खिलाया जाता है। करकर।

खेड़ापति—संज्ञा पुं० [हिं० खेड़ा + सं० पति] १. गाँव का मुखिया। २. गाँव का पुरोहित।

खेड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का देशी लोहा।

विशेष—इसके बने हुए हथियार बहुत तेज होते हैं यह एक प्रकार फौलाद है और नेपाल में बहुतायत से बनता है। इसे कहीं कहीं झरकुटिया लोहा भी कहते हैं।

२. वह मांसखंड जो जरायुज जीवों के बच्चों की नाल के दूसरे छोर में लगा रहता है।

खेढ़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खैल या हिं० खेड़ा] समूह। जमात। जैसे—साधुओं का खेढ़ा।

खेढ़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'खेड़ी'।

खेत—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्र] १. वह भूमिखंड जो जोतने, बोने और अनाज आदि की फसल उत्पन्न करने के योग्य हो। जोतने बोने की जमीन।

क्रि० प्र०—जोतना।—निराना।—बोना।

मुहा०—खेत कमाना = खाद आदि डालकर खेत को उपजाऊ बनाना। खेत करना = (१) समथर करना। उ०—सोखि कै खेत कै बाँधि सेतु करि उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो।—तुलसी (शब्द०) उदय के समय चंद्रमा का पहले पहल प्रकाश फैलाना। खेत काटना = खेत में उपजी हुई फसल काटना। खेत रखना = खेत की रखवाली करना। उ०—राखति खेत खरी खरी खरे उरोजन बाल।—बिहारी (शब्द०)।

२. खेत में खड़ी हुई फसल।

क्रि० प्र०—काटना।—खाना।

३. किसी चीज के विशेषतः पशुओं आदि के उत्पन्न होने का स्थान या देश। जैसे,—यह घोड़ा अच्छे खेत का है। ४. समरभूमि। रणक्षेत्र। उ०—हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। तोहिं अबहिं का करौं बड़ाई।—मानस, ६। ३४।

मुहा०—खेत आना=युद्ध में मारा जाना। उ०—खड्गी न खेत आयो, कोपित करिंदं धायो, भरत बचायो गुहरायो रघुवीर को।—रघुराज (शब्द०)। खेत करना=युद्ध करना। लड़ना। खेत छोड़ना=रणभूमि में परास्त होना। रणभूमि छोड़कर भागना। खेत पड़ना=दे० 'खेत आना' खेत मारना=दे० 'खेत रखना'। खेत रखना=समर मे विजय प्राप्त करना। खेत रहना=दे० 'खेत आना'।

५. तलवार का फल।

खेतिहर—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रधर या हिं० खेती+हर] खेती करनेवाला—कृषक। किसान।

खेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेत+ई (प्रत्य०)] १. खेत में अनाज बोने का कार्य। कृषि। किसानी। काश्तकारी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—खेती बारी।

२. खेत में बोई हुई फसल। जैसे—खेती सूख रही है।

मुहा०—खेती मारी जाना=फसल नष्ट होना।

खेतीबारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेती+बारी=बाग बगीचा] किसानी। कृषि।

खेद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खेदित, खिन्न] १. अप्रसन्नता। दुःख। रंज। २. चित्त की शिथिलता। थकावट। ग्लानि। जैसे,—सुरतिखेद।

खेदना[1]—क्रि० स० [सं० √खिद् > खेदन] मारकर हटाना। भगाना। खदेरना।

खेदना[2]—क्रि० स० [सं० खेटन] शिकार के पीछे दौड़ना। शिकार का पीछा करना।

खेदा—संज्ञा पुं० [हिं० खेदना] १. किसी बनैले पशु को मारने या पकड़ने के लिये उसे घेरकर एक उपयुक्त स्थान पर लाने का काम। २. शिकार। अहेर। आखेट।

खेदाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेदना] १. खेदने का भाव। २ खेदने का काम। ३. खेदने की मजदूरी।

खेदित—वि० [सं०] १. दुःखित। खिन्न। रंजीदा। २. परिश्रम से थका हुआ। शिथिल।

खेना—क्रि० स० [सं० क्षेपण, प्रा० खेवण] १. नाव के डाँड़ों को चलाना जिसमें नाव चले। नाव चलाना। २. कालक्षेप करना। बिताना। काटना। गुजारना। जैसे—हमने भी अपने बुरे दिन खे डाले।

खेप[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेप] १. उतनी वस्तु जितनी एक बार में ले जाई जाय। एक बार का बोझ। लदा माल। लदान। उ०—आयो घोष बड़ो ब्योपारी। लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आनि उतारी।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—खेप भर=एक बार का बोझा। एक बार को लदाई लायक। खेप लदाना=एक बार ढोने योग्य माल को बैलगाड़ी आदि पर रखाना। खेप लादना=गाड़ी पर सामान लादना या रखना उ०—यह खेप जो तूने लादी है सब हिस्सों में बट जाएगी।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३०६। खेप हारना=माल में घाटा उठाना।

२. गाड़ी, नाव आदि की एक बार की यात्रा। जैसे,—दूसरी खेप में इसे भी लेते जाना।

खेप[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० आक्षेप] दोष। ऐब।

क्रि० प्र०—देना।—धरना।—लगना।

खेप[3]—संज्ञा स्त्री० १. खोटा सिक्का। २. वह सिक्का जो कोठा लगने की वजह से बाजार में न चल सके।

खेपना—क्रि० स० [सं० क्षेपण] बिताना। काटना। गुजारना। उ०—कैसे दिन खेपब रे।—कबीर (शब्द०)।

खेपड़ो(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेपणी] नौका खेने का दंड। पतवार। डाँड़।—(डिं०)।

खेम—संज्ञा पुं० [सं० क्षेम] सं० 'क्षेम'।

यौ०—खेम करी=क्षेमकरी पक्षी। खेम कुसल=कुशल क्षेम। उ०—दानि कहाउब अरु कृपनाई। होई कि खेमकुसल रौताई।—मानस, २।३५।

खेम कल्यानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'क्षेमकरी'।

खेमटा—संज्ञा पुं० [देश०] १. बारह मात्राओं का एक ताल।

विशेष—इस ताल में तीन आघात और एक खाली होता है। इसका बोल यह है:

+ । । । ३ ० १ +

धा के टे ना धि ना ते टे धि ना धि ना। धा।

कोई कोई इसे केवल आठ मात्राओं का ताल मानते हैं। उनके अनुसार इसका बोल इस प्रकार है:

+ ३ ० १ +

धागेधि नातिव नागेधि नातीन धा

० ३ ४ +

+

अथवा, धाकेड़े धिन् धिन् ताकेड़े तिन् तिन् धा।

२. इस ताल पर गाया जानेवाला गाना। ३. इस ताल पर होनेवाला नाच।

खेमा—स्त्री० पुं० [अ० खमिह] तंबू। डेरा।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—गाड़ना।—डालना।

खेय—वि० [सं०] खोदने के योग्य। जो खोदा जा सके [को०]।

खेय[2]—संज्ञा पुं० १. खंदक। खाईं। २. पुल [को०]।

खेरवा—संज्ञा पुं० [हिं० खेना] समुद्र में जहाज आदि चलानेवाला मल्लाह।

खेरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खेड़ा'। उ०—बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाँउ गन खेरे।—तुलसी (शब्द०)।

खेरापति—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खेड़ापति'।

खेरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बंगाल में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का गेहूँ जो लाल रंग का और बहुत कड़ा होता है। २. एक प्रकार की घास जो आसाम नामक देश में बहुतायत

से होती है। यह पशुओं के लिये बहुत अच्छा चारा है। ३. एक प्रकार का जलपक्षी जो प्रायः दलदलों में रहता है और ऋतुपरिवर्तन के साथ साथ अपना स्थान भी बदलता रहता है। यह उड़ता कम और दौड़ता अधिक है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है; इसलिये लोग इसका शिकार भी करते हैं। ४. दे० 'खेड़ी'।

खेरौरा—संज्ञा पुं० [हिं० खाँड+औरा (प्रत्य०) खँड़ौरा या ओला नाम की मिठाई। मिसरी का लड्डू। उ०—हूती बहुत पकावन साधे। मोतिलाडू औ खेरौरा बाँधे। —जायसी (शब्द०)।

खेल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. केवल चित्त की उमंग से अथवा मन बहलाने या व्यायाम के लिये इधर उधर उछल कूद और दौड़ धूप या कोई साधारण मनोरंजक कृत्य, जिसमें कभी हार जीत भी होती है। जैसे,—आँख मिचौली, कबड्डी, ताश, गेंद, शतरंज आदि।

क्रि० प्र०—खेलना।

मुहा०—खेल के दिन=बाल्यावस्था। खेल खेलाना=बहुत तंग करना। खूब दिक करना।

२. सामना। बात।

मुहा०—खेल बिगड़ना=(१) काम खराब होना। (२) रंग में भंग होना।

३. बहुत हलका या तुच्छ काम।

क्रि० प्र०—जानना। समझना।

मुहा०—खेल करना=किसी काम को अनावश्यक या तुच्छ समझकर हँसी में उड़ाना। खेल समझना=साधारण या तुच्छ समझना।

४. कामक्रीड़ा। विषयविहार। ५. किसी प्रकार का अभिनय, तमाशा, स्वाँग या करतब आदि। ६. कोई अद्भुत कार्य। विचित्र लीला। उ०—यह देखो कुदरत का खेल—कहावत।

खेल[२]—संज्ञा पुं० वह छोटा कुंड जिसमें चौपाए पानी पीते हैं।

खेलक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० खेलना या हिं० खेल+क (प्रत्य०)]। खेलनेवाला व्यक्ति। वह जो खेले। खिलाड़ी। उ०—व्योम विमाननि विबुध विलोकत खेलक पेखक छाँह छये।—तुलसी (शब्द०)।

खेलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिलाना डुलाना। नचाना (नेत्र)। २. खेलने का भाव। आमोद प्रमोद। मनबहलाव। ३. नाटक, स्वाँग, अभिनय आदि खेल (को०)।

खेलना[१]—क्रि० अ० [सं०] [प्रे० रूप खेलाना] १. केवल चित्त की उमंग से अथवा मन बहलाने या व्यायाम के लिये इधर उधर उछलना, कूदना, दौड़ना आदि। जैसे—लड़के बाहर खेल रहे हैं।

मुहा०—खेलना खाना=आनंद से दिन बिताना। निश्चित होकर चैन से दिन काटना। जैसे,—अभी तुम्हारे खेलने खाने के दिन हैं; सोच करने के नहीं। उ०—(क) खेलत खात रहे व्रज भीतर। नान्हीं जाति तनिक धन हेतर।—सूर (शब्द०)। (ख) खेलत खात लरिकपन गो जोबन जुवतिन लियो जीति। —तुलसी (शब्द०)।

२. कामक्रीड़ा करना। विहार करना।

मुहा०—खेली खाई=पुरुष समागम से जानकार (स्त्री)। खुल खेलना=खुल्लमखुल्ला कोई ऐसा काम करना जिसके करने में लोगों को लज्जा आती हो। सबकी जान में कोई बुरा काम करना।

३. भूत प्रेत के प्रभाव से सिर और हाथ पैर आदि हिलाना। अभुआना। ४. दूर हो जाना। चले जाना। ५. विचरना। चलना। बढ़ना। उ०—भयो रजायसु आगे खेलहिं। गढ़ तर छाँड़ि अंत होइ मेलहि।—जायसी (शब्द०)।

खेलना[२]—क्रि० स० १. ऐसी क्रिया करना जो केवल मनबहलाव या व्यायाम आदि के लिये की जाती है और जिसमें कभी कभी हार जीत का भी विचार किया जाता है जैसे,—गेंद खेलना; जूआ खेलना, ताश खेलना इत्यादि।

मुहा०—जान या जी पर खेलना=अपने जीने की बाजी लगाना। अपने प्राण भय में डालना। ऐसा काम करना जिसमें मृत्यु का भय हो। (जान या जी के समान सिर, धन, इज्जत आदि कुछ और शब्दों के साथ भी यह मुहाविरा प्रायः बोला जाता है।)

२. किसी वस्तु को लेकर अपना जी बहलाना। किसी वस्तु को मनोरंजन के लिये हिलाना डुलाना आदि। जैसे,—खिलौना खेलना। जैसे—कागज यहाँ न छोड़ो, नहीं तो लड़के खेल डालेंगे। ३. नाटक या स्वाँग रचना। अभिनय करना। जैसे,—यह नाटक कल खेला जायगा।

खेलनी—संज्ञा स्त्री०[सं०] खेल का उपकरण। खेलने की वस्तु [को०]।

खेलवाड़—संज्ञा पुं० [हिं० खेल+वाड़] खेल। क्रीड़ा। तमाशा। मनबहलाव। दिल्लगी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

खेलवाड़ी—वि० [हिं० खेल+वार (प्रत्य०)] १ खेलनेवाला। खेलाड़ी। जैसे,—वह बड़ा खेलवाड़ी लड़का है। २. विनोदशील। कौतुकप्रिय।

खेलवाना—क्रि० स० [हिं० खेलना] दूसरे को खेलने में प्रवृत्त करना।

खेलवार[१]—संज्ञा पुं० [हिं० खेल+वार] खेल करनेवाला। खेलाड़ी। उ०—संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार। तेहि निसि आश्रम पींजरा राखे भा भिनसार।—तुलसी (शब्द०)।

खेलवार[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खेलवाड़'।

खेला—संज्ञा स्त्री० [पुं०] क्रीड़ा। खेल। मनबहलाव (को०)।

खेलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेल] १ खेलने का काम। खेल। जैसे,—आजकल वहाँ शतरंज की खूब खेलाई हो रही है। १. खेलाने की मजदूरी।

खेलाड़ी[१]—वि० [हिं०] खेल+आड़ी (प्रत्य०) १. खेलनेवाला। क्रीड़ाशील। २. विनोद।

खेलाड़ी[२]—संज्ञा पुं० [हिं० खेल] १. खेल में सम्मिलित होनेवाला व्यक्ति। वह जो खेले। २. तमाशा करनेवाला ३. ईश्वर। जैसे,—उस खेलाड़ी के भी अजब खेल हैं।

खेलाना—क्रि० स० [हिं० खेलना का प्रे० रूप] १. किसी दूसरे को खेल में लगाना । दे० 'खेलना' । २. खेल में शामिल करना । जैसे,—जाओ, हम अब तुम्हें नहीं खेलावेंगे । ३. उलझाए रखना । बहलाना ।

मुहा०—खेला खेलाकर मारना = दौड़ा दौड़ाकर धीरे धीरे मारना । साँसत से मारना । उ०—ततिहौ तोहिं खेलाइ खेलाई । अवहिं बहुत का करौं बड़ाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

खेलार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० खेल + आर (प्रत्य०)] खेलाड़ी । उ०—खेलत फागु खेलार खरे अनुराग भरे बड़ भाग कन्हाई ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

खेलि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रीड़ा । खेल । २ ऋचा । गीत (को०) ।

खेलि[2]—संज्ञा पुं० १. सूर्य । रवि । २. इषु । बाण । ३. पशु । जानवर । ४. पक्षी (को०) ।

खेलुआ—संज्ञा पुं० [हिं० खिलना या खिलना] चमड़ा रँगनेवालों का रकाबी या थाली के आकार का काठ का एक औजार जिससे चमड़े को रँगने के पहले मुलायम करने और खिलाने के लिये उसपर खारी नमक आदि रगड़ते हैं ।

खेलौना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खिलौना' ।

खेवइया(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] खेनेवाला व्यक्ति । खेवैया ।

खेंव—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास ।

विशेष—वर्षा ऋतु में पहला पानी पड़ते ही यह बहुत अधिकता से उगती है और इसे घोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं । इसे पलंजी या ऊसर की घास भी कहते हैं ।

खेवक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षेपक] नाव खेनेवाला । मल्लाह । केवट । माँझी । उ०—राजा कर भा अगमन खेवा । खेवक आगे सुवा परेवा ।—जायसी (शब्द०) ।

खेवट[1]—संज्ञा पुं० [हिं० खेत + बाँट] पटवारी का एक कागज जिसमें हर एक पट्टीदार के हिस्से की तादाद और मालगुजारी का विवरण लिखा रहता है ।

यौ०—खेवटहार = हिस्सेदार । पट्टीदार ।

खेवट[2]—संज्ञा पुं० [हिं० खेना] नाव खेनेवाला । मल्लाह । माँझी ।

खेवटिया†—संज्ञा पुं० [हिं० खेवट] खेवट । मल्लाह ।

खेवणी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेपणी] नाव का डाँड़ ।—(डिं०) ।

खेवनहार—संज्ञा पुं० [हिं० खेना + हार (प्रत्य०)] १. खेनेवाला । मल्लाह । केवट । २. ठिकाने तक पहुँचानेवाला । पार लगानेवाला ।

खेवना—क्रि० स० [हिं० खेना] दे० 'खेना' ।

खेवनाव—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष ।

विशेष—यह उत्तर भारत में चनाब नदी के पूर्व और बंगाल तथा उड़ीसा की नदियों के किनारे अधिकता से पाया जाता है । इसके गूदे से एक प्रकार के रेशे निकलते हैं । इसमें एक प्रकार की लाह भी लगती है । कहीं कहीं इसे दुँवरखेव भी कहते हैं ।

खेवरिया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० खेवट] पार उतारनेवाला । केवट ।

खेवरियाना†—क्रि० स० [देश०] १. एकत्र करना । संग्रह करना । बटोरना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः चरवाहे अपनी गौओं के लिये करते हैं ।

२. धता करना । चलता करना ।—(वेश्या) ।

खेवा—संज्ञा पुं० [हिं० खेना] १. वह धन जो केवट को नाव द्वारा पार उतारने के बदले में दिया जाय । नाव खेने का किराया । २. नाव द्वारा नदी पार करने का काम । जैसे,—अभी यह पहला खेवा है । ३. बार । दफा । अवसर । जैसे, (क) पिछले खेवे उन्होंने कई भूलें की थीं । (ख) इस खेवे सब झगड़ा निपट जायगा ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल कार्य आदि करने के संबंध में होता है ।

४. बोझ से लदी हुई नाव । उ०—राजा का भा अगमन खेवा । खेवक आगे सुवा परेवा ।—जायसी (शब्द०) ।

खेवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेना] १. नाव खेने का काम । नाव चलाने की क्रिया । २ नाव खेने की मजदूरी । ३. वह रस्सी जो डाँड़ को नाव से बाँधने के काम में आती है ।

खेवैया—संज्ञा पुं० [हिं० खेना] खेनेवाला । केवट ।

खेस—संज्ञा पुं० [देश०] बहुत मोटे देशी सूत की बनी हुई एक प्रकार की बहुत लंबी चादर जो पश्चिम में अधिकता से बनती और प्रायः बिछाने के काम में आती है ।

खेसर—संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर (को०) ।

खेसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर या खञ्जकारि] एक प्रकार की मटर जिसकी फलियाँ चिपटी होती हैं । इसकी दाल बनती है । दुबिया मटर, । चिपटैया मटर । लतरी । तेउरा ।

विशेष—यह अन्न बहुत सस्ता होता है और प्रायः सारे भारत में, और विशेषतः मध्यभारत तथा सिंध में इसकी खेती होती है । यह अगहन में बोई जाती है और इसकी फसल तैयार होने में प्रायः साढ़े तीन मास लगते हैं । लोग कहते हैं कि इसे अधिक खाने से आदमी लँगड़ा हो जाता है । वैद्यक में इसे रूखा, कफ-पित्त-नाशक, रुचिकारक, मलरोधक, शीतल, रक्तशोधक और पौष्टिक कहा गया है; और यह शूल, सूजन, दाह, बवासीर, हृदरोग और खंज उत्पन्न करनेवाली कही गई है । इसके पत्तों का साग भी बनता है, जो वैद्यक के अनुसार वादी, रुचिकारी और कफ-पित्त-नाशक होता है ।

खेह—संज्ञा स्त्री० [हिं०, मि० पं० खेह या अप० खेह] धूल । राख । खाक । मिट्टी । उ०—(क) कीन्हेसि आगिनि पवन जल खेहा । कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) दादू क्योंकर पाइये उन चरनन की खेह ।—दादू (शब्द०) ।

मुहा०—खेह खाना = (१) धूल फाँकना । मिट्टी छानना । झख मारना । व्यर्थ समय खोना । नष्ट जाना । उ०—मुनि सीता-पति सील सुभाऊ । मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहहि खाऊ ।—तुलसी (शब्द०) । (२) दुर्दशाग्रस्त होना ।

उ०—सोई रघुनाथ कपि साथ पाथनाथ बाँधि आयो नाथ भागे ते खिरिर खेह खाहिगो।—तुलसी (शब्द०)।

खेहर‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेह] दे० 'खेह'। उ०—सो नर खेहर खाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०६।

खेंग—संज्ञा पुं० [फ़ा० खिंग] घोड़ा।—(डिं०)।

खेंचना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'खींचना'।

खेंचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खींचना] डेढ़ हाथ लंबी और एक बित्ता चौड़ी देवदार की लकड़ी की एक तख्ती जिसपर तेल लगाकर सैकल किए हुए औजार साफ किए जाते हैं।

खेंचाखेंची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खींचाखींची'।

खेंचातान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खींचतान'।

खेंचातानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेंचातान+ई (प्रत्य०)] खींचाखींची। खींचतान।

खैबर—संज्ञा पुं० [देश०] भारत और अफगानिस्तान के बीच की एक घाटी का नाम।

खैयात—संज्ञा पुं० [अ० खैयात] दर्जी। सूचीकार। सिलाई करनेवाला। सीवक [को०]।

खैयाम¹—वि० [अ० खैयाम] खेमा बनानेवाला। तंबू बनानेवाला [को०]।

खैयाम²—संज्ञा पुं० फारसी का प्रसिद्ध कवि उमर खैयाम।

विशेष—नैशापुर निवासी इस प्रसिद्ध कवि की रुबाइयाँ संसार की अनेक भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। कवि होने के साथ ही यह बड़ा वैज्ञानिक, चिकित्सक, तथा ज्योतिषी भी था।

खैर¹—संज्ञा पुं० [सं० खदिर, प्रा० खइर, खयर] १. एक प्रकार का बबूल। कथकीकर। सोनकीकर।

विशेष—इसका पेड़ बहुत बड़ा होता है और प्रायः समस्त भारत में अधिकता से पाया जाता है। इसके हीर की लकड़ी भूरे रंग की होती है, घुनती नहीं और घरतथा खेती के औजार बनाने के काम में आती है। बबूल की तरह इसमें भी एक प्रकार का गोंद निकलता है और बड़े काम का होता है।

२. इस वृक्ष की लकड़ी के टुकड़ों को उबालकर निकाला और जमाया हुआ रस जो पान में चूने के साथ लगाकर खाया जाता है। कत्था।

खैर²—संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत का भूरे रंग का एक पक्षी।

विशेष—लंबाई में यह एक बालिश्त से कुछ अधिक होता है और झोपड़ियों या छोटे पेड़ों में घोसला बनाकर रहता हैं। इसका घोसला प्रायः जमीन से सटा हुआ रहता है। इसकी गरदन और चोंच कुछ सफेदी लिए होती है।

खैर³—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खैर] कुशल। क्षेम। भलाई।

यौ०—खैरअंदेश=हितचिंतक। शुभचिंतक। खैरअंदेशी=शुभचिंतन। भलाई चाहना। खैरआफियत। खैरख्वाह=दे० 'खैरखाह'। खैरख्वाही=दे० 'खैरखाही'। खैरोबरकत=कल्याण। समृद्धि। खैरोसलाह। खैरसल्ला=कुशलक्षेम।

खैर⁴—अव्य १. कुछ चिंता नहीं। कुछ परवा नहीं। २. अस्तु। अच्छा।

खैर आफियत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खैर-ओ-आफ़ियत] कुशल मगल। क्षेम कुशल।

क्रि० प्र०—कहना।—पूछना।

खैरखाह—वि० [फ़ा० खैरख्वाह] भलाई चाहनेवाला। शुभचिंतक।

खैरखाही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खैरख्वाही] शुभचिंतन। भलाई सोचना।

खैरवाल—संज्ञा पुं० [देश०] कोलियार नाम का वृक्ष।

खैरसार—संज्ञा पुं० [सं० खदिर+सार] कत्था। खैर।

खैरा¹—वि० [हिं० खैर] खैर के रंग का। कत्थई।

खैरा²—संज्ञा पुं० १. वह कबूतर या घोड़ा जिसका रंग कत्थई हो। २. एक प्रकार का बगुला जिसका रंग कत्थई होता है।

खैरा³—संज्ञा पुं० [देश०] १. धान की फसल का एक रोग, जिसमें उसकी बाल पीली पड़ जाती है। २. तबला बजाने में एकताले (ताल) की दून। ३. एक प्रकार की छोटी मछली जो बंगाल की नदियों में अधिकता से पाई जाती है।

खैरात—संज्ञा पुं० [अ० खैरात] [वि० खैराती] दान। पुण्य।

क्रि० प्र०—करना।—चाहना।—बाँटना।—पाना।—माँगना।

यौ०—खैरातखाना=अन्नसत्र।

खैराती—वि० [अ० खैरात] दान या खैरात में प्राप्त। मुफ्त का। जैसे,—खैराती अस्पताल। खैराती दवाखाना। खैराती माल।

खैरियत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खैरियत] १. कुशल क्षेम। राजीखुशी। २. भलाई। कल्याण।

खैरीयत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खैरीयत] दे० 'खैरियत'।

खैल—संज्ञा पुं० [अ० खैल] समुदाय। जमाव। जनसमूह [को०]।

यौ०—खैलखाना=कुटुंब। खानदान। वंश।

खैलर—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्वेल] मथानी।

खैला¹†—संज्ञा पुं० [सं० क्ष्वेड] वह बैल जिससे अभी तक कुछ काम न लिया गया हो। नाटा। बछड़ा।

खैला²†—संज्ञा पुं० [सं० क्ष्वेल] मथानी। उ०—मन माठा सम अस कै धोवै। तन खैला तेहि माँहि बिलोवै।—जायसी (शब्द०)।

खोइचा—संज्ञा पुं० [हिं० खूट वा खोंछ अथवा सं० कुक्ष्यञ्चल या देश०] (स्त्रियों के कपड़ों का) अंचल। किनारा।

मुहा०—खोइचा भरना=शकुन के रूप से किसी (स्त्री) के आँचल में चावल; गुड़ आदि देना।

खोंइछा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खोंइचा'।

खोंखना‡—क्रि० अ० [खों खों से अनु०] खाँसना।

खोंखर‡; खोखल—वि० [हिं०] दे० 'खोखला'।

खोंखी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोंखना] खाँसी। कास।

खोंखों—संज्ञा पुं० [अनु०] १. खाँसने का शब्द। २. बंदरों के घुड़कने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।

खोगा[२]‡—संज्ञा पुं० [देश०] अटकाव। रुकावट।

खोंगार[२]‡—संज्ञा पुं० [सं० खोङ्गाह] वह बैल जो अभी किसी काम में न लगाया गया हो। नाटा। बछड़ा।

खोगाह—संज्ञा पुं० [सं० खोङ्गाह] पीलापन लिए सफेद रंग का घोड़ा।

खोंगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोंसना या देश०] लगे हुए पानों का चौघड़ा।

खोंच[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्च या सं० पोगाञ्चन] १. किसी नुकीली चीज से छिलने का आघात। २. किसी मेख या काँटे आदि में फँसकर कपड़े आदि का फट जाना।

क्रि० प्र०—लगना।

खोंच[२]—संज्ञा पुं० [देश०] १. मुट्ठी। २. उतना अन्न या और कोई पदार्थ जो एक मुट्ठी में आ जाय।

खोंच[३]—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] एक प्रकार का बगुला।

खोंचा—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्ज या हिं० खोंचा] १. बहेलियों का वह लंबा बाँस जिसके सिरे पर लासा लगाकर वे पक्षियों को फँसाते हैं। उ०—पाँच बानकर खोंचा लासा भरे सो पाँच। पाँख भरा तन उरझा कित मारे बिन बाँच।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मारना।

२. दे० 'खोंच'। † ३. छोटे बछड़े या बैल के मुँह पर लगाने की एक प्रकार की जाली जिससे वे गाय का दूध न पी सकें या दँवाई के समय खा न सकें।

खोंचिया†—संज्ञा पुं० [हिं० खोंची] १. खोंची लेनेवाला। २. भिक्षुक। भिखमंगा।

खोंची—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह थोड़ा अन्न, फल, तरकारी आदि जो दूकानदार मंडी या बाजार में छोटी छोटी सेवाएँ करनेवालों या भिखमंगों को देते हैं। उ०—खाई खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे।—तुलसी (शब्द०)।

खोंटना—क्रि० स० [सं० खुण्टन] किसी वस्तु का ऊपरी भाग तोड़ना। कपटना। नोचना। जैसे,—साग खोंटना।

खोंटा—वि० [हिं०] दे० 'खोटा'।

खोंडर—संज्ञा पुं० [सं० कोटर] पेड़ का भीतरी पोला भाग।

खोंड़हा—वि० [हिं०] दे० 'खोंड़ा'।

खोंड़ा, खोंढ़ा†—वि० [सं० खुण्ड] जिसका कोई अंग भंग हो। सदोष। अपूर्ण।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः उस मनुष्य के लिये होता है, जिसके आगे के दो तीन दाँत टूटे हों।

खोंतल†—संज्ञा पुं० [सं० कोटर, देश० खोंत्थर] खोता। घोंसला। उ०—यह सुधि नहिं किहि को जटान में खंग कुल खोंतल लागे।—प्रताप (शब्द०)।

खोंता—संज्ञा पुं० [हिं० खोता] घास, फूस, बाल आदि का बना हुआ चिड़ियों का निवासस्थान, जो प्रायः वृक्षों आदि पर होता है। घोंसला।

खोंथा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खोंता'।

खोंप—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोंपना] सिलाई में दूर दूर पर लगा हुआ टाँका। सलँगा।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।

खोंपना†—क्रि० स० [हिं० खोपना] धँसाना। गड़ाना।

खोंपा—संज्ञा पुं० [हिं० खोंपना] [स्त्री० खोंपिया खोंपी] १. हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। २. छाजन का कोहा। ३. भूसा रखने का घेरा जो छप्पर से छाया रहता है। ४. दे० 'खोपा'—३, ४।

खोंपी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोंपा] १. दे० 'खोंपा'। २. हजामत में खत का कोना।

खोंसना—क्रि० स० [देश० या सं० कोश + ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु को कहीं स्थिर रखने के लिये उसका कुछ भाग किसी दूसरी वस्तु में घुसेड़ देना। अटकाना। उ०—सखी री मुरली लीजै चोर। कबहूँ कर कबहूँ अधरन पर कबहूँ कटि में खोंसत जोर।—सूर (शब्द०)।

खोआ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खोया'।

खोइया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खोई'।

खोइड़ार—संज्ञा पुं० [हिं० खोई + आर (प्रत्य०)] कोल्हौर में वह स्थान जहाँ खोई जमा की जाती है।

खोइलर‡—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्वेल] तीन चार हाथ लंबी बाँस की छड़ी जिससे कोल्हू में पड़े हुए गंडों को उलटते पलटते हैं।

खोइहट‡—वि० [हिं०] दे० 'खोई'।

खोइहा—संज्ञा पुं० [हिं० खोई + हा (प्रत्य०)] कोल्हौर का वह मजदूर जो खोई उठाता या फेंकता है।

खोई[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्र] ऊख के गंडों के वे डंठल जो रस निकल जाने पर कोल्हू में शेष रह जाते हैं। छोई। २. भुने हुए चावल या धान की खील। लाई। ३ कंबल की घोघी। ४. एकप्रकारकी घास जिसे 'बूर' भी कहते हैं। वि० दे० 'बूर'।

खोई†[२]—वि० [हिं०] नटखट। शरारती।

खोखर—संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोश राग का पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय दिन का पहला पहर है।

खोखरा—संज्ञा पुं० [हिं० खुक्ख, या खोखला] टूटा हुआ जहाज।—(लश०)।

खोखल‡—वि० [हिं०] दे० 'खोखला'।

खोखला[१]—वि० [हिं० खुक्ख + ला (प्रत्य०)] जिसके भीतरी भाग में कुछ न हो। सारहीन। पोला।

खोखला[२]—संज्ञा पुं० १. खाली स्थान। पोली जगह। २. बड़ा छेद। रंध्र।

खोखा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० खुक्ख] वह कागज जिसपर हुंडी लिखी हुई हो; विशेषतः वह हुंडी जिसका रुपया चुका दिया गया हो।

खोखा[२]—संज्ञा पुं० [सं० कोक, बं० खोका] [स्त्री० खोखी] बालक। लड़का।

खोगीर—संज्ञा पुं० दे० [फ़ा० खुगीर] दे० 'खुगीर'।

खोचकिल†—संज्ञा पुं० [देश०] चिड़ियों का खोता। घोंसला।

खोज—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोजना] १. अनुसंधान। तलाश। शोध।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

मुहा०—खोज खबर लेना=हालचाल जानना।

२. चिह्न। निशान। पता। उ०—(क) रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राखौं नहिं काहू सब मारौं। ब्रज गोकुल को खोज निवारौं।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पाना।—लगाना।

मुहा०—खोज मिटाना=नष्ट करना। ध्वस्त करना। बरबाद करना। चिह्न तक न रहने देना।

३. गाड़ी के पहिए की लीक अथवा पैर आदि का चिह्न। उ०—संदन माँझ कुरंगिन खोजू। धोहि को पाव को राजा भोजू। जायसी (शब्द०)।

मुहा०—खोज मारना=लीक या पैर आदि का चिह्न इस प्रकार बचाना या नष्ट करना जिसमें कोई पता न लगा सके। उ०—खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनहिं नहिं बाता।—तुलसी (शब्द०)।

खोजक—वि० [हिं० खोज+क (प्रत्य०)] खोज करनेवाला। ढूँढ़नेवाला। तलाश करनेवाला।—(क्व०)।

खोजना—क्रि० स० [सं० खुज=चोराना] तलाश करना। पता लगाना। ढूँढ़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—मारना।—रखना।

खोजमिटा—वि० [हिं० खोज+मिटना] [स्त्री०] जिसका चिह्न न रह जाय। जिसका नामनिशान न रह जाय। जो सत्यानाश हो जाय। नष्ट (यह शब्द स्त्रियाँ परस्पर अधिक बोलती हैं।)।

खोजवाना—क्रि० स० [हिं० खोजना] खोजना का प्रेरणार्थक रूप। पता लगवाना। ढुँढ़वाना।

खोजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वाजह्] १. वह व्यक्ति जो मुसलमानी हरमों में द्वाररक्षक या सेवक की भाँति रहता है। २. सेवक। नौकर। ३. माननीय व्यक्ति। सरदार। ४. मुसलमानों की एक जाति जो अधिकांश महाराष्ट्र प्रदेश में रहती है।

खोजाना—क्रि० स० [हिं० खोजना] दे० 'खोजवाना'।

खोजी(पु)†—वि० [हिं० खोज+ई (प्रत्य०)] १. खोजनेवाला। ढूँढ़नेवाला। २. नौकर।—(क्व०)। ३. शोधकर्ता। अन्वेषक (व्यंग्य)।

खोट[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० खोट=खोड़ा (दूषित)] १. दोष। ऐब। बुराई। उ०—सूरदास पारस के परसे मिटत लोह की खोट।—सूर (शब्द०)। २. किसी उत्तम वस्तु में निकृष्ट वस्तु की मिलावट। ३. वह निकृष्ट वस्तु जो किसी उत्तम वस्तु में मिलाई जाय।

खोट[2]—वि० दे० 'खोटा'।

खोटत, खोटता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोट+ता (प्रत्य०)] खोटाई। बुराई। खोटापन।—(क्व०)। उ०—अमरापति चरणन पर लोटत। रही नहीं मन में कछु खोटत।—सूर (शब्द०)।

खोटपन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खोटापन'।

खोटा—वि० [सं० क्षुद्र या खोट=खोड़ा (दूषित) [स्त्री० खोटी] जिसमें कोई ऐब हो। दूषित। बुरा। 'खरा' का उलटा। जैसे,—खोटा रुपया, खोटा सोना, खोटा आदमी।

मुहा०—खोटा खरा=भला बुरा। उत्तम और निकृष्ट। खोटा खाना=बेईमानी से या बुरी तरह से कमाकर खाना। उ०—फाटक दै कै हाटक माँगत भोरो निपट सुधारी। धुर ही ते खोटो खायो है लिए फिरत सिर भारी।—सूर (शब्द०)। खोटी करना=खोटापन या बुराई करना। खोटी बोलना=बुरी बात बोलना। खोटी खरी सुनाना=दुर्वचन कहना। डाँटना। फटकारना।

खोटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोटा+ई (प्रत्य०)] १. बुराई। दुष्टता। क्षुद्रता। २. छल। कपट। उ०—अहह बंध तैं कीन्ह खोटाई। प्रथमहि मोंहि न जगायसि आई।—तुलसी (शब्द०)। ३. दोष। ऐब। नुक्स।

खोटाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खुटना' या 'खुटाना'।

खोटापन—संज्ञा पुं० [हिं० खोटा+पन (प्रत्य०)] खोटा होने का भाव। क्षुद्रता।

खोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चालाक औरत। चालबाज या चालू औरत। मक्कारा [को०]।

खोड—वि० [सं०] छिन्नांग। अपंग। विकलांग। लँगड़ा लूला [को०]।

खोड़[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोट] देवता, पितर, भूत, प्रेत आदि का कोप। देवकोप। ऊपरी फेर। जैसे,—उसे किसी देवता की खोड़ है।

खोड़[2]—संज्ञा पुं० [सं० कोटर] वह छेद जो वृक्ष की लकड़ी के सड़ जाने से होता है। उ०—मानहु आयो है राज कछू चढ़ि ऐसे ही ऐसे पलास के खोड़े।—मतिराम (शब्द०)।

खोड़[3]—वि० [सं० खोड] दे० 'खोड'।

खोड़रा—संज्ञा पुं० [सं० कोटर] पुराने पेड़ का खोखला भाग।

खोड़ा—वि० [हिं० खाँड़ा] दे० 'खोँड़ा'।

खोद[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० खोद] लोहे का बना हुआ टोप जिसे योद्धा लड़ाई के समय पहनते थे। टोप। कूँड़। शिरस्त्राण।

खोद†—संज्ञा पुं० [हिं० खोदना] जाँच पड़ताल। पूछताछ।

यौ०—खोद विनोद।

खोदई—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है। यह रँगने और दवा के काम में आता है।

विशेष—दे० 'लोध'।

खोदना—क्रि० स० [सं० खुद=भेदन करना] १. किसी स्थान को गहरा करने के लिये वहाँ की मिट्टी आदि उखाड़कर फेंकना। गड्ढा करना। खनना। जैसे, जमीन खोदना, कुआँ खोदना।

संयो० क्रि०—डालना।—फेंकना।

२. खोदकर या उखाड़कर गिराना। जैसे,—कुआँ खोदना, घर खोद डालना। ३. किसी कड़ी वस्तु पर पैनी या नुकीली वस्तु से कुछ चिह्न, धंक या बेल बूटे आदि बनाना। नक्काशी

करना। जैसे, मोहर खोदना। ४. उँगली छड़ी आदि से छूना या दबाना। उँगली या छड़ी आदि से हिलाना डुलाना। गड़ाना। जैसे,—(क) उसे खोदकर जगा दो। (ख) वह लड़का उसके गाल में खोदकर भागता है। लकड़ी थोड़ा खोद दो; आग जलने लगेगी। छेड़छाड़ करना। छेड़ना।

मुहा०—**खोद खोदकर पूछना**=एक एक बात पर शंका करके पूछना। अच्छी तरह पूछना।

६. उत्तेजित करना। उसकाना। उभाड़ना।

खोदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना] खोदने का छोटा औजार।

यौ०—**कनखोदनी**=कान से खोदकर मैल निकालने की सींक या कील। **दाँतखोदनी**=दाँत से खोदकर मैल निकालने की सींक या कील।

खोद विनोद†—संज्ञा पुं० [हिं० खोद+विनोद (अनु०)] बहुत अधिक छानबीन। जाँच पड़ताल। पूछ ताछ। छेड़छाड़।

खोदवाना—क्रि० स० [हिं० खोदना का प्रे० रूप] खोदने में लगाना। खोदने का काम करवाना।

खोदाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना] १. खोदने का काम। २. खोदने की मजदूरी। ३. कड़ी वस्तु पर किसी नोकदार वस्तु से अंक, चिह्न, बेलबूटे आदि बनाने का काम। जैसे,—शाहजहाँपुर में लकड़ी पर खोदाई अच्छी होती है।

खोना¹—क्रि० स० [सं० क्षेपण, प्रा० खेवण सं० √क्षी का प्रे० क्षप्] १. अपने पास की वस्तु को निकल जाने देना। व्यर्थ फेंक देना। गँवाना। जैसे,—उसने अपनी पुस्तक खो दी। २. भूल से किसी वस्तु को कहीं छोड़ आना। ३. खराब करना। बिगाड़ना। नष्ट करना।

संयो० क्रि०—**देना**।—**डालना**।

खोना²—क्रि० अ० पास की वस्तु का निकल जाना। किसी वस्तु का कहीं भूल से छूट जाना।

संयो० क्रि०—**जाना**।

विशेष—संयोज्य क्रिया के साथ ही यह क्रिया अकर्मक भाववाच्य रूप में आती है, अकेले नहीं।

मुहा०—**खोया जाना**=चकपका जाना। सिटपिटा जाना। हक्का बक्का होना। घबराना। **खोया खोया रहना**=किसी विचार या चिंता में डूब जाना। सुध बुध न रहना।

खोनचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वान्चा] १. एक बड़ी परात या थाल जिसमें मिठाई या और खाने पीने की वस्तुएँ भरी रहती हैं। वह थाल जिसमें रखकर फेरीवाले मिठाई आदि बेचते हैं।

मुहा०—**खोनचा लगाना**=बेचने के लिये खोनचे में मिठाई सजाना या रखना।

खोपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] [स्त्री० खोपड़ी] १. सिर की हड्डी। कपाल। २. सिर। ३. गरी का गोला। गरी। ४. नारियल। ५. भिक्षुकों का खप्पर जिसमें वे भीख लेते है। बहुधा यही दरियाई नारियल का आधा टुकड़ा होता है। ६. गाड़ी में वह मोटी लकड़ी जो दोनों पहियों के बीच में धुरों से मिली होती है।

खोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोपड़ा] १. सिर की हड्डी। कपाल। २. सिर।

मुहा०—**अंधी खोपड़ी का, औंधी खोपड़ी का**=नासमझ। मूर्ख। **खोपड़ी खा जाना**=बहुत बात करके दिक करना। **खोपड़ी खुजलाना**=(१) कोई ऐसी बात या शरारत करना. जिससे मार खाने की नौबत आवे। मार खाने को जी चाहना। जैसे,—तुम न मानोगे, तुम्हारी खोपड़ी खुजला रही है। (२) सिर पर जूता मारना। **खोपड़ी गंजी होना**=मार खाते खाते सिर के बाल झड़ जाना। सिर पर खूब जूते पड़ना। **खोपड़ी गंजी करना**=मारते मारते सिर के बाल न रहने देना। सिर पर खूब जूते लगाना। **खोपड़ी चटकना**=अधिक धूप, प्यास या पीड़ा के कारण सिर में गर्मी और चक्कर मालूम होना। सिर टनकना। **खोपड़ी चाट जाना**=बकवाद करके तंग करना।

खोपरा—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] दे० 'खोपड़ा'।

खोपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खोपड़ी'। उ०—फटो खोपरी गूँद फैलंत पिंडी। मनो माथ मारग्ग फूटी दहिंडी।—रसर०, पृ० २२७।

खोपा—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर,हिं० खोपड़ा] १. छप्पर का कोना। २. मकान का कोना जो किसी रास्ते की ओर पड़े। ३. केश-विन्यास में वह तिकोनी बनावट जो ठीक ब्रह्मरंध्र पर पड़ती है। इसके सिरे का कोना माँग से मिला रहता है और ठीक इसी के आधार पर जूड़ा बाँधा जाता है। ४. जूड़ा बँधी हुई वेणी। उ०—सरवर तीर पदमिनी आई। खोपा छोरि केस बिखराई।—जायसी (शब्द०)। ५. गरी का गोला।

खोवा—संज्ञा पुं० [देश०] गच या पलस्तर पीटने की थापी।

खोभना—क्रि० स० [सं० क्षोभण] गड़ाना। धँसाना।

खोभरना¹—क्रि० अ० [हिं० खोभना] १. आड़ा पड़ना। २. बीच में पड़ना।

खोभरना²—क्रि० स० [हिं०] समथल न रहने देना। खोदना।

खोभराना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खुभराना'।

खोभार—संज्ञा पुं० [प्रा० खोभ+आर (प्रत्य०)] १. गड्ढा जिसमें कूड़ा करकट फेंका जाय। २. सुअरों को बंद करने की झोपड़ी। ३. कोई तंग स्थान या कोठरी।

खोम¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कौम] समूह। झुंड। उ०—सिवाजी की धाक, मिले खल कुल खाक बसे खलन के खेरन खत्रीसन के खोम हैं,।—भूषण (शब्द०)।

खोम²—संज्ञा पुं० [सं० क्षोम] किले का बुर्ज।—(डिं०)।

खोम³—संज्ञा पुं० [सं० क्षोम] ऐसा कार्य जो अहित कर हो।

खोय†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खू] आदत। बान। स्वभाव।

क्रि० प्र०—**पड़ना**।

खोया¹—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र या देश०] १. आँच पर चढ़ाकर इतना गाढ़ा किया हुआ दूध कि उसकी पिंडी बाँध सकें। मावा। खोवा। २. ईंट पाथने का गारा।

खोया²—क्रि० स० [हिं० खोना क्रिया का भूतकालिक रूप] गुम, गायब या बिगड़ा हुआ।

खोर¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर] १. बस्तियों की तंग गली। सँकरी गली। कूचा। २. नाँद, जिसमें चौपायों को चारा दिया जाता है।

खोर²—संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की जाति का एक ऊँचा सुंदर पेड़।

विशेष—यह सिंध के रेगिस्तानों में होता है। इसकी लकड़ी

पीलापन लिए सफेद, भारी और सख्त होती है और साफ करने पर खूब चिकनी हो जाती है। यह खेती के औजार बनाने के काम आती है। इसे खन, साहीकाँटा और बनरीठा भी कहते हैं।

खोर³ ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षालन, हिं० खोरना] नहाने की क्रिया। नहाना। स्नान।

खोरना†—क्रि० अ० [सं० क्षालन] स्नान करना। नहाना। उ०—व्रज बनिता रवि को कर जोरें। शीत भीत नहिं करत छहों ऋतु त्रिविध काल यमुना जल खोरें।—सूर (शब्द०)।

खोरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना] वह लकड़ी जिससे भड़भूँजे भाड़ झोंकते समय बाहर रह गए हुए ईंधन को भाड़ के अंदर करते हैं।

खोरा¹—संज्ञा पुं० [सं० खोलक, फा० आबखोरह् या खोरह्] [स्त्री० खोरिया] १. कटोरा। बेला। २. पानी पीने का बरतन। आबखोरा। गिलास।

खोरा² ⓤ†—वि० [सं० खोर या खोट] लँगड़ा। लूला। अंगभंग। उ० काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। तिय विशेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि।—तुलसी (शब्द०)।

खोराक†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुराक] [वि० खोराकी] १. भोजन सामग्री। २. खाने की मात्रा। जैसे,—उसकी खोराक बहुत है। ३. औषध की मात्रा जो एक बार सेवन की जाय। जैसे,—इतने में चार खोराक होगी।

खोराकी¹—वि० [हिं० खोराक+ई (प्रत्य०)] खूब खानेवाला। अधिक भोजन करनेवाला।

खोराकी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोराक] वह धन जो खोराक के लिये दिया जाय।

खोरि¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर] तंग गली। उ०—खेलत अवध खोरि, गोला भौंरा चकडोरि मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे।—तुलसी (शब्द०)।

खोरि²—संज्ञा स्त्री० [सं० खोट या खोर] १. ऐब। दोष। नुक्स। उ०—(क) कहौं पुकारि खोरि मोहिं नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) साँकरी गैल वा खोरि हमैं किन खोरि लगाय खिजैबो करो कोउ।—देव (शब्द०)।

क्रि०प्र०—लगाना।

२. बुराई। निंदा।

खोरि³—संज्ञा स्त्री० [हिं० खौर] दे० 'खौर' वा 'खौरि। उ०—तनु अनुहरत सुचंदन खोरी। श्यामल गौर मनोहर जोरी।—तुलसी (शब्द)।

खोरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोरा] १. छोटा कटोरा या बेलिया। छोटा आबखोरा या गिलास। पानी पीने का छोटा बरतन। २. छोटे चमकीले बुंदे जिन्हें स्त्रियाँ या लीलावाले शोभा के लिये मुँह पर चिपकाते हैं। ३. कुएँ की पैंढ़ी का वह सबसे बिचला भाग जो चरसा खींचते खींचते बैलों के पहुँचने पर कुएँ के मुँह पर आ जाता है।

खोल¹—वि० [सं०] लँगड़ा। विकलांग।

खोल²—संज्ञा पुं० [सं० √खुड़, खुल्] शिरस्त्राण। कूँड। खोद [को०]।

खोल³—संज्ञा पुं० [सं० खोल, शिरस्त्राण, तुल० फा० खोल= आवरण म्यान] १. ऊपर से चढ़ा हुआ ढकना। गिलाफ। उछाड़। आवरण। २. कीड़ों का ऊपरी चमड़ा जिसे समय समय पर वे बदला करते हैं। ३. ओढ़ने का मोटा कपड़ा। मोटी चादर।

खोलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोद। शिरस्त्राण। २. बाँबी। वल्मीक। ३. सुपारी का आवरण या छिलका। ४. कटाह। कड़ाही। डेगची [को०]।

खोलना—क्रि० स० [सं० खुड, खुल= भेदन] हिं० खुलना का सक० रूप] १. किसी वस्तु के मिले या जुड़े हुए भागों को एक दूसरे से इस प्रकार अलग करना कि उसके अंदर या उसके पार तक आना, जाना, टटोलना, देखना आदि हो सके। छिपाने या रोकनेवाली वस्तु को हटाना। अवरोध या आवरण का दूर करना। जैसे—किवाड़ खोलना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

२. ऐसी वस्तु को हटाना या इधर उधर करना जो किसी दूसरी चीज को छाए या घेरे हो। ३. दरार करना। छेद करना। शिगाफ करना। जैसे,—फोड़े का मुँह खोलना। ४. बाँधने या जोड़नेवाली वस्तु को अलग करना। बंधन तोड़ना। जैसे,—टाँका खोलना. गाँठ खोलना, बेड़ी खोलना। ५. किसी बँधी हुई वस्तु को मुक्त करना। जैसे,—धोती खोलना। ६. किसी क्रम को चलाना या जारी करना। जैसे,—तनखाह खोलना। ७. ऐसी वस्तुओं का तैयार करना जो दूर तक रेखा के रूप में चली गई हो और जिनपर किसी वस्तु का आना जाना हो। जैसे,—सड़क खोलना, नहर खोलना। ८. कोई ऐसा नया कार्य आरंभ करना जिसका लगाव सर्वसाधारणया बहुत से लोगों के साथ हों। जैसे,—कारखाना खोलना, पाठशाला खोलना, दूकान खोलना। ९. किसी कारखाने, दुकान, दफ्तर आदि का दैनिक कार्य आरंभ करना। जैसे,—वह नित्य बड़े तड़के दूकान खोलता है। १०. किसी ऐसी सवारी को चला देना, जिसपर बहुत आदमी एक साथ बैठ सकें। जैसे,—नाव खोलना। ११. किसी गुप्त या गूढ़ बात को प्रकट या स्पष्ट कर देना। जैसे,—आप के पूछते ही वे सब खोल देंगे।

संयो० क्रि०— डालना।—देना।

१२. किसी को अपने मन की बात कहने के लिये उद्यत करना। जैसे,—हमने उसे खोलना चाहा, पर वह नहीं खुला।

खोलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरकश [को०]।

खोलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की पनालीदार रुखानी, जिससे बढ़ई लकड़ी पर फूलपत्ती या बेलबूटा खोदते हैं।

खोली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० खोल] १. तकिए आदि के ऊपर चढ़ाने की थैली। गिलाफ। २. मोटी चादर।

खोली²†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोल] छोटी कोठरी।

खोवा—संज्ञा पुं० [सं० √क्षुदि पेषणे—पीसना] खोया। मावा।

खोशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खोशह्] १. गेहूँ या जो की बाल। २. गुच्छा। मंजरी। गुच्छ [को०]।

यौ०—खोशाची = (१) खेत में गिरे दाने बीननेवाला। उंछवृत्ति। सिला बीननेवाला। (२) लाभ उठानेवाला। खोशाचीनी= (१) सिला चुनना। उंछवृत्ति। (२) लाभ। प्राप्ति।

खोशीदा—वि० [फ़ा० खोशीदह्] सूखा। सुखाया हुआ [को०]।

खोसना†—क्रि० स० [देश०] छीनना। झटकना।

खोह—संज्ञा स्त्री० [सं० गोह?] १. गुहा। गुफा। कदरा। २. पहाड़ के बीच का गहरा गड्ढा। ३. दो पहाड़ों के बीच की तंग जगह।

खोही—संज्ञा स्त्री० [सं० खोलक] १. पत्तों की छतरी। उ०—सिरनि जटा मुकुट सुमन मजुल युत तैसियै लसति नव पल्लव खोही।—तुलसी (शब्द०) २. घोघी। खुइग्रा। ३. खेह। धूल।

खौं°१—संज्ञा स्त्री० [सं० खन्] १. खात। गड्ढा। २. अन्न संचित करने का गहरा गड्ढा। इसका मुँह ऊपर कुएँ का सा होता है।

खौं२(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, प्रा० खध] वृक्ष में वह स्थान जहाँ डाल से टहनी या टहनी से पत्ती निकलती है।

खौंचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पट+च?] साढ़े छह का पहाड़ा। जैसे, ढौंचा, पौंचा, खौंचा इत्यादि।

खौंचा२—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वान्चा] एक प्रकार का संदूक या थाली जिसमें मिठाई आदि खाने पीने की वस्तुएँ रखी जाती हैं।

खोट†--संज्ञा स्त्री० [हिं० खोटना] १.खोंटने की क्रिया या भाव। २. खोंटने या नोचने के कारण (शरीर आदि पर) पड़ा हुआ चिह्न। खरोट। उ०—तिय निय हिय जु लगी चलत पिय नखरेख खरौंट। सूखन देति न सरसई खोंटि खोंटि खय खोंट।—बिहारी (शब्द०)।

खौंड़ा†—संज्ञा पुं० [खन् या खात अथवा देश०] १. अनाज रखने का गड्ढा। खौं। २. गड़हा। गर्त।

खौंदना—क्रि० स० [हिं० खूदना] नष्टभ्रष्ट करना। एकदम बेकार कर देना। खूँदना। उ०—हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज, भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७४।

खौफ--संज्ञा पुं० [अ० खौफ] [वि० खौफनाक] डर। भय। भीति। दहशत।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—होना।

खौफनाक—वि० [फ़ा० खौफ़नाक] डरावना। भयानक। भीतिप्रद। दहशत उत्पन्न करनेवाला।

खौर—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षौर या क्षुर से हिं०] १.मस्तक पर लगे हुए चदन का आड़ा या धनुषाकार तिलक। चंदन का आड़ा टीका। त्रिपुंड।

विशेष—चंदन का मस्तक पर लेप करके उसपर उँगली से खरोंच कर चिह्न बनाते हैं।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. स्त्रियों का एक गहना जो मस्तक पर पहना जाता है। ३. मछली फँसाने का एक प्रकार का जाल।

खौरना—क्रि० स० [हिं० खौर+ना (प्रत्य०)] १. खौर लगाना। तिलक करना। चंदन का टीका लगाना। †२.उलट पलट देना। एक में मिला देना। बेतरतीब करना।

खौरहा—वि० [हिं० खौरा+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० खौरही] १. जिसके सिर के बाल झड़ गए हों २. जिसे खौरा रोग हुआ हो (पशु)। जिसके शरीर में खुजली का रोग हो (पशु)।

खौरा१—संज्ञा पुं० [सं० क्षौर, फ़ा० वालखोरह्] [वि० खौरहा] एक प्रकार की बुरी खुजली जिसमें चमड़ा बिलकुल रूखा हो जाता है और बाल प्रायः झड़ जाते हैं। यह रोग कुत्तों और बिल्लियों आदि को भी होता है।

खौरा२--वि० जिसे खौरा रोग हुआ हो।

खौरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खौर'। उ०—कंठ मनि माल कलेश्वर चंदन खौरि सुहाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६१।

खौरी१†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोपड़ी] १. खोपड़ी] २. (पु) दे० 'खौरि'।

खौरी२—संज्ञा स्त्री० [देश०] राख—(सोनारों की बोली)।

मुहा०—खौरी करना=राख में मिला देना। राख के रूप में कर देना।

खौरी३(पु)—वि० [हिं० खोरि] दोषयुक्त। दुष्ट। पीड़क।

खौरु—संज्ञा पुं० [देश०] बैल या साँड़ की डकार या बोली।

खौलना—क्रि० अ० [सं० क्ष्वेलन] (किसी तरल पदार्थ का) उबलना। अत्यत गरम होना। जोश खाना।

मुहा०—मिजाज या दिमाग खौलना=बहुत अधिक क्रोध या आवेश आना।

संयो०—क्रि० जाना।

खौलाना--क्रि० स० [हिं० खौलना] गरम करना। उबालना

खौहड़†—वि० [हिं०] दे० 'खौहा'।

खौहा—वि० [हिं० खाना > खाउ+हा (प्रत्य०)] १. बहुत अधिक खानेवाला। जिसकी खुराक बहुत ज्यादा हो। २. जिसको खाने का लालच बहुत अधिक हो। ३. जो दूसरे की कमाई पर अपना जीवन व्यतीत करे। दूसरे की कमाई खानेवाला।

ख्यात१—वि० [सं०] १. प्रसिद्ध। विदित। मसहूर। २.कथित। कहा हुआ। वर्णित।

ख्यात†(पु)--संज्ञा पुं० [सं० ख्याति] वर्णन। कथन। कथा। आख्यान। जैसे,—मुहणोत नेणसी री ख्यात।

ख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रसिद्धि। शोहरत। नामावरी। २. नाम। शीर्षक। अभिधान (को०)। ३. वर्णन। कथन (को०)। ४. प्रशंसा। प्रशस्ति (को०)। ५. दर्शन मे उपर्युक्त पद द्वारा वस्तुओं की विवेचन की शक्ति। ज्ञान (को०)।

क्रि० प्र०—फैलाना।—होना।

ख्यापक—वि० [सं०] ख्यापन करनेवाला। व्यक्त करनेवाला [को०]।

ख्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विख्यात करना। प्रसिद्ध करना। २. व्यक्त करना। खोलना। उद्घाटित करना। ३.अपराध स्वीकार करना। ४.घोषणा करना [को०]।

ख्याल[1]—संज्ञा पुं० [अ० खयाल] [वि० ख्याली] १. ध्यान ।

मुहा०—ख्याल करना=सोचना । याद करना । ख्याल पड़ना=ध्यान में आना । याद आना । ख्याल पर चढ़ना=दे० 'ख्याल पड़ना' । ख्याल में आना=समझ में आना । ख्याल में रखना=न 'ख्याल रखना । देखते भालते रहना । याद रखना । स्मरण रखना । ख्याल रहना=याद रहना । ख्याल से उतरना या उतर जाना=भूल जाना । विस्मृत हो जाना । किसी के ख्याल पड़ना=किसी के पीछे पड़ना । किसी को दिक करने पर उतारू होना । उ०—राधा मन मैं यहै विचारति । ये सब मेरे ख्याल परी हैं अबहीं बातन लै निरुआरति ।—सूर (शब्द०) ।

२. अनुमान । अंदाज । अटकल । जैसे,—हमारा ख्याल है कि वह यहाँ नहीं आवेगा ।

मुहा०—ख्याल बाँधना=अनुमान लगाना । कल्पना करना ।

३. विचार । भाव । संमति । जैसे,—उनके बारे में आपका क्या ख्याल है ।

४. आदर । लिहाज । अदब ।

मुहा०—ख्याल करना=रिआयत करना । ख्याल में लाना=(१) रिआयत करना । (२) महत्वपूर्ण समझना । ख्याल रखना=(१) लिहाज रखना । (२) कृपादृष्टि रखना ।

५. एक विशेष प्रकार का गाना जिसमें केवल एक स्थायी पद और एक अंतरा होता है तथा अधिकतर शृंगार रस का वर्णन रहता है । यह अनेक राग रागनियों का होता है और तिलवाड़ा तालपर गाया बजाया जाता है । जैसे,—ख्याल केदारा, ख्याल देश, ख्याल जैतश्री, ख्याल सिंदूरिया आदि । ६. लावनी गाने का एक ढंग ।

ख्याल[2]—संज्ञा पुं० [हिं० खेल] खेल । क्रीड़ा । हँसी । दिल्लगी । उ०—(क) यह सुनि रुकमिनि भई बेहाल । जान परयो नहि हरि को ख्याल ।—सूर (शब्द०) । (ख) कंत बीस लोचन बिलोकिये कुमंत फल ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपड़ी ।—तुलसी (शब्द०) ।

ख्यालिया—वि० [हिं० ख्याल+इया (प्रत्य०)] ख्याल गानेवाला । वह जो ख्याल गाता हो ।

ख्याली[1]—वि० [हिं० ख्याल] १. कल्पित । फर्जी । अनुमित ।

मुहा०—ख्याली पुलाव पकाना=असंभव बातें सोचना । मनोराज्य करना । कल्पित बातें सोचना ।

२. खब्ती । सनकी । वहमी ।

ख्याली[2]—वि० [हिं० खेल] किसी प्रकार का खेल या कौतुक करनेवाला । उ०—ख्याली कपाली है ख्याली चहूँ दिसि भाँग के टाटिन के परदा है ।—तुलसी (शब्द०) ।

ख्रिष्टान—संज्ञा पुं० [हिं० ख्रीष्ट] ईसाई । क्रिस्तान ।

ख्रिष्टीय—वि० [अ० क्राइस्ट] १. ईसाई । २. ईसा संबंधी । ईसाई धर्म संबंधी ।

ख्रीष्ट—संज्ञा पुं० [अं० क्राइस्ट] [वि० ख्रिष्टीय] हजरत ईसामसीह ।

यौ०—ख्रीष्टगीता=बाइबिल ।

ख्वाँ[1]—प्रत्य० [फ़ा० ख्वाँ] पढ़नेवाला । जैसे, गजलख्वाँ ।

ख्वाँ[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वान] ख्वान का लघु रूप । दे० 'ख्वान' ।

ख्वाँदा—वि० [फ़ा० ख्वाँदह्] १. पढ़ालिखा । शिक्षित । २. निमंत्रित ।

ख्वाजा—संज्ञा पुं० [तु० ख्वाजह्] १. मालिक । स्वामी । पति । २ सरदार । ३. कोई प्रसिद्ध पुरुष । ४. बड़ा व्यापारी । ५. ऊँचे दर्जे का मुसलमान फकीर । ६. रनिवास का नपुंसक भृत्य । ख्वाजासरा । खोजा ।

ख्वान—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वान] थाल । परात ।

यौ०—ख्वानपोश=वह कपड़ा जिससे पकवान, मिठाई आदि से भरे ख्वान को ढक देते हैं ।

ख्वानचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वानचह्] एक बड़ी थाली (या शीशेदार संदूक) जिसमें मिठाई, पकवान आदि बेचने के लिये रखते हैं । दे० 'खोनचा' ।

ख्वाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० खवाना] खिलाना । उ०—छल कियो पांडवनि कौरव कपट पासा ढरन । खवाय विष, गृह लाय दीन्हौं, तउ न पाए जरन ।—सूर०, १।२०२ ।

ख्वानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख्वानी] पढ़ना । सुनाना ।

विशेष—इसका व्यवहार समास के अंत में ही होता है; जैसे, गजलख्वानी ।

ख्वाब संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वाब] १. सोने की अवस्था । नींद । २.स्वप्न ।

यौ०—ख्वाबगाह=सोने का घर । शयनागार ।

मुहा०—ख्वाब होना या हो जाना=(१) स्वप्नदोष होना । स्वप्न में वीर्यपात हो जाना । (२) कभी प्राप्त न होना ।

ख्वार—वि० [फ़ा० ख्वार] १. बर्बाद । खराब । नष्टभ्रष्ट । सत्यानाश । २. अनादृत । तिरस्कृत । बेइज्जत । अपमानित ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ख्वारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख्वारी] १.बर्बादी । खराबी । नष्टता । भ्रष्टता । २. अनादर । तिरस्कार । बेइज्जती । अपमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ख्वास्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख्वास्त] चाह । इच्छा ।

ख्वास्तगार—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वास्तगार] [भाव० ख्वास्तगारी] चाहनेवाला । इच्छा करनेवाला ।

ख्वास्ता—वि० [फ़ा० ख्वास्तह्] चाहा हुआ । इच्छित । कांक्षित । वांछित ।

ख्वाह—अव्य० [फ़ा० ख्वाह] या । अथवा । या तो ।

यौ०—ख्वाह म ख्वाह=(१) चाहे कोई चाहे या न चाहे । अपनी टेक से । जबरदस्ती । (२) जरूर । अवश्य ।

ख्वाहाँ—वि० [फ़ा० ख्वाहाँ] १. इच्छा रखनेवाला । इच्छुक । चाहनेवाला । अनुरागी । प्रेमी ।

ख्वाहिर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख्वाहिर] बहन । भगिनी ।

यौ०—ख्वाहिरजादा—भानेज । भानजा ।

ख्वाहिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख्वाहिश] [वि० ख्वाहिशमंद] इच्छा । अभिलाषा । आकांक्षा ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

ख्वाहिशमंद—वि०—[फ़ा० ख्वाहिशमंद] ख्वाहिश रखनेवाला । इच्छुक । आकांक्षी ।

ख्वैंतर—संज्ञा पुं० [देश०] गोफना । ढेलवाँस ।—(लश०) ।

ग

ग—व्यंजन के स्पर्शत्रिक में कवर्ग का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारणस्थान कंठ है और शिक्षा में यह 'क' का गंभीर संस्पृष्ट रूप माना गया है। इसका प्रयत्न अघोष अल्पप्राण है।

गंग¹—संज्ञा पुं० [गङ्गा] १. एक मात्रिक छद जिसके प्रत्येक चरण में नौ मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु होना आवश्यक है। जैसे,—रामा भजो रे। कामा तजो रे। नित याहि कीजे। सब छाँड़ि दीजे। २. एक कवि का नाम जो अकबर के समय में था।

गंग²—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] गंगा नदी। उ०—करं रक्खि तप्पं दिनं गंग न्हावै।—पृ० रा०, २१।१६८।

विशेष—समास में समस्त पद के आदि में गंगा का कभी कभी गंग हो जाता है। जैसे,—गंगदत्त, गंगदास गंगजमुन, गंगवचन, गंगजल इत्यादि।

मुहा०—गंगगति लेना=गंगालाभ करना। मृत्यु होना। उ०—मरै जो चलै गंगगति लेई। तेहि दिन तहाँ घरी को देई।—जायसी ग्रं०, पृ० ५३।

गंग³—संज्ञा स्त्री० [फ़ा] गंगा नदी [को०]।

यौ०—गंगबरार। गंगशिकस्त।

गंगई—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० गें गें] मैना की जाति की एक चिड़िया। गलगलिया।

विशेष—यह डेढ़ दो बालिश्त लंबी और गहरे भूरे रंग की होती है। यह भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों मेंहोती है और खेतों, मैदानों और जंगलों से छोटे छोटे झुंडों में फिरती है। इसके अंडा देने का कोई नियत समय नहीं है। यह झाड़ से घोंसला बनाती हैं और चार अंडे देती है। यह बहुत बोलती है।

गंगका—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गका] गंगा नदी [को०]।

गंगकुरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा+फूल] एक प्रकार की हल्दी जो कटक में होती है। इसकी गाँठें लंबी और बड़ी होती हैं।

गंगख(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गका] गंगा। मंदाकिनी। उ०—करं रक्खितप्पं दिनं गंग न्हावै। तहाँ उज्जलं गंगखं नीर धावै।— पृ० रा०, २१।१३८।

गंगतिरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंग+तीर] एक पौधा जो सजल भूमि में होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बड़ी और नोनिया की पत्तियों के समान सिरे पर नुकीली होती है। इसमें पीपल के समान बाल निकलती हैं। वैद्यक में यह शीतल, रूखी, कड़ुई, नेत्र और हृदय को हितकारी, शुक्रजनक, मलरोधक तथा दाह और व्रण को दूर करनेवाली मानी जाती हैं। इसे पनिसिंगा और जलपीपल भी कहते हैं।

गंगदत्त-संज्ञा पुं० [सं० गङ्गदत्त] मेंढकों के एक राजा का प्राचीन नाम।

विशेष—इसने अपने दायादों को विनष्ट करने के लिये प्रियदर्शन नामक साँप को निमंत्रित किया। प्रियदर्शन ने दायादों को समाप्त कर इसके कुल को भी उच्छिन्न कर दिया। तब गंगदत्त अपनी जान लेकर बाहर निकल भागा। पंचतंत्र में यह कथा विस्तार से लिखित है।

गंगधर—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाधर] महादेव। शंकर। उ०—गिरिवरधर अरु गंगधर चरन सरन सिर नाई।—हम्मीर०, पृ० १।

गंगधार(पु)-संज्ञा स्त्री० [हिं० गंगा+धार] गंगा की धारा या प्रवाह। उ०—संभु जटाजूट पर चंद की छूटी है छटा चंद की छटान पै छटा हैं गंगधार की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५३।

गंगबरार—संज्ञा पुं० [फा० अथवा हिं० गंगा+फ़ा० बरार=बाहर या ऊपर लाया हुआ] वह जमीन जो गंगा या किसी और नदी की धारा या बाढ़ के हटने से निकल आती है और जिसपर उस नदी के द्वारा लाई हुई मिट्टी जमी रहती है।

गंगजा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कंद। शलजम।

गंगशिकस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० या हिं० गंगा+फ़ा० शिकस्त=तोड़ा हुआ] वह जमीन जिसे कोई नदी काट ले गई हो।

गंगसुत—संज्ञा पुं० [हिं० गंग+सुत] दे० 'गंगासुत'। उ०—मारचो करण गंगसुत द्रोना।—कबीर सा०, पृ० ५०।

गंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] भारतवर्ष की एक प्रधान नदी जो हिमालय से निकलकर १५६० मील पूर्व को बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

विशेष—इसका जल अत्यंत स्वच्छ और पवित्र होता है और इसमें कभी कीड़े नहीं पड़ते। हिंदू इस नदी को परम पवित्र मानते हैं और इसमें स्नान करना पुण्य समझते हैं। पुराणों में इसे हिमालयकी पुत्री माना है और इसकी माता का नाम मनोरमा लिखा है, जो सुमेर की कन्या थी। कहते हैं, गंगा पहले स्वर्ग में थी। जब सगर के साठ हजार पुत्रों को कपिल जी ने भस्म कर डाला, तब उनके उद्धार के लिये भागीरथ गंगा जी को स्वर्ग से पृथिवी पर लाए। गंगा जब स्वर्ग से गिरी थीं, तब उन्हें शिव जी ने अपनीकी जटा में धारण किया था। इसी से शिव जी की जटा में गंगा मानी जाती हैं। पृथिवी पर गिरने पर गंगा भगीरथके साथ गंगासागर को, जहाँ कपिल जी ने सगर के पुत्रों को भस्म किया था, जा रही थीं कि इसी बीच में जह्नु ऋषि ने उन्हें पी लिया और भगीरथ के बहुत प्रार्थना करने पर उन्हें अपने जानु से निकाला। इसी से गंगा का नाम जह्नुसुता आदि पड़ा। पुराणानुसार गंगा की तीन धाराएँ हैं—एक स्वर्ग में जिसे 'आकाशगंगा' कहते हैं, दूसरी पृथिवी पर और तीसरी पाताल में। यह नदी गंगोत्तरी की पहाड़ी से जो १३, ८०० फुट ऊँची है, वर्फ के पिघलने से निकलती है और मंदाकिनी तथा अलकनंदा से मिलकर हरि-

द्वार के पास पथरीले मैदान में उतरती है। यमुना, गोमती, घाघरा, बानगंगा, गंडक आदि नदियाँ इसमें गिरती हैं। हिंदुओं के प्रधान तीर्थ काशी, प्रयाग आदि इसी के किनारे हैं। (कभी कभी साधारणतः नदी के लिये भी इस पद का प्रयोग होता है।

यौ०—गंगाधर। गंगाजल। गंगापुत्र।

मुहा० गंगा उठाना=गंगाजल उठाकर शपथ खाना। गंगा की शपथ करना। गंगा और मदार का साथ होना=दो असम वस्तुओं या प्रवृत्तियों का साथ साथ होना। उ० आपका हमारा मेल जैसे गंगा और मदार का साथ। -फिसाना०, भा० ३, पृ० ४। गंगा पार करना=देश से निकालना। गंगा नहाना=कृतार्थ होना। छुट्टी पाना। जैसे, -तुम यहाँ से जाओ, तो हम गंगा नहाएँ। गंगा दुहाई=गंगा की शपथ। गंगालाभ होना=देहावसान होना। मृत्यु प्राप्त करना।

पर्या०— विष्णुपदी। जाह्नवी। भागीरथी। त्रिपथगा। सुरनिम्नगा। त्रिस्रोता। स्वरापगा। सुरापगा। अलकनंदा। मंदाकिनी। सुरनदी। अब्जगा।

गंगाका—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाका] गंगा।

गंगाक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा और गंगा के दोनों तटों से दो दो कोस पर्यंत भूभाग।

विशेष -इसके अंदर मरनेवाले का मोक्ष हो जाता है।

गंगागति संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गागति] मोक्ष। मुक्ति।

गंगाचिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाचिल्ली] एक जलपक्षी जिसका सिर काले रंग का होता है।

पर्या०—देवटुटी। विश्वका। जलकुक्कुटी।

गंगाजमुनी—वि० [हिं० गंगा+जमुना] १. मिलाजुला। संकर। दोरंगा। २. सोने चाँदी, पीतल ताँबे आदि दो धातुओं का बना हुआ। सुनहले रुपहले तारों का बना हुआ। जिसपर सोने चाँदी दोनों का काम हो। ३. काला उजला। स्याह सफेद। अबलक।

गंगाजमुनी²—संज्ञा स्त्री० १. कान का एक गहना। २. वह दाल जिसमें अरहर और उर्द की दाल मिली हो। केवटी दाल। ३. जरतारी का ऐसा काम जिसमें सुनहले और रुपहले दोनों रंग के तार हों। ४. अफीम मिली हुई भाँग। अफीम से युक्त भाँग की सरदाई (बनारस)।

गंगाजल संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाजल] १. गंगा का पानी। २. एक कपड़े का नाम जो बारीक और सफेद रंग का होता है। पश्चिम में लोग इसकी पगड़ी बाँधते हैं। उ०—गंगाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ। शिव सिर गंगाजल किधौं चंद्र चंद्रिका साथ।—केशव (शब्द०)।

गंगाजली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाजल+हिं० ई] १. काँच या धातु की बनी हुई सुराही या शीशी जिसमें यात्री गंगाजल भरकर ले जाते हैं। उ०—बद्रीनाथ गंगोतरी की यात्रा में रालों ने रामेश्वर के लिये गंगाजली भरी।— किन्नर०, पृ० १००।

मुहा०—गंगाजली उठाना=गंगाजली हाथ में लेकर शपथ खाना। गंगा की कसम खाना।

२. धातु की की सुराही जिसमें पीने के लिये पानी रखा जाता है। ३. लोटे जैसा एक पात्र जिसमें कड़ीदार ढक्कन रहता है।

गंगाजली²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गेहूँ जो भूरे रंग का और कड़ा होता है।

गंगाजाल—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा+जाल] बंगाल के मछवाहों का जाल जो रीहा घास से बनता है।

गंगाटेय —संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाटेय] एक प्रकार का मत्स्य। झींगा मछली (को०)।

गंगादत्त —संज्ञा पुं० [सं० गङ्गादत्त] भीष्म पितामह (को०)।

पर्या०—गंगाजल। गंगापुत्र। गंगासुत। गंगेय।

गङ्गाद्वार—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाद्वार] हरिद्वार।

गंगाधर संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाधर] १. शिव। महादेव। २. समुद्र। ३. एक औषध का नाम।

विशेष—यह नागरमोथा, मोचरस, आदि के योग से बनती है और संग्रहणी रोग में दी जाती है। इसे 'गंगाधर रस' भी कहते हैं।

४. चौबीस अक्षरों का एक वर्णवृत्त।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में आठ रगण होते हैं। इसे गंगोदक भी कहते हैं। दे० 'गंगोदक'।

गंगाधार—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाधार] समुद्र (को०)।

गंगानहान—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा+स्नान] १. किसी पर्व पर गंगास्नान का मेला। २. किसी तीर्थ में स्नान करना। उ०—कलकी में गंगानहान की बड़ी उमंगें।—अपरा, पृ० १९६।

क्रि० स० -करना।—होना।

गंगापत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गापत्री] एक वृक्ष का नाम। सुगंधा। गंधपत्रिका (को०)।

गंगापथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।— (डिं०)

गंगापाट— संज्ञा पुं० [हिं० गंगा+पाट] एक भौंरी जो घोड़े के के नीचे होती है।

विशेष—यह भौंरी यदि तंग से बाहर हो; तो शुभ मानी जाती है; अन्यथा तंग के नीचे पड़ने से अशुभ होती है।

गंगापार —संज्ञा पुं० [सं०] गंगा का दूसरा किनारा या तीर।

गंगापुजैयां —संज्ञा स्त्री० [सं० गंगा+हिं० पुजैया] दे० 'गंगापूजा'।

गंगापुत्तर —संज्ञा पुं० [सं० गङ्गापुत्र] दे० 'गंगापुत्र'। उ०—घाट जाओ तो गंगापुत्तर नोचैं दै गलफाँसी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

गंगापुत्र—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गापुत्र] १. भीष्म। २. कार्तिकेय (को०)। ३. एक प्रकार के ब्राह्मण जो गंगा आदि नदियों के किनारे पर रहते हैं और घाटों पर दान लेते हैं। ४. ब्रह्मवैवर्त के अनुसार एक वर्णसंकर जाति।

विशेष—यह जाति लेट पिता और तीवरी माता से पैदा कही गई है। यथा—'लेटात्तीवरकन्यायां गंगातीरे च शौनक। बभूव सद्यो यो बालो गंगापुत्रः प्रकीर्तितः।

गंगापूजा—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गापूजा] विवाह के बाद की एक रीति। कंगन छोड़ना। बरनवार।

विशेष—इसमें गाँव और कुटुंब की स्त्रियाँ वर को साथ लेकर गाती बजाती गाँव के बाहर नदी या तालाब पर जाती हैं और वहाँ गाँव के देवता आदि की पूजा करके घर लौट आती हैं। इसी दिन वर या वधू के हाथ के कंगन खोले जाते हैं। इसी दिन विवाह का कृत्य समाप्त होता है। इस रीति को 'कंगन छोड़ना' या 'बरनवार' भी कहते हैं।

गंगायात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गायात्रा] १. मरणासन्न मनुष्य का गंगा के तट पर मरने के लिये गमन। २. मृत्यु।

गंगाराम—संज्ञा पुं० [हिं० गंगा + राम] तोते का प्यार का नाम।

गंगाल—संज्ञा पुं० [सं० गंगा + आलय] पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

गंगालहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गालहरी] गंगा से संबंधित स्तुतिपरक पद्यों का संग्रह। जैसे,—पंडितराज जगन्नाथ, पृथ्वीराज राठौर, और पद्माकर आदि द्वारा रचित इस प्रकार के छंदों का संकलन।

गंगाला—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा + आलय] वह भूमि जहाँ तक गंगा का चढ़ाव पहुँचता है। कछार।

गंगालाभ संज्ञा पुं० [सं० गङ्गालाभ] गंगा की प्राप्ति। मृत्यु।

मुहा०- गंगालाभ होना (१) गंगा के किनारे पर मरना। मुक्त होना। (२) डूबकर मरना। (३) मरना।

गंगावतरण—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गावतरण] स्वर्ग से गंगा का पृथ्वी पर आना (को०)।

गंगावतार—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गावतार] दे० 'गंगावतरण'।

गंगावासी—वि० [सं० गङ्गावासिन] गंगा के किनारे रहनेवाला।

गंगासप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गासप्तमी] वैशाख महीने की शुक्ल पक्ष की सप्तमी (को०)।

गंगासागर—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गासागर] १. एक तीर्थ जो उस स्थान पर है जहाँ गंगा समुद्र में गिरती हैं।

विशेष—कहते हैं, यहाँ कपिल मुनि का आश्रम था और यहीं सगर के पुत्रों को उन्होंने भस्म किया था। यह स्थान कलकत्ते से दक्षिणपूर्व सुंदरवन में है, जहाँ मकर की संक्रांति के दिन बड़ा मेला लगता है।

२. मोटे कपड़े की छपी हुई जनानी धोती जो १७-१८ हाथ लंबी होती है। ३. एक प्रकार की बड़ी टोंटीदार झारी जो हाथ धुलाने के काम आती है।

गंगासुत—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गासुत] १. कार्तिकेय। २. भीष्म (को०)।

गंगासूनु—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गासूनु] दे० 'गंगासुत'।

गंगिका संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गिका] गंगा।

गंगेऊ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गाङ्गेय, गङ्गेय] भीष्म। उ० तुम ही द्रौन और गंगेऊ। तुम लेखौं जैसे सहदेऊ। जायसी (शब्द०)।

गंगेय—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गेय] गंगा के पुत्र भीष्म पितामह।

गंगेश—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गेश] शिव। महादेव।

गंगोझ(पु) संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोद] दे० 'गंगोदक'। उ०—तुलसी रामहि परिहरे निपट हानि सुनु ओझ। सुरसरि गत सोई सलिल, सुरा सरिस गंगोझ।—तुलसी ग्रं, पृ० ९१।

गंगोतरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंगोत्तरी] दे० 'गंगोत्तरी'। उ०—बद्रीनाथ गंगोतरी की यात्रा में रालाँ ने रामेश्वर के लिये गंगाजली भरी।—किन्नर०, पृ० १००।

गंगोत्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गावतार] गढ़वाल में हिमालय पर्वत पर एक स्थान जहाँ गंगा ऊपर से गिरती है।

विशेष—यह हिंदुओं का एक प्रधान तीर्थ है और यहाँ गंगादेवी का एक मंदिर बना हुआ है।

गंगोद संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा + उद = जल] दे० 'गंगोदक'। उ०—धन्य नदी नद स्रोत, विमल गंगोद गोत जल।—काश्मीर०, पृ० १।

गंगोदक—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोदक] १. गंगाजल। २. चौबीस अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें आठ रगण होते हैं।

विशेष—इसे गंगाधर, खंजन आदि भी कहते हैं। यह यथार्थ में स्रग्विणी छंद का दूना है। जैसे,—जन्म बीता सबै, चेत मीता अबै, कीजिए का तबै, काल के आन कै। मुंडमाला गरै, सीस गंगा धरै, आठ यामै हरे, ध्याइ लै गान कै।

गंगोदिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोदक] दे० 'गंगोदक'। उ०—एक घट माँहि पुनि गंगोदिक राख्यो आनि।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५९४।

गंगोद्भेद—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोद्भेद] जहाँ से गंगा नदी निकलती है। गंगा का उद्गम (को०)।

गंगोला—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोल] गोमेदक नामक मणि। उ०—गंधक गंजाफल गंगोला। गोपीचंदन लुटेउ अतोला।—सूदन (शब्द०)।

गंगौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गङ्गा + मिट्टी] गंगा के किनारे की बालू या मिट्टी।

गंगौलिया—संज्ञा पुं० [हिं० गंगाल] एक प्रकार का खट्टा नीबू जिसका छिलका दानेदार होता है।

गंज[1]—संज्ञा पुं० [सं० कञ्ज या खञ्ज] १. एक रोग का नाम जिसमें सिर के बाल उड़ जाते हैं और फिर नहीं जमते। चाई। चँदलाई। खल्वाट। बुर्का। २. सिर का एक रोग जिसमें सिर में छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती रहती हैं और जल्दी अच्छी नहीं होतीं। बालखोरा।

गंज[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०, सं० गञ्ज] १. खजाना। कोष। २. ढेर। अंबार। राशि। अटाला।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. समूह। झुंड। उ०—कै निदरहु कै आदरहु सिंहहिं स्वान सियार। हरष विषाद न केसरिहि कुंजर गंजनिहार।—तुलसी (शब्द०)। ४. वह स्थान जहाँ अन्न आदि रखा जाय। गल्लाखाना अंबारखाना। कोठी। भंडार। ५. गल्ले की मंडी। गोला। हाट। बाजार।

मुहा०—गंज डालना = बाजार लगाना। मंडी आबाद करना।

६. वह आबादी जिसमें बनिए बसाए जाते हैं और बाजार लगता है। जैसे,—पहाड़गंज, रायगंज। ७. मद्यपात्र ८. मदिरालय। कलवरिया। ९. वह चीज जिसमें बहुत सी काम की चीजें एक

साथ एकत्र हों। जैसे;—एक बरतन जो गगरे या बाल्टी के आकार का होता है और जिसमें रसोई बनाने के बहुत से बरतन होते हैं, गंज कहलाता है। इसी प्रकार वह चाकू जिसमें चाकू कैंची मोचने आदि बहुत सी चीजें होती हैं, गंज कहलाता है।

यौ०—गंजगुठारा, गंजगुदारा = दे० 'गंजगोला'। गंजगोला। गंजचाकू।

गंज[3]—संज्ञा पुं० [सं० गञ्ज] १. अवज्ञा। तिरस्कार। २. गोशाला। गोठ [को०]।

गंज[4]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक मोटी लता जिसमें नीचे की ओर झुकी हुई टहनियाँ निकलती हैं,

विशेष—इसकी पत्तियाँ सींकों में लगती हैं और चार से आठ इंच तक लंबी, सिरे की ओर चौड़ी, दलदार और चिकनी होती हैं, इसमें पाँच सात इंच लंबी, एक इंच मोटी फलियाँ लगती हैं, जिनपर रोईं होती हैं। टहनियों से रेशा निकलता है और पत्तियाँ चौपायों को खिलाई जाती हैं। यह लता जंगल के पेड़ों को बहुत हानि पहुँचाती है और देहरादून से लेकर गोरखपुर और बुंदेलखंड तक पाई जाती है। इसे गोंज भी कहते हैं।

गंजगोला—संज्ञा पुं० [हिं० गंज + गोला] तोप का वह गोला जिसके अंदर बहुत सी छोटी छोटी गोलिया भरी रहती हैं। दे० 'किरिच' का गोला'।—(लश०)।

गंजचाकू—संज्ञा पुं० [हिं० गंज + फ़ा चाकू] वह चाकू जिसमें फल के साथ ही सरौता, मोचना आदि लगा हो।

गंजड़—वि० [हिं० गाँजा] दे० 'गँजेड़ी'। उ०—लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे वे विसवासी।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ३३३।

गंजन[1]—संज्ञा पुं० [सं० गञ्जन] १. अवज्ञा। तिरस्कार। उ०—(क) रस सिंगार मंजन किये, कंजन भंजन दैन। अंजन रंजन हू बिना खंजन गंजन नैन।—बिहारी (शब्द०)। (ख) काली विष गंजन दह आये।—सूर (शब्द०)। २. हरा देना। ३. संगीत में अष्टताल के आठ भेदों में से एक। ३. कष्ट। तकलीफ।—(क) जेहि मिलि बिछुरनि औ तपनि अंत होइ जो नित। तेहि मिलि गंजन को सहै नरु बिनु मिलै निचित।—जायसी (शब्द०)। (ख) पुण्यात्मा सुख से, वो पापी सब नाना गंजन से जाते हैं।—सदल मिश्र (शब्द०)। ४. नीचा दिखाना। ५. नाश।

गंजन[2]—वि० १. अवज्ञा करनेवाला। २. हरा देनेवाला। ३. कष्ट या दुःख देनेवाला। ४. नीचा दिखानेवाला। ५. नाशक। उ०—जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन विपति वरूथ।—मानस, १।१८६।

गंजना—क्रि० स० [सं० गञ्जन] १. अवज्ञा करना। निरादर करना। २. चूर चूर करना। नाश करना। उ०—राम कामअरि कर धनु भंजा। भृगुपति सहित नृपन मद गंजा।—विश्राम (शब्द०)।

गंजनी—संज्ञा स्त्री० [देश० ?]। एक घास जो सुगंध बनाने के काम में आती है। इसकी महक नींबू से मिलती जुलती होती है।

गंजफा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गंजफ़ह्] दे० 'गंजीफा'।

गंजबख्श—वि० [फ़ा० गंजबख़्श] खजाना लुटा देनेवाला। बहुत बड़ा दानी [को०]।

गंजा[1]—संज्ञा पुं० [सं० खञ्ज या कञ्ज] गंज रोग। वि० दे० 'गंज'।

गंजा[2]—वि० [वि० स्त्री० गंजी] जिसके गंज रोग हो गया हो। जिसके सिर के बाल झड़ गए हों।

गंजा[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० गञ्जा] १. पर्णकुटी। झोपड़ी। २. मदिरालय। शराबखाना। ३. मद्य पीने का पात्र। ४. रत्न की खान [को०]।

गंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गञ्जिका] शराबखाना। मदिरालय [को०]।

गंजित—वि० [सं० गञ्जित] १. अपमानित। तिरस्कृत। २. कष्टयुक्त। दुखी। ३. नष्ट [को०]।

गंजी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंज] १. ढेर। समूह। गाँज। जैसे,—घास की गंजी, अन्न की गंजी।† २. शकरकंद। कंदा।

गंजी[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० गुएरनेसी = एक टापू] बुनी हुई छोटी कुरती या बंडी जो बदन में चिपकी रहती है। बनियायन।

गंजी[3]—संज्ञा पुं० [हिं० गाँजा] दे० 'गँजेड़ी'।

गंजीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० गंजीनह्] कोष। खजाना [को०]।

गंजीफा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गंजीफ़ह्] एक खेल जो आठ रंग के ९६ पत्तों से खेला जाता है।

विशेष—इसके पत्तों के आकार गोल होते हैं और रंग लाल। ये पत्ते कड़े होते हैं और फेंकने से मुड़ते नहीं हैं। रंगों के नाम चंग, बरात, किमास, शमसेर आदि हैं। प्रत्येक रंग के १२, ११ पत्ते होते हैं। इस खेल को तीन आदमी खेलते हैं।

गंटम—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ ?] लोहे की कलम जिससे ताड़पत्र पर लिखते थे।

गंठ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थि प्रा० गंठि] गाँठ। उ०—कर डेरा पण धारियो, जमण तणै उपकंठ। उवर तणी इंद्रसिंघ सू, साह प्रकासी गंठ।—रघु० रू०, पृ० २७।

गंठिय(पु)—वि० [सं० ग्रथित प्रा० गंठिय] १. बाँधा हुआ। २. गूँथा हुआ। ३. गाँठवाला।

गंठी†—संज्ञा स्त्री० [वि०] दे० 'गाँठ'।

गंड—संज्ञा पुं० [सं० गण्ड] १. कपोल। गाल। २. कनपटी। ३. गाल से कनपटी तक का भाग।

यौ०—गंडदेश। गंडपिंड। गंडप्रदेश। गंडमंडल। गंडस्थल। गंडस्थली = कनपटी। गाल।

४. ज्योतिष के अनुसार ज्येष्ठा, श्लेष्मा और रेवती के अंत के पाँच दंड और मूल, मघा तथा अश्विनी के आदि के तीन दंड।

विशेष—इसमें उत्पन्न होनेवाले लड़के को दूषित मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि गंड में उत्पन्न लड़के का मुँह पिता को नहीं देखना चाहिए। दिन में ज्येष्ठा और मूल का गंड, रात में श्लेषा और मघा का गंड तथा सायंकाल, प्रातःकाल

रेवती और अश्विनी का गंड अधिक दोषकारक माना जाता है; और इनमें उत्पन्न बालक क्रम से पिता, माता, और अपना घातक माना गया है।

५. गंडा जो गले में पहना जाता है। ६. फोड़ा। ७.चिह्न। लकीर। दाग। ८. गोल मंडलाकार चिह्न या लकीर। गराड़ी। गंडा। ६.गाँठ। ग्रंथि। (लाक्ष०, शरीर की नाड़ी)। उ०—नव गज दस गज गज उगनीसा पुरिया एक तनाई। सात सूत दे गंड बहत्तरि पाट लगी अधिकाई।—कवीर० ग्रं०, पृ० १५३। १०.गैंड़ा। ११.वीथी नामक नाटक का एक अंग जिसमें सहसा प्रश्नोत्तर होते हैं। १२.घेघा (को०)। १३.योद्धा (को०)।

गंडक¹—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक] १.गले में पहनने का जंतर या गंडा। २. वह देश जहाँ गंडकी नदी बहती है तथा वहाँ के निवासी। ३. गाँठ। ४. एक रोग जिसमें बहुत से फोड़े निकलते हैं। ५. गैंड़ा। ६. चिह्न। निशान। ७. रुकावट। बाधा (को०)। ८. वियोजन। पार्थक्य। अलगाव (को०)। १०.चार चार करके किसी वस्तु की गणना (को०)। ११.चार कौड़ियों के मूल्य का सिक्का (को०)। १२. ज्योतिष का एक अंग। फलित ज्योतिष [को०]।

गंडक² संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डकी] दे० 'गंडकी'।

गंडक†³—संज्ञा पुं० [देश०] श्वान। कुत्ता। उ०—बीछू बानर व्याल विस गरदभ गंडक गोल। ऐ अलगाइज राखणा ओ उपदेश अमोल।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ११।

गंडका –संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डका] बीस वर्णों का एक वृत्त जिसे 'वृत्त' और 'दंडिका' भी कहते हैं।

गंडकी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डकी] एक नदी जो नैपाल में हिमालय से निकलती है और बहुत सी छोटी छोटी नदियों को लेती हुई पटने के पास गंगा में गिरती है। इसमें काले रंग के गोल गोल पत्थर निकलते हैं. जो शालिग्राम कहलाते हैं। इन्हें विष्णु का प्रतीक मानकर लोग पूजते हैं। उ०—गंगा यमुना सरस्वती गोदावरी समान। रची नदी तब गंडकी जहँ तहँ शिल उत्पान।—कबीर सा०, पृ० ११८।

यौ०—गंडकीपुत्र। गंडकी शिला=शालिग्राम।

गंडकी²—संज्ञा पुं० सत्रह मात्राओं का एक ताल जिससे १३ आघात और ४ खाली होते हैं।

विशेष – इसका बोल इस प्रकार है—

+							२
देत	देत	खून	खून	धा	कता		
०	३	४	५	६	७	०	८
दंता	केटे	ताग्	देत	देत	खून खून	धा कता	दंता कडान् धा आ
६	१०	११	१३		+		
तेरे	केटे	तांधा	खूंगा	गदिघेने	तेरे	केंटे	धा।

गंडकुसुम– संज्ञा पुं० [सं० गण्डकुसुम] हाथी की कनपटी से चूनेवाला मद [को०]।

गंडकूप—संज्ञा पुं० [सं० गण्डकूप] १. पर्वत की चोटी का ऊपरी भाग। २. पहाड़ की चोटी पर बना हुआ कुआँ [को०]।

गंडगात्र—संज्ञा पुं० [सं० गण्डगात्र] शरीफा [को०]।

गंडगोपालिका— संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डगोपालिका] एक प्रकार का कीड़ा। ग्वालिन।

गंडग्राम—संज्ञा पुं० [सं० गण्डग्राम] बड़ा या प्रसिद्ध गाँव [को०]।

गंडदूर्वा- संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डदूर्वा] १. गाँडर घास जिसकी जड़ खस कहलाती है। २. वह दूब जो पृथ्वी पर फैलती और जड़ पकड़ती हुई दूर तक चली जाती है।

गंडदेश– संज्ञा पुं० [सं० गण्डदेश] कपोल। गंडप्रदेश। गाल [को०]।

गंडनी संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] सरपोका। सर्पाक्षी। सरहटी।

गंडभित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डभित्ति] हाथी के गंडस्थल का छिद्र जिससे मद निकलता है [को०]।

गंडमंडल—संज्ञा पुं० [सं० गण्डमण्डल] कनपटी। उ०—ललित गंडमंडल सुबिसाल भाल तिलक झलक मंजु तर मयंक अंक रुचि बंक भौंहे।—तुलसी (शब्द०)।

गंडमालक—संज्ञा पुं० [सं० गण्डमालक] दे० 'गंडमाला' [को०]।

गंडमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डमाला] एक रोग जिसमें गले में छोटी छोटी बहुत सी फुड़ियाँ लगातार माला की तरह एक पंक्ति में निकलती हैं। यह रोग बड़ी कठिनता से अच्छा होता है। गलगंड। कंठमाला।

गंडमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डमालिका] लजाधुर की लता। लज्जालु। लाजवंती [को०]।

गंडमाली –वि० [सं० गण्डमालिन्] गंडमाला का रोगी [को०]।

गडमूर्ख– वि० [सं० गण्डमूर्ख] घोर मूर्ख। भारी बेवकूफ।

गंडरी -संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] गँड़रा घास। गाँडर।

गंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डलिन्] १. छोटी पहाड़ी। २. शिव।

गंडशिला—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डशिला] भारी चट्टान [को०]।

गडसूचि—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डसूचि] नृत्य में एक प्रकार का भाव।

गंडस्थल—संज्ञा पुं० [सं० गण्डस्थल] कनपटी। उ०—उरसि मरगजी माल चाल मदगज जिमि मलकत। धूमत रसभरे नैन गडस्थल श्रमकन झलकत।—नंद ग्रं०, पृ० २३।

गंडांत—दे० पुं० [सं० गण्डान्त] फलित ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ज्येष्ठा, श्लेषा और रेवती के अंत के पाँच या तीन दंड तथा मूल, मघा और अश्विनी के अंत के तीन दंड।

विशेष—इनमें उत्पन्न होनेवाले बालक दोषी माने जाते हैं और उनके उस दोष की शांति के लिये पूजा की जाती है।

गडा¹—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक=गाँठ] १. गाँठ जो किसी रस्सी या तागे में लगाई जाय। जैसे—गेराँव का गंडा।

क्रि०प्र०—मारना।—लगाना।

गंडा² –संज्ञा पुं० [सं० गण्डक=गले में पहनने का जंतर] १. वह बटा हुआ तागा जिसमें मंत्र पढ़कर गाँठ लगाई जाती है। इसे लोग रोग और भूत प्रेत की बाधा दूर करने के लिये गले में बाँधते हैं। उ०—इसके हाथ से गंडा गिर गया सो यह पड़ा है।—शकुंतला, पृ० १४३।

मुहा०—गंडाताबीज=मंत्रयंत्र। झाड़फूँक। जादूटोना। टोटका। गंडा ताबीज करना=गंडे ताबीज से इलाज करना। मंत्र यंत्र में रोग को अच्छा करना। झाड़फूँक करना।

२. वह धागा जिसे मंत्र पढ़कर रोगी के गले या हाथ में बाँधते हैं।

३. घोड़ों के गले में पहनाने का पट्टा जिसमें कभी कभी कौड़ियाँ और घुँघरू के दाने भी गूँथे जाते हैं।

गंडा³—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक] पैसे, कौड़ी आदि के गिनने में चार चार की संख्या का समूह। जैसे,—पाँच गंडे कौड़ियाँ, चार गंडे पैसे।

गंडा⁴—संज्ञा पुं० [सं० गण्ड = चिह्न] १. आड़ी लकीरों की पंक्ति जैसी कनखजूरे की पीठ पर या साँप के पेट में देखी जाती है। आड़ी धारी। २. तोते आदि चिड़ियों के गले की रंगीन धारी। कंठा। हँसली।

मुहा०—गंडा पड़ना—धारी होना वा निकलना।

गंडातावीज —संज्ञा पुं० [हिं० गंडा + अ० तावीज] भाड़ फूँक। जंतर मंतर।

गंडारि—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डारि] कचनार।

गंडाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] गंड दूर्वा। गाँडर घास।

गंडासा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गँड़ासा'।

गंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डि] १. पेड़ का स्कंध। तना। २. घघेला। घेघा [कौ०]।

गंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डिका] १. एक प्रकार का छोटा पत्थर। २. एक प्रकार का पेय। ३. वह वस्तु जो पहली अवस्था पार कर दूसरी अवस्था में पहुँच गई हो। ४. गैंड़े के चमड़े की बनी हुई एक प्रकार की छोटी नाव।

गंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डिनी] दुर्गा।

गंडीर—संज्ञा पुं० [सं० गण्डीर] १. एक साग जिसे गिड़नी भी कहते हैं। वैद्यक में यह कफनाशक माना जाता है। २. पोई का साग। ३. सेहुंड ४. धनुष। उ०—कुंजर चींटी कै पगि बाँधा। गहि गंडीर उलटि सर साँधा।—प्राण०, पृ० १३६। ५. गन्ना या ऊख की छोटी टुकड़ी। गँडेरी। उ०—कोलू विच गंडीर ज्यों एहु जन एवं होय।—प्राण०, पृ० २४८। ५. योद्धा। वीर [कौ०]।

गंडीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डीरी] दे० 'गंडीर'।

गंडु—संज्ञा पुं० [सं० गण्डु] १. ग्रंथि। गाँठ। २. अस्थि। हड्डी। ३. गेंडुक। तकिया [कौ०]।

गंडुऊ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गण्डूष] दे० 'गंडूष'।

गंडुपद—संज्ञा पुं० [सं०] पील पाँव रोग।

गंडू¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डू] १. तेल। २. दे० 'गंडु' [कौ०]।

गंडू²—वि० [हिं० गाँड़] दे० 'गाँडू'।

गंडूक—संज्ञा पुं० [सं० गण्डूष] दे० 'गंडूष'।

गंडूपद—संज्ञा पुं० [सं०] केंचुआ।

यौ०—गंडूपदभव।

गंडूपदभव—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।—(डिं०)।

विशेष—संभव है, प्राचीनों का यह विश्वास रहा हो कि केंचुएँ से 'सीसा' निकलता है, जैसे, अवतक बहुत से लोगों की धारणा है कि मोर के पंख से ताँबा निकलता है।

गंडूल—वि० [सं० गण्डूल] गाँठोंवाला। गाँठदार। २. टेढ़ा। वक्र। झुका हुआ (कौ०)।

गंडूष—संज्ञा पुं० [सं० गण्डूष] [स्त्री० गंडूषा] १. हथेली का गड्ढा। चूल्लू। २. कुल्ली। ३. हाथी की सूँड़ की नोक।

गंडोपधान, गंडोपधानीय—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोपधान, गण्डोपधानीय] तकिया [कौ०]।

गंडोपल—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोपल] बड़ा शिलाखंड [कौ०]।

गंडोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कच्ची शकर। गुड़। २. ईख। इक्षु। ३. ग्रास। कौर।

गंडोलक—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोलक] एक प्रकार का कीड़ा [कौ०]।

गंडोलकपाद, गंडोलपाद—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोलकपाद, गण्डोलपाद] फीलपाँव [कौ०]।

गंतव्य—वि० [सं० गन्तव्य] जाने योग्य। गम्य। चलने योग्य। उ०—अपनी दुर्बलता बल सम्हाल गंतव्य मार्ग पर पैर धरे।—कामायनी, पृ० १७०।

गंता—संज्ञा पुं० [सं० गन्तृ] [स्त्री० गंत्री] जानेवाला। १. उ०—अघट घटना सुघट विघट विघटन विकट भूमि पाताल जल गगन गंता।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसका प्रयोग विशेष करके समस्त पद के अंत में होता है। जैसे—अग्रगंता।

गंतु¹—वि० [सं० गन्तु] १. जानेवाला। चलनेवाला। २. पथिक। बटोही [कौ०]।

गंतु²—संज्ञा पुं० पथ। मार्ग [कौ०]।

गंत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्त्रिका] छोटी गाड़ी [कौ०]।

गंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्त्री] गाड़ी जिसमें घोड़े या बैल जुते हों।

यौ०—गंत्रीरथ।

गंद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मलिनता। मैलापन। २. अपवित्रता। दुर्गंध। बदबू। ४. दोष। खराबी। ५. अशुद्धि। ६. गँदलापन। मटमैलापन।

मुहा०—गंद बकना=गंदी बातें कहना या गालियाँ बकना।

यौ०—गंदबहन= (१) जिसके मुह से दुर्गंध आती हो। (२) दुर्भाषी। गालियाँ बकनेवाला। गंदबहनी=मुँह से कुवास या दुर्गंध आने का रोग। गंदबगल = जिसके बगल से दुर्गंध आती हो। गंदबगली=काँख या बगल से दुर्गंध आने का रोग।

गंदगी¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १.मैलापन। मलिनता। २. अपवित्रता। अशुद्धता। नापाकी।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—फैलाना।—होना।

३. मैला। गलीज। मल।

गंदगी²—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध] दुर्गंध। बदबू।

गंदना—संज्ञा पुं० [सं० गन्धन या फ़ा०] १. लहसुन या प्याज की तरह का एक मसाला जो तरकारी आदि में डाला जाता है। २.एक घास जो लहसुन की गाँठ में जौ डालकर बोने से उत्पन्न होती है। यह चटनी आदि के लिये काम आती है। इसे दंदना भी कहते हैं।

गंदम—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गंदमी] एक पक्षी।

विशेष—यह सात आठ इंच लंबा होता है और ऋतु के अनुसार

रंग बदलता है। जाड़े के महीनों में यह पंजाब और संयुक्त प्रांत में दिखाई पड़ता है। यह झुंड में रहता है; और छोटी झाड़ियों में घास फूस से प्याले के आकार का घोंसला बनाता है।

गंदमगंदा—वि० [फ़ा० ग़दह + गंदह] बहुत ही गंदा खराब या बुरा। उ०—दसो दुवारे मैल है सब गंदमगंदा।—चरण० बानी, पृ० ६२।

गंदा—वि० [फ़ा० गंदह] [वि० स्त्री० गंदी] १. मैला। मलिन। उ०—बरसात में नदियों का पानी गंदा हो जाता है। २. नापाक। अशुद्ध। जैसे,—एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है। ३. घिनौना। घृणित। जैसे, तुम्हारी गंदी आदत नहीं जाती।

यौ०—गंदादहन। गंदापानी।

मुहा०—गंदा करना = (१) खराब करना। भ्रष्ट करना। (२) दागी करना। दाग लगाना। कलंकित करना।

गंदादहन—वि० [फ़ा० गंदहदहन] जिसके मुँह से दुर्गंध आती हो। गंददहन।

गंदापानी—संज्ञा पुं० [फ़ा० गंदह + हिं० पानी] १. मद्य। शराब। २. वीर्य। शुक्र धातु।—(बाजारू)।

मुहा०—गंदा पानी निकालना = अयोग्य स्त्री से मैथुन करना। संभोग करना।

गंदाबगल—संज्ञा पुं० [हिं० गंदा + फ़ा० बग़ल] वह घोड़ा जिसके दोनों बगल दो भौंरियाँ हों।

गंदुम—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुल० सं० गोधूम] [वि० गंदुमी] गेहूँ।

गंदुमी—वि० [फ़ा० गंदुम] गेहूँ के रंग का। ललाई लिए हुए भूरा। गेहुँआँ। जैसे,—गंदुमी रंग। उ०—रंग तेरा गंदुमी देख और बदन मखमल सा साफ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २३।

गंदोलना†—क्रि० स० [फ़ा० गंदह्] कोई चीज, विशेषतया पानी को गंदा करना।

गंद्रप(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व] दे० 'गंधर्व'। उ०—सो हुतो गंद्रप आप वासव धिके प्राक्रम धारिया। विणसीस दूर प्रसार वाहाँ धणां जीव संहारिया।—रघु० रू०, पृ० १२५।

गंध—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध] १. बास। महक।

विशेष—न्याय या वैशेषिक में गंध को पृथिवी का गुण और घ्राण या नासिका का विषय कहा है। यद्यपि साधारण भेद दो हैं—सुगंध और दुर्गंध, पर शास्त्रकारों ने इसके प्रधान दस भेद किए हैं। (क) इष्ट, जैसी कस्तूरी आदि की। (ख) अनिष्ट, जैसी मुर्दे आदि की। (ग) मधुर; जैसी मधु, फूल आदि की। (घ) अम्ल, जैसी आम, आँवले की। (च) कटु, जैसी मिर्च आदि की। (छ) निर्हारी, जैसी हींग आदि में। (ज) संहत, जैसी चित्रगंध की। (झ) स्निग्ध जैसी घी की। (ट) रूक्ष, जैसे सरसों, राई आदि की। (ठ) विशद, जैसी चावल आदि की।

२. सुगंध। सुवास।

विशेष—इसे लोगों ने पाँच प्रकार की माना है। (क) चूर्णीकृत, (ख) घृष्ट, (ग) दाहाकर्षित (घ) संमर्दज और (ङ) प्राण्यंगोद्भव।

३. सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाय। जैसे,—चंदन आदि का लेप। ४. लेश। अणुमात्र। संस्कार। संबंध। जैसे,—उसमें भलमंसाहत की गंध भी नहीं है। उ०—जेहि बंध जाकर मन बसे सपने सूझ सो गंध। तेहि कारन तपसी तप साधहि करहि प्रेम चित बंध।—जायसी (शब्द०)। ५. गंधक। ६. शोभांजन। सहिजन।

गंधकंदक—संज्ञा पुं० [सं० गंधकन्दक] कसेरु [को०]।

गंधक—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धक] [वि० गंधकी] एक खनिज पदार्थ जिसे वैद्यक में उपधातु माना है।

विशेष—यह खरी और बिना स्वाद की और ज्वालग्राहिणी होती है। इसकी कलमें चमकदार होती हैं और इसे घिसने या गरम करने से इसमें से एक प्रकार की असह्य तीव्र गंध निकलती है। यह ज्वालामुखी पर्वतों से निकले पदार्थों में प्रायः मिलती हैं। धातुओं के साथ भी यह लगी मिलती है। गंधक पानी, अलकोहल और ईथर में नहीं घुलती, पर द्विगंधित कार्बन, मिट्टी के तेल और बेंजीन में सुगमता से घुल जाती है। आग में जलने से इसमें से नीले रंग की लौ निकलती है। यह २३८ दर्जे की आँच में पिघलती है और ८२४ दर्जे की आँच में उबलने लगती है। उबलने के समय इसमें गुलाल रंग की घनी भाप निकलती है। आइसलैंड के ज्वालामुखी पर्वतों के पास यह शुद्ध रूप में मिलती है, पर सिसली में यह नीली मिट्टी के साथ मिली हुई पाई जाती है। इसे साफ करने के लिये गंधक मिली हुई मिट्टी को एक गड्ढे में आग के ऊपर रखकर ऊपर से मिट्टी डाल देते हैं। इससे गंधक जलने लगती है और पिघल पिघलकर नीचे गड्ढे में जमा होती जाती है। इसे हिंदुस्तान में फिर साफ करके पत्तियों के रूप में बनाते हैं। ये बत्तियाँ बाजार में ब्रिम स्टोन या गंधक की बत्तियाँ कहलाती हैं। गंधक प्रायः लोहे, ताँबे आदि धातुओं और कभी कभी पशु, पक्षी और वनस्पतियों में भी मिलती है। इससे रबर भी कड़ा करते हैं। चर्मरोग में यह लगाई और खिलाई भी जाती है।

वैद्यक के ग्रंथों के अनुसार गंधक चार प्रकार की होती है, सफेद, लाल, पीली और नीली। पर लाल और सफेद गंधक देखने में नहीं आती; पीली और नीली मिलती है। नीली को तूतिया, नीला थोथा आदि कहते हैं। गंधक शब्द से आजकल केवल पीली गंधक समझी जाती है। कुछ लोग हरताल को भी एक प्रकार की गंधक मानते हैं। वैद्य लोग खाने के लिये गंधक को शोधते हैं। शोधने के लिये इसकी बुकनी को खौलते हुए घी में डालते हैं। फिर जब घी में मिली गंधक खूब गरम हो जाती है, तब उसे एक बर्तन में दूध रखकर छानते हैं, जिससे गंधक छनकर नीचे बैठ जाती है। यह क्रिया तीन बार की जाती है। डाक्टर लोग गंधक जलाकर वायु शुद्ध करते हैं।

पर्या०—गंधाश्मा। गंधमोहन। पूतिगंध। अतिगंध। वर। सुगंध। दिव्यगंध। कीटघ्न। क्रूरगंध। गंधी। गंधिक। पामागंध। रसगंधक। सौगंधिक। सुगंधिक कुष्ठारि। गौरीबीज।

गंधकवटी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धक + वटी] एक औषध या गोली।

जो शुद्ध गंधक, चित्रक, मिर्च, पीपल आदि के योग से बनाई जाती है। यह गोली अजीर्ण, शूल, आमदोष, गोल आदि रोगों में दी जाती है।

गंधकाम्ल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धकाम्ल] गंधक का तेजाब [को०]।

गंधकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धकारिका] सुगंधित अंगराग आदि तैयार करनेवाली सेविका। कपड़ों को सुगंध से बसाने का काम करनेवाली दासी या सेविका [को०]।

गंधकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धकालिका] सत्यवती। योजनगंधा।

गंधकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धकाली] सत्यवती। योजनगंधा।

गंधकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. अगर की लकड़ी। अगर। २. चंदन।

गंधकी¹—वि० [हिं० गंधक + ई (प्रत्य०)] गंधक के रंग का। हलका। पीला।

गंधकी²—संज्ञा पुं० एक रंग जो कुछ सफेदी लिए पीला होता है। यह रंग असवर्ग से निकाला जाता है और छींट छापने तथा सूती और रेशमी कपड़े रँगने में काम आता है।

गंधकी तेजाब—संज्ञा पुं० [हिं० गंधकी + फ़ा० तेजाब] गंधक का तेजाब।

गंधकुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवालय के अंतर्गत वह कमरा या दालान जिसमें बहुत सी देवमूर्तियाँ रखी हों।

गंधकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुरा नामक एक गंधद्रव्य [को०]।

गंधकुसुमा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध + कुसुमा] एक पौधा। गनियारी [को०]।

गंधकेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी [को०]।

गंधकोकिल—संज्ञा पुं० [सं गन्धकोकिल[एक सुगंधित वस्तु। सुगंध कोकिल।

गंधखेद, गंधखेदक—संज्ञा पुं० [सं० गन्धखेद, गन्धखेदक] एक सुगंधित घास। गंधतृण [को०]।

गंधग—वि० [सं० गन्धग] गंधवाला। गंधयुक्त [को०]।

गंधगज—संज्ञा पुं० [सं० गन्धगज] वह हाथी जिसके कुंभस्थल से मद निकलता हो।

पर्या०—गंधद्विप। गंधद्विरद। गधेभ।

गंधगात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धगात्र] चंदन।—(डिं०)।

गंधगुण—वि० [सं० गन्धगुण] जिसका गुण गंध हो (को०)।

गंधग्राहक—वि० [सं० गन्धग्राहक] गंध ग्रहण करनेवाला (जैसे, घ्राण [को०])।

गंधग्राही—वि० [सं० गन्धग्राहिन्] १. गंधग्राहक। २. सुगंधित [को०]।

गंधघ्राण—संज्ञा पुं० [सं० गन्धघ्राण] किसी भी गंध का ग्रहण करना [को०]।

गंधचेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धचेलिका] कस्तूरी।

गंधज—वि० [सं० गन्धज] सुगंधित पदार्थ संबंधी या उससे युक्त [को०]।

गंधजल संज्ञा पुं० [सं० गन्धजल] सुगंधित तोय या सुवासित जल [को०]।

पर्या०—गंधोद। गंधोदक।

गंधजात—संज्ञा पुं० [सं० गन्धजात] तेजपात।

गंधज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धज्ञा] नासिका। नाक [को०]।

गंधण(पु)—वि० [फ़ा० गंदह्] मलिन। अपवित्र। उ०—गंधण वैण नहीं पतिआवै। अंतरि ज्ञान तिनै आघावै।—प्राण०, पृ० २४२। [को०]।

गंधतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धतण्डुल] गंध शालि। सुगंधित चावल [को०]।

गंधतूर्य—संज्ञा पुं० [गन्धतूर्य] बिगुल, तुरही, दुंदुभी आदि युद्ध का बाजा [को०]।

गंधतृण—संज्ञा पुं० [सं० गन्धतृण] एक प्रकार की सुगंधित घास जो वैद्यक में कुछ तिक्त, सुगंधित, रसायन, स्निग्ध, मधुर, शीतल और कफ तथा पित्त की नाशक कही गई है।

गंधतैल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धतैल] सुगंधित तैल [को०]।

गंधत्राण—संज्ञा पुं० [गन्ध + त्राण] ज्वरांकुश नाम की घास, जिसमें से नीबू की सी गंध आती है। नीली जाय।

गंधद—संज्ञा पुं० [सं० गन्धद] चंदन।

गंधदला—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धदला] अजमोदा। अजवायन।

गंधदारु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धदारु] अगर। गंधकाष्ठ [को०]।

गंधद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं० गन्धद्रव्य] सुगंधित पदार्थ, जैसे, चंदन, केसर आदि।

गंधद्वार—वि० [सं० गन्धद्वार] जो गंध से जाना जाय [को०]।

गंधधारी¹—वि० [सं० गन्धधारिन्] सुगंधयुक्त। जो सुगंध लगाए हो।

गंधधारी²—संज्ञा पुं० शिव [को०]

गंधधूलि—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धधूलि] कस्तूरी।

गंधन¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गंदना'।

गंधन²—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दन] सोना।—(सुनारों की बोली)।

गंधनकुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धनकुल] छछूँदर [को०]।

गंधनाकुली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनाकुली] एक प्रकार का नाकुली कंद जो साधारण नाकुली से अच्छा होता है। रास्ना। घोड़रासन।

गंधनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनाडी] नासिका। नाक [को०]।

गंधनामा—संज्ञा पुं० [सं० गन्धनामन्] लाल तुलसी [को०]।

गंधनाम्री—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनाम्री] साधारण बीमारी। मामूली बीमारी। क्षुद्र रोग [को०]।

गंधनाल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गन्ध + नाल] नाक का छेद। नथुना। उ०—गंधनाल दुइ राह एक सम राखिये। चढ़ि सुखमना घाट अमीरस चाखिये।—कबीर (शब्द०)।

गंधनालिका, गंधनाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनालिका, गन्धनाली] नासिका। नाक [को०]।

गंधनिलया—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनिलया] चमेली का एक भेद [को०]।

गंधप—संज्ञा पुं० [सं० गन्धप] पितरों का एक वर्ग [को०]।

गंधपत्र—संज्ञा पुं० [सं० गन्धपत्र] १. सफेद तुलसी। २. मरुवा। ३. नारंगी ४. बेल।

गंधपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपत्रा] कपूरकचरी।

पर्या०—गंधपत्रिका। गंधनिद्रा। गंधपीता।

गंधपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपत्री] अजमोदा। अजवायन।

गंधपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपर्णी] सप्तपर्णी।

गंधपलाशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपलाशिका] हरिद्रा। हरदी [को०]।

गंधपलाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपलाशी] कपूरकचरी।

गंधपसार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंध+पसार] दे० 'गंधप्रसारिणी'।

गंधपसारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंधपसार+ई (प्रत्य०)] दे० 'गंधप्रसारिणी'।

गंधपाली—संज्ञा पुं० [सं० गन्धपालिन्] शिव [को०]।

गंधपाषाण—संज्ञा पुं० [सं० गन्धपाषाण] गंधक [को०]।

गंधपिशाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपिशाचिका] सुगंधित पदार्थ का धुआँ [को०]।

गंधपुर—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वपुर या हिं०] दिल्ली का एक नाम। उ०—प्रथम पुत्र सोमेस गंधर ढुँढा गढ़्ढिय। भई सुद्धि गंध्रवन पुहप मंगल दुज पढ़्ढिय। पृ० रा, १। ६८६।

गंधपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० गन्धपुष्प] १.सुगंधयुक्त पुष्प। २.केवड़ा। ३.गनियारी। ४.बेत [को०]।

गंधपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपुष्पा] नील का पौधा। [को०]।

गंधपूतना—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपूतना] एक प्रेतिनी या चुड़ैल।

गंधप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं० गन्धप्रत्यय] घ्राणेंद्रिय। नाक।

गंधप्रसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धप्रसारिणी] एक लता जिसकी पत्तियाँ डेढ़ इंच चौड़ी और दो इंच लंबी तथा नुकीली होती हैं। पत्तियों के किनारे कटावदार होते हैं। गंधपसार। गंधपसारी।

विशेष—इसकी गंध कड़ई और असह्य होती है। वैद्यक में इसे गरम, भारी तथा बल और वीर्यवर्धक माना है: यह वातपित्त नाशक तथा टूटी हड्डियों को जोड़नेवाली है। खाने में कड़वी चरपरी होती है। इसका प्रयोग वैद्यक में स्वरभंग और बवासीर में भी लिखा है।

पर्या०—सारिवा। शारिवा। गोपी। उत्पलशारिवा। भद्रवल्ली। नागजिह्वा। कराला। भद्रवल्लिका। गोपवल्ली। सुगंधा। भद्रश्यामा। शारदा। आस्फोता। काष्ठशारिवा। धवलसारिवा।

गंधप्रियंगु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धप्रियङ्गु] प्रियंगु। फूलफेन।

गंधफल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धफल] १.कैथ। २.बेल।

गंधफला—संज्ञा स्त्री० [दे० गन्धफला] १. प्रियंगु। २.विदारी।

गंधफली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धफली] प्रियंगु। २.चंपा।

गंधबंधु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धबन्धु] आम।

गंधबबूल—संज्ञा पुं० [हिं० गंध+बबूल] बबूल की जाति का एक छोटा वृक्ष जिसके फूल विशेष सुगंधित होते हैं।

विशेष—यह अमेरिका से भारतवर्ष में लाया गया है और अब भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में मिलता है। इसे लोग विलायती बबूल या कीकर कहते हैं। फ्रांस देश में इसके फूलों से इत्र निकाला जाता है और वहाँ इसकी खेती भी लोग बहुत करते हैं। हिंदुस्तान में भी इसके फूलों से तेल तैयार किया जाता है।

गंधबहुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धबहुल] दे० 'गंधतंडुल'।

गंधबहुला—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धबहुला] गोरक्षी का पौधा [को०]।

गंधवाह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवाह] हवा। उ०—गंधवाह सीरे करैं हीरे ताप अछेह। दई ताहु पर निरदई दाहत देह अदेह।—स० सप्तक, पृ० २७३।

गंधबिलाव—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध+हिं० बिलाव] नेवले की तरह का एक जंतु।

विशेष—यह जंतु अफ्रिका में होता है। यह दो फुट लंबा और पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है इसके सारे बदन में मटमैले रंग के दाग पंक्तियों में होते हैं। इसके चूतड़ के पास गिलटी होती है जिसमें पीले रंग का का चेप होता है। हबश में लोग इस जंतु को इसी चेप के लिये पालते हैं। यह मांसभक्षी है। इसे कच्चा मांस दिया जाता है। सप्ताह में दो बार इसकी गिलटी से पीला चेप निकालते हैं। एक गंधबिलाव से अधिक से अधिक एक बार में एक माशे चेप निकलता है, जो सुगंधित होता है और पौष्टिक औषध में काम आता है। इसे मुश्कबिलाव भी कहते हैं।

गंधबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धबीजा] मेथी [को०]।

गंधबेन—संज्ञा सं० [सं० गन्ध वेण] एक घास जो अत्यंत सुगंधित होती है। इसका तेल निकाला जाता है। रोहिष। रूसा। सूनिण। सुरीस।

गंधभांड—संज्ञा पुं० [गन्धभाण्ड] दे० 'गर्दभांड' [को०]।

गंधमांसी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमांसी] जटामांसी का एक भेद [को०]।

गंधमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमातृ] पृथ्वी [को०]।

गंधमाद—संज्ञा पुं० [सं०] १.भौंरा। २.एक यादव का नाम।

गंधमादन[1]—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमादन] १. एक पर्वत का नाम।

विशेष—पुराणानुसार यह पर्वत इलावृत और भद्राश्व खंड के बीच में है। नील निषध पर्वत तक इसका विस्तार है। देवी भागवत के अनुसार यह भगवतीकामुकी का पीठस्थान है।

२.रामायण के अनुसार राम की सेना का प्रधान बंदर। ३. भौंरा। ४. एक सुगंधित द्रव्य। ५. गंधक। ६. रावण का एक नाम (को०)। ६.सुगंधित ओषधियों से युक्त गंधमादन पर्वत का जंगल (को०)।

गंधमादन[2]—गंध से उन्मत्त करनेवाला [को०]।

गंधमादनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमादनी] १.मदिरा। मय। २.लाख।

गंधमादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमादिनी] लाख। लाक्षा [को०]।

गंधमार्जार—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमार्जार] दे० 'गंधबिलाव'।

गंधमालती—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमालती] एक गंध द्रव्य।

गंधमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमालिनी] एक प्रकार का गंधद्रव्य [को०]।

गंधमाली—वि० [सं० गन्धमालिन्] एक नाग का नाम [को०]।

गंधमाल्य—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमाल्य] सुगंध द्रव्य और माला [को०]।

गंधमासी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमासी] जटामासी ।

गंधमुंड—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमुण्ड] एक लता का नाम ।

पर्या०—नंदी । ताम्रपाकी । फलपाकी । पीतक । गर्दभांड । क्षिप्रपाकी ।

गंधमूल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमूल] कुलंजन [को०] ।

गंधमूला संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमूला, दे० 'गंधमूली' [को०] ।

गंधमूलिका, गंधमूली संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमूलिका] कपूरकचरी ।

गंधमूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमूषिका । छछूँदर ।

पर्या०—गंधमूषिक। गंधमूषी। गंधशुंडिनी। गंधमुखी। गंधसूयी।

गंधमृग —संज्ञा पुं० [सं० गन्धमृग] १.कस्तूरी मृग । २.गंधबिलाव [को०] ।

गंधमैथुन—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमैथुन] साँड़ [को०] ।

गंधमोदन—संज्ञा पुं० सं० गन्धमोदन गंधक [को०] ।

गंधमोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमोहिनी। चंपा की कली [को०]।

गंधयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धयुक्ति] सुगंध द्रव्य तैयार करने की विद्या [को०] ।

गंधयुति—संज्ञा पुं० [सं० गन्धयुति] सुगंधित चूर्ण [को०] ।

गंधरब(पु) संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व] दे० 'गंधर्व' । उ०—जच्छ भूत बासुकी नाग मुनि गंधरब सकल बसु जीति मैं किए चेरे ।-सूर०, ६।१०६ ।

गंधरबिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गंधर्विन' ।

गंधरस—संज्ञा पुं० [सं० गन्धरस, १. सुगंधसार । २. गुग्गुल (को०) ।

गंधराज—संज्ञा पुं० [सं० गन्धराज] १.मोगरा बेला । २.नख नामक सुगंधद्रव्य । ३.चंदन ।

गंधराज गुग्गुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धराज गुग्गुल] एक प्रकार की धूप या गोंद । वि० दे० 'गुग्गुल' ।

गंधराजी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धराजी] नख नामक सुगंधित द्रव्य ।

गंधर्प(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व] दे० 'गंधर्व' । उ०—देव मुन दैत गंधर्व और मानवी । केवली काल मुख सकल जाई । —तुलसी० श०, पृ० १५ ।

गंधर्व—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व] [स्त्री० गन्धर्वी, हिं० स्त्री० गंधर्विन] १. देवताओं का एक भेद ।

विशेष—ये पुराण के अनुसार स्वर्ग में रहते हैं और वहाँ गाने का काम करते हैं। अग्निपुराण में गंधर्वों के ग्यारह गण माने गए हैं,—अश्राज्य, अंधारि, बंभारि, शूर्यवर्च्चा, कृधु, हस्त, सुहस्त, स्वन्, मूर्धन्वा, विश्वावसु, और कृशानु। इन गंधर्वों में हाहाहूहू, चित्ररथ, हंस, विश्वावसु, गोमायु, तुंबुरु और नंदि प्रधान माने गए हैं। वेदों में गंधर्व दो प्रकार के माने गए हैं—एक द्युस्थान के, दूसरे अंतरिक्ष स्थान के। द्युस्थान के गंधर्वों को दिव्य गंधर्व भी कहते हैं। ये सोम के रक्षक, रोगों के चिकित्सक, सूर्य के अश्वों के वाहक, तथा स्वर्गीय ज्ञान के प्रकाशक माने गए हैं। यम और यमी के उत्पादक भी गंधर्व ही कहे गए हैं। मध्यस्थान के गंधर्व नक्षत्रचक्र के प्रवर्तक और सोम के रक्षक माने गए हैं। इंद्र इनसे लड़कर सोम को छीनता और मनुष्यों को देता है। इनका स्वामी वरुण है। द्युस्थान के गंधर्व से सूर्य, सूर्य की रश्मि, तेज, प्रकाश इत्यादि और मध्यस्थान के गंधर्व से मेघ, चंद्रमा, विद्युत आदि निरुक्त शास्त्र के अधार पर लिये जाते हैं क्योंकि 'गा' या 'गो' को धारण करनेवाला गंधर्व कहा जाता है; और 'गा' या 'गो' से पृथिवी, वाणी, किरण इत्यादि का ग्रहण होता है। इसके अतिरिक्त उपनिषद और ब्राह्मण ग्रंथों में भी गंधर्वों के दो भेद मिलते हैं—देव गंधर्व और मनुष्य गंधर्व। कहीं गंधर्व को राक्षस, पिशाचादि के समय एक प्रकार का भूत माना है।

पर्या०—विद्याधर ।

२.मृग। ३.घोड़ा। ४.वह आत्मा जिसमें एक शरीर छोड़कर दूसरा ग्रहण किया हो। मृत्यु के बाद तथा पुनर्जन्म के पूर्व की आत्मा। प्रेत। ५ स्त्रियों की वह अवस्था जब उनके स्वर में माधुर्य उत्पन्न होता है। ६. वैद्यक में एक प्रकार का मानसिक रोग जिसे 'ग्रह' कहते हैं।

विशेष—इस रोग से ग्रस्त मनुष्य बाग, वन, नदी या झरनों के किनारे घूमता है। गंध और माल्य उसे अच्छे लगते हैं। वह नाचता, गाता, हँसता और दूसरों से कम बोलता है। गंधर्व-ग्रह, गंधर्वरोग आदि नामों से इसका वर्णन मिलता है।

७. एक जाति जिसकी कन्याएँ नाचती गाती और वेश्यावृत्ति करती हैं। ये लोग कुमाऊँ आदि पहाड़ों तथा काशी आदि नगरों में पाए जाते हैं। ८. संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। यथा—चत्वारो गुरवो विंदुश्चत्वारश्च प्लुता अपि। विंदवो दश पट्लाश्च ताले गंधर्वसंज्ञके—संगीत दामोदर (शब्द०)। ९.विधवा स्त्री का दूसरा पति। १०. गायक (को०)। ११.सूर्य (को०)। १२.कोकिल (को०) १३. एरंड। रेंड (को०)।

गंधर्वखंड—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वखण्ड] भारतवर्ष के नव खंडों में से एक का नाम [को०]।

गंधर्वग्रह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वग्रह] एक मानसिक रोग। दे० 'गंधर्व—६।—माधव०, पृ० १२५।

गंधर्वतैल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वतैल] रेंड़ी का तेल।

गंधर्वनगर—संज्ञा पुं० [गन्धर्वनगर] १. नगर, ग्राम आदि का वह मिथ्या आभास जो आकाश में या स्थल में दृष्टिदोष से दिखाई पड़ता है।

विशेष—जब गरमी के दिनों में मरुभूमि या समुद्र में वायु की तहों का घनत्व उष्णता के कारण असमान होता है, उस समय प्रकाश की गति के विच्छेद से दूर के शहर, गाँव, वृक्ष, नौका आदि का प्रतिबिंब आकाश में पड़ता है और कभी कभी नौका आदि का प्रतिबिंब का प्रतिबिंब उलटकर पृथिवी पर पड़ता है, जिससे कभी दूर के गाँव, नगर आदि आदि या तो आकाश में उलटे टँगे या समीप दिखाई पड़ते हैं। यह दृष्टिदोष असमान तह के कारण उस समय होता है जब नीचे की तह

की वायु इतनी जल्दी हल्की हो जाती है कि ऊपर का वायु और ऊपर नहीं जा सकती। मृगमरीचिका भी इसी दृष्टिदोष से दिखाई देती है। गंधर्वनगर का फल वृहत्संहिता में लिखा है। २. मिथ्या भ्रम। (वेदांत में संसार की उपमा गंधर्वनगर से दी जाती है।) ३. चंद्रमा के किनारे का मंडल जो उस रात को दिखाई पड़ता है, जब आकाश हलके बादलों की तह से ढका रहता है। ४. वह दृश्य जो कोसों तक फैली हुई नमक की चद्दरों पर सूर्य की किरणों के पड़ने से दिखाई पड़ता है। ५. संध्या के समय पश्चिम दिशा में रंग विरंगे बादलों के बीच फैली हुई लाली। ६ महाभारत के अनुसार मानसरोवर के निकट का एक नगर।

विशेष—इस नगर की रक्षा गंधर्व करते थे। अर्जुन ने गंधर्वनगर को जीतकर तित्तिर, कल्माष और मंडूक नामक घोड़े प्राप्त किए थे.

गंधर्वपद—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वपद] गंधर्वों का वासस्थान। गंधर्वलोक [को०]।

गंधर्वपुर—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वपुर] गंधर्वनगर।

गंधर्वराज—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वराज] गंधर्वों का राजा चित्ररथ [को०]।

गंधर्वलोक—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वलोक] विद्याधर और गुह्यक लोक के मध्य में कथित एक लोक जहाँ गंधर्वों का निवास माना जाता है [को०]।

गंधर्ववधू—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धर्ववधू] चीड़ा नामक गंधद्रव्य।

गंधर्वविद्या—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वविद्या] गानविद्या। संगीत।

गंधर्वविवाह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वविवाह] आठ प्रकार के विवाहों में से एक। वह संबंध जो पिता माता की आज्ञा के विना वर और वधू अपने मन से परस्पर कर लेते हैं।

गंधर्ववेद—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्ववेद] संगीतशास्त्र।

विशेष—यह चार उपवेदों में से एक है। इसमें स्वर, ताल, राग, रागिनी आदि का वर्णन है।

गंधर्वहस्त, गंधर्वहस्तक—संज्ञा पुं० [सं गन्धर्वहस्त, गन्धर्वहस्तक] एरंड। रेंड।

गंधर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धर्वा] दुर्गा का एक नाम।

गंधर्वास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व+अस्त्र] एक अस्त्र का नाम।

गंधर्विन—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धर्व+हिं० इन (प्रत्य०)]. १. गंधर्व की स्त्री। २ गंधर्व जाति की स्त्री, जो वड़ी सुंदरी होती है। उ०—जो तुम मेरी इच्छा धरो। गंधर्विन के हित तप करो।—सूर (शब्द०)

गंधर्वी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धर्वी] १. गंधर्व की स्त्री। २. सुरभी की पुत्री। यह पुराणानुसार घोड़ों आदि की माता थी।

गंधर्वी[2]—वि० [सं० गन्धर्व+ई (प्रत्य०)] गंधर्व का। गंधर्व संबंधी। उ०—पुनि शकुनी अतिसय रिसि छाया। करत भयो गंधर्वी माया।—गोपाल (शब्द०)।

गंधर्वोन्माद—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वोन्माद] गंधर्वग्रह। गंधर्व रोग। वि०—दे० 'गंधर्व—६.'।

गंधलता—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धलता] प्रियंगु नाम की लता [को०]।

गंधलुब्ध—संज्ञा पुं० [सं० गन्धलुब्ध] मधुकर। भौंरा [को०]।

गंधलोलुपा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धलोलुपा] १. मधुकर। भ्रमर। २. मक्खी या मच्छर [को०]।

गंधवणिक, गंधवणिज—संज्ञा पुं० [पुं० गन्धवणिक्, गन्धवणिज्] गंधविक्रेता। गंधी [को०]।

गंधवती[1]—वि० स्त्री० [सं० गन्धवती] गंधवाली। गंधयुक्त, जैसे; गंधवती पृथिवी।

गंधवती[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवती] १ चमेली का एक भेद। वनमल्लिका। २. गंधोत्तमा। सुरा। ३. मुरा नाम का एक गंधद्रव्य। ४ व्यास की माता सत्यवती का एक नाम। ५. पृथ्वी। ६ वरुणपुरी।

गंधवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवधू] कपूरकचरी। गंधपलाशी [को०]।

गंधवल्कल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवल्कल] दारचीनी [को०]।

गंधवल्लरी, गंधवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवल्लरी, गन्धवल्ली] सहदेई [को०]।

गंधवह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवह] १. वायु। २. नाक।—(डिं०)।

गंधवहा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवहा] नासिका। नाक [को०]।

गंधवान—वि० [सं० गन्धवत्] गंधगुण से युक्त। २. सुगंधित [को०]।

गंधवाह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवाह] वायु। हवा।

गंधवाहा, गंधवाही—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवाहा, गन्धवाही] दे० 'गंधवहा' [को०]।

गंधविह्वल—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध+विह्वल] गेहूँ। गोधूम [को०]।

गंधवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] साल का वृक्ष।—प्रा० भा० प०, पृ० ३४।

गंधवेणु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवेणु] एक सुगंधित घास। गंधवेन।

गंधव्याकुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धव्याकुल] कंकोल का पेड़ [को०]।

गंधशालि—संज्ञा पुं० [सं० गन्धशालि] दे० 'गंधतंदुल' [को०]।

गंधशेखर—संज्ञा पुं० [सं० गन्धशेखर] कस्तूरी [को०]।

गंधसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन। २. मोगरा वेला। ३. कचूर।

गंधसेवक—वि० [सं० गन्धसेवक] गंध या सुगंध का उपयोग करनेवाला [को०]।

गंधसोम—संज्ञा पुं० [सं० गन्धसोम] कुमुद। कुई [को०]।

गंधहर—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध+गृह, प्रा० हर] नाक।—(डिं०)।

गंधहस्ती—संज्ञा पुं० [सं० गन्धहस्तिन्] वह हाथी जिसके कुंभ से मद बहता हो। मदोन्मत्त हाथी।

गंधहारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धहारिका] स्वामिनी के साथ गंधद्रव्य लेकर चलनेवाली सेविका [को०]।

गंधाखु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धाखु] छछूँदर [को०]।

गंधाजीव—संज्ञा पुं० [सं० गन्धाजीव] इत्र वेचनेवाला। गंधी [को०]।

गंधाढ्य[1]—वि० [सं० गन्धाढ्य] सुगंधपूर्ण [को०]।

गंधाढ्य[2]—संज्ञा पुं० १. नारंगी का पेड़। २. चंदन। ३. जवादि नाम का गंधद्रव्य [को०]।

गंधाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धाढ्या] १. गंधनिशा। गंधपत्रा। २.

स्वर्णयूथी । ३. रामतरुणी । ४. आरामशीतला । ५. गंधाली [को०] ।

गंधाधिक—संज्ञा पुं० [सं० गन्धाधिक] एक प्रकार का गंधद्रव्य [को०]।

गंधाना†—क्रि० स० [हिं० गन्ध] गंध देना। बसाना। दुर्गंध करना।

गंधाना²—संज्ञा पुं० [सं० गन्धन] रोला छंद का एक नाम।

गंधानुवासन—संज्ञा पुं० [सं० गन्धानुवासन] अर्क का एक संस्कार। अर्क को गंध की वासना देना, जिससे वह तेज रहे।

गंधाबिरोजा—संज्ञा पुं० [हिं गंध + बिरोजा] चीर नामक वृक्ष का गोंद जो फारस से आता है।

विशेष—शीराज और किरमान इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। यह तीन प्रकार का होता है—खसनिब जो लेवान्ट से आता है, बिरोजा खुश्क और बिरोजा गावशीर या जवाशीर। बिरोजा या गावशीर पीले रंग का गोंद है, जो बहुत पतला होता है। यह कभी-कभी हरापन लिए भी होता है। इसमें डंठल, फूल और पत्तियाँ मिली रहती हैं। इसकी गंध बुरी नहीं होती और इसका स्वाद कड़ुवा होता है। यहाँ इसे शुद्ध करते हैं और इससे खींचकर बिरोज का तेल निकालते हैं। मिट्टी के तेल में से भी इसका तेल निकाला जाता है। यह औषध में बहुत काम आता है। इसका शोधा हुआ सत्त निकालकर दवा में मिलाते हैं और मरहम बनाकर फोड़े आदि पर भी लगाते हैं। खुश्क बिरोजे में ताड़पीन के ऐसी गंध आती है। इसे कुंदुरु भी कहते हैं। यह हिमालय और शिवालक पर्वतों के जंगल से भी आता है। इसे गंधाभिरोजा, सरल का गोंद, चंद्रस भी कहते हैं।

पर्या०—श्रीवास। श्रीवेष्ट। वृक्षधूपक। श्रीपिष्ट। पद्मदर्शन। वृकधूप। यास। वायस। चितागंध। श्रीरस। धूपांग। तिलपर्ण।

गंधाम्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली नींबू [को०]।

गंधार—संज्ञा पुं० [सं० गन्धार] दे० 'गांधार'।

गंधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्धारी] दे० 'गांधारी'।

गंधाला—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धाला] एक गंधमयी लता [को०]।

गंधाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धाली] १. प्रसारिणी। गंधपसार। २. भिड़। ततैया (को०)।

गंधालु—वि० [सं० गन्धालु] गंधाढ्य। गंधपूर्ण। सुगंधित [को०]।

गंधाशन—संज्ञा पुं० [सं० गन्धाशन] पवन। वायु।

गंधाष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] आठ गंधद्रव्यों के मिलाने से बना हुआ एक संयुक्त गंध जो पूजा में चढ़ाने और यंत्रादि लिखने के काम में आता है। अष्टगंध।

विशेष—तंत्र के अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओं के लिये भिन्न-भिन्न गंधाष्टक का विधान पाया जाता है। तंत्र में पंचदेव प्रधान हैं। उन्हीं के अंतर्गत सब देवता माने गए हैं; अतः गंधाष्टक भी पाँच ही हैं। शक्ति के लिये चंदन, अगर, कपूर, चोर, कुंकुम, रोचन, जटामासी, कपि; विष्णु के लिये चंदन, अगर, ह्रीबेर, कुट, कुंकुम, उशीर, जटामासी और मुर; शिव के लिये चंदन, अगर, कपूर, तमाल, जल, कुंकुम, कुशीद, कुष्ठ; गणेश के लिये चंदन, चोर, रोचन, अगर, मृग और मृगी का मद, कस्तूरी, कपूर; अथवा चंदन, अगर, कपूर, रोचन, कुंकुम, मद; रक्तचंदन, ह्रीबेर; सूर्य के लिये जल, केसर, कुष्ठ, रक्तचंदन, चंदन, उशीर, अगर, कपूर।

गंधिक¹—वि० [सं० गन्धिक] गंधयुक्त। सुगंधित।

गंधिक²—संज्ञा पुं० १. गंधी। इत्रफरोस। २. गंधक [को०]।

गंधिकापण—संज्ञा पुं० [सं० गन्धिकापण] वह स्थान जहाँ सुगंध-द्रव्य का विक्रय हो [को०]।

गंधिन¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धिनी] १. गंधी की स्त्री। २. गंधद्रव्य बेचनेवाली स्त्री। ३. मदिरा। सुरा। शराब।

गंधिन²—वि० स्त्री० गंधयुक्त। गंधवाली।

गंधिनि (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गंधद्रव्य बेचनेवाली औरत। गंधिन। उ०—चंदन अरगजा सूर केसरि धरि लेऊँ। गंधिनि ह्वै जाऊँ निरखि नैनन सुख देऊँ। —सूर (शब्द०)।

गंधी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धिन्] [स्त्री० गन्धिनी; गंधिन, गंधिनि(पु)] १. सुगंधित, तेल और इत्र आदि बेचनेवाला। अत्तार। उ०—ए गंधी, मति अंध तू अतर दिखावत काहि। करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।—बिहारी (शब्द०)। २. गंधिया नाम की घास। गाँधी। ३. गंधिया नाम का कीड़ा।

गंधीला(पु)—वि० [हिं० गंदा] मैला। गँदला। बदबूदार। उ०—बहता पानी निर्मला, बँधा गंधिला होय। साधू जन रमते भले, दाग न लागै कोय।—कबीर (शब्द०)। (ख) भौ सागर को धार तीच्छन महा गंधीलो नीर।—चरण० बानी, पृ० ६०।

गंधेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धेन्द्रिय] घ्राण। नासिका [को०]।

गंधेज—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध] अगिया घास।

गंधेल—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध] एक छोटा पेड़ या झाड़।

विशेष—यह हिमालय के किनारे किनारे पंजाब से सिकिम तक होता है। यह बंगाल और दक्षिण में भी मिलता है। इसकी पत्तियों और टहनियों से रोई होती हैं। और उनमें से कड़ी सुगंध निकलती है। पत्तियाँ आठ दस इंच लंबे सींकों में लगती हैं, जो नुकीली और डेढ़ दो इंच लंबी होती हैं। इसमें सफेद रंग के फूल और बेर के समान लंबी लंबी फलियाँ लगती हैं। पत्तियाँ मसाले के काम में तथा छाल और जड़ दवा के काम में आती है।

गंधैला¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंध] [स्त्री० गंधैली] एक प्रकार की चिड़िया।

गंधैला²†—वि० दुर्गंध करनेवाला।

गंधोत्कट—संज्ञा पुं० [सं० गन्धोत्कट] दमनक। दौना (को०)।

गंधोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धोत्तमा] द्राक्षा मद्य। अंगूर की शराब [को०]।

गंधोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० गन्धोपजीविन्] सुगंधविक्रेता। गंधी को०]।

गंधोपल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धोपल] गंधक [को०]।

गंधोली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धोली] १. भिड़। ततैया। २. सोंठ। ३. इंद्राणी [को०]।

गंधोष्णीष—संज्ञा पुं० [सं० गन्धोष्णीष] सिंह (को०)।

गंधौतु—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध+ओतु] दे० 'गंधविलाव'।

गंधौली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धौली] कपूरकचरी।

गंध्य—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध्य] वह वस्तु जिसमें अच्छी महक हो। सुगंधयुक्त वस्तु।

गंध्रप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व,प्रा० गंधव्व] दे० 'गंधर्व'। उ०—गंध्रप जित अस्व तिहि लिन्नव। गोरख गुरु वरदानं सु दिन्नव।—प० रासो, पृ० १३४।

गंध्रपेश(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गंध्रप+सं० ईश] गंधर्वों के राजा। गंधर्वराज। उ०—गंध्रपेस गीर्वानि गुह्यपति गंधवाह गुर।—सुजान०, पृ० १।

गंध्रव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व, प्रा० गंधव्व] दे० 'गंधर्व'। उ०—सुरँग गुलाल कदम और कूजा। सुगँध बकौरी गंध्रव पूजा।—जायसी ग्रं०, पृ० १३।

गंध्रव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व, प्रा० गंधव्व] दे० 'गंधर्व'। उ०—प्रथम पुत्र सोमेस गंधपुर ढुंढा गढ्ढिय। भई सुद्धि गंध्रवन पुहुप मंगल दुज पढ्ढिय।—पृ० रा०, १।६८६।

गंफा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० गप्फा] बड़ा कौर जो तेजी से खाया जा रहा हो। ग्रास। उ०—गरमैं गरमैं हेलुआ गंफा लीजी मारि।—पलटू०, भा० १, पृ० २१।

गंभारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गम्भारिका] दे० 'गंभारी'।

गंभारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गम्भारी] एक बड़ा पेड़ जिसके पत्ते पीपल के पत्तों के से चौड़े होते हैं।

विशेष—इसकी छाल सफेद रंग की होती है और उसमें से दूध निकलता है। फूल और फल पीले होते हैं। इसकी छाल और फल दवा में काम आते हैं। छाल कुछ कुछ कसैलापन और मिठास लिए कड़वी होती है। वैद्यक में यह भारी, दीपक, पाचक, वृष्य, मेधाजनक तथा रेचक मानी गई है। इसका प्रयोग आमशूल बवासीर, शोष, क्षयी और ज्वरादि में होता है। फल पकने पर कसैला और खटमिट्ठा होता है।

पर्या०—काश्मरी। श्रीपर्णी। मधुपर्णी। भद्रपर्णी। भद्रा। गोपभद्रा। कृष्णफला। कटफला। कंभारी। कुमुदा। हीरा। कृष्णवृत्तिका। सर्वतोभद्रिका। महामुद्रा। स्निग्धपर्णी। कृष्णा। रोहिणी। गृष्टि। मधुमती। सुफला। मोहिनी। महाकुमुदा। काश्मीरा। मधुरसा।

गंभीर[1]—वि० [सं० गम्भीर] १. जिसकी थाह जल्दी न मिले। नीचा। गहरा। जैसे, गंभीर नद। २. जिसमें जल्दी घुस न सकें। घना। गहन। ३. जिसके अर्थ तक पहुँचना कठिन हो। गूढ़। जटिल। जैसे, गंभीर विचार। ४. घोर। भारी। जैसे, गंभीर निनाद। ५. शांत। सौम्य। जैसे,—वह बड़ा गंभीर आदमी है।

गंभीर[2]—संज्ञा पुं० १. जंभीरी नीबू। २. कमल। ३. ऋग्वेद में एक प्रकार का मंत्र। ४. शिव। ५. एक राग जो श्रीराग का पुत्र माना जाता है। हनुमत् के मत से यह हिंडोल राग का पुत्र है। ६. वात रोग का एक भेद। उ०—यह वात रक्त चरक ने दो प्रकार का कहा है. एक तो उत्तान दूसरा गंभीर।—माधव०, पृ० १५१।

गंभीरक—वि० [सं० गम्भीरक] गहरा। गंभीर (को०)।

गंभीरज्वर—संज्ञा पुं० [सं० गम्भीर+ज्वर] मल के रुक जाने से, जलन से, श्वास खाँसी से उत्पन्न ज्वर।—माधव०, पृ० ३६।

गंभीरवेदी—संज्ञा पुं० [सं० गंभीरवेदिन्] वह हाथी जो अंकुश की गहरी चोट को भी कुछ न माने। मत्त हाथी।

गंभीरा—संज्ञा स्त्री० [पुं० गम्भीरा] एक नदी का नाम [को०]।

गंभीरिका—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा ढोल।

गंस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थि] १. गाँठ। द्वेष। उ०—कहा हमहि रिसि करत कन्हाई। इह रिसि जाइ भरो मथुरा पर जहँ है कंस बसाई। अपने घर के तुम राजा ही सब के राजा कंस। सूर श्याम हम देखत ठाढ़े अब सीखे ए गंस।—सूर (शब्द०)। २. लाग की बात। आक्षेप। ताना। उ०—चलत सो सोहति गति गजहंस। हँसति परस्पर गावत गंस।—सूर (शब्द०)।

गंसना(पु)—क्रि० स० [सं० ग्रन्थन] अच्छी तरह कसना। जकड़ना। गाँठना। उ०—लाल उन सुनी मनोहर बंसी। नहिं सँभार अजहूँ युवतिन वल मदन भुअंगम डंसी। वृंदावन की माल कलेवर लता माधुरी गंसी। सूरदास प्रभु सब सुख दाता लै भुज बीच प्रसंसी।—सूर (शब्द०)।

गँगन—संज्ञा पुं० [सं० गगन] दे० 'गगन'। उ०—धूनि रमा गुरिया सरकावैं। गँगन चढ़ाय के जग भरमावै।—कबीर सा०, पृ० ८२६।

गँगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसको बनी भी कहते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ चौड़ी और बड़ी तथा रेशे पतले और नरम होते हैं। फूल के नीचे की कमरखी पत्तियाँ बड़ी और बैंगनी रंग की होती हैं। इसे बिहार में जेठी, बंगाल में भोगला और बरार में टिकड़ी या जूड़ी आदि कहते हैं।

गँगला—संज्ञा पुं० [हिं० गंगा] एक प्रकार का शलगम जो गंगा के किनारे होता है। यह आकार में बड़ा और अच्छा होता है।

गँगवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम जो दक्षिण में समुद्र के किनारे तथा बरमा, अंडमन और लंका में होता है।

विशेष—यह सदाबहार होता है। इससे सफेद रंग का दूध निकलता है जो हवा लगने से जम जाता है और काले रंग का होता है। ताजा दूध बहुत खट्टा होता है और लोगों का विश्वास है कि जहरीला होता है। इसकी लकड़ी दियासलाई आदि बनाने के काम में आती है। इसे कड़वा फल या कड़वा पल भी कहते हैं।

गँगेटी—संज्ञा स्त्री० [गङ्गाटी] एक बूटी जो दवा के काम में आती है। यह फोड़े को गलाती और मल-मूत्र लाती है।

गँगेरन—संज्ञा स्त्री० [सं० गाङ्गेरुकी] एक प्रकार का पौधा जो औषध-शास्त्र में चतुर्विध बला के अंतर्गत माना जाता है और सहदेई के पौधे के समान होता है।

विशेष—सहदेई से इसमें भेद यह है कि इसके पत्ते अधिक मोटे

और दो अनीवाले होते हैं। फूल गुलाबी होते हैं और फल भी कुछ बड़े होते हैं। फल में विशेषता यह है कि पकने पर उसके पाँच भाग हो जाते हैं। गँगेरन के गुण भी वैद्यक में बरियारा या खिरैंटी के से माने जाते हैं। गँगेरन मूत्रकृच्छ, क्षत और क्षीण रोग, खुजली, कुष्ठ आदि में दी जाती है। गँगेरन दो प्रकार की होती है—एक छोटी, दूसरी बड़ी। बड़ी गँगेरन भी अम्ल, मधुर, त्रिदोषनाशक तथा दाह और ज्वर को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे गुलशकरी भी कहते हैं।

पर्या०—नागबला। गांगेरुकी। झपा। ह्रस्वगवेधुका। खरगंधनी। गोरक्षतंडुला। मद्रौदनी। चतुःपला। खरवल्लिरिका। महोदया। महापत्रा। विश्वदेवी। अनिष्ठा। देवदंडा।

गँगेरुवा—संज्ञा पुं० [सं० गाङ्गेरुक] एक पहाड़ी पेड़।

विशेष—इसके फल आँवले की तरह छोटे छोटे होते हैं। पत्तियों की पंक्ति सींकों में लगी होती हैं। वैद्यक में इस पेड़ का फल कफ-वात-नाशक, पित्तकारक, भारी, गरम और स्निग्ध माना जाता है। इसके फल दो प्रकार के होते हैं खट्टे और मीठे।

गँगेरू—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंगेरन] दे० 'गँगेरन'।

गँजना¹ ⓤ—क्रि० स० [हिं० गंजना] गंजना। नाश करना। चूर चूर करना। नष्ट करना। उ०—(क) जुरे जुद्ध कर तेग लै पंचम के असवार। गंजि गरेव गरबीन के करे अग्नि पर वार।—लाल (शब्द०)। (ख) दादू काल गँजे नहीं जपै जो नाम कबीर। कबीर मं० पृ० ४१२।

गँजना²—क्रि० अ० [हिं० गाँजना] ढेर लगना। गाँजने का काम होना।

गँजाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. गाँजने या ढेर लगाने की क्रिया। २. गाँजने की मजदूरी।

गँजाना—क्रि० स० [हिं० गाँजना] गाँजने या ढेर लगाने का काम।

गँजिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गञ्जिका या फ़ा० गंज] १. सूत की बुनी हुई रुपया रखने की जालीदार थैली। २. वह जाल की थैली जिसमें घसियारे घास रखते हैं। खारी। बाँसुली। नौला। ३. मिट्टी का बना हुआ एक बरतन जिसका मुँह तंग होता है। यह दवकी की तरह चिपका होता है। पहले इसमें शराब रखते थे। ४.† गंजी। गंदा।

गँजेड़ी—वि० [हिं० गाँजा+एड़ी (प्रत्य०)] गाँजा पीनेवाला।

गँठकटा—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ+काटना] गाँठ में बँधे हुए रुपए पैसे को काट लेनेवाला। गिरहकट। उचक्का।

गँठछोरा†—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ+छोरना] गाँठ का माल छीन लेनेवाला। गिरहकट। गँठकटा।

गँठजोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ+जोड़ना] गँठबंधन। उ०—देवपुर के दयाशंकर पाँड़े के लड़के रमानाथ से आप देववाला का गँठजोड़ा करना चाहते हैं।—ठेठ०, पृ० ८।

गँठजोरा ⓤ—संज्ञा दे० [हिं० गाँठ+जोरना] गँठबंधन। उ०—जनक स्वयंवर धनु तोरा। सीय विवाहि करचो गँठजोरा।—गोपाल (शब्द०)।

गँठबंधन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिबन्धन, हिं० गाँठ+बंधन] १. विवाह की एक रीति जिसमें वर और वधू के वस्त्र को परस्पर बाँध देते हैं। २. धार्मिक आदि कर्म करते समय पति पत्नी के वस्त्र के छोरों को मिलाकर गाँठ देने की रीति। इस अवस्था में दोनों कुछ पूजा आदि करते हैं। यह संस्कार विवाह के चौथे दिन या किसी और दूसरे दिन अच्छी साइत देखकर होता है। ३. दो चीजों या व्यक्तियों के बीच अतिशय ऐक्यः घनिष्ठ संग। ४. साँठगाँठ। गुप्त समझौता।

गँठिवन¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिपर्णी] ग्रंथिपर्णी। गाडर दूब।

गँठिवन²—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपर्ण] गठिवन का पेड़। वि० दे० 'गठिवन'।

गँठुआ—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ+उआ (स्वा० प्रत्यय)] ताने या बाने टूटे हुए तागों को, अथवा नई पाई के तागे को, पुराने उतरे हुए कपड़े के तागे से जोड़ना।—(जुलाहा)।

गँड़घिसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँड़+घिसन] १. अत्यंत निकृष्ट परिश्रम। २. बहुत खुशामद और विनती।

गँड़झप—संज्ञा पुं० [हिं० गाँड़+झेंपना] बुरी तरह से झेंपने या लजाने की क्रिया।—(बाजारू)।

मुहा०—गँड़झप खाना=बुरी तरह झेंपना। बहुत बेतरह लज्जित होना।

गँड़तरा†—संज्ञा पुं० [हिं० गाँड़+तर+नीचे] वह कपड़ा जो बच्चों के चूतड़ के नीचे इसलिये बिछाया जाता है, जिसमें उनका मलमूत्र बिछावन पर न लगे। इसे 'गँतरा' भी कहते हैं।

गँड़दार—संज्ञा पुं० [सं० गंड या गड़ासा+फ़ा० दार (प्रत्य०)] महावत। फीलवान। उ०—ज्यों मतंग अँड़दार को लिए जात गँड़दार।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३१२।

गँड़पुत्र—संज्ञा पुं० [हिं० गाँड़+पुत्र] मलमार्ग से उत्पन्न पुत्र।—(परिहास)।

गँड़रा—संज्ञा पुं० [सं० गण्डाली] [स्त्री० गँडरी] १. मूँज की तरह की एक घास जो तर जमीन में होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आध अंगुल चौड़ी और हाथ डेढ़ हाथ लंबी होती हैं। यह ऊँचाई में दो फुट से पाँच छह फुट तक होती है। इसके डंठल के बीच से डेढ़ दो हाथ लंबी पतली सींक निकलती है जो सूखने पर सुनहले रंग की हो जाती है। सींक के सिरे पर जीरे लगते हैं। ये जीरे कुआर के महीने में फूटते हैं। पूस तक यह घास सूखने लगती है। किसान हरी सींको को निकाल लेते हैं और उन्हें झाड़ू बनाने और डब्बे, पिटारियाँ आदि बुनने के काम में लाते हैं। इसे फागुन, चैत में लोग काटते हैं और इसके डंठलों से छप्पर आदि छाते हैं। इसकी चटाइयाँ भी बनती हैं। इसकी जड़ में सोंधी महक होती है और वह खस कहलाती है। खस की टट्टियाँ बनती हैं तथा इससे इत्र निकाला जाता है।

२. एक धान का नाम जो भादों कुआर में तैयार होता है।

गँड़री—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] दे० 'गँड़रा'।

गँड़सल—वि० [हिं० गाँड़] गुदाभंजन करानेवाला। २. डरपोक। कायर।

गँड़ासा—संज्ञा पुं० [हिं० गँड़ी + सं० असि=तलवार] [स्त्री० अल्पा० गँड़ासी] चौपायों के खाने के लिये चारे या घास के टुकड़े करने का हथियार ।

विशेष—यह एक हाथ के लगभग लंबा होता है। यह एक लकड़ी में, जिसे जाली कहते हैं, जड़ा हुआ एक चौड़ा लोहे का धारदार टुकड़ा होता है। इससे कोल्हू में डालने के लिये गन्ने की गँड़ेरी भी काटते हैं और लाठी में लगातार हथियार का काम भी लेते हैं।

गँड़ासी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गँड़ासा'।

गँड़ियल—वि० [हिं० गाँड़ + इयल (प्रत्य०)] १. गुदाभंजन करानेवाला। कायर। डरपोक।

गँड़िया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गाँडू'।

गँडूषⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गण्डूष] दे० 'गंडूष'। उ०—मुख भरि नीर परसपर डारति, सोभा अतिहिं अनूप बढ़ी तब। मनहुँ चंद गन सुधा गँडूषनि; डारति हैं आनंद भरे सब।—सूर०, १०। १७५३।

गँड़ेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड या गण्ड + हिं० एरी (स्त्री० प्रत्य०)] १, ईख या गन्ने का छोटा टुकड़ा जो चूसने या कोल्हू में पेरने के लिये काटा जाता है। २. छोटा लंबोतरा टुकड़ा।

यौ०—**गँडेरी का लड्डू**=एक मिठाई जो गूँथे हुए मैदे के छोटे टुकड़ों को घी में छान और चासनी में मिलाकर लड्डू की की तरह बाँधने से बनती है।

गँडोरा—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोल=ईख या गुड़] हरा कच्चा खजूर।

गँड़ोलना†—संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ी] बच्चों के खेलने की छोटी गाड़ी।

गँदला—वि० [हिं० गंदा + ला (प्रत्य०] मैला कुचैला। गंदा। मलीन। जैसे,—तालाब का पानी गँदला हो गया।

गँदीला—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध] एक घास जो काली मिट्टी में तथा ऊसर और तर भूमि में उपजती है। गँधिया। गाँधी।

गँदोलना†—क्रि० स० [फ़ा० गंदह् से नाम०] तालाब आदि के पानी को मथकर मटमैला करना। गंदा करना। गँदला करना।

गँधिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० गंध + इया (प्रत्य०)] १. गुबरैले की जाति का एक छोटा कीड़ा। यह बरसात के दिनों में रात को उड़ता है और बहुत दुर्गंध करता है। २. हरे रग का एक कीड़ा जो भुनगे के आकार का होता है और धान मक्के आदि को हानि पहुँचाता है।

क्रि०प्र०—लगना।

गँधिया[2]—संज्ञा स्त्री० एक बरसाती घास। इसकी पत्तियाँ पतली पतली होती हैं और इसके बीच में एक सींका निकलता है। यह उत्तरी भारत के मैदानों में नीची उपजाऊ भूमि में होती है। बुंदेलखंड में भी यह बहुत मिलती है। गाँधी।

गँभीरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गम्भीर) दे० 'गंभीर'। उ०—चतुर गंभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी।—मानस, २।१८।

गँमानाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'गँवाना'। उ०—(क) जाके लिए गृह काज तज्यो, न सिखी सखियान की सीख सिखाई। बैर कियो सिगरे ब्रजगाम सौं, जाके लिए कुल कानि गँमाई।—मति० ग्रं०, पृ० ३००। (ख) बसि निकुंज में रास रचायौ। बिया गँमाई मैन की।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २२८।

गँवँ—संज्ञा स्त्री० [सं० गम्य] १. गात। दाँव। २. मतलब। प्रयोजन। जैसे,—(क) वह हमारी गँवँ का है। (ख) वह अपनी गँवँ का यार है।

क्रि०प्र०—गाँठना।—साधना।

३. अवसर। मौका। जैसे—गँवँ देखकर काम करना चाहिए।

क्रि०प्र०—लगना।—मिलना।

मुहा०—**गँवँ से**=(१) ढंग से। युक्ति से। (२) Ⓟधीरे से। चुपके। उ०—(क) बैठे हैं राम लखन अरु सीता। पंचवटी बर परनकुटी तर कहै कछु कथा पुनीता। कपट कुरंग कनक मनिमय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला। पाए पलिवे जोग मंजु मृग मंजुल छाला। प्रिया बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गँवहि चाप सर लीन्हें। चल्यो सो भाजि फिरि फिरि हेरत मुनि रखवारे चीन्हे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रावण बान महाभट भारे। देखि सरासन गँवहि सिधारे।—तुलसी (शब्द०)।

गँवई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँव] [वि० गँवइयाँ] १. छोटा गाँव उ०—कर लै सूँघि सराहि कै, सबै रहे गहि मौन। गंधी अंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन।—बिहारी (शब्द०)। २. गाँव।

गँवननाⓅ—क्रि० अ० [सं० गमन से नामिक धातु] गमन करना। जाना।

गँवनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० गमन, प्रा० गवण] जाना। गमन करना।

गँवरदल—वि० [हिं० गँवार > गँवर + दल] १. गँवारों का सा। गँवारों के समान। २. गँवार। ३. भद्दा। बेहूदा।

गँवर मसला—संज्ञा पुं० [हिं० गँवार > गँवर + अ० मसल] गँवारों की कहावत। ग्रामीणों की उक्ति।

गँवहियाँ†—संज्ञा पुं० [सं० गोघ्न=अतिथि] अतिथि। मेहमान।

गँवाऊ†—वि० [हिं० गँवाना] गँवानेवाला। उड़ानेवाला। उड़ाऊ।

गँवाना—क्रि० स० [सं० गमन, पु० हिं० गवन] १. (समय) बिताना। (समय) काटना। उ०—दई दई कैसो रितु गँवाई। सिरी पंचमी पूजी आई।—जायसी (शब्द०)। २. पास की वस्तु को निकल जाने देना। खोना। जैसे,—लोभ से उसने अपने हाथ की पूँजी भी गँवा दी।

गँवार—वि० [हिं० गाँव + आर (प्रत्य०)] [स्त्री० गँवारी, गँवारिन। वि० गँवारू, गँवारी] १. गाँव का रहनेवाला। ग्रामीण। देहाती। असभ्य। जैसे—वह गँवार आदमी सभ्यों की बात क्या जाने। उ०—(क) बरने तुलसीदास किमि अति मतिमंद गँवार।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुम तो हो अहीरी गँवारी। और मथुरा की हैं सुंदर नारी।—लल्लू (शब्द०)।

मुहा०—**गँवार का लट्ठ**=उजड्ड। उजबक।

२. बेवकूफ। मूर्ख। ४. अनाड़ी। अनजान। नासमझ।

गँवारताⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गँवार + ता (प्रत्य०)] गँवारपन। उ०—उत्तर कौन सो देहौं कहा मैं गँवारतो कैसी रही ठहराइ री।—सेवक (शब्द०)।

गँवारि[1]Ⓟ—वि० [हिं०] मूर्खा। फूहड़। गँवारी। उ०—नंददास

प्रभु तुम बड़ नाइक, हम गँवारि, तुम चतुर कहाये।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५७।

गँवारि²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गँवार स्त्री। गँवारी। उ०—बरषा रितु बीतन लगी, प्रति दिन सरद उदोति। लह लह जुवार की अरु गँवारि की होति।—मति० ग्रं०, पृ० ४४४।

गँवारिन—वि० [हिं० गँवार+इन (प्रत्य०)] अशिष्ट। बेतहजीब। फूहड़। उ०—अँगरेजी फैसनवालियाँ औरों को गँवारिनें समझती थीं, और गँवारिनें उन्हें कुलटा कहती थीं।—काया०, पृ० १७२।

गँवारी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गँवार] १. गँवारपन। देहातीपन। २. मूर्खता। बेवकूफी। अज्ञानता। ३. गँवार स्त्री।

गँवारी²—वि० स्त्री० [हिं० गँवार+ई (प्रत्य०)] १. गँवार का सा। जैसे, गँवारी बोल। २. भद्दा। बदसूरत। बेढंगा। जैसे, गँवारी चूड़ी। गँवारी इजारबंद।

विशेष—इस विशेषण का प्रयोग स्त्रीलिंग ही में विशेष होता है, यद्यपि दिल्ली आदि में पुं० में भी होता है।

गँवारू—वि० [हिं० गँवार+ऊ (प्रत्य०)] गँवार का सा। गँवार की रुचि का। भद्दा। बेढंगा।

गँवेलि(पु), गँवेली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँव+एली (प्रत्य०)] गाँव की स्त्री। ग्राम में रहनेवाली औरत। उ०—(क) हम है गँवेलि ग्वालि गोपन की बेटी तिन्हैं, दीबे को संकोच अति स्याम पासि ल्याइबौ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २७। (ख) रूप मद छाके तें गँवेली गरबीली ग्वारि, तोहि ताकें रूपी उमगनि उमदात है।—घनानंद, पृ० २६।

गँस¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथि] १. गाँठ। द्वेष। वैर। उ० मानी राम अधिक जननी ते जननिहुँ गँस न गही। सीय लखन रिपुदमन राम रुख लखि सब की निबही।—तुलसी (शब्द०)। २. लाग की बात। मन में चुभनेवाली बात। आक्षेप। ताना। चुटकी।

गँस²—संज्ञा स्त्री० [सं० कषा=चाबुक] तीर की नोक। गाँसी। दे० 'गाँस'।

गँसना¹(पु)†—क्रि० स० [सं० ग्रन्थन] १. अच्छी तरह कसना। जकड़ना। गाँठना। २. बुनावट में तागों या सूतों को परस्पर खूब मिलाना जिसमें छेद न रह जाय। बुनावट में बाने को कसना।

गँसना²—क्रि० अ० १. बुनावट में सूतों का खूब पास पास होना। गँठ जाना। कस जाना। २. ठसाठस भरना। छा जाना। उ०—(क) भनै रघुराज ब्रह्मलोक के अवध लगि गगन में गँसिगे विमान के कतार हैं।—रघुराज (शब्द०)। (ख) बिधु कैसी कला बधू गैलनि में गँसी ठाढ़ी गोपाल जहाँ जुरिगो।—पजनेस (शब्द०)।

गँसना³—क्रि० अ० [सं० ग्रसन] दे० 'ग्रसना'। उ०—वह रहस्यशील दुरधिगम्य सुनीता को मानो एक ही साथ गँस लेता है।—सुनीता, पृ० २६६।

गँसि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गाँसी। गाँस। क्रोध। उ०—सुनि पिय के रस बसन सखनि गँसि छाँड़ि दयो है। बिहँसि आपने उर सों लाल लगाय लयो है।—नंद० ग्रं०, पृ० २१।

गँसीला¹—वि० [हिं० गाँसी] [वि० स्त्री० गँसीली] गाँसीवाला। तीर के समान नोकदार। चुभनेवाला। उ०—लखनि गँसीली त्यों फँसीली नय फाँसी औ हँसीली सों हिय मैं विषम विष वै गई।—(शब्द०)।

गँसीला²—वि० [हिं० गँसना] गँसा हुआ। ठस। दे० 'गसीला'।

गँसीली—संज्ञा स्त्री० [ ] चुभनेवाली। गाँठवाली। उ०—सुन गँसीली बात हाथों के मले। छिल गया दिल हाथ में छाले पड़े।—चोखे०, पृ० ६१।

ग¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. गीत। २. गंधर्व। ३. गुरुमात्रा। २.गणेश।

ग²—संज्ञा पुं० [सं०] १. गानेवाला। जैसे,—सामग। २. जानेवाला। पहुँचानेवाला। जैसे,—अध्वग, कठग।

विशेष—इस अर्थ में वह समस्त शब्दों के अंत में आता है।

ग³(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० गज, प्रा० गअ, गय] हाथी। उ०—कि करब ततिखने होय गअ मनिधने झखइते वेआकुल मने।—विद्यापति, पृ० ५०६।

गइंद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गयंद'।

गइनाही†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] जानकारी। उ०—डसी री माई श्याम भुअंगम कारे। मोहन मुख मुसकान मनहु विष जाते मरे सो मारे। फुरै न मंत्र यंत्र गइनाही चले गुनी गुन डारे।—सूर (शब्द०)।

गई करना(पु) क्रि० अ० [सं० गति, प्रा० गइ+हिं करना] तरह देना। जाने देना। छोड़ देना। ध्यान न देना। उ०—(क) केलि को रैनि परी है, घरीक गई करि जाहु दई के निहोरे।—दास (शब्द०)। (ख) तुम्हैं लग लागी मुबारक आन सुनागर ही सुख सागर सार। नई दुलही की लटूरता देखि गई करि जैयत बारहिं बार।—मुबारक (शब्द०)।

गईबहोर(पु)—वि० [हिं गया+बहोरना=लौटना] खोई हुई वस्तु को पुन: देने अथवा बिगड़ी हुई वस्तु को बनानेवाला। उ०—गई बहोर गरीब निवाजू। सरल सबल साहब रघुराजू।—तुलसी (शब्द०)।

गउँथ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान में आपसे आप होती है और भारत में अनेक स्थानों में चारे के लिये बोई जाती है।

विशेष—इसे तैयार करने के लिये पहले जमीन को अच्छी तरह जोतते और उसमें खाद डालते हैं। इसके बीज कुआर कातिक में खेत में बनाई हुई मेड़ों पर बो देते हैं और पानी से खूब सींचते हैं। जाड़े में आठवें दिन और गरमी में पाँचवें छठे दिन इसमें पानी की आवश्यकता होती है। पहली बार यह छह महीने में तैयार होती है और तदुपरांत साल भर में दस बार काटी जा सकती है। इसे बिलायती होल या हूल भी कहते हैं।

गउख(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गवाक्ष] दे० 'गोखा'। उ०—आवहिया चढ़ि गउखसिरि, चढ़ि ऊँचइरी भीत। मत ही साहिब बाहुड़इ, कउ गुन आवइ चीत।—ढोला०, दू० २८।

गउरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] दे० 'गौरी'। उ०—कतने जतने गउरि अराधिअ भागिअ स्वामि सोहाग।—विद्यापति, पृ० १२०।

गउव(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० गौ] गऊ। गाय। उ०—गउव सिंघ रेंगहिं एक बाटा। दूअउ पानि पिअहिं एक घाटा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३०।

गउहरु(पु)—संज्ञा पुं० [फा० गौहर] मोती। आपे गउहरु आपे हीरा। आपे परखि बिसाहे हीरा।—प्राण०, पृ० २४०।

गऊ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० गो, गौ] गाय। गौ। उ०—कम्मंहि ते बन गऊ चराई। कम्मं ते गोपी केलि कराई।—कबीर सा०, पृ० ६६०।

यौ०—गऊघाट = गाय बैलों के पानी पीने का समथल घाट। = गोपद।

गऊपद(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठपद] दे० 'गोपद'। उ०—गऊपद माहीं पहोकर फदकै, दादर भरंय झिलोर।—गोरख०, पृ० २११।

गक्कर—संज्ञा पुं० [सं० केकय] पंजाब के उत्तरपश्चिम में रहनेवाली एक जाति।

गगनंतरि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गगन + अन्तर] ब्रह्मरंध्र या त्रिकुटी का स्थान। उ०—चंचल नारि न जाय अपाड़े। गगनंतरि धनुष सहजि महिं हाड़े। प्राण०, पृ० १०१।

गगन—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

मुहा०—गगन खेलना = बहते हुए पानी या नदी आदि का उछलना। गगन होना = पक्षी या गुड्डी आदि का बहुत ऊपर आकाश में जाना।

यौ०—गगनध्वग। गगनध्वज। गगनेचर। गगनोल्मुक।

२. शून्य स्थान। ३. छप्पय छंद का एक भेद जिसमें बारह गुरु और १२८ लघु, कुल १४० वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा १२ गुरु और १२४ लघु, कुल १३६ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं। ४. अबरक।

गगनकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशकुसुम।

गगनगढ़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गगन + हिं० गढ़] गगनस्पर्शी प्रासाद। बहुत ऊँचा महल। बहुत ऊँचा गढ़। उ०—देखा साह गगनगढ़ इंद्रलोक कर साज। कहिय राज फुर ताकर सरग करै अस राज।—जायसी (शब्द०)।

गगनगति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो आकाश में चले। आकाशचारी। २. सूर्य, चंद्र आदि ग्रह। ३. देवता।

गगनगिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० गगन + गिर] आकाशवाणी। उ०—गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह।—मानस, १।१८६।

गगनगुफा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गगन + हिं० गुफा] ब्रह्मरंध्र। उ०—गगन गुफा के घाट निरंजन भेंटिए। धरम०, पृ० ४१।

गगनचर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी। २. ग्रह। नक्षत्र। ३. देव। देवता [को०]। ४. २७ नक्षत्र जो चंद्रमा की पत्नी के रूप में हैं। [को०]। ५. राशिचक्र [को०]।

गगनचर[2]—वि० आकाश में चलनेवाला। आकाशगामी।

गगनचुंबी—वि० [सं० गगन + चुम्बिन्] आकाश को छूनेवाला। बहुत ऊँचा। जैसे,—गगनचुंबी प्रासाद।

गगनधूल—संज्ञा स्त्री० [सं० गगन + धूलि > हिं० धूल] १. कुकुरमुत्ते का एक भेद।

विशेष—यह गोल गोल सफेद रंग की होती है और बरसात के दिनों में साखू आदि के पेड़ों के नीचे या मैदानों में निकलती है। इसके ताजे फूल की तरकारी बनाई जाती है। कई दिनों की हो जाने पर इसके बीच से सूखने पर हरे रंग की मैली धूल निकलती है, जो कान बहने की बहुत अच्छी दवा है।

२. केवड़े या केतकी के फूल पर की धूल।

गगनधूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केतकी या केवड़े के पेड़ पर पड़ी धूलि। २. एक प्रकार का कुकुरमुत्ता [को०]।

गगनध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. बादल।

गगनपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

गगनवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश की वाटिका अर्थात् असंभव बात। वि० दे० 'गंधर्वनगर'। उ०—गगनवाटिका सींचहिं भरि भरि सिंधु तरंग। तुलसी मानहिं मोद मन ऐसे अधम अभंग।—तुलसी (शब्द०)।

गगनभेड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गगन + हिं० भेड़] करांकुल या कूँज नाम की चिड़ियाँ जो पानी के किनारे रहती है।

गगनभेदी—वि० [सं० गगनभेदिन्] आकाशभेदी। बहुत ऊँचा।

गगनरोमंथ—संज्ञा पुं० [सं० गगनरोमन्थ] निरर्थक बात। असंभव बात (को०)।

गगनवटी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गगनवर्ती] सूर्य।—(डिं०)।

गगनवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशवाणी।

गगनविहारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० गगनविहारिन्] १. प्रकाशपिंड। २. सूर्य। ३. देवता (को०)।

गगनविहारी[2]—वि० आकाशचारी। नभचारी।

गगनस्थ, गगनस्थित—वि० [सं०] आकाश में स्थित (को०)।

गगनस्पर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आठ मरुतों में से एक। २. वायु। पवन [को०]।

गगनस्पर्शी—वि० [सं०] आकाश को छूनेवाला। बहुत ऊँचा।

गगनस्पृक्—वि० [सं०] आकाश को छूनेवाला। बहुत ऊँचा।

गगनांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० गगनाङ्गना] १. अप्सरा। २. एक छंद का नाम (को०)।

गगनांबु—संज्ञा पुं० [सं० गगनाम्बु] आकाश से गिरा हुआ या वृष्टि का जल।

विशेष—वैद्यक में यह जल त्रिदोषघ्न, बलकारक, रसायन, शीतल और विषनाशक माना जाता है।

गगनाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का सबसे ऊँचा भाग या स्थान (को०)।

गगनाधिवासी—संज्ञा पुं० [सं० गगनाधिवासिन्] ग्रह। नक्षत्र [को०]।

गगनाध्वग—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. ग्रह। ३. देवता [को०]।

गगनानंग—संज्ञा पुं० [सं० गगनानङ्ग] पचीस मात्राओं का एक मात्रिक छंद।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में सोलहवीं मात्रा पर विश्राम होता है और आरंभ में रगण होता है। इस छंद में विशेषता यह है कि प्रत्येक चरण में पाँच गुरु और पंद्रह लघु होते हैं। किसी किसी के मत से बारह मात्राओं के बाद भी यति होती है। जैसे—माधव परम वेद निधि देवक, असुर हरंत तू। पावन धरम सेतु कर पूरण, सजन गहंत तू। दानव हरण हरि सुजग संतन, काज करंत तू। देखहु कस न नीति कर मोहि कहँ, मान धरंत तू।

गगनापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा।

गगनेचर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रह। नक्षत्र। २. पक्षी। ३. देवता। ४. वायु। ५. राक्षस। दैत्य। दानव। ६. वाण। इषु। ७. चंद्र।

गगनेचर[2] वि० आकाश में चलनेवाला। आकाशचारी।

गगनोल्मुक—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।

गगरा—संज्ञा पुं० [सं० गर्गर=दही मथने का बर्तन] [स्त्री० अल्पा० गगरी] पीतल, ताँबे, काँसे आदि का बना हुआ बड़ा घड़ा। कलसा।

गगरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गगरी'।

गगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्गरी = दही मथने की हाँड़ी] ताँबे, पीतल, मिट्टी आदि का छोटा घड़ा। कलसी। उ०—नीके देहु न मोरी गगरी।...... जमुना दह गेंडुरी फटकारी फोरी सब सिर की अस गगरी।—सूर (शब्द०)।

गगल—संज्ञा पुं० [सं०] साँप का जहर। सर्पविष (को०)।

गगली—संज्ञा पुं० [देश०] अगर की एक जाति।

गगोरी—संज्ञा पुं० [सं० गर्ग] एक छोटा कीड़ा जो पृथ्वी के अंदर बिल बनाकर रहता है।

गच—संज्ञा पुं० [अनु०] १. किसी नरम वस्तु में किसी कड़ी या पैनी वस्तु के धँसने का शब्द। जैसे,—गच से छुरी धँस गई।

यौ०—गचागच=बार बार धँसने का शब्द।

२. चूने, सुरखी आदि के मेल से बना हुआ मसाला, जिससे जमीन पक्की की जाती है। उ०—जातरूप मनिरचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी।—तुलसी (शब्द०)। ३ चूने सुरखी आदि से पिटी हुई जमीन। पक्का फर्श। लेट। उ०—महि बहुरंग रुचिर गच काँचा। जो बिलोकि मुनिवर रुचि राँचा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पीटना।

यौ०—गचकारी।

४. पक्की छत। ५. संग जराहत या सिलखड़ी फूँककर बनाया हुआ चूना, जिसे अँगरेजी में प्लास्टर आफ पैरिस कहते हैं। उ०—दीवारों पर गच के फूलपत्तों का सादा काम अबरख की चमक से चाँदी के डले की तरह चमक रहा था।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १७८।

विशेष—यह पत्थर राजपूताने और दक्षिण (चिंगलपेट, नेलौर आदि) में बहुत होता है। राजपूताने में खिड़की की जालियाँ बनाने में इसका उपयोग बहुत होता है। इस मसाले से मूर्तियाँ, खिलौने आदि भी बहुत अच्छे बनते हैं।

गचकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गच+फा० कारी] गच पीटने का काम। चूने, सुरखी का काम।

गचगर—संज्ञा पुं० [हिं० गच+फा० गर=बनानेवाला] वह कारीगर जो गच बनाता हो। गच पीटनेवाला। थवई।

गचगीरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गच+फा० गीरी] चूने, सुरखी का पक्का काम। गचकारी। उ०—कायर का घर फूस का भभकी चहूँ पछीत। सूरा के कछु डर नहीं गचगीरी की भीत।—कबीर (शब्द०)।

गचना(पु)—क्रि० स० [अनु० गच] १. बहुत अधिक या कसकर भरना। ठूँसकर भरना। उ०—तीनों लोक रचना रचत हैं बिरंच यासों अचल खजानों जानो राख्यो गुण गचि के।—गोपाल (शब्द०)। २. दे० 'गाँसना'।

गचपच—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गिचपिच'।

गचाका[1]—संज्ञा पुं० [हिं० गच से अनु०] गच से गिरने या लगने का शब्द।

गचाका[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गच से अनु०] जवान औरत। जवानी से भरी स्त्री (बाजारू)।

गचाका[3]—क्रि० वि० भरपूर।

गच्चा—संज्ञा स्त्री० (हिं०) १. धोखा। २. बेइज्जती। उ०—नारी जाति पर बल का प्रयोग करके गच्चा खा चुका था।—गोदान, पृ० ३७।

गच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़। गाछ। २. साधुओं का मठ (जैन) ३. वे साधु जो एक ही गुरु के शिष्य हों (जैन)।

गच्छना(पु)—क्रि० सं० (सं० √गम् > गच्छ=जाना, प्रा० गच्छ) जाना। चलना। उ०—(क) पच्छ बिन गच्छत प्रतच्छ अंतरिच्छन में अच्छ अवलच्छ कला कच्छन न कच्छे हैं।—पद्माकर ग्रं० पृ० २०५। (ख) कहै पद्माकर निपच्छन के पच्छ हित पच्छि तजि लच्छि तजि गच्छिबो करत हैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३४३।

गछना[1]†(पु)—क्रि० स० [सं० गच्छ=जाना] चलना। जाना।

गछना[2]—क्रि० स०, चलाना। निबारना। उ०—अवधि अधार न होती जीवन को गछतो।—व्यास (शब्द०)।

गछना[3]—क्रि० सं० (सं० ग्रन्थन, हिं० गाँछना) १. अपने जिम्मे लेना। अपने ऊपर लेना। २. बहुत बनाव चुनाव से बात करना। गछ गछकर बातें करना। ३. गूँथना। ग्रंथन करना।

गछेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गछना+फा० बाजी] बनाव चुनाव की बातें। शेखी। उ०—इस तरह कई दिनों तक गछेबाजियाँ हुआ कीं।—रंगभूमि, पृ० ५६६।

गजंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गजेन्द्र, प्रा० गयंद, गइंद] दे० 'गजेंद्र'। उ०—मन गजंद ज्ञान करि सीकरि पकरि के जेर भरावै।—गुलाल०, पृ० ४।

गज१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गजी] १. हाथी। २ एक राक्षस का नाम, जो महिषासुर का पुत्र था। ३. एक बंदर का नाम जो रामचंद्र की सेना में था। ४. आठ की संख्या। ५. मकान की नींव या पुश्ता। ६. ज्योतिष में नक्षत्रों की वीथियों में से एक। ७. लंबाई नापने की एक प्राचीन माप जो साधारणतः ३० अंगुल की होती थी (को०)।

गज२—संज्ञा पुं० [फ़ा० गज़] १. लंबाई नापने की एक माप जो सोलह गिरह या तीन फुट की होती है।

विशेष—गज कई प्रकार का होता है; किसी से कपड़ा, किसी से जमीन, किसी से लकड़ी, किसी से दीवार नापी जाती है। पुराने समय से भिन्न भिन्न प्रांतों तथा भिन्न भिन्न व्यवसायों में भिन्न भिन्न माप के गज प्रचलित थे और उनके नाम भी अलग अलग थे। उनका प्रचार अब भी है। सरकारी गज ३ फुट या ३६ इंच का होता है। कपड़ा नापने का गज प्रायः लोहे की छड़ या लकड़ी का होता है जिसमें १६ गिरहें होती हैं और चार चार गिरहों पर चौपाटे का चिह्न होता है। कोई कोई २० गिरह का भी होता है। राजगीरों का गज लकड़ी का होता है और उसमें १४ तसू होते हैं। एक एक इंच के बराबर तसू होता है। यही गज बढ़ई भी काम में लाते हैं। अब इसकी जगह विशेषकर विलायती दो फुटे से काम लिया जाता है। दर्जियों का गज कपड़े के फीते का होता है, जिसमें गिरह के चिह्न बने होते हैं।

मुहा०—गजभर=बनियों की बोलचाल में एक रुपए में सोलह सेर का भाव। गज भर की छाती होना=बहुत प्रसन्नता या संमान का बोध करना। गज भर की जबान होना=बड़बोला होना। उ०—क्यों जान के दुश्मन हुए हो, इतनी सी जान गज भर की जबान।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१९।

२. वह पतली लकड़ी जो बैलगाड़ी के पहिए में मूँड़ी से पुट्ठी तक लगाई जाती है।

विशेष—यह आरे से पतली होती है और मूँड़ी के अंदर आरे को छेदकर लगाई जाती है। यह पुट्ठी और आरों को मूड़ी में जकड़े रहती है। गज चार होते हैं।

३. लोहे या लकड़ी की वह छड़ जिससे पुराने ढंग की बंदूक में ठूसी जाती है।

क्रि० प्र०—करना।

४. कमानी, जिससे सारंगी आदि बजाते हैं। ५. एक प्रकार का तीर जिसमें पर और पैकान नहीं होता। ६. लकड़ी की पटरी जो घोड़ियों के ऊपर रखी जाती है।

गजअसन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गज+अशन] दे० 'गजाशन'।

गजइलाही=संज्ञा पुं० [फ़ा० गज+इलाही] अकबरी गज जो ४१ अंगुल का होता है।

गजओबरी=संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओबरी'। उ०=सासु मोरि सुतैं गज ओबरि, ननद मोरि अँगना हो। हम धन सुतैं धवराहर पिय संग जगना हो।—पलटू०, पृ० ७३।

गजकंद=संज्ञा पुं० [सं० गजकन्द] हस्तिकंद।

गजक=संज्ञा पुं० [फ़ा० कज़क, गज़क] १. वह चीज जो शराब आदि पीने के बाद मुँह का स्वाद बदलने के लिये खाई जाती है। जैसे,=कबाब, पापड़, दालमोठ, सेव, बादाम, पिस्ता आदि शराब के बाद, और मिठाई, दूध, रबड़ी आदि अफीम या भंग के बाद। चाट। २. तिलपपड़ी। तिलशकरी। ३. नाश्ता। जलपान। ४. चटपट खा जाने की चीज।

गजकरन आलू—संज्ञा पुं० [सं० गजकर्णालु] अरुवा नाम की लता जिसमें लंबा कंदा पड़ता है। वि० दे० 'अरुवा'।

गजकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक यक्ष का नाम (को०)। †२ दाद। दद्रु रोग।

गजकर्णी=संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनौषधि (को०)।

गजकुंभ=संज्ञा पुं० [सं० गजकुम्भ] हाथी के माथे पर दोनों ओर उठे हुए भाग। हाथी का उभरा हुआ मस्तक।

गजकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

गजकूर्माशी—संज्ञा पुं० [सं० गजकूर्माशिन्] वैनतेय। गरुड़ (को०)।

गजकेसर—संज्ञा पुं० (सं० गज+केसर) एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

गजक्रीड़ित—संज्ञा पुं० [सं० गजक्रीडित] नृत्य में एक प्रकार का भाव।

गजखाल—संज्ञा पुं० [सं० गज+हिं० खाल] हाथी का चमड़ा। गज की खाल। उ०=गजखाल कपाल की माल बिसाल सो गाल बजावत आवत हैं।—रसखान०, पृ० ३२।

गजगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हाथी की चाल। २. हाथी की सी मंद चाल। (स्त्रियों का धीरे धीरे चलना भारतवर्ष में सुलक्षण समझा जाता है।) गौरव से भरी गति। ३. रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा में शुक्र की स्थिति या गति। ४. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगण, भगण तथा एक लघु और एक गुरु होता है। जैसे,—न भल गोपिकन सों। हँसन लाख छल सों।

गजगमन—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सी मंद चाल।

गजगवनी(पु)—वि० [सं० गज+हिं० गवनी] गज के समान चालवाली। मंद गतिवाली। उ०—गजगवनी प्रति चंद छंद कोमल उच्चारिय।—पृ० रा०, १।१५।

गजगामी—वि० [सं० गजगामिन्] [वि० स्त्री० गजगामिनी] हाथी के समान मंद गति से चलनेवाला। मंदगामी।

गजगामिनी—वि० स्त्री० [सं०] हाथी के समान मंद गतिवाली। गजगवनी। उ०—गजगामिनि वह पथ तेरा संकीर्ण कंटकाकीर्ण।—अनामिका, पृ० ३४।

विशेष—इस विशेषण का प्रयोग स्त्रियों के लिये अधिकतर होता है; क्योंकि भारतवर्ष में उनकी मंद चाल अच्छी समझी जाती है।

गजगाह—संज्ञा पुं० [सं० गज+ग्राह] १. हाथी की झूल। उ०—(क) साजि कै सनाह गजगाह सउछाह दल महाबली धाए बीर जातुधान धीर के।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गजगाह गंगप्रवाह सम निसिनाह दुति मोतिन लसे। सिर चंद चंद दुचंद दुति आनंदकर मनिमय नसे।—गोपाल (शब्द०)।

२. झूल । पाखर । उ०—तैसे चँवर बनाये औ घाले गल कंप । बाँध सेत गजगाह तहँ जो देखै सो कंप ।—जायसी (शब्द०) ।

गजगौन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गज+गमन>प्रा० गवण] दे० 'गजगमन' ।

गजगौनी(पु)—वि० स्त्री० [सं० गजगामिनी] वि० 'गजगवनी' ।

गजगोहर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गज+फ़ा० गौहर] गजमोती । गज-मुक्ता । उ०—ग्रीषम की क्यों गनै नरमी गजगौहर चाह गुलाब गँभीरे ।—पद्माकर (शब्द०) ।

गजचर्म—संज्ञा पुं० [सं० गजचर्मन्] १. हाथी का चमड़ा । २. एक रोग; जिससे शरीर का चमड़ा हाथी के चमड़े की तरह मोटा और कड़ा हो जाता है । यह रोग घोड़े को भी होता है। इसमें खाज भी होता है ।

गजचिर्भटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायन ।

गजचिर्भिट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी ।

गजचिर्भिटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायन ।

गजच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष का एक योग जो उस समय होता है, जब कृष्ण त्रयोदशी के दिन चंद्रमा मघा नक्षत्र में और सूर्य हस्त नक्षत्र में हो । यह योग श्राद्ध के लिये अच्छा माना जाता है ।

गजट—संज्ञा पुं० [अं० गजेट] १. समाचारपत्र । अखबार । २. वह विशेष सामयिक पत्र जो भारतीय सरकार अथवा प्रांतीय सरकारों द्वारा प्रकाशित होता है और जिसमें बड़े बड़े अफसरों की नियुक्ति, नए कानूनों के मसौदे और भिन्न भिन्न सरकारी विभागों के संबंध की विशेष और सर्वसाधारण के जानने योग्य बातें प्रकाशित की जाती हैं ।

मुहा०—गजट कराना=किसी प्रकार की सूचना आदि को गजट में प्रकाशित कराना । गजट होना=(१) किसी बात का गजट आदि में प्रकाशित होना=(२) किसी बात का बहुत अधिक प्रसिद्ध होना ।

गजढक्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी के ऊपर रखकर बजाया जाने-वाला नगाड़ा या धौंसा (को०)।

गजता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हाथी की स्थिति या भाव (को०) । २. हाथियों का झुंड ।

गजदंड—संज्ञा पुं० [सं० गजदण्ड] पारिस पीपल नाम का पेड़ । परीश पिप्पल ।

गजदंत—संज्ञा पुं० [सं० गजदन्त] १. हाथी का दाँत । २. वह खूँटी जो दीवार में कपड़े आदि लकटाने के लिये गाड़ी जाती है । ३. एक प्रकार का घोड़ा जिसके दाँत हाथी के दाँतों की तरह मुँह के बाहर ऊपर की ओर निकले रहते हैं । ४. दाँत के ऊपर निकला हुआ दाँत । ५. नृत्य में एक प्रकार का भाव जिसमें दोनों हाथ सीधे करके कंधे के पास लाते हैं और हाथ की उँगलियों को साँप के फन की तरह बनाकर आगे की ओर झुकाते हैं ।

विशेष—प्राचीन काल में नृत्य का यह भाव उस समय दिखलाया जाता था, जब विवाह के उपरांत कन्या को वर ले जाता था । इसके अतिरिक्त झूलने अथवा वृक्ष आदि उखाड़ने की मुद्रा दिखलाने के समय भी इसका व्यवहार होता था ।

६. गणपति का एक विशेषण (को०) ।

गजदंतफला—संज्ञा स्त्री० [सं० गजदन्तफला] चिचड़ा ।

गजदंती—वि० [हिं० गजदंत+ई (प्रत्य०)] हाथी के दाँत का । हाथीदाँत का बना हुआ । उ०—कर कंकड़ चूरो गजदंती । नख मणिमाणिक भेटति देती ।—सूर० (शब्द०) ।

गजदघ्न, गजद्वयस—वि० [सं०] हाथी जैसा लंबा या ऊँचा [को०] ।

गजदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी का दान । २. हाथी का मद ।

गजदैत्यभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] गज नामक असुर के संहारक शिव [को०] ।

गजधर—संज्ञा पुं० [फ़ा० गज+हिं० धर] १. मकान बनानेवाला । मिस्त्री । राज । मेमार । थवई । २. वह राज या मेमार जो घर बनाने के पहले उसका नकशा आदि तैयार करता हो ।

गजनक—संज्ञा पुं० [सं०] गैंडा । गंडक [को०] ।

गजनवी—वि० [फ़ा० गजनवी] गजनी नगर का रहनेवाला । जैसे—महमूद गजनवी ।

गजना—क्रि० अ० [सं० गर्ज्जन, प्रा० गज्जण] दे० 'गरजना' । उ०—ठाँ ठाँ मधुर मथानी बर्जै । जनु नव आनँद अंबुद गर्जै ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४८ ।

गजनाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की बड़ी तोप जिसे हाथी खींचते थे । बड़ी भारी तोप ।

गजनासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की सूँड़ [को०] ।

गजनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गजना] गूँज । गुंजन । ध्वनि । उ०—उड़त गुलाल अनुराग रंग छाई दिस, सब मनभाई ब्रजनिधि ही की है । नूपुरनिनाद कटिकिंकिनी की नीकी धुनि, चंगनि की गजनि बजनि मुरली की है ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २५ ।

गजनिमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई चीज देखने का बहाना करना । जानबूझकर अनजाना बनना या दिखाना । उपेक्षा [को०] ।

गजनी[1]—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की मिट्टी ।

गजनी[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०, मि० सं० गज्जन] [वि० गजनवी] अफ-गानिस्तान के एक नगर का नाम, जहाँ महमूद की राजधानी थी ।

गजपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह राजा जिसके पास बहुत से हाथी हों । उ०—असुपतीक शिरमौर कहावै । गजपतीक आँकुस गज नावै ।—जायसी (शब्द०) २ कलिंग देश के राजाओं की उपाधि । महाराज विजयनगर या विजयानगरम् के नाम के साथ अब भी यह उपाधि लगाई जाती है । उ०—रतनसेन भा जोगी जती । सुनि भेंटइ आवा गजपती ।—जायसी (शब्द०) । ३. बहुत बड़ा हाथी ।

गजपाँव—संज्ञा पुं० [हिं० गज+पाँव] एक प्रकार का जलपक्षी ।

विशेष—इसके पैर लाल, सिर, गरदन, पीठ और डैने काले तथा बाकी अंग सफेद होते हैं । यह जाड़े के दिनों में ठंढे देशों से भारतीय मैदानों में चला आता है और प्रायः तीन चार अंडे देता है ।

गजपादप—संज्ञा पुं० [सं०] बेलिया पीपल ।

गजपाल—संज्ञा पुं० [सं०] महावत। हाथीवान। उ०—क्रोध गजपाल कै ठठकि हाथी रह्यो देत अंकुस मसकि कह सकान्यौ।—सूर० १०।३०५४।

गजपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मझोले कद के एक पौधे का नाम जिसके पत्ते चौड़े और गुदार होते हैं और जिसके किनारे पर लहरिया नोकदार कटाव होता है।

विशेष—इसमें दो तीन पत्तों के बाद बीच से एक पतला सींका निकलता है जिसके सिरे पर दस बारह अंगुल लंबी एक इंच के लगभग मोटी मंजरी निकलती है। मंजरी में छोटे छोटे फूल लगते हैं। यह मंजरी सुखाई जाती है और सूखने पर बाजारों में औषध के लिये बिकती है। बाजार में इसके एक अंगुल मोटे और चार पाँच अंगुल लंबे टुकड़े मिलते हैं। स्वाद में यह मंजरी कड़वी और चरपरी होती है। वैद्यक में यह गरम, मलशोधक, कफ-वात-नाशक, स्तन को बढ़ानेवाली, रुचिकारक और अग्निदीपक मानी गई है और कहा गया है कि पकने से पहले इसमें और भी कुछ गुण होते हैं।

पर्या०—करिपिप्पली। इभकणा। कपिवल्ली। कपिल्लिका। वक्षिर। कोलवल्ली। चव्यफल। दीर्घग्रंथी। तैजसी।

गजपीपर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गजपिप्पली'।

गजपीपल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गजपिप्पली'।

गजपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० गजपुङ्गव] बड़ा या विशाल हाथी [को०]।

गजपुट संज्ञा पुं० [सं०] १. धातुओं के फूँकने की एक रीति।

विशेष—इसमें सवा हाथ लंबा, सवा हाथ चौड़ा और सवा हाथ गहरा एक गड्ढा खोदते हैं। उसमें पाँच सौ बिनुए कंडे बिछाकर बीच में जिस वस्तु को फूँकना होता है, उसे रखकर ऊपर से फिर ५०० कंडे बिछाकर गड्ढों के मुँह पर चारों ओर से मिट्टी डाल देते हैं। केवल थोड़ा सा स्थान बीच में खुला छोड़ देते हैं। इस प्रकार जब सब ठीक कर चुकते हैं, तब ऊपर से उसमें आग लगा देते हैं। धातु फूँकने की इस रीति को गजपुट कहते हैं।

२. धातु को फूँककर रस तैयार करने के लिये बनाया जानेवाला निश्चित मान का गड्ढा।

गजपुर—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर।

गजपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] नागपुष्पी। नागदौन।

गजपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गजपुष्प'।

गजप्रिया संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई। शल्लकी।

गजबंध संज्ञा पुं० [सं० गजबन्ध] एक प्रकार का चित्रकाव्य।

विशेष—इसमें किसी कविता के अक्षरों को एक विशेष रूप से हाथी का चित्र बनाकर उसके अंग प्रत्यंग में भर देते हैं।

गजबंधन संज्ञा पुं० [सं० गजबन्धन] [स्त्री० गजबन्धनी, गजबंधिनी] हाथी के बाँधने का खूँटा या स्थान। गजशाला [को०]।

गजब—संज्ञा पुं० [अ० गज़ब] १. कोप। रोष। गुस्सा।

यौ०—गजब इलाही=ईश्वर का कोप। दैवी कोप। उ०—कापै यों परैया भयो गजब इलाही है।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।—टूटना।—पड़ना।

२. आपत्ति। आफत। विपत्ति। अनर्थ। जैसे,—उनपर गजब टूट पड़ा।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—टूटना।—ढाना।—तोड़ना।—गिरना।—लाना।—पड़ना।

३. अंधेर। अन्याय। जुल्म। जैसे,—क्या गजब है कि तुम दूसरे की बात भी नहीं सुनते। ४. विलक्षण बात। विचित्र बात।

मुहा०—गजब का=विलक्षण। अपूर्व। बड़ा भारी। अत्यंत। अधिक। जैसे,—(क) वह गजब का चोर है। (ख) वहाँ गजब की भीड़ और गरमी थी (ग) उसकी खूबसूरती गजब की थी।

गजबदन(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश। उ०—जय गजबदन षडानन माता। जगतजननि दामिनि दुति गाता। मानस, १।२३५।

गजबरन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० गज+वारण] किवाड़ों पर रक्षार्थ लगाई जानेवाली मोटी नोकदार कीलें। उ०—पुष्ट द्वार मजबूत कपाटन जड़े गजबरन।—प्रेमघन०, पृ० ६२।

गजबसा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गज+वश] केला। अनेकार्थ०, पृ० १७।

गजबाँक—संज्ञा पुं० [सं० गज+वल्गा > हिं० बाग] दे० 'गजबाग'।

गजबाग—संज्ञा पुं० [सं० गज+वल्गा > हिं० बाग] हाथी का अंकुश।

गजवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्र की गति के विचार से रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा के समूह का नाम जिसके बीच से होकर शुक्र गमन करे।

गजबीला(पु)—वि० [अ० गज़ब+हिं० ईला (प्रत्य०)] १. गजब का। २. गजब करनेवाला।

गजबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० गज+वल्ली] एक प्रकार का लोहा। कांतिसार। उ०—भाला मारा गजबेली का सौंहैं निसरि गयो वहि पार।—आल्हा (शब्द०)।

गजभक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल।

गजभक्षा, गजभक्ष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्लकी। सलई [को०]।

गजमंडल—संज्ञा पुं० [सं० गजमण्डल] हाथी के माथे पर चित्रित की हुई रंगीन रेखाएँ [को०]।

गजमंडलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गजमण्डलिका] रथ के चारों ओर स्थापित हाथियों का मंडल या घेरा [को०]।

गजमणि—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं०] गजमुक्ता।

गजमद—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का मदजल [को०]।

गजमनि—संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० गजमणि] दे० 'गजमणि'। उ०—बीथीं सकल सुगंध बसाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई।—तुलसी (शब्द०)।

गजमाचल—संज्ञा पुं० [सं०] शार्दूल। सिंह [को०]।

गजमुकुता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गजमुक्ता] दे० 'गजमुक्ता'। उ०—गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १।

गजमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीनों के अनुसार एक प्रकार का मोती।

विशेष—इस मोती का हाथी के मस्तक से निकलना प्रसिद्ध है पर आजतक ऐसा मोती कहीं पाया नहीं गया।

गजमुक्ताहल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गजमुक्ताफल] दे० 'गजमुक्ता'। उ०—गजमुक्ताहल थाल भराई। चंदन चून को चौक पुराई।—कबीर सा०, पृ० ४७३।

गजमुख—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का नाम।

गजमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों में श्रेष्ठ हाथी। गजपुंगव [को०]।

गजमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक रूप जिसे धारण कर उन्होंने ग्राह से एक हाथी की रक्षा की थी। उ०—गजमोचन ज्यों भयो अवतार। कहौं सुनौं सो अब चित धार।—सूर (शब्द०)।

यौ० -गजमोचन क्रीड़ा=हाथी को ग्राह से बचाने की क्रिया। उ०—एहि थर बनी क्रीड़ा गजमोचन और अनंत कथा स्रुति गाई। सूर०, १।६।

गजमोटन—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह [को०]।

गजमोती—संज्ञा पुं० [सं० गजमौक्तिक, प्रा० गजमोत्तिअ] गजमुक्ता।

गजयूथ—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का झुंड [को०]।

गजर¹—संज्ञा पुं० [सं० गर्ज, हिं० गरज] १. पहर पहर पर घंटा बजने का शब्द। पारा। उ०—पहरहि पहर गजर नित होई। हिया निसोगा जान न कोई।—जायसी (शब्द०)।

क्रि०प्र०—बजना।

२. घंटे का वह शब्द जो प्रातःकाल चार बजे होता है। सबेरे के समय का घंटा। उ०—फजर को गजर बजाऊँ तेरे पास मैं।—सूदन (शब्द०)।

मुहा०—गजरदम या गजरबजे=तड़के। पौ फटते। पास भोरे। जैसे,—वह गजरदम उठ खड़ा हुआ। गजर का वक्त= सवेरा। उषःकाल। जैसे—उठो गजर का वक्त हुआ; ईश्वर का नाम लो।

३. जगाने की घंटी। जगौनी। अलारम। ४. चार, आठ और बारह बजने पर उतनी ही बार जल्दी जल्दी फिर घंटा बजने का शब्द।

गजर²—संज्ञा पुं० [हिं० गजर बजर=मिला जुला] लाल और सफेद मिला हुआ गेहूँ।

गजरथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह बड़ा रथ जिसे हाथी खींचते थे। पहले ऐसे रथ राजाओं के यहाँ होते थे और लोग उनपर चढ़कर लड़ाइयों में जाते थे।

गजरप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० गजरप्रबन्ध] गायन और नृत्य आदि के आरंभ में श्रोताओं के सामने गाने और बजानेवालों का अपना स्वर और बाजा आदि मिलाना।

गजर बजर—संज्ञा पुं० [अनु०] १.घाल मेल। बेमेल की मिलावट। अंडबंड।

क्रि० प्र०—करना। होना।

२.खाद्याखाद्य। भक्ष्याभक्ष्य। पथ्यापथ्य। जैसे,—लड़के ने कुछ गजर बजर खा लिया होगा।

गजरभत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० गाजर+भात] गाजर के टुकड़ों को मिलाकर उबाला हुआ चावल।

गजरभात—संज्ञा पुं० [हिं०] 'गजरभत्ता'।

गजरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० गाजर] गाजर के पत्ते जो चौपायों को खिलाए जाते हैं।

गजरा²—संज्ञा पुं० [हिं गंज=समूह] १.फूल आदि की घनी गुथी हुई माला। माला। तारा उ०—कर मंडित मोतिन को गजरा दृग मीड़त आनन ओपत से।—वेनी (शब्द०)। २.एक गहना जो कलाई में पहना जाता है। उ०—छाप छला सुंदरी झमकै दमकै पहुँची गजरा मिलि मानो।—गुमान (शब्द०)। ३. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। मशरू।

गजराज—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा हाथी। उ०—महामत्त गजराज कहँ बस कर अंकुश खर्व।—तुलसी (शब्द०)।

गजरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रियों का क्रम या शृंखला [को०]।

गजरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गजरा] एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ कलाई में पहनती हैं।

गजरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाजर] छोटी गाजर। इसके कंद छोटे, पर अधिक मीठे होते हैं।

गजरौट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाजर+औटा (प्रत्य०)] गाजर की पत्ती। गजरा।

गजल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ग़ज़ल] फारसी और उर्दू में विशेषतया शृंगार रस की एक कविता जिसमें कोई शृंखलाबद्ध कथा नहीं होती।

विशेष—इसमें प्रेमियों के स्फुट कथन या प्रेमी अथवा प्रेमिका हृदय के उद्‌गार आदि होते हैं। इसका कोई नियत छंद नहीं होता। गजल में शेरों की संख्या 'ताक' होती है। साधारण नियम यह है कि एक गजल में पाँच से कम और ग्यारह से अधिक शेर न होने चाहिए। पर कुछ माने शायरों ने कम से कम तीन शेर और अधिक से अधिक पच्चीस शेर तक की गजलें मानी हैं। आजकल सत्रह, उन्नीस और इक्कीस तक की गजलें लिखी जाती हैं।

यौ०—गजलगो=गजल लिखनेवाला।

गजलील—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक जिसमें चार लघु मात्राएँ और अंत में विराम होता है।

गजवदन—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश। गजास्य।

गजवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिरिकदली [को०]।

गजवान—संज्ञा पुं० [हिं० गज+वान (प्रत्य०)] महावत। हाथीवान।

गजविलसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त [को०]।

गजवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोहणी, मृगशिरा और आर्द्रा नक्षत्रों का समूह [को०]।

गजवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का चिकित्सक। हस्तिवैद्य।

गजव्रज—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का समूह या सेना [को०]।

गजशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर जिसमें हाथी बाँधे जाते हैं। फीलखाना। हथिसाल।

गजशिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हस्तिशास्त्र जिसमें हाथियों के विषय में सारी ज्ञातव्य बातों का समावेश है [को०]।

गजसाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर नगर का नाम [को०]।

गजस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] १.हाथी का स्नान । २.निरर्थक कार्य क्योंकि हाथी नहाने के बाद अपने ऊपर धूल कीचड़ आदि डाल लेता है [को०] ।

गजही—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाज=फेन] १.लकड़ी जिससे कच्चा दूध मथकर मक्खन निकाला जाता है । यह चार पाँच हाथ लंबी एक बाँस की लकड़ी होती है जिसका एक सिरा चौफाल चिरा होता है । २. वे पतली लकड़ियाँ जिससे दूध मथकर फेन निकालते हैं ।

गजा[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गज] नगाड़ा बनाने की लकड़ी । चोव । उ०—सुर दुंदुभि सीस गजा सर राम के रावन के सिर साथहि लाग्यो ।—रामचं०, पृ० १३७ ।

गजा[2]—संज्ञा स्त्री० [बँ०] घी में भूनकर चीनी के रस में पागी हुई मैदा की एक मिठाई ।

गजाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चकमर्द । चकवड़ [को०] ।

गजाजीव—संज्ञा पुं० [सं०] महावत । हाथीवान । फीलवान [को०] ।

गजाधर†—संज्ञा पुं० [सं० गदा, प्रा० गया + सं० धर] दे० 'गदाधर' ।

विशेष—इसका प्रयोग केवल नामों में होता है ।

गजानन—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का एक नाम ।

गजायुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों की चिकित्सा का शास्त्र [को०] ।

गजारि—संज्ञा पुं० [सं०] १.सिंह । २.शिव का एक नाम । ३.एक प्रकार का शाल वृक्ष ।

विशेष—यह प्रायः आसाम में अधिकता से होता है । इसके पत्ते बड़े होते हैं और इसकी डालियों से खूँटियाँ बनाते हैं ।

गजारोह—संज्ञा पुं० [सं०] फीलवान । महावत [को०] ।

गजाल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली । २. खूँटी ।

ग़ज़ाला—संज्ञा पुं० [अ० ग़ज़ालह] मृगशावक । हिरन का बच्चा । उ०—तुझ लव की फिसत लाल बदख्शाँ से कहूँगा । जादू हैं तेरे नैन गजाला से कहूँगा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५ ।

गजाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १.पीपल । २.अश्वत्थ वृक्ष । ३.कमल की जड़ (को०) ।

गजासुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जिसका संहार शिव ने किया था [को०] ।

गजास्य—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का एक नाम।

गजाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली [को०] ।

गजिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गज + इया (प्रत्य०)] विटाई करनेवालों का एक औजार ।

विशेष—इसपर विटा हुआ तार उतारा जाता है । यह लकड़ी की होती है और इसके दोनों कोने झुके होते हैं ।

गजी[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० गजी] कुछ कम चौड़ा एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा जो सस्ता होता है । गाढ़ा । सल्लम । उ०—पतिव्रता को गजी जुरै नहिं रूखा सूख अहार ।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ५१ ।

मुहा०—गजी गाढ़ा=मोटा, साधारण और सस्ता कपड़ा ।

गजी[2]—संज्ञा पुं० [सं० गज + ई (प्रत्य०) अथवा गजिन्] हाथी का सवार । वह जो हाथी पर सवार हो ।

गजी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी ।

गजीना⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गझिन] दे० 'गझिन' । उ०—ऐसे तनि बुनि गहर गजीना साईं के मनभावै ।—दादू०, पृ० ६०९ ।

गजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० गजेन्द्र] १.ऐरावत । २.बड़ा हाथी । गजराज । ३.इंद्रद्युम्न नामक राजा अगस्त्य मुनि के शाप से हाथी हो गया था और ग्राह से गृहीत होने पर शाप से मुक्त हुआ ।

गजेंद्रगुरु—संज्ञा पुं० [सं० गजेन्द्रगुरु] संगीत में रुद्रताल का एक भेद ।

गजेटियर—संज्ञा पुं० [अं०] सरकार की ओर से प्रकाशित परिचायक सामयिक पत्र । जैसे,—उत्तर प्रदेश गजेटियर । बनारस गजेटियर । उ०—कुछ समय तक शुक्ल जी स्व० डा० हीरालाल के साथ गजेटियर बनाने के कार्य में लगे रहे ।—शुक्ल अभि० ग्रं० (जी०), पृ० ६ ।

विशेष—इसमें देश के विभिन्न प्रांतों, जिलों आदि की जनसंख्या, पैदावार, विशिष्ट स्थानों, धर्म, रीति रिवाज, इतिहास तथा भूगोल आदि का विशद वर्णन होता है ।

गजेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारी कंद । भूईं कुम्हड़ा ।

गजोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली [को०] ।

गज्जना⑤—क्रि० अ० [सं० गर्जन, प्रा० गज्जण] दे० 'गरजना' । उ०—मृग व्याघ्र चीते रिछं जत्र गज्जैं ।—ह० रासो, पृ० ३६ ।

गज्जर†—संज्ञा पुं० [अनु०] वह भूमि जो कीचड़ से भरी हो और जिसमें पैर धँसे । दलदल ।

उज्जाल—संज्ञा पुं० [सं० ?] अंजीर ।

गज्झा[1]‡—संज्ञा पुं० [सं० गज्ज=शब्द] बहुत से छोटे छोटे बुलबुलों का समूह जो पानी, दूध या किसी और तरल पदार्थ में उत्पन्न हो । गाज ।

मुहा०—गज्झा देना या छोड़ना=मछली का पानी के अंदर से बाहर बुलबुला फेंकना ।

विशेष—(सौरी या गिरदा मछली के पानी के अंदर साँस लेने से प्रायः ऊपर बुलबुले निकलते हैं । इसे शिकारी या मछुए 'गज्झा देना या छोड़ना' कहते है । इससे उनको मालूम हो जाता है कि यहाँ सौरी या गिरदा मछली है) । गज्झा मारना=गज्झा छोड़ना ।

† २. गज ।

गज्झा[2]†—स्त्री० पुं० [सं० गञ्ज, मि० फ़ा० गंज] २. ढेर । गाँज । अंबार । २.खजाना । कोश । ३.धन । संपत्ति ।

मुहा०—गज्झा मारना=माल मारना । रुपया हाथ में करना । गज्झा दबाना=माल दबाना या हड़प करना । अनुचित रूप से बहुत सा धन एकबारगी ले लेना । माल मारना ।

४.लाभ । फायदा । मुनाफा ।

गज्झिन‡—वि० [हिं०] दे० 'गझिन' ।

गझिन†—वि० [हिं० गंजना] १.सघन । उ०—लंबी गझिन दाढ़ी के कारण खाँ साहिब का चेहरा बड़ा भयानक लगता था—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १८४ ।

गझिनाना—क्रि० अ० [हिं० गझिन] गजिन होना । सघन होना ।

उत्तरोत्तर वृद्धि होना। उ०—गोधूलि गम्भिनाय। प्रेमघन०, पृ० ८१७।

गट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गट्ठ'।

गटइया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गटई] कंठ। गला। गर्दन। उ०—जबै जमराज रजायसु ते तोहि लै चलिहैं भट बाँधि गटइया।—तुलसी (शब्द०)।

गटई¹†—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठ, हिं० घंट अथवा सं० गल, गर > गड, हिं० गट+ई] कंठ गला।

गटई²—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] १. दे० 'गोटी'। २. दे० 'गिट्टी'।

गटकना—क्रि० सं० [सं० कण्ठ, या सं० गर (=निगलना) > गट+क या हिं० गटई, अथवा गट से अनु०] १. खाना। निगलना। उ० (क) मीठा सब कोई खात है विष होइ लागै धाय। नीब न कोई गटकई, सबै रोग मिटि जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) लटकि निरखन लग्यो मटक सब भूलि गयो हटक ह्वै वै गयो गटकि शिल सो रह्यो मीचु जागी। मुष्टि को गर्द मरदि के चाणूर चुरकुट करचो कंस कोअनुकंप भयो भई रंग भूमि अनुराग रागी।—सूर (शब्द०) २. हड़पना। दबा लेना। जैसे, दूसरों का माल गटकना सहज नहीं है।

गटक्कना†(पु)—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'गटकना'। उ०—गटक्कंति गिद्धिनि दोऊ मुनारे।—पृ० रासो, पृ० ८२।

गटगट¹—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी पदार्थ को कई बार करके निगलने या घूँट घूँट पीने में गले से उत्पन्न होनेवाला शब्द।

गटगट²—क्रि० वि० गट गट शब्द के सहित। धड़ाधड़। लगातार। (कोई चीज खाना या पीना)। जैसे,—साहब बहादुर देखते देखते सारी बोतल गटगट करके खाली कर गए।

गटना†—क्रि० अ० [सं० ग्रन्थन, प्रा० गंठन] गँठना। बँधना। उ०—हृदय की कबहूँ न पीर घटी। बिनु गोपाल बिथा या तनु की कैसे जात कटी। अपनी रुचि जितही तित खेंचति इंद्रिय ग्राम गटी। होति तहीं उठि चलति कपट लगि बाँधे नयन पटी।—सूर (शब्द०)।

गटपट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. दो या दो से अधिक मनुष्यों या पदार्थों का परस्पर बहुत अधिक मेल। मिलावट। २. सहवास। संयोग। प्रसंग। उ०—जासों गटगट भए आस राखो वाही की।—व्यास (शब्द०)।

गटर—संज्ञा पुं० [अं०] गंदा नाला। जैसे; गटर का कीड़ा।

गटरगूँ—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'गुटरगूँ'। उ०—पेड़ों पर बुलबुल, तोते रुकमिने, गलारें, कबूतर आदि चहकते और गटरगूँ करते हैं।—काले०, पृ० ५१।

गटरमाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० गटर+माला] बड़े बड़े दानों की माला।

गटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० गट्टा] गाँठ। उ०—कमल के हिरदय महँ जो गटा। हर हर हार कीन्ह का घटा।—जायसी (शब्द०)। २. गट्टा। बीज। उ० पहुंची रुद्र कँवल कै गटा।—जायसी ग्रं०, पृ० ९०।

गटागट—क्रि० वि० संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गटगट'।

गटापारचा—संज्ञा पुं० [मला० गट=गोंद+परचा=वृक्ष अथवा सुमात्रा द्वीप का नाम] एक प्रकार का गोंद जो कई ऐसे वृक्षों से निकलता है जिनमें सफेद दूध रहता है।

विशेष—यह प्रायः रबर की तरह काम में आता है, पर उतना मुलायम और लचीला नहीं होता। बिलकुल खुले स्थानों में दूध और पानी आदि सहता हुआ भी यह दस-दस बरस तक ज्यों का त्यों रहता है; और यदि नालियों आदि से सुरक्षित स्थानों में रखा जाय, तो बीस-बीस वर्ष तक काम देता है। यह प्रायः बिजली के तारों के ऊपर रक्षार्थ लगाया जाता है। इसके खिलौने, बटन आदि भी बनते हैं।

गटी—स्त्री० संज्ञा [सं० ग्रन्थि, पा० गंठि] १. गाँठ। उ०—(क) चेटक लाइ हरहिं मन, जब लगि हौं गटि फेंट। साठ नाक उठि भागहिं, न पहिचान न भेंट।—जायसी (शब्द०)। (ख) रंग भरि आये हौ मेरे ललना बातें कहत हौं अटपटी। अति अलसात जम्हात हौ प्यारे पिय प्रगट त्रिया प्रताप छूटत नाहिर अंतर की गटी।—सूर (शब्द०)। ३. गठरी। उ०—अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी, निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।—रामचं०, पृ० ६८।

गटैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० गटई] गला। कंठ।

गट्ट—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी वस्तु के निगलने में गले से उत्पन्न होनेवाला शब्द।

मुहा०—गट्ट करना=(१) निगल जाना। (२) हड़प जाना। दबा बैठना। अनुचित अधिकार कर लेना।

गट्टा—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, प्रा० गंठ, हिं गाँठ] १. हथेली और पहुंचे के बीच का जोड़। कलाई।

मुहा०—गट्टा पकड़ना=तगादा या झगड़ा करने अथवा बलपूर्वक कुछ माँगने या पूछने आदि के लिये किसी की कलाई पकड़ना। गट्टा उखाड़ना=परास्तकरना। दबाना।

२. पैर की नली और तलुए के बीच की गाँठ। ३. गाँठ। ४. नैचे के नीचे की वह गाँठ जहाँ दोनों नै मिलती हैं और जो फरशी या हुक्के के मुँह पर रहती है। ५. बीज। जैसे,—कमल गट्टा, सिंघाड़े का गट्टा। ६. एक प्रकार की मिठाई जो चीनी या शक्कर का तार खींचकर उसे गोल या चौकोर टुकड़ों में काटकर बनाई जाती है। ७. गाँठ। कंद। उ०—सौ गट्टे प्याज सौ जूतियों के साथ खायँगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १९१।

गट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. जहाज या नाव में उस खंभे के नीचे की चूल जिसमें पाल बँधी रहती है।—(लश०)।

मुहा०—गट्टी करना=किसी खंभे में बँधी हुई पाल को चूल के सहारे घुमाना।

२. नदी का किनारा।

गट्टू†—संज्ञा पुं० [हिं० गट्टा] मुठिया। दस्ता।

गट्ठर—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ] बड़ी गठरी गट्ठा। बोझा।

मुहा०—गट्ठरसाधना=घुटनों को छाती से लगाकर और ऊपर से हाथ बाँधकर गट्ठर की तरह पानी में कूदना।

गट्ठल—संज्ञा स्त्री० [हिं गाँठ+ल (प्रत्य०) गुट्ठल। गाँठ। उ०—बुड्ढी हाथ अधेड़ पिता, माता जी, सिर गट्ठल पक्का।—आराधना पृ० ७४।

गट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं गाँठ] [स्त्री० अल्पा० गट्ठी, गठिया] १. घास लकड़ी आदि का बोझ। भार। गट्ठर। २ बड़ी गठरी। बुकचा। ३. प्याज या लहसुन की गाँठ। जरीब का बीसवाँ भाग जो तीन गज का होता है। कट्ठा।

गट्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि, हिं० गाँठ] दे० 'गाँठ'।

गठ(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० गढ] दे० 'गढ़'। उ० - लंक विधुंसी वानरा के; काई सराहो राजा गठ अजमेर।—बीसल० रास पृ० ३३।

गठ[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] गाँठ का समासगत रूप। गाँठ। जैसे-गठकटा, गठजोरा आदि।

गठकटा—वि० पुं० [हिं० गाँठ+काटना] १. गाँठ काटकर रुपए ले लेनेवाला। गिरहकट। उ०—वहुत अच्छा! अरे गठकटे चल।—शकुंतला, पृ० १ २। २. धोखा देकर या बेईमानी से रुपया लेनेवाला।

गठजोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ+जोड़ना] दे० 'गँठजोड़ा'। उ०—मैं सोच रहा था कि विना किसी आडंबर के जयंती का और मेरा गठजोड़ा करके कोई ब्राह्मण मंत्र पढ़ देता, बस।—संयासी, पृ० ६२।

गठजोरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गँठजोड़ा'। उ०—दूलह दुलहिन तुरँग हिंडोरैं झूलत प्रथम समागम सो गठजोरैं। नंद० ग्रं०, पृ० ३७८।

गठडंड—संज्ञा पुं० [हिं गड्ढा+डंड=एक प्रकार की कसरत] एक प्रकार का डंड जो दोनों हाथों के बीच के स्थान में गड्ढा बनाकर किया जाता है। इस प्रकार डंड करने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

गठड़ी संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गठरी'। उ०—लोग लगे धमाधम गठड़ियाँ पटकने।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १११

गठन संज्ञा स्त्री० [सं० घटन अथवा सं० ग्रन्थन, प्रा० गंठन] बनावट।

गठना—क्रि० अ० [सं० ग्रन्थन, प्रा० गंठन, हिं गाँठना का अकर्मक रूप] १. दो वस्तुओं का परस्पर मिलकर एक होना। जुड़ना। सटना। जैसे,—ये दोनों पेड़ आपस में खूब गठ गए हैं। २. मोटी सिलाई होना। बड़े-बड़े टाँके लगना। जैसे,—जूता गठना। ३. बुनावट का दृढ़ होना।

यौ०—गठा बदन=ऐसा हृष्ट पुष्ट शरीर जो बहुत अधिक मोटा न हो। गठी बखिया=एक प्रकार की बखिया जिसे पोस्तदाना भी कहते हैं।

विशेष—इसमें पहले जिस स्थान पर सुई गड़ाकर आने की ओर निकालते हैं फिर उसी स्थान के पास ही उलटकर सुई गड़ाते और निकलने के पहलेवाले स्थान से कुछ और आगे बढ़ाकर निकालते हैं और इसी प्रकार बराबर सीते हुए चले जाते हैं। इसमें ऊपर की सिलाई एकहरी और नीचे की दोहरी होती है। दौड़ की बखिया में और इसमें केवल यही भेद है कि दौड़ की बखिया में केवल आधी दूर तक लौटकर सूई डाली जाती है।

४. किसी षड्चक्र या गुप्त विचार में सहमत या संमिलित होना। जैसे,—अगर वह किसी तरह गठ जाय तो सब काम बन जाय। ५. अच्छी तरह निर्मित होना। भली भाँति रचा जाना। ठीक ठीक बताना। उ०—अंग अंग बनी मानो लिखी चित्र धनी गठी, निज मन मनी आजु बएँ भूप काम को।—हनुमान (शब्द०)। ६. स्त्री पुरुष या नर मादा के संयोग होना। विषय होना। ७. अधिक मेल मिलाप होना। जैसे,—आजकल उन लोगों में खूब गठती है।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

गठबंध—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गठबंधन'।

गठबंधन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिबन्धन, प्रा० गंठबंधन] विवाह में एक रीति जिसमें वर और वधू के वस्त्रों के छोर को परस्पर मिलाकर गाँठ बाँधते हैं।

गठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गट्ठर का स्त्री० और अल्पा०] १. कपड़े में गाँठ देकर बाँधा हुआ सामान। बड़ी पोटली। बकची।

मुहा०—गठरी बाँधना=(१) (असबाब बाँधकर) यात्रा की तैयारी करना। (२) पैरों और घुटनों को छाती से लगाकर और उन्हें दोनों हाथों से जकड़कर गठरी की आकृति बना लेना। गठरी साधना=दे० 'गट्ठर साधना'। गठरी कर देना=(१) हाथ पैर तोड़ या बाँधकर अथवा और किसी प्रकार बेकाम कर देना। ढेर करना। मारकर गिरा देना। (२) कुश्ती में विपक्षी को इस प्रकार दोहरा कर देना जिसमें उसकी आकृति गठरी के समान हो जाय। गठरी मारना=दे० 'गठरी बाँधना (२)'।

२. संचित धन। जमा की हुई दौलत।

मुहा०—गठरी मारना=अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। ठगना।

३. एक प्रकार की तैराकी।

विशेष—इसमें तैरनेवाला अपने पैरों और घुटनों को छाती से लगाकर और उन्हें दोनों हाथों से पकड़कर गठरी की सी आकृति बना लेता है और इस प्रकार तैरता रहता है।

गठरीमुटरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गठरी+मुटरी] गठरी में बँधा हुआ सामान। उ०—यह गठरी मुटरी लेकर हाथी पर क्यों बैठेंगे।—प्रभावती, पृ० १६५।

गठरेवाँ—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ] चौपायों का एक रोग। गलफुला। हाहा।

विशेष—इस रोग में चौपाए को पहले ज्वर आता है फिर उसकी जाँघ, पसली और जीभ के नीचे और विशेषकर गले के नीचे सूजन हो जाती है। उसे साँस लेने में कष्ट होता है और वह चल फिर नहीं सकता। वह पैरों को जोड़कर खड़ा रहता है। यह छूत का रोग है और अचानक होता है। पशु इस रोग में विशेषकर मर जाते हैं। पहले लोगों का अनुमान था कि यह रोग सर्दी लगने या बदहजमी से होता है। पर अब डाक्टरों ने यह निश्चय किया है कि यह रोग रक्त के विकार से कीटाणुओं द्वारा फैलता है। इस रोग में रोगी को बंद और गर्म, साफ सुथरे और सूखे स्थान में रखना चाहिए। खाने के लिये सूखे स्थान की घास, सूखा भूसा और जौ के आटे की

लेई या गर्म माड़ उपयोगी है। इसे गलफुला और हाहा भी कहते हैं।

गठवाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कट्ठा + अंश] गट्ठे या बिस्वे का बीसवाँ अंश। बिस्वांसी।

गठवाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठना] १. जूता गाँठना। २. जूता गाँठने की मजदूरी।

गठवाना—क्रि० स० [हिं० गाठना] १. गठाना। सिलवाना। जैसे,—जूता गठवाना। २. मोटी मोटी सिलाई कराना। टाँका मरवाना। ३. जुड़वाना। जोड़ मिलवाना। ४. जोड़ा खिलाना। संयोग कराना।

गठा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गट्ठा'।

गठाना¹—क्रि० स० [हिं० गाठना] १. गठवाना। सिलवाना। मोटी सिलाई कराना। जैसे,—जूते गठाना। २. जोड़ मिलवाना।

गठाना²—संज्ञा पुं० [हिं० घुटना] वह जलस्थल जहाँ कम पानी हो (माँझी)।

गठानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कर जो जमींदार असामियों से वसूल करता है।

गठाव—संज्ञा पुं० [हिं० गठना] गठन। बनावट।

गठित—वि० [सं० घटित अथवा ग्रन्थित, प्रा० गंठित] गठा हुआ। बना हुआ।

गठिबंध—संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथिबंधन] गठबंधन। गठजोड़ा। उ०—बड़ि प्रतीति गठिबंध ते बड़ो जोग ते छेम। बड़ो सुसेवक साइँ ते बड़ो नेम ते प्रेम।—तुलसी (शब्द०)।

गठिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ इया (प्रत्य०)] १. वह बोरा या दोहरा थैला जिसमें व्यापारी अन्न आदि भरकर घोड़े या बैल की पीठ पर लादते हैं। खुरजी। २. पोटली। छोटी गठरी ३. कोरे कपड़े के थानों की बँधी हुई बड़ी गठरी। ४. एक रोग जिसमें जोड़ों में विशेषकर घुटनों में सूजन और पीड़ा होती है।

विशेष—जिस अंग में यह रोग होता है वह अंग फैल नहीं सकता और जकड़ जाता है। इसमें कभी कभी ज्वर और सन्निपात भी हो जाता है जिससे रोगी शीघ्र मर जाता है। वैद्यक में वायुविकार इसका कारण माना जाता है। उपदेश, सूजाक आदि के कारण भी एक प्रकार की गठिया हो जाती है।

५. पौधों या वृक्षों का एक रोग जिसमें डालियों का बढ़ना बंद हो जाता है।

विशेष—इसमें पत्तियाँ सिकुड़कर ऐंठ जाती हैं। नई पत्तियाँ घनी और परस्पर लिपटी हुई निकलती हैं। यद्यपि यह रोग आम आदि बड़े पेड़ों में भी होता है पर फसली पौधों में बहुत देखा जाता है। उरद, मूँग तथा कुम्हड़ा, ककड़ी, करैला आदि तरकारियों में यह रोग प्रायः लग जाता है।

गठियाना†—क्रि० स० [हिं० गांठ से नाम०] १. गाँठ देना। गाँठ लगाना। २. गाँठ में बाँधना। गाँठ में रखना। उ०—आतम कर्म भाव गठियाना। बंधन आतम वेद बखाना।—घट०, पृ० २८७।

मुहा०—किसी बात को गठिया रखना=किसी बात को निश्चय समझना।

गठिवन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपर्ण] मध्यम आकार का एक पेड़ जिसकी डालियाँ पतली होती हैं।

विशेष—इसकी पत्तियों में स्थान स्थान पर गाँठें होती हैं। फूल नीले रंग के होते हैं। यह नैपाल की तराई में अधिक होता है। इसकी गोल गोल घुंडियाँ या कलियाँ औषध के काम में आती हैं और बाजार में गठिवन के नाम से बिकती हैं। काले रंग का गठिवन उत्तम, पांडु रंग का मध्यम और स्थूल निकृष्ट समझा जाता है। वैद्यक में इसे तीक्ष्ण, चरपरा, गरम, अग्निदीपक तथा कफ, वात, श्वास और दुर्गंध को नाश करनेवाला माना है। शरीर पर इसका लेप करने से रुखाई आती है और खुजली दूर होती है।

गठीला¹—वि० [हिं० गाँठ + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० गठीला] गाँठवाला। जिसमें बहुत सी गाँठें हों। जैसे, यह छड़ी गठीली है।

गठीला²—वि० [हिं० गठना] १. गठा हुआ। चुस्त। सुडौल। जैसे,—गठीला बदन। २. मजबूत। दृढ़। अच्छा।

गठुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गठुवा'।

गठुरा†—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ] भूसे की गाँठ जो खलिहान में फेंक दी जाती है।

विशेष—इसे बुंदेलखंड में गेठुआ और अवध में खूँटी कहते हैं।

गठुवा—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ + उवा (प्रत्य०)] १. कपड़े का वह टुकड़ा जिसे जुलाहे करघे में इसलिये रखते हैं कि उसके तागे से ताने के तागों को गठकर बुनने के लिये चढ़ाएँ। २. भूसे के छोटे छोटे गाँठदार टुकड़े जो खलिहान में फेंक दिए जाते हैं। गेठुआ। गठुरा। खूँटीं।

गठौंद—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ + बंध] १. गाँठ की बँधाई। गिरहबंदी। २. वह माल जो अलग बाँधकर अमानत की तरह रखा जाय। धरोहर। थाती।

गठौत—संज्ञा स्त्री० [हिं० गठ + औत (प्रत्य०)] १. मेल। मिलाप। मित्रता। घनिष्ठता। २. गठी गठाई बात। मिलकर पक्की की हुई बात। आँट साँट। अभिसंधि।

क्रि० प्र०—करना।—गाँठना।

३. उपयुक्तता। मौजूनियत।

गठौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० गठना] १. मेलजोल। मैत्री। घनिष्ठता। २. गठी गठाई बात। आँट साँट। अभिसंधि। षड्चक्र।

क्रि० प्र०—करना।—गाँठना।

गडंक—संज्ञा पुं० [हिं० गढ़ + अंग] दे० 'गडंग'।

गड़ंग¹—संज्ञा पुं० [हिं० गढ़ + अंग] वह स्थान जहाँ बारूद, गोले और हथियार आदि रखे जाते हैं। मैगजीन।

गड़ंग²†—संज्ञा पुं० [सं० गर्व पुं० हिं० गारो] [वि० गड़ंगिया] १. घमंड। शेखी। डींग। २. आत्मश्लाघा। बड़ाई।

मुहा०—गड़ंग मारना या हाँकना=(१) डींग मारना। शेखी बघारना। बढ़ बढ़कर बातें करना। (२) अहंकार करना। शेखी करना।

गड़ंगिया†—वि० [हिं० गड़ंग+इया (प्रत्य०)] घमंडी। डींग मारनेवाला। शेखी बाज। बढ़ बढ़कर बात करनेवाला।

गड़ंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाड़ना] वह वस्तु जिसे लोग टोटके या अभिचार के लिये गाड़ देते हैं।

विशेष—तांत्रिक या प्रेतविद्या के जाननेवाले प्रायः मारण, मोहन और उच्चाटन आदि के लिये कुछ पदार्थों को मंत्र पढ़कर किसी चौराहे में गाड़ देते हैं और इस गाड़ने को गड़ंत कहते हैं। यह गड़ंत कभी कभी आगंतुक दुःखों के निवारण के लिये भी की जाती है।

गड—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओट। आड़। २. घेरा। चारदीवारी। ३. वह धुस्स या टीला जो किसी स्थान के चारों ओर बनाया जाय। ४. गड्ढा। खाँई। ५. प्राकार। गढ़। ६. एक प्रकार की मछली [को०]।

गडक संज्ञा पुं० [देश०, या सं० गड+क (प्रत्य०)] एक प्रकार की मछली।

गड़क¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़कना] १. गड़गड़ शब्द करना (बादलों का)। २. गरजने या डाँटने की क्रिया या भाव।

गड़क²—संज्ञा पुं० [अ० गर्क] डूबने या गर्क होने का भाव।

गड़क³—संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़कना] गटक जाना। पचा जाना (ऋण, रुपया आदि)।

क्रि० प्र०—लेना।

गड़कना¹—क्रि० अ० [अनु०] गड़ गड़ शब्द करना (बादलों का)। २. गरजना। डाँटना। डपटना।

गड़कना²†—क्रि० अ० [अ० गर्क] १. डूबना। २. नष्ट होना।

गड़कना³—क्रि० स० [हिं० गड़क] ऋण आदि का रुपया मार लेना। दे० 'गटकना'।

गड़काना¹—क्रि० स० [अनु० गड़+क] १. गड़ गड़ शब्द उत्पन्न करना। गड़गड़ाना। २. डाँटना। ३. धमकाना। डराना।

गड़काना²—क्रि० स० [अ० गर्क] डुबोना। शराबोर करना।

गड़क्क† संज्ञा पुं० [अ० गर्क] डुबाव। २. डूबने का शब्द।

गड़क्का‡—संज्ञा पुं० [अ० गर्क] दे० 'गड़क्क'।

गड़गड़—संज्ञा पुं० [अनु०] १. गड़गड़ शब्द जो हुक्का पीने के समय या सुराही से पानी उलटने के समय होता है। २. पेट में होनेवाला गड़गड़ शब्द।

गड़गज संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गरगज'।

गड़गड़ा—संज्ञा पुं० [अनु०] १ एक प्रकार का हुक्का। २. बड़ा हुक्का।

गड़गड़ाना¹—क्रि० अ० [हिं० गड़गड़] गरजना। गड़गड़ गड़गड़ करना। कड़कना। जैसे,—आज सवेरे से बादल गड़गड़ा रहा है।

गड़गड़ाना²—क्रि० सं० गड़गड़ बोलना। गड़गड़ शब्द निकालना। गुड़गुड़ाना। जैसे,—वे दिन भर बैठे बैठे हुक्का गड़गड़ाया करते हैं।

गड़गड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़गड़ाना] १. गड़गड़ाने का शब्द। गराड़ी घूमने, गाड़ी चलने या बादल गरजने आदि का शब्द। कड़क। २. हुक्का पीने का शब्द।

गड़गड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़गड़] नगाड़ा। डुग्गी। उ०—ढोल दमामा गड़गड़ी शहनाई औ तूर। तीनों निकसि न बाहुरें साधु सती औ सूर।—कबीर (शब्द०)।

गड़गूदड़—संज्ञा पुं० [अनु० गूदड़] चिथड़ा। लत्ता। उ०—लखनऊवालों का पहनावा जनाना है, पाजामे की मोहड़ियाँ इतनी चौड़ी रखते हैं कि उठावें तो सिर तक पहुँचे और पगड़ियों का घेरा इतना बड़ा कि छतरी का भी काम न पड़े, बोझ में तो छोटी मोटी गठरी से कम न होगी, वरन् कहीं खुल जावे तो अंदर से गड़गूदड़ का ढेर इतना निकल पड़े कि एक टोकरी भरे।—(शब्द०)।

गड़च्चा—संज्ञा पुं० [देश०] १. धमकी। घुड़की। २. दबोच। ३. चकमा।

गड़णहार†—वि० [सं० घटन+हिं० हार] गढ़नेवाला। मूर्तिकार। उ०—जे एइ मूरति सांचि है तौ गड़णहारे खाउ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०५।

गड़दार—संज्ञा पुं० [हिं० गड़+दार] वह नौकर जो मस्त हाथी के साथ साथ भाला लिए हुए चलता है और जब हाथी इधर उधर अपने मन से जाना चाहता है तब उसे भाले से मारकर राह पर ले चलता है। उ०—(क) अली नली नवला हिलै. पिय पै साजि सिगार। ज्यों मतंग अड़दार को लिए जात गड़दार।—मतिराम (शब्द०)। (ख) अरे ते गुसलखाने बीच ऐसे उमरा लै चले मनाय महाराज सिवराज को। दावदार निरखि रिसानो दीह दलराज जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।—भूषण (शब्द०)।

गड़ना—क्रि० अ० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड=गड्ढा] १ धँसना। घुसना। चुभना। जैसे,—काँटा गड़ना। उ०—खरकै छवि आनि गड़ी उर में नृप रावन मैन रमैं कलकै।—गुमान (शब्द०)। २. शरीर में चुभने की सी पीड़ा पहुँचाना। खुरखुरा लगना। जैसे,—पीठ के नीचे कंकड़ गड़ रहे हैं। ३. दर्द करना। पीड़ित होना।

विशेष—इस अर्थ में 'गड़ना' केवल 'आंख' और 'पेट' के साथ आता है। जैसे,—आँख गड़ रही है। पेट गड़ता है।

४. मिट्टी आदि के नीचे दबना। दफन होना। नीचे पड़ जाना। जैसे,—जमीन में गड़े पत्थर निकाल लो।

मुहा०—गड़े मुर्दे उखाड़ना=दबीदबाई या पुरानी बात उभाड़ना।

५. समाना। पैठना। उ०—क्यों न गड़ि जाहु गाड़ गहिरी गड़त जिन्हैं गोरी गुरुजन लाज निगड़ गड़ाइती।—देव (शब्द०)।

मुहा०—गड़ जाना=झेंपना। लज्जित होना। लजाना। जैसे,—तुम तो बेहया हो दूसरा कोई होता तो गड़ जाता। लज्जा ग्लानि आदि से गड़ना=लज्जा आदि से दृष्टि नीची करना। उ०—देखि भरत गति सुनि मृदुबानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी।—तुलसी (शब्द०)।

६. खड़ा होना। भूमि पर ठहरना। जमीन पकड़ना। जैसे,—झंडा गड़ना, खीमा गड़ना। उ०—भूलेहु गाहि विलोकत ही गड़ि गाढे रहें आति ही दृग दू पर।—(शब्द०)। ७. जमना।

गणेशसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाणपत्य संप्रदाय के एक उपपुराण का नाम [को०]।

गण्य—वि०—[सं०] १. गिनने के योग्य। गिनती के लायक। २. जिसकी पूछ हो। जिसे लोग कुछ समझें। प्रतिष्ठित। उ०—सु वधू इस गण्य गेह की।—साकेत, पृ० ३६२।

यौ०—गण्यमान्य=प्रतिष्ठित।

गण्यपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से बिकनेवाली वस्तुएँ। वे पदार्थ जिनकी बिक्री गिनती के हिसाब से हो।

गतंडा—संज्ञा पुं० [सं० गतागड][स्त्री० गतंडी] पुंस्त्वविहीन। हिजड़ा। नपुंसक।—(मारवाड़ी)।

गत¹—वि० [सं०] १. गया हुआ। बीता हुआ। जैसे—गत मास, गत दिन, गत वर्ष।

विशेष—समस्त पद के आदि में यह शब्द 'गया हुआ', 'रहित', 'शून्य' का अर्थ देता है और अंत में 'प्राप्त', 'आया हुआ', 'पहुँचा हुआ' का अर्थ देता है। जैसे,—गतप्राण, गतायु, तथा कंठगत, कुक्षिगत। उ०—अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ।—तुलसी (शब्द०)।

२. मरा हुआ। मृत।

मुहा०—गत होना=मरना। मर जाना।

३. रहित। हीन। खाली। उ०—सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।—तुलसी (शब्द०)।

गत²—संज्ञा स्त्री० [सं० गति] १. अवस्था। दशा। हालत।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

मुहा०—गत का=काम का। अच्छा। भला। जैसे—गत का कपड़ा भी तो उनके पास नहीं। गत बनाना=(१) दुर्दशा करना। दुर्गति करना। (२) अपमान। डाँटना डपटना। मारना पीटना। दंड देना। खबर लेना। जैसे,—घर पर जाओ, देखो तुम्हारी कैसी गत बनाई जाती है। (३) हँसी ठट्ठे में लज्जित करना। उपहास करना। झिपाना। उल्लू बनाना। जैसे,—वे अपने को बड़ा बोलनेवाला लगाते थे, कल उनकी भी खूब गत बनाई गई।

२. रूप। रंग। वेश। आकृति।

मुहा०—गत बनाना=(१) रूप रंग बनाना। वेश धारण करना। जैसे,—तुमने अपनी क्या गत बना रखी है। (२) अद्भुत रूप रंग बनाना। आकृति बिगाड़ना। जैसे,—होली में उनकी खूब गत बनाई जायगी।

३. काम में लाना। सुगति। उपयोग। जैसे—ये आम रखे हुए हैं, इनकी गत कर डालो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

४. दुर्गति। दुर्दशा। नाश। जैसे—तुमने तो इस किताब की गत कर डाली।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

५. मृतक का क्रिया कर्म। ६. संगीत में बाजों के कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलाना। जैसे—सितार पर भैरवी की गत बजा रहे थे।

क्रि०प्र०—निकालना।—बजाना।

७. नृत्य में शरीर का विशेष संचालन और मुद्रा। नाचने का ठाठ। जैसे,—मोर की गत, थाली की गत, झुरमुट की गत।

क्रि०प्र०—भरना।

यौ०—गतकल्मष=पापरहित। कालुष्यविहीन। गतकाल=व्यतीत समय। बीता समय। गतक्लम=थकान रहित। गतचेतना=चेतनारहित। बेहोश। गतत्रप=लज्जारहित। निर्लज्ज। गतपंचमी(पु)=सूर्यमंडल भेदकर मुक्ति प्राप्त करने की अवस्था। पाँचवीं गति। मोक्ष। उ०—जूझ मुवा रण में जिके, गत पंचमी गयाह।—बाँकी ग्रं०, भा०, १, पृ० ३।

गतक—संज्ञा पुं० [सं०] गमन। गति। जाना [को०]।

गतका—संज्ञा पुं० [सं० गदा या गदक; मि० तु० कुतक्ह्=मोटा और छोटा डंडा; फ़ा० कुतका] १. लकड़ी का एक डंडा जिसके ऊपर चमड़े की खोल चढ़ी रहती है।

विशेष—यह डंडा ढाई तीन हाथ लंबा होता है जिसमें प्रायः दस्ता भी लगा रहता। लोग इसे लेकर खेलते हैं। खेलते समय दो खेलाड़ी परस्पर खेलते हैं। खेलनेवाले दाहिने हाथ में गतका और बाएँ हाथ में फरी रखते हैं। गतके के वार को विपक्षी फरी से रोकता है और रोक न सकने की अवस्था में चोट या मार खाता है। कभी-कभी खेलाड़ी केवल गतके ही से खेलते हैं। उस समय के खेल को 'एकगी' कहते हैं।

२. वह खेल जो फरी और गतके से खेला जाता है।

गतकुल—संज्ञा पुं० [सं०] वह सम्पत्ति जिसका कोई अधिकारी न बचा हो। लावारसी माल या जायदाद।

गतप्रत्यागत—संज्ञा पुं० [पुं०] १. संगीत में ताल के साठ भेदों में एक। २. गतागत। पैंतरा। कावा। उ०—गतप्रत्यागत में और प्रत्यावर्तन में दूर वे चले गए।—लहर, पृ० ६६।

गतप्रत्यागता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशास्त्र में वह स्त्री जो अपने पति के घर से उनकी आज्ञा के बिना निकलकर चली गई हो और फिर कुछ दिन बाद यथेच्छ बाहर रहकर अपने पति के घर लौट आई हो। ऐसी स्त्री के साथ उनके पूर्व पति का शास्त्रानुसार पुनर्विवाह संस्कार होना लिखा है।

गतप्राय—वि० [सं०] पि० स्त्री० गतप्राण] बीता हुआ।

गतविस्मय(पु)—वि० [सं०] आश्चर्य से मुक्त। विस्मय रहित। उ०—सुनि ये वचन नंद के नये। गोप सबै गतविस्मय भये।—नंद ग्रं०, पृ० ३११।

गतभर्तृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विधवा स्त्री। २. वह स्त्री जिसका पति परदेश गया हो। प्रोषितभर्तृका (क्व०)।

गतरस—वि० [सं०] रस से रहित। आनंदशून्य। नीरस। उ०—और कई जगह मकान गतरस हो गये।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १७४।

गतलक्ष्मीक—वि० [सं०] १. कांतिहीन। दीप्तिरहित। म्लान। २. घाटे की यंत्रणा से पीड़ित। धनवंचित [को०]।

गतव्यथ—वि० [सं०] पीड़ा या कष्ट से रहित [को०]।

गणवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन्वंतरि दिवोदास की माता का नाम।

गणवाद—संज्ञा पुं० [सं० गण+वाद] प्रजातंत्र। उ०—गीता में गणवाद का वह रूप है जो ब्राह्मणवाद का समर्थक होकर भी, अनेक नई सहूलियतें देकर, नए गणतंत्र का उदय प्रारंभ करता है।—प्रा० भा० प०, पृ० ३२५।

गणवेश—संज्ञा पुं० [सं०] वरदी। परिधान। पहनावा [को०]।

गणहास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गंध द्रव्य [को०]।

गणाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणों का मालिक या अधिपति। २. गणेश। ३. जैनों के अनुसार वह जो साधुओं के समुदाय में सबसे श्रेष्ठ या वृद्ध हो। साधुओं का अधिपति या महंत।

गणाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गणाधिप'।

गणाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणों का स्वामी। २. गणेश। ३. शिव।

गणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणना। गिनती (को०)।

गणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। २. गनियार वृक्ष। ३. एक फूल जो चमेली की तरह का होता है। ४. नायिका के तीन भेदों में से एक। वह नायिका या स्त्री जो द्रव्य के लोभ से नायक से प्रीति रखे। ५. हस्तिनी। हथिनी [को०]।

गणिकाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओं का निरीक्षक राजकर्मचारी या चौधरी।

विशेष—कौटिल्य के समय में इस प्रकार के कर्मचारी नियत करने की व्यवस्था थी।

गणिकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़।

गणिकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़।

गणित—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें मात्रा, संख्या और परिमाण का विचार हो।

विशेष—इसमें निर्धारित नियमों और क्रियाओं द्वारा ज्ञात मात्राओं, संख्याओं या परिमाणों के संबंध के आधार पर अज्ञात मात्रा, संख्या या परिमाण का निश्चय किया जाता है। अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति आदि इसकी शाखाएँ हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. हिसाब।

यौ०—गणितविद्या। गणितशास्त्र = दे० 'गणित'।

गणित²—वि० १. जो गिना हुआ हो। २. जोड़ा हुआ [को०]।

गणितज्ञ—वि० [सं०] १. गणित शास्त्र जाननेवाला। हिसाबी। २. ज्योतिषी।

गणितविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से पदार्थ बेचना। गणनापूर्वक वस्तुओं का विक्रय [को०]।

गणितानंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गणित+आनन्द] प्रसिद्ध या गिना हुआ सुख। उ०—देवलोक इंद्रलोक विधिलोक शिवलोक बैकुंठ के सुख लौं गणितानंद गायौ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६२२।

गणिती—संज्ञा पुं० [सं० गणितिन्] १. गणना करनेवाला व्यक्ति। २. गणितज्ञ [को०]।

गणी—संज्ञा पुं० [सं० गणिन्] आचार्य। सूरि। उ०—बुद्ध के समय में ही महावीर को संघी गणी, गणाचार्य, यशस्वी......और परिव्राजक में ज्येष्ठ माना गया।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३२।

गणीभूत—वि [सं०] किसी गण या वर्ग में मिला हुआ। २. गिना हुआ [को०]।

गणेय—वि० [सं०] गणनीय। गिनने योग्य [को०]।

गणेरु¹—संज्ञा पुं० [सं०] कर्णिकार वृक्ष [को०]।

गणेरु²—संज्ञा स्त्री० १. वेश्या। गणिका। २. हथिनी [को०]।

गणेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गणिका। कुटनी। २. नौकरानी। सेविका (को०)।

गणेश¹—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के एक प्रधान देवता जिनका सारा शरीर मनुष्य का है, पर सिर हाथी का सा है।

विशेष—इनके चार हाथ और एक दाँत है। तोंद निकली हुई है। सिर में तीन आँखें और ललाट पर अर्धचंद्र है। ये महादेव के पुत्र माने जाते हैं। इनकी सवारी चूहा है। पुराणों में लिखा है कि पहले इनका सिर मनुष्य का सा था; पर शनैश्चर की दृष्टि पड़ने से इनका सिर कट गया। इसपर विष्णु ने एक हाथी का सिर काटकर धड़ पर जोड़ दिया। इसके पीछे ये एक बार परशुराम जी से भिड़े, जिसपर परशुराम जी ने एक दाँत परशु से तोड़ डाला। किसी किसी पुराण में लिखा है कि दाँत रावण ने उखाड़ा था। किसी के मत से वीरभद्र या कार्तिकेय ने दाँत तोड़ा था। इसी प्रकार सिर कटने के विषय में भी मतभेद है। गणेश महादेव के गणों के अधिपति हैं। पुराणों का कथन है कि जो शुभ कार्यो के आरंभ में इनकी पूजा नहीं करता, उसके कामों में ये विघ्न कर देते हैं। इसी लिये समस्त मंगल कामों में इनकी पूजा होती है। यह बड़े लेखक भी हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले पहल इन्हीं ने लिखा था। इनके हाथों में पाश, अंकुश, पद्म और परशु है। ये हिंदुओं के पंचदेवों अर्थात् पाँच प्रधान देवताओं में हैं।

पर्या०—विनायक। विघ्नराज। द्वैमातुर। गणाधिप। एकदंत। हेरंब। लंबोदर। गजानन। विघ्नेश। परशुपाणि। गजास्य। आखुग। शूर्पकर्ण। गजानन।

गणेश²—वि० गणों का मालिक। गण का स्वामी। गण में जो प्रधान हो।

गणेशकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कनेर।

गणेशक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग की एक क्रिया जिसमें उँगली आदि की सहायता से गुदा का मल साफ करते हैं।

गणेशखंड—संज्ञा पुं० [सं० गणेशखण्ड] स्कंद पुराण का एक खंड जिसमें गणेश संबंधी विवरण दिए गए हैं (को०)।

गणेशचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी मास की, मुख्यतः भादों और माघ, की कृष्ण चतुर्थी। इस दिन गणेश का व्रत और पूजन किया जाता है।

गणेशपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण का नाम।

गणेशभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

गणवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन्वंतरि दिवोदास की माता का नाम।

गणवाद—संज्ञा पुं० [सं० गण + वाद] प्रजातंत्र। उ०—गीता में गणवाद का वह रूप है जो ब्राह्मणवाद का समर्थक होकर भी, अनेक नई सहूलियतें देकर, नए गणतंत्र का उदय प्रारंभ करता है।—प्रा० भा० प०, पृ० ३२५।

गणवेश—संज्ञा पुं० [सं०] वरदी। परिधान। पहनावा [को०]।

गणहास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गंध द्रव्य [को०]।

गणाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणों का मालिक या अधिपति। २. गणेश। ३. जैनों के अनुसार वह जो साधुओं के समुदाय में सबसे श्रेष्ठ या वृद्ध हो। साधुओं का अधिपति या महंत।

गणाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गणाधिप'।

गणाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणों का स्वामी। २. गणेश। ३. शिव।

गणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणना। गिनती (को०)।

गणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। २. गनियार वृक्ष। ३. एक फूल जो चमेली की तरह का होता है। ४. नायिका के तीन भेदों में से एक। वह नायिका या स्त्री जो द्रव्य के लोभ से नायक से प्रीति रखे। ५. हस्तिनी। हथिनी [को०]।

गणिकाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओं का निरीक्षक राजकर्मचारी या चौधरी।

विशेष—कौटिल्य के समय में इस प्रकार के कर्मचारी नियत करने की व्यवस्था थी।

गणिकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़।

गणिकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़।

गणित¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें मात्रा, संख्या और परिमाण का विचार हो।

विशेष—इसमें निर्धारित नियमों और क्रियाओं द्वारा ज्ञात मात्राओं, संख्याओं या परिमाणों के संबंध के आधार पर अज्ञात मात्रा, संख्या या परिमाण का निश्चय किया जाता है। अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति आदि इसकी शाखाएँ हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. हिसाब।

यौ०—गणितविद्या। गणितशास्त्र = दे० 'गणित'।

गणित²—वि० १. जो गिना हुआ हो। २. जोड़ा हुआ [को०]।

गणितज्ञ—वि० [सं०] १. गणित शास्त्र जाननेवाला। हिसाबी। २. ज्योतिषी।

गणितविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से पदार्थ बेचना। गणनापूर्वक वस्तुओं का विक्रय [को०]।

गणितानंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गणित + आनन्द] प्रसिद्ध या गिना हुआ सुख। उ०—देवलोक इंद्रलोक विधिलोक शिवलोक वैकुंठ के सुख लौं गणितानंद गायौ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६२२।

गणिती—संज्ञा पुं० [सं० गणितिन्] १. गणना करनेवाला व्यक्ति। २. गणितज्ञ [को०]।

गणी—संज्ञा पुं० [सं० गणिन्] आचार्य। सूरि। उ०—बुद्ध के समय में ही महावीर को संघी गणी, गणाचार्य, यशस्वी······और परिव्राजक में ज्येष्ठ माना गया।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३२।

गणीभूत—वि [सं०] किसी गण या वर्ग में मिला हुआ। २. गिना हुआ [को०]।

गणेय—वि० [सं०] गणनीय। गिनने योग्य [को०]।

गणेरु¹—संज्ञा पुं० [सं०] कर्णिकार वृक्ष [को०]।

गणेरु²—संज्ञा स्त्री० १. वेश्या। गणिका। २. हथिनी [को०]।

गणेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गणिका। कुटनी। २. नौकरानी। सेविका (को०)।

गणेश¹—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के एक प्रधान देवता जिनका सारा शरीर मनुष्य का है, पर सिर हाथी का सा है।

विशेष—इनके चार हाथ और एक दाँत है। तोंद निकली हुई है। सिर में तीन आँखें और ललाट पर अर्धचंद्र है। ये महादेव के पुत्र माने जाते हैं। इनकी सवारी चूहा है। पुराणों में लिखा है कि पहले इनका सिर मनुष्य का सा था; पर शनैश्चर की दृष्टि पड़ने से इनका सिर कट गया। इसपर विष्णु ने एक हाथी का सिर काटकर धड़ पर जोड़ दिया। इसके पीछे ये एक बार परशुराम जी से भिड़े, जिसपर परशुराम जी ने एक दाँत परशु से तोड़ डाला। किसी किसी पुराण में लिखा है कि दाँत रावण ने उखाड़ा था। किसी के मत से वीरभद्र या कार्तिकेय ने दाँत तोड़ा था। इसी प्रकार सिर कटने के विषय में भी मतभेद है। गणेश महादेव के गणों के अधिपति हैं। पुराणों का कथन है कि जो शुभ कार्यों के आरंभ में इनकी पूजा नहीं करता, उसके कामों में ये विघ्न कर देते हैं। इसी लिये समस्त मंगल कामों में इनकी पूजा होती है। वह बड़े लेखक भी हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले पहल इन्हीं ने लिखा था। इनके हाथों में पाश, अंकुश, पद्म और परशु है। ये हिंदुओं के पंचदेवों अर्थात् पाँच प्रधान देवताओं में हैं।

पर्या०—विनायक। विघ्नराज। द्वैमातुर। गणाधिप। एकदंत। हेरंब। लंबोदर। गजानन। विघ्नेश। परशुपाणि। गजास्य। आखुग। शूर्पकर्ण। गजानन।

गणेश² वि० गणों का मालिक। गण का स्वामी। गण में जो प्रधान हो।

गणेशकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कनेर।

गणेशक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग की एक क्रिया जिसमें उँगली आदि की सहायता से गुदा का मल साफ करते हैं।

गणेशखंड—संज्ञा पुं० [सं० गणेशखण्ड] स्कंद पुराण का एक खंड जिसमें गणेश संबंधी विवरण दिए गए हैं (को०)।

गणेशचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी मास की, मुख्यतः भादों और माघ, की कृष्ण चतुर्थी। इस दिन गणेश का व्रत और पूजन किया जाता है।

गणेशपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण का नाम।

गणेशभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

गणेशसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाणपत्य संप्रदाय के एक उपपुराण का नाम [को०]।

गण्य—वि०—[सं०] १. गिनने के योग्य। गिनती के लायक। २. जिसकी पूछ हो। जिसे लोग कुछ समझें। प्रतिष्ठित। उ०—सु वधू इस गण्य गेह की।—साकेत, पृ० ३६२।

यौ०—गण्यमान्य=प्रतिष्ठित।

गण्यपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से बिकनेवाली वस्तुएँ। वे पदार्थ जिनकी बिक्री गिनती के हिसाब से हो।

गतंडा—संज्ञा पुं० [सं० गताण्ड] [स्त्री० गतंडी] पुंस्त्वविहीन। हिजड़ा। नपुंसक।—(मारवाड़ी)।

गत¹—वि० [सं०] १. गया हुआ। बीता हुआ। जैसे—गत मास, गत दिन, गत वर्ष।

विशेष—समस्त पद के आदि में यह शब्द 'गया हुआ', 'रहित', 'शून्य' का अर्थ देता है और अंत में 'प्राप्त', 'आया हुआ', 'पहुँचा हुआ' का अर्थ देता है। जैसे,—गतप्राण, गतायु, तथा कंठगत, कुक्षिगत। उ०—अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ।—तुलसी (शब्द०)।

२. मरा हुआ। मृत।

मुहा०—गत होना=मरना। मर जाना।

३. रहित। हीन। खाली। उ०—सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।—तुलसी (शब्द०)।

गत²—संज्ञा स्त्री० [सं० गति] १. अवस्था। दशा। हालत।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

मुहा०—गत का=काम का। अच्छा। भला। जैसे -गत का कपड़ा भी तो उनके पास नहीं। गत बनाना=(१) दुर्दशा करना। दुर्गति करना। (२) अपमान। डाँटना डपटना। मारना पीटना। दंड देना। खबर लेना। जैसे,- घर पर जाओ, देखो तुम्हारी कैसी गत बनाई जाती है। (३) हँसी ठट्ठे में लज्जित करना। उपहास करना। झिपाना। उल्लू बनाना। जैसे,—वे अपने को बड़ा बोलनेवाला लगाते थे, कल उनकी भी खूब गत बनाई गई।

२. रूप। रंग। वेश। आकृति।

मुहा०—गत बनाना=(१) रूप रंग बनाना। वेश धारण करना। जैसे,—तुमने अपनी क्या गत बना रक्खी है। (२) अद्‌भुत रूप रंग बनाना। आकृति बिगाड़ना। जैसे,—होली में उनकी खूब गत बनाई जायगी।

३. काम में लाना। सुगति। उपयोग। जैसे—ये आम रखे हुए हैं; इनकी गत कर डालो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

४. दुर्गति। दुर्दशा। नाश। जैसे—तुमने तो इस किताब की गत कर डाली।

क्रि०प्र०— करना।—होना।

५. मृतक का क्रिया कर्म। ६. संगीत में बाजों के कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलाना। जैसे—सितार पर भैरवी की गत बजा रहे थे।

क्रि०प्र०—निकालना।—बजाना।

७. नृत्य में शरीर का विशेष संचालन और मुद्रा। नाचने का ठाठ। जैसे,—मोर की गत, थाली की गत, झुरमुट की गत।

क्रि०प्र०—भरना।

यौ०—गतकल्मष=पापरहित। कालुष्यविहीन। गतकाल= व्यतीत समय। बीता समय। गतक्लम=थकान रहित। गतचेतना=चेतनारहित। बेहोश। गतत्रप=लज्जारहित। निर्लज्ज। गतपंचमी(पु)=सूर्यमंडल भेदकर मुक्ति प्राप्त करने की अवस्था। पाँचवीं गति। मोक्ष। उ०—जूझ मुवा रण में जिके, गत पंचमी गयाह।—बाँकी ग्रं०,भा०,१, पृ० ३।

गतक—संज्ञा पुं० [सं०] गमन। गति। जाना [को०]।

गतका—संज्ञा पुं० [सं० गदा या गदक; मि० तु० कुत्कह्=मोटा और छोटा डंडा; फा०कुतका] १. लकड़ी का एक डंडा जिसके ऊपर चमड़े की खोल चढ़ी रहती है।

विशेष—यह डंडा ढाई तीन हाथ लंबा होता है जिसमें प्रायः दस्ता भी लगा रहता। लोग इसे लेकर खेलते हैं। खेलते समय दो खेलाड़ी परस्पर खेलते हैं। खेलनेवाले दाहिने हाथ में गतका और बाएँ हाथ में फरी रखते हैं। गतके के वार को विपक्षी फरी से रोकता है और रोक न सकने की अवस्था में चोट या मार खाता है। कभी-कभी खेलाड़ी केवल गतके ही से खेलते हैं। उस समय के खेल को 'एकगी' कहते हैं।

२. वह खेल जो फरी और गतके से खेला जाता है।

गतकुल—संज्ञा पुं० [सं०] वह सम्पत्ति जिसका कोई अधिकारी न बचा हो। लावारसी माल या जायदाद।

गतप्रत्यागत–संज्ञा पुं० [पुं०] १. संगीत में ताल के साठ भेदों में एक। २. गतागत। पैंतरा। कावा। उ०—गतप्रत्यागत में और प्रत्यावर्तन में दूर वे चले गए।—लहर, पृ० ६६।

गतप्रत्यागता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशास्त्र में वह स्त्री जो अपने पति के घर से उनकी आज्ञा के बिना निकलकर चली गई हो और फिर कुछ दिन बाद यथेच्छ बाहर रहकर अपने पति के घर लौट आई हो। ऐसी स्त्री के साथ उनके पूर्व पति का शास्त्रानुसार पुनर्विवाह संस्कार होना लिखा है।

गतप्राय—वि० [सं०] पि० स्त्री० गतप्राणा] बीता हुआ।

गतविस्मय(पु)—वि० [सं०] आश्चर्य से मुक्त। विस्मय रहित। उ०—सुनि ये बचन नंद के नये। गोप सबै गतविस्मय भये।—नंद ग्रं०, पृ० ३११।

गतभर्तृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विधवा स्त्री। २. वह स्त्री जिसका पति परदेश गया हो। प्रोषितभर्तृका (क्व०)।

गतरस—वि० [सं०] रस से रहित। आनंदशून्य। नीरस। उ०—और कई जगह मकान गतरस हो गये।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १७४।

गतलक्ष्मीक—वि० [सं०] १. कांतिहीन। दीप्तिरहित। म्लान। २. घाटे की यंत्रणा से पीड़ित। धनवंचित [को०]।

गतव्यथ—वि० [सं०] पीड़ा या कष्ट से रहित [को०]।

गणवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन्वंतरि दिवोदास की माता का नाम।

गणवाद—संज्ञा पुं० [सं० गण + वाद] प्रजातंत्र। उ०—गीता में गणवाद का वह रूप है जो ब्राह्मणवाद का समर्थक होकर भी, अनेक नई सहूलियतें देकर, नए गणतंत्र का उदय प्रारंभ करता है।—प्रा० भा० प०, पृ० ३२५।

गणवेश—संज्ञा पुं० [सं०] वरदी। परिधान। पहनावा [को०]।

गणहास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गंध द्रव्य [को०]।

गणाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणों का मालिक या अधिपति। २. गणेश। ३. जैनों के अनुसार वह जो साधुओं के समुदाय में सबसे श्रेष्ठ या वृद्ध हो। साधुओं का अधिपति या महंत।

गणाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गणाधिप'।

गणाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणों का स्वामी। २. गणेश। ३. शिव।

गणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणना। गिनती (को०)।

गणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। २. गनियार वृक्ष। ३. एक फूल जो चमेली को तरह का होता है। ४. नायिका के तीन भेदों में से एक। वह नायिका या स्त्री जो द्रव्य के लोभ से नायक से प्रीति रखे। ५. हस्तिनी। हथिनी [को०]।

गणिकाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओं का निरीक्षक राजकर्मचारी या चौधरी।

विशेष—कौटिल्य के समय में इस प्रकार के कर्मचारी नियत करने की व्यवस्था थी।

गणिकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़।

गणिकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़।

गणित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें मात्रा, संख्या और परिमाण का विचार हो।

विशेष—इसमें निर्धारित नियमों और क्रियाओं द्वारा ज्ञात मात्राओं, संख्याओं या परिमाणों के संबंध के आधार पर अज्ञात मात्रा, संख्या या परिमाण का निश्चय किया जाता है। अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति आदि इसकी शाखाएँ हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. हिसाब।

यौ०—गणितविद्या। गणितशास्त्र = दे० 'गणित'।

गणित[2]—वि० १. जो गिना हुआ हो। २. जोड़ा हुआ [को०]।

गणितज्ञ—वि० [सं०] १. गणित शास्त्र जाननेवाला। हिसाबी। २. ज्योतिषी।

गणितविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से पदार्थ बेचना। गणनापूर्वक वस्तुओं का विक्रय [को०]।

गणितानंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गणित + आनन्द] प्रसिद्ध या गिना हुआ सुख। उ०—देवलोक इंद्रलोक विधिलोक शिवलोक वैकुंठ के सुख लौं गणितानंद गायौ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६२२।

गणिती—संज्ञा पुं० [सं० गणितिन्] १. गणना करनेवाला व्यक्ति। २. गणितज्ञ [को०]।

गणी—संज्ञा पुं० [सं० गणिन्] आचार्य। सूरि। उ०—बुद्ध के समय में ही महावीर को संघी गणी, गणाचार्य, यशस्वी......और परिव्राजक में ज्येष्ठ माना गया।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३२।

गणीभूत—वि [सं०] किसी गण या वर्ग में मिला हुआ। २. गिना हुआ [को०]।

गणेय—वि० [सं०] गणनीय। गिनने योग्य [को०]।

गणेरु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कर्णिकार वृक्ष [को०]।

गणेरु[2]—संज्ञा स्त्री० १. वेश्या। गणिका। २. हथिनी [को०]।

गणेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गणिका। कुटनी। २. नौकरानी। सेविका (को०)।

गणेश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के एक प्रधान देवता जिनका सारा शरीर मनुष्य का है, पर सिर हाथी का सा है।

विशेष—इनके चार हाथ और एक दाँत है। तोंद निकली हुई है। सिर में तीन आँखें और ललाट पर अर्धचंद्र है। ये महादेव के पुत्र माने जाते हैं। इनकी सवारी चूहा है। पुराणों में लिखा है कि पहले इनका सिर मनुष्य का सा था; पर शनैश्चर की दृष्टि पड़ने से इनका सिर कट गया। इसपर विष्णु ने एक हाथी का सिर काटकर धड़ पर जोड़ दिया। इसके पीछे ये एक बार परशुराम जी से भिड़े, जिसपर परशुराम जी ने एक दाँत परशु से तोड़ डाला। किसी किसी पुराण में लिखा है कि दाँत रावण ने उखाड़ा था। किसी के मत से वीरभद्र या कार्तिकेय ने दाँत तोड़ा था। इसी प्रकार सिर कटने के विषय में भी मतभेद है। गणेश महादेव के गणों के अधिपति हैं। पुराणों का कथन है कि जो शुभ कार्यों के आरंभ में इनकी पूजा नहीं करता, उसके कामों में ये विघ्न कर देते हैं। इसी लिये समस्त मंगल कामों में इनकी पूजा होती है। यह बड़े लेखक भी हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले पहल इन्हीं ने लिखा था। इनके हाथों में पाश, अंकुश, पद्म और परशु है। ये हिंदुओं के पंचदेवों अर्थात् पाँच प्रधान देवताओं में हैं।

पर्या०—विनायक। विघ्नराज। द्वैमातुर। गणाधिप। एकदंत। हेरंब। लंबोदर। गजानन। विघ्नेश। परशुपाणि। गजास्य। आखुग। शूर्पकर्ण। गजानन।

गणेश[2]—वि० गणों का मालिक। गण का स्वामी। गण में जो प्रधान हो।

गणेशकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कनेर।

गणेशक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग की एक क्रिया जिसमें उँगली आदि की सहायता से गुदा का मल साफ करते हैं।

गणेशखंड—संज्ञा पुं० [सं० गणेशखण्ड] स्कंद पुराण का एक खंड जिसमें गणेश संबंधी विवरण दिए गए हैं (को०)।

गणेशचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी मास की, मुख्यतः भादों और माघ, की कृष्ण चतुर्थी। इस दिन गणेश का व्रत और पूजन किया जाता है।

गणेशपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण का नाम।

गणेशभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

गणेशसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाणपत्य संप्रदाय के एक उपपुराण का नाम [को०]।

गण्य—वि०—[सं०] १. गिनने के योग्य। गिनती के लायक। २. जिसकी पूछ हो। जिसे लोग कुछ समझें। प्रतिष्ठित। उ०—सु वधू इस गण्य गेह की।—साकेत, पृ० ३६२।

यौ०—गण्यमान्य=प्रतिष्ठित।

गण्यपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से बिकनेवाली वस्तुएँ। वे पदार्थ जिनकी बिक्री गिनती के हिसाब से हो।

गतंडा—संज्ञा पुं० [सं० गताण्ड][स्त्री० गतंडी] पुंस्त्वविहीन। हिजड़ा। नपुंसक।—(मारवाड़ी)।

गत¹—वि० [सं०] १. गया हुआ। बीता हुआ। जैसे—गत मास, गत दिन, गत वर्ष।

विशेष—समस्त पद के आदि में यह शब्द 'गया हुआ', 'रहित', 'शून्य' का अर्थ देता है और अंत में प्राप्त', 'आया हुआ', 'पहुँचा हुआ' का अर्थ देता है। जैसे,—गतप्राण, गतायु, तथा कंठगत, कुक्षिगत। उ०—अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ।—तुलसी (शब्द०)।

२. मरा हुआ। मृत।

मुहा०—गत होना=मरना। मर जाना।

३. रहित। हीन। खाली। उ०—सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।—तुलसी (शब्द०)।

गत²—संज्ञा स्त्री० [सं० गति] १. अवस्था। दशा। हालत।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

मुहा०—गत का=काम का। अच्छा। भला। जैसे - गत का कपड़ा भी तो उनके पास नहीं। गत बनाना=(१) दुर्दशा करना। दुर्गति करना। (२) अपमान। डाँटना डपटना। मारना पीटना। दंड देना। खबर लेना। जैसे, - घर पर जाओ, देखो तुम्हारी कैसी गत बनाई जाती है। (३) हँसी ठट्ठे में लज्जित करना। उपहास करना। झिपाना। उल्लू बनाना। जैसे,—वे अपने को बड़ा बोलनेवाला लगाते थे, कल उनकी भी खूब गत बनाई गई।

२. रूप। रंग। वेश। आकृति।

मुहा०—गत बनाना=(१) रूप रंग बनाना। वेश धारण करना। जैसे,—तुमने अपनी क्या गत बना रक्खी है। (२) अद्भुत रूप रंग बनाना। आकृति बिगाड़ना। जैसे,—होली में उनकी खूब गत बनाई जायगी।

३. काम में लाना। सुगति। उपयोग। जैसे—ये आम रखे हुए हैं; इनकी गत कर डालो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

४. दुर्गति। दुर्दशा। नाश। जैसे—तुमने तो इस किताब की गत कर डाली।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

५. मृतक का क्रिया कर्म। ६. संगीत में बाजों के कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलाना। जैसे—सितार पर भैरवी की गत बजा रहे थे।

क्रि०प्र०—निकालना।—बजाना।

७. नृत्य में शरीर का विशेष संचालन और मुद्रा। नाचने का ठाठ। जैसे,—मोर की गत, थाली की गत, झुरमुट की गत।

क्रि०प्र०—भरना।

यौ०—गतकल्मष=पापरहित। कालुष्यविहीन। गतकाल=व्यतीत समय। बीता समय। गतक्लम=थकान रहित। गतचेतना=चेतनारहित। बेहोश। गतत्रप=लज्जारहित। निर्लज्ज। गतपंचमी(पु)=सूर्यमंडल भेदकर मुक्ति प्राप्त करने की अवस्था। पाँचवीं गति। मोक्ष। उ०—जूझ मुवा रण में जिके, गत पंचमी गयाह।—बाँकी ग्रं०,भा०,१, पृ० ३।

गतक—संज्ञा पुं० [सं०] गमन। गति। जाना [को०]।

गतका—संज्ञा पुं० [सं० गदा या गदक; मि० तु० कुत्कह्=मोटा और छोटा डंडा; फा०कुतका] १. लकड़ी का एक डंडा जिसके ऊपर चमड़े की खोल चढ़ी रहती है।

विशेष—यह डंडा ढाई तीन हाथ लंबा होता है जिसमें प्रायः दस्ता भी लगा रहता। लोग इसे लेकर खेलते हैं। खेलते समय दो खेलाड़ी परस्पर खेलते हैं। खेलनेवाले दाहिने हाथ में गतका और बाएँ हाथ में फरी रखते हैं। गतके के वार को विपक्षी फरी से रोकता है और रोक न सकने की अवस्था में चोट या मार खाता है। कभी-कभी खेलाड़ी केवल गतके ही से खेलते हैं। उस समय के खेल को 'एकगी' कहते हैं।

१. वह खेल जो फरी और गतके से खेला जाता है।

गतकुल—संज्ञा पुं० [सं०] वह सम्पत्ति जिसका कोई अधिकारी न बचा हो। लावारसी माल या जायदाद।

गतप्रत्यागत—संज्ञा पुं० [पुं०] १. संगीत में ताल के साठ भेदों में एक। २. गतागत। पैंतरा। कावा। उ०—गतप्रत्यागत में और प्रत्यावर्तन में दूर वे चले गए।—लहर, पृ० ६६।

गतप्रत्यागता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशास्त्र में वह स्त्री जो अपने पति के घर से उनकी आज्ञा के बिना निकलकर चली गई हो और फिर कुछ दिन बाद यथेच्छ बाहर रहकर अपने पति के घर लौट आई हो। ऐसी स्त्री के साथ उनके पूर्व पति का शास्त्रानुसार पुनर्विवाह संस्कार होना लिखा है।

गतप्राय—वि० [सं०] पि० स्त्री० गतप्राण] बीता हुआ।

गतविस्मय(पु)—वि० [सं०] आश्चर्य से मुक्त। विस्मय रहित। उ०—सुनि ये वचन नंद के नये। गोप सबै गतविस्मय भये।—नंद ग्रं०, पृ० ३११।

गतभर्तृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विधवा स्त्री। २. वह स्त्री जिसका पति परदेश गया हो। प्रोषितभर्तृका (क्व०)।

गतरस—वि० [सं०] रस से रहित। आनंदशून्य। नीरस। उ०—और कई जगह मकान गतरस हो गये।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १७४।

गतलक्ष्मीक—वि० [सं०] १. कांतिहीन। दीप्तिरहित। म्लान। २. घाटे की यंत्रणा से पीड़ित। धनवंचित [को०]।

गतव्यथ—वि० [सं०] पीड़ा या कष्ट से रहित [को०]।

गतस्पृह—वि० [सं०] इच्छारहित। आकांक्षारहित [को०]।

गता(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० गात] दे० 'गात'। उ०—पीन पयोधर दूबरि गता। मेरु उपजल कनकलता।—विद्यापति, पृ० १७७।

गतांक—वि० [सं० गताङ्क] जिसमें सत्पुरुष के चिह्न अब न रह गए हों। गया बीता। निकम्मा। उ०—जाति का रघू ब्राह्मण था, पर कदर्यता में अत्यंत पामर महाशूद्र से भी गतांक केवल नामधारी ब्राह्मण था।—सौ अजान और एक सुजान (शब्द०) २. पिछला अंक (पत्रपत्रिकाओं के लिये)।

गतांत वि० [सं० गतान्त] १ जिसका अंत आ गया हो। २. अंत या पार तक पहुँचा हुआ [को०]।

गताक्ष—वि० [सं०] नेत्रविहीन। अंधा [को०]।

गतागत¹—वि० [सं०] आया गया।

गतागत² संज्ञा पुं० १. आवागमन। जन्ममरण। २. पैंतरा। कावा [को०]।

गतागति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गतागत' [को०]।

गतागम—संज्ञा पुं० [गत+आगम] भूत और भविष्य।

गताधि—वि० [सं०] आधि से मुक्त। चिंतारहित (को०)।

गतानुगत संज्ञा पुं० [सं०] अतीत का अनुगमन। पूर्व की प्रथाओं को मानना [को०]।

गतानुगतिक--वि० [सं०] अतीत का अंधानुसरण करनेवाला। अंधानुसरण करनेवाला [को०]।

गतायु—वि० [सं० गतायुष्] १. जिसकी आयु समाप्तप्राय हो। अत्यंत वृद्ध। २. निर्बल। कमजोर। अशक्त [को०]।

गतार†-संज्ञा स्त्री० [सं० गन्त्री+बैलगाड़ी] १. बैल के जूए में वे दोनों लकड़ियाँ जो उपरौंछी और तरौंछी के बीच समनांतर लगी रहती हैं। इन लकड़ियों के इधर उधर बैल नाधे जाते हैं। २. वह रस्सी जो जूए में बैल नाधने पर बैलों के गले के नीचे से ले जाकर लगा दी जाती है, जिससे बैल जूए को सहसा छोड़ नहीं सकते। ३. वह रस्सी जिससे बोझ बाँधा जाता है। जून।

गतारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं गतार] दे० 'गतार'।

गतार्तवा—वि० स्त्री० [सं०] १. जिसे ऋतु या रजोदर्शन न होता हो। २. वंध्या। ३. वृद्धा।

गतार्थ—वि० [सं०] १. धनहीन। निर्धन २. अर्थरहित। अर्थहीन। ३. जाना या समझा हुआ [को०]।

गतालोक—वि० [सं०] प्रकाशरहित। ज्योतिहीन [को०]।

गतासु—वि० [सं०] मरा हुआ। जीवनरहित। निष्प्राण [को०]।

गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक स्थान से दूसरे स्थान पर क्रमश; जाने की क्रिया। निरंतर स्थानत्याग की परंपरा। चाल। गमन। जैसे—वह बड़ी मंद गति से जा रहा है। २. हिलने डोलने की क्रिया। हरकत। जैसे—उसकी नाड़ी की गति मंद है। ३. अवस्था। दशा। हालत। उ०—भइ गति साँप छछूंदर केरी। तुलसी (शब्द०)। ४. रूप रंग। वेष। उ०—तन खीन, कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे।—तुलसी (शब्द०)। ५. पहुंच। प्रवेश। पैठ। दखल। जैसे - (क) मनुष्य की क्या बात, वहाँ तक वायु की भी गति नहीं है। (ख) राजा के यहाँ तक उनकी गति कहाँ। (ग) इस शास्त्र में उनकी गति नहीं है। ६. प्रयत्न की सीमा। अंतिम उपाय। दौड़। तदबीर। जैसे उसकी गति बस यहीं तक थी, आगे वह क्या कर सकेगा। ७. सहारा। अवलंब। शरण। उ०—तुमहिं छाँड़ि दूसरि गति नाहीं। बसहु राम तिनके उर माहीं।—तुलसी (शब्द०)। ८. चाल। चेष्टा। करनी। क्रियाकलाप। प्रयत्न। जैसे—उसकी गति सदा हमारे प्रतिकूल रहती है। ९. लीला। विधान। माया। उ०—दयानिधि, तेरी गति लखि न परे।—सूर (शब्द०) १०. ढंग। रीति। चाल। दस्तूर। जैसे—वहाँ की तो गति ही निराली है। ११. जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन।

विशेष—हिंदू शास्त्रों के अनुसार जीव की तीन गतियाँ है—उर्ध्वगति (देवयोनि), मध्यगति (मनुष्य योनि) और अधोगति (तिर्यक्‌योनि)। जैन शास्त्रों में गति पाँच प्रकार की कही गई है—नरकगति, तिर्यक्‌गति, मनुष्यगति, देवगति और सिद्धगति।

१२. मृत्यु के उपरांत जीवात्मा की दशा। उ०-(क) गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जो जाँचत जोगी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) साधुन की गति पावत पापी।—केशव (शब्द०)। १३. मृत्यु के उपरांत जीवात्मा की उत्तम दशा। मोक्ष। मुक्ति। जैसे पापियों की गति नहीं होती। उ०—है हरि कौन दोष तोहिं दीजै। जेहि उपाय सपने दुर्लभ गति सोइ निसि बासर कीजै।—तुलसी (शब्द०)। १४. कुश्ती आदि के समय लड़नेवालों के पैर की चाल। पैंतरा। उ०—जे मल्लयुद्धहि पेच बत्तिस गतिहु प्रत्यगतादि। ते करत लंकानाथ बानरनाथ ह्वै न प्रमादि।—रघुराज (शब्द०)। १५. ग्रहों की चाल, जो तीन प्रकार की होती है—शीघ्र मंद और उच्च। १६. ताल और स्वर के अनुसार अंगचालन। उ०—(क) सब अंग करि राखी सुघर नायक नेह सिखाय। रस जुत लेति अनंत गति पुतरी पातुर राय।—बिहारी (शब्द०)। (ख) कबिहिं अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा।—तुलसी (शब्द०) १५. सितार आदि बजाने में कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलान। दे० 'गत'। १८. रिसनेवाला व्रण। नासूर [को०]। ज्ञान [को०]।

गतिक-संज्ञा पुं० [सं०] गति। गमन। २. आसरा। आश्रय। सहारा। ३. मार्ग। राह। रास्ता। ४. अवस्था। स्थिति [को०]।

गतिभंग—संज्ञा पुं० [सं० गतिभङ्ग] १. ठहरना। रुकना। २. छंद, गान आदि में गायन या पाठ के क्रम में रुकावट या रोध आना [को०]।

गतिभेद—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'गतिभंग'।

गतिमंडल-संज्ञा पुं० [सं० गतिमण्डल] नृत्य में एक प्रकार का अंगहार।

गतिमय - वि० [सं०] गतिमान्। गति से युक्त [को०]।

गतिमान्—वि० [सं० गतिमत्] गतियुक्त। गतिशील। हरकत करनेवाला।

गतियां† - संज्ञा स्त्री० [हिं० गत+इया (प्रत्य)] तबलची।

गतिरोध—संज्ञा पुं० [सं० गति+रोध] चाल में रुकावट। गति रोकने

की क्रिया। उ०—तुम्हारा करता है गतिरोध पिता का कोई पूत प्रबोध।—अपरा, पृ० १३८।

गतिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समान वस्तुओं की परंपरा या सरणि। सिलसिला। ताँता। २. एक नदी का नाम। ३. वेत्र लता [को०]।

गतिवर्द्धक—संज्ञा पुं० [सं० गति+वर्द्धक] गति बढ़ानेवाला।

गतिवान—संज्ञा पुं० [सं० गति+हिं० वान] वेगयुक्त। गतिवाला। क्रियाशील। उ०—तात्या ने तुरंत अपनी छावनी के दो भाग करके उसको गतिवान किया और उसे एक ओर हटा लिया गया।—झाँसी०, पृ०।

गतिविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गतिविद्या'।

गतिविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित और विज्ञान का वह विभाग जिसमें द्रव्य की क्षमता या गति संबंधी सिद्धांत निर्धारित किए जाते हैं।

गतिविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० गति+विधि] चेष्टा। उद्यम। चालढाल। कार्य। उ०—सौराष्ट्र की गतिविधि देखने के लिये एक रण दक्ष सेनापति की आवश्यकता है।—स्कंद०, पृ० १३।

गतिशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गतिविद्या'। उ०—भारतीय भूगोल तथा ग्रहमंडल संबंधी गतिशास्त्र से भी परिचित थे।—पू० म० भा०, पृ० २८१।

गतिशील—वि० [सं०] गतिवाला [को०]।

गतिहीन—वि० [सं०] १. स्थिर। ठहरा हुआ। २. असहाय। परित्यक्त [को०]।

गत्ता—संज्ञा पुं० [देश०] कागज के कई परतों को साटकर बनाई हुई दफ्ती जो प्रायः जिल्द आदि बाँधने के काम आती है। कुट।

गत्तालखाता—संज्ञा पुं० [सं० गर्त्त, प्रा० गत्त+हिं० खाता] बट्टा खाता। गई बीती रकम का लेखा।

मुहा०—गत्तालखाते में जाना=हजम हो जाना। हड़प हो जाना। जैसे—हमने जो १० रु० पेशगी दिए, वह सब गत्तालखाते में गए। गत्तालखाते लिखना=हजम हुआ समझना। गया डूबा समझना।

गत्थ[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थ] दे० 'गथ'।

गत्थ[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, प्रा० गत्थ] १. पूँजी। जमा। गाँठ का धन। उ०—चिंता न कर अचिंत रहु देनहार समरत्थ। पसू पंखेरू जंतु जिव, तिनकी गाँठि न गत्थ।—कबीर (शब्द०)। २. गरोह। समूह। झुंड। उ०—फटकारि खेलहिं हत्थ मैं हय हाँकियो अरि गत्थ मैं।—सूदन (शब्द०)।

गत्वर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० गत्वरी] १. जानेवाला। गमनशील। १. क्षणिक। नाशवान्।

गत्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ८० हाथ लंबी, १० हाथ चौड़ी और ८ हाथ ऊँची होती थी और समुद्रों में चलती थी।

गथⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, प्रा० गत्थ] १. पूँजी। जमा। गाँठ का धन। उ०—(क) अति मलीन वृषभानुकुमारी। हरि श्रम जल अंतर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी। अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।—सूर (शब्द०)। (ख) बाजार चारु न बनइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइये।—तुलसी (शब्द०)। २. माल। उ०—मेरे इन नयनन इते करे। मोहन बदन चकोर चंद्र ज्यों इकटक तें न टरे।·····रही तड़ी खिजि लाज लकुट लै एकहु डर न डरे। सूरदास गथ खोटो काहे पारखि दोष धरे।—सूर (शब्द०)। ३. झुंड। गरोह।

गथना[1]Ⓟ—क्रि० स० [सं० ग्रन्थन] एक को दूसरे से मिलाना। एक में एक जोड़ना। आपस में गूथना। उ०—रथ ते रथ गथि मार मचावहिं। भट ते भट फिर तनहिं नचावहिं।—गोपाल (शब्द०)।

गथना[2]Ⓟ†—क्रि० स० [सं० गाथा] बातें बना बनाकर कहना। गढ़ गढ़कर कहना।

गद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोग। २. विष। ३. श्रीकृष्णचंद्र का छोटा भाई। यह भगवान् का भक्त था। उ०—सात्यकि दानपती कृतवर्मा। गद उल्मुक निसठहु धृत वर्मा।—रघुराज (शब्द०)।

यौ०—गदाग्रज=कृष्ण। गदबंधु=कृष्ण। उ०—चल्यो द्रुपद नृप बिसद घोर मदमत्त बीर बर। सँग पदचर हय दुरद हिये गदबंधु बैर धर।—गोपाल (शब्द०)।

४. रामचंद्र जी की सेना का सेनापति एक वानर। उ०—संग नील नल कुमुद गद जामवंत जुवराजु। चले राम पद नाइ सिर सगुन सुमंगल साजु।—तुलसी (शब्द०)। ५. एक असुर का नाम। ६. गर्जन। गड़गड़ाहट। मेघध्वनि [को०]।

गद[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह शब्द जो किसी गुलगुली वस्तु पर गुलगुली वस्तु का आघात लगने से होता है। जैसे,—पीठ पर गेंद गद से गिरा।

यौ०—गदागद=एक के ऊपर एक। लगातार (आघात)। २. स्थूलता। मोटापन।

गदका†—संज्ञा पुं० [हिं० गतका] १. दे० 'गतका'। २. बच्चों के हाथ पैर और कमर में पहनाया जानेवाला काला डोरा।

गदकारा—वि० पुं० [अनु० गद+कारा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० गदकारी] मुलायम और दबाने से दब जानेवाला। गुलगुला। गुदगुदा। उ०—गोरी गदकारी परै, हँसत कपोलन गाड़। कैसी लसति गँवारि यह, सुनकिरवा की आड़।—बिहारी (शब्द०)।

गदगदⓅ—वि० [सं० गद्गद] दे० 'गद्गद'। उ०—रुकि आँसू गदगद गिरा आँखिन कछु न लखात।—शकुंतला, पृ० ७०। (ख) कबहूँ कै हँसि उठय नृत्य करि रोवन लागय। कबहूँ गदगद कंठ शब्द निकसै नहिं आगय।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २६।

गदगदा†—संज्ञा पुं० [देश०] रत्ती का पौधा।

गदगोलⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० गण्ड (=एक अनिष्ट योग)+गोल] गोलमाल। उपद्रव। उ०—राजसा माँहि गदगोल बहु ऊपज्या तामसा माँहि अंधार भाई।—राम० धर्म०, पृ० ३८३।

गदचाम—संज्ञा पुं० [सं० गदचर्म] हाथी का एक रोग जिसमें उसकी पीठ पर घाव हो जाता है।

गदन—संज्ञा पुं० [सं०] कहना । कथन । वर्णन (को०) ।

गदना(पु)—क्रि० स० [सं० गदन] कहना । उ०—गदेउ गिरा गीर्वाणन सों गुणि बहुरि बतावहु बाता । कौन उपाय पाय सुर ऋषि गुणि करहि लंकपति घाता ।—रघुराज (शब्द०) ।

गदबदा—वि० [हिं०] कोमल । गदराया । गुदगुदा । उ०—नंगे तन, गदबदे, साँवले सहज, मिट्टी के मटमैले पुतले, पर फुर्तीले ।—युगवाणी; पृ० २७ ।

गदम—संज्ञा पुं० [अ० कदम या देश०] वह लकड़ी या कड़ी जो नाव बनाने या मरम्मत करने के समय उसके पर्दे में दोनों ओर इसलिये लगा देते हैं कि जिसमें वह इधर उधर गिर न पड़े । थाम । आड़ । पुश्ता ।

क्रि० प्र०— लगाना ।

गदमूल—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोग की जड़ । उ०—जजन जाजन जापरटन तीरथ दान ओषधि रसिक गदमूल देता ।—रैं० बानी, पृ० २० ।

गदयित्नु[१]—वि० [सं०] १. मुखर । बातूनी । वाचाल । २. कामी । कामुक (को०) ।

गदयित्नु[२]—संज्ञा पुं० १. शब्द । घोष । २. धनुष । ३. कामदेव (को०) ।

गदर[१]—संज्ञा पुं० [अ० ग़दर] १. हलचल । खलबली । उपद्रव । २. बलवा । बगावत । विद्रोह ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

गदर[२]—संज्ञा पुं० [हिं० गद्दा] पुष्टिमार्ग के अनुसार एक प्रकार की रूईदार बगलबंदी जो जाड़े में ठाकुर जी को पहनाते हैं ।

गदरा—वि० [हिं०] दे० 'गद्दर' ।

गदराना[१]—क्रि० अ० [अनु० गद्] १. (फल आदि का) पकने पर होना । परिपक्व होने के निकट होना । जैसे,—इस पेड़ के फल खूब गदराए है । २. जवानी में अंगों का भरना । युवावस्था के आरंभ में शरीर का पुष्ट और सुडौल होना । जैसे,—गदराया बदन । ३. आँख में कीचड़ आदि आना । आँख आने पर होना । जैसे,—आँख गदराना ।

गदराना[२](पु)†—वि० [हिं० गदराना] गदराया हुआ । भरा हुआ । उ० गदराने तन गोरटी ऐपन आड़ लिलार । हूंठचौ दै इठलाइ दृग करै गँवारि सुवार ।—बिहारी (शब्द०) ।

गदल(पु)† वि० [हिं०] दे० 'गदयला' । उ०—समुँद खार गंगा गदल, जल गुनवंता सीत । दरिया० बानी, पृ० ४० ।

गदला वि० [फ़ा० गंदह] मिट्टी या कीचड़ मिला हुआ । मटमैला । गंदा (पानी के लिये) । उ० यह संसार सभी बदला है, फिर भी नीर वही गदला है । आराधना, पृ० ७२ ।

गदलाना[१]—क्रि० स० [हिं० गदला] गदला करना । मटमैला करना (पानी के लिये) ।

गदलाना[२]—क्रि० अ० गदला होना । मटमैला होना ।

गदशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० गद + शत्रु] वैद्य । चिकित्सक । उ०—गदशत्रु त्रिदोष ज्यों दूरि करै वर । त्रिशिरा शिर त्यों रघुनंदन के शर ।—रामचं०, पृ० ७२ ।

गदह—संज्ञा पुं० [हिं० गदहा] 'गदहा' का समासगत रूप । जैसे,—गदहपचीसी, गदहपन आदि ।

गदहपचीसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गदहा+पचीसी] प्रायः १६ से २५ वर्ष तक की अवस्था जिसमें लोगों का विश्वास है कि मनुष्य अननुभवी रहता है और उसकी बुद्धि अपरिपक्व होती है । उ०—सच पूछो तो विचार को अवकाश उमर के धँसने ही पर मिलता है; गदहपचीसी प्रसिद्ध है ।—हिंदी प्रदीप (शब्द०) ।

गदहपन—संज्ञा स्त्री० [हिं० गदहा+पन (प्रत्य०)] मूर्खता । बेवकूफी ।

गदहपूरना—संज्ञा स्त्री० [सं० गदह=रोग रहनेवाला+पुनर्नवा] पुनर्नवा नाम का एक पौधा जो दवा के काम में आता है । वि० दे० 'पुनर्नवा' ।

गदहरा[१](पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० गदहा] दे० 'गदहा' ।

गदहरा[२](पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'गदेला' ।

गदहला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गदहिला' ।

गदहलोट संज्ञा स्त्री० [हिं० गदहा=गधा+लोटना] कुश्ती का एक पेंच ।

गदहलोटन—संज्ञा पुं० [हिं० गदहा+लोटना] १. थकावट मिटाने या प्रसन्नता आदि के लिये गदहे का जमीन पर लोटना । २. वह स्थान जहाँ पर गदहा लोटता है ।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि ऐसे स्थान पर पैर रखते ही मनुष्य थक जाता है और उसके पैरों में दर्द होने लगता है ।

गदहहेंचू—संज्ञा पुं० [हिं० गदहा+हेंचू (गदहे की बोली)] लड़कों का एक खेल ।

विशेष—इस खेल में एक लड़का एक दूसरे लड़के की आँखें बंद करके बैठ जाता है और उस लड़के से इधर उधर छिपे हुए शेष लड़कों का पता पूछता है । जिन लड़कों का पता वह ठीक बतला दे उन्हें 'गदही' और जिन्हें ठीक न बतला सके, उन्हें 'गदहा' कहते हैं । पीछे 'गदहे' एक एक करके 'गदहियों' पर चढ़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं । इस खेल को 'गदहा गदही' भी कहते हैं ।

गदहा[१]—संज्ञा पुं० [सं०] रोग हरनेवाला; वैद्य । चिकित्सक ।

गदहा[२]—संज्ञा पुं० [सं० गर्दभ, प्रा० गद्दह] [स्त्री० गदही] १. घोड़े के आकार का पर उससे कुछ छोटा एक प्रसिद्ध चौपाया जो प्रायः मटमैले रंग का और दो हाथ ऊँचा होता है । गधा । गर्दभ । खर ।

विशेष—इसका कान और सिर अपेक्षाकृत बड़ा होता है और पैर छोटे और बहुत मजबूत होते हैं; जिसके कारण यह ऊँची या ढालुआँ जमीन पर बड़ी सरलता से चल सकता है । यह बहुत मजबूत होता है और बहुत अधिक बोझ उठा सकता है । इस देश में इससे प्रायः धोबी, कुम्हार आदि अधिक काम लेते हैं । जंगली गदहे, जो प्रायः मध्य एशिया और फारस आदि में झुंड बाँधकर रहते हैं, अधिक चपल होते हैं, पर पालतू गदहे बोदे होते हैं । किसी किसी देश के गदहे सफेद रंग के या घोड़े

से बड़े भी होते हैं। फारस में गदहे का शिकार किया जाता है और लोग उसका मांस बड़ी रुचि से खाते हैं। इसकी अवस्था प्रायः २० से २५ वर्ष तक की होती है। युरोप आदि देशों में इनके चमड़े के जूते और थैले आदि बनते हैं। घोड़ी के साथ गदहे का अथवा गदही के साथ घोड़े का संयोग होने से खच्चर की उत्पत्ति होती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस कुछ भारी और बलप्रद होता है और इसका मूत्र कड़ुआ गरम और कफ; महावात, विष तथा उन्माद का नाशक और दीपक माना गया है।

पर्या०—चक्रीवान। वालेय। रासभ। खर। शंककर्ण। धूसर। भारग। वेशव। शीतलावाहन। वैशाखनंदन।

यौ०—गदहलोटन। गदहहेंचू।

मुहा०—गदहे पर चढ़ना=बहुत बेइज्जत या बदनाम करना। गदहे का हल चलना=बिलकुल उजड़ जाना। बरबाद हो जाना। जैसे, वहाँ कुछ दिनों में गदहों के हल चलेंगे।

गदहा³—वि० मूर्ख। बेवकूफ। नासमझ।

यौ०—गदहपचीसी।

गदहागदही—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गदहहेंचू'।

गदहिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गदहा+इया (प्रत्य०)] गदही।

गदहिला—संज्ञा पुं० [सं० गर्दभी, पा० गद्रभी, प्रा० गद्दही] [स्त्री० गदहिली] १. वह गदहा जिसपर ईंट, सुरखी आदि लादते हैं। २. गुबरीले की तरह का एक विषैला कीड़ा जो चने आदि की फसल में लगकर उसे नष्ट करता है।

गदतक—संज्ञा पुं० [सं० गद+अन्तक] अश्विनीकुमार (को०)।

गदांबर—संज्ञा पुं० [सं० गद+अम्बर] मेघ।

गदा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्राचीन अस्त्र का नाम जो लोहे आदि का होता है। इसमें लोहे का एक डंडा होता है जिसके एक सिरे पर भारी लट्टू लगा रहता है। इसका डंडा पकड़कर लट्टू की ओर से शत्रु पर प्रहार करते हैं। २. कसरत के उपकरणों में एक, जिसमें बाँस आदि के एक मजबूत डंडे के सिरे पर पत्थर का गोला छेदकर लगाते और उसे मुगदर की भाँति भाँजते हैं।

गदा²—वि० [फ़ा०] भिक्षुक। भिखमंगा। फकीर। उ०—सीकंदर और गदा दोऊ को एकै जानै।—पलटू० भा० १, पृ० १४। (ख) गदा समझ के वो चुप था मेरी जो शामत आई। उठा औ उठ के कदम मैंने पासबाँ के लिए।—कविता कौ०; भा० ४, पृ० ४७८।

यौ०—गदाई, गदागरी=भिक्षुकी। भिखमंगापन। फकीरी।

गदाई—वि० [फ़ा० गदा=फकीर+ई (प्रत्य०)] १. तुच्छ। नीच। क्षुद्र। उ०—नामा कहे सुनो भाई ये तो बम्मन गदाई।—दक्खिनी०, पृ० ४६। २. वाहियात। रद्दी।

गदाका¹†—वि० [हिं० गद] गुदार और सुडौल शरीरवाला।

गदाका²—संज्ञा पुं० किसी को उठाकर जमीन पर पटकने की क्रिया।

मुहा०—गदाका सुनाना=झिड़की सुनाना। फटकारना।

गदाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठरोग (को०)।

गदागद¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी आर्द्र या मुलायम चीज पर गिरने या आघात करने से उत्पन्न शब्द।

क्रि० प्र०—गिरना।—मारना।

गदागद²—संज्ञा पुं० [सं० द्वि० गदागदौ] अश्विनीकुमार (को०)।

गदाग्रणी—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय रोग। यक्ष्मा।

गदाधर¹—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। नारायण।

विशेष—विष्णु ने गदासुर नामक राक्षस की हड्डियों से एक गदा बनाकर धारण की थी, इसी से उनका नाम गदाधर पड़ा।

गदाधर²—वि० गदा धारण करनेवाला। जिसके पास गदा हो।

गदाराति—संज्ञा पुं० [सं०] दवा। औषध (को०)।

गदाला¹—संज्ञा पुं० [हिं० गदा] हाथी पर कसने का गद्दा।

गदाला²—संज्ञा पुं० [सं० प्रा० कुद्दाल; हिं० कुदाल] रंबा या बड़ी कुदाल।

गदावारण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्राचीन बाजा, जिसमें तार लगा रहता था।

गदाह्व, गदाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठ रोग (को०)।

गदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कथन। बोलना। भाषण (को०)।

गदित—वि० [सं०] कहा हुआ। कथित।

गदियाना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गद्याणक, गद्यानक] दे० 'गद्याणक'। उ०—उनमनि डांडी मन तराजू पवन किया गदियाना। गोरखनाथ जोगण बैठा, तब सोमां सहज समांना।—गोरख०, पृ० ९२।

गदी¹—वि० [सं० गदिन्] [स्त्री० गदिनी] १. रोगी। २. जो गदा लिए हो। जिसके पास गदा हो।

गदी²—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. कृष्ण (को०)।

गदेला¹—संज्ञा पुं० [हिं० गद्दा] १. रूई या पर आदि से भरा हुआ बहुत मोटा ओढ़ना या बिछौना। २. टाट का बना हुआ वह मोटा और भारी गद्दा जो हाथी की पीठ पर कसा जाता है।

गदेला²—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गदेली] छोटा लड़का। बालक।

गदेली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गदोरी'। उ०—ठोढ़ी को गदेली में भरकर पुचकारा।—मृग०, पृ० ५७।

गदोरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गद्दी] हथेली। हथोरी।

गद्गद¹—वि० [सं०] १. अत्यधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग से इतना पूर्ण कि अपने आप को भूल जाय और स्पष्ट शब्द उच्चारण न कर सके। २. अधिक हर्ष, प्रेम आदि के कारण रुका हुआ, अस्पष्ट या असंबद्ध। जैसे,—गद्गद कंठ। गद्गद वाणी। गद्गद स्वर। ३. प्रसन्न। आनंदित। पुलकित।

गद्गद²—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जिसमें रोगी शब्दों का स्पष्ट उच्चारण न कर सके अथवा उसके दोषवश एक एक अक्षर का कई कई बार उच्चारण करे। यह रोग या तो जन्म से होता है या बीच में लकवे आदि के कारण हो जाता है। हकलाना।

गद्गदस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्पष्ट स्वर। हकलाना। २. महिष। भैंसा (को०)।

गद्गदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गद्गदिका] हकलाहट (को०)।

गद्द[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. मुलायम जगह पर किसी चीज के गिरने का शब्द। २. किसी गरिष्ठ या जल्दी न पकनेवाली चीज के कारण पेट का भारीपन।

मुहा०—(किसी चीज का) **गद्द करना**=(किसी चीज का) पेट में जाकर न पचना और जम जाना। **गद्द धरना**=गद्द का रोग होना।

३. एक कल्पित लकड़ी जिसके विषय में गँवारों का विश्वास है कि वह जिसे स्पर्श करा दी जाय, उसे मूर्ख बना देती है अथवा स्पर्श करानेवाले के वश में कर देती है।

मुहा०—**गद्द मारना**=अपने वश में करना। **गद्द मारा जाना**=जड़ हो जाना। बेवकूफ बन जाना।

गद्द[2]—वि० जड़। मूर्ख। बेवकूफ।

गद्दम—संज्ञा पुं० [देश०] पीले रंग की एक छोटी चिड़िया जिसका पैर सफेद और पेट लाल होता है।

गद्दर—वि० [देश०] १. जो अच्छी तरह पका न हो। अधकचरा। अधपका। २. गुदगर। मोटा। गद्दा।

गद्दहⓤ—संज्ञा पुं० [सं० गर्दभ, प्रा० गद्दह] दे० 'गर्दभ'। उ०—बेसरि अरु गद्दह लष्ख इति का महिसा कोटी।—कीर्ति०, पृ० ६४।

गद्दा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० गद्द से अनु०] १. रूई, पयाल आदि भरा हुआ बहुत मोटा और गुदगुदा बिछौना। भारी तोसक आदि। गदेला। २. टाट का बना हुआ फुट भर मोटा एक चौकोर बिछावन जिसके बीच में प्रायः गज भर लंबा एक छेद होता है और जो हाथी की पीठ पर हौदा कसने से पहले रखकर बाँधा जाता है।

क्रि० प्र०—**कसना**।—**खींचना**।

३. घास, पयाल, रूई आदि मुलायम चीजों का बोझ। ४. किसी मुलायम चीज की मार या ठोकर।

क्रि० प्र०—**लगना**। **लगाना**।

गद्दा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'गदहिला'।

गद्दा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० या देश०] अनुमान। अटकल। उ०—किसी फिलासफर ने अक्ली गद्दे लड़ाने के सिवा और कुछ किया है?—गोदान, पृ० १२६।

गद्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गद्दा का स्त्री० और अल्पा०] १. छोटा गद्दा। २. वह कपड़ा जो घोड़े, ऊँट आदि की पीठ पर काठी या जीन आदि रखने के लिये डाला जाता है। ३. व्यवसायी आदि के बैठने का स्थान। जैसे,—सराफ की गद्दी, कलवार की गद्दी, महंत की गद्दी। उ०—इंद्र ने ... देवताओं के देखते मुझे अपनी गद्दी पर बिठाया।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

यौ०—**राजगद्दी**। **गद्दीनशीन**।

मुहा०—**गद्दी पर बैठना**=(१) सिंहासनारूढ़ होना। २. उत्तराधिकारी होना। **गद्दी लगाकर बैठना**=अधिकार जताते हुए आराम के साथ बैठना।

५. किसी राजवंश की पीढ़ी या आचार्य की शिष्यपरंपरा। जैसे,—(क) चार गद्दी के बाद इस वंश में कोई न रहेगा। (ख) यह ... गुरु की चौथी गद्दी है।

मुहा०—**गद्दी चलाना**=वंशपरंपरा या शिष्यपरंपरा का जारी होना। उत्तराधिकारियों का क्रम चलना।

६. कपड़े आदि की बनी हुई वह मुलायम तह जो किसी चीज के नीचे रखी जाय। ७. हाथ या पैर की हथेली।

मुहा०—**गद्दी लगाना**=घोड़े को हथेली या कुहनी से मलना।

८. एक प्रकार का मिट्टी का गोल बरतन जिसमें छीपी रंग रखकर छपाई का काम करते हैं।

गद्दीनशीं—वि० [हिं० गद्दी+फ़ा० नशीन्] दे० 'गद्दीनशीन'।

गद्दीनशीन—वि० [हिं० गद्दी+फ़ा० नशीन] १. सिंहासनारूढ़। जिसे राज्याधिकार मिला हो। २. उत्तराधिकारी।

गद्दीनशीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गद्दी+फ़ा० नशीन+ई (प्रत्य०)] गद्दी पर बैठना। अधिकारारूढ़ होना।

गद्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह लेख जिसमें मात्रा और वर्ण की संख्या और स्थान आदि आधार पर विराम या यति का कोई नियम या बंधन न हो। वार्तिक। वचनिका। २. काव्य के दो भेदों में से एक जिसमें छंद और वृत्त का प्रतिबंध नहीं होता और बाकी रस, अलंकार आदि सब गुण होते हैं।

विशेष—अग्निपुराण में गद्य तीन प्रकार का माना गया है—चूर्णक, उत्कलिका और वृत्तगंधि। चूर्णक वह है जिसमें छोटे छोटे समास हों, उत्कलिका वह है जिसमें बड़े बड़े समस्त पद हों, और वृत्तगंधि वह है जिसमें कहीं कहीं पद्य का सा आभास हो। जैसे,—हे बनवारी, कुंजविहारी, कृष्णमुरारी, यसोदानंदन हमारी विनती सुनो।' वामन ने भी अपने वामनसूत्र में ये ही तीन भेद माने हैं। विश्वनाथ महापात्र ने साहित्यदर्पण में एक और भेद मुक्तक माना है जिसमें कोई समास नहीं होता। ये भेद तो पदयोजना या शैली के अनुसार हुए। साहित्यदर्पण के अनुसार गद्यकाव्य दो प्रकार का होता है—(क) कथा और। (२) आख्यायिका। कथा वह है जिसमें सरस प्रसंग हो, सज्जनों और खलों के व्यवहार आदि का वर्णन हो और आरंभ में पद्यबद्ध नमस्कार हो। आख्यायिका में केवल इतनी विशेषता होती है कि उसमें कवि के वंश आदि का भी वर्णन होता है। गद्य के विषय में प्राचीनों के ये सब विवेचन आजकल उतने काम के नहीं हैं।

३. संगीत में शुद्ध राग का एक भेद।

गद्य[2]—वि० बोलने, कहने या उच्चारण के योग्य (को०)।

गद्याण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गद्याणक'।

गद्याणक—संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग देश का एक प्राचीन मान जो ४८ रत्ती या ६४ घुँघचियों का होता था।

गद्यात्मक—वि० [सं०] [स्त्री० गद्यात्मिका] गद्य में लिखा या रचा हुआ। गद्य का।

गद्यानक, गद्यालक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गद्याणक' [को०]।

गधा¹—संज्ञा पुं० [हिं गदहा] [स्त्री० गधी] दे० 'गदहा'।

गधा²—वि०[हिं०] नासमझ। मूर्ख। कमअक्ल (ला०)।

मुहा०—गधा पीटे घोड़ा नहीं होता=सिखाने से मूर्ख आदमी विद्वान् और नीच आदमी भला नहीं होता। गधे को बाप बनाना=काम साधने के लिये तुच्छ या जड़ आदमी की बड़ाई करना। गधे पर चढ़ना =दे० 'गदहे पर चढ़ाना'। गधे से हल चलवाना=बिलकुल उजाड़ देना। बरबाद कर देना।

गधापन—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'गदहपन'।

गधीला¹—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गधीली] एक जंगली जाति।

गधीला²—संज्ञा पुं० दे० 'गदहिला'।

गबूल—संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का नाम।

गधेड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गधी+एड़ी] अयोग्य या फूहड़ औरत।

गन(पु) संज्ञा पुं० [सं० गण] १. दूत। सेवक। पारिषद। उ०—जम गन मुँह मसि जग जमुना सी।—तुलसी (शब्द०)। २. चोवा नाम का गंधद्रव्य। उ०—स्वेद भरे तनसिज खरे करज लगे मन ठाम। सुथरे कच बिथुरे अरी लरी ललन ते वाम।—शृं० सत (शब्द०)। वि० दे० 'गण'।

गनक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गणक] दे० 'गणक'। उ०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।—मानस, २।३२२।

गनकेरुआ—संज्ञा पुं० [सं० गणकर्णिका] एक प्रकार की घास जो गाय भैंस के चारे के काम में आती है।

गनगनाना - क्रि० अ० [अनु०] (रोआँ) खड़ा होना। रोमांच होना।

गनगौर—संज्ञा स्त्री० [सं० गण+गौरी] १. चैत्र शुक्ल तृतीया। इस दिन गणेश और गौरी की पूजा होती है। उ०—चौस गनगौर के सु गिरिजा गुसाइन की छाई उदयपुर में बधाई ठौर ठौर है। पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२५। २. पार्वती। गिरिजा। उ०—(क) दै बरदान यहै हमको सुनियै गनगौर गुसाइन मेरी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२२। (ख) पारावार हेला महामेला में महेस पूछैं गौरन में कौन सी हमारी गनगौर है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२५।

गनती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गिनती'।

गनना¹†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'गिनना'।

गनना²†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गणना'।

गननाना†—क्रि० अ० [अनु० गन, गन] १. शब्द से भर जाना। गूँजना। उ०—छुटे बान कुह कुह कुह बोला। नभ गननाइ उठै गुरु गोला।—लाल (शब्द०)। २. चक्कर में आना। घूमना। फिरना।

गननायक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गणनायक] दे० 'गणनायक'। उ०—गननायक बरदायक देवा।—मानस, १।२५७।

गनप(पु) संज्ञा पुं० [सं० गणप] दे० 'गणप'। उ०—करि मज्जन पूजहिं नर नारी। गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी।—मानस, २।२७३।

गनपति(पु) संज्ञा पुं० [सं० गणपति] दे० 'गणपति'। उ०—आचार करि गुर गौर गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।—मानस, १।३२३।

गनरा भाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँडर > गनरा + भाँग] जंगली भाँग जिसमें नशा बिलकुल नहीं होता। कहीं इसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं।

गनराय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गणराज] गणेश।

गनवर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ+वर(प्रत्य०)] नरकट नाम की घास।

गनाना¹—क्रि० स० [हिं०] दे० 'गिनाना'। उ०—बहुत बिनै करि पाती पठई नृप लीजै सब पुहुप गनाइ।—सूर०, १०।५८२।

गनावा'—क्रि० अ० गिना जाना। गिनती में आना। उ०—बारह ओनइस चारि सताइस। जोगिनि पच्छिउँ दिसा गनाइस।—जायसी (शब्द०)।

गनिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गणिका] दे० 'गणिका'। उ०—गनिका सुत शोभा नहिं पावत जाके कुल कोऊ न पिता री।—सूर० १।३४।

गनियारी संज्ञा स्त्री० [सं० गणिकारी] या शमी की तरह का एक पौधा या झाड़ जिसे अगेथ या छोटी अरनी (अरणी) भी कहते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बबूल की पत्तियों से थोड़ी और गोलाई लिए होती हैं। इसमें सफेद फूल और करौंदे के समान छोटे छोटे फल लगते हैं। इसकी लकड़ी रगड़ने से आग जल्दी निकलती है, इसी से इसे 'क्षुद्राग्निमंथ' कहते हैं। वैद्यक में यह कटु, उष्ण, अग्निदीपक और वातनाशक मानी जाती है।

गनी¹—वि० [अ० ग़नी] १. धनी। धनवान। उ०—(क) गनी, गरीब ग्राम नर नागर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुमन बरसि रघुवर गुन बरनत हरषि देव दुंदुभी हनी। रंकनिवाज रंक राजा किए गए गरब गरि गरि गनी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३८९। २. निस्पृह। अनिच्छुक [को०]।

गनी—संज्ञा पुं० [अं०] पाट या सन की रस्सियों का बुना हुआ मोटा खुरदरा कपड़ा जो बोरा या थैला बनाने के काम में आता है। जैसे—गनी मार्केट। गनी ब्रोकर।

गनीम—संज्ञा पुं० [अ० ग़नीम] १. लुटेरा। डाकू। २. वैरी। शत्रु। उ०—अकबक बोलै यों गनीम औ गुनाही है।—पद्माकर (शब्द०)।

ग़नीमत संज्ञा स्त्री० [अ० ग़नीमत] १. लूट का माल। २. वह माल जो बिना परिश्रम मिले। मुफ्त का माल। जैसे,—उससे जो कुछ मिल जाय, वही गनीमत है।

क्रि० प्र०—जानना।—समझना।

३. संतोष की बात। धन्य मानने की बात। बड़ी बात। जैसे,—किसी तरह पेट पाल लें, यही गनीमत है।

मुहा०—किसी का दम गनीमत होना=किसी का बना रहना। किसी के लिये अच्छा होना। किसी के जीवन से किसी प्रकार की भलाई होना।

गनेल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो छप्पर छाने के काम में आती है।

गनोरिया-संज्ञा पुं० [लि०] सूजाक रोग।

गनौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुन्द्रा] नागरमोथा।

गन्ना—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] ईख। ऊख।

गन्नाटा—संज्ञा पुं० [अनु०] गननाने की ध्वनि। उ०—ज्यों ज्यों मथा गया जीवनरस, त्यों त्यों और जोर से उफना, मंथन के दाएँ बाएँ इन गन्नाटों में उलझा लघु मन।—अपलक, पृ० ३४।

गन्नी—संज्ञा पुं० [हिं० गोन (=रस्सी), या अं० गनी] १. पाट या टाट जिसके बोरे आदि बनते हैं। २. भँगारे की तरह का एक कपड़ा जो सिकिम में बनता है। यह रीहा घास या उसी तरह के और पौधों की छाल से बनता है।

गन्नेसⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गणेश] दे० 'गणेश'। उ०—जिते सैल सुर हेति सुरपति कीने। तिते सेस गन्नेस जाग्रे न चीने।—पृ० रा०, २।१११।

गन्यⓅ—वि [सं० गण्य] दे० 'गण्य'। उ०—हरि भक्त अनन्य में गन्य सदाँ, तुम्हारे सम धन्य न अन्य अहै।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४९३।

गप[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्प, प्रा० कप्प अथवा सं० जल्प > गल्प, हिं० गप्प [वि० गप्पी] १. इधर उधर की बात, जिसकी सत्यता का निश्चय न हो। २. वह बात जो केवल जी बहलाने के लिये की जाय। वह बात जो किसी प्रयोजन से न की जाय। बकवाद।

क्रि० प्र०—मारना।

यौ०—गप शप=इधर उधर की बातें। वार्तालाप।

३. झूठी बात। मिथ्या प्रसंग। कपोलकल्पना। जैसे,—यह सब गप है; एक बात भी ठीक नहीं है। ४. झूठी खबर। मिथ्या संवाद। अफवाह।

मुहा०- गप उड़ना=झूठी खबर फैलाना।

५. वह झूठी बात जो बड़ाई प्रकट करने के लिये की जाय। डींग।

क्रि० प्र०—मारना।—हाँकना।

गप[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह शब्द जो झट से निगलने, किसी नाम अथवा गीली वस्तु में घुसने या पड़ने आदि से होता है। जैसे—, (क) वह गप से मिठाई खा गया। (ख) घाव में इतनी सलाई गप से घुस गई।

विशेष—इस प्रकार के और अनुकरण शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी प्रकार सूचित करने के लिये प्रायः 'से' के साथ होता है।

यो०—गपागप=जल्दी जल्दी। झटपट।

२. निगलने या खाने की क्रिया। भक्षण। जैसे -(क) सब मत गप कर जाओ, हमारे खाने के लिये भी रहने दो। (ख) मीठा मीठा गप, कड़ुवा कड़ुवा थू।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

गपकना—क्रि० स० [अनु० गप+हिं० करना] चटपट निगलना। झट से खा लेना। जैसे—वह थाली में का सब भात गपक जायगा।

गपछैया—संज्ञा स्त्री० [देश०] बालू में छिपनेवाली एक प्रकार की मछली जिसे रेगमाही कहते हैं।

गपड़चौथ—संज्ञा पुं० [हिं० गपोड़ (=बातचीत)+चौथ > हिं० चोंथना] व्यर्थ की गोष्ठी। वह व्यर्थ की बातचीत जो चार आदमी मिलकर करें।

क्रि० प्र०—करना। होना।

गपड़चौथ[2]—वि० लीपपोत। अंडबंड। ऊटपटाँग।

गपनाⓅ—क्रि० स० [हिं० गप] गप मारना। व्यर्थ बात करना। बकवाद करना। बकना। उ०—राम राम राम राम राम राम जपत। मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत। कहु के लहु फल रसाल बबुर बीज बपत। हरहिं जनि जनम जाय गालगूल गपत।—तुलसी (शब्द०)।

गपाटा—संज्ञा पुं० [हिं० गप] गपड़चौथ। गप्पबाजी। उ०—सर्व मनुष्य गपाटा में लग रहे हैं किसी को सत्य की सुधि नहीं, अचेत हो रहे हैं।—कबीर मं०, पृ० ६१४।

गपिया वि० [हिं० गप+इया (प्रत्य०)] गप मारनेवाला। झूठ मूठ की बात कहनेवाला। बकवादी। गप्पी।

गपिहाⓅ—वि० [हिं० गप+हा] (प्रत्य०)] गप हाँकनेवाला। गप्पी। बकवादी। उ०—कूकैं कलापी न चूकैं कहूँ झुकि झूकै समीर की आन झकोरन। त्यों पपिहा पपिहा गपिहा भयो पीव को नाँव लै हीय हलोरत।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

गपोड़[1]—संज्ञा पुं० [हिं० गप+ओड (प्रत्य०)] दे० 'गपोड़ा'।

गपोड़[2]—वि० गप्पी, गप्प हाँकनेवाला।

गपोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गप] मिथ्या बात। कपोल कल्पना। गप। जैसे,—आजकल वे खूब गपोड़े उड़ाते हैं।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उड़ाना।—मारना।

यौ० गपड़चौथ। गपोड़ेबाजी।

गपोड़ेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गपोड़ा=फा० बाजी] झूठमूठ की बकवास।

गप्प—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गप'।

गप्पा—संज्ञा पुं० [अनु० गप्] १. धोखा।

मुहा० गप्पा खाना=धोखे में आना। चूकना।

२. पुरुष की इंद्रिय। लिंग। (बाजारू)।

गप्पाष्टक—संज्ञा स्त्री० [हिं० गप्प+सं० अष्टक] दे० 'गपड़चौथ'। उ०—सैकड़ों मनुष्यों में बैठे भाँति भाँति की गपाष्टक होती। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१०।

गप्पी—वि० [हिं० गप्प+ई (प्रत्य०)] १. गप मारनेवाला। छोटी बात को बढ़ाकर कहनेवाला। जल्पक। २. मिथ्याभाषी। झूठा।

गप्फा—संज्ञा पुं० [सं० ग्रास, हिं० गस्सा अथवा अनु० गप्] १. बहुत बड़ा ग्रास जो खाने के लिये उठाया जाय। बड़ा कौर। जैसे,—दो गप्फे खा लें, तब चलें।

मुहा०- गप्फा मारना=बड़ा कौर खाना।

२. लाभ। फायदा। उ०—जिधर गप्फा अच्छा मिले, वहीं चले जायँ।—सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)।

गफ—वि० [सं० ग्रप्स=गुच्छा] घना। ठस। गाढ़ा। गफ्फिन। 'झीना' का उलटा।

विशेष—यह शब्द ऐसी बुनावट के लिये प्रयुक्त होता है, जिसके तागे घने अर्थात् परस्पर खूब मिले हों। जैसे,—वह कपड़ा गफ है। यह खाट गफ बुनी है।

गफलत—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़फ़लत] असावधानी। बेपरवाई।२. चेत या सुध का अभाव। बेखबरी। ३. प्रमाद। भूल। चूक। भ्रम।

गफिलाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ग़ाफ़िल] १. असावधानी। बेपरवाई। २. भ्रम। मोह। उ०—ऐसा योग न देखा भाई। भूला फिरै लिए गफिलाई।—कबीर (शब्द०)।

गफ्फार—वि० [अ० ग़फ़्फ़ार] बहुत बड़ा दयालु। ईश्वर का एक विशेषण। उ०—तूँ दातरा है तूँ सत्तार, गफ्फार गमख्वार है। दक्खिनी०, पृ० २३०।

गबड्डी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कबड्डी'।

गबदा†—वि० पुं० [हिं गबद्द] [वि० स्त्री० गबदी] दे० गबद्द'।

गबदी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मुलायम और डालियाँ घनी तथा छतनार होती हैं। इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और उनके पीछे की ओर रोईं होती है। माघ फागुन में इसमें सुनहले पीले रंग के फूल लगते हैं। यह पेड़ सिवालिक की पहाड़ियों तथा उत्तरीय अवध, बुंदेलखंड और दक्षिण में होता है। इसकी छाल से कतीरे की तरह का एक प्रकार का सफेद गोंद निकलता है।

गबद्द—वि० [हिं० गावदी] पशु की सी बुद्धिवाला। जड़। मूर्ख।

गबन[1]—संज्ञा पुं० [अ०] व्यवहार में मालिक के या किसी दूसरे के सौंपे हुए माल को खा लेना। खयानत।

क्रि० प्र०—करना।

गबर—संज्ञा पुं० [अं० स्क्रैमर] वह पाल जो सब पालों के ऊपर होता है।

गबर[2]—क्रि० वि० [हिं०] शीघ्रता। जल्दीबाजी।

यौ०—गबर गबर।

गबरगंड—वि० [हिं० गबर + सं० गण्ड=मूर्ख] मूर्ख। अज्ञानी। जड़। उ०—क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना, गबरगंड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है?—सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)।

गबरहा†—वि० [हिं गोबरहा] गोबर मिला हुआ। गोबर लगा।

मुहा०—गबरहा करना=बरतन के साँचे पर गोबर और मिट्टी चढ़ाना।

गबरा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'गब्बर'।

गबरू[1]—वि० [फ़ा० ख़ूबरू] १. उभड़ती जवानी का। जिसे रेख उठती हो। पट्ठा। उ०—काहे को भये उदास सैंया गबरू। तुमरी खुशी से खुशी मोरे लबरू।—दुर्गाप्रसाद मिश्र (शब्द०)। २. भोलाभाला। सीधा।

गबरू[2]†—संज्ञा पुं० दूल्हा। पति।

गबरून—संज्ञा पुं० [फ़ा० गम्बरून] चारखाने की तरह का एक मोटा कपड़ा जो लुधियाने में बुना जाता है।

विशेष—कहते हैं कि यह पहले गंबरून नामक स्थान से आता था। गंबरून को कोई कोई फारस के बंदर अब्बास का पुराना नाम बतलाते हैं और कोई शाम देश (सीरिया) का गंबरूनिया नामक नगर बतलाते हैं।

गबी—वि० [अं० गबी] मंदबुद्धि। कमअक्ल [को०]।

गबीना—संज्ञा पुं० [देश०] कतीला। कतीरा।

गब्ब(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गर्व, प्रा० गब्ब] गर्व। अभिमान। अकड़। उ०—नहिं गब्बत करि गब्ब, नहिन गज्जत घन गज्जत।—पृ० रा० ६। १०३।

गब्बना(पु)—क्रि० अ० [सं० गमन, प्रा० गवण] दे० 'गमना'। उ०—नहिं गब्बत करि गब्ब, नहिन गज्जत घन गज्जत।—पृ० रा० ६। १०३।

गब्बर—वि० [सं० गर्व, गर्वर, पा० गब्ब] १. घमंडी। गर्वीला। अहंकारी। उ०—सजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत हैं। भूषन भनत नाद बिहद नगारन के नदी नद मद गब्बरन के रलत हैं। —भूषण (शब्द०)। ढीठ। ३. कहने पर किसी काम को जल्दी न करनेवाला या पूछने पर किसी बात का जल्दी उत्तर न देनेवाला। नटखट। ४. बहुमूल्य। कीमती। जैसे,—गब्बर माल। ५. मालदार। धनी। जैसे,—गब्बर असामी।

गब्बू†—संज्ञा पुं० [अ० गबी] मंद। सुस्त। कमजोर।

गब्भा—संज्ञा पुं० [सं० गर्भ पा० गब्भ] १. वह बिछावन जिसमें रूई भरी हुई हो। गद्दा। तोशक। २. चारे का गट्ठा।

गब्र—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जरतुश्त का अनुयायी। पारस देश का अग्निपूजक। पारसी।

गभ—संज्ञा पुं० [सं०] भग।

गभरू—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़ूबरू, हिं० गबरू] दे० 'गबरू'। उ०—साँवला सोहन मोहन गभरू इत बल आइ गया।—घनानंद, पृ० ३४०।

गभस्तल—संज्ञा पुं० [सं० गभस्तिमान्] गभस्तिमान् द्वीप का नाम।

गभस्ति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. किरण। २. सूर्य। ३. बाँह। हाथ।

गभस्ति[2]—संज्ञा स्त्री० अग्नि की स्त्री। स्वाहा।

गभस्तिकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। आदित्य [को०]।

गभस्तिनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

गभस्तिपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

गभस्तिमान्[1]—संज्ञा पुं० [सं० गभस्तिमत्] १. सूर्य। २. एक द्वीप का नाम। ३. एक पाताल का नाम।

गभस्तिमान्[2]—वि० किरणयुक्त। प्रकाशयुक्त। चमकीला।

गभस्तिमाली—संज्ञा पुं० [सं० गभस्तिमालिन्] सूर्य। किरणमाली [को०]।

गभस्तिहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

गभस्थल—संज्ञा पुं० [सं० गभस्तिमान् हिं० गभस्तल] गभस्तिमान् द्वीप। उ०—द्वीप गभस्थल आरन परा। दीप महुस्थल मानस हरा।—जायसी ग्रं, पृ० १०।

गभार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गह्वर, प्रा० गब्भर, गह्वर ?] अनेक अनर्थों

का संकट,] अपशकुन। संकट। विपत्ति। उ०—सवद्ध सियाँन सुसेन कपोत। सनमुख साहि दिख्यौ दल दोत। भयौ दिसि वानिय कग्ग करार। रुक्यौ दिवि धोमय धूम गभार।—पृ० रा०, ६।६६।

गभीर—वि० [सं०] दे० 'गंभीर'।

गभीरा—वि० स्त्री० [सं० गभीर] दे० 'गंभीर'। उ०—गई शयनालय में तत्काल; गभीरा सरिता सी थी चाल।—साकेत, पृ० ३२।

गभीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभीर ध्वनि देनेवाला बड़ा ढोल [को०]।

गभुआर(पु)†—वि० [सं० गर्भ, पा० गब्भ+आर (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० गभुआरी] १. गर्भ का (बाल)। जन्म के समय का रखा हुआ (बाल)। उ०—(क) गभुआरी अलकावली लसैं लटकन ललित ललाट। जनु उड़गन विधु मिलन को चले तम विदारि करि बाट।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गभुआरे सिर केश है ते बधू सँवारे। लटकन लटकै भाल पर विधु मधि गत तारे।—सूर (शब्द०)। २. जिसके सिर के जन्म के बाल न कटे हों। जिसका मुंडन न हुआ हो। ३. नादान। बहुत छोटा। अनजान। उ०—अमर सरिस सुंदर सुछवि ता पर अति गभुआर। नहिं जानत रणविधि कछू नहिं देहौं निज वार।—रघुराज (शब्द०)।

गभुवार(पु)†—वि० [हिं० गभुआर] दे० 'गभुआर'।

गम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. राह। मार्ग। रास्ता। २. गमन। प्रयाण। ३. मैथुन। सहवास। ४. सड़क। पथ (को०)। ५. शत्रु पर अभियान। कूच (को०)। ६. अविचारिता। विचारशून्यता (को०)। ७. ऊपरीपन। अटकलपच्चू निरीक्षण (को०)। ८. पासे का खेल [को०]।

गम²—संज्ञा स्त्री० [सं० गम्य] (किसी वस्तु या विषय में) प्रवेश। पहुँच। गुजर। पैठ। जैसे जिस विषय में तुम्हारी गम नहीं है, उसमें न बोलो। उ०—(क) चींटी जहाँ न चढ़ि सकै राई नहिं ठहराइ। आवागमन कि गम नहीं तहँ सकलो जग जाइ।—कबीर (शब्द०) (ख) असुरपति अनि ही गर्व धरयो। तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो मो सन्मुख को आइ?—सूर (शब्द०)।

मुहा०—गम करना† = चट कर जाना। पेट में डाल लेना। खा लेना। उ०—चारि वृक्ष छह शाखा वाके पत्र अठारह भाई। एतिक लै गैया गम कीन्हों गैया अति हरहाई।—कबीर (शब्द०)।

गम³—संज्ञा पुं० [अ० ग़म] १. दुःख। शोक। रंज।

मुहा०—गम खाना=क्षमा करना। जाने देना। ध्यान न देना। उ०—तस्कर के कुत धर्म, दुष्ट के कुत गम खाना।—रघुनाथ (शब्द०)। गम गलत करना=दुःख भुलाना। शोक दूर करने का प्रयत्न करना।

२. चिंता। फिक्र। ध्यान। उ०—सरस सर जिन वेधिया सर, बिनु गम कछु नाहिं। लागि चोट जो शब्द की करक करेजे माहिं।—कबीर (शब्द०)।

गमक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० गमिका] १. जानेवाला। २. बोधक। सूचक। बतलानेवाला।

गमक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. संगीत में एक श्रुति या स्वर पर से दूसरी श्रुति या स्वर पर जाने का एक प्रकार।

विशेष—इसके सात भेद हैं—कंपित, स्फुरित, लीन, भिन्न, स्थविर, आहत और आंदोलित। पर साधारणतः लोग गाने में स्वर के कँपाने को ही गमक कहते हैं।

२. तबले की गंभीर आवाज।

गमक³—संज्ञा स्त्री० [सं० गमक=जाने या फैलनेवाला] महक। सुगंध। जैसे,—इस फूल की गमक चारो ओर फैल रही है।

गमकना—क्रि० अ० [हिं० गमक+ना (प्रत्य०)] १. सुगंध देना। महकना। २. गूँज पैदा होना। ३. खुशी या उत्साह से भरना।

गमकीला†—वि० [हिं० गमक+ईला (प्रत्य०)] गमकने या महकनेवाला। सुगंधित।

गमकौआ†—वि० [हिं० गमक] दे० 'गमकीला'।

गमखार—वि० [फ़ा० ग़मख्वार] १. गमखोर। २. हमदर्द। उ०—कोई दिलवर यार नहीं गमखार किसे ठहराऊँ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६०।

गमखोर—वि० [फा० ग़मख्वार या ग़मखोर] [संज्ञा ग़मखोरी] सहिष्णु। सहनशील।

गमखोरी—संज्ञा स्त्री० [फा० ग़मख्वारी] सहिष्णुता। सहनशीलता

गमख्वार—वि० [फ़ा० ग़मख्वार] [संज्ञा ग़मख्वारी] १. सहिष्णु। सहनशील। २. दुःख या कष्ट में हाथ बढ़ानेवाला। हमदर्द।

गमगीन—वि० [फा० ग़मगीन] [संज्ञा ग़मगीनी] दुःखी। उदास। खिन्न। व्यथित।

गमगुसार—संज्ञा पुं० [फा० ग़मगुसार] वह जो किसी को कष्ट में देख कर दुःखी होता हो। सहानुभूति रखने या दिखलानेवाला। हमदर्द।

गमजदा—वि० [फा० ग़मज़दह] संतप्त। दुःखी। खिन्न।

गमत—संज्ञा पुं० [सं० गमन या गमथ पथिक] १. रास्ता। मार्ग। २. पेशा। व्यवसाय।

गमतखाना—संज्ञा पुं० [अ० गमद=कुए में जल की अधिकता ?] नाव में वह स्थान जहाँ पानी रसकर या छेदों से आकर इकट्ठा होता है और उलीचकर बाहर फेंक दिया जाता है। बंघाल। गमतरी।—(लश०)।

गमतरी—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़मद] गमतखाना। बंघाल (लश०)।

गमता—संज्ञा वि० [अ० ग़मद ?] [स्त्री० गमती] चूनेवाला (लश०)।

गमथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मार्ग। राह। २. व्यापार। पेशा। ३. आमोद प्रमोद। ४. राह चलनेवाला। पथिक।

गमन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गमनीय, गम्य] १. जाना। चलना। यात्रा करना। २. वैशेषिक दर्शन के अनुसार पाँच प्रकार के कर्मों में से एक। किसी वस्तु के क्रमशः एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त होने का कर्म। संभोग। मैथुन। जैसे,—वेश्यागमन। ४. राह। रास्ता। ५. सवारी आदि, जिनकी सहायता से यात्रा की जाय। ६. प्राप्त करना। पहुँचना (को०)।

यौ०—गमनागमन = आवागमन। आना जाना।

गमनना(पु)—क्रि० अ० [सं० गमन+हिं० ना (प्रत्य०)] जाना।

उ०—साहसुता गमनी तहाँ विशद कनात लिवाइ।—रघुराज (शब्द०)।

गमनपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने का अधिकार मिले। चालान। रवन्ना।

गमना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० गमन] जाना। चलना। उ०—अगम सबहि बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी।—तुलसी (शब्द०)।

गमना[2]—क्रि० अ० [अ० गम=रंज+हिं० ना (प्रत्य०)। १. गम करना। शोक करना। २. परवाह करना। ध्यान देना। उ०—मेरे तौ न उर रघुवीर सुनौ साँची कहौं खल अनखैहैं तुम्हैं सज्जन न गमिहैं।—तुलसी (शब्द०)।

गमनाक—वि० [फ़ा० गमनाक] शोकपूर्ण। दुःखभरा।

गमनीय—वि० [सं०] दे० 'गम्य'।

गमला—संज्ञा पुं० [?] १. नाँद के आकार का मिट्टी या धातु आदि का बना हुआ एक प्रकार का पात्र जिसमें फूलों के पेड़ और पौधे लगाए जाते हैं। २. लोहे, चीनी मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का बरतन जिसमें पाखाना फिरते हैं। कमोड।

गमागम—संज्ञा पुं० [सं०] आना जाना।

गमाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० गुम] गुम करना। खोना। गँवाना। उ०—(क) हा हा करति कंचुकी माँगति अंबर दिए मन भाए। कीन्हीं प्रीति प्रगट मिलिवे की अँखियन शर्म गमाए।—सूर (शब्द०)। (ख) हा! लाल! उसे भी आज गमाया मैंने।—साकेत, पृ० २३१।

गमार†—वि० [हिं० गँवार] गाँव का रहनेवाला। गँवार। देहाती। उ०—त्यौं रन ठाठ बुंदेला ठाटे। खेत गमार चार सै काटे।—लाल (शब्द०)।

गमारि(पु)गमारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गँवारी'। उ०—(क) एक हमें नारि गमारि सबहु तह दोसरे सहज मतिहीनी।—विद्यापति, पृ० १२५। (ख) हरिक संगे किछु डर नहि हे तुहे परम गमारी।—विद्यापति, पृ० २४५।

गमि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पहुँच। पैठ। प्रवेश।

गमी[1]—वि० [सं० गमिन्] जानेवाला। गमन करनेवाला [को०]।

गमी[2](पु)—संज्ञा पुं० पथिक। यात्री [को०]।

गमी[3]—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़म] १. शोक की अवस्था या काल। २. वह शोक जो किसी मनुष्य के मरने पर उसके संबंधी करते हैं। सोग। ३. मृत्यु। मरनी। जैसे,—उनके यहाँ गमी हो गई। उ०—रुपया इस मुल्क के आदमियों का शादी गमी में बहुत खर्च होता है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

गम्मत†—संज्ञा स्त्री० [मराठी] १. हँसी दिल्लगी। विनोद। २. मौज। बहार।

गम्य—वि० [सं०] १. जाने योग्य। गमन योग्य। २. प्राप्य। लभ्य। ३. गमन करने योग्य। संभोग करने योग्य। भोग्य। ४. साध्य। ५. समझ में आ जानेवाला। सुबोध [को०]।

गयंद—संज्ञा पुं० [सं० गजेन्द्र, प्रा० गयिंद, गइंद] १. बड़ा हाथी। २. दोहे का दसवाँ भेद जिसमें १३ गुरु और २१ लघु होते हैं। जैसे—राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरहु जौ चाहसि उँजियार।—तुलसी।

गयंद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] गजेंद्र। श्रेष्ठ हाथी। उ०—झूमति चलि मद मत्त गयंद ज्यों मलकत बाँह दुराइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६।

गय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर। मकान। २. अंतरिक्ष। आकाश। ३. धन। ४. प्राण। ५. रामायण के अनुसार एक वानर का नाम जो रामचंद्र की सेना का एक सेनापति था। ६. महाभारत के अनुसार एक राजर्षि का नाम जिनकी कथा द्रोण पर्व में है। ७. पुत्र। अपत्य। ८. एक असुर का नाम। ९. गया नामक तीर्थ।

गय[2]—संज्ञा पुं० [सं० गज, प्रा० गय] हाथी। उ०—सुरगण सहित इंद्र ब्रज आवत धवल बरन ऐरावत देख्यो उतरि गगन ते धरनि धँसावत। अमरा शिव रवि शशि चतुरानन हय गय वसह हंस मृग जावत।—सूर (शब्द०)।

गय—संज्ञा स्त्री० [सं० गति, प्रा० गय] दे० 'गति'। उ०—लाँबी काँब चटक्कड़ा गय लंबा वइ जाल।—ढोला०, दू० ४१०।

गयगैनि(पु)—वि० स्त्री० [सं० गजगामिनी] दे० 'गजगामिनी'। उ०—मलयज घसि घनसार मैं खौरि किए गयगैनि।—स० सप्तक, पृ० २५०।

गयण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गगन, प्रा० गयण] गगन। आकाश। उ०—कूँभावत आनौ जुध कोडे, उठियौ गयण भुजा डँड ओडे।—रा० रू०, पृ० २५२।

गयनाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० गय(=गज)+नाल=नली] एक प्रकार की तोप जिसे हाथी खींचते हैं। गजनाल।

गयल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं] दे० 'गैल'।

गयवली—संज्ञा पुं० [देश०] मझोले कद के एक पेड़ का नाम।

विशेष—यह अवध, अजमेर, गोरखपुर और मध्यप्रदेश में होता है। इसका फल लोग खाते हैं और छाल चमड़ा सिझाने के काम में लाते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत होती हैं और खेती के 'सँगहे' और गाड़ी बनाने के काम में आती है।

गयवा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसे मोहेली भी कहते हैं।

गयशिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतरिक्ष। आकाश। २. गया के पास का एक पर्वत जिसके विषय में पुराणों का कथन है कि यह गय नामक असुर के सिर पर है। ३. गया तीर्थ।

गया[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बिहार या मगध देश का एक विशेष पुण्य-स्थान जिसका उल्लेख महाभारत और वाल्मीकीय रामायण से लेकर पुराणों तक में मिलता है।

विशेष—यह एक प्राचीन तीर्थ स्थान और यज्ञस्थल था। पुरानों में इसे राजर्षि गय की राजधानी लिखा है, जहाँ गयशिर पर्वत पर उन्होंने एक बृहत् यज्ञ किया था और ब्रह्मचर नामक तालाब बनवाया था। महात्मा बुद्धदेव के समय में भी गयशिर प्रधान यज्ञस्थल था। राजगृह से आकर वे पहले यहीं पर ठहरे थे और किसी यज्ञ के यजमान के अतिथि हुए थे। फिर वे यहाँ से थोड़ी दूर निरंजना नदी के

किनारे उरुवेला गाँव में तप करने चले गए थे। इस स्थान को आजकल बोधगया कहते हैं यहाँ बहुत सी छोटी छोटी पहाड़ियाँ हैं। यह तीर्थ श्राद्ध और पिंडदान आदि करने के लिये बहुत प्रसिद्ध है, और हिंदुओं का विश्वास है कि बिना वहाँ जाकर पिंडदान आदि किए पितरों का मोक्ष नहीं होता। कुछ पुराणों में इसे गय नामक असुर द्वारा निर्मित या उसके शरीर पर बसी हुई कहा गया है।

गया२—संज्ञा स्त्री० [सं० गया (तीर्थ)] गया में होनेवाली पिंडोदक आदि क्रियाएँ।

मुहा०—**गया करना**=गया में जाकर पिंडदान आदि करना। जैसे—वह बाप की गया करने गए हैं। **गया बैठाना**=गया में पितरों का श्राद्ध करके स्थापित करने की परंपरा।

गया३—क्रि० अ० [सं० गम्] 'जाना' क्रिया का भूतकालिक रूप। प्रस्थानित हुआ।

मुहा०—**गया गुजरा या गया बीता**=बुरी दशा को पहुंचा हुआ। नष्ट। निकृष्ट।

गयापुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गया'।

गयारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी काश्तकार की वह जोत जिसे वह लावारिस छोड़कर मर गया हो।

गयाल†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह जायदाद जिसका कोई उत्तराधिकारी या दावेदार न हो। गलंश।

गयाल२—संज्ञा पुं० [दं०] एक जानवर का नाम।

विशेष—यह आसाम में मिलता है। वहाँ इसका मांस खाया जाता है और मादा का दूध पीते हैं।

गयावाल१—संज्ञा पुं० [हिं० गया+वाल] गया तीर्थ का पंडा।

गयावाल२—वि० १. गया से संबंध रखनेवाला। २. गया में होने या रहनेवाला।

गरंड—संज्ञा पुं० [सं० गण्ड=मंडलाकार रेखा] चक्की के चारों ओर बना हुआ मिट्टी का घेरा जिसमें आटा गिरता है।

गरंथⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ] दे० 'ग्रंथ'। उ०—कहा होई जोगी भए और पुनि पढ़े गरंथ।—चित्रा० पृ० ४८।

गरँऊँ†—संज्ञा पुं० [देश०] आटा गिरने के लिये बना हुआ चक्की के चारों ओर का घेरा। गरंड।

गर१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बहुत कड़ुवा और मादक रस जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था। २. एक रोग जिसमें घिग्घी बँध जाता है और मूर्छा आती है। ३. रोग। बीमारी। ४. विष। जहर। ५. वत्सनाभ। बछनाग। ६. ज्योतिष में ग्यारह करणों में से पाँचवाँ करण। ७. निगलना। घोंटना (को०)।

गरⓅ**†**—संज्ञा पुं० [हिं० गल] गला। गरदन। उ०—होती जौ अजान तौ न जानती इतीक बिथा मेरे जिय जान तेरो जानिबो गरे परयो।—देव (शब्द०)।

गर३—प्रत्य० [फ़ा०, ने०] (किसी काम को) बनाने या करनेवाला। इसका प्रयोग केवल समस्त पदों के अंत में होता है। जैसे—सौदागर, कारीगर, बाजीगर, कलईगर, कुंदीगर आदि।

गर४—अव्य० [फ़ा० अगर का संक्षिप्त रूप] यदि। जो। अगर।

गरई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

गरकⓅ**१**—वि० [अ० ग़र्क़] १. डूबा हुआ। निमग्न। २. विलुप्त। नष्ट। बरबाद। तबाह। ३. (किसी कार्य आदि में) लीन। मग्न। उ०—ऋषभदेव बोले नहीं रहे ब्रह्ममें होइ, गरक भए निज ज्ञान मैं द्वैत भाव नहि कोई।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६।

गरक२Ⓟ—वि० [देश०] सघन। गंभीर। गहरा। उ०—गरक घटा उमँड़ी गरज, हरप सिखंडी होय।—रघु० रू०, पृ० ६३।

गरकाव१—संज्ञा पुं० [अ० ग़रक़ाव] डूबने का भाव। डुबाव।

गरकाव२—वि० १. निमग्न। डूबा हुआ। २. बहुत अधिक लीन।

गरकी१—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़रक़+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. डूबने की क्रिया या भाव। डूबना।

मुहा०—**गरकी देना**=कष्ट देना। दुःख देना।

२. पानी का इतना अधिक बरसना या बाढ़ आना कि जिससे फसल आदि डूबकर नष्ट हो जाय। बूड़ा। अतिवृष्टि।

क्रि०प्र०—**लगना**।

३. वह भूमि जो पानी के नीचे हो। ४. नीची भूमि जहाँ पानी रुकता हो। खलार। ५. लँगोटी। कौपीन।

गरकी२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] चरखी। घिरनी। गराड़ी।

गरक्कⓅ—वि० [हिं०] दे० 'गरक'। उ०—छत्र खसै धरनीं घसै तीनिउँ लोक गरक्क।—संतवाणी०, पृ० १३६।

गरगज१—संज्ञा पुं० [हिं० गढ़+गज] १. किले की दीवारों पर बना हुआ बुर्ज, जिसपर तोपें रहती हैं। उ०—गरगज बाँधि कमानैं धरी। वज्र अगिन मुख दारू भरी।—जायसी (शब्द०)। २. वह ऊँचा कृत्रिम ढूह या टीला जिसपर युद्ध की सामग्री रखी जाती है और जहाँ से शत्रु की सेना का पता चलाया जाता है।

क्रि० प्र०—**बाँधना**।

३. नाव के ऊपर की तख्तों से बनी हुई छत। ४. वह तख्ता जिसपर फाँसी देने के समय अपराधी को खड़ा करके उसके गले में फंदा लगाते हैं। टिकठी।

गरगज२†—वि० बहुत बड़ा। विशाल। जैसे—गरगज घोड़ा, गरगज जवान।

गरगरा—संज्ञा पुं० [अनु०] गराड़ी। घिरनी। चरखी।—(लश०)।

गरगवा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. नर गौरैया। चिड़ा। २. एक प्रकार की घास।

विशेष—यह धान की फसल को बढ़ने नहीं देती। इसे केवल भैंसें खाती हैं।

गरगाव—वि० [अ० ग़रक़ाब] दे० 'गरकाव'।

गरघ्न—वि० [सं०] १. विष को नष्ट करनेवाला। विषनाशक। २. स्वास्थ्यकर [को०]।

गरज१—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्जन] बहुत गंभीर और तुमुल शब्द। जैसे, बादल की गरज, सिंह की गरज, वीरों की गरज आदि।

गरज²—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़रज़] १. आशय। प्रयोजन। मतलब। उ०—अपनी गरघनु बोलियतु कहा निहोरी तोहि। तू प्यारी मो जीय कौं, मो ज्यौ प्यारौ मोहि।—बिहारी र०, दो० ४०६।

मुहा०—गरज गाँठना=मतलब सीधा करना। प्रयोजन निकालना। काम सिद्ध करना।

२. आवश्यकता। जरूरत।

क्रि०प्र०—रखना।—रहना। निकालना।

३. चाह। इच्छा।

यौ०—गरजमंद।

क्रि० प्र०—रखना।—रहना।—होना।

मुहा०—गरज का बावला=अपनी गरज के लिये सब कुछ करनेवाला। जो अपनी लालसा पूरी करने के लिये भला बुरा सब कुछ करने को तैयार हो जाय। जो अपना मतलब पूरा करने के लिये हानि भी सह ले।

गरज³—क्रि० वि० १. निदान। आखिरकार। अततोगत्वा। २. अस्तु। भला। अच्छा। खैर।

विशेष—यह संयोजक अव्यय का भाव लिए रहता है।

मुहा०—गरज कि=मतलब यह कि। तात्पर्य यह कि। अर्थात्। यानी।

गरजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गर्जन] गंभीर शब्द। गरज। कड़क। २. गरजने का भाव। ३. गरजने की क्रिया।

गरजना¹—क्रि० अ० [सं० गर्जन] १. बहुत गंभीर और तुमुल शब्द करना। जैसे—बादल का गरजना, शेर का गरजना, वीरों का गरजना। उ०—(क) घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दस दस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर। सिंघनाद करि गरजा, मेघनाथ बलबीर।—तुलसी (शब्द०)। २. चटकना। तड़कना। जैसे,—मोती का गरजना, या गरजा हुआ मोती।

गरजना²(पु)†—वि० [हिं० गरजना] गरजनेवाला। जोर से बोलनेवाला। उ०—राजपंखि पेखा गरजना।—जायसी (शब्द०)।

गरजमंद—वि० [अ० ग़रज+फ़ा० मंद] [स्त्री० गरजमंदी] जिसे आवश्यकता हो। जरूरतवाला। ३. इच्छुक। चाहनेवाला।

गरजी—वि० [अ० गरज+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. गरजमंद। गरजवाला। मतलब रखनेवाला। २. चाहनेवाला। इच्छा करनेवाला। गाहक। उ०—ब्रजराज कुमार बिना सुनु भृंग अनंग भलो जिय को गरजी।—तुलसी (शब्द०)।

गरजुआ¹—संज्ञा पुं० [हिं० गरजना] एक प्रकार की खुमी।

विशेष—यह गोल और सफेद रंग की होती है और बरसात में पहला पानी पड़ने पर प्रायः साखू आदि के पेड़ों के आसपास या मैदानों में भूमि से निकल आती है। इसके अंदर डंठी और ऊपर छत्ता नहीं होता, केवल गूदा ही गूदा होता है। इसकी तरकारी खाने में स्वादिष्ट होती है। लोगों का विश्वास है कि यह बादल के गरजने से पृथ्वी से निकलता है। सफेरा, गगनधूल आदि इसी के भेद हैं।

गरजुआ²†—वि० [हिं०] गरजमंद। जरूरतवाला।

गरजू†—वि० [हिं०] दे० 'गरजी'।

गरट्ट(पु)—संज्ञा पुं० [पुं० ग्रन्थ, पा० गंठ, हिं० गट्ठ] १. समूह। झुंड। उ०—(क) गरजन गरट्ट दै कै बाजिन के ठट्ट दै कै ग्राम धाम दै के प्रियवृंद सतकारे हैं।—रघुराज (शब्द०)। (ख) हैवर हरट्ट साजि गैवर गरट्ट सम पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की।—भूषण (शब्द०)। २. बहुत घना। सघन। उ०—आँब भलौ ऊगौ अठै गहरौ छाँह गरट्ट।—बाँकी० ग्रं०, भा० १. पृ० ४६।

गरड(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० गरुड] दे० 'गरुड़'। उ०—ज्यूँ ज्यूँ भुयंगम आवै जाइ मुरही धर नहीं गरड रहाइ।—गोरख०, पृ० ६३।

गरडा(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का मोटा चावल। उ०—दुधइ न्हिहावऊँ घणी हों नीवात। भैंस को दही थर गरडा को भात।—बी० रासो०, पृ० ६३। एक प्रकार का मटमैला रंग। उ०—अवलख सु गरडा रंग, लक्खी जु अति ही उमंग।—ह० रासो, पृ० १२५।

गरथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गथ'। उ०—गरथ न बाँधे गारुडी नहि नारी सो नेह।—दादू०, ३०४।

गरद¹ वि० [सं०] १. विष देनेवाला। विषप्रद। २. अस्वास्थ्यकर (को०)।

गरद²—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

गरद³†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'गर्द'।

गरदन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. धड़ और सिर को जोड़नेवाला अंग। ग्रीवा।

मुहा०—गरदन उठाना=विरोध करना। सिर उठाना। गर्दन उड़ाना=सिर काटना। मार डालना। गरदन ऐंठना=दे० 'गरदन मरोड़ना'। गर्दन ऐंठी रहना=घमंड में रहना या नाराज रहना। गरदन काटना=(१) धड़ से सिर अलग करना। मार डालना। (२) बुराई करना। हानि पहुँचाना। गरदन का डोरा=गले की वे नसें जो सिर के हिलाने या बात करने के समय हिलती हुई दिखाई पड़ती हैं। गरदन का बोझ=कर्तव्य या उत्तरदायित्व संबंधी भार। गरदन झुकना=(१) नम्र, आज्ञाकारी या अधीन होना। (२) लज्जित होना। शरमाना। (३) बेहोश होना। (४) मरना। गरदन झुकाना=(१) नम्रता, आज्ञाकारिता या अधीनता प्रकाशित करना। (२) लज्जित होना। झपना। गरदन ढलना या ढलकना=मरना। आसन्न मरण होना। गरदन न उठाना=(१) सब बातों को चुपचाप सुन या सह लेना। (२) लज्जित होना। शर्मिंदा होना। (३) बीमारी का कारण पड़े रहना जैसे—जबसे यह लड़का बुखार में पड़ा है; तबसे इसने गरदन नहीं उठाई। गरदन नापना=(१) कहीं से निकाल बाहर करने के लिये किसी की गरदन पकड़ना। गरदनियाँ देना। (२) अपमान करना। बेइज्जती करना। गरदन पकड़कर निकालना=अपमान करना। बेइज्जती करना। गरदन पर=ऊपर। जिम्मे। जैसे,—इसका पाप तुम्हारी गरदन पर है। गरदन पर खून लेना=अपने ऊपर हत्या लेना। हत्या का अपराधी होना। (अपनी) गरदन पर जुआ रखना=किसी भारी काम का बोझ लेना। किसी भारी काम में तत्पर

होना। (दूसरे की) **गरदन पर जुआ रखना**=भारी काम सुपुर्द करना। **गरदन पर बोझ होना**=(१) खलना। बुरा लगना। कष्टकर प्रतीत होना। (२) भार होना। सिर पड़ना। **गरदन पर सवार होना**=दे॰ 'सिर पर सवार होना'। **गरदन फँसना**=(१) अधिकार में आना। वश में होना। काबू में होना। (२) जोखों में पड़ना। **गरदन मरोड़ना**=(१) गला दबाना। मार डालना। (२) पीड़ित करना। कष्ट पहुँचाना। **गरदन मारना**=सिर काटना। मार डालना। **गरदन में हाथ देना या डालना**=(१) अपमान करना। बेइज्जती करना। (२) कहीं से निकाल बाहर करने के लिये गरदन पकड़ना। गरदनियाँ देना। **गरदन हिलने लगना**=बहुत वृद्ध होना।
२. वह लंबी लकड़ी जो जुलाहों की लपेट के दोनों सिरों पर गाड़ी साली जाती है। साल। ३. बरतन आदि का ऊपरी पतला भाग।

यौ॰—गरदनजनी=मार डालना। कत्ल करना। **गरदनबंद**=गले में पहनने का एक प्रकार का आभूषण जिसे गुलूबंद कहते हैं।

गरदन घुमाव—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गरदन+घुमाना] कुश्ती का एक पेंच।
विशेष—इसमें खेलाड़ी अपने जोड़ का दाहिना या बाँया हाथ पकड़कर अपनी गरदन चढ़ाता और उसे सामने की ओर पटक देता है।

गरदन तोड़—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गरदन+तोड़ना] कुश्ती का एक दाँव।
विशेष—इसमें जोड़ की गरदन पर दोनों हाथों की उँगलियों को गाँठकर ऐसा झटका देते हैं कि वह झुक जाता है और कुछ अधिक जोर करने पर बेकाम होकर गिर जाता है।

यौ॰—गरदनतोड़ बुखार=एक प्रकार का सांघातिक ज्वर।

गरदन बाँध=संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गरदन+बाँधना] कुश्ती का एक पेंच।
विशेष—इसमें जोड़ की गरदन से दोनों हाथ उसकी बगल में से ले जाकर अंदर उसकी छाती पर बाँधते और उसके सिर को बगल में दबाकर पैर से झट से गिरा देते हैं।

गरदना†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गरदन] १. मोटी गरदन। गरदन। २. वह धौल या झटका जो गरदन पर लगे।
क्रि॰ प्र॰—जड़ना।—देना।—लगाना।
मुहा॰—गरदन सही या रसीद करना=गरदन पर धौल लगना।
३. गरदन पर का मांस।—(कसाई)।

गरदनियाँ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गरदन+इयाँ (प्रत्य॰)] (किसी को किसी स्थान से) गरदन पकड़कर या गरदन में हाथ डालकर निकालने की क्रिया। अर्द्धचंद्र।
क्रि॰ प्र॰—देना।—खाना।—मिलना।

गरदनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गरदन+ई (प्रत्य॰)] १. अंगे या कुरते आदि का गला। गरेबान। २. एक आभूषण जो गले में पहना जाता है। हँसुली। ३. अर्द्धचंद्र। गरदनियाँ। ४. घस्सा जो पहलवान एक दूसरे की गरदन पर लगाते हैं। रद्दा। कुंदा। ५. वह कपड़ा जो घोड़े की गरदन से बाँधा और पीठ पर डाला जाता है। ६. कारनिस। कँगना।
क्रि॰ प्र॰—लगाना।
७. कुश्ती का एक पेंच।

गरदर्प—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सर्प। साँप। भुजंग।—अनेक (शब्द॰)।

गरदा†—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ गर्द] धूल। गुबार। मिट्टी। खाक। गर्द।
क्रि॰ प्र॰—उड़ना।—उड़ाना।—फेंकना।—डालना।

गरदान[1]—वि॰ [फ़ा॰] घूम फिरकर एक ही स्थान पर आनेवाला।

गरदान[2]—संज्ञा पुं॰ वह कबूतर जो घूम फिरकर सदा अपने स्थान पर आता हो।

गरदान[3]—संज्ञा स्त्री॰ १. व्याकरण में कारकों या लकारों की आद्यंत पुनरावृत्ति। २. शब्दों की रूपसाधना। ३. कुरान की आवृत्ति या उद्धरणी।

गरदानना—क्रि॰ स॰ [फ़ा॰ गरदान] १. शब्दों का रूप साधना। २. बार बार कहना। उद्धरणी करना। ३. गिनना। समझना मानना। जैसे,—वे अपने आगे किसी को कुछ नहीं गरदानते।
संयो॰ क्रि॰—डालना।—देना।—लेना।

गरदिशव—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ गर्दिश] दे॰ 'गर्दिश'।

गरदुआ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गरदन] एक प्रकार का ज्वर जो वर्षा के आरंभ में बहुत अधिक भीगने के कारण पशुओं को हो जाता है।
विशेष—इसमें उसके सब अंग जकड़ जाते हैं और उसके गले में घरघराहट होने लगती है। इसे कहीं कहीं गरदुहा, घेंरवा या घुरका भी कहते हैं।

गरधरन(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ गर √धृ > धरण=रखनेवाला] १. विष धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

गरध्वज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अभ्रक।

गरना[1](पु)†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ गलना] १. दे॰ 'गलना'। उ॰—इम नीर महिं गरि जाइ लवनं एकमेंकहि जानिए।—सुंदर ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ५५। २. दे॰ 'गड़ना'। उ॰—उहाँ ज्वाल जरि जात, दया ग्लानि गरे गात, सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।—तुलसी (शब्द॰)।

गरना[2]—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ गारना अथवा सं॰ √गृ > गर] १. गारा जाना। निचोड़ा जाना। २. किसी चीज में से किसी पदार्थ का बूँद बूँद होकर गिरना। निचुड़ना। टपकना। उ॰—चुंवक लोहँड़ा औटा खोवा। भा हलुआ घिउ गरत निचोवा।—जायसी (शब्द॰)।

गरनाल—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गर+नली] एक बहुत चौड़े मुँह की तोप जिसमें आदमी चला जा सकता है। घननाल। घननाद।

गरप्रिय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महादेव। शिव।

गरब[1]†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ गर्व] हाथी का मद। उ॰—गरब गयंदनह गगन पसीजा। रुहिर चुवै धरती सब भीजा।—जायसी (शब्द॰)।

गरब[2](पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ गर्व] दे॰ 'गर्व'।
यौ॰—गरबगहेला। **गरबगहेली**। **गरबप्रहारी**=गर्व का नाश करनेवाले। उ॰—गरबोलन के गरबिनि ढाहै। गरबप्रहारी बिरद निबाहै।—लाल (शब्द॰)।

गरबई(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ गर्व हिं॰ ई (प्रत्य॰)] गर्व या अभिमान का भाव। उ॰—अली गई अब गरबइ इकताई मुकुताइ। भली भई ही अमलई जौं पी दई दिखाई।—शृं॰ सत॰ (शब्द॰)।

गरवगहेला†—वि० [हिं गरव+गहेला=ग्रहण करनेवाला] [वि० स्त्री० गरव गहेली] जिसने गर्व धारण किया हो। गर्वीला। उ०—(क) तू गज गामिनि गरवगहेली। अब कस आस छाँडु तू बेली।—जायसी (शब्द०)। (ख) जानत गरवगहेली सर्व छपीं मन लाजि।—जायसी ग्रं०, पृ० १३३।

गरवना७—क्रि० अ० [सं० गर्व से नामिकधातु] गर्व करना। अभिमान करना। शेखी करना। उ०—इहि द्वैहीं मोती सुगथ तूँ नथ गरवि निसाँक। जिहि पहिरैं जग दृग ग्रसति लसति लसति हँसति सी नाक।—बिहारी (शब्द०)।

गरवहियाँ७—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गलबाँही'। उ० बैठी जदपि बिमाननि महियाँ। अपने पतिन सों दै गरवहियाँ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६५।

गरवा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का गीत जो प्रायः गुजराती स्त्रियाँ गाती हैं। २. एक प्रकार का नृत्य जो रंगीन और छेददार घड़े के अंदर दिया रखकर इसके चारों ओर गोल घेरे में किया जाता है।

गरवाना७†—क्रि० अ० [हिं० गरवना का प्रे० रूप] घमंड में आना। अभिमान करना। शेखी करना।—जा तन देखि मन में गरवाना। मिलि गया माटी तजि अभिमाना।—संतवानी०, भा० २, पृ० ९२।

गरवित७—वि० [हिं०गरव+इत (प्रत्य०)] दे० 'गर्वित'। उ०—तिनसों मिलि डोलैं करैं कलोलैं गरवित बोलैं बाम जहाँ।—हम्मीर०, पृ० ८।

गरवीजना७† क्रि० अ० [हिं० गरव] गरव युक्त होना। गरवाना। उ०—ताँताँ तणकाराह, गाणाँ क्यों गरवीजिया।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ८२।

गरवीला—वि० [हिं गरव+ईला प्रत्य०] जिसे गर्व हो। घमंडी। अभिमानी। उ०—गरबीलन के गरबनि ढाहै। गरबप्रहारी बिरद निबाहै।—लाल (शब्द०)।

गरभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'गर्भ'। २. भीतर। अंदर। गर्भ। उ०—समी गरभ में अनल ज्यों त्यों तेरी पिय संत।—शकुंतला, पृ० ६७।

गरभ[2]७†—संज्ञा पुं० [सं० गर्व हिं० गरब, गरभ] दे० 'गर्व'।

गरभदान—संज्ञा पुं० [सं० गर्भाधान] गर्भाधान के लिये ऋतुप्रदान।

गरभवास—संज्ञा पुं० [सं० गर्भवास] गर्भ के अंदर रहने की स्थिति। उ०—गरभवास अति त्रास, अधोमुख, तहाँ न मेरी सुधि बिसरी।—सूर०, १।११६।

गरभाना—क्रि० अ० [हिं० गर्भ से नामिक धातु] १. गर्भिणी होना। गर्भ से होना। २. धान, गेहूँ आदि के पौधों में बाल लगाना।

गरभी[1]—वि० [सं० गर्वी] अभिमानी। घमंडी।

गरभी[2]—वि० [सं० गरभ+हिं० ई (प्रत्य०)] गरभवास। गर्भस्थ। उ०—गरभी की यातना सुन ले रे भाई नव मास बंधन डारे जू।—दक्खिनी०, पृ० १५।

गरम—वि० [फ़ा० गर्म, मिलाओ सं० घर्म] [क्रि० गरमाना, संज्ञा गरमी] १. जिसके छूने से जलन मालूम हो। जलता हुआ। तप्त। तत्ता। उष्ण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—गरमागरम=(१) तत्ता। उष्ण। (२) ताजा पका हुआ।

विशेष—इसका प्रयोग साधारणतः खाने पीने की वस्तुओं के लिये होता है। जैसे,—गरमागरम पूरी, हलुवा आदि; पर अलंकार से—गरमागरम खबर (ताजी खबर), गरमागरम बहस या बात (=आवेश या जोश भरी बात, आदि) भी बोलते हैं।

मुहा०—गरमचोट=तुरंत की लगी चोट। ताजा घाव। जैसे—गरम चोट मालूम नहीं होती। गरम मामला=हाल की बात। ऐसी घटना जिसका प्रभाव लोगों पर बना हो। जैसे,—अभी मामला गरम है' जो करना हो सो कर डालो। गरम पानी= वीर्य। शुक्र।—(बाजारी)। गरम सर्द उठाना, देखना या सहना=संसार का ऊँचा नीचा देखना। भले बुरे दिन काटना।

२. तीक्ष्ण। उग्र। खरा।

मुहा०—मिजाज गरम होना=क्रोध आना। गरम होना= आवेश में आना। क्रुद्ध होना। जैसे,—तुम तो जरा सी बात में गरम हो जाते हो।

३. तेज। प्रबल। प्रचंड। जोर शोर का। जैसे,—गरम खबर।

मुहा० किसी चीज (प्रायः भाव) का बाजार गरम होना= किसी बात की अधिकता होना। जैसे,—आजकल लूट का बाजार गरम है।

४. जिसका गुण उष्ण हो। जिसके व्यवहार या सेवन से गरमी बढ़े। जैसे;—लहसुन बहुत गरम होता है।

यौ०—गरम कपड़ा=शरीर गरम रखनेवाला कपड़ा। जाड़े का कपड़ा। ऊनी कपड़ा। गरम मसाला=सुगंध की वस्तु जो भोजन को चरपरा, पाचक और सुस्वादु करने के लिये उसमें पड़ती है। जैसे,—धनियाँ, लौंग, बड़ी इलायची, जीरा, मिर्च इत्यादि।

५. उत्साहपूर्ण। जोश से भरा। आवेशपूर्ण। उ०—परम धरमधर धरम करम कर सुरस गरम नर।—गोपाल (शब्द०)।

गरमाई†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गरम] गरमी।—(पंजाब)।

गरमागरमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गरमा+गरम] मुस्तैदी। जोश। सन्नद्धता। उत्साह। जैसे,—पहले तो बड़ी गरमागरमी थी; अब क्यों ठंढे पड़ गए।

गरमाना[1]—क्रि० अ० [हिं० गरम से नामिक धातु] १. गरम पड़ना। उष्ण होना। जैसे,—अभी तो काँपते थे, ओढ़ने से जरा गरमाए हैं।

मुहा०—टेंट या हाथ गरमाना=टेंट या हाथ में रुपया आना। पास में रुपया पैसा आना।

२. उमंग पर आना। मस्ताना। मद में भरना। जैसे,—घोड़ी गरमाई है। ३. आवेश में आना। क्रोध करना। नाराज होना। आगबबूला होना। भल्लाना। जैसे,—तुम तो जरा

सी बात में गरमा जाते हो। ४. कुछ देर लगातार दौड़ने या परिश्रम करने पर घोड़े आदि पशुओं का तेजी पर आना।

विशेष—कभी कभी जब घोड़े अधिक गरमा जाते हैं, तब वश में नहीं रहते।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

गरमाना[2]—क्रि० स० गरम करना। तपाना। औटाना। जैसे,—दूध गरमाना, चूल्हा गरमाना, पानी गरमाना आदि।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा० टेंट गरमाना=(१) हाथ में रुपया देना। (२) कुछ इनाम या रिशवत देना।

गरमाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गरम+आहट(प्रत्य०)] गरमी। उष्णता।

गरमी—संज्ञा [फ़ा०] १. उष्णता। ताप। जलन। जैसे,—आग की गरमी।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

मुहा० गरमी करना=प्रकृति में उष्णता लाना। पेट या कलेजे में ताप उत्पन्न करना। जैसे, कुनैन बहुत गरमी करता है। गरमी निकालना=(१) उष्णता दूर करना। (२) प्रसंग करना।

२. तेजी। उग्रता। प्रचंडता।

मुहा०—गरमी निकालना=गर्व दूर करना। जैसे,—अभी हम तुम्हारी सारी गरमी निकाल देते हैं।

३. आवेश। क्रोध। गुस्सा। जैसे,—पहले तो बड़ी गरमी दिखाते थे; अब सामने क्यों नहीं आते। ४ उमंग। जोश। ५. ग्रीष्म ऋतु। कड़ी धूप के दिन। (साधारणतः फागुन से जेठ तक गरमी के महीने समझे जाते हैं।)

क्रि० प्र०—आना।—जाना।

मुहा०—गरमियों में=गरमी के दिनों में। ग्रीष्मकाल में। ६. हाथी घोड़ों का एक रोग जिसमें उन्हें पेशाब के साथ खून गिरता है। ७. एक रोग जो प्रायः दुष्ट मैथुन से उत्पन्न होता है और छूत का रोग माना जाता है। आतशक। उपदंश।

विशेष—इस रोग में गुप्त इंद्रिय से एक प्रकार का चेप निकलता है, जिसके लग जाने से यह रोग एक दूसरे को हो जाता है। पहले छोटी छोटी फुंसियाँ होती हैं; फिर धीरे धीरे चमड़े पर चट्टे पड़ने लगते हैं; यहाँ तक कि सारे शरीर में घाव हो जाते हैं, फफोले पड़ जाते हैं, रग, पट्ठे और हड्डियाँ तक खराब हो जाती हैं। कभी कभी तालू चटक जाता है।

क्रि० प्र०—निकलना।—फूटना।—होना।

गरमीदाना—संज्ञा पुं० [हिं० गरमी+दाना] छोटे छोटे लाल दाने जो गरमी में पसीने के कारण शरीर पर निकलते हैं। अँधौरी। अँभौरी। अम्हौरी।

गररा(पु)—संज्ञा पुं० [देश० गर्रा] एक प्रकार का घोड़ा। गर्रा। उ०—हरे कुरंग महुअ बहु भाँती। गरर कोकाह बलाह सुभाँति।—जायसी (शब्द०)।

गरराना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] १. भीषण ध्वनि करना। गंभीर ध्वनि करना। गड़गड़ाना। गरजना। उ०—सुनत मेघवर्त्तक साजि सैन लै आए।... घहरात गररात हहरात थररात झहरात माथ नाए।—सूर (शब्द०)। २. गुर्राना। उ०—पटकि पूँछि गरराइ गुंजरिहि धरिइ सरोस सेर सिर दाउँ।—अकबरी०, पृ० ३१६।

गररी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया। किलँहटी। गलगलिया। सिरोही। उ०—फटकत श्रवन श्वान द्वारे पर गररी करत लराई। माथे पर दै काक उड़ानों कुशगुन बहुतक पाई।—सूर (शब्द०)।

गरल—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विष। गर। जहर। २. सर्पविष। साँप का जहर। ३. घास का मुट्ठा। घास की अँटिया। पूला।

गरलधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष धारण करनेवाले, महादेव। २. साँप।

गरलारि—संज्ञा पुं० [सं०] मरकत मणि। पन्ना।

गरली—वि० [सं० गरलिन्] विषैला। विषयुक्त [को०]।

गरवा(पु)—वि० [सं० गुरुक] [वि० स्त्री० गरवी] गरुआ। भार। महान्।

गरवी(पु)—वि० स्त्री० [सं० गुर्वी] १. विशाल। भारी। वजनी। उ०—गद मारयो गरवी गदा मस्तक अरि के जाइ। फूटो सिर निसरत भई रुधिर धार अधिकाइ।—गोपाल। (शब्द०), २. गंभीर। गुरुतायुक्त। उ०—गोरी गंगा नीर ज्यूँ मन गरवी, तन अच्छ।—ढोला०, दू० ४५२।

गरव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

गरसना†—क्रि० स० [सं० ग्रसन] दे० 'ग्रसना'।

गरह[1]†—संज्ञा पुं० [सं० ग्रह] १. ग्रह। २. अरिष्ट। बाधा।

मुहा०—गरह कटना=अरिष्ट दूर होना। दुःख नष्ट होना। आपत्ति टलना।

गरह[2]†—वि० दे० 'ग्रह'। उ०—ममता दादु कंडु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई।—तुलसी (शब्द०)।

गरहन[1]—संज्ञा पुं० [सं० गर+हन्] १. काली तुलसी। २. बबई। ममरी।

गरहन[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली।

गरहन[3]†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण] १. चंद्र या सूर्य ग्रहण। २. पकड़ने की क्रिया। धारण। वि० दे० 'ग्रहण'।

गरहर—संज्ञा पुं० [हिं गर=गला+सं० धर, प्रा० हर] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में लटकाया जाता है। कुंदा। ठेंगा। टेकुर।

गरहेंडुवा—संज्ञा पुं० [सं० गवेडुका] गवेधुक। कसेई। कोडिल्ला।

गरांडील—वि० [अं० ग्रांड या फ़ा० गराँ] लंबा तड़ंगा या मोटा ताजा। उ०—इस रीछ जैसे गरांडील आदमी से रानी को इतनी सूक्ष्मता की आशा नहीं थी।—जनानी०, पृ० १७२। २. बहुत बड़ा या भारी।

गराँ—वि० [फ़ा०] दे० 'गिराँ'।

मुहा०—गराँ गुजरना=(१) भारी या असह्य होना। (२) अप्रिय या नापसंद होना।

यौ०—गराँकद्र=प्रतिष्ठित। संमानित। गराँकीमत=बेशकीमत। बहुमूल्य। गराँखातिर=(१) असह्य। अप्रिय। (२) अप्रसन्न।

गरांबार—वि० [फ़ा०] १. बोझ से लदा हुआ। २. ऋण या उपकार के भार से दबा हुआ।

गराँव—संज्ञा पुं० [हिं० गर=गला+आँव (प्रत्य०)] एक दोहरी रस्सी जिसके एक सिरे पर मुद्धी और दूसरे सिरे पर गाँठ होती है। यह पगहे के छोर पर बीचोबीच से लगाई जाती है और बैल, घोड़े आदि के गले में डाली जाती है।

गरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली लता। बंदाल। गरागरी।

गरा[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० गला] दे० 'गर' या 'गला'।

गराऊं†—संज्ञा पुं० [सं० गरुग्र] पुराना भेड़ा। (गँड़ेरियों की बोली)।

गरागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली। बंदाल। घवर बेल। बंदाली। सोनैया बैल। कर्कोटी। देवताड़ी।

गराज[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्जन] गर्जना। गंभीर शब्द। गरज। उ०—जसवंत जसांवंत साजवाज।। चड्ढे किव्यान करि करि गराज।—सूदन (शब्द०)।

गराज[2]—संज्ञा पुं० [अं० गैरेज] १. मोटर कार रखने का स्थान। २. रिक्शा रखने की जगह।

गराड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० गड़ गड़ या सं० कुण्डली] काठ या लोहे का वह गोल चक्कर जिसके घेरे में रस्सी बैठने के लिये गड्ढा बना रहता है और जिसमें रस्सी डालकर कुएँ से घड़ा निकालते हैं, पंखा खींचते हैं तथा इसी प्रकार के और बहुत से काम करते हैं। घिरनी। चरखी।

गराड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० गरुड=चिह्न] रगड़ आदि से पड़ी हुई गहरी लकीर। गड्ढे के रूप में दूर तक पड़ा हुआ लंबा चिह्न। साँट।

मुहा०—गराड़ी पड़ना=गहरा चिह्न होना।

गराविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लाख का कीड़ा। २. लाख का रंग [को०]।

गरान—संज्ञा पुं० [फ़ा० मैनग्रोव] चौरी नाम का वृक्ष जिसकी छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिझाया जाता है।

गराना[1]Ⓟ—क्रि० स० [हिं० गलाना] दे० 'गलाना'।

गराना[2]—क्रि० स० [हिं० गारना] निचोड़कर दूर करना। निचोड़ना। बहाना। उ०—तब मघवा मनमारि हारि कै बढ़े सोच सों छायो। भयो कृष्ण अवतार भूमि पै मेरो गर्व गरायो (शब्द०)।

गरानिⓅ, गरानोⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि, सं० हिं० गलानि] दे० 'ग्लानि'।

गरानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिरानी] दे० 'गिरानी'।

गराव—संज्ञा पुं० [देश०] १. तीन मस्तूलोंवाला एक प्रकार का बड़ा जहाज जिसका व्यवहार १४ वीं शताब्दी में बंगाल और उसके आसपास की खाड़ियों में होता था। उ०=रज्जब प्राण पपान जड़ गुरु गराव लिए देव। पट पेखो पिंड पलटै प्रथमहि, सृष्टि जु लग्गी सेव।=रज्जब०, पृ० ७। २. साधारण नाव।

गरामी—वि० [फ़ा०] दे० 'गिरामी'।

गरारा[1]—वि० [सं० गर्व, प्रा०, पुं० हिं० गारो+आर (प्रत्य०)] गर्वयुक्त। प्रबल। प्रचंड। बलवान। उद्धत। उ०—(क) कुंडल कीट कवच तनु धारे। चले सैन महँ सुभट गरारे।—गोपाल (शब्द०)। (ख) सुंडन उठाए फिरैं धाये धने तम बैठे असवार मिलें मुदित पतंग संग। गरजैं गरारे कजरारे अति दीह देह जिनहिं निहारे फिरैं बीर करि धीर भंग।—गोपाल (शब्द०)।

गरारा[2]—संज्ञा पुं० [अ० ग़ग़रह्, ग़रग़रह्, फ़ा० गरारह्] १. कंठ में पानी डालकर गर गर शब्द करके कुल्ली करना।

क्रि० प्र०—करना।

२. गरगरा करने की दवा।

गरारा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० घेरा] १. पायजामे की ढीली मोहरी। जैसे,—गरारेदार पाजामा। २. ढीली मोहरी का पायजामा। ३. वह थैला जिसमें खेमा भरकर रखा जाता है।

गरारा[4]—संज्ञा पुं० [अनु०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनके कंठ से घुरघुर शब्द निकलता है। घुरकवा।

गरारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गराड़ी'।

गरावन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गड़ावन'।

गरावा†—संज्ञा पुं० [देश०] कम उपजाऊ भूमि। हलकी जमीन।

गरासⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रास] दे० 'ग्रास'।

गरासना†—क्रि० स० [सं० ग्रास, हिं० गरास+ना (प्रत्य०)] दे० 'ग्रासना'। उ०—रैनु रैनि होइ रविहि गरासा।—जायसी (शब्द०)।

गरास मोअर—संज्ञा पुं० [अं० ग्रास+मोअर] मैदान की घास बराबर करने की कल।

गरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारियल की गरी। गरी [को०]।

गरित[1]—वि० [सं०] विषयुक्त। विषैला [को०]।

गरित[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० गर्त] दे० 'गर्त'। उ०—सुनि सुवचन गिरिराज कौ कहि रिपि कारन बात। पुत्र एक जच्चं तुमहिं गरित सपूरन गात।—पृ० रा०, १।१७७।

गरिमताⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० गरिमा] भारीपन। भराव। उ०—उरजनि नहिन गरिमता तैसी। बचन चातुरी फुरी न वैसी।—नंद० ग्रं०, पृ० १५७।

गरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० गरिमन्] १. गुरुत्व। भारीपन। बोझ। २. महिमा। महत्व। गौरव। ३. गर्व अहंकार। घमंड। ४. आत्मश्लाघा। शेखी। ५. आठ सिद्धियों में से एक सिद्धि जिससे साधक अपना बोझ चाहे जितना भारी कर सकता है।

गरियर—वि० [हिं०] दे० 'गरियार'।

गरियल[1]†—वि० [हिं०] दे० 'गरियारा'।

गरियल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का किल किला पक्षी जिसका सिर भूरे रंग का होता है।

गरिया—संज्ञा पुं० [देश०] एकार का पेड़।

विशेष—यह मध्यप्रदेश, मध्यभारत, बरार और मद्रास में होता है। यह पेड़ साधारण ऊँचाई का होता है और शिशिर ऋतु में इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इसकी लकड़ी दृढ़, कठिन सुंदर, चमकीली और साफ होती है और प्रति घनफुट पचीस

तीस सेर तक भारी होती है। इससे गाड़ी, तस्वीरों के चौखटे, खेती के सामान तथा मेज, कुरसी आदि बहुत सी चीजें बनाई जाती हैं। यह पानी में बहुत दिनों तक बनी रहती है और इसपर नक्काशी भी अच्छी होती है। हिंदुस्तान से यह लकड़ी विलायत को बहुत जाती है और वहाँ आलमारी, कुरसी, मेज, ब्रुश का दस्ता आदि बनाने के काम में आती है। इसे बहुरूपी भी कहते हैं।

गरियाना†—क्रि० अ० [हिं० 'गारी' से नामिक धातु]. दुर्वचन कहना। गाली देना। अपशब्द कहना।

गरियार—वि० [हिं० गड़ना=एक जगह रुक जाना] [अन्य रूप, गरियर, गरियल, गरियारा, गरियारू] जगह से जल्दी न उठनेवाला। सुस्त। बोदा। मट्ठर। उ०—पैंडे पग चालइ नहीं, होइ रहा गरियार। राम अरथ निवहै नहीं, खइवे को हुसियार।—दादू (शब्द०)। (ख) कोई भल जस धाव तुखारू। कोइ जस चलै बैल गरियारू।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—चौपायों के लिये इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है।

गरियालू[1]—संज्ञा पुं० [हिं० करिया से करियालू] एक प्रकार का रंग जो काला नीला होता है।

विशेष—इसमें ऊन रँगा जाता है। इसके बनाने की विधि यह है कि दो सेर नील की बुकनी गंधक के तेजाब में मिलाकर एक मजबूत मटके में रख देते हैं। यह उसमें एक दिन और रात रखी रहती है। ऊन को रँगने के पहले उसे चूने के पानी में डुबाकर कई बार साफ पानी से धोकर धूप में सुखाते हैं। फिर उबलते हुए पानी में थोड़ा सा रंग मटके में से लेकर मिला लेते हैं और ऊन को उसमें डाल देते हैं। यह ऊन उसमें तबतक पड़ा रहता है जबतक उसपर रंग नहीं चढ़ जाता। फिर उसे निकालकर फिटकरी मिले पानी में पछार डालते हैं।

गरियालू[2]—वि० काले नीले रंग का। गरियाले रंग का।

गरिष्ठ[1]—वि० [सं०] अति गुरु। अत्यंत भारी। २. अत्यंत आवश्यक। अत्यंत महत्वपूर्ण (को०)। ३. जो पचने में हलका न हो। जो जल्दी न पचे। जिससे कोष्ठबद्ध हो। कब्ज करनेवाला। ४. गौरवयुक्त। गरिमामंडित।

गरिष्ठ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राजा का नाम। २. एक दानव का नाम। ३. एक तीर्थ का नाम।

गरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताड़ वृक्ष।

गरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिरी] १. नारियल के फल के अंदर का वह गोला जो छिलके के तोड़ने से निकलता है और मुलायम तथा खाने लायक होता है। २. बीज के अंदर की गूदी। गिरी। मीगी।

गरीठ(पु)—वि० [सं० गरिष्ठ, प्रा० गरिट्ठ] गरिष्ठ। गौरवयुक्त। उ०—आवध बंधे ऊठिया आकारीठ गरीठ।—रा० रू०, पृ० १०६।

गरीब[1]—वि० [अ० गरीब] [वि० स्त्री० गरीबिन, गरीबिनी (क्व०)। संज्ञा गरीबी] १. नम्र। दीन। हीन। उ०—(क) कोटि इंद्र रचि कोटि विनासा। मोहि गरीब की केतिक आसा।—सूर (शब्द०)। (ख) देखियत भूप भोर कैसे उड़गन गरत गरीब गलानि है। तेज प्रताप बढ़त कुँअरिन को जदपि सकोची बानि है।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—गरीबनिवाज। गरीबपरवर।

२. दरिद्र। निर्धन। अकिंचन। कंगाल। जैसे—दे दो, गरीब आदमी का भला हो जायगा।

यौ०—गरीबगुरबा=निर्धन और कंगाल लोग।

३. विदेशी। परदेशी (को०)। ४. मुसाफिर। सफर करनेवाला।

यौ०—गरीबजादा=वेश्यापुत्र। रंडी या खानगी का लड़का।

गरीब[2]—संज्ञा पुं० संगीत में एक आधुनिक राग जो मुकाम राग का पुत्र माना जाता है।

गरीबखाना—संज्ञा पुं० [अ० गरीब+फ़ा० खानह्] दीन या निर्धन का घर।

विशेष—विनय या नम्र भाव से अपने घर को 'गरीबखाना' कहते हैं। इसके साथ 'अपना' शब्द व्यवहृत होता है।

गरीबनिवाज—वि० [फ़ा० ग़रीब+निवाज] दीनों पर दया करनेवाला। दुखियों का दुःख दूर करनेवाला। दयालु। उ०—गई बहोर गरीबनिवाजू। सरल सबल साहेब रघुराजू।—तुलसी।

गरीबनेवाज—वि० [फ़ा० ग़रीब+निवाज] दे० 'गरीबनिवाज'। उ० (क) नाथ गरीबनेवाज हैं मैं गही न गरीबी। तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीबी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै।—भूषण ग्रं०, पृ० ७।

गरीबपरवर—वि० [फ़ा० गरीबपरवर] गरीबों को पालनेवाला। दीनप्रतिपालक। दीनों का रक्षक।

गरीबान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'गरेबान'।

गरीबाना—वि० [फ़ा० ग़रीबानह्] गरीबों की तरह। गरीबामऊ।

गरीबामऊ—वि० [हिं० गरीब+मय (प्रत्य०)] गरीबों के योग्य। कंगाल के वित्त के अनुकूल। छोटा मोटा। भला बुरा।

गरीबी—संज्ञा स्त्री० [अ० गरीब+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. दीनता। अधीनता। नम्रता। उ०—(क) पुर पाँव धारिहैं उधारिहैं तुलसी से जन जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही हैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कबिरा केवल राम कहु शुद्ध गरीबी लाज। कूर बड़ाई बूड़सी भारी परसी काज।—कबीर (शब्द०)। २. दरिद्रता। निर्धनता। कंगाली। मुहताजी। जैसे,—कपड़ा फटा, गरीबी आई।

मुहा०—गरीबी आना=दरिद्रता होना। मुहताजी होना।

गरीयस्—वि० [सं० गरीयस्][वि० स्त्री० गरीयसी] १. बड़ा भारी। गुरु। २. महान्। प्रबल। जैसे,—हरीच्छा गरीयसी। ३. गौरवान्वित। महत्वपूर्ण।

गरु†—वि० [सं० गुरु] १. भारी। वजनी। २. जिसका स्वभाव गंभीर हो। शांत।

गरुग्र†—वि० [सं० गुरुक] १. भारी। वजनी। २. गंभीर। उत्तम। उ०—सुंदरि गरुग्र तोर विवेक, बिनु परिचये पेमक आंकुर पल्लव भेल अनेक।—विद्यापति, पृ० २२६।

गरुग्रर†—वि० [हिं०] भारी। वजनी।

गरुग्रा(पु)†—वि० [सं० गुरुक] [वि०स्त्री० गरुइ(पु),गरुई] १. भारी। वजनी। २. गौरवयुक्त। गौरवशाली। उ०—बैठहु पाट छत्र नव फेरी। तुम्हरे गरव गरुइ मैं चेरी।—जायसी (शब्द०)।

गरुग्राई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गुरुता। भारीपन। उ०—हरि हित हरहु चाप गरुग्राई—तुलसी (शब्द०)।

गरुग्राना†—क्रि० अ० [हिं० गरुग्रा+ना (प्रत्य०)] भारी लगना। वजनी महसूस होना।

गरुड—संज्ञा पुं० [सं० गरुड] १. विष्णु के वाहन जो पक्षियों के राजा माने जाते हैं।

विशेष—ये विनता के गर्भ से उत्पन्न कश्यप के पुत्र हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में यह कथा है कि एक बार कश्यप जी ने पुत्रप्राप्ति की इच्छा से यज्ञ का अनुष्ठान किया। उनके यज्ञ के लिये इंद्र, वालखिल्य तथा और और देवता लकड़ी आदि सामग्री इकट्ठी करने लगे। इंद्र ने थोड़ी ही देर में लकड़ी का ढेर लगा दिया और अंगुष्ट भर के वालखिल्यों को पलाश की एक टहनी घसीटते देखकर वह उनकी हँसी करने लगा। इसपर वालखिल्यगण कुपित होकर कश्यप का पुत्र दूसरा इंद्र उत्पन्न करने के प्रयत्न में लगे। अंत में कश्यप ने उन्हें समझाकर शांत किया और कहा कि तुम जिसे उत्पन्न करना चाहते हो, वह पक्षियों का इंद्र होगा। अंत में विनता के गर्भ से कश्यप ने अग्नि और सूर्य के समान गरुड़ और अरुण दो पुत्र उत्पन्न किए। गरुड़ विष्णु के वाहन हुए और अरुण सूर्य के सारथी। गरुड़ सर्पों के शत्रु समझे जाते हैं।

पर्या०—गरुत्मान्। तार्क्ष्य। वैनतेय। सुपर्ण। नागांतक। पन्नगाशन। पन्नगारि। पक्षिराज। विष्णुरथ। तरस्वी। अमृताहरण। शाल्मलिस्थ। खगेश्वर।

यौ०—गरुड़गामी। गरुड़ासन। गरुड़केतु। गरुड़ध्वज।

२. बहुतों के मत से उकाव पक्षी, जो गिद्ध की तरह का और बहुत बलवान् होता है।

विशेष—इसकी चोंच की नोक कुछ मुड़ी होती है और इसके पैर पंजों तक छोटे-छोटे परों से ढके रहते हैं। यह अपने चंगुल में भेड़ बकरी के बच्चों तक को उठा ले जाता और खाता है। अपने बल के कारण यह पक्षिराज कहा जाता है। पश्चिम की प्राचीन जातियों में रोमक (रोमन) लोग उकाव को जोव (प्रधान देवता इंद्र) का पक्षी मानते थे और उसे मंगल तथा विजय का चिह्न समझते थे। अब भी रूस, आस्ट्रेलिया और जर्मनी आदि देश उकाव का चिह्न ध्वजा आदि पर धारण करते हैं। इन सब बातों से संभव जान पड़ता है कि गरुड़ उकाव ही का नाम हो।

३ एक सफेद रंग का बड़ा पक्षी जो पानी के किनारे रहता है।

विशेष—यह तीन साढ़े तीन फुट ऊँचा होता है और इसकी गरदन सारस की तरह लंबी होती है जिसके नीचे एक थैली सी लटकती रहती है। यह मछलियाँ, केंकड़े आदि पकड़कर खाता है। इसे पँड़वा ढेक भी कहते हैं।

४. सेना की एक प्रकार की व्यूहरचना। गरुडव्यूह।

विशेष—इसमें अगला भाग नोकदार, मध्य का भाग विस्तृत पिछला भाग पतला होता है।

५. बीस प्रकार के प्रासादों में से एक।

विशेष—इसमें बीच का भाग चौड़ा तथा अगला और पिछला भाग नुकीला होता।

६. चौदहवें कल्प का नाम। ७. जैन मत के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के सोलहवें अर्हत् का गणधर। ८. श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। ९. छप्पय छंद का एक भेद। १०. नृत्य में एक प्रकार का स्थानक जिसमें बाएँ पैर को सिकोड़कर दाहिने पैर का घुटना जमीन पर टेकते हैं।

गरुड़केतु—संज्ञा पुं० [सं० गरुडकेतु] कृष्ण (को०)।

गरुड़गामी—संज्ञा पुं० [सं० गरुडगामिन्] १. विष्णु। २. श्रीकृष्ण। उ०—इहाँ औ कासों कहौं गरुड़गामी।—सूर (शब्द०)।

गरुड़घंटा—संज्ञा पुं० [सं० गरुड+घंटा] ठाकुर जी की पूजा में बजाया जानेवाला वह घंटा जिसके ऊपर गरुड़ की मूर्ति बनी रहती है।

गरुड़ध्वज—संज्ञा पुं० [सं० गरुडध्वज] १. विष्णु। २. एक प्रकार का स्तंभ जिसपर गरुड़ की आकृति बनी रहती है। ३. गुप्त राजाओं का राजकीय चिह्न [को०]।

गरुड़पक्ष—संज्ञा पुं० [सं० गरुडपक्ष] नृत्य में कुहनो टेढ़ी करके दोनों हाथ कमर पर रखने का भाव।

गरुड़पाश—संज्ञा पुं० [सं० गरुडपाश] एक प्रकार का फंदा या फाँसी। इसे प्राचीन काल में शत्रु को फँसाने और बाँधने के लिये उस पर फेंकते थे।

गरुड़पुराण—संज्ञा पुं० [सं० गरुडपुराण] अठारह पुराणों में से एक।

विशेष—इसमें विशेषकर यमपुर तथा अनेक प्रकार के नरकों का वर्णन है। प्रेत कर्म का विधान भी इसमें है। घर के किसी बड़े बूढ़े व्यक्ति की मृत्यु के अनंतर लोग इसकी कथा सुनते हैं।

गरुड़प्लुत—संज्ञा पुं० [सं० गरुडप्लुत] नृत्य में एक प्रकार का भाव जिसमें हाथों को लता की तरह और पैरों को बिच्छू की तरह फैलाकर छाती ऊपर की ओर उभारते हैं।

गरुड़भक्त—संज्ञा पुं० [सं० गरुडभक्त] गरुड़ की उपासना करनेवाला एक संप्रदाय।

विशेष—भारतवर्ष में ईसा के जन्म के पूर्व से यह संप्रदाय प्रचलित था।

गरुड़यान—संज्ञा पुं० [सं० गरुडयान] १. विष्णु। २. श्रीकृष्ण।

गरुड़रुत—संज्ञा पुं० [सं० गरुडरुत] सोलह अक्षरों का एक वर्ण वृत्त।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, भगण, जगण और तगण तथा अंत में एक गुरु होता है—न, ज, भ, ज; त, ग। जैसे,—नजु भज तैं गुव्याल निशि वासर रे मना। लहसि न सौर मूलि कहुँ यत्न कीन्हें घना। हरि-हरि के कहे भजत पाप को जूह यों। गरुड़रुतै सुनै भजन सर्प को व्यूह ज्यों।

गरुड़व्यूह—संज्ञा पुं० [सं० गरुडव्यूह] रणस्थल में सेना के जमाव या स्थापन का एक प्रकार।

विशेष—इसमें सेना का अगला भाग नोककार, मध्य भाग अधिक विस्तृत तथा पीछे का भाग पतला होता है।

गरुडांक—संज्ञा पुं० [सं० गरुडाङ्क] विष्णु [को०]।

गरुडांकित—संज्ञा पुं० [सं० गरुडाङ्कित] मरकत मणि। पन्ना [को०]।

गरुड़ाग्रज—संज्ञा पुं० [सं० गरुडाग्रज] गरुड़ का ज्येष्ठ भ्राता। सूर्य का सारथी। अरुण [को०]।

गरुडाश्मन्—संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना। मरकत मणि (को०)।

गरुत् संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष। पंख। पर।

गरुता(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरुता] १. गुरुता। भारीपन। २. गंभीरता। बड़ाई। बड़प्पन। उ०—कानन की छवि दीह लसै गिरिधरदास, गरुता अपार जाकी बरतन वेद है।—गोपाल (शब्द०)।

गरुरा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० गरुड] १. गरुड़ पक्षी। २. (लाक्ष०) मृत्यु। काल। यम। उ०—डैन पसारी गरुरा आया लिहिस पकरि धरि केसा।—सं० दरिया, पृ० १२६।

गरुल‡—संज्ञा पुं० [सं० गरुड] दे० 'गरुड'।

गरुव(पु)—वि० [सं० गुरुक प्रा० गरुव] भारी बोझवाला। उ०—कोई हरुव जवहुँ रथ हाँका। कोई गरुव भार तें थाका। जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०६।

गरुवा(पु)—वि० [सं० गुरुक; प्रा० गरुव] १. भारी बोझवाला। २. श्रेष्ठ। गंभीर। धीर। उ० बड़े कहावत आप सो गरुवे गोपीनाथ। तौ बदिहौं जो राखिहौ। हाथनु लखि मन हाथ।—बिहारी (शब्द०)। ३. वजनी। भारी। गुरुता से युक्त। उ०—गरुवा होय गुरू होय बैठे हलका डग मग गेलै।—कबीर श०, पृ० १०३।

गरुवाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गरुवा+ई] दे० 'गरुआई'। उ०—धरिहौं मैं नर तन अब आई। हरिहौं सकल भूमि गरुवाई।—विश्राम (शब्द०)।

गरुहर‡—संज्ञा पुं० [हि गरु+हर (प्रत्य०)] भारी बोझ।

गरू†(पु)- वि० [सं० गुरु] भारी। वजनी। वड़ा। उ०—गरू गयंद न टारे टरहीं। (शब्द०)।

गरूर¹—संज्ञा पुं० [अ० गुरूर] घमंड। अभिमान।

गरूर²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० गरुड़—४। उ०—सजो सेन अप्पान व्यूहं गरूरं।—पृ० रा०, १।३२६।

गरूरत(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० गुरूर] घमंड। अभिमान। गर्व। अहंकार। उ०—घूरत पर बग भूमि हृदय महँ पूरि गरूरत।—गोपाल (शब्द०)।

गरूरताई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० गुरूर+हिं० ताई (प्रत्य०)] दे० 'गरूर'। गरूरत'।

गरूरा¹(पु)—वि० [अ० गुरूर] [वि० स्त्री० गरूरी] अहंकारी। अभिमानी। घमंडी। २. मत्त। मस्त। मतवाला। उ०—ते सरजा सिवराज लिए कविराजन को गजराज गरूरे।—भूषण ग्रं०, पृ० ६५।

गरूरा²(पु)†—संज्ञा पुं० अहंकार। अभिमान। घमंड।

गरूरी¹†—वि० [अ० गुरूर+फा० ई (प्रत्य०)] घमंडी। अभिमानी।

गरूरी²—संज्ञा स्त्री० अभिमान। घमंड। उ०—नर का जनम मिलता नहीं गाफिल गरूरी ना रखो।—तुलसी श०, पृ० २३।

गरेनां†—क्रि० स० [हिं० गड़ेरना] दे० 'गरेरना'।

गरेड़िया†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गड़ेरिया'।

गरेवाँ—संज्ञा पुं० [फा० गरेबान] दे० 'गरेवान'। उ०—पहले कमाल का जामा वह जिसका कि गरेवाँ तार बने।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६५।

गरेवान—संज्ञा पुं० [फा०] १. अंगे, कुरते आदि कपड़ों की काट और सिलाई में वह भाग जो गले पर पड़ता है। गला।

मुहा०—गरेवान चाक करना, गरेवान फाड़ना=(१) उन्माद की दशा में खासकर गले के नीचे के कपड़े फाड़ना। (२) विक्षिप्त होना। पागल होना। गरेवान में मुँह या सिर डालना या छिपाना=(१) लज्जित या शरमिंदा होना। (२) अपराध स्वीकार करना।

२. कोट आदि में वह पट्टी जो गले पर रहती है। कालर।

गरेरना—क्रि० स० [हिं० घेरना] १. घेरना। उ०—भा धावा गढ़ लीन्ह गरेरी। कोपा कटक लाग चहुँ फेरी।—जायसी (शब्द०)। २. छेंकना। रोकना।

गरेरा¹—वि० [हिं० घेरा] [वि० स्त्री० गरेरी] चक्करदार। घुमावदार। घुमाव फिरावदार (वस्तु, रचना)।

गरेरा²(पु)—संज्ञा पुं० घेरा।

गरेरा³—संज्ञा पुं० [हिं०] गदेला। नन्हा बच्चा। शिशु।

गरेरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० घेरा या गराड़ी] गराड़ी। घिरनी।

गरेरी²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्ड, हिं० गँड़ेरी] दे० 'गँडेरी'।

गरेरी³—वि० चक्करदार। घुमावदार। खँड-खँड सीढ़ी भई गरेरी। उतरहिं चढ़हिं लोग चहुँ फेरी।—जायसी (शब्द०)।

गरेली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गरेरी'।

गरेरुआ†—वि० [सं० गुरु] १. भारी। वजनी। २. भयंकर। विकट। ३. चक्करदार। घुमावदार।

गरेवा(पु)—वि० [हिं०] गुरु। ज्ञानी। उ०—तुम पंडित बुधवंत गरेवा। उतरहुं आइ करउँ मैं सेवा।—इंद्रा०, पृ० १००।

गरैंठी(पु)—वि० [सं० ग्रन्थिल] टेढ़ी। उ०—सूधे न चाहै कहूँ घन आनंद सोहै सुजान गुमान गरैंठी।—घनानंद, पृ० ३७।

गरैयाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं गला] गराँव। गले का पगहा। उ०—बछरै खरी प्यावै गऊ तिहि को पदमाकर को मन ल्यावत हैं। तिय जान गरैयाँ गही अनमान सु ऐंचे लला इँचे आवत हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

गरोह संज्ञा पुं० [फा०] झुंड। जत्था। समूह। गोल।

गर्क—वि० [अ० गर्क] डूबा हुआ। उ०—ज्ञान थाह लेता था जिससे, गर्क हो रही वह गुनिया।—मिट्टी०, पृ० १०७।

गर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक गोत्रप्रवर्तक वैदिक ऋषि।

विशेष—ये आंगिरस भरद्वाज के वंशज थे और ऋग्वेद के छठे मंडल का ४७ वाँ सूक्त इनका रचा हुआ है।

२. अथर्ववेद के परिशिष्ट के अनुसार एक प्राचीन ज्योतिषी। ३. धर्मशास्त्र के प्रवर्तक एक ऋषि। ४. वितथ्य राजा का एक पुत्र। ५. नंद के एक पुरोहित का नाम। ६. बैल। साँड़। ७. एक कीड़ा जो पृथिवी में घुसा रहता है। गगोरी। ८. बिच्छू। ९. केंचुआ। १०. एक पर्वत का नाम। ११. ब्रह्मा के एक मानसपुत्र का नाम जिसकी सृष्टि गया में यज्ञ के लिये हुई थी। १२. संगीत में एक ताल।

विशेष—इसमें चार द्रुत मात्राएँ और अंत में एक खाली या विराम होता है।

गर्गत्रिरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] कात्यायन श्रौत सूत्र के अनुसार एक प्रकार का याग जो तीन दिनों में होता है।

गर्गर संज्ञा पुं० [सं०] १. भँवर। २. एक प्रकार का प्राचीन बाजा जो वैदिक काल में बजाया जाता था। ३. गागर। ४. एक प्रकार की मछली।

गर्गरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह बर्तन जिसमें दही मथा जाता है। माठ। दहेंड़ी। २. गगरी। कलसी। ३. मथनी।

गर्ज¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्जन] दे० 'गरज¹'।

गर्ज²—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी की चिग्घाड़। २. मेघ या बादलों का गरजना। ३. गर्जन। ४. वह हाथी जो चिग्घाड़ रहा हो [को०]।

गर्ज³- संज्ञा स्त्री० [अ० गरज] दे० 'गरज'।

यौ०—गर्जमंद=दे० 'गरजमंद'। उ०—गर्जमंद सब हैं।—सुनीता, पृ० ४७।

गर्जक¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

गर्जक²—वि० गरजनेवाला [को०]।

गर्जन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भीषण ध्वनि। गरजना। गरज। गंभीर नाद।

यौ०— गर्जन तर्जन=(१) तड़प। (२) डाँट डपट।

२. शोर। आवाज। कोलाहल [को०]। ३. क्रोध। आवेश [को०]। ४. संग्राम। रण। युद्ध (को०)। ५. तिरस्कार। झिड़की। भर्त्सना [को०]।

गर्जन²— संज्ञा पुं० [देश०] शाल की जाति का एक पेड़।

विशेष—इसके जंगल के जंगल हिंदुस्तान में ट्रावंकोर, मलाबार, कनारा, कोंकन, चटगाँव, बरमा, अंडमान आदि में पाए जाते हैं। इसके पेड़ पीले रंग के, सीधे और सौ सवा सौ हाथ ऊँचे होते हैं और इनकी डालियाँ बहुत दूर तक नहीं फैलतीं। इनके कई भेद हैं, जिनमें से कुछ सदाबहार भी होते हैं। इस पेड़ से एक प्रकार का निर्यास निकलता है जो कभी कभी इतना पतला होता है कि वह अलसी के तेल की तरह रँगाई के काम में लाया जाता है। बरमा में दो प्रकार के गर्जन होते हैं। एक तेलिया गर्जन जिसका निर्यास लाल रंग का होता है, और दूसरा सफेद गर्जन जिसका निर्यास सफेद रंग का होता है। इन दोनों के निर्यास पतले और अच्छे होते हैं। तेल निकालने की विधि यह है कि नवंबर से मई तक इसके पेड़ की जड़ में दो तीन गहरे चौकोर गड्ढे खोद दिए जाते हैं। फिर उनके किनारे किनारे आग जलाई जाती है, जिससे तेल सिमट सिमटकर गड्ढे में इकट्ठा होता जाता है और तीसरे चौथे दिन गड्ढा भर जाता है। जो तेल मिट्टी पर बहकर जम जाता है, उसे खुरचकर पत्तियों में लपेट लेते और जंगलों में मोमबत्ती की तरह जलाते हैं। आसाम और बरमा का होलंग नामक सदाबहार वृक्ष भी इसी जाति का है, जिसका निर्यास बिरोजे की तरह का और सफेद होता है। इस जाति के कुछ वृक्षों का निर्यास अधिक गाढ़ा होता है और राल की तरह जलाने के काम में आता है। यह वृक्ष बीजों से उगता है और इसके फल तथा बीज शाल के फलों और बीजों की तरह होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और प्रति घन फुट २५-३० सेर भारी होती है और नाव तथा घर बनाने के काम में आती है।

गर्जना—क्रि० अ० [सं० गर्जन] दे० 'गरजना'। उ०—चलत दसानन डोलत अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहि सुर रवनी।—तुलसी (शब्द०)।

गर्जर—संज्ञा पुं० [सं०] गाजर [को०]।

गर्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बादलों का गर्जन [को०]।

गर्जाफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जवासा। विकंटक। २. युद्ध। लड़ाई। ३. भर्त्सना [को०]।

गर्जि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बादलों का गरजना [को०]।

गर्जित¹—वि० [सं०] गर्जा हुआ।

गर्जित²—संज्ञा पुं० १. मेघगर्जन। बादलों का गरजना। २. मत्त या मतवाला हाथी [को०]।

गर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. गड्ढा। गढ़हा। २. दरार। ३. घर। ४. रथ। ५. जलाशय। ६. एक नरक का नाम। ७. नहर (को०)। ८. समाधि या कब्र (को०)। ९. एक प्रकार का रोग (को०)। १०. त्रिगर्त देश का भागविशेष (को०)। ११. सिंह की माँद या गुफा (को०)।

यौ०—गर्ताश्रय=बिलेशय या बिल में रहनेवाले जीव। जैसे, चूहा, खरगोश आदि।

गर्तकी— संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जगह जहाँ जुलाहे वस्त्र बुनते हैं। जुलाहे का कपड़ा बुनने का स्थान [को०]।

गर्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिल। छेद। २. गुहा। गुफा। खोह [को०]।

गर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गर्तकी'।

गर्थ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गथ, गरथ] संपत्ति। उ०—दुनिया संचै गर्थ भँडारा सोना रूपा दाम रे।—राम० धर्म०, पृ० २१९।

गर्द¹—वि० [सं०] गरजने या चिल्लानेवाला [को०]।

गर्द²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] धूल। राख। खाक।

क्रि० प्र०—उठाना।—उड़ाना।

मुहा०—गर्द उठना या उड़ना=हवा के साथ धूल का फैलना। गर्द उठाना=दरी की बुनावट में नीचेवाले डंडे के तागों को बैठा चुकने के बाद, रस्सी के दोनों छोरों को खड़ी लकड़ी में बाँधकर ऊपर के डंडे के तागों को बैठाना या जमाना। गर्द

उड़ाना=नष्ट या चौपट करना। धूल में मिलाना। बरबाद करना। जैसे,—सेना ने नगर की गर्द उड़ा दी। **गर्द झड़ना**=ऐसी मार खाना जिसकी परवाह न हो। **गर्द फाँकना**=व्यर्थ घूमना। आवारा फिरना। **गर्द को न पहुँचना या न लगना**=समता न कर सकना। **गर्द होना**=(१) तुच्छ होना। समता के योग्य न होना। हेच होना। जैसे;—इसके सामने सब गर्द है। (२) नष्ट होना। चौपट होना।

यौ०—**गर्द गुबार**=धूल मिट्टी। गरदा।

क्रि० प्र०—**उठना**।—**उड़ना**।—**निकलना**।—**बैठना**।—**जमना**।

गर्द²—वि० [फ़ा०] घूमने या भटकनेवाला।

विशेष—यह केवल समस्त रूप में प्राप्त है। जैसे; आवारागर्द।

गर्दखोर¹—वि० [फ़ा० **गर्दखोर**] जो गर्द या मिट्टी आदि पड़ने से जल्दी मैला या खराब न हो। जैसे,—खाकी रंग।

गर्दखोर²—संज्ञा पुं० नारियल की जटा या इसी प्रकार की और चीजों का बना हुआ गोल या चौकोर टुकड़ा जो पाँव पोंछने के काम आता है।

गर्दखोरा—वि०, संज्ञा पुं० [फ़ा० **गर्दखोर**] दे० 'गर्दखोर'।

गर्दन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गरदन'।

गर्दना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गरदना'।

गर्दनाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] कुमुद। कोईं [को०]।

गर्दभंग—संज्ञा पुं० [हिं० **गर्द+भंग**] एक प्रकार का गाँजा।

विशेष—यह कश्मीर के दक्षिणी भागों में उत्पन्न होता है। इसे चूरू चरस भी कहते हैं।

गर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गधा। गदहा। २. श्वेत कुमुद। सफेद कोईं। ३. विड़ंग। ४. गदहिला नामक कीड़ा।

गर्दभक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुबरैला नामक कीड़ा। २. एक चर्म रोग। गदहिला। गर्दभिका [को०]।

गर्दभगद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चर्मरोग। गर्दभिका [को०]

गर्दभयाग—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो ब्रह्मचर्य व्रत से च्युत होने के दोष के प्रायश्चित्त के रूप में किया जाता है। अवकीर्ण याग।

गर्दभशाक—संज्ञा पुं० [सं०] भारंगी। ब्रह्मयष्टि।

गर्दभशाख, गर्दभशाखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गर्दभशाक'।

गर्दभांड—संज्ञा पुं० [सं० **गर्दभाण्ड**] १. पलखा। पाकड़। पाखर। प्लक्ष। २. पीपल [को०]।

गर्दभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद कंटकारी।

गर्दभि—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

गर्दभिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग का नाम जिसमें वात पित्त के विकार से गोल ऊँची फुंसियाँ निकलती हैं। इन फुंसियों का रंग लाल होता है और इसमें बहुत पीड़ा होती है। गदहिला। गदहिखी।

गर्दभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार एक कीड़ा। २. अपराजिता नाम की लता। ३. सफेद कंटकारी। ४. गर्दभिका नामक रोग। ५. गदही।

गर्दाबाद—वि० [फ़ा०] १. गर्द से भरा हुआ। २. उजाड़। ध्वस्त। गिरा पड़ा। †३. बेसुध। बेहोश।

गर्दालू—संज्ञा पुं० [फ़ा० गर्द (=गोला)+आलू] आलू बुखारा।

गर्दिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. घुमाव। चक्कर।

क्रि० प्र०—**करना**।

२. विपत्ति। आपत्ति। दिनों का फेर।

क्रि० प्र०—**आना**।—**होना**।

यौ०—**गर्दिशे जमाना**=दिनों का फेर दुर्भाग्य।

३. गति। हरकत। ४. परिवर्तन।

गर्दुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गरदुआ'।

गर्दू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. गाड़ी। यान। रथ। २. आकाश [को०]।

गर्द्ध, गर्ध—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **गर्द्धी, गर्द्धित**] १. स्पृहा। लोभ। लिप्सा। २. गर्दभांड नाम का वृक्ष। पलखा। पाकर।

गर्द्धन, गर्धन—वि० [सं०] लुब्ध। लालची।

गर्द्धित, गर्धित—वि० [पुं०] लुब्ध। लालची। लोभी।

गर्द्धी, गर्धी—वि० [सं० **गर्द्धिन्**] [स्त्री० **गर्द्धिनी**] १. लोभी। लालची। २. लुब्ध।

गर्नाल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गरनाल'।

गर्ब—संज्ञा पुं० [सं० **गर्व**] दे० 'गर्व'।

गर्बगहीलीⓅ—वि० स्त्री० [हिं०] गरबीली। गरबगहीली। गर्व से भरी हुई। उ०—राधा हरि कै गर्बगहीली।—सूर०, १०।१७७२।

गर्बना†—क्रि० स० [सं० **गर्व**] गर्व करना। अभिमान करना।

गर्बीलाⓅ—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० **गर्बीली**] गर्वयुक्त। अभिमानी।

गर्भंड—संज्ञा पुं० [सं० **गर्भाण्ड**] वह नाभि जो अंडे की तरह उभरी हो। नाभि का बढ़ना।

गर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट के अंदर का बच्चा। हमल। जैसे—उसे तीन महीने का गर्भ है। उ०—चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—स्त्री के रज और पुरुष के वीर्य के संयोग से गर्भ की स्थिति होती है। हारीत के मत से प्रथम दिन शुक्र और शोणित के संयोग से जिस सूक्ष्म पिंड की सृष्टि होती है, उसे कलल कहते हैं। दस दिन में यह कलल बबूलों के रूप में होता है। एक महीने में सूक्ष्य रूप में पाँचों इंद्रियों की उत्पत्ति और पंचभूतों की प्राप्ति होती है। तीसरे महीने हाथ पैर निकलते हैं और साढ़े तीन महीने पर सिर या मस्तक उत्पन्न होता है और उसकी भीतरी बनावट पूरी होती है। चौथे महीने में रोएँ निकलते हैं। पाँचवें महीने जीव का सचार होता है। छठे महीने में बच्चा हिलने डोलने लगता है। दसवें या अधिक से अधिक ग्यारहवें महीने में बच्चे का जन्म होता है। इसी प्रकार सुश्रुत ने पहले मस्तक, फिर ग्रीवा, फिर दोनों पार्श्व और फिर पीठ का होना लिखा है। सुश्रुत ने वक्षस्थल के अंदर कमल के आकार का हृदय माना

है और इसे जीवात्मा या चेतना शक्ति का स्थान कहा है। कन्या और पुत्र के भेद के विषय में वाग्भट्ट आदि वैद्यों ने लिखा है कि जब गर्भ में शुक्र की प्रबलता होती है, तब पुत्र और जब रज की प्रबलता होती है, तब कन्या होती है। आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मत से रज और शुक्र के संयोग से गर्भ की स्थिति और बच्चे का जन्म होता है। पर उनके मत से अंडकोश के दाहिने भाग में ऐसे पदार्थ की स्थिति रहती है जिसमें पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति होती है, और बाएँ भाग में कन्या उत्पन्न करने की शक्तिवाला पदार्थ रहता है। गर्भाधान के समय गर्भाशय में जिस पदार्थ की अधिकता हो जाती है, उसी के अनुसार कन्या या पुत्र की सृष्टि होती है। इसी सिद्धांत के बल पर वे कहते हैं कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार पुत्र या कन्या उत्पन्न करने में समर्थ हो सकता है। पाश्चात्य खोज इस विषय में बहुत आगे बढ़ी हुई है। पुरुष वीर्य के एक बूँद में सूत के से लंबे सूक्ष्म वीर्याणु रहते हैं, जो सूक्ष्म रोओं के सहारे तैरते रहते हैं। वीर्याणु से स्त्री के रजाणु कुछ बड़े और कौड़ी के आकार के होते हैं। पुष्ट होने पर ये ही गर्भाणु हैं या गर्भांड कहलाते हैं। इनका व्यास .१२५ इंच होता है और इनके अंदर प्राण रस रहता है। जब रज और वीर्य का संयोग होता है, तब सूक्ष्म गर्भाणु और शुक्राणु एक दूसरे को आकर्षित करके मिल जाते हैं। इस आकर्षण का कारण प्राण या रसानुभव से मिलती जुलती एक प्रकार की चेतना बतलाई जाती है, जो इन सूक्ष्म प्राणाणुओं या प्राणकोशों में होती है। बहुत से शुक्राणु गर्भाणु की ओर झुकते हैं और उसमें घुसना चाहते हैं, पर घुसने पाता है कोई एक ही। जब कोई शुक्राणु सिर के बल उसमें घुस जाता है, तब गर्भांड के ऊपर की एक झिल्ली छूटकर अलग हो जाती है और रक्षक कोश की तरह बन जाती है, जिससे और शेष शुक्राणु गर्भांड के अंदर नहीं घुसने पाते। इस प्रकार इन दोनों प्राणाणुकोशों के संयोग से एक स्वतंत्र कोश की सृष्टि होती है, जिसे मूलकोश कहते हैं। इसके उपरांत प्राण रस का विभाग होता है। इस विभागक्रम के द्वारा धीरे धीरे बहुत से प्राणकोशों का समूह बबूले (या बहुल) की तरह बन जाता है, जिसे आयुर्वेदिक आचार्यों ने कलल कहा है।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

यौ०—गर्भपात। गर्भस्राव।

मुहा०—गर्भ गिरना = पेट के बच्चे का पूरी बाढ़ के पहले ही निकल जाना। गर्भपात होना। गर्भ गिराना = पेट के बच्चे को औषध या आघात द्वारा पूरी बाढ़ या पूरे समय के पहले निकाल देना। गर्भपात कराना।

२. स्त्री के पेट के अंदर का वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है। गर्भाशय। उ०—जाके गर्भ माहि शिशु भोरा। ताको बध करिहौं अहि तोरा।—रघुराज (शब्द०)। ३. फलित ज्योतिष के अनुसार मेघों की उत्पत्ति जिससे वृष्टि का अनुमान होता है। ४. गर्भाधान का समय (क्व०)। ५. किसी वस्तु के भीतर का या मध्यवर्ती भाग (क्व०)। ६. छिद्र। बिल (क्व०)। ७. नदी का पेट या उसकी गहराई (क्व०)। ८. फल (क्व०)। ९. आहार (क्व०)। १०. सूर्य की किरणों द्वारा चुसाई हुई और आकाशस्थ अप्प की राशि (क्व०)। ११. गृह का भीतर का कोठा या आंतरिक भाग (क्व०)। १२. अन्न (क्व०)। १३. अग्नि (क्व०)। १४. नाटक की पाँच संधियों में से एक (क्व०)। १५. कटहल का काँटेदार छिलका (क्व०)। १६. संयोग (क्व०)। १७. कमल का कोश। पद्मकोश (क्व०)।

गर्भ[2]‡—संज्ञा पुं० [सं० गर्व, प्रा० गव्व, गब्भर, पुं० हिं० गब्भ, गरब] गर्व। अभिमान। घमंड। उ०—नारिहि देख जब संग गर्भ गर्भित उर छंडहि। मनाम इक पग जास चरण सेवत शिर मंडहि।—पृ० रा०, ७।३।

गर्भक—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्पयोग युक्त। पत्तिका। २. वह गाथा जो रातों के बीच आरंभ की जाय (क्व०)। ३. दो रातें और उनके मध्यवर्ती दिन का समय (क्व०)।

गर्भकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'गर्भकार'। २. पुत्रजीव नाम का एक वृक्ष (क्व०)।

गर्भकरण—संज्ञा पुं० [सं०] कोई वस्तु जो गर्भकारक हो (क्व०)।

गर्भकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० गर्भकर्तृ] गर्भोत्पत्ति का कर्ता (क्व०)।

गर्भकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिससे गर्भ रहे। गर्भ धारण करानेवाला। जैसे—औषधि, आहार आदि। २. सामगान का एक भेद जिसमें गेयपद के आदि और अंत में स्वरनाद का गान किया जाता है।

गर्भकारी—वि० [सं० गर्भकारिन्] गर्भ धारण करानेवाला। गर्भकारक (क्व०)।

गर्भकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भाधान के उपयुक्त काल। ऋतुकाल। २. वह समय जिसमें स्त्री के पेट में बच्चा रहता है।

गर्भकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] फूलों के वे अंग जो पराग धूल को गर्भनाल के अंदर होते हैं और जिनके साथ परागकेसर के पराग का मेल होने से फलों और बीजों की पुष्टि होती है।

गर्भकोश—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भाशय।

गर्भक्लेश—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ धारण का कष्ट। प्रसव की पीड़ा (क्व०)।

गर्भक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भच्युति। गर्भपात (क्व०)।

गर्भगुर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी (क्व०)।

गर्भगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान के बीच की कोठरी। आँगन का घर। २. घर का मध्य भाग। आँगन। ३. मंदिर में बीच की वह प्रधान कोठरी जिसमें मूर्ति प्रतिष्ठित रहती है। ४. प्रसूतिकागृह (क्व०)।

गर्भग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भाशय। गर्भ।

गर्भग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ को धारण। गर्भधारण (क्व०)।

गर्भग्राहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाई। धात्री। दाई (क्व०)।

गर्भघातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलिहारी नामक वृक्ष।

गर्भघाती—वि० [सं० गर्भघातिन्] [स्त्री० गर्भघातिनी] गर्भपात करनेवाला।

गर्भचलन—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ में बच्चे का हिलना डोलना [को०]।
गर्भच्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गर्भपात। २. प्रसव [को०]।
गर्भज—वि० [सं०] १. गर्भ से उत्पन्न। संतान। २. जो जन्म से हो। जिसे साथ लेकर कोई उत्पन्न हो। जैसे, गर्भज रोग। गर्भज गुण।
गर्भजात—वि० [सं०] दे० 'गर्भज'।
गर्भद[1]—वि० [सं०] गर्भ देनेवाला। जिससे गर्भ रहे।
गर्भद[2]—संज्ञा पुं० पुत्रजीव वृक्ष।
गर्भदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद भटकटैया।
गर्भदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत कंटकारि। सफेद भटकटैया।
गर्भदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जन्म से दास हो। दासीपुत्र।
गर्भदिवस—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ का समय। गर्भकाल। २. *बृहत्संहिता के अनुसार १९५ दिन का काल जिसमें मेघ का गर्भ* होता है। यह समय प्रायः कार्तिकी पूर्णिमा के बाद आता है।
गर्भद्रुत—संज्ञा पुं० [सं०] पारे का तेरहवाँ संस्कार जो शुद्धि के लिये किया जाता है।
गर्भद्रुह—वि० [सं०] जो गर्भ रहने का विरोधी हो। जो गर्भाधान न चाहे।
गर्भद्रुहा—वि० [सं०] (स्त्री) जो गर्भधारण की विरोधिनी हो। जो गर्भ धारण करना न चाहती हो। जो गर्भ गिरावे।
गर्भध—वि० [सं०] गर्भ धारण करानेवाला।
गर्भधरा—वि० स्त्री० [सं०] गर्भ धारण करनेवाली। गर्भवती [को०]।
गर्भधारण—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ होने की अवस्था। गर्भवती रहना।
गर्भन(पु)—वि० [सं०गर्विन्]घमंडी। गर्वयुक्त। गर्वर। अभिमानी। उ०—अति प्रचंड बल संड गर्भ गर्भन डर छंडहि।—पृ० रा०, ८।२।
गर्भनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्भनाड़ी] सुश्रुत के अनुसार गर्भाशय की एक नाड़ी जिससे गर्भधारण होता है।
गर्भनाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों के अंदर की वह पतली नाल जिसके सिरे पर गर्भकेसर होता है।

विशेष—इसी गर्भकेसर और परागकेसर के संमिश्रण से फलों और बीजों की पुष्टि और वृद्धि होती है।

गर्भनिस्रव—संज्ञा पुं० [सं०] वह झिल्ली आदि जो बच्चे के उत्पन्न होने पर पीछे से निकलती है। जैसे—आँवर, खेड़ी।
गर्भपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोमल पत्ता। गाभा। कोंपल। २. फूल के अंदर के पत्ते जिनमें गर्भकेसर रहता है। गर्भनाल।
गर्भपाकी—संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान।
गर्भपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ का पाँचवें या छठे महीने में गिर जाना। २. गर्भ का गिरना। पेट के बच्चे का पूरी बाढ़ के पहले निकल जाना।

क्रि० प्र०—**करना**।—**होना**।

गर्भपातक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिजन। रक्त शोभांजन।
गर्भपातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट गिराना। गर्भहत्या। २. रीठा।
गर्भपातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलिहारी। कलियारी। २. विशल्या नामक ओषधि।
गर्भभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह घर जो बीच में हो। मध्य की कोठरी। २. प्रसूतिकागृह। सौरी।
गर्भमंडप—संज्ञा पुं० [सं० गर्भमण्डप] १. गर्भगृह। २. शयनागार[को०]।
गर्भमास—संज्ञा पुं० [सं०] वह महीना जिसमें गर्भाधान हो।
गर्भमोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसव। जनन [को०]।
गर्भरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव।

विशेष—यह ११२ हाथ लंबी, ५६ हाथ चौड़ी और ५६ हाथ ऊँची होती थी और नदियों में चलती थी।

गर्भलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ के सूचक चिह्न [को०]।
गर्भवंत पु—वि० स्त्री० [हिं०] गर्भ धारण करनेवाली। गर्भवती। उ०—गर्भवंत होती तिहि नारी। इंद्र अवाज सुनी अधिकारी।—कबीर सा०, पृ० ८४६।
गर्भवती—वि० स्त्री० [सं०] जिसके पेट में बच्चा हो। गर्भिणी। गुर्विणी।
गर्भवध—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ का विनाश। भ्रूणहत्या [को०]।
गर्भवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ के अंदर की स्थिति। २. गर्भाशय।
गर्भव्याकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिकित्सा शास्त्र का वह अंग जिसमें गर्भ की उत्पत्ति तथा वृद्धि आदि का वर्णन होता है। २. गर्भ की स्थिति और वृद्धि (को०)।
गर्भव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में सेना की एक प्रकार की रचना।

विशेष इसमें सेना कमल के पत्तों की तरह अपने सेनापति या रक्ष्य वस्तु को चारों ओर से घेरकर खड़ी होती और लड़ती थी।

गर्भशंकु—संज्ञा पुं० [सं० गर्भशंकु] चिकित्सा शास्त्रानुसार एक प्रकार की सँड़सी।

विशेष—इससे मरे हुए बच्चे को पेट के अंदर से निकालते हैं। इसके मुँह का घेरा आठ अंगुल का होता है।

गर्भशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भ की उत्पत्ति का स्थान।
गर्भसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्भसन्धि] नाट्य शास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक।
गर्भस्थ—वि० [सं०] जो गर्भ में हो। जिसका जन्म होनेवाला हो।
गर्भस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भाशय।
गर्भस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] चार महीने के अंदर का गर्भपात जिसमें रुधिरादि गिरता है।

विशेष—इस अवस्था में शास्त्रानुसार जितने महीने का गर्भ होता है, उतने दिनों तक सूतक लगता है, जिसे गर्भस्राव शौच कहते हैं।

गर्भस्रावी[1]—संज्ञा पुं० [सं० गर्भस्राविन्] हिंताल नामक वृक्ष, जो एक प्रकार का ताड़ है।
गर्भस्रावी[2]—वि० गर्भपात करने या करानेवाला [को०]।
गर्भहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रूणहत्या। गर्भपात।
गर्भांक—संज्ञा पुं० [सं० गर्भाङ्क] नाटक के अंक का एक अंश जिसमें केवल एक दृश्य होता है।

विशेष—इसकी समाप्ति पर पहली जवनिका उठाई अथवा दूसरी गिराई जाती है; और तब दूसरा दृश्य आरंभ होता है।

गर्भागार—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कोठरी जो घर के मध्य में हो। घर के बीच का कमरा। गर्भगृह। २. आँगन। ३. गर्भस्थान। गर्भाशय।

गर्भाधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृह्यसूत्र के अनुसार मनुष्य के सोलह संस्कारों में से पहला संस्कार।

विशेष—वह संस्कार उस समय होता है, जब स्त्री ऋतुमती हो चुकती है।

२. गर्भ की स्थिति। गर्भधारण।

गर्भाना(पु)—वि० [हिं० गर्भ=गर्व] गर्वीला होना। गर्वयुक्त होना। गरवाना। उ०—गरभ जन्म बालक भयो रे तरुनाये गर्भान।—दरिया० बानी, पृ० ४१।

गर्भारि—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी इलायची [को०]।

गर्भाशय—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों के पेट में वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है। बच्चादानी।

विशेष—स्त्रियों का गर्भाशय या गर्भकोश वास्तव में वही अवयव है जो पुरुषों का अंडकोश है। स्त्रियों में यह अंदर होता है, पुरुषों में बाहर। इसी की भिन्नता से स्त्री और पुरुष के और और लक्षणों की भिन्नता उत्पन्न होती है। इसी गर्भाशय में रजाणु या गर्भाणु रहते हैं। जो जीव जितने ही अधिक अंडे देते हैं, उनके गर्भाशय उतने ही बड़े होते हैं। स्त्री का गर्भाशय १½ इंच लंबा, ३/४ इंच चौड़ा और १/३ इंच मोटा होता है और उसमें एक गर्भनाड़ी रहती है, जिससे बच्चा निकलता है।

गर्भिणी—वि० स्त्री० [सं०] जिसे गर्भ हो। गर्भवती। पेटवाली।

यौ०—गर्भिणी अवेक्षण=गर्भवती की देखभाल। गर्भिणी दोहद =गर्भवती की लालसा या रुचि। गर्भिणी व्याकरण, गर्भिणीव्याकृति=गर्भ के विकासक्रम का विज्ञान। आयुर्वेद शास्त्र का एक अंग।

गर्भिणी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राचीनकाल की एक प्रकार की नाव।

विशेष—यह ८० हाथ लंबी, ४० हाथ चौड़ी और ४० हाथ ऊँची होती थी और समुद्र में चलती थी। इसपर यात्रा करना अशुभ और अनिष्टकारक समझा जाता था।

२. खिरनी। क्षीरिका।

गर्भिणीत्व—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भिणी होना। गर्भयुक्त होना [को०]।

गर्भित¹—वि० [सं०] १ गर्भयुक्त। २. भरा हुआ। पूर्ण। पूरित। जैसे,—अर्थगर्भित।

गर्भित²—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य का एक दोष जिसमें कोई अतिरिक्त वाक्य किसी वाक्य के अंतर्गत आ जाता है।

गर्भी—वि० [सं० गर्भिन्] गर्भयुक्त [को०]।

गर्भतृप्त—वि० [सं०] १. गर्भस्थ बालक की तरह संतुष्ट। आहारादि की चिंता से मुक्त। २. आलसी। अकर्मण्य [को०]।

गर्भोपघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ का नष्ट होना। २. बादल में जल उत्पन्न करने की शक्ति का नष्ट हो जाना।

गर्भोपनिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद संबंधी एक उपनिषद्।

विशेष—इसमें गर्भ की उत्पत्ति और उसके बढ़ने आदि का वर्णन किया गया है।

गर्म—वि० [फ़ा०] दे० 'गरम'।

गर्मागर्म—वि० [हिं०] गरमागरम। ताजा। उ०—कोई गर्मागर्म जलेबी और पूरी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ, १४३।

गर्मुत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की घास। २. नरकुल की एक जाति। ३. सोना। कनक। ४ एक प्रकार की मधुमक्खी [को०]।

गर्यालू—वि० [हिं० गरियालू] काले नीले रंग का। गरियालू।

गर्रा¹—वि० [सं० गरहाधिक=लाख] लाख के रंग का। लाही।

गर्रा²—संज्ञा पुं० १. लाखी रंग। २. घोड़े का एक रंग जिसमें लाही बालों के साथ कुछ सफेद बाल मिले होते हैं। ३. इस रंग का घोड़ा। उ०—ताजी तुरखी चीनिया लक्खी गर्रा बाज। कुल्ला मुसकी तोलिया केहरि मगसी साज।—प० रासो, पृ० १३८।

गर्रा³—संज्ञा पुं० [अनु०] १. बहते हुए पानी का थपेड़ा। उ०—भेड़ा भँवर उछालन चकरा समेट माना। बैंडा गंभीर तख्ता कट्टे पछार गर्रा। नजीर (शब्द०)। २. गर्दन पर मारा जानेवाला थपेड़ा। रद्दा। ३. बहावलपुर वा भावलपुर में प्रयुक्त (जो अब पाकिस्तान में है) सतलज नदी का नाम।

गर्रा⁴—संज्ञा पुं० [हिं० गराड़ी] गराड़ी।

गर्रा⁵—संज्ञा पुं० [अ० ग़र्रह्] १. अभिमान। घमंड। २. घुमाव। ऐंठन। मरोड़।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

गर्री संज्ञा स्त्री० [हिं० गरेरना] १. खलिहान में लगाई हुई डंठलों की गाँज। २. तागा या तार लपेटने का एक औजार।

गर्ल—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. लड़की। बालिका। २. युवती। जवान स्त्री। ३. प्रेमिका।

गर्लस्कूल संज्ञा पुं० [अं० गर्ल्स स्कूल] वह विद्यालय जिसमें लड़कियाँ पढ़ती हों। कन्या विद्यालय।

गर्व—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गर्वित, गर्ववान्] १. अहंकार। घमंड। २. एक प्रकार का संचारी भाव। अपने को सब से बड़ा और दूसरों को अपने से छोटा समझने का भाव।

गर्वगरु(पु)—[सं० गर्व+हिं० गरु] उद्धत।—नंद ग्रं०, पृ० १११।

गर्वप्रहारी—वि० [सं० गर्वप्रहारिन्] गर्व का नाश करनेवाला। घमंड चूर्ण करनेवाला।

गर्वर—वि० [सं०] अभिमानी। घमंडी [को०]।

गर्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

गर्ववंत—वि० [सं० गर्ववान् का बहु व० गर्ववंतः] घमंडी। अभिमानी। अहंकारी। उ०—गर्ववंत सुरपति चढ़ि आयो। वाम करज गिरि टेकि दिखायो।—सूर (शब्द०)।

गर्वाट—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल । चौकीदार [को०] ।

गर्वाना(पु)—क्रि० अ० [सं० गर्व] गर्व होना । अभिमान होना । घमंड या अहंकार होना । उ०—कहा तुम इतनेहि को गर्वानी । जोबन रूप दिवस दसही को ज्यों अँगुरी को पानी ।—सूर (शब्द०) ।

गर्वित—वि० [सं०] गर्वयुक्त । अभिमान भरा । घमंडी ।

गर्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जिसे अपने रूप और गुण आदि का घमंड हो । यह दो प्रकार की होती है—रूपगर्विता और प्रेमगर्विता ।

गर्विष्ठ—वि० [सं०] अहंकार करनेवाला । गर्वयुक्त । घमंडी ।

गर्वी—वि० [सं० गर्विन्] घमंडी । अहंकारी । मगरूर ।

गर्वीला—वि० [सं० गर्व + हि० ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० **गर्वीली**] घमंड से भरा हुआ । अभिमानयुक्त । घमंडी । उ०—जिनि वह सुधापान मुख कीन्हों वे कैसे कटु देखत । त्यों ए नैन भए गर्वीले अब काहे हम लेखत ।—सूर (शब्द०) ।

गर्वोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्वपूर्ण कथन या बात ।

गर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० **गर्हणा**] [वि० **गर्हणीय, गर्हित,** गर्ह्य, गर्हितव्य] निंदा । शिकायत ।

गर्हणीय—वि० [सं०] निंदा करने के योग्य । बुरा । निंदनीय ।

गर्हा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा ।

गर्हित—वि० [सं०] जिसकी निंदा की जाय । निंदित । दूषित । बुरा ।

गर्हितव्य—वि० [सं०] निंदनीय । गर्हणीय [को०] ।

गर्ही—वि० [सं० गर्हिन्] निंदा करनेवाला । निंदक [को०] ।

गर्ह्य—वि० [सं०] निंदा करने योग्य । निंदनीय ।

यौ०—गर्ह्यवादी = वितथ या निंद्य भाषण करनेवाला ।

गर्ह्याणक—वि० [सं०] दुष्ट । बुरा [को०] ।

गलंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गलन्तिका] १. छोटा कलश । २. छेद युक्त घड़ा जिससे शिवलिंग आदि पर जल का अभिषेक होता रहता है [को०] ।

गलंती—संज्ञा स्त्री० [सं० गलन्ती] दे० 'गलंतिका' ।

गलंश—संज्ञा स्त्री० [सं० गलितांश] वह जायदाद जिसका मालिक मर गया हो और उसका कोई उत्तराधिकारी न हो ।

गल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गला । कंठ । गरदन । २. राल । ३. गड़ाकू नाम की मछली । ४. एक प्राचीन बाजे का नाम । ५. रस्सी (को०) । ६. एक प्रकार की लंबी घास । वृहत्काश [को०] ।

गलई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गलही' ।

गलकंबल—संज्ञा पुं० [सं० गलकम्बल] गाय के गले के नीचे का वह भाग जो लटकता रहता है । झालर । लहर । उ०—अंतर अयन अयनु भल थनु फल वच्छवेद विस्वासी । गलकंबल वरना विभाति जनु लूम लसति सरिता सी—तुलसी (शब्द०) ।

गलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गला । २. गड़ाकू मछली । ३. मोती [को०] ।

गलका¹—संज्ञा पुं० [हि० गलना] १. एक प्रकार का फोड़ा जो हाथ की उँगलियों के अगले भाग में होता है और वहुत कष्ट देता है । २. एक तरह का चाबुक । गलकोड़ा ।

गलका²†—संज्ञा पुं० [देश०] खट्टे या कच्चे फल का शकर तथा मसालों के साथ बनाया हुआ अचार । उ०—कबीर मन विकरै पड़्या गया स्वाद कै साथि । गलका खाया वरजता अब क्यूँ आवै हाथि ।—कबीर ग्रं०, पृ० २९ ।

गलकोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गला + कोड़ा] १. मालखंभ की एक कसरत ।

विशेष—इसमें पीठ की तरफ गरदन पर से वेंत को ले जाकर एक हाथ में उसे लपेट लेते हैं और दूसरी ओर के पाँव में अंटी देकर गले के जोर पर लटक जाते हैं ।

२. कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें एक बगल में शत्रु की गरदन दबाकर दूसरा हाथ उसकी बगल से पीठ पर ले जाते हैं और उसे उलटकर टाँग के सहारे गिरा देते हैं ।

३. एक प्रकार का कोड़ा या चाबुक ।

गलखप—संज्ञा स्त्री० [सं० गल्प, प्रा० गल्ल या देश०] गलगौज । चखचख । झकझक । उ०—हीरा गया तो देखा अत्रासी और बूढ़ी खपट मुगलानी में गलखप हो रही है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१४ ।

गलखोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गला + कोड़ा] दे० 'गलकोड़ा' ।

गलगंजना—क्रि० अ० [सं० गल + गर्जन,] जोर से आवाज करना । भारी शब्द करना । उ०—बीस सहस घहराहिं निसाना । गलगंजहिं भेरी असमाना ।—जायसी (शब्द०) ।

गलगंड—संज्ञा पुं० [सं० गलगण्ड] गले का एक रोग । घेघा ।

विशेष—इसमें गले में सूजन हो आती है और क्रमशः वढ़ते वढ़ते सामने एक गाँठ सी निकल पड़ती है । यह गाँठ भिन्न भिन्न आकार की होती है; और कभी कभी इतनी बढ़ जाती है कि थैले की तरह गले में लटकने लगती है । वैद्यक के अनुसार यह रोग तीन प्रकार का माना गया है—वातज, कफज और मेदज । डाक्टरों का कथन है कि पहाड़ी तराइयों में लोगों को, विशेषकर स्त्रियों को गलगंड रोग हो जाता है । उनके मत से इसमें गले के एक या दोनों ओर की झिल्ली फूल आती है ।

गलगंड²†—संज्ञा पुं० [देश०] हरगीला नाम की चिड़िया ।

गलगल—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. मैना की जाति की एक चिड़िया । सिरगोटी । गलगलिया ।

विशेष—यह कुछ सुर्खी लिए काले रंग की होती है । इसके गले पर दोनों ओर पीली या लाल धारियाँ होती हैं और इसकी दुम के नीचे का भाग सफेद होता है ।

२. एक प्रकार का वहुत वड़ा नीबू ।

विशेष—यह चकोतरे के बराबर होता है और पकने पर गहरे वसंती रंग का हो जाता है । यह वहुत अधिक खट्टा होता है और अचार डालने तथा औषधियों के काम में आता है ।

३. चर्बी की बत्ती का एक टुकड़ा ।

विशेष—यह जहाज में समुद्र की गहराई नापनेवाले यंत्र में सीसे की एक नली से लगा रहता है । यह नली बार बार समुद्र में

फेंकी और निकाली जाती है और इसमें बालू आदि समुद्र की तह की चीजें लगकर बाहर निकलती हैं।—(लश्करी)।
४. अलसी और चूने के तेल को मिलाकर बनाया हुआ एक प्रकार का मसाला।
विशेष—यह लकड़ी आदि को चीजों को जोड़ने या छोटा छेद अथवा दरार आदि बंद करने के काम में आता है। इसे पोटीन भी कहते हैं।

गलगला—वि० [हिं० गीला या अनु०] [वि० स्त्री० गलगली] भीगा हुआ। आर्द्र। तर। उ०—ललन चलन सुनि चुप रही बोली आयन ईठि। राख्यो गहि गाढ़े गरो मनो गलगली दीठि।—बिहारी (शब्द०)।

गलगलाना[1]†—क्रि० अ० [हिं गीला या अनु०] गीला होना। तर होना। भीगना।

गलगलाना[2]†—क्रि० स० [सं० गल्प+जल्पना] बेकार की बातें करना। बढ़ चढ़कर बातें करना। जोर से बोलना।

गलगलिया[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] किलहँटी या सिरोही नाम की एक चिड़िया।

गलगलिया[2]†—वि० [हिं०] बड़ बड़ करनेवाला। बेकार की बातें करनेवाला।

गलगाजना—क्रि० अ० [हिं० गाल+गाजना] खुशी से गरजना। गाल बजाना। बढ़ बढ़कर बातें करना। उ०—राम सुभाउ सुने तुलसी हुलसे अलसी हमसे गलगाजे।—तुलसी (शब्द०)।

गलगुच्छा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गलमुच्छा'।

गलगुथना—वि० [हिं० गाल+गुँथना] जिसका बदन खूब भरा और गाल फूले हों। मोटा ताजा।

गलगौज(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० गाल+गौज] बकबक। व्यर्थ विवाद। गप्पाष्टक। उ०—राम जी सों नेह नाहीं सदा अविवेक माही मनुवाँ रहत नित करत गलगौज है।—भीखा० श०, पृ० ५६।

गलग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष के अनुसार कृष्ण पक्ष की चतुर्थी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, अमावस्या और प्रतिपदा।
विशेष—गर्गादि के मत से जब स्वाध्याय के आरंभ करते ही स्मृति के अनुसार अनध्याय पड़ जाय, तब उसे भी गलग्रह कहते हैं।
२. मछली का काँटा। ३. वह आपत्ति जो कठिनता से टले। ४. गले का एक रोग जिसमें कफ बढ़ जाने से गला बंद हो जाता है। ५. एक प्रकार की पकी हुई मछली। ६. गला पकड़ना। गला घोटना (को०)।

गलघोटू—वि० [हिं० गला+घोटू=घोटनेवाला] १. गला घोंटनेवाला। २. अप्रिय। जैसे, गलघोटू काम या बात।

गलचुमनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाल+चूमना] कान का एक गहना जो गालों पर गोलाकार रहता है। उ०—सिर पर है चँदवा शीशफूल, कानों में झुमके रहे झूल, बिरिया गलचुमनी कर्ण फूल।—ग्राम्या०।

गलछट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला+छाँट] मछली के गलफड़े के दोनों ओर कुर्री हड्डियों का बना हुआ, कमानी के आकार का वह भाग जिसके ऊपर लाल सूइयों की झालर लगी रहती है और जिसकी सहायता से मछली पानी में मिली हुई वायु को अंदर खींचकर साँस लेती और पानी को बाहर ही छोड़ देती है।

गलजंद(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] गले का हार। गलजँदड़ा।

गलजँदड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गल+यन्त्र, पं० जंदरा] १. वह जो सदा साथ रहे। वह जो कभी पिंड न छोड़े। गले का हार। २. रूमाल या कपड़े की पट्टी।
विशेष—यह गले में उस समय हाथ के सहारे या उसे लटकाने के लिये बाँधी जाती है, जब कि हाथ में किसी प्रकार की चोट लगी हो या कोई घाव हो।

गलजोड़—स्त्री० [हिं०] दे० 'गलजोत'।

गलजोत[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला+जोत] १. वह रस्सी या पगही आदि जिससे एक बैल के गले को दूसरे बैल के गले से लगाकर बाँधते हैं। गलजोड़। २. गले का हार। गलजँदड़ा।

गलजोत[2]†—वि० असह्य।

गलझंप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गला+झंप] एक प्रकार की लोहे की झूल जो युद्ध के समय हाथियों के गले में पहनाई जाती थी। उ०—तैसे चँवर बनाए और घाले गलझंप। बँधे सेन गजगाह तँह जो देखै सो कंप।—जायसी (शब्द०)।

गलतंग[1]†—वि० [हिं० गला+तंग] बेसुध। बे खबर।

गलतंग[2]†—वि०[सं० गलिताङ्ग] टूटाफूटा। नष्टभ्रष्ट। सड़ागला।

गलतंस संज्ञा पुं० [सं० गलित+वंश] १. ऐसा मनुष्य जो कोई संपत्ति न छोड़कर मरा हो। २. ऐसे मनुष्य की संपत्ति जिसे कोई संतति न हो।

गलत—वि० [अ० ग़लत] [संज्ञा स्त्री० गलती] १. अशुद्ध। भ्रममूलक। २. असत्य। मिथ्या। झूठ।
क्रि० प्र०—करना।—ठहरना।—ठहराना।—होना।

गलतकार—वि० [अ० ग़लत+फ़ा० कार] [संज्ञा गलतकारी] गलत करनेवाला। जानबूझ कर चूक जानेवाला। अंट संट काम करनेवाला (को०)।

गलतकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाल+तकिया] छोटा, गोल और मुलायम तकिया जो गालों के नीचे रखा जाता है।

गलतगो—वि० [अ० ग़लत+फ़ा० गो] मिथ्यावादी। झूठा (को०)।

गलतनामा—संज्ञा पुं० [अ० ग़लत+फ़ा० नामह्] अशुद्धियों का विवरण या परिशिष्ट। शुद्धिपत्र।

गलतनी—संज्ञा स्त्री० [हिं गला+तनना] वह रस्सी जो बैलों के गेरावँ में बाँधी जाती है। पगहा।

गलतफहमी—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़लत+फ़हम+फ़ा० ई (प्रत्य०)] किसी ठीक बात को गलत समझना। भूल से कुछ का कुछ समझना। भ्रम।
क्रि० प्र०—पैदा होना।—होना।

गलताँ—वि० [फ़ा० ग़लताँ] दे० 'गलतान'।

गलता —संज्ञा पुं० [अ० ग़लत] १. एक प्रकार का बहुत चमकीला और नर्म कपड़ा।

विशेष—इसका ताना रेशम का और बाना सूत का होता है। यह सादा, धारीदार और अन्य कई प्रकार का होता है।

२. मकान की कारनिस।

गलताड—संज्ञा पुं० [सं०] जूए या जुआठ की वह सैल या खूँटी जो अंदर की ओर होती है।

गलतान¹—वि० [फ़ा० गलतान्] चक्कर मारता हुआ। लुढ़कता हुआ। घूमता हुआ। उ०—गगन दुआरे मन गया करै अमृत रस पान। रूप सदा झलकत रहै, गगन मँडल गलतान।—कबीर (शब्द०)

गलतान²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रेशमी वस्त्र।

गलतानी(पु)—वि० [फ़ा० गलतान] दे० 'गलतान'। उ०—दरिया तीनों लोक में, देखा दोय बिना न गुजरानी गुजरान में, गलतानी गलतान।—दरिया० बानी, पृ० ३७।

गलती—संज्ञा स्त्री० [अ० गलत+हिं० ई] १. भूल। चूक। धोखा।

मुहा०—**गलती में पड़ना**=धोखा खाना। भूल करना।

२. अशुद्धि। भूल।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—निकलना।—पड़ना।—होना।

गलथन—संज्ञा पुं० [सं० गलस्तन] दे० 'गलथना'।

गलथना—संज्ञा पुं० [सं० गलस्तन, प्रा० गलत्थन, गलथन] वे थैलियाँ जो एक विशेष प्रकार की बकरियों की गरदन में दोनों ओर लटकती रहती हैं। उ० नाम जपत कन्या भली साकट भला न पूत। छेरी के गल गलथना जामें दूध न मूत।—कबीर (शब्द०)।

गलथैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाल+थैली] बंदरों के गाल के नीचे की थैली जिसमें वे खाने की वस्तु भर लेते हैं।

गलदश्रु—क्रि०वि० [सं०] आँसू बहाता हुआ। रोता हुआ [को०]।

गलद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] मुख। मुँह [को०]।

गलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बूँद बूँद गिरना। चूना। टपकना। रिसना। क्षरण। २. झड़ना। ३. ठढ आदि से गल जाने की स्थिति। गलना। ४. पिघलना। ५. सरकना [को०]।

गलनहाँ¹—संज्ञा पुं० [हिं० गलना+नहँ=नाखून] हाथियों का एक रोग जिसमें उनके नाखून गल गलकर निकला करते हैं।

गलनहाँ²—वि० (हाथी) जिसे गलनहाँ रोग हो।

गलना—क्रि० अ० [सं० गरण=तर होना] १. किसी पदार्थ के घनत्व का कम या नष्ट होना। किसी द्रव्य के संयोजक अंशों या अणुओं का एक दूसरे से इस प्रकार पृथक् हो जाना जिससे वह द्रव्य विकृत, कोमल या द्रव हो जाय।

विशेष—यह विश्लेषण किसी द्रव्य के बहुत दिनों तक यों ही अथवा जल, तेजाब आदि में पड़े रहने, गरमी या आँच लगने अथवा किसी और प्रकार के संयोग के कारण हो जाता है। जैसे—आँच के द्वारा सोने, चाँदी आदि का गलना; जल में बताशे, मिट्टी आदि का गलना; गरम जल की आँच में दाल चावल आदि का गलना, तेजाब में दवा या खनिज पदार्थों का गलना; कीटाणुओं के संयोग से (कोढ़ आदि व्याधियों में) शरीर के अंगों, और बहुत अधिक पकने या अधिक समय तक पड़े रहने के कारण फल पत्तों आदि का सड़कर गलना।

२. बहुत जीर्ण होना। जैसे, कपड़ा या कागज गलना। ३. शरीर का दुर्बल होना। बदन सूखना। जैसे—आठ दिन की बीमारी में बिलकुल गल गए। ४. बहुत अधिक सरदी के कारण हाथ पैर का ठिठुरना। जैसे,—आज तो सरदी के मारे हाथ गल रहे हैं। ५. वृथा या निष्फल होना। बेकाम होना। नष्ट होना। जैसे,—दाँव गलना, मोहरा गलना।

मुहा०—**कोठी गलना**=कुएँ या पुल के खंभे में जमवट या गोले के ऊपर की जोड़ाई का नीचे धँसना। **चीनी गलना**=मिठाई आदि बनाने के लिये चीनी का कड़ाही में ढाला जाना। **नाम पर गलना**(पु)=प्रिय को प्राप्त करने के लिये अनेक कष्ट सहना। उ०—गलों तुम्हारे नाम पर ज्यों आटे में नोन, ऐसा बिरहा मेलकर नित दुख पावै कौन।—कबीर सा० सं०, पृ० ४५। **रुपया गलना**=व्यर्थ व्यय होना। फजूल खर्च होना। जैसे—कल उनके पचास रुपए तमाशे में गल गए।

संयो० क्रि०—जाना।

गलपासी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गल+पाश] दे० 'गलफाँसी'। उ०—सुख कौं चाहै पड़ै गलपासी, देखन हीरा हाथ थैं जासी—संतवाणी०, पृ० १००।

गलफड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गाल+फटना] १. जलजंतुओं का वह अवयव जिससे वे पानी में साँस लेते हैं।

विशेष—ऐसे जंतुओं में फेफड़ा नहीं होता। यह सिर के नीचे दोनों ओर होता है और भिन्न भिन्न जलजंतुओं में भिन्न भिन्न आकार का होता है। मछलियों के गले में सिर के दोनों ओर दो अर्धचंद्राकार छेद या कटाव होते हैं। इन्हीं छेदों के अंदर चार चार अर्धचंद्राकार कमानियाँ होती हैं जिनके ऊपर लाल-लाल नुकीली सूइयों की झालर होती है जिसे गलछट कहते हैं। इन्हीं गलछटों से होकर मछलियाँ पानी में साँस लेती हैं जिससे पानी में मिली हुई वायु मात्र अंदर जाती है और पानी छँटकर बाहर रह जाता है।

२. गालों के दोनों ओर का वह मांस जो दोनों जबड़ों के बीच में होता है। गाल का चमड़ा।

गलफरा, गलफरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गलफड़ा'।

गलफाँस—संज्ञा स्त्री० [सं० गलपाश] मालखंभ की एक कसरत।

विशेष—इसमें बेत को गले में लपेटकर उसके एक छोर से छाती पर से ले जाकर पैर के अंगूठे के नीचे दबाकर केवल गले के जोर से अपने माथे को पेट तक झुकाते हैं। इस कसरत में इस बात पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि गला अधिक न कसने पाए, अन्यथा गले में फाँसी लग जाने की आशंका होती है।

गलफाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला+फाँसी] १. गले की फाँसी या फंदा। २. कष्टदायक वस्तु या कार्य। जंजाल। ३. मालखंभ की एक कसरत।

गलफूट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाल+फूटना] बड़बड़ाने की लत। बेधड़क अंडबंड बकने की लत। कल्लेदराजी।

गलफूला¹—वि० [हिं० गाल+फुलना] जिसका गाल फूला हो।

गलफूला[२]—संज्ञा पुं० एक रोग जिसमें गले में सूजन होती है।

गलफेड़—संज्ञा पुं० [सं० गल+पिण्ड] गले की गिलटी।

गलबंदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला+बँधना या हिं० गला+बंद+नी (प्रत्य०)] गुलूबंद नामक आभूषण जो गले में पहना जाता है।

गलबदरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गलना+बदली] ऐसा बादल जिसके साथ हाथ पाँव गलानेवाला जाड़ा पड़े। यह अवस्था प्रायः जाड़े के दिनों में होती है।

गलबल†—संज्ञा पुं० [अनु०] [वि० गलबलिया] कोलाहल। खलबली। गड़बड़ी। उ०—(क) गलबल सब नगर परयो प्रगटे यदुवंशी। द्वारपाल इहै सूर ब्रह्म अंशी।—सूर (शब्द०)। (ख) गोपद पयोधि करि होलिका ज्यों लाई लंक निपट निसंक पर पुर गलबल भो।—तुलसी (शब्द०)।

गलबलिया†—वि० [हिं० गलबल+इया (प्रत्य०)] १. गड़बड़ी करनेवाला। २. बड़बड़ानेवाला। बातूनी।

गलबली†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'गलबल'।

गलबहियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला+बाँह] दे० 'गलबाँही'।

गलबाँही—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला+बाँह] गले में बाँह डालना। कंठालिंगन। उ०—सुमन कुंज बिहरत सदा दै गलबाँही माल। बंदौं चरन सरोज तिन जुगुल लाडिली लाल।—(शब्द०)।

गलबा—संज्ञा पुं० [अ० गलबह्] १. प्रबलता। प्राचुर्य। आधिक्य। २. प्रभुत्व। सत्ता। ३. जय। जीत। विजयप्राप्ति। ४. सामूहिक झगड़ा। मारकाट। बलवा [को०]।

गलमँदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गाल+सं० मुद्रा] १. शिवजी के पूजन, शयन आदि के समय उन्हें प्रसन्न करने के लिये गाल बजाने की मुद्रा। गलमुद्रा। २. गाल बजाना। व्यर्थ बकवाद या गप्प करना। उ०—इत नृप मूढ़न की गलमँदरी। मिटन न पाई जब तक सगरी।—विश्राम (शब्द०)।

गलमुच्छा—संज्ञा पुं० [सं० गाल+हिं० मूछ] दोनों गालों पर के बढ़ाए हुए बाल। गलगुच्छा।

विशेष—इसे कुछ लोग शौक से रख लेते हैं। ऐसे लोग ठोढ़ी के बाल तो मुँड़वा डालते हैं, पर गालों के बाल बढ़ने देते हैं।

गलमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० गल+मुद्रा] शिवजी के पूजन, शयन आदि के समय उनको प्रसन्न करने के लिये गाल बजाने की मुद्रा। गलमँदरी।

गलमेखला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंठ का हार [को०]।

गलवाना—क्रि० स० [हिं० 'गलाना' का प्रे० रूप] गलाने का काम कराना। गलाने में लगाना।

गलवार्त—वि० [सं०] १. गले के द्वारा जीविका अर्जित करनेवाला। २. गले की क्रिया में निपुण। चाटुकार। ३. खाने और पचानेवाला। तंदुरुस्त। स्वस्थ [को०]।

गलविद्रधि—संज्ञा पुं० [सं०] गले का रोग। सूजन आदि।

गलव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] मोर। मयूर [को०]।

गलशुंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गलशुण्डिका] दे० 'गलशुंडी' [को०]।

गलशुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० गलशुण्डी] १. जीभ के आकार का मांस का एक छोटा टुकड़ा जो प्राणियों के गले के अंदर जीभ की जड़ के पास होता है। छोटी जबान या जीभ। जीभी। कौआ।

विशेष—शब्द का उच्चारण करने में यह प्रधान सहायक है। इससे श्वास की नलियों की रक्षा होती है और उनमें खाने पीने की चीजें नहीं जाने पातीं। पुरुषों में यह अंश आध इंच से कुछ बड़ा और स्त्रियों में कुछ छोटा होता है। बाल्यावस्था में यह बहुत छोटा रहता है; पर युवावस्था में दो तीन वर्षों के अंदर ही इसका आकार दूना या तिगुना हो जाता है। युवावस्था में जो आवाज कड़ी हो जाती है और जिसे 'कंठ फूटना' कहते हैं, उसका प्रधान कारण इसी के रूप और आकार का परिवर्तन है। कुछ पशुओं में यह बहुत नीचे की ओर फेफड़े की नलियों के पास होता है। साधारणतः पक्षियों में दो और कभी कभी तीन तक गलशुंडियाँ होती है।

२. एक रोग।

विशेष—इसमें कफ और रक्त के विकार के कारण तालू की जड़ में सूजन हो जाती है और खाँसी तथा साँस की अधिकता हो जाती है।

गलशोथ—संज्ञा पुं० [सं०] जुकाम आदि के कारण गले के भीतर होनेवाली पीड़ा या सूजन [को०]।

गलसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गल+श्री] कंठश्री नाम का गहना जो गले में पहना जाता है।

गलसुआ[१]—संज्ञा पुं० [हिं० गाल+सूजना] एक रोग जिसमें गाल के नीचे का भाग सूज जाता है।

गलसुआ[२]—संज्ञा पुं० [हिं० गला+सूजना] पशुओं का एक रोग जिसमें उनके गले में सूजन हो जाती है और उन्हें खाँसी होने लगती है।

गलसुई—संज्ञा स्त्री० [सं० गाल+सुई] गालों के नीचे रखने का एक छोटा, गोल और कोमल तकिया। गलतकिया। उ०—कुसुम गुलाबन की गलसुई। बरणी जाय न नयनन छुई।—केशव (शब्द०)।

गलस्तन—संज्ञा पुं० [संज्ञा गलस्तनी] स्तन के आकार की वे पतली थैलियाँ जो एक प्रकार की बकरियों के गले के दोनों ओर लटकती रहती हैं। गलथन।

गलस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरियों की एक जाति जिनके गले के पास स्तन के आकार की दो छोटी पतली थैलियाँ लटकती रहती हैं।

गलस्वर—संज्ञा पुं० [सं० गल+स्वर] प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था।

गलहँड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गलस्तन, प्रा० गलत्थण, गलथण > हिं० गलहँड; अथवा हिं० गला+हंडा=एक बरतन] गले का एक रोग जिसमें गले में थैली सी लटक आती है। घेघा।

गलहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्धचंद्र। गर्दनियाँ। २. अर्धचंद्र के आकार का एक बाण [को०]।

गलहस्तित—वि० [सं०] १. गले से पकड़ा हुआ। २. गर्दनियाँ दिया हुआ। अर्धचंद्र दिया हुआ [को०]।

गलहस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] अर्धचंद्र या गर्दनियाँ देना [को०]।

गलहार—संज्ञा पुं० [सं०] गले का हार। कंठहार। उ०—जानता गलहार हूँ जंजीर को भी।—मिलन०, पृ० ३०।

गलही—संज्ञा स्त्री० [सं० गला+ही (प्रत्य०)] नाव का वह अगला और ऊपर का भाग, जहाँ उसके दोनों पार्श्व आकर समाप्त होते हैं।

गलांकुर—संज्ञा पुं० [सं० गलाङ्कुर] एक प्रकार का रोग जिसमें गले का कौवा वढ़ जाता है [को०]।

गला—संज्ञा पुं० [सं० गलक, प्रा० गलअ] १. शरीर का वह अवयव जो सिर को धड़ से जोड़ता है। गरदन। कंठ।

विशेष—इसके अंदर एक पतली नाली रहती है जिससे होकर भोजन किया हुआ पदार्थ तथा श्वास द्वारा खींची हुई वायु पेट में जाती है। नाभिमूल से नाद के साथ उठी हुई वायु इसी में से होकर मुख के भिन्न भिन्न स्थानों में टकराती हुई भिन्न भिन्न प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करती है।

यौ०—**गलाफाड़**। **गलेबाज**। **गलबाँही**।

मुहा०—**गला आना**=गले के अंदर छाला पड़ना। सूजन होना। **गला उठाना या गला करना**=बच्चों के गले में उँगली डालकर या रूमाल बाँधकर उनके बढ़े हुए कौवे को ऊपर को दबाना जिसमें वह अपने ठिकाने पर आ जाय। घंटी बैठाना। **गला कटना**=(१) गरदन कटना। धड़ से शिर जुदा होना। (२) अनुचित हानि पहुँचना। किसी की विरुद्ध कार्रवाई से नुकसान पहुँचना। **गला कटवाना या कटाना**=(१) लोगों के कहने से या अपनी इच्छा से कोई ऐसा काम करना जिससे अपनी बड़ी हानि हो। (२) जान देना। प्राण देना। **गला काटना**=(१) गरदन काटना। धड़ से सिर जुदा करना। (२) अत्यंत कष्ट पहुँचाना। बहुत दुःख देना। अन्याय करना। जैसे—वह लोगों का गला काट काटकर रुपया इकट्ठा कर रहा है। (३) सूरन, बंडे आदि का गले के अंदर एक प्रकार की जलन और चुनचुनाहट उत्पन्न करना। गले के अंदर कनकनाना। जैसे—यह सूरन बहुत गला काटता है। (४) विरुद्ध कार्रवाई करके हानि पहुँचाना। बुराई करना। अहित करना। जैसे—जो पहले मित्र बनते हैं, वे ही पीछे गला काटते हैं। **गला घुटना**=दम रुकना। अच्छी तरह साँस न लिया जाना। **गला घोंटना**=(१) गले को ऐसा दबाना कि साँस रुक जाय। टेंटुआ दबाना। (२) जबरदस्ती करना। जब्र करना। जैसे—गला घोंटकर कोई किसी से कबतक काम ले सकता है। (३) मार डालना। गला दबाकर मार डालना। **गला चलना**=कंठ से सुरीला स्वर निकलना। आवाज का सुरीला होना। जैसे—उसका गला खूब चलता है। **गला छूटना**=पीछा छूटना। पल्ला छूटना। छुटकारा मिलना। निस्तार होना। किसी अरुचिकर या इच्छाविरुद्ध बात का दूर होना। बचाव होना। जैसे—उसको ५) दिए तब जाकर गला छूटा। **गला छुटाना या गला छुड़ाना**=पीछा छुड़ाना। पल्ला छुड़ाना। पिंड छुड़ाना। बचाव करना। किसी ऐसी बात को दूर करना जिससे चित्त झंझट, हैरानी, दबाव या दुःख में पड़ा हो। जैसे—(क) उसे कुछ देकर गला छुड़ाओ। (ख) कल वह रास्ते में मुझसे ऐसा उलझ पड़ा कि गला छुड़ाना कठिन हो गया। **गला जोड़ना**=(१) प्रीति या मैत्री प्रकट करने के लिये एक दूसरे के गले में हाथ डालना। मिलना। मैत्री करना। (२) साथ देना। **गला टीपना**=दे० 'गला दबाना'। **गला दबाना**=(१) गले को इतने जोर से पकड़ना कि साँस रुकने लगे। (२) गला दबाकर मार डालना। (३) जबरदस्ती करना। अनुचित दबाव डालना। जैसे—(क) उसने लोगों का गला दबाकर रुपया वसूल किया। (ख) जब वह नहीं जाना चाहता, तब क्यों उसका गला दबाते हो। **गला पकड़ना**=(१) गले में बैठना। किसी खाई हुई वस्तु का गले में चिपकना या रुकना तथा जल्दी नीचे न उतरना। जैसे—सूखा सत्तू गला पकड़ता है। (२) कंठावरोध करना। कंठ से स्पष्ट शब्द न निकलने देना। **गला पड़ना या बैठना**=(१) गले के अंदर सूजन होने या कफ आदि रहने तथा जोर से बहुत बोलने या गाने के कारण शब्द मुँह से स्पष्ट न निकलना या घबराहट के साथ निकलना। जैसे—रात भर गाते गाते इसका गला बैठ गया। (२) गले के अंदर सरदी के कारण छोटी छोटी गिलटियाँ निकलना जिससे खाने पीने में बहुत कष्ट होता है। **गला फटना**=गला दुखना। गले के अंदर दर्द होना। जैसे—चिल्लाते चिल्लाते उसका गला फट गया। **गला फँसना**=बंधन में पड़ना। लाचार होना। मजबूर होना। कोर दबाना। विवश होना। जैसे—जब आदमी का गला फँसता है, तब सब कुछ करने को तैयार हो जाता है। **गला फँसाना**=(१) दाँव में कसना। बंधन में डालना। वशीभूत करना। (२) आपत्ति में फँसाना। संकट में डालना। मुश्किल में डालना। जवाबदेही में डालना। ऋण आदि का बोझ ऊपर डालना। जैसे—हमारा गला फँसाकर आप चलते बने। **गला फाँसना**=दे० 'गला फँसाना'। **गला फाड़ना**=इतना चिल्लाना कि गला दुखने लगे। जोर भर आवाज लगाना। जैसे वह इतना गला फाड़ फाड़कर चिल्ला रहा था, पर तुमने न सुना। (ख) क्यों व्यर्थ गला फाड़ते हो, वह नहीं बोलेगा। **गला फिरना**=गले का तान और लय पर चलना। गले से स्वर का तान, स्वर और गिटकरी के अनुसार निकलना। **गला फूलना**=उकता जाना। दम फूलना। **गला बँधना**=(१) मजबूर होना। बँध जाना। (२) विवश होना। **गला बँधाना**=दे० 'गला फँसाना'। **गला बाँधना**=(१) बंधन में डालना। मजबूर करना। (२) दे० 'गला फँसाना'। **गला बाँधकर धन जोड़ना**=खाने पीने का कष्ट उठाकर धन इकट्ठा करना। **गला रेतना**=(१) अत्यंत कष्ट पहुंचाना। अधिक और असह्य दुःख देना। (२) अहित करना। बुराई करना। विरुद्ध कार्रवाई करके हानि पहुंचाना। **गले का ढोलना**=(१) गले का बोझ। (२) दे० 'गले का हार'। **गले का बोझ**=व्यर्थ का भार। ऐसी वस्तु जिसका रहना बुरा लगता हो। **गले का हार**=(१) इतना प्यारा (व्यक्ति या वस्तु) कि पास से कभी जुदा न किया जाय। अत्यंत प्रिय। चिर

सहचर। जैसे इस समय वह राजा साहब के गले का हार हो रहा है।

क्रि० प्र०—करना।—बनना। —बनाना। —होना।

(२) पीछा न छोड़नेवाला। लाख न चाहने पर भी सदा पास में बना रहनेवाला। वह जो बोझ मालूम हो। जैसे—पहले तो उसे परचाते अच्छा लगा, अब वही गले का हार हो रहा है।

क्रि० प्र०— करना।—बनना।—बनाना—होना।

(बात) गले के नीचे उतरना या गले उतरना=(बात) मन में बैठना। जी में जँचना। ध्यान में आना। समझ में आना। स्वीकृत होना। जैसे—उसे इतना समझाया जाता है, पर उसके गले के नीचे उतरता ही नहीं। गले उतारना=स्वीकार कराना। गले या गरे पड़ना=(१) इच्छा के विरुद्ध प्राप्त होना। न चाहने पर भी मिलना। मत्थे पड़ना। जैसे—(क) गले पड़ा ढोल बजाए सिद्ध। (ख) गए निमाज छुड़ाने, रोजा गले पड़ा। ㉺ (२) सिर पड़ना। आगे आना। भ गने या सहने के लिये सामने उपस्थित होना। उ०—होती अनजान तौ न जानती इतीक बिथा मेरे जिय जान मेरो जानिबो गरे परयौ। देव (शब्द०)। गले पर छुरी चलाना=अत्याचार करना। उ०—बेबसों पर छुरी चला करके, क्यों गले पर छुरी चलाते हो। चुभते०, पृ० ३४। गले पर छुरी फेरना=अहित करना। हानि करना। उ०—तो छुरी बेढंग आपस में चला, मत गले पर जाति के फेरो छुरी।—चुभते०, पृ० ३५। (अपने) गले बाँधना=(१) संग लगाना। सिर पर ले लेना। (२) व्यर्थ पास में रखना। निष्प्रयोजन लिए रहना। जैसे—इस टूटे गिलास को लेकर क्या हम गले बाँधेंगे। (३) इच्छा के विरुद्ध किसी से विवाह करना। (दूसरे) के गले बाँधना=दूसरे की इच्छा के विरुद्ध उसे देना। जबरदस्ती देना। दूसरे के न चाहने पर भी उसे लेने के लिये विवश करना। जैसे—जब वह इसे नहीं लेना चाहता, तो क्यों उसके गले बाँधते हो। गले मढ़ना=(१) किसी की इच्छा के विरुद्ध उसे देना। जबरदस्ती देना। जैसे—वह दूकानदार टूटी फूटी चीजें लोगों के गले मढ़ता है। (२) किसी की इच्छा के विरुद्ध उसपर किसी कार्य का भार देना। दूसरे के न चाहने पर भी उसे कोई काम सौंपना। (३) किसी की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ किसी को व्याहना। जैसे— वह कानी स्त्री उसके गले मढ़ी गई। गले मिलना=गले पर हाथ रखकर आलिंगन करना। गले लगना=(१) मिलना। गले मिलना। गले में हाथ डालना। (२) गले पड़ना। इच्छा के विरुद्ध प्राप्त होना। गले लगाना=(१) गले मढ़ना। दूसरे की इच्छा के विरुद्ध उसे देना। दूसरे के न चाहने पर भी उसे लेने के लिये विवश करना। जैसे,—यदि आप इसे नहीं लेना चाहते, तो कोई आपके गले नहीं लगाता है। (२) प्यार से मिलना या भेंटना। (३) आत्मीय बनाना। अपनाना।

२. गले का स्वर। कंठस्वर। जैसे—उसे भगवान ने अच्छा गला दिया है। ३. अँगरखे, कुरते आदि की काट में कपड़े का वह भाग जो गले पर पड़ता है। गरेबान।

क्रि० प्र०— काटना।—कता करना।

४. बरतन का वह तंग या पतला भाग जो उसके मुँहड़े के नीचे होता है। जैसे—घड़े का गला, लोटे का गला। ५. चिमनी का कल्ला। बर्नर।

गलाऊ वि० [हिं० गलना] जो गल जाय। जो गल सके। गलनेवाला। जैसे गलाऊ दाल।

गलाकट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला+काटना] गला काटना। भारी नुकसान पहुंचाना। उ०—मिलशाही सबकी गलाकट्टी कर रही थी।—मान०, भा० १, पृ० ३३०।

गलाना—क्रि० स० [हिं० गलना का सकर्मक रूप] १. किसी वस्तु के संयोजक अणुओं को पृथक् पृथक् करके उसे नरम, गीला या द्रव करना। जैसे—पानी में बताशा गलाना, आँच पर सोना चाँदी, राँगा आदि गलाना, खौलते पानी में दाल, चावल गलाना इत्यादि।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

२. नरम या मुलायम करना। पुलपुला करना। जैसे—यह दवा फोड़े को गला देगी। ३. अणुओं को पृथक् पृथक् करके किसी वस्तु को धीरे-धीरे लुप्त करना। बहुत थोड़ा थोड़ा करके क्षय करना। जैसे—यह दवा तिल्ली को गलाती है। ४. (रुपया) खर्च करना। जैसे—तुमने हमारा बहुत रुपया गलाया।

गलानि†—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] १. दुःख या पछतावे के कारण खिन्नता। अपने किए का पछतावा या खेद। अपनी करनी पर लज्जा। उ०—(क) गरइ गलानि कुटिलि कैकेई। काहि कहइ केहि दूषण देई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुम गलानि जिय जनि करहु; समुझि मातु करतूति। तात कैकइहि दोष नहिं, गई गिरा मति धूति।—तुलसी (शब्द०)। २. खेद। दुःख। परिताप। उ०—(क) राम सुप्रेमहि पोषत बानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अमर नाग मुनि मनुज सपरिजन विगत विषाद गलानि।—तुलसी (शब्द०)।

गलानिल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

गलार¹—संज्ञा पुं० [?] एक पेड़ का नाम।

गलार²—वि० [हिं० गाल] १. थोड़ी सी बात के लिये बहुत अंडबंड बकनेवाला। झगड़ालू। गलबलिया। गप्पी।

गलार³†—संज्ञा पुं० मैना पक्षी।

गलारा㉺—संज्ञा पुं० [हिं० गली] गलियारा। गली कूचा। उ०—नाम तेरे की ज्योति जगाई भए उजियारे भवन गलारे।—संत रवि०, पृ० १३०।

गलारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गल्प, प्रा० गल्ल] गिलगिलिया नाम की चिड़िया।

गलावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला+वट (प्रत्य०)] १. गलने का भाव या क्रिया। २. यह वस्तु जो दूसरी वस्तु को गलावे। जैसे—सोहागा, नौसादर आदि।

गलाविल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मत्स्य। गलानिल [को०]।

गलि—संज्ञा पुं०[सं०] हृष्ट पुष्ट परंतु गरियार बैल। मट्ठर बैल[को०]।

गलित—वि० [सं०] १. गला हुआ। २. अधिक दिन का होने के कारण नरम पड़ा हुआ। जिसमें नएपन की चुस्ती और कड़ाई न हो।

यौ०—**गलितकुष्ठ**=एक प्रकार का कोढ़। **गलितदंत**=दाँत से रहित। **गलितनख**=जिसके नख गल गए हों। **गलितनखदंत**=वार्द्धक्य के कारण जिसे नख और दाँत न हों। नख और दाँत से रहित। **गलितनेत्र**=दे० 'गलितनयन'। गलितयौवना।

३. पुराना पड़ा हुआ। जीर्ण शीर्ण। खंडित। ४. चुआ हुआ। च्युत। ५. नष्ट भ्रष्ट। ६. परिपक्व। परिपुष्ट। उ०—दान लैहौं सब अंगनि को। अति मद गलित तालफल ते गुरु युगल उरोज उतंगनि को।—सूर (शब्द०)। ७. गला हुआ। मिला हुआ। एकतान। उ०—मैं तो और कछू नहिं चाहूँ कहो और क्या कीजै। दादू ऐक गलित गोविंद सौं इहि विधि प्राण पतीजै।—दादू०, पृ० ५६६।

गलितक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य रूप। नृत्य की एक मुद्रा। अंगभंगी [को०]।

गलितकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के कुष्ठों में से एक।

विशेष—इसमें शरीर के अवयव, जैसे—हाथ, पैर की उँगलियाँ आदि, सड़ने और कट कटकर गिरने लगते हैं और उनमें कीड़े पड़ जाते हैं। यह कुष्ठ सबसे असाध्य माना गया है।

गलितनयन—वि० [सं०] जिसकी आँखों में देखने की शक्ति न रह गई हो। अंधा [को०]।

गलितयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका यौवन ढल गया हो। ढलती जवानी की स्त्री। उ०—आज से हमारा काम वही गलितयौवना और चपटी नाकवाली करेगी।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

गलितांग—वि० [सं० गलिताङ्ग] जिसके अंग गल गए हों। उ०—गलितांगों का गंध लगाए आया फिर तू अलख जगाए।—हिं० आं० प्र०, पृ० ११५।

गलिया[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गली] चक्की या जाँते के ऊपर के पाट में वह छेद जिसमें से दलने या पीसने के लिये दाना डाला जाता है।

गलिया[२]—वि० [सं० गडि, गलि, हिं० गड़ियार] मट्ठर। सुस्त। (बैल आदि चौपायों के लिये।)

गलियारा—संज्ञा पुं० [हिं० गली+आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० गलियारी] पतली या तंग छोटी गली।

गलियारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गलियारा] पतला मार्ग। गली।

गलिहरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गलियारी] दे० 'गलियारी'। उ०—गलिहरिया में डोलत फिरै परतिरिया लख मुसकाय।—कबीर श०, पृ० ३७।

गली—संज्ञा स्त्री० [सं० गल] १. घरों की पंक्तियों के बीच से हो कर गया हुआ तंग रास्ता जो सड़क से पतला हो। खोरी। कूचा। उ०—(क) बलवान है श्वान गली तेहि लाजे न गाल बजावत सो हैं।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**गली कूचों में कुत्ते लोटना**=रौनक न रह जाना। उ०—है है, अब यहाँ रह क्या गया, गली कूचों में कुत्ते लोटते हैं।—फिसाना०, भा० १, पृ० ४। **गली गली भूँसते फिरना**=व्यर्थ इधर उधर घूमना। उ०—गली गली भूँसत फिरै टूक न डारै कोय।—कबीर सा०, सं०, पृ० १७। **गली गली मारे मारे फिरना**=(१) इधर उधर व्यर्थ घूमना। (२) जीविका के लिये इधर से उधर भटकना। (३) चारों ओर अधिकता से मिलना। सब जगह दिखाई पड़ना। साधारण वस्तु होना। जैसे,—ऐसे वैद्य गली गली मारे मारे फिरते हैं। **गली झँकाना**=इधर उधर हैरान करना। खोज में फिराना। जैसे,—तुमने हमें कितनी गलियाँ झँकाईं। **गली कमाना**=(१) गली में झाड़ू देना। (२) मेहतर का काम करना। पाखाना साफ करना।

२. महल्ला। महाल। जैसे,—कचौड़ी गली, सकरकंद गली।

गलीचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ग़ालीचह् (तु० क़ालीचह, क़ालीनचह् < तु० काली या कालीन से)] १. एक प्रकार का खूब मोटा बुना हुआ बिछौना जिसपर रंगबिरंगे बेल बूटे बने रहते हैं और घने बालों की तरह सूत निकले रहते हैं। दे० 'कालीन'।

विशेष—अब तक फारस, दमिश्क आदि से ऊन के गलीचे आते हैं। अब यह सूती भी बनाया जाता है।

२. कहारों की बोली में कँकड़ीली भूमि।

गलीज[१]—वि० [अ० ग़लीज़] १. गँदला। मैला। २. नापाक। अशुद्ध। अपवित्र।

गलीज[२]—संज्ञा पुं० १. कूड़ा करकट। गंदी वस्तु। मैला। गंदगी।

यौ०—**गलीजखाना**=कूड़ाखाना।

२. पाखाना। मल। विष्ठा।

गलीत[१]—वि [सं० गलित] जीर्णशीर्ण। गलित। दुर्दशाग्रस्त।

गलीत[२](पु)—वि० [अ० ग़लीज] १. मैला कुचैला। मलिन। गंदा। दुर्दशाग्रस्त। उ०—मीत न नीति गलीत ह्वै जो धरिये धन जोरि। खाए खरचे जो जुरै तौ जोरियै करोरि।—बिहारी (शब्द०)। २. गलत। मिथ्या।

गलु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गलू' [को०]।

गलुआ—वि० [हिं० गलना] गलने या झरनेवाला। उ०—घूँघटा व दरिया उनई रसिया, गलुआ बरस गए मेंह, अबै पुरवैया के बादर ऊन आए।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १५६।

गलुका(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गला > गलुक्का] गाल में भरने की वस्तु। आनंद या स्वाद देनेवाला पदार्थ। उ०—ये पंचौ चाहैं गलुका, ये पंच करैं पुनि हलुका।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १४५।

गलू—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पत्थर या नग जिससे प्राचीन काल में मद्यपात्र आदि बनते थे।

गलेगंड—संज्ञा पुं० [सं० गलेगण्ड] एक प्रकार की चिड़िया जिसके गले में माँस की थैली लटकी रहती है [को०]।

गलेफ—संज्ञा पुं० [फ़ा० गिलाफ़] १. दे० 'गिलाफ़'। २. 'गिलेफ़'।

गलेबाज—वि० [हिं० गला+बाज] जिसका गला अच्छा चलता हो। अच्छा गानेवाला।

गलेस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजा। बकरी [को०]।

गलैचा†—संज्ञा पुं० [हिं० गलीचा] दे० 'गलीचा'।

गलोना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सुरमा जो कंधार और काबुल से आता है।

गलौ—संज्ञा पुं० [सं० ग्लौ] चंद्रमा। उ०—गंग गाइ गोमती गलौ ग्रहपति अरु सुरगिर।—सूदन (शब्द०)।

गलौआ—संज्ञा पुं० [हिं० गाल] बंदरों के गालों के अंदर की थैली जिसमें वे अपने खाने की वस्तु भर लेते हैं।

गलौघ—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग।

विशेष—इसमें रोगी के गालों के अंदर एक प्रकार की सूजन हो जाती है और उसे साँस लेने में कठिनता होती है। वैद्यक में यह रोग कफ और रक्त के प्रकोप से माना गया है। इसमें ज्वर भी आता है।

गल्प—संज्ञा स्त्री० [सं० जल्प या कल्प] १. मिथ्या प्रलाप। गप्प। २. डींग। शेखी। ३. मृदंग के बाहर प्रबंधों में से एक। ४. छोटी छोटी कहानियाँ।

गल्भ—संज्ञा पुं० [सं०] धृष्ट। ढीठ। अभिमानी। अहंकारी [को०]।

गल्यारा—संज्ञा पुं० [हिं० गली+आरा (प्रत्य०)] दे० 'गलयारा'।

गल्ल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गाल। कपोल।

गल्ल[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं गाल या सं० गल्प, प्रा० गल्ह=बातचीत; तुल० फ़ा० गिला] बात। (पंजाबी) उ०—इसी गल्ल धरि कन्न में बकसी मुसकाना। हमनूं बूझत तुसी क्यों किया पयाना।—सूदन (शब्द०)।

गल्लई[1]—वि० [हिं० गल्ला] गल्ले के रूप में।

गल्लई[2]—संज्ञा पुं० १. वह खेत जिसका लगान जिस में दिया जाता हो। बटाई। २. खेत का वह लगान जो उसकी उपज के रूप में काश्तकारों से लिया जाता हो।

गल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मद्य पीने का पात्र। २. चपक। पुखराज। नीलमणि [को०]।

गल्लचातुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गलतकिया। गलसुई [को०]।

गल्ला[1]—संज्ञा पुं० [अ० गुल, हिं० गुल्ला; जैसे हल्ला गुल्ला] शोर। हौरा उ०—हल्ला परचो अवध महल्ला ते महल्ला मध्य गल्ला मच्यो बाहर हू जनम कुमार को—रघुराज (शब्द०)।

गल्ला[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० गल्लह्] झुंड। दल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः चरनेवाले पशुओं के लिये होता है। जैसे,—गाय भैंस का गल्ला। भेड़ बकरियों का गल्ला।

गल्ला[3]—संज्ञा पुं० [हिं० गोल] एक प्रकार का बेत जिसे गोला भी कहते हैं।

गल्ला[4]—संज्ञा पुं० [हिं० गाल] उतना अन्न जितना [illegible] की में पीसने के लिये डाला जाय। कौरी।

गल्ला[5]—संज्ञा पुं० [अ० गल्लह] [वि० गल्लई] १. जोतने बोने से उत्पन्न होनेवाले पौधों के फल, फूल आदि की उपज। फसल। पैदावार। उपज। २. अन्न। अनाज।

यौ०—गल्लाफरोश।

३. वह धन जो दूकान पर नित्य की बिक्री से मिलता है। धनराशि। गोलक। ४. मद। फंड। खाता।

गल्लाफरोश—संज्ञा पुं० [फ़ा० गल्लह् फ़रोश] वह दूकानदार जो गल्ला या अन्न बेचता हो। अनाज का व्यापारी। अन्न का विक्रेता।

गल्ली†—संज्ञा स्त्री० [फा. हिं० गली] दे० 'गली'।

गल्वर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. मद्य पीने का प्याला। प्राचीन काल में यह पात्र गलू नामक पत्थर से बनाया जाता था। २. स्फटिक। ३. वैदूर्य मणि।

गल्ह—संज्ञा स्त्री० [पं० गल्ल] बात। उक्ति। उ०—तिन सुगल्ह अच्छी कहहि।—पृ० रा०, १। १४।

गवँ—संज्ञा स्त्री० [सं० गम, या गम्य प्रा० गवँ] १. प्रयोजन सिद्ध होने का अवसर। घात। २. मतलब। प्रयोजन वि० दे० 'गौं'।

मुहा०—गवँ से=(१) घात देकर। मौका तजवीज कर। (२) धीरे से। चुपचाप। उ०—रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गवँहि सिधारे।—तुलसी (शब्द०)।

गवँन—संज्ञा पुं० [सं० गमन] गति। चाल। उ०—पदुमिनि गवँन हँस गौ दूरी। हस्ती लाजि मेल सिर धूरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२६।

गवँसना—संज्ञा स्त्री० [सं० गवेषणा] अन्वेषण करना। खोजना। उ०—तिहि चढ़ि ईंदऊँ करत गवँसिया अंतरि जमवा जागू हो। कबीर ग्रं०, पृ० ११२।

गव—संज्ञा पुं० [सं० गवय] एक बंदर का नाम जो रामचंद्र जी की सेना में था।

गवण†—संज्ञा पुं० [सं० गमन, प्रा० गमण] दे० 'गवन'। उ०—गिण शत्रु मित्र मारग गवण शत्रु दास उदास रह।—र० रू०, पृ० ६।

गवत†—संज्ञा पुं० [देश०] घास। तृण।

गवन†—संज्ञा पुं० [सं गमन] १ प्रस्थान। प्रयाण। चलना। जाना। उ०—सुनि बन गवन कीन्ह रघुनाथा।—तुलसी (शब्द०)। २. वधू का पहले पहल पति के घर जाना। गवना। गौना।

गवनचार†—संज्ञा पुं० [सं० गमन+आचार] वधू का वर के घर जाना। गौना। उ०—गवनचार पद्मावति सुना। उठा धमकि जिय औ सिर धुना।—जायसी (शब्द०)।

गवनना—क्रि० अ० [सं० गमन] जाना। उ०—(क) पुनि रानी हँसि कूसल पूछा। कित गवनेहु पींजर करि छूछा।—जायसी (शब्द०)। (ख) गवने तुरत वहाँ रिपिराई। जहाँ स्वयंवर भूमि बनाई।—तुलसी (शब्द०)।

गवनहारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० गायन, हिं० [illegible] हारी

(प्रत्य०)] पेशेवर गानेवाली स्त्री। गायिका। उ०—गृहस्थिनों के गाने से मधुरी लय गवनहारिनों की होती। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५३।

गवना—संज्ञा पुं० [सं० गमन] दे० 'गौना'।

गवय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गवयी] १. नील गाय। उ०—इधर उस नाद को सुनकर गवय और गज भी भीत होकर पलीत के भाँति चिक्कार मारकर भागते हैं।—श्यामा०, पृ० ७। २. एक बंदर जो रामचंद्र जी की सेना में था। ३. एक छंद का नाम जिसके प्रथम चरण में १६ मात्राएँ होती हैं और ११ मात्राओं पर विराम होता है। दूसरे चरण में दोहा होता है। जैसे—सुरभी केसर वसै नील नद माँह। मनो नगर सुग्रीव को सोहत सुंदर छाँह।

गवरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] अंबिका। गौरी।

गवरी²Ⓟ—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोरी=गोर का निवासी] गोरी। मुहम्मद गोरी। उ०—सात वेर प्रथिराज गेह गवरी गहि मेले।—ह० रासो, पृ० ६५।

गवर्नमेंट—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. राज्य। शासनपद्धति। २. शासकमंडल। सरकार।

गवर्नमेंटी—[अं०] गवर्नमेंट संबंधी।

गवर्नर—संज्ञा पुं० [अं०] १. शासक। हाकिम। २. किसी प्रांत का वह प्रधान हाकिम जिसे उस पद पर राजा या प्रजा ने चुना हो। ३. वह प्रधान शासक जिसे राजा या मंत्रिमंडल किसी देश में शासन करने के लिये नियुक्त करे। राज्यपाल। ४. भारतवर्ष में किसी प्रेसिडेंसी (प्रांत) का वह प्रधान हाकिम जो इंगलैंड के बादशाह या मंत्रिमंडल द्वारा गवर्नर जनरल के अधीन रहकर शासन करने के लिये नियत किया जाता था। भारतवर्ष में बंबई, मद्रास और बंगाल में गवर्नर रहते थे। लाट।

यौ०—गवर्नर जनरल।

गवर्नर जनरल—संज्ञा पुं० [अं०] किसी देश का सबसे बड़ा वह हाकिम जिसे राजा या मंत्रिमंडल ने नियत किया हो और जिसके नीचे कई एक गवर्नर और लेफ्टिनेंट गवर्नर हों। वाइसराय। बड़े लाट।

विशेष—जैसे भारत वर्ष के गवर्नर जनरल, जो संपूर्ण भारतवर्ष का शासन करते थे और जिनके मातहत बंबई, मद्रास और बंगाल के गवर्नर तथा संयुक्त प्रांत, पंजाब आदि के गवर्नर अथवा लेफ्टिनेंट गवर्नर थे। गवर्नरों की नियुक्ति इँगलेंडेश्वर स्वयं करते थे; पर लेफ्टिनेंट गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त होते थे। बाद में लेफ्टिनेंट गवर्नर का पद समाप्त कर दिया। गवर्नर जनरल एक कौंसिल या मंत्रिमंडल द्वारा शासन करते थे। स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुसार अब यह पद समाप्त कर दिया गया है। श्री सी० राजगोपालाचारी भारत के अंतिम गवर्नर जनरल या वाइसराय थे।

गवर्नरी—संज्ञा स्त्री० [अं० गवर्नर+ई (प्रत्य०)] १. जहाँपर गवर्नर शासन करता हो। प्रेसिडेंसी। प्रांत। २. शासन। अधिकार।

गवर्मेंट—संज्ञा स्त्री० [अं० 'गवर्नमेंट'] दे० 'गवर्नमेंट'।

गवर्मेंटी—वि० [अं० गवर्नमेंट] सरकारी। गवर्नमेंटी।

गवल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंगली भैंसा। अरना। २. भैंसे की सींग (को०)।

गवहियाँ¹†—संज्ञा पुं० [सं० गोघ्न=अतिथि] अतिथि। मेहमान।

गवहियाँ²†—वि० [हिं० गवहीं] ग्रामीण। गाँव का। उ०—विचारे भोले गवहियें और अपढ़ ठग लिए जाते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५३।

गवाँना—क्रि० [सं० गमन, हिं० 'गवन' का प्रे० रूप] खो देना। खोना।

गवाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौ=गाय] उ०—नाना वर्ण गवा उनका एक वर्ण दूध।—दक्खिनी, पृ० १८।

गवाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटी खिड़की। गौखा। झरोखा। २. एक वन्दर का नाम जो रामचंद्र की सेना का सेनापति था।

गवाक्षित—वि० [सं०] खिड़की या झरोखे से युक्त। खिड़कियों वाला [को०]।

गवाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्रायन। २. एक प्रकार की ककड़ी। ३. सहोरा या सिहोर नाम का पेड़। ४. अपराजिता लता। विष्णुक्रांता।

गवाखⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गवाक्ष] दे० 'गवाक्ष'।

गवाख्यⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० गवाक्ष] दे० 'गवाक्ष'। उ०—पुरं मंदिरं चौहटं औ गवाख्यं।—ह० रासो, पृ० १६।

गवाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

गवाछⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गवाक्ष] दे० 'गवाक्ष'।

गवादन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोचर भूमि। चरागाह। २. घास [को०]।

गवादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घास। २. चरागाह। ३. पशुओं को चारा देने का पात्र। खोर। नाँद [को०]।

गवाधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाह। लाक्षा। लाख [को०]।

गवाना क्रि० स० [सं० गमन, हिं० 'गवन' का प्रे० रूप] खोना।

गवामयन—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यज्ञ जो एक वर्ष में समाप्त होता था। दस या बारह महीने में पूरा होनेवाला एक वैदिक यज्ञ।

गवार—प्रत्य० [फ़ा०] रुचिकर। सह्य। अनुकूल। जैसे,—खुशगवार, नागवार।

गवारा—वि० [फ़ा०] १. मनभाता। अनुकूल। पसंद। २. सह्य। अंगीकार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गवारिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] ओषधियों का चूर्ण जिसका प्रयोग पाचन के लिये किया जाय।

गवालीक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह मिथ्या भाषण जो गो आदि चौपायों के लिये किया जाय।

गवालूक—संज्ञा पुं० [सं०] नील गाय। गवय (को०)।

गवाशन¹—वि० [सं०] गोमांस खानेवाला। गोभक्षी।

गवाशन²—संज्ञा पुं० १.वह व्यक्ति जो जाति से बहिष्कृत हो। २. चमार। चांडाल [को०]।

गवास¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० गवाशन] गोनाशक। कसाई। हत्यारा। उ०—कासी मगु सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा।—तुलसी (शब्द०)।

गवास²†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाना+आस (प्रत्य०)] गाने का मन। गाने की इच्छा।

गवाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा गवाही] १. वह मनुष्य जिसने किसी घटना को साक्षात् देखा हो। वह जिसके सामने कोई बात हुई हो। २.वह जो किसी मामले के विषय में जानकारी रखता हो। साक्षी। साखी।

यौ०—गवाह साखी।

मुहा०—**गवाह देना**=अपने दावे को सिद्ध करने के लिये प्रमाण-स्वरूप साक्षी उपस्थित करना। **गवाह बनाना**=(१) साक्षी बनाना। मुकदमे में किसी को गवाही देने के लिये नियत करना। (२) झूठा गवाह बनाना। **गवाह ऐनी या रूयत**=वह गवाह जिसने घटना अपनी आँखों देखी हो। चश्मदीद गवाह। **गवाह समाई**=वह गवाह जिसने घटना आँखों से न देखी हो और जो सुनी सुनाई बात कहे। **चश्मदीद गवाह**=वह गवाह जिसने कोई घटना आँखों देखी हो।

गवाही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी घटना के विषय में किसी ऐसे मनुष्य का कथन जिसने वह घटना देखी हो या जो उसके विषय में जानता हो। साक्षी का प्रमाण। साक्ष्य।

मुहा०—**गवाही करना या लिखना**=किसी दस्तावेज पर साक्षी के रूप में हस्ताक्षर करना। **गवाही देना**=किसी साक्षी का किसी घटना के विषय में अपना इजहार लिखाना।

गविष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १.पृथिवी या आकाश से संबंधित कोई वस्तु। वह जो पृथिवी या आकाश का हो। २.रवि। सूर्य [को०]।

गविष्ठि¹—वि० [सं०] १.गायों की इच्छा रखनेवाला। २. इच्छुक।

गविष्ठि²—संज्ञा स्त्री० १. इच्छा। आकांक्षा। २.युद्ध करने की इच्छा। युद्धलिप्सा [को०]।

गवीधुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गवेधुक'।

गवीश—संज्ञा पुं० [सं०] १.गोस्वामी। २.विष्णु। ३.साँड़।

गवेजा—संज्ञा पुं० [?] बातचीत। वार्तालाप। उ०—केवट हँसे सो सुनत गवेजा। समुद्र न जानु कुवाँ कर मेजा।—जायसी (शब्द०)।

गवेडु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २.धान्य विशेष [को०]।

गवेधु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गवेधुक'।

गवेधुक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गवेधुका] १. कसेई। कौड़िल्ला। वि० दे० 'कसी'।

विशेष—ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार रुद्र देवता के लिये गवेधुक के चरु की आहुति दी जाती थी। मीमांसा के अनुसार शूद्र को गवेधुक के चरु से यज्ञ करने का अधिकार है।

२. एक प्रकार का सर्प (को०)। ३. गेरू। गैरिक (को०)।

गवेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू।

गवेलां—वि० [हिं० गाँव+एल (प्रत्य०)] [वि० गवेली] गँवार। देहाती। उ०—नागरि विविध विलास तजि वसी गवेलिन माहिं। मूढ़ौ में गनिबी कितू हूठ्यो दै इठलाहिं।—बिहारी (शब्द०)।

गवेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गवीश' [को०]।

गवेष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गवेषण' [को०]।

गवेषण—संज्ञा पुं० [सं०] (हरी हुई गायों के) खोजने का कार्य। २. खोज ढूँढ़। तलाश। ३. गौ की इच्छा या चाह [को०]।

गवेषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खोज। अन्वेषण। तलाश। छानबीन।

विशेष—प्राचीन काल में आर्यों का सर्वस्व गो थी। जब गो हरी जाती थीं या कोई चुरा ले जाता था, तब वे लोग उसे बड़े परिश्रम से ढूँढ़ते थे। वेदों में पणि असुर के गो चुराने और इंद्र का अपनी कुतिया सरमा को उसे ढूँढ़ने को भेजने की गाथा इसका उदाहरण है। इसी लिये यह शब्द, जिसका वास्तविक अर्थ गो की इच्छा है, खोज या तलाश के अर्थ में लिया जाता है।

गवेषित—वि० [सं०] जिसके विषय में गवेषणा हुई हो। अन्वेषित [को०]।

गवेषी—वि० सं० [सं० गवेषिन्] अन्वेषक। गवेषणा करनेवाला। शोध करनेवाला [को०]।

गवेसनाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० गवेषणा] दे० 'गवेषणा'।

गवेसी—वि० [सं० गवेषिन् > गवेषी] गवेषणा करनेवाला। ढूँढ़ने-वाला। उ०—वहाँ से गुरु पावौं उपदेसी। अगम पंथ जो कहै गवेसी।—जायसी (शब्द०)।

गवैहाँ†—वि० [हिं० गाँव+ऐंहा (प्रत्य०)] गाँव का रहनेवाला। ग्रामीण। देहाती।

गवैया¹—वि० [पुं० हिं० गायब=गाना+ऐया (प्रत्य०)] गानेवाला। गायक।

विशेष—'ऐया' प्रत्यय पूर्वीय है। इससे यह क्रिया अथवा धातु के पूर्वीय रूप 'गावना' में ही लगता है।

गवैया²†—वि० [हिं० गवन या गौन+ऐया (प्रत्य०)] जानेवाला।

गव्य¹—वि० [सं०] गो से उत्पन्न। जो गाय से प्राप्त हो। जैसे—दूध, दहीं, घी, गोबर, गोमूत्र आदि। २.गाय बैलों के अनुकूल या उपयुक्त (को०)।

यौ०—पंचगव्य।

गव्य²—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय का झुंड। गोसमूह। Ⓟ २. पंचगव्य। उ०—पंचाछरी प्रान मुद माधव गव्य सु पंचनदा सी।—तुलसी (शब्द०)। ३.गोदुग्ध (को०)। ४. गोचर भूमि। चरागाह (को०)। ५. ज्या। प्रत्यंचा (को०)। ३. रँगने की वस्तु। पीत रंग। गोरोचन (को०)।

गव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायों का झुंड। २. दो कोस की एक माप। गव्यूति। ३. धनुष की डोरी। ज्या। ४. गोरोचन [को०]।

गव्यु—वि० [सं०] १.गाय या गोदुग्ध का इच्छुक। २.लड़ाई चाहने-वाला। युद्धेप्सु [को०]।

गव्यूत—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गव्यूति'।

गव्यूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दो कोस का एक मान। दो हजार

धनुष की दूरी। २. चरागाह। ३. दो मील या एक कोश की दूरी (कौ०)।

गश—संज्ञा पुं० [अ० गशी से फ़ा० गश] मूर्छा। बेहोशी। असंज्ञा। ताँवर। उ०—अमीचंद गश खा के जमीन पर गिर पड़ा। —शिवप्रसाद (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—गश खाना=मूर्छित होना। बेहोश होना।

गशी—संज्ञा स्त्री० [अ० गशी] बेहोशी। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

गश्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० गश्ती] २. टहलना। घूमना। फिरना। भ्रमण। दौरा। चक्कर।

यौ०—गश्त गिरदावरी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—गश्त मारना या लगाना=चक्कर देना। चारों ओर फिरना।

२. पुलिस आदि के कर्मचारियों का पहरे के लिये किसी स्थान के चारों ओर या गली कूचों आदि में घूमना। रौंद। गिरदावरी। दौरा।

क्रि० प्र०—घूमना।—फिरना।

३. एक प्रकार का नाच जिसमें नाचनेवाली वेश्याएँ बरात के आगे नाचती हुई चलती हैं।

गश्त सलामी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गश्ती+अ० सलाम] वह भेंट या नजर जो पहले दौरे पर गए हुए हाकिमों को मिला करती थी। यह प्रथा अबतक देशी रियासतों में जारी रही है।

गश्ती¹—वि० [फ़ा०] घूमनेवाला। फिरनेवाला। फिरता। चलता। जैसे—गश्ती चिट्ठी, गश्ती हुकुम, गश्ती परवाना, गश्ती सर्कुलर, गश्ती इन्सपेक्टर इत्यादि।

गश्ती²—संज्ञा स्त्री० व्यभिचारिणी। कुलटा।

गसत(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गश्त] दे० 'गश्त'। उ०—दिन दिन दौड़ गसत नित दीजै, कमँध धरा पासरणा कीजै।—रा० रू०, पृ० २७५।

गसना—क्रि० स० [सं० ग्रसन] १. जकड़ना। गाँठना। २. बुनावट में बाने को कसना। बनावट में तागों या सूतों को परस्पर खूब मिलाना जिसमें छेद न रह जाय। वि० दे० 'गँसना'।

गसीला—वि० [हिं० गसना] [वि० स्त्री० गसीली] १. जकड़ा हुआ। गठा हुआ। एक दूसरे से खूब मिला हुआ। गुथा हुआ। २. (कपड़ा आदि) जिसके सूत परस्पर खूब मिले हों। जिसकी बुनावट घनी हो। गफ।

गस्स(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँस] दे० 'गाँस'। उ०—सब्ब खाँन सत्तार सत्तं सहस्सं। हयं छंडि कामं मनं मन्नि गस्सं।—पृ० रा० ६।१४६।

गस्सना—(पु)—क्रि० स० [सं० ग्रसन] दे० 'ग्रसना'। उ०—कच मग्ग भूमि चिहुकोद गस्सि। नारिंग सुमन दारिम बिगस्सि।—पृ० रा०, ११।६६।

गस्सा—संज्ञा पुं० [सं० ग्रास, प्रा० गास, गस्स] ग्रास। कौर।

मुहा०—गस्सा मारना=कौर मुँह में डालना।

गहंमह(पु)†—वि० [हिं० गहमह] चहल पहल से भरा। आनंदयुक्त। प्रफुल्ल। उ०—सहरि गहंमह सूर, नूर नवलन नवला मुख। —पृ० रा०, ३।५५।

गहँडिल†—वि० [हिं० गड़हा] [वि० गहँडैल] गँदला। मटमैला। मटीला (पानी)।

गह—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहना] १. हथियार आदि पकड़ने की जगह। मूठ। दस्ता। कब्जा। पकड़।

मुहा०—गह बैठना=मूठ पर अच्छी तरह हाथ बैठना।

२. किसी कमरे या कोठरी की ऊँचाई। ३. मकान का खंड। मंजिल।

गहकना—क्रि० अ० [अनु० या देश०] १. चाह से भरना। लालसा से पूर्ण होना। ललकना। लहकना। लपकना। २. उमंग से भरना। उ०—माखन के लोंदा गहकि गोपन दिए उछारि। टूक टूक ह्वै कंद (चंद) जनु गयो कृष्ण पै वारि।—सुकवि (शब्द०)।

गहकी(पु)†—वि० [सं० ग्राहक, हिं० गाहक] ग्राहक। खरीद करनेवाला। उ०—साध संत गहकी भए, गुरु हाट लगाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ६।

गहकोडा†—संज्ञा पुं० [हिं० गाहक+ओड़ा (प्रत्य०)] गाहक। खरीददार।—(दलाल)।

गहक्कना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] १. उमंग से बोलना। उ०—गिरिरव मोर गहक्किया तरवर मेंल्या पात। धणियाँ घण सालण लग बूठें तो बरसात।—ढोला०, दू० ३६। २. उल्लास से भर जाना। ललकना। उ०—गहक्केव कम्यों सु कैमास जामं, त्रहंराइ सेनं भगी भीम ताम।—पृ० रा०, १२।३८३।

गहगच—संज्ञा पुं० [हिं० कचकच] फेर। चक्कर। घंघोच। प्रपंच। उ०—गहगच परचो कुटंब के कंठे रहि गयो राम।—कबीर ग्रं०, पृ० १५२।

गहगड्ड—वि० [सं० गह=गहरा+गड्ड=गड्ढा] गहरा। भारी। घोर। जैसे,—गहगड्ड नशा, गहगड्ड छनना।

विशेष—इसका प्रयोग नशे या नशे की चीज ही के संबंध में होता है।

गहगह¹—वि० [सं० गद्गद या अनु० देश०] प्रफुल्लित। प्रसन्नतापूर्ण। उमंग से भरा।

गहगह²—क्रि० वि० धमाधम। धूम के साथ। उ०—गहगह गगन दुंदुभी बाजी।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में यह बाजों ही के संबंध में आता है।

गहगहा—वि० [सं० गद्गद] १. उमंग और आनंद से भरा हुआ। प्रफुल्लित। उ०—माधव जू आवनहार भए। अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खए।—सूर (शब्द०)। २. धमाधम। धूमधाम के साथ। उ०—अति गहगहे बाजने बाजे।—तुलसी (शब्द०)।

गहगहाना—क्रि० अ० [हिं० गहगहा] १. आनंद में मग्न होना।

बहुत प्रसन्न होना। प्रफुल्लित होना। आनंद और उमंग से फूलना। उ०—बायस गहगहात शुभवाणी विमल पूर्व दिशि बोले। आजु मिलाओं श्याम मनोहर तू सुनु सखी राधिके भोले।—सूर (शब्द०)। २. फसल आदि का बहुत अच्छी तरह तैयार होना। खेती लहलहाना।

गहगहे—क्रि० वि० [हिं० गहगहा] बड़ी प्रफुल्लता के साथ। बहुत अच्छी तरह से। उ०- (क) गहगहे गावत गीत मंगल किये मंडल मंजु। कोउ वाल विरुद बखानतीं गति ठान गजगति मंजु।—रघुराज (शब्द०)। (ख) राजरुख लखि गुरु भूसुर सुआसिनिन्हि समय समाज की ठवनि भलि ठई है। चली गान करत निसान बाजे गहगहे लहलहे लोयन सनेह सरसई है।—तुलसी (शब्द०)।

गहगोरा†—वि० [हिं० गह=गहरा+गोरा] [वि० स्त्री० गहगोरी] दीप्तियुक्त। अत्यधिक गौर वर्णवाला। उ०—पूरन जोवन है गहगोरी। अधिक अनग लाज तिहि थोरी।—नंद० ग्रं०, पृ० १८७।

गहड़वाल—संज्ञा पुं० [हिं० गहरवार] दे० 'गहरवार'।

गहडोरना—क्रि० स० [अनु० या देश०] १. थोड़े जल को नीचे की मिट्टी सहित हिलाकर गंदा करना। २. मथ कर गँदला करना। उ०—दूरि कीजै द्वार तें लवार लालची प्रपंची सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं।—तुलसी (शब्द०)।

गहन[1]—वि० [सं०] १. गंभीर। गहरा। अथाह। जैसे,—गहन जलाशय। २. दुर्गम। घना। दुर्भेद्य। जैसे,—गहन वन, गहन पर्वत। ३. कठिन। दुरूह। जैसे,—गहन विषय। ४. निविड़। जैसे,—गहन अंधकार।

गहन[2]—संज्ञा पुं० १. गहराई। थाह। २. दुर्गम स्थान। जैसे, झाड़ी, गड्ढा, जंगल, अंधकारपूर्ण स्थान। ३. वन या कानन में गुप्त स्थान। कुंज। निकुंज। उ०—गहन उजारि सुत मारि तव, कुशल गये कीस वर वैरिखा को।—तुलसी (शब्द०)। ४. दुःख। कष्ट। ५. जल। सलिल। ६. गुफा। कंदरा (को०)। ७. छिपने या लुकने की जगह (को०)। ८. एक आभूषण (को०)। ९. ईश्वर। परमात्मा (को०)।

गहन[3]†—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण, प्रा० गहण] १. दे० 'ग्रहण'। उ०—गहन लाग देखु पुनिम क चंद।—विद्यापति, पृ० ५४। २. कलंक। दोष। ३. दुःख। कष्ट। विपत्ति। ४. बंधक। रेहन।

गहन[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहना=पकड़ना] १. पकड़। पकड़ने का भाव। २. हठ। जिद। अड़। टेक। उ०—एकै गहन धरी उन हठ करि मेटि वेद विधि नीति। गोपवेश निज सूरश्याम ले रही विश्ववर जीति।—सूर (शब्द०)। ३. जोते हुए खेत से घास निकालने का एक औजार। पाँची। पांजी।

विशेष—इसमें दो ढाई हाथ लंबी लकड़ी के नीचे की ओर पतली नुकीली खूँटिया गड़ी रहती हैं और ऊपर एक सीधी लकड़ी जड़ी रहती है जिसमें मुठिया लगी रहती है। खेत जोते जाने पर इसे बैलों के जुआठे में बाँधकर खेत में फिराते हैं और ऊपर से मुठिया से दबाए रहते हैं।

गहन[5]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाहना] वह हलकी जुताई जो पानी बरसने पर धान के बोए हुए खेतों में की जाती है। बिदहनी।

गहना[1]—संज्ञा पुं० [सं० गहन=आभूषण या ग्रहण=धारण करना] १. आभूषण। जेवर। २. रेहन। बंधक। ३. छोटी लोटिया के आकार का मिट्टी का कुम्हारों का एक औजार, जिसका व्यवहार घड़े आदि के बनाने में होता है। ४. गहन नामक एक औजार जिसका व्यवहार जोते हुए खेत में से घास निकालने के लिये होता है। पाँची।

गहना[2]—क्रि० स० [सं० ग्रहण, प्रा० गहण] पकड़ना। धरना। थामना। उ०—(क) गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद लहे न तोर उबारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तव एक सखी प्रीतम ! कहति प्रेम ऐसो प्रगट कीन्हों धीर काहे न गहति।—सूर (शब्द०)।

गहना[3]—क्रि० स० [सं० गाहन] दे० 'गाहना'।

गहनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहण] टेक। अड़। जिद। हठ। उ०—(क) हरि पिय तुम जिनि चलन कहो। यह जिनि मोहिं सुनावहु बलि जाउँ जिनि जिय गहनि गहो।—सूर (शब्द०)। (ख) छवि तरंग सरितागण लोचन ए सागर जनु प्रेम धार लोभ गहनि नीके अवगाही।—सूर (शब्द०)।

गहनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पलास की जड़ आदि कूटकर उससे नाव के छेदों को बंद करने की क्रिया। २. पशुओं का एक रोग जिसमें उनके दाँत हिलने लगते हैं। ३. गहन नामक औजार जिससे जोते हुए खेत में से घास निकाली जाती है।

गहनु—(पु)संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं० गहन] दे० 'गहन'।

गहनैं—क्रि० वि० [हिं० गहना=बंधक] रेहन में। रेहन के रूप में। बंधक। उ०—जो इन दृग पतिआय नहिं प्रीतम साहु सुजान। दरस रूप धन दै इन्हें धर गहने मम प्रान।—रसनिधि (शब्द०)।

गह्वर[1](पु)†—वि० [सं० गह्वर] [क्रि० गहवराना, घवराना] १. दुर्गम। विषम। उ०—नगर सकल बनु गह्वर भारी। खग मृग विपुल सकल नरनारी।—तुलसी (शब्द०)। २. व्याकुल। उद्विग्न। उ०—(क) औरै सो सब समाज कुशल न देखौं आजु गहवरि हिय कहैं कोसलपाल।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मुख मलीन हिय गहवर आवे। मान (शब्द०)। ३. किसी ध्यान में मग्न या बेसुध। उ०—सजल नयन गदगद गिरा गहवर मन पुलक शरीर।—तुलसी (शब्द०)। ४. भीतर। गह्वर। गर्भ। उ०—आवति चली कुंज गहवर तें कुँवरि राधिका रूपमढ़ी।—घनानंद, पृ० ४६४।

गह्वरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० गहवर] १. घबराना। व्याकुल होना। उ०—ततखन रतनसेन गहवरा। रोउब छाँड़ि पाँव लेइ परा।—जायसी ग्रं०, पृ० ६२। २. करुणा आदि के कारण (जी) भर आना। उ०—(क) कपि के चलत सिय को मनु गहवरि आयो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) विलखी डभकौंहैं चखन तिय लखि गवन बराइ। पिय गहवरि आएँ गरैं राखी गरैं लगाइ।—बिहारी (शब्द०)।

गहवराना¹—क्रि० स० [हिं० गहवरना] घबरा देना। व्याकुल करना। घबराहट में डालना। विकल करना।

गहबराना²—क्रि० अ० दे० 'गहवरना'।

गहवह—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गहमह'।

गहमह—संज्ञा स्त्री० [हिं०] चहल पहल। उ०—गोकुल गरवारिन मैं महा गहमह माँची।—घनानंद, पृ० १४०।

गहमहई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहमह] चहल पहल की स्थिति। प्राचुर्य। अधिकता।

गहमागहमी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहमह] १. चहल पहल। गर्म बाजारी। रौनक। धूमधाम। २. भीड़ भाड़। जन संमर्द।

गहर¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ी, घरी या सं० ग्रह अथवा फा० गाह= समय ?] देर। विलंब। उ०—गहर जनि लावहु गोकुल जाइ। तुमहिं बिना व्याकुल हम होइहैं यदुपति करी चतुराइ।—सूर (शब्द०)।

गहर²†—संज्ञा पुं० [सं० गह्वर या गभीर, हिं० गहिर] दुर्गम। गूढ़। उ०—मन कुंजर मयमंत था फिरता गहर गँभीर। दोहरी तेहरी चौहरी परि गइ प्रेम जँजीर।—कबीर (शब्द०)।

गहर³—वि० [सं० गम्भीर] १. गहरा। उ०—लज्जित ह्वै धँसि गईं जल गहरैं। उठत जु तामैं दुति की लहरैं। —नंद० ग्रं०, पृ० २९८। २. ऊँची और भारी। जोर के साथ। मंद्र (आवाज वा ध्वनि)। उ०—गज्जि गहर नीसांन अग्गि अगवान विछुट्टिय। दरिया दधि किय मथन भोम फट्टिय खह तुट्टिय।—पृ० रा०, १। ६३९।

गहरना¹—क्रि० अ० [हिं० गहर=देर] देर लगाना। विलंब करना। उ०—ठहरत आवै मनमोहन महरनंद, ठहरत आवे पुंज परिमल पुर को। सेवक त्यों गहरत आवै ज्यों ज्यों बाँसुरी सों कहरत आवै मन मेरो मानि दूर को। —सेवक (शब्द०)।

गहरना²—क्रि० अ० [अ० कहर] १. झगड़ना। उलझना। उ०—तुम सौं कहत सकुचति महरि। स्याम के गुन कछु न जानति जात हमसों गहरि।—सूर०, १०। १४२२। २. कुढ़ना। नाराज होना। उ०— सुनत श्याम चकित भए बानी। ..... अधरकंप रिसि सौंह मरोरयो मन ही मन गहरानी।—सूर (शब्द०)।

गहरवार— संज्ञा पुं० [हिं० गहिरदेव=एक राजा] एकक्षत्रिय वंश।

विशेष—इस वंश के लोग गोरखपुर और गाजीपुर से लेकर कन्नौज तक पाए जाते हैं। ये लोग अपना आदिस्थान प्रायः काशी बतलाते हैं। जयचंद से चार पाँच पीढ़ी पहले के चंद्रदेव और महीपाल आदि कन्नौज के राजा गहरवार थे, ऐसा शिलालेखों से पाया जाता है। बुंदेलखंड के बुंदेले क्षत्रिय भी अपने को काशी के गहरवार वंश से उत्पन्न बतलाते हैं।

गहरा—वि० [सं० गम्भीर, पा० गहीर] [वि० स्त्री० गहरी] १. (पानी) जिसमें जमीन बहुत अंदर जाकर मिले। जिसकी थाह बहुत नीचे हो। गंभीर। निम्न। अतलस्पर्श। जैसे, गहरी नदी। उ०— जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ। हौं बौरी ढूँढ़न गई, रही किनारे बैठ।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—गहरा पेट=ऐसा पेट जिसमें बहुत सी बातें पच जायँ। ऐसा हृदय जिसका भेद न मिले। जैसे,—उसकी बातें कोई नहीं जान सकता; उसका बड़ा गहरा पेट है।

२. जो सतह से नीचे दूर तक चला गया हो। जिसका विस्तार नीचे की ओर अधिक हो। जैसे,—गहरा गड्ढा, गहरा बरतन। ३. बहुत अधिक। ज्यादा। घोर। प्रचंड। भारी। जैसे,—गहरा नशा, गहरी नींद, गहरी भूल, गहरी मार, गहरी चोट, गहरी मित्रता इत्यादि।

मुहा०—गहरा असामी=(१) भारी आदमी। बड़ा आदमी। ज्यादा देनेवाला। गहरे लोग=चतुर लोग। भारी उस्ताद। घोर धूर्त। ऐसे लोग जिनका भेद कोई न पावे। जैसे,—लड़के घड़ी कैसे उड़ा ले जायँगे। यह गहरे लोगों का काम है। (२) ऐसे लोग जिनकी विद्या गंभीर हो। विद्वान् लोग। गहरा हाथ=हथियार का भरपूर वार जिससे खूब चोट लगे। शस्त्र का पूर्ण आघात। गहरा हाथ मारना=(१) हथियार का भरपूर वार करना। (२) भारी माल उड़ाना। खूब धन चुराना। (३) बहुत माल पैदा करना। किसी बड़ी भारी या अनूठी वस्तु को प्राप्त करना। जैसे,—इस बार तो तुमने गहरा हाथ मारा।

४. दृढ़। मजबूत। भारी। कठिन। उ०—तौल तराजू छमा सुलच्छण तब वाके घर जैयौ। कहैं कबीर भाव बिन सौदा गहरी गाँठ लगैयो।—कबीर (शब्द०)। ५. जो हलका या पतला न हो। गाढ़ा। जैसे,—गहरा रंग, गहरी भंग।

मुहा०—गहरी घुटना=(१) खूब गाढ़ी भंग घुटना या पिसना। (२) गाढ़ी मित्रता होना। (३) साथ में खूब आमोद प्रमोद होना। जैसे,—उन लोगों की आजकल खूब गहरी घुटती है। गहरी छनना=(१) खूब गाढ़ी या अधिक भंग का पिया जाना। (२) गाढ़ी मित्रता होना। अत्यंत घनिष्ठता होना। बहुत हेल मेल होना। (३) साथ में खूब आमोद प्रमोद होना। खूब घुल घुलकर बातचीत होना। गहरी साँस लेना=ठंढी साँस लेना। संतोप या अतीत का स्मरण करना।

गहराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहरा+ई (प्रत्य०)] गहरा का भाव। गहरापन। गांभीर्य।

गहराना¹†—क्रि० अ० [हिं० गहरा] गहरा होना।

गहराना²—क्रि० स० गहरा करना।

गहराना³—क्रि० अ० [हिं० गहर] नाराज होना। रूठना। दे० 'गहरना', 'घहराना'।

गहरापन—संज्ञा पुं० [हिं० गहरा+पन (प्रत्य०)] गहरा होने का भाव। गहराव।

गहराव—संज्ञा पुं० [हिं० गहरा+आव (प्रत्य०)] गहराई।

गहरु(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ी, घरी या फा० गाह=समय ?] देर। विलंब। उ०—(क) तू रिसि छाँड़ि राधे राधे। ज्यों ज्यों तो कों गहरु त्यों त्यों मो कों बिथा री साधे साधे।—हरिदास (शब्द०)। (ख) नेग चारु कहँ नागरि गहरु लगावहिं। निरखि निरखि आनंद सुलोचनि पावहिं। तुलसी (शब्द०)।

गहरे—क्रि॰ वि॰ [हि॰ गहरा] अच्छी तरह। खूब। यथेच्छ।
मुहा॰— गहरे करना=माल मारना। खूब लाभ उठाना। गहरे चलना=(१) घात में लगना। (२) जाते हुए पथिक के प्राण लेना।—(ठग भाषा)। (३) एक्के के घोड़े का खूब जोर से कदम चलना।

गहरेबाजी—संज्ञा स्त्री॰ [हि॰ गहरे+बाजी] एक्के के घोड़े की खूब जोर की कदम चाल।

गहलौत—संज्ञा पुं॰ [सं॰ गोभिल ?] राजपूताने के क्षत्रियों का एक वंश।
विशेष—सिसोदिया और अहेरी इसी वंश की शाखाएँ हैं। गहलौत नाम के विषय में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रवाद प्रचलित हैं। कोई इसे गोहिल या गोभिल से निकला बतलाते हैं; कोई-कोई कहते हैं कि गुजरात से भगाए जाने पर जब मेवाड़ के महाराणा के पूर्वपुरुष भागे, तब राजमहिषी को एक ब्राह्मण ने शरण दी और उन्हें वहीं एक गुहा में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम गुहलौत रखा गया।

गहवा—संज्ञा पुं॰ [पु॰ हि॰ गहव, हि॰ गहना=पकड़ना] सँड़सी।

गहवाना—क्रि॰ स॰ [हि॰ गहना का प्रे॰ रूप] पकड़ने का काम करना। पकड़ाना।

गहवारा—संज्ञा पुं॰ [हि॰ गहना] रस्सी में लटकाया हुआ खटोला जिसपर बच्चों को सुलाकर झुलाते हैं। पालना। झूला। हिंडोला।

गहव्वह(पु)—संज्ञा पुं॰ [हि॰] चहल पहल। शोर। उ॰—सुने गहव्वह केहरी उठ्यो हक्कोर।—पृ॰ रा॰, २४। ३४५।

गहा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ग्राह] ग्राह। मगर। उ॰ फिर वाके एक गहा मिलौ।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ १००५।

गहाई(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हि॰ गहना] गहने का भाव। पकड़।

गहागड्ड—वि॰ [देश॰] दे॰ 'गहगड्ड'।

गहागह क्रि॰ वि॰ [अनु॰] दे॰ 'गहगह'। उ॰—सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा।—मानस, २।७।

गहाना—क्रि॰ स॰ [हि॰ गहना (=पकड़ना) का प्रे॰ रूप] धराना। पकड़ाना। गहवाना। उ॰—आजु जौ हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ। तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु सुत न कहाऊँ।—सूर॰, १। २७०।

गहिर—वि॰ [सं॰ गम्भीर] दे॰ 'गहरा'। उ॰—बाँधल हीर अजर लए हेम। सागर तह हे गहिर छल पेम।—विद्यापति, पृ॰ १४।

गहिरदेव—संज्ञा पुं॰ [हि॰ गहिर+देव] काशी के एक राजा का पुत्र जिसे गहरवार लोग अपना आदिपुरुष मानते हैं।

गहिरा—वि॰ [हि॰ गहरा] [वि॰ स्त्री॰ गहिरी] उ॰—तिन ते बहति जु सरिता गहिरी। दूरि दूरि लौं पसरति लहरी।—नंद॰ ग्र॰, पृ॰ २८४।

गहिराई—संज्ञा स्त्री॰ [हि॰ गहराई] दे॰ 'गहराई'।

गहिराव—संज्ञा पुं॰ [हि॰] दे॰ 'गहराव'।

गहिरो, गहिरौ(पु)—वि॰ [हि॰] दे॰ 'गहरा'। उ॰—आगें जाउँ जमुन जल गहिरौ पाछें सिंह जु लागैं।—सूर॰, १०।४।

गहिला—वि॰ [हि॰ गहेला] बावला। पागल। उन्मत्त। उ॰—तन मन मेरा पीव सौं, एक सेज सुख सोइ। गहिला लोग न जानहीं, पचि पचि आपा खोइ।—दादू (शब्द॰)। वि॰ दे॰ 'गहेला'।

गहिलाना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हि॰ गहराना] गहरा होना। फैलना। बहना। उ॰—पंखि पांणी थाहरइ जलि काजल गहिलाइ।—ढोला॰, दू॰ ६६।

गहीर(पु)—वि॰ [सं॰ गभीर] दे॰ 'गहरा'।

गहीला वि॰ [हि॰ गहेला] [स्त्री॰ गहीली, गहेली] १. गर्वयुक्त। घमंडी। उ॰—(क) राधा हरि के गर्व गहीली।—सूर (शब्द॰)। (ख) कहति नागरी श्याम सौं तजौ मानु हठीली। हम तें चूक कहा परी तिय गर्व गहीली।—सूर (शब्द॰)। २. पागल। मदोन्मत्त।

गहुँ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ गह्वर या गैव] छोटा रास्ता। गली।

गहुआ—संज्ञा पुं॰ [हि॰ गहना=पकड़ना] एक प्रकार की सँड़सी जिसका मुँह बहुत छोटा होता है। गहवा।
विशेष—इससे लोहार आग में से गरम लोहा पकड़कर निकालते हैं और निहाई पर रखकर उसे पीटते हैं। इसी प्रकार की छोटी सँड़सी सोनारों के पास भी होती है जिससे पकड़कर वे तार आदि खींचते हैं। इसे भी गहुआ कहते हैं।

गहूरी—संज्ञा स्त्री॰ [हि॰ गहना=धारण करना] किसी दूसरे के माल को अपने यहाँ हिफाजत के साथ रखने की मजदूरी।

गहेजुआ - संज्ञा पुं॰ [देश॰] छछूँदर। उ॰—मछरी मुख जस केचुआ, मुसवन मुँह गिरदान। सर्पन माँह गहेजुआ, जाति सबन की जान।—कबीर (शब्द॰)।

गहेलरा—वि॰ [हि॰ गहेला] [वि॰ स्त्री॰ गहेलरी] १. उन्मत्त। पागल। २ मूर्ख। अज्ञानी। गँवार। उ॰—विरहिन थी तो क्यों रही, जरी न पावक साथ। रह रह मूढ़ गहेलरी, अब क्यों मींजै हाथ।—कबीर (शब्द॰)।

गहेला—वि॰ [हि॰ गहना=पकड़ना+एला (प्रत्य॰)] [वि॰ स्त्री॰ गहेली] १. हठी। जिद्दी। २. अहंकारी। मानी। घमंडी। जैसे,—नारद को मुख माँड़ि के लीन्हें बदन छिनाइ। गर्व गहेली गर्व ते, उलटि चली मुसुकाई।—कबीर (शब्द॰)। ३. पागल। खब्ती। उ॰ मूवा पीछे मुकुति बतावे, मूवा पीछे मेला। मूवा पीछे अमर अभय पद, दादू भूल गहेला।—दादू (शब्द॰)। ४. गँवार। अनजान। मूर्ख।

गहैया वि॰ [हि॰ गहना+ऐया (प्रत्य॰)] १. पकड़नेवाला। ग्रहण करनेवाला। २. अंगीकार करनेवाला। स्वीकार करनेवाला।
यौ॰—हाथ गहैया=सहायक। मददगार।

गह्वर¹—वि॰ [सं॰] १. दुर्गम। विषम। २. छिपा हुआ। गुप्त। ३. घना। गहरा। निविड।

गह्वर²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. अंधकारमय और गूढ़ स्थान। २. जमीन में छोटा सूराख। बिल। ३. विषम स्थान। दुर्भेद्य स्थान। ४. गुफा। कंदरा। गुहा। ५. निकुंज। लतागृह। ६. झाड़ी। ७. जंगल। वन। उ॰—कटि तट तून, हाथ सायक धनु, सीता

बंधु समेत। सूर गमन गह्वर कौ कीन्हौं जानत पिता अचेत।—सूर०, ६। ३७। ८. वह स्थान जिसमें छिपने से छिपनेवाले का पता न चले। गुप्त स्थान। ६. दंभ। पाखंड। १०. रोना। ११. वह वाक्य जिसके अनेक अर्थ हो सकते हों। १२. गंभीर विषय। कठिन विषय। गूढ़ विषय। १३. जल।

गह्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुफा। खोह। कंदरा [को०]।

गांग¹—वि० [सं० गाङ्ग] गंगा संबंधी। गंगा का।

गांग²—संज्ञा पुं० १. भीष्म। २. कार्तिकेय। ३. सोना। ४. धतूरा। ५. मेघनि:सृत जल। वर्षा का पानी। ६. गंगा या नदी का किनारा। ७. हेलसा मछली। ८. लंबा और बड़ा तालाब। सागर।

गांगट—संज्ञा पुं० [सं० गाङ्गट] १. केकड़ा। २. एक प्रकार की मछली [को०]।

गांगटक, गांगटेय—संज्ञा पुं० [सं० गाङ्गटक, गाङ्गटेय] दे० 'गांगट'।

गांगायनि—संज्ञा पुं० [सं० गाङ्गायनि] १. भीष्म। २. कार्तिकेय। ३. एक प्रवरकार ऋषि।

गांगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गाङ्ग] गंगा की एक धारा जो बंगाल में गौड़ नगर के पास गंगा से मिलती है।

गांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० गाङ्गी] दुर्गा [को०]।

गांगेय¹—वि० [सं० गाङ्गेय] १. गंगा संबंधी। गंगा का। २. गंगा में स्थित। गंगातट पर स्थित।

गांगेय²—संज्ञा पुं० १. भीष्म। २. कार्तिकेय। ३. हेलसा मछली। ४. कसेरू। भद्रमोथा। ५. सोना। ६. धतूरा। ७. दक्षिण का एक राजवंश।

विशेष—यह पहले कोल्हापुर के पास गंगवाड़ी नामक स्थान में राज्य करता था। प्रगल्भ के पुत्र कोलाहल ने कोलाहलपुर या कोल्हापुर बसाया था। पीछे बहुत पीढ़ियों के बाद कामार्णव नामक राजा ने चालुक्य राजा बालादित्य से कलिंग राज्य जीता। इस वंश का राज्य ११वीं शताब्दी तक विद्यमान था। इसी वंश के राजा अनंग भीमदेव ने जगन्नाथ का प्रसिद्ध मंदिर बनवाया था।

गांगेयी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गाङ्गेयी] हेलसा नाम की मछली।

गांगेरुक—संज्ञा पुं० [सं० गाङ्गेरुक] गोरख इमली का बीज।

गांगेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं० गाङ्गेरुका] १. नागवल्ली। २. एक प्रकार का क्षुद्र अन्न [को०]।

पर्या०—गांगेरुकी। नागवला। झषा। ह्रस्वगवेधुका। खरवल्लरिका। विश्वदेवा। गोरक्षतंडुली।

गांगेष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० गाङ्गेष्ठी] कटशर्करा नाम की एक प्रकार की लता [को०]।

गांग्य—वि० [सं० गाङ्ग्य] गंगा संबंधी।

गांजिकाय—संज्ञा पुं० [सं० गाञ्जिकाय] बत्तख पक्षी [को०]।

गांडाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गाण्डाली] एक प्रकार का तृण जिसे गांडी भी कहते हैं।

गांडिव—संज्ञा पुं० [सं० गाण्डिव] दे० 'गांडीव' [को०]।

गांडी—संज्ञा पुं० [सं० गाण्डी] गैंडा। खड्ग। गंडक [को०]।

यौ०—गांडीमय=दे० 'गांडीव'।

गांडीर—वि० [सं० गाण्डीर] गंडीर संबंधी। गंडीर का [को०]।

गांडीव—संज्ञा पुं० [सं० गाण्डीव] अर्जुन के धनुष का नाम।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि पहले इसे ब्रह्मा ने बनाकर सोम को दिया था। सोम ने वरुण को दिया; और अग्नि के प्रार्थना करने पर वरुण ने अर्जुन को दिया।

यौ०—गांडीवधन्वा। गांडीवधर। गांडीवी=अर्जुन।

गांडीवी—संज्ञा पुं० [सं० गाण्डीविन्] १. अर्जुन। २. अर्जुन वृक्ष।

गांडू—वि० [हिं० गाँड़] दे० 'गाँडू'।

गांतु—संज्ञा पुं० [सं० गान्तु] १. चलनेवाला। पथिक। २. गायक [को०]।

गांत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्त्री] बैलगाड़ी। गंत्री रथ [को०]।

गांदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्दिनी] १. अक्रूर की माता जो काशीराज की कन्या तथा श्वफल्क की भार्या थी। २. गंगा।

यौ०—गांदिनीसुत=(१) भीष्म पितामह। (२) कार्तिकेय। (३) अक्रूर।

गांदी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्दी] दे० 'गांदिनी'।

गांधर्व¹—वि० [सं० गान्धर्व] [वि० गांधर्वी] १. गंधर्व संबंधी। २. गंधर्व देशोत्पन्न। ३. गंधर्व जाति का।

गांधर्व²—संज्ञा पुं० १. सामवेद का उपवेद जिसमें सामगान के स्वर, ताल आदि का वर्णन है। गंधर्व विद्या। गंधर्व वेद। २. गान विद्या। संगीत शास्त्र। ३. वह मंत्र जिसका देवता गंधर्व हो। ४. भारतवर्ष का एक भाग या उपद्वीप।

विशेष—इसे गंधर्व द्वीप भी कहते थे। यहाँ के लोग गाने बजाने में बड़े चतुर होते थे। इसमें कन्या और वर परस्पर मिलकर विवाह करते थे। स्त्रियाँ रूपवती होती थीं। इस देश के घोड़े अच्छे होते थे। यह देश हिमालय के प्रांत भाग में माना जाता था।

५. आठ प्रकार के विवाहों में से एक।

विशेष—इसमें वर और कन्या परस्पर अपनी इच्छा से अनुरागपूर्वक मिलकर पतिपत्नीवत् रहते हैं। मनु के अनुसार क्षत्रियों के लिये गांधर्व विवाह विहित है।

६. घोड़ा। अश्व। ७. गंधर्व।

गांधर्ववेद—संज्ञा पुं० [सं० गान्धर्ववेद] १. सामवेद का उपवेद। वि० दे० 'गांधर्व'—१। २. संगीत शास्त्र।

गांधर्विक—वि० [सं० गान्धर्विक] संगीत शास्त्र में कुशल। गांधर्व वेद जाननेवाला।

गांधर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्धर्वी] १. दुर्गा। २. वाणी। गिरा। सरस्वती (को०)।

गांधार—संज्ञा पुं० [सं० गान्धार] १. सिंधु नद के पश्चिम का देश।

विशेष—यह पेशावर से लेकर कंधार तक माना जाता था। इस देश की सीमा भिन्न भिन्न समयों में बदलती रही है।

ह्युनत्सांग के समय में इस देश के अंतर्गत सिंधु नद से लेकर जलालाबाद तक और स्वात से कालाबाग तक का प्रदेश था। ऋग्वेद में यहाँ अच्छी भेड़ों का होना लिखा है। गांधारी इस देश की कन्या थी।
२.[स्त्री० गान्धारी] गांधार देश का रहनेवाला व्यक्ति। ३. गांधार देश का राजा या राजकुमार। ४.संगीत में सात स्वरों में तीसरा स्वर।
विशेष—इसकी दो श्रुतियाँ हैं —रौद्री और क्रोधा। इसकी जाति वैश्य, वर्ण सुनहला, देवता सरस्वती, ऋषि चंद्रमा, छंद त्रिष्टुभ, वार मंगल; ऋतु वसंत और स्थान दोनों हाथ हैं। इसकी आकृति अग्नि की और संतान हिंडोल राग है। इसका अधिकार शाल्मली द्वीप में है। इसका प्रयोग करुण रस में होता है। नाभि से उठकर कंठ और शीर्ष में लगकर अनेक गंधों को ले जानेवाली वायु से इसकी उत्पत्ति होती है। यह स्वर बकरे की बोली से लिया गया है। इसके दो भेद होते हैं— शुद्ध और कोमल। इस स्वर का ग्रहस्वर बनाने से निम्नलिखित प्रकार से स्वरग्राम होता है।—गांधार —स्वर। तीव्र मध्यम—ऋषभ। कोमल धैवत—गांधार। धैवत—मध्यम। निपाद—पंचम। कोमल ऋषभ—धैवत। कोमल गांधार—निपाद। कोमल गांधार को ग्रहस्वर बनाने से स्वरग्राम इस प्रकार होता है—गांधार कोमल—स्वर। मध्यम—ऋषभ। पंचम।—गांधार। कोमल धैवतमध्यम। कोमल निपाद—पंचम। स्वर–धैवत। ऋषभ—निपाद।
५.संपूर्ण जाति का एक राग।
विशेष—यह प्रातःकाल १ दंड से ५ दंड तक गाया जाता है। हनुमत के मत से यह भैरव राग का पुत्र है और किसी के मत से दीपक राग का पुत्र है।
६. एक संकर राग जो कई रागों और रागिनियों को मिलाकर बनाया जाता है। ७.संगीत के तीन स्वरग्रामों में से एक।
विशेष—इसमें नंदा, विविशाखा, सुमुखी, विचित्रा, रोहिणी, सुखा और आलापिनी ये सात मूर्च्छनाएँ हैं और जिसका व्यवहार स्वर्गलोक में नारद द्वारा होता है। इसके अधिष्ठाता देवता शिव कहे गए हैं।
८. गंधरस नामक सुगंध द्रव्य। ९.सिंदूर (को०)।

गांधार पंचम—संज्ञा पुं० [सं०] एक षाड़व राग।
विशेष—यह मंगलीक राग है और अद्भुत हास्य तथा करुण रस में इसका प्रयोग होता है। इसमें ऋषभ नहीं लगता। म, प, ध, नि, स, ग, म इसका सरगम है। इसमें प्रसन्न मध्यम अलंकार और काकली का संचार होना आवश्यक है। इसे केवल गांधार भी कहते हैं।

गांधार भैरव—संज्ञा पुं० [सं० गान्धार भैरव] एक राग का नाम।
विशेष—यह राग देवगांधार के मेल से बनता है। इसमें सातों स्वर लगते हैं और यह प्रातःकाल गाया जाता है। इसका सरगम यह है—ध, नि, स, रि, ग, म, प, ध।

गांधारि—संज्ञा पुं० [सं० गान्धारिः] गांधार राजकुमार। दुर्योधन का मामा। शकुनि (को०)।

गांधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्धारी] १. गांधार देश की स्त्री या राजकन्या। २. धृतराष्ट्र की पत्नी या दुर्योधन की माता का नाम।
विशेष—यह गांधार देश के राजा सुबल की कन्या थी। शिव ने इन्हें सौ पुत्र होने का वर दिया था। धृतराष्ट्र की पत्नी होने पर इन्होंने पति को अंधा देख अपनी आँखों पर भी पट्टी बाँध ली थी।
३. मेघ राग की पाँचवीं रागिनी।
विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और दिन के पहले पहर में गाई जाती है। रि, ध,नि, प, म, ग, रि, स इसका सरगम है। कोई कोई इसे हिंडोल राग की रागिनी मानते हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह धनाश्री और स्वराष्टक को मिलाकर बनाई गई है। कोई इसे सारस्वत और धनाश्री से मिलकर बनी हुई बतलाते हैं।
४. तंत्र के अनुसार एक नाड़ी। ५. जैनों के एक शासन देवता। ६.पार्वती की एक सखी का नाम। ७. जवासा। ८. गाँजा।

गांधारेय—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्योधन (को०)।

गांधिक—संज्ञा पुं० [सं० गान्धिक] १. गंधी। २.गांधी नामक कीड़ा। ३. गंधद्रव्य। ४. लिपिकार। लेखक (को०)।

गांधी—स्त्री० [सं० गान्धिक] १. हरे रंग का एक छोटा कीड़ा।
विशेष—यह वर्षा काल में धान के खेतों में अधिक होता है। इससे धान के पौधों को बड़ी हानि पहुँचती है। इसमें एक तीव्र दुर्गंध होती है। रात को यह चिराग के सामने भी उड़कर पहुँचता है और इसके आते ही खटमल की तरह की एक असह्य दुर्गंध उठती है।
२.एक घास। ३. हींग। ४. किराने की व्यापारी। ५. वैश्यों की एक जातीय उपाधि या अल्ल। ६. महात्मा गांधी। अंग्रेजों के शासन से भारत को स्वतंत्रता दिलानेवाला एक प्रमुख नेता। इनका पूरा नाम मोहनदास कर्मचंद गांधी था। ये गुजराती थे। इनका जन्म २ अक्टूबर, १८६९ और निधन ३० जनवरी, १९४८ को एक व्यक्ति द्वारा गोली मारे जाने के कारण हुआ।
यौ०—गांधी टोपी=श्वेत खद्दर की किश्तीनुमा टोपी। गांधीवाद=गांधी जी के विचारों के आधार पर स्थापित या पोषित मत।

गांभीर्य—संज्ञा पुं० [सं० गाम्भीर्य] १. गहराई। गंभीरता। २. स्थिरता। अचंचलता। ३.हर्ष, क्रोध, भय आदि मनोवेगों से चंचल न होने का गुण। शांति का भाव। धीरता। ४. किसी विषय की गूढ़ता। गहनता। जटिलता।

गाँई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाय] दे० 'गाय'। उ०—तब माता ने गाँई को दूध दियो तो इत कछूक पियो।—दो० सौ० बावन०, भा० २, पृ० ४२।

गाँई—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम, हिं० गाँव] दे० 'गाँव'। उ०—सहर मुलक सब गँवई गाँई।—घट०, पृ० ३५१।

गाँकर—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार+कर, पुं० हिं० अंगाकरी, अंगाकरि] १. अंगाकड़ी। बाटी। लिट्टी। २. अरहर की लिट्टी।

गाँगⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] दे० 'गंगा'। उ०—गाँग जउँन जौ लहि जल तौ लहि अम्मर माथ।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० १५।

गाँगट—संज्ञा पुं० [सं० गाङ्गट] केकड़ा।

गाँगन—संज्ञा स्त्री० [? या देश०] एक प्रकार की फोड़िया।

गाँछना†—क्रि० स० [सं० गुत्सन] गूँधना। गाँथना। जैसे—माला गाँछना, नारा गाँछना।

गाँज—संज्ञा पुं० [फ़ा० गंज] १. राशि।। ढेर। अंबार। २. डंठल, खर, लकड़ी आदि का वह ढेर जो तले ऊपर रखकर लगाया गया हो। जैसे,—लकड़ी का गाँज, खर का गाँज, पयाल का गाँज इत्यादि।

गाँजना—क्रि० स० [हिं० गाँज, फ़ा० गंज] १. राशि लगाना। ढेर करना। २. घास, लकड़ी, डंठल आदि को तले ऊपर रखकर ढेर लगाना।

गाँजा—संज्ञा पुं० [सं० गञ्जा] भाँग की जाति का एक पौधा।

विशेष—यह देखने में भाँग से भिन्न नहीं होता, पर भाँग की तरह इसमें फूल नहीं लगते। नैपाल की तराई, बंगाल आदि में यह भाँग के साथ आपसे आप उगता है; पर कहीं कहीं इसकी खेती भी होती हैं। इसमें बाहर फूल नहीं लगते, पर बीज पड़ते हैं। वनस्पति शास्त्रविदों का मत है कि भाँग के पौधे के तीन भेद होते हैं—स्त्री, पुरुष और उभयलिंगी। इसकी खेती करनेवालों का यह भी अनुभव है कि यदि गाँजे के पौधे के पास या खेत में भाँग के पौधे हों, तो गाँजा अच्छा नहीं होता। इसलिये गाँजे के खेत से किसान प्रायः भाँग के पौधे उखाड़कर फेंक देते हैं। गाँजे के पौधे से एक प्रकार का लासा भी निकलता है। यद्यपि नीचे के देशों में यह यह लासा उतना नहीं निकलता तथापि हिमालय पर यह बहुतायत से निकलता है और इसी से चरस बनती है। हिंदुस्तान में गाँजा खाया नहीं जाता; लोग इसमें तमाकू मिलाकर इसे चिलम पर पीते हैं; पर अँगरेजी दवाओं में इसका सत्त काम में लाया जाता हैं। गाँजे की कई जातियाँ है—बालूचर, पहाड़ी, चपटा, गोली, भँगेरा इत्यादि। बालूचर के तैयार होने पर उसे काटकर और पूला बनाकर पैरों से रौंदते हैं। इस प्रकार तले ऊपर रखकर. वैद्यक में गाँजे को कड़ुवा, कसैला, तीता और उष्ण लिखा है और उसे कफनाशक, ग्राही, पाचक और अग्निवर्धक माना है। यह नशीला और पित्तोत्पादक होता है। इसके रेशे मजबूत होते हैं और सन की तरह सुतली बनाने के काम में आते हैं। नैपाल आदि पहाड़ी देशों में इन रेशों से एक प्रकार का मोटा कपड़ा भी बुनते हैं जिसे भँगरा कहते हैं।

पर्या०—गंजा। गंजिका। वज्रदारु। भंगा। मारिता। गजाशन। मत्कुणारि। मातुली। गंजाकिनी। मादिनी। शक्राशन। जया। विजया। तुरंत-आनंदा। हर्षिणी।

गाँझी—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़। उ०—दादू गाँझी ज्ञान है मंजन है सब लोक। राम दूध सब भरि रह्याँ, ऐसा अमृत पोख।—दादू०, पृ० ४५१।

गाँठ—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि, पा० गंठि] [वि० गँठीला] १. रस्सी, डोरी तागे आदि में पड़ी हुई मुद्धी की उलझन जो खिंचकर कड़ी और दृढ़ हो जाती है। वह कड़ा उभार जो तागे, रस्सी, डोरी आदि में उनके छोरों को कई फेरे लपेटकर या नीचे ऊपर निकालकर खींचने से बन जाता है। गिरह। ग्रंथि। जैसे,—रस्सी में गाँठ पड़ गई है।

क्रि० प्र०—खोलना।—डालना।—देना।—पड़ना।—बाँधना।—लगाना।

यौ०—**गाँठ गँठीला**=गाँठों से भरा हुआ। गाँठवाला। जिसमें उलझन और गाँठ हो।

मुहा०—**गाँठ खुलना**=उलझन मिटना। किसी भारी समस्या का समाधान होना। कोई भारी प्रश्न हल होना। **गाँठ खोलना या छोरना**=उलझन मिटाना। अड़चन दूर करना। कठिनाई मिटाना। उ०—कहनि रहनि एक विरति विवेक नीति वेद बुधसंमत पथन निरवान की। गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की छोरी अनायास साधु सोधक अपान की।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१५। **(मन या हृदय की) गाँठ खोलना**= (१) खोलकर कोई बात कहना। मन में कोई बात गुप्त न रखना। मन में रखी हुई बात कहना। (२) अपनी भीतरी इच्छा प्रकट करना। (३) अपना हौसला निकालना। लालसा पूरी करना। **(मन में) गाँठ पकड़ना या करना**=भेद मानना। अंतर रखना। बुरा मानना। खिंचा रहना। बैर मानना। कोना रखना। **गाँठ पर गाँठ पड़ना**=(१) उलझन बढ़ती जाना। किसी बात का उत्तरोत्तर कठिन होता जाना। मामला पेचीला होता जाना। (२) मनमोटाव बढ़ता जाना। द्वेष बढ़ता जाना। **मन में गाँठ**=चित्त में बुरा भाव। द्वेष भाव। वैर। **मन में गाँठ रखना**=जी में बुरा मानना। वैर मानना। **मन या हृदय में गाँठ पड़ना**=आपस के संबंध में भेद पड़ना। मनमोटाव होना। वैर होना। द्वेष होना। उ०—(क) मन को मारौं पटकि के टूक टूक उड़ि जाय। टूटे पाछे फिर जुरै, बीच गाँठि पड़ि जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर सँग प्रीति। परति गाँठ दुर्जन हिये दई नई यह रीति।—बिहारी (शब्द०)।

२. अंचल, चद्दर या किसी कपड़े की खूँट में कोई वस्तु (जैसे, रुपया) लपेटकर लगाई हुई गाँठ। उ०—राम गाइ औरन समुझावै हरि जाने बिन बिकल फिरै। एकादशी व्रतौ नहिं जानै ज्ञान गमाये मुगुध फिरै।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—**किसी की गाँठ कटना**=(१) गाँठ में बँधी वस्तु का चोरी जाना। जेब कतरा जाना। (२) सौदे में ठग जाना। अधिक दाम दे देना। ठगा जाना। **गाँठ कतरना या काटना**= (१) गाँठ काटकर रुपया निकाल लेना। जेब कतरना। (२) मूल्य से अधिक लेना। लूटना। ठगना। **गाँठ करना**= (१) संग्रह करना। इकट्ठा करना। अपने पास रख लेना।

उ०—रहा द्रव्य तब कौन न गाँठी। पुनि कत मिलैं लच्छ जो नाठी।—जायसी (शब्द०)। (२) याद रखना। **गाँठ का**=पास का। पल्ले का। जैसे—तुम्हारी गाँठ का रुपया लगे तो मालूम हो। **गाँठ का पूरा**=धनी। मालदार। जैसे—गाँठ का पूरा, मति का हीन। **गाँठ खोलना**=थैली या जेब से रुपया निकालना। पास का खर्च करना। **गाँठ जोड़ना**=विवाह आदि के समय स्त्री पुरुष के कपड़ों के पल्ले को एक में बाँधना। गँठजोड़ा करना। ग्रंथिबंधन करना। **किसी के साथ गाँठ जोड़ना**=किसी के साथ ब्याह करना। **गाँठ में**=पल्ले में। पास में। जैसे—गाँठ में कुछ है कि यों ही बाजार चले। उ०—राजा पदुमावति सों कहा। साँठ नाठ कछु गाँठ न रहा।—जायसी (शब्द०)। **(कोई बात) गाँठ में बाँधना**=अच्छी तरह याद रखना। स्मरण रखना। सदा ध्यान में रखना। उ०—कहल हमारा गाँठी बाँधो, निसि बासरहि होहु हुसियारा। ये कलि के गुरु बड़ परपंची, डारि ठगौरी सब जग मारा।—कबीर (शब्द०)। **गाँठ से**=पास से। जैसे—गाँठ से लगाना पड़े तो मालूम हो।

३. गठरी। बोरा। गट्ठा। जैसे—गेहूँ की गाँठ, चावल की गाँठ।

मुहा०—**गाँठ करना**=(१) गाँठ में बाँध लेना। (२) बटोरना। जमा करना।

४. अंग का जोड़। बंद। जैसे—पैर की गाँठ, हाथ की गाँठ, उँगली की गाँठ।

मुहा०—**गाँठ उखड़ना**—किसी अंग का अपने जोड़ पर से हट जाना। जोड़ उखड़ना।

५. ईख, बाँस आदि में थोड़े थोड़े अंतर पर कुछ उभड़ा हुआ कड़ा स्थान जिसमें गंडा या चिह्न पड़ा रहता है और जिसमें से कनखे निकलते हैं। पोर। पर्व। जोड़। ६. गाँठ के आकार की जड़। ऊँटी। गुत्थी। जैसे—हल्दी की गाँठ। ७. घास का वह बोझ जिसे एक आदमी उठा सके। गट्ठा। ८. एक गहना जो कटोरी के आकार का होता है और जिसकी बारी में छोटे छोटे घुँघरू लगे रहते हैं। इसे रेशम में गूँथकर स्त्रियाँ हाथों की कुहनी में लटकाती हैं।

गाँठकट—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ+काटना] [स्त्री० गाँठकटी] १. वह चोर जो पल्ले में बँधे हुए रुपए काटकर उड़ा लेता हो। गिरहकट। २. उचित से अधिक मूल्य पर सौदा बेचनेवाला। ठग।

गाँठकतरा—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ+कतरना] दे० 'गाँठकट'।

गाँठगोभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ+गोभी] गोभी का एक भेद।

विशेष—इसके पौधे की पेड़ी में जड़ से चार पाँच अंगुल पर एक गाँठ पड़ती है जो धीरे धीरे बढ़कर खरबूजे के आकार की हो जाती है। यह गाँठ गूदेदार होती है और इसकी तरकारी बनाई जाती है।

गाँठदार—वि० [हिं० गाँठ+दार (प्रत्य०)] जिसमें बहुत गाँठें हों। गठीला।

गाँठना—क्रि० स०[सं० ग्रन्थन, प्रा० गण्ठन] १. गाँठ लगाना। सीकर, मुर्री लगाकर या बाँधकर मिलाना। साटना। २. फटी हुई चीजों को टाँकना या उसमें चकती लगाना। मरम्मत करना। गूथना। जैसे, जूता गाँठना, गुदड़ी गाँठना। ३. मिलाना। जोड़ना। ४. तरतीब देना। क्रमबद्ध करना। जैसे—मनसूबा गाँठना, मजमून गाँठना।

मुहा०—**मतलब गाँठना**=काम निकालना। अपना प्रयोजन सिद्ध करना।

५. अपनी ओर मिलाना। अनुकूल करना। पक्ष में करना। निर्धारित करना। नियत करना। मुकर्रर करना। जैसे—तुम अपने मन में हमें तंग करना गाँठ लिया है। ८. दबाना। दबोचना। गहरी पकड़ पकड़ना। जैसे—पंजा गाँठना, सवारी गाँठना। ९. वश में करना। वशीभूत करना। दाँव पेंच पर चढ़ाना। १०. वार को रोकना। आघात को किसी वस्तु पर लेना।

गाँठि†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गाँठ'। उ०—गाछे वा मुरारीदास वा पातरि की गाँठि बाँधि सिरहाने धरि सोवते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४३।

गाँठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाठ] १. एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ हाथों की कुहनी में पहनती हैं। वि० दे० 'गाँठ'। २. भूसे या डंठल का छोटा टुकड़ा।

विशेष—इसमें गाँठ ही गाँठ होती है। यह किसी काम का नहीं होता, बैल भी इसे नहीं खाते। खलिहान में इसे लोग बेकाम का समझकर फेंक देते हैं।

गाँड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड] १. पाखाने का मुकाम। शरीर की वह इंद्रिय जिससे मल बाहर निकलता है। गुदा।

पर्या०—गुद। अपान। पायु। गुह्य।

मुहा०—**गाँड़ की खबर न होना**=सुध या चेत न होना। सावधानी न होना। गफलत होना। किसी बात की जानकारी न होना। **गाँड़ की खबर न रखना**=बेसुध रहना। अचेत रहना। होश में न रहना। असावधान रहना। गाफिल रहना। किसी बात से अनजान रहना। **गाँड़ की खबर न रहना**=होश हवास न रहना। जानकारी न रहना। **गाँड़ की राह या रास्ते निकलना**=(१) किसी वस्तु का न पचकर ज्यों का त्यों पाखाने से निकल जाना। (२) निकल जाना। जाता रहना। खो जाना। *गाँड़ के नीचे या तले गंगा बहना*=अधिक ऐश्वर्य होना। अत्यंत धन होना। **गाँड़ खोल देना**=(१) दबकर बात मान लेना। डर से किसी की बात मान लेना। अधीन हो जाना। (२) चापलूसी करना। ठकुरसुहाती करना। **गाँड़ खोले फिरना**=(१) नंगा फिरना। (२) बच्चों की तरह अनजान बना रहना। बचपन की अवस्था में रहना। जैसे,—कल वह मेरे सामने गाँड़ खोले फिरता था; आज बड़ा पंडित बना है। **गाँड़ गंजीफा खेलना**=(१) चित्त संकट में पड़ना। डर और घबराहट होना। (२) तंग होना। हैरान होना। **गाँड़ गरदन की सुध या खबर न रखना**=बेहोश रहना। अचेत रहना। असावधान रहना। गाफिल रहना। **गाँड़ गरदन एक हो जाना**=(१) थककर लथपथ हो जाना। थककर होश हवास खो देना। (२) बेहोश हो जाना। बेसुध हो जाना। आपा खोना। (३) संडमुसंड हो जाना। बहुत मोटा हो जाना। **गाँड़ गले में आना**=(१) संकट में पड़ना।

आफत में फँसना। (२) तंग आना। ऊब जाना। आजिज आना। हैरान होना। **गाँड़ घिसना या रगड़ना**=(१) बड़ा उद्योग करना। बहुत प्रयत्न करना। बड़ी दौड़ धूप करना। कड़ी मेहनत करना। कठिन परिश्रम करना। जैसे,—१० रुपया महीने पर कौन गाँड़ घिसने जायगा। (२) चापलूसी करना। ठकुरसुहाती कहना। खुशामद करना। **गाँड़ घिसवाना**=(१) बड़ी खुशामद कराना। बड़ी चापलूसी कराना। (२) नाकों चने चबवाना। बहुत तंग करना। **गाँड़ चलना**=दस्त आना। पेट चलना। **गाँड़ चाटना**=चापलूसी करना। खुशामद करना (बाजारू)। **गाँड़ चिरना**=दे० 'गाँड़ फटना'। **गाँड़ जलना**=(१) बुरा लगना। न सुहाना। (२) डाह उत्पन्न होना। ईर्ष्या होना। **गाँड़ धोना**=आबदस्त लेना। **किसी की गाँड़ धोना**=चापलूसी करना। खुशामद करना। **गाँड़ धोने न आना**=कुछ ढंग न आना। कुछ भी शऊर न होना। **गाँड़ फटना**=(१) डर लगना। भय होना। (२) डर के मारे घबराहट होना। **गाँड़ फटकर हौद या हौदा या हौज होना**=भयभीत होना। आतंक से घबरा जाना। सहम जाना। **गाँड़फाड़ या गाँड़मार**=(१) भयानक। डरावना। (२) कठिन। विकट। दुष्कर। **गाँड़ फाड़ना**=(१) डराना। धमकाना। भय दिलाना। (२) दिक करना। सताना। नाक में दम करना। (३) कठिन काम लेना। अत्यंत अधिक श्रम कराना। **गाँड़ में गू होना**=पास पैसा होना। पास में धन होना। **(किसी की) गाँड़ में घुसा रहना**=चापलूसी करना। साथ साथ लगा फिरना। खुशामद करना। **गाँड़ में घुस जाना**=दूर हो जाना। निकल जाना। जैसे,—चार लात देंगे, सब बदमाशी गाँड़ में घुस जायगी। **गाँड़ में चटखनी, चिउँटी या पतिंगी लगाना**=(१) बुरा लगना। न सुहाना। नागवार गुजरना। (२) डाह होना। जलन होना। **गाँड़ में थूकना या थूक लगाना**=(१) नीचा दिखाना। कलंकित करना। धब्बा लगाना। अपमानित करना। इज्जत उतारना। (२) झिपाना। लज्जित करना। **गाँड़ मराना**=(१) गुदामैथुन कराना। प्रकृतिविरुद्ध मैथुन कराना। (२) हानि सहना। नुकसान उठाना। (३) चापलूसी करना। खुशामद करना। दुर्व्यवहार और दुर्वचन सहना। **गाँड़ मारना**=(१) लौंडेबाजी करना। (२) तंग करना। दुःख देना। सताना। (३) बहुत अधिक काम लेना। कठिन परिश्रम लेना। **गाँड़ में उँगली करना**=(१) छेड़ना। छकाना। (२) तंग करना। दिक करना। हैरान करना। सताना। **गाँड़ में मिरचें लगना**=बुरा लगना। न सुहाना। खलना। **गाँड़ में लँगोटी न होना**=कपड़े बिना नंगे फिरना। अत्यंत दरिद्र होना।

२. किसी वस्तु के नीचे का वह भाग जिसके बल पर वह खड़ी रह सके या रखी जा सके। पेंदी। तला। तली।

गाँडर—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] १. मूँज की तरह की एक घास जिसकी पत्तियाँ बहुत पतली और हाथ सवा हाथ लंबी होती है। बीरन। खस। उ०—सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाँडर ताँती।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—जड़ से इसके अंकुर गुच्छों में निकलते हैं। यह घास तराई में तथा ऐसे स्थानों पर होती है जहाँ पानी इकट्ठा होता है। नैपाल की तराई में तालों और झीलों के किनारे यह बहुत उपजती है। इसकी सूखी जड़ जेठ असाढ़ से पनपती है और उसमें से बहुत से अंकुर निकलते हैं जो बढ़ते जाते हैं। कुआर के महीने में बीच से पतली पतली सीकें निकलती हैं, जिनके सिरे पर छोटे छोटे जीरे लगते हैं। किसान सीकों को निकालकर उनसे झाड़ू, पंखे, टोकरियाँ आदि बनाते हैं और पौधों को काटकर उनसे छप्पर छाते हैं। इस घास की जड़ सुगंधित होती है और उसे संस्कृत में उशीर तथा फारसी में खस कहते हैं। यह पतली, सीधी और लंबी होती है और बाजारों में खस के नाम से बिकती है। खस का अतर निकाला जाता है और उसकी टट्टियाँ भी बनती हैं। खस के नीचे भी बाँधे जाते हैं।

२. एक प्रकार की दूब जिसमें बहुत सी गाँठें होती हैं। गंडदूर्वा।

विशेष—यह जमीन पर दूर तक फैलती और जगह जगह जड़ पकड़ती जाती है। पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं। यह कड़ुई, कसैली और मीठी होती है, दाह, तृषा और कफ पित्त को दूर करती है तथा रुधिर के विकार को हरती है। भावप्रकाश में इसे लोहद्राविणी अर्थात् लोहे को गलानेवाली लिखा है।

गाँडा[1]—संज्ञा पुं० [सं० काण्ठ या खण्ड] [स्त्री० गँड़ी] १. किसी पेड़ पौधे या डंठल का वह खंड जो उससे काट लिया गया हो। जैसे लकड़ी का गाँडा, ईख का गाँडा। २. ईख का वह छोटा टुकड़ा जिसे पत्थर या लकड़ी के कोल्हू में डालकर पेरते हैं। गँडेरी। ३. ईख। उ०—निगम के भाँड़े कत बोलत हैं बचन बाँडे काहे को पाँडे गाँडे हाथिन सों खात हैं।—हनुमान (शब्द०)।

गाँडा[2]—संज्ञा पुं० [सं० गण्ड=गंडा। चिह्न] वह मेड़ या चबूतरा जो आटा पीसने की चक्की के चारों ओर इसलिये बनाया जाता है कि आटा गिरकर इधर उधर न फैले। मेंडरी।

गाँडी—संज्ञा स्त्री० [म० गण्ड] एक प्रकार की घास जो चौपायों के चरने के काम आती है।

विशेष—यह घास हिसार और भीर में होती है। भैंसे इसे बड़े चाव से खाती हैं। यह सुखाकर रखी जाती है और दस महीने तक बनी रहती है। इसकी जड़ में एक प्रकार की सुगंध होती है। यह अच्छी धरती में, जहाँ गेहूँ होता है, उपजती है। इसे घोड़े भी खाते हैं।

गाँडू—वि० [हिं० गाँड़] जिसे गाँड़ मराने की लत हो। २. निकम्मा। ३. जिसमें हिम्मत न हो। डरपोक। बुजदिल। असाहसी।

गाँती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गाती'।

गाँथना(पु)—क्रि० स० [सं० ग्रन्थन] १. गूथना। गूँधना। उ०—गुरु के बचन फूल हिय गाँथे। देखउँ नयन चढ़ावउँ माथे।—जायसी (शब्द०)। (ख) सोहत मउर मनोहर माँथे। मंगलमय मुकतामणि गाँथे।—तुलसी (शब्द०)। २. मोटी सिलाई करना। गाँठना। जोड़ना।

गाँदला(पु)†—वि० [हिं० गँदला] दे० 'गदला'। उ०—सागर गहरा गाँदला अगनि पिंव असरालु।—प्राण०, पृ० २३७।

गांधी—संज्ञा पुं० [सं० गन्धिक] १. वह जो इत्र और सुगंधित तेल आदि बेचता हो। गंधी। २ गुजराती वैश्यों की एक जाति।

गाँनⓊ—संज्ञा पुं० [सं० गान] दे० 'गान'। उ०—दधि दूब हरद भरि कनक थाल बहु गाँन करत प्रविसंध बाल।—हु० रासो, पृ० ३२।

गांमⓊ—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम] दे० 'गाम'। उ०—बीस गांम कवि चंद प्रति करी कुंअर बगसीस। एक बाजि साजति सजहि दियौ सु संभरि ईस।—पृ० रा०, ६। १७८।

गांमीⓊ—वि० [हिं० गांम+ई (प्रत्य०)] गँवार। अशिष्ट। उजड्ड। उ०—साहाब सुकर फुरमांन दिय गांमी छलबल लग्गया। कड्ढी सु लच्छि आहुपट्टुपति मुख चहुआन बिलग्गया—पृ० रा०, २४४१।

गाँवँ—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम] दे० 'गाँव'।

गाँव—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम, पा० गाम, प्रा० गावँ] [वि० गँवार] वह स्थान जहाँपर बहुत से किसानों के घर हों। छोटी बस्ती। खेड़ा।

मुहा०—गाँव गिरावँ=(१) देहात। (२) जमींदार। गाँव गँवई=देहात। गाँव मारना=डाका मारना। डाका डालना। उ०—जिमींदार सुतां ताके उभै भाई रहैं आपस में वैर, गाँव मारचो सब छीजिए।—प्रिया (शब्द०)।

यौ०—गाँव पंचायत=ग्राम की पंचायत। गाँव सभा=ग्राम की सभा।

गाँवटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँव+टी (प्रत्य०)] गाँव। पुरवा। उ०—कुराज्य था, कुशासन था परंतु गाँवटी पंचायतें बनी हुई थीं।—झाँसी०, पृ० १३।

गाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँसना] रोक टोक। बाधा। प्रतिरोध। बंधन। उ०—सब गाँस फाँस मिटाय दास हुलास ज्ञान अखंड के। नहि नास तेहि इतिहास सुनि सो आदि अंत प्रचंड के (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—देना—रखना।

२. वैर। द्वेष। ईर्ष्या। मनोमालिन्य। उ०—विथुरचो जावक सौति पग, निरखि हँसी महि गाँस। सकल हँसौंही लखि लियो आधी हँसी उसास।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—रखना। धरना।—पकड़ना। गहना।

मुहा० गाँस निकलाना=वैर निकालना।

३. हृदय की गुप्त बात। भेद की बात। रहस्य। उ०—(क) जोबन दान लेहिंगे तुम सों। चतुराई मिलवति है हम सों। इनकी गाँस कहा री जानो। इतनों कही एक जिय मानो।—सूर (शब्द०)। (ख) वह बात साँची याकी गाँस एक और सुनो साधु को न हँसे कोऊ यह मैं विचारी है।—प्रिया (शब्द०)। ४. गाँठ फंदा। गठन। बनावट। जमावट। उ०—इतने सबै तुम्हारे पास। निरखि न देखहु अंग अंग सब चतुराई को गाँस।—सूर (शब्द०)। ५. तीर या बर्छी का फल। हथियार की नोक। उ०—कोटिन मनोज की बनोज जाके आगे पुनि दबति कलानिधि की खोज को न काढ़ी है। रघुनाथ हेरि सोई हरखि हरिननैनी गहे गाँस पैनी रीझ बतरस बाढ़ी है।—रघुनाथ (शब्द०)। †६. वश। अधिकार। शासन।

मुहा०—गाँस में करना या रखना=अधिकार में रखना। देखरेख में रखना। शासन में रखना। उ०—निर्गुन कौन देश को बासी।······पावेगो पुनि कियो आपनो करेगो गाँसी। सुनत मौन ह्वै रह्यौ बावरो सूर सबै मति नासी।—सूर (शब्द०)।

७. देखरेख। निगरानी।

गाँसना—क्रि० स० [हिं०] १. गँसने का सकर्मक रूप। एक दूसरे से लगाकर कसना। गूथना। २. सालना। छेदना। चुभोना। आरपार करना। ३. रस्सी या सूत के बाने बुनते समय उसे ठोंक ठोंककर ताने में कसना, जिससे बुनावट घनी हो। ठस करना। गठना। कसना।

मुहा०—बात को गाँसकर रखना=मन में बैठाकर रखना। हृदय में जमाना। स्मरण रखना। मन में लिए रहना। उ०—तुम वह बात गाँस करि राखी हमको गई भुलाइ। ता दिन कह्यो नहीं मैं जानी मानि लई सति भाइ।—सूर (शब्द०)।

†४. इधर उधर न जाने देना। देखरेख में रखना। वश में रखना। अपने मन का न होने देना। शासन में रखना। रोकना। ५. पकड़ में करना। वश में करना। दबोचना। ६. ठूसना। भरना। ७. जहाज का छेद बंद करना।

गाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँस] १. तीर या बरछी आदि का फल। हथियार की नोक। जैसे—प्रीतम के उर बीच भए दुलही को बिलास मनोज की गाँसी।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—गाँसी लगना=तीर लगना। उ०—फाँस से फुलेल लागे गाँसी सी गुलाल लागे गाज अरगजा लागे चोवा लागे चहकन।—(शब्द०)।

२. गाँठ। गिरह। ३. कपट। छलछंद। ४. मनोमालिन्य।

गाहक—संज्ञा पुं० [सं० ग्राहक] दे० 'गाहक'।

गाⓊ†—क्रि० अ० [सं० गत, प्रा० गअ] गया। उ०—जो जो गा सतसंग में सों सो बिगरा जाय।—पलटू०, भा० २, पृ० ३६।

गाइ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाय] दे० गाय' उ०—ठाढ़े गाइ गहन के काज किए फिरत ग्वालिन को साज।—नंद० ग्रं०, पृ० २६७।

गाइडⓊ—संज्ञा पुं० [अं०] आगे आगे रास्ता बतलाने वाला। पथ प्रदर्शक। रहनुमा/ २. वह पुरुष जो किसी स्थान में विदेशियों के साथ रहकर उन्हें वहाँ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थलों और वस्तुओं को दिखलाता हो। ३. वह पुस्तक जिसमें किसी विशेष संस्था या कार्यविभाग के नियम आदि लिखे हों।

गाइनाⓊ—वि० [सं० गायन] गानेवाला। गायक' उ०—पंडित भट्ट, कवि गाइना नृप सौदागिर बार हुआ।—पृ० रा० २७। २८।

गाउँ†Ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० गाँव] दे० 'गाँव'। उ०—नंद गाउँ नीको लागत री।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३०।

गाउन—संज्ञा पुं० [अं०] १. एक प्रकार का लंबा ढीला पहनावा जो प्रायः युरोप, अमेरिका आदि देशों की स्त्रियाँ पहनती हैं। २. एक तरह का चोगा जो कई आकार और प्रकार का होता

है और जिसके पहनने के अधिकारी ईसाई धर्म के आचार्य, ग्रैजुएट, बड़े न्यायाधीश अथवा कुछ अन्य विशिष्ट लोग ही समझे जाते हैं।

गाऊघप्प—वि० [हिं० खाऊ+गप्प] १. दूसरे के माल को हड़प लेनेवाला। जमामार। २. बहुत खर्च करनेवाला। बहुत उड़ानेवाला।

गाकरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँकरी] अंगाकड़ी। लिट्टी।

गागर†—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्गर] गगरी। घड़ा।

मुहा०—गागर में सागर भरना=(१) अल्प स्थान में या छोटी जगह में बहुत अधिक का समावेश कर देना। (२) संक्षिप्त पदावली या वाक्ययोजना में अत्यधिक भावों या अर्थों का समावेश करना।

गागरा†—संज्ञा पुं० [हिं० गागर] दे० 'गगरा'। २. भंगियों की एक जाति।

गागरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गागरी] दे० 'गागरी'। उ०—ऊपर तें दधि, दूध, सीसन गागरि गन ढरें।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४।

गागरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्गर, पा० गग्गर] घड़ा। गगरी। उ०—(क) कदम तीर ते मोहिं बुलायो गढि गढि बातें बानति। मटकति गिरी गागरी सिर तें अब ऐसी बुधि ठानति।—सूर (शब्द०)। (ख) लो यह लतिका भी भर लाई, मधु मुकुल नवल रस गागरी।—लहर, पृ० १६।

गाच—संज्ञा पुं० [अं० गाज] बहुत महीन जालीदार सूती कपड़ा जिसपर रेशमी बेल बूटे बने रहते हैं। फुलवर।

गाछ—संज्ञा पुं० [सं० गच्छ] १. छोटा पेड़। पौधा। उ०—जम्यो जुगति में गाछ अनाहद धुनि सुनि मिटि जंजाल री।—भीखा० श०, पृ० ३६। २. पेड़। वृक्ष। ३. एक प्रकार का पान जो उत्तरी बंगाल में होता है।

गाछमरिच--संज्ञा स्त्री० [हिं० गाछ+मिर्च] मिर्च की जाति का एक प्रकार का वृक्ष।

गाछी - संज्ञा स्त्री० [हिं० गाछ+ई (प्रत्य०)] १. पेड़ों का कुंज। बाग। २. खजूर की नरम कोंपल जिसे लोग पेड़ कट जाने पर सुखाकर रख छोड़ते हैं और तरकारी के काम में लाते हैं। ३. बोरा जो बैल आदि पशुओं की पीठ पर बोझ लादने के लिये रखा जाता है। खुरजी।

गाज¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्ज, प्रा० गज्ज] १. गर्जन। गरज। शोर। उ०—(क) कबिरा सूता क्या करै सूतें होय अकाज, ब्रह्मा को आसन डिग्यो सुनी काल की गाज।—कबीर (शब्द०)। (ख) नंदराय के चौक में खड़े करत सब गाज। जय जय करि चिचियाइए तबै मिलत ब्रजराज।—सुकवि (शब्द०)।

यौ०—गाजा बाजा=धूम धड़क्का।

२. बिजली गिरने का शब्द। वज्रपात ध्वनि। जैसे,—गाज्यो कपि गाज ज्यों बिराज्यो ज्वाल जालयुत भाजे बीर बीर अकुलाइ उठ्यो रावनो।—तुलसी (शब्द०)। ३. बिजली। वज्र। उ०—गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—गाज पड़ना=वज्रपात होना। बिजली गिरना। उ०—मानहुँ परो स्वर्ग हुत गाजा। फाटी धरति आइ सो बाजा।—जायसी (शब्द०), किसी पर गाज पड़ना=आफत आना। ध्वंश होना। नाश होना। उ०—जो सत पूछसि गंध्रब राजा। सत पर कबहुँ परै नहिं गाजा।—जायसी (शब्द०)। (किसी बात पर) गाज पड़े=नष्ट हो। दूर हो। न रह जाय। उ०—(क) गाज परै ऐसी लाज पै जो भरि लोचन देति न मोहिं निहारन (शब्द०)। (ख) गाज परै ब्रज को बसिबो तुमहूँ, सखि, देखति हौ बरजोरी।—दूलह (शब्द०)। (किसी को कोसने या किसी बात से अनिच्छा प्रकट करने के लिये इस मुहावरे का प्रयोग स्त्रियाँ बहुत अधिक करती हैं)। गाज मारना=(१) बिजली गिरना। वज्रपात होना। (२) आफत आना। उ०—दैव कहा सुनु बउरे राजा। देवहि अगुमन मारा गाजा।—जायसी (शब्द०)।

गाज²—संज्ञा पुं० [अनु० गजगज] पानी आदि का फेन। फेन। झाग।

क्रि० प्र०—उठना। छूटना।—छोड़ना।—निकलना।—फेंकना।

गाज³—संज्ञा स्त्री० [सं० काच] काँच की चूड़ी।

गाजना—क्रि० अ० [सं० गर्जन, प्रा० गज्जन] १. शब्द करना। हुंकार करना। गरजना। चिल्लाना। उ०—(क) सैन मेघ अस दुहुं दिसि गाजा। स्वर्ग के बीज बीजु अस बाजा।—जायसी (शब्द०)। (ख) उनई आय दुहूँ गल गाजे। हिंदू तुरुक दोऊ संम बाजे।—जायसी (शब्द०)। २. हर्षित होना। खुश होना। प्रसन्न होना।

मुहा०—गलगाजना=हर्षित होना।

गाजनी(पु)—वि० स्त्री० [सं० गजन, हिं० गंजना] लज्जित करनेवाली। पराजित करनेवाली। गजनेवाली। उ०—सब ही कों मनमथ, सब तिय जानति नीके कै रस बस आनंदघन सौतिन गाजनी गाई।—घनानंद०, पृ० ५८४।

गाजर—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधे का नाम जिसकी पत्तियाँ धनिए की पत्तियों से मिलती जुलती, पर उससे बहुत बड़ी होती हैं।

विशेष—इसकी जड़ मूली की तरह, पर अधिक मोटी और कालिमा लिए भंटे की तरह गहरे लाल रंग की होती है। पीले रंग की भी गाजर होती है। यह खाने में बहुत मीठी होती है। यह गरम होती है और घोड़े को बहुत खिलाई जाती है। छोटी और नरम जड़ों को गरीब लोग और बच्चे बड़े चाव से खाते हैं। इसकी जड़ को सुखाकर उसके आटे का हलुआ बनाया जाता है जो पुष्ट माना जाता है। काछी लोग इसे अपने खेतों में कातिक अगहन में बोते हैं। इसकी तरकारी, अचार और मुरब्बे भी बनाए जाते हैं।

मुहा०—गाजर मूली समझना=तुच्छ समझना।

गाजरघोट—संज्ञा पुं० [देश०] गंजा नाम की कँटीली झाड़ी। वि० दे० 'कंजा'—१।

गाजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ग़ाजह्] मुँह पर मलने का एक रोगन। पाउडर।

क्रि० प्र०—मलना। लगाना।

गाजी—संज्ञा पुं० [अ० ग़ाजी] १. मुसलमानों में वह वीर पुरुष जो धर्म के लिये विधर्मियों से युद्ध करे। २. बहादुर। वीर। जैसे—साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा मदगल अफजलै पंजाब पटक्यो।—भूषण (शब्द०)।

गाजीमर्द—संज्ञा पुं० [अ० ग़ाजी+फा० मर्द] १ वह जो बहुत बड़ा योद्धा या वीर हो। २. घोड़ा। अश्व। (बोलचाल)।

गाजीमियाँ संज्ञा पुं० [अ० ग़ाजीमियाँ] सालार मसऊद गाजी। बाले मियाँ।

विशेष—यह महमूद गजनवी का भानजा था। हिंदुओं को काफिर समझकर उनसे लड़ने के लिये यह अवध तक बढ़ आया था, पर आरंभ ही में श्रावस्ती (सहेतमहेत) के जैन राजा सुहृददेव या सुहेलदेव के हाथ से बहराइच में मारा गया था।

गाटर[१]—संज्ञा स्त्री० [पुंहि० गटई=गला] जुआठे की वह लकड़ी जिसके इधर उधर बैल जोते जाते हैं।

गाटर[२]—संज्ञा पुं० [हिं० गाटा ?] १. दे० 'कट्टा'। २. छोटा खेत। गाटा।

गाटर[३]—संज्ञा पुं० [अं० गार्टर] लोहे की लंबी और मोटी धरन जिसे दीवारों पर डालकर छत पाटी जाती है।

गाटा—संज्ञा पुं० [हिं० कट्ठा] १. खेत का छोटा टुकड़ा। छोटा खेत। गाटर। २. पयाल दाने की बैलों की नधाई।

गाठरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गठरी] दे० 'गठरी'। उ०—कस करि बाँधी गाठरी उठ करि चालो बाद।—कबीर सा० सं०, पृ० ६१।

गाड—संज्ञा पुं० [अं० गॉड] १. देवता। २. ईश्वर। खुदा।

विशेष—जर्मन भाषा में इस शब्द का उच्चारण गॉट्ट है, जैसे—'आख मीन गॉट्ट (ओ मेरे ईश्वर)।—श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था'।

गाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त, प्रा० गड्ढ, मिलाओ अ० ग़ार] १. गड़हा। गड्ढा। उ० (क) रुधिर गाड़ भरि-भरि जमेउ ऊपर धूरि उड़ाइ। जिमि अँगार रासीन पर मृतक धूम रह छाइ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वेई गड़ि गाड़ैं परीं उपटयो हार हियै न। आन्यो मोरि मतंग मनु मानि गरेरनि मैन।—बिहारी (शब्द०)। (ग) चित चंचल जग कहत है मो मति सो ठहरै न। या ठोढ़ी की गाड़ परि थिर होइ सो निकरै न।—शृं० सत० (शब्द०)। २. पृथिवी के अंदर खोदा हुआ वह गड्ढा जिसमें अन्न रखा जाता है। ३. कोल्हाड़ में वह गड्ढा जिसमें बचा खुचा रस निचोड़ने के लिये ईख की खोई डालते हैं और ऊपर से पानी छिड़क देते हैं। इसके चारों ओर हाथ डेढ़ हाथ ऊँची दीवार होती है और अंदर से यह खूब लिपा पुता रहता है। इसके एक ओर छोटा सा छेद होता है जिसमें से होकर खोई से रस निचुड़ता है। ४. नील आदि के कारखाने में वह गड्ढा जिसमें पानी भरा रहता है। ५. कुएँ की ढाल। भगाड़। ६. वह छिछला गड्ढा जिसमें से पानी शीघ्र बह जाता है। खत्ता। ७. खेत की मेंड़। बाड़।

गाड़ना—क्रि० स० [हिं० गाड़=गढ्डा से नामिक धातु] १. पृथ्वी में गड्ढा खोदकर किसी चीज को उसमें डालकर ऊपर से मिट्टी डाल देना। जमीन के अंदर दफनाना। तोपना। जैसे,—रुपया गाड़ना, मुरदा गाड़ना। २. पृथ्वी में गड्ढा खोदकर उसमें किसी लंबी चीज के एक सिरे का कुछ भाग डालकर उसे खड़ा करना। जमाना। जैसे,—बाँस गाड़ना, लट्ठा गाड़ना, पेड़ गाड़ना। ३. किसी नुकीली चीज को नोक के बल किसी चीज पर ठोंककर जमाना। धँसाना। जैसे,—खूँटी गाड़ना, कील गाड़ना। ४. गुप्त रखना। छिपाना। जैसे,—वह जो चीज पाता है, गाड़ रखता है।

मुहा०—गाड़ गूड़ देना=दफनाना। गाड़ना। उ०—गला घोटकर कहीं गाड़गूड़ देतीं।—प्रेमघन, भा० १६१।

गाडर†—संज्ञा स्त्री० [सं० गड्डरी या गड्डरिका] १. भेड़। उ०—(क) स्वामी होनो सहज है दुर्लभ होनो दास। गाडर लाये ऊन को लागी चरन कपास।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मतिराम कहै कारबार के करैया केते गाडर से मूड़े जग हाँसी को प्रसंग मो।—मतिराम (शब्द०)। २. दे० 'गाँडर'।

गाडरू†—संज्ञा पुं० [सं० गारुडी] दे० 'गारुडी'।

गाडव—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल [को०]।

गाड़ा[१](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० गान्त्री=बैलगाड़ी] गाड़ी। छकड़ा। बैलगाड़ी। उ०—कुंडल कान कंठ माला दै ध्रुव नंद अति सुख पायो। सीधे बहुत सुरासुर नंद गाड़ा भरि पहुँचायो।—सूर (शब्द०)।

गाड़ा[२]—संज्ञा पुं० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड] १. वह गड्ढा जिसमें आगे लोग छिपकर बैठ रहते थे और शत्रु, चोर, डाकू आदि का पता लेते थे। पहले गाँवों में ऐसे गड्ढे रहा करते थे।

मुहा०—गाड़े बैठना=(१) घात में बैठाना। (२) चौकी या पहरे पर बैठना। गाड़ा बैठाना=चौकी बैठाना। पहरा बैठाना।

२. वह खत्ता या गड्ढा जो कोल्हू के नीचे रहता है और जिसमें तेल या रस जमा करने के लिये बरतन रखा रहता है।

गाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्त्री या शकट, प्रा० सगड] १. घूमनेवाले पहियों के ऊपर ठहरा हुआ लकड़ी, लोहे आदि का ढाँचा। एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल असबाब या आदमियों को पहुंचाने के लिये एक यंत्र। यान। शकट। उ०—(क) गाड़ी के स्वान की नाईं काया मोह की बड़ाई छिनहिं तजि छिन भजत बहोरि हौं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लीक-लीक गाड़ी चलै, लीकहि चलै कपूत।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—चलाना=हाँकना।

विशेष—इसे घोड़े, बैल आदि पशु खींचते हैं और आदमियों के बैठने या माल असबाब आदि रखने के लिये इसपर स्थान बना रहता है। आदमियों को चढ़ानेवाली गाड़ी को सवारी गाड़ी और माल असबाब लादने की गाड़ी को छकड़ा, सगड़ आदि कहते हैं। सवारी गाड़ी कई प्रकार की होती है; जैसे,

रथ, बहल, बहली, एक्का, टाँगा, बग्घी, जोड़ी, फिटन, टमटम आदि।

मुहा०—गाड़ी भर=बहुत सा। ढेर का ढेर। गाड़ी जोतना=गाड़ी में घोड़े जोतना। चलने के लिये गाड़ी तैयार करना। गाड़ी छूटना=गाड़ी का रवाना हो जाना।

विशेष—ऐसा प्रायः ऐसी गाड़ियों के ही संबंध में बोलते हैं जिनका संबंध सर्वसाधारण से होता है और जिनके आने जाने का समय नियत होता है। रेलगाड़ी छूटना, बस या मोटर छूटना आदि।

२. रेलगाड़ी।

मुहा०—गाड़ी काटना=(१) किसी डिब्बे का ट्रेन से अलग होना। (२) चलती गाड़ी में से माल चोरी जाना।

गाड़ीखाना—संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ी+खाना] वह स्थान जहाँ गाड़ियाँ रखी जाती हों।

गाड़ीवान—संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ी+वान (प्रत्य०)] १. गाड़ी हाँकनेवाला। २. कोचवान।

गाडूⓊ—वि० [हिं०] दे० 'गाँड'। उ०—खण यक चूप मँ रहउ गारि गाडू दे तरही।—कीर्ति०, पृ० ४२।

गाढ़[1]—वि० [सं० गाढ] १. अधिक। बहुत। अतिशय। २. दृढ़। मजबूत। उ०—अजहूँ न लक्ष्मी चंद्रगुप्तहि गाढ़ आलिगन करै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १६३। ३. घना। गाढ़ा। उ०—आसा ही के खंभ दोय गाढ़ कै धरत है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५२। ४. गहरा। अथाह। ५. विकट। कठिन। दुरूह। दुर्गम। उ०—क्षेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहुं नहिं प्रतिपच्छिन पावा।—तुलसी (शब्द०)।

गाढ़[2]—संज्ञा पुं० [सं० गाढ] १. कठिनाई। आपत्ति। संकट। उ०—(क) जहँ-जहँ गाढ़ परै संतन पर सकल काम तजि होहु सहाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) डसी मरी माई श्याम भुअंगम कारे। मोहन मुख मुसुकानि मनहुं विष जाते मरे सो मारे।..... निर्विष होत नहीं कैसेहुं करि बहुत गुणी पचि हारे। सूरश्याम गारुड़ी बिना को सो सिर गाढ़ उतारै।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—गाढ़े में पड़ना=संकट में पड़ना। आपत्तिग्रस्त होना। उ०—एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़ै, एक देखत हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।—तुलसी (शब्द०)।

२. जुलाहों का करघा।

गाढ़ा[1]—वि० [सं० गाढ़] [वि० स्त्री० गाढ़ी] १. जो पानी की तरह पतला न हो। जिसमें जल के समान बहनेवाले अंश के अतिरिक्त ठोस अंश भी मिला हो। जिसकी तरलता घनत्व लिए हो। जैसे,—गाढ़ा दूध, गाढ़ा रस, गाढ़ी स्याही, गाढ़ा शरीर।

मुहा०—गाढ़ी छनना=(१) खूब भाँग का पिया जाना। (२) गहगड्ड नशा होना।

२. जिसके सूत परस्पर खूब मिले हों। ठस। मोटा। (कपड़े आदि के लिये) जैसे,—गाढ़ी बुनावट, गाढ़ा कपड़ा। ३. घनिष्ठ। गहरा। गूढ़। जैसे,—गाढ़ी मित्रता।

मुहा०—गाढ़ी छनना=(१) गहरी मित्रता होना। अत्यंत हेल मेल होना। गूढ़ प्रेम होना। जैसे,—आजकल उन दोनों की खूब गाढ़ी छनती है। (२) घुल घुलकर बातें होना। गुप्त सलाह होना। (३) लाग डाँट होना। विरोध होना।

४. बढ़ा चढ़ा। घोर। कठिन। विकट। प्रचंड। कट्टर। दुरूह। जैसे, गाढ़ी मेहनत। उ०—द्विज देवता घरहि के बाढ़े। मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—गाढ़े की कमाई=बहुत मेहनत से कमाया हुआ धन। अत्यंत परिश्रम से उपार्जित धन। गाढ़े का साथी या संगी—संकट के समय का मित्र। विपत्ति के समय सहारा देनेवाला। उ०—दस्तगीर गाढ़े कर साथी। वह अवगाह दीन तेहि हाथी।—जायसी (शब्द०)। गाढ़े दिन=संकट के दिन। विपत्ति काल। मुसीबत का वक्त। गाढ़े में=विपत्ति के दिनों में। संकट के समय में। जैसे,—मित्र वही जो गाढ़े में काम आवे।

गाढ़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० गाढ] १. एक प्रकार का मोटा और भद्दा सूती कपड़ा जिसे जुलाहे बुनते हैं और गरीब आदमी पहनते हैं। २. मस्त हाथी।

गाढावटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतीय शतरंज का एक भेद (को०)।

गाढ़ेⓊ†—क्रि० वि० [हिं० गाढ़ा] १. दृढ़ता से। जोर से। उ०—मैं गोरस लै जात अकेली कालिह कान्ह बहियाँ गही मेरी। हार सहित अँचरा गह्यो गाढ़े एक कर गह्यो मटुकिया मेरी।—सूर (शब्द०)। २. अच्छी तरह। भली भाँति। खूब। उ०—लाडिली के कर की मेंहदी छवि जात कही नहिं शंभु जू पर। भूलिहू जाहि विलोकत ही गड़ि गाढ़े, रहे अति ही दृग दूपर।—शंभु (शब्द०)।

गाणपत[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० गाणपती] १. गणपति संबंधी। २. सेना में गण के नायक से संबद्ध।

गाणपत[2]—संज्ञा पुं० एक संप्रदाय जो गणेश की उपासना करता है।

गाणपत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणेश का उपासक। २. गणेश की उपासना। ३. सेना की टुकड़ी का नायक।

गाणिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] गणिकाओं का समूह (को०)।

गाणितिक—संज्ञा पुं० [सं०] गणित विद्या का जानकार। गणितज्ञ (को०)।

गाणेश—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का उपासक (को०)।

गात—संज्ञा पुं० [सं० गात्र, प्रा० गत्त] १. शरीर। अंग। उ०—बैठे देख कुशासन जटा मुकुट कृश गात।—तुलसी (शब्द०)। २. लज्जा का अंग। गुप्तांग। जैसे,—गात दिखाना। ३. स्तन। कुच।

मुहा०—गात उमगना=छाती उठना। कुच निकलना।

४. गर्भ।

मुहा०—गात से होना=गर्भवती होना।

गातलीन—संज्ञा स्त्री० [अं० गाटलिन] जहाज में की एक डोरी जो मस्तूल के ऊपर एक चरखी में लगी रहती है और रोगिन उठाने में काम आती है।

गातव्य—वि० [सं०] गाने योग्य । गेय [को०] ।

गाता[1]—संज्ञा पुं० [सं० गातृ > गातु, गातू (गाता)] १. गानेवाला । गवैया । उ०—जयति रन अजिर गंधर्व गन गर्वहर फेरि किय राम गुन गाथ गाता ।—तुलसी (शब्द०) । २.गंधर्व । देव गायक (को०) ।

गाता[2]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'गत्ता' ।

गातानुगतिक—वि० [सं०] दे० 'गतानुगतिक' ।

गाती—संज्ञा स्त्री० [सं० गात्री या गात्रिका] १. वह चद्दर जिसे प्राचीन काल में लोग अपने शरीर पर लपेटते थे और अब भी साधु लोग अपने गले में बाँधे रहते हैं । स्त्रियाँ बच्चों के गले में अब भी गाती बाँधती हैं । उ०— सारी सुभग काछ सब दिये । पाटंबर गाती सब दिये । एकन जाइ दूर हरि पाये । सैन देइ राधिका बुलाये ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—कसना ।—बाँधना ।—लगाना ।

मुहा०— गाती मारना=गाती बाँधना ।

२.चद्दर या अँगोछा लपेटने का एक ढंग जिसमें उसे शरीर के चारों ओर लपेटकर गले में बाँधते हैं ।

गातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोयल । २.भौंरा । ३. गंधर्व । ४. गवैया । गानेवाला । ५. गान । ६. चलनेवाला । पथिक । ७. पृथ्वी ।

गात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १.अंग । देह । शरीर । २. हाथी के अगले पैरों का ऊपरी भाग । ३. शरीर का कोई अंग या अवयव (को०) ।

गात्रक—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर [को०] ।

गात्रकर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का कृश या कमजोर होना [को०] ।

गात्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो लक्षणा या लक्ष्मणा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

गात्रभंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० गात्रभङ्गा] केवाँच । कौंच ।

गात्रमार्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगोछा । तौलिया [को०] ।

गात्ररुह—संज्ञा पुं० [सं०] बाल । रोआँ । रोम [को०] ।

गात्रयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुबला पतला शरीर । २.शरीर [को०] ।

गात्रलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गात्रयष्टि' ।

गात्रवत्—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो लक्षणा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । गात्रगुप्त ।

गात्रवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरसाधन की वह प्रणाली जिसमें सातो स्वरों में से प्रत्येक का उच्चारण तीन बार करते हैं । जैसे,— सा सा सा, रे रे रे, ग ग ग आदि ।

गात्रविंद—संज्ञा पुं० [सं० गात्रविन्द] श्रीकृष्ण के एक पुत्र जो लक्षणा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

गात्रसंकोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] साही नामक जंतु [को०] ।

विशेष—यह उछलते या छलांग मारते समय अपने शरीर को सिकोड़ लेता है ।

गात्रसमित—वि० [सं० गात्रसम्मित] तीन महीने के ऊपर का (गर्भ) । (गर्भ) जिसका शरीर बन गया हो ।

गात्रसौष्ठव—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर की सुंदरता । देह की सुघराई ।

गात्रानुलेपनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उबटन । अंगराग [को०] ।

गात्रावरण—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर ढकनेवाली वस्तु । कवच । जिरह-बख्तर [को०] ।

गाथ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गान । २.स्तोत्र ।

गाथ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० गाथा] १. यश । प्रशंसा । उ०—उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जी हाथ कै लीनो ।—केशव (शब्द०) । २ कथा । वृत्तांत । हाथ । उ०—गुरु शिष के संवाद की कहौं अब गाथ नवीन । पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचार प्रवीन ।—निश्चल (शब्द०) ।

गाथक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गाथिका] गानेवाला । गायक ।

गाथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तुति । २.वह श्लोक जिसमें स्वर का नियम न हो । ३.प्राचीन काल की एक प्रकार की ऐतिहासिक रचना जिसमें लोगों के दान, यज्ञादि का वर्णन होता था । ४. आर्या नाम का वृत्ति । ५. एक प्रकार की प्राचीन भाषा जिसमें संस्कृत के साथ कहीं कहीं पाली भाषा के विकृत शब्द भी मिले रहते हैं । ६. श्लोक । ७.गीत । ८. कथा । वृत्तांत । हाल । ९.बारह प्रकार के बौद्ध शास्त्रों में चौथा । १०. पारसियों के कारण धर्मग्रंथ का एक भेद । जैसे—गाथा अहुनवैति गाथा उष्टवैति इत्यादि ।

गाथाकार—संज्ञा पुं० [सं० गाथा + √कृ > कार (शब्द०)] १ प्राकृत की गाथा रचनेवाला व्यक्ति । २.स्तुति काव्य का रचयिता । ३. गायक । गवैया ।

गाथिक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गाथिका] दे० 'गायक' [को०] ।

गाथी—संज्ञा पुं० [सं० गाथिन्] १. सामवेद गानेवाला । २. वह व्यक्ति जो गायन से परिचित हो (को०) ।

गाद—संज्ञा संज्ञा [सं० गाध=जल के नीचे का तल] १.तरल पदार्थ के नीचे बैठी हुई गाढ़ी चीज । तलछट ।

मुहा०—गाद बैठना=(१) तलछट बैठना । (२) कीट जमना ।

२. तेल का चीकट । कीट । ३. गाढ़ी चीज । जैसे,—गोंद, राब ।

गादड़[1]†—वि० [सं० कातर या कदर्य, प्रा० कादर] कायर । डरपोक । भीरु ।

गादड़[2]—संज्ञा पुं० १. वह बैल जो मारने पर भी न चले । २. [स्त्री० गादड़ी] गीदड़ । सियार ।

गादड़[3]—संज्ञा पुं० [सं० गड्डुर] भेड़ा । मेढ़ा । मेष ।

गादर[1]†—वि० [सं० कातर या कदर्य, प्रा० कादर] १.डरपोक । भीरु । कायर । २. सुस्त । मट्ठर ।

गादर[2]†—वि० [हिं० गदराना] गदराया हुआ ।

गादर[3]—संज्ञा पुं० १. वह बैल जो जोतने पर मारने से भी आगे न बढ़े । २. [स्त्री० गादरि, गादरी] गीदड़ । उ०—तहाँ भूप देखेउ अस सपना । पकरेउ पैर गादरी अपना । भूप छुड़ायो चाहत निज पग । तजत न गादरि पकरि जो पग रग ।—निश्चल (शब्द०) ।

गादह्(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गर्दभ, प्रा० गद्दभ, गद्दह] दे० 'गदहा'। उ०—नह कन्हइ घोड़उ हुवइ गादह दीजइ दग्ग।—ढोला०, दू० ३३३।

गादा—संज्ञा पुं० [सं० गाधा=दलदल] १. खेत का वह अन्न जो अच्छी तरह न पका हो। अधपका अन्न। गद्दर। जैसे,—मटर का गादा, बाजरे का गादा। २. बे पकी फसल। कच्ची फसल। ३. महुए का फूल जो पेड़ से टपका हो। उ०—गुर गोरस महुआ कर गादा। एनहूँ कौ मुँह धोई दादा।—लोकोक्ति। ४. हरा महुआ।

गादी—संज्ञा स्त्री० [हि० गद्दी] १. एक पकवान का नाम। यह एक छोटी टिकिया होती है जिसमें इलायची, चिरौंजी और गरी मिलाकर पूर भरा रहता है। २. दे० 'गद्दी'। उ०—गह धरती रिणमल जिण गादी। विग्रहिया खागे समवादी।—रा० रू०, पृ० १४।

गादुर—संज्ञा पुं० [सं० कातर, प्रा० कादर=डरपोक] चमगादर। उ०—पानी रहे मच्छ औ दादुर, टाँगे रहे बने मँह गादुर।—सं० दरिया, पृ० ६।

गाध¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थान। जगह। २. जल के नीचे का स्थल। थाह। ३ नदी का बहाव। फूल। ४.लोभ। लिप्सा।

गाध²—वि० [वि० स्त्री० गाधा] १.जिसे हलकर पार कर सकें। जो बहुत गहरा न हो। छिछला। पायाब। २. थोड़ा। स्वल्प। जैसे,- तो गति अगाध सिंधु, गाल मति मेरी वह असाधुता को राधे अपराध सिंधु क्षमा कीजिये। देव (शब्द०)।

गाधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री स्वरूपा महादेवी।

गाधि—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के पिता का नाम।

विशेष- ये कुशिक राजा के पुत्र थे। हरिवंश में लिखा है कि कुशिक ने इंद्र के समान पुत्र प्राप्त करने के लिये तपस्या की तब इंद्र के अंश से विश्वामित्र उत्पन्न हुए।

यौ०—गाधिनगर। गाधिपुर। गाधिनंदन। गाधितनय। गाधिपुत्र। गाधिसुअन।

गाधिपुर—संज्ञा पुं० [सं०] कान्यकुब्ज। कन्नौज।

गाधेय—संज्ञा पुं० [सं०]विश्वामित्र।

गाधेया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाधि की कन्या सत्यवती जो भार्गवपुत्र ऋचीक की पत्नी थी।

गान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गेय, गेतव्य] १. गाने की क्रिया। संगीत। गाना।

यौ०—गानविद्या=संगीत कला।

२. गाने की चीज। गीत। ३. ध्वनि। आवाज। शब्द (को०)। ४.स्तवन। प्रशंसन। बखान (को०)। ५. गमन। चलना (को०)।

गानना(पु)—क्रि० स० [सं० गान] गाना। गान करना। उ०—संकर सीकै जानत सारद नारद गानत। तातें बनै जगतगुरु गोविंद गुन करि मानत।—नंद० ग्रं०, पृ० ४१।

गाना¹—क्रि० स० [सं० गान] १. ताल, स्वर के नियम के अनुसार शब्द उच्चारण करना। आलाप के साथ ध्वनि निकालना। जैसे,—गीत गाना, मलार गाना। २. मधुर ध्वनि करना। जैसे,—तूती का गाना, कोयल का गाना। ३. वर्णन करना। विस्तार के साथ कहना। उ०—द्विजदेव जू देखि अनोखी प्रभा चलि चारन कीरति गायो करैं। चिरजीवो वसंत सदा द्विजदेव प्रसूनन की झरि लायो करैं।—द्विजदेव (शब्द०)।

मुहा०—अपनी अपनी गाना=अपनी अपनी बात सुनाना। अपना दुखड़ा रोना। अपनी ही गाना=अपनी ही बात कहते जाना। अपना ही हाल कहना। अपना ही विचार प्रकट करना। अपने ही मतलब की बात करना। जैसे, तुम तो अपनी ही गाते हो, दूसरे की सुनते नहीं।

४. स्तुति करना। प्रशंसा करना। बखान करना। जैसे,—(क) सब लोग उसका गुन गाते हैं। (ख) वह जिससे पाता है, उसकी गाता है। उ०—(क) गाइये गणपति जगवंदन।—तुलसी (शब्द०)। (ख) द्विजदेव जू देखि अनोखी प्रभा अलि चारन कीरति गायो करैं।—द्विजदेव (शब्द०)।

मुहा०—गाना बजाना=आमोद प्रमोद करना। उत्सव मनाना। जैसे,—सब लोग गाते बजाते अपने घर गए।

गाना²—संज्ञा पुं० १. गाने की क्रिया। गान। २. गाने की चीज। गीत। जैसे,—कोई अच्छा गाना सुनाओ।

गानिनी, गानिली—संज्ञा स्त्री० [सं०] वच।

गानी—वि० [सं० गानिन्] १. गानेवाला। जानेवाला (को०)।

गाफल—वि० [अ० ग़ाफ़िल] दे० 'गाफिल'। उ०—अकबर साह गाफल गुमान सूँ भाख्यो। तहवर खाँन हाथ सब राजबोझ धारयो।—रा० रू०, पृ० १०१।

ग़ाफ़िल—वि० [अ० ग़ाफ़िल] [संज्ञा ग़फ़लत] १. बेसुध। बेख़बर। २. असावधान। बेपरवाह।

गाव—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़।

विशेष—इसके फल से एक प्रकार का चिपचिपा रस निकलता है जो नाव के पेंदे में लगाया जाता है और जाल में माँझा देने के काम में आता है।

गावर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गज+वर, प्रा० गय+वर] दे० 'गैंवर'। उ०—उपट्टे घटें गावरं तुंड तुट्टे।—पृ० रा०, १।४५४।

गावलीन—संज्ञा स्त्री० [अं० केबुल+लेड] एक औजार जिससे जहाज पर पाल चढ़ाया जाता है। सिंजालपारी।

विशेष—इसमें चरख पर चढ़ी हुई एक मोटी रस्सी होती है, जो झटके से ऊपर चढ़ती है।

गाभ—संज्ञा पुं० [सं० गर्भ, पा० गब्भ] १.पशुओं का गर्भ।

मुहा०—गाभ डालना=(१) गर्भ गिराना। गर्भ फेंकना। बच्चा डालना। (२) अत्यंत भयभीत होना।

२. दे० 'गाभा'। ३. बरतन का साँचा जिसपर गोबरी की तह न चढ़ाई गई हो। ४. वृक्ष, पेड़ आदि का हीर। उ०—(क) चंदन गाभ की भुजा सँवारी। जनों सो बेल कमल पौनारी।—जायसी (शब्द०)। (ख) आय जुरी भौंरन की पाँती। चंदन गाभ बास की माँती।—जायसी (शब्द०)।

गाभा—संज्ञा पुं० [सं० गर्भ, प्रा० गब्भ] [वि० गाभिन] १. नया निकलता हुआ मुँहबंधा पत्ता जो नरम और हलके रंग का होता है। नया कल्ला। कोंपल। उ०—ऐपन की ओप इंदु कुंदन की आभा चंपा केतकी की गाभा जीत जोतिन सों जटियत।—देव (शब्द०)। २.केले आदि के डंठल के अंदर का भाग। पेड़ के बीच का हीर। ३. लिहाफ, रजाई आदि के अंदर की निकाली हुई पुरानी रूई। गुद्दड़। भरतवालों के साँचे के अंदर का भाग। ५.कच्चा अनाज। खड़ी खेती।

गाभिन—वि० स्त्री० [सं० गर्भिणी, प्रा० गब्भिणि] दे० 'गाभिनी'।

गाभिनी—वि० स्त्री० [सं० गर्भिणी, प्रा० गब्भिणी] जिसके पेट में बच्चा हो। गर्भिणी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग चौपायों के लिये अधिक होता है, मनुष्यों के लिये कम।

गाम¹—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम, पा० गाम] गाँव। उ०—गाम तो है नंद गाम तहाँ की हौं प्यारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६६।

गाम²—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पग। कदम। डग।

गामचा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़े के पैर का वह भाग जो सुम और टखने के बीच में होता है। यह चार अंगुल के लगभग होता है।

गामजन—वि० [फ़ा०] चलनेवाला। गमन करनेवाला [को०]।

गामत—संज्ञा स्त्री० [सं० गमन] निकास।—(जहाज)।

मुहा०—गामत होना=पानी का टपकना या रसना।

गामभोजक संज्ञा पुं० [पा० गाम+सं० भोजक] ग्रामणी। मुखिया।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २६३।

गामरू(पु)—वि० [हिं०] गमन करनेवाला। उ०—मन्द नितंब पर गामरू तरफरात परि लंक। वर वेनी नागिनि हन्यो खर बीछी को डंक।—स० सप्तक; पृ० २३६।

गामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव।

विशेष—यह नाव ९६ हाथ लंबी, १२ हाथ चौड़ी और ९ हाथ ऊँची होती थी और समुद्रों में चलती थी। ऐसी नाव पर यात्रा करना अशुभ और दुःखदायी समझा जाता था।

गामिय(पु)—वि० [सं० ग्रामिक, प्रा० गामिय] 'गामी'। उ०—बुल्यो वर गामिय गुज्ज गवार। कहै सुरतानप सेन उवार।—पृ० रा०, १२। १३९।

गामी¹—वि० [सं० ग्रामिन्] [वि० स्त्री० गामिनी] १. चलनेवाला। चालवाला। जैसे,—गजगामिनी, हंसगामी, रथगामी। उ०—कठिन भूमि कोमल पद गामी। कौन हेतु वन विचरहु स्वामी।—तुलसी (शब्द०)। २. गमन करनेवाला। संभोग करनेवाला। रमण करनेवाला। जैसे,—परस्त्रीगामी, वेश्या-गामी इत्यादि।

गामी²(पु)—वि० [सं० ग्रामिन्] १.ग्राम का निवासी। २. गँवार। मूर्ख। उ०—गामी गवार मेवात पति राजराज सह्यो मिरै।—पृ० रा०, १५। २१।

गामुक—वि० [सं०] जानेवाला।

गायंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गायन्तिका] हिमालय पर का एक स्थान जिसका उल्लेख महाभारत के उद्योग पर्व में है।

गाय संज्ञा स्त्री० [सं० गो] १. सींगवाला एक मादा चौपाया जिसके नर को साँड़ या बैल कहते हैं।

विशेष—गाय बहुत प्राचीन काल से दूध के लिये पाली जाती है। भारतवासियों को यह अत्यंत प्रिय और उपयोगी है। इसके दूध और घी से अनेक प्रकार की खाने की चीजें बनाई जाती हैं। गाय बहुत सीधी होती है; बच्चा भी उसके पास जाय, तो नहीं बोलती।

मुहा०—गाय की तरह काँपना=(१) बहुत डरना। (२) थर थर काँपना। थर्राना। गाय का बछिया तले और बछिया का गाय तले करना=(१) हेरा फेरी करना। इधर उधर करना। (२) काम निकालने के लिये कुछ का कुछ प्रकट करना।

२.बहुत सीधा सादा मनुष्य। दीन मनुष्य। जैसे,—वह बेचारा तो गाय है; किसी से नहीं बोलता।

गायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायकी] गानेवाला गवैया।

गायकवाड़—संज्ञा पुं० [मरा० गायकवाड] बड़ौदा के महाराजाओं की उपाधि। बड़ौदा नरेशों की उपाधि।

गायकी—संज्ञा स्त्री० [सं० गायक] १. गाने की क्रिया या भाव। गाने का तौर तरीका। २.गाने का काम। ३. दे० 'गायिका'।

गायगोठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाय+गोठ] गायों के रहनेवाला बाड़ा। गोशाला।

गायण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गायन, प्रा० गायण] दे० 'गायन'।

गायणी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गायन, प्रा० गायण+हिं० ई (प्रत्य०)] गाने का धंधा करनेवाली स्त्री। उ०—गहकैं गायणी जी गावैं धवल मंगल गीत।—र० रू०, पृ० ७१।

गायत—वि० [अ० ग़ायत] बहुत अधिक। हद से ज्यादा। अत्यंत। जैसे,—वह गायत दरजे का पाजी है।

गायत—संज्ञा स्त्री० १. उद्देश्य। मतलब। सबब। २. अंत। सीमा। छोर। किनारा [को०]।

गायताल¹—संज्ञा पुं० [हिं० गाय+तल] १. बैलों में निकृष्ट। निकम्मा चौपाया। २. निकम्मी और रद्दी चीज। गई गुजरी चीज।

गायताल²—वि० निकम्मा। रद्दी।

यौ०—गायताल खाता या गैतल खाता=गई बीती रकम का लेखा। बट्टा खाता।

मुहा०—गायताल लिखना=बट्टे खाते डालना। गया गुजरा समझना। जैसे,—टूटे मणि मानै निर्गुण गायताल लिखै पोथिन ही अंक मन कलह विचारहीं।—गुमान (शब्द०)। गायताल खाते लिखना या डालना=बट्टे खाते में डालना। गया गुजरा समझना। गायताल खाते में जाना=बट्टे खाते में जाना। हजम होना। हड़प होना। गया गुजरा होना। जैसे,—इतना रुपया जो हमने तुम्हें दिया, सब गायताल खाते में गया।

गायत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायत्री] गायत्री छंद ।

गायत्री[1]—संज्ञा पुं० [सं० गायत्रिन्] [स्त्री० गायत्रिणी] १. खैर का पेड़ । २. उद्गाता । साम का गायक ।

गायत्री[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वैदिक छंद का नाम ।

विशेष—यह छंद तीन चरणों का होता है और प्रत्येक चरण में आठ-आठ अक्षर होते हैं। इसके आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची और ब्राह्मी आठ भेद हैं, जिनमें क्रमशः २४, १, १५, ८, ६, १२, १८ और ३६ वर्ण होते हैं। प्रत्येक भेद के पिपीलिका, मध्या, निचृत्, यवमध्या भूरिक, विराट और स्वराट आदि अनेक भेद होते हैं।

२. एक पवित्र मंत्र का नाम जिसे सावित्री भी कहते हैं।

विशेष—हिंदूधर्म में यह मंत्र बड़े महत्व का माना जाता है। द्विजों में यज्ञोपवीत के समय वेदारंभ संस्कार करते हुए आचार्य इस मंत्र का उपदेश ब्रह्मचारी को करता है। इस मंत्र का देवता सविता और ऋषि विश्वामित्र हैं। मनु का कथन है कि प्रजापति ने अकार उकार और मकार वर्णों, भूः, भुवः और स्वः तीन व्याहृतियों तथा सावित्री मंत्र के तीनों पादों को ऋक्, यजुः और सामवेद से यथाक्रम निकाला है। इस सावित्री मंत्र के भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न अर्थ किए हैं और ब्राह्मणों, उपनिषदों से लेकर पुराणों और तंत्रों तक में इसके महत्व का वर्णन है। सावित्री मंत्र यह है—तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

३. खैर। ४. दुर्गा। ५. गंगा। ६. छह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति। इसके तनुमध्या, शशिवदना आदि अनेक भेद हैं।

गायन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायनी] १. गानेवाला। गवैया। गायक। २. गाने का व्यवसाय करनेवाला।

विशेष—मनु ने गायन के अन्नभक्षण का निषेध किया है।

३. गान। गाना। ४. कार्तिकेय।

गायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाने का धंधा करनेवाली स्त्री।

गायब[1]—वि० [अ० गायब] लुप्त। अंतर्धान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—गायब गुल्ला=ऐसा लुप्त कि फिर पता न लगे।

मुहा०—गायब करना=चुरा लेना। उड़ा लेना। जैसे,—वह देखते ही देखते चीज गायब कर लेता है। गायब होना=चोरी जाना।

गायब[2]—संज्ञा पुं० [अ०] शतरंज खेलने का एक प्रकार।

विशेष—इसमें शतरंज की बिसात से परोक्ष में बैठकर खेलते हैं। इस खेल में बिसात या तो किसी कोठरी में अथवा अन्यत्र आड़ में बिछी रहती है अथवा खेलाड़ी बिसात की ओर पीठ करके बैठते हैं और दूसरे आदमी उनके आज्ञानुसार मुहरों को चलते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

गाय बगला—संज्ञा पुं० [हिं० गाय+बगला] एक प्रकार का बगला।

विशेष—यह धान के खेतों में होता है। यह पशुओं के झुंड के साथ रहता है और उनके कीड़ों को खाता है। इसे सुरखिया बगला भी कहते हैं।

गायबानह—क्रि० वि० [अ० गायबानह्] १. गुप्त रीति से। २. पीठ पीछे। अनुपस्थिति में।

गायरोन†—संज्ञा पुं० [सं० गोरोचन] गोरोचन।

गायिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गानेवाली स्त्री। २. एक मात्रिक छंद।

विशेष—इसके पादों में क्रमशः १२+१८ और १२+२० मात्राएँ होती हैं और प्रत्येक चरण के अंत में गुरु तथा बीस बीस मात्राओं के पीछे एक जगण होता है। बीस मात्राओं के पीछे यदि चार लघु आ जायें, तो भी दोष नहीं माना जाता। जैसे,—आदौ बारा मत्ता दूजे ह्वै नौ सजाय मोद लहो। तीजे भानू कीजै चौथे बीसे जु गायिनी सुकवि कहो।

गारंटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] प्रतीति। विश्वास। वचन। आश्वासन। उ०—इस बात की गारंटी मुझसे लो।—संन्यासी, पृ० २६२।

गार[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाली] गाली। उ०—बिन औसर न सुहाय तन चंदन लीपे गार। औसर की नीकी लगै गीता सौ सौ गार।—रसनिधि (शब्द०)।

गार[2]—संज्ञा पुं० [अ० गार] १. गहरा गड्ढा। गर्त। खड्ड। २. गुफा। कंदरा।

गार[3]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आगार] दे० 'आगार'। उ०—दार गार सुत पति इनकार (कहो) कवन आहि सुख।—नंद० ग्रं०, पृ० ४२।

गार[4]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० गारा] दे० 'गारा'। उ०—कंठी माला काठ की तिलक गार का होय।—कबीर० बानी, पृ० ३५।

गार[5]—प्रत्य० [फ़ा०] करनेवाला। जैसे,—खिदमतगार।

गारड†—संज्ञा पुं० [अं० गार्ड] दे० 'गार्ड'। उ०—इच्छा कर्म संजोगी इन्जिन गारड आप अकेला है।—श्यामा०, पृ० ११४।

गारड़—संज्ञा पुं० [सं० गारुडी] दे० 'गारुडी'। उ०—तुम्ह गारड़ू मैं विष का माना। काहे न जिवावो मेरे अमृत दाता।—कबीर ग्रं०, पृ० ११४।

गारत—वि० [अ० गारत] नष्ट। बरबाद। मटियामेट। ध्वस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गारत्तⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गर्त] दे० 'गर्त'। उ०—प्रविस कियो गारत्त गिरि, जय जय बचन सरीर हुआ।—पृ० रा०, १। १९८।

गारद—संज्ञा स्त्री० [अं० गार्ड] १. सिपाहियों का झुंड जो एक अफसर के मातहत हो। २. सिपाहियों का झुंड जो किसी व्यक्ति या वस्तु की रक्षा के लिये अथवा किसी असामी को भागने से रोकने के लिये नियत हो। पहरा। चौकी। उ०—जब अँधेरा हुआ, तब हम लोगों की निगरानी के लिये जो गारद थी; वह बदल कर दी गई।—द्विवेदी (शब्द०)।

मुहा०—गारद बैठना=पहरा बैठना। हिफाजत या निगरानी के लिये सिपाही नियत होना। गारदबैठाना=पहरा बैठाना। चौकी बैठाना। हिफाजत या निगरानी के लिये सिपाही नियत करना। गारद में करना=पहरे में करना। हवालात में बंद करना। हाजत में करना। गारद में डालना या छोड़ना=

हवालात में देना। हाजत में करना। पहरे में करना। **गारद में देना**=हवालात में बंद करना। **गारद में रखना**=पहरे में रखना। हवालात में रखना। नजरबंद रखना।

गारना¹—क्रि० स० [सं० गालन=निचोड़ना] १. दवाकर पानी या रस निकालना। निचोड़ना। उ०—गीले कपड़े उसने देह से उतारे, उनको भली भाँति गारा, देह को पोंछा; पीछे उन्हीं कपड़ों को पहन लिया।—अयोध्या (शब्द०)। २. (दूध) दूहना। जैसे, गाय गारना। ३. पानी के साथ घिसना जिसमें उसका अंश पानी में मिले। जैसे,—चंदन गारना। उ०—बिन औसर न सुहाय तन चंदन लीपैं गार। औसर की नीकी लगै मीता सौ सौ गार।—रसनिधि (शब्द०)। ⓤ ४. निकालना। त्यागना। दूर करना। उ०—मार दई अरविंदन की तऊ मानत नाहिं न औगुन गारे। गारी दई पछितानि भरी अब लाज गहो कछु नंददुलारे।—(शब्द०)।

गारना²ⓤ—क्रि० स० [सं० गल] १. गलाना। घुलाना।

मुहा०—**तन या शरीर गारना**=शरीर गलाना। शरीर को कष्ट देना। तप करना। उ०—ब्रज युवतिन मन हरचो कन्हाई।—रास रंग रस मन रुचि आन्यो निसि बन नारि बुलाई। तब तन गारि बहुत श्रम कीन्हों सो फल पूरन दैन। वेनुनाद रस विवस कराई सुनि धुनि कीनो गौन।—सूर (शब्द०)।

१. नष्ट करना। बरबाद करना। खोना। उ०—आछो गात अकारथ गारचो। करी न भक्ति श्यामसुंदर सों जन्म हुआ ज्यों हारचो।—सूर (शब्द०)।

गारभेली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का जंगली फालसा।

विशेष—इसका पेड़ बहुत छोटा होता है और यह उत्तर और पूर्व भारत तथा हिमालय की तराई में चार हजार फीट की ऊँचाई तक होता है। इसकी छाल भूरे हरे रंग की होती है और इसकी डालियों के रेशे से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। यह कातिक, अगहन में फूलता और पूस से वैसाख तक फलता है। फल देहातियों के खाने के काम आता है।

गारहस्थⓤ—संज्ञा पुं० [सं० गार्हस्थ्य] गार्हस्थ्य। गृहस्थी। उ०—केचित् गारहस्थ बहु भाँती। पुत्र कलत्र बँधे दिन राती।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ८६।

गारा¹—संज्ञा पुं० [हिं० गारना] मिट्टी अथवा चूने, सुर्खी आदि को पानी में सानकर बनाया हुआ लसदार लेप जिससे ईंटों की जोड़ाई होती है।

यौ०—**चूने गारे का काम**=पलस्तर का काम। गच का काम।

गारा²—संज्ञा पुं० [देश०] संकीर्ण जाति का एक राग जो दोपहर को गाया जाता है।

गारा³—संज्ञा पुं० [देश०] वह नीची भूमि जिसमें पानी बहुत दिन न टिके।

गारा कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [देश] संपूर्ण जाति का एक राग जो संध्या के उपरांत गाया जाता है।

गारिⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] दे० 'गालि'। उ०—दीपक जोर लै चली बाट मैं, छबि सों बड़ो करि देति गारि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५३।

गारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य। चावल। [को०]।

गारियⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] दे० 'गाली'। उ०—गारिय सुदीन उग्गार हृदय, विरच्यो सु वाहि पत्थर समथ्थ।—पृ० रासो, पृ० ४०।

गारीⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] १. गाली। दुर्वचन। उ०—नारी गारी बिनु नहिं बोले पूत करै कलकानी। घर में आदर कादर को सों खीझत रैन बिहानी।—सूर (शब्द०)। २०. कलंक-जनक आरोप। चरित्र संबंधी लांछन।

मुहा०—**गारी आना, पड़ना, लगना**=कलंक लगना। लांछन लगना। दाग लगना। बदनामी होना। उ०—लोचन लालच भारी। इनके लए लाज या तन की सबै श्याम सों हारी। बरजत मात पिता पति बांधव अरु आवै कुल गारी। तदपि रहत न नंदनंदन बिनु कठिन प्रकृति हठ धारी।—सूर (शब्द०)। **गारी देना**=दे० 'गारी बकना'। उ०—चंगुल चेहरा खइलन खेत। बुलबुल अइलन गारी देत। ए बुलबुल तू काहें गारी देलऽ अपने खेत क भूसी लऽ हमरी मजूरी दऽ (बच्चों के गीत)। **गारी बकना**=अपशब्द, अश्लील शब्द कहना। लांछित करना। **गारी लगाना**=कलंकित करना। दाग लगाना। वि० दे० 'गाली'।

३. एक गीत जो विवाह आदि में स्त्रियाँ भोजन के समय गाती हैं। उ०—जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**गाना**।—**देना**।

गारुड़¹—संज्ञा पुं० [सं० गारुड] १. जिस मंत्र का देवता गरुड़ हो। साँप के विष उतारने का मंत्र। उ०—आवति लहरि विरहा की को हरि वेगि हकारै। सूरदास गिरिधर जो आवहि हम सिर गारुड़ डारैं।—सूर (शब्द०)। २. सेना की एक व्यूहरचना जिसमें सेना को गरुड़ के आकार की बनाते हैं। इसे गरुडव्यूह भी कहते हैं। ३. मरकट। मणि। पन्ना। ४. सुवर्ण। सोना। ५. एक अस्त्र का नाम। गारुत्मक। ६. गरुड़ पुराण।

गारुड़²—वि० [वि० स्त्री० गारुडी] गरुड़ संबंधी। गरुड़ का।

गारुड़ि—संज्ञा पुं० [सं० गारुडि] १. संगीत शास्त्र में आठ प्रकार के तालों में से एक। २. गारुड़ी। उ०—तव सरूप गारुड़ि रघुनायक मोहि जिआएउ जन सुख दायक।—मानस, ६।६३।

गारुड़िक—संज्ञा पुं० [सं० गारुडिक] १. साँप का विष झाड़नेवाला। गारुड़ी। २. मंत्र से साँप पकड़नेवाला। सँपेरा।

गारुड़ी—संज्ञा पुं० [सं० गारुडिन] मंत्र से साँप का विष उतारने-वाला। साँप झाड़नेवाला। उ०—(क) चले सब गारुड़ी पछिताइ। नेकहू नहिं मंत्र लागत समुझि काहु न जाइ।—सूर (शब्द०)। (ख) डसी री माई श्याम भुअगम कारे। आनहु वेगि गारुड़ी गोविंद जो यहि विषहिं उतारैं।—सूर (शब्द०)। २. साँप पकड़नेवाला। सँपेरा।

गारुत्मत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरकत। पन्ना। २. गरुड़ जी का अस्त्र। गारुड़।

गारुत्मत²—वि० गरुड़ संबंधी या गरुड़ का।

गारुरि†, गारुरी†—संज्ञा पुं० [सं० गारुडि] दे० 'गारुड़ि'। उ०—कच विषधर सरवर डसा, मूरि न गारुरि संग। नख सिख सेतीं लहरि जनु, बिथुरि गई सब अंग।—चित्रा०, पृ० ४७। (ख) जाँवत गुनी गारुरी आए। ओझा बैद सयान बोलाए।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २००।

गारो¹—संज्ञा पुं० [सं० गर्व] १. गर्व। घमंड। अहंकार। अभिमान। उ०—देखत बल दूरि करयो मेघनाद गारो। आपुनि भयो सकुचि सूर बंधन ते न्यारो।—सूर (शब्द०)। (ख) सुनि खग कहत अंब औंगी रहि समुझि प्रेम पथ न्यारो। गए ते प्रभु पहुँचाई फिरे पुनि करत करम गुन गारो।—तुलसी (शब्द०) २. मान। प्रतिष्ठा। उ०—जो मेरे लाल खिझावै। सो अपनो कियो फल पावै। तोहि दैहौं देस निकारो। ताको ब्रज नाहिन गारो।—सूर (शब्द०)। ३. गृह। निवास। घर।

गारो²—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक पहाड़ी का नाम जो आसाम के दक्षिण पश्चिम में है। २. एक जंगली जाति जो गारो पहाड़ी में रहती है।

गारौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गौरव या सं० गुरु] गौरव। गुरुता। उ०—जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ औ गर्व।—जायसी ग्रं०, पृ० १५२।

गार्ग¹—वि० [सं०] १. गर्ग संबंधी। २. गर्ग द्वारा निर्मित, या कथित।

गार्ग²—संज्ञा पुं० संगीत में एक ताल [को०]।

गार्गि—संज्ञा पुं० [सं०] गर्ग मुनि का सूत्र [को०]।

गार्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्ग गोत्र में उत्पन्न एक प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी स्त्री। इसकी कथा बृहदारण्यक उपनिषद् में है। गार्गी वाचक्नवी। २. दुर्गा। ३. याज्ञवल्क्य ऋषि की एक स्त्री का नाम।

गार्गीय—वि० [सं०] १. गर्ग का रचा हुआ। २. गर्ग संबंधी [को०]।

गार्गेय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गार्गेयी] १. गर्ग गोत्र का पुरुष। २. गर्ग रचित ग्रंथ [को०]।

गार्ग्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गार्गी] १. गर्ग गोत्र में उत्पन्न पुरुष। २. एक प्राचीन वैयाकरण जिनके मत का उल्लेख यास्क और पाणिनि ने किया है। निरुक्त टीकाकार दुर्गासिंह के अनुसार सामवेद के पदपाठ की रचना इन्हीं ने की थी। इनकी बनाई एक स्मृति भी है।

गार्जर—संज्ञा पुं० [सं०] गाजर [को०]।

गार्जियन—संज्ञा पुं० [अं०] देखभाल करनेवाला व्यक्ति। संरक्षक। अभिभावक। उ०—मेरे गार्जियन की हैसियत से इस प्रकार की सूचना प्राप्त करने के संबंध में उनकी उत्सुकता स्वाभाविक है।—पर्दे०, पृ० ६४।

गार्ड—संज्ञा पुं० [अं०] १. पहरा देनेवाला। मनुष्य। रक्षक।

यौ०—बाडीगार्ड।

२. रेल का वह प्रधान उत्तरदाता कर्मचारी जो ट्रेन की रक्षा के लिये पीछे ब्रेक में रहा करता है। इसके आज्ञानुसार इंजन का ड्राइवर गाड़ी रोकता और चलाता है। ३. निगरानी रखनेवाला मनुष्य। निरीक्षक। जैसे, इमतिहान का गार्ड।

गार्डेन—संज्ञा पुं० [अं०] बाग। बगीचा।

यौ०—कंपनी गार्डेन। गार्डेन पार्टी। गार्डेन सिटी। गार्डेन सुपरिटेंडेंट। गार्डेन हाउस।

गार्डेन पार्टी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह भोज जो नगर के बाहर किसी बाग बगीचे में दिया जाय।

गार्दभ—वि० [सं०] गर्दभ संबंधी। गदहे का [को०]।

गार्द्ध्य—संज्ञा पुं० [सं०] तृष्णा। लोभ। लालच [को०]।

गार्ध्र¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० गार्ध्री] गृध्र संबंधी [को०]।

गार्ध्र²—संज्ञा पुं० [सं०] १. लालच। लोभ। २. तीर। बाण। [को०]।

यौ०—गार्ध्रपक्ष, गार्ध्रवासा=वह बाण जिसमें गिद्ध के पंख लगे हों।

गार्भ—वि० [सं०] १. गर्भ संबंधी। गर्भ का। २. गर्भ से उत्पन्न। गर्भज। ३. गर्भ के लिये हितकर [को०]।

गार्ह—वि० [सं०] १. गृह अथवा गृहपति के लिये उचित। २. गृह संबंधी [को०]।

गार्हपत¹—वि० [सं०] गृहपति संबंधी [को०]।

गार्हपत²—संज्ञा पुं० [सं०] गृहपति होने की स्थिति या भाव। गृहपतित्व [को०]।

गार्हपत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'गार्हपत्याग्नि'। २. गार्हपत्य अग्नि के रखने का स्थान। ३. साग्निक गृहस्थ [को०]।

गार्हपत्याग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं० गार्हपत्य+अग्नि] छह प्रकार की अग्नियों में से पहली और प्रधान अग्नि।

विशेष—परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी इस अग्नि को रखने का विधान है। यज्ञों में पात्रतपन आदि कर्म इसी अग्नि में किए जाते थे। श्रौतसूत्र के अनुसार अग्निहोत्र ग्रहण करने वाले के लिये इस अग्नि का रखना अत्यंतावश्यक है। साधारण भोजन पकाने से लेकर संस्कार तक सभी कृत्य इसी अग्नि में किए जाते हैं। शास्त्रानुसार प्रत्येक गृहस्थ को इस अग्नि की रक्षा करनी चाहिए।

गार्हमेध—संज्ञा पुं० [सं०] पंचयज्ञ आदि गृहस्थों के कर्तव्य कर्म।

गार्हस्थिक—वि० [सं० गार्हस्थ] गृहस्थ जीवन संबंधी।

विशेष—यह शब्द संस्कृत व्याकरण से असाधु है पर हिंदी में इस शब्द का प्रयोग प्रचलित है।

गार्हस्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृहस्थाश्रम। २. गृहस्थ के मुख्य कृत्य। पंच महायज्ञ।

गार्हस्थ्य विज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० गार्हस्थ्य+विज्ञान] वह विज्ञान जिसमें गृह संबंधी बातों का विवरण रहता है। जैसे,—घर की व्यवस्था, भोजन आदि की तैयारी की पूरी जानकारी; बच्चों का पालन पोषण आदि।

गाल¹—संज्ञा पुं० [सं० गल्ल] १. मुँह के दोनों ओर ठुड्डी और कनपटी के बीच का कोमल भाग जो आँखों के नीचे होता है। गंड। कपोल। जैसे,—लाल गुलाल सो लीनी मुठी भरि बाल के गाल की ओर चलाई।—देव (शब्द०)।

मुहा०—गाल फुलाना=(१) गर्वसूचक आकृति बनाना। अभिमान प्रकट करना। जैसे,—सो भलु मनु न खाब हम

भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई।—तुलसी (शब्द०)। (२) रूठकर न बोलना। रूठना। रिसाना। उ०—दोउ एक संग न होइ भुआलू। हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।—तुलसी (शब्द०)। **गाल बजाना**=(१) डींग मारना। बढ़ बढ़कर बातें करना। उ०—(क) वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदकन कि भूख बुझाई—तुलसी (शब्द०)। (ख) बलवान हैं स्वान गली अपनी तोहि लाज न गाल बजावत सोहै।—तुलसी (शब्द०)।—(२) व्यर्थ बकवाद करना। मिथ्या प्रलाप करना। उ०—कबीर वर्णहि फेरि के अवरण भई छिनार। बैठी आपु अतीत ह्वै किये अनंत भतार। कबीर बठी शेष ह्वै बिना रूप की राँड़। गाल बजावैं नेति कहि कियो भतारहि भाँड़।—कबीर (शब्द०)। **गाल में जाना**=मुँह में पड़ना। काल के गाल में जाना=मृत्यु के मुख में पड़ना। मरना। **गाल में भरना**=खाने के लिये मुँह में रखना। **गाल करना**=(१) डींग हाँकना। बढ़ बढ़कर बातें करना। सीटना। उ०—मूढ़ मृषा जनि मारसि गाला। राम बैर होइहै अस हाला—तुलसी (शब्द०) (२) व्यर्थ बकवाद करना। बड़बड़ाना। मिथ्या कल्पना। उ०—क्यों न मारे गाल बैठो काल डाढ़न बीच।—तुलसी (शब्द०)।

२. बड़बड़ाने का स्वभाव। बकवाद करने की लत। मुँहजोरी। उ०—हँस कह रानि गाल बड़ तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**गाल करना**=(१) बोलने में शंका संकोच न करना। मुँहजोरी करना। मुँह से अंडबंड निकालना। उ०—कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गालु करब केहि कर बल पाई।—तुलसी (शब्द०)। (२) बढ़ बढ़कर बातें करना। डींग मारना। जैसे,—वह मघवा बलि लेतु है नित करि करि गाल। गिरि गोवर्द्धन पूजिये जीवन गोपाल—सूर (शब्द०)।

३. मध्य। बीच। जैसे,—वे पर्वत के गाल में उड़ते दीखते हैं।—वायुसागर (शब्द०)। ४. उतना अन्न जितना एक बार मुँह में डाला जाय। फंका। ग्रास। जैसे,—एक गाल मार लें तो चलें।

मुहा०—**गाल मारना**=ग्रास मुख में रखना। कौर मुँह में डालना।

५. वह मुट्ठी भर अन्न जो चक्की में पीसने के लिये एक बार डाला जाता है। झींक। ६. मुँह। जैसे,—काल के गाल में जाना।

गाल²—संज्ञा पुं० [देश०] तमाकू की एक जाति।

गालगूल(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० गाल+अनु०] व्यर्थ बात। गपशप अनाप शनाप। अडबंड बात। उ०—हरहि जनि जन्म जाय गालगूल गपत। कर्मकाल गुन सुभाव सबके सीस तपत‡।—तुलसी (शब्द०)।

गालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निचोड़ना। २. किसी तरल पदार्थ को एक बर्तन से दूसरे बर्तन में इस तरह डालना कि उसका मैल पहले ही बर्तन में रह जाय। ३. पिघलना। गल जाना [को०]।

गालना¹(पु)—क्रि० स० [सं० गालन] दे० 'गलाना'।—उ० यह तन जालौं, यहु मन गालौं, करवत सीस चढ़ालौं रे राम।—दादू०, पृ० ५२०।

गालना²(पु)—क्रि० स० [हिं० गाल] बोलना। कहना।

गालना³(पु)—क्रि० स० [सं० गाल=फेंकना, दूर करना] छोड़ना। त्याग करना। उ०—सज्जण दुज्जण के कहे भड़िक न दीजइ गालि। हलिवइ हलिवइ छंडियइ जिम जल छंडइ पालि।—ढोला, दू० १९९।

गालबंद—संज्ञा पुं० [हिं० गाल+बंद] एक प्रकार का बंधन जिसमें चमड़े के तस्मे को किसी काँटी में फँसाकर अटकाते हैं।—(जहाजी)।

क्रि० प्र०—बाँधना।

गालमसूरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पकवान या मिठाई। उ०—अरु तैसहि गालमसूरी। जेहि खातहि मुख दुख दूरी।—सूर (शब्द०)।

गालव—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम।

विशेष—महाभारत के अनुसार ये विश्वामित्र जी के अंतेवासी थे। विद्या समाप्त कर समावर्तन के समय इन्होंने अपने गुरु विश्वामित्र जी ने इनके हठ से चिढ़कर आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे। गालव जी ने राजा ययाति के पास जाकर उनसे आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ों के लिये याचना की; पर ययाति के यहाँ भी आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े नहीं थे; अतः ययाति ने उन्हें अपनी कन्या, जिसका नाम माधवी था, देकर कहा—'गालव जी, आप इस कन्या को ले जाइए; और जो दो सौ श्यामकर्ण घोड़े दे, उसे इससे एक पुत्र उत्पन्न कर लेने दीजिए। इस प्रकार आप आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े लेकर अपने गुरु को गुरुदक्षिणा दे दीजिए। गालव जी माधवी को लेकर हर्यश्व राजा के पास गए; और हर्यश्व ने दो सौ श्याम कर्ण घोड़े देकर उससे एक संतान उत्पन्न की। इसी तरह वे उसे दिवोदास और उशीनर के पास ले गए; और उन लोगों ने भी दो दो सौ घोड़े देकर उस कन्या से एक एक पुत्र उत्पन्न किया। अब गालव जी को कोई राजा ऐसा न मिला जो उन्हें शेष दो सौ घोड़े देकर माधवी से एक और पुत्र उत्पन्न करता। अंत को गालव जी छह सौ घोड़े और माधवी को लेकर विश्वामित्र जी के आश्रम पर लौट गए और उन्होंने उनसे सब हाल कहा। विश्वामित्र जी ने उन छह सौ घोड़ों को ले लिया और उस कन्या से एक पुत्र उत्पन्न कर गालव जी को गुरुदक्षिणा के ऋण से मुक्त किया। हरिवंश में इन्हें विश्वामित्र जी का पुत्र लिखा है।

२. एक प्रसिद्ध वैयाकरण जिनका मत पाणिनि ने अष्टाध्यायी में उद्धृत किया है। ३. लोध का पेड़। श्वेत लोध्र। ४. तेंदू का पेड़। ५. एक स्मृतिकार।

गालवि—संज्ञा पुं० [सं०] गालव के पुत्र प्राशंगवत्। इन्होंने कुणिगर्ग की एक वृद्धा कन्या से विवाह किया था।

गाला¹—संज्ञा पुं० [हिं० गाल=ग्रास] १. धुनी हुई रुई का गोला जो चरखे में कातने के लिये बनाया जाता है। पूनी। २. वह

रूई जो कपास के डोडे के फटने पर उसमें से निकलती है।—(पंजाब)।

मुहा०—रूई का गाला=बहुत उज्वल। सफेद। धौला। **गाला सा**=बहुत उजला। सफेद। धौला।

गाला[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० गाल] १. बड़बड़ाने की लत। अंडबंड बकने का स्वभाव। मुँहजोरी। कल्लेदराजी। २. ग्रास। कौर।

गालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाली [को०]।

गलित—वि० [सं०] १ अर्क की तरह खींचा अथवा निचोड़ा हुआ। २. गलाया हुआ [को०]।

गालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा।

गालिब—वि० [अ० गालिब] १. जीतनेवाला। बढ़ जानेवाला। विजयी। श्रेष्ठ। जैसे,—गुल पर गालिब कमल हैं कमलन पर सु गुलाब।—पद्माकर (शब्द०)।

मुहा०—(किसी पर) **गालिब आना या होना**=जीतना। आगे बढ़ जाना।

२. उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि का उपनाम।

विशेष—इनका पूरा नाम मिर्जा असदुल्ला खाँ था। संवत् १८५३ में इनका जन्म और मृत्यु संवत् १९२६ में हुई थी। पहले इन्होंने अपना उपनाम 'असद' रखा था। गालिब मुख्यतः फारसी के कवि थे। फारसी में इनकी कई पुस्तकें हैं। उर्दू में इनका एक ही दीवान है। फिर भी उर्दू के कवियों में ये सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। पद्य के साथ इनका उर्दू गद्य भी आदर्श माना जाता है। इनके गद्यग्रंथों में 'उर्दू-ए-मुअल्ला' जिसमें इनके पत्रों का संग्रह है, तथा 'औद-ए-हिंदी' है।

गालिबन—क्रि० वि० [अ० गालिबन्] संभवतः। बहुत संभव है।

गालिम(पु)—वि० [अ० गालिब] प्रबल। दृढ़। प्रचंड। बलवान्। विजयी।—गेरि के ग्रस्यो है गजराज गोड़ गोटचो ग्राह, गालिम गँभीर नीर चाह्यो सो गिरायो है।—रघुराज (शब्द०)।

गाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] १. निंदा या कलंकसूचक वाक्य। फूहड़ बात। दुर्वचन।

यौ०—**गाली गलौज**। **गाली गुफ्ता**।

क्रि० प्र०—**उगलना**।—**देना**।—**बकना**।—**सुनना**।—**सुनाना**।

मुहा०—**गाली खाना**=दुर्वचन सुनना। गाली सहना। **गाली देना**=दुर्वचन कहना। **गालियों पर उतरना**=गालियाँ देने लगना। गालियाँ बकने पर उतारू होना। **गालियों पर मुँह खोलना**=गाली बकना आरंभ करना।

२. कलंकसूचक आरोप। जैसे,—ऐसा मत कहो; तुम्हीं को गाली पड़ती है।

क्रि० प्र०—**पड़ना**।—**लगना**।

३. विवाह आदि में गाया जानेवाला एक प्रकार का रस्मी गीत जो अश्लील होता है।

क्रि० प्र०—**गाना**।

गालीगलौज—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाली+अनु० गलौज] परस्पर गाली प्रदान। तू तू मैं मैं। दुर्वचन।

क्रि० प्र०—**करना होना**।

गालीगुफ्ता—संज्ञा पुं० [हिं० गाली+फा० गुफ्तार=कहना] १. परस्पर गाली प्रदान। तू तू मैं मैं। गालियों की लड़ाई। २. गाली। दुर्वचन।

क्रि० प्र०—**करना**।—**देना**।—**बकना**।—**होना**।

गालू—वि० [हिं० गाल+ऊ (प्रत्य०)] १. व्यर्थ बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला। गाल बजानेवाला। बकवादी। २. डींग हाँकनेवाला। शेखीबाज।

गालोडित[1]—वि० [सं०] १. नशे में चूर। २. बीमार। अस्वस्थ। ३. मूर्ख [को०]।

गालोडित[2]—संज्ञा पुं० १. परीक्षण। जाँच। २. अनुसंधान [को०]।

गालोड्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमलगट्टा। २. एक प्रकार का अनाज।

गाल्हना(पु)—क्रि० अ० [सं० गल्प=बात] बात करना। बोलना। उ०—अठपहरे अरस मैं ऊभोई आहे। दादू पसे तिनके आला गल्हाए।—दादू (शब्द०)।

गाल्ही(पु)—संज्ञा स्त्री० [पं० गल] वार्ता। बातचीत। उ०—गुभयू गाल्ही कंनि।—दादू०, पृ० १२६।

गाव—संज्ञा पुं० [सं० गो। तुल० फा० गाव] गाय। बैल।

यौ०—**गावकुशी**। **गावजबान**। **गावदुम**। **गावतकिया**। **गावखाना** **गावपछाड़**। **नीलगाव**।

गावकुशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गोघात। गोवध।

गावकुस—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा=गला+कुश=फाल] लगाम (डिं०)।

गावकोहान—संज्ञा पुं० [फा०] वह घोड़ा जिसकी पीठ पर बैल की तरह कूबड़ निकला हो। (ऐसा घोड़ा दोषी माना जाता है।)

गावखाना—संज्ञा पुं० [फा० गाव+खानह्] गोशाला। खरक। धारी।

गावखुर्द—वि० [फा० गावखुर्द] १. गुम। हड़प। गायब। लापता। २. नष्ट भ्रष्ट। बरबाद।

मुहा०—**गावखुर्द होना**=(१) बरबाद होना। नष्ट भ्रष्ट हो जाना। चौपट हो जाना। (२) गायब होना। लापता होना। उड़ जाना। जैसे—देखते ही देखते किताब यहाँ से गावखुर्द हो गई।

गावघप, गावघप्प—वि० [फा० गाव+हिं० घप, घप्प] १. दूसरे का मालमता हजम कर जानेवाला। २. बड़े पेटवाला (आदमी)।

गावचेहरा—वि० [फा० गावचेहरह्] गाय बैल के चेहरे जैसा।

गावजबाँ—संज्ञा स्त्री० [फा० गावजबाँ] दे० 'गावजबान'।

गावजबान—संज्ञा स्त्री० [फा० गावजबान] एक बूटी।

विशेष—यह फारस देश के गीलान प्रदेश में होती है। इसकी पत्तियाँ मोटी, खुर्दरी और हरे रंग की होती हैं, जिनपर बैल की जीभ की तरह छोटे छोटे सफेद रंग के उभरे हुए दाने होते हैं। इसके फूल लाल रंग के छोटे छोटे होते हैं। यह पत्ती हकीमों की दवा के काम आती है इसकी प्रकृति मातदिल होती है और ज्वर खाँसी आदि में दी जाती है।

मखजनुल् अदविया में लिखा है कि इस देश में इसे संखाहुली कहते हैं और यह पटने के पास होती है। पर संखाहुली की पत्ती गावजबान की पत्ती से नहीं मिलती।

गावजोर—वि० [फ़ा० गावजोर] बलशाली या बलवान, जो दाँव पेंच न जानता हो। केवल बल का प्रयोग करनेवाला।

गावजोरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गावजोरी] १. सबसे लड़ने की इच्छा। बलप्रदर्शन। २. हाथापाई। भिड़ंत।

गावड़ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रीवा] गला। गर्दन। (डिं०)।

क्रि० प्र०—करना।

गावड़ाⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम, हिं० गाँव+ड़ा (प्रत्य०)] ग्राम। गाँव।

गावड़ियाँहिⓟ—वि० [हिं० ग्राम] ग्रामवासी। गाँव का रहनेवाला। उ०—कूबर भारन झल्लरी गोधाँ गावड़ियाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १५।

गावणⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० गायन] गायन। गाना।

गावणहार—वि० [सं० गायन+हिं० हार (प्रत्य०)] गानेवाला। गवैया। उ०—गावणहार मांडइ (अ) र गाई। रास कइ तमनइ वंसली वाई।—वी० रासो, पृ० ५।

गावतकिया—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बड़ा तकिया जिसे कमर लगाकर लोग फर्श पर बैठते हैं। मसनद।

गावदश्ती—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जंगली बैल।

गावदी—वि० [फ़ा०] कुंठित बुद्धि का। अबोध। नासमझ। बेवकूफ। कूड़मग्ज। जड़।

गावदुंबाल¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गाय की पूँछ।

गावदुंबाल²—वि० गाय की पूँछ की तरह चढ़ाव उतार।

गावदुम—वि० [फ़ा०] १. जो ऊपर से बैल की पूँछ की तरह पतला होता आया हो। जिसका घेरा एक ओर मोटा और दूसरी ओर बराबर पतला होता गया हो। २. चढ़ाव उतार। ढालुवाँ।

गावदुमा—वि० [फ़ा० गावदुम] दे० 'गावदुम'।

गावदोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दूध दुहने का बरतन।

गावदोशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गावदोशह्] दे० 'गावदोश'।

गावदोश्ना—संज्ञा पुं० [फ़ा० गावदोश्नह्] दे० 'गावदोश'।

गावनⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० गाना] १. गाने की क्रिया। २. गाने का ढंग।

यौ०—गावनगार।

गावनाⓟ†—क्रि० स० [सं० गायन] दे० 'गाना'। उ०—देइ गारि रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४।

गावनिया—वि० [हिं० गावना+इया (प्रत्य०)] गानेवाला। उ०—गावनिया के मुख बसौं, सोता के मैं कान।—कबीर सा०, पृ० ६२।

गावपछाड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाव=गरदन+पछाड़] कुश्ती का एक पेंच जिसमें प्रतिद्वंद्वी को गर्दन पकड़कर पटकते हैं।

गावपैकर—वि० [फ़ा०] साँड़ जैसे विशाल या भारी भरकम शरीरवाला।

गावबहल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कुश्ती का एक दाँव या पेंच। गावपछाड़।

गावल—संज्ञा पुं० [हिं० गौं=घात] दम्भार।

गावली संज्ञा स्त्री० [हिं० गौं=घात] दल्लाली का धन (?)।

गावलाणि—संज्ञा पुं० [सं०] संजय का नाम जो धृतराष्ट्र का मंत्री और सारथी था।

गावशुमारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पशुगणना (को०)।

गावसुमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गावसुमह्] दे० 'गावसुम्मा'।

गावसुम्मा—संज्ञा पुं० [हिं० गाव+सुम=खुर] वह घोड़ा जिसका सुम या खुर फटा हो।

विशेष—इस प्रकार के घोड़े को रखना लोग अच्छा नहीं समझते।

गावारⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० गँवार] गँवार। उ०—समझि देख साकत गावार।—कबीर० ग्रं०, पृ० २६४।

गावी—संज्ञा स्त्री० [?] जहाज में ऊपर का पाल।

विशेष—इसके कई भेद हैं। अगले को सिकंदं, पिछले को बड़ा और पिछले को कलमी कहते हैं। इसके ऊपर का पाल सावर, उससे ऊपर का तावार और तावार के ऊपर का तराई कहलाता है।

गासⓟ संज्ञा पुं० [सं० ग्रास] संकट। दुःख। आपत्ति। उ०—कहुँ नाहिं डरात मोहन बचे कितने गास। तब कह्यो हरि नारद सब मिलि मारि करहु बिनास।—सूर (शब्द०)।

गासिया—संज्ञा पुं० [अ० गाशियह्] जीनपोश। उ०—तन में गुरट पैजन परे हैकल मुहीरन के जड़े। चामर सहाँ पति अमा के गासिया मखमल मढ़े।—रघुराज (शब्द०)।

गाह¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. गहन। दुर्गम। २. वह जो अवगाहन करे। अवगाहन करनेवाला मनुष्य।

गाह²—वि० गाहन या अवगाहन करनेवाला (को०)।

गाह³—संज्ञा पुं० [सं० ग्राह] १. ग्राहक। गाहक। उ०—ज्ञान अगुन साधु गुन गाहा।—उभय अपार उदधि अवगाहा।—तुलसी (शब्द०)। २. पकड़। घात। गौं। उ०—गाय गौं घात की नेउर टारि बिचारि रची सखि ये लिखी गाह।—देवी (शब्द०)। ३. ग्राह। मगर।

गाह⁴—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. स्थान। जगह। २. समय। काल।

यौ०—गाहबगाह, गाहे गाहे या गाहेगाहे=कभी कभी। समय समय पर। जब तब। कभी कभी। उ०—गाहे गाहे मिलो हुजाहे। याँगी लिखी गाहबगाहे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६१।

३. अवसर। बारी।

गाहक¹—संज्ञा पुं० [सं०] अवगाहन करनेवाला।

गाहक²—संज्ञा पुं० [ग्राहक, प्रा० गाहक] १. मोल लेनेवाला। खरीदनेवाला। खरीददार। मोल लेनेवाला। उ०—(क) ... मारि कै ... बिनु गाहक ... तुलसी (शब्द०)। (ख) ...

सबै रहे मौन। गंधी अंध! गुलाब को गवई गाहक कौन?
—बिहारी (शब्द०)।

मुहा०—जी या प्राण का गाहक=प्राण लेनेवाला। मार डालने की ताक में रहनेवाला।

२. कदर करनेवाला। चाहनेवाला। ढूँढ़नेवाला। इच्छुक। अभिलाषी। प्रेमी। उ०—(क) हम तो प्रेम प्रीति के गाहक भाजी साग चखाइए।—सूर (शब्द०)। (ख) हो मन राम नाम को गाहक। चौरासी लख जिया जोनि में भटकत फिरत अनाहक।—तुलसी (शब्द०)। (ग) गुन ना हेरानो गुन गाहक हेरानो है।—(शब्द०)।

गाहकताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्राहक+ता ताति (प्रत्य०)] कदर दानी। चाह। उ०- कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहिं सुनाई।—तुलसी (शब्द०)।

गहाकी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाहक] १. खरीददारी। २. बिक्री।
मुहा०—गाहकी पटना=सौदा पटना। ३. गाहक होने का भाव या स्थिति।

गाहकी²—संज्ञा पुं० ग्राहक। खरीददार।

गाहटना—क्रि० स० [सं० गाह] १. मथना। विलोना। २. नष्ट भ्रष्ट करना। उ०—गोढ़वाड़ घर गाहटे, पहला पाली मार।—रा० रू०, पृ० २८७।

गाहन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गाहित] १. गोता लगाने की क्रिया। स्नान। २. अवगाहन। थाह लेना। उ०—आदि अंत गाहन किया, माया ब्रह्म विचार।—दादू०, पृ० ३३७। ३. विलोडना। मथना। ४. छानने का काम करना। छानना (को०)।

गाहना—क्रि० स० [सं० गाहन=अवगाहन] १. डूबकर थाह लेना। अवगाहन करना। २. मथना। विलोड़ना। हलचल मचाना। क्षुब्ध करना। उ०—व्रजराज तिनके और तौ व्रजराज के परताप। जिन साह के तल गाहि के निज साहिबी करि थाप।—सूदन (शब्द०)। ३. धान आदि के डंठल को दाँते समय एक डंडे से उठा उठाकर गिराना, जिसमें दाना नीचे झड़ जाय। ओहना। उ०—कहो तुम्हारो लागत काहे। कोटिन जतन कहौ जो ऊधो नाहिं बककिहौ वाहे। वाहे को अपने जी मेरी तू सत ले मन चाहे।। यह भ्रम तो अवहीं मिटि जैहैं ज्यों पयार के गाहे। काशी के लोगन लै सिखयो जो समुझे या माहे। सूर श्याम विहरत व्रज अंदर जीजतु है मुख चाहे।—सूर (शब्द०)। ४. जहाज आदि की दरारों में सन आदि ठूसकर भरना। कालपट्टी करना।—(जहाज)। ५. खेत में दूर दूर पर जोताई करना। ६. घूमना। फिरना। चलना। उ०—व्रज वन गैल गन्यारनि गाहत। तरत फिरत ज्यों ज्यों सुख चाहत।—घनानंद, पृ० १९०।

गाहा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गाथा, प्रा० गाहा] १. कथा। वर्णन। चरित्र। वृत्तांत। उ०—(क) करन चहौं रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोर चरित अवगाहा।—तुलसी (शब्द०) (ख)। मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहिं परस्पर हरि गुन गाहा।—तुलसी (शब्द०)। २. आर्या छंद का एक नाम।

विशेष—इसके चारों पदों में क्रमशः १२, १८, १२, और १५ मात्राएँ होती हैं। वि० दे० 'आर्या'। जैसे,—रामचंद्रपद पद्मं, वृंदारक वृंदाभिवंदनीयं। केशव मति भूतनया, लोचनं चंचरीकायते।

गाहित—वि० [सं०] १. गाहन किया हुआ। उ०—पवन मंद मृदु गंध प्रवाहित। मधु मकरंद सुमन सर गाहित। २. प्रविष्ट। पैठा हुआ (को०)।

गाहिता—वि० [सं० गाहितृ] [वि० गाहित्री] १. गाहन करनेवाला। १. पैठनेवाला। ३. मथनेवाला। विलोड़न करनेवाला। ४. विनाशक (को०)।

गाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाहना] १. फल आदि गिनने का एक मान जो पाँच पाँच का होता है। पाँच वस्तुओं का समूह।
मुहा०—गाही के गाही=बहुत अधिक।
२. पाँच की संख्या की राशि।

गाहू—संज्ञा स्त्री० [हिं० गना] उपगीति छंद का एक नाम। वि० दे० 'उपगीति'।

गिंदर-संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो फसल को बहुत हानि पहुँचाता है।

गिंदुक—संज्ञा पुं० [सं० गिन्दुक, गेन्दुक] १. गेंद। कंदुक। २. गेंदुक नामक वृक्ष (को०)।

गिंजना—क्रि० अ० [हिं० गींजना का अक० रूप] किसी चीज (विशेषतः कपड़े) का हाथ लगने या अधिक उलटे पुलटे जाने के कारण सिकुड़ जाना अथवा मैला या खराब हो जाना। गींजा जाना।

गिंजाई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जन=विषाक्त मांस] एक प्रकार का कीड़ा जो बरसात में पैदा होता है। ग्वालिन। घिनौरी। उ०- चित्रकेतु सुत गज वै जनमा। रानी सकल गिंजाई बन मा। पग तर पीसि गई मरि जोई। विष दै बदला लीन्हेनि सोई—विश्राम (शब्द०)।

विशेष—यह लगभग दो अंगुल से चार अंगुल तक लंबा होता है। कनखजूरे की भाँति इसके भी बहुत से पैर होते हैं। एक ही स्थान पर इसके ढेर के ढेर पड़े मिलते हैं। कभी कभी कोई कीड़ा एक दूसरे की पीठ पर सवार भी देखा जाता है, इससे इसे घोड़सवार भी कहते हैं। यदि कोई पशु धोखे से इसे खा जाय, तो वह तुरंत मर जाता है। ये कीड़े वर्षा के आरंभ में पैदा होते हैं, और ऐसा कहा जाता है कि हथिया नक्षत्र के बरसने पर मर जाते हैं।

गिंजाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० गींजना] गींजने की भाव या क्रिया।

गिड़नी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का साग जिसकी पत्तियाँ दो दो अंगुल लंबी और जौ भर चौड़ी होती हैं।

विशेष—इसका डंठल हरा होता है और उसकी गाँठों पर सफेद सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूल झड़ जाने पर छोटे छोटे बीज पड़ते हैं।

गिंडुआ—संज्ञा पुं० [हिं० गिंडुरी] तकिया।

गिंडुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इंडुरी'।

गिंदौड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद] [स्त्री० गिंदौड़ी] बहुत मोटी रोटी के आकार में गलाकर ढाली हुई चीनी।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः विवाह आदि शुभ कार्यों में बिरादरी में बाँटने के लिये होता है।

गिदौरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० गिदौड़ा] [स्त्री० गिदौरी] दे० 'गिदौड़ा'। उ०– पेठापाक जलेबी पेरा। गोंद पाग तिनगरी गिदौरा।—सूर (शब्द०)।

गिमार(पु)– वि० [हिं० गमार, गँवार] दे० 'गँवार'। उ०—मारवणी तू अति चतुर, हीयइ चेत गिमार।—ढोला०, दू० ६३।

गिम्रान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान] दे० 'ज्ञान'। उ०—एहि विधि चीन्हहु करहु गिआनू—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२५।

गिउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गला। गरदन। उ०—अब जो फाँद परा गिउ, तब रोए का होय ?—जायसी (शब्द०)।

गिचपिच—वि० [अनु०] १. जो साफ या क्रम से न हो। एक में मिलजुला। अस्पष्ट। २. बहुत सटाकर लिखा हुआ।

गिचपिचा[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'कचपचिया'।

गिचपिचा[2]—वि० [अनु०] दे० 'गिचपिच'।

गिचपिचिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'कचपचिया'।

गिचिर पिचिर—वि० [अनु०] दे० 'गिचपिच'।

गिजई[1]—संज्ञा पुं० [देश०] सलमे के काम का एक प्रकार का तार।

गिजई[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० गृञ्जन] गिजाई या कनसलाई नाम का बरसाती कीड़ा (पूरब)। वि० दे० 'गिजाई'।

गिजगिजा—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० गिजगिजी] १. ऐसा गीला और मुलायम जो अच्छा न मालूम हो। जैसे,—कच्ची मोटी रोटी दाँत के नीचे गिजगिजी लगती है। २. जो छूने में मांसल मालूम हो। जैसे,—पैर के नीचे कुछ गिजगिजा सा मालूम हुआ, देखा तो मरा साँप था।

गिज़ा संज्ञा स्त्री० [अ० गिज़ा] वह जो खाया जाय। भोजन। खाद्यवस्तु। खोराक। उ०—और खाना जो कि हो खुश का तेरी सो कर गिजा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १०।

गिजाइयत– संज्ञा स्त्री० [अ० गिज़ाइयत] आहार गुण। पोषकता। अन्नतत्व [को०]।

गिजाई[1]—वि० [अ० गिज़ा+फा० ई (प्रत्य०)] १. आहार संबंधी। २. जो आहार के रूप में हो [को०]।

गिजाई[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिजाई] दे० 'गिजई'।

गिटकिरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे 'गिट्टी।

गिटकिरी[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तान लेने में विशेष प्रकार से स्वर का काँपना जो बहुत अच्छा समझा जाता है।—(संगीत)।

क्रि० प्र०—निकालना। लेना।

गिटकौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिट्टी या गिटकिरी] पत्थर या गेरू का गोल छोटा टुकड़ा। कंकड़ी।

गिटगिरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिटकिरी] दे० 'गिटकिरी'। उ०—कोऊ तराने गावत, कोउ गिटगिरी भरें जहँ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०१।

गिटपिट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] निरर्थक शब्द।

मुहा०—गिटपिट करना=(१) टूटी फूटी या साधारण अँगरेजी। भाषा बोलना। (२) किसी बात का साफ साफ न कह पाना।

यौ०—गिटपिट बानी, गिटपिट बोली, गिटपिट भाषा= अँगरेजी।

गिट्टू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गिट्टा] भाग। खंड। उ०—एक नाली दुइ गिट्टे करे।—प्राण०, पृ० २४।

गिट्टक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं गिट्टा] १. चिलम के नीचे रखने का कंकड़। २. चुगल। ३. लकड़ी या लोहे आदि का छोटा और मोटा टुकड़ा।

गिट्टक[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] गिटकिरी लेने में स्वर या तान का वह सबसे छोटा भाग जो केवल एक कंप में निकलता है। दाना।—(संगीत)।

गिट्टा—संज्ञा पुं० [सं० गिरिज; हिं० गेरू+टा (प्रत्य०)] चिलम का कंकड़। केकड़ा।

गिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिट्टा] १. गेरू या पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े जो प्रायः सड़क, नींव या छत आदि पर बिछाकर कूटे जाते हैं। २. मिट्टी के बरतन का टूटा हुआ छोटा टुकड़ा। ३. चिलम की गिट्टक। ४. बादले या तागे की लपेटी हुई रील। फिरकी।

गिठुआ—संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहे का करवा। अड्डा।

गिठुरा†—संज्ञा पुं० [हिं० गँठुरा] दे० 'गँठुरा'।

गिड़गिड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] आवश्यकता से अधिक विनीत और नम्र होकर कोई बात या प्रार्थना करना।

गिड़गिड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिड़गिड़ाना] १. विनती। चिरौरी। २. गिड़गिड़ाने का भाव।

गिड़नी(पु)– संज्ञा पुं० [देश०] तालों में होनेवाला एक प्रकार का साग।

गिड़राज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहराज] सूर्य।—(डिं०)।

गिड्डा†– वि० [देश०] नाटा। ठिगना।

गिणना(पु)†—क्रि० स० [हिं० गिनना] दे० 'गिनना'। उ०— गिण शत्रु मित्र मारग गवण, शत्रुदास ऊदास उर।— रघु० रू०, पृ० ६।

गितार—संज्ञा पुं० [अं० गिटार] एक बाजा जिसमें छह तार होते हैं और जो उँगलियों से बजाया जाता है।

गिद—संज्ञा पुं० [सं०] रथपालक देवता।

गिद्दा—संज्ञा पुं० [हिं० गीत] एक प्रकार का चलता गीत जिसे स्त्रियाँ गाती है। नकटा।

गिद्ध—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र] एक प्रकार का बड़ा मांसाहारी पक्षी।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी कई जातियाँ होती हैं। सबसे बड़ा गिद्ध प्रायः तीन फुट लंबा होता और प्रायः बकरियों, मुर्गियों तथा दूसरी पालतू चिड़ियों को उठा ले जाता है। यह पक्षी प्रायः मरे हुए जीवों का मांस खाता है; इसी से कवियों ने रणस्थल में गिद्धों का दृश्य प्रायः दिखलाया है। इसकी आँखें बहुत तेज होती हैं और यह आकाश में बहुत ऊँचा उड़ सकता है। इसके शरीर का रंग मटमैला होता है और पैरों में

उँगलियों तक पर होते हैं। इसका किसी मनुष्य के शरीर पर मँडराना या मकान पर बैठना अशुभ माना जाता है। २. एक प्रकार का बड़ा कनकौवा या पतंग। ३. छप्पय छंद का ५२ वाँ भेद।

गिद्धराज—संज्ञा पुं० [हिं० गिद्ध+राज] जटायु।

गिद्धि(५)—संज्ञा पुं० [हिं० गिद्ध] दे० 'गिद्ध'। उ०—डहकंत डक्क डाइन डरान। गहकंत गिद्धि सिद्धनिय थान।—पृ० रा०, १।६६१।

गिध(५)—संज्ञा पुं० [हिं० गिद्ध] दे० 'गिद्ध'। उ०—एक जीव को ठाढ़े कीना। काग गिद्ध को हुकुम करि दीना।—कबीर सा०, पृ० ३६२।

गिनगिनाना¹†—क्रि० अ० [अनु० गन गन=काँपना] १. अधिक बल लगाते समय शरीर का काँपना। जैसे,—वह पत्थर पकड़कर घंटों गिनगिनाता रहा, पर पत्थर न हटा। २. रोमांच होना। रोंगटे खड़े होना।

गिनगिनाना²—क्रि० स० [हिं० गिन्नी, घिरनी=चक्कर] पकड़कर घुमाना या चक्कर देना। झकझोरना। उ०—बिल्ली ने चूहे को गिनगिना डाला।

गिनती—संज्ञा स्त्री०[हिं० √गिन+ती (प्रत्य०)] १. वस्तुओं को समूह से तथा एक दूसरी से अलग अलग करके उनकी संख्या निश्चित करने की क्रिया। गणना। शुमार। उ०—गिनती गनिबे तें रहे छत हू अछत समान।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—गिनना।

मुहा०—**गिनती में आना या होना**=किसी कोटि में समझा जाना। कुछ समझा जाना। कुछ महत्व का समझा जाना। उ०—जिन भूपन जग जीति बाँधि यम अपनी बाँह बसायो। तेरी काल कलेऊ कीन्हें तू गिनती कब आयो।—तुलसी (शब्द०)। **गिनती कराना**=किसी कोटि के अंतर्गत समझा जाना। जैसे,—वह विद्वानों में अपनी गिनती कराने के लिये मरा जाता है। **गिनती गिनाने या कराने के लिये**=नाम मात्र के लिये। कहने सुनने भर को। जैसे,—गिनती गिनाने के लिये वे भी थोड़ी देर आकर बैठ गए थे। **गिनती होना**=किसी महत्व का समझा जाना। कुछ समझा जाना। जैसे,—वहाँ बड़े बड़ों का गुजर नहीं तुम्हारी क्या गिनती है?

२. संख्या। तादाद। जैसे,—ये आम गिनती में कितने होंगे।

मुहा०—**गिनती के**=बहुत थोड़े। संख्या में बहुत कम। जैसे,—वहाँ गिनती के आदमी आए थे। ३. उपस्थिति की जाँच जो प्रायः नाम बोल बोलकर की जाती है। हाजिर।—(सिपाही)।

मुहा०—**गिनती पर जाना**=हाजिरी देने या लिखाने जाना।

४. एक से सौ तक की अंकमाला। जैसे—स्लेट पर गिनती लिखकर दिखाओ।

क्रि० प्र०—आना।

गिनना—क्रि० स० [सं० गणन] १. वस्तुओं को समूह से तथा एक दूसरी से अलग अलग करके उनकी संख्या निश्चित करना। गणना करना। शुमार करना।

संयो०—जाना।—डालना।—देना।—रखना।—लेना।

मुहा०—**गिन गिनकर सुनाना या गालियाँ देना**=बहुत अधिक गालियाँ देना। **गिन गिनकर मारना या लगाना**=खूब पीटना। **गिन गिनकर दिन काटना**=बहुत कष्ट से समय बिताना। **गिन गिनकर पैर रखना**=बहुत धीरे धीरे और सावधानता से चलना। **गिन देना**=तुरत हिसाब चुकता करना। तुरंत रुपए गिन देना। जैसे,—देखा? एक फटकार पर उसके रुपए गिन दिए। **गिने गिनाए**=थोड़े से। संख्या में बहुत कम। **दिन गिनना**=(१) आशा में समय बिताना। सुख की प्राप्ति या दुःख की निवृत्ति के अवसर की ऊब ऊबकर प्रतीक्षा करना। उ०—दिन औधि के कौ लौं गिनौं सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे।—ठाकुर (शब्द०)। (२) किसी प्रकार कालक्षेप करना।

२. गणित करना। हिसाब लगाना। जैसे,—ज्योतिषी ने गिन गिनाकर कह दिया है कि मुहूर्त अच्छा है। ३. कुछ महत्व का समझना। मान करना। प्रतिष्ठा करना। कुछ समझना। खातिर में लाना। जैसे,—वहाँ तुम्हारे ऐसों को गिनता कौन है?

गिनवाना—क्रि० स० [हिं० गिनना का प्रे० रूप] १. दे० 'गिनाना'। २. गिनती पढ़ाना या सिखाना (छोटे बच्चों को)। ३. दूसरों की दृष्टि में ऊँचा उठाना। संमान करवाना। संमान का पात्र होना। ४. दंभ या अहंकार से दूसरों के द्वारा अपनी प्रतिष्ठा कराना।

गिनान(५)—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान] दे० 'ज्ञान'। उ०—ब्रह्मवैवर्त सहस अठार। केवल गिनान कथि भक्ति सार।—पृ० रा०, १।३६।

गिनाना—क्रि० स० [हिं० गिनना का प्रे० रूप] गिनने का काम दूसरे से कराना।

गिनी¹—संज्ञा स्त्री० [अं०] सोने का एक सिक्का जिसका व्यवहार इंग्लैंड में सन् १६६३ में आरंभ हुआ था और सन् १८१३ से जिसका बनना बंद हो गया। यह २१ शिलिंग (लगभग १५॥ रुपए) मूल्य की होती थी।

विशेष—यह सिक्का पहले पहल अफ्रीका महाद्वीप के गिनी नामक देश से आए हुए सोने से बनाया गया था, इसी से इसका यह नाम पड़ा। भारत में प्रायः लोग आजकल के प्रचलित पाउंड या सावरेन को ही भूल से गिनी कहा करते हैं।

गिनी²—संज्ञा स्त्री० [अं० गिनी ग्रास] एक प्रकार की विलायती बारहमासी घास।

विशेष—यह पशुओं के लिये बहुत बलवर्धक और आरोग्यकारक होती है। इसे गौओं और भैंसों को खिलाने से उनका दूध बहुत बढ़ जाता है और घोड़ों को खिलाने से उनका बल बहुत बढ़ जाता है। यह घास सभी प्रकार की जमीन में भली भाँति हो सकती है पर क्षार या सीड़वाली जमीन में अच्छी नहीं होती। यद्यपि यह बीजों से भी बोई जा सकती है, तथापि जड़ों से बोना अधिक उत्तम समझा जाता है। यदि

वर्षा ऋतु के आरंभ में यह थोड़ी सी भी बो दी जाय तो बहुत दूर तक फैल जाती है। इसके लिये घोड़े की सड़ी हुई लीद की खाद बहुत अच्छी होती है। यदि इसपर उचित ध्यान दिया जाय तो साल में इसकी छह फसलें काटी जा सकती हैं।

गिनीगवट—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की लंबी घास।

विशेष—यह अफ्रीका के गिनी नामक देश में होती है। अब यह भारत में भी लगाई गई है और खूब होती है।

गिनीगोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] वह सोना जिसमें ताँबा मिला हो।

गिनीग्रास—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'गिनीगवट'।

गिन्नी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिरनी] घुमाने या चक्कर खिलाने की क्रिया। चक्कर।

मुहा०—गिन्नी खाना=चक्कर मारना।—(पतंग के लिये प्रायः बोलते हैं।) गिन्नी खिलाना=चक्कर देना।

गिन्नी[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० गिनी] दे० 'गिनी'।

गिब्बन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का बंदर जो सुमात्रा जावा आदि द्वीपों में होता है।

विशेष—इसके पूँछ और गालों की थैलियाँ नहीं होतीं। इसकी बाँहें बहुत लंबी होती हैं और प्रायः जमीन तक पहुचती हैं। इसकी आकृति मनुष्य से बहुत मिलती जुलती होती है। किसी किसी जाति के गिब्बन थोड़ा बहुत गाते भी सुने गए हैं।

गिम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गला। गरदन।

गिमटी[1]—संज्ञा स्त्री० [अं० डिमटी] एक प्रकार का मजबूत सूती कपड़ा।

विशेष—इसकी बुनावट में बेल बूटे होते हैं और यह प्रायः बिछाने के काम में आता है।

गिमटी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुमटी] गोलाकार या चौकोर कोठरी या कमरा जो रेलवे लाइन के किनारे बना होता है।

विशेष—ऐसे कमरे बहुधा उन जगहों पर बने होते हैं और आवाजाही अधिक होती है। गाड़ियों के आने जाने पर झंडी दिखानेवाला रेलवे कर्मचारी वर्षा और धूप से बचने के लिये इसका उपयोग करता है।

गिमार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गमार या गवाँर] दे० 'गँवार'। उ०—इण रुति साहिब ना चलइ चालइ तिके गिमार।—ढोला०, दू० २४९।

गिय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] दे० 'गिउ'। उ०—जेहि कारन गिय काथरि कंथा। जहाँ सो मिलै जाउ तेहि पंथा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१७।

गियान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान] दे० 'ज्ञान'। उ०—सेवक लिए प्रेम जल भारी, खरिका ब्रह्म गियान।—धरम०, पृ० ३०।

गियानी—वि० [हिं० ज्ञानी] दे० 'ज्ञानी'। उ०—हम लोग मूरख ठहरे और तुम गियानी।—मैला०, पृ० १२।

गियाह संज्ञा पुं० [सं० हय ?] एक प्रकार का घोड़ा। ताड़ के पके फल के रंग का अश्व। कियाहु। उ०—हाँसल भौंर, गियाह बखाने।—जायसी (शब्द०)।

गिरंट—संज्ञा पुं० [अं०] १.एक रेशमी कपड़ा जो प्रायः गोट लगाने के काम में आता है। ग्वारनट।२.एक प्रकार की साधारण सूती मलमल जो बस्ती जिले में बनती है।

गिरंथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथ] दे० 'ग्रंथ'। उ० सुनियत वेद गिरंथ पुकारत, जिन मति जान बिचारी।—जग० श०, पृ० ११६।

गिरंद(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गीर] फंदा। उ०—दे० गिरंद गिरँदा हूवा वे जिद असाडी छीनी है।—घनानंद, पृ० १८०।

गिरंदा—वि० [हिं० गिरंद] फंदा डालनेवाला। पकड़नेवाला।

गिरंम(पु)—वि० [?] भारी। उ०—तरकस पंच गिरंग तीन प्रति पगत तीन सह।—पृ० रा०, ६। २५।

गिरँद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गिरीन्द्र] दे० 'गिरींद्र'। उ०—उरजलता लागी अमुर, गिरँद हूहू वल आप।—रा० रू०, पृ० २६१।

गिरंदा(पु)—वि० [हिं० गिरंद] फंदा लगानेवाला। बंधन बाँधनेवाला। उ०—दे गिरँद गिरंदा हूवा वे जिद असाडी छीनी है।—घनानंद, पृ० १८०।

गिर—संज्ञा पुं० [सं० गिरि] पहाड़। पर्वत। उ०—जहँ यह गिरि गोवरधन सोहै। इंद्र वराक या आगे को है।—नंद० ग्रं०, पृ० १९०। २.संन्यासियों के दस भेदों में से एक। ३. काठियावाड़ देश का भैंसा।

गिरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो सौरी मछली से छोटी होती है।

गिरगट—संज्ञा पुं० [हिं० गिरगिट] दे० 'गिरगिट' उ०—माया की मकड़ी ने जाल बिछाया। गो के जो गिरगट ने सैन सुनाया।—संत तुरसी०, पृ० ८८।

गिरगिट—संज्ञा पुं० [सं० कृकलास या गलगति] छिपकली की जाति का प्रायः एक बालिश्त लंबा एक जंतु। उ०—गिरगिट छंद धरइ दुख तेता। खन खन रात पीन खन सेता।—जायसी (शब्द०)।

विशेष यह सूर्य की किरणों की सहायता से अपने शरीर के अनेक रंग बदल सकता है। इसका चमड़ा सदा बहुत ठंढा रहता है और यह कीड़े मकोड़े खाता है। गिरगिटान। गिरदौना।

मुहा०—गिरगिट की तरह रंग बदलना=बहुत जल्दी संमति या सिद्धांत बदल देना। कभी कुछ कभी कुछ कहना और करना।

गिरगिटान†—संज्ञा पुं० [हिं० गिरगिट] दे० 'गिरगिट'।

गिरगिट्टी—संज्ञा स्त्री० [?] समस्त उत्तर भारत, चीन और आस्ट्रेलिया तक पाया जानेवाला एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी छाल खाकी रंग की होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी, पतली और गहरे हरे रंग की होती हैं, जिनका ऊपरी भाग बहुत चमकीला होता है। गरमी और बरसात में इसमें सफेद रंग के बहुत सुगंधित फूल लगते हैं और जाड़े में एक प्रकार के छोटे फूल लगते हैं, जिनका रंग पकने पर लाल या गहरा नारंगी होता है। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और चीड़ के स्थान में काम आती है। यह वृक्ष बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है और लोग

इसकी टहनियों से दतुअन का काम लेते हैं। वरमावाले कभी कभी चंदन के स्थान में इसकी सुगंधित छाल का भी व्यवहार करते हैं।

गिरगिरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] लड़कों का एक खिलौना जो चिकारे या सारंगी के ढंग का होता है। उ०—फूले वजावत गिरगिरी गार मदन भेरि घहराइ अपार संतन हित ही धूल डोल।—सूर (शब्द०)।

गिरजा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] कीड़े मकोड़े खानेवाला एक प्रकार का पक्षी।

विशेष—यह पंजाब और राजपूताने के अतिरिक्त सारे भारत में पाया जाता है। यह प्रायः सिंघाड़े के तालाबों के आसपास रहती है और ऋतुपरिवर्तन के अनुसार अपना स्थान भी बदला करता है। यह बहुत तेज उड़ता है और इसका शब्द बहुत धीमा और विचित्र होता है। यह वृक्षों पर घोंसला बनाता है। इसके स्वादिष्ट मांस के लिये लोग इसका शिकार करते हैं।

गिरजा[2]—संज्ञा पुं० [पुर्त० इग्रेजा] ईसाइयों का प्रार्थना मंदिर।

गिरजा[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरिजा] दे० 'गिरिजा'।

गिरजाघर—संज्ञा पुं० [हिं० गिरजा+घर] ईसाइयों का प्रार्थना-मंदिर। गिरजा।

गिरझ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गृद्ध ?] मादा गिद्ध। गिद्धिनी। उ०—गिरझ आतें ले चाली, जाए पतंग डोर।—नट०,पृ० १७१।

गिरद(पु)—अव्य० [फ़ा गिर्द] दे० 'गिर्द'। उ०—लई सौरई अरु साडौरो। लूटे गाँव गिरद के औरो।—लाल (शब्द०)।

गिरदा†—संज्ञा पुं० [फ़ा गिर्द] १. घेरा। चक्कर। २. तकिया। गेडुआ। वालिश। उ०—भनै रघुराज कोई गादी गिरदा पै चढ़ें, कोई गोद गेरे हरे हरे लपटाइ कै।—रघुराज (शब्द०)। ३.काठ की थाली जिसमें हलवाई लोग मिठाई रखते हैं। ४.वह कपड़ा जो दरवार के समय राजाओं के हुक्के के नीचे बिछाया जाता है। ५. ढाल। फरी। ६. ढोल या खँजड़ी का मेड़रा।

गिरदाइय(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गिर्दाब] घेरा। आवर्त। उ०—दस हथ्था परिमाँन पीठ छत्ती गिरदाइय।—पृ० रा०,२४।३३४।

गिरदागिरद—क्रि० वि० [हिं० गिर्दागिर्द] दे० 'गिर्दागिर्द'।

गिरदान†—संज्ञा पुं० [हिं० गिरगिट] गिरगिट। उ०—मछली मुख जस केंचुआ मुसवन मुँह गिरदान। सर्पन मुँहें गहेजुवा जाति सबन की जान।—कबीर (शब्द०)।

गिरदानक—संज्ञा पुं० [फ़ा गिर्द] करगाह की लकड़ी जो लपेटन में उसे घुमाने के लिये लगी रहती है।—(जुलाहे)।

गिरदाना—संज्ञा पुं० [फ़ा गिर्द] लगभग एक हाथ की लंबी चौपहल लकड़ी जो तूर के छेद में पड़ी रहती है।—(जुलाहे)।

गिरदाब—संज्ञा पुं० [फ़ा गिर्दाब] जलावर्त। भँवर। उ०—गया होश बिस तिस करें ताव में, डूब्या ज्यों पड़ गम के गिरदाब में।—दक्खिनी, पृ० १५४।

गिरदालो—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिर्द] वह लंबी अँकुसी जिससे गला हुआ कच्चा लोहा समेट समेटकर एकत्र किया जाता है।—(लोहार)।

गिरदावर—संज्ञा पुं० [फ़ा गिर्दावर] दे० 'गिर्दावर'।

गिरदावरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १.गिरदावर का काम। २.गिरदावर का पद।

गिरद्(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गिर्द] दे० 'गर्द'। उ०—गिरद्द उड़ी भाँन अंधार रैनं। गई सूधि सुझ्झै नहीं गभिझ नैनं।—पृ० रा०, ५।६५।

गिरद्ध—अव्य० [फ़ा० गिर्द]। घेरा। उ०—पंगह सुवीर गढ़ करि गिरद्ध। सर्वरी परस चंदा सरद्ध।—पृ० रा०, २६।४२।

गिरधर—संज्ञा पुं० [सं० गिरि+घर] १. वह जो पहाड़ को धारण करे। पहाड़ उठानेवाला व्यक्ति। २. कृष्ण। वासुदेव।

यौ०—गिरधर गोपाल=कृष्ण जी।

गिरधारन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गिरि+धारण] दे० 'गिरधर'।

गिरधारा(पु)—वि० [सं० गिरि+धार] दुर्गम पहाड़ी मार्ग। पहाड़ की चोटी पर का सकरा और संकटपूर्ण मार्ग। उ०—जाइ तहाँ का संजम कीजै, विकट पंथ गिरधारा।—दादू०, पृ० ५०६।

गिरधारी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गिरिधारी] दे० 'गिरधर'।

गिरना—क्रि० अ० [सं० गलन=गिरना] १. आधार या अवरोध के अभाव के कारण किसी चीज का एकदम ऊपर से नीचे आ जाना। रोक या सहारा न रहने के कारण किसी चीज का अपने स्थान से नीचे आ रहना। जैसे,—छत पर से गिरना हाथ में से गिरना, कुएँ में गिरना, आँख से आँसू गिरना ओस, पानी या ओले गिरना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

२.किसी चीज का खड़ा न रह सकना या जमीन पर पड़ जाना। जैसे—मकान का गिरना, घोड़े का गिरना, पेड़ का गिरना।

यौ०—गिरना पड़ना। जैसे;—वह गिरते पड़ते किसी प्रकार घर पहुँचा।

३.अवनति या घटाव पर होना। ह्रासोन्मुख होना। जैसे,—किसी जाति या देश का गिरना। ४ किसी जलधारा का किसी वड़े जलाशय में जा मिलना। जैसे,—नदी का समुद्र में गिरना, मोरी का कुंड में गिरना। ५. शक्ति, स्थिति,प्रतिष्ठा या मूल्य आदि का कम या मंदा होना। जैसे—किसी मनुष्य का (किसी की दृष्टि या समाज में) गिर जाना, बीमारी के कारण शरीर का गिर जाना, भाव या वाजार गिरना।

यौ०—गिरे दिन=दरिद्रता या दुर्दशा का समय।

६.किसी पदार्थ को लेने के लिये बहुत चाव या तेजी से आगे बढ़ना। टूटना। जैसे,—कबूतर पर वाज गिरना, माल पर खरीदनेवालों का गिरना, यात्रियों पर डाकुओं का गिरना।

७.जीर्ण या दुर्बल होने अथवा इसी प्रकार के अन्य कारणों से किसी चीज का अपने स्थान से हट, निकल या झड़ जाना।

जैसे—दाँत गिरना, सींग गिरना, बाल गिरना, (चोट खाया हुआ) नाखून गिरना, गर्भ गिरना। ८. किसी ऐसे रोग का होना जिसके विषय में लोगों का विश्वास हो कि उसका वेग ऊपर की ओर से नीचे को आता या होता है। जैसे—नजला गिरना, फाजिल गिरना। ९. सहसा उपस्थित होना। प्राप्त होना। जैसे—(क) तुम यहाँ कहाँ आ गिरे ? (ख) आज बहुत सा काम आ गिरा।

विशेष—इस अर्थ में इससे पहले 'आना' क्रिया लगती है।

१०. युद्ध में काम आना। लड़ाई में मारा जाना। खेत रहना। जैसे—उस लड़ाई में दो सौ आदमी गिरे। ११. कबूतर का किसी दूसरे की छतरी पर चला जाना।—(कबूतर बाज०)। १२ बरसना। १३. घायल होकर गिरना। १४. हारना। १५. खाट पर जमीन पकड़ना पड़ना। खाट पकड़ना। बीमार होना। १६. किसी वस्तु के लिये बहुत अधिक लोलुपता दिखाना। १९. उत्साहहीन होना। मंद होना।

यौ०—गिरता पड़ता=(१) कठिनाई से। (२) लड़खड़ाता हुआ। गिर पड़ कर=दे० 'गिरता पड़ता'। गिरा पड़ा=छूटा हुआ। जमीन पर पड़ा हुआ।

मुहा०—गिर कर सौदा करना=दबकर या दबाव के साथ सौदा करना या मामला हल करना।

गिरनार—संज्ञा पुं० [सं० गिरि+नार (=नगर)] [वि० गिरनारी] जैनियों का एक पवित्र तीर्थ।

विशेष—यह गुजरात में जूनागढ़ के निकट एक पर्वत पर है। इसे पुराणों में रैवतक पर्वत कहते हैं।

गिरनारी—वि० [हिं० गिरनार] गिरनार पर्वत का निवासी।

गिरनाली—वि० [हिं० गिरनार] दे० 'गिरनारी'।

गिरफ्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिरफ्त] १. पकड़ने का भाव। पकड़। २. पकड़ने की क्रिया। ३. हिसाब किताब में गलती पकड़ना। ४. आपत्ति। एतराज। ५. अधिकार। कब्जा। ६. चंगुल। पंजा। ७. हस्तक। दस्ता।

मुहा०—गिरफ्त करना=कोई दोष निकालना या आपत्ति करना।

गिरफ्तगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिरफ्तगी] १. गिरफ्त। पकड़। २ आवाज का बैठ जाना। ३. उदासीनता। उदासी।

गिरफ्तार—वि० [फ़ा० गिरफ्तार] १. जो पकड़ा, कैद किया या बाँधा गया हो। २. ग्रसा हुआ। ग्रस्त।

गिरफ्तारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिरफ्तारी] १. गिरफ्तार होने का भाव। कैद। २. गिरफ्तार होने की क्रिया।

मुहा०—गिरफ्तारी निकलना=किसी के गिरफ्तार होने का परवाना या वारंट निकलना।

गिरबाँन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गीर्वाण] देवता। सुर।

गिरबान(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गरीबान] गर्दन। गला। उ०—खंजर असिपुत्रिय लरत, धरत सिख गिरबान।—प० रासो०, पृ० ७२।

गिरबूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरि+हिं० बूटी] अंगूर शेफा।

गिरमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गराँव] रस्सी। डोरी। बंधन। उ०—इची खिंची गिरमा गसी गैया लो तुअ साथ।—श्यामा०, पृ० १६७।

गिरमिट¹—संज्ञा पुं० [अं० गिमलेट=बड़ा बरमा] (लकड़ी में छेद करने का) बड़ा बरमा।—(बढ़ई)।

गिरमिट²†—संज्ञा पुं० [अं० एग्रीमेंट=इकरारनामा] १. वह पत्र जिसमें किसी प्रकार की शर्तें लिखी हों; विशेषतः वह पत्र जिसपर कुलियों से उन्हें उपनिवेशों में काम करने के लिये भेजने के समय हस्ताक्षर कराया जाता था। इकरारनामा। शर्तनामा।

क्रि० प्र०—करना।—लिखना।—होना।

२. कोई काम करने की स्वीकृति या प्रतिज्ञा। इकरार।

गिरमिटिया—संज्ञा पुं० [हिं० गिरमिट] अंग्रेजी शासन काल में शर्त के साथ किसी उपनिवेश में गया हुआ भारतीय मजदूर।

यौ०—गिरमिटिया प्रथा।

गिरराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गिरिराज] गोवर्धन पर्वत।

गिरवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गिरि+वर] बड़ा पहाड़।

यौ०—गिरवरधारी—गिरधर। श्रीकृष्ण।

गिरवाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गराँव] रस्सी। डोरी। उ०—जैसे कसाई के हाथ की गिरवाँ से गसो गैया कातर नैनों से पीछे देखती जाती हो।—श्यामा०, पृ० १५५।

गिरवाँण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गीर्वाण] दे० 'गीर्वाण'। उ०—तहक नीसाँण गिरवाँण हरखाण तन, चिताँ सरसाण रँभगाण चाले।—रघु० रू०, पृ० २६।

गिरवाणी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गीर्वाण] देवी। उ०—तस जंत्र जंत्री ताणिया, वरमाल गह गिरवाणिया।—रघु० रू०, पृ० २२१।

गिरवान¹(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० गीर्वाण] देवता। देव। सुर। उ०—तेरे गुन गान सुनि गिरवान पुलकित सजल विलोचन विरंचि हरि हर के। तुलसी (शब्द०)।

गिरवान²(पु) संज्ञा पुं० [फ़ा० गरेबान] १. अंगे या कुरते का वह गोल भाग जो गर्दन के चारों ओर रहता है। कालर। २. गर्दन। गला। उ०—नेही सनमुख जुरत ही तेहि मन की गिरवान। बाहत हैं रनबावरे तेरे दृग किरवान।—रसनिधि (शब्द०)।

गिरवाना—क्रि० स० [हिं० गिराना] गिराने की प्रेरणा करना। गिराने का काम किसी दूसरे से कराना।

गिरवी—[फ़ा०] गिरो रखा हुआ। बंधक। रेहन।

यौ०—गिरवीदार, गिरवीनामा, गिरवीजब्ती, गिरवीगाठा=रेहन। बंधक।

क्रि० प्र०—करना।—धरना।—रखना।

गिरवीदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह व्यक्ति जिसके यहाँ कोई वस्तु बंधक रखी हो।

गिरवीनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह पत्र जिसमें गिरों की शर्तें लिखी हों। रेहननामा।

गिरवीपत्र—संज्ञा पुं० [हिं० गिरवी + पत्र] दे० 'गिरवीनामा'।

गिरस्त†—संज्ञा पुं० [सं० गृहस्थ] दे० 'गृहस्थ'।

गिरस्ती†—संज्ञा स्त्री० [वि० गृहस्थ, हिं० गिरस्त + ई (प्रत्य०)]. दे० 'गृहस्थी'। उ०—फिर गिरस्ती में लोग लगे—कुछ काल के अनंतर उन्हें एक कन्या और हुई।—श्यामा०, पृ० ४७।

गिरह—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. गाँठ। ग्रंथि।

क्रि० प्र०—देना।—बाँधना।—मारना।—लगाना।

२. जेब। कीसा। खरीता।

यौ०—गिरहकट।

३. दो पोरों के जुड़ने का स्थान। ४. एक गज का सोलहवाँ भाग जो सवा दो इंच के बराबर होता है। ५. कुश्ती का एक पेंच। ६. कलैया। उलटी। उ०—ऊँचो चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत। दृग झलकित मुलकित वदन तन पुलकित केहि हेत।—बिहारी (शब्द०)

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।—लगाना।—लेना।

यौ०—गिरहबाज।

मुहा०—गिरह खोलना=गाँठ खोलना। मन से मैल दूर करना। मन से बुराई दूर करना। गिरह पड़ना=गाँठ पड़ना। भेद पैदा होना। उ०—पड़ न पावे गिरह किसी दिल में।—चोखे०, पृ० ३६। गिरह बाँधना या बाँध लेना=गाँठ में बाँध लेना। मन में बैठा लेना। उ०—ले गिरह बाँध दिल गिरह खोलें।—चोखे० पृ० ३६।

गिरहकट—वि० [फा० गिरह=जेब या गाँठ + हिं० काटना] जेब या गाँठ में बँधा हुआ माल काट लेनेवाला।

गिरहदार—वि० [फा०] जिसमें गाँठ हो। गाँठवाला। गँठीला।

गिरहबाज—संज्ञा पुं० [फा० गिरहबाज] एक जाति का कबूतर जो उड़ते उड़ते उलटकर कलैया खा जाता है और फिर उड़ने लगता है। इसे लोटन कबूतर भी कहते हैं।

गिरहबाज उड़ी—संज्ञा स्त्री० [फा० गिरहबाज + उड़ी=कलैया] वह उलटी कलैया जो कसरत करनेवाले कबूतर की तरह उलटकर लगाते हैं।

गिरहर†—वि० [हिं० गिरना + हर (प्रत्य०)] जो गिरनेवाला हो। जो गिरने के लिये तैयार हो। पतनोन्मुख।

गिरहस्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गृहस्थ] दे० 'गृहस्थ' उ०—हस्ति घोर औ कापर सबहि दीन्ह नौ साजु। भै गिरहस्त लखपती, घर घर मानहि राजु।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४६।

गिरही(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० गृहिन्] जो घरबारवाला हो। गृहस्थ। उ०—बाटे बाटे सब कोइ दुखिया क्या गिरही बैरागी। शुक्राचार्य दुख ही के कारण गरभै माया त्यागी।—कबीर (शब्द०)।

गिराँ—वि० [फा० गराँ] १. जिसका दाम अधिक हो। महँगा। २. भारी। वजनी। हलका का उलटा ३. जो भला न मालूम हो। अप्रिय।

क्रि० प्र०—गुजरना।

गिराँयाँ†—संज्ञा पुं० [सं० ग्रैवेय, हिं० गराँव] दे० 'गराँव'।

गिराँव¹—संज्ञा पुं० [सं० ग्रैवेय, हिं० गराँव] दे० 'गराँव'।

गिराँव²†—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम] गाँव।

यौ०—गाँव गिराँव।

गिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह शक्ति जिसकी सहायता से मनुष्य बातें करता है। बोलने की ताकत। २. जिह्वा। जीभ। जबान। उ०—पीर थके अरु मीर थके पुनि धीर थके वहु बोलि गिरा तें।—सुंदरग्रं०, भा० २, पृ० ६६०। ३. बोल। वचन। वाणी। कलाम। ४. सरस्वती देवी।

यौ०—गिरापति। गिरापितु।

५. सरस्वती नदी। ६. भाषा। बोली। ७. कविता। शायरी।

गिराधव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०]।

गिराना—क्रि० स० [हिं० गिरना का सक० रूप] १. किसी चीज का आधार या अवरोध आदि हटाकर उसे अपने स्थान पर से नीचे डाल देना। पतन करना। जैसे, छत पर से पत्थर गिराना, हाथ से छड़ी गिराना, आँख से आँसू गिराना। २. किसी चीज को खड़ा न रहने देकर जमीन पर डाल देना। जैसे,—खंभा गिराना, मकान गिराना। ३. अवनत करना। घटाना। ह्रास करना। जैसे,—विलासप्रियता ने ही उस जाति को गिरा दिया। ४. किसी जलधारा या प्रवाह को किसी ढाल की ओर ले जाना। जैसे,—नाली गिराना, मोरी गिराना। ५. शक्ति, प्रतिष्ठा, मूल्य या स्थिति आदि में कमी कर देना। जैसे,—(क) बीमारी ने उसे ऐसा गिराया कि वह छह महीने तक किसी काम का न रहा। (ख) व्यापारियों ने माल खरीदना बंद करके बाजार गिरा दिया। ६. जीर्ण या दुर्बल करके अथवा इसी प्रकार के किसी उपाय से किसी चीज को उसके स्थान से हटा या निकाल देना। जैसे,—(क) दो महीने बाद उसने गर्भ गिरा दिया। यह दवा तुम्हारे सब दाँत (या बाल) गिरा देगी। ७. कोई ऐसा रोग उत्पन्न करना जिसके विषय में लोगों का दृढ़ विश्वास हो कि उसका वेग ऊपर से नीचे आता या होता है। जैसे,—तुम्हारी यह लापरवाही जरूर नजला गिरावेगी। ८. सहसा उपस्थित करना। अचानक सामने ला रखना। जैसे,—यह झमेला तुमने हमारे सिर ला गिराया।

विशेष—इस अर्थ में इसमें पहले 'लाना' क्रिया लगती है।

९. युद्ध में प्राण लेना। लड़ाई में मार डालना। जैसे,—उसने पाँच आदमियों को गिराया।

गिरानी—संज्ञा स्त्री० [फा० गरानी] १. मूल्य का अधिक होना। महँगापन। महँगी। २. अकाल। कहत। ३. कमी। अभाव। टोटा। ४. किसी चीज का विशेषतः पेट का भारीपन। उ०—रसनिधि प्रेम तबीब यह दियो इलाज बताय। छवि अजवाइन चख दृगन विरह गिरानी जाय।—रसनिधि (शब्द०)।

गिरापति—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। उ०—ईस न गनेश न दिनेश न धनेश न सुरेश सुर गौरि गिरापति नहिं जपने।—तुलसी (शब्द०)।

गिराव—संज्ञा पुं० [अं० ग्रेप] तोप का वह गोला जिसमें छोटी छोटी गोलियाँ या छर्रे भी रहते हैं।

गिराव—संज्ञा पुं० [हिं० गिरना+आव (प्रत्य०)] गिरने की क्रिया या भाव। पतन। गिरावट।

गिरावट—संज्ञा स्त्री० [हिं०√गिर+आवट (प्रत्य०)] १. ह्रास। पतन। २. न्यूनता। कमी। ३. अवनति। अपकर्ष। ४. मान या पद की मर्यादा में दोष या बाधा होना।

गिरावना⑤†—क्रि० स० [हिं० गिराना] दे० 'गिराना'।

गिरास⑤—संज्ञा पुं० [सं० ग्रास] दे० 'ग्रास'।

गिरासना⑤†—क्रि० स० [हिं० गिरास+ना (प्रत्य०)] दे० 'ग्रसना'। उ०—परी रेणु होइ रविहि गिरासा। मानुष पंख लेहि फिरि वासा।—जायसी (शब्द०)।

गिरासी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्राचीन जाति।

विशेष—यह जाति गुजरात देश में रहती थी। इस जाति के लोग बड़े फसादी और डाकू होते थे।

गिराह⑤†—संज्ञा पुं० [सं० ग्राह] ग्राह या मगर नामक जलजंतु।

गिरि¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. दशनामी संप्रदाय के एक प्रकार के संन्यासी।

विशेष—ये अपने नामों के पीछे उपाधि की भाँति 'गिरि' शब्द लगाते हैं। (जैसे—नारायण गिरि, महेश गिरि आदि)। इनमें कुछ लोग मठधारी महंत होते हैं और कुछ जमींदारी तथा अनेक प्रकार के व्यापार करते हैं। इनमें से कुछ लोग वैष्णव हो गए हैं, जो गिरि वैष्णव कहलाते हैं। ये विवाह नहीं करते।

३. परिव्राजकों की एक उपाधि। ४. तांत्रिक संन्यासियों का एक भेद। ५. पारे का एक दोष जिसका शोधन यदि न किया जाय, तो खानेवाले का शरीर जड़ हो जाता है। ६. आँख का एक रोग जिसमें ढेंढर या टेटर निकल आता है और आँख कानी हो जाती है। ७. गेंद (को०)। ८. मेघ। बादल (को०)। ९. आठ की संख्या (को०)। १०. शिला। चट्टान (को०)।

गिरि²—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरि] १. निगलने की क्रिया। २. चुहिया। मूषिका (को०)।

गिरिकंटक—संज्ञा पुं० [सं० गिरिकण्टक] वज्र।

गिरिकंदर—संज्ञा पुं० [सं० गिरिकन्दर] पहाड़ की गुफा (को०)।

गिरिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। महादेव। २. वह जो पर्वत से उत्पन्न हो। ३. गेंद (को०)।

गिरिकच्छप—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ की गुफा में रहनेवाला कछुआ (को०)।

गिरिकदंब, गिरिकदंबक—संज्ञा पुं० [सं० गिरीकदम्ब, गिरिकदम्बक] एक प्रकार का कदंब (को०)।

गिरिकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी केला (को०)।

गिरिकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपराजिता लता। २. चिचिडा। अपामार्ग। ३. पृथ्वी (को०)।

गिरिकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपराजिता या कोयल नाम की लता। २. जवासा।

गिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चुहिया। मुसटी। २. पुरुवंशी वसु राजा की स्त्री जिसकी कथा महाभारत में है।

गिरिकाण—वि० [सं०] गिरी नामक रोग के कारण जिसकी एक आँख नष्ट हो गई हो (को०)।

गिरिकानन—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के ऊपर लगा हुआ बाग (को०)।

गिरिकुहर—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ की खोह या गुफा (को०)।

गिरिकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ की चोटी या शिखर (को०)।

गिरिक्षिप संज्ञा पुं० [सं०] अक्रूर के एक भाई का नाम।

गिरिगुड संज्ञा पुं० [सं०] गेंद। कंदुक (को०)।

गिरिगुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ की गुफा। उ०—प्रथमहि देवन्ह गिरिगुहा राखे रुचिर बनाइ।—मानस, ४।१२।

गिरिचर¹—वि० [सं०] पर्वत पर चलने या रहनेवाला (को०)।

गिरिचर²—संज्ञा पुं० तस्कर। चोर (को०)।

गिरिज¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिलाजीत। २. लोहा। ३. अबरक। अभ्रक। ४. गेरू। ५. एक प्रकार का पहाड़ी महुआ।

गिरिज²—वि० पहाड़ से उत्पन्न।

गिरिजा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगाधिराज हिमालय की कन्या, पार्वती। गौरी।

यौ०—गिरिजाधव गिरिजापति=महादेव। शंकर। गिरिजाकुमार, गिरिजातनय, गिरिजानन्दन, गिरिजासुत=(१) कार्तिकेय। (२) गणेश।

. गंगा। ३. चकोतरा। ४. पहाड़ी केला। ५. चमेली।

गिरिजा²—संज्ञा पुं० [हिं० गिरजा] दे० 'गिरजा²'।

गिरजागृह—संज्ञा पुं० [सं०] पार्वतीमंदिर। उ०—सर समीप गिरजागृह सोहा।—मानस, १। २८।

गिरिजाघर—संज्ञा पुं० [हिं० गिरजाघर] दे० 'गिरजाघर'।

गिरिजामल—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्रक।

गिरिजारमन—संज्ञा पुं० [सं० गिरिजारमण] शंकर। महादेव। शिव। उ०—चरित सिंधु गिरिजारमन वेद न पावहिं पार।—मानस, १।१०३।

गिरिजाल—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत का विस्तार या पर्वतश्रेणी (को०)।

गिरिजाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

गिरिज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

गिरित—वि० [सं०] १. खाया हुआ। भक्षित। २. निगला हुआ (को०)।

गिरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २. समुद्र।

विशेष—जब इंद्र ने पर्वतों के पर काटे थे, तब मैनाक पर्वत समुद्र में जा छिपा था। इसी से समुद्र का यह नाम पड़ा।

गिरिदान⑤—संज्ञा पुं० [फ़ा० गर्दन] दे० 'गरदन'। उ०—उंच कहर कंधान छोट गिरिदान लंब भुअ।—पृ० रा०, ८।५५।

गिरिदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ पर बना हुआ किला।

विशेष—मनु ने इस प्रकार का दुर्ग बड़ा उपयोगी बतलाया है।

गिरिदुहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरिदुहितृ] पार्वती [को०]।

गिरिद्(पु)—अव्य० [फ़ा० गिर्द] दे० 'गिर्द'। उ०—गिरिद् डोरि रेशमं सुपंच रंगयं भ्रमं।—पृ० रा०, १७।५२।

गिरिद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] दर्रा [को०]।

गिरिधर—संज्ञा सं० [सं०] श्रीकृष्ण।

गिरिधरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गिरिधरण] श्रीकृष्ण।

गिरिधातु—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू।

गिरिधारन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गिरिधारण] श्रीकृष्ण।

गिरिधारी—संज्ञा सं० [सं० गिरिधारिन्] श्रीकृष्ण।

गिरिध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

गिरिनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरिनन्दिनी] १. पार्वती। २. गंगा। ३. नदी।

गिरिनगर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरनार पर्वत पर बसा हुआ नगर जो जैनियों का एक पवित्र तीर्थ है। २. पुराण के अनुसार रैवतक पर्वत [को०]।

गिरिनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी नदी [को०]।

गिरिनाइक—संज्ञा पुं० [सं० गिरि+नायक] गिरिराज। गोवर्धन पर्वत। उ०—तिन करि सेवित सब सुखदाइक। धन्य धन्य गोधन गिरिनाइक।—नंद ग्रं०, पृ० २९७।

गिरिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव। उ०—कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा।—तुलसी (शब्द०)।

गिरिनिंब—संज्ञा पुं० [सं० गिरिनिम्ब] बकायन।

गिरिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दो पहाड़ों के बीच का संकीर्ण मार्ग। दर्रा [को०]।

गिरिपीलु—संज्ञा पुं० [सं०] फालसा।

गिरिपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पथरफोड़ नाम का पौधा। २. शिलाजीत (को०)।

गिरिप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के ऊपर का चौरस मैदान। पठार [को०]।

गिरिप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरा गाय।

गिरिफदार‡—वि० [फ़ा० गिरफ़्तार] दे० 'गिरफ्तार'। उ०—अजी करना है उसको गिरिफदार।—मैला०, पृ० २९६।

गिरिबरधर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गिरिवरधर] दे० 'गिरिवरधर'। उ०—गोपीनाथ गोबिंद गोपसुत गुनी गीतप्रिय गिरिबरधर रसाल के।—घनानंद, पृ० ३६५।

गिरिबांधव—संज्ञा पुं० [सं० गिरिबान्धव] महादेव। शिव [को०]।

गिरिबूटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वनस्पति जो औषध के काम में आती है। संगबूटी। अगूरशेफा। वि० दे० 'अंगूरशेफा'।

गिरिभव—वि० [सं०] पर्वत से उत्पन्न। गिरिजात। उ०—सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा।—मानस १।८०।

गिरिभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] पखानभेद।

गिरिमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटज। कुरैया।

गिरिमान—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी। विशालकाय एवं शक्तिशाली हाथी [को०]।

गिरिमृत—संज्ञा स्त्री० [सं०] गेरू।

गिरिमृद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू (को०)।

गिरियक, गिरियाक—संज्ञा पुं० [सं०] गेंद [को०]।

गिरिराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा पर्वत। २. हिमालय। ३. गोवर्द्धन पर्वत। ४. मेरु।

गिरिवर—संज्ञा पुं० [सं०] गिरिराज। उ०—मूक होइ वाचाल पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।—मानस, १।१।

गिरिवरधर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

गिरिवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की पहाड़ी हंसिनी। बतख [को०]।

गिरिवर्य—संज्ञा पुं० [सं०] गिरिवर। हिमालय। उ०—दिए तुमने भारत को दिव्य न जाने कितने नए विचार। तुम्हारे शृंगों से गिरिवर्य। विविध धर्मों का हुआ प्रचार।—सागरिका, पृ० ७।

गिरिव्रज—संज्ञा पुं० [सं०] १. केकय देश की राजधानी। २. जरासंध की राजधानी, जिसे पीछे राजगृह कहते थे।

गिरिश—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव [को०]।

गिरिशाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाज पक्षी।

गिरिशालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता लता।

गिरिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ की चोटी। गिरिकूट [को०]।

गिरिशृंग—संज्ञा पुं० [सं० गिरिशृङ्ग] १. पहाड़ की चोटी। २. गणेश [को०]।

गिरिसंभव[1]—संज्ञा पुं० [सं० गिरिसम्भव] एक प्रकार का पहाड़ी चूहा (को०)।

गिरिसंभव[2]—वि० पहाड़ या पर्वत से उत्पन्न। उ०—सुनत बचन बिहँसे रिषय गिरिसंभव तव देह। नारद का उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह।—मानस, १।७८।

गिरिसानु—संज्ञा पुं० [सं०] पठार। अधित्यका [को०]।

गिरिसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहा। २. शिलाजीत। ३. राँगा। ४. मलय पर्वत।

गिरिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] मैनाक पर्वत।

गिरिसुता—संज्ञा पुं० [सं०] पार्वती।

गिरिस्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहस्थ, हिं० गिरिस्त+ई (प्रत्य०)] दे० 'गृहस्थी'।

गिरिस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी नदी [को०]।

गिरिही(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गृही] दे० 'गृही'। उ०—होइ गिरिही पुनि होइ उदासी। अंतकाल दुनहूँ बिसवासी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३१।

गिरींद्र—संज्ञा पुं० [सं० गिरीन्द्र] १. बड़ा पर्वत। २. हिमालय। ३. शिव। ४. आठ की संख्या [को०]।

गिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गरी] १. वह गूदा जो बीज को तोड़ने पर

उसके अंदर से निकलता है। जैसे—बादाम, अखरोट या खरबूजे आदि की गिरी। २. दे० 'गिरि'। ३. दे० 'गरी'।

गिरीयक—संज्ञा पुं० [सं०] गेंद। कंदुक [को०]।

गिरीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २. हिमालय पर्वत। ३. सुमेरु पर्वत। ४. कैलाश पर्वत। ५. गोवर्धन पर्वत। ६. कोई बड़ा पहाड़। ७. बृहस्पति (को०)।

गिरेबान—संज्ञा पुं० [फ़ा० गरेबान] गले में पहनने के कपड़े का वह भाग जो गरदन के चारों ओर रहता है।

गिरेवा—संज्ञा पुं० [सं० गिरि अथवा सं० ग्रावन्, ग्रावा] १. छोटी पहाड़ी। टीला। २. चढ़ाई का रास्ता।

गिरेश—संज्ञा पुं० [सं० गिरा+ईश] १. ब्रह्मा। २. विष्णु।

गिरैयाँ¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेराँव का अल्पा०] छोटा या पतला गेराँव। उ०—तिय जानि गिरैयाँ गहो बनमाल सो ऐंच लला इँच्यो आवत है।—पद्माकर (शब्द०)।

गिरैयाँ²†—वि० [हिं० गिरना] गिरनेवाला। पतनोन्मुख। जो गिरने को हो।

गिरैया†—वि० [हिं० गिरना+ऐया (प्रत्य०] गिरनेवाला।

गिरौं†—वि० [हिं० गिरो] दे० 'गिरो'।

गिरो—वि० [फ़ा० गिरौ] रेहन। बंधक। गिरवी।

क्रि० प्र०—करना।—धरना।—रखना।

यौ०—गिरो गाठा=रेहन।

गिरोह—संज्ञा पुं० [फ़ा० गिरोह या गुरोह] समूह। समुदाय। जमात। जनसमूह। दल। गोल [को०]।

गिरोही—संज्ञा पुं० [हिं० गिरोह+ई (प्रत्य०)] समूह का आदमी। जमात का आदमी। संगी। साथी [को०]।

गिर्गिट—संज्ञा पुं० [हिं० गिरगिट] दे० 'गिरगिट'।

गिर्जा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गिरजा'। (प्रार्थनामंदिर)

गिर्जाघर—संज्ञा पुं० [हिं० गिरजा+घर] दे० 'गिर्जा'।

गिर्द—अव्य० [फ़ा०] आसपास। चारों ओर। उ०—माया लता रह दुर्म गिर्द है विविध रचा फुलवारी।—सं० दरिया, पृ० १३४।

यौ०—इर्द गिर्द।

मुहा०—गिर्द होना=पास होना। पहुँचना। उ०—आदमी की आवाज कान में आई और हम लठ ले के गिर्द हुए।—सैर कु०, भा० १, पृ० १४।

गिर्दाब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] भँवर।

गिर्दावर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. घूमनेवाला। दौरा करने वाला। २. घूम घूमकर काम की जाँच करनेवाला।

यौ०—गिर्दावर कानूनगो=कलक्टरी मुहकमे का वह छोटा अफसर जो गाँवों में घूम घूमकर पटवारियों या लेखपालों के कागजों की जाँच करता है।

गिलंका†—संज्ञा स्त्री० [देश०] परिहास। मजाक। दिल्लगी।

गिलंदाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिलअंदाजी] १. सड़क बाँध आदि पर मिट्टी डालना। २. पुश्तावंदी।

गिल¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मिट्टी। २. गारा।

यौ०—कहगिल। गिलकारी।

गिल²—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगर। घड़ियाल। २. जंबीरी नीबू।

गिल³—वि० भक्षण करनेवाला। निगलनेवाला।

गिलकना(पु)—क्रि० स० [सं० गिल] भक्षण करना। निगलना। उ०—गिलकी सत कंतरि, कृष्ण उरंधरि, साज सर्व करि जूझारं।—पृ० रा०, ९।११०।

गिलकार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गारा या पलस्तर करने वाला व्यक्ति। राज।

गिलकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गारा लगाने या पलस्तर करने का काम।

गिलकिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] नेनुवाँ या घियातोरी नाम की तरकारी।

गिलगिल¹—संज्ञा पुं० [सं०] नाक नामक जलजंतु। नक्र।

गिलगिल²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिलगिलिया] दे० 'गिलगिलिया'। उ०—पल झपनहार पच्छी अपार। गिलगिल विहार करि डार डार।—सुजान०, पृ० २२।

गिलगिलिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सिरोही नाम की चिड़िया।

विशेष—यह आपस में बहुत लड़ती है। इसे कहीं कहीं किलहँटी और मैना भी कहते हैं।

गिलगिली—संज्ञा पुं० [देश०] १. घोड़े की एक जाति। २. गुदगुदी। ३. मंद सुरसुराहट या खुजली जो किसी अंग के हलके हलके स्पर्श से होती है।

गिलग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] नक्र। गिलगिल [को०]।

गिलजई—संज्ञा स्त्री० [देश०] अफगानिस्तान में रहनेवाली एक जाति।

विशेष—इस जाति के लोग अच्छे शूर वीर होते हैं।

गिलट—संज्ञा पुं० [अं० गिल्ड=सोना चढ़ाना] १. सोना चढ़ाने का काम। २. एक प्रकार की बहुत हलकी और कम मूल्य की धातु, जिसका रंग सफेद और चमकीला होता है और जिससे जेवर और बरतन बनते हैं।

गिलटी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि] १. चेप की गोल छोटी गाँठ।

विशेष—यह शरीर के अंदर संधिस्थान में होती है। कुहनी, बगल, गरदन और घुटने में तथा पेडू और रान के बीच में एक से अधिक गाँठें होती हैं।

२. एक प्रकार का रोग।

विशेष—इसमें या तो संधिस्थान की इन्हीं गाँठों में से कोई एक गाँठ सूज या फूल जाती है अथवा शरीर के किसी अन्य भाग में कोई गाँठ उत्पन्न हो जाती है। भावप्रकाश के अनुसार इनकी उत्पत्ति का कारण मांस, रक्त या मेद आदि को दूषित हो जाना है। गिलटी में प्रायः बहुत पीड़ा होती है, और कभी कभी उसके चीरने तक की नौबत आ जाती है। यदि निकलने के साथ ही गिलटी को सेंक दिया जाय, तो वह दब भी जाती है।

क्रि० प्र०—उभरना।—निकलना।—बैठना।

गिलटी²(पु)†—संज्ञा स्त्री० [देश०] कहकर मुकरना या पलटना।

गिलण¹(पु)—वि० [हिं० गिलना] निगलनेवाला।

गिलण ⓤ—संज्ञा [फ़ा० गर्दन] गर्दन।

गिलन[1]—संज्ञा पुं० [ग्रं० गैलन] १. ग्रँगरेजी नाप।
विशेष—यह १० पाउँड। (प्रायः ५ सेर) का होता है ग्रौर इससे प्रायः तरल पदार्थ नापे जाते हैं।
२. टीन ग्रादि का वह बरतन जिससे इतना पदार्थ नापा जाता हो।

गिलन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गिलित] निगलना। लीलना।

गिलना—क्रि० स० [सं० गिरण ग्रथवा गिलन] १. किसी चीज को बिना दाँतों से तोड़े गले में उतार जाना। निगलना। उ०—(क) वेणु के राज्य में ग्रौषधी गिलि गई होइहैं सकल किरषा तुम्हारी।—सूर (शब्द०)। (ख) तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कोरक सहित ग्रगस्तिया लख्यौ राहु ग्रवतार। कला कलाधर की गिली जनु उगिलत यहि बार।—गुमान (शब्द०)। २. मन ही में रखना। प्रकट न होने देना। उ०—कीधौं हमहिं देख उठि जैहै की उठि हमको मिलिहैं। कीधौं बात उघारि कहैगी की मन ही मन गिलिहै।—सूर (शब्द०)।

गिलबिला[1]—वि० [ग्रनु०] १. बहुत कोमल। पिलपिला। जैसे,—गिलबिला फोड़ा। २. ग्रस्पष्ट भाषण या उच्चारण करनेवाला।

गिलबिला†[2]—संज्ञा पुं० [देश०] मुसलमान।

गिलबिलाना—क्रि० ग्र० [ग्रनु०] १. ग्रस्पष्ट वचन बोलना। ग्रस्पष्ट उच्चारण से कुछ कहना। २. व्याकुल होकर बोलना या ग्रसंबद्ध प्रलाप करना।

गिलबा ⓤ संज्ञा पुं० [ग्र० गल्बह्] कोलाहल। हल्लागुल्ला। शोर।

गिलम[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिलीम=कंबल] १. ऊन का बना हुग्रा नरम ग्रौर चिकना कालीन। २. बहुत मोटा मुलायम गद्दा या बिछौना। जैसे,—(क) झालरनदार झुकि झूमत वितान बिछे गहब गलीचा ग्ररु गुलगुली गिलमैं।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) चीर के चीन नवीनन सों गिलमैं गुलजार हजार बिछाई।—गुमान (शब्द०)।

गिलम[2]—वि० कोमल। नरम। मुलायम।

गिलमाँ—संज्ञा पुं० [ग्र० गिलमा, गुलाम का बहु०] इस्लाम धर्म के ग्रनुसार वे सुंदर बालक जो बहिश्त में धर्मात्माग्रों की सेवा ग्रौर भोग विलास के लिये रहते हैं।

गिलमिल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कपड़ा जो पुराने जमाने में बनता था। उ०—बादला दरिग्राई नौरँग साई जरकस काई झिलमिल है। ताफता कलंदर बाफता बंदर मुसजर सुंदर गिलमिल है।—सूदन (शब्द०)।

गिलसुर्ख—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिलसुर्ख] गेरू।

गिलहरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का कपड़ा।
विशेष—यह कपड़ा सूत का बनता है ग्रौर इसमें मोटी मोटी धारियाँ होती हैं।
२. [स्त्री० गिलहरी] बाँस की फट्टियों ग्रादि का बना हुग्रा एक पात्र, जिसमें पान रखा जाता है। बेलहरा।

गिलहरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गलहरी, कलहरी] एक प्रकार का छोटा जानवर जो एशिया, युरोप ग्रौर उत्तरी ग्रमेरिका में बहुत ग्रधिकता से होता है।
विशेष—गिलहरी की कई जातियाँ होती हैं ग्रौर यह ग्राकार में चूहे से लेकर बिल्ली तक की होती है यह प्रायः छोटे फल ग्रौर दाने खाती है ग्रौर पेड़ों पर रहती है। इसके कान लंबे ग्रौर नुकीले होते हैं ग्रौर दुम घने ग्रौर मुलायम रोयों से ढकी होती है। इसकी पीठ पर कई रंग की धारियाँ भी होती हैं। इसकी दुम के रोएँ से रंग भरने की कूँची बहुत ग्रच्छी बनती है। यह बहुत चंचल होती है ग्रौर बड़ी सरलता से पाली जा सकती है। यह ग्रपने पिछले पैरों के सहारे बैठकर ग्रगले पैरों से हाथों की तरह काम ले सकती है। इसकी चंचलता बहुत भली मालूम होती है। एक बार में यह तीन से चार तक बच्चे दे सकती है। इसे कहीं कहीं चिखुरी या गिलाई भी कहते हैं।

गिला—संज्ञा पुं० [फ़ा० गिलह्] १. उलाहना। उ०—खरिकहू नहिं मिलै कहै कह ग्रनमिले करन दे गिले तू दिनन थोरी।—सूर (शब्द०)। २. शिकायत। निंदा।

गिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिलहरी] दे० 'गिलहरी'।

गिलाजत—संज्ञा स्त्री० [ग्र० गलाजत] १. गंदगी। मल। २. ग्रपवित्रता। ३. गाढ़ापन।

गिलाँण ⓤ, गिलाँणि ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] ग्लानि।

गिलाँन ⓤ, गिलाँनो ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] ग्लानि।

गिलान‡—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] ग्लानि। घृणा। नफरत। उ०—लखि दरिद्र विद्वान कों जग जन करै गिलान।—दीन० ग्रं०, पृ० ७६।

गिलाफ—संज्ञा पुं० [ग्र० गिलाफ़] १. कपड़े की बनी हुई बड़ी थैली जो तकिए, लिहाफ ग्रादि के ऊपर चढ़ा दी जाती है। खोल। २. बड़ी रजाई। लिहाफ। ३. म्यान।

गिलाय—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरि=चुहिया] गिलहरी।

गिलायु—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग।
विशेष—इसमें गले के ग्रंदर ग्राँवले की गुठली के ग्राकार की एक गाँठ हो जाती है। इसमें बहुत पीड़ा होती है ग्रौर रोगी के गले में कोई चीज ग्रटकी हुई मालूम होती है। इस रोग में शस्त्र चिकित्सा कराने की ग्रावश्यकता होती है।

गिलार ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला] गला। गर्दन।

गिलारि ⓤ—संज्ञा पुं० [?] नृसिंह। उ०—खंभा में प्रगट्यो गिलारि।—कबीर ग्रं०, पृ० २१४।

गिलारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिलहरी] दे० 'गिलहरी'।

गिलावा†—संज्ञा पुं० [हिं० गिलावा] दे० 'गिलावा'।

गिलावा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० गिल+ग्राब] वह गीली मिट्टी जिससे राज लोग ईंट जोड़ते हैं। गारा। उ० हीरा ईंट कपूर गिलावा। ग्रौ नग लाय स्वर्ग लय लावा।—जायसी (शब्द०)।

गिलास—संज्ञा पुं० [अं० ग्लास] १. एक गोल लंबा पीने का बरतन। पानपात्र।

विशेष—यह पेंदी की ओर कम और मुँह की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है और इसमें पानी दूध आदि तरल पदार्थ पीते हैं।

२. आलूवालू या ओलची नाम का पेड़।

विशेष—इसका फल बहुत मुलायम और स्वादिष्ट होता है। यह सावन में केवल १५–२० दिन तक फलता है। यह कश्मीर का फल है जिसे अंग्रेजी में चेरी कहते हैं। वि० दे० 'आलू वालू'।

गिलित—वि० [सं०] निगला हुआ। भक्षित [को०]।

गिलिम—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिलम] दे० 'गिलम'। उ०—गिलिम गलीचे दूध फेन को लजाए हैं।—रघुराज (शब्द०)।

गिली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गुल्ली'। उ०—खेलत हौ लाल संग गयो उठि दाँव लै कै भारी खेंच गिली देखि मंदिर में श्याम हैं।—प्रिया० (शब्द०)।

गिलेफ†—संज्ञा पुं० [हिं० गिलाफ] दे० 'गिलाफ'।

गिलोंणा†,गिलोंना†—क्रि० सं० [हिं० गीला] गीला करना।

गिलोंणा†, गिलोंना†—क्रि० स० [हिं० घालना] १. मिश्रित करना। मिलाना। २. गूँधना। सानना।

गिलोइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिलोय] दे० 'गिलोय'। उ०—अमर स्वर्ग पवि तरुन तरु, अमर जुनास गिलोइ। अमर देव के देव हरि, प्रभु सम अमर न कोइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ७०।

गिलोड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिलोड़ी] १. घी, गुड़ और आटे से बनाई जानेवाली मोटी रोटी। २. घी रखने का धातुपात्र।

गिलोय—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गुरुच। गुड़ूची। उ०—नीब की छाल चिरायता, आनै फेर गिलोय।—इंद्रा०, पृ० १५१।

गिलोल—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुलेल] दे० 'गुलेल'।

गिलोला—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलेला] मिट्टी का बना हुआ छोटा गोला जो गुलेल से फेंका जाता है। उ०—तेरी कंठसिरी के नवल मुकता फल न तिनके गिलोला काम करतु बनाय कै।—गुमान (शब्द०)।

गिलौंदा†—संज्ञा पुं० [हिं० गुलेंदा] दे० 'गुलेंदा'।

गिलौरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक या कई पानों का बीड़ा जो साधारण बीड़े से कुछ भिन्न और तिकोना, चौकोना तथा कई आकार का होता है।

क्रि० प्र०—बनाना।

यौ०—गिलौरीदान।

गिलौरीदान—संज्ञा पुं० [हिं० गिलौरी+दान] पान रखने का डिब्बा। पानदान। पनडब्बा।

गिल्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिलटी] दे० 'गिलटी'।

गिल्यान(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] दे० 'ग्लानि'। उ०—ताके मन उपजी गिल्यान। मैं कीन्हीं वहु जिय की हान।—सूर (शब्द०)।

गिल्ला†—संज्ञा पुं० [हिं० गिला] दे० 'गिला'।

गिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुल्ली] दे० 'गुल्ली'।

मुहा०—गिल्लियाँ गढ़ना = वितंडावाद करना। व्यर्थ बकवाद करना।

गिव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गरदन। गला। उ०—चूरहिं गिव अभरन औ हारू। अब काकहँ हम करब सिंगारू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१०।

गिवार(पु)—वि० [हिं० गँवार] दे० 'गँवार'। उ०—नरां नारा सुरा नार, जूज जीत लीधजार। थपे न कोता थुधार है गिवार है गिवार।—रघु रू०, पृ० १३६।

गिष्णु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सामवेद का गानेवाला। यज्ञों में सामवेद के मंत्र को सविधि गानेवाला मनुष्य। २. गवैया। गायक।

गिष्ण्णु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गिष्णु'।

गींजना—क्रि० स० [हिं० मींजना] १. किसी कोमल पदार्थ, विशेषतः कपड़े, फूल आदि को इस तरह दबाना या मलना जिसमें वह खराब हो जाय। उ०—गींजी फूल माल सी लसत सेज परी हाय ऐसी सुकुमारी ऐसे मींजि मारियतु है।—रघुनाथ (शब्द०)। २ खाने के पदार्थ को भद्दे ढंग से एक दूसरे में मिलाना। सानना।

गींद(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गिन्दुक, हिं० गेंद] दे० 'गेंद १'। उ०—अपणी भारी गींद चलाऊँ।—कबीर ग्रं०, पृ० १७७।

गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वाणी। बोलने की शक्ति। २. सरस्वती देवी।

गीउ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गरदन। उ०—दीरघ नैन तीख तहँ देखा। दीरघ गीउ कंठी निति रेखा।—जायसी, (शब्द०)।

गीज(पु)—संज्ञा पुं० [डिं०] आँख का मैल। कीचड़। उ०—आँखि मैं गीज रु नाक में सेडो।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४३६।

गीजड़(पु)—संज्ञा पुं० [डिं०] आँख का मैल। कीचड़।

गीठम—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बटिया सादा कालीन या गलीचा।

गीड़†—संज्ञा पुं० [सं० किट्ट अथवा हिं० कीट=मैल] आँख का कीचड़ या मल।

गीडर—संज्ञा पुं० [हिं० कीट ?] कीचड़ [को०]।

गीणना(पु)—क्रि० स० [हिं० गिनना] दे० 'गिनना'। उ०—मइला राजा धारउ कीसउ हो वेसास, तो हूँ दासी करि गीणी।—वी० रासो, पृ० ३७।

गीत¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह वाक्य, पद या छंद जो गाया जाता हो। गाने की चीज। गाना।

विशेष—संगीत शास्त्र के अनुसार जो वाक्य धातु और मात्रायुक्त हो वही गीत कहलाता है। गीत दो प्रकार का होता है—वैदिक और लौकिक। वैदिक गीत को साम कहते हैं। (दे० 'साम') सारा सामवेद ऐसे ही गीतों से भरा हुआ है। लौकिक गीत भी दो भागों में विभक्त हैं—मार्ग और देशी। शुद्ध राग और रागिनियाँ मार्ग के अंतर्गत हैं और आजकल के चलते गाने (दादरा, टप्पा, गजल, ठुमरी, आदि) देशी कहलाते हैं। गीत के दो भेद और हैं—यंत्र और गात्र।

स्वर निकालनेवाले (बीन, सितार, हारमोनियम आदि) बाजों से उत्पन्न ध्वनिसमूह या गीत को यंत्र और मनुष्य के गले से निकले हुए को गातृ कहते हैं। पर साधारण बोलचाल में यंत्र को कोई गीत नहीं कहता, केवल गातृ को गीत कहते हैं।

क्रि० प्र०—गाना।

मुहा०—**गीत गाना**=बड़ाई करना। प्रशंसा करना। जैसे,—जिससे चार पैसा पाते हैं उसके गीत गाते हैं। **अपना ही गीत गाना**=अपना ही वृत्तांत कहना। अपनी ही बात कहना, दूसरे की न सुनना।

२. बड़ाई। यश। उ०—गीध मानो गुरु, कपि भालु माने मीत कै, पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०४। ३. वह जिसका यश गाया जाय।

गीत[२]—वि० १. गाया हुआ। २. घोषित। कथित [को०]।

गीतक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गीत। गाना। २. प्रशंसा [को०]।

गीतक[२]—वि० १. गीत गानेवाला। २. गीत बनानेवाला [को०]।

गीतकार—संज्ञा पुं० [सं०] गीत लिखनेवाला। गीतों की रचना करनेवाला [को०]।

गीतकीर्ति—वि० [सं०] बहुत प्रसिद्ध। विख्यात [को०]।

गीतक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार की तान।

गीतगोविंद—संज्ञा पुं० [सं० गीतगोविन्द] जयदेव कृत संस्कृत का प्रसिद्ध गीत काव्य।

गीतप्रिय[१]—वि० [सं०] गीतों का प्रेमी। गीतों में रुचि रखनेवाला [को०]।

गीतप्रिय[२]—संज्ञा पुं० १. शिव। २. श्रीकृष्ण। उ०—गोपीनाथ गोविंद गोपसुत गुनी गीतप्रिय गिरिवरधर रसाल के।—घनानंद, पृ० ३६५।

गीतप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

गीतभार—संज्ञा पुं० [सं०] गीत की प्रथम पंक्ति जो टेक के रूप में होती है। टेक। उ०—देखता हूँ मरना ही भारत की नारियों का एक गीतभार है।—लहर, पृ० ७१।

गीतमोदी—संज्ञा पुं० [सं० गीतमोदिन्] किन्नर [को०]।

गीतशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत विद्या [को०]।

गीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह ज्ञानमय उपदेश जो किसी बड़े से माँगने पर मिले। जैसे,—रामगीता, शिवगीता, अनुगीता, उत्तरगीता आदि। २. भगवद्गीता। ३. संकीर्ण राग का एक भेद। ४. २६ मात्रा का एक छंद जिसमें १४ और १२ मात्राओं पर विराम होता है। उ०—मन बावरे अजहूँ समझ संसार भ्रम दरियाउ। इहि तरन को यहीं छोड़ कै कछु नाहिं और उपाय।—(शब्द०)। ५. वृत्तांत। कथा। हाल। उ०—सीता गीता पुत्र की सुनि सुनि भई अचेत। मनो चित्र की पुत्रिका कन क्रम बचन समेत।—केशव (शब्द०)।

गीतातीत—वि० [सं०] १. जो गाया न जा सके। गान के परे। २. जिसका वर्णन न किया जा सके। अकथनीय [को०]।

गीतायन—संज्ञा पुं० [सं०] गायन के साधन, मृदंग, वीणा, बाँसुरी आदि [को०]।

गीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गान। गीत। २. आर्या छंद के भेदों में से एक जिसके विषम चरणों में १२ और सम चरणों में १८ मात्राएँ होती हैं। इसे उद्गाहा या उद्गाथा भी कहते हैं। ३. एक साम मंत्र (को०)।

गीतिका—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती हैं, १४ तथा १२ पर यति होती है और अंत में लघु गुरु होते हैं। उ० धन्य श्री बसुदेव देवकि, पुत्र करि जिन पाइया। धन्य यशुमति नंद जिन पय प्याय गोद खिलाइया।—(शब्द०)। २. एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, जगण, भगण, रगण, सगण और लघु गुरु होते हैं। ३. गीत। गान। गायन।

गीतिकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा काव्य जो गीति प्रधान अथवा गेय हो और आत्मपरक हो। उ०—गीति काव्य और गेय काव्य दोनों एक ही वस्तु नहीं हैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १६७।

गीतिनाट्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा नाटक जिसमें काव्य की प्रधानता हो। काव्य नाटक। उ०—यह दृश्य काव्य गीतिनाट्य के ढंग पर लिखा गया है।—करुणालय, (सूचना)।

गीतिरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का रूपक जिसमें गद्य कम और पद्य या गान अधिक होता है। २. काव्यरूपक (को०)।

गीती—वि० [सं० गीतिन्] गाकर पाठ करनेवाला। गाकर पढ़नेवाला [को०]।

गीत्यार्या—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ५ नगण और एक लघु होता है। इसे अचलधृति भी कहते हैं।

गीथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गीत। गाना। २. वचन। वाणी [को०]।

गीथिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिहथिन] गिरस्तिन। गिरस्ती सँभालनेवाली स्त्री०।

गीथिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहस्थ] गृहस्थिनी। गृहिणी। घरनी। उ०—पलटू भूली गीथिनी कहूँ भात कहुँ दाल।—पलटू०, भा० १, पृ० १०४।

गीद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गीध] दे० 'गीध'। उ०—रज्जब पहुँचै गीद ज्यों अति चलते कै पाय।—रज्जब०, पृ० १७।

गीदड़[१]—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र=लुब्ध या फा० गीदी] [स्त्री० गीदड़ी] सियार। शृंगाल। भेड़िए या कुत्ते की जाति का एक जानवर जो लोमड़ी से मिलता जुलता होता है।

विशेष—यह झुंडों में रहता है और एशिया तथा अफ्रिका में सर्वत्र पाया जाता है। दिन में यह माँद में पड़ा रहता है और रात को झुंड के साथ निकलता है और छोटे छोटे जंतु जैसे, भेड़ मुर्गी, बकरी आदि पकड़कर खाता है। कभी कभी यह मुर्दे तथा मरे हुए जीवों की लाश खाकर ही रह जाता है। यह कुत्ते के साथ जोड़ा खा जाता है। गीदड़ बहुत डरपोक समझा जाता है।

यौ०—**गीदड़ भबकी**=मन में डरते हुए भी ऊपर से दिखाऊ साहस या क्रोध प्रकट करने की क्रिया।

मुहा०—गीदड़ बोलना=बुरा शकुन होना। किसी स्थान पर गीदड़ बोलना=उजाड़ होना। निर्जन होना।
गीदड़[2]—वि० डरपोक। असाहसी। बुजदिल।
गीदड़रूख—संज्ञा पुं० [हिं० गीदड़+रूख=वृक्ष] मझोले कद का एक प्रकार का पेड़ जो समस्त उत्तर, मध्य और पूर्व भारत में अधिकता से होता है।
विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी, बड़ी और कई आकार-प्रकार की होती हैं और अधिकता से पशुओं के चारे के काम में आती हैं। गरमी के आरंभ में इसका पतझड़ हो जाता है। चैत से जेठ तक इसमें बहुत छोटे छोटे लंबोतरे और लाल रंग के फूल होते हैं। इसमें बेर से कुछ छोटे गोल फल भी लगते हैं जो देहात में खाने के काम आते हैं।
गीदर—संज्ञा पुं० [हिं० गीदड़] [स्त्री० गीदरी] दे० 'गीदड़'।
गीदी—वि० [फ़ा०] जिसे साहस न हो। डरपोक। कायर। उ०—गीदी काया देख भुलाया दीनन से क्यों डरता है।—कबीर श०, पृ० १७। २. बेहया। निर्लज्ज।
गीध—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र, प्रा० गिद्ध] १. गृध्र। सिद्ध। २. जटायु नामक गिद्ध। उ०—तबहिं गीध धावा करि क्रोधा।—मानस, ३।२३।
गीधना†Ⓟ—क्रि० अ० [सं० गृध्र=लुब्ध अथवा सं० √ गृध्] १. एक बार कोई अनुकूल काम होते देख सदा उसके प्रयत्न में रहना। एक बार कोई लाभ उठाकर सदा उसका इच्छुक रहना। परचना। उ०—(क) कौन भाँति रहिहै बिरद अब देखिबी मुरारि। बीधे मोसों आय के गीधे गीधहि तार।—बिहारी (शब्द०)। (ख) गीध्यों आय ढीठ हैम तस्कर ज्यों अहि आतुर मति मंद।—सूर (शब्द०) २. ललचना। लोभवश होना।
गीधराज—संज्ञा पुं० [सं०] जटायु। उ०—भरत सिखावन देइ चले, गीधराज मारीच।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११०। (ख) गीधराज सें भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ। गोदावरी निकट प्रभु रहे पर्नगृह छाइ।—मानस, ३।७।
गीबत—संज्ञा संज्ञा [अ० गीवत] १. अनुपस्थिति। गैरहाज़िरी। २. पिशुनता। चुगुल खोरी। चुगली।
गीरⓅ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० गिर्, गी] वाणी। उ०—कुंज तजि गुंजत गहीर गीर तीर तीर रह्यो रंगभौन भरि भौंरन की भीर सों।—देव (शब्द०)।
गीर[2]—प्रत्य० [फ़ा०] १. पकड़नेवाला। जैसे,—राहगीर। अपने अधिकार में रखनेवाला। जैसे,—जहाँगीर (क्वो०)।
गीरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति का एक नाम। २. जीवात्मा।
गीरवाण, गीरवानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गीर्वाण] देवता। सुर। उ०—चहूँ ओर सब नगर के लसत दिवालय चारु। आसमान तजि जनु रह्यौ गीरवान परिवारु।—गुमान (शब्द०)।
गीर्ण—वि० [सं०] १. वर्णित। कहा हुआ। २. निगला हुआ।
गीर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वर्णन। स्तुति। १. निगलने की क्रिया।
गीर्देवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती। शारदा।
गीर्भाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गीर्वाणी' (क्वो०)।
गीर्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकगनी।
गीर्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] देवता। सुर। उ०—गद्यो गिरा गीर्वाणन सों गुनि बहुरि बतावहु बाता।—विश्राम (शब्द०)।
गीर्वाणकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] लवँग। लौंग।
गीर्वाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देववाणी। संस्कृत (क्वो०)।
गीर्वि—वि० [सं०] निगलनेवाला (क्वो०)।
गीला[1]—वि० [हिं० गलना] [वि० स्त्री० गीली] भीगा हुआ। तर। नम। उ०—पग द्वै चलत ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि के रस गीली।—सूर (शब्द०)।
गीला[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली लता।
गीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० गीला+पन (प्रत्य०)] गीला होने का भाव। नमी। तरी।
गीली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़। बरमी।
विशेष—इसके हीर की लकड़ी चिकनी, भारी, मजबूत और सुर्खी लिए पीले रंग की होती है और मेज, कुरसियाँ आदि बनाने के काम में आती है। इसका पेड़ हिमालय की तराई में अधिकता से होता है।
गील्लनाⓅ—क्रि० स० [हिं० निगलना] निगलना। ग्रसना। उ०—चंद कइ भोलइ तोहि गिल्लसइ राहु।—बी० रासो०, पृ० ७२।
गीवⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] दे० 'गिउ', 'ग्रीवा'।
गीवा‡Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] ग्रीवा। गरदन। उ०—राते स्याम कंठ दुइ गीवा। तेहि दुइ फंद डरौं सुठि जीवा।—जायसी (शब्द०)।
गीष्पति—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति। २. विद्वान्। पंडित।
गुंकार—संज्ञा पुं० [अनु० ?] हुंकार। ललकार। उ०—येहि कार के लार गुंकार भयौ।—घट०, पृ० ९८।
गुंग[1]—वि० [फ़ा०] दे० 'गूँगा'। उ०—गुंग सकल पिंगल पढ़ै, पंगु चढ़ै गिरि मेर।—नंद० ग्रं०, पृ० २१६।
गुंग[2]Ⓟ—क्रि० स० [अनु०] गुं गुं की ध्वनि करना। बजना। उ०—गहिर गुंग नींसान जांन बद्दल गुर गज्जिय।—पृ० रा०, ७।३२।
गुंगा†—वि० [हिं० गुंग] दे० 'गूँगा'।
गुंगी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० गूँगा] दोमुहाँ साँप। चुकरैंड।
गुंगी[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुंग+ई (प्रत्य०)] १. गूँगापन। वाक्-शक्ति का अभाव। २. चुप्पी। मौन।
यौ०—गुंगी साधना=चुप हो जाना।
गुंगी[3]—वि० [हिं०] दे० 'गुंग, गूगी'।
गुंचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुञ्चह्] १ कली। कोरक। २. नाच रंग। विहार। जश्न।
मुहा०—गुंचा खिलना=खूब नाच रंग होना। जश्न होना। आनंद उड़ाना।
३. झुरमुट।

यौ०—गुंचादहन=(१) कली जैसे छोटे मुँहवाला। (२) सुमुख (३) प्रेमपात्र या माशूक।

गुंची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जा] दे० 'घुँघची'।

गुंज¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्ज] १. भौंरों के भनभनाने का शब्द। गुंजार। २.आनदध्वनि। कलरव। ३. दे० 'गुंजा'।

यौ०—गुंजमाल। गुंजहार।

४. सोने के तार को गूँथकर बनाया हुआ कई लड़ का गहना जो गले में पहना जाता है। गोप। ५.फूलों या फलियों का गुच्छा (को०)।

गुंज²—संज्ञा पुं० [देश०] सलई का पेड़।

गुंज³—संज्ञा स्त्री० [देश०] सलाह। राय। उ०—अजन कणगढ़ ईखवा, धरियो गुंज सधीर।—रा० रू०, पृ०३५५।

गुंजक¹—संज्ञा पुं० [सं० गुञ्जक] एक प्रकार का पौधा [को०]।

गुंजक²—वि० गुंजन करनेवाला। भनभनानेवाला [को०]।

गुंजन—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जन] १. भौंरों के गूँजने की क्रिया। कोमल मधुर ध्वनि निकालने की क्रिया। भनभनाहट। २. गुनगुनाने की क्रिया या स्थिति [को०] ३.चिड़ियों का बसेरा लेते हुए या प्रातःकाल चहचहाना (को०)।

गुंजना—क्रि० अ० [हिं० गुंज] भौंरों का भनभनाना। मधुर ध्वनि निकालना। गुनगुनाना। उ०—सुंदर बन कुसुमति अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा।—तुलसी (शब्द०)।

गुंजनिकेतन—संज्ञा पुं० [सं० गुञ्ज+निकेतन] भौंरा। मधुकर। उ०—अति मंजुल वंजुल कुंज विराजैं। बहु गुंजनिकेतन पुंजनि साजैं।—केशव (शब्द०)।

गुंजर—संज्ञा पुं० [हिं० गुंजार] गुंजार।गुंजन।

गुंजरण—संज्ञा पुं० [गुञ्जन, हिं० गुंजार] गुंजार। गूँज। उ०—मधुर गुंजरण भर, अब बहता प्राण समीरण सुख से चंचल।—युगपथ, पृ० १४५।

गुंजरना—क्रि० अ० [हिं० गुंजार] १.गुंजार करना। भौंरों का गूँजना। भनभनाना। मधुर ध्वनि निकालना। उ० और भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर भीर और डौर झौरन में बौरन के ह्वै गए।—पद्माकर (शब्द०)। २.शब्द करना। गरजना। उ०—बाघ सिंह गुंजरत, ? गुंज कुंजर तरु तोरत।—केशव (शब्द०)।

गुंजलक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १.गेंडुली। कुंडली। २. कपड़े आदि की शिकन। सिलवट। ३. उलझन की बात। गुत्थी। ४. गाँठ। ग्रंथि।

गुंजल्क—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुंजलक] कुंडली या कुंडल। उ०—चाँदनी०, पृ० १०८।

गुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं०गुञ्जा] १. घुँघुची नाम की लता।

विशेष— यह जंगल में झाड़ों पर चढ़ती है और इसकी फलियों में से अरहर के बराबर खूब लाल दाने निकलते हैं। वि० दे० 'घुँघची'।

गुंजाइश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. स्थान। जगह। अँटने की जगह। समाने भर को स्थान। अवकाश। जैसे,—इस कोठरी में दस आदमियों से अधिक की गुंजाइश नहीं है। २. समाई। सुवीता। जैसे,—इस समय इतने की गुंजाइश तो हमारे यहाँ नहीं है। ३. लाभ। बचत।

गुंजान—वि० [फ़ा०] घना। अविरल। सघन।

गुंजायमान—वि० [सं० गुञ्जायमान] मधुर ध्वनि करता हुआ। गुंजारता हुआ। गूँजता हुआ।

गुंजार—संज्ञा पुं० [सं० गुंज+आर] भौंरों की गूँज। भनभनाहट। उ०—जहँ वृंदावन आदि अजर जहँ कुंजलता विस्तार। तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार।—सूर (शब्द०)।

गुंजारना—क्रि० अ० [हिं० गुंजार] भौंरों की गूँजना। २.मधुर ध्वनि करना।

गुंजारित—वि० [हिं० गुंजार+इत (प्रत्य०)] गुंजाया हुआ। गुंजित।

गुंजाहल पु—संज्ञा पुं० [सं० गुञ्जा+फल] गुंजा। गुंजा का बीज। उ०—अहर रंग रत्ताउ हुवइ, मुख कागज मसि अन्न। जाँरायउ गुंजाहल अछइ, तेण न ढूकउ मन्न।—ढोला०, दू०, ५७२।

गुंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जिका] घुँघची [को०]।

गुंजिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँज=लपेटा हुआ पतला तार] एक प्रकार का जेवर जिसे औरतें कान में पहनती हैं।

गुंजी—वि० [सं० गुञ्जिन्] गुंजनयुक्त। २.गूँजनेवाला [को०]।

गुंझ पु—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि] उलझन। गुत्थी। उ०—करै दिखाया और को, आप समानै गुंझ।—दरिया० बानी, पृ० ३८।

गुंझल पु—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुंजलक, और गुरझन] झुर्रियाँ। उ०—तन गुंझल पड़ने लगी सूखन लागी आँत।—सहजो०, पृ० २६।

गुंटा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड अथवादेश०] ताल। छोटा जलाशय।

गुंठ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा घोड़ा। टट्टू। टाँघन। उ०—कोई किसमी भुठार फुलदाई। गरी गुंठ जुम्मिल दरियाई।—विश्राम (शब्द०)।

गुंठन—संज्ञा पुं० [सं० गुण्ठन] १. आच्छादन। ढक्कन। २.घूँघट। ३.लेपन। जैसे,—भस्मगुंठन [को०]।

गुंठा¹—संज्ञा पुं० [हिं० गठना] एक प्रकार का घोड़ा जो नाटे कद का होता है। टाँगन।

गुंठा²—वि० [देश०] नाटे कद का। नाटा। बौना।

गुंठित—वि० [सं० गुण्ठित] १.ढका हुआ। २. छिपा हुआ। ३.आवृत। ४. लेपन किया हुआ। लेपित [को०]।

गुंड¹—संज्ञा पुं० [?] मलार राग एक का भेद। उ०—पिक बैनी मृग लोचनी सारद ससि सम तुंड। राम सुयश सब गावहीं सस्वर सारँग गुंड।—तुलसी (शब्द०)।

गुंड²—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसेरू का पौधा। २. पेषण। चूर्ण करना (को०)।

गुंड³—वि० पिसा हुआ। चूर्ण किया हुआ।

गुंडई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुंडा] गुंडापन। शोहदापन। बदमाशी।

गुंडक—संज्ञा पुं० [सं० गुण्डक] १. धूल। २. चूर्ण। ३. तेल रखने का बरतन। तैलपात्र। ४. कर्णप्रिय कोमल मधुर ध्वनि। ५. गंदा आटा। ६. गंदी धूल मिली भोज्य सामग्री (को०)।

गुंडन—संज्ञा पुं० [सं० गुण्डन] गुंठन। छिपाव।

गुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] कुंडली। गेंडुरी (को०)।

गुंडा¹—[सं० गुण्डक = मलिन][वि० स्त्री० गुंडी] १. दुर्वृत्त। पापी। बदचलन। कुमार्गी। बदमाश। २. छैला। चिकनिया।

गुंडा²—संज्ञा पुं० बदमाश आदमी।

गुंडा—संज्ञा पुं० [सं० गुण्ड] गोला। उ०- अति गह सुमर खोदाए खाए लें भाँग क गुंडा।—कीर्ति०, पृ० ४०।

गुंडाना—वि० [हिं० गुंडा] गुंडों का। गुंडापन लिए हुए।

गुंडापन—संज्ञा पुं० [हिं० गुंडा+पन (प्रत्य०)] बदमाशी।

गुंडासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण्डासिनी] एक प्रकार का तृण।
विशेष—यह वैद्यक में कटु, तिक्त, उष्ण और पित्त, दाह, शोष तथा व्रण दोष का नाशक कहा है।
पर्या०—गुंडाला। गुड़ाला। गुच्छमूलिका। चिपिटा। तृणपत्री। यवासा। पृथुला। विष्टरा।

गुंडिक—संज्ञा पुं० [सं० गुण्डिक] आटा। चूर्ण (को०)।

गुंडिचा—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण्डिचा] १. पुरुषोत्तम के १२ उत्सवों में से एक। २. इस उत्सव का स्थान। ३. उत्कल खंड (को०)।

गुंडित—वि० [सं० गुण्डित] १. चूर्ण किया हुआ। २. धूल से ढका हुआ (को०)।

गुंडी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] सूत की लच्छी। गेंडुरी।

गुंडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड] पीतल का छोटा जलपात्र या कलसा।

गुंडीर—वि० [सं०] १. चूर्ण करनेवाला। पीसनेवाला २. नष्ट भ्रष्ट करनेवाला (को०)।

गुंदल—संज्ञा पुं० [सं० गुन्दल] छोटे नगाड़े या ढोल की मंद ध्वनि (को०)।

गुंदाल—संज्ञा पुं० [सं० गुन्दाल] चातक। पपीहा (को०)।

गुंद्र—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्र] एक प्रकार की घास। शर तृण (को०)।

गुंद्राल—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्राल] चातक। पपीहा (को०)।

गुंफ—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फ][वि० गुंफित] १. उलझन। फँसाव। दो या कई वस्तुओं का परस्पर गुत्थमगुत्था। २. गुच्छा। ३. दाढ़ी। गलमुच्छा। ४. कारणमाला अलंकार। ५. सज्जा (को०)। ६. बाजूबंद (को०)। ७. संयोजक। रचना। व्यवस्था (को०)।

गुंफन—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फन] [वि० गुंफित] १. उलझन। फँसाव। गुत्थमगुत्था। गूँथना। गाँथना। २. क्रमबद्ध करना (को०)।

गुंफना—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंफना] १. गूँथना। २. व्यवस्था। रचना। ३. शब्दों और अर्थ की वाक्य में सम्यक् रचना (को०)।

गुंफा—संज्ञा सं० [सं० गुहा; मरा०, हिं० गुफा] दे० 'गुफा'। उ०—मथुरा की जैन मूर्तियाँ और कलिंग की जैन गुंफाओं की मूर्तियाँ प्रायः एक सी हैं।—भा० इ० रू०, पृ० ९४१।

गुंबज—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुंबद] देवालयों की गोल गेंदनुमा छत।
यौ०—गुंबजदार।

गुंबजदार—वि० [फ़ा० गुंबददार] जिसपर गुंबज हो।

गुंबद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'गुंबज'।

गुंबदी—वि० [फ़ा०] १. गुंबद की शक्ल का। गुंबदवाला।

गुंबा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+अंब = आम] वह कड़ी गोल सूजन जो सिर या मत्थे पर चोट लगने से होती है। गुलमा। गूमड़ा।

गुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुम्फ=गुच्छा] अंकुर।

गुंमज—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुंबद, हिं० गुंबज] दे० 'गुंबद'। उ०—कसे कंचुकी मैं दुवौ उच्च कुच करत विहार। गुंमज के गजकुंभ के गरभ गिरावनहार।—म० सप्तक, पृ० ३५३।

गुंमट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गुंबद'। उ० —गुंमट में जब जाय लगा, मुक्ता सो नजर में आवत है।—पलटू०, पृ० ११।

गुंमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गून=रस्सी] पाल खींचने की रस्सी।
मुहा०—गुम्मी बाँधना—पाल को खींच खाँचकर ठीक करना। —(लश०)।

गुँगवहरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँगा+बहरा] एक प्रकार की लंबी मछली जो देखने में साँप की तरह मालूम होती है। बाम। बाँबी।

गुँगुआना—क्रि० अ० [अनु०] १. धुआँ देना। अच्छी तरह न जलना। उ०—विरह की ओदी लाकरी सपचै औ गुँगुआय। दुख ते तबहीं बाँचिहौ, जब सगरो जरि जाय।—कबीर (शब्द०)। २. गूँ गूँ शब्द करना। अस्पष्ट शब्द निकालना। गूँगे की तरह बोलना।

गुँजरा—संज्ञा पुं० [हिं० गजरा] दे० 'गजरा'। उ०—गुँजरा हियरे विहरै तन सोभित, धातु विचित्र लह्यो करिये।—नट०, पृ० १६।

गुँजाना—क्रि० स० [हिं गूँजना] गुंजनमय करना। गूँज से भरना।

गुँडली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १. फेटा। कुंडली। २. गेंडुरी। इंडुरी।

गुँथना—क्रि० अ० [हिं० गुथना] दे० 'गुथना'।

गुँदला—संज्ञा पुं० [सं० गुण्डाला] नागरमोथा नाम की घास जो प्रायः दलदल के पास होती है।

गुँदीला—वि० [हिं० गोंदीला] दे० 'गोंदीला'।

गुँधना¹—क्रि० अ० [सं० गुध=क्रीडा अथवा हिं० गूँधना का अक० रूप] पानी में सानकर मसला जाना। माँड़ा जाना। साना जाना। जैसे,—आटा गुँध रहा है।

गुँधना²—क्रि० अ० [सं० गुल्य या गुत्थ=गुच्छ] तागों, बाल की लटों, या इसी प्रकार की और वस्तुओं का गुच्छेदार लड़ी के रूप में बनना। गुँथना। जैसे, चोटी गुँधना।

गुँधवाना—क्रि० स० [हिं० गूँधना का प्रे० रूप] गूँधने का काम दूसरे से कराना।

गुँधाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँधना] १. गूँधने या माड़ने की क्रिया या भाव। २. गूँधने या माड़ने की मजदूरी। ३. गूँधने की क्रिया या भाव। ४. गूँधने या गूँधने की मजदूरी। जैसे,—चोटी गुँधाई।

गुँधावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँधना] १. गूँधने या गूँथने की क्रिया। गूँथने या गूँधने का ढंग।

गुश्रा संज्ञा पुं० [सं० गुवाक] १. एक प्रकार की सुपारी। चिकनी सुपारी। उ०—गुश्रा सुपारी जायफर सब फर फरे ग्रपूर। श्रास पास घन इँबिली ग्रउ घन तार खजूर।—जायसी (शब्द०)। २. सुपारी। उ०—घोंटा कुकर्म गुश्रा पुनि पूग सुपारी जाहि।—नंददास (शब्द०)।

गुश्रार—संज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] ग्वार।

गुश्रारपाठा—संज्ञा पुं० [हिं० ग्वारपाठा] दे० 'ग्वारपाठा'।

गुश्रारि—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वार] दे० 'ग्वार'।

गुश्रारो—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वार] दे० 'ग्वार'।

गुश्रालिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वार] दे० 'ग्वार'।

गुइयाँ[1]—संज्ञा स्त्री० पुं० [हिं० गोहन = साथ] १. खेल का साथी। २ सखा। मित्र। सँघाती। ३. सखी। सहचरी। उ०—तुम्हारे धन्य भाग जो तुम्हारे पास सबसे छुपके मैं जो इनकी लड़कपन की गुइयाँ हूँ मुझे ग्रपने साथ ले के ग्राई हैं।—ग्रयोध्या० (शब्द०)। दे० 'गोइयाँ'।

गुईं—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुइयाँ] दे० 'गुइयाँ'। उ०—नहीं गुईं, इसमें बड़ा भेद है, उसे सुनोगी तो छाती में छेद हो जायगा।—श्यामा०, पृ० ८२।

गुखरू—संज्ञा पुं० [हिं० गोखरू] दे० 'गोखरू'।

गुगरल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बत्तख।

गुगानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पानी के ऊपर की हलकी हिलोर जो थोड़ी हवा के कारण उठती है। खलभली।—(लश०)।

गुगुलिया—संज्ञा पुं० [अनु०] बंदर नचानेवाला। मदारी।

गुग्गुर—संज्ञा पुं० [सं० गुग्गुल] दे० 'गुग्गुल'।

गुग्गुल—संज्ञा पुं० [सं०] एक काँटेदार पेड़।

विशेष—यह सिंध, काठियावाड़, राजपूताना, खानदेश ग्रादि में होता है। इस पेड़ के छिलके को जाड़े के दिनों में स्थान स्थान पर छील देते हैं जिससे उन स्थानों से कुछ हरापन लिए भूरे रंग का गोंद निकलता है। यही गोंद बाजार में गुग्गुल के नाम से बिकता है। यह पेड़ वास्तव में मरुभूमि का है इससे ग्ररब ग्रौर ग्रफ्रीका में इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं। बलसाँ ग्रौर बोल (मुर) नाम के गोंद जो मक्का ग्रौर ग्रफ्रीका से ग्राते हैं पश्चिमी गुग्गुल ही से निकलते हैं। इनमें से करम या बंदर करम उत्तर ग्रौर मीटिया या चिनाई बोल मध्यम होता है। भारतवर्ष में गुग्गुल की चलान विशेषकर ग्रमरावती से होती है। बंबई में इसे गारे में भी मिलाते हैं जो दर्जबंदी के काम में ग्राता है। गुग्गुल को चंदन इत्यादि के साथ मिलाकर सुगंध के लिये जलाते हैं। वैद्यक में गुग्गुल वीर्यजनक, बलकारक, टूटी हड्डी जोड़नेवाला, स्वरशोधक तथा वातव्याधि ग्रौर कोढ़ को दूर करनेवाला माना जाता है। राजनिघंटु में गुग्गुल के रस के ग्रनुसार पाँच भेद किए हैं। प्रयोगामृत में गुग्गुल की परीक्षाविधि इस प्रकार लिखी है, जो ग्राग में गिरने से जल जाय, गरमी पाकर पिघल जाय, ग्रौर गरम जल में डालने से घुल जाय वह गुग्गुल उत्तम होता है। ग्रौषध में नया गुग्गुल काम में लाना चाहिए, पुराना नहीं। खाने के लिये गुग्गुल प्रायः शोधकर काम में लाया जाता है। इसे कई प्रकार से शोधते हैं। कोई गिलोय या त्रिफला के काढ़े ग्रथवा दूध में पकाते हैं, कोई दशमूल के गरम काढ़े में डालकर उसे छान लेते हैं ग्रौर फिर धूप में सुखा देते हैं।

पर्या०—कालनिर्यास। महिषाक्ष। पलंकष। जटायु। कौशिक। देवधूप। शिवपुर। कुंभ। उलूखलक। सर्वसह। उप। कुंती। पनद्विष्ट पुट। वायुघ्न। रूक्षगंधक।

२. एक बड़ा पेड़ जो दक्षिण में कोंकण ग्रादि प्रदेशों में होता है।

विशेष—इसके पत्ते जब तक नए रहते हैं प्याजी रंग के दिखाई पड़ते हैं। पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर इन पेड़ों की बड़ी शोभा दिखाई पड़ती है। इनमें से एक प्रकार की राल या गोंद निकलता है जो दक्षिण का काला डामर कहलाता है। यह राल वारनिश बनाने के काम में विशेष ग्राती है। पेड़ को राल धूप ग्रौर मंद धूप भी कहते हैं।

३. सलई का पेड़ जिससे राल या धूप निकलती है।

गुग्गुलक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुग्गुल'।

गुग्गुलु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुग्गुल'।

गुच—संज्ञा पुं० [हिं०] डाढ़ीदार भेड़।

विशेष यह भेड़ पंजाब में पाई जाती है।

गुची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छ] सौ पानों की गड्डी। ग्राधी ढोली।

गुच्ची[1]—संज्ञा स्त्री० [ग्रनु०] भूमि में बना हुग्रा बहुत छोटा गड्ढा जिसे लड़के गोली या गुल्ली डंडा खेलते समय बनाते हैं।

गुच्ची[2]—वि० बहुत छोटी। नन्ही। जैसे,—गुच्ची ग्राँख (शब्द०)।

गुच्चीपारा—संज्ञा पुं० [हिं० गुच्ची = गड्ढा + पारना = डालना] एक खेल जिसमें लड़के एक छोटा सा गड्ढा बनाकर उसमें कौड़ियाँ या गोलियाँ फेंकते हैं।

गुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुच्छा। २. एक में बँधे या लगे हुए फूलों का समूह। ३. घास की जूरी।

यौ०—गुच्छदंतिका। गुच्छपत्र। गुच्छपुष्प। गुच्छफल। गुच्छमूलिका। गुच्छार्ध।

३ वह पौधा जिसमें दृढ़ कांड या पेड़ी न हो, केवल पत्तियाँ या पतली लचीली टहनियाँ फैलें। झाड़। जैसे,—धान्यमल्लिका ग्रादि। ४. बत्तीस लड़ी का हार। ५. मोती का हार। ६. मोर की पूँछ।

गुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुच्छ'।

गुच्छकरिएश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ग्रन्न। रागी धान [कौ०]।

गुच्छकरंज—संज्ञा पुं० [सं० गुच्छकरञ्ज] करंज का एक प्रकार(को०)।
गुच्छदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छदन्तिका] कदली। केला।
गुच्छपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।
गुच्छपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. अशोक वृक्ष। २. सतिवन या छतिवन का पेड़। ३. रीठा। ४. धवई या धाय का पेड़। धातकी।
गुच्छफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रीठा। २. निर्मली। ३. दौना। ४. मकोय। काकमाची। ५. अंगूर। ६. कदली।
गुच्छफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्राक्षा। २. कदली (को०)।
गुच्छमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोंदला घास।
गुच्छल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास (को०)।
गुच्छा—संज्ञा पुं० [सं० गुच्छ] १. एक में लगे या बँधे कई पत्तों, फूलों या फलों का समूह। जैसे,—अंगूर का गुच्छा, फूलों का गुच्छा। २. एक में लगी, गुँथी या बँधी छोटी वस्तुओं का समूह। जैसे,—घुघुरुओं का गुच्छा, कुंजियों का गुच्छा। ३. फुलरा। फुँदना। झब्बा।
गुच्छातारा—संज्ञा पुं० [हिं० गुच्छा+तारा] कचपचिया नाम का तारा।
गुच्छार्द्ध, गुच्छार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] चौबीस लड़ी का हार। (किसी किसी के मत से) सोलह लड़ी का हार।
गुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छ] १. करंज। कंजा। २. रीठा। ३. एक प्रकार का पौधा।

विशेष—यह पंजाब के ठंडे स्थानों में तथा कश्मीर में होता है। इसके फूलों या बीजकोश के गुच्छों की तरकारी बनती है और वे सुखाकर बाहर भेजे जाते हैं।

गुच्छेदार—वि० [हिं० गुच्छा+फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें गुच्छा हो।
गुज—संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की एक कील जो तीखी और परे के गोड़ के छेदों में लगाई जाती है। (रेशम खोलनेवाले)।
गुजर—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुज़र] १. निकास। गति। जैसे,—उस रास्ते से गुजर मुशकिल है। २. पैठ। पहुँच। प्रवेश। जैसे,—वहाँ फरिश्तों तक का तो गुजर नहीं आदमी की कौन चलावे। ३. निर्वाह। कालक्षेप। जैसे,—इतने वेतन में कैसे गुजर हो सकता है।

यौ०—गुजर बसर। गुजरवान। गुजरगाह।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गुजरगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुज़र+गाह (स्थान)] १. रास्ता। बाट। २. घाट जहाँ से कोई नदी पार की जाय।
गुजरना¹—क्रि० अ० [फ़ा० गुज़र+हिं० ना (प्रत्य०) १. समय व्यतीत करना। होना। कटना। बीतना। जैसे,—रात तो जैसे तैसे गुजरी पर दिन कैसे कटेगा।

मुहा०—किसी पर गुजरना=किसी पर (संकट या विपत्ति) पड़ना। जैसे,—हमपर जो गुजरी, हमीं जानते हैं।

२. किसी से होकर आना या जाना। जैसे,—बड़े लाट साहेब शिमला से कलकत्ता जाते समय बनारस से गुजरेंगे।

मुहा०—गुजर जाना=मर जाना। जैसे,—कई दिन हुए वे गुजर गए।

३. नदी पार करना। ४. निर्वाह होना। पटना। निपटना। बनना। निभना। जैसे,—तुम चिंता न करो, उन दोनों की खूब गुजरेगी। ५. (दर्खास्त आदि का) पेश होना। ६. मन में आना। विचार में आना।

गुजरनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुज़रनामह्] किसी मार्ग से जाने का अधिकारपत्र। राहदारी का परवाना। पारपत्र।
गुजर बसर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] निर्वाह। गुजारा। कालक्षेप।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—गुजर बसर करना=किसी प्रकार समय व्यतीत करना। गुजर बसर होना=किसी प्रकार समय व्यतीत होना।

गुजरबान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मल्लाह। पार उतारनेवाला। २. वह व्यक्ति जो घाट की उतराई वसूल करता हो।
गुजरात—संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर+राष्ट्र] [वि० गुजराती] भारतवर्ष के पश्चिम प्रांत का एक देश जो राजपूताने के आगे पड़ता है।
गुजराती¹—वि० [हिं० गुजरात] १. गुजरात देश का। गुजरात का निवासी या रहनेवाला। गुजरात देश संबंधी। गुजरात देश में उत्पन्न। जैसे,—गुजराती इलायची। २. गुजरात का बना हुआ। जैसे,—गुजराती सेंदुर।
गुजराती²—संज्ञा स्त्री० १. गुजरात देश की भाषा। २. छोटी इलायची। जैसे, गुजराती इलायची।
गुजराती³—संज्ञा पुं० गुजरात का निवासी। गुजरात में रहनेवाला।
गुजरान—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुज़रान] निर्वाह। गुजर। कालक्षेप। उ०—केवल कंदमूल पर अपनी गुजरान करना।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ३८०।
गुजरानना(पु)—क्रि० स० [हिं० गुजारना] १. उपस्थित या पेश करना। २. बिताना। व्यतीत करना।
गुजरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजरी] १. गूजर जाति की स्त्री। ग्वालिन। गोपी। २. † धोबियों के नृत्य में स्त्री के रूप में नाचनेवाला। उ०—लो छन छन, छन छन, छन छन, छन छन नाच गुजरिया हरतो मन।—ग्राम्या०, पृ० ३१।
गुजरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजर] १. कलाई में पहनने की एक प्रकार की पहुँची।

विशेष—इसके गोल दानों की कोर पर छोटी बिंदियाँ रहती हैं। मारवाड़िनें इसे बहुत पहनती हैं।

२. दीपक राग की एक रागिनी।

विशेष—कोई कोई इसे मेघ राग की रागिनी मानते हैं।

३. वह भेड़ जिसके कान न हों या कटे हुए हों। बूची।

गुजरी²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजरी] दे० 'गूजरी'। उ०—'गुजरी एक वृंदावन माँहीं। तिन पुनि कथा सुनी एक ठाहीं।—घट०, पृ० २२६।
गुजरी³—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुजरना] ग्राम की सड़क या मार्ग के किनारे लगनेवाला बाजार।

गुजरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० गूजर] १. गूजर का पुत्र। गूजर लड़का। २. गूजर जाति का व्यक्ति।

गुजरेटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजर] १. गूजर जाति की कन्या। गूजर की बेटी। २. गूजरी। ग्वालिन।

गुजश्ता—वि० [फ़ा० गुजश्तह्] बीता हुआ। गत। व्यतीत। भूत (काल)। जैसे, गुजश्ता हाल।

गुजाना(पु)—क्रि० स० [हिं० गुँजाना] दे० 'गुँजाना'। उ०—नर बीर दिवादिव देवस पुब्बह ग्रब्ब गुजाइया पुब्ब ढरे।—पृ० रा०, १३।१३१।

गुजार—वि० [फ़ा० गुजार] गुजारनेवाला। करनेवाला। जैसे, शुक्र-गुजार, मालगुजार।

विशेष—इसका प्रयोग समस्त पद में ही अंत में मिलता है।

गुजारना—क्रि० स० [फ़ा० गुजार+हिं० ना (प्रत्य०)] १. बिताना। काटना। २. उपस्थित या पेश करना (क्व०)। ३. (कष्ट में) डालना।

मुहा०—नमाज गुजारना=ईश्वर की प्रार्थना करना। अरजी गुजारना=किसी बड़े हाकिम के दरबार में प्रार्थनापत्र पेश करना।

गुजारा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुजारह्] १. गुजर। गुजरान। निर्वाह। २. वृत्ति जो किसी को जीवननिर्वाह के लिये दी जाय। ३. नाव या घाट की उतराई। ४. महसूल लेने का स्थान जो सड़क पर हो। ५. मार्ग। ६. घाट।

गुजारिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुजारिश] निवेदन।

गुजारिशनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुजारिशनामह्] प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र।

गुजारेदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुजारह्+दार] जीवननिर्वाह के लिये वृत्ति पानेवाला व्यक्ति।

गुजी†—संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्य] नाक का मल जो सूखकर नथुनों के भीतर ही जम जाता है। नकटी।

गुजुवा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गुजी, गुजुई] एक प्रकार का काला कीड़ा या गुबरैला जो बरसात में पैदा होता है। यह गोबर के नीचे बिल बनाकर रहता है।

गुज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर] दे० 'गूजर'। उ०—बुल्यो वर गामिय गुज्ज गवार। कहै सुरतानप सेन उवार।—पृ० रा०, १२।१३६।

गुज्जर†—संज्ञा पुं० [हिं० गूजर] दे० 'गूजर'।

गुज्जरी—संज्ञा पुं० [सं०] १. गूजरी। २. एक रागिनी जो भैरव राग की स्त्री है।

विशेष—किसी किसी का मत है कि यह मेघ राग की स्त्री है।

गुज्झ(पु)—वि० [हिं० गुज्झा] दे० 'गुज्झा'। उ०—महरम दिलजानी भँउरा गुज्झ गलाँ दी घुंडियाँ खोलम।—घनानंद, पृ० ५४८।

गुज्झना(पु)—क्रि० अ० [सं० गुह्य] छिपना।

गुज्झा[1]—संज्ञा पुं० [सं० गुह्यक] १. गोझा नाम की बाँस की कील। दे० 'गोझा'। २. एक प्रकार की कँटीली घास। गोझा। ३. गूदा। रेशेदार गूदा।

गुज्झा[2]†—वि० छिपा हुआ। अप्रकट। गुप्त। भीतरी (पश्चिम)।

गुज्झाना—क्रि० स० [सं० गुह्य] छिपाना। गुप्त करना।

गुझवाती—संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्य+हिं० बात] १. गुप्त बात। छिपी हुई बात। रहस्यमय बात।

गुझरोट†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गुह्य, प्रा० गुज्झ+सं० आवर्त्त प्रा० आवट्ट, आडट्ट] १. कपड़े की सिकुड़न। शिकन। सिलवट। उ०—कर उठाय घूँघट करति, उसरन पट गुझरोट। सुख मोटैं लूटी ललन लखि ललना की लोट।—बिहारी (शब्द०)। २. स्त्रियों की नाभि के पास का भाग जहाँ त्रिवली या पेटी रहती है।

गुझरोट—संज्ञा पुं० [हिं० गुझरोट] दे० 'गुझरोट'।

गुझरोटा—संज्ञा पुं० [हिं० गुझरोट] दे० 'गुझरोट'।

गुझिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्यक, प्रा० गुज्झअ, गुज्झा] १. एक प्रकार का पकवान। कुसली। पिराक।

विशेष—मैदे की छोटी लोई में मीठा, मसाला आदि पूर भरकर उसे दोहर देते हैं और फिर उसकी धनुषाकार ओंठ या किनारे को मोड़ तोड़कर बंद कर देते हैं। अंत में इसी बंद लोई को घी में छान लेते हैं।

२. खोए की एक मिठाई।

विशेष—यह ऊपर लिखे पकवान के आकार की होती है और इसके भीतर थोड़ी मिश्री अथवा इलायची और मिर्च रहती है।

गुझी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्य]। गुप्त। छिपी हुई। उ०—साईं सिका सउकेला, गुझी गालि सुनाइड़े।—दादू०, पृ० ५४४।

गुझौट†—संज्ञा पुं० [हिं० गुझरोट] दे० 'गुझरोट'।

गुट[1]—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ=समूह] १. किसी विशेष अभिप्राय से बनाया हुआ दल। २. दे० 'गुट्ट'।

क्रि० प्र०—बनाना।—बाँधना।

यौ०—गुटबंदी। गुटबाज। गुटबाजी।

गुट[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] कबूतरों के बोलने का स्वर (क्व०)।

गुटकना[1]—क्रि० अ० [अनु०] कबूतर की तरह गुटरगूँ करना।

गुटकना†[2]—क्रि० स० [हिं० गुटकना] १. निगलना। खा जाना।

गुटका—संज्ञा पुं० [सं० गुटिका] १. दे० 'गुटिका'। २. छोटे आकार की पुस्तक। ३. लट्टू। ४. गुपचुप मिठाई। ५. एक प्रकार का मसाला।

विशेष—यह जावित्री, पिस्ता, कत्था, लौंग, इलायची, सुपारी इत्यादि मिलाकर बनाया जाता है और कहीं कहीं पान के स्थान पर खाया जाता है।

गुटकाना—क्रि० स० [अनु०] १. (तबला आदि) बजाना। २. गुट गुट की ध्वनि करना।

गुटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] दे० 'गुटिका'।

गुटनिरपेक्ष—वि० [हिं० गुट+सं० निरपेक्ष] वह व्यक्ति या राष्ट्र जो किसी गुट विशेष में न हो।

पर्या०—तटस्थ।

गुटबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुट+फ़ा० बंदी] १. कुछ लोगों का

आपस में मिलकर छोटा सा दल बनाना। २. किसी किसी संस्था में विरोध या स्वार्थ के आधार पर कुछ लोगों का गुट बनना।

गुटबेंगन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कँटीला पौधा।

गुटरगूँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कबूतरों की बोली।

गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बटिका। बटी। गोली। २. एक सिद्धि। उ०—अंजन, गुटिका, पादुका धातुभेद, बैताल, वज्र रसायन जोगिनी, मोहि सिद्ध यहि काल।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

विशेष—इसके अनुसार एक गोली या गुटका मुँह में रख लेने से कहते हैं कि जहाँ चाहे वहाँ चले जायँ और कोई देख नहीं सकता।

गुटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोटी] दे० 'गोट'।

गुट्ट—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ=समूह, प्रा० गोट्ठ] झुंड। दल। यूथ। जैसे,—उन लोगों का गुट्ट ही अलग है।

मुहा०—गुट्टकरना=मिल जुलकर सलाह करना। गुट्ट बनाना गुट्ट बाँधना=झुंड इकट्ठा करना। जैसे,—डाकू गुट्ट बाँधकर चलते हैं।

गुट्टा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० गोटी] लाख की बनी हुई चौकोर गोटी जिनसे लड़कियाँ खेला करती हैं।

गुट्टा[2]—वि० [देश०] नाटा। ठिगना।

गुट्ठल[1]—वि० [हिं० गुठली] १. (फल) जिसमें बड़ी गुठली हो। २. जड़। मूर्ख। कूढ़ मगज। ३. गुठली के आकार का।

गुट्ठल[2]—संज्ञा पुं० १. किसी वस्तु के इकट्ठा होकर जमने से बनी हुई गाँठ। गुलथी। जैसे,—न जाने यह रजाई कैसे भरी गई है कि जगह जगह गुट्ठल पड़ गए हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।

२. गिलटी।

गुट्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि, हिं० गाँठ] १. कोई मोटी गोल या लंबोतरी गाँठ। २. दे० 'वल्व[1]'।

गुठला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० गुठली] १. मोटी और बड़ी गुठली। २. गुठली के आकार प्रकार की कोई कड़ी चीज।

गुठला[2]—संज्ञा पुं० [सं० स्थल अङ्गु, प्रा० अंगुट्ठल] अँगूठे में पहनने का एक प्रकार का आभूषण।

गुठला[3] वि० [सं० कुण्ठ] कुंठित। भोथरा।

गुठलाना[1]—क्रि० अ० [हिं० गुठली] १. गुठली की तरह कड़ा और गोल होना।

गुठलाना—क्रि० अ० [सं० कुण्ठ] चाकू या अस्त्र शस्त्र की धार का कुंठित अथवा भोथरा होना।

गुठली संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिल, गुटिका] १. किसी फल का बड़ा और कड़ा बीज। ऐसे फल का बीज जिसमें केवल एक ही बड़ा बीज होता हो। जैसे,—आम की गुठली। बेर की गुठली। २. गिलटी।

गुठाना⊙—वि० [सं० कुण्ठ] कुंठित। मंद।

गुड़ाँब—संज्ञा पुं० [हिं० गुड़+अंब, आम] १. कच्चा आम जो उबालकर शीरे में डाला गया हो। २. गुड़ या चीनी में कच्चे आम को डालकर पकाया हुआ एक पदार्थ।

गुड—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुड़। २. गेंद। कंदुक। ३. ग्रास। कौर। ४. हाथी का कवच। ५. कपास का पेड़। ६. गोली (को०)।

गुड़—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाह में गाढ़ा पकाकर जमाया हुआ ऊख का रस जो कतरे, बट्टी या भेली के रूप में होता है।

विशेष—खजूर के फलों के रस का भी गुड़ बनता है।

यौ०—गुड़ भरा हँसिया=असमंजस का काम जिसे न तो करते बने और न तो छोड़ते ही। ऐसा काम जिसे करने से भी जी हिचकता है और छोड़ने को भी जी नहीं चाहता। गूँगे का गुड़=दे० 'गूँगा' का मुहा०।

मुहा०—कुल्हिया में गुड़ फूटना=(१) गुप्त रीति से कोई कार्य होना। छिपे छिपे कोई सलाह होना। (२) गुप्त रीति से कोई पाप होना। गुड़ गोबर करना=बिगाड़ना। खराब करना। गुड़ गोबर होना=बिगड़ जाना। खराब हो जाना। जो गुड़ खाएगा सो कान छेदावेगा=जो कुछ धन लेगा उसे कष्ट भी उठाना होगा।

विशेष—लड़कों का कान छेदते समय प्रायः रीति है कि लड़कों के हाथ में कुछ मिठाई दे देते हैं जिससे वे उसी में भूले रहें और झट से कान छेद दिए जायँ।

गुड़ खाएगी अँधेरे में आएगी=जो कुछ लाभ उठावेगा उसे समय पर काम देना ही पड़ेगा। गुड़ खिलाकर ढेला मारना=कुछ लालच देकर फिर ऐसा बरताव करना जिससे कुछ प्राप्त न हो, उलटा कष्ट उठाना पड़े। गुड़ दिए मरे तो जहर क्यों दे=जब कोमल व्यवहार से काम निकले तो कड़ाई करने की क्या आवश्यकता। जब सीधे से काम चले तब कोई उग्र उपाय क्यों करे। गुड खाना गुलगुलों से घिनाना या परहेज करना=कोई बड़ी बुराई करना और छोटी बुराई से बचना। किसी कार्य का बड़ा अंश करना और छोटे से दूर रहना। गुड़ होगा तो मक्खियाँ बहुत आ जाएँगी=पास में धन होगा तो खानेवाले बहुत आ जायँगे। जब गुड़ गजन सहे तब मिसरी नाम धराए=कष्ट पाने के बाद ही भाग्योदय होता है। उ०—'अरे भाई! यह सब महतमा जी का परताप है। कौन सह सकता है? जब गुड़ गंजन सहे तो मिसरी नाम धराए।—मैला०, पृ० ३१।

गुडईवनिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] संध्या के समय का अँगरेजी अभिवादन का वचन जो किसी से मिलने के समय कहा जाता है और जिसका अभिप्राय है—यह संध्या आपके लिये शुभ हो।

गुडक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोल पदार्थ। २ ग्रास। कौर। ३ गुड़ में पकाकर बनाई गई दवा (को०)।

गुडकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी। गुर्जरी (को०)।

गुड़गुड़—संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो जल में नली आदि के द्वारा वेगपूर्वक वायु के घुसने और बुलबुला छूटने से होता है, जैसा हुक्के में।

गुड़गुड़ाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] गुड़गुड़ शब्द होना। जैसे,—आज तो पेट गुड़गुड़ा रहा है।

विशेष—जल के भीतर वेग से नली आदि के द्वारा वायु के घुसने से ऐसा शब्द होता है।

गुड़गुड़ाना२—क्रि० स० [अनु०] हुक्का पीना। हुक्का या फरशी को मुँह से लगाकर इस प्रकार खींचना कि उसमें से गुड़गुड़ शब्द निकले। जैसे,—तुम तो जब देखो तब हुक्का गुड़गुड़ाया करते हो।

गुड़गुड़ाना३—क्रि० स० [देश०] गुड़ना का सकर्मक रूप।

गुड़गुडायन—संज्ञा पुं० [सं०] खाँसी से होनेवाली कंठ की ध्वनि [को०]।

गुड़गुड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़गुड़ाना+हट (प्रत्य०)] गुड़गुड़ शब्द होने का भाव।

गुड़गुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़गुड़ाना] फरशी। एक प्रकार का हुक्का। पेचवान।

गुड़च—संज्ञा स्त्री० [सं० गुडूची] दे० 'गुरुच'।

गुड़ची–संज्ञा स्त्री० [सं० गुडूची] दे० 'गुड़च'।

गुडतृण—संज्ञा पुं० [सं० गुडतृण] ईख।

गुडत्वच्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारचीनी [को०]।

गुडत्वचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गुडत्वच्'।

गुडदारु—संज्ञा पुं० [सं०] ईख [को०]।

गुड़धनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड+धान] लड्डू जो भुने हुए गेहूँ को गुड़ में पागकर बाँधे जाते हैं।

विशेष—ऐसे लड्डू प्रायः महावीर या गणेश को चढ़ाए जाते हैं।

गुड़धानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड+धान] दे० 'गुड़धनियाँ'।

गुडधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान में देने के लिये बनाई हुई गुड़ की गाय [को०]।

गुडना(पु)—क्रि० अ० [देश०] चलना। जाना। उ०—अस्सी सहस हाथी गुड्या।—बी० रासो, पृ० १०५।

गुड़ना—क्रि० स० [देश०] डंडे को इस तरह फेंकना कि वह अपने सिरों के बल पलटा खाता हुआ दूर तक चला जाय।

विशेष लड़के एक प्रकार का खेल खेलते हैं जिसमें इस प्रकार का डंडा फेंकते हैं।

गुडनाइट—संज्ञा स्त्री० [अं०] संध्या या रात के समय किसी से विदा होने पर कहा जानेवाला एक अँगरेजी अभिवादन वचन जिसका अभिप्राय है—'यह रात आपके लिये शुभ हो।

गुडपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुड़ की चाशनी में डालकर ओषधि बनाने की एक प्रक्रिया। २.इस प्रकार की बनी हुई ओषधि।

गुडपिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] आटे और गुड़ के योग से पागकर बनाई हुई मिठाई [को०]।

गुडपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] महुवा [को०]।

गुडफल—संज्ञा पुं० [सं०] पीलु वृक्ष [को०]।

गुडबाई—संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी से विदा होने के समय कहा जानेवाला अँगरेजी अभिवादन वचन जिसका वास्तविक अभिप्राय है—ईश्वर तुम्हारे साथ रहे या तुम्हारा रक्षक हो। यह अभिवादन किसी समय किया जा सकता है।

गुडमार्निंग—संज्ञा पुं० [अं०] प्रातःकाल किसी से मिलने या विदा होने के समय कहा जानेवाला एक अभिवादन वचन।

गुडरू†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जिसे गडुरी भी कहते हैं।—उ०—धरे परेवा पंडुक हेरी। खेरा गुडरू और बगेरी।—जायसी (शब्द०)।

गुडशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी [को०]।

गुडशृंग—संज्ञा पुं० [सं० गुडशृङ्ग] कलश। गुंबद [को०]।

गुडशृंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गुडशृङ्गिका] गेंद फेंकने का एक आला या औलाद [को०]।

गुड़हर—संज्ञा पुं० [हिं० गुड़+हर] १. अड़हुल का पेड़ या फूल। जपा।

विशेष—पुराना विश्वास है कि गुड़हर का फूल यदि घर में रखा जाता है तो लड़ाई होती है।

२. एक छोटा वृक्ष।

विशेष—इसकी पत्तियाँ और इसके फूल अरहर के से होते हैं। इसकी दो तीन पत्तियाँ चबाकर यदि गुड़ खाया जाया तो गुड़ का स्वाद ही नहीं जान पड़ता।

गुडहरीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़ की चाशनी में डुबाकर रखी गई हर्रे [को०]।

गुड़हल—संज्ञा पुं० [हिं० गुड़हर] दे० 'गुड़हर'।

गुड़हुर—संज्ञा पुं० [हिं० गुड़हर] दे० 'गुड़हर'। उ०—भले पधारे पाहुने ह्वै गुड़हुर को फूल। (शब्द०)।

गुडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दाख। उ०—गुडा, प्रयाला, गोस्तनी, चारुफला पुनि सोइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०४। २. कपास का पेड़ (को०)। ३. गोली (को०)।

गुडाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंद्रा। आलस्य। २. नींद [को०]।

गुडाकू—संज्ञा पुं० [हिं० गुड] गुड़ मिला हुआ पीने का तमाकू।

गुडाकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। महादेव। २. अर्जुन।

गुडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी गेंद। २. गोली। वटिका [को०]।

गुड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड या गुड्डा] कपड़ों की बनी हुई पुतली जिससे लड़कियाँ खेलती हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

यौ०—गुड़ियों का ब्याह=(१) लड़कियों का खेल जिसमें वे गुड्डे और गुड़िया की शादी करती हैं।(२) गरीब आदमी का ब्याह जिसमें बहुत धूमधाम नहीं होती।

मुहा०—गुड़िया सी=छोटी और सुंदर। रूपवती। गुड़िया सँवारना=वित्त के अनुसार लड़की का ब्याह करना। गुड़ियों का खेल=सहज काम।

गुड़िला†—संज्ञा पुं० [हिं० गुड़िया] १.बड़ी गुड़ियाँ। २. किसी की बनी हुई आकृति। मूर्ति। पुतला।

गुड़ी१—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड्डी] पतंग। चंग। कनकौवा। गुड्डी। उ०—गुड़ी उड़ी लखि लाल की अँगना अँगना माँहि। बौरी लौं दौरी फिरै छुवत छबीली छाँहि।—बिहारी (शब्द०)।

गुड़ी²—संज्ञा स्त्री० † [सं० गुडिका] १. गाँठ। गोली। २. कपट की गाँस। मनमोटाव। कीना। द्वेष। ३. ऐंठन।

गुड़ीला—वि० [हिं० गुड+ईला (प्रत्य०)] १. गुड़ का सा मीठा। २. उत्तम। बढ़िया।

गुड़ुच—संज्ञा स्त्री० [सं० गुडुची] दे० 'गुरुच'।

गुड़ुची—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच। गुर्च [को०]।

गुड़ुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डल] १ द्वार में लगा हुआ लकड़ी का टुकड़ा। ठेहरी। चूल।

विशेष—यह नीचे दीवार में धँसा रहता है और इसपर किवाड़ के घूमने के लिये गड्ढा बना रहता है।

२. मंडलाकार रेखा। ३. छोटा गड्ढा या बिल।

गुड़ुवा—संज्ञा पुं० [सं० गुड=खेलने की गोली] कपड़े का बना हुआ पुतला।

गुडूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच। गिलोय।

गुडेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोलाकृति। २. गेंद। कंदुक। ३. ग्रास। कौर [को०]।

गुडेरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोलाकृति। २. गेंद। कंदुक। ३. ग्रास। कौर [को०]।

गुड्डा¹—संज्ञा पुं० [सं० गुड=खेलने की गोली] गुड़वा। कपड़े का बना हुआ पुतला जिसे लड़कियाँ खेलती हैं।

मुहा०—गुड्डा बाँधना=अपकीर्ति करते फिरना। निंदा करना।

विशेष—भाट लोग जब अपने किसी जजमान से इच्छानुसार धन नहीं पाते तब एक लंबे बाँस में एक पुतला बाँधकर लटकाते हैं और उस पुतले को वही सूम जजमान मानकर उसकी निंदा करते फिरते हैं। इसी को गुड्डा बाँधना कहते हैं। अवध में इसे 'पुतला बाँधना' बोलते हैं जैसे गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है, अब तुलसी पूतरा बाँधि है सहि न जात मोसों परिहास एते।

गुड्डा²—संज्ञा पुं० [हिं० गुड्डी] बड़ी पतंग।

गुड्डी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरु+उड्डीन] पतंग। कनकौवा। चंग। उ०—हम दासी बिन मोल की ऊधो ज्यों गुड्डी बस डोर।—सूर (शब्द०)।

गुड्डी²—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] १. घुटने की हड्डी।

यौ०—हड्डी गुड्डी। जैसे,—ऐसी मार मारूँगा कि हड्डी गुड्डी न बचेगी।

मुहा०—हड्डी गुड्डी तोडना=बहुत अधिक मारना पीटना।

२. एक प्रकार का छोटा हुक्का। ३. चिड़ियों के डैनों या पैरों की वह स्थिति जो उड़ने के कुछ पहले होती है। कुंदा।

गुड्डू¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुडरू] दे० 'गुड़रू'।

गुड्डू²—संज्ञा पुं० [हिं० गुढ़रू] एक छोटा कीड़ा।

विशेष—यह धूल में घर बनाकर रहता है। इसका घर भँवर के आकार का होता है। बहुधा लड़के चींटी पकड़कर उसमें डालते हैं जिसे वह कीड़ा खा जाता है।

गुढ़ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० गूढ़] छिपकर रहने का स्थान। बचकर रहने की जगह।

गुढ़नाⓟ—क्रि० अ० [सं० गूढ़] आड़ में होना। छिपना। लुकना। उ०—लखि दारत पिय कर कटकु बास छुड़ावन काज। बरुनिन बन गाढ़े दृगनु रही गुढ़ौ करि लाज।—बिहारी (शब्द०)

गुण¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुणी] १. किसी वस्तु में पाई जानेवाली वह बात जिसके द्वारा वह दूसरी वस्तु से पहचानी जाय। वह भाव जो किसी वस्तु के साथ लगा हुआ हो। धर्म। सिफत।

विशेष—सांख्यकार तीन गुण मानते हैं। सत्व, रज और तम; और इन्हीं की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं जिससे सृष्टि का विकास होता है। सत्वगुण हलका और प्रकाश करनेवाला, रजोगुण चंचल और प्रवृत्त करनेवाला और तमोगुण भारी और रोकनेवाला माना गया है। तीनों गुणों का स्वभाव है कि वे एक दूसरे के आश्रय से रहते तथा एक दूसरे को उत्पन्न करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सांख्य में गुण भी एक प्रकार का द्रव्य ही है जिसके अनेक धर्म हैं और जिससे सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं। विज्ञानभिक्षु का मत है कि जिससे आत्मा के बंधन के लिये महत्तत्व आदि रज्जु तैयार होती है उसी को सांख्यकार ने गुण कहा है। वैशेषिक गुण को द्रव्य का आश्रित मानता है और उसने उसकी परिभाषा इस प्रकार की है—जो द्रव्य में रहनेवाला हो, जिसमें कोई गुण न हो, जो संयोग विभाग का कारण न हो वह गुण है। रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग ये मूर्त द्रव्यों के गुण हैं। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये अमूर्त द्रव्यों के गुण हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग ये मूर्त और अमूर्त दोनों के गुण हैं। गुण दो प्रकार के माने गए हैं, विशेष और सामान्य। रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिक द्रवत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये विशेष गुण हैं, अर्थात् इनसे द्रव्यों में भेद जाना जाता है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, नैमित्तिक द्रवत्व और वेग ये सामान्य गुण हैं। द्रव्य स्वयं आश्रय हो सकता है पर गुण स्वयं आश्रय नहीं हो सकता। कर्म संयोग विभाग का कारण होता है, गुण नहीं।

२. निपुणता। प्रवीणता। ३. कोई कला या विद्या। हुनर।

यौ०—गुणग्राहक। गुणग्राही।

क्रि० प्र०—आना।—जानना।—सिखाना।—सीखना।

४. असर। तासीर। प्रभाव। फल। जैसे,—यह दवा अवश्य ही अपना गुण दिखावेगी।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।

५. तारीफ की बात। अच्छा स्वभाव। शील। सद्वृत्ति। जैसे,—यही तो उनमें बड़ा भारी गुण है कि वे क्रोध नहीं करते।

यौ०—गुणगाथा । उ०—प्रानपियारे की गुनगाथा साधु कहाँ तक मैं गाऊँ ।—श्रीधर (शब्द०) ।

मुहा०—गुण गाना=प्रशंसा करना तारीफ करना । गुण मानना=एहसान मानना । निहोरा मानना । कृतज्ञ होना ।

६. विशेषता । स्वभाव । लक्षण । खासियत । प्रवृत्ति । जैसे,—अपने इन्हीं गुणों से तो तुम मार खाते हो । ७. तीन की संख्या । ८. राजनीति में पर‌राष्ट्र के साथ व्यवहार के छहढंग—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय । ९. प्रकृति (छांदोग्य) । १०. व्याकरण में 'अ, 'ए' और 'ओ' को गुण कहते हैं । ११. रस्सी या तागा । डोरा । सूत । १२. धनुष की प्रत्यंचा । १३ वह रस्सी जिससे मल्लाह नाव खींचते हैं । १४. लाभ । फायदा (को०) । १५. स्नायु (को०) । १६. ज्ञानेंद्रिय का विषय (को०) । १७. बत्ती (को०) । १८. पाचक (को०) । १९. सूद (को०) । २०. भीम (को०) । २१. परित्याग (को०) । २२. विभाग (को०) । २३. काव्य को सौंदर्य प्रदान करनेवाला तत्व, (ओज, प्रसाद, माधुर्य) (को०) ।

गुण²—प्रत्य० एक प्रत्यय जो संख्यावाचक शब्दों के आगे लगता है और उतनी ही बार किसी विशेष संख्या, मात्रा या परिमाण को सूचित करता है । जैसे, द्विगुण, चतुर्गुण ।

गुणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अंक जिससे किसी अंक को गुणा करें । २. माली (को०) ।

गुणकथन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुणगान । प्रशंसा । २. नाटक में नायिका की एक दशाविशेष (को०) ।

गुणकर—वि० [सं०] फायदेमंद । लाभदायक ।

गुणकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी ।

विशेष—यह किसी के मत से भैरव राग की और किसी के मत से हिंडोल राग की भार्या मानी जाती है । हनुमत् के मत से इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—प नि सा रा म प नि । अथवा—सा ग म प नि सा । इसके गाने का समय सवेरे १ दंड से ५ दंड तक है ।

गुणकर्म—संज्ञा पुं० [सं० गुणकर्मन्] दे० 'कर्म' ।

गुणकली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी । दे० 'गुणकारी' । उ०—सखि गावती अहलादिनी अहलादिनी वर रागिनी । गुणकली रामकली भली सुरकली सरस सुहागिनी ।—रघुराज (शब्द०) ।

गुणकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. संगीत विद्या का पूर्ण ज्ञाता । २. पाककर्ता । रसोइया । बावर्ची । पाचक । ३. पाकशास्त्र का ज्ञाता । ४. भीमसेन (पांडव) ।

गुणकारक—वि० [सं०] फायदा करनेवाला । लाभदायक ।

गुणकारी—वि० [सं० गुणकारिन्] [वि० स्त्री० गुणकारिणी] लाभदायक । फायदेमंद ।

विशेष—औषध के लिये अधिक आता है ।

गुणकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] गुणगान । प्रशंसा (को०) ।

गुणगाथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रशंसा । बड़ाई ।

गुणगान—संज्ञा पुं० [सं०] गुणवर्णन । प्रशंसाकथन (को०) ।

गुणगौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गौरी के समान गुणवाली कोई सौभाग्यवती स्त्री । पतिव्रता स्त्री । सोहागिन स्त्री । २. स्त्रियों का एक व्रत । उ०—चौस गुणगौरि के सु गिरिजा गोसाइन को आवत यहाँ की अति आनंद इतै रहै ।—पद्माकर (शब्द०) ।

विशेष—यह चैत में चौथ के दिन किया जाता है । सौभाग्यवती स्त्रियाँ इस दिन व्रत करती हैं ।

गुणग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] (किसी का) गुण या महत्त्व समझना । गुण का आदर करना ।

गुणग्राम¹—संज्ञा पुं० [सं०] गुणों का समूह ।

गुणग्राम²—वि० गुणाकर । गुणनिधान ।

गुणग्राहक¹—संज्ञा पुं० [सं०] गुण की खोज करनेवाला मनुष्य । गुणियों का आदर करनेवाला मनुष्य । कदरदान ।

गुणग्राहक²—वि० गुण की खोज करनेवाला । गुणियों का आदर करनेवाला ।

गुणग्राही—वि० [सं० गुणग्राहिन्] [वि० स्त्री० गुणग्राहिनी] गुण की की खोज करनेवाला । गुणियों का आदर करनेवाला ।

गुणघाती—वि० [सं० गुणघातिन्] द्वेषी । ईर्ष्यालु (को०) ।

गुणज्ञ—वि० [सं०] १. गुण का जाननेवाला । गुण को पहचाननेवाला । गुण का पारखी २. गुणी ।

गुणज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुण की जानकारी । गुण की परख । गुण की पहिचान ।

गुणतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० गुणतन्त्र] गुणों के आधार पर विचार (को०) ।

गुणत्रय, गुणत्रितय—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति के तीन गुण—सत्व, रज और तम (को०) ।

गुणधर्म—संज्ञा सं० [सं०] गुण विशेष की प्राप्ति के लिये धर्म या कर्तव्य (को०) ।

गुणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुण्य, गुणनीय, गुणित] गुणा । जरब ।

गुणनफल—संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक या संख्या जो एक अंक को दूसरे अंक के साथ गुणा करने से आवे ।

गुणना(पु)—क्रि० स० [सं० गुणन] जरब देना । गुणन करना ।

गुणनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में वह अनुष्ठान जो नट लोग अभिनय आरंभ करने से पहले ग्रहों की शांति के लिये करते हैं । पूर्वरंग ।

गुणनिधान—वि [सं०] गुणागार । गुणी (को०) ।

गुणनिधि—वि० [सं०] गुणागार । गुणी (को०) ।

गुणनीय—वि० [सं०] गुणा करने योग्य ।

गुणभोक्ता—संज्ञा पुं० [सं० गुणभोक्तृ] पदार्थों से गुणों का समझनेवाला (को०) ।

गुणराग—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरों के गुणों पर आनंदित होनेवाला (को०) ।

गुणराशि¹—वि० [सं०] गुणनिधि । गुणसमूह (को०) ।

गुणराशि²—संज्ञा पुं० शिव (को०) ।

गुणलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] आंतरिक गुण का परिचायक चिह्न संकेत [को०] ।

गुणलयनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खेमा । तंबू [को०] ।

गुणलयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खेमा । तंबू [को०] ।

गुणवंत–वि०[सं०गुणवत्][वि० स्त्री०गुणवती] जिसमें गुण हो । गुणी ।

गुणवचन—संज्ञा पुं० [सं०] गुण का परिचायक शब्द । विशेषण [को०] ।

गुणवती—वि० स्त्री० [सं०] गुणवाली । जिसमें कुछ गुण हो ।

गुणवाचक[1]—वि० [सं०] जो गुण को प्रकट करे ।

यौ०—गुणवाचक संज्ञा=व्याकरण में वह संज्ञा जिससे द्रव्य का गुण सूचित हो । विशेषण ।

गुणवाचक[2]—संज्ञा पुं० [सं०]गुण का परिचायक शब्द । विशेषण [को०] ।

गुणवाद—संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा में अर्थवाद का एक भेद ।

विशेष—कुमारिल के अनुसार अर्थवाद तीन प्रकार का है, गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद । जहाँ विशेषण और विशेष्य का एक में अन्वय करने से ठीक अर्थ नहीं सिद्ध होता वहाँ विशेषण का कुछ दूसरा अर्थ कर लेते हैं और उसे अंगकथन या गुणवाद कहते हैं । जैसे—यजमानः प्रस्तरः । प्रस्तर शब्द का अर्थ है कुशमुष्टि । यहाँ विशेषण और विशेष्य के द्वारा कोई अर्थ नहीं निकलता इससे प्रस्तर का कुशमुष्टिधारी अर्थ कर लिया गया ।

गुणवान्—वि०[सं० गुणवत्][वि०स्त्री० गुणवती]गुणवाला । गुणी ।

गुणविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा में वह विधि जिसमें गुण कर्म का विधान हो । जैसे—'दध्ना जुहोति' दही से अग्निहोत्र करे । अग्निहोत्र करने का विधिवाक्य दूसरा है । अतः उसी अग्निहोत्र के अंतर्गत जो आहुति का विधान है उसकी विधि इस वाक्य में है । वि०दे० 'कर्म' ।

गुणवृक्ष, गुणवृक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] नाव बाँधने का खूँटा [को०] ।

गुणवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौण वृत्ति (को०) ।

गुणव्रत संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों में मूलव्रतों की रक्षा करनेवाले तीन व्रत—दिग्व्रत, भोगोपभोग नियम और अनर्थदंड निषेध ।

गुणशब्द—संज्ञा पुं० [सं०] विशेषण (को०) ।

गुणसंग—संज्ञा पुं० [सं० गुणसङ्ग] १. गुणों का मेल । २. इंद्रियासक्ति (को०) ।

गुणसागर[1]—वि० [सं०] गुणों का समुद्र । गुणों से भरा ।

गुणसागर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंडोल राग का एक पुत्र । २. ब्रह्मा (को०) । ३. गुणी व्यक्ति [को०] ।

गुणहीन—वि० [सं०] गुणरहित । जिसमें गुण न हो [को०] ।

गुणांक—संज्ञा पुं० [सं० गुणाङ्क]वह अंक जिसको गुणा करना हो ।

गुणा—संज्ञा पुं० [सं० गुणन] [वि० गुण्य, गुणित] गणित की एक क्रिया । एक अंक पर दूसरे अंक का ऐसा प्रयोग जिसके द्वारा वही फल निकलता है जो पहले अंक को उतनी ही बार अलग-अलग रखकर जोड़ने से निकलता है जितना दूसरा अंक है । जरब ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।—सीखना ।

गुणाकर—वि० [सं०] गुणों की खान । अत्यंत गुणी ।

गुणाकार—वि० क्रि० वि० [सं०] गुणा के चिह्न जैसा [को०] ।

गुणागार—वि [सं०] गुणों का भंडार । अत्यंत गुणी ।

गुणाढ्य[1]—वि० [सं०] गुणपूर्ण । बहुत गुणोंवाला ।

गुणाढ्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध कवि ।

विशेष—इसने पैशाची भाषा में वह बड़ा ग्रंथ लिखा था जिसके आधार पर पीछे से क्षेमेंद्र ने बृहत्कथामंजरी और सोमदेव ने कथासरित्सागर नाम की पुस्तकें लिखीं । कथासरित्सागर में गुणाढ्य की कथा इस प्रकार लिखी है । प्रतिष्ठानपुर में सोमशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जिसे श्रुतार्थ नाम की एक परम सुंदरी कन्या थी । इस कन्या के साथ नागराज वासुकि के छोटे भाई कीर्ति ने गांधर्व विवाह किया । इसी कन्या के गर्भ से गुणाढ्य का जन्म हुआ । गुणाढ्य के बचपन ही में उसका पिता मर गया । गुणाढ्य ने दक्षिणापथ में जाकर खूब अध्ययन किया और वह बड़ा प्रसिद्ध विद्वान् होकर प्रतिष्ठान देश के राजा सातवाहन की सभा में रहने लगा । राजा संस्कृत नहीं जानता था, मूर्ख था । एक दिन वह अपनी रानी के व्यवहार से अपनी मूर्खता पर बड़ा लज्जित हुआ और उसने संस्कृत सीखने का विचार किया । गुणाढ्य ने उसे छह वर्षों में व्याकरण सिखा देने का वादा किया । शर्व शर्मा नामक एक पंडित ने छह महीने में ही राजा को व्याकरण सिखा देने को कहा । इसपर गुणाढ्य ने चिढ़कर कहा 'यदि तुम राजा को छह महीने में व्याकरण सिखा दोगे तो मैं संस्कृत और प्राकृत आदि समस्त देशी भाषाओं का व्यवहार छोड़ दूँगा ।' शर्वशर्मा ने कलाप व्याकरण का निर्माण करके छह महीने में राजा को व्याकरण सिखा दिया । इसपर अपमानित गुणाढ्य ने वस्ती का रहना छोड़ दिया और वह जंगल में जाकर पिशाचों के बीच रहने और उन्हीं की भाषा का व्यवहार करने लगा । वहाँ पर उससे काणभूति से साक्षात्कार हुआ जो कुबेर के शाप से पिशाच हो गया था । काणभूति के मुख से उसने पुष्पदंत का कहा हुआ सप्तकथामय उपाख्यान सुना और उसे लेकर सात लाख श्लोकों का, पिशाच भाषा का एक ग्रंथ लिखा । राजसभा में उपस्थिति होने पर, ग्रंथ की भाषा पैशाची होने से लोगों ने पुनः उसकी उपेक्षा की । दुःखी गुणाढ्य वन में पशुपक्षियों को यह ग्रंथ सुनाने और प्रत्येक पृष्ठ को अग्नि में जलाने लगा । कालांतर में राजा ने अपनी भूल का परिमार्जन किया पर ग्रंथ का एक अंश ही बचा पाए जिसके आधार पर सोमदेव और क्षेमेंद्र ने अपने अपने ग्रंथ लिखे ।

गुणातीत[1]—वि० [सं०] गुणों से परे । जो गुणों के प्रभाव से अलग हो । त्रिगुणात्मिका से निर्लिप्त ।

गुणातीत[2]—संज्ञा पुं० परमेश्वर ।

गुणानुरोध—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छे गुणों की अनुकूलता [को०] ।

गुणानुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] गुणकथन। प्रशंसा। तारीफ। बड़ाई।

गुणान्वित—वि० [सं०] गुणों से युक्त (को०)।

गुणालय—वि० [सं०] गुणों का भंडार। अनेक गुणों से संपन्न (को०)

गुणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गिल्टी। २. सूजन (को०)।

गुणित—वि० [सं०] १. गुणा किया हुआ। २. एकत्र। संगृहीत (को०)। ३. जिसकी गणना की गई हो (को०)।

गुणी[1]—वि० [सं० गुणिन्] गुणवाला। जिसमें कोई गुण हो। जो किसी कला या विद्या में निपुण हो।

गुणी[2]—संज्ञा पुं० निपुण मनुष्य। कलाकुशल पुरुष। हुनरमंद आदमी। २. झाड़ फूँक करनेवाला। उ०—श्याम भुजंग डस्यो हम देखत ल्यावहु गुणी बोलाई। रोवत जननि कंठ लपटानी सूर श्याम गुनराई।—सूर (शब्द०)।

गुणीभूत—वि० [सं०] १. मुख्यार्थ से रहित। २. गौण बनाया हुआ। (को०)।

गुणीभूत व्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं० गुणीभूत व्यङ्ग्य] काव्य में वह व्यंग्य जो प्रधान न हो, वरन् वाच्यार्थ के साथ गौण रूप से आया हो।

गुणेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीनों गुणों पर प्रभुत्व रखनेवाला ईश्वर। २. चित्रकूट पर्वत।

गुणोपेत—वि० [सं०] १. गुणी। गुणयुक्त। जिसमें गुण हो। २. किसी कला में निपुण।

गुण्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जिसको गुणा करना हो।

गुण्य[2]—वि० १. गुणा करने योग्य। २. गुणी। ३. वर्णनीय (को०)।

गुण्यांक—संज्ञा पुं० [सं० गुण्याङ्क] वह अंक जो गुणा किया जाय।

गुतेला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसे बंगू भी कहते हैं।

गुत्ता†—संज्ञा पुं० [देश०] १. लगान पर खेत देने का व्यवहार। २. लगान।

गुत्थ—संज्ञा पुं० [हिं० गुथना] १. हुक्के के नैचों की वह बुनावट जो चटाई की बुनावट के ढंग की होती है। २. इसी बुनावट का नैचा।

गुत्थमगुत्था—संज्ञा पुं० [हिं० गुथना] १. उलझाव। फँसाव। दो या कई वस्तुओं का ऐसा मिलना या जुटना कि दोनों लिपट गए हों। २. हाथापाई। भिड़ंत। लड़ाई।

गुत्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुथना] वह गाँठ जो कई वस्तुओं के एक में गुथने से बने। गिरह। उलझन।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—गुत्थी सुलझाना=समस्या हल करना। कठिनाई दूर करना।

गुत्स—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुच्छ'।

गुत्सक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुच्छा। २. फूलों का गुच्छा। ३. चँवर। ४. ग्रंथ का भाग या अध्याय (को०)।

गुथना—क्रि० अ० [सं० गुत्सन, प्रा० गुत्थन] १. कई वस्तुओं का तागे आदि के द्वारा एक में बँधना या फँसना। कई वस्तुओं का एक लड़ी या गुच्छे में नाथा जाना। २. किसी वस्तु का दूसरी वस्तु में सुई तागे आदि के सहारे टँकना। गाँथा जाना। जैसे,—फूल में मोती गुथे हुए थे। ३. भद्दी सिलाई होना। टाँका लगना। टाँके या सिलाई द्वारा दो वस्तुओं का जुड़ना। ४. एक का दूसरे के साथ लड़ने के लिये लिपट जाना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

गुथवाना—क्रि० स० [हिं० गुथना का प्रे०] गूथने का काम करवाना।

गुथुवाँ—वि० [हिं० गुथना] जो गूथकर बनाया गया हो।

गुद—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँड़। मलद्वार।

गुदकार, गुदकारा—वि० [हिं० गूदा या गुदार] १. गूदेदार। जिसमें गूदा हो। २. गुदगुदा। मोटा। उ०—चारु कपोल गोल गुदकारे अरु सुंदर सी ठोड़ी। परति धार कै होड़ाहोड़ी सबकी दीठि निगोड़ी।—सूदन (शब्द०)।

गुदकील, गुदकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] अर्श रोग। बवासीर।

गुदगर†—वि० [हिं० गूदा+गर=(प्रत्य०)] दे० 'गुदगुदा'।

गुदगुदा—वि० [हिं० गूदा] १. गूदेदार। मांसल। मांस से भरा हुआ। २. गुदगुदा। जिसकी सतह दबाने से दब जाय। मुलायम।

गुदगुदाना—क्रि० अ० [हिं० गुदगुदा] १. काँख, तलवे, पेट आदि मांसल स्थानों पर उँगली आदि फेरना जिससे सुरसुराहट या मीठी खुजली मालूम हो और आदमी हँसने और उछलने कूदने लगे। किसी को हँसाने या छेड़ने के लिये उसके तलवे, काँख आदि को सुहराना। २. मन बहलाव या विनोद के लिये छेड़ना।

मुहा०—गुदगुदाना वहीं तक जहाँ तक हँसी आवे=उतनी ही हँसी दिल्लगी करना जितनी अच्छी लगे।

३. चित्त को चलायमान करना। उमगाना। उत्कंठा उत्पन्न करना।

गुदगुदाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुदगुदाना+आहट (प्रत्य०)] दे० 'गुदगुदी'।

गुदगुदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुदगुदाना] १. वह सुरसुराहट या मीठी खुजली जो काँख, पेट आदि मांसल स्थानों पर उँगली आदि छू जाने से होती है।

क्रि० प्र०—लगना।—होना।

मुहा०—गुदगुदी करना=गुदगुदाना।

२. उत्कंठा। शौक। ३. आह्लाद। उल्लास। उमंग। ४. प्रसंगेच्छा। काम का वेग। चुल।

गुदग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठबद्धता का रोग। उदावर्त रोग।

गुदड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० गूदड़+इया (प्रत्य०)] १. गुदड़ी पहनने या ओढ़नेवाला।

यौ०—गुदड़िया फकीर=गुदड़ी पहननेवाला फकीर। गुदड़िया पीर=गाँव के पास का वह पेड़ जिसपर ग्रामीण जन चिथड़े इत्यादि बाँधने और मनौती मानते हैं।

२. फटे पुराने कपड़े आदि बेचनेवाला। ३. खेमा, फर्श, दरी आदि भाड़े पर देनेवाला।

गुदड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गूथना]=मोटी सिलाई करना] फटे पुराने कपड़ों की कई तहों को एक में गाँथ या सीकर बनाया हुआ ओड़ना या बिछावन । फटे, पुराने टुकड़ों को जोड़कर बनाया हुआ कपड़ा । कंथा ।

विशेष—साधुओं की गुदड़ी में कभी कभी रंग विरंगे कपड़ों के जोड़ भी लगते हैं ।

मुहा॰—गुदड़ी में लाल=तुच्छ स्थान में उत्तम वस्तु । छोटे स्थान में बहुमूल्य वस्तु या गुणी व्यक्ति । गुदड़ी का लाल=कोई ऐसा धनी या गुणी जिसके रूप रंग, वेश आदि से उसका धन या गुण न प्रकट होता हो । क्या गुदड़ी है ?=क्या वित्त है ? क्या मजाल है ? क्या हकीकत है ?

गुदड़ीफरोश—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गुदड़ी+फ़ा॰ फ़रोश] रद्दी और फटा पुराना सामान बेचनेवाला ।

गुदड़ीबाजार—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गुदड़ी+फ़ा॰ बाजार] वह बाजार जहाँ फटे पुराने कपड़े या टूटी फूटी चीजें बिकती हों । यह बाजार प्रायः संध्या समय लगता है ।

गुदन—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गोदना] वह स्त्री जिसके शरीर पर गोदना गुदा हुआ हो (पश्चिम) ।

गुदनहर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गोदनहारी का पुं॰] दे॰ 'गोदनहर' ।

गुदनहारी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गोदनहारी] दे॰ 'गोदनहारी' ।

गुदना[1]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गोदना] दे॰ 'गोदना' ।

गुदना[2]—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ गोदना] चुभना । धँसना । गड़ना । खुभना ।

गुदनिर्गम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गुदा का एक रोग । काँच निकलना [को॰] ।

गुदनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गोदनी] दे॰ 'गोदनी' ।

गुदपाक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गुदा पक जाने का रोग ।

विशेष—छोटे बच्चों को यह रोग बहुधा हुआ करता है ।

गुदभ्रंश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] काँच निकलने का रोग ।

गुदमी—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का मोटा और मुलायम कंबल जो ठंडे पहाड़ी देशों में बुना जाता है ।

गुदरना†Ⓟ—क्रि॰ अ॰ [फ़ा॰ गुजर+हिं॰ ना (प्रत्य॰)] १. त्याग करना । अलग रहना । दर गुजर करना । उ॰—मिलि न जाय नहिं गुदरत बनई । सुकवि लखन मन की गति भनई । —तुलसी (शब्द॰) । निवेदन करना । हाल कहना । उ॰—तब द्वापर ही नृप सों गुदरे । सुकदेव अबै दरबार खरे । —केशव (शब्द॰) । ३. व्यतीत होना । बीतना । गुजरना । मंतर लेहु होहु संग लागू । गुदर जाइ तब होइहि आगू । जायसी (शब्द॰) । ४. उपस्थित किया जाना । पेश होना ।

गुदराननां†—क्रि॰ स॰ [फ़ा॰ गुज़रान+हिं॰ ना (प्रत्य॰)] १. पेश करना । सामने रखना । उपस्थित करना । नजर करना । भेंट देना । उ॰—गुदरानी तेहि दूरि ते पारिजात की माल । —गुमान (शब्द॰) २. निवेदन करना । हाल कहना । उ॰—देखि तिन्हैं तब दूरि ते गुदरान्यो प्रतिहार । आए विश्वामित्र जू जनु दूजो करतार ।—केशव (शब्द॰) ।

गुदरिया[1]†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गुदड़ी+इया (प्रत्य॰)] दे॰ 'गुदड़ी' ।

गुदरिया[2]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का नीबू ।

गुदरी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गुदड़ी] दे॰ 'गुदड़ी' ।

गुदरैन†Ⓟ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गुदरना] १. पढ़ा हुआ पाठ शुद्धतापूर्वक सुनाना जिससे ज्ञात हो जाय कि पाठ भली भाँति याद किया गया है । जायजा । २. परीक्षा । इम्तहान । परताल । उ॰—सारो शुक शुभ मराल, केकी कोकिल रसाल बोलत कल पारावत भूरि भेद गुनिए । मनहु मदन पंडित ऋषि शिष्य गुणन मंडित करि अपनी गुदरैन देन पठए प्रभु सुनिए ।—केशव (शब्द॰) ।

गुदवदन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गुदा [को॰] ।

गुदवाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ गोदना] दे॰ 'गुदना' ।

गुदस्तंभ—संज्ञा पुं॰ [गुदस्तम्भ] कब्ज [को॰] ।

गुदांकुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ गुदाङ्कुर] बवासीर ।

गुदा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] मलद्वार । गाँड़ ।

गुदाज—वि॰ [फ़ा॰ गुदाज़] गूदेदार । गदराया हुआ । गुदकार । माँस से भरा हुआ ।

गुदाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ गोदना का प्रे॰] गोदने की क्रिया कराना ।

गुदामंजन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ गुदा+मञ्जन] पुरुष का पुरुष से मैथुन । समलैंगिक मैथुन ।

क्रि॰ प्र॰—करना ।—कराना ।

गुदाम[1]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गोदाम] दे॰ 'गोदाम' ।

गुदाम[2]†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुर्त॰ बोताव, हिं॰ बुताम] बटन । घुंडी ।

गुदार†—वि॰ [हिं॰ गूदा+आर (प्रत्य॰)] गूदेदार । जिसमें अधिक गूदा हो । मँसीला । गुदाज । गुदकारा ।

गुदारा[1]Ⓟ—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ गुज़ारह्] १. नाव पर नदी पार करने की क्रिया । उतारा । उ॰—यहि विधि राति लोग सब जागा । भा भिनसार गुदारा लागा ।—तुलसी (शब्द॰) ।

क्रि॰ प्र॰—लगना ।

२. दे॰ 'गुजारा' ।

गुदारा[2]—वि॰ [हिं॰ गूदा+आरा (प्रत्य॰)] दे॰ 'गुदार' ।

गुदावर्त—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कोष्ठबद्धता [को॰] ।

गुदियारा†—वि॰ [हिं॰ गुदकारा] दे॰ 'गुदकारा' ।

गुदी†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] नदियों के किनारे का वह स्थान जहाँ नावें बनती हैं या मरम्मत के लिये रखी जाती हैं ।

गुदुरी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ गदरना] १. मटर की फली । २. एक प्रकार का कीड़ा जो मटर और चने की फसल को हानि पहुँचाता है ।

क्रि॰ प्र॰—आना ।—निखोरना ।—लगना ।

गुदौष्ठ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गुदा के मुख पर का चमड़ा [को॰] ।

गुद्दा[1]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गूदा] दे॰ 'गूदा' ।

गुद्दा[2]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] पेड़ की मोटी डाल ।

गुद्दी—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ गूदा] १. मींगी । गिरी । किसी फल के भीतर का गूदा । मग्ज । २. सिर का पिछला भाग । त्योंडी ।

मुहा०—आँखें गुद्दी में होना या चली जाना=सुझाई न देना। देख न पड़ना। समझ में न आना। किसी वस्तु के प्रत्यक्ष होते हुए भी उसे न देखना या न समझना या न मानना। गुद्दी नापना=गुद्दी पर धौल लगाना। गुद्दी की नागिन=गरदन के पीछे बालों की भौंरी जिसे लोग अशुभ समझते हैं। गुद्दी से जीभ खींचना=जबान खींच लेना। बहुत कड़ा दंड देना। (गाली)।

३. हथेली का माँस।

गु (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० गुण] दे० 'गुण'।

गुनकारी†—वि० [हिं० गुणकारी] दे० 'गुणकारी'।

गुनगाहक†—संज्ञा पुं०, वि० [सं० गुणग्राहक] दे० 'गुणग्राहक'।

गुनगुना¹—वि० [अनु०] नाक में बोलनेवाला।

गुनगुना²—वि० [हिं० कुनकुना] दे० 'कुनकुना'।

गुनगुनाना—क्रि० अ० [अनु०] १. गुनगुन शब्द करना। २. नाक मे बोलना। ३. अस्पष्ट स्वर में गाना।

गुनगौरि†—संज्ञा पुं० [हिं० गुणगौरि] १. पतिव्रता स्त्री। सौभागिनी। उ०—धनि धनि तुव बहियाँ ए गुनगौरि। कंकन की जहँ कोमत लाख करोरि।—सेवक (शब्द०)। २. दे० 'गुणगौरि'।

गुनग्राम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गुणग्राम] गुणों का समूह। उ०—जग मंगल गुनग्राम राम के। दानी मुकुति धन धरम धाम के।—मानस, १।३२।

गुनना(पु)†—क्रि० अ० [सं० गुणन] १. मनन करना। विचार करना। जैसे,—पढ़ना गुनना। २. समझना। सोचना। उ०—(क) सुनि चितउर राजा मन गुना। विधि सँदेस मैं कासौं सुना।—जायसी (शब्द०) (ख) सुमति महामुनि सुनिए। तन धन कै मन गुनिए।—केशव (शब्द०)।

गुनभंत†—वि० [हिं० गुनवंत] दे० 'गुनवंत'।

गुनरखा—संज्ञा पुं० [हिं० गून] १. दे० 'गोनरखा'। २. दे० 'गुनिया³'।

गुनवंत†—वि० [हिं० गुन+वंत (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० गुनवंती] जिसमें कोई गुण हो। गुणी। उ०—जो कह झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना।—मानस, ७।९८।

गुनवंतिन(पु)†—वि० स्त्री० [हिं० गुनवंती] गुणवाली। गुणवती।

गुनवान†—वि० [सं० गुणवत्] दे० 'गुणवान्'।

गुनहगार—वि० [फ़ा०] १. पाप। २. दोषी। अपराधी।

गुनहगारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. पाप। २. दोष। अपराध।

गुनही‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुनह+हिं० ई (प्रत्य०)] गुनहगार। अपराधी। उ०—जौ गुनही तौ मारिए आँखिन माँहि अगोटि।—बिहारी (शब्द०)।

गुना—संज्ञा पुं० [सं० गुणन] १. एक प्रत्यय जो केवल संख्यावाचक शब्दों के अंत में लगता है। यह जिस संख्या के अंत में लगता है उतनी ही बार कोई मात्रा, संख्या या परिमाण सूचित करता है। जैसे,—दुगुना, चौगुना, दसगुना, बीसगुना। २. गुणा। (गणित)।

गुना²‡—संज्ञा पुं० [देश०] गेहूँ के आटे और गुड़ से बना हुआ एक पकवान।

गुनावन†—संज्ञा पुं० [सं० गुणन] १. सोच विचार। २. सलाह मशविरा।

गुनाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. पाप। २. दोष। कसूर। अपराध।

गुनाहगार—वि० [फ़ा०] १. गुनाह करनेवाला। पाप करनेवाला। २. अपराध करनेवाला। कसूर करनेवाला। दोषी।

गुनाहगारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गुनहगार का भाव। अपराधी या दोषी होने का भाव।

गुनाही—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. पाप करनेवाला। पापी। २. अपराध करनेवाला। दोषी! कुसूरवार।

गुनिया¹†—संज्ञा पुं० [हिं० गुन+इया (प्रत्य०)] वह व्यक्ति जिसमें गुण हो। गुणवान्।

गुनिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोन, कोनिया] राजों, बढ़इयों और संगतराशों का एक औजार जिससे वे कोने की सीध नापते हैं। साधन। दे० 'गोनिया'।

गुनिया³—संज्ञा पुं० [सं० गुण, हिं० गुन+इया (प्रत्य०)] वह मल्लाह जो नाव की गून खींचता है। गुनरखा।

गुनियाला(पु)—वि० [हिं० गुण] गुणवाला। गुणी।

गुनी—वि० संज्ञा पुं० [हिं० गुणी] दे० 'गुणी'।

गुनोवर—संज्ञा पुं० [फ़ा० सनोवर] एक प्रकार का देवदार या सनोवर का पेड़।

विशेष—यह उत्तर पश्चिमी हिमालय में ६००० से १०००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी लकड़ी बड़ी मजबूत और कड़ी होती है। पर उसका कोई विशेष उपयोग नहीं होता। चिलगोजा नाम का मेवा इसी का फल है। इस वृक्ष को चीरी भी कहते हैं।

गुन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण, हिं० गून रस्सी] एक प्रकार का कोड़ा जिससे ब्रजमंडल में होली के अवसर पर स्त्री पुरुष एक दूसरे को मारते हैं।

गुप¹—वि० [हिं० घुप] दे० 'घुप'।

गुप²—संज्ञा पुं० [अनु०] सुनसान होने का भाव। सन्नाटा।

गुपचुप¹—क्रि० वि० [हिं० चुप+चुप] बहुत गुप्त रीति से। छिपाकर। चुपचाप। चुपके से। जैसे,—तुम अपना काम करके वहाँ से चुपचुप चले आना।

गुपचुप²—संज्ञा स्त्री० १. एक प्रकार की मिठाई जो मुँह में रखते ही घुल जाती है।

विशेष—यह खोवे और मैदे या सिघाड़े के आटे को घी में पकाकर और शीरे में डालकर बनाई जाती है।

२. लड़कों का एक खेल जिसमें एक गाल फुलाता है और दूसरा उसपर घूँसा मारता है। ३. एक प्रकार का खिलौना।

गुपाल†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल] दे० 'गोपाल'।

गुपिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. रक्षक [को०]।

गुपुत(पु)—वि० [सं० गुप्त] दे० 'गुप्त'। उ०—सूझहि रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।—मानस, १।१।

गुप्त¹—वि० [सं०] १. छिपा हुआ। पोशीदा।

यौ०—गुप्तचर। गुप्त गोष्ठी। गुप्तदान।

२. गूढ़। जिसके जानने में कठिनता हो। ३. रक्षित।

गुप्त³—संज्ञा पुं० [सं०] १. पदवी जिसका व्यवहार वैश्य अपने नाम के साथ करते हैं। २. एक प्राचीन राजवंश जिसने पहले मगध देश में राज्य स्थापित करके सारे उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य फैलाया।

विशेष—इस वंश में समुद्रगुप्त बड़ा प्रतापी सम्राट् हुआ। इस वंश का राज्य ईसा की ४वीं और ६ठीं शताब्दी में वर्तमान था। चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त और स्कंदगुप्त आदि इसी वंश में हुए थे। गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त का दूसरा नाम विक्रमादित्य भी था। बहुत लोगों का मत है कि प्रसिद्ध विक्रमादित्य चंद्रगुप्त ही हैं।

गुप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] सुरक्षित रखनेवाला [को०]।

गुप्तकाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तीर्थ जो हरिद्वार और बदरीनाथ के बीच में है।

गुप्तगति—संज्ञा पुं० [सं०] भेदिया। गुप्तचर [को०]।

गुप्तगृह—संज्ञा पुं० [सं०] शयनगृह [को०]।

गुप्तगोदावरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रकूट के निकट एक तीर्थस्थान [को०]

गुप्तचर—संज्ञा पुं० [सं०] वह दूत जो किसी बात का चुपचाप भेद लेता हो। भेदिया। जासूस।

गुप्तदान—संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जिसे देते समय दाता ही जाने और कोई न जाने।

विशेष—ऐसा दान लोग प्रायः बिना अपना नाम प्रगट किए अथवा वस्तु को छिपाकर देते हैं। ऐसा दान बहुत श्रेष्ठ समझा जाता है।

गुप्तमतदान—संज्ञा पुं० [सं०] वह मतदान या वोट देना जो अपना मत प्रकट किए बिना गुप्त रूप से दिया जाय।

गुप्तमार—संज्ञा स्त्री० [सं० गुप्त+हिं० मार] १. ऐसा आघात जिसका शरीर पर कुछ चिह्न न रहे। ऐसी मार जिससे शरीरसे रक्त आदि न निकले, जैसे, घूँसे, थप्पड़ आदि की। भीतरी मार। २ छिपा हुआ दाँवपेंच। ऐसा अनिष्ट जो बहुत छिपाकर किया जाय।

गुप्तवेश—वि० [सं०] छद्मवेशी। जो भेष बदले हुए हो [को०]।

गुप्तस्नेह—वि० [सं०] गुप्त रूप से प्रेम करनेवाला [को०]।

गुप्तांग—संज्ञा पुं० [सं० गुप्ताङ्ग] स्त्री या पुरुष के गोपनीय अंग। उपस्थ।

गुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह नायिका जो सुरति छिपाने का उद्योग करती है।

विशेष—यह छह प्रकार की परकीया नायिकाओं में से मानी गई है। कालके अनुसार इसके तीन भेद हैं—(क) भूत-सुरति-गुप्ता, (ख) वर्तमान-सुरति-गुप्ता और (ग) भविष्य-सुरति-गुप्ता।

२. रखी हुई स्त्री। सुरैतिन। रखैल।

गुप्तासन—संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धासन [को०]।

गुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छिपाने की क्रिया। २. रक्षा करने की क्रिया। ३. तंत्र के अनुसार ग्रहण किए जाने वाले मंत्र का एक संस्कार। ४. कारागार। कैदखाना। ५. गुफा। गड्ढा। ७. अहिंसा आदि योग के अंग। यम। ८. मलद्वार (को०)। ९. नाव का छेद (को०)।

गुप्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० गुप्त] वह छड़ी जिसके अंदर गुप्त रूप से किरच या पतली तलवार इस प्रकार रखी हो कि आवश्यकता पड़ने पर तुरंत बाहर निकाली जा सके।

क्रि० प्र०—चलाना।

गुप्तोत्प्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उत्प्रेक्षा जिसमें 'मानो', 'जानो' आदि सादृश्यवाचक शब्द न हों। प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा।

गुप्फा—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फ] १. फुँदना। झब्बा। २. फूलों का गुच्छा।

गुफा—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहा] वह गहरा अँधेरा गड्ढा जो जमीन या पहाड़ के नीचे बहुत दूर तक चला गया हो। कंदरा। गुहा।

गुफ्त—वि० [फ़ा० गुफ्त] कथित।

गुफ्तगू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुफ्तगू] बातचीत। वार्तालाप।

गुफ्तार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुफ्तार] १. वाणी। बोली। आवाज। २. बातचीत। वार्तालाप।

गुफ्तोशनीद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुफ्तोशुनीद] १. वार्तालाप। गुफ्तगू। २. कहा सुनी। वाद विवाद। ३. तर्क वितर्क।

गुबरैला—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर+ऐला (प्रत्य०)] एक प्रकार का कीड़ा जो गोबर और मल आदि खाता तथा इकट्ठा करता है।

विशेष—यह गोबर की गोलियाँ लुढ़काता हुआ प्रायः खेतों आदि में पाया जाता है।

गुबार—संज्ञा पुं० [अ० गुबार] १. गर्द। धूल।

यौ०—गर्द गुबार।

क्रि० प्र०—उठना।—उड़ना।—आना।

२. मन में दबाया हुआ क्रोध, दुःख या द्वेष आदि।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—रखना।

मुहा०—गुबार निकालना=कटु और अप्रिय बातें कहकर मन का क्रोध दूर करना।

गुबारा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुब्बारह्] दे० 'गुब्बारा'।

गुबिंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोविन्द, प्रा० गोविंद] दे० 'गोविंद'।

गुब्बा—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी के बीच में डाला हुआ फंदा।—(लश०)।

गुब्बाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गुब्बारा] दे० 'गुब्बारा'।

गुब्बार—संज्ञा पुं० [हिं० गुबार] दे० 'गुबार'।

गुब्बारा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुब्बारह्] १. थैली या उसके आकार की और कोई चीज जिसके अंदर गरम हवा या हवा से हलकी किसी प्रकार की भाप आदि भरकर आकाश में उड़ाते हैं।

विशेष—इसके बनाने में पहले रेशम या इसी प्रकार की और किसी चीज के थैले पर रबर की या और वार्निश चढ़ाकर उसमें से हवा या भाप निकलने का मार्ग बंद कर देते हैं और तब उसमें गरम हवा या हवा से हलकी और कोई भाप भर देते हैं। इस थैले को एक जाल में भरकर उस जाल के नीचे कोई बड़ा संदूक या खटोला बाँध देते हैं जिसमें आदमी बैठते हैं। गुब्बारा हवा से हलका होने के कारण आकाश में उड़ने लगता है। उसे नीचे लाने के लिये इसमें की गरम हवा या भाप निकाल देते हैं।

२. गुब्बारे के आकार का कागज का बना हुआ बड़ा गोला।

विशेष—इसके नीचे तेल से भीगा हुआ कपड़ा जलाकर रख देते हैं। इसके धुएँ से गोला भर जाता और आकाश में उड़ने लगता है। इसका व्यवहार आतिशबाजी में या विवाह आदि शुभ अवसरों पर होता है।

३. एक प्रकार का बड़ा गोला जो आकाश की ओर फेंकने पर फट जाता है और जिसमें से आतिशबाजी छूटती है।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उड़ाना।—छूटना।—छोड़ना।

गुभ—संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र की खाड़ी।—(लश०)।

गुभीⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० गुम्फ=गुच्छा] अंकुर। गाभ। उ०—मुरली मोर मनोहर बानी सुनि इकटक जु उभी। सूरदास मनमोहन निरखत उपजी काम गुभी।—सूर०, १०।१८७०।

गुमीला—संज्ञा पुं० [देश०] गोटा जो मल रुकने के कारण पेट में रुक जाता है।

गुम[1]—वि० [फ़ा०] १. लुप्त। छिपा हुआ। अप्रकट। २. अप्रसिद्ध। ३. खोया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—होना।

यौ०—गुमनाम। गुमराह।

गुम—संज्ञा पुं० [देश०] वातावरण की वह स्थिति जिसमें हवा न चल रही हो।

गुमक—संज्ञा स्त्री० [हिं० गमक] दे० 'गमक'।

गुमकना—क्रि० स० [सं० गम] शब्द का भीतर ही भीतर गूँजना।

गुमका†—संज्ञा पुं० [देश०] भूसी से दाना अलग करने का काम।

गुमचा†—संज्ञा पुं० [सं० गुञ्जा] गुंजा। घुमची।

गुमची†—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जा] गुंजा। घुमची।

गुमजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुमटी] दे० 'गुमटी'।

गुमटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा।

विशेष—यह कपास के फूल को नष्ट कर देता है जिससे फसल मारी जाती है।

गुमटा[2]—संज्ञा पुं० [सं० गुम्बा+हिं० टा (प्रत्य०)] वह गोल सूजन जो मत्थे या सिर पर चोट लगने से होती है। गुलमी।

गुमटी[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुंबद] १. मकान के ऊपरी भाग में सीढ़ी या कमरों आदि की छत जो शेष भाग से अधिक ऊपर उठी हुई होती है। २. गोलाकार या चौकोर कोठरी या कमरा जो रेलवे लाइन के किनारे प्रायः लाइन पार जानेवाले मार्गों पर बना होता है। वि० दे० 'गिमटी'।

गुमटी[2]—संज्ञा पुं० [?] नाव या जहाज में का पानी फेंकनेवाला मल्लाह या खलासी।

गुमना†—क्रि० अ० [फ़ा० गुम] गुम होना। खो जाना।

गुमनाम—सं० [फ़ा०] अप्रसिद्ध। अज्ञात। जिसे कोई न जानता हो।

यौ०—गुमनाम पत्र=ऐसा पत्र जिसमें लेखक ने अपना नाम न दिया हो।

गुमर—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुमान] १. अभिमान। घमंड। शेखी। २. मन में छिपाया हुआ क्रोध या द्वेष आदि। गुबार। ३. धीरे धीरे की बातचीत। कानाफूसी। उ०—मेरे नैन अंजन तिहारे अधरन पर शोभा देखि गुमर बढ़ायो सब सखियाँ।—रसकुसुमाकर (शब्द०)।

गुमरनाⓤ—क्रि० अ० [हिं० घुमड़ना]। घिरना। गुमड़ना।

गुमराह—वि० [फ़ा०] १. कुपथगामी। बुरे मार्ग में चलनेवाला। २. भूला हुआ। भटका हुआ।

गुमराही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. भूल। भ्रम। २. कुपंथ। बुरा मार्ग। कुमार्ग।

गुमशुदा—वि० [फ़ा० गुमशुदह्]। गुम। खोया हुआ। भूला हुआ।

गुमसुम[1]—वि० [फ़ा० गुम+अनु० सुम] १. चुप। जो कुछ भी बोल न रहा हो। २. बिल्कुल हिल डुल न रहा हो। ३. उदास। चिंतित। ४. खोया हुआ।

गुमसुम[2]—क्रि० वि० १. चुपचाप। शांतिपूर्वक। २. ध्यानस्थ। खोया हुआ सा।

क्रि० प्र०—बैठना।—होना।

गुमान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. अनुमान। कयास। २. घमंड। अहंकार। गर्व।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३. लोगों की बुरी धारणा। बदगुमानी। लोकापवाद। उ०—तुलसी जुपै गुमान को होतो कछू उपाउ। तौ कि जानकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ।—तुलसी (शब्द०)। ४. शंका। सुबहा।

गुमाना†—क्रि० स० [फ़ा० गुम=खोया हुआ] खोना। गँवाना।

क्रि० प्र०—देना।—बैठना।

गुमानी—वि० [हिं० गुमान] घमंडी। अहंकारी। गरूर करनेवाला।

गुमाश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुमाश्तह्] वह मनुष्य जो किसी बड़े व्यापारी या कोठीवाल की ओर से बही आदि लिखने या माल खरीदने और बेचने पर नियुक्त हो।

गुमाश्तागीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुमाश्तहगीरी] १. गुमाश्ते का पद। २. गुमाश्ते का काम।

गुम्फिटना†—क्रि० अ० [सं० गुम्फित] लिपटना। लपेटा जाना।

गुमेटना†—क्रि० स० [सं० गुम्फित] लपेटना।

गुम्मट—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुंबद]। गुंबज।

गुम्मर—संज्ञा पुं० [हिं०गुम्मट] चेहरे या किसी और अंग पर निकला हुआ बहुत बड़ा गोल मसा या माँस का लोथड़ा।

गुम्मा—संज्ञा पुं० [देश०] बड़ी मोटी ईंट जो अँगरेजी ढंग की इमारतों में लगती है।

गुरंवा†—संज्ञा पुं० [हिं० गुडंबा] दे० 'गुडंबा'।

गुर[1]—संज्ञा पुं० [सं० गुरुमंत्र] वह साधन या क्रिया जिसके करते ही काम तुरंत हो जाय। मूलमंत्र। सार।

गुर[2]—संज्ञा पुं० [सं० गुण] तीन की संख्या। (डिं०)।

गुर[3]†—संज्ञा पुं० [हिं० गुड़] दे० 'गुड'।

गुर[4]†ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० गुरु] दे० 'गुरु'।

गुरखई†—संज्ञा स्त्री० [सं० गो+हिं० रखना] एक प्रकार की रेहन या बंधक।

गुरखाई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह रेहन जिसमें रेहन रखनेवाला रेहन रखी हुई जमीन का ⅓ मालगुजारी देता है।

गुरगा—संज्ञा पुं० [सं० गुरुग] [स्त्री० गुरगी] १. गुरु का अनुगामी। चेला। शिष्य। २. टहलुआ। नौकर। छोकरा। अनुचर। ३. चर। दूत। गुप्तचर। जासूस।

मुहा०—गुर्गे छूटना=दूतों या गुप्तचरों का किसी कार्य के लिये प्रस्थान करना।

गुरगाबी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मुंडा जूता।

गुरच—संज्ञा पुं० [सं० गुडूची] दे० 'गुरुच'।

गुरचना†—क्रि० अ० [हिं० गुरुच] १. किसी वस्तु का उलझकर टेढ़ा मेढ़ा होना। २. आपस में उलझना।

गुरचियाना†—क्रि० अ० [हिं० गुरुच] सिकुड़कर टेढ़ा मेढ़ा हो जाना।

गुरची†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुरुच] सिकुड़न। बट। बल।

गुरचों†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] परस्पर धीरे धीरे बातें करना। कानाफूसी।

यौ०—गुरचों गुरचों।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गुरज—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुर्ज] दे० 'गुर्ज'।

गुरजा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसे लोवा कहते हैं।

गुरझन—स्त्री० [हिं० गुरझना] उलझन। पेंच की बात। ग्रंथि।

गुरझना—क्रि० स० [हिं० उलझना] उलझना।

गुरझनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुरझन] दे० 'गुरझन'।

गुरझियाना—क्रि० अ० [हिं० गुरझना] सिकुड़कर टेढ़ा हो जाना। गाँठ या उलझन पड़ना।

गुरझियाना²(पु)—क्रि०स०[हिं० गुरझना] गाँठ डालना या उलझाना।

गुरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयत्न। चेष्टा। उद्योग [को०]।

गुरदा संज्ञा पुं० [फ़ा० सं० गोर्द] १. रीढ़दार जीवों के अंदर का एक अंग जो पीठ और रीढ़ के दोनों ओर कमर के पास होता है।

विशेष—इसका रंग लाली लिए भूरा और आकार आलू का सा होता है। इसके चारो ओर चरबी मढ़ी होती है। साधारणतः जीवों में दो गुरदे होते हैं जो रीढ़ के दोनों ओर स्थित रहते हैं। शरीर में इनका काम पेशाब को बाहर निकालना और खून को साफ रखना है। यदि इनमें किसी प्रकार का दोष आ जाय तो रक्त बिगड़ जाता और जीव निर्बल हो जाता है। मनुष्य में बाँया गुरदा कुछ ऊपर की ओर और दाहिना कुछ नीचे की ओर हटकर होता है। मनुष्य के गुरदे प्रायः ८-६ अंगुल लंबे, ५ अंगुल चौड़े और २ अंगुल मोटे होते हैं।

२. साहस। हिम्मत। जैसे—(क) वह बड़े गुरदे का आदमी है। (ख) यह बड़े गुरदे का काम है। ३. एक प्रकार की छोटी तोप। ४. लोहे का एक बड़ा चमचा या करछा जिससे गुड़ बनाते समय उबलता हुआ पाग चलाते हैं।

गुरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० घुलना] गलना। घुलना।

गुरनियआलू—संज्ञा पुं० [देश०] रतालू, जमीकंद आदि की जाति का एक कंद।

विशेष—यह बंगाल और मध्य, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में होता है। इसका रंग ऊपर से लाल होता है। इसकी लता बहुत बड़ी होती है।

गुरबत - संज्ञा स्त्री० [अ० गुर्बत] १. विदेश में रहना। प्रवास। २. परदेश। विदेश। ३. कंगाली। दरिद्रता।

गुरविनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गुर्विणी] दे० 'गुर्विणी'।

गुरबी(पु)—वि० [सं० गर्विन्] अभिमानी। घमंडी।

गुरमुख वि० [हिं० गुरु+मुख] जिसने गुरु से मंत्र लिया हो। दीक्षित। दीक्षाप्राप्त।

गुरमुखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुरुमुखी] दे० 'गुरुमुखी'।

गुरम्मर†—संज्ञा पुं० [हिं० गुड़+अंब] मोटे आम का वृक्ष। आम का वह वृक्ष जिसका फल बहुत मीठा होता हो। उ०—वृक्ष गुरम्मर बैठि अमृत फल खाइए। जन्म जन्म की भूख सो तुर्त बुझाइए।—कबीर (शब्द०)।

गुरम्मा†—संज्ञा पुं० [हिं० गुडंबा] दे० 'गुडंबा'।

गुरवार—संज्ञा पुं० [सं० गुरुवार] दे० 'गुरुवार'।

गुरवी†—वि० [सं० गर्व] घमंडी। अहंकारी। उ०—देहै कृष्ण दूसरी उरबी। गुरु के सरिस बुझावत गुरवी।—(शब्द०)।

गुरसल—संज्ञा पुं० [देश०] गिलगिलिया। सिरोही। किलहँटी।

गुरसी†—संज्ञा स्त्री० दे० [हिं०] 'गोरसी' या 'बोरसी'।

गुरसुम—संज्ञा पुं० [देश०] सोनारों की एक प्रकार की छेनी।

गुरहा—संज्ञा पुं० [देश०] १. वह तख्ता जो छोटी नावों में अंदर की ओर दोनों सिरों पर जड़ा रहता है। इन्हीं तख्तों में से एक पर खेनेवाला मल्लाह बैठता है। २. एक प्रकार की छोटी मछली जो प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है। यह उत्तर प्रदेश बंगाल और आसाम की नदियों में पाई जाती है।

गुराइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोराई] दे० 'गुराई'।

गुराई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरा] दे० 'गोराई'।

गुराउ¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुराव] दे० 'गुराव'।

गुराउ²†—संज्ञा पुं० [हिं० गोरा > गुर+आउ (प्रत्य०)] गोरापन। गोराई।

गुराव—संज्ञा पुं० [देश०] १. तोप लादने की गाड़ी। उ०—तिमि घरनाल और करनालें सुतरनाल जंजालें। गुर गुराव रहँकले भले तहँ लागे विपुल बयालें।—रघुराज (शब्द०)। २. वह बड़ी नाव जिसमें केवल एक मस्तूल हो (लश०)।

गुराव†—संज्ञा पुं० [हिं० गुरिया] १. चौपायों को खिलाने के लिये चारा टुकड़े टुकड़े करने की क्रिया। २. वह हथियार जिससे चारा काटा जाता है। गँड़ासा।

गुरिंदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोइंदह्] गुप्तचर। भेदिया। गोइंदा। जैसे—कोतवाल तथा उनके गुरिंदों ने छेदालाल जी का जीवन भारभूत कर दिया।—प्रताप (शब्द०)।

गुरिद†(पु)—संज्ञा [फ़ा० गुर्ज] १. गदा।—(क्व०)। उ०—बाँधे आयुधि गुरिद सदाई। महि पर पटकत अरि मर जाई।—रघुराज (शब्द०)। २. गुर्ज।

गुरिदल—संज्ञा पुं० [देश०] १. किलकिला की जाति का एक पक्षी जो जलाशयों के निकट रहता है और मछली खाता है। इसे वदामी कहते हैं। २. कचनार का पेड़ ।

गुरिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] १. वह दाना, मक्का या गाँठ जो किसी प्रकार की माला या लड़ी का एक अंश हो। जैसे—माला की गुरिया, रीढ़ की गुरिया, साँप की गुरिया आदि। २. चौकोर या गोल छोटा टुकड़ा जो काटकर अलग किया गया हो। कटा हुआ छोटा खंड। ३. मांस का छोटा टुकड़ा। बोटी।

गुरिया[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. दरी बुनने के करघे की वह बड़ी लकड़ी या शहतीर जिसमें वै का बाँस लगा रहता है। इसे भिल्लन भी कहते हैं। २. हेंगे या पोटे की वह रस्सी जिसका एक सिरा हेंगे में और दूसरा बैलों की गरदन के पास जूए के बीच में बँधा रहता है।

गुरिल्ला—संज्ञा पुं० [अं० गोरिला] दे० 'गोरिल्ला'।

गुरीरा†—वि० [हिं० गुड़+ईला (प्रत्य०)] १. गुड़ का सा मीठा। २. सुंदर। बढ़िया। उत्तम। उ०—सूर परस सों भयो गुरीरा।—जायसी (शब्द०)।

गुरु[1]—वि० [सं०] [संज्ञा गुरुत्व, गुरुता] १. लंबे चौड़े आकारवाला। बड़ा। २. भारी। वजनी। जो तौल में अधिक हो। ३. कठिनता से पकने या पचनेवाला (खाद्य पदार्थ)। ४. चौड़ा (डिं०)। ५. पूजनीय (को०)। ६. महत्वशील (को०)। ७. कठिन (को०)। ८. दीर्घमात्रावाला (वर्ण) (को०)। ९. प्रिय (को०)। १०. तीव्रतापूर्ण (को०)। ११. संमान्य (को०)। सर्वोत्तम। सुंदर (को०)। १२. दर्पपूर्ण (बात)। १३. अदमनीय (को०)। १४. शक्तिशाली। बलवान् (को०)। १५. मूल्यवान् (को०)।

गुरु[2]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गुरुआनी] १. देवताओं के आचार्य बृहस्पति। १. बृहस्पति नामक ग्रह।

यौ०—गुरुवार।

३. पुष्य नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता बृहस्पति हैं। ४. अपने अपने गृह्य के अनुसार यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, जो गायत्री मंत्र का उपदेष्टा होता है। आचार्य। ५. किसी मंत्र का उपदेष्टा। ६. किसी विद्या या कला का शिक्षक। सिखाने, पढ़ाने या बतलानेवाला। उस्ताद।

यौ०—गुरुकुल। गुरुगृह=गुरुकुल।

७. दो मात्राओंवाला अक्षर। दीर्घ अक्षर जिसकी दो मात्राएँ या कलाएँ गिनी जाती हैं। जैसे—राम में रा।—(पिंगल)।

विशेष—संयुक्त अक्षर के पहलेवाला अक्षर (लघु होने पर भी) गुरु माना जाता है। पिंगल में गुरु वर्ण का संकेत ऽ है। अनुस्वार और विसर्गयुक्त अक्षर भी गुरु ही माने जाते हैं।

८. वह ताल जिसमें एक दीर्घ या दो साधारण मात्राएँ हों।

विशेष—पिंगल के गुरु की भाँति ताल के गुरु का चिह्न भी ऽ ही है।—(संगीत)।

९. वह व्यक्ति जो विद्या, बुद्धि बल, वय या पद में सबसे बड़ा हो।

यौ०—गुरुजन। गुरुवर्य।

१०. ब्रह्मा। ११. विष्णु। १२. शिव। १३. कौंछ। १४. पिता (को०)। १५. द्रोणाचार्य (को०)।

गुरुअई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुरु+अई (प्रत्य०)] दे० 'गुरुआई'।

गुरुआइन—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरु+आइन (प्रत्य०)] १. गुरु की स्त्री। २. वह स्त्री जो शिक्षा देती हो।

गुरुआई—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरु+आई (प्रत्य०)] १. गुरु का धर्म। २. गुरु का कृत्य। गुरु का काम। ३. चालाकी। धूर्तता।

गुरुआनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुरु+आनी (प्रत्य०)] दे० 'गुरुआइन'।

गुरुकंठ—संज्ञा पुं० [सं० गुरुकण्ठ] मयूर। मोर (को०)।

गुरुकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] कोई गंभीर कार्य। गंभीर महत्व का कार्य। २. आध्यात्मिक गुरु का कार्य। आचार्य का कार्य अथवा आचार्य का पद (को०)।

गुरुक—वि० [सं०] १. थोड़ा। भारी। २. दीर्घ (पिंगल) (को०)।

गुरुकार—संज्ञा पुं० [सं०] उपासना। पूजा (को०)।

गुरुकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरुकुण्डली] फलित ज्योतिष में एक चक्र।

विशेष—इसके द्वारा जन्मनक्षत्र के अनुसार एक एक वर्ष के लिये अधिपति ग्रह का निश्चय किया जाता है। इस चक्र के मध्य में गुरु अर्थात् बृहस्पति रखे जाते हैं और उनके आठ ओर आठ ग्रह रखे जाते हैं। इसी से इस चक्र को गुरुकुंडली कहते हैं।

गुरुकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुरु, आचार्य या शिक्षक के रहने का वह स्थान जहाँ वह विद्यार्थियों को अपने साथ रखकर शिक्षा देता हो। गुरुगृह।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में यह प्रथा थी कि गुरु और आचार्य लोग साधारण मनुष्यों के निवासस्थान से बहुत दूर एकांत में रहते थे और लोग अपने बालकों को शिक्षा के लिये वहीं भेज देते थे। वे बालक, जबतक उनकी शिक्षा समाप्त न होती, वहीं रहते थे। ऐसे ही स्थानों को गुरुकुल कहते थे।

२. प्राचीन परिपाटी के रहन सहन का विद्यालय।

गुरुकृत—वि० [सं०] १. पूजित। मानित। २. अत्यधिक किया हुआ (को०)।

गुरुक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] गुरुपरंपरा द्वारा दी जानेवाली शिक्षा (को०)।

गुरुगंधर्व—संज्ञा पुं० [सं० संगीत शास्त्र में गुरुगन्धर्व] इंद्रताल के छह भेदों में से एक भेद।

गुरुगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुरुकुल। २. धनु और मीन नामक राशियाँ (को०)।

गुरुघ्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पापी जिसने अपने किसी गुरुजन को मार डाला हो। गुरु को मार डालनेवाला व्यक्ति। २. सफेद सरसों (को०)।

गुरुघ्न[2]—वि० गुरु या गुरुजन को मार डालनेवाला (को०)।

गुरुच—संज्ञा स्त्री० [सं० गुडूची] एक प्रकार की मोटी बेल जो रस्सी के रूप में बहुत दूर तक चली जाती है।

विशेष—यह बेल पेड़ों पर चढ़ी मिलती है और बहुत दिनों तक रहती है।

इसकी पत्तियाँ पान के आकार की गोल गोल होती हैं। इसकी गाँठों में से जटाएँ निकलती हैं जो बढ़कर जड़ पकड़ लेती हैं। गुरुच दो प्रकार की देखने में आती है। एक में फल नहीं लगते। दूसरी में गुच्छों में मकोय की तरह के फूल, फल लगते हैं और उसके पत्ते कुछ छोटे होते हैं। गुरुच के डंठल का आयुर्वेदिक औषधियों में बहुत प्रयोग होता है। वैद्यक में गुरुच तिक्त, उष्ण, मलरोधक, अग्निदीपक तथा ज्वर, दाह, वमन कोढ़ आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है। नीम पर की गुरुच दवा के लिये अच्छी मानी जाती है। इसे कूटकर इसका सत भी बनाते हैं। ज्वर में इसका काढ़ा बहुत दिया जाता है।

पर्या० गुडूची। अमृतवल्ली। कुंडली। मधुपर्णी। सोमवल्ली। विशल्या। तंत्री। निर्जरा। वत्सादनी। छिन्नरुहा। अमृता। जीवंतिका। उद्धारा। वरा। ज्वरारि। श्यामा। चक्रांगी। मधुपर्णिका। रसायनी। छिन्ना। नियकप्रिया। चंद्रहासा। नागकुमारिका। छद्या।

गुरुच खाप--संज्ञा पुं० [देश०] बढ़इयों का रंदे की तरह का एक औजार जिससे लकड़ी गोल की जाती है।

गुरुचर्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरु की सेवा [को०]।

गुरुचांद्री--वि० [सं० गुरुचान्द्रीय] गुरु और चंद्रमाकृत। जो गुरु और चंद्रमा के योग से होता हो (ज्योतिष)।

विशेष--ज्योतिष में बृहस्पति और चंद्रमा का कर्कराशि में होना ही गुरुचांद्री योग कहलाता है। जिसकी जन्मकुंडली में यह योग लग्न या दशम स्थान में पड़ता है वह दीर्घजीवी और भाग्यवान् होता है।

गुरुज(पु)†--संज्ञा पुं० [फा० गुर्ज] दे० 'गुर्ज'। उ० --तीसर खड़ग कूँड़ पर लावा। काँध गुरुज हुत घाव न आवा।--जायसी (शब्द०)।

गुरुजन--संज्ञा पुं० [सं०] बड़े लोग। माता पिता, आचार्य आदि।

गुरुडम--संज्ञा पुं० [सं० गुरु+अं० डम (प्रत्य०)] गुरुआई का दंभ।

गुरुतल्प--संज्ञा पुं० [सं०] १. विमाता से गमन करनेवाला पुरुष।

विशेष--मनु ने ऐसे पुरुष को महापातकी लिखा है और उसके लिये यही प्रायश्चित्त या दंड लिखा है कि वह या तो लोहे के जलते हुए बरतन में सोकर या लोहे की जलती हुई स्त्री का आलिंगन करके मर जाए।

२. गुरु की शैया (पत्नी) (को०)।

गुरुतल्पग--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुरुतल्प'।

गुरुतल्पी--संज्ञा पुं० [सं० गुरुतल्पिन्] दे० 'गुरुतल्प' [को०]।

गुरुता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुरुत्व। भारीपन। २. महत्व। बड़प्पन। ३. गुरुपन। गुरु का कर्तव्य। गुरुआई।

गुरुताई(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० गुरुता+ई (प्रत्य०)] दे० 'गुरुता'।

गुरुताल--संज्ञा पुं० [सं०] संगीत का एक ताल [को०]।

३-२८

गुरुतोमर--संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जो तोमर छंद के अंत में दो मात्राएँ रख देने से बन जाता है। जैसे,--तब और प्रसेन पुकारि कै। लरते भये धनु धारि कै।

गुरुत्व--संज्ञा पुं० [सं०] १. भारीपन। वजन। बोझ।

विशेष--पदार्थ विज्ञान के अनुसार पदार्थों का गुरुत्व वास्तव में उस वेग या शक्ति की मात्रा है जिससे वह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति द्वारा नीचे की ओर जाता है। वेग की इस मात्रा में उस अंतर का भी विचार कर लिया जाता है जो अक्ष पर घूमती हुई पृथ्वी के उस वेग के कारण पड़ता है जिससे वह पदार्थों को (केंद्र से) बाहर हटाती है। अतः आकर्षण वेग की मात्रा समुद्रतल और क्रांति वृत्त पर ३८५.१ और ध्रुव पर ३८७.१ इंच प्रति सेकंड होती है। यह गुरुत्व वेग समुद्रतल पर की अपेक्षा पहाड़ों पर कुछ कम होता है, अर्थात् उसमें प्रति दो मील की ऊँचाई पर सहस्रांश की कमी होती जाती है। किसी पदार्थ का वजन जितना क्रांतिवृत्त पर तौलने से होगा उससे ध्रुव पर उसे ले जाकर तौलने से $\frac{1}{१८९}$वाँ भाग अधिक रहेगा। वैशेषिक सूत्र में रूप, रस आदि केवल १७ गुण बतलाए हैं पर प्रशस्तपाद भाष्य में गुरुत्व, द्रवत्व आदि ६ गुण और बतलाए हैं। गुरुत्व को मूर्त और सामान्य गुण माना है, अर्थात् ऐसा गुण जो पृथ्वी, जल, वायु आदि स्थूल या मूर्त द्रव्यों में पाया जाता है तथा जो अनेक ऐसे द्रव्यों में रहता है। प्राचीन नैयायिक केवल जल और मिट्टी में ही गुरुत्व मानते थे। उनके मत से तेज, वायु आदि में गुरुत्व नहीं। सांख्य मतवाले गुरुत्व को तमोगुण का धर्म मानते हैं, सत्व या रजोगुण में गुरुत्व नहीं मानते। आजकल की परीक्षाओं द्वारा वायु आदि का गुरुत्व अच्छी तरह सिद्ध हो गया है।

२. महत्व। बड़प्पन। ३. गुरु का काम।

गुरुत्वकेंद्र--संज्ञा पुं० [सं० गुरुत्वकेन्द्र] पदार्थ विज्ञान में पदार्थों के बीच वह बिंदु जिसपर यदि उस पदार्थ का सारा विस्तार सिमटकर आ जाय तो भी गुरुत्वाकर्षण में कुछ अंतर न पड़े। किसी पदार्थ में वह बिंदु जिसपर समस्त वस्तु का भार एकत्र हुआ और कार्य करता हुआ मान सकते हैं।

विशेष--इस गुरुत्वकेंद्र का पता कई रीतियों से लग सकता है। वृत्ताकार या गोल वस्तुओं का केंद्र ही गुरुत्वकेंद्र होता है। पर बेडौल या विस्तार की वस्तुओं में गुरुत्वकेंद्र वह होता है जिसे किसी नोक पर टिकाने से वह पदार्थ ठीक ठीक तुल जाय, इधर उधर झुका न रहे। प्रत्येक तराजू या तुला में इस प्रकार का गुरुत्वकेंद्र होता है।

गुरुत्वलंब--संज्ञा पुं० [सं० गुरुत्वलम्ब] वह रेखा जो किसी पदार्थ के गुरुत्वकेंद्र से नीचे की ओर खींची जाय।

गुरुत्वाकर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] वह आकर्षण जिसके द्वारा भारी वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं।

विशेष--इस आकर्षण शक्ति का थोड़ा बहुत पता भास्कराचार्य को १२०० संवत् में लगा था। उन्होंने अपने सिद्धांत

शिरोमणि में स्पष्ट लिखा है—'आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरुस्वाभिमुखं स्वशक्त्या। आकृष्यते तत्पततीव भाति, समे समंतात् क्व पतत्वियं खे।' अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है इसी से वह आकाशस्थ (निराधार) भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है; जो पदार्थ गिरते हैं वे पृथ्वी के आकर्षण से ही गिरते हैं। योरप में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का पता सन् १६८७ ई० में न्यूटन को लगा। उसने अपने बगीचे में पेड़ से फल नीचे गिरते देखा। उसने सोचा कि यह फल जो ऊपर या अगल बगल की ओर न जाकर नीचे की ओर गिरा उसका कारण पृथ्वी की आकर्षण शक्ति है। इस आकर्षण की विशेषता है कि यह उत्पन्न और नष्ट नहीं किया जा सकता और न कोई व्यवधान बीच में पड़ने से उसमें कुछ रुकावट या अंतर डालता है।

गुरुदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्या पढ़ने पर जो दक्षिणा गुरु को दी जाय। आचार्य को दी जानेवाली भेंट।

विशेष—जब लोग गुरु के पास विद्या पढ़ने जाते थे तब घर आने के समय गुरु को वही दक्षिणा देते थे जो गुरु माँगें और गुरु का भरपूर संतोष कर स्नातक की पदवी पाकर गृहस्थ होते थे।

गुरुदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्य नक्षत्र।

गुरुद्वारा—संज्ञा पुं० [सं० गुरु+द्वार] १. गुरु का स्थान। आचार्य या गुरु के रहने की जगह। २. सिखों का मंदिर या मठ।

गुरुपत्र, गुरुपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] वंग धातु या राँगा [को०]।

गुरुपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली का पेड़ [को०]।

गुरुपाक—वि० [सं०] जो ठीक से न पच सके। देर से पचनेवाला [को०]

गुरुपुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] वृहस्पति के दिन पुष्य नक्षत्र के पड़ने का योग। ज्योतिष में यह एक अच्छा योग माना जाता है।

गुरुपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आषाढ़ मास की पूर्णिमा जिस दिन गुरु की पूजा होती है [को०]।

गुरुबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] संकीर्ण राग का एक भेद।

गुरुबिनी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गुर्विणी] दे० 'गुर्विणी'।

गुरुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्य नक्षत्र। २. मीन राशि। ३. धन राशि।

गुरुभाई—संज्ञा पुं० [सं० गुरु+हिं० भाई] दो या दो से अधिक ऐसे पुरुष जिनमें से प्रत्येक का गुरु वही हो जो दूसरे का। एक ही गुरु के शिष्य।

गुरुभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. महत्व। बड़प्पन। २. भार [को०]।

गुरुमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० गुरुमन्त्र] गुरु का दिया हुआ मंत्र [को०]।

गुरुमर्दल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ढोल या नगाड़ा [को०]।

गुरुमुख—वि० [सं० गुरु+मुख] दीक्षित। जिसने गुरु से मंत्र लिया हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गुरुमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरु=मुखी] गुरु नानक की चलाई हुई एक प्रकार की लिपि।

विशेष—यह पंजाब में प्रचलित है और देवनागरी का परिवर्तित रूप मात्र है।

गुरुवर्ति, गुरुवर्तिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरु या गुरुजन के प्रति संमानपूर्ण आचरण।

गुरुरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. पोखराज नाम का रत्न। २. गोमेद नाम का रत्न।

गुरुवर्चोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] चूना [को०]।

गुरुवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० गुरुवर्तिन्] वह ब्रह्मचारी जो गुरु के यहाँ निवास करता हो [को०]।

गुरुवार—संज्ञा पुं० [सं०] वृहस्पति का दिन। वृहस्पति। वीफै। सप्ताह का पाँचवाँ दिन।

विशेष—वृहस्पति जो देवताओं के गुरु थे इसी से गुरु शब्द से वृहस्पति का ग्रहण होता है।

गुरुवासर—संज्ञा पुं० गुरुवार। वीफै।

गुरुवासी—संज्ञा पुं० [सं० गुरुवासिन्] गुरुगृह में रहनेवाला शिष्य। अंतेवासी [को०]।

गुरुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिष्य का गुरु के प्रति कर्तव्य। २. गुरुआई [को०]।

गुरुव्यथ—वि० [सं०] अत्यधिक दुःखी [को०]।

गुरुशिखरी—संज्ञा पुं० [सं० गुरुशिखरिन्] हिमालय [को०]।

गुरुश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंत्रस्वरूपा गायत्री [को०]।

गुरुसमुत्थ—वि० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र में कथित (राष्ट्र या राजा) जो लड़ाई के लिये बड़ी मुश्किल से तैयार हो।

गुरुसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्व जो उस समय लगता है जब वृहस्पति सिंह राशि पर आता है। उ०—सुनो प्रभास महातम राजा। अघ कहँ हरत पुन्य कर ताजा। गोदावरि गुरुसिंह नहाई। कुंभ माहि हरि क्षेत्र सुहाई।—गि० दा० (शब्द०)।

विशेष—इस पर्व में नासिक क्षेत्र की यात्रा और गोदावरी नदी का स्नान पुण्य समझा जाता है।

गुरुस्व—संज्ञा पुं० [सं०] गुरु की संपत्ति [को०]।

गुरू—संज्ञा पुं० [सं० गुरु]। गुरु। अध्यापक। आचार्य।

यौ०—गुरूघंटाल=(१) बड़ा भारी चालाक। अत्यंत चतुर। (२) धूर्त। चालबाज।

गुरेट—संज्ञा पुं० [हिं० गुर, गुड़=बेंट] चार पाँच हाथ के डंडे में लगा हुआ एक प्रकार का बेलन जिससे कड़ाह में पकता हुआ ईख का रस चलाया जाता है।

गुरेरना†—क्रि० स० [सं० गुरु=बड़ा+हेरना=ताकना] आँखें फाड़कर देखना। घूरना।

यौ०—गुरेरा गुरेरी=एक दूसरे को क्रोध से देखना।

गुरेरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गुलेला] दे० 'गुलेला'। उ०—वेई गड़ि गाड़ै परीं उपटयौ हार हिये न। आन्यौ मोरि मतंग मनु मारि गुरेरनि मैन।—विहारी (शब्द०)।

गुर्ग—संज्ञा पुं० [फ़ा०] भेड़िया।

गुर्गआशनाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कपटपूर्ण मित्रता। ऊपर से मित्रता भीतर से छल।

गुर्गा—संज्ञा पुं० [हिं० गुरगा] दे० 'गुरगा'।

गुर्ज—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुर्ज] गदा। सोटा। उ०—कोइ कूकर शूकर पर कोई। कर में गुर्ज भयानक सोई।—(रघुनाथ शब्द०)।

यौ०—गुर्जदार=गदाधारी सैनिक।

गुर्ज—संज्ञा पुं० [फ़ा० बुर्ज] कोट या शहरपनाह की दीवार का वह स्थान जो कुछ गोलाकार बना दिया जाता है। यहाँ पर योद्धाओं के लिये विशेष ओट होती है जिसमें छिपे छिपे वे आक्रमणकारी शत्रु पर वार कर सकते हैं। गुर्जा। बुरज। उ०—कंचन कोट कँगूरे कलशा गोपुर गुर्ज दुआरा।—रघुराज (शब्द०)।

गुर्जना—क्रि० स० [हिं० गर्जना] १. गर्जना। गर्जन करना। २. डाँटना फटकारना।

गुर्जबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गदाधारी सैनिक।

गुर्जमार—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुर्ज+हिं० मार] एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो लोहे का गुर्ज लिए रहते हैं।

विशेष—ये दूकानों पर माँगते फिरते हैं। यदि ये कहीं कुछ नहीं पाते हैं तो उसी गुर्ज से वे अपनी आँख या और किसी अंग पर आघात करते हैं। इन्हें मुँडचिरे भी कहते हैं।

गुर्जर संज्ञा पुं०[सं०] १. गुजरात देश। २. गुजरात देश का निवासी। ३. एक जाति। गूजर।

गुर्जराट—संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर+राष्ट्र] गुजरात देश।

गुर्जरी—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुजरात देश की स्त्री। २. भैरव राग की स्त्री।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें तीव्र मध्यम और शेष सब स्वर कोमल लगते हैं। यह रामकली और ललित को मिलाकर बनती है। इसके गाने का समय दिन में १० दंड से १६ दंड तक है। ३. गूजर जाति की स्त्री (क्व०)।

यौ०—गुर्जरी टोड़ी=संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

गुर्जी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुर्ज का अल्पा०] छोटा गुर्ज।

गुर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गुर्दिस्तान का निवासी।

गुर्दा—संज्ञा पुं० [हिं० गुरदा] दे० 'गुरदा'।

गुर्दिस्तान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] फारस के उत्तर का एक प्रदेश जिसका कुछ भाग आजकल रूम राज्य के अंतर्गत पड़ता है। इसे कुर्दिस्तान भी कहते हैं।

गुर्र—संज्ञा स्त्री० [अनु० या हिं० गुर्राना] गुर्राहट।

गुर्रा¹—संज्ञा पुं० [हिं० गुर्री] वह रस्सी जिससे धुनिया धनुही का फरहा कसते हैं।

गुर्रा²—संज्ञा पुं० [देश०] १. मौन। चुप्पी। सन्नाटा।

क्रि० प्र०—खींचना=सं० मारना। दम साधना।

गुर्रा³—संज्ञा पुं० [अ० गुरह्] १. मुहर्रम महीने की द्वितीया का चाँद। द्वितीया तिथि। २. तातील। नागा।

मुहा०—गुर्रा करना=(१) तातील करना। छुट्टी करना। (२) लंघन करना। फाका करना। गुर्रा देना=(१) नागा करना। (२) लंघन करना। फाका करना। गुर्रा बताना=(१) तातील का वादा करना। (२) नागा करना। (३) लंघन करना। (४) टालटूल करना।

गुर्रा⁴—संज्ञा पुं० [अनु०] ऐंठन। मोड़। मरोड़।

क्रि० प्र०—देना=उमेठना। मरोड़ देना।

गुर्रादार—वि० [हिं० गुर्रा+फ़ा० दार (प्रत्य०)] ऐंठनदार। मरोड़दार।

गुर्राना—क्रि० अ० [अनु०] क्रोधवश गले से भारी आवाज निकालना। डराने के लिये घुर-घुर की तरह गंभीर शब्द करना। (जैसा, कुत्ते बिल्ली आदि करते हैं।) जैसे,—कुत्ता गुर्राकर चढ़ बैठा। २. क्रोध या अभिमान के कारण भारी और कर्कश स्वर से बोलना। जैसे,—तुम काम भी बिगाड़ते हो और कहने से गुर्राते हो।

गुर्राहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुर्राना] गुर्राने की क्रिया।

गुर्री—संज्ञा स्त्री० [देश०] भुने हुए जौ।

गुर्वादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य और बृहस्पति का एक राशि पर गमन। गुर्वस्त।

विशेष—विवाह आदि शुभ कार्य इस योग में वर्जित हैं।

गुर्विणी—वि० स्त्री० [सं०] १. सगर्भा। गर्भवती। उ०—प्रियतमा पतिदेवता जेहि उमा रमा सिहाहिं। गुर्विणी सुकुमारि सिय तियमणि समुझि सकुचाहिं।—तुलसी (शब्द०)। २. बड़ी या श्रेष्ठ स्त्री (क्व०)। ३. गुरु की पत्नी (क्व०)।

गुर्वी¹—वि० स्त्री० [सं०] गर्भवती। गर्भिणी।

गुर्वी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ी या श्रेष्ठ स्त्री। उ०—निगम आगम अगम गुर्वि तव गुण कथन उर्विधर करत जेहि सहस जीहा।—तुलसी (शब्द०)। २. गर्भिणी। अंतःसत्वा। ३. गुरुपत्नी (क्व०)।

गुलंच—संज्ञा पुं० [सं० गुलञ्च] एक प्रकार का कंद।

गुलंचा—संज्ञा पुं० [सं० गुडूची] दे० 'गुरुच'।

गुलंदाज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गोलंदाज] दे० 'गोलंदाज'।

गुल¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. गुलाब का फूल।

यौ०—गुलकंद। गुलरोगन।

२. फूल। पुष्प।

यौ०—गुलदान। गुलदस्ता। गुलकारी, आदि।

मुहा०—गुल खिलना=(१) विचित्र घटना होना। अद्भुत बात होना। ऐसी बात होना जिसका अनुमान पहले से लोगों को न हो। मजेदार बात होना। कोई ऐसी घटना होना जिससे लोगों को कुतूहल हो। (२) बखेड़ा खड़ा होना। उपद्रव मचना। जैसे,—हमने उसकी सारी करतूत उसके घर कह दी है, देखो कैसा गुल खिलता है। गुल खिलाना=(१) विचित्र घटना उपस्थित करना। ऐसी बात उपस्थित करना जिसका अनुमान पहले से लोगों को न हो। (२) बखेड़ा खड़ा करना। उपद्रव मचाना। गुल कतरना=(१) कागज या कपड़े आदि के बेल बूटे बनाना। (२) कोई विलक्षण या अनोखा काम करना। गुल खिलाना।

३. पशुओं के शरीर में फूल के आकार का भिन्न रंग का गोल दाग।

क्रि० प्र०—पड़ना।

४ फूल के आकार का वह गड्ढा जो फूले हुए गालों में हँसने आदि के समय पड़ता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

५. वह चिह्न जो मनुष्य या पशु के शरीर पर गरम की हुई धातु आदि के दागने से पड़ता है। दाग। छाप।

मुहा०—गुल खिलना=अपने शरीर पर गरम धातु से दगवाना।

क्रि० प्र०—दागना।–देना।

६. दीपक आदि में बत्ती का वह अंश जो बिलकुल जल जाता है।

क्रि० प्र०=काटना।—झाड़ना।—पड़ना।

यौ०—गुलगीर=चिराग का गुल काटने की कैंची।

मुहा०—(चिराग) गुल करना=(चिराग) बुझाना या ठंडा करना। (चिराग)। गुल होना=(चिराग) बुझना।

७ तमाकू का वह जला हुआ अंश जो चिलम पीने के बाद बच रहता है। जट्ठा। ८. जूते के तले का चमड़ा जो एड़ी के नीचे रहता है और जिसमें नाल आदि लगाई जाती है। जूते का पान।

क्रि० प्र०—लगाना।—जड़ना।

९. कारचोबी की बनी हुई फूल के आकार की बड़ी टिकुली जिसे कहीं कहीं स्त्रियाँ सुंदरता के लिये कनपटी पर लगाती हैं।

१०. चूने की वह गोल बिंदी जो आँखें दुखने के समय उनकी लाली दूर करने के लिये कनपटियों पर लगाते हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।

११. किसी चीज पर बना हुआ भिन्न रंग का कोई गोल निशान।

क्रि० प्र० पड़ना।—बनना।

१२. आँख का डेला। १३. एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना। १४. जलता हुआ कोयला। अंगारा।

मुहा०—गुल बँधना=(१) आग का अच्छी तरह सुलग जाना। (२) पास में कुछ धन हो जाना। कुछ पूँजी हो जाना।

१५. कोमले या गोबर का बना हुआ छोटा गोला जिसे आग को अधिक देर तक रखने के लिये अँगीठी आदि में राख के नीचे गाड़ देते हैं। १६. सुंदरी स्त्री। नायिका।

गुल²—संज्ञा पुं० [देश०] १. हलवाई का भट्ठा। २. खेतों में बहुत दूर तक पानी ले जाने के लिये बना हुआ वह बरहा जो जमीन से कुछ ऊँचा होता है। ३. आँख और कान के बीच का स्थान। कनपटी। उ०—गुल तासु गोली सों फुटी। कर की न बाग तऊ छुटी।—सूदन (शब्द०)।

गुल³—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुड़। २. लिंग या शिश्न का अग्र भाग। ३. भगनासा (को०)।

गुल⁴—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल] शोर। हल्ला।

यौ०—गुलगपाड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

गुलअंदाम—वि० [फ़ा०] फूल जैसा कोमल। मृदुल। पुष्पांगी। पुष्पांगना।

गुलअकीक—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+अ० अकीक] एक प्रकार का फूलदार पौधा।

विशेष—इसके बीसियों भेद पाए जाते हैं। यह प्रायः फाल्गुन, चैत या सावन भादों में लगाया जाता है।

गुलअजायब—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+अ० अजायब<अजीब का बहु०,] १. एक प्रकार का फूल। इस फूल का पौधा।

गुल अनार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] अनार का फूल।

गुल अब्बास—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+अ० अब्बास] अब्बास नाम का पौधा। जिसमें बरसात के दिनों में लाल या पीले रंग के फूल लगते हैं।

गुल अब्बासी—वि० [फ़ा० गुल+अब्बास+ई (प्रत्य०)] हलकी स्याही लिए हुए एक प्रकार का खुलता लाल रंग।

विशेष यह ४ छँटाक शहाब के फूल, ½ छँटाक आम की खटाई और ८-९ माशे नील के मिलाने से बनता है। इसमें यदि नील की मात्रा बढ़ाते जायँ तो क्रमशः करौंदिया, किरमिजी, अबीरी और सौसनी रंग बनता जाता है।

गुल अशर्फी—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल अशर्फी] एक प्रकार का पीले रंग का फूल।

गुल आतशी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गहरे लाल रंग का गुलाब।

गुलउरा—संज्ञा पुं० [हिं० गुलौर] दे० 'गुलौर'।

गुल औरंग—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का गेंदा।

गुलकंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलकंद] मिस्री या चीनी में मिली हुई गुलाब के फूलों की पंखुरियाँ जो धूप की गरमी से पकाई जाती हैं। इनका व्यवहार प्रायः दस्त साफ लाने के लिये होता है।

विशेष—सेवती के फूलों का जो गुलकंद बनता है उसकी तासीर ठंढी होती है। इसमें विशेषता यह है कि इसे चंद्रमा की चाँदनी में सिद्ध करते हैं।

गुलकट—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+हिं० काटना] शीशम की लकड़ी का बना हुआ छीपियों का एक प्रकार का ठप्पा जिससे कपड़े पर बेल बूटे छापे जाते हैं।

गुलकदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलकदह] १. फुलवारी। बगीचा। २. वह घर जहाँ अत्यधिक फूल हों।

गुलकार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] किसी प्रकार के बेल बूटे बनानेवाला कारीगर।

गुलकारी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. किसी प्रकार के बेलबूटे या फूल पत्ती इत्यादि बनाने, तराशने या काढ़ने का काम। २. कोई ऐसा काम, जिसमें बेल बूटे आदि बने हों।

गुलकेश—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+केश] १. मुर्गकेश का पौधा। कलगा। २. मुर्गकेश या कलगे का फूल। उ०—जो गुलकेश के फूल सरा हैं। मैन तुरीन के जीन झवा हैं।—गुमान (शब्द०)।

गुलखन—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलखन] १. भट्ठी। भाड़। २. चूल्हा।

गुलखैरू—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+ख़ैरू] १. एक पौधा जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं। २. इस पौधे का फूल।

गुलगचिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गिलगिलिया'।

गुलगपाड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+हिं० गप्प] बहुत अधिक चिल्लाहट। शोर। गुल। हल्ला।

गुलगश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बाग की सैर।

गुलगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चिराग का गुल कतरने की कैंची।

गुलगुल—वि० [हिं० गुलगुला] नरम। मुलायम। कोमल।

गुलगुला[1]—वि० [हिं० गुदगुदा] कोमल। नरम। मुलायम।

गुलगुला[2]—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+गोला] १. एक प्रकार का पकवान।

विशेष—यह खमीरी आटे या मैदे के लड्डू के आकार के गोल टुकड़े बनाकर घी या तेल में पकाने से बनता है। यह प्रायः मीठा और कभी कभी नमकीन भी होता है।

२. कनपटी। आँख और कान के बीच का वह स्थान जहाँ आँख के कुछ रोगों को रोकने के लिये गुल लगवाए जाते हैं।

गुलगुला[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो प्रायः ऊसर जमीन में उगती है।

गुलगुलाना†—क्रि० स० [हिं० गुलगुल] १. किसी गूदेदार या उसी प्रकार की और किसी चीज को दबा या मलकर मुलायम करना। जैसे,—रस चूसने के लिये आम गुलगुलाना। २. गुदगुदाना।

गुलगुलिया[1]†—संज्ञा पुं० [?] बंदर नचानेवाला। मदारी।

गुलगुलिया[2]†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। गिलगिलिया।

गुलगुली[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह हिमालय के झरनों में बहुत पाई जाती है और लगभग दो हाथ तक लंबी होती है। इसका मांस बहुत काँटेदार होता है।

गुलगुली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुलगुलाना] दे० 'गुदगुदी'।

गुलगुली[3]†—वि० [हिं० गुलगुलाना] मुलायम। कोमल। उ०—झालरनदार झुकि झूमत बितान बिछे गहव गलीचा अरु गुलगुली गिलमैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११७।

गुलगूँ—वि० [फ़ा०] गुलाबी रंग का। गुलाबी।

गुलगूना—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलगूनह्] एक प्रकार का उबटन।

विशेष—इसका व्यवहार स्त्रियाँ सौंदर्यवृद्धि के लिये अपने चेहरे पर करती हैं।

गुलगोथना—संज्ञा पुं० [हिं० गुलगुल+तन] ऐसा नाटा मोटा आदमी जिसके गाल आदि अंग खूब फूले हों। वह जिसका शरीर खूब भरा और फूला हो।

मुहा०—गुलगोथना सा=मोटा ताजा। फूले हुए गालवाला।

गुलचना†Ⓟ—क्रि० स० [हिं० गुलचा] गुलचा मारना।

गुलचमन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] फूलों का बाग।

गुलचश्म—संज्ञा पुं० [हिं० गोला+चलाना] गोला चलानेवाला। तोप दागनेवाला। तोपची।

गुलचश्म—वि० [फ़ा०] जिसकी आँख में फूली हो।

गुलचाँदनी—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+हिं० चाँदनी] १. एक प्रकार का पौधा जिसमें फूल लगते हैं। २. इस पौधे का फूल जो रंगत में सफेद होता और प्रायः रात को खिलता है।

गुलचा—संज्ञा पुं० [हिं० गाल] हाथ की उँगलियों से या मुट्ठी बाँधकर धीरे से और प्रेमपूर्वक किया हुआ आघात।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—पड़ना।—मारना।—लगाना।

गुलचाना†Ⓟ—क्रि० स० [हिं० गुलचा+ना] गुलचा मारना या लगाना।

गुलचियाना†Ⓟ—क्रि० स० [हिं० गुलचा] दे० 'गुलचाना'।

गुलचीं—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. फूल चुननेवाला, माली। २. एक सदाबहार का फूल। ३. उक्त फूल का पेड़।

गुलची—संज्ञा स्त्री० [?] रंदे की तरह बढ़इयों का एक औजार जिससे लकड़ी में गलता बनाया जाता है।

गुलचोन—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—यह कलम से लगाया जाता है और बारहों महीने फूलता है। इसका पेड़ बड़ा होता है और पत्ते बहुत कड़े तथा लंबे होते हैं।

२. इस वृक्ष का फूल।

विशेष—यह ऊपर से सफेद और भीतर की ओर कुछ पीले रंग का होता है और इसमें चार पंखुरियाँ होती हैं। कहते हैं, इस फूल को अधिक सूँघने से पीनस रोग हो जाता है।

गुलचीनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फूल चुनना।

गुलछर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० गोली+छर्रा] वह भोग विलास या चैन जो बहुत स्वच्छंदतापूर्वक और अनुचित रीति से किया जाय।

मुहा०—गुलछर्रे उड़ाना=निर्द्वंद्व रूप से अनुचित और बहुत भोग विलास करना।

गुलजलील—संज्ञा पुं० [फ़ा०] असबर्ग का फूल जिससे रेशम रँगा जाता है और जो खुरासान से आता है।

गुलजार[1] संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलजार] बाग। वाटिका।

गुलजार[2]—वि० हरा भरा। आनंद और शोभायुक्त। जो देखने में बहुत भला मालूम हो। चहल पहल से भरा। जैसे,—उसके रहने से सारा महल्ला गुलजार रहता था।

गुलझटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल+सं० झट=जमाव] १. तागे आदि की वह उलझन जो बैठकर गोली के आकार की हो जाती है। उलझन की गाँठ।

मुहा०—गुलझटी पड़ना=जी में गाँठ पड़ना। मनोमालिन्य होना। गुलझटी निकलना=मनोमालिन्य दूर करना।

२. सिकुड़न। शिकन।

क्रि० प्र०—पड़ना।—निकलना।

गुलझड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुलझटी] दे० 'गुलझटी'।

गुलटप्पा—संज्ञा पुं० [देश०] गप्प।

गुलतराश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह कैंची जिससे चिराग का गुल काटते हैं। २. वह नौकर जो चिराग का गुल काटता है। ३. वह कैंची जिससे माली लोग बाग के पौधों को कतरते या छाँटते हैं। बाग के पौधों को काटने छाँटनेवाला माली। ५. संगतराशों का वह औजार जिससे वे पत्थरों पर फूल पत्तियाँ बनाते हैं।

विशेष—इसका आकार नहरनी का सा होता है और इसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है।

गुलता—संज्ञा पुं० [हिं० गोल] मिट्टी की बनी हुई वह गोली जो गुलेले से छोड़ी जाती है।

गुलतुर्रा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कलगा नाम के पौधे का फूल जो गहरे लाल रंग का होता है। मुर्गकेश। जटाधारी।

गुलत्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुलथी] उबाला हुआ चावल जो भात से अधिक गीला और गला हो।

विशेष—यह प्रायः बच्चों और पेट के रोगियों को दिया जाता है।

गुलथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल+सं० अस्थि] पानी ऐसी पतली वस्तुओं के गाढ़े होकर स्थान स्थान पर जमने से बनी हुई गुठली या गोली।

गुलदस्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलदस्तह्] १.एक विशेष प्रकार से बाँधा हुआ कई प्रकार के सुंदर फूलों और पत्तियों का समूह जो सजावट या किसी को उपहार देने के काम में आता है। फूलों का गुच्छा। २. वह घोड़ा जिसका अगला बाँया पैर गाँठ तक सफेद हो और दाहिने पैर का रंग पिछले दोनों पैरों के रंग के समान हो।

विशेष—ऐसा घोड़ा ऐबी नहीं समझा जाता।

गुलदाउदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल+दाउदी] १.एक प्रकार का छोटा पौधा जिसकी लंबी कटावदार पत्तियों में भी उसके फूल की भाँति हलकी भीनी खुशबू होती है।

विशेष—कार्तिक अगहन में इसमें कई रंग के छोटे और बड़े फूल लगते हैं जो देखने में बहुत सुंदर होते हैं। वर्षा के पानी में यह पेड़ नष्ट हो जाता है इसलिये लोग इसे गमलों में लगाकर छाया में रखते हैं।

२. इस पौधे का फूल।

गुलदान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गुलदस्ता रखने का पात्र।

विशेष—गुलदान प्रायः लंबोतरा और चीनी मिट्टी, काँच या इसी प्रकार के किसी और पदार्थ का बनाया जाता है। इसके ऊपर शोभा के लिये अच्छा पालिश करके रंग बिरंगे बेल बूटे बना देते हैं।

गुलदाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलदानह्] बुँदिया नाम की मिठाई जिससे लड्डू भी बनते हैं।

गुलदार[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक प्रकार का सफेद रंग का कबूतर जिसपर लाल या काले रंग के छोटे छोटे कई चिह्न होते हैं। २. एक प्रकार का कसीदा। ३. चीता।

गुलदार[२]—वि० जिसपर गोल फूल के आकार के कुछ चिह्न बने हों। फूलदार।

गुलदावदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुलदाउदी] दे० 'गुलदाउदी'।

गुलदुपहरिया—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+हिं० दुपहरिया] १. एक प्रकार का पौधा जो दो ढाई हाथ ऊँचा होता है।

विशेष—इसकी एक सीधी डाल होती है और इसमें चारों ओर टहनियाँ नहीं निकलतीं। इसकी पत्तियाँ लंबी और कटावदार होती हैं और उनका रंग कालापन लिए हुए गहरा हरा होता है।

२.इस पौधे का फूल जो कटोरे के आकार का और गहरे लाल रंग का होता है।

विशेष—इसका घेरा एकहरे दल का होता है। यह फूल अधिक धूप चढ़ने पर फूलता है। कुछ लोग भूल से सूरजमुखी को भी गुलदुपहरिया कहते हैं।

गुलदुम—संज्ञा [फ़ा०] बुलबुल।

गुलनरगिस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की लता।

गुलनार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. अनार का फूल। २. एक प्रकार का रंग जो अनार के फूल का सा गहरा लाल होता है।

विशेष—यह रंग रँगने के लिये कपड़े को पहले हलदी में और तब शहाब में रँगते हैं।

३. एक प्रकार का अनार।

विशेष—इसमें फल नहीं लगते, केवल बड़े बड़े सुंदर फूल ही लगते हैं।

गुलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल+हिं० पपड़ी] सोहन हलुवे की तरह की एक मिठाई जिसे पपड़ी भी कहते हैं।

गुलप्यादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलप्यादह्] सदागुलाब। (इस गुलाब में महक कम होती है।)

गुलफानूस—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलफ़ानूस] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो शोभा के लिये लगाया जाता है।

गुलफाम—वि० [फ़ा० गुलफ़ाम] जिसके शरीर का रंग फूल के समान हो। सुंदर। खूबसूरत।

गुलफिरकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल+हिं० फिरकी] एक प्रकार का बड़ा पौधा जिसमें गुलाबी रंग के फूल लगते हैं।

गुलफिशाँ[१]—वि० [फ़ा० गुलफ़िशाँ] १. फूल बिखेरनेवाला। २. मधुर बात कहनेवाला। सुवक्ता।

गुलफिशाँ[२]—संज्ञा पुं० १ फुलझड़ी। २.गुलाब छिड़कने की शीशी।

गुलफिशानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुलफ़िशानी] १. फूल बरसाना। २. मधुर बात का कथन। खुशबयानी।

गुलफुँदना—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+फुँदना] एक प्रकार की घास जो खेतों में उगती है।

गुलबकावली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल+सं० बकावली] १. एक प्रकार का पेड़।

विशेष—यह नर्मदा नदी के उद्गम के पास अमरकंटक के वन में होता है। यह हल्दी के पेड़ से मिलता जुलता है।

२. इस पौधे का फूल।

विशेष—यह रंगत में सफेद और बहुत सुगंधित होता है। जिस प्रांत में यह होता है उस प्रांत के लोग इसे पीसकर आई हुई आँखों पर लगाते हैं। कहते हैं, यह आँख के कई रोगों की अच्छी दवा है।

३. उर्दू की एक प्रसिद्ध कहानी [को०]।

विशेष- गुलबकावली के संबंध में लोगों में कई तरह की दंतकथाएँ प्रसिद्ध हैं।

गुलवक्सर- संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+देश० वक्सर] नकस के खेल में एक प्रकार की जीत की बाजी जो एक खिलाड़ी के हाथ में दो बादशाह और एक एक्का या दो बेगमें और एक एक्का आ जाने से बनती है। (जुआरी)।

मुहा०-गुल फँसना=(किसी खेलाड़ी को) दो बादशाहों या बेगमों के बीच में एक एक्का मिलना।

गुलवदन- संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बहुमूल्य रेशमी कपड़ा जो प्रायः लहरियादार या धारीदार होता है।

विशेष--यह पहले केवल लाल या गुलाबी रंग का होता और काशी में बनता था, पर अब यह सब रंगों का और पंजाब के कुछ नगरों में भी बनने लगा है।

गुलबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुलबाजी] एक दूसरे के ऊपर फूल फेंकना। फूलों का खेल। पुष्पक्रीड़ा।

गुलबादला—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ऊदल नाम का पेड़ जिसके रेशों से मोटे रस्से बनते हैं। बूटी।

गुलबूटा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+हिं० बूटा] (किसी चीज पर बनाया हुआ) बेलबूटा। नक्काशी।

गुलबेल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल+हिं० बेल] एक प्रकार की लता।

गुल मखमल—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलमखमल] १. एक प्रकार का पौधा जिसके बीजों से पहले पनीरी तैयार करके तब पौधे लगाए जाते हैं। २. इस पौधे का फूल जो देखने में मखमल की घुंडियों के समान जान पड़ता है।

विशेष--यह सफेद लाल और पीला कई रंग का तथा बहुत मुलायम और चिकना होता है।

गुलमा[१]—संज्ञा पुं० [?] मसालेदार कीमा भरी हुई बकरी की अँतड़ी दुलमा। लँगूचा।

गुलमा[२]—संज्ञा पुं० [सं० गुल्म] [स्त्री० गुलमी] वह गोल कड़ी सूजन जो चोट लगने से सिर या मत्थे पर होती है।

गुलमेंहदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल+हिं० मेंहदी] १. एक प्रकार का पौधा जो कुआर में फूलता है। २. इस पौधे का फूल जो कई रंगों का होता है।

गुलमेख—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलमेख] वह कील जिसका सिरा फूल के आकार का गोल होता है। फुलिया।

गुलमोहर-संज्ञा पुं० [अं० गोल्डमोर] एक बड़ा फूलदार वृक्ष।

विशेष—इसमें गरमी के दिनों में फल आते हैं जो गुच्छों में लगते हैं और कई मास तक रहते हैं।

गुलरंग—वि० [फ़ा०] गुलाब के फूल जैसे रंग का। गुलाबी।

गुलरुख—[फ़ा० गुलरुख] वि० दे० 'गूलरू'।

गुलरू—वि० [फ़ा०] फूल के समान आकृतिवाला। सुंदर। खूबसूरत।

गुलरेज[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलरेज] १. आतिशबाजी की एक प्रकार की फुलझड़ी।

विशेष—इससे से कई तरह के बड़े बड़े फूल झड़ते हैं। यह शोरा, गंधक, कोयला, लोहचून और बारूद मिलाकर बनती है। २. एक कपड़ा।

गुलरेज[२] - संज्ञा पुं० फूल बरसानेवाला।

गुललाला—संज्ञा पुं० [फा० गुललालह्] १. एक प्रकार का पौधा जो पोस्ते के पौधे के समान होता है। २. इस पौधे का फूल जो लाल रंग का, बहुत सुहावना और कोमल होता है। दे० 'गुल्लाला'।

गुलशकर -संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गुलकंद।

गुलशकरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. चीनी और गुलाब के फूल से बनी हुई मिठाई। २. गँगेरन।

गुलशन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वाटिका। बाग। फुलवारी।

गुलशब्बो—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लहसुन से मिलता जुलता एक प्रकार का छोटा पौधा जिसको रजनीगंधा, सुगंधराज भी कहते हैं। २. इस पौधे का फूल, जो सफेद रंग का और बहुत सुगंधित होता है। यह रात के समय फूलता है। ३. एक खेल जो चिराग बुझाकर खेला जाता है। इसमें लोग एक दूसरे को चपत लगाते हैं।

गुलसुम—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+हिं० सुमन] सोनारों का, नक्काशी करने का, एक औजार जिससे वे फूल आदि बनाते हैं।

गुलसौसन—संज्ञा पुं० [फ़ा] एक प्रकार का फूल जो हलके आसमानी रंग का होता है। यह फारस में बहुत होता है।

गुलहजारा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलहजारह्] एक प्रकार का गुललाला।

गुलहथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुलत्थी] दे० 'गुलत्थी'।

गुलाब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक झाड़ या कँटीला पौधा जिसमें बहुत सुंदर सुगंधित फूल लगते हैं।

विशेष—गुलाब के सैकड़ों भेद होते हैं पर मुख्य ३० जातियाँ मानी गई हैं। गुलाब प्रायः सर्वत्र १६ से लेकर ७० अक्षांश तक भूगोल के उत्तरार्ध में होता है। भारतवर्ष में यह पौधा बहुत दिनों से लगाया जाता है और कई स्थानों में जंगली भी पाया जाता है। कश्मीर और भूटान में पीले फूल के जंगली गुलाब बहुत मिलते हैं। वन्य अवस्था में गुलाब में चार पाँच छितराई हुई पंखड़ियों की एक हरी पंक्ति होती है पर बगीचों में सेवा और यत्नपूर्वक लगाए जाने से पंखड़ियों की संख्या में वृद्धि होती है पर केसरों की संख्या घट जाती है। कलम पैवंद आदि के द्वारा सैकड़ों प्रकार के फूलवाले गुलाब भिन्न भिन्न जातियों के मेल से उत्पन्न किए जाते हैं। गुलाब की कलम ही लगाई जाती है। इसके फूल कई रंगों के होते हैं, लाल (कई मेल के हलके गहरे) पीले, सफेद इत्यादि। सफेद फूल के

गुलाब को सेवती कहते हैं। कहीं कहीं हरे और काले रंग के भी फूल होते हैं। लता की तरह चढ़नेवाले गुलाब के झाड़ भी होते हैं जो बगीचों में टट्टियों पर चढ़ाए जाते हैं। ऋतु के अनुसार गुलाब के दो भेद भारतवर्ष में माने जाते हैं सदागुलाब और चैती। सदागुलाब प्रत्येक ऋतु में फूलता और चैती गुलाब केवल वसंत ऋतु में। चैती गुलाब में विशेष सुगंध होती है और वही इत्र और दवा के काम का समझा जाता है। भारतवर्ष में जो चैती गुलाब होते हैं वे प्रायः बसरा या दमिश्क जाति के हैं। ऐसे गुलाब की खेती गाजीपुर में इत्र और गुलाबजल के लिये बहुत होती है। एक बीघे में प्रायः हजार पौधे आते हैं जो चैत में फूलते हैं। बड़े तड़के उनके फूल तोड़ लिए जाते हैं और अत्तारों के पास भेज दिए जाते हैं। वे देग और भभके से उनका जल खींचते हैं। देग से एक पतली बाँस की नली एक दूसरे बरतन में गई होती है जिसे भभका कहते हैं और जो पानी से भरी नाँद में रक्खा रहता है। अत्तार पानी के साथ फूलों को देग में रख देते हैं जिसमें से सुगंधित भाप उठकर भभके के बरतन में सरदी से द्रव होकर टपकती है। यही टपकी हुई भाप गुलाबजल है। गुलाब का इत्र बनाने की सीधी युक्ति यह है कि गुलाबजल को एक छिछले बरतन में रखकर बरतन को गीली जमीन में कुछ गाड़कर रात भर खुले मैदान में पड़ा रहने दे। सवेरे सरदी से गुलाबजल के ऊपर इत्र की बहुत पतली मलाई सी पड़ी मिलेगी जिसे हाथ से काँछ ले। ऐसा कहा जाता है कि गुलाब का इत्र नूरजहाँ बेगम ने १६१२ ईसवी में अपने विवाह के अवसर पर निकाला था। भारतवर्ष में गुलाब जंगली रूप में उगता है पर बगीचों में व्ह कितने दिनों से लगाया जाता है, इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। कुछ लोग 'शतपत्री', 'पाटलि' आदि शब्दों को गुलाब का पर्याय मानते हैं। रशीउद्दीन नामक एक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि चौदहवीं शताब्दी में गुजरात में सत्तर प्रकार के गुलाब लगाए जाते थे। बाबर ने भी गुलाब लगाने की बात लिखी है। जहाँगीर ने तो लिखा है कि हिंदुस्तान में सब प्रकार के गुलाब होते हैं। गुलाब का फूल कोमलता और सुंदरता के लिये प्रसिद्ध है, इसी से लोग छोटे बच्चों की उपमा गुलाब के फूल से देते हैं।

२. गुलाबजल।

मुहा०-गुलाब छिड़कना=गुलाबजल छिड़कना। गुलाब छिड़काई की रसम करना।

गुलाब अफशाँ—संज्ञा पुं० [फा० गुलाबअफशाँ] गुलाबपाश।

गुलाब चश्म—संज्ञा पुं० [फा०] खैरे रंग की एक प्रकार की चिड़िया।

विशेष—इसकी चोंच काली और पैर लाल होते हैं। यह मधुर स्वर में और अधिक बोलती है।

गुलाब छिड़काई—संज्ञा स्त्री० [फा० गुलाब+हिं० छिड़कना] १. विवाह में एक रीति जिसमें वर पक्ष और कन्या पक्ष के लोग एक दूसरे पर गुलाबजल छिड़कते हैं और कन्या पक्ष के लोग वर पक्ष को कुछ भेंट देते हैं। २. वह द्रव्य जो ऊपर लिखी रसम में दिया जाय।

गुलाबजम—संज्ञा पुं० [?] आसाम की पहाड़ियों में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी।

विशेष—इसकी पत्तियों से एक प्रकार का भूरा रंग निकलता है और इसकी छाल के रेशे से रस्सियाँ बनती हैं। इसे सोनाफूल भी कहते हैं।

गुलाबजल - संज्ञा पुं० [फा० गुलाब+सं० जल] गुलाब का अर्क।

गुलाबजामुन—संज्ञा पुं० [फा० गुलाब+हिं० जामुन] १. एक प्रकार की मिठाई।

विशेष—इसे बनाने के लिये पहले खोवे में मैदा या सिंघाड़े का आटा मिलाते हैं और तब उसको गोल या लंबोतरे टुकड़े करके घी में छानते और पीछे चाशनी में डुबो देते हैं।

२. एक प्रकार का वृक्ष जो बंगाल और आसाम में अधिकता से होता है।

विशेष—यह देखने में बहुत सुंदर होता है और प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। गरमी के अंत और बरसात के आरंभ में इसमें फल लगते हैं।

३. इस वृक्ष का फल।

विशेष—यह रंगत में नासपाती का सा और आकार में नीबू के बराबर कुछ चपटा होता है। इसके अंदर खाकी रंग का गोल बीज होता है और ऊपर की ओर मोटे दल का गूदेदार मीठा छिलका सा होता है जिसमें से गुलाब की सी सुगंध आती है और जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है।

गुलाबतालू—संज्ञा पुं० [फा० गुलाब+तालू] वह हाथी जिसका तालू गुलाबी रंग का हो। ऐसा हाथी बहुत अच्छा समझा जाता है।

गुलाबपाश—संज्ञा पुं० [फा०] झारी के आकार का एक प्रकार का लंबा पात्र जिसके मुँह पर हजारा लगा रहता है और जिसमें गुलाबजल आदि भरकर शुभ अवसरों पर लोगों पर छिड़कते हैं।

गुलाबपाशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गुलाबजल छिड़कने की क्रिया।

गुलाबबाड़ी—संज्ञा स्त्री० [फा० गुलाब+हिं० बाड़ी] वह आमोद या उत्सव जिसमें कोई स्थान गुलाब के फूलों से सजाया जाता है, गाना बजाना होता है और लोग गुलाबी कपड़े पहनते हैं। चैत के महीने में यह उत्सव होता है।

गुलाबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० गुलअब्बास] दे० 'गुल अब्बास' या 'अब्बास'।

गुलाबा संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बरतन। उ०—चमचा, चमची, जाम, तवा तंदूर गुलाबा।—सूदन (शब्द०)।

गुलाबी[1]—वि० [फा०] १. गुलाब के रंग का। जैसे—गुलाबी गाल, गुलाबी कागज। २. गुलाब संबंधी। ३. गुलाब जल से बसाया हुआ। जैसे,—गुलाबी रेवड़ी। ४. थोड़ा या कम। हलका।

विशेष—इस अर्थ में गुलाबी शब्द का प्रयोग केवल 'जाड़ा' और 'नशा, अथवा इनके पर्यायवाची शब्दों के साथ पाया जाता है।

गुलाबी[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रंग जो गुलाब की पत्तियों के रंग से मिलता जुलता है और शहाब और खटाई के मेल से बनाया जाता है।

गुलाबी[3]—संज्ञा स्त्री० १. शराब पीने की प्याली। २. गुलाब की पंखड़ियों से बनी हुई मिठाई। ३. एक प्रकार की मैना।

विशेष—यह मैना ऋतुभेद के अनुसार अपना रंग बदलती है। गरमी के दिनों में यह पहाड़ों में चली जाती है। यह मध्य एशिया और युरोप में भी पाई जाती है और प्रायः बड़े बड़े झुंडों में रहती है। यह घोंसला नहीं बनाती बल्कि थोड़ी घास बिछाकर उसी पर रहती है और पत्थरों या कँकड़ों के नीचे ४-५ अंडे देती है।

गुलाम—संज्ञा पुं० [अ० ग़ुलाम] १. मोल लिया हुआ दास। खरीदा हुआ नौकर।

मुहा०—(मनुष्य आदि को) गुलाम करना या बनाना=अपने वश में करना। पूरी तरह से अधिकार में करना। गुलाम का तिलाम=बहुत ही तुच्छ सेवक। सेवक का सेवक।

यौ०—गुलाम गर्दिश। गुलाम माल।

विशेष कभी कभी बोलनेवाला (उत्तम पुरुष) भी नम्रता प्रकट करने के लिये इस शब्द का प्रयोग करता है। जैसे,—गुलाम (मैं) हाजिर है, क्या आज्ञा है।

२. साधारण सेवक। नौकर। ३. गंजीफे का एक रंग। ४. ताश में दहले से बड़ा और बेगम से छोटा एक पत्ता। इसपर दास के रूप में एक आदमी का चित्र बना रहता है।

गुलाम गर्दिश संज्ञा स्त्री० [अ० गुलाम+फ़ा० गर्दिश] १. वह छोटी दीवार जो जनानखाने में अंदर की ओर सदर दरवाजे के ठीक सामने अथवा जनानखाने और दीवानखाने के बीच में परदे के लिये बनी हो।

विशेष—इस दीवार के रहने से स्त्रियाँ आँगन में घूम फिर सकती हैं और बाहर के लोगों की दृष्टि उनपर नहीं पड़ सकती।

२. कोठी या महल आदि के चारों ओर बना हुआ वह बरामदा जहाँ अरदली, चपरासी, दरबान और दूसरे नौकर चाकर रहते हों।

गुलाम चोर—संज्ञा पुं० [अ० ग़ुलाम+हिं० चोर] ताश का एक प्रकार का खेल जो दो से सात आठ आदमियों तक में खेला जाता है।

विशेष—इसमें एक गुलाम या और कोई पत्ता गड्डी से अलग रख दिया जाता है; और तब सब खेलनेवालों में बराबर बराबर पत्ते बाँट दिए जाते हैं। हर एक खिलाड़ी अपने अपने पत्तों के जोड़ (जैसे,—दुक्की दुक्की, छक्का छक्का, दहला दहला) निकालकर अलग रख देता है और सब एक दूसरे से एक एक पत्ता लेते हुए इसी प्रकार का जोड़ मिलाकर निकालते हैं। अंत में जिसके पास अकेला गुलाम या निकाले हुए पत्ते का जोड़ बच रहता है, वही चोर और हारा हुआ समझा जाता है।

गुलामजादा—संज्ञा पुं० [अ० ग़ुलाम+फ़ा० जादह्] १. दासी-पुत्र। २. विनय में बेटे के लिये प्रयुक्त।

गुलाम माल—संज्ञा पुं० [अ० ग़ुलाम+माल] थोड़े दामों की पर बहुत दिनों तक चलनेवाली और सब तरह का काम देनेवाली चीज। जैसे,—कंबल, लोई आदि।

गुलामी—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़ुलाम+हिं० ई (प्रत्य०)] १. गुलाम का भाव। दासत्व। २. सेवा। नौकरी। ३. पराधीनता। परतंत्रता।

गुलाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुललालह्] एक प्रकार की लाल बुकनी या चूर्ण जिसे हिंदू लोग होली के दिनों में एक दूसरे के चेहरों पर मलते हैं अथवा कुमकुमे आदि में भरकर फेंकते और उड़ाते हैं। उ०—जिन नैनन में बसत है रसनिधि मोहन लाल। तिनमें क्यों घालत अरी तैं भर मूठ गुलाल।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—मलना।

विशेष—पहले गुलाब या टेसू की पंखड़ियों में चंदन का बुरादा और केसर मिलाकर गुलाल बनाया जाता था, पर आजकल शिंगरफ या शहाब में रँगा हुआ सिंघाड़े का आटा ही गुलाल कहलाता है।

गुलाला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गुललाला] दे० 'गुललाला'।

गुलिया वि० [हिं० गुल्ली] महुए के बीज की भिंगी। गुली से निकाला हुआ। जैसे,—गुलिया तेल।

गुलियाना¹†—क्रि० स० [सं० गिल=निगलना] औषध या और कोई तरल पदार्थ बाँस के चोंगे में भरकर पशु को पिलाना। इसे 'ढरका देना' भी कहते हैं।

गुलियाना²—क्रि० स० [हिं० गोलियाना] दे० 'गोलियाना'।

गुलिस्ताँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह स्थान जहाँ फूलों के बहुत से पौधे आदि लगे हों। बाग। उपवन। वाटिका। २. फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी शिराजी का बनाया हुआ नीति संबंधी एक प्रसिद्ध ग्रंथ।

गुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुल्ली] दे० 'गुल्ली'।

गुलुंछ—संज्ञा पुं० [सं० गुलुञ्छ] गुच्छा (को०)।

गुलुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] गुच्छा (को०)।

गुलुफा संज्ञा पुं० [दे० गुल्फ] दे० 'गुल्फ'।

गुलू¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. नेपाल की तराई, बुंदेलखंड और बंगाल की खुश्क चट्टानों पर तथा छोटी छोटी पहाड़ियों पर और दक्षिण भारत तथा बरमा के जंगलों में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा पेड़।

विशेष—यह २५ से ४० हाथ तक ऊँचा होता है। इसमें टहनियों के सिरों पर गुच्छों में लंबी पत्तियाँ लगती हैं। जाड़े में इसका पतझड़ होता है और माघ फागुन में इसमें गंदकी रंग के छोटे फूल लगते हैं। इस वृक्ष की टहनियों, पत्तियों और कतीरा नाम के गोंद का उपयोग औषध में बहुत होता है और गरीब लोग इसके बीज भूनकर खाते हैं। कहीं कहीं लोग इसकी जड़ भी खाते हैं। इस वृक्ष की ऊपरी छाल मुलायम होती है और उसमें पर्त निकलती है। जब यह वृक्ष दस बरस का पुराना हो जाता है तब इसके तने के चार चार हाथ लंबे टुकड़े काट लेते हैं और उनके ऊपर की छाल निकाल लेते हैं। इसके हीर में से बहुत बढ़िया रेशा निकलता

है जिससे रस्से बनते हैं और एक प्रकार का कपड़ा भी बुना जाता है। इसकी लकड़ी से कई तरह के खिलौने आदि बनते हैं। प्रायः अकाल में इसकी छोटी छोटी टहनियाँ पशुओं के चारे का काम देती हैं। कतीरा नाम का गोंद इसी वृक्ष से निकलता है।

२. एक प्रकार की मछली जो हाथ सवा हाथ लंबी होती है। ३ एक प्रकार की बटेर।

गुलू[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गला। गरदन।

गुलूखलासी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुलू+अ० ख़लास] गला छूटना। मुक्ति। छुटकारा।

गुलूबंद—पुं० [फ़ा०] १. सलाई से या करघे पर बुनी हुई वह सूती, ऊनी या रेशमी लंबी और प्रायः एक बालिश्त चौड़ी पट्टी जो सरदी से बचने के लिये सिर, गले या कानों पर लपेटी जाती है। २. स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का जेवर जो गले से सटा रहता है।

गुलूला—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलूलह्] १. गुलेल का गुल्ला। २. बंदूक की गोली। ३. दवा की गोली।

गुलेंदा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल] महुए का पका फल। कोयँदा।

गुले—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़।

विशेष—यह उत्तर भारत में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और चमकदार होती है जिसपर खुदाई का काम बहुत अच्छा होता है। कहीं कहीं इसके बीजों की माला बनाई जाती है। इसे रंगचोल भी कहते हैं।

गुलेटन—संज्ञा पुं० [हिं० गोल] कुरंड पत्थर का वह छोटा गोला जिससे सिकलीगर अपना मसाला रगड़ते हैं।

गुलेनार—संज्ञा पुं० [हिं० गुलनार] दे० 'गुलनार'।

गुलेराना—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+अ० राना] १ सुंदर फूल। २. एक फूल जो भीतर की ओर लाल और बाहर की ओर पीला होता है।

गुलेल[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिलूल] वह कमान या धनुष जिससे चिड़ियों और बंदरों आदि को मारने के लिये मिट्टी की गोलियाँ चलाई जाती हैं। उ०—(क) गुप्त गुलेल सोलयें धारे। रिपु चिरई दिन लाखक मारे।—हनुमान (शब्द०)। (ख) तिलक विंदु को मानि निशाना। गूरा हनत गुलेल महाना।—रघुराज (शब्द०)।

गुलेल[२]†—संज्ञा पुं० [फ़ा० गिलोय] दे० 'गुरुच'।

गुलेलची—संज्ञा पुं० [हिं० गुलेल+ची (प्रत्य०)] गुलेल चलानेवाला। वह मनुष्य जो गुलेल चलाने में चतुर हो।

गुलेलबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुलेल+बाजी] १. गुलेल चलाना। २. गुलेल से चिड़ियाँ आदि मारना।

गुलेला—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलूला] १. मिट्टी की बनाई हुई गोली जिसको गुलेल से फेंककर चिड़ियों का शिकार किया जाता है। २ गुलेल।

गुलैंदा—संज्ञा पुं० [हिं० गुलेंदा] दे० 'गुलेंदा'।

गुलोह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिलोय] गुड़ूच। गुरुच।

गुलौर†—संज्ञा पुं० [सं० गुल=गुड़+ओर (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ रस पकाने का भट्ठा हो और जहाँ गुड़ बनाया जाता हो।

गुलौरा—संज्ञा पुं० [सं० गुल+हिं० औरा (प्रत्य०)] दे० 'गुलौर'।

गुल्गा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ताड़।

विशेष—यह सुंदरवन में पानी के किनारे लता की तरह फैलता है तथा चटगाँव- बरमा आदि में पाया जाता है। इसके पुराने फल जिसे गोलफल कहते हैं बहुत बड़े बड़े होते हैं और समुद्र में बहते बहते बहुत दूर तक चले जाते हैं। पत्तों के डंठलों को एक में बाँधकर उनपर सुंदरवन के लट्ठे बहाए जाते हैं। पत्ते छप्पर बनाने के काम में आते हैं और 'गोलपत्ता' कहलाते हैं।

गुल्फ—संज्ञा पुं० [सं०] एँड़ी के ऊपर की गाँठ।

गुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐसा पौधा जो एक जड़ से कई होकर निकले और जिसमें कड़ी लकड़ी या डंठल न हो। जैसे,—ईख, शर आदि।

विशेष—अर्कप्रकाश में गुल्म गण के अंतर्गत वरियारा, पाठा, तुलसी, काकजंघा, चिरचिरा आदि पौधे लिए गए हैं।

२. सेना का एक समुदाय जिसमें ९ हाथी, ९ रथ, २७ घोड़े और ४५ पैदल होते हैं। ३. पेट का एक रोग जिसमें उसके भीतर एक गोला सा बँध जाता है।

विशेष—हृदय के नीचे से लेकर पेड़ू तक के बीच कहीं पर यह गोला उत्पन्न हो सकता है। भावप्रकाश के अनुसार यह गोला अनियमित आहार विहार तथा वायु और पित्त के दूषित होने से होता है।

४. नसों की सूजन जो गाँठ के आकार की हो। ५. झाड़ी (को०)। ६. दुर्ग। किला (को०)। ७. खाईबंदी (को०)। ८. ग्राम का थाना (को०)। ९. नदी के किनारे या घाट पर सुरक्षा के लिये बनी हुई चौकी (को०)। १०. शिविर। सेनानिवेश (को०)।

गुल्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेतस (को०)।

गुल्मकेश—वि० [सं०] झबरीले बालोंवाला (को०)।

गुल्ममूल—संज्ञा पुं० [सं०] ताजी अदरक (को०)।

गुल्मप—संज्ञा पुं० [सं०] एक गुल्म का नायक। गौल्मिक।

गुल्मवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता (को०)।

गुल्मवात—संज्ञा पुं० [सं०] तिल्ली का एक रोग (को०)।

गुल्मी[१]—वि० [सं० गुल्मिन्] [स्त्री० गुल्मिनी] १. झुरमुट के रूप में उत्पन्न होनेवाला। २. तिल्ली के रोग से पीड़ित (को०)।

गुल्मी[२]—संज्ञा स्त्री० १. पेड़ों का झुंड। झाड़। २. बेर। ३. छोटी इलायची का पेड़। ४. तंबू। खेमा। ६ आँवले का पेड़ (को०)।

गुल्मोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुल्मवात' (को०)।

गुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] मिठास। मीठापन (को०)।

गुल्लक—संज्ञा पुं० [हिं० गोलक] वह संदूक या थैली जिसमें बिक्री द्वारा या और किसी प्रकार आई हुई रोजाना आमदनी रखी जाती है।

गुल्लरा—संज्ञा पुं० [हिं० गूलर] दे० 'गूलर'।

गुल्ला[१]—संज्ञा पुं० [हिं० गोला] १. मिट्टी की बनी हुई गोली जो गुलेल से फेंकी जाती है। २. एक बँगला मिठाई।

विशेष—यह फटे दूध के छेने की गोल गोल पिंडियों को शीरे में डुबोने से बनती है। इसे रसगुल्ला भी कहते हैं।

गुल्ला[२]—संज्ञा पुं० [अ० गुल] शोर। हल्ला। ऊँचा शब्द। उ०—आये निशाचर साहनी साजि मरीच सुबाहु सुने भव गुल्ला।—रघुराज (शब्द०)।

यौ०—हल्ला गुल्ला=शोरगुल।

गुल्ला[३]—संज्ञा पुं० [हिं० गुल्ली] १. ईख का कटा हुआ छोटा टुकड़ा। गँडेरी। गांड़ा। २. ईख का एक पोर जिसमें से ऊपर का कठोर हिस्सा या चेंफ और गाँठ निकाल दिया गया हो।

गुल्ला[४]—संज्ञा पुं० [हिं० गुलेल] वह धनुष जिससे मिट्टी की गोली फेंकी जाती है। गुलेल। उ०—चूक उनहुँ ते होय जे बाँधे बरछी गुल्ला।—गिरधर (शब्द०)।

गुल्ला[५]—संज्ञा पुं० [देश०] दरी कालीन बुनने के करघे में वह बाँस जिसमें वज के दोनों सिरे बँधे रहते हैं।

गुल्ला[६]—संज्ञा पुं० [देश०] वह ताना जो रेशमी धोतियों के किनारे बुनने में अलग तनकर भाँज में लगाया जाता है।

गुल्ला[७]—संज्ञा पुं० [हिं० गुल्ली] रस्सी में बँधी हुई वह छोटी लकड़ी जो पानी सींचने की लोटी (लुटिया) में पड़ी रहती है और जिसके अँटकाव के कारण भरी हुई लोटी रस्सी के साथ खिंच आती है।

गुल्ला[८]—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड़ जो बहुत ऊँचा होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी सुगंधित, हलकी और भूरे रंग की होती है तथा मजबूत होने के कारण इमारत के काम में आती है। नैनीताल में यह पेड़ बहुत होता है। इसे 'सराय' भी कहते हैं।

गुल्ला[९]—संज्ञा पुं० [देश०] गोटा पट्टा बुननेवालों का एक डोरा जो मजबूत होता है और जिसके दोनों सिरों पर सरकंडे की लकड़ियाँ लगी होती हैं।

विशेष—यह डोरा ताना के बदले में पड़ा रहता है। इसका एक सिरा ढेंकली में लगा रहता है और दूसरा सिरा पावँड़ी में बँधा होता है।

गुल्ला[१०]—संज्ञा पुं० [हिं० गुल्ली] रुई ओटने की चरखी के बीच में लगा हुआ लोहे का छड़।

विशेष—यह लगभग डेढ़ बालिश्त लंबा होता है। पिढ़ई और खूँटों के बीच में ठोका रहता है। इससे पिढ़ई या खूँटे सरकने या हिलने नहीं पाते।

गुल्लाला—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलेलालह्] एक प्रकार का लाल फूल। उ०—सदा सपर्दमत मोगरे सोनजुही निम मैन। जेहि पेचकचरसो करै गुल्लाला रँग मैन।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—इसका पौधा पोस्ते के पौधे के समान होता है। फूल भी पोस्ते ही के समान पर लाल होता है।

गुल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० गुलिका = गुठली] १. किसी फल की गुठली। किसी फल का बड़ा और लंबोतरा बीज। २. महुए की गुठली। गुलँदे का बीज। गुल्लू। कोलँदा। ३. किसी वस्तु का कोई लंबोतरा छोटा टुकड़ा जिसका पेटा गोल हो। जैसे,—काठ की गुल्ली, सोने की गुल्ली, दवाओं की गुल्ली इत्यादि। उ०—हल के पीछे जो लोहे की सीधी गुल्ली रहती है उससे धरती खुदती है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

मुहा०—गुल्ली बँधना=वीर्य का पुष्ट होना। युवावस्था पाना।

४. काठ का चार छह अंगुल लंबा टुकड़ा जिसके दोनों छोर जौ की तरह नुकीले होते हैं तथा पेटा मोटा और गोल होता है। इसे डंडे से मार मारकर लड़के एक प्रकार का खेल खेलते हैं। अंटी। अँटई। जैसे,—यह लड़का दिन भर गुल्ली डंडा खेलता है। ५. छत्ते में वह जगह जहाँ मधु होता है। ६. केवड़े का फूल। ७. मकई की बाल जिसके दाने निकाल लिए गए हों। गुखड़ी। ८. एक प्रकार की मैना। गंगा मैना। ९. ईख की गड़ेरी। गांड़ा। १०. छोटा गोल पासा। कोई पासा।

यौ०—गुल्लीवाला=पासा बनानेवाला।

११. सिकलीगरों का एक औजार जिससे वे तलवार या किसी हथियार का मोरचा खुरचते हैं। १२. जिल्दसाजों का एक औजार जिससे रगड़कर वे जिल्द की सीवन बराबर करते हैं। १३. पगड़ी बुननेवालों का एक औजार जिसे बुनते समय पाग के दोनों ओर इसलिये लगाते हैं जिसमें पाग तनी रहे।

विशेष—कई और पेशेवालों के गुल्ली के आकार औजार भी इसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

गुल्लीडंडा—संज्ञा पुं० [हिं० गुल्ली+डंडा] लड़कों का एक खेल जिसमें गुल्ली को डंडे से मारकर दूर फेंका जाता है।

क्रि० प्र०—गुल्ली डंडा खेलना=खेलकूद अथवा अनावश्यक कामों में समय नष्ट करना।

गुवा⑤—संज्ञा पुं० [सं० गुवाक] सुपारी। उ०—कोइ आदफर लौंग सुपारी। कोइ नरियर कोइ गुवा छुहारी।—जायसी (शब्द०)।

गुवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुपारी। २. चिकनी सुपारी।

गुवार⑤†—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल, प्रा० गोवाल, पुं० हिं० गुवाल] दे० 'ग्वाल'।

गुवारपाठा—संज्ञा पुं० [हिं० ग्वारपाठा] दे० 'ग्वारपाठा'।

गुवाल⑤†—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल, प्रा० गोवाल] दे० 'ग्वाल'।

गुविंद⑤†—संज्ञा पुं० [गोपेन्द्र, सं० प्रा० गोविन्द] दे० 'गोविंद'।

गुसल—संज्ञा पुं० [अ० गुस्ल] दे० 'गुस्ल'।

गुसलखाना⑤†—संज्ञा पुं० [हिं० गुस्लखाना] दे० 'गुसलखाना'। उ०—धरे है गुसलखाने बीच ऐसे उमराव, लै चले मनाय महाराज सिवराज को।—भूषण (शब्द०)।

गुसाईं—संज्ञा पुं० [हिं० गोसाईं] दे० 'गोसाईं' या 'गोस्वामी'।

गुसा⑤†—संज्ञा पुं० [अ० गुस्सह्] दे० 'गुस्सा'। उ०—सूरदास बरसाने के बनि बनि कौन गुसा है हरि सिकारी।—सूर (शब्द०)।

गुसीला(७)†—वि० [हिं० गुस्सा+ईला (प्रत्य०)] गुस्सैल। उ०—जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि मनु कीन्हों ना सलाम न वचन बोले सियरे।—भूषण ग्रं०, पृ० १०२।

गुसुलखान(७)—संज्ञा पुं० [हिं० गुसलखाना] दे० 'गुस्लखाना'। उ०—भूपन भनत है गुसुलखान पै खुमान अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।—भूषण ग्रं०, पृ० ५६।

गुसैयाँ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गोसाईं' या 'गोस्वामी'।

गुसैल—वि० [हिं० गुस्सा+ऐल (प्रत्य०)] दे० 'गुस्सैल'।

गुस्ताख—वि० [फ़ा० गुस्ताख] धृष्ट। ढीठ। अशालीन। अशिष्ट। बेअदब। बड़ों का संकोच न रखनेवाला।

गुस्ताखाना—क्रि० वि० [फ़ा० गुस्ताखानह्] अशिष्टतापूर्वक। बेअदबी से।

गुस्ताखी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुस्ताखी] धृष्टता। ढिठाई। अशिष्टता। बेअदबी।

गुस्ल—संज्ञा पुं० [अ० गुस्ल] स्नान।

यौ०—गुस्लखाना।

गुस्लखाना—संज्ञा पुं० [अ० गुस्ल+फ़ा० खानह्] स्नानागार। नहाने का घर।

गुस्लसेहत—संज्ञा पुं० [अ०] बीमारी से ठीक होने के बाद किया जानेवाला पहला स्नान।

गुस्सा—संज्ञा पुं० [अ० गुस्सह्] [वि० गुस्सावर, गुस्सैल] क्रोध। कोप। रिस।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—होना।—में आना।

मुहा०—गुस्सा उतरना=क्रोध शांत होना। (किसी पर) गुस्सा उतारना=(१) क्रोध में जो इच्छा हो उसे पूर्ण करना। कोप प्रकट करना। अपने कोप का फल चखाना। (२) एक के ऊपर जो क्रोध हो उसे दूसरे पर प्रकट करना। जैसे,—उससे तो जीतते नहीं, हमारे ऊपर गुस्सा उतारते हो। गुस्सा चढ़ना=क्रोध का आवेश होना। रिस का लगना। गुस्सा थूक देना=क्रोध को दूर कर देना। क्षमा करना। गई गुजरी करना। (स्त्रियाँ) गुस्सा निकालना=दे० 'गुस्सा उतारना।' नाक पर गुस्सा होना=बहुत जल्दी क्रोध में आना। बात बात पर क्रोध करना। क्रोध करने के लिये सदा तैयार रहना। गुस्सा पीना=क्रोध रोकना। भीतर ही भीतर क्रोध करके रह जाना, प्रकट न करना। गुस्सा मारना=क्रोध रोकना। गुस्से से लाल होना=क्रोध से तमतमाना। क्रोध के आवेश में आना।

गुस्साना—क्रि० प्र० [हिं० गुस्सा से नाम०] गुस्सा करना। क्रुद्ध होना।

गुस्सावर—वि० [हिं० गुस्सा+फ़ा० आवर (प्रत्य०)] गुस्सैल। गुस्सा करनेवाला।

गुस्सैल—वि० [अ० गुस्सा+हिं० ऐल (प्रत्य०)] जिसे जल्दी क्रोध आवे। गुस्सावर। थोड़ी थोड़ी बात पर बिगड़नेवाला। जैसे—वह बड़ा गुस्सैल आदमी है, उससे मत बोलो।

गुह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय। २. अश्व। घोड़ा। ३. विष्णु का एक नाम। ४. निषाद जाति का एक नायक जो शृंगवेरपुर में रहता था और राम का मित्र था। गुह जाति का व्यक्ति। ५. सिंहपुच्छी लता। पिठवन। ६. शालपर्णी। सरिवन। ७. गुफा। ८. हृदय। ९. माया। १०. मेढ़ा। ११. बुद्ध। १२. बंगाली कायस्थों की एक जाति।

गुह[2]—संज्ञा पुं० [सं० गुह्य अथवा गूः=मल, विष्ठा] गुह। मैला।

विशेष—मुहावरों आदि के लिये दे० 'गूह'।

गुहड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जिसे खुरपका भी कहते हैं।

विशेष—इसमें उनके मुँह से लार बहती है, खुर में दाने पड़ जाते हैं और उनका शरीर गरम रहता है। चलने में भी वे लँगड़ाते हैं।

गुहना†—क्रि० स० [सं० गुम्फन] १. गूँथना। एक में पिरोना। गूँधना। गाँथना। उ०—(क) शंभु जू मंजु गुहे गुह सो उर डारत और बढ़ी दुति नारि की।—शंभु (शब्द०)। (ख) पर काजै कहा यहि गाँव के लोग गुहैं चरचान को चौसर हैं।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। २. सुई तागे से दृढ़ करके सी देना।

गुहराज—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रासाद या महल जो गुह (कार्तिकेय) के आधार का बनता है। इसका विस्तार सोलह हाथ का होता है।—(बृहत्संहिता)।

गुहराना†—क्रि० स० [हिं० गुहार] पुकारना। चिल्लाकर बुलाना। उ०—कहै रघुराज सो करिंद तजि फंद सब कर अरविंद लै गोविंद गुहरायो है।—रघुराज (शब्द०)।

गुहवाना—क्रि० स० [हिं० गुहना का प्रे० रूप] गुहने का काम कराना। गुँधवाना।

गुहषष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगहन सुदी छठ जो कार्तिक की जन्मतिथि मानी जाती है।

गुहांजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्य+अञ्जन] आँख की पलक पर होनेवाली फुड़िया। बिलनी। घुरघुरी। अंजनहारी।

गुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुफा। कंदरा। खोह। माँद। उ०—कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरि गुहा गँभीरा।—तुलसी (शब्द०)। २. गुप्त स्थान। छिपने का स्थान (को०)। ३. (ला०) हृदय। अंतःकरण (को०)। ४. बुद्धि (को०)। ५. सिंहपुष्पी (को०)। ६. शालपर्णी (को०)।

गुहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुहना] १. गुहने की क्रिया या भाव। २. गुहने की मजदूरी।

गुहाचर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म।

गुहाचर[2]—वि० गुहा में निवास करनेवाला [को०]।

गुहाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'गुहवाना'।

गुहार—संज्ञा स्त्री० [सं० गो+हार] रक्षा के लिये पुकार। दोहाई।

वि० दे० 'गोहार'।

यौ०—पड़ना।—मारना।—लगना।—लगाना।

गुहारि(ग)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुहार] दे० 'गुहार'। उ०—नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि।—बिहारी (शब्द०)।

गुहारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गुहार'। उ०—बात कहत भई देश गुहारी।—जायसी (शब्द०)।

गुहाल†—संज्ञा पुं० [सं० गोशाला] गोशाला। गायों के रहने का स्थान।

गुहाहित[1]—वि० [सं०] हृदयस्थ। हृदय में स्थित [को०]।

गुहाहित[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

गहिन—संज्ञा पुं० [सं०] जगल। वन [को०]।

गुहिल—संज्ञा पुं० [सं०] धन। संपत्ति [को०]।

गुहेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिभावक। रक्षक। २. लोहार [को०]।

गुहेरा—संज्ञा पुं० [सं० गोध, हिं० गोह] गोह नाम का कीड़ा। गोध।

गुहेरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० गोवेरिका] गुहाँजनी। बिलनी।

गुह्य[1]—वि० [सं०] १. गुप्त। छिपा हुआ। पोशीदा। २. गोपनीय। छिपाने योग्य। ३. गूढ़। जिसका तात्पर्य सहज में न समझा जा सके।

गुह्य[2]—संज्ञा पुं० १. छल। कपट। दंभ। २. कछुआ। कच्छप। ३. गुदा, भग, लिंग आदि गोपनीय अंग। ४. विष्णु। ५. शिव।

गुह्यक—संज्ञा पुं० [सं०] वे यक्ष जो कुबेर के खजानों की रक्षा करते हैं। निधिरक्षक यक्ष।

यौ०—गुह्यकेश्वर।

गुह्यकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

गुह्यदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] जुगुनू [को०]।

गुह्यद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] मलद्वार। गुदा [को०]।

गुह्यनिष्यंद—संज्ञा पुं० [सं० गुह्यनिष्यन्द] मूत्र [को०]।

गुह्यपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

गुह्यपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल [को०]।

गुह्यबीज—संज्ञा पुं० [सं०] भूतृण [को०]।

गुह्यभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त वार्ता। गुप्त मंत्रणा [को०]।

गुह्यभाषित—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त वार्ता। गुप्त मंत्रणा।

गूँ—प्रत्य० [फ़ा०] यह समस्त पदों के अंत में लगकर १. रंग. २ ढंग, ३. भेद वर्ग, आदि अर्थ प्रकट करता है। जैसे, मीलगूँ, गेंदुमगूँ आदि।

गूँग(ग)†—(ग)[फ़ा० गुंग] १. गूँगा। उ०—बहिरो सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।—सूर०, १।१। २. न बोलनेवाला। चुप।

गूँगा[1]—वि० [फ़ा० गुंग=जो बोल न सके] [वि० स्त्री० गूँगी] जो बोल न सके। जिसके मुँह से स्पष्ट शब्द न निकले। जिसे वाणी न हो। मूक।

गूँगा[2]—संज्ञा पुं० वह मनुष्य या प्राणी जो बोल न सके।

मुहा०—गूँगा का गुड़ होना=ऐसी बात होना जिसका अनुभव हो पर वर्णन न हो सके। ऐसी बात जो कहते न बने। उ०—अमृत कहा अमित गुन प्रगटै सो हम कहा बतावें। सूरदास गूँगे के गुर ज्यों बूझति कहा बुझावें—सूर (शब्द०)।

विशेष—गूँगा मनुष्य गुड़ का स्वाद अनुभव तो करता है पर उसे प्रकट नहीं कर सकता।

गूँगे का गुड़ खाना=गूँगे के द्वारा गुड़ का खाया जाना। उ०—(क) नैनहिं ढुरहिं मोति औ मूँगा। जस गुर खाय रहा है गूँगा।—जायसी (शब्द०)। (ख) ज्यों गूँगा गुर खाइकै स्वाद न सके बखानि।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—बहुत लोगों ने विशेषकर उर्दू वालों ने 'गूँगे का गुड़' का मतलब 'गूँगे का दिया हुआ गुड़' समझा है और इसी अर्थ में इसका प्रयोग भी किया है। ऐसा प्रयोग अशुद्ध है, जैसा हिंदी कवियों के उदाहरणों से स्पष्ट है।

गूँगे का सपना होना=दे० गूँगे का गुड़ होना'।

गूँगी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँगा] १. स्त्रियों की उँगली में पहनने की एक प्रकार की बिछिया जो आकार में गोल होती है। २. दोमुँहा साँप। †३. चुप्पी। मौन।

क्रि० प्र०—साधना=चुप्पी साधना। चुप हो जाना।

यौ०—गूँगी पहेली=वह पहेली जो मुँह से न कही जाय, इशारों में कही जाय।

गूँगी[2]—वि० स्त्री० [हिं० 'गूँगा' का स्त्री०] गूँगापन वाली। जो बोल न सकती हो।

गूँच[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्ज अथवा सं० गुञ्जा] गुंजा। घुँघची।

गूँच[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

गूँछ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी मछली। बूँछ।

विशेष—यह छह फुट तक लंबी होती है और भारत की सब नदियों में पाई जाती है। इसका मुँह नीचे की ओर होता है। आकार भी इसका बहुत भद्दा होता है। यह प्रायः बहुत गहरे पानी में रहती है। इससे जल्दी नहीं फँसती।

गूँज—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्ज] १. भौंरों के गूँजने का शब्द। कलध्वनि। गुंजार। भिनभिनाहट। उ०—अपनी मीठी गूँज से (भौंरा) उसके रस को उभाड़ता है और तब उसपर रस लेने के लिये बैठता है।—अयोध्या (शब्द०)। २. प्रतिध्वनि। व्याप्तध्वनि। देर तक बना रहनेवाला शब्द। ३. लट्टू में नीचे की ओर जड़ी हुई लोहे की वह कील जिसपर लट्टू घूमता है। ४. कान में पहनने की बालियों आदि में शोभा के लिये थोड़ी दूर तक लपेटा छोटा पतला तार।

गूँजना—क्रि० अ० [सं० गुञ्जन] १. भौंरों या मक्खियों का भिनभिनाना। भौंरों का मधुर ध्वनि करना। गुंजारना। उ०—फूले वर बसंत बन बस में कहुँ मालती नवेली। तापै मदमाते से मधुकर गूँजत मधुरस रेली।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २. (किसी स्थान का) प्रतिध्वनित होना। शब्द से व्याप्त होना। जैसे,—बाजे के स्वर से सारा घर गूँज उठा।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

३. शब्द का खूब फैलना और देर तक बना रहना। ध्वनि

व्याप्त होना। प्रतिध्वनित होना। जैसे,—यहाँ आवाज खूब गूँजती है।

गूँजनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जन, हिं० गूँजन] दे० 'गूँज'। उ०—गरजनि गूँजनि सुनि सुनि महा। दलकन हिय दुख कहिए कहा।—नंद० ग्रं०, पृ० १६७।

गूँट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूँट] दे० 'घूँट'। उ०—कीजै नीबरी गूँट ज्यूँ पीजै प्यालौ कालकूट केम।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १२६।

गूँठ—संज्ञा पुं० [हिं० गोंठा=छोटा, नाटा] पहाड़ी टट्टू। टाँगन।

गूँडौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गूढ़] आत्मरक्षा का स्थान। गोपनीय स्थान। उ०- देवलियै गूँडौ कियौ, धर्णी थयौ सुप्रसन्न।—रा० रू०, पृ० ३४७।

गूँण(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौन] दे० 'गौन'। उ०—खग इण साकर खोररे, संगन साँकर गूँण।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४०।

गूँथन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गूँथना] गूँथने की क्रिया। ग्रंथन। उ०—झबी जराऊ जोरि अमित गूँथननि सँवारी।—नंद ग्रं०, पृ० १८६।

गूँथना[१]—क्रि० स० [हिं० गूथना] दे० 'गूथना'।

गूँथना[२]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'गूँधना'।

गूँदना—क्रि० स० [हिं० गूथना] 'गूँधना'।

गूँदा—संज्ञा पुं० [हिं० गोंद] दे० 'गोंदा'।

गूँदी[१]—संज्ञा स्त्री० [दे०] गँधेला नाम का पेड़।

विशेष—यह गिरगिट्टी की जाति का होता है और इसकी छाल और पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं।

गूँदी(पु)—वि० [हिं० गूँथना] गुही हुई। बनाई हुई। उ०—मूँदि न राखत प्रीति भटू यह गूँदी गुपाल के हाथ की बेनी।—मति० ग्रं०, पृ० २८८।

गूँधना[१]—क्रि० स० [सं० गुध=क्रीड़ा] पानी में सानकर हाथों के दबाना या मलना। माँड़ना। मसलना। जैसे,—आटा गूँधना।

गूँधना[२]—क्रि० स० [सं० गुम्फन या हिं० गूथना] १. गूँथना। पिरोना। जैसे,—माला गूँधना। १. कई तागों या बालों की लटों को घुमा कर इस प्रकार एक दूसरे पर चढ़ाते हुए फँसाना कि एक लड़ी सी बन जाय। बालों या तागों को लेकर इस प्रकार बटना कि बराबर गुच्छे बनते जायँ। जैसे,—चोटी गूँधना।

गू—संज्ञा पुं० [सं० गूः=मल, पाखाना] दे० 'गूह'।

गूगल—संज्ञा [सं० गुग्गुल] दे० 'गुग्गुल'।

गूगुल—संज्ञा पुं० [सं० गुग्गुल] दे० 'गुग्गुल'।

गूघट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० घूँघट] दे० 'घूँघट'। उ०—नटनागर निरखण दो नरखो जितिहारो गूघट कोर।—नट०, पृ० १२१।

गूघर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० घुँघरु] दे० 'घुघरू'। उ०—मिल चहुर मूछा भुहर भर, बज पखर गूघर भिड़ज बर।—रघु० रू०, पृ० २१९।

गूजर—संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर] [स्त्री० गूजरी, गुजरिया] १.अहीरों की एक जाति। ग्वाला। २.क्षत्रियों का एक भेद।

गूजरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजर] दे० 'गूजरी'। उ०—कुछ मील चढ़ने पर अपनी भैंसों के रेवड़ को लिए मुस्लिम गूजर और गूजरनियाँ मिलीं।—किन्नर०, पृ० ९।

गूजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुर्जरी] १. गूजर जाति की स्त्री। ग्वालिन। २. पैर में पहनने का जेवर। उ०—सौतिन को करि डारिहै कूजरी ऊजरी गूजरी गूजरी तेरी।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। ३ एक रागिनी।

गूजी†—संज्ञा पुं० [सं० गुजुवा का स्त्री०] एक प्रकार का छोटा काला कीड़ा।

गूझा—संज्ञा पुं० [सं० गुह्यक, प्रा० गुज्झा] [स्त्री० गुझिया] १. बड़ी पिराक। आटे या मैदे का एक पकवान।

विशेष—यह आकार में अर्धचंद्र होता है। इसके भीतर मीठा तथा गरी, चिरौंजी, किसमिस आदि मेवे भरे रहते हैं।

२ गूदा। ३. फलों के भीतर का रेशा।

गूटी[१]—संज्ञा स्त्री० [देश०] लीची का पेड़ लगाने की एक युक्ति।

गूटी[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चौपायों का एक रोग।

गूड़(पु)—वि० [हिं० गूढ़] दे० 'गूढ़'। उ०—लालु गुलालु शादि गुर गूड़ा।—प्राण०, भा० १, पृ० ९७।

गूडर(पु)— संज्ञा पुं० [हिं० गोयड़] गाँव का पड़ोस। उ०—हसती घोड़ा गांव गढ गूडर, कनड़ा पाइक आगी।—कबीर ग्रं०, पृ० १८६।

गूड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहा या गुह्य] ज्वार या बाजरे की बाल में वह गड्ढा या प्याली जिसमें दाना गड़ा रहता है।

गूढ़[१]—वि० [सं० गूढ] १.गुप्त। छिपा हुआ।

यौ०—गूढ़जत्रु, गूढ़पाद—सर्प।

२. जिसमें बहुत सा अभिप्राय छिपा हो। अभिप्रायगर्भित। गंभीर। जैसे,—उसकी बातें अत्यंत गूढ़ होती हैं। उ०—कह मुनि विहँसि गूढ़ मृदु बानी। सुना तुम्हारि सकल गुण खानी।—तुलसी (शब्द०)। ३. जिसका आशय जल्दी न समझ में आवे। अबोधगम्य। कठिन। जटिल। जैसे, गूढ़ विषय।

गूढ़[२]—संज्ञा पुं० [सं० गूढ] १. स्मृति में पाँच प्रकार की साक्षियों में से एक साक्षी जिसे अर्थी ने प्रत्यर्थी का वचन सुना दिया हो। २. एक अलंकार जिसे सूक्ष्म भी कहते हैं। गूढ़ोत्तर। गूढ़ोक्ति। दे० 'सूक्ष्मालंकार'।

विशेष—सूक्ष्म, पर्यायोक्ति और विवृतोक्ति नामक अलंकार सब इसी के अंतर्गत आ सकते हैं।

३. एकांत या निर्जन स्थान (को०)। ४. रहस्य। भेद (को०)। ५. गुप्तांग (को०)।

गूढ़चर—संज्ञा पुं० [सं० गूढचर] भेदिया। गुप्तचर (को०)।

गूढ़चारी[१]—संज्ञा पुं० [सं० गूढचारिन्] गुप्तचर। भेदिया (को०)।

गूढ़चारी[२]— वि० भेद लेनेवाला। छिपकर टोह लेनेवाला (को०)।

गूढ़ज—संज्ञा पुं० [सं० गूढज] बारह प्रकार के पुत्रों में से एक। वह पुत्र जिसे पति के घर रहते हुए भी पत्नी ने अपने किसी

गुप्त जार से पैदा किया हो और वह जार उसके पति का सवर्ण ही हो।

गूढ़जात—संज्ञा पुं० [सं० गूढजात] दे० 'गूढ़ज'।

गूढ़जीवी—संज्ञा पुं० [सं० गूढजीविन्] १. वह जिसकी जीविका का पता न चलता हो। वह जिसके संबंध में यह पता न हो कि वह किस प्रकार अपना निर्वाह करता है। २. गुप्त रूप से चोरी डकैती आदि के द्वारा जीवन निर्वाह करनेवाला व्यक्ति।

गूढ़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० गूढता] १. गुप्तता। छिपाव। पोशीदगी। २. अबोधगम्यता। गंभीरता। कठिनता।

गूढ़त्व—संज्ञा पुं० [सं० गूढत्व] १. गूढ़ता। छिपाव। पोशीदगी। २. अबोधगम्यता। गंभीरता। कठिनता।

गूढ़नीड़—संज्ञा पुं० [सं० गूढनीड] खंजन पक्षी।

गूढ़पत्र—संज्ञा पुं० [सं० गूढपत्र] १. करील वृक्ष। २. अंकोट का पेड़।

गूढ़पथ—संज्ञा पुं० [सं० गूढपथ] १. छिपा हुआ मार्ग। २. पगडंडी। ३. मन। बुद्धि [को०]।

गूढ़पद—संज्ञा पुं० [सं० गूढपद] सर्प। साँप।

गूढ़पाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गूढपाद्] पुं० 'गूढ़पाद'।

गूढ़पाद्—संज्ञा पुं० [सं० गूढ़पाद्] साँप [को०]।

गूढ़पाद—संज्ञा पुं० [सं० गूढपाद] दे० 'गूढ़पद'।

गूढ़पुरुष—संज्ञा पुं० [सं० गूढपुरुष] भेदिया। जासूस [को०]।

गूढ़पुष्प—संज्ञा पुं० [सं० गूढपुष्प] १. पीपल, बड़, गूलर, पाकर इत्यादि वृक्ष। २. मौलसिरी। वकुल वृक्ष।

गूढ़फल—संज्ञा पुं० [सं० गूढफल] बेर का पेड़।

गूढ़भाषित—संज्ञा पुं० [सं० गूढभाषित] गूढ़ बात। ऐसी बात जो सबकी समझ में न आए [को०]।

गूढ़मंडप—संज्ञा पुं० [सं० गूढमण्डप] किसी देवमंदिर के भीतर का बरामदा या दालान।

गूढ़मार्ग—संज्ञा पुं० [सं० गूढमार्ग] सुरंग [को०]।

गूढ़मैथुन—संज्ञा पुं० [सं० गूढमैथुन] काक। कौवा।

गूढ़व्यंग्य—संज्ञा स्त्री० [सं० गूढव्यङ्ग्य] काव्य में एक प्रकार की लक्षणा जिसमें व्यंग्य का अभिप्राय सर्वसाधारण को जल्दी समझ में नहीं आ सकता।

गूढ़ांग—संज्ञा पुं० [सं० गूढाङ्ग] कछुवा।

गूढ़ांघ्रि—संज्ञा पुं० [सं० गूढाङ्घ्रि] सर्प। साँप।

गूढ़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० गूढ़] मोटी और लंबी लकड़ी जो नाव में कोटभन्यिा के ऊपर लगाई जाती है।

विशेष—यह किश्ती की लंबाई के हिसाब से डेढ़ डेढ़ या दो दो हाथ की दूरी पर मजबूती के लिये लगाई जाती है।

गूढ़ा[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० गूढ] पहेली। प्रहेलिका। उ०—गाहा गूढ़ा गीत गुण कहि का नवली बाति।—ढोला०, दू० ५६७।

गूढ़ोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० गूढोक्ति] एक अलंकार जिसमें कोई गुप्त बात किसी दूसरे के ऊपर छोड़ किसी तीसरे के प्रति कही जाती है। जैसे—वृष भागहु पर खेत से आयो रक्षक खेत। यहाँ चरते हुए बैल के बहाने परकीया के नायक के प्रति [illegible] कही गई है।

गूढ़ोत्तर—संज्ञा पुं० [सं० गूढोत्तर] वह काव्यालंकार जिसमें प्र[illegible] का उत्तर कोई गूढ़ अभिप्राय या मतलब लिए हुए दिया जा[illegible] है। जैसे ग्वालिन देहुँ बताइ हौं मोहिं कछू तुम देहु बंसीवट की छाँह में लाल जाय तुम लेहु।—मति[illegible] (शब्द०)। यहाँ उत्तर में लाल शब्द के द्वा[illegible]यक मिलने का संकेत है।

गूणⓅ—संज्ञा स्त्री० [हि० गौन] दे० गौन'। उ०—[illegible] निज गुण की गूण भराय।—राम० धर्म०, पृ० [illegible]

गूताⓅ—वि० [सं० गुप्त] दे० 'गुप्त'। उ०—यह मैं वचन[illegible] गूता।—कबीर सा०, पृ० २७।

गूथ—संज्ञा पुं० [सं०] मल। विष्ठा [को०]।

गूथना—क्रि० स० [सं० ग्रन्थन] १. कई वस्तुओं को तागे[illegible] द्वारा एक में बाँधना या फँसना। कई चीजों [illegible] बाँधना या फँसाना। कई चीजों को एक गुच्छे य[illegible] नाथना। पिरोना। जैसे—माला गूथना। २. किसी [illegible] दूसरी वस्तु में तागे से अटकाना। टाँकना। जैसे,—झू[illegible] स्थान स्थान पर मोती गूथे गए थे। ३. टाँके आदि के [illegible] दो वस्तुओं को एक में जोड़ना। टाँके से जोड़ मिलाना। [illegible] भद्दी सिलाई करना। टाँका मारना। सीना। गाँथना।

मुहा०—गूथागाँथी=(१) भद्दी और मोटी सिलाई। (२) कि[illegible] काम को फूहड़ ढंग से करना।

गूद[1]—संज्ञा पुं० [सं० गुप्त, प्रा० गुत्त] गूदा। मग्ज। उ०—खाइ विरह गा ताकर गूद मांस की खान।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६६।

गूद[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त्त] १. गड्ढा। गर्त। २. गहरा चिह्न। निशान। दाग। जैसे—उसके चेहरे पर शीतला की गूदें थीं।

गूदड़—संज्ञा पुं० [हिं० गूथना] [स्त्री० गूदड़ी] चिथड़ा। फटा पुराना कपड़ा।

यौ०—गूदड़शाह या गूदड़ साँई=गुदड़ी पहननेवाला साधु या फकीर।

गूदरⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं गूदड़] दे० 'गूदड़'। उ०—हम गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ। कंचनमणि खोलि डारि काँच गर बँधाऊँ। कुंकुम को तिलक मेटि काजर मुख लाऊँ। पाटंबर अंबर तजि गूदर पहिराऊँ।—सूर (शब्द०)।

गूदरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूदर] दे० 'गुदड़ी'। उ०—प्रेम भभूति विवेक की फावड़ी, गूदरी खुसी अरु आड़ माला।—पलटू०, भा० २, पृ० १०।

गूदलाⓅ—वि० [हिं० गँदला] दे० गँदला'। उ०—गूदले व्योम ढँके गरद, रवि लुक्के धूँआँ रवण।—रा० रू०, पृ० १५५।

गूदा—संज्ञा पुं० [सं० गुप्त, प्रा० गुत्त] [स्त्री० गूदी] १. किसी फल का सार भाग जो छिलके के नीचे होता है। फल के भीतर का वह अंश जिसमें रस आदि रहता है। २. भेजा। मग्ज।

खोपड़ी का सार भाग। उ०—सोनित सो सानि गूदा खात सतुआ से एक एक प्रेत पियत बहोरि घोरि घोरि कै।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—मारते मारते गूदा निकालना=गहरी मार मारना। ३. किसी चीज के भीतर का सार भाग। मींगी। गिरी। ४. किसी वस्तु का सार भाग।

मुहा० – बातों का गूदा निकालना=बाल की खाल निकालना। बहुत खोद विनोद करना।

गूदेदार—वि० [हिं० गूदा+फ़ा० दार] गूदायुक्त। जिसमें गूदा हो। जिसमें पर्याप्त गूदा हो। गुदार।

गूधना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गूथना'। उ०—बेइलि चमेलि ग्रिव गुधिए हार। सोधा चरचित करू सिंगार।—सं० दरिया, पृ० १७३।

गून¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण=रस्सी] १. रस्सी जिससे नाव खींचते हैं। २. रीहा घास।

गून²—संज्ञा पुं० [सं० गुण] दे० 'गुण'। उ०—जौवन याहि कम नहि ऊन, धनि तुअ विसय देखिअ सब गून।—विद्यापति, पृ० ३१५।

गूनसराई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष। रोहू।

विशेष—यह पूर्वी हिमालय और विशेषत: दारजिलिंग तथा आसाम में पाया जाता है।

गूना¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० गूनह्=रंग] एक प्रकार का सुनहला रंग जो सोने या पीतल से बनाया जाता है और सदूकों, शीशों तथा धातु की अन्य वस्तुओं पर चढ़ाया जाता है।

गूना²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गुना] दे० 'गुना'। उ०—दह गूना दल साहि सज्जि चतुरंग सजी उर।—पृ० रा०, २७। २६।

गूनागून(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गुण+अगुण] अच्छे बुरे गुण। गुण और अवगुण।

गूप(पु)—वि० [हिं० गुप] दे० 'गुप्त'। उ०—नाम नहीं औ नाम सब रूप नहीं सब रूप। सहजो सब कुछ ब्रह्म है हरि परगट हरि गूप।—सहजो०, पृ० ४६।

गूमट—संज्ञा पुं० [हिं० गुम्मट] दे० 'गुम्मट'।

गूमठ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गुम्मट] दे० 'गुम्मट'। उ०—गूमठ में जब जाय लगो, मुराकबे नजरि में आवता है।—पलटू० पृ० ५१।

गूमड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गुल्म] वह गोल और कड़ी सूजन जो सिर या माथे पर चोट लगने से होती है।

गूमना—क्रि० स० [देश०] १. गूँधना। माँड़ना। आटे की तरह माँड़ना। २. कुचलना। रौंदना।

गूमा—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भा, गुम्भा] एक छोटा पौधा।

विशेष—इसकी गाँठ गाँठ पर गुच्छा सा होता है। इसी गुच्छे पर दो पत्ते निकलते हैं और सफेद फूल भी लगते हैं। यह औषध के काम में आता है। इसे गूम और गूँम भी कहते हैं।

पर्या०—द्रोणा। द्रोणपुष्पी। कुंभा। कुंभयोनि।

गूरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयत्न। उद्योग [को०]।

गूरा—संज्ञा पुं० [हिं० गुल्ला] गुल्ला। ढेला।

गूरू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गुरु] दे० 'गुरु'। उ०—सूरी मेलु हस्ति कर चूरू। हौं नहिं जानौं जानै गूरू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २८४।

गूर्जर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुर्जर' [को०]।

गूर्ण—वि० [सं०] कृतज्ञ। आभारी (को०)।

गूर्त—वि० [सं०] कृतज्ञ। कनौड़ा। कनावड़ा [को०]।

गूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रशंसा। २. सहमति [को०]।

गूर्द—संज्ञा पुं० [सं०] कुदान। कूदने की क्रिया [को०]।

गूलड़(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गूलर] दे० 'गूलर'। उ०—आम और जामुन के फल हैं, कुछ गूलड़, कुछ गुल्लू कच्चे।—आराधना, पृ० ७४।

गूलभाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० फूल का अनु० गूल+हिं० भाँग] हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की भाँग का मादा पेड़ जिसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं।

गूलर¹—संज्ञा पुं० [सं० उदुंबर ?] वट वर्ग अर्थात् पीपल और बरगद की जाति का एक बड़ा पेड़ जिसकी पेड़ी, डाल आदि से एक प्रकार का दूध निकलता है।

विशेष—इसके पत्ते महुवे के पत्ते के आकार के पर उससे छोटे होते हैं। पेड़ी और डाल की छाल का रंग ऊपर कुछ सफेदी लिए और भीतर ललाई लिए होता है। अश्वत्थवर्ग के और पेड़ों के समान इसके सूक्ष्म फूल भी अंतर्मुख अर्थात् एक कोश के भीतर बंद रहते हैं। पुं० पुष्प और स्त्री० पुष्प के अलग अलग कोश होते हैं। गर्भाधान कीड़ों की सहायता से होता है। पुं० केसर की वृद्धि के साथ साथ एक प्रकार के कीड़ों की उत्पत्ति होती है जो पुं० पराग को गर्भकेसर में ले जाते हैं। यह नहीं जाना जाता कि कीड़े किस प्रकार पराग ले जाते हैं पर यह निश्चय है कि ले अवश्य जाते हैं और उसी से गर्भाधान होता है तथा कोश बढ़कर फल के रूप में होते हैं। यह मांसल और मुलायम होता है। इसके ऊपर कड़ा छिलका नहीं होता, बहुत महीन झिल्ली होती है। फल को तोड़ने से उसके भीतर गर्भकेसर और महीन महीन बीज दिखाई पड़ते हैं तथा भुनगे या कीड़े भी मिलते हैं। गूलर की छाया बहुत शीतल मानी जाती है। वैद्यक में गूलर शीतल, घाव को भरनेवाला, कफ, पित्त और अतीसार को दूर करनेवाला माना है। इसकी छाल स्त्री गर्भ को हितकारी, दुग्धवर्धक और व्रणनाशक मानी जाती है। अंजीर आदि वट जाति के और फलों के समान इसका फल भी रेचक होता है।

पर्या०—उदुंबर। जंतुफला। क्षीरी। खरपत्रिका। कुष्ठघ्नी। राजिका। फल्गुवाटिका। अजीजा। फल्गुनी। मलयु।

मुहा०—गूलर का कीड़ा=एक ही स्थान पर पड़ा रहनेवाला। अनुभव प्राप्त करने के लिये घर या देश से बाहर न निकलनेवाला। इधर उधर की कुछ खबर न रखनेवाला। कूपमंडूक। गूलर का फूल=वह जो कभी देखने में न आवे। दुर्लभ व्यक्ति या वस्तु। गूलर का फूल होना=कभी देखने में न आना। दुर्लभ होना। गूलर का पेट फड़वाना=गुप्त या दबी दबाई

बात प्रकट कराना। भेंडा फोड़वाना। भेद खुलवाना। गूलर फोड़कर जीव उड़ाना=गुप्त भेद प्रकट करना।

गूलर२†—संज्ञा पुं० [देश०] मेढक। दादुर।

गूलरकबाब—संज्ञा पुं० [हिं० गूलर+फ़ा० कबाब] एक प्रकार का कबाब।

विशेष—यह उबले और पिसे हुए मांस के भीतर अदरक, पुदीना आदि भरकर भूनने से बनता है।

गूला—संज्ञा पुं० [हिं० गोला] हूरा। छोर। उ०—ठंडाई के चढ़ते हुए नशे में रामसिंह आँखें खोल मूँद रहे थे कि जमींदार का सिपाही लट्ठ का बँधा गूला जमीन पर दे मारकर रामसिंह के साधारण जमींदार को साथ लिए बोला।—काले०, पृ० २२।

गूलू—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक वृक्ष का नाम जिसे पुंड्रक भी कहते हैं।

विशेष—इससे एक प्रकार का सफेद गोंद निकलता है जिसे कतीला या कतीरा कहते हैं और जो पानी में नहीं घुलता। इस वृक्ष की छाल की रस्सियाँ बटी जाती हैं। जब यह वृक्ष दस वर्ष का हो जाता है तब इसे काट डालते हैं और डालियों को छाँटकर तने के छह छह फुट के टुकड़े कर डालते हैं। फिर छाल को उतारकर रस्सियाँ बटते हैं। पत्तियाँ और डालियाँ चारे और दवा के काम आती हैं। लकड़ी से खिलौने तथा सितार, सारंगी आदि बाजे बनते हैं। कोई कोई जड़ों की तरकारी भी बनाते हैं या उन्हें गुड़ के साथ मिलाकर खाते हैं। यह उत्तरी भारत, मध्य भारत, दक्षिण तथा बर्मा के सूखे जंगलों में होता है। पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर यह बहुत मिलता है।

गूवाक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुवाक'।

गूषणा—संज्ञा पुं० [सं०] मोर की पूँछ पर बना हुआ अर्धचंद्र चिह्न।

गूह—संज्ञा पुं० [सं० गूः] गलीज। मल। मैला। विष्ठा। बीट।

मुहा०—गूह उठाना=(१) पाखाना साफ करना। (२) तुच्छ से तुच्छ सेवा करना। बड़ी सेवा करना। गूह की तरह बचाना=घृणापूर्वक दूर रहना। जैसे—हम ऐसे आदमियों को गूह की तरह बचाते हैं। गूह की तरह छिपाना=निंदा और लज्जा के भय से गुप्त रखना। गूह उछलना=कलंक फैलना। निंदा होना। गूह उछालना=बदनामी कराना। गूह करना=गंदा और मैला करना। गूह का चोथ=भद्दा और घिनौना (वस्तु या व्यक्ति)। गूह का टोकरा=बदनामी का टोकरा। कलंक का भार। गूह खाना=बहुत अनुचित और भ्रष्ट कार्य करना। गूह गोड़ते फिरना=अगम्या स्त्रियों से गमन करते फिरना। गूह थापना=पागलपन के काम करना। होश में न रहना। गूह में ढेला फेंकना=बुरे आदमी से छेड़छाड़ करना। (बच्चों और रोगियों का) गूह मूत करना=मलमूत्र साफ करना। मुँह में गूह देना=बहुत धिक्कारना। किसी को छी छी कहना।

गूहन—संज्ञा पुं० [सं०] छिपाना। छिपाव (को०)।

गूहाँजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुहाँजनी] दे० 'गुहाँजनी'।

गूहाछीछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूह+छीछी] १. अश्लील और गाली भरी कहा सुनी। बदनामी। २. अपवाद। कलंक।

गृंजन—संज्ञा पुं० [सं० गृञ्जन] १. गाजर। २. शलगम। ३. लाल लहसुन (को०)। ४. गाँजा (को०)। ५. विषैले बाण से मारे हुए जानवर का मांस (को०)।

गृंडिव, गृंडीव संज्ञा पुं० [सं० गृण्डिव, गृण्डीव] एक प्रकार का सियार (को०)।

गृत्स१ वि० [सं०] १. कुशल। दक्ष। प्रवीण। २. विवेकी। विचारक। ३. धूर्त। चालाक (को०)।

गृत्स२- संज्ञा पुं० कामदेव (को०)।

गृद्ध१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र] दे० 'गृध्र'। उ०—चुंचनि चुत्थैं गृद्ध मांस जंबुक मिलि भच्छै।—हम्मीर०, पृ० ५८।

गृद्ध२—वि० [सं०] १. चाहनेवाला। इच्छा करनेवाला। २. फिदा। आसक्त (को०)।

गृधु१—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव (को०)।

गृधु२—वि० विषयी। कामी (को०)।

गृधू१—वि० [सं०] खल। दुष्ट (को०)।

गृधू२—संज्ञा स्त्री० १. अपान वायु। २. समझ। बुद्धि (को०)।

गृध्नु—वि० [सं०] १. लालची। लोभी। २. उत्सुक। इच्छुक (को०)।

गृध्य१—संज्ञा पुं० [सं०] १. इच्छा। २. लोभ (को०)।

गृध्य२—वि० १. इच्छा के योग्य। चाहने योग्य। २. लोभनीय (को०)।

गृध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा। २. लोभ (को०)।

गृध्या—वि० १. कामना योग्य। चाहने योग्य। २. लोभनीय (को०)।

गृध्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिद्ध। गीध पक्षी। २. जटायु, संपाति आदि पौराणिक पक्षी।

यौ०—गृध्रकूट। गृध्रव्यूह।

गृध्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] राजगृह के निकट एक पर्वत का नाम।

गृध्रराज—संज्ञा पुं० [सं०] जटायु (को०)।

गृध्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] सेना की एक प्रकार की रचना या स्थिति जो गीध के आकार की होती थी। उ०—तब प्रद्युम्न तुरत प्रभु टेरा। गृध्रव्यूह विरचहु दल केरा।—रघुराज (शब्द०)।

गृध्रसी संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वातरोग।

विशेष—यह पहले कूल्हे से उठता है और धीरे धीरे नीचे को उतरता हुआ दोनों पैरों को जकड़ लेता है। इसमें सुई चुभने की सी पीड़ा होती है, पैर काँपते हैं और रोगी बहुत धीरे चलता है, तेज नहीं चल सकता।

गृध्राण—वि० [सं०] १. गृध्र जैसा (लोभ में)। २. उत्कट भाव से चाहनेवाला (को०)।

गृध्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिद्धों की आदि माता जो कश्यप और ताम्रा की पुत्री थी (को०)।

गृध्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा गिद्ध (को०)।

गृभ—संज्ञा पुं० [सं०] घर। गृह (को०)।

गृभित, गृभीत--वि० [सं०] १. पकड़ा हुआ वंदी। गिरफ्तार। २. गर्भयुक्त। गर्भाया हुआ (फल) [को०]।

गृष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो केवल एक बार व्याई हो। जवान गाय। २. वह स्त्री जिसको केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ हो [को०]।

गृह--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गृही] १. घर। मकान। निवासस्थान। आश्रम। २. कुटुंब। खानदान। वंश। ३. पत्नी। गृहिणी (को०)। ४. गृहस्थाश्रम (को०)। ५. मेषादि राशि (को०)।

यौ०--गृहविज्ञान=घरेलू जानकारी संबंधी शास्त्रीय ज्ञान।

गृहउद्योग--संज्ञा पुं० [सं०] घर में किया जानेवाला उद्योग धंधा। कुटीर उद्योग।

गृहकन्या, गृहकुमारी--संज्ञा स्त्री० [सं०] घीकुवार। घृतकुमारिका। ग्वारपाठा।

गृहकपोत, गृहकपोतक--संज्ञा पुं० [सं०] पालतू कबूतर [को०]।

गृहकरण--संज्ञा पुं० [सं०] १. घरेलू कामधंधा। २. भवननिर्माण [को०]।

गृहकर्म--संज्ञा पुं० [सं० गृह+कर्मन्] १. घरेलू कार्य। गृहस्थ के लिये विहित कार्य [को०]।

गृहकलह--संज्ञा पुं० [सं०] १. घरेलू झगड़ा। आंतरिक संघर्ष।

गृहकारक--संज्ञा पुं० [सं०] भवननिर्माता। स्थपति। राज [को०]।

गृहकारी--संज्ञा पुं० [सं० गृहकारिन्] १. भवन का निर्माता। २. एक प्रकार की बर्रे या भिड़ [को०]।

गृहकार्य, गृहकृत्य--संज्ञा पुं० [सं०] घर का काम धंधा।

गृहगोधा--संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली। बिसतुइया।

गृहगोधिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकिली। बिसतुइया।

गृहचेता--वि० [सं० गृहचेतस्] घर की चिंता करनेवाला [को०]।

गृहछिद्र--संज्ञा पुं० [सं० गृहच्छिद्र] १. परिवार की गोपनीय बात। २. परिवार का कलंक। अपवाद [को०]।

गृहज--वि० [सं०] दे० 'गृहजात' [को०]।

गृहजन--संज्ञा पुं० [सं०] १. परिवार। कुटुंब। २. परिवार के सदस्य। कुटुंबी विशेषतया पत्नी (को०)।

गृहजात (दास)--संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो घर में दासों से पैदा हुआ हो।

गृहजालिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] छल। कपट [को०]।

गृहज्ञानी--संज्ञा पुं० [सं० गृहज्ञानिन्] वह जिसका ज्ञान घर तक ही सीमित हो। वह जो घर में ही पांडित्य दिखला सकता हो। अज्ञानी। मूर्ख [को०]।

गृहणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] काँजी।

गृहतटी--संज्ञा स्त्री० [सं०] घर का अग्र भाग [को०]।

गृहत्याग--संज्ञा पुं० [सं०] घर का छोड़ना। गृहस्थाश्रम छोड़ना [को०]।

गृहत्यागी--वि० [सं०] घर छोड़कर चला जानेवाला। संन्यासी [को०]।

गृहदास--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गृहदासी] घर का नौकर [को०]।

गृहदाह--संज्ञा पुं० [सं०] घर में आग लगना [को०]।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

गृहदीप्ति--संज्ञा पुं० [सं०] घर की ज्योति अर्थात् सती साध्वी स्त्री [को०]।

गृहदेवता--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि से ब्रह्मा तक के घर के ४५ देवता जो भिन्न भिन्न कार्यों के लिये हैं [को०]।

गृहदेवी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गृहिणी। २. जरा नाम की राक्षसी [को०]।

गृहदेहली--संज्ञा स्त्री० [सं०] घर का द्वार या चौखटा [को०]।

गृहद्रुम--संज्ञा पुं० [सं०] मेढ़श्रृंगी [को०]।

गृहनमन--संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा। [को०]।

गृहनाशन--संज्ञा पुं० [सं०] जंगली कबूतर।

गृहनीड़--संज्ञा पुं० [सं० गृहनीड] गौरा पक्षी। गौरैया।

गृहप--संज्ञा पुं० [सं०] १. घर का मालिक। २. घर का रक्षक। चौकीदार। ३. कुत्ता। उ०--(क) गृहप गोध गोमाक कलौलैं। छाँटत मूँड़ कपाली डोलैं।--विश्राम (शब्द०)। (ख) यथा गृहप शवकास्थि लै चपि चावत सह प्रीति। निज तालूगत तनुज भखि मानत तोष अभीति।--विश्राम (शब्द०)। ४. अग्नि। आग।

गृहपति--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गृहपत्नी] १ घर का मालिक। २. कुत्ता। ३. अग्नि। ४. मेजमान। उ०--तुम नहीं हो अतिथि, तुम हो नित्य गृहपति मुदित मनहर।--अपलक, पृ० ८०।

गृहपत्नी--संज्ञा स्त्री० [सं०] घर की मालकिन। गृहस्वामिनी [को०]।

गृहपशु--संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

गृहपातक व्यंजन--संज्ञा पुं० [सं० गृहपातकव्यञ्जन] कौटिल्य के अनुसार सामान्य गृहस्थ के रूप में रहनेवाले गुप्तचर जो लोगों के रहन सहन, आमदनी आदि की खबर रखते थे। ये समाहर्ता के अधीन रहते थे।

गृहपाल--संज्ञा पुं० [सं०] १. घर का रक्षक। चौकीदार। पहरू। २. कुत्ता। उ०--गृहपालहु तें अति निरादर खान पान न पावई।--तुलसी (शब्द०)।

गृहपालित--वि० [सं०] घर में पोषित या पाला हुआ [को०]।

गृहपिंडी--संज्ञा स्त्री० [गृहपिण्डी] घर की नींव [को०]।

गृहपोतक--संज्ञा पुं० [सं०] किसी घर या गृह का स्थान। वह भूमि जिसमें कोई गृह निर्मित होता है। वह स्थान जो घर के घेरे में हो [को०]

गृहपोषण--संज्ञा पुं० [सं०] घर का निर्वाह या पोषण [को०]।

गृहप्रबंध--संज्ञा पुं० [सं०] गृह का संचालन या व्यवस्था [को०]।

गृहप्रवेश--संज्ञा पुं० [सं०] नवनिर्मित घर में धार्मिक विधान या विधिपूर्वक प्रवेश करना [को०]।

गृहबलि--संज्ञा स्त्री० [सं०] घर में दी जानेवाली बलि, जो पशुओं, लोकातीत या दैवी प्राणियों विशेषतः परिवार के देवताओं को दी जाती है [को०]।

गृहबलिप्रिय--संज्ञा पुं० [सं०] बगुला। बक [को०]।

गृहबलिभुक--संज्ञा पुं० [सं० गृहबलिभुज] १. कौआ। २. गौरैया [को०]।

गृहभंग--संज्ञा पुं० [गृहभङ्ग] १. घर से निकला हुआ व्यक्ति। २.

घर का नाश । ३. घर की सेंध । ४. गृह या संस्था का विफल होना, गिर जाना या नष्ट होना [को०] ।

गृहभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] सभाकक्ष । बैठक [को०] ।

गृहभर्ता—संज्ञा पुं० [पुं० गृहभर्तृ] घर का स्वामी [को०] ।

गृहभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसपर मकान बना हो या बननेवाला हो (को०) ।

गृहभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर में झगड़ा होना । २. घर में सेंध लगना [को०] ।

गृहभेदी—संज्ञा पुं० [सं० गृहभेदिन्] [वि० स्त्री० गृहभेदिनी] १. घर में झगड़ा लगानेवाला । २. घर में सेंध लगानेवाला [को०] ।

गृहभोज—संज्ञा पुं० [सं०] गृहप्रवेश के अवसर पर होनेवाला या किया जानेवाला भोज ।

गृहभोजी—वि० [सं० गृहभोजिन्[उसी घर में रहने या खानेवाला [को०] ।

गृहमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० गृहमन्त्रिन्] राज्य अथवा देश का वह मंत्री जिसके ऊपर आंतरिक सुरक्षा तथा शासन का भार हो । (अं० होम मिनिस्टर) ।

गृहमणि—संज्ञा पुं० [सं०] दीपक । चिराग ।

गृहमाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ [को०] ।

गृहमार्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर की नौकरानी । गृहदासी [को०] ।

गृहमुखी—संज्ञा पुं० [सं० गृहमुख+ई (प्रत्य०)] जो अपना घर छोड़कर बाहर (विदेश) न जाना चाहता हो । उ०—समुद्र-तट के अधिवासी साधारणतः मछुए, साहसी नाविक तथा कुशल व्यापारी और अंतर्वर्ती देशों जैसे चीन आदि के लोग गृहमुखी होते हैं—भारत० नि०, पृ० १० ।

गृहमृग—संज्ञा पुं० [सं०] मृग ।

गृहमेध—संज्ञा पुं० [सं०] गृह की पंक्ति । मकानों का समूह [को०] ।

गृहमेध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृहस्थ । २. पंचयज्ञ [को०] ।

गृहमेध[2]—वि० १. गृहस्थाश्रमी । २. पंचयज्ञ करनेवाला [को०] ।

गृहमेधी—वि० [सं० गृहमेधिन्] १. गृहस्थाश्रमी । २. पंचयज्ञ करनेवाला [को०] ।

गृहमेधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गृहस्थ की पत्नी । २.सत्यगुण की वृद्धि [को०] ।

गृहमोचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ [को०] ।

गृहयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० गृहयन्त्र] वह डंडा जिसपर उत्सवादि के समय झंडा फहराया जाता है [को०] ।

गृहयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गृहमेध' [को०] ।

गृहयालु—वि० [सं०] पकड़ने या धरने का इच्छुक [को०] ।

गृहयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जो एक ही देश या राज्य के निवासियों में आपस में हो । अंतःकलह । गृह का कलह ।

गृहरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० गृहरन्ध्र] पारिवारिक कलह या झगड़ा [को०] ।

गृहलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुशीला पत्नी ।

गृहवाटिका, गृहवाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर से सटा हुआ बाग या वाटिका [को०] ।

गृहवासी[1]—संज्ञा पुं० [सं० गृहवासिन्] १.गृहस्थ । २.सदा घर में रहनेवाला । घर में घुसा रहनेवाला [को०] ।

गृहवासी[2]—वि० १. गृही । घरवाला । २.घर में घुसा रहनेवाला । घरघुसुवा [को०] ।

गृहविच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] घर का बरबाद होना [को०] ।

गृहवित्त—संज्ञा पुं० [सं०] घर का मालिक [को०] ।

गृहव्रत—वि० [सं०] गृह या गृहस्थ आश्रम में स्थित (को०) ।

गृहशायी—संज्ञा पुं० [सं० गृहशायिन्] कबूतर [को०] ।

गृहशुक—संज्ञा पुं० [सं०] १.पालतू शुक । २. घर का कवि [को०] ।

गृहसंवेशक—संज्ञा पुं० [सं०] घर बनाने का धंधा करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

गृहसचिव—संज्ञा पुं० [सं० गृह+सचिव] दे० 'स्वराष्ट्र सचिव' ।

गृहसार—संज्ञा पुं० [सं०] संपत्ति । जायदाद [को०] ।

गृहस्त—संज्ञा पुं० [सं० गृहस्थ] दे० 'गृहस्थ' ।

गृहस्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १.ब्रह्मचर्य के उपरांत विवाह करके दूसरे आश्रम में रहनेवाला व्यक्ति । ज्येठाश्रमी । २. घरबारवाला । बाल बच्चोंवाला आदमी । ३.खाने पीने से खुश आदमी । वह मनुष्य जिसके यहाँ खेती आदि होती हो । किसान ।

गृहस्थ[2]—वि० [सं०] घर में रहनेवाला । गृहवासी [को०] ।

गृहस्थाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] चार आश्रमों में से दूसरा आश्रम जिसमें ब्रह्मचर्य अर्थात् विद्याध्ययन आदि के उपरांत लोग विवाह करके प्रवेश करते थे और घर का कामकाज देखते थे । जीवन की वह अवस्था जिसमें लोग स्त्री पुत्र आदि के साथ रहते और उनका पालन करते हैं ।

गृहस्थाश्रमी—वि० [सं० गृहस्थाश्रम+ई (प्रत्य०)] गृहस्थाश्रम में रहनेवाला [को०] ।

गृहस्थिन—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहस्थ+हिं० इन (प्रत्य०)] गृहिणी । घर की मालकिन । उ०—लेखक ने शुरू में उसे बिलकुल मामूली गृहस्थिन के रूप में उतारा है ।—सुनीता, पृ० १३ ।

गृहस्थी—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहस्थ+ई (प्रत्य०)] १. गृहस्थाश्रम । गृहस्थ का कर्तव्य । २. घर बार । गृह व्यवस्था । ३. कुटुंब । लड़के वाले । जैसे,—वे अपनी गृहस्थी लेने गए हैं ।

मुहा०—गृहस्थी सँभालना=घर का कामकाज देखना । कुटुंब का पालन पोषण करना ।

४.घर का सामान । माल असबाव । जैसे,—इतनी गृहस्थी कौन ढोकर ले जाय । ५. खेतीबारी । कामकाज ।

गृहाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] झरोखा । गवाक्ष [को०] ।

गृहागत—वि० [सं०] घर आया हुआ (अतिथि) [को०] ।

गृहाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान का मालिक । मकानदार । २. राजभवन का प्रधान अधिकारी ।

विशेष—शुक्रनीति में कहा गया है कि वह राजकर्मचारी जिसका काम राजभवन की देखभाल करना होता था, गृहाधिपति कहलाता था ।

गृहापण—संज्ञा पुं० [सं०] हाट । बाजार [को०] ।

गृहाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] कांजी [को०] ।

गृहाराम—संज्ञा पुं० [सं०] गृहवाटिका [को०]।
गृहालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली [को०]।
गृहाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] गृहस्थाश्रम [को०]।
गृहासक्त—वि० [सं०] घर गृहस्थी में अधिक रुचि रखनेवाला [को०]।
गृहिजन—संज्ञा पुं० [सं०] घर के व्यक्ति। परिवार के लोग। उ०—श्रमित चरण लौटे गृहिजन निज निज द्वार।—अपरा, पृ० ३५।
गृहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घर की मालकिन। २. भार्या। स्त्री।
गृही[1]—संज्ञा पुं० [सं० गृहिन्] [स्त्री० गृहिणी] गृहस्थ। गृहस्थाश्रमी।
गृही[2]—वि० गृहस्थ। गृहस्थाश्रमी। उ०—गृही लोग, हम अनिकेतन की क्या जाने हम पीर?—अपलक, पृ० ७२।
गृहीत—वि० [सं०] १. लिया हुआ। ग्रहण किया हुआ। २. पकड़ा हुआ। ३. प्राप्त किया हुआ। ४. स्वीकृत। स्वीकार किया हुआ। ५. संग्रह किया हुआ। एकत्र। ६. मंजूर। वादा किया हुआ। ७. समझा हुआ। ज्ञात [को०]।
गृहीतगर्भा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री [को०]।
गृहीतगर्भा[2]—वि० गर्भवती [को०]।
गृहीतानुवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार देने के बाद कुछ और दे देना।
गृहीतार्थ—वि० [सं०] जो अर्थ या तात्पर्य को समझता है। तात्पर्य का दाता। अर्थ का ज्ञाता [को०]।
गृहोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] गृहवाटिका [को०]।
गृहोद्योग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गृहउद्योग' [को०]।
गृहोपकरण—संज्ञा पुं० [सं०] घर का सामान, बरतन आदि [को०]।
गृहोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली [को०]।
गृह्य[1]—वि० [सं०] १. गृह संबंधी। गृहस्थी से संबंध रखनेवाला। २. जिसको आकर्षित या प्रसन्न किया जाय (को०)। ३. आश्रित (को०)। ४. पालतू (को०)। ४. घर में किया जानेवाला (कार्य) (को०)। ६. ग्रहणीय (को०)। ७ पकड़ने योग्य (को०)।
गृह्य[2]—संज्ञा पुं० १. गुदा। २. पारिवारिक कृत्य। ३. पालतू पशु-पक्षी। ४. घर के लोग। गृहजन। ५. गृहाग्नि [को०]।
गृह्यक[1]—वि० [सं०] १. पालतू। २. गृह संबंधी। गृहविषयक [को०]।
गृह्यक—संज्ञा पुं० पालतू जानवर [को०]।
गृह्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं० गृह्यकर्मन्] गृहस्थ के लिये विहित कर्म, संस्कारादि [को०]।
गृह्यसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह वैदिक पद्धति की पुस्तक जिसमें लिखे हुए नियमों के अनुसार गृहस्थ लोग मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि सब संस्कार और कार्य करते हैं। पाँच गृह्यसूत्र बहुत प्रसिद्ध हैं—१. आश्वलायन, २. कात्यायन, ३. सांख्यायन, ४. मानव और ५. गोभिल।
गृह्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगर से सटा हुआ गाँव। कस्बा [को०]।
गेंगटा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट] केकड़ा।
गेंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० गृष्टि, प्रा० गिट्ठि, गेट्ठि] वराही कंद।
गेंठु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि, प्रा० गंठि] दे० 'गाँठ'। उ०—भुअे जुआल भौह युगल, भरें गेंट्ठि पैल्लिजउँ अहर बिंब पफ्फुरिअ।—कीर्ति०, पृ० ६०।
गेंड़[1]†—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] ऊख के ऊपर का पत्ता। अगौरा।
गेंड़[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. ऊख की पत्तियों, सरसों की डंठलों और अरहर की काँड़ियों से बना हुआ घेरा जिसमें नीचे ऊपर भूसा देकर किसान अन्न रखते हैं।
क्रि० प्र०—डालना।—देना।
२. किसी प्रकार का घेरा।
गेंड़ना—क्रि० स० [हिं० गेंड] १. किसी खेत को पतली छोटी दीवार से घेरना। खेतों को मेंड़ से घेरकर हद बाँधना। २. अन्न रखने के लिये गेंड़ बनाना। ३. घेरना। गोंठना। ४. लकड़ी के बड़े छोटे टुकड़े काटने के लिये उसके चारों ओर कुल्हाड़ी से छेव लगाना।
गेंड़ली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] कुंडल। फेंटा। रस्सी की ऐसी वस्तु की वह स्थिति जिसमें एक दूसरे के अंदर कई मंडलाकार घेरे हों। जैसे,—साँप गेंड़ली मारकर बैठा है।
क्रि० प्र०—बाँधना।—मारना।
गेंड़हिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] गड़ेरियों की बोली में सब रंग मिले हुए रोएँ या ऊन।
गेंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] १. ईख के ऊपर के पत्ते। अगोरी। २. ईख। गन्ना। ३. ईख की बड़ी गड़ेरी। ४. ईख के कटे हुए टुकड़े जो खेत में बोए जाते हैं। ५. पत्थर की निहाई जिसपर पीतल ताँबा लाल करके पीटते हैं। इसका व्यवहार प्रायः मिर्जापुर में है। ६. दे० 'गैंड़ा'।
गेंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक] दे० 'गैंड़ा'।
गेंडु†—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डु] १. गेंद। कंदुक। २. गद्दा (को०)।
गेंडुआ[1]†—संज्ञा पुं० [सं० गण्डुक=तकिया] तकिया। सिरहाना। उसीसा। उ०—(क) लोगनि भलो मनाइबो भलो होन की आस। करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अंग को कि अंगराग गेंडुआ की गलसुई किधौं कटि जेब ही उर को कि हारु है।—केशव (शब्द०)। (ग) चंपक दल द्युति गेंडुये। मनहुँ रूप के रूपक उये।—केशव (शब्द०)।
गेंडुआ[2]†—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डु या गेण्डुक] बड़ा गेंद।
गेंडुक—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डुक] गेंद। कंदुक।
गेंडुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १. रस्सी का बना हुआ मेंडरा जिसपर घड़ा रखते हैं। इँडुरी। बिड़वा। उ०—अतिहि करत तुम श्याम अचगरी। काहू की छीनत हो गेंडुरी काहू की फोरत हौ गगरी।—सूर (शब्द०)। २. फेंटा। कुंडली। ३. तवले या बाएँ के नीचे की इँडुरी जिसमें बद्धी लगाकर कसते हैं। ४. साँपों का कुंडलाकार होकर गोल बैठना।
क्रि० प्र०—मारना।—मारकर बैठना।
गेंडुली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] दे० 'गेंडुरी'।
गेंडुवा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गड़ुवा] दे० 'गड़ुवा'। उ०—निरति के गेंडुवा गंगाजल पानी।—कबीर श०, पृ० १०।

गेंती[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष।

विशेष—यह अवध में छोटी छोटी नदियों और सोतों के किनारे तथा नैपाल की तराई में अधिकता से पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और प्रायः इतनी ही चौड़ी होती हैं। गरमी के आरंभ में इसमें हरापन लिए हुए पीले रंग के छोटे छोटे फूलों के गुच्छे भी लगते हैं।

गेंती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुदाल।

गेंद—संज्ञा पुं० [सं० गेन्दुक, कन्दुक] १. कपड़े, रबर या चमड़े का गोला जिससे लड़के खेलते हैं। कंदुक। उ०—लागे खेलन गेंद कन्हाई। चढ़े विटप शिशु मारिसि धाई।—विश्राम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उछालना।—खेलना।—फेंकना।—मारना।

यौ०—गेंदघर। गेंदतड़ी। गेंदवल्ला।

२. कालिब जिसपर रखकर टोपी बनाते हैं। कलबूत। ३. रोशनी करने की एक वस्तु जिसमें तार की जालियों से बने हुए एक गोले के अंदर रोशनी जलती है।

गेंदई[1]—वि० [हिं० गेंदा] गेंदे के फूल के रंग का। पीले रंग का।

गेंदई[2]—संज्ञा पुं० गेंदे के फूल के समान पीला रंग।

गेंदघर—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद + घर] १. वह स्थान जहाँ लोग क्रिकेट, टेनिस आदि खेल खेलते और आमोद प्रमोद करते हैं। क्लब घर। २. वह मकान जिसमें अँगरेज बिलियर्ड नामक खेल खेलते हैं। बिलियर्ड रूम।

गेंदतड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेंद + तड़ातड़] लड़कों का एक खेल जिसमें वे एक दूसरे को गेंद मारते हैं। जिसे गेंद लगता है, वह चोर होता है।

गेंदना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गेंदा] गेंदा। एक प्रकार का फूल। उ०—फूल गेंदना एक नवल मेलत मृदु मुसुकाइ।—स० सप्तक०, पृ० ३५२।

गेंदवल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद + बल्ला] गेंद और उसे मारने की लकड़ी। २. वह खेल जिसमें लकड़ी की एक पटरी से गेंद मारते हैं।

गेंदरा मारना—क्रि०अ०[हिं० गेंद] लंगर डाले हुए जहाज का हवा या लहर के कारण इधर उधर हो जाना।—(लश०)

गेंदवा[1]†—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डुक] तकिया। उसीसा। सिरहाना। उ०—प्रेम क पलंगा दियो है बिछाय। सुरति के गेंदवा दिए ढरकाय।—कबीर (शब्द०)।

गेंदवा[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद] दे० 'गेंद'। उ०—मोहिनि एक जो सुंदर शरीरा। फूल कै गेंदवा खेलहि तीरा।—सं० दरिया, पृ० ३।

गेंदा—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दो ढाई हाथ ऊँचा एक पौधा जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं।

विशेष—इसमें लंबी पतली पत्तियाँ सींके के दोनों ओर पंक्तियों में लगती हैं। यह दो प्रकार का देखने में आता है, एक जंगली या टिर्री जिसके फूल चार ही पाँच दल के होते हैं और बीच का केसरगुच्छ दिखाई पड़ता है और दूसरा हजारा जिसमें बहुत दल होते हैं। फूलों के रंगों में भी भिन्नता होती है, कोई हलके पीले रंग के होते हैं, कोई नारंगी रंग के होते हैं। एक लाल रंग का गेंदा भी होता है जिसकी डंठलें कालापन लिए लाल होती हैं और फूल भी उसी मखमली रंग के लगते हैं। गेंदे की सुखाई हुई पंखड़ियों को फिटकिरी के साथ पानी में उबालने से गंधकी रंग बनता है।

२. एक प्रकार की आतिशबाजी जिसमें गेंदे के फूल की आकृति के गुल निकलते हैं। ३. सोने या चाँदी का सुपारी के आकार का एक घुँघरूदार गहना जो जोशन या बाजू में घुंडी के स्थान पर होता है और नीचे लटकता रहता है।

गेंदुक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गेन्दुक] गेंद। कंदुक। उ०—सारी कंचुकि केसर टीको। करि सिंगार सब फूलनि ही को। कर राजत गेंदुकि नौलासी। छुटि दामिनि सी ईषद हाँसी।—सूर(शब्द०)।

गेंदुर†—संज्ञा पुं० [हिं० गेंदुर] दे० 'गादुर'। उ०—कटहल लीची आम घूक गेंदुर से कंपित।—ग्राम्या, पृ० ६८।

गेंदुवा—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डुक] गेंडुआ। उसीसा। तकिया। गोल तकिया। उ०—गुलगुली गोल मखतूल की सी गेंदुआ गड़ै न गुड़ी जी मैं जऊ करत ढिठाई सी।—देव (शब्द०)।

गेंदौड़िया—संज्ञा स्त्री० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

गेंदौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद + औरा (प्रत्य०)] एक मिठाई। चीनी की रोटी। खाँड़ की रोटी। दे० 'गिंदौड़ा'।

विशेष—चीनी की चाशनी को गाढ़ा करते करते गुँधे हुए आटे की तरह कर डालते हैं और तब उसकी पाव या आध आध सेर की लोइयाँ (पेड़े) बनाकर कपड़े पर फैला देते हैं और उन लोइयों पर दबाकर उँगलियों के चिह्न बना देते हैं। ये लोइयाँ विवाह आदि उत्सवों पर बिरादरी में बैने के रूप में बाँटी जाती हैं।

गेंन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गैन] दे० 'गैन'। उ०—वजै उक्क डौरू डमंक कडक्कं। धकं पेरु धुज्जे हके गेंन हक्कं।—पृ० रा०, १। ३६०।

गे(पु)†—क्रि० अ० [हिं० गा का बहु० व०] दे० 'गया[2]'। उ०—भजि और अत्त छंडे रिनह गे राज बिजपाल तहाँ।—पृ० रा०, १। ६५४।

गेआन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान] दे० 'ज्ञान'। उ०—अनहद गरजे अमी रस झरै उपजे ब्रह्म गेआना।—रामानंद०, पृ० ३२।

गेगम—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक धारीदार या चारखाना कपड़ा। मूँगिया। सीकिया।

गेगला[1]—संज्ञा पुं० [देश० ?] मसूर की जाति का एक प्रकार का जंगली पौधा।

विशेष—यह पंजाब से बंगाल तक ६००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह प्रायः आप ही आप होता है पर कभी कभी चारे के लिये बोया भी जाता है। इसके दाने काले रंग के होते हैं और प्रायः गेहूँ में मिले हुए देखे जाते हैं। गेहूँ के खेत में उत्पन्न होकर यह फसल को कुछ हानि भी पहुँचाता है।

गेगला[2]—वि० [देश०] १. मूर्ख। जड़। बेवकूफ। भोंदू। २. बात अनसुनी कर जानेवाला। ढीठ।

गेगलाना—क्रि० अ० [हिं० गेगला] बात अनसुनी करना। ढिठाई करना। टालमटोल करना। विलल्लापन करना। मूर्खता कर बैठना।

गेगलापन—संज्ञा पुं० [हिं० गेगला] १. मूर्खता। जड़ता। भोंदूपन। २. धृष्टता। अनसुनी करने की टेव या बान। ढिठाई। टालमटूल। विलल्लापन।

गेगली—वि० स्त्री० [हिं० गेगला] दे० 'गेगला'। उ०—हमारे अब वह दिन लद गए अब तुम्हारे दिन हैं। अब तुम खेलो कूदो दिल खोल के। मगर तुम गेगली हो।—सैर कु०,पृ० २८।

गेजुनिया†—संज्ञा पुं० [देश०] गुल दुपहरिया।

गेटिस—संज्ञा पुं० [अं० गेटर्स] १. कपड़े या चमड़े का बना हुआ एक आवरण जिससे घुटने से लेकर एड़ी तक पैर ढँका रहता है। इसे सवार लोग अधिक काम में लाते हैं। २. मोजा आदि बाँधने के लिये रबर या चमड़े का फीता।

गेठा—संज्ञा पुं० [देश०] मोका नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। वि० दे० 'मोका'।

गेड़ना—क्रि० स० [सं० गण्ड=चिह्न, हिं० गंडा] १. लकीर से घेरना। मंडलाकार रेखा खींचना। २. परिक्रमा करना। चारों ओर घूमना।

गेड़ली†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] दे० 'गेंड़ली'।

गेड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्ड=चिह्न। हिं० गड़ा] १. लड़कों का एक खेल।

विशेष—इससे पृथ्वी पर एक लकीर खींचकर कुछ दूर पर एक लकड़ी रख देते हैं। जो लड़का उस लकड़ी पर चोट लगाकर उसे लकीर के पास कर देता है वह जीतता है।

२. वह लकड़ी जो इस खेल में रखी जाती है।

गेड़ुआ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डुक] दे० 'गेंडुआ'। उ०—दुहुँ दिसि गेडुआ औ गलसुई। काचे पाट भरी धुनि रुई।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ३१८।

गेड़ुली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेंडुली या गेडुरी] दे० 'गेंडुली'।

गेद(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] १. गोद का बच्चा। शिशु। २. छोटा बच्चा। नादान बालक। उ०—तुम मोंहि कीन्ह हाल को गेदो इत उत यहँ भरमाई।—भीखा श०, पृ० ७४।

गेदहरा† संज्ञा पुं० [हिं० गेद] १. गोद का बच्चा। २. छोटा बालक।

गेदा—संज्ञा पुं० [देश०] चिड़िया का वह बच्चा जिसे पर न निकले हों।

गेनुर—संज्ञा पुं० [देश०] एक बारामासी घास।

विशेष—यह पशुओं के चारे के काम आती है और सूखने पर छाजन के काम आती है। इसे गोनर या गूनर भी कहते हैं।

गेबा—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताने की कंघी की तीलियाँ। (जुलाहे)।

विशेष—इन तीलियों के बीच बीच में ताने के सूत पिरोए रहते हैं जिसमें वे एक दूसरे से सटकर उलझने न पावें। इनकी संख्या ताने के सूत की संख्या के हिसाब से होती है। ये तीलियाँ लकड़ी की चिरी हुई पतली फट्टियों की होती हैं।

गेय—वि० [सं०] गाने के योग्य। गाने के लायक। कीर्तन करने के योग्य।

गेयकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्य जो गाया जा सके। गीतात्मक काव्य। उ०—गीति काव्य और गेय काव्य दोनों एक ही वस्तु नहीं हैं।—पोद्दार अभि ग्रं०, पृ० १६७।

गेयपद—संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगों में से एक। वीणा या तानतूरा आदि यंत्र लेकर आसन पर बैठे हुए केवल गाना।

गेरना[1]‡—क्रि० स० [सं० गिरण] १. गिराना। नीचे डालना। २. ढालना। उँडेलना। ३. गिराना। झपकाना। उ०—बारंबार जगावति माता लोचन खोलि पलक पुनि गेरत।—सूर (शब्द०)। ३. डालना। आरोप करना। जैसे,—सुरमा गेरना (आँख में), अचार गेरना। ४. धारण करना। पहनना। उ०—भाल पै लाल गुलाल गुलाल सों गेरि गरे गजरा अलबेलो।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ९०।

गेरना[2](पु)—क्रि० स० [हिं० घेरना] परिक्रमा करना। चारो ओर फिरना। उ०—बीजों कलाँ पाँतरै अमीरदौलो गेर बैठो।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १२६।

गेरवाँ‡—संज्ञा पुं० [सं० ग्रैवेयक, तुलनीय फ़ा० गरेबाँ] पशुओं के गेराँव। बंधन का वह अंश जो गले में लपेटा रहता है।

गेराँई†—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रैवेय, तुलनीय फ़ा० गरेबाँ] गेराँव।

गेराँव†—संज्ञा पुं० [सं० ग्रैवेय, तुलनीय फ़ा० गरेबाँ] चौपायों के बंधन का वह अंश जो गले में लपेटा रहता है।

गेरुआ[1]—वि० [हिं० गेरू+आ (प्रत्य०)] १. गेरू के रंग का। मटमैलापन लिए लाल रंग का। २. गेरू में रँगा हुआ। गैरिक। जोगिया। भगवा। उ०—चला कटक जोगिन्ह कर कै गेरुआ सब भेसु। कोस बीस चारिहु दिसि जानौ फूला टेसु।—जायसी (शब्द०)।

गेरुआ[2]—संज्ञा पुं० १. गेरू के रंग का एक कीड़ा जो माघ के महीने में अधिक वर्षा से उत्पन्न होता है और अन्न के खेतों में लग जाता है जिससे अनाज के पेड़ पीले पड़ जाते हैं। २. गेहूँ के पौधों का एक रोग जिसके कारण वे कमजोर पड़ जाते हैं और अन्न नहीं पैदा कर सकते। इसे गेरुई और कुकुही भी कहते हैं।

गेरुआबाना—संज्ञा पुं० [हिं० गेरुआ+बाना] गेरुआ रंग की पोशाक। साधुओं का पहनावा।

गेरुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेरू] चैत की फसल का एक रोग जो अनाज के पौधों की जड़ के पास लाल रंग के महीन महीन कीड़े उत्पन्न हो जाने के कारण होता है।

विशेष—ये कीड़े फैल जाते हैं और पत्तों पर लाली छा जाती है। इससे दाने मारे जाते हैं। सबसे अधिक इसका असर गेहूँ की फसल पर होता है। जिस साल कुआर के पीछे जाड़े में वर्षा अधिक होती है उस साल यह रोग होता है।

गेरू—संज्ञा स्त्री० [सं० गवेरुक] एक प्रकार की लाल कड़ी मिट्टी जो खानों से निकलती है।

विशेष—यह दो रूपों में मिलती है—एक तो भुरभुरी होती है और कच्ची गेरू कहलाती है, दूसरी कड़ी होती है और पक्की गेरू कहलाती है। गेरू कई कामों में आती है। इससे सोने के गहनों पर रंग दिया जाता है। रँगरेज भी इसके मेल से कई प्रकार के रंग बनाते हैं। छीपी इसे छींट छापने के काम में लाते हैं। औषध में भी इसका व्यवहार होता है।

पर्या०—लालमिट्टी। गिरमाटी। गिरिमृत। सुरंगधातु। गवेरुक। गैरिक। ताम्रवर्णक। कठिन।

गेला—संज्ञा पुं० [अं० गेली] छापेखाने में बड़ी गेली।

गेली संज्ञा स्त्री० [अं०] छापेखाने में धातु या लकड़ी की एक छिछली किस्ती।

विशेष—इसपर टाइप रखकर पहले पहल वह कागज छापा जाता है जिसपर संशोधन होना रहता है। इसके ऊपर पहले टाइप जमाकर रखे और रस्सी से कस दिए जाते हैं, फिर कागज छाप लिया जाता है।

गेलीप्रूफ—संज्ञा पुं० [अं० गेली+प्रूफ] कंपोज किए हुए मैटर का वह प्रूफ जो पृष्ठ बाँधने के पहले का होता है।

गेल्हा—संज्ञा पुं० [देश०] चमड़े का कुप्पा जिसमें तेली तेल रखते हैं।

गेवर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़। दे० 'गँगवा'।

गेष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १.गानेवाला। गायक। २.अभिनेता [को०]।

गेसू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. जुल्फ। अलक। २. पीठ पर लटकनेवाले लंबे बाल। ३.केश। बाल। उ०—जहर, जो गेसुओं की पर्त में सौ पेंच खाता हो। कहर उस वक्त कोई दमझुमाकर और ढाता हो।—ठंडा, पृ० २३।

गेसूदराज—वि० [फ़ा०] जिसके बाल बहुत लंबे हों।

गेह—संज्ञा पुं० [सं० गृह] घर। मकान। निवासस्थान। उ०—करि दंडवत चली ललिता जो गई राधिका गेह।—सूर (शब्द०)।

गेहनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेह या सं० गृहिणी] घरवाली। गृहिणी। भार्या। पत्नी। उ०—तुम रानी वसुदेव गेहनी हौं गवाँरि व्रजवासी। पठै देहु मेरो लाड़ लडैतो वारौं ऐसी हाँसी।—सूर (शब्द०)।

गेहपति—संज्ञा पुं० [हिं० गेह+सं० पति] गृहस्वामी। घर का मालिक।

गेहरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गेह+हिं० रा (प्रत्य०)] दे० 'गेह'। उ०—भावसी न सौंज और शून्य सो न गेहरा।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५९७।

विशेष—हिंदी का यह 'रा' प्रत्यय विशेषार्थ सूचक होता है।

गेहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घर की मालकिन। गृहस्वामिनी। घरनी। पत्नी [को०]।

गेही—संज्ञा पुं० [सं० गेहिन्] [स्त्री० गेहिनी] गृहस्थ। घरबारवाला। उ०—तो गेही कैसे सहे दुहिता प्रथम बिछोह।—शकुंतला, पृ० ७०।

गेहुँअन—संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ] एक प्रकार का अत्यंत विषधर फनदार साँप जिसका रंग मटमैला होता है।

गेहुँआँ—वि० [हिं० गेहूँ] गेहूँ के रंग का बादामी।

गेहूँ—संज्ञा पुं० [सं० गोधूम या गोधुम] एक अनाज जिसकी फसल अगहन में बोई जाती और चैत में काटी जाती है।

विशेष—इसका पौधा डेढ़ या पौने दो हाथ ऊँचा होता है और इसमें कुश की तरह लंबी पतली पत्तियाँ पेड़ों से लगी हुई निकलती हैं। पेड़ों के बीच से सीधे ऊपर की ओर एक सींक निकलती है जिसमें बाल लगती है। इसी बाल में दाने गुथे रहते हैं। गेहूँ की खेती अत्यंत प्राचीन काल से होती आई है: चीन में ईसा से २७०० वर्ष पूर्व गेहूँ बोया जाता था। मिस्र के एक ऐसे स्तूप में भी एक प्रकार का गेहूँ गड़ा पाया गया जो ईसा से ३३५९ वर्ष पूर्व का माना जाता है। जंगली गेहूँ अबतक कहीं नहीं पाया गया है। कुछ लोगों की राय है कि गेहूँ जवगोधी या खपली नामक गेहूँ से उन्नत करके उत्पन्न किया गया है। गेहूँ प्रधानतः दो जाति के होते हैं, एक टूँडवाले दूसरे बिना टूँड के। इन्हीं के अंतर्गत अनेक प्रकार के गेहूँ पाए जाते हैं, कोई कड़े, कोई नरम, कोई सफेद और कोई लाल। नरम या अच्छे गेहूँ उत्तरीय भारत में ही पाए जाते हैं। नर्मदा के दक्षिण में केवल कठिया गेहूँ मिलता है। संयुक्त प्रदेश और बिहार में सफेद रंग का नरम गेहूँ बहुत होता है और पंजाब में लाल रंग का। गेहूँ के मुख्य मुख्य भेदों के नाम ये हैं—दूधिया (नरम और सफेद), जमाली (कड़ा भूरा), गंगाजली, खेरी (लाल कड़ा), दाउदी (उत्तम, नरम और श्वेत), मुँगेरी, मुँड़ियाँ (बिना टूँड का नरम, सफेद), पिसी (बहुत नरम और सफेद), कठिया (कड़ा और लसदार), बंसी (कड़ा और लाल)। भारतवर्ष में जितने गेहूँ बोए जाते हैं वे अधिकांश टूँडदार हैं क्योंकि किसान कहते हैं कि बिना टूँड के गेहुँओं को चिड़ियाँ खा जाती हैं। दाऊदी गेहूँ सबसे उत्तम समझा जाता है। जललिया की सूजी अच्छी होती है। बंबई प्रांत में एक प्रकार का बखशी गेहूँ भी होता है। खपली या जवगोधी नाम का बहुत मोटा गेहूँ सिंध से लेकर मैसूर तक होता है। इसमें विशेषता यह है कि यह खरीफ की फसल है और सब गेहूँ रबी की फसल के अंतर्गत हैं। यह खराब जमीन में भी हो सकता है और इसे उत्पन्न करने में उतना परिश्रम नहीं पड़ता। भारतवर्ष में गेहूँ के तीन प्रकार के चूर्ण बनाए जाते हैं, मैदा, आटा और सूजी। मैदा बहुत महीन पीसा जाता है और सूजी के बड़े बड़े रवे या कण होते हैं। नित्य के व्यवहार में रोटी बनाने के काम में आटा आता है, मैदा अधिकतर पूरी, मिठाई आदि बनाने के काम में आता है, सूजी का हलवा अच्छा होता है।

पर्या०—गोधूम। बहुदुग्ध। अरूप। म्लेच्छभोजन। यवन। निस्तुष। क्षीरी। रसाल। सुमन।

गेहेशूर—वि० [सं०] वह जो घर में ही बहादुरी दिखाता हो। कायर [को०]।

गेह्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृहकार्य । गृहप्रबंध । २. संपत्ति [को०] ।

गेह्य²—वि० १.घरेलू । गेह संबंधी । २. घर में ही रहनेवाला [को०] ।

गेंची—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली । उ०—एक दो सेर गेंची मछली निकाल लाएँगी ।—मैला०, पृ० १३ ।

गेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] कुल्हाड़ी ।

गेंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक] भैंसे के आकार का एक बड़ा पशु जो नदी के किनारे के ऐसे दलदलों और कछारों में रहता है जहाँ जंगल होता है ।

विशेष—यह जंगली झाड़ियों की जड़ों और नरम कोपलों को खाता है और प्रायः कीचड़ में पड़ा रहता है । यह जिस प्रकार डीलडौल में बड़ा है उसी प्रकार बलवान् भी होता है, पर बिना छेड़े किसी से बोलता नहीं । इसे काटनेवाले कुकुरदंत नहीं होते केवल दाढ़ें होती हैं । इसके पैरों में तीन तीन उँगलियाँ होती हैं । इसका चमड़ा बिना बाल का तथा अत्यंत मोटा और ठोस होता है । इसकी नाक की हड्डी बड़ी मजबूत होती है और उसपर एक पैना सींग होता है जो चमड़े और बालों से दूर तक ढका रहता है । क्रुद्ध होने पर यह इसी से चोट करता है । इसके चमड़े की ढालें बनती हैं । इसके थूथन पर सींग का भारतवर्ष में अर्घा बनता है जो पितृतर्पण के लिये उत्तम माना जाता है । गंगासागर के पास सुंदर वन में गेंड़े बहुत मिलते हैं ।

गेंती—संज्ञा स्त्री० [सं० खनित्रिका अथवा गर्तकृत्] जमीन खोदने का एक औजार । कुदाल ।

गेंद¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गयंद] दे० 'गयंद' । उ०—चित्र महावत गेंद बहुरि उतरै न अवर पर ।—पृ० रा०, २५।३४ ।

गेंद²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद] दे० 'गेंद' । उ०—लै लै गेंद परसपर मेलें । बाल वृंद मिलि मिलि सुख झेलें ।—ह० रासो०, पृ० २६ ।

गेंदुवा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गेंदा] दे० 'गेंदा' । उ०—कंठ फूल बनगो, फंटा फूल फूल गादो, गेंदुवा फूल । हँसि बैठे हैं स्यामा स्याम सोभा को नहिं पार ।—नंद ग्रं०, पृ० ३७९ ।

गेंन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गगन, प्रा० गगण, गयण] दे० 'गगन' । उ०—गेंन गहर गंभीर धुनि सुनि ससंक भय गात ।—पृ० रा० ६ । ३१ ।

गेंवर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गैवर] दे० 'गैवर' । उ०—है गै गेंवर सघन घन छत्र धजा पुरराइ ।—कबीर ग्रं०, पृ० ५३ ।

गैज—संज्ञा पुं० [अ० गैज] अति क्रोध । भारी गुस्सा ।

गैजेट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'गैजेटियर' ।

गैजेटियर—संज्ञा पुं० [अं० गैजेटियर] वह पुस्तक जिसमें कहीं का भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक वृत्त वर्णानुक्रम से हो । भौगोलिक कोश । जैसे,—डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर, इंपीरिअल गैजेटियर ।

गैजेटेड अफसर—संज्ञा पुं० [अ० गैजेटेड आफिसर] वह सरकारी कर्मचारी जिसकी नियुक्ति की सूचना सरकारी गजट में प्रकाशित होती है । राजपत्रित कर्मचारी ।

विशेष—सरकारी गैजेट में उन्हीं कर्मचारियों की नियुक्ति की सूचना छपती है जिनका पद बड़ा और महत्व का समझा जाता है । इस प्रकार गवर्नर तक की नियुक्ति की सूचना गैजेट में निकलती है । इनके वेतन का विशेष क्रम होता है । इनकी नियुक्ति लोकसेवा आयोग द्वारा होती है । सब इंस्पेक्टर, जमादर आदि छोटे कर्मचारियों की नियुक्ति की सूचना गैजेट में नहीं निकलती ।

गैताल¹—संज्ञा पुं० [देश०] १.निम्न श्रेणी का बैल । २.साधारण पशु । ३.बेकार चीज ।

गैताल²—वि० १. नष्ट । बरबाद । २.टूटा फूटा । निकम्मा । बेकार । ३.समाप्त ।

गैती—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जो हिमालय के किनारे होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और अंदर से सुर्ख होती है । यह नक्काशी के लिये बहुत अच्छी होती है और इससे अनेक प्रकार के सामान बनते हैं । कुमाऊँ और नेपाल में इससे डोल और कटोरे भी बनाए जाते हैं ।

गैन¹(पु) संज्ञा पुं० [सं० गमन] गैल । मार्ग । रास्ता । उ०—(क) प्रीत चलावैं जित इन्हैं तितैं धरैं ये गैन । नेह मनोरथ रथ रहै वे अवलख हय नैन ।—रसनिधि (शब्द०) । (ख) तारायन शशि रैन प्रति सूर होहिं शशि गैन तदपि अँधेरो है सखी पीउ न देखे नैन ।—रहीम (शब्द०) ।

गैन²-(पु)संज्ञा पुं० [सं० गगन, प्रा० गयण] गगन । आसमान । आकाश । उ०—ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगौं सतर ह्वै गैन । दीरघ होहिं न नैकहुँ फारि निहारैं नैन ।—बिहारी (शब्द०)।

गैना¹—संज्ञा पुं० [हिं० गाय] [स्त्री० गैनी] छोटी जाति का बैल । नाटा बैल । उ०—गैना नैना लाल के हित मैं जानत नाह ।नहे नेह के बहल में घुरला जानत नाह ।—रसनिधि (शब्द०) ।

गैना(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं० गैन] दे० 'गैन' । उ०—भगिगय सब सैना लखत न गैना बुल्लत बैना दीन तवै ।—प० रासो, पृ० १२९ ।

गैनारि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गैन+अरि=चक्र] सहस्रार । ब्रह्मांड । —प्राण०, पृ० २८० ।

गैफल—संज्ञा पुं० [?] जहाज के आगे की तरफ का एक छोटा सा पाल ।—(लश०) ।

गैफलकंजा—संज्ञा पुं० [?] पाल को चढ़ाने उतारने की एक रस्सी । —(लश०) ।

गैब—संज्ञा पुं० [अ० ग़ैब] परोक्ष । वह जो सामने न हो । उ०—भया उजाला गैब का, दौड़े देख पतंगा ।—दरिया० बानी, पृ० १३ ।

यौ०—गैबदाँ । गैबदानी ।

गैबत—संज्ञा स्त्री० [अ० गैबत] १. अनुपस्थिति । गैरहाजिरी । २. पीठ । पीछा । परोक्ष । ३. अंतर्धान होना । ४. निंदा । चुगली।

गैबदाँ—वि० [अ० ग़ैब+फ़ा० दाँ (प्रत्य०)] परोक्ष का जाननेवाला। सर्वदेश और सर्वकालज्ञ । ऐसी बातों का जाननेवाला जो प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा न जानी जा सके ।

गैबर¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया ।

विशेष—इसके डैने, छाती और पीठ सफेद, दुम काली तथा चोंच और पैर लाल होते हैं।

गैवर[2]⑨—संज्ञा पुं० [हिं० गैवर] दे० 'गैवर'। उ०—बीर सघन वन माँझ ह्वै, गुरु उर गैवर ठेलि।—नंद ग्रं०, पृ० १५५।

गैवाना⑨–वि० [अ० ग़ैब] अदृश्य। गुप्त। उ०—पाँच पचीस अहैं संग वासी ते तौ हहि गैवाना।—जग० बानी, पृ० ९७।

गैवी–वि० [अ० गैब+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. गुप्त। छिपा हुआ। २. अजनबी। अज्ञात। अबोधगम्य। उ०—(क) गैबी तो गलियाँ फिरै, अजगैबी कोइ एक। अजगैबी कोसों लखे, जाके हृदय विवेक।—कबीर (शब्द०)। (ख) गैबी जामें आय समाना नरियर में जस दूध भँके। जन्म भूमि सरजू उत्तर दिसि ए तीनौं जहँ आइ नके।—देवस्वामी (शब्द०)।

गैयर⑨—संज्ञा पुं० [सं० गजवर] हाथी। गज। उ०—वहु नागन पर नौवत बाजैं। तिनके गुरु गैयर गन गाजैं।

गैया—संज्ञा स्त्री० [सं० गो] गाय। गऊ। उ०—धनि वह वृंदावन की रेनु। नंदकुमार चराई गैयाँ मुखन बजाई बेनु।—सूर० (शब्द०)।

गैर[1]—वि० [अ० ग़ैर] १ अन्य। दूसरा। २. अजनबी। अपने कुटुंब या समाज से बाहर का (व्यक्ति)। पराया। जैसे,—(क) चीनी लोग गैर आदमी को अपने देश में नहीं आने देते थे। (ख) आप कोई गैर तो हैं नहीं, फिर आपसे क्यों बात छिपावें।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विरुद्ध अर्थवाची उपसर्ग के समान भी होता है। जिस विशेषण शब्द के पहले यह लगाया जाता है उसका अर्थ उलटा हो जाता है, जैसे,—गैरमुमकिन, गैर मुनासिब, गैरहाजिर।

गैर[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़ैर] अत्याचार। अनुचित वर्ताव। अंधेर। उ०—(क) मेरे कहे मेर करु, सिवा जी सों वैर करि गैर करि नैर निज नाहक उतारे तैं।—भूषण (शब्द०)। (ख) आवत हैं हम कछु दिन माहीं। चलै गैर तिनकी तव नाहीं।—विश्राम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

गैर[3]—संज्ञा पुं० [हिं० गैगर] दे० 'गैयर'।

गैर[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गैल] दे० 'गैल'। उ०—अड़े गैर गैर माहि रोस रस अकसै।—शिखर०, पृ० ३३१।

गैर[5]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घैर] दे० 'घैर'।

गैर[6]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० गैरी] १. गिरि संबंधी। २. गिरि पर उत्पन्न [को०]।

गैरआवाद—वि० [अ० गैर+फ़ा० आबाद] जो न बसा हुआ हो। उजाड़। परती (भूमि)।

गैरइनसाफी—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़ैर+इंसाफ़+फ़ा० ई (प्रत्य०)] अन्याय। वेइनसाफी। अन्याय।

गैरइलाका—संज्ञा पुं० [अ० ग़ैर+इलाक़ह्] १. दूसरे का इलाका। दूसरे का क्षेत्र। २. देश। मुल्क।

गैरखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गर रखी] हँसुली।—(सुनारों की बोली)।

गैरजरूरी—वि० [अ० गैर+जरूर+फ़ा० ई (प्रत्य०)] अनावश्यक।

गैरजिम्मेदार—वि० [अ० गैर+फ़ा० जिम्मेदार] अनुत्तरदायी। अपनी जिम्मेदारी न समझनेवाला।

गैरजिम्मेदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़ैर+फ़ा० जिम्मेदारी] अनुत्तरदायित्व। जिम्मेदारी न समझने का भाव।

गैरत—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़ैरत] लज्जा। शर्म हया। उ०—इंद्री वस गुन गैरत माई।—घट०, पृ० २८१।

यौ०—गैरतदार।

गैरतदार—वि० [फ़ा०] १. लज्जाशील। २. स्वाभिमानी।

गैरतमंद—वि० [फ़ा०] दे० 'ग़ैरतदार'।

गैरमजरूआ—वि० [अ०] परती या बिना जोती बोई गई जमीन।

गैरमनकूला—वि० [अ० ग़ैरमनकूला] जिसे एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर न ले जा सकें। स्थिर। अचल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग जायदाद शब्द के साथ कानूनी कार्रवाइयों में विशेषकर होता है। जायदाद गैरमनकूला ऐसी संपत्ति को कहते हैं जो या तो भूमि हो या भूमि में बिलकुल गड़ी हुई हो, जैसे,—घर, खेत, पेड़ इत्यादि।

गैरमर्द—संज्ञा पुं० [अ० ग़ैर+फ़ा मर्द] १. अजनबी व्यक्ति। २. पति से भिन्न व्यक्ति।

गैरमामूली—वि० [अ० गैरमामूली] १.असाधारण। २. नित्यनियम के विरुद्ध।

गैरमिसिल⑨—वि० [अ० ग़ैर+फ़ा० मिसाल] अयोग्य या अनुचित (स्थान में)। उ०—भूषण कुमिस गैरमिसिल खरे किए को।—भूषण ग्रं०, पृ० २१।

गैरमुकम्मल—वि० [अ० गैर+मुकम्मल] जो पूर्ण न हो। अधूरा। अपूर्ण।

गैरमुनासिब—वि० [अ० ग़ैरमुनासिब] अनुचित। अयोग्य।

गैरमुमकिन—वि० [अ० ग़ैरमुमकिन] असंभव। न होने योग्य।

गैरमुल्की—वि० [अ० ग़ैर+मुल्की+फ़ा० ई (प्रत्य०)] दूसरे देश का। विदेशी।

गैरमुस्तकिल—वि० [अ० ग़ैरमुस्तकिल] जो हमेशा के लिये न हो। अस्थायी।

गैरमौरूसी—वि० [अ० ग़ैरमौरूसी] वह जमीन या जायदाद जो पैतृक न हो या जिसपर मौरूसी हक न लागू होता हो।

गैररस्मी–वि० [अ० ग़ैर+फ़ा० रस्मी] जो रस्म रिवाज के अनुसार न हो। अनौपचारिक।

गैरवसली—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़ैरवसली] कच्चे मकानों की छत छाने की वह क्रिया जिसमें बाँस की पतली कमाचियों को दृढ़तापूर्वक केवल बुन देते हैं और उन्हें रस्सियों से नहीं बाँधते।

गैरवसूल–वि० [अ० ग़ैरवसूल] जो वसूल न किया गया हो। अप्राप्त।

गैरवाजिब—वि० [अ० ग़ैरवाजिब] अयोग्य। अनुचित। वेजा।

गैरसरकारी- वि० [अ० गै़र+फ़ा० सरकारी] जो सरकारी न हो। जो किसी सरकार या राज्य का (आदमी या नौकर) न हो। जिसका किसी सरकार या राज्य से संबंध न हो। जैसे,—गैर सरकारी सदस्य।

गैरसालⓤ—वि० [अ० ग़ैरसालह्] १.अशुद्ध। दूषित। उ०—गैरसाल है बदलि दै कहै विप्र मम नाहिं।—अर्ध०, पृ० ४६। २.दुर्जन। ३. नाशरीफ।

गैरहाजिर—वि० [अ० ग़ैरहाजिर+फ़ा० ई (प्रत्य०)] अनुपस्थित। जो मौजूद न हो।

गैरहाजिरी—संज्ञा स्त्री० [अ० गैरहाजिरी] अनुपस्थिति। नामौजूदगी।

गैरिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गेरू।

यौ०—गैरिकाक्ष।

२. सोना।

गैरिक[2]—वि० [वि० स्त्री० गैरिकी] १. जो पहाड़ से उत्पन्न हो। २. गेरू के रंग का [को०]।

गैरिकाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जल महुआ।

गैरियत—संज्ञा स्त्री० [अ० ग़ैरीयत] परायापन। गैरपन।

गैरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] खरही। डाँठ का ढेर। खेत से कटे हुए डंठलों का ढेर।

गैरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] लांगलिकी वृक्ष। विषलाँगला।

गैरी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त या अ० गार] गड्ढा। वह गड्ढा जिसमें किसान खाद इकट्ठा करते हैं। कूड़ा, करकट, गोबर आदि फेंकने का गड्ढा।

गैरीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० गैरीयत] दे० 'गैरियत'।

गैरेय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिलाजतु। शिलाजीत। २. गेरू (को०)।

गैरेय[2]—वि० १. गिरि से उत्पन्न। गिरि पर उत्पन्न। २. गिरि संबंधी। पहाड़ी [को०]।

गैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० गली] मार्ग। राह। रास्ता। गली। कूचा। उ०—(क) हौ तुम प्रान हितू सिगरी कवि सेखर देहु सिखावन यामैं। गैल में गोपद नीर भरयो सखि चौथ को चंद परयो लखि तामें।—सेखर (शब्द०)। (ख) मूसा कहै बिलार सों सुन रे ढीठ ढिठैल। हम निकसत हैं सैर को, तुम बैठत हौ गैल।—गिरिधर (शब्द०)।

मुहा०—किसी की गैल जाना=(१) किसी के साथ जाना। (२) किसी का अनुसरण करना। **किसी को गैल करना**=किसी को साथ कर देना। **गैल बताना**=दे० 'रास्ता बताना'। गैल लेना=साथ में लेना।

गैलड़—संज्ञा पुं० [अ० गैर+हिं० लड़का] किसी स्त्री के पहले पति का लड़का जिसे लेकर वह दूसरे के यहाँ जाय।

गैलन—संज्ञा पुं० [अं०] पानी, दूध आदि द्रव पदार्थ मापने का एक अँगरेजी मान जो तीन सेर का होता है।

गैलरी—संज्ञा पुं० [अं०] १. नीचे ऊपर बैठने का सीढ़ीनुमा स्थान जैसे थिएटरों और व्याख्यानालयों. संसद्, विधानसभाओं आदि में दर्शकों के लिये रहता है। २. सौदागरों की सीढ़ीनुमा दूकान जिसमें बिक्री की वस्तुएँ पंक्तियों में सजाकर रखी जाती हैं।

गैलाⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० गैल] १.गाड़ी के पहिए की लीक। पहिए की लकीर। २.गाड़ी का मार्ग। वह चौड़ा रास्ता जिससे गाड़ी जा सके।

गैलाⓤ—वि० [देश०] मूर्ख। गँवार। उ०—नातर गैला जगत से, बकि बकि मरै बलाय।—संतवाणी०, भा० १, पृ० १३३।

गैलागीरⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० गैल+फ़ा० गीर (प्रत्य०)] राहगीर। उ०—गैलागीर आता सो ढकोला नाषि जाता।—शिखर०, पृ०—८।

गैलारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गैला'।

गैवरⓤ—संज्ञा पुं० [सं० गजवर] हाथी। गज। उ०—बिबिध भाँति के बाजन बाजे। हैवर गैवर गण बहु गाजे।—रघुराज (शब्द०)।

गैशबत्ती संज्ञा स्त्री० [अं० गैस+हिं०बत्ती] गैस से जलनेवाली एक प्रकार की बड़ी लालटेन। उ०—भकभक गैशबत्ती की सी रोशनी होने लगी।—मैला०, पृ० ९८।

गैस—संज्ञा स्त्री० [अं०] १.प्रकृति में वायु के समान एक अत्यंत अगोचर और सूक्ष्म द्रव्य जिसके भिन्न भिन्न रूपों के संयोग से जल, वायु आदि पदार्थ बनते हैं। वह द्रव्य जिसके अणु अत्यंत तरल या चंचल हों और जो अत्यंत प्रसरणशील हो।

विशेष—गैसों के अणु निरंतर गति में रहते हैं और वे एक सीध में चलकर एक दूसरे से टकराते हैं तथा जिस बरतन में गैस रहती है उसकी दीवारों पर दवाव डालते हैं। अधिक दवाव और सरदी से गैस द्रवीभूत हो सकती है; पर भिन्न भिन्न गैसों के लिये भिन्न भिन्न मात्रा के दवाव और सरदी की आवश्यकता होती है। गैस की बड़ी भारी विशेषता यह है कि यह जितना खाली स्थान पाती है उतने भर में फैलकर भरना चाहती है, अर्थात् उसका कोई परिमित तल या विस्तार नहीं होता। बोतल में यदि हम बोतल भर पानी न डालेंगे तो पानी बोतल में कुछ दूर तक ही रहेगा। यदि उसी बोतल में गैस भरेंगे तो वह सारी बोतल में भर जायगी।

२. एक प्रकार की तीव्र और गंधयुक्त वायु जो कोयले की खानों आदि से निकलती है। ३.बहुत सी भिन्न भिन्न गैसों का ऐसा मिश्रण जिससे गरमी पहुँचाने या रोशनी करने का काम लिया जाता है। ४. दे० 'गैसबत्ती'।

गैहगड़ⓤ—वि० [हिं० गहगड्ड] दे० 'गहगड्ड'। उ०—राग रंग गैहगड़ मच्यौ री, नंदराइ दरबार।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६०८।

गैहनाⓤ—क्रि० स० [हिं० गाहना] दे० 'गहना'। उ०—आँचली गैहती बइसाड़ी छइ आँण। हँसि गललाइ नई भाँजिय काँण।—बी० रासो, पृ० ५५।

गैहवरⓤ—वि० [हिं० गहबर] दे० 'गह्वर'। उ०—स्यामा प्यारी आगे चलि आगे चलि, गैहवर वन भीतर जहाँ बोलत कोइल री।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३९०।

गोंइंठा†—संज्ञा पुं० [सं० गो+विष्ठा] गोबर का सूखा हुआ चिप्पड़। कंडा। उपला। गोहरा।

गोंइँड़ां—संज्ञा पुं० [हिं० गाँव+मेंड़] गाँव का किनारा। गाँव का सिवान। गाँव के आस पास की भूमि।
गोंइँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गोंइँड़] दे० 'गोंइँड़'।
गोंइयाँ—संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं० गोइयाँ] दे० 'गोइयाँ'।
गोंई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोहन] बैलों की जोड़ी।
गोंगवाल—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।
गोंचा—संज्ञा पुं० [सं० गोगोचन्दना] जोंक।
गोंचना—क्रि० अ० [देश०] १. कोंचना। धँसाना। २. मिट्टी या कागज पर अस्त व्यस्त रेखाएँ खींचना।
गोंछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गलमोछ] गलमोछ। गलमोंछा।
गोंजना[1]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'गींजना'।
गोंजना[2]—क्रि० स० [हिं० कोंचना] गड़ाते हुए दबाना। उ०—शेख ने एक चौअन्नी अपने मोहर्रिर की मुट्ठी में गोंज दी।—नई०, पृ० ६७।
गोंजना[3]—क्रि० अ० [हिं० गोंचना] दे० 'गोंचना'।
गोंटा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा पेड़।
विशेष—यह उत्तर भारत में पेशावर से भूटान तक, दक्षिण भारत तथा जावा में होता है। बरसात में इनमें बहुत छोटे छोटे फूल और जाड़े में काले रंग के छोटे मीठे फल लगते हैं जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी होती है।
गोंठ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ] धोती की लपेट जो कमर पर रहती है। मुर्री।
गोंठना[1]—क्रि० स० [सं० गोष्ठ, प्रा० गोट्ठ+ना (प्रत्य०)] १. चारों ओर लकीर से घेरना। जैसे,—चौका गोंठना, घर गोंठना (असाढ़ी पूर्णिमा को)। २. परिक्रमा करना। फेरा करना।
गोंठना[2]—क्रि० स० [सं० कुण्ठन] किसी वस्तु की नोक या कोर को गुठला कर देना। २. पकवान बनाने में गोझे या पुवे की कोर को मोड़ मोड़कर उभड़ी हुई लड़ी के रूप में करना।
गोंठनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोंठना] लोहे या पीतल का एक औजार जिससे गोझिया गोंठते हैं।
गोंठिल—वि० [हिं० गोठिल] दे० 'गोठिल' उ०—कैसे नये नये तीर छूटे हैं मौत की गोंठिल घात गई अब।—बेला पृ० १०१।
गोंड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० गोण्ड] १. एक जंगली जाति जो मध्यप्रदेश में पाई जाती है। गोंड़वाना प्रदेश का नाम इसी जाति का निवासस्थान होने के कारण पड़ा। २. बंग और भुवनेश्वर के बीच का देश। ३. एक राग जो वर्षाकाल में गाया जाता है।
विशेष—कोई इसे मेघ राग का पुत्र और कोई धनाश्री मल्लार और बिलावल के मेल से बना एक संकर राग मानते हैं।
गोंड़[2]—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] गायों के रहने का स्थान।
गोंड़[3]—संज्ञा पुं० [सं० गोरण्ड] नाभि का लटकता हुआ मांस।
गोंड़[4]—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ठ] लंगर के ऊपर का भाग जो गोल होता है।
गोंड़[5]—संज्ञा पुं० [सं० (नाभि) कुण्ड] वह मनुष्य जिसकी नाभि निकली हो।
गोंडकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोंड=राग+किरी] एक रागिनी जो गोंड राग का एक भेद मानी जाती है।
गोंडरा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] [स्त्री० गोंडरी] १. वह कुंडलाकार गोल लकड़ी या लोहे की छड़ जो मोट के मुँह पर बँधी रहती है। लोहे का मँडरा जिसपर मोट का चरसा लटकता है। २. कोई गोल वस्तु जो कुंडल के आकार की हो। मँड़रा। ३. लकीर का गोल घेरा।
क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।
गोंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १. कुंडल के आकार की कोई वस्तु। मँड़रा। २. इँडुरी।
गोंडला—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] लकीर का गोल घेरा।
क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।
विशेष—प्रायः भोजन आदि के समय इस प्रकार का घेरा, छूतछात से बचने के लिये बनाया जाता है।
गोंडवाना—संज्ञा पुं० [हिं० गोंड़] मध्यप्रदेश का उत्तरी भाग जो गोंड जाति का आदि निवासस्थान माना जाता है।
गोंड़वानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोंडवाना] गोंडवाना प्रदेश की बोली।
गोंड़ा[1]—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बड़ी लता जो देहरादून, अवध, गोरखपुर, बुंदेलखंड, बंगाल और मध्यभारत के जंगलों में, विशेषतः जहाँ साल के वृक्ष हों, अधिकता से होती है।
विशेष—यह बहुत फैलती है और समय पर काटी न जाय तो जंगलों को बहुत हानि पहुँचाती है। इसकी पत्तियाँ बड़ी और चौड़ी होती हैं और चारे के काम आती हैं। इसकी डालियों से एक प्रकार का रेशा भी निकाला जाता है। इसकी टहनी के सिरे पर गुच्छों के फूल भी लगते हैं जो गरमी के दिनों में फूलते हैं।
गोंड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] १. बाड़ा। घेरा हुआ स्थान। (विशेषकर चौपायों के लिये) रखने या बाँधने का स्थान। उ०—पिता गए गौवों के गोड़े। माता घर लड़के धाए हैं।—आराधना, पृ० ७४। २. मोहल्ला। पुरा। गाँव। खेड़ा। बस्ती। ३. खेतों का उतना घेरा जितना एक किसान का हो और एक ही जगह पर हो। ४. बड़ी चौड़ी सड़क। ५. सहन। चौक आँगन। ६. वह न्योछावर जो लड़कीवाले के घर पर बारात के पहुँचने पर की जाती है। परछन।
मुहा०—गोंड़ा सींजना=बारात के पहुँचने पर कन्या के घरवालों का न्योछावर के रूप में कुछ द्रव्य बाँटना या लुटाना।
गोंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़] दे० 'गोंडवानी'।
गोंद[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुंदरु या हिं० गूदा] गूदेदार पेड़ों के तने से निकला हुआ चिपचिपा या लसदार पसेव जो सूखने पर कड़ा और चमकीला हो जाता है। वृक्षों का निर्यास। उ०—एक अंग बृक्षन को दीनों। गोंद होइ प्रकास तिन कीनो।—सूर (शब्द०)

यौ०—गोंददानी=वह बरतन जिसमें गोंद भिगोकर रखा रहे।

गोंद[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० गुन्द्रा] एक प्रकार की घास जिससे गोंदरी बनाई जाती है।

गोंद[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोंदी] दे० 'गोंदी'। उ०—गोंद कली सम बिकसी ऋतु बसंत औ फाग।—जायसी (शब्द०)।

गोंदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोंद] गोंदी का पेड़। दे० 'गोंदी'।

गोंदपँजीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोंद+पँजीरी] गोंद मिली हुई पँजीरी जिसे प्रसूता स्त्रियों को खिलाते हैं।

गोंदपटेर—संज्ञा स्त्री० [सं० गुन्द्र+पर्या० पटेर] पानी में होनेवाली एक प्रकार की वनस्पति।

विशेष—इसके पत्ते मोटे और प्रायः एक इंच चौड़े और चार पाँच फुट लंबे होते हैं। इसके पत्तों में से नए पत्ते निकलते हैं। इसमें ऊपर की ओर बाजरे की बाल के समान बाल भी लगती है जिसके ऊपर सींकें होती हैं। इन सींकों से चटाइयाँ आदि बनती हैं। वैद्यक में यह कसैली, मधुर, शीतल, रक्तपित्त नाशक और स्तन का दूध, शुक्र, रज तथा मूत्र को शुद्ध करने वाली कही गई है।

गोंदपाग—संज्ञा पुं० [हिं० गोंद+पाग] गोंद और चीनी के मेल से बनी हुई एक प्रकार की मिठाई। पपड़ी। उ०—पेठा, पाग, जलेबी, पेरा। गोंदपाग, तिनगरी, गिंदोरा।—सूर (शब्द०)।

गोंदमखाना—संज्ञा पुं० [हिं० गोंद+मखाना] भूना हुआ मखाना जिसमें और मसाले के साथ गोंद मिला होता है और जो प्रसूता स्त्रियों को दिया जाता है।

गोंदरा†—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्रा=एक घास] १. नरम घास या पयाल का बना हुआ एक आसन जिस पर किसान लोग साधारण तौर पर या चौपायों को चारा काटने के समय बैठते हैं। २. गोनरा घास।

गोंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुन्द्रा] एक प्रकार की घास जो पानी में उत्पन्न होती है और बहुत लंबी, कोमल और गरम होती है। २. इस घास की बनी हुई चटाई। ३. पयाल की बनी हुई चटाई।

गोंदला—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्रा] १. बड़ा नागरमोथा जो जलाशयों के किनारे उगता और प्रायः एक गज तक ऊँचा होता है। २. एक प्रकार की घास जिससे गोंदरी बनाई जाती है।

गोंदा—संज्ञा पुं० [हिं० गूँधना] १. भुने चनों का बेसन जो पानी में गूँधकर बुलबुलों को खिलाया जाता है।

मुहा०—गोंदा दिखाना=(१) बुलबुलों को लड़ाने के लिये उन्हें दिखाकर बीच में चारा फेंकना। (२) कोई ऐसी बात उपस्थित करना जिससे दो पक्ष परस्पर लड़ जायँ। लड़ाई लगाना।

२. गारा। मिट्टी का कपसा।

गोंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोवन्दनी=प्रियंगु] १. मौलसिरी की तरह का एक पेड़ जिसके पत्ते मौलसी के पत्तों से कुछ लंबे होते हैं।

विशेष—फागुन चैत में इसमें लाल रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं। यह जंगलों और मैदानों में होता है। बहुत से स्थानों में लोग प्रियंगु शब्द से इसी का ग्रहण करते हैं और इसके फूल, फल, छाल आदि का औषध में प्रयोग करते हैं।

२. इंगुदी। हिंगोट।

मुहा०—गोंदी सा लदना=(१) बहुत अधिक फलना। फलों से गुछ जाना। (२) शरीर में शीतला के या किसी प्रकार के बहुत से दाने निकलना।

गोंदीला—वि० [हिं० गोंद+ईला (प्रत्य०)] जिस (वृक्ष) में से गोंद निकलता हो। जैसे,—बबूल, ढाक आदि।

गो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गाय। गऊ। २. प्रकाशरश्मि। किरण। ३. वृष राशि। ४. ऋषभ नाम की औषधि। ५. इंद्रिय। ६. बोलने की शक्ति। वाणी। उ०—गोकुल की छवि कवि क्यों कहै। गो जब लौं गोकुल नहिं गहै।—घनानंद०, पृ० २६२। ७. सरस्वती। ८. आँख। दृष्टि। देखने की शक्ति। ९. बिजली। १०. पृथ्वी। जमीन। ११. दिशा। १२. माता। जननी। १३. किसी धातु की बनी गोमूर्ति। १४. बकरी, भैंस, भेड़ी इत्यादि दूध देनेवाले पशु। १५. जीभ। जबान। जिह्वा। १६. ज्योतिष में नक्षत्रों की नौ वीथियों में से एक।

गो[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बैल। २. नंदी नामक शिवगण। ३. घोड़ा। ४. सूर्य। ५. चंद्रमा। ६. बाण। तीर। ७. गवैया। गानेवाला। ८. प्रशंसक। ९. आकाश। १०. स्वर्ग। ११. जल। १२. वज्र। १३. शब्द। १४. नौ का अंक। १५. शरीर के रोम। १६. पशु (को०)। १७. हीरा (को०)। १८. गोमेध नामक यज्ञ (को०)।

गो[3]—अव्य० [फ़ा०] यद्यपि। जैसे—गो ऐसी बात है, पर मैं कह तो नहीं सकता।

यौ०—गोकि=यद्यपि। गो।

गो[4]—प्रत्य० [फ़ा०] कहनेवाला। जैसे—कानूनगो, दरोगगो।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द यौगिक के अंत में आता है।

गो[5]—क्रि० अ० [हिं० गा] दे० 'गया'। उ०—राव अमर गो अमरपुर।—भूषण ग्रं०, पृ० ४६।

गोआर[1]—वि० [हिं० गँवार] दे० 'गँवार'। उ०—सखि हे कुमल कान्ह गोआर। विद्यापति, पृ० ११७।

गोआर[2]—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल, प्रा० गोआल] दे० 'ग्वाला'। उ०—मथुरा मरि गौ कृष्ण गोआरा।—कबीर बी०, पृ० २०२।

गोआरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० गँवार] गँवारी। मूर्खा। उ०—दूती भए जनु जनमए नारि, बिनु, भेले भेलिहु गोआरि।—विद्यापति, पृ० १३६।

गोइँजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह और पूँछ दोनों एक ही तरह के होते हैं। इसपर छिलका नहीं होता।

गोइँठा—संज्ञा पुं० [सं० गो+विष्ठा] ईंधन के लिये सुखाया हुआ गोबर। उपला। कंडा। गोहरा।

गोइँठौरा—संज्ञा पुं० [हिं० गोइँठा+औरा (प्रत्य०)] उपले जमा करने या रखने का स्थान। कंडौरा।

गोईंड़—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ=ग्राम] १. गाँव की सीमा। गाँव का घेरा। २. गाँव के पास की जमीन। ३. आस पास का स्थान।

गोईंड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गोइंड] दे० 'गोइंड़'।

गोइंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रा० गोविन्द] दे० 'गोविंद'[२]। उ०—हरि दर्शन परसे भया आनंद। नानक सर्व सखा गोइंद। -प्राण०, पृ० २२५।

गोइंदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोइंदह्] वह मनुष्य जो छिपे छिपे किसी बात का भेद लेने के लिये किसी के द्वारा नियत हो। गुप्त भेदिया। गुप्तचर। गुप्त रूप से समाचार पहुँचानेवाला।

गोइा—संज्ञा पुं० [हिं० गोय] दे० 'गोय'।

गोइन—संज्ञा सं० [?] एक प्रकार का मृग। उ०—हिरन रोझ लगना वन बसे। चीतर गोइन झाँख और ससे।—जायसी (शब्द०)।

गोइनका—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ी वैश्यों की एक जाति।

गोइयाँ—संज्ञा पुं० स्त्री० [हिं० गोहनियाँ] साथ में रहनेवाला। साथी। सहचर। उ०—रामलखन एक ओर भरत रिपुदवनलाल एक ओर भए। सरजुतीर सम सुखद भूमि थल गनि गनि गोइयाँ बाटि लए।—तुलसी (शब्द०)।

गोइयार—संज्ञा पुं० [देश०] खाकी रंग का एक छोटा पक्षी।

गोइलवाला—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

गोइं—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोइयाँ] दे० 'गोइयाँ'। उ०—सुनि निरुचै नैहर की गोईं। गरे लागि पदमावत रोईं।—जायसी (शब्द०)।

गोईं—वि० [हिं० जोई] बैलों की जोड़ी। उ०—पतली पेंडुली मोटी रान। पूँछ होय भुइँ में तरियान। जाके होवैं ऐसी गोईं। वाको तकै और सब कोई।—घाघ०, पृ० १०५।

गोऊ—वि० [हिं० गोना + ऊ (प्रत्य०)] चुरानेवाला। छिपानेवाला। हरण करनेवाला। उ०—श्याम बनी अब जोरी नीकी सुनहु सखी मान तौऊ हैं। सूर श्याम जितने रंग काछत युवती जन मन के गोऊ हैं।—सूर (शब्द०)।

गोकंटक—संज्ञा पुं० [सं० गोकण्टक] १. गोक्षुर। गोखरू। २. गाय का खुर (को०)। ३. गाय के खुर का निशान (को०)। ४. वह मार्ग जो बैलों के चलने के कारण जाने लायक न रह गया हो (को०)।

गोकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु। उ०—सुनि वशिष्ठ हिय हर्षित भयऊ। दोउ मिलि गोकन्या ढिग गयऊ।—विश्राम (शब्द०)।

गोकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। भानु। रवि। उ०—प्रणत गिरा गिरि ईश गवरि गौरी गिरिधारन। गोकर गायत्री सुगोधरन तिय गोहारन।— सूदन (शब्द०)।

गोकरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोकर्ण] दे० 'गोकर्ण'। उ०—गोकरन गइ ले जानिए जी।—कबीर रे०, पृ० ४४।

गोकर्ण[१]—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं का एक शैव क्षेत्र जो मालाबार में है। रावण, कुंभकरण आदि ने यहीं पर तप किया था। २. इस स्थान में स्थापित शिवमूर्ति का नाम। ३. नीलगाय। ४. खच्चर। ५. [स्त्री० गोकर्णी] एक प्रकार का साँप जिसके कान होते है। ६. बालिश्त। बित्ता। ७. काश्मीर देश के एक प्राचीन राजा का नाम। ८. शिव के एक गण का नाम। ९. धुंधकारी के भाई का नाम जिससे भागवत सुनकर धुंधकारी तर गया था। १०. एक मुनि का नाम। ११ गाय का कान। १२. नृत्य में एक प्रकार का हस्तक। १३. एक प्रकार का बाण (को०)।

गोकर्ण[२]—वि० [सं०] जिसके गऊ के से लंबे कान हों।

गोकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता। मुरहरी। चुरनहार।

विशेष—इसकी पत्तियाँ घीकुआर की तरह चिकनी और मोटी होती हैं और इसमें छोटे मीठे फल लगते हैं।

गोकल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोकुल] दे० 'गोकुल' उ०—ब्रह्म कहै सुर सकल सों, गोकल हरि अवतार।—पृ० रा०, २।८१।

गोकिराटा. गोकिराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका पक्षी [को०]।

गोकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हल। २. मूसल [को०]।

गोकील—संज्ञा पुं० [सं०] १. हल। २. मूसल।

गोकुंजर—संज्ञा पुं० [सं० गोकुञ्जर] १. खूब मोटा ताजा और बलिष्ट बैल। साँड़। १. शिव जी का नंदी गण।

गोकुंद—स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो दक्षिण की नदियों में पाई जाती है।

गोकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौओं का झुंड। गोसमूह। २. गौओं के रहने की जगह गोशाला, खरिक आदि। ३. एक प्राचीन गाँव।

विशेष—यह वर्तमान मथुरा से पूर्व दक्षिण की ओर प्रायः तीन कोस दूर जमुना के दूसरे पार था और इसे आजकल महावन कहते हैं। श्रीकृष्णचंद्र ने अपनी बाल्यावस्था यहीं विताई थी। आजकल जिस स्थान को गोकुल कहते हैं वह नवीन और इससे भिन्न है।

गोकुलनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

गोकुलपति—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

गोकुलराय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रा० गोकुल + हिं० राय] नंद। उ०—गोकुलराय की पोरि रच्यो है हिंडोरना।—नंद ग्र०, पृ० ३७४।

गोकुलस्थ[१]—वि० [सं०] १. गोकुलनिवासी। जो गोकुल ग्राम में रहता हो। २. गायों के समूह या बाड़े में स्थित (को०)।

गोकुलस्थ[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वल्लभी गोस्वामियों का एक भेद। २. तैलंग ब्राह्मणों का एक भेद। पद्माकर कवि इसी वंश के थे।

गोकुलाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] नंद। उ०—आपु याके प्रभु गोकुलाधिपति कहावत हो।—दो सौ० बावन०, भा० १, पृ० २५१।

गोकुलिक—वि० [सं०] १. कीचड़ में फँसी हुई गाय की सहायता न करनेवाला। २. ऐंचाताना। भेंगा [को०]।

गोकुलोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का नाम [को०]।

गोकुशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गोवध । गोहत्या [को०] ।

गोकृत—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर [को०] ।

गोकोस—संज्ञा पुं० [सं० गो+क्रोश] १. उतनी दूरी जहांतक गाय के बोलने का शब्द सुन पड़े । २. छोटा कोस । हलका कोस ।

गोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जोंक नामक कीड़ा । उ०—कच्छप मकर कूरम ईरग ग्राह गोक्ष शिशुमार । बिछलत पछिलत उच्छलत धावत सुरधुनि धार ।—विश्राम (शब्द०) ।

गोक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का दूध[को०] ।

गोक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोखरू नामक क्षुप या उसका फल । २. गाय का खुर (को०) ।

गोक्षुरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोक्षुर' [को०] ।

गोख—संज्ञा पुं० [सं० गोखा] दे० 'गोखा' । उ०—अटा अटारी बाहर मोखन, छज्जें छातन गोख झरोखन ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २. पृ० ७०५ ।

गोखग—संज्ञा पुं० [सं० गो+खग] थलचर । पशु । जानवर । उ०—गोखग, खेखग, वारि खग तीनों माह विसेक । तुलसी पीवैं फिरि चलें, रहैं फिरैं सँग एक ।—तुलसी (शब्द०) ।

गोखरू—संज्ञा पुं० [सं० गोखुर] १. एक प्रकार का क्षुप ।

विशेष—इसमें चने के आकार के कड़े और कँटीले फल लगते हैं । ये फल ओषधि के काम में आते हैं और वैद्यक में इन्हें शीतल, मधुर, पुष्ट, रसायन, दीपन और काश, वायु, अर्श और व्रणनाशक कहा है । यह फल बड़ा और छोटा दो प्रकार का होता है । कहीं कहीं गरीब लोग इसके बीजों का आटा बनाकर खाते हैं ।

पर्या०—त्रिकंटक । गोकंटक । त्रिपुट । कंटक फल । स्वादुकंटक । क्षुरक । वनश्रृंगाटक । श्वदंष्ट्रका । भक्ष्यकंटक । क्षुरंग ।

२. गोखरू के फल के आकार के धातु के बने हुए गोल कँटीले टुकड़े ।

विशेष—ये प्रायः मस्त हाथियों को पकड़ने के लिये उनके रास्ते में फैला दिए जाते हैं और जिनके पैरों में गड़ने के कारण हाथी चल नहीं सकते । शत्रुसेना की गति रोकने के लिये भी पहले ऐसे ही काँटे बिछाए जाते थे ।

३. गोटे और बादले के तारों से गूँथकर बनाया हुआ एक प्रकार का साज जो स्त्रियों और बालकों के कपड़ों में टाँका जाता है । ४. कड़े के आकार का एक प्रकार का आभूषण जो हाथों और पैरों में पहना जाता है । ५. तलवे, हथेली आदि में पड़ा हुआ वह घट्ठा जो काँटा गड़ने के कारण होता है ।

गोखा[1]—संज्ञा पुं० [सं० गवाक्ष] दीवार में बना हुआ वह छोटा छेद जिसमें से बाहर की चीजें देखी जायँ । मोखा । झरोखा । गौखा । उ० – झाँकि फिरी झँझँरीन झरोखन गोखनहूँ खिनहूँ सुख सैनन ।—देव (शब्द०) ।

गोखा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० गोखाल] गाय या बैल का कच्चा चमड़ा ।

गोखा[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाखून । नख [को०] ।

गोखी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोख+ई (प्रत्य०)] गोखा । छोटा गोखा । झरोखा । उ०—चावल वीणती गोखी बयठ ।—बी० रासो, पृ० ८४ ।

गोखुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौ का पैर । २. गौ के खुर का वह चिह्न जो उसके चलने से जमीन पर पड़ता है ।

गोखुरा—संज्ञा पुं० [हिं० गो+खुरा] करैत साँप ।

विशेष—इसका फन गौ के खुर के समान होता है, इसी से इसका यह नाम पड़ा ।

गोखुरू—संज्ञा पुं० [हिं० गोखरू] दे० 'गोखरू' ।

गोगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोगण] । गोयूथ । गायों का झुंड । उ०—सो फल सखिन सहित बन घन में । बल समेत डोलत गोगन में ।—नंद ग्रं०, पृ० २९३ ।

गोगा[1]†—संज्ञा पुं० [देश०] छोटा काँटा । मेख ।

गोगा[2]—संज्ञा पुं० [अ० ग़ौग़ह्] दे० 'गोगा' ।

गोगापीर—संज्ञा पुं० [हिं० गोगा+फ़ा० पीर] एक पीर या देवता जिसकी पूजा अधिकतर साधारण श्रेणी के हिंदू और मुसलमान राजपूताना, पंजाब आदि में करते हैं ।

विशेष—गोगा के विषय में भिन्न भिन्न प्रकार की कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कोई कहते हैं कि वह जाति का चौहान राजपूत था और बीकानेर की राजगढ़ तहसील के अंतर्गत ओड़ेरा में उत्पन्न हुआ था । माँ बाप से रूठकर वह जोगी हुआ और फिर मुसलमान हो गया । कहते हैं कि मुसलमान होते ही वह घोड़े और हथियारों समेत तौहर नामक स्थान में पृथ्वी में समा गया जहाँ उसकी समाधि अबतक बनी हुई है और भादों सुदी ८-९ को बड़ा मेला लगता है । दूर दूर से लोग आकर मनौती चढ़ाते हैं । कुछ लोग यह भी कहते हैं कि गोगा जब मुसलमान होकर अपनी स्त्री को भी मुसलमान करना चाहता था तब प्रतापसिंह नामक किसी राजा ने उसे पृथ्वी में चुनवा दिया । साँपों को दूर रखने के लिये गोगा की पूजा दूर दूर तक होती है ।

गोगृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जवान गाय जिसे केवल एक ही बछड़ा हुआ हो [को०] ।

गोगृह—संज्ञा पुं० [सं०] गोशाला [को०] ।

गोग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० गोग्रन्थि] १. सूखा हुआ गाय का गोबर । २. गोशाला । ३. गोजिह्विका [को०] ।

गोग्रास—संज्ञा पुं० [सं०] पके हुए अन्न का वह थोड़ा सा भाग जो भोजन, श्राद्धादिक के आरंभ में गौ के लिये अलग रख दिया जाता है ।

गोघरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो भड़ौंच और बरौदा में होती है ।

गोघात—संज्ञा पुं० [सं०] गोहत्या ।

गोघातक—संज्ञा पुं० [सं०] गोहिंसक । बूचर । कसाई ।

गोघाती—संज्ञा पुं० [सं० गोघातिन्] गोघातक ।

गोघृत संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्षा । २. गाय का घी [को०] ।

गोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौ को मारनेवाला । गौ का वध करनेवाला । २. अतिथि । मेहमान । पाहुना ।

विशेष—प्राचीन काल में किसी अतिथि के आने पर गोहत्या करने की प्रथा थी, इसी से 'अतिथि' को 'गोघ्न' कहने लगे।
३.गाय के लिये हानिकर या विनाशक (को०)।

गोचंदन—संज्ञा पुं० [सं० गोचन्दन] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चंदन।

गोचंदना—संज्ञा स्त्री० [सं० गोचन्दना] एक प्रकार की जहरीली जोंक।
विशेष—इसकी दुम कुछ मोटी और प्रायः दो भागों में बँटी सी मालूम होती है। सुश्रुत के अनुसार इसके काटने से कटा हुआ स्थान सूज आता है, शरीर सुन्न हो जाता है और मनुष्य को कै और मूर्च्छा होती है।

गोचना¹†—क्रि० स० [पू० हिं० अगोछना] रोकना। छेंकना। किसी वस्तु की गति रोकना।

गोचना²—संज्ञा पुं० [हिं० गो+चना] चना मिला हुआ गेहूँ।

गोचना³† क्रि० स० [देश०] किसी चीज को उछालकर फेंकना।

गोचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गोचना'।

गोचर¹—वि० [सं०] १. जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके। २. गायों द्वारा चरा हुआ (को०)। ३.रहनेवाला। विचरनेवाला (को०)। ४. पृथ्वी पर रहने या चलनेवाला (को०)। ५. गम्य। बोध्य (को०)।

गोचर²—संज्ञा पुं० [सं०] १.वह विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके। वह बात जो इंद्रियों की सहायता से जानी जा सके। जैसे,—रूप, रस, गंध, आदि। २. गौओं के चरने का स्थान। चरागाह। चरी। ३. देश। प्रांत। ४. ज्योतिष में किसी मनुष्य के प्रसिद्ध नाम की राशि के अनुसार गणित करके निकाले हुए ग्रह जो जन्मराशि के ग्रहों से कुछ भिन्न होते और स्थूल माने जाते हैं। ५. वासस्थान। निवासभूमि (को०)। ६. ज्ञानेंद्रियों के संचार का क्षेत्र या विषय जैसे श्रवणगोचर, नयनगोचर। ७. क्षितिज (को०)।

गोचरभूमि संज्ञा स्त्री० [सं० गोचर+भूमि] वह भूमि जो गायों के चरने के लिये होती है। चरागाह।

गोचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गो+चरा] १. भिक्षावृत्ति। २.हठयोग की पाँच मुद्राओं में से एक।

गोचर्म—संज्ञा पुं० [सं० गोचर्मन्] १. गौ का चमड़ा जिसपर कुछ विशेष कर्म आदि करने के समय बैठते हैं। २. जमीन, खेत आदि की एक प्राचीन काल की नाप, जो २१०० हाथ लंबी और इतनी ही चौड़ी होती है। इसे चरस या चरसा भी कहते हैं।

गोचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायों की तरह आहार के लिये घूमना (को०)।

गोचारक—संज्ञा पुं० [सं०] गाय चरानेवाला। ग्वाला (को०)।

गोचारण—संज्ञा पुं० [सं०] गाय चराना (को०)।

गोचारी—संज्ञा पुं० [सं० गोचारिन्] ग्वाला। गोचारक (को०)।

गोची—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की मछली। २.हिमालय की स्त्री का नाम।

गोछ—संज्ञा पुं० [हिं० गोंछ] दे० 'गोंछ'। उ०—मोछ गोछ सिर मुंडि विरूपी कीन्हेउ।—अकबरी, पृ० ३४४।

गोज¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोज़] अपानवायु। पाद।
क्रि० प्र०—करना।

गोज²—वि० [सं०] १. धरती से उत्पन्न (चावल आदि)। २. दूध से बनाया गया (पदार्थ) (को०)।

गोज³—संज्ञा पुं० १. दूध से बना हुआ एक पदार्थ। २. एक प्रकार के क्षत्रिय जो अभिषेक के अनधिकारी होते हैं (को०)।

गोजई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोहूँ+जव] गोहूँ और जौ मिला हुआ अन्न। जौ और गेहूँ की मिलावट।

गोजर¹—संज्ञा पुं० [सं०] बूढ़ा बैल।

गोजर²—संज्ञा पुं० [सं० खर्जू या हिं० गुजगुजा] कनखजूरा नाम का कीड़ा। शतपदी। एक विषैला कीड़ा जिसके बहुत से पाँव होते हैं।

गोजरा—संज्ञा पुं० [हिं० गोहूँ+जव] जौ मिला हुआ गेहूँ।

गोजल—संज्ञा पुं० [सं०] गोमूत्र (को०)।

गोजा¹†—संज्ञा पुं० [सं० गवाजन] १. छोटे पौधों का नया कल्ला जो सीधा निकलता है। २. सेहुँड़ का कल्ला जिसे भीतर पोला करके गलका आदि होने पर उँगली में औषधि के रूप में पहन लेते हैं।

गोजा²†—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गोजी] वह लकड़ी जो चरवाहे अपने साथ पशुओं को हाँकने के लिये रखते हैं।

गोजागरिक—संज्ञा पुं० [सं० गोसजागरिकम्] १. आनंद। प्रसन्नता। पाचक। रसोइया (को०)।

गोजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोसमष्टि। गायों की जाति (को०)।

गोजाह—संज्ञा पुं० [हिं० गोजा] दे० 'गोजा'—१.। उ०—जंगल गया और दातोन के लिये नीम का एक गोजाह लेकर लौटा।—काले०, पृ० १०।

गोजाही¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोजाह] नया कल्ला या कनखा।

गोजाही²—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोजा] १. गोजी। लाठी। २. लाठी का युद्ध। लाठियों की मारपीट।

गोजिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गोजिह्वा] गोभी या वनगोभी नाम की घास। वि० दे० 'गोभी'।

गोजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोभी या गरमगोभी नाम की घास जो औषधि के काम आती है। दे० 'गोभी'।
विशेष—कुछ लोग भूल से गावजवाँ को भी गोजिह्वा कहते हैं।

गोजी†—संज्ञा स्त्री० [सं० गवाजन] १. गौ हाँकने की लकड़ी। २. बड़ी लाठी। लठ्ठ।
मुहा०—गोजी चलना=लाठियों से मारपीट होना।
३. एक प्रकार का खेल जिसमें पटे, बनेठी आदि की तरह लकड़ी भाँजते हैं।
क्रि० प्र०—खेलना।

गोजीत—वि० [सं० गो+जित्] जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। जितेंद्रिय।

गोजीव—संज्ञा पुं० [सं०] गोपाल। ग्वाला [को०]।

गोझनवट†—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों की साड़ी का वह भाग जो सिर पर रहता है। अंचल। पल्ला।

गोझा—संज्ञा पुं० [सं० गुह्यक] [स्त्री० अल्पा० गोझिया, गुझिया] १. गुझिया नामक पक्वान्न जो मैदे में चूरमा या मेवा आदि भरकर बनता है। उ०—(क) गोझा बहुपूरग पूरे। भरि भरि कपूर रस चूरे।—सूर (शब्द०)। (ख) भए जीव बिन नाउत ओझा। बिष भइ पूरि काल भए गोझा।—जायसी (शब्द०)। २. लकड़ी की कील जो काठ के सामान में सरेस लगाकर ठोंकी या धँसाई जाती है और जिसका बाहर निकला हुआ भाग आरी से काटकर लकड़ी की सतह के बराबर कर दिया जाता है। गुज्झा। बँसकीला। ३. एक प्रकार की कँटीली घास। गुज्झा। ४. जेब। खीसा। खलीता।

गोट[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्टी] १. वह पट्टी या फीता जिसे किसी कपड़े के किनारे खूबसूरती के लिये लगाते हैं। मगजी। २. किसी प्रकार का किनारा।

क्रि० प्र०—**चढाना**।—**टाँकना**।—**लगाना**।

गोट[2]—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] गाँव। खेड़ा। टोली।

गोट[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठी] १. मंडली। गोष्ठी। २. वह सैर जो नगर के बाहर किसी बाग या उपवन आदि में हो और जिसमें खाने पीने, विशेषतः कच्ची रसोई आदि, का प्रबंध हो।

गोट[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोटी] दे० 'गोटी'।

गोट[5]—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] चौपड़ का मोहरा। नरद। गोटी।

गोट[6]—संज्ञा पुं० [हिं० गोल] तोप का गोला। उ०—जिन्ह के गोट कोट पर जाहीं। जेहि ताकहिं चूकहिं तेहि नाहीं।—जायसी (शब्द०)।

गोटबस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोटवस्ती] वह भूमि जिसपर गाँव बसा हो।

गोटा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० गोट] १. सुनहले या रुपहले बादले का बुना हुआ पतला फीता जो प्रायः सुंदरता के लिये कपड़े के किनारे पर लगाया जाता है।

यौ०—**गोटा पट्टा**।

२. धनियाँ की सादी या भूनी हुई गिरी। ३. छोटे छोटे टुकड़ों में कतरी और एक में मिली हुई इलायची, सुपारी और खरबूजे तथा बादाम की गिरी। ४. सूखा हुआ मल। कंडी। सुद्दा। ५. गुटिका। उ०—मंगल गोटा सुखि फलै मरकट सुगदन जान।—रज्जब०, पृ० १२।

गोटा[2]—संज्ञा पुं० [सं० गुटिका] १. चौपड़ का मोहरा। गोट। गोटी। उ०—अलक भुअंगिनि तेहि पर लोटा। हिय घर एक खेल दुइ गोटा।—जायसी (शब्द०)। २. तोप का गोला। उ०—औ जौं छुटहिं ब्रज कर गोटा। बिसरहिं भुगुति होइ सब रोटा।—जायसी (शब्द०)। ३. जटा। अलक। लट।

गोटिकाⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] दे० 'गुटिका'। उ०—सिद्ध गोटिका जा पहँ नाहीं। कौन धातु पूँछहु तेहि पाहीं।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२१।

गोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] १. कंकड़, गेरू, पत्थर इत्यादि का छोटा गोल टुकड़ा जिससे लड़के अनेक प्रकार के खेल खेलते हैं। २. हाथीदाँत, हड्डी, लकड़ी इत्यादि का बना हुआ चौपड़ खेलने का मोहरा। नरद।

विशेष—ये गोलियाँ गिनती में कुल १६ होती हैं जिनमें से ४ लाल, ४ हरे, ४ पीले और ४ काले रंग की रहती हैं।

मुहा०—**गोटी जमना या बैठना**=खेल के आरंभ में पौ आदि दाँव पड़ने पर नई गोटी का चलने योग्य बनना। **गोटी मरना**=खेल के मध्य में पीछे से दूसरे खिलाड़ी की किसी नई गोटी के उस स्थान पर आ जाने के कारण पहलेवाली गोटी का अपने स्थान से हटाकर खेल से अलग कर दिया जाना। **गोटी बैठना**=एक ही घर में एक खिलाड़ी की दो गोटियों का एक साथ रखा जाना। इस दिशा में पीछे से आनेवाली गोटियों का मार्ग रुक जाता है और वह उस समय तक आगे नहीं बढ़ सकती जबतक कि दोनों गोटियाँ अलग अलग घरों में न चल जायँ। इस प्रकार बैठी हुई गोटियाँ मारी भी नहीं जा सकतीं। **गोटी मारना**=खेल में किसी गोटी का चलने योग्य न रहना। किसी गोटी के खाने में विपक्षी की गोटी का आ जाना जिससे पहली गोटी खाने से हटा दी जाती है। **गोटी मारना**=चाल द्वारा किसी खाने से कोई गोटी हटाकर अपनी गोटी बैठाना। विपक्षी की गोटी को बेकाम करना। **गोटी लाल होना**=लाभ होना। प्राप्ति होना।

३. एक खेल जो ६, १५, १८ या इससे अधिक गोटियों से भूमि पर एक दूसरी को काटती हुई आड़ी और सीधी रेखाएँ बनाकर खेला जाता है।

यौ०—**गोटिया चाल**=दाँव पेंच की चाल। कुटिल नीति।

४. उपाय। युक्ति। तदबीर। लाभ का आयोजन। प्राप्ति का डौल। आमदनी की सूरत। जैसे,—वहाँ २००) की गोटी है, वे क्यों न जाएँगे।

मुहा०—**गोटी जमना या बैठना**=युक्ति चलना। उपाय या युक्ति सफल होना। प्राप्ति का डौल होना। आमदनी की सूरत होना। **गोटी बैठाना या जमाना**=युक्ति लगाना। तदबीर लड़ाना। जैसे,—उन्होंने अपनी गोटी बैठा ली है, अब वहाँ किसी की दाल न गलेगी।

गोटू—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घटिया चिकनी सुपारी।

गोठ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ] १. गोशाला। गोस्थान। उ०—जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइ गोठ महिसुरपुर जारे।—तुलसी (शब्द०)। २. गोष्ठी श्राद्ध। ३. सैर सपाटा। वि० दे० 'गोट'।

गोठणीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ] सखी। साथिन। सहेली। उ०—मारू म्हाँजी गोठणी, सैं मारूँदा सैर।—ढोला०, दू० ४३८।

गोठिⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोठ] दे० 'गोठ'। उ०—जहँ हुई गोठि भोजन नरिंद। तहँ हुते सकल सामंत बृंद।—पृ० रा०, ६।१०६।

गोठल†—वि० [सं० कुण्ठित] जिसकी धार खराब हो गई हो। कुंठित। कुंद।

गोड़†—संज्ञा पुं० [सं० गम, गो] १. पैर। पाँव। उ०—(क) गोड़ न मूड़ न प्राण अधारा। तामे भरमि रहा संसारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) मकर महीधव सो माखि कै मतंगज को ग्रस्यो गाँसि गाड़ो गोड़े गैवर चिकारचो है।—रघुराज (शब्द०)

मुहा०—गोड़ भरना=(१) पैर में महावर लगाना। (२) ब्याह की एक रसम जिसमें वर की माता या चाची उसे गोद में लेकर मंडप में बैठती है और नाइन उसके पैर में महावर लगाती है।

२ भूजों की एक जाति। ३. जहाज के लंगर की फाल। —(लश०)।

गोड़ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० गौड़] दे० 'गौड़'। उ०—खइराडचा आया खुरसाँण गोड चडचा गजकेसरी कछवाह कहुँ नीरवाण। —बी० रासो, पृ० १७।

गोड़इत—संज्ञा पुं० [हिं० गोंहन+ऐत (प्रत्य०)] १. गाँव में पहरा देनेवाला चौकीदार। २. वह हरकारा या कर्मचारी जो पुराने जमाने में एक गाँव की चिट्ठियाँ दूसरे गाँव में पहुँचाया करता था।

गोड़ई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़+ई (प्रत्य०)] करघे की वे लकड़ियाँ जो पाई करने में पाई के दोनों ओर खड़ी की जाती हैं। —(जोलाहे)।

गोड़गाव—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़+गाव] वह छोटी रस्सी जिसे गिरावँ की तरह बनाकर और पिछाड़ीवाली रस्सी के सिरों पर बाँधकर घोड़े के पिछले पैर में फँसा देते हैं।

गोड़धरावनⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़+धरावना] १. पैर पुजाना। २. अपनी महत्ता बढ़ाना। उ०—सिद्ध सिद्धई करैं पभुता कारन जाई। गोड़धरावन हेतु महंत उपदेस चलाई।—पलटू०, पृ० ७५।

गोड़न—संज्ञा पुं० [देश०] वह क्रिया जिसके अनुसार ऐसी मिट्टी से भी नमक बना लिया जाता है जो नोनी न हो।

गोड़ना¹—क्रि० स० [हिं० कोड़ना] मिट्टी की किसी भूमि को कुछ गहराई तक खोदकर उलट पुलट देना जिसमें वह पोली और भुरभुरी हो जाय। कोड़ना। जैसे,—खेत गोड़ना, अखाड़ा गोड़ना।

विशेष—जब पेड़ गोड़ना कहेंगे तब उससे तात्पर्य होगा पेड़ की जड़ की मिट्टी को जल देने के लिये खोदकर पोली और भुरभुरी करना। जैसे,—नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि तुलसी विहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िये।—तुलसी (शब्द०)।

गोड़ना²†—वि० [वि० स्त्री० गोड़नी] १. चौपट करनेवाला। नष्ट करनेवाला। २. गोड़नेवाला।

गोड़ली—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० कर्णाटी] वह पुरुष या स्त्री जो संगीत, विशेषतः नृत्य, में बहुत प्रवीण हो।

गोड़वाँस—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़=पैर+रस्सी] वह रस्सा जो पशुओं के पैर में फँसाकर खूँटे से बाँध दिया जाता है।

गोड़वाना—क्रि० अ० [हिं० गोड़ना का प्रे० रूप] गोड़ने का काम कराना।

गोड़वारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़+वारी(प्रत्य०)] पायताना। पैताना।

गोड़सँकर†—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़+साकर] पैरों में पहनने का स्त्रियों का एक गहना।

गोड़सिहा†—वि० [हिं० गोड़+सिहाना] ईर्ष्यालु। डाह करनेवाला। कुढ़नेवाला जलनेवाला।

गोड़हरा†—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़+हरा (प्रत्य०)] पैर में पहनने का कोई जेवर, विशेषतः कड़ा।

गोड़ाँगी¹†—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़+अँगिया] पायजामा।

गोड़ाँगी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़+सं० अङ्ग] जूता।

गोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़] पैर और जाँघ के बीच का जोड़। घुटना।

गोड़ा¹—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़=पैर] १. पलँग आदि का पाया। २. घोड़िया। उ०—चाँद सूर्य दोउ गोड़ा कीन्हो माभ दीप किय ताना।—कबीर (शब्द०)। ३. वह रस्सी जो खेतों में पानी चलाने की दौरी से बँधी रहती है और जिसे पकड़कर पानी उलीचते हैं।

गोड़ा²—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़ना] थाला। आलवाल।

क्रि० प्र०—बनाना।—मारना।—लगाना।

गोड़ाई—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़ना] १. गोड़ने की क्रिया। २. गोड़ने का भाव। ३. गोड़ने की मजदूरी।

गोड़ाना—क्रि० स० [हिं० गोड़ना का प्रे० रूप] गोड़ने का काम दूसरे से कराना।

गोड़ापाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ (=पाँव)+पाई (=ताने के सूत फैलाने का ढाँचा)] १. किसी मंडल में घूमने की क्रिया। पाई। मंडल देना। २. किसी स्थान पर बार बार आने की क्रिया। तानापाई।

गोड़ारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ाई] हरी घास जो अभी खोदकर लाई गई हो।

गोड़ारी²†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़(=पैर)+आरी (प्रत्य०)] १. पलंग आदि का वह भाग जिधर पैर रहता है। पैताना। २. जूता।

गोडाली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँडर] गाँडर दूब।

गोड़िया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ (=पैर) का अल्पा०] छोटा पैर। उ०—छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी नख जोती मोती मानो कमल दलन पर।—तुलसी (शब्द०)।

गोड़िया²—संज्ञा पुं० [हिं० गोटी=युक्ति] युक्ति लगानेवाला। तरकीब लड़ानेवाला।

गोड़िया³—संज्ञा पुं० [देश०] केवट। मल्लाह। उ०—गोड़िया पसारा जाल छूटे एक वाभा हो।—धरम०, पृ० ३६।

गोड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोटी] लाभ। फायदा। लाभ का आयोजन। प्राप्ति का डौल।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—गोडी जमना या लगाना=उद्योग में सफलता होना। फायदे के लिये जो चाल चली गई हो उसका सफल होना। लाभ होना। गोडी हाथ से जाना=कुछ हाथ न लगना। कुछ लाभ न होना।

गोड़ी३—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड] पैर। चरण।

मुहा०—गोडी आना या पड़ना=चरण पड़ना। किसी का किसी स्थान पर प्राप्त होना।

गोडुंबा—संज्ञा स्त्री० [सं० गोडुम्बा] तरबूज [को०]।

गोड़ैत—संज्ञा पुं० [हिं० गोडइत] दे० 'गोड़इत'। उ०—गोड़ैत और सिपाहियों की दौड़धूप चलने लगी।—आकाश०, पृ० १०८।

गोढ़ (पु)—वि० [सं० गूढ, हिं० गूढ़] दे० 'गूढ़'। उ०—ईण सू हँसि न वोलज्यो, राजनि उइ भीतरी गोढ़।—बी० रासो, पृ० ५१।

गोढ़ै (पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'खंड़े'। उ०—पंचोली हरिकिसन वड़ै पण, गोढ़ै इंद्रभांण साचै गुण।—रा० रू०, पृ० ३१६।

गोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. टाट का दोहरा बोरा जिसमें अनाज आदि भरा जाता है। गोन। २. एक पुरानी माप या तौल जो सुश्रुत के अनुसार दो सूप के बराबर होती थी। ३ झीना कपड़ा। छनना।

गोत—संज्ञा पुं० [सं० गोत्र] १. कुल। वंश। खानदान। उ०—राम भक्त वत्सले निज बानो। जाति गोत कुल नाम गनत नहि रंक होइ कै रानो।—सूर (शब्द०)। २. समूह। जत्था। गरोह। उ०— (क) सुनि यह स्याम विरह भरे।......... सखिन तव भुज गहि उठाए कहा बावरे होत। सूर प्रभु तुम चतुर मोहन मिलो अपने गोत।—सूर (शब्द०)। (ख) दिन रैनि मैं भावन के रचै गोत उदोत मई नित जान्यो परै।—हरिसेवक (शब्द०)।

गोतउचार (पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोत्र+उच्चार] दे० 'गोत्रोच्चार१'। उ०—दुहुँ नाउँ होइ गोत उचारा। करहिं पदुमिनी मंगलचारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१५।

गोतम—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि। २. एक मंत्रकार ऋषि।

गोतमक—संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध के अनुयायी। उ०—बुद्ध के धर्मप्रचार के समय भारतवर्ष में ६२ विविध संप्रदाय थे जिनमें मागंदिक, गोतमक आदि मुख्य थे।—आ० भा०, पृ० १४०।

गोतमपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शतानंद [को०]।

गोतमस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

गोतमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या का एक नाम।

गोतर (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोत्र'। उ०—ऐसे ढीठ ढिग ढुकौ ताके होइ तिहारी गोतर।—घनानंद, पृ० ३६०।

गोता—संज्ञा पुं० [अ० गोतह्] जल आदि तरल पदार्थों में डूबने की क्रिया। डुब्बी।

मुहा०—गोता खाना=(१) जल आदि तरल पदार्थों में डूबना। डुबकी लगाना। उ०—यह जग जीव थाह नहि पावै। बिन सतगुर वस गोता खावे। (२) धोखे में आना। फरेब में आना। गोता देना= (१) डुबाना। (२) धोखा देना। गोता मारना=(१) डुबकी लगाना। डूबना। (२) स्त्रीप्रसंग करना (अशिष्ट)। (३) बीच में अनुपस्थित रहना। नागा करना। गोता लगाना=दे० 'गोता मारना'।

यौ०—गोताखोर। गोतामार।

गोताखोर—संज्ञा पुं० [अ० गोताखोर] डुबकी लगानेवाला। डुबकी मारनेवाला।

विशेष—गोताखोर प्रायः कुएँ या तालाव आदि में गोता लगाकर उनमें से कोई गिरी हुई चीज लाते अथवा समुद्र आदि में गोता लगाकर सीप; मोती आदि निकालते हैं।

गोतामार—संज्ञा पुं० [हिं० गोता+मार] दे० 'गोताखोर'।

गोतिया—वि० [सं० गोत्र+इया (प्रत्य०)] [वि० स्त्री गोतिनी] अपने गोत्र का। गोती।

गोती—वि० [सं० गोत्रीय] अपने गोत्र का। जिसके साथ शौचाशौच का संबंध हो। गोत्रीय। भाई बंधु। उ०—विधु आनन पर दीरघ लोचन नासा मोती लटकत री। मानो सोम संग करि लीनो जानि आपनो गोती री।—सूर (शब्द०)।

गोतीत—वि० [सं०] जो ज्ञानेंद्रियों द्वारा न जाना जा सके। ज्ञानेंद्रियों द्वारा न जानने योग्य। अगोचर। उ०—भक्त हेतु नर विग्रह सुर वर गुन गोतीत।—तुलसी (शब्द०)। (ख) देव ब्रह्म व्यापक अमल सकल पर धर्महित ज्ञान गोतीत गुन वृत्ति हर्त्ता।—तुलसी (शब्द०)। (ग) अतुलित बल वीर्य विरक्ति वरं। गुण ज्ञान गिरा गोतीत परं।—विश्राम (शब्द०)।

गोतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] गोशाला [को०]।

गोतीर्थक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार फोड़े आदि चीरने का एक प्रकार जिसके अनुसार कई छेदोंवाले फोड़े चीरे जाते हैं।

गोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. संतति। संतान। २. नाम। ३. क्षेत्र। वर्त्म। ४. राजा का छत्र। ५. समूह। जत्था। गरोह। ६. वृद्धि। बढ़ती। ७. संपत्ति। धन। दौलत। ८. पहाड़। ६. वंधु। भाई। १०. एक प्रकार का जातिविभाग। ११. वंश। कुल। खानदान। १२. कुल या वंश की संज्ञा जो उसके किसी मूल पुरुष के अनुसार होती है।

विशेष—ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य द्विजातियों में उनके भिन्न भिन्न गोत्रों की संज्ञा उनके मूल पुरुष या गुरु ऋषियों के नामों के अनुसार है।

गोत्रकर—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्रप्रवर्तक ऋषि। उ०—ये सारे गोत्रकर ऋषि गंगा के आसपासवाले प्रदेश में १५०० ई० पू० के आसपास दासता और सामंतवादी युग में हुए थे।—भा० इ० रू०, पृ० २०।

गोत्रकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० गोत्रकर्तृ] गोत्रप्रवर्तक [को०]।

गोत्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्रप्रवर्तक [को०]।

गोत्रकारी—संज्ञा पुं० [सं० गोत्रकारिन्] गोत्र प्रवर्तक [को०]।

गोत्रज—वि० [सं०] एक ही गोत्र में उत्पन्न एक ही पूर्वज की संतान। एक ही वंशपरंपरा का।

विशेष—धर्मशास्त्रों के अनुसार गोत्रज दो प्रकार के होते हैं—गोत्रज सपिंड और गोत्रज समानोदक। सात पीढ़ी के अंदर जिसके एक ही पूर्वज हों वे गोत्रज सपिंड और सात से ऊपर चौदह पीढ़ियों तक जिनके पूर्वज एक हों वे गोत्रज समानोदक कहलाते हैं।

गोत्रपट—संज्ञा पुं० [सं०] वंशवृक्ष [को०]।

गोत्रप्रवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्र चलानेवाला। गोत्रकार। गोत्र का मूल पुरुष [को०]।

गोत्रभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का भेदन करनेवाला इंद्र [को०]।

गोत्रसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत की पुत्री। पार्वती। उ०—वदंत देव अदेव सर्व मुनि गोत्रसुता अरधंग धरी है।—केशव (शब्द०)।

गोत्रस्खलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी को गलत नाम से पुकारना। २. किसी का नाम लेने में गलती करना [को०]।

गोत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायों का समूह। २. पृथ्वी [को०]।

गोत्री—वि० [सं० गोत्रिन्] समान गोत्रवाला। गोत्रज। गोतिया।

गोत्रीय—वि० [सं०] गोत्रवाला। अमुक गोत्र का [को०]।

गोत्रोच्चार—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाह के समय वर वधू के गोत्र का दिया जानेवाला परिचय। २. (हास्य व्यंग्य में प्रयुक्त) किसी के पूर्वजों तक को दी जानेवाली गालियाँ (को०)।

गोथरा—वि० [अनु० या हिं० गोठल] मुंडी धारवाला। कुंद।

गोथल—संज्ञा पुं० [सं० गोस्थल] खरिक। गायों के बाँधने का स्थान। गोठ। उ०—गोकुल गोयल घोष व्रज खरग कहत पुनि नाम। अनेकार्थ०, पृ० २६।

गोदंती¹—वि० [सं० गोदन्त] कच्चा। सफेद।

विशेष—इस अर्थ में यह विशेषण केवल हरताल के लिये आता है।

गोदंती²—वि० [सं० गोदन्त] एक प्रकार की मणि या बहुमूल्य पत्थर।

गोदंड(पु)—संज्ञा पुं० [?] गुबरैला। उ०—गोदंडा ज्यों मारग आगे पोज बिलाए।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८७५।

गोद¹—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड] १. वह स्थान जो वक्षस्थल के पास एक या दोनों हाथों का घेरा बनाने से बनता है और जिसमें प्रायः बालकों को लेते हैं। उत्संग। कोरा। ओली। उ०—व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद। सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठाना।—लेना।

मुहा०—**गोद का**=(१) छोटा बालक। बच्चा। (२) बहुत समीप का। पास का। जैसे—गोद की चीज छोड़कर इतनी दूर जाना ठीक नहीं। **गोद बैठना**=दत्तक बनना। **गोद लेना**=दत्तक बनाना। **गोद देना**=अपने लड़के को दूसरे को दत्तक बनाने के लिये देना।

यौ०—**गोदभरी**=बाल बच्चोंवाली स्त्री। **गोद में**=पास में। अत्यंत समीप। जैसे,—गोद में लड़का शहर में ढिंढोरा।

२. स्त्रियों की साड़ी का वह भाग जो अंचल के पास रहता है। अंचल। उ०—शबरी कटुक बेर तजि मीठे भावि गोद भर लाई। जूठे की कछु शंक न मानी भक्ष किए सत भाई।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पसारना।—भरना।

मुहा०—**गोद पसारकर विनती करना या माँगना**=अत्यंत अधीरता से माँगना या प्रार्थना करना। उ०—इह कन्या मैं स्याम को माँगौं गोद पसारि।—नंद ग्रं० पृ० १९४। **गोद भरना**=(१) विवाह आदि शुभ अवसरों पर अथवा किसी के आने जाने के समय सौभाग्यवती स्त्री के अंचरे में नारियल आदि पदार्थ देना जो शुभ समझा जाता है। (२) संतान होना। औलाद होना।

गोद²—संज्ञा पुं० [सं०] मस्तिष्क। दिमाग [को०]।

गोदगुदालो—संज्ञा पुं० [देश०] गुलू नाम का पेड़।

गोदनशीं—वि० [हिं० गोद+फ़ा० नशीं (प्रत्य०)] गोद लिया हुआ। दत्तक।

गोदनशीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोद+फ़ा० नशीनी (प्रत्य०)] गोद लेने का कार्य। गोद लिया जाना।

गोदनहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदनहारी] दे० 'गोदनहारी'।

गोदनहरा—संज्ञा पुं० [हिं० गोदना+हारा (प्रत्य०] टीका लगानेवाला। माता छापनेवाला।

गोदनहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदना+हारी (प्रत्य०)] कंजड़ या नट जाति की स्त्री जो गोदना गोदने का काम करती है।

गोदना¹—क्रि० स० [हिं० खोदना+गड़ाना] १. किसी नुकीली चीज को भीतर चुभाना। गड़ाना। २. किसी कार्य के लिये वार वार जोर देना। कोई काम करने के लिये वार वार जोर देना। कोई काम कराने के लिये पीछे पड़ना। ३. छेड़ छाड़ करना। चुभती या लगती हुई बात कहना। ताना देना। ४. हाथी को अंकुस देना। † ५. गोड़ना। ६. भद्दी लिखाई लिखना।

गोदना²—संज्ञा पुं० १. तिल के आकार का एक विशेष प्रकार का काला चिह्न जो कंजड़ या नट जाति की स्त्रियाँ लोगों के शरीर में नील या कोयले के पानी में डूबी हुई सूइयों से पाछकर बनाती हैं। इसमें पहले दो एक रोज तक पीड़ा होती है पर पीछे वह चिह्न स्थायी हो जाता है।

विशेष—भारत में अनेक जाति की स्त्रियाँ गाल, ठोढ़ी, कलाई तथा अन्य अंगों पर सुंदरता के लिये इस प्रकार के चिह्न बनवाती हैं। बिहार प्रांत की स्त्रियाँ तो अपने शरीर पर इस क्रिया से बेल बूटों तक के चिह्न बनवाती हैं।

क्रि० प्र०—गोदना।—गोदाना।

२. वह सूई जिसकी सहायता से शीतला रोग से रक्षित रहने के लिये बालकों को टीका लगाते हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. वह ओजार जिससे खेत गोड़ते हैं।

गोदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदना] १. वह सूई जिससे गोदना गोदा जाता है। २. चुभाने, गड़ाने या गोदने की कोई चीज।

गोदर(पु)—वि० [हिं० गदराना या गद्दर] १. गदराया हुआ। गद्दर। २. पूर्णतः यौवनप्राप्त। यौवन से परिपूर्ण।

गोदा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोदावरी नदी। उ०—पंचवटी गोदाहि प्रनाम करि। कुटी दाहिनी लाई।—तुलसी (शब्द०)। २. गायत्रीस्वरूपा महादेवी।

गोदा[२]—संज्ञा पुं० [देश०] कटवाँसी बाँस।

गोदा[३]—संज्ञा पुं० [हिं० गोंजा] १. पेड़ों की नई शाखा। ताजी डाल। २. किसी पेड़ की लंबी और पतली टहनी।

क्रि० प्र०—बनाना।—मारना।

गोदा[४]—संज्ञा पुं० [हिं० घौद] बड़, पीपल या पाकर के पक्के फल। गूलर, पिपरी इत्यादि।

क्रि० प्र०—खाना।—चुनना।—बीनना।

गोदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौ को विधिवत् संकल्प करके ब्राह्मण को दान करने की क्रिया।

विशेष—इसका विधान साधारण दान, पुण्य, रोग, विवाह आदि संस्कार अथवा किसी प्रकार के प्रायश्चित्त के अवसर के लिये है।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।

२. एक संस्कार जो विवाह से पहले ब्राह्मण को १६वें वर्ष, क्षत्रिय को २२वें वर्ष और वैश्य को २४वें वर्ष करना आवश्यक है। इसे केशांत या गोदानमंगल भी कहते हैं। उ०—पुनि करवाय मुनिन गोदाना। मंगल मंडित वेद विधाना।—रघुराज (शब्द०)।

गोदाम—संज्ञा पुं० [अं० गोडाउन] वह बड़ा सुरक्षित स्थान जहाँ बहुत सा माल असबाब रखा जाता हो।

विशेष—साधारणतः बहुत बड़े बड़े व्यापारी अपना सारा माल दूकानों में न रख सकने के कारण एक बड़ा स्थान भी ले लेते हैं जिसमें उनका अधिकांश थोक माल पड़ा रहता है।

गोदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमीन खोदने की कुदाल। २. हल [को०]।

गोदारुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुदाल। २. हल [को०]।

गोदावरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण भारत की एक नदी जो नासिक के पास से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। २. मदरास का एक जिला।

गोदि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोद] दे० 'गोद'। उ०—तब इन छल करि श्री ठाकुर जी को अपनी गोदि में लिए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १३६।

गोदी[१]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बड़ी नदी या समुद्र में वह घेरा हुआ स्थान जहाँ जहाज मरम्मत के लिये या तूफान आदि के उपद्रव से रक्षित रहने के लिये रखे जाते हैं। डाक।—(लश०)।

यौ०—गोदी मजदूर=जहाजों पर माल चढ़ाने उतारनेवाले मजदूर।

गोदी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोद] दे० 'गोद'।

गोदी[३]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बबूल।

विशेष—यह बरार, पंजाब और अवध में होता है। यह नहरों के किनारे के बाँधों पर प्रायः लगाया जाता है।

गोदुह—संज्ञा पुं० [सं०] गाय दुहनेवाला। ग्वाला। उ०—बल्लव गोदुह गोप पुनि कहि अभीर गोपाल।—अनेकार्थ०, पृ० २६।

गोदूनिका—संज्ञा स्त्री० [देश०] बेंत की जाति का एक वृक्ष।

विशेष—यह पूर्वीय बंगाल और आसाम आदि प्रदेशों में बहुत होता है। इसकी चिकनी और चमकीली टहनियों से शीतलपाटी बनाई जाती है जो दूर दूर भेजी जाती है।

गोदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय का दोहन। २. गाय का दूध। ३. गाय के दुहने का समय [को०]।

गोदोहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय के दुहने की क्रिया। गाय दुहा जाना। २. गाय के दोहन का काल या समय [को०]।

गोदोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बरतन जिसमें गाय का दूध दुहा जाता है। दोहनी [को०]।

गोद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] गाय या बैल का मूत्र। गोमूत्र।

गोध—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधा] गोह नामक जंगली जानवर।

गोधन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौओं का समूह। गौओं का झुंड। उ०—कमल नयन घनश्याम मनोहर सब गोधन को भूप।—सूर (शब्द०)। २. गौ रूपी संपत्ति। उ०—गोधन, गजधन, बाजिधन और रतनधन खान। जब आवै संतोषधन सब धन धूरि समान।—तुलसी (शब्द०)। ३. एक प्रकार का तीर जिसका फल चौड़ा होता है।

गोधन[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोवर्द्धन] गोवर्द्धन पर्वत। उ०—अलि गोधन पूजा को उमह्यो ब्रज मोहिं चढ़ी तप सोगन तें।—बेनी (शब्द०)।

गोधन[३]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

विशेष—यह पक्षी सारे एशिया, युरोप और अफ्रीका में पाया जाता है। इसकी चोंच लाल, सिर भूरा और पैर हरे होते हैं। यह प्रायः जलाशयों के निकट रहता और ५ से ६ तक अंडे देता है।

गोधर—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

गोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं की भाँति समागम करना। समागम में अपने पराए का कुछ विचार न रखना।

गोधाँ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोधन] गोधन। बैल। उ०—झूसर झालर झल्लहीं गोधाँ गावड़ियाँह।—बाकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १५।

गोधा[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोह नामक जंतु।

गोधा[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोधन] गोधन। बैल। उ०—मेरे गाय गोधा अन्न। मेरे ऊँट घोड़ा धन्न।—राम० धर्म०, पृ० १६६।

गोधापदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोधापदी' [को०]।

गोधापदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूसली नाम की ओषधि। २. हंसपदी नाम की लता।

गोधावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोधापदी'।

गोधास्कंध—संज्ञा पुं० [सं० गोधास्कन्ध] एक प्रकार का बदबूदार खैर। विट् खदिर [को०]।

गोधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. माथा। ललाट। २. मगर। घड़ियाल [को०]।

गोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छिपकली। २. मादा घड़ियाल [को०]।

गोधिकात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का जानवर जो नर साँप और मादा गोह के संयोग से उत्पन्न होता है। २. गोह के आकार का एक प्रकार का छोटा जानवर जो पेड़ के खोंड़रे

में रहता है और जिसका शब्द बहुत कठोर होता है। ३. एक प्रकार का गिरगिट।

गोबी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधूम] एक प्रकार का गेहूँ।

विशेष—यह दक्षिण भारत में अधिकता से होता है और इसकी भूसी जल्दी नहीं छूटती। इसमें विशेषता यह है कि यह खरीफ की फसल है और कहीं कहीं यह साल में दो बार भी बोया जाता है। यह बहुत ही साधारण भूमि में भी, जहाँ और गेहूँ नहीं हो सकता, उत्पन्न होता है। ऊपरी छिलका बहुत कड़ा होने के कारण इसकी फसल को पक्षी भी हानि नहीं पहुंचा सकते।

गोधुम—संज्ञा पुं० [सं०] गोधूम। गेहूँ [को०]।

गोधूम—संज्ञा पुं० [सं०] १. गेहूँ। २. नारंगी।

गोधूमक—संज्ञा पुं० [सं०] गेहुग्रन या गोहुग्रन नाम का साँप।

गोधूमचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ का ग्राटा [को०]।

गोधूमसार—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ का सत्त [को०]।

गोधूरक(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधूलि] दे० 'गोधूलि'। उ०—चहुग्राँन रत्त तोरन समय, लगन गोधरक संधयौ।—पृ० रा०, १४।२२

गोधुलक(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधूलि] दे० 'गोधूलि'। उ०—चैत सुकल पख तीज, लगन गोधुलक रज्जिय।—पृ० रा०, १६। १४।

गोधूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह समय जब जंगल से चरकर लौटती हुई गायों के खुरों से धूलि उड़ने के कारण धुँधली छा जाय। संध्या का समय।

विशेष—(क) ऋतु के अनुसार गोधूलि के समय में कुछ अंतर भी माना जाता है। हेमंत और शिशिर ऋतु में सूर्य का तेज बहुत मंद हो जाने और क्षितिज में लालिमा फैल जाने पर, बसंत और ग्रीष्म ऋतु में जब सूर्य आधा ग्रस्त हो जाय, और वर्षा तथा शरत् काल में सूर्य के बिलकुल ग्रस्त हो जाने पर गोधूलि होती है। (ख) फलित ज्योतिष के अनुसार गोधूलि का समय सब कार्यों के लिये बहुत शुभ होता है और उसपर नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, वार, योग और जामित्र ग्रादि के दोष का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त इस संबंध में ग्रनेक विद्वानों के और भी कई मत हैं।

गोधूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोधूलि'।

गोधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] सवत्सा दुधारू गाय (को०)।

गोधेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षक। २. अभिभावक [को०]।

गोध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़। पर्वत।

गोनंद—संज्ञा पुं० [सं० गोनन्द] १. कार्तिकेय के एक गण का नाम। २. अनेक पुराणों के अनुसार एक देश।

गोनंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० गोनन्दा] पार्वती। दुर्गा [को०]।

गोनंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोनन्दी] सारस की मादा। सारसी [को०]।

गोन¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गोणी] १. टाट, कंबल या चमड़े ग्रादि की बनी हुई वह खुरजी जिसमें दो ओर ग्रनाज ग्रादि भरने का स्थान होता है और जो भरकर बैलों की पीठ पर रखी जाती है। लदने पर इसका एक भाग बैल के एक तरफ और दूसरा दूसरी तरफ रहता है। उ०—भरी गोन गुड़ तजै तहाँ से साँझै भागै।—पलटू०, भा० १, पृ० १०७। २. साधारण बोरा। खास बोरा। ३. टाट का कोई थैला।—(लश०)। ४. ग्रनाज की तौल जो १६ मानी (२५६ सेर) की होती है।

गोन²—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण] मूँज ग्रादि की बनी हुई वह रस्सी जिसे नाव खींचने के लिये मस्तूल में बाँधते हैं।

गोन³—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

विशेष—यह थूथी की तरह की होती है और इसका साग बनता है।

गोन⁴(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गमन, प्रा० गमण,] दे० 'गमन'। उ०—करी सेन गोनं मिलानं दवानं। वढ़ी बेय बाजू सरित्ता कि जानं।—पृ० रा०, १२। १८०।

गोनरखा—संज्ञा पुं० [हिं० गोन=रस्सी+रखना] नाव का वह मस्तूल जिसमें गोन बाँधकर उसे खींचते हैं।

गोनरा—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्रा] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की लंबी घास। वि० दे० 'गोंदरा'।

विशेष—यह पशुओं के चारे के काम में ग्राती है। इससे चटाई भी बनती है जो बहुत मुलायम और गरम होती है।

गोनर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. नागरमोथा। २. सारस पक्षी। ३. एक प्राचीन देश जहाँ महर्षि पतंजलि का जन्म हुग्रा था। ४. महादेव।

गोनर्दीय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभाष्यकार पतंजलि [को०]।

गोनस—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का साँप। २. वैक्रांत मणि।

गोनसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय का मुँह [को०]।

गोना¹(पु)—क्रि० स० [सं० गोपन] छिपाना। लुकाना। पोशीदा करना। उ०—(क) मुकुलित कच तन धनिक ओट ह्वै अँसुवन चीर निचोवति। सूरदास प्रभु तजी गर्व से भए प्रेम गति गोवति।—सूर (शब्द०)। (ख) ऐसिउ पीर बिहँसि तेई गोई। चोर नारि जिमि प्रकट न रोई।—तुलसी (शब्द०)।

गोना²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गौना] द्विरागमन। गौना।

गोनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। साँड़। २. भूमिपति। ३. पशुपालक। गोपालक [को०]।

गोनाय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्वाला [को०]।

गोनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] वृक। भेड़िया [को०]।

गोनास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोनस' [को०]।

गोनासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोनसा। गाय या बैल का मुँह [को०]।

गोनिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण, हिं० कोना+इया (प्रत्य०)] बढ़ई, लोहार और राज ग्रादि का एक औजार जिससे वे किसी दीवार या कोने की सिधाई जाँचते हैं। साधन।

विशेष—यह समकोण होता है और बिलकुल लकड़ी या लोहे का ग्रथवा आधा लकड़ी का और आधा लोहे का बनता है।

गोनिया²—संज्ञा पुं० [हिं० गोन=बोरा+इया (प्रत्य०)] स्वयं अपनी पीठ पर या बैलों की पीठ पर लादकर बोरे ढोनेवाला।

गोनिया[३]—संज्ञा पुं० [हिं० गोन=रस्सी+इया (प्रत्य०)] रस्सी बाँधकर नाव खींचनेवाला।

गोनिष्ठ—वि० [सं०] इंद्रियासक्त। उ०—सहज समाधि अडिग मन आसन गोनिष्ठन के दहत उपाद।—राम०, धर्म०, पृ० ३४२।

गोनिष्यंद—संज्ञा पुं० [सं० गोनिष्यन्द] गोमूत्र [को०]।

गोनी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० गोणी] १.टाट का थैला। बोरा। २. पटुआ। सन। पाट।

गोनी[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] पकाए हुए कत्थे का वह गोला जो राख की सहायता से उसका जल सुखा लेने के बाद बनाया जाता है।—(तंबोली)।

गोनी[३]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक प्रकार का साग जो चैती की फसल के साथ होता है।

विशेष—इसमें चार से बारह तक गोफे पूती से निकलते हैं जो भीतर से पोले होते हैं।

गोप[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौ की रक्षा करनेवाला। २. ग्वाला। अभीर। अहीर। ३. गोशाला या गोष्ठ का अध्यक्ष या प्रबंध करनेवाला। ४. भूपति। राजा। ५. रक्षा या उपकार करनेवाला। ६. एक गंधर्व का नाम। ७.मुर या बोल नाम की ओषधि। ८. गाँव का मुखिया या पटवारी जो गाँव के हिस्सों और लोगों के स्वत्व आदि का लेखा रखता था।

गोप[२]—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फ] सिकरी या जंजीर के आकार का गले में पहनने का एक प्रकार का आभूषण, जो पतले तारों को गथकर फुलावदार बनाया जाता है।

गोप‡[३]Ⓟ—वि० [सं० गुप्त] छिपा हुआ। गुप्त। उ०—(क) छा छाया जस बुंद अलोपू। ओठईं सों आनि रपा करि गोपू।—जायसी (शब्द०)।

गोपक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गोपिका] १. गोप। २. अनेक गाँवों का स्वामी या अध्यक्ष। ३. रक्षा करनेवाला। रक्षक ४. छिपानेवाला [को०]।

गोपकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपवाला। गोपी। ग्वालिन [को०]।

गोपचाप—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष [को०]।

गोपज—संज्ञा पुं० [सं०] गोप से उत्पन्न। गोप जाति का पुरुष। उ०—देते लेते सकल व्रज की गोपिका गोपजों के, जी में होता उदय, यह था क्यों नहीं श्याम आए।—प्रिय०, पृ० ५०।

गोपजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोपी। २. राधिका [को०]।

गोपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २.विष्णु। ३. श्रीकृष्ण। ४. सूर्य। ५. राजा। पृथ्वीपति। ६.वृष। साँड़। बैल। ७. ऋषभ नाम की ओषधि। ८. नौ उपनंदों में से एक। ९. ग्वाल। गोपाल। आभीर। १०. वाचाल। मुखर।

गोपथ—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का एक ब्राह्मण।

गोपद—संज्ञा पुं० [सं० गोष्पद] १. गौओं के रहने का स्थान २. पृथ्वी पर पड़ा हुआ गाय के खुर का चिह्न। उ०—(क) सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रघुबर की लीला ललित, मैं बंदौं सिर नाय। जे गावत गोपद सरिस जन भवनिधि लँघि जाय।—रघुराज (शब्द०)।

यौ०—गोपदजल=गाय की खुर के गड्ढे में आनेवाला जल। उ०—गोपद जल बूड़हिं घटजोनी।—मानस, २।२३१।

गोपदल—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़।

गोपदी—वि० [सं० गो+पद+ई (प्रत्य०) अथवा सं० गोष्पदी] गाय के खुर के समान, अत्यंत छोटा। उ०—खैंचत दुशासन बसन बाढ्यो वेप्रमाण कीन्हों निज दासी को समुद्र गोपदी।—रघुराज (शब्द०)।

गोपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. छिपाव। दुराव। २. छिपाना। लुकाना। ३. रक्षा। ४. व्याकुलता। ५.दीप्ति। ६.तेजपत्ता नाम का मसाला। ७.निंदा। भर्त्सना [को०]। ८. खतरा। आतंक (को०)। ९. हड़बड़ाहट। जल्दी [को०]। १०. ईर्ष्या (को०)। ११. घबड़ाहट। परेशानी (को०)।

गोपनाⓅ†—क्रि० स० [सं० गोपन] छिपाना। लुकाना।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

गोपनीय—वि० [सं०] १.छिपाने योग्य। छिपाने लायक। गोप्य। २.रक्षणीय। रक्षा के योग्य।

गोपभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] कुईं की जड़ या भसींड [को०]।

गोपयिता—वि० [सं० गोपयितृ] १. गोपनकर्ता। २.रक्षक (को०)।

गोपराइⓅ—वि० [सं० गोपराज] गोपेश। गोपों का स्वामी। उ०—राजत गोपराइ तहँ नंद।—नंद ग्रं०, पृ० २२४।

गोपराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] ग्वालियर प्रांत का प्राचीन नाम।

गोपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थानविशेष।

विशेष—कहते हैं, यहाँ पाणिनि ने तपस्या की थी और शिव को प्रसन्न कर उनसे वर प्राप्त किया था।

गोपशु—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेध की गाय [को०]।

गोपसुत—संज्ञा पुं० [सं०] गोपपुत्र। श्रीकृष्ण। उ०—गोपीनाथ गोविंद गोपसुत गुनी गीतप्रिय गिरिवरधर रसाल के।—घनानंद, पृ०, ३६५।

गोपांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० गोपाङ्गना] १.गोप जाति की स्त्री। २ अनंतमूल नाम की ओषधि।

गोपा[१]—वि० [सं०] १.लुप्त करनेवाला। छिपानेवाला। २. नाशक।

गोपा[२]—संज्ञा स्त्री० १.गाय पालनेवाली, अहीरिन। ग्वालिन। २. श्यामा नाम की लता। ३.महात्मा बुद्ध की स्त्री का नाम। इसका दूसरा नाम यशोधरा भी है।

गोपाचल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्वालियर का प्राचीन नाम। उ०—गोपाचल ऐसे गढ़, राजा रामसिंघ जू से।—केशव ग्रं०, पृ० १३२। २. ग्वालियर के निकट का एक पहाड़।

गोपानसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] टेढ़ी शहतीर जो छप्पर को टेकने के काम आती है। वलभी (को०)।

गोपायक—वि० [सं०] रक्षक। रखवाला [को०]।

गोपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोपन। रक्षण [को०]।

गोपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ गौ का पालन पोषण करनेवाला २. अहीर। ग्वाला।

विशेष—पराशर के मत से 'गोपाल' एक संकर जाति है जिसकी उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और शूद्रा माता से है। ब्राह्मणों के लिये इसका अन्न भोज्य कहा गया है।

३.श्रीकृष्ण। ४. राजा। ५. इंद्रियों का पालनेवाला, मन। एक छंद जिसका प्रत्येक चरण १५ मात्राओं का होता है और ८ और ७ पर यति होती है। जैसे,—दया वेलि की ललित निकुंज। गुंजत सुख पक्षिन के पुंज। गुरु की हानि मिठाई माँह। पापरचित भोजन की चाह। इसको 'भुजंगिनी' भी कहते हैं।

गोपालक - संज्ञा पुं० [सं०] १.ग्वाला। गोपाल। अहीर।

गोपालकक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार पश्चिमभारत का एक प्राचीन प्रदेश।

गोपालककर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा (को०)।

गोपालतापन—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् जिसकी टीका शंकराचार्य तथा और कई विद्वानों ने की है।

गोपालतापनीय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोपालतापन'।

गोपालदारक—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक आचार्य का नाम।

गोपालमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० गोपालमंदिर] वल्लभ संप्रदाय के अनुयायियों का एक मंदिर।

गोपालि—संज्ञा पुं० [सं०] १.एक प्रवर। २.शंकर।

गोपालिका - संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्वालिन। अहीरिन। २ सारिवा नाम की ओषधि। ग्वालिन नाम का कीडा। गिजाई। घिनौरी।

गोपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.गौ पालनेवाली। २.कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

गोपाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कातिक शुक्ला अष्टमी।

विशेष—इसी दिन श्रीकृष्ण ने गोचारण आरंभ किया था। इस दिन गोपूजन, गोग्रास, गोप्रदक्षिणा, गौओं के पीछे चलना इत्यादि कर्म करने का काफी माहात्म्य कहा गया है। इस दिन गायों को खिलाने और सजाने की भी रीति है।

गोपि(पु)—वि० [सं० गोप्य] गुप्त। गायब। उ०—(क) गई गोपि ह्वै भक्ति आगिली काढ़े प्रगट पुरातम खास।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १५३। (ख) दे० गोप्य। उ०—गोपि कहूँ सो अगोपि कहा।—सुंदर ग्रं, भा० २, पृ० ६१७।

गोपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोप की स्त्री। गोपी। २.अहीरिन। ३. छिपानेवाली।

गोपित- वि० [सं०] छिपा हुआ। गुप्त। २. रक्षित।

गोपिनी[1]—वि० स्त्री० [सं०] छिपानेवाली। उ०—गोपिनि भक्ति विलोपिनि ज्ञान की तैसि विराग पै कोपिनि गाई।—रघुराज (शब्द०)।

गोपिनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्यामालता। २. तांत्रिकों की एक नायिका।

गोपिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोफन] गोफना। ढेलवाँस।

गोपिल—वि० [सं०] १. छिपानेवाला। २. रक्षा करनेवाला (को०)।

गोपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्वालिनी। गोपपत्नी। २. व्रज की गोपजातीय वे स्त्रियाँ या कन्याएँ जो श्रीकृष्ण के साथ प्रेम रखती थीं, और जिन्होंने उनके साथ बालक्रीड़ा तथा अन्य लीलाएँ की थीं। ३. सारिवा नाम की लता। ४. छिपानेवाली स्त्री।

गोपी कामोदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो कामोद और केदारी के योग से बनती है।

गोपीगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में गोपियों द्वारा की गई कृष्ण जी की स्तुति (को०)।

गोपीचंद—संज्ञा पुं० [सं० गोपी+हिं० चंद] रंगपुर (बंगाल) के एक प्राचीन राजा जो भर्तृहरि की बहन मैनावती के पुत्र कहे जाते हैं।

विशेष—इन्होंने अपनी माता से उपदेश पाकर अपना राज्य छोड़ा और वैराग्य लिया था। कहा जाता है कि ये जलंधरनाथ के शिष्य हुए थे और त्यागी होने पर इन्होंने अपनी पत्नी पाटमदेवी से, महल में जाकर भिक्षा माँगी थी। इनके जीवन की घटनाओं के गीत बनाकर आजकल के जोगी सारंगी पर गाया करते हैं।

गोपीचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पीली मिट्टी जिसका वैष्णव लोग तिलक लगाते हैं और जो द्वारिका के एक सरोवर से निकलती है।

विशेष—(क) कहते हैं, श्रीकृष्ण के स्वर्गवासी होने पर उनके विरह में अनेक गोपियों ने इसी सरोवर के किनारे अपने प्राण तजे थे, इसीलिये उसकी मिट्टी का बहुत माहात्म्य कहा है। (ख) आजकल बाजारों में गोपीचंदन के नाम से एक प्रकार की बनाई हुई पीली मिट्टी मिलती है जिसका व्यवहार प्रायः वैरागी करते हैं।

गोपीजन—संज्ञा पुं० [सं०] गोपियों का समूह। गोपियाँ (को०)।

गोपीजनवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण (को०)।

गोपीजननाथ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण (को०)।

गोपीत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खंजन पक्षी जिसका देखना अशुभ समझा जाता है।

गोपीता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोपी] गोपकन्या। गोपी। (क्व०)। उ०—उन्ह मोहनि सरि केउ न जीता। अछरी छपीं छपीं गोपीता।—जायसी (शब्द०)।

गोपीथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सरोवर जिसमें गौएँ जल पीती हों। २. एक प्राचीन तीर्थ। ३. रक्षण। रक्षा। ४. राजा।

गोपीनाथ - संज्ञा पुं० [सं०] गोपियों के स्वामी श्रीकृष्ण। उ०—इहि न होई गिरि को धरिबो हो सुनहु कुँवर गोपीनाथ। आपुन को तुम बड़े कहावत काँपन लागे हैं दोउ हाथ।—सूर (शब्द०)।

गोपीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० गोपी+यन्त्र] सारंगी।—नाथ सिद्धों० पृ० २२।

गोपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौ की पूँछ। गौ की दुम। २. एक प्रकार के बंदर जिनकी दुम गाय की दुम की तरह होती है। ३. एक प्रकार का गावदुमा हार। ४. एक प्रकार का बाजा जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था।

गोपुटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

गोपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र, कर्ण।

गोपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. नगर का द्वार। शहर का फाटक। उ०—ऐसे कहत गए अपने पुर सबहिं विलक्षण देख्यो। मणिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेख्यो।—सूर (शब्द०)। २. किले का फाटक। ३. फाटक। दरवाजा। ४. स्वर्ग। गोलोक। ५. सुश्रुत के अनुसार वैद्यक शास्त्र के प्रणेता एक प्राचीन ऋषि।

गोपुरीष—संज्ञा पुं० [सं०] गोमय। गोबर [को०]।

गोपेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० गोपेन्द्र] १. श्रीकृष्ण। २. गोपों में श्रेष्ठ, नंद।

गोप्ता[1]—वि० [सं० गोप्तृ] रक्षा करनेवाला। रक्षक।

गोप्ता[2]—संज्ञा पुं० विष्णु।

गोप्ता[3]—संज्ञा स्त्री० गंगा।

गोप्य[1]—वि० [सं०] १. रक्षणीय। २. गोपनीय [को०]।

गोप्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नौकर। सेवक। २. दासीपुत्र [को०]।

गोप्यक—संज्ञा पुं० [सं०] दास। नौकर [को०]।

गोप्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो घर में छिपाकर रखने के लिये गिरवी रखा जाय।

गोप्रचार—संज्ञा पुं० [सं०] चरागाह [को०]।

गोप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] गौओं के चरकर लौट आने का समय। गोधूली। संध्या।

गोफ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दास। सेवक। २. दासीपुत्र। ३. गोपियों का समूह। ४. रेहन या गिरवी का वह प्रकार जिसमें रेहन रखी हुई चीज के आयव्यय पर उसके स्वामी का ही अधिकार रहे और जिसके पास चीज रेहन रखी जाय वह केवल सूद लेने का अधिकारी हो। दृष्टबंधक।

गोफ[2]—वि० १. गुप्त रखने योग्य। छिपाने लायक। २. रक्षा करने के योग्य। ३. छिपाया हुआ। गुप्त।

गोफण—संज्ञा पुं० [हिं० गोफन] दे० 'गोफन'।

गोफणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार फोड़े और जखम आदि बाँधने का एक प्रकार का बंधन जिसका व्यवहार ठोड़ी, नाक, ओंठ और कंधे आदि को बाँधने के लिये होता है।

गोफन—संज्ञा पुं० [सं० गोफण] खेत के आसपास पक्षियों को उड़ाने या मारने के लिये रस्सी के एक सिरे पर बुना हुआ छींके के आकार का एक जाल। ढेलवाँस। फन्नी।

विशेष—इसमें ढेले, पत्थर, कंकड़ आदि भरकर रस्सी की सहायता से सिर के ऊपर चारों ओर घुमाते हैं और जिसमें से बड़े वेग से निकले हुए ढेले, कंकड़ आदि की बहुत तेज चोट लगती है। पहले कभी कभी छोटी मोटी लड़ाइयों में भी शत्रुओं पर मिट्टी आदि के गोले चलाने के लिये इसका व्यवहार होता था।

गोफना—संज्ञा पुं० [सं० गोफण] दे० 'गोफन'।

गोफा[1]—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फ] १. नया निकला हुआ मुँहबँधा पत्ता। जैसे,—केले, अरुई, सूरन आदि का गोफा। †२. एक हाथ की उँगलियों को दूसरे हाथ की उँगलियों के अंतर में ले जाकर गठना।

क्रि० प्र०—जोड़ना।

गोफा[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुफा] दे० 'गुफा'।

गोब†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोभ] धँसान। चुभान। छेदन। वेधन।

गोबछ(ए)—संज्ञा पुं० [सं० गोवत्स] गाय का बच्चा। बछड़ा।

यौ०—गोबछपद=बछड़े के पैर रखने से बना हुआ गढ़ा। उ०—तिन कौं भवसागर भयौ ऐसौं। गोबछपद कौ पानी जैसौ।—नंद ग्रं०, पृ० २२६।

गोबना—क्रि० अ० [हिं० गोब] चुभाना। छुभाना। छेदना। गड़ाना। खोंसना।

गोबर—संज्ञा पुं० [सं० गोमल] गाय का विष्ठा। गौ का मल।

मुहा०—गोबर करना=(१) गौ बैल आदि का विष्ठा त्याग करना। (२) *गौ बैल आदि के नीचे का गोबर हटाना।* (३) गोबर आदि से कंडे पाथना या इसी प्रकार का और कोई गंदा काम करना। गोबर खाना=प्रायश्चित्त करना। गोबर की चोंथ होना=(१) भद्दा और बेडौल होना। (२) जड़ और मूर्ख होना। गोबर पाथना=(१) हाथ से गोबर के कंडे बनाना अथवा इसी प्रकार का और कोई गंदा काम करना। (२) काम को बिगाड़ना। गोबर बीनना=ईंधन के लिये सूखा हुआ गोबर इकट्ठा करना।

गोबरकढ़ा—वि० [गोबर+कढ़ा] [वि० स्त्री० गोबरकढ़िन] १. चौपायों का गोबर इकट्ठा करके उसे नियत स्थान पर पहुँचानेवाला सेवक। २. गोबर साफ करके उपले थापनेवाला।

गोबरकढ़ाई, गोबरकढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोबर+कढ़ाई] १. गोबर काढ़ने या साफ करने का काम। २. गोबर काढ़ने की मजबूरी।

गोबरगणेश—वि० [हिं० गोबर+गणेश] १. जो देखने में भला न मालूम हो। भद्दा। बदसूरत। २. मूर्ख। बेवकूफ। जो कुछ न कर सके।

गोबरगनेश—वि० [हिं० गोबर+सं०गणेश] दे० 'गोबरगणेश'।

गोबरधन(ए)—संज्ञा पुं० [सं० गोवर्धन] दे० 'गोवर्द्धन'। उ०—बहुर्यो फिरि गोबरधन धरौ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६८।

यौ०—गोबरधनधारी=श्रीकृष्ण जी।

गोबरहारा—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर+हारा (प्रत्य०)] गोबर उठाने या पाथनेवाला नौकर।

गोबराना† —क्रि० अ० [हिं० गोबर+आना (प्रत्य०)] गोबरी करना। गोमय से लीपना। २. कोई काम बिगाड़ना या नष्ट करना।

गोबरिया—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर] बछनाग की जाति का एक पौधा।

विशेष—यह हिमालय पर गढ़वाल से लेकर नैपाल तक होता है। इसकी जड़ विष है।

गोबरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोबर+ई (प्रत्य०)] १. कुंडा। उपला। गोहरा। गोहरी। २. गोबर का लेपन। गोबर की लिपाई।

क्रि० प्र०—करना।—फेरना।

मुहा०—गोबरी फेरना—अन्न की राशि के चारों ओर गोबर का चिह्न डालना।

गोबरी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज के पेंदे का छेद।—(लश०)।
मुहा०—गोबरी निकालना=जहाज के पेंदे में छेद करना।

गोबरैला—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर+ऐला या औला (प्रत्य०)] एक प्रकार का छोटा कीड़ा।
विशेष—यह गोबर या इसी प्रकारकी किसी दूसरी गंदी चीजमें उत्पन्न होता और रहता है।

गोबरौरा—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर+औरा (प्रत्य०)] दे० 'गोबरैला'।

गोबरौला—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर+औला (प्रत्य०)] दे० 'गोबरौरा'।

गोबिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा बाँस।
विशेष—यह आसाम की पहाड़ियों में अधिकता से होता है। यह देखने में सुंदर होता है और इसकी छाया सघन होती है। इसकी पत्तियाँ पशुओं के चारे के काम आती हैं और लकड़ी से जंगली लोग तीर, कमान और टोकरे बनाते हैं। अकाल के समय गरीब लोग इसके बीजों का भात भी बनाकर खाते हैं।

गोबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोभी] दे० 'गोभी'।

गोभ—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फ या हिं० गाफा] पौधों का एक रोग।
विशेष—इसमें पौधों की जड़ों में नए कल्ले निकल आते हैं जिससे पौधे दुर्बल हो जाते हैं। कोई कोई इसे गोभी भी कहते हैं।

गोभ—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोंप या अनु०] किसी तेज नुकीले शस्त्र द्वारा चुभाव। धँसन।

गोभना—क्रि० स० [हिं० गोभ] धँसाना। चुभाना। गड़ाना। छेदना।

गोभा⁽ᵖ⁾—संज्ञा पुं० [हिं० गाभा] अंकुर। घास। उ०—पसु सुभाउ तें लुबधे लोभा। चलि गए चरत चरत वन गोभा।—नंद० ग्रं०, पृ० २८७।

गोभिल—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेदीय गृह्यसूत्र के रचयिता एक प्रसिद्ध ऋषि।

गोभी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोजिह्वा (=बनगोभी) या गुम्फ (=गुच्छा)] एकप्रकार की घास, जिसके पत्ते लंबे, खरखरे, कटावदार और फूलगोभी के पत्तों के रंग के होते हैं। गोजिया। बनगोभी।
विशेष—इसमें पीले रंग के चक्राकार फूल लगते हैं और पत्तों के बीच में एक बाल निकलती है। इसे पशु बड़े चाव से खाते हैं। वैद्यक में यह शीतल, कड़ुई, हलकी, वातकारक और कफ, पित्त, खाँसी, रुधिरविकार, अरुचि, फोड़ा, ज्वर और सब प्रकार के विष का दोष दूर करनेवाली मानी गई है।

गोभी²—संज्ञा स्त्री० [अं० कैबेज] एक प्रकार का शाक।
विशेष—इसकी खेती इधर कुछ दिनों से भारत में अधिकता से होने लगी है। वनस्पति शास्त्र के ज्ञाता इसके क्षुप को राई या सरसों की जाति का मानते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—फूल गोभी, गाँठगोभी (दे० 'गाँठगोभी') और पातगोभी या करमकल्ला (दे० 'करमकल्ला')। फूलगोभी को साधारणतः गोभी ही कहते हैं। इसका डंठल, जो जमीन में गड़ा होता है, साधारण गन्ने के बराबर मोटा होता है और एक बालिश्त या इससे कुछ अधिक लंबा होता है। इसके ऊपर चारों ओर चौड़े मोटे और बड़े पत्ते होते हैं जिनके बीच में बहुत छोटे छोटे मुँहबँधे फूलों का गुथा हुआ समूह रहता है। खिले हुए फूलोंवाली गोभी खराब समझी जाती है। यह कातिक के अंत तक तैयार हो जाती है और जाड़े भर रहती है। इसके फूल की तरकारी बनती है और मुलायम पत्तों का साग बनाया जाता है। यह सुखाकर भी रखी जाती है और दूसरी ऋतुओं में काम आती है।
३. पौधों का गोभ नामक एक रोग।

गोभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] राजा (को०)।

गोभुज—संज्ञा पुं० [सं० गोभुज्] राजा।

गोभृत—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

गोमंडल—संज्ञा पुं० [सं० गोमण्डल] १. पृथ्वीमंडल। २. गायों का समूह (को०)।

गोमंडीर—संज्ञा पुं० [सं० गोमण्डीर] एक जलपक्षी (को०)।

गोमंत—संज्ञा पुं० [सं० गोमन्त] १. सह्याद्रि के अंतर्गत एक पहाड़ी जहाँ गोमती देवी का स्थान है। यह सिद्धपीठ माना जाता है। २. कुत्ते पालने या बेचनेवाला।

गोम—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. घोड़ों की एक भँवरी जो नाभि से ऊपर छाती की ओर रहती है। इसे लोग बहुत खराब समझते हैं। २. पृथ्वी। धरती। (डिं०)।

गोमकंट⁽ᵖ⁾—संज्ञा सं० [?] गोमुख। एक वाद्य विशेष। उ०—घननंक सघन घंट। किलकंत गोमकंट।—पृ० रा० ६१। १८४१।

गोमक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] डाँस। कुकुरौंछी (को०)।

गोमगा—वि० [फ़ा०] १. गोपनीय। न कहने लायक। २. जो स्पष्ट न हो। अस्पष्ट (को०)।

गोमठ—संज्ञा पुं० [सं० गो+मठ] गोशाला। उ०—गोरि गोमठ पुरिस नहीं, पएरहु देवा एकठाम नहीं।—कीर्ति०, पृ० ४४।

गोमतल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़िया गाय। श्रेष्ठ गाय (को०)।

गोमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक नदी जो शाहजहाँपुर की एक झील से निकलकर सैदपुर के पास गंगा में मिली है। वाशिष्ठी। २. टिपरा (बंगाल) की एक छोटी नदी। ३. एक देवी जिनका प्रधान स्थान गोमंत पर्वत पर है। ४. एक वैदिक मंत्र। ५. ग्यारह मात्राओं का एक छंद। जैसे,—पुत्रबंधु पुत्र जे। राम ब्याह कै तिते। फेरि धाम आइए। चित्त मोद छाइए।

गोमतीशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय की वह चट्टान जिसपर पहुँचकर अर्जुन का शरीर गल गया था।

गोमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की मछली।

गोमय—संज्ञा पुं० [सं०] गोपालक। ग्वाला (डिं०)।

गोमय—संज्ञा पुं० [सं०] गौ का गू। गोबर। उ०—सो गोमय गोंको विविध चित्रे अति पावन।—पृ० रा०, ६३।७७।

गोमर—संज्ञा पुं० [हिं० गौ+मर (प्रत्य०)] गौ मारनेवाला । बूचर । कसाई । गोहिंसक । उ०—हा बल सिंधु लखन सुखदाई । परी तात गोमर कर गाई ।—विश्राम (शब्द०) ।

गोमल—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर ।

गोमा—संज्ञा सं० [देश०] गोमती नदी ।

गोमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० गोमातृ] १. मातृतुल्य गोजाति । २. गोवंश की आदिमाता । ३. कश्यप की पत्नी जिसका नाम सुरभि था [को०] ।

गोमायⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गोमायु] दे० 'गोमायु' । उ०—उचित होय सो करिय करत लाजहिं नहिं मरियें । बारन बृंद बिदारन बलि गोमायन डरियें ।—नंद० ग्रं०, पृ० २०६ ।

गोमायु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सियार । गीदड़ । शृगाल । उ०—(क) चल्यो भाजि गोमायु जंतु ज्यों लै केहरि कौ भाग । इतने रामचंद्र तहँ आए परम पुरुष बड़ भाग ।—सूर (शब्द०) । २. एक गंधर्व का नाम । ३. एक प्रकार का मेंढक (को०) । ४. गाय की खाल (को०) ।

गोमी—संज्ञा पुं० [सं० गोमिन्] १. शृगाल । सियार । गीदड़ । २. पृथ्वी । - (डिं०) ।

गोमीन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०] ।

गोमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौ का मुँह ।

मुहा०—**गोमुख नाहर, गोमुख व्याघ्र**=वह मनुष्य जो देखने में बहुत ही सीधा पर वास्तव में बड़ा क्रूर और अत्याचारी हो। उ०—देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय ।—तुलसी (शब्द०) ।

२. बजाने का एक शंख जिसका आकार गौ के मुँह के समान होता है । उ०—गोमुख, किन्नरि, झाँझ, बीच बिच मधुर उपंगा ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६ । ३. नरसिंहा नाम का बाजा । उ०—एक पटह एक गोमुख एक आवझ एक झालरी । एक अमृत कुंडली रबाब भाँति सों दुरावै ।—सूर (शब्द०) । ४. गौ के मुख के आकार की वह थैली जिसमें माला रखकर जप करते हैं । गोमुखी । ५. नाक नामक जलजंतु । ६. योग का एक आसन । ७. एक प्रकार की सेंध जो गौ के मुँह के आकार की होती है । ८. टेढ़ा मेढ़ा घर । ९. ऐपन । १०. एक यज्ञ का नाम । ११. इंद्र के पुत्र जयंत के सारथी का नाम ।

गोमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊन आदि की बनी हुई एक प्रकार की थैली जिसमें हाथ रखकर जप करते समय माला फेरते हैं। इसका आकार गाय के मुँह का सा होता है । इसे जपमाली या जलगुथली भी कहते हैं ।

विशेष—जप करते समय माला को सबकी दृष्टि की ओट में रखने का विधान है; इसी लिये गोमुखी का व्यवहार होता है ।

२. गौ के मुँह के आकार का गंगोत्तरी का वह स्थान जहाँ से गंगा निकलती है । ३. राढ़ देश की एक नदी जिसे आजकल गोमुड़ कहते हैं । ४. घोड़ों की एक भँवरी जो उनके ऊपरी होंठों पर होती है और जो अच्छी समझी जाती है ।

गोमुद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा रहता था ।

गोमूढ़—वि० [सं० गोमूढ] बैल के समान मूर्ख [को०] ।

गोमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का मूत्र [को०] ।

गोमूत्रक—संज्ञा [सं०] १. वैदूर्य मणि का एक भेद । २. गदायुद्ध का एक दाँव [को०] ।

गोमूत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके अक्षरों को पढ़ने में उस क्रम से चलते हैं, जिस क्रम से बैलों के मूतने से बनी हुई रेखा जमीन पर गई रहती है ।

विशेष—इस चित्रकाव्य के पढ़ने का क्रम यह है कि पहली पंक्ति का एक अक्षर पढ़कर फिर दूसरी पंक्ति का दूसरा, फिर पहली का तीसरा, फिर दूसरी का चौथा फिर पहली का पाँचवाँ और दूसरी का छठा और फिर आगे इसी क्रम से पढ़ते चलते हैं। ऐसी कविता के पद बनाने में यह आवश्यक होता है कि उसके पहले और दूसरे (और आवश्यकता पड़ने पर तीसरे, चौथे और पाँचवें, छठे आदि) चरणों के दूसरे, चौथे, छठे आठवें दसवें, बारहवें, चौदहवें और सोलहवें (और यदि चरण अधिक लंबा हो तो समसंख्या पर पड़नेवाले सभी) अक्षर एक हों। इसे बरधामूतन भी कहते हैं ।

२. एक प्रकार की घास जिसके बीज सुगंधित होते हैं और जो औषध के काम में आती है । वैद्यक में इसे मधुर, वीर्यवर्धक और गौओं का दूध बढ़ानेवाली कहा है ।

पर्या०—रक्ततृणा । क्षेत्रजा । कृष्णभूमिजा ।

३. कौटिल्य कथित सर्पसारी नामक व्यूह । ४. पीतमणि जिसका रंग लाली लिए पीला होता है (को०) । ५. शीतल चीनी (को०) ।

गोमृग—संज्ञा पुं० [सं०] गवय । नीलगाय [को०] ।

गोमेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोमेदक मणि । २. शीतल चीनी । कबाब चीनी ।

गोमेदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध मणि जिसकी गणना नौ रत्नों में होती है । उ०—हीरे के थे कुसुम फल थे लाल गोमेदकों के ।—प्रिय०, पृ० १३२ ।

विशेष—इसका रंग सुर्खी लिए हुए पीला होता है और यह हिमालय पर्वत तथा सिंधु नदी में पाई जाती है । जो दोष हीरे में होते हैं वे ही इसमें भी होते हैं । सुश्रुत के मत से इस मणि से गंदा जल बहुत साफ हो जाता है । यह राहु ग्रह की मणि मानी जाती है, इसीलिये इसे राहुग्रह या राहुरत्न भी कहते हैं ।

पर्या०—राहुमणि । तमोमणि । स्वर्भानव । लिंगस्फटिक ।

२. काकोल नामक विष जो काला होता है । ३. पत्रक नामक साग । ४. अंगराग लेपन (को०) ।

गोमेध—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध के ढंग का एक यज्ञ ।

विशेष—इसमें गौ से हवन किया जाता था । इसका अनुष्ठान कलियुग में वर्जित है । मनु के अनुसार ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त के लिये और गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार पुष्टिकामना से इस यज्ञ का अनुष्ठान होता है । इसे गोसव यज्ञ भी कहते हैं ।

[illegible]

गोरखमुंडी—संज्ञा पुं० [सं० गोरक्षमुण्डी] [illegible]

गोरखककड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोरक्ष...] एक प्रकार की ककड़ी (डिं०)।

[illegible]

गोरखपंथी—संज्ञा पुं० [हिं० गोरख+पंथी] [illegible]

गोरखपंथी साधु लिए रहते हैं जिसमें एक डंडे में बहुत सी कड़ियाँ जड़ी होती हैं।

२. कोई ऐसी चीज या काम जिसमें बहुत झगड़ा या उलझन हो। झगड़ा। उलझन। पेंच।

गोरखनाथ—संज्ञा पुं० [सं० गोरक्षनाथ] एक प्रसिद्ध अवधूत जो पंद्रहवीं शताब्दी में हुए थे।

विशेष—ये बहुत सिद्ध माने जाते हैं और इनका चलाया हुआ संप्रदाय अबतक जारी है। गोरखपुर इनका प्रधान निवासस्थान था और वहीं इन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी।

गोरखपंथ—संज्ञा पुं० [सं०] गोरखनाथ का चलाया हुआ संप्रदाय जिसे नाथ संप्रदाय भी कहते हैं।

गोरखपंथी—वि० [हिं० गोरख+पंथी] गोरखनाथ का अनुगामी। गोरखनाथ के चलाए हुए संप्रदायवाला।

गोरखमुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरख+मुण्डी] प्रसर जाति की एक प्रकार की घास जिसमें उँगली के समान लंबे लंबे पत्ते होते हैं और घुंडी के समान गोल और गुलाबी रंग के फूल लगते हैं।

विशेष—ये पुष्प रक्त शोधन के लिये बहुत ही गुणकारी होते हैं। वैद्यक के अनुसार यह चरपरी, कसैली, हलकी, बलकारक है तथा रक्तविकार के लोगों के लिये बहुत ही लाभदायक है। इसे खाली मुंडी भी कहते हैं।

गोरखर—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोरख़र] गधे की जाति का एक जंगली पशु जो गधे से बड़ा और घोड़े से छोटा होता है।

विशेष—यह पश्चिमी भारत तथा मध्य और पश्चिमी एशिया में पाया जाता है। इसकी ऊँचाई प्रायः तीन हाथ और लंबाई पाँच छह हाथ तक होती है। इसका पेट सफेद और बाकी शरीर हिरन के रंग का होता है। इसके कान बड़े और दुम पर रोएँ होते हैं। यह सदा चौकन्ना रहता है और बहुत तेज दौड़ता है। ये मैदानों में २५-३० का झुंड बनाकर रहते हैं और इनके झुंड का एक सरदार भी होता है। ये प्रायः हरी घास और पत्तियाँ खाते हैं।

गोरखा—संज्ञा पुं० [हिं० गोरख] १. नैपाल के अंतर्गत एक प्रदेश। २. इस देश का निवासी।

गोरखाली[1]—संज्ञा पुं० [हिं० गोरखा] नैपाल के अंतर्गत गोरखा नामक प्रदेश।

गोरखाली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नेपाली भाषा का एक नाम।

गोरखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरख+ई (प्रत्य०)] दे० 'गोरख ककड़ी'।

गोरचकरा—संज्ञा पुं० [देश०] सन की जाति का एक जंगली पौधा जिसके पत्ते घीकुआर की तरह चिकने और लंबे होते हैं।

विशेष—अब यह पौधा बगीचों में शोभा के लिये भी लगाया जाने लगा है। इसका रेशा बहुत अच्छा होता है और प्राचीन काल में उससे धनुष की डोरी बनाई जाती थी। इसमें छोटे छोटे मीठे फल लगते हैं। इसका व्यवहार दवा में भी होता है। वैद्यक के अनुसार यह कड़ुआ, गरम, भारी दस्तावर और प्रमेह, कोढ़, त्रिदोष, रुधिरविकार तथा विषमज्वर को दूर करनेवाला है। इसे मूर्वा, मौर्वा या धनुर्गुण भी कहते हैं।

गोरज—संज्ञा पुं० [सं०] गौ के खुरों से उड़ती हुई गर्द या धूल।

गोरज्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरिजा] दे० 'गौरी'। उ०—ज्यू ईश्वर संग गोरज्या।—बी० रासो, पृ० २७।

गोरटा—वि० पुं० [हिं० गोरा] [वि० स्त्री० गोरटी] गोरे रंगवाला। गोरा। उ०—डगकु डगति सी टटकि चित चितई चली निहारि। लिये जात चित चोरटी वहै गोरटी नारि।—बिहारी (शब्द०)।

गोरड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [गोर+ड़ी (प्रत्य०)] गोरी। सुंदरी। उ०—बारह बरस की गोरड़ी, क्यूँ समरथो उड़सिउ जगनाथ।—बी० रासो, पृ० ३४।

गोरण—संज्ञा पुं० [सं०] अध्यवसाय। उद्योग [को०]।

गोरन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी लाल रंग की और बहुत मजबूत होती है।

विशेष—इसकी लकड़ी किश्तियाँ बनाने और इमारत के काम में आती है और छाल से चमड़ा सिझाया जाता है। यह वृक्ष सिंध तथा बंगाल में नदियों और समुद्र के किनारे की नम जमीन में अधिकता से होता है।

गोरपरस्त—वि० [फा०] १. कब्रपूजक। २. मुसलमानों का वह संप्रदाय जो महात्माओं की कब्रों का आदर करता है और उनपर चिराग जलाता तथा फूल चढ़ाता है।

गोरया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान।

विशेष—यह अगहन के महीने में तैयार होता है और इसका चावल बहुत दिनों तक रख सकते हैं।

गोरल[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] गौरी। पार्वती। उ०—गोरल पूजन नवल किसोरी।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६५।

गोरव—संज्ञा पुं० [सं०] जाफरान। केसर [को०]।

गोरवा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का बाँस।

विशेष—इसकी छोटी छोटी टहनियों से हुक्के के नैचे बनाए जाते हैं।

१. नर गोरैया।

गोरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध। दुग्ध। २. दधि। दही। ३. तक्र। मठा। छाछ। ४. इंद्रियों का सुख। उ०—गोरस चाहत फिरत हो गोरस चाहत नाहिं।—बिहारी (शब्द०)।

गोरसर—संज्ञा पुं० [देश०] वह पतली कमाची जिसे बाँस के पंखों की डंडी के आसपास देकर बंधन से जकड़ देते हैं।

गोरसा—संज्ञा पुं० [सं० गोरस] वह बच्चा जो गाय के दूध से पला हो।

गोरसी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोरस+ई (प्रत्य०)] दूध गरम करने की अँगीठी। बोरसी।

गोरा—वि० [सं० गौर] सफेद और स्वच्छ वर्णवाला (मनुष्य)। जिसके शरीर का चमड़ा सफेद और साफ हो।

यौ०—गोरा भभूका=ललाई लिए गोरा। गोरा चिट्टा।

गोरा²—संज्ञा पुं० गौर वर्णवाला व्यक्ति; विशेषतः युरोप, अमेरिका आदि देशों का निवासी। फिरंगी।

गोरा³—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की कल जो नील के कारखानों में बट्टी काटने के लिये रहा करती है। २. एक प्रकार का नीबू जो लंबोतरा होता है।

गोराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरा+ई या आई (प्रत्य०)] १. गोरापन। २. सुंदरता। सौंदर्य।

गोराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना [को०]।

गोराटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना [को०]।

गोराडू—संज्ञा पुं० [देश०] वह बालू मिली मिट्टी जिसमें कोदो बहुत उत्पन्न होता है।

विशेष—यह गुजरात में बहुत होती है।

गोराधार(पु)—क्रि० वि० [हिं० गोरा+धार] मूसलाधार। उ०—थर थर कँपति रहति आनँदघन बरसत गोराधारन।—घनानंद, पृ० ४९८।

गोरान—संज्ञा पुं० [अं० मैनग्रोव] चौरी नाम का वृक्ष जिसकी छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिझाया जाता है।

गोरामूँग—संज्ञा पुं० [हिं० गोरा+मूँग] एक प्रकार की जंगली मूँग जिसे दक्षिण में लोग अकाल के समय खाते हैं।

गोरि¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरी] दे० 'गोरी'। उ०—अलिनि पुहुप पराग भरी रूप अनूपम गोरि।—नंद० ग्रं०, पृ०३८३।

गोरि²(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोर] दे० 'गोर'। उ०—गोरि गोमठ पुरिल मँही, पएरहु देवा एक ठाम नहीं।—कीर्ति०, पृ० ४४।

गोरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोराटिका' [को०]।

गोरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गोरी'। उ०—गोरिया गरब करहु जिनि, अपने गोरे गात।—संतवाणी०, भा० १, पृ० ११३।

गोरिल्ला—संज्ञा पुं० [अफ्रिका] चिपँजी की जाति का बहुत बड़े आकार का एक प्रकार का वनमानुष।

विशेष—इसके झुंड अफ्रिका में पाए जाते हैं। इनके शरीर का चमड़ा काला, कान छोटे और हाथ बहुत लंबे होते हैं। इसकी ऊँचाई प्रायः साढ़े पाँच फुट होती है और इसके शरीर में बहुत बल होता है। यह फल आदि खाता और पेड़ों पर बड़े बड़े भोपड़े बनाकर रहता है। इसकी आवाज साधारण भूँकने की सी होती है; पर यदि इसे छेड़ा या दिक किया जाय, तो यह बहुत जोर से चिल्लाने लगता है। इसके शरीर की बनावट मनुष्य से बहुत कुछ मिलती जुलती होती है।

गोरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] सुंदर और गौर वर्ण की स्त्री। रूपवती स्त्री। उ०—हेरितहि दीठि चिन्हसि हरि गोरी।—विद्यापति०, पृ० २०६।

गोरी²—वि० [फ़ा०ग़ोरी] गोर निवासी। गोर का बाशिंदा।

गोरी³—संज्ञा पुं० गोर निवासी व्यक्ति। शहाबुद्दीन गोरी।

गोरीसर—संज्ञा पुं० [सं०] लालसा। उशवा।

गोरुत—संज्ञा पुं० [सं०] दो कोस की दूरी की एक माप (को०)।

गोरू—संज्ञा पुं० [सं० गो] १. सींगवाला पशु। गाय, बैल, भैंस इत्यादि चौपाया। मवेशी। २. दो कोस का मान।—(डिं०)। ३. गाय।

गोरूप—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

गोरोच—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

गोरोचन—संज्ञा पुं० [सं०] पीले रंग का एक प्रकार का सुगंधद्रव्य जो गौ के हृदय के पास पित्त में से निकलता है। उ०—(क) तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन को दीनों।—सूर (शब्द०)। (ख) चुपरि उबटि अन्हवाई कै नयन आँजि रचि रचि तिलक गोरोचन को कियो है।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह अष्टगंध के अंतर्गत है और बहुत पवित्र माना जाता है। कभी कभी यह लड़कों की घोंटी में भी पड़ता है और इसका तिलक लगाया जाता है। तांत्रिक इसे मंगलजनक, कांतिदायक, दरिद्रतानाशक और वशीकरण करनेवाला मानते हैं। वैद्यक में इसे शीतल, कड़ुआ और विष, उन्माद, गर्भस्राव, नेत्ररोग, कृमि, कुष्ठ और रक्तविकार को दूर करनेवाला माना गया है। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह गौ के मस्तक का पित्त है; अथवा गौ में इसे उत्पन्न करने के लिये उसको बहुत दिनों तक केवल आम की पत्तियाँ खिलाकर रखते हैं। जिससे उसको बहुत कष्ट होता है; पर ये बातें ठीक नहीं हैं।

गोरोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरोचन नामक सुगंधद्रव्य।

गोर्खा—संज्ञा पुं० [हिं० गोरखा] दे० 'गोरखा'।

गोर्खाली—वि०, स्त्री० [हिं० गोरखाली] दे० 'गोरखाली'।

गोर्द—संज्ञा पुं० [सं०] मस्तिष्क [को०]।

गोर्ध संज्ञा पुं० [सं०] मस्तिष्क [को०]।

गोलंदाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोलंदाज] तोप में गोला रखकर चलानेवाला। तोप में बत्ती देनेवाला।

गोलंदाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गोलंदाजी] गोला चलाने का काम या विद्या।

गोलंबर—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+अंबर] १. गुंबद। गुंबद के आकार का कोई गोल ऊँचा उठा हुआ पदार्थ। ३. गोलाई। ४. कलबूत जिसपर रखकर टोपी सीते हैं। कालिब। ५. बगीचे में बना हुआ गोल चबूतरा या रविश।

गोलंमदाज—(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोलंदाज] दे० 'गोलंदाज'। उ०—गोलंमदाज तब करि सलाँम। दागी सुतोप लखि ताव ताँम।—ह० रासो, पृ० १०८।

गोल¹—वि० [सं०] जिसका घेरा या परिधि वृत्ताकार हो। चक्र के आकार का। वृत्ताकार। जैसे,—पहिया, अँगूठी, सिक्का इत्यादि। ऐसे घनात्मक आकार का जिसके पृष्ठ का प्रत्येक विंदु उसके भीतर के मध्य विंदु से समान अंतर पर हो। सर्ववर्तुल। अंडाकार। गेंद, नीबू, बेल आदि के आकार का।

यौ०—गोल गोल=(१) स्थूल रूप से। मोटे हिसाब से। (२) अस्पष्ट रूप से। साफ साफ नहीं। जैसे,—यों ही गोल गोल समझाकर वह चला गया; साफ खुला नहीं। गोल बात=अस्पष्ट बात। ऐसी बात जिससे अर्थ का कुछ आभास मिले पर वह स्पष्ट न हो। गोलमगोल=दे० 'गोल गोल'। गोल

मटोल=(१) दे० 'गोल गोल'। (२) मोटा और ठिगना। नाटा और मोटा। गुलगुथना। (३) ऊँचाई के हिसाब से जिसकी चौड़ाई बहुत अधिक हो गोल। मोल=दे० 'गोल गोल'।

मुहा०—गोल होना=(१) चुप हो रहना। मौन हो जाना। (२) गायब होना। बिना जानकारी कराए चल देना।

गोल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंडलाकार क्षेत्र। वृत्त। २. गोलाकार पिंड। गोला। सर्ववर्तुल पिंड। वटक। ३. गोल यंत्र। ४. विधवा का जारज पुत्र। ५. मुर नाम की ओषधि। ६. मदन नाम का वृक्ष। मैनफल का पेड़। ७. एक देश का नाम जिसके अंतर्गत योरप का बहुत सा भाग विशेषतः उत्तरी इटली और फ्रांस, बेलजियम आदि थे।

विशेष—यह शब्द रोमन भाषा या लैटिन से हेमचंद्र के परिशिष्ट पर्वण में आया है।

८. मिट्टी का गोल घड़ा।

गोल[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ग़ोल। सं० गोल(=मंडल)] मंडली। झुंड। समूह।

मुहा०—गोल बाँधना=मंडली या झुंड बनाना।

गोल[4]—संज्ञा पुं० [सं० गोल (योग)] गड़बड़। गोलमाल। उपद्रव। खलबली। हलचल।

यौ०—गोलमाल।

मुहा०—गोल पारना या डालना=गड़बड़ मचाना। हलचल मचाना। उ०—ऊधो सुनत तिहारो बोल। ल्याओ हरि कुशलात धन्य तुम घर घर पारयो गोल।—सूर (शब्द०)।

गोल[5]—संज्ञा पुं० [अं०] १. हाकी, फुटबाल आदि खेलों में वह स्थान जहाँ गेंद पहुँचा देने से विरोधी पक्ष की जीत हो जाती है। २. उक्त प्रकार से होनेवाली जीत।

क्रि० प्र०—करना।—बनाना।—मारना।—होना।

यौ०—गोलकीपर—गोल बचाने के लिये नियुक्त खिलाड़ी।

गोलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोलोक। २. गोलपिंड। ३. विधवा का जारज पुत्र। ४. मिट्टी का बड़ा कुंडा। ५. फूलों का निकाला हुआ सार। इत्र। ६. आँख का डेला। उ०—(क) अति उनींद अलसात कर्मगति गोलक चपल सिथिल कछु थोरे।—सूर (शब्द०)। (ख) जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे।—तुलसी (शब्द०)। ७. आँख की पुतली। उ०—उनके हित उनहीं बने कोऊ करौ अनेक। फिरत काक गोलक भयौ दुहूँ देह ज्यों एक।—बिहारी (शब्द०) ८. गुंबद। उ०—बिसुकरमा मनु मनि खंभ पै उड़गण को गोलक धरयो।—गोपाल (शब्द०)। ६. वह संदूक या थैली आदि जिसमें किसी विशेष कार्य के लिए थोड़ा थोड़ा धन संग्रह करके रखा जाय। फंड। ११. वह संदूक या थैली जिसमें बिक्री, कर द्वारा या और किसी प्रकार से आई हुई रोजाना आमदनी रखी जाती है। गल्ला। गुल्लक।

गोलकलम—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+कलम] एक प्रकार की छेनी जो चाँदी के पत्तर पर की नक्काशी में पत्ती उभारने के काम में आती है।

गोलकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल+कली] एक प्रकार का अंगूर जो दक्षिण और मध्यप्रदेश में होता है।

गोलगप्पा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+अनु० गप्प] घी में तली एक प्रकार की महीन और करारी फुलकी जिसे खटाई के रस में डुबोकर खाते हैं।

गोलड़ाँ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोल (=जारज)?] गुलाम। उ०—गाडभरिया गोलणाँ, सूनो सदन सुरंग।—बाँकी ग्र, भा० ३. पृ० २०।

गोलपंजा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+पंजा] बिना मुड़ी नोक का जूता। मुंडा जूता।

गोलपत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+पत्ता] गुलगा नामक ताड़ का पत्ता जो सुंदरबन में होता है। दे० 'गुलगा'।

गोलफल—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+फल] गुलगा नामक ताड़ का फल जो सुंदरबन में होता है। दे० 'गुलगा'।

गोलमाल—संज्ञा पुं० [सं० गोल (=योग)] गड़बड़। अव्यवस्था।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—मचाना।

गोलमिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल+सं० मरिच] काली मिर्च।

गोलमुहाँ—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+मुहँ] कसेरों की एक प्रकार की हथौड़ी जिसका अगला भाग बिलकुल गोल होता है और जिससे बरतन गहरा किया जाता है।

गोलमेज कान्फरेन्स—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल+मेज+अं० कानफरेंस] दे० 'राउंड टेबुल कान्फरेन्स'।

गोलमेथी—संज्ञा स्त्री० [गोल+मोथा] मोथे की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह उत्तरी भारत में कुमाऊँ से बरमा तक, तथा अफ्रीका और अमेरिका में होता है। इसके डंठलों से चटाइयाँ बनती हैं। इसे वेढुआ भी कहते हैं।

गोलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० गोलयन्त्र] वह यंत्र जिससे सूर्य, चंद्र, पृथिवी आदि की स्थिति, नक्षत्रों की गति और अयन परिवर्तन आदि जाने जाते हों।

विशेष—प्राचीन काल में यह यंत्र प्रायः बाँस की तीलियों आदि से बनाया जाता था।

गोलयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में एक योग जो एक राशि में किसी के मत से छह और किसी के मत से सात ग्रहों के एकत्र होने से होता है।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इसका फल दुर्भिक्ष और राष्ट्र तथा राजाओं का नाश है।

२. गड़बड़। गोलमाल।

गोलर—संज्ञा पुं० [सं०] कसेरू।

गोलरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत लंबा और सुंदर पेड़ जो हिमालय पर्वत पर तीन हजार फुट की ऊँचाई तक होता है।

विशेष—इसकी छाल चिकनी और सफेद तथा हीर की लकड़ी चमकीली और बहुत कड़ी होती है। इसके पत्तों से चमड़ा सिझाया जाता है और लकड़ी से नावें, जहाज और खेती के औजार बनाए जाते हैं।

गोललट्टू—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+लट्टू] जहाज के मस्तूल के सिरे पर की एक गोल लकड़ी जिसपर से पाल की रस्सियाँ खींची जाती हैं।—(लश०)।

गोलवाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठपाल] गायों के समूह का पालक। गोस्वामी। उ०—बुल्लाय जैतसिय गोलवाल। तुम भूमि पास नागरह चाल।—पृ० रा०, ११३८०।

गोलविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या का वह अंग जिससे पृथ्वी की गोलाई, आकार, विस्तार, चाल, ऋतुपरिवर्तन आदि बातें जानी जायँ। आकाश के गोल पिंडों का हाल चाल जानना भी इसी के अंतर्गत है।

गोलांगुल—संज्ञा पुं० [सं० गोलाङ्गुल] दे० 'गोलांगूल' (को०)।

गोलांगूल—संज्ञा पुं० [सं० गोलाङ्गूल] एक प्रकार का बंदर जिसकी पूँछ गौ की पूँछ के समान होती है।

गोला¹—संज्ञा पुं० [हिं० गोल] १. किसी पदार्थ का कुछ बड़ा गोल पिंड। जैसे,—लोहे का गोला, रस्सी का गोला, भाँग का गोला।

मुहा०—गोला उठाना=एक प्राचीन प्रथा जिसमें लोग अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये जलता हुआ आग का गोला हाथ में उठा लिया करते थे, और यदि उनका हाथ न जलता था तो वे निर्दोष समझे जाते थे।

२. लोहे का वह गोल पिंड जिसमें बहुत सी छोटी छोटी गोलियाँ, मेखें आदि भरकर युद्ध में तोपों की सहायता से शत्रुओं पर फेंकते हैं। उ०—डाहे महीधर शिखर कोटिन्ह विविध विधि गोला चले।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चलाना।—छोड़ना।—फेंकना।—बरसाना।

विशेष—तोपों के आधुनिक गोले केवल गोल ही नहीं बल्कि लंबे भी बनते हैं।

३. एक प्रकार का रोग जिसमें थोड़ी थोड़ी देर पर पेट के अंदर नाभि से गले तक वायु का एक गोला आता जाता जान पड़ता है; और जिसमें रोगी को बहुत अधिक कष्ट होता है। वायुगोला। ४. खंभों के सिरों पर का कुछ चौड़ा गढ़ा हुआ भाग। ५ दीवार के ऊपर की लकीर जो शोभा के लिये बनाई जाती है। ६. भीतर से खोखला किया हुआ बेल का फल या उसी आकार का काठ आदि का बना हुआ और कोई पदार्थ जो सुँघनी, भभूत या इसी प्रकार की और कोई बुकनी रखने के काम में आता है। ७. मिट्टी, काठ आदि का बना हुआ वह गोलाकार पिंड जिसके ऊपर रखकर पगड़ी बाँधते हैं। ८. जंगली कबूतर। ९. नारियल का वह भाग जो ऊपर की जटा छीलने के बाद बच रहता है। गरी का गोला। १०. वह बाजार या मंडी जहाँ अनाज या किराने की बहुत बड़ी बड़ी दूकानें हों। ११. घास का गट्ठर। १२. लकड़ी का गोल पेटे का सीधा लंबा लट्ठा जो छाजन में लगाने तथा दूसरे कामों में आता है। कोड़ी। बल्ला। १३. रस्सी, सूत आदि की गोल लपेटी हुई पिंडी। १४ एक प्रकार का जंगली बाँस जो पोला नहीं होता और छड़ी या लाठी बनाने के काम में आता है।

मुहा०—गोला लाठी करना=लड़कों के हाथ पैर बाँधकर दोनों घुटनों के बीच में डंडा डालना।

विशेष—यह दंड मौलवी मकतबों में लड़कों को दिया करते हैं। १५. एक प्रकार का बेंत जो बंगाल और आसाम में होता है।

विशेष—यह बहुत लंबा और मुलायम होता है तथा टोकरे आदि बनाने के काम में आता है।

१६. गुलेल से चलाया जानेवाला गोला या बड़ी गोली। उ०—गोला लगै गिलोल गुरु, छुटै न तो इसरार।—पृ० रा०, ६।१६०।

गोला²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोदावरी नदी। २. सहेली। सखी। ३. मंडल। ४. किसी चीज की छोटी गोली। ५. दुर्गा।

गोला(पु)³—संज्ञा पुं० [सं० गोल जारज०] गुलाम। दास। उ०—गोला सूँ कीजे गुसट, ऊभी गिनका आंण।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३।

गोलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोला+आई (प्रत्य०)] गोल का भाव। गोलापन।

गोलाकार—वि० [सं०] जिसका आकार गोल हो। गोल शक्लवाला।

गोलाकृति¹—वि० [सं०] गोलाकार।

गोलाकृति²—संज्ञा स्त्री० [सं० गोल+आकृति] किसी वस्तु के गोल होने की स्थिति या भाव।

गोलाधार—वि० [हिं० गोला+धार] मूसलाधार। गोराधार।

गोलाध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] भास्कराचार्य का एक ग्रंथ जिसमें भूगोल और खगोल का वर्णन है।

गोलाबारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोला+फ़ा० बारी] तोप से होनेवाली गोलों की वर्षा। उ०—रात भर विकट, तीक्ष्ण, भीषण गोलाबारी किले और बाहर पर की बुर्जों पर से हुई।—झाँसी०, पृ० ४०६।

गोलाबारूद—संज्ञा स्त्री० [गोला+फ़ा० बारूद] १. तोप के गोले और बारूद। २. युद्धसामग्री।

गोलार्ध संज्ञा पुं० [सं० गोलार्द्ध या गोलार्ध] पृथ्वी का आधा भाग जो एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक उसे बीचो बीच काटने से बनता है।

गोलास—संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता। छत्रक (को०)।

गोलासन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तोप (को०)।

गोलिंग—संज्ञा पुं० [सं० गोलिङ्ग] कौटिल्य कथित प्राचीन काल की एक प्रकार की गाड़ी।

गोलियाना†—क्रि० स० [हिं० गोल] १. किसी चीज को गोल आकार का करना या बनाना। किसी पिंड या तूदे से छोटी छोटी गोलियाँ बनाना। २. सम पक्ष के लोगों को एक करना। गोल बाँधना।

गोली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोला का स्त्री० और अल्पा०] १. किसी चीज का छोटा गोलाकार पिंड। वटिका। बटिया। जैसे,—सूत

की गोली, अफीम की गोली, खेलने की गोली। २. औषध की वटिका। वटी।

क्रि० प्र०—खाना।—खिलाना।—देना।

३. मिट्टी, कांच आदि का बना हुआ वह छोटा गोल पिंड जिसे बालक खेलते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।—मारना।—लगाना।

४. गोली का खेल। ५. पशुओं का एक रोग। ६. पीले या बादामी रंग की गाय। ७ मदक की गोली जो अफीम से तैयार की जाती है और जिसे तंबाकू की तरह पीते हैं। ८. सीसे आदि का ढला हुआ वह गोल पिंड जो बंदूक में भरकर घायलकरने या मारने के लिये चलाया जाता है।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—छोड़ना।—मारना।—लगना।

मुहा०—**गोली खाना**=बंदूक की गोली का आघात सहना। **गोली बचाना**=किसी संकट या आपत्ति से धूर्ततापूर्वक अपना बचाव करना। विपत्ति के स्थान से या अवसर पर टल जाना। **गोली मारते हैं**=उपेक्षापूर्वक छोड़ देते हैं। तुच्छ समझकर ध्यान छोड़ देते हैं। मिलने न मिलने या होने न होने की परवा नहीं करते हैं। जैसे—ऐसी नौकरी को हम गोली मारते हैं। **गोली मारो**=उपेक्षापूर्वक छोड़ दो। तुच्छ समझकर ध्यान छोड़ दो। मिलने न मिलने या होने न होने की परवा न करो। जाने दो। दूर हटाओ। जैसे,—अजी गोली मारो, ऐसे रोजगार में क्या रखा है।

९. मिट्टी की गोल ठिलिया। छोटा घड़ा।

गोली(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोला] दासी। सेविका। उ०—छोट सी भैंस सोहनै सींगनि, टहलि करनि को गोली जू।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३७।

गोलीय—वि० [सं०] १. गोल विषयक। २. खगोल भूगोल आदि। से संबंधित [को०]।

गोलेंदा—संज्ञा पुं० [देश०] महुए का फल। कोइँदा।

गोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु या कृष्ण का निवासस्थान।

विशेष—यह पुराणानुसार ब्रह्मांड में सब लोकों से ऊपर माना जाता है। अनेक पुराणों में यह लोक बहुत ही मनोहर और रम्य बतलाया गया है। तंत्र के अनुसार वैकुंठ के दक्षिण ओर गोलोक है।

२. स्वर्ग। ३. व्रजभूमि।

गोलोकवास—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्गवास। देहांत [को०]।

गोलोकेम—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णचंद्र।

गोलोचन—संज्ञा पुं० [सं० गोरोचन] दे० 'गोरोचन'।

गोलोभिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। २. सफेद दूब। ३. एक भाड़ी। कर्चूर। आमाहल्दी [को०]।

गोलोभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोलोभिका' [को०]।

गोलोवा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल] बड़ा दौरा। टोकरा। खाँचा।

गोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] सोना। स्वर्ण।

गोल्डन—वि० [अं० गोल्डेन] १. सोने का। २. सोने के रंग का। सुनहरा।

गोल्फ—संज्ञा पुं० [अं० गोल्फ या गोफ] एक प्रकार का अँगरेजी खेल जो डंडे और गेंदों से खेला जाता है।

गोवँद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोविन्द] दे० 'गोविंद'। उ०—नाम गोवँद थयौ नमाँ नँदराय नंद।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १२४।

गोवध—संज्ञा पुं० [सं०] गौ को मारना। गौ की हत्या। गोहिंसा।

यौ०—**गोवधनिषेध, गोवधबंदी**=गो की हत्या बंद करना।

गोवना(पु)—क्रि० स० [सं० गोपन, प्रा० गोवण] दे० 'गोना'। उ०—गोवत गोवत गोइ धरचो धन, खोवत खोवत तैं सब खोयो।—संतवाणी, भा० २, पृ० १२४।

गोवर—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर का चूर्ण [को०]।

गोवरधन—संज्ञा पुं० [सं० गोवर्धन] दे० 'गोवर्द्धन'। उ०—*गोवरधन आजानुभुज, साँम सुजाव सगाह।*—रा० रू० पृ० १२३।

गोवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्री वृंदावन का एक पर्वत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसे एक बार वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने अपनी उँगली पर उठाया था।

यौ०—**गोवर्द्धनधर, गोवर्द्धनधारण, गोवर्द्धनधारी**=श्रीकृष्ण।

२. मथुरा जिले के अंतर्गत एक प्राचीन नगर और तीर्थ।

गोवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोवर्द्धन'।

गोवल—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल, प्रा० गोवाल] ग्वाला। गोप। उ०—सुर नर मोहइ देवता जिमि गोवल माँहि सोवइ गोव्यंद।—वी० रासो०, पृ० ७।

गोवलिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वाला] ग्वालिन। उ०—और नाम रूप नहिं गोवलियो, 'तुका' प्रभु माखन खाया।—दक्खिनी०, पृ० १०४।

गोवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० गोवना का प्रे० रूप] छिपाने के लिये प्रेरित करना। छिपवाना। ढकवाना। उ०—लै माटी कलबूत बनाया। आब खाक आतिश गोवाया।—प्राण०, पृ० ७४।

गोविंद—संज्ञा पुं० [सं० गोपेंद्र या गोविन्द, प्रा० गोविंद] १. श्रीकृष्ण २. वेदांतवेत्ता। तत्वज्ञ। ३. बृहस्पति। ४. शंकराचार्य के गुरु का नाम। ५. सिक्खों के दस गुरुओं में से एक। ६. परब्रह्म। ७. गोशाला या गौओं का अध्यक्ष।

गोविंदद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोविन्दद्वादशी] फागुन महीने के उजाले पक्ष का बारहवाँ दिन। फाल्गुन शुक्ल द्वादशी।

गोविंदपद—संज्ञा पुं० [सं० गोविन्दपद] मोक्ष। निर्वाण।

गोविंदपाद, गोविंदपादाचार्य—संज्ञा पुं० [सं० गोविन्दपाद, गोविन्दपादाचार्य] शंकराचार्य के गुरु [को०]।

गोवि—संज्ञा पुं० [सं०] संकीर्ण राग का एक भेद।

गोविसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] तड़का। भोर [को०]।

गोवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा के मार्ग का वह अंश जिसमें भाद्रपद, रेवती और अश्विनी तथा किसी किसी के मत से हस्त, चित्रा और स्वाती नक्षत्रों का समूह है।

गोवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] नीम हकीम। अज्ञानी वैद्य [को०]।

गोव्याधि—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

गोव्रज—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोशाला। गोठ। २. गोसमूह। ३. गायों के चरने का स्थान। चरागाह।

गोव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो गोहत्या के प्रायश्चित्त के लिये किया जाता है और जिसमें बराबर किसी गौ के पीछे पीछे घूमना और केवल गाय का दूध पीकर रहना पड़ता है।

गोव्रद्धन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोवर्द्धन] दे० 'गोवर्द्धन'। उ० उप्पारि सस्त्र गोव्रद्धनह। निप रखि वज्रो जेम कल।—पृ० रा०, ६७।१३०४।

गोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सुनने की इंद्रिय। कान।

गोशकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] गोवर [को०]।

गोशगुजार—वि० [फ़ा० गोशगुज़ार] १. कहा हुआ। २. ज्ञपित।

गोशपेच—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कान में पहनने का जेवर।

गोशम—संज्ञा पुं० [हिं० कोसम] दे० 'कोसम'।

गोशमायल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पगड़ी में एक ओर लगा हुआ मोतियों की लड़ी का वह गुच्छा जो कान के पास लटकता रहता है।

गोशमाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. कान उमेठना। २. ताड़ना। कड़ी चेतावनी।

क्रि० प्र०—करना। देना।

गोशवारा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. खंजन नामक पेड़ का गोंद।

विशेष—यह मस्तगी का सा होता है और मस्तगी ही की जगह काम में आता है।

२. कान का बाला। कुंडल। ३. बड़ा मोती जो सीप में अकेला हो। ४. कलावत्तू से बुना हुआ पगड़ी का आँचल। ५. तुर्रा। कलगी। सिरपेच। ६. जोड़। मीजान। ७. वह संक्षिप्त लेखा जिसमें हर एक मद का आयव्यय अलग अलग दिखलाया गया हो। ८. रजिस्टर आदि में खानों के ऊपर का वह भाग जिसमें उन खानों का नाम लिखा रहता है।

गोशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोशह्] १. कोना। अंतराल। कोण। २. एकांत स्थान। जहाँ कोई न हो। तनहाई। ३. तरफ। दिशा। ओर। ४. कमान की दोनों नोकें। धनुष की कोटि। कमान का सिरा।

गोशानशीन—वि० [फ़ा० गोशहनशीन] एकांतवासी। घर गृहस्थी से विरक्त।

गोशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौओं के रहने का स्थान। गोष्ठ।

गोशि(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोश] दे० 'गोश'। उ०—गोशि बातिन हो कुशादा जो करे कुछ दिन अमल।—तुरसी श०, पृ० ५।

गोशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। २. उक्त पर्वत पर होनेवाला चंदन। ३. एक प्रकार का अस्त्र।

गोशृंग—संज्ञा पुं० [सं० गोश्रृङ्ग] १. एक पर्वत जिसका वर्णन रामायण और महाभारत में आया है। २. एक ऋषि का नाम। ३. बबूल का पेड़।

गोश्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मांस। आमिष।

गोपरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोशाला] गोशाला। पशुशाला। उ०—चंद बिन रैनि जैसे पुत्र बिन परिवार दारा बिन ग्रह जैसे गऊ बिन गोपरा।—अकबरी०, पृ० ५३।

गोष्टि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] साथी। संगी। मित्र। उ०—काहु न जीतै गोष्टि सो मेरा।—कबीर सा०, पृ० ४२२।

गोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौओं के रहने का स्थान। गोशाला। २. किसी जाति के पशुओं के रहने का स्थान। जैसे,—महिष गोष्ठ, अश्वगोष्ठ। ३. मनु के अनुसार एक प्रकार का श्राद्ध जो कई व्यक्ति एक साथ मिलकर करते हैं। ४. परामर्श। सलाह। ५. दल। मंडली। ६. अहीरों का गाँव (को०)।

गोष्ठपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रधान ग्वाला। ग्वालों का सरदार। २. गोष्ठ का स्वामी [को०]।

गोष्ठशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई सभा हो। सभाभवन।

गोष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहुत से लोगों का समूह। सभा। मंडली। २. वार्तालाप। बातचीत। ३. परामर्श। सलाह। ४. एक ही अंक का वह रूपक या नाटक जिसमें पाँच या सात स्त्रियाँ और नौ या दस पुरुष हों।

गोष्पद—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौओं के रहने का स्थान। गोष्ठ। २. गौ के खुर के बराबर गड्ढा। उ०—पार जिया मकरालय मैंने उसे एक गोष्पद सा मान।—साकेत, पृ० ३८८। ३. प्रभास क्षेत्र के अंतर्गत एक तीर्थ।

गोसंख्य—संज्ञा पुं० [सं० गोसङ्ख्य] गाय चरानेवाला ग्वाला [को०]।

गोस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का झाड़ जिसमें से गोंद निकलता है। २. प्रातःकाल से दो घड़ी पहले का समय। प्रभात। तड़का। ३. ग्रीष्म ऋतु (को०)। ४. लोबान (को०)।

यौ०—गोसमूह=भीतरी कक्ष।

गोस[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोशा ?] हवा लगने के लिये चलते हुए जहाज का रुख कुछ तिरछा करना। माँच।—(लश०)।

गोस[3](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गुस्सा, गुसा] दे० 'गुस्सा'। उ०—वचन मेटि मैं कहौं गरज बसि दरदबंद प्रभु करौ न गोसो।—भीखा श०, पृ० २९।

गोसई—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपास के पौधों का एक रोग जिसमें उनका फूलना बंद हो जाता है।

गोसट(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ] गोष्ठी। संग। साथ। उ०—भगतन सेटी गोसटे जो कीने सो लाभ।—कबीर ग्रं०, पृ० २५०।

गोसठि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] दे० 'गोष्ठ'। उ०—दई गऊ बाह्मन की आई। सो गोसठि में आन समाई।—घट०, पृ० १३३।

गोसदृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] गवय। नीलगाय [को०]।

गोसमाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोशमायल] दे० 'गोशमायल'। उ०—दादू नफस नाँव सौ मारिये, गोसमाल दे पंद।—दादू०, पृ० २५५।

गोसमावल(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोशमायल] दे० 'गोशमायल'। उ०—पाग ऊपर गोसमावल रंग रंग रचि बनाय।—सूर (शब्द०)।

गोसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] गायों को चरने के लिये छोड़ने का समय। भोर। तड़का [को०]।

गोसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] गोह [को०]।

गोसलखाना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गुसलखाना] दे० 'गुस्सखाना'। ह्याँ ते गयो चकत्तै सुख देन को गोसलखाने गयो दुख दीनो। —भूषण ग्रं०, पृ० २०५।

गोसल्ल—संज्ञा पुं० [हिं० गुस्ल] दे० 'गुस्ल'। उ०—कर गोसल्ल पवित्र होइ चिते रहमान।—पृ० रा०, ६।११४।

गोसव—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेध यज्ञ।

विशेष—यह कलि में वर्जित है।

गोसहस्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का एक हजार गायों का महादान [को०]।

गोसहस्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक और ज्येष्ठ की अमावस्या [को०]।

गोसा¹†—संज्ञा पुं० [सं० गो] गोइँठा। उपला। कंडा।

गोसा²(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोशह्] १. कमान का सिरा। गोशा। उ०—प्रथम करी टंकार फेरि गोसा सँवारि तेहिं।—हम्मीर०, पृ० ३४। २. कोना। अंतराल। कोण। उ०—गोसै गहि रसता दसन वसन कँपायो वाम।—स० सप्तक, पृ० ३७७।

गोसाईं¹—संज्ञा पुं० [सं० गोस्वामी] १. गौओं का स्वामी या अधिकारी। २. स्वर्ग का मालिक, ईश्वर। ३. संन्यासियों का एक संप्रदाय जिसमें दस भेद होते हैं और जिसे दशनाम भी कहते हैं। गिरि, पुरी, भारती, सरस्वती आदि इसी के अंतर्गत हैं। ४. विरक्त साधु। अतीत। ५. वह जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। जितेंद्रिय। ६. मालिक। प्रभु। स्वामी।

गोसाईं²—वि० श्रेष्ठ। बड़ा।

गोसाउनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोस्वामिनी] गोस्वामिनी। उ०—सहज सुमतिवर दिअओ गोसाउनि, अनुगति गति तुअ पाया। —विद्यापति (शब्द०)।

गोसाअनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोस्वामिनी] स्वामिनी। उ०—दास गोसाअनि गहिअ धम्म गए धंध निमज्जिय।—कीर्ति०, पृ० १६।

गोसाती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गोशह्] वह हवा जो पाल उतार लेने पर भी जहाज के चलने में बाधा डाले।—(लश०)।

गोसावित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री [को०]।

गोसी—संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र में चलनेवाली एक प्रकार की नाव जिसमें २ से लेकर ७ तक मस्तूल होते हैं।

गोसीपरवान—संज्ञा पुं० [देश०] धातु की एक लंबी छड़ जो जहाज के मस्तूल में पाल के ऊपरी छोर को हटाने बढ़ाने के लिये लगी होती है।—(लश०),

गोसुत—संज्ञा पुं० [सं०] गौ का बच्चा। बछड़ा। उ०—(क) गो गोसुतनि सों मृगी मृगसुतनि सों और तन नेकु न जोहनी।—हरिदास (शब्द०)। (ख) गोकुल पहुंचे जाइ रहे बालक अपने घर। गोसुत अरु नर नारि मिली अति हेत लाइ गर।—सूर (शब्द०)।

गोसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का वह अंश जिसमें ब्रह्मांड की रचना का गो के रूप में वर्णन किया गया है। गोदान के समय इसका पाठ किया जाता है।

गोसैयाँ†—संज्ञा पुं० [सं० गोस्वामी, हिं० गोसाईं] प्रभु। नाथ। मालिक।

गोस्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय का थन। २. कली आदि का गुच्छा। ३. चार लड़ी का मोती का हार। ४. एक प्रकार का दुर्ग। गढ़ [को०]।

गोस्तना—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्राक्षा। दाख। मुनक्का।

गोस्तानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोस्तना'।

गोस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] गोशाला। गोठ [को०]।

गोस्वामी—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो। जितेंद्रिय। २. वैष्णव संप्रदाय में आचार्यों के वंशधर या उनकी गद्दी के अधिकारी। ३. गायों को पालनेवाला व्यक्ति। गोपालक (को०)।

गोस्सा‡—संज्ञा पुं० [हिं० गुस्सा] दे० 'गुस्सा'। उ०—गोस्सा मत होइए साहब!—मैला०, पृ० ३५६।

गोह¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधा] छिपकली की जाति का एक जंगली जंतु जो आकार में नेवले से कुछ बड़ा होता है।

विशेष—इसकी फुफकार में बहुत विष होता है। इसके काटने पर पहले मांस गलने लगता है और तब सारे शरीर में विष फैलने के कारण मनुष्य मर जाता है। इसका चमड़ा बहुत मोटा और मजबूत होता है जिससे प्राचीन काल में लड़ाई के समय उँगलियों की रक्षा करने के लिये दस्ताने बनते थे। कभी कभी इसके चमड़े से खँजरी भी मढ़ी जाती है। इसका मांस बहुत पुष्ट होता है और प्राचीन काल में खाया जाता था। अब भी जंगली जातियाँ गोह का मांस खाती हैं। यह दीवार में चपक जाती है और उसे बहुत कठिनता से छोड़ती है। ऐसा प्रसिद्ध है कि पहले चोर इसकी कमर में रस्सी बाँधकर इसे मकान के ऊपर फेंक देते थे और जब यह वहाँ पहुँचकर चिपक जाती थी, तो वे उस रस्सी की सहायता से ऊपर चढ़ जाते थे। गोह दो प्रकार की होती है, एक चंदन गोह जो छोटी होती है और दूसरी पटरा गोह जो बड़ी और चिपटी होती है।

गोह²—संज्ञा पुं० [सं०] १. गेह। घर। २. माँद। छिपने का स्थान [को०]।

गोह³—संज्ञा पुं० उदयपुर राजवंश के एक पूर्वपुरुष का नाम जो बाप्पा रावल से पहले हुआ था।

गोहतीत(पु)—वि० [सं० गोतीत] दे० 'गोतीत'। उ०—गुना गोहतीतं बना बास कीतं।—घट०, पृ० ३८७।

गोहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोवध।

यौ०—गोहत्या निवारण=गोवध बंद करना।

गोहन¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोधन (=गौओं का समूह)] १. संग रहनेवाला। साथी। उ०—सूरदास प्रभु मोहन गोहन की छवि बाढ़ी मेदति दुख निरखि नैन मैन के दरद को।—सूर

(शब्द०) । २. संग । साथ । उ०—(क) औराता सोने रथ साजा । भई बरात गोहन सब राजा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) भाजे कहाँ चलोगे मोहन । पीछे आइ गई तुव गोहन ।—सूर (शब्द०) ।

यौ०—गोहनलगुआ=दूसरा पति करनेवाली स्त्री के साथ जानेवाला पूर्वपति से उत्पन्न लड़का ।

गोहन²—वि० [सं०] छिपनेवाला [को०] ।

गोहनियाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० गोहन+इया (प्रत्य०)] संगी । साथी ।

गोहर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधा] बिसखोपरा नामक जंतु ।

गोहर²—संज्ञा पुं० [हिं० गौहर] दे० 'गौहर' । उ०—गोहरे मुराद का दस्तयाब होना भी आसान नहीं ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १५ ।

गोहरा—संज्ञा पुं० [सं० गो+ईल्ल या गोहल्ल या गोहल ?] [स्त्री० अल्पा० गोहरी] सुखाया हुआ गोबर जो जलाने के काम आता है । कंडा । उपला ।

गोहराना—क्रि० अ० [हिं० गोहार] पुकारना । बुलाना । आवाज देना । उ०—पारब्रह्म जेहि कह गोहराई । ताते सतगुरु भेद न पाई—घट०, पृ० २५४ ।

गोहरौर—संज्ञा पुं० [हिं० गोहरा+और (प्रत्य०)] पाथ कर रखे हुए कंडों का ढेर ।

गोहलोत—संज्ञा पुं० [गोह (नाम)] क्षत्रियों की एक जाति । वि० दे० 'गहलौत' । उ०—तोमर बैस पनवार सवाई । औ गोहलोत आय सिर नाई ।—जायसी (शब्द०) ।

गोहसम—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

गोहानी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गोंईंड़' ।

गोहार—संज्ञा स्त्री० [सं० गो+हार (हरण)] १. पुकार । दुहाई । रक्षा या सहायता के लिये चिल्लाना । उ०—धाई धारि फिरि कै गोहार हितकारी होत आई मीच मिटत जपत राम नाम को ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—प्राचीन काल में जब किसी की गाय कोइ छोड़ ले जाता था, तब वह उसकी रक्षा के लिये पुकार मचाता था ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—गोहार मारना=सहायता के लिये पुकार मचाना । गोहार लड़ना=(१) सबको ललकार कर लड़ना । गँवारों का लाठियों से लड़ना । (३) एक आदमी का कई आदमियों से लड़ना ।

२. हल्ला गुल्ला । शोर । चिल्लाहट ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।—लगना ।—लगाना ।

३. वह भीड़ जो रक्षा के लिये किसी की पुकार सुनकर इकट्ठी हो गई हो ।

गोहारि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोहार] दे० 'गोहार' ।

गोहारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोहार] १. गोहार । २. वह धन जो कोई हानि पूरी करने के लिये हो ।—(लश०) । ३. वह धन जो बंदरगाह में जहाज की आवश्यकता से अधिक रहने के कारण हरजाने के तौर पर दिया या लिया जाय ।—(लश०) ।

गोहित—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. गोरक्षक । २. विष्णु [को०] ।

गोहिर—संज्ञा पुं० [सं०] एँड़ी [को०] ।

गोहीⓊ†—संज्ञा स्त्री० [सं०Ⓤ गुह, या गूहन] १. दुराव । छिपाव । २. छिपी हुई बात । गुप्त वार्ता । उ०—अपनो बनिज दुरावत हो कत नाउँ लियो इतनो ही । कहा दुरावति हो मो आगे सब जानत तुव गोही ।—सूर (शब्द०) । ३. महुए का बीज । ४. फलों का बीज गुठली ।

गोहुँअन—संज्ञा पुं० [हिं० गोहुअन] दे० 'गोहुवन' ।

गोहुअन—संज्ञा पुं० [हिं० गोहुवन] दे० 'गोहुवन' ।

गोहुवन—संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ] एक प्रकार का विषधर साँप ।

गोहूँ—संज्ञा पुं० [सं० गोधूम] गेहूँ । उ०—गोहूँ शालि सु करै अहारा । साठी चांवर अधिक पियारा ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १०३ ।

गोहेरा—संज्ञा पुं० [सं० गोधा] बिसखोपरा नामक विषैला जंतु ।

गौंजिक, गौंजिग—संज्ञा पुं० [सं० गौञ्जिक, गौञ्जिग] १. स्वर्णकार । २. जौहरी [को०] ।

गौं—संज्ञा स्त्री० [सं० गम, प्रा० गँव] १. प्रयोजन सिद्ध होने का स्थान या अवसर । सुयोग । मौका । घात । दाँव । उ०—मनहुँ इंदु बिंब मध्य, कंज मीन खंजन लखि, मधुप मकर, कीर आए तकि तकि निज गौंहैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—ताकना ।—देखना ।

यौ०—गौं घात=उपयुक्त अवसर या स्थिति । मौका ।

२. प्रयोजन । मतलब । गरज । अर्थ । उ०—यह सखि मैं पहिले पहिले कहि राखी असित न अपने होहीं । सूर काटि जो माथो दीजै चलत आपनो गौं ही ।—सूर (शब्द०) ।

यौ०—गौं का=(१) मतलब का । काम का । प्रयोजनीय (वस्तु) । जैसे,—बाजार जाते हो; कोई गौं की चीज मिले तो लेते आना । (२) स्वार्थी । मतलबी । खुदगरज (व्यक्ति) । गौं का यार=केवल अपना मतलब गाँठने के लिये साथ में रहनेवाला । मतलबी । स्वार्थी ।

मुहा०—गौं गाँठना=अपना मतलब निकालना । स्वार्थ साधन करना । काम निकालना । गौं निकलना=काम निकलना । प्रयोजन सिद्ध होना । स्वार्थसाधन होना । उ०—अब तो गौं निकल गई; वे हमसे क्यों बोलेंगे । गौं निकालना=काम निकालना । प्रयोजन सिद्ध करना । स्वार्थ साधन करना । मतलब पूरा करना । गौं पड़ना=काम पड़ना । गरज होना । दरकार होना । आवश्यकता होना । जैसे,—हमें ऐसी क्या गौं पड़ी है जो हम उनके यहाँ जायँ । वि० दे० 'गवँ' ।

३. ढब । चाल । ढंग । उ०—कल कुंडली चौतनी चारु अति चलत मत्त गज गौं हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

गौंच—संज्ञा पुं० [हिं० कौंच] दे० 'कौंच' ।

गौंट—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा वृक्ष ।

विशेष—यह उत्तर और पश्चिम भारत में अधिकता से होता है और इसकी लकड़ी पीलापन लिए बहुत कड़ी होती है।

गौंटा[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० गाँव+टा (प्रत्य०)] १. वह खर्च जो किसी गाँव में प्रजा के विशेष लाभ के लिये, परोपकार, धर्म आदि के विचार से जमींदार की ओर से किया जाय।

विशेष—प्रायः गुमाश्तों को जमींदारों की ओर से इस प्रकार के खर्च करने का अधिकार होता है; और कभी कभी खर्च होने के बाद उसका कुछ अंश प्रजा से भी वसूल किया जाता है।

२. छोटा गाँव।

गौंटा[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० गौं+टा (प्रत्य०)] १. गौं। अवसर। घात। २. अलगाव रखना। ३. गुट बनाना।

गौंटिया—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] गाँव का प्रधान। गाँव का मुखिया। उ०—भादों की गणेश चतुर्थी को गाँव के पुराने गौंटियों के यहाँ की परंपरा के अनुसार गणेश जी की मूर्ति स्थापित की जाती है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १३८।

गौंटियाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौंटा] माफी गाँव।

गौंठिया—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] दे० 'गौंटिया'। उ०—कलचुरियों काल में गढ़ाधीशों को दीवान अथवा ठाकुर कहा जाता था और ताल्लुकाधीशों को दाऊ तथा ग्रामप्रमुख गौंठिया।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० २०१।

गौंड़ा(पु)—क्रि० वि० [हिं ग्वैंड़ा] दे० 'ग्वैंड़े'। उ०—जोगिनु पैं मृगछाला कहिऐ, सोभा कही न जाई, पहुँचे निकट जनकपुर गौंड़े, जोति दई छुड़काई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७६।

गौंनि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गोन] दे० 'गोन'। उ०—बैल उलटि नाइक कौं लाधौ वस्तु माँहि भरि गौंनि अपार।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५५२।

गौंवा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम] दे० 'गाँव'। उ०—पहिरि ओढ़ि के चली ससुररिया, गौंवा के लोग कहै बड़ी फुहरी।—कबीर श०, पृ० २४।

गौंहनि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गोहन] दे० 'गोहन-१'। उ०—मैं सासने पीव गौंहनि आई।—कबीर ग्रं०, पृ० १६४।

गौंहाँ—वि० [हिं० गाँव+हा (प्रत्य०)] गाँव संबंधी। गाँव का। देहाती।

गौ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय। गैया। वि० दे० 'गो'।

गौ[2](पु)—क्रि० अ० [हिं० गा=गया] दे० 'गया'। उ०—एक बाट गौ सिंघल दोसर लंक सदीप।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० २१३।

गौखा†—संज्ञा स्त्री० [सं० गवाक्ष] १. वह छोटी खिड़की जो दीवार या छत में हवा और रोशनी आने के लिये बनाई जाती है। झरोखा। २. वह दालान या दरवाजा जो प्रायः देहाती मकानों के दरवाजे पर बैठने आदि के लिये बना रहता है। चौपाल। उ०—बनी गौख बेजोख की मौख सो हैं। पताकानु केकी पिकी हो अरी हैं।—सूदन (शब्द०)।

गौखा[1]†—संज्ञा पुं० [सं० गवाक्ष] झरोखा। गौख।

गौखा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० गौ=गाय+खाल] गाय का चमड़ा।

गौखी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौखा] जूता।

गौगा—संज्ञा पुं० [अ० गौगाह्] १. शोर। गुल गपाड़ा। हल्ला। २. अफवाह। जनश्रुति।

गौगाई—वि० [अ० गौगह्+फा० ई (प्रत्य०)] शोर मचानेवाला। कोलाहल करनेवाला।

गौचरी—संज्ञा स्त्री० [गौ+चरना] गाय चराने का कर जो जमींदार अपनी प्रजा से लेता है और जिसके बदले वह गायों को चरने के लिये कुछ भूमि छोड़ देता है।

गौड़—संज्ञा पुं० [सं० गौड] बंग देश का एक प्राचीन विभाग। जो किसी के मत से मध्य बंगाल से उड़ीसा की उत्तरी सीमा तक और किसी के मत से वर्तमान बर्दवान के आस पास था।

विशेष—कूर्मपुराण और लिंग पुराण से जाना जाता है कि वर्तमान गोंडा के आसपास का प्रदेश, जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी, गौड़ प्रदेश कहलाता था। हितोपदेश में कौशांबी को भी इसी गौड़ प्रदेश के अंतर्गत लिया है। दसवीं और ग्यारहवीं सदी के चेदि राजाओं के ताम्रपत्रों और शिलालेखों से पता लगता है कि वर्तमान गोंडवाना के पास का देश भी गौड़ ही कहलाता था। राजतरंगिणी में 'पंचगौड़' शब्द आया है जिससे जान पड़ता है कि किसी समय पाँच गौड़ देश थे। स्कंदपुराण के सह्याद्रि खंड में से जिन जिन स्थानों के ब्राह्मणों को पंचगौड़ के अंतर्गत लिया है, वे ऊपर के बतलाए हुए स्थानों से भिन्न हैं।

२. स्कंदपुराण के सह्याद्रि खंड के अनुसार ब्राह्मणों की एककोटि जिसमें सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल और गौड़ संमिलित हैं। ३. ब्राह्मणों की एक जाति जो पश्चिमी उत्तरप्रदेश, दिल्ली के आसपास तथा राजपूताने में पाई जाती है। ४. गौड़ देश का निवासी। ५. ३६ प्रकार के राजपूतों में से एक जो उत्तर पश्चिम भारत में अधिकता से पाए जाते हैं।

विशेष—टाड साहब का मत है कि बंगाल (गौड़) के राजा इसी कोटि के राजपूत थे।

६. कायस्थों का एक भेद। ७. संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

विशेष—यह श्रीराग का पुत्र माना जाता है और इसके गाने का समय तीसरा पहर और संध्या है। इसके कान्हड़ा, गौड़, केदार गौड़, नारायण गौड़, रीति गौड़ आदि अनेक भेद हैं।

गौड़नट—संज्ञा पुं० [सं० गौडनट] संगीत में गौड़ और नट के योग से बना हुआ एक संकर राग।

गौड़पाद—संज्ञा पुं० [सं० गौडपाद] स्वामी शंकराचार्य के गुरु के गुरु जिन्होंने मांडूक्योपनिषद् पर कारिका लिखी थी और सायण कारिका का भाष्य किया था।

गौड़पादाचार्य—संज्ञा पुं० [सं० गौडपादाचार्य] दे० 'गौड़पाद'।

गौड़मल्लार—संज्ञा पुं० [सं० गौडमल्लार] गौड़ और मल्लार के योग से बना हुआ एक संकर राग।

विशेष—यह प्रायः वर्षा ऋतु में रात के दूसरे पहर गाया जाता है। कुछ लोग इसे मल्लार राग की रागिनी भी मानते हैं।

गौड़सारंग—संज्ञा पुं० [सं० गौड सारङ्ग] गौड़ और सारंग के योग से बना हुआ एक संकर राग।

विशेष—यह ग्रीष्म ऋतु में दोपहर से पहले गाया जाता है। इसमें ऋषभ वादी और मध्यम संवादी होता है और यह वीर तथा शांत रस के वर्णन के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता है।

गौडिक¹—वि० [सं०] १. गुड़ से संबंधित। २. गुड़ का (को०)।

गौडिक²—संज्ञा पुं० १. ईख। २. एक प्रकार की गुड़ की शराब (को०)।

गौड़िया—वि० [हिं० गौड़+इया (प्रत्य०)] १. गौड़ देश का। गौड़ देश संबंधी। २. गौड़ जातीय। गौड़। उ०—मधुसूदनदास गौडिया ब्राह्मन वृंदावन में रहते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १८८।

यौ०—गौड़िया संप्रदाय=चैतन्य महाप्रभु का चलाया हुआ वैष्णव संप्रदाय।

गौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गौडी] १. एक प्रकार की मदिरा जो गुड़ से बनती है। वैद्यक में इसे वात और पित्तनाशक, बल और कांतिवर्द्धक, दीपन, पथ्य और रुचिकर कहा है। २. काव्य में एक प्रकार की रीति या वृत्ति जिसे परुषा भी कहते हैं। यह ओजगुणप्रकाशक मानी जाती है और इसमें टवर्ग, संयुक्त अक्षर अथवा समास अधिक आते हैं; जैसे,—(क) कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वक्र वक्र करि पुच्छ करि रुष्ट ऋच्छ कपि गुच्छ। सुभट ठट्ट घन घट्ट सम मर्दहिं रच्छन तुच्छ—(शब्द०)। ३. संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो रात के पहले पहर में गाई जाती है।

विशेष—कुछ लोग इसे कल्याण राग का एक भेद मानते हैं। यह वीर और श्रृंगार रस के वर्णन के लिये बहुत उपयुक्त होती है।

गौड़ीय¹—वि० [सं० गौडीय] [वि० स्त्री० गौडीया] १. गौड़ देश से संबंधित। २. (साहित्यिक रचना) जिसमें गौड़ी वृत्ति प्रधान हो (को०)।

यौ०—गौडीया वृत्ति।

गौड़ीय²—संज्ञा पुं० गौड़ देश का व्यक्ति (को०)।

गौड़ीय भाषा—संज्ञा पुं० [सं० गौडीय भाषा] बँगला भाषा (को०)।

गौड़ेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० गौडेश्वर] कृष्णचैतन्य स्वामी जिन्हें गौरांग महाप्रभु भी कहते हैं।

गौण—वि० [सं०] जो प्रधान या मुख्य न हो। २. सहायक। संचारी। ३. गुण संबंधी (को०)।

गौणचांद्र—संज्ञा पुं० [सं० गौडचान्द्र] दो प्रकार के चांद्र मासों में से एक जो किसी मास की कृष्ण प्रतिपदा से उस मास की कृष्ण पूर्णिमा तक होता है। इसका मान प्रायः उत्तर में ही अधिक है।

गौणपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] साधारण पक्ष। किसी विषय का वह पक्ष जो अप्रधान या महत्वहीन हो (को०)।

गौणिक—वि० [सं०] १. जिससे वाच्य का गुण प्रकाशित हो। गुणद्योतक। २. सत्, रज, तम आदि गुणों से संबंध रखनेवाला। ३ गुणी ४. एक प्रकार के बोरे या गौन से संबंध रखनेवाला (को०)।

गौणी¹—वि० स्त्री० [सं०] अप्रधान। साधारण। जो मुख्य न मानी जाय।

गौणी²—संज्ञा स्त्री० अस्सी प्रकार की लक्षणाओं में से एक जिसमें केवल किसी वस्तु का गुण लेकर दूसरे में आरोपित किया जाता है। जैसे,—कल्पवृक्ष हैं अवधपति जगजाहर यशवंत। इस पद में कल्पवृक्ष के मुख्य गुण उदारता को अवधपति में आरोपित कर उसी के द्वारा उनका जगत के यशस्वी होना प्रकट किया गया है। यहाँ कल्पवृक्ष शब्द में गौणी लक्षणा है। साहित्यदर्पण के अनुसार 'सादृश्यात्तु मता गौणी' अर्थात् सादृश्य संबंध ही प्रयोजक हो तो गौणी लक्षणा होती है।

गौणी³—संज्ञा स्त्री० [सं० गौणिक] दे० 'गौन'।

गौतम—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोतम ऋषि के वंशज। २. न्याय शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य और प्रणेता एक ऋषि।

विशेष—यह ईसा से प्रायः ६०० वर्ष पहले हुए थे।

३. रामायण, महाभारत और पुराणों आदि के अनुसार एक ऋषि।

विशेष—इन्होंने अपनी स्त्री अहिल्या को इंद्र के साथ अनुचित संबंध करने के कारण शाप देकर पत्थर बना दिया था, जिसका उद्धार भगवान् रामचंद्र ने किया था।

४. बुद्धदेव का एक नाम। ५. सप्तर्षिमंडल के तारात्रों में से एक। ६. एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह नासिक के पास है और इसमें से गोदावरी नदी निकलती है।

७. क्षत्रियों का एक भेद। ८. भूमिहारों का एक भेद। ९. एक ऋषि जिन्होंने स्मृति बनाई है। १०. गौतम ऋषि के पुत्र शतानंद (को०)। ११. कृपाचार्य (को०)। १२. एक विष (को०)।

गौतमतिय(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गौतम+हिं० तिय] गौतमपत्नी। अहिल्या। उ०—गौतमतिय तारन चरन कमल आनि उर देपु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८४।

गौतमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या। २. कृपाचार्य की स्त्री जो प्रसिद्ध तपस्विनी थी। ३. गोदावरी नदी जो गौतम नामक पर्वत से निकली है। ४. गौतम ऋषि की बनाई हुई स्मृति। ५. दुर्गा का एक नाम। ६. बुद्ध के उपदेश (को०)। ७. गोरोचन (को०)। ८. दुर्गा (को०)।

गौता(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० गोता] दे० 'गोता'। उ०—सुंदर अंदर पैसि करि दिल मौं गौता मारि।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८७।

गौंद—संज्ञा पुं० [हिं० घौद] दे० 'घौद'।

गौदा—संज्ञा पुं० [हिं० घौद] दे० 'घौद'।

गौदान—संज्ञा पुं० [हिं० गोदान] दे० 'गोदान'।

गौदुमा—वि० [हिं० गौ+दुम+आ (प्रत्य०)] गाय की पूँछ के आकार का। जो एक ओर अधिक मोटा हो और दूसरी ओर क्रमशः कम होता जाय। उतार चढ़ाव का। गावदुम।

गौधार, गौधेय, गौधेर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोधिकात्मज' (को०)।
गौधूमीन—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ का खेत। गेहूँ का मैदान या क्षेत्र (को०)।
गौन[1]†—संज्ञा पुं० [सं० गमन, प्रा० गमण, गवण] दे० 'गमन'।
गौन[2]—संज्ञा पुं० [अं० गाउन] दे० 'गाउन'।
गौन†[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० गौणिक, प्रा० गोण] एक प्रकार का वोरा।
विशेष—इसको किसान स्वयं ही रस्सियों से बिनकर तैयार करते हैं।
गौन[4]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० गौण] दे० 'गौण'। उ०—या प्रकार श्री गुसाईं जी आप भक्ति मार्ग के रक्षक हैं। यह गौन भाव है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११३।
गौनई†—संज्ञा स्त्री० [सं० गायन] गान। संगीत।
गौनर्द—संज्ञा पुं० [सं०] महाभाष्यकार पतंजलि (को०)।
गौनहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौनहरी] दे० 'गौनहारी'।
गौनहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौन (=गाना)+हरी (प्रत्य०)] दे० 'गौनहारी'।
गौनहाई†—वि० [हिं० गौना+हाई (प्रत्य०)] जिसका गौना हाल में हुआ हो। जो गौना होने के बाद ससुराल में पहले पहल आई हो। उ०—एती चतुराई धौं कहाँ ते पाई रघुनाथ हौं तो देखि रीझ रही गौनहाई तिय की।—रघुनाथ (शब्द०)।
गौनहार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौना+हार (प्रत्य०)] वह स्त्री जो दुलहिन के साथ उसके ससुराल जाय।
गौनहारिन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गौनहारी'।
गौनहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०गाना+हारी (=वाली)] एक प्रकार की गानेवाली स्त्रियाँ जो कई एक साथ मिलकर ढोलक पर या शहनाई आदि पर गाती हैं। इनकी कोई विशेष जाति नहीं होती। प्रायः घर से निकली हुई छोटी जाति की स्त्रियाँ ही आकर इसमें सम्मिलित हो जाती हैं और गाने बजाने तथा कसव कमाने लगती है।
गौना—देश० पुं० [सं० गमन] विवाह के बाद की एक रस्म जिसमें वर अपने ससुराल जाता है और कुछ रीति रस्म पूरी करके वधू को अपने साथ ले आता है। द्विरागमन। मुकलावा। उ०— तुलसी जिनकी धूर परसि अहल्या तुरी गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।—तुलसी (शब्द०)।
मुहा०— गौना देना=वधू को वर के साथ पहले पहल ससुराल भेजना। गौना लाना=वर का अपने ससुराल जाकर वधू को अपने साथ ले आना।
क्रि० प्र०—लेना।—माँगना।
विशेष—पूरब में 'गौने जाना' और 'गौने आना' आदि भी बोलते हैं।
गौनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० गमन] दे० 'गमन'। उ०—मनु कोमल पग गौनि चुकरगन फूल पाँवड़े डारें।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४६।
गौनियाँⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० गौणिक] दे० 'गौन[3]'। उ०—काहेक टटुआ काहेक पाखर काहेक भरी गौनियाँ।—कबीर श०, पृ० ३२।
गौपिक—संज्ञा पुं० [सं०] गोपी का पुत्र। ग्वाले का पुत्र (को०)।
गौपुच्छ—वि० [सं०] गाय की पूँछ के समान (को०)।
गौपुच्छिक—वि० [सं०] गाय की पूँछ से संबंधित।
गौप्तेय—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्य स्त्री का पुत्र (को०)।
गौमुख—संज्ञा पुं० [सं० गोमुख] दे० 'गोमुख'।
गौमुखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोमुख+ई (प्रत्य०)] गौ के मुख के आकार की बनी हुई थैली जिसमें माला रखकर जप करते हैं। वि० दे० 'गोमुखी'।
गौमेद—संज्ञा पुं० [सं० गोमेद] एक प्रकार का रत्न जो चार रंग का होता है—श्वेत, पीताभ, लाल और गहरा नीला। इसकी गणना उपरत्नों में होती है।
गौमोदिकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० गोमेदक] दे० 'गोमेद'। उ०—पदिपन्ना मानिक मँगवाए। गौमोदिक लीलागन ल्याए।—प० रासो० पृ०, २२।
गौरंड—संज्ञा पुं० [सं० गौराङ्ग] गोरों का देश। विलायत।
गौर[1]—वि० [सं०] १. गोरे चमड़ेवाला। गोरा। २. श्वेत। उज्ज्वल। सफेद।
गौर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल रंग। २. पीला रंग। ३. चंद्रमा। ४. धव नाल का पेड़। ५. सोना। ६. याज्ञवल्क्य के अनुसार एक प्रकार का बहुत छोटा मान जो तौलने के काम आता और प्रायः तीन सरसों के बराबर होता है। ७. केसर। ८. एक प्रकार का मृग जिसके खुर बीच से फटे नहीं होते। ९. सफेद सरसों। १०. चैतन्य महाप्रभु का एक नाम। ११. एक पर्वत जो ब्रह्मांडपुराण के अनुसार कैलास के उत्तर में है। १२. एक प्रकार का भैंसा (को०)। १३. बृहस्पति ग्रह (को०)।
गौर[3]—संज्ञा पुं० [सं० गौड] दे० 'गौड़'।
गौर[4]—संज्ञा पुं० [अ० ग़ौर] १. सोचविचार। चिंतन। २. खयाल। ध्यान। उ०—सो दीसै सब ठौर व्याप रह्यो मन माहिं जो। सज्जन करिकै गौर वाही को निज जानिए।—रसनिधि (शब्द०)।
यौ०—गौर से=ध्यानपूर्वक। ध्यान देकर।
गौर[5]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] पार्वती। उ०—जनम हुकै जगजीत री सुप्रसन संकर गौ।—रा० रू०, पृ० २१।
गौरक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान (को०)।
गौरक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] गायों की रक्षा। गोपालन (को०)।
गौरग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक देश जो कूर्मविभाग के मध्य में है।
गौरचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० गौरचन्द्र] महाप्रभु चैतन्य देव (को०)।
गौरतलब—वि० [अ० ग़ौरतलब] गौर करने योग्य। विचारणीय।
गौरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोराई। गोरापन। २. सफेदी।
गौरमदाइनिⓅ—संज्ञा पुं० [देश०] इंद्रधनुष। उ०—धनु है यह गौरमदाइनि नाहीं। शर जाल बहै जलधार वृथा हीं।—रामचं०, पृ० ८८।
गौरव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़प्पन। महत्व। २. गुरुता। भारीपन।

३. संमान। आदर। इज्जत। ४. उत्कर्ष। ५. अभ्युत्थान। ६. छंदःशास्त्र में गुरु होने का भाव या स्थिति (को०)।

गौरव[2]—वि० गुरु संबंधी [को०]।

गौरवर्ण—वि० [सं०] गोरे रंग का। गोरा।

गौरवशाली—वि० [सं० गौरवशालिन्] संमानपूर्ण। गौरवमय।

गौरवा[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० गौरिया] चटक पक्षी। चिड़ा।

गौरवा[2]—वि० [सं० गौरव] गौरवयुक्त। गौरवमय। बड़ा। उ०—करै मेराव सोइ गौरवा।—जायसी ग्रं०, पृ० १५८।

गौरवान्वित—वि० [सं०] संमानप्राप्त। गौरवयुक्त।

गौरवासन—संज्ञा पुं० [सं०] गौरवपूर्ण पद। संमानित पद [को०]।

गौरवास्पद—वि० [सं०] गौरवपूर्ण। संमानित। उ० वीरपुरुष युद्धक्षेत्र से भागकर अपमानित एवं वितारित होने की अपेक्षा वहीं मर जाना अधिक गौरवास्पद समझते हैं।—शैली, पृ० १४३।

गौरवित—वि० [सं०] गौरवान्वित। संमानपूर्ण [को०]।

गौरशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालिधान्य।

गौरशालि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालिधान्य।

गौरवशाली—वि० [सं० गौरवशालिन्] [वि० स्त्री० गौरवशालिनी] गौरवमय [को०]।

गौरसुवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जो चित्रकूट के तर स्थानों में अधिकता से होता है।

विशेष—इसके पत्ते छोटे और सुनहले होते हैं और हाथ में लेकर मलने से उनके बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं जिनमें से बहुत अच्छी गंध निकलती है। वैद्यक में यह शीतल और त्रिदोष ज्वर तथा थकावट को दूर करनेवाला माना गया है।

गौरांग[1]—संज्ञा पुं० [सं० गौराङ्ग] १. विष्णु। २. श्रीकृष्ण। ३. चैतन्य महाप्रभु।

गौरांग[2]—वि० गोरे रंग वाला (योरप का, विशेषतया अंग्रेज)।

गौरांगमहाप्रभु—संज्ञा पुं० [सं० गौराङ्ग महाप्रभु] चैतन्य महाप्रभु। २. (व्यंग्य में) अंग्रेज।

गौरांगी[1]—वि० [सं० गौराङ्गी] १. गोरी। २. सुंदरी [को०]।

गौरांगी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगरेज स्त्री। मेम।

गौरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० गौर का स्त्री०] १. गोरे रंग की स्त्री। २. पार्वती। गिरजा। ३. हल्दी। ४. एक रागिनी जिसे कुछ लोग श्री राग की स्त्री मानते हैं।

गौरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० गोरोचन] गोरोचन नामक सुगंधित द्रव्य। उ०—रचि रचि राखे चंदन चौरा। पोते अगर मेद औ गौरा।—जायसी (शब्द०)।

गौराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कौवा [को०]।

गौरार्द्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अफीम, संखिया, कनेर आदि स्थावर विष।

गौरास्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बंदर [को०]।

गौराहिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

गौरि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आंगिरस ऋषि।

गौरि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] दे० 'गौरी'।

गौरि†[3]—संज्ञा पुं० [अ० गौर] दे० 'गौर'। उ०—फते अली सौं रारि है जो कछु करनी गौरि।—सुजान०, पृ० १७।

गौरिक[1]—वि० [सं०] गोरा [को०]।

गौरिक[2]—संज्ञा पुं० सफेद सरसों [को०]।

गौरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्वाँरी लड़की। गौरी [को०]।

गौरिवर—संज्ञा पुं० [हिं० गौरि+वर] महादेव। शंकर। उ०—शिव शिव हर शंकर गौरिवर गंगाधर हर हर कहत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११६।

गौरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गौर+इया (प्रत्य०)] १. काले रंग का एक प्रकार का जलपक्षी।

विशेष—इसका सिर भूरा और गर्दन सफेद होती है। ऋतुभेदानुसार इसकी चोंच का रंग बदला करता है।

२. मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का छोटा हुक्का। ३. एक प्रकार का मोटा कपड़ा।

गौरिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. सफेद सरसों। २. लौहचूर्ण। लोहे का चूरा [को०]।

गौरिष्य—संज्ञा पुं० [सं० गौरीश] शिव। महादेव। उ०—कहुँ ध्यान गौरिष्य को इष्ट धारै।—प० रासो, पृ० १७६।

गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोरे रंग की स्त्री। २. पार्वती। गिरिजा।

विशेष—इस अर्थ में गौरी शब्द के बाद पतिवाची शब्द लगाने से 'शिव' और पुत्रवाची शब्द लगाने से 'गणेश' या 'कार्तिकेय' अर्थ होता है।

३. आठ वर्ष की कन्या। ४. हल्दी। ५. दारुहल्दी। ६. तुलसी। ७. गोरोचन। ८. सफेद दूब। ९. सफेद रंग की गाय। १०. मजीठ। ११. गंगा नदी। १२. चमेली। १३. सोन कदली। १४. प्रियंगु नाम का वृक्ष १५. पृथिवी। १६. बुद्ध की एक शक्ति का नाम। १७. शरीर की एक नाड़ी। १८. एक बहुत प्राचीन नदी जो पूर्व काल में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर थी और जिसका वर्णन वेदों और महाभारत में आया है। १९. गुड़ से बनी हुई शराब। गौड़ी। २०. वरुण की पत्नी (को०)। २१. वाणी (को०)। २२. एक प्रकार का राग जिसे गौरी राग कहते हैं। उ०—मुरली में गौरी धुनि ढोरी घनआनंद तें, तेरे द्वार ठठकनि उदम घने ठनै।—घनानंद, पृ० १२५। २३. अनाहत चक्र की आठवीं मात्रा।

गौरीकांत—संज्ञा पुं० [सं० गौरीकान्त] शिव [को०]।

गौरीगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय [को०]।

गौरीचंदन—संज्ञा पुं० [सं० गौरीचन्दन] लाल चंदन।

गौरीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभ्रक। २. कार्तिकेय। ३. गणेश।

गौरीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

गौरीपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव जी की जलहरी जिसे जलधरी या अरघा भी कहते हैं।

गौरीपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियंगु का वृक्ष।

गौरीबेंत - संज्ञा पुं० [हिं० गौरी+बेंत] एक प्रकार का बेंत जिसे पक्का बेंत कहते हैं ।

गौरीभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० गौरी+भर्तृ] शिव (को०) ।

गौरीललित—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल ।

गौरीवर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

गौरीशंकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । शिव । २. हिमालय पर्वत की सबसे ऊँची चोटी का नाम ।

गौरीश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

गौरीशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत की वह चोटी जिसपर पार्वती जी ने तपस्या की थी [को०] ।

गौरीसर—संज्ञा पुं० [?] हंसराज नाम की बूटी । सँमलपत्ती ।

गौरुतल्पिक—संज्ञा पुं० [सं०] गुरुपत्नी से अनुचित संबंध रखनेवाला शिष्य [को०] ।

गौरूबटा— संज्ञा स्त्री० [देश०] करमर्द या अमली नाम का झाड़ीदार पौधा । वि० दे० करमर्द' ।

गौरैया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौरिया] दे० 'गौरिया' ।

गौलक्षणिक—संज्ञा पुं० [सं०] गाय बैलों के अच्छे बुरे लक्षणों को पहचाननेवाला [को०] ।

गौला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौरी । पार्वती । गिरिजा ।

गौलिक संज्ञा पुं० [सं०] १. मुष्कक नामक वृक्ष । २. एक प्रकार का वृक्ष [को०] ।

गौलोचनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गोरोचन' । उ०--गौलोचन गौ सीस भिरग मद नाभि ते जानो ।--पलटू०, भा० १, पृ० ६६ ।

गौल्मिक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० सिपाहियों का नायक या अफसर ।

गौल्य--संज्ञा पुं० [सं०] १. शरबत । २. शराब [को०] ।

गौविंदⓅ--संज्ञा पुं० [सं० गोविन्द] दे० 'गोविंद' । उ०--पेतरपाल को पूजे कौनं । जो परिहरि गोविंदह मौनं ।--पृ० रा०, ७ । २६ ।

गौशतिक—वि० [सं०] सौ गायों को रखनेवाला [को०] ।

गौशाला--संज्ञा पुं० [सं० गोशाला] दे० 'गोशाला' ।

गौशृंग—संज्ञा पुं० [सं० गोशृङ्ग] एक प्रकार का सामगान ।

गौष्ठीन--संज्ञा पुं० [सं०] पुरानी गोशाला का स्थान [को०] ।

गौसⓅ—संज्ञा पुं० [अ० गौस] १. वली से बड़ा पद रखनेवाला मुसलमान । २. मुसलमानों की उपाधि । उ०— गौस औ कुतुब दिल फिकिर का करैं ।--कबीर रे०, पृ० २१ ।

गौसम--संज्ञा पुं० [हिं० कोसम] कोसम नाम का पेड़।

गौसहस्रिक--वि० [सं०] सहस्र गायें रखने या पालनेवाला [को०] ।

गौहनⓅ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गोहन' । उ०—देखि रूप घन छाया करही । पसु पंछी सब गौहन फिरहीं । —नंद० ग्रं०, पृ० १२० ।

गौहनिⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'गोहन' । उ०—गौहनि लागा धाइ ।--कबीर ग्रं०, पृ० १० ।

गौहर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मोती । मुक्ता । २. ज़ौहर ।

गौहराⓅ--संज्ञा पुं० [हिं० गौ+हरा] गायों के रहने का स्थान । गोंड़ा ।

गौह्यक—वि० [सं०] गुह्यकों से संबंध रखनेवाला (को०) ।

ग्मा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी (को०) ।

ग्यांविर—संज्ञा पुं० [देश०] कीकर की जाति का एक पेड़ जिसके पत्तों और लकड़ियों से पपड़िया खैर बनाया जाता है ।

ग्यांनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्ञान' । उ०--ग्यांन ध्यान धारना धरि धरि समाधि देखे पै न देखे ।—घनानंद, पृ० ४३७ ।

ग्यानⓅ—क्रि० अ० [हिं० गया] दे० 'गया' । उ०—हेरा ग्या ऊँमर कन्हइ, कहिजइ एही बात ।—ढोला०, दू० ६२६ ।

ग्यान† —संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान] दे० 'ज्ञान' ।

ग्याभनⓅ†--वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'गाभिन' । उ० हे पिता, जब यह कुटी के निकट चरनेवाली ग्याभन हरिनी क्षेमकुशल से जने, तुम किसी के हाथों यह मंगल समाचार मुझे कहला भेजना, भूल मत जाना ।—शकुंतला, पृ० ७४ ।

ग्यारमैंⓅ—वि० [सं० एकादश] ग्यारहवाँ । उ०--पंच दुग्र थान परि सोम भोम । ग्यारमैं राह खल करन होम ।—पृ० रा०, १ । ७०८ ।

ग्यारस†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्यारह] एकादशी तिथि ।

ग्यारह[१]—वि० [सं० एकादश, प्रा० एगारस] दस और एक ।

ग्यारह[२]—संज्ञा पुं० दस और एक की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—११ ।

ग्यारहजीवⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० ग्यारह+जीव] ग्यारह भक्त । वे ये हैं–ध्रुव, प्रल्हाद, गणिका, शेषनाग, गज, नामदेव, वाल्मीकी अजामील, शिव, गोपियाँ (या मीरा) और तुलसी ।

ग्यारहवाँ—वि० [हिं० ग्यारह+वाँ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० ग्यारहवीं] ग्यारह की संख्यावाला । वह जो दस के बाद आए ।

ग्याराⓅ—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह' । उ०—तिय वियोग ऋषि तन तज्यौ ग्यारा से चालीस ।—ह० रासो, पृ० २६ ।

ग्रंथ--संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ] १. पुस्तक । किताब ।

यौ०—ग्रंथकार । ग्रंथकर्ता । ग्रंथसाहब । ग्रंथसंधि, आदि ।

२. गाँठ देना या लगाना । ग्रंथन । ३. धन । ४ अनुष्टुप् छंद में रचित काव्य (को०) ।

ग्रंथकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थकर्तृ] पुस्तक बनाने या लिखनेवाला । ग्रंथ की रचना करनेवाला ।

ग्रंथकार —संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थकार] दे० 'ग्रंथकर्ता' ।

ग्रंथकुटी, ग्रंथकूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थकुटी, ग्रन्थकूटी] पुस्तकालय (को०) ।

ग्रंथकृत—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थकृत्] ग्रंथकार (को०) ।

ग्रंथचुंबक--संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ+चुम्बक(=चूमनेवाला)] जो किसी विषय का पूर्ण विद्वान् न हो। जो ग्रंथों का केवल पाठ मात्र कर गया हो, उसके विषय को न समझा हो । अल्पज्ञ । उ०—

साधारण योग्यतावाले ग्रंथचुंबकों की उसके सामने मुँह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।—सौ अजान एक सुजान (शब्द०)।

ग्रंथचुंबन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ + चुम्बन] पुस्तक का पाठ मात्र। किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना।

ग्रंथन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थन] दो चीजों को इस प्रकार जोड़ना कि गाँठ पड़ जाय। २. जोड़ना। ३. गूँथना।

ग्रंथमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थमाला] एक शृंखला या क्रम में प्रकाशित विशिष्ट पुस्तकें [को०]।

ग्रंथलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थ+लिपि] एक प्रकार की लिपि जो दक्षिण में प्रचलित है।

विशेष—'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' की भूमिका (पृ० ४३) में इसके संबंध में कहा गया है कि यह लिपि मद्रास के इहाते के उत्तरी और दक्षिणी आर्काट, सलेम, त्रिचनापल्ली, मदुरा और तिन्नेवेल्लि जिलों में मिलती है। ई० स० की सातवीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक इसके कई रूपांतर होते होते इससे वर्तमान ग्रंथलिपि बनी और उससे वर्तमान मलयालम और तुलु लिपियाँ निकलीं।

ग्रंथसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थसन्धि] ग्रंथ का विभाग। जैसे,—सर्ग, परिच्छेद, अध्याय, अंक, पर्व आदि।

ग्रंथसाहब—संज्ञा पुं० [हिं० ग्रन्थ+साहब] सिक्खों की धर्मपुस्तक जिसमें सब गुरुओं के उपदेश एकत्र किए हुए हैं।

ग्रंथांतर—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थान्तर] अन्य ग्रंथ। भिन्न ग्रंथ [को०]।

ग्रंथागार—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थागार] वह स्थान जहाँ विविध विषयों की पुस्तकें एकत्र हों। पुस्तकालय [को०]।

ग्रंथालय—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थालय] पुस्तकालय।

ग्रंथावलि, ग्रंथावली—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थावलि, ग्रन्थावली] दे० 'ग्रंथालय' [को०]।

ग्रंथावलोकन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थावलोकन] ग्रंथ का अध्ययन। पुस्तक का पढ़ना [को०]।

ग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि] १. गाँठ। २ बंधन। ३. मायाजाल। ४. ग्रंथिपर्ण नाम का वृक्ष। एक प्रकार का रोग जो खून बिगड़ जाने के कारण होता है और जिसमें गोल गाँठों की तरह सूजन हो जाती है। ये गाँठें प्रायः पक जाती हैं और चिरवानी पड़ती हैं। ६. आलू। ७. भद्रमोथा। ८. कुटिलता। ९. गुठली (को०)। १०. ईख, बाँस आदि की गाँठ (को०)। ११. शरीर के अंगों का जोड़ (को०)। १२. शरीर के अंदर की वे गाँठें जिनसे एक प्रकार के रस का स्राव होता है (को०)। १३. अंटी (को०)। १४. गिरह (को०)।

ग्रंथिक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिक] १. पिपरामूल। २. ग्रंथिपर्ण या गठिवन नामक वृक्ष। ३. गुग्गुल। ४. करीर। ५. ज्योतिषी (को०)। ६. नकुल का अज्ञातवास के समय का नाम (को०)। ७. सहदेव का नाम (को०)।

ग्रंथिच्छेदक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिच्छेदक] जेब काटनेवाला। गिरहकट [को०]।

ग्रंथित—वि० [सं० ग्रन्थन] १. गूँथा हुआ। २. गाँठ दिया हुआ। जिसमें गाँठ लगी हो। उ०—(क) जैसो कियो तुम्हारे प्रभु अलि तैसो भयो ततकाल। ग्रंथित सूत धरत तेहि ग्रीवा जहाँ धरत बनमाल।—सूर (शब्द०)। (ख) मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रंथित चूनरी पीत पिछौरी।—तुलसी (शब्द०)।

ग्रंथिदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिदूर्वा] गाडर दूब।

ग्रंथिपत्र—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपत्र] चोरक नाम का गंधद्रव्य।

ग्रंथिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपर्ण] गठिवन का पेड़।

ग्रंथिपर्णक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपर्णक] एक प्रकार का सुगंधित पौधा [को०]।

ग्रंथिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिपर्णी] गाडर दूब।

ग्रंथिफल—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिफल] १. कैथ का पेड़। २. मैनफल का पेड़।

ग्रंथिबंधन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिबन्धन] विवाह के समय वर और कन्या के कपड़ों के कोनों को परस्पर गाँठ देकर बाँधने की क्रिया। गँठबंधन।

ग्रंथिभेद—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिभेद] १. गिरहकट। गँठकटा। २. वह चोरी जो द्रव्य के साथ बँधी गाँठ काटकर की जाय। गाँठ काटना। गिरहकटी।

ग्रंथिमान[1]—वि० [सं० ग्रन्थिमत्] बँधा हुआ। ग्रंथित [को०]।

ग्रंथिमान[2]—संज्ञा पुं० एक वृक्ष [को०]।

ग्रंथिमूल—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिमूल] सलगम, गाजर, मूली आदि मूल जो गाँठों के रूप में जमीन के अंदर होते हैं।

ग्रंथिमूला—स्त्री० [सं० ग्रन्थिमूला] माला दूब।

ग्रंथिमोचक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिमोचक] गँठकटा। गिरहकट [को०]

ग्रंथिल[1]—वि० [सं० ग्रन्थिल] गाँठदार। गँठीला।

ग्रंथिल[2]—संज्ञा पुं० १. करील वृक्ष। २. पिपरामूल। ३. अदरक। आदी। ४. कँटाय नामक कटीला वृक्ष जिसकी लकड़ी के प्राचीन काल में यज्ञपात्र बनते थे। इसकी पत्तियाँ छोटी और फल बेर के बराबर गोल होते हैं जो दवा के काम आते हैं। ५. चौराई का साग। ६. आलू। ७. चोरक नामक गंधद्रव्य।

ग्रंथिला—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिला] १. गाडर दूब। २. माला दूब। ३. भद्रमोथा।

ग्रंथिहर—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिहर] मंत्री [को०]।

ग्रंथी[1]—वि० [सं० ग्रन्थिन्] १. अनेक पुस्तकों का अध्येता। २. पुस्तकीय ज्ञान से संपन्न। ३. अनेक ग्रंथ रखनेवाला [को०]।

ग्रंथी[2]—संज्ञा पुं० १. ग्रंथकार। २. ग्रंथ का पाठ करनेवाला [को०]।

ग्रंथीक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थीक] पिपरामूल।

ग्रंदप(9)†—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व] दे० 'गंधर्व'। उ०—सुरगण ग्रंदप सुपह उहै बध तासु छुड़ाएँ।—रघु० रू०, पृ० ४८।

ग्रंध्रप(9)†—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व] दे० 'गंधर्व'। उ०—तेतीस करोड़ देवता इठ्यासी हजार ऋषी विद्याधर ग्रंध्रप, जस आद देस देस रा राजा बैठा है।—रघु० रू०, पृ० २४२।

ग्रंस†—संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथि=कुटिलता] १.कुटिलता। छल कपट। उ०—सखी री मथुरा में द्वै हंस। वै अक्रूर ए उधौ सजनी जानत नीके गंस।—सूर (शब्द०)। २. वह जो छल कपट करता हो। कुटिल। ३.दुष्ट। उपद्रवी।

ग्रज्जंत(पु)—वि० [सं० गर्जन्त] गरजता हुआ। उ०—हलमिलग सेन वे वाह वीर। वरसें अनंग ग्रज्जंत धीर।—पृ० रा०, १।६५६।

ग्रज्जना(पु)—क्रि० अ० [सं० गर्जन] गर्जन करना। गंभीर और जोर का शब्द करना। उ०—भरं सीस तुट्टं बिछुट्टं विहारं। करैं गल्ल ग्रज्जें पिसाचं चिहारं।—पृ० रा०, १२।१०४।

ग्रथन—संज्ञा पुं० [सं०] १.ग्रंथन। गूँथने की क्रिया। २.एक जगह नत्थी करना। ३.जमा का कार्य। गाढ़ा करना। ग्रंथ-रचना करना। लिखना [को०]।

ग्रथित१—वि०[सं०] १.एक जगह नत्थी किया हुआ या बाँधा हुआ। ग्रंथित। उ०—प्रतिक्षण में उलझा है कल्पों का ग्रथित जाल। —अपलक०, पृ० ८७। रचा हुआ। रचित। ३. क्रमबद्ध। श्रेणीबद्ध। वर्गीकृत। ४. जमा हुआ। गाढ़ा किया हुआ। ५. आहत। क्षत। ६.अधिकृत। ७.वर्जित। ८. गाँठ युक्त। गाँठवाला [को०]।

ग्रथित२—संज्ञा पुं० कठिन गाँठवाली गिल्टी [को०]।

ग्रभ१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गर्भ] दे० 'गर्भ'। उ०—मास सपत अजमाल मात ग्रभ वास महावल।—रा० रू०, पृ० २५।

ग्रभ२(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गर्व] दे० 'गर्भ'। उ०—गिरतनयापत सिख ग्रभ गंजण सुध निस वासर सेवै।—रघु० रू०, पृ० २५।

ग्रम्भनी(पु)—वि० स्त्री० [सं० गर्भिणी] गर्भवती। हामिला। उ०—पुरसान थान खलभल परिय। ग्रम्भपात भय ग्रम्भनिय। —पृ० रा० १।७१६।

ग्रसन—संज्ञा पुं० [सं०] १.भक्षण। निगलना। २.पकड़। ग्रहण। ३.खाने के लिये पकड़ना। इस प्रकार चंगुल में फाँसना जिसमें छूटने न पावे। ४.ग्रास। ५.एक असुर का नाम। ६. ग्रहण। ७. दस प्रकार के ग्रहणों में से एक जिसमें चंद्र या सूर्यमंडल पाद, अर्द्ध या त्रिपाद ग्रस्त हो।

विशेष—फलित ज्योतिप के अनुसार ऐसे ग्रहण का फल घमंडी राजाओं का धननाश और घमँडी देशों का पीड़ित होना है।

८. मुख। जबड़ा (को०)।

ग्रसना—क्रि० स० [सं० ग्रसन] १. बुरी तरह पकड़ना। इस प्रकार पकड़ना कि छूटने न पावे। उ०—टेढ़ जानि शंका सब काहू। वक्र चंद्रमा ग्रसै न राहू।—तुलसी (शब्द०)। २.सताना।

ग्रसपति—संज्ञा पुं० [सं०] एक सीधी पंक्ति में पत्थरों पर खोदी हुई मनुष्यमुख की आकृतियाँ।

विशेष—इसका व्यवहार प्राचीन काल में देवमंदिरों में शोभा के लिये होता था।

ग्रसान—वि० [हिं० ग्रसना] 'दे० 'ग्रस्त'। उ०—तिन मुख सोम मिल चाहुवान। मानो कि रिष्पि दरिया ग्रसान।—पृ० रा०, १।६६३।

ग्रसित—वि० [सं० ग्रस्त] दे० 'ग्रस्त'।

ग्रसिष्णु१—वि० [सं०] निगलने का अभ्यस्त। २. ग्रसनशील [को०]।

ग्रसिष्णु२—संज्ञा पुं० ब्रह्म [को०]।

ग्रस्त—वि० [सं०] १. पकड़ा हुआ। २. पीड़ित। ३. खाया हुआ। ४. आधे उच्चारण किए हुए। अर्ध उच्चारित (शब्द०) (को०)। ५. ग्रहण युक्त [को०]।

ग्रस्ता—वि० [सं० ग्रस्तृ] ग्रास करनेवाला। भक्षक [को०]।

ग्रस्तास्त—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण लगने पर सूर्य या चंद्रमा का बिना मोक्ष हुए अस्त होना।

ग्रस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रसने की क्रिया। ग्रसन [को०]।

ग्रस्तोदय—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा या सूर्य का उस अवस्था में उदय होना जब उनपर ग्रहण लगा हो।

ग्रस्य—वि० [सं०] ग्रसने योग्य। खा जाने योग्य [को०]।

ग्रह१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वे तारे जिनकी गति, उदय और अस्त काल आदि का पता ज्योतिपियों ने लगा लिया था।

विशेष—(क) प्राचीन काल के ज्योतिषियों में इन ग्रहों की संख्या के संबंध में कुछ मतभेद था। वराहमिहिर ने केवल सात ग्रह माने हैं; यथा—सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि। फलित ज्योतिप में इन सात ग्रहों के अतिरिक्त राहु और केतु नामक दो और ग्रह माने जाते हैं और अनेक मांगलिक अवसरों पर इन ९ ग्रहों का विधिवत् पूजन होता है। एक विद्वान् के मत से ग्रहों की संख्या दस है; पर यह कहीं मान्य नहीं है। अधिकांश लोग फलित ज्योतिप के अनुसार ग्रहों की संख्या नौ ही मानते हैं और इसी लिये ग्रह नौ की संख्या का बोधक भी है। फलित ज्योतिप में प्रत्येक ग्रह को कुछ विशिष्ट देशों, जातियों, जीवों और पदार्थों का स्वामी माना है और उनका वर्णविभाग किया गया है। उनमें गुरु और शुक्र को ब्राह्मण, मंगल और रवि को क्षत्रिय, बुध और चंद्रमा को वैश्य और शनि, राहु तथा केतु को शूद्र कहा गया है। मंगल और सूर्य का रंग लाल, चंद्रमा और शुक्र का रंग सफेद गुरु और बुध का रंग पीला और शनि, राहु और केतु का रंग काला बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त फलित ज्योतिप में जो कुंडली बनाई जाती है, उसमें प्रत्येक ग्रह की दूसरे ग्रहों पर एक विशेष रूप से 'दृष्टि' भी होती है। शुभ ग्रह की दृष्टि का फल शुभ और अशुभ ग्रह की दृष्टि का फल अशुभ होता है। यह दृष्टि चार प्रकार की होती है।—पूर्ण, त्रिपाद, अर्द्ध और एकपाद। पूर्ण दृष्टि का फल पूर्ण, त्रिपाद का तीन चतुर्थांश, अर्द्ध का आधा और एकपाद का एक चतुर्थांश होता है। इस दृष्टि के संबंध में फलित ज्योतिप के ग्रंथों में कहा गया है कि प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से तीसरे और दसवें घरों को एकपाद, पाँचवें और नवें घरों के ग्रहों को अर्द्ध, चौथे और आठवें घरों के ग्रहों को त्रिपाद और

सातवें घर के ग्रहों को पूर्ण दृष्टि से देखता है। (ख) 'ग्रह' शब्द में पति या पतिवाची कोई दूसरा शब्द जोड़ देने से उसका अर्थ 'सूर्य' हो जाता है।

२. आकाशमंडल में वह तारा जो अपने सौर जगत् में सूर्य की परिक्रमा करे। एक निश्चित कक्षा पर किसी सूर्य की परिक्रमा करनेवाला तारा।

विशेष—हमारे सौर जगत् में सूर्य के क्रमानुसार अंतर पर बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, युरेनस और नेपच्यून ये आठ बड़े या प्रधान ग्रह हैं। अब एक नए ग्रह का पता चला है जिसे प्लेटो (कुबेर) कहते हैं। इनके अतिरिक्त, मंगल और बृहस्पति के मध्य में बहुत से छोटे छोटे ग्रह हैं जिनमें से अवतक ४६० से अधिक ग्रहों का होना प्रमाणित हो चुका हैं। ये सब ग्रह प्रायः एक ही समतल पर हैं और युरेनस तथा नेपच्यून के अतिरिक्त शेष सब ग्रह अपनी कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करते हैं। नेपच्यून और युरेनस का मार्ग कुछ भिन्न है। इन ग्रहों की गति भी अलग अलग है। किसी किसी बड़े ग्रह के साथ उपग्रह भी हैं जो उसी समतल पर अपनी कक्षा में अपने ग्रह की परिक्रमा करते हैं। जैसे,—हमारी इस पृथिवी के साथ चंद्रमा। इसी प्रकार नेपच्यून के साथ एक ,मंगल के साथ दो, युरेनस और बृहस्पति के साथ चार चार और शनि के साथ आठ उपग्रह या चंद्रमा हैं। इनमें से कुछ उपग्रहों का मार्ग और उनकी गति भी साधारण से भिन्न है। प्रत्येक ग्रह सूर्य से कुछ निश्चित अंतर पर है। साधारणतः स्थूल रूप से, सूर्य के ग्रहों का आपेक्षिक अंतर जानने का एक बहुत सरल उपाय यह है— ०, ३, ६, १२, २४, ४८, ९६, १९२ इनमें से प्रत्येक संख्या में चार जोड़ दें तो वही संख्या आपेक्षिक अंतर सूचित करनेवाली होगी—

४	७	१०	१६	२८	५२	१००	१९६
बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	०	बृहस्पति	शनि	युरेनस

अर्थात् यदि सूर्य और बुध का अंतर ४ मान लिया जाय, तो सूर्य से शुक्र का अंतर, लगभग ७, पृथ्वी का १०, मंगल का १६ और शेष ग्रहों का भी इसी प्रकार होगा। प्रत्येक ग्रह का सूर्य से ठीक अंतर, व्यास और परिक्रमाकाल नीचे लिखे कोष्ठक से विदित होगा।

ग्रह	सूर्य-परिक्रमा-काल (दिन)	सूर्य से अंतर (मील)	व्यास (मील)
बुध	८८	३६,००००००	३०००
शुक्र	२२५	६७००००००	७०००
पृथिवी	३६५	९३००००००	८०००
मंगल	६८७	१४१००००००	४०००
बृहस्पति	४३३३	४८२००००००	८८०००
शनि	१०७५९	८८३००००००	७५०००
युरेनस	३०६८७	१७७८००००००	३००००
नेपच्यून	६०१२७	२७८५००००००	३७०००

३. नौ की संख्या। ४. ग्रहण करना। लेना। ५ अनुग्रह। कृपा। ६. चंद्रमा या सूर्य का ग्रहण। ७. वह पात्र जिससे यज्ञ में देवताओं को हविष्य दिया जाता है। ८. राहु। ९. स्कंद, शकुनी आदि रोग जो बहुत ही छोटे बालकों को हो जाते हैं और जिन्हें लोग भूत प्रेत आदि का उपद्रव समझते हैं। बालग्रह।

ग्रह[2]—वि० बुरी तरह तंग करनेवाला। दिक करनेवाला।

ग्रह(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० गृह] दे० 'गृह'। उ०—डारो डर गुरुजनन को कहुँ इकंत ग्रह पाइ। अति रुचि दोउन उर बढ़ी अधरन अधर मिलाइ।—स० सप्तक, पृ० ३७६।

ग्रहक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो ग्रहण करनेवाला हो। ग्राहक। २. कैदी (को०)।

ग्रहकल्लोल—संज्ञा पुं० [सं०] राहु नामक ग्रह।

ग्रहकुंडलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहकुण्डलिका] ग्रहों का परस्पर संबंध और उसके आधार पर कथित या लिखित भविष्यफल [को०]।

ग्रहकुष्मांड, ग्रहकूष्माण्ड—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहकुष्माण्ड ग्रहकूष्माण्ड] पुराणानुसार एक प्रकार की देवयोनि।

ग्रहगणित—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों के संबंध का गणित। गणित ज्योतिष [को०]।

ग्रहगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्रहदोष। २. ग्रहों की गति [को०]।

ग्रहगोचर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोचर'।

ग्रहग्रस्त—वि० [सं०] १. बुरे ग्रहों से ग्रसित। २. प्रेतबाधा से प्रभावित [को०]।

ग्रहग्रहीत—वि० [सं० ग्रह+गृहीत] ग्रहपीड़ित। उ०—ग्रहग्रहीत पुनि बातबस तेहि पुनी बीछी मार।—मानस, २। १८०।

ग्रहग्रामणी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

ग्रहचिंतक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहचिन्तक] ज्योतिषी।

ग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य, चंद्र या किसी दूसरे आकाशचारी पिंड की ज्योति का आवरण जो दृष्टि और उस पिंड के मध्य में किसी दूसरे आकाशचारी पिंड के आ जाने के कारण उसकी छाया पड़ने से होता है; अथवा उस पिंड और उसे ज्योति पहुँचानेवाले पिंड के मध्य में आ पड़नेवाले किसी अन्य पिंड की छाया पड़ने से होता है। जैसे,—चंद्र और (उसे ज्योति पहुँचानेवाले) सूर्य के मध्य में पृथिवी के आ जाने के कारण चंद्रग्रहण और सूर्य तथा पृथिवी के मध्य में चंद्रमा के आ जाने के कारण सूर्यग्रहण का होना।

विशेष—पुराणानुसार सूर्य या चंद्रग्रहण का मुख्य कारण राहु नामक राक्षस का उक्त पिंडों को ग्रसने या खाने के लिये दौड़ना है (देखो 'राहु')। इसीलिये इस देश में ग्रहण लगने के समय, सूर्य या चंद्रमा की इस विपत्ति से मुक्त कराने के अभिप्राय से लोग दान, पुण्य ईश्वरप्रार्थना तथा अन्य अनेक प्रकार के उपाय करते हैं। ग्रहण लगने और छूटने के समय स्नान करने की प्रथा भी यहाँ है। पर प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों ने ग्रहण का मुख्य कारण उक्त छाया को ही माना है और किसी न किसी रूप में आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धांत के समान ही उसके कारण का निरूपण किया है। सूर्यग्रहण केवल अमावस्या के दिन और चंद्रग्रहण केवल

पूर्णिमा की रात को लगता है। सूर्य और चंद्रग्रहण एक वर्ष में कम से कम दो बार और अधिक से अधिक सात बार लगते हैं। पर साधारणतः एक वर्ष में तीन या चार ही ग्रहण लगते हैं और सात ग्रहण बहुत ही कम होते हैं। प्रायः एक समय में ग्रहण पृथ्वी के किसी विशिष्ट भाग में ही दिखाई पड़ता है, समस्त भूमंडल पर नहीं। ग्रहण में कभी तो सूर्य या चंद्र आदि का कुछ अंश ही आवृत होता है और कभी पूरा मंडल। जिस ग्रहण में पूरा मंडल आवृत हो जाय, उसे सर्वग्रास या खग्रास कहते हैं। फलित ज्योतिष में भिन्न भिन्न अवस्थाओं में ग्रहण लगने के भिन्न भिन्न फल आदि भी माने जाते हैं। अवस्था या स्थितिभेद से ग्रहण दस प्रकार के माने गए हैं—सव्य, अपसव्य, लेह, ग्रसन, निरोध, अवमर्द, आरोह, आघ्रात मध्यतम और तमोंत्य। इसी प्रकार ग्रहण का मोक्ष भी दस प्रकार का माना गया है—हनुभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), कुक्षिभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), वायुभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), संच्छर्दन, जरण, मध्यविदारण और अंतविदारण। हिंदू ग्रहण लगने से कुछ पहर पूर्व और कुछ पहर उपरांत उसकी छाया मानते हैं और छायाकाल में अन्न जल ग्रहण नहीं करते। सूर्य और चंद्रमा के अतिरिक्त दूसरे ग्रहों को भी ग्रहण लगता है, पर उसका इस पृथिवी के निवासियों से कोई संबंध नहीं है। बिना किसी आवरण के सूर्यग्रहण को नहीं देखना चाहिए क्योंकि इससे दृष्टिविकार होता है।

क्रि० प्र०—लगना।—छूटना।

२. पकड़ने, लेने या हस्तगत करने की क्रिया। ३. स्वीकार। मंजूरी। ४. अर्थ। तात्पर्य। मतलब। ५. कथन। उल्लेख। (को०)। ६. धारण। पहनना (को०)। ७. अधिकार करना। मनसा ग्रहण करना(को०)। ८. ध्वनि ग्रहण (को०)। ९. हाथ (को०)। १०. ज्ञानेंद्रिय (को०)। ११. कैदी (को०)। १२. पाणिग्रहण। विवाह (को०)। १३. कैद करना (को०)। १४. क्रय। खरीद (को०)। १५. चयन। चुनना (को०)। १६. आकर्षण (को०)। १७. सेवा (को०)। १८. प्रशंसापूर्ण उल्लेख समादर (को०) १९. संबोधन (को०)।

ग्रहणक—वि० [सं०] ग्रहण करनेवाला [को०]।

ग्रहणांत—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहणान्त] अध्ययन की समाप्ति [को०]।

ग्रहणि संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ग्रहणी'।

ग्रहणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार उदर में पक्वाशय और आमाशय के बीच की एक नाड़ी जो अग्नि या पित्त का प्रधान आधार है। २. इस नाड़ी के दूषित होने से उत्पन्न एक प्रकार का रोग जिसमें खाया हुआ पदार्थ पचता नहीं और ज्यों का त्यों दस्त की राह से निकल जाता है। वि० दे० 'संग्रहणी'।

यौ०—ग्रहणीहर=लौंग।

ग्रहणी(पु)[2] संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहण] ग्रहण करने की क्रिया। ग्रहण। उ०—ग्रहणी मैं सिन्नेम सहणी में ग्रहीस।—रा० रू०, पृ० ६७।

ग्रहणीय—वि० [सं०] ग्रहण करने योग्य। जो ग्रहण किया जा सके।

ग्रहदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोचर ग्रहों की स्थिति। २. ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी मनुष्य की भली बुरी अवस्था। ३. अभाग्य। कमबख्ती। दुरवस्था।

क्रि०—प्र०—आना।—छाना।—बीतना।

ग्रहदाय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों की स्थिति के आधार पर किसी जातक की आयु का निर्धारण [को०]।

ग्रहदायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म समय के ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी जातक की आयु। उम्र।

ग्रहदृष्टि संज्ञा स्त्री०[सं०]ग्रहों की दृष्टि। दे०'ग्रह'—१ का विशेष(क)।

ग्रहदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जो किसी विशेष ग्रह का अधिष्ठाता होता है [को०]।

ग्रहदोष संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहविशेष की अशुभ या अरिष्टकारक दृष्टि [को०]।

ग्रहद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] काकड़ा सींगी।

ग्रहन—(पु)संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण]स्वीकार। अंगीकरण। उ०—जे बुद्धिमंत हैं, तेई ग्रहन करि सकें।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५२०।

ग्रहपानिग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाणिग्रहण] दे० 'पाणिग्रहण'। उ०—सुभ सोमेस नरिंद ग्रहनपानिग मंडि कर।—पृ० रा० १।६७०।

ग्रहनायक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. शनि [को०]।

ग्रहनाश—संज्ञा पुं० [सं०] सतिवन नाम का पेड़।

ग्रहनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहनाश वृक्ष [को०]।

ग्रहनिका(पु)वि० [सं० ग्रहण] ग्रहणीय। ग्राह्य। उ०—द्वापरे पिति वंशस्य। कलिजुगे सूद्र ग्रहनिका।—पृ० रा०, २४।४३०।

ग्रहनिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] पुरस्कार और दंड [को०]।

ग्रहनेम—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश (डिं०)।

ग्रहनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंद्रमा के मार्ग का वह भाग जो मूल और मृगशिरा नक्षत्रों के बीच में पड़ता है। २. चंद्रमा। ३. आकाश (डिं०)।

ग्रहपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. शनि। ३. आक का पेड़।

ग्रहपीड़न—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहपीड़न] ग्रहों की स्थिति से उत्पन्न होनेवाली पीड़ा [को०]।

ग्रहपीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहपीडा] दे० 'ग्रहपीड़न' [को०]।

ग्रहपुष—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

ग्रहभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिष्ठाता ग्रहों के अनुसार देशों आदि का विभाजन [को०]।

ग्रहभीतिजित्—संज्ञा पुं० [सं०] चीड़ नाम का गंधद्रव्य।

ग्रहभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों को दिया जानेवाला भोग [को०]।

ग्रहमंडल—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहमण्डल] [संज्ञा स्त्री० ग्रहमंडली] ग्रहों का समूह [को०]।

ग्रहमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रहयुद्ध' [को०]।

ग्रहमैत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वर और कन्या के ग्रहों के स्वामियों की

मित्रता या अनुकूलता, जिसका विचार विवाह के समय होता है।

ग्रहमैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ग्रहमैत्र'।

ग्रहयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष और पुराणों के अनुसार ग्रहों की उग्रता या कोप संबंधी दोषों को दूर करने के लिये एक प्रकार का पूजन या यज्ञ।

ग्रहयाग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रहयज्ञ' [को०]।

ग्रहयुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राशि के एक ही अंश पर दो ग्रहों का एकत्र होना।

ग्रहयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यसिद्धांत के अनुसार बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि या मंगल में से किसी एक ग्रह का चंद्रमा के साथ अथवा उक्त ग्रहों में से किसी दो ग्रहों का एक साथ एक राशि के एक अंश पर इस प्रकार एकत्र होना कि उस ग्रह पर ग्रहण लगा हुआ जान पड़े। फलित ज्योतिष के अनुसार इसका फल भयंकर होता है।

ग्रहयुद्धभ—संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्षत्र जिसपर कोई दो ग्रह एक साथ एकत्र हों।

ग्रहयोग—संज्ञा पुं० [सं०] 'ग्रहयुति'।

ग्रहराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २. चंद्रमा। ३. बृहस्पति।

ग्रहवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों की गति के अनुसार प्रचलित वर्ष [को०]।

ग्रहविचारी—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहविचारिन्] ग्रहों पर विचार करनेवाला। ग्रहचिंतक [को०]।

ग्रहविप्र—संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल और दक्षिण में होनेवाले एक प्रकार के ब्राह्मण जो कुछ विशिष्ट क्रियाओं से ग्रहों के शुभाशुभ फल बतलाते हैं।

ग्रहवेध—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह की स्थिति आदि का जानना।

ग्रहशांति—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहशान्ति] अशुभ ग्रहों की निवृत्ति के लिये जप, यज्ञ आदि करना [को०]।

ग्रहशृंगाटक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहशृङ्गाटक] बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहों का एक प्रकार का योग जिसके अवस्थानुसार शुभ और अशुभ फल होते हैं।

ग्रहसंगम—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहसङ्गम] अनेक ग्रहों का एकत्र होना [को०]।

ग्रहसमागम—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के साथ मंगल, बुध आदि ग्रहों का योग।

ग्रहसाल(पु)—वि० [सं० ग्रह (=ग्राह)+सालना] ग्राह को सालनेवाला या नाश करनेवाला। उ०—गोवर्धन श्री गदाधर; गजतारन ग्रहसाल।—दरिया बा०, पृ० १६।

ग्रहस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी राग में वह स्वर जिससे वह राग आरंभ होता है—(संगीत)।

ग्रहा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्रह+आ (प्रत्य०)] गृहिणी।

ग्रहागम—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेतावेश। प्रेतबाधा [को०]।

ग्रहाग्रेसर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

ग्रहाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रहविप्र'।

ग्रहाधार—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुव नक्षत्र। ध्रुवा।

ग्रहाधीन—वि० [सं०] ग्रहों से प्रभावित। ग्रहों के अधीन [को०]।

ग्रहाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

ग्रहामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृगी। मूर्छा। २. प्रेतबाधा। भूतावेश [को०]।

ग्रहालुंचन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहालुञ्चन] शिकार पर झपटकर उसे चीर फाड़ डालना।

ग्रहावमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. राहु। २. ग्रहयुद्ध।

ग्रहावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मपत्री [को०]।

ग्रहाशी—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहाशिन्] ग्रहनाश वृक्ष [को०]।

ग्रहाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रहाधार'।

ग्रहाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] भूतांकुश नामक वृक्ष।

ग्रहिल—वि० [सं०] १. ग्रहण करनेवाला। २. हठी। दुराग्रही। ३. प्रेतबाधित [को०]।

ग्रहीत—वि० [सं० गृहीत] दे० 'गृहीत'।

ग्रहीतव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रहण करने योग्य। ग्राह्य। २. लेने या उड़ेलने योग्य (को०)। ३. बोध्य। ज्ञेय। जानने, सीखने या समझने योग्य (को०)।

ग्रहीता—वि० [सं० ग्रहीतृ] [वि० स्त्री० ग्रहीत्री] १. लेनेवाला। ग्रहण करनेवाला। उ० दाता और ग्रहीता दोऊ। दोहुन सम दिगंत नहिं कोऊ।—रघुराज (शब्द०)। २. निरीक्षणकर्ता (को०)। ३. ऋणी। कर्ज लेनेवाला (को०)। ४. खरीदनेवाला। क्रेता (को०)। ५ पकड़नेवाला (को०)।

ग्रहीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रह+ईश] सूर्य। उ०—ग्रहत दीठि ना परै। दुहुँ सरीस धाइयौ।—सुजान०, पृ० ४१।

ग्रहेश—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

ग्रहोपराग—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों का ग्रहण।

ग्रह्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञपात्र।

ग्रांडील—वि० [अं० ग्रेंडियर; ग्रेंडडील] ऊँचे कद का। बहुत बड़ा या ऊँचा। जैसे,—ग्रांडील हाथी, ग्रांडील जवान।

ग्राम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ छोटी बस्ती। गाँव। २. मनुष्यों के रहने का स्थान। बस्ती। आबादी। जनपद। ३. समूह। ढेर। उ०—तिगरे राज समाज के कहे गोत्र गुण ग्राम। देश सुभाव प्रभाव अरु कुल बल विक्रम नाम।—केशव (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द केवल यौगिक शब्दों के अंत में आता है। जैसे,—गुणग्राम।

४. शिव। ५. जाति (को०)। ६. क्रम से सात स्वरों का समूह। सप्तक (संगीत)।

विशेष—संगीत में सुभीते के लिये षड्ज, मध्यम और गांधार नामक तीन ग्राम निश्चित कर लिए गए हैं, जिन्हें क्रमशः नंद्यावर्त, सुभद्र और जीमूत भी कहते हैं और जिनके देवता एक क्रम से ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। प्रत्येक ग्राम में

सात सात मूर्च्छनाएँ होती हैं। सा (षड्ज) से आरंभ करके (सा रे ग म प ध नि) जो सात स्वर हों, उनके समूह को षड्ज ग्राम; म (मध्यम) से आरंभ करके (म प ध नि सा रे ग) जो सात स्वर हों, उनके समूह को मध्यम ग्राम और इसी प्रकार गा (गांधार) या प (पंचम) से आरंभ करके जो स्वर हों, उनके समूह को गांधार अथवा पंचम (जैसी अवस्था हो) ग्राम मानते हैं। इनमें से पहले दो ग्रामों का व्यवहार तो इसी लोक में मनुष्यों द्वारा होता है; पर तीसरे ग्राम का व्यवहार स्वर्गलोक में नारद करते हैं। वास्तव में तीसरा ग्राम होता भी बहुत ऊँचा है और उसके स्वर केवल सितार सारंगी, हारमोनियम आदि बाजों में ही निकल सकते हैं, मनुष्यों के गले से नहीं।

ग्राम[2]—संज्ञा पुं० [अं०] एक अंग्रेजी तौल।

ग्रामकंटक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामकण्टक] १. वह जो गाँव के लिये कष्ट का कारण हो। २. चुगलखोर (को०)।

ग्रामक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रामीण। २. आनंददायक समूह [को०]।

ग्रामकाम—वि० [सं०] १. ग्राम पर अधिकार करने का इच्छुक २. ग्रामवास का इच्छुक [को०]।

ग्रामकायस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का कायस्थ या लेखक [को०]।

ग्रामकुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] पालतू मुरगा।

ग्रामकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ग्रामकुमारी] ग्राम का सुंदर तरुण। २. ग्राम का कुमार या बालक [को०]।

ग्रामकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. शूद्र। २. गाँव का मुखिया या चौधरी।

विशेष—कौटिल्य के समय में इनके पीछे भी गुप्तचर रहते थे। इनकी ईमानदारी की जाँच करते रहते थे।

ग्रामकूटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शूद्र। ३. गाँव का मुखियाँ या चौधरी [को०]।

ग्रामगृह्य—वि० [सं०] गाँव के बाहर होनेवाला। गाँव के बाहर का [को०]।

ग्रामगृह्यक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रामीण बढ़ई [को०]।

ग्रामगेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

ग्रामगोदुह—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का ग्वाल [को०]।

ग्रामघात—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव को लूटना [को०]।

ग्रामघोषी—वि० [सं० ग्रामघोषिन्] १. जनसमूह या सेना में घोष या ध्वनि करनेवाला (जैसे दुंदुभि)। २. इंद्र का विशेषण [को०]।

ग्रामचर—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव का निवासी [को०]।

ग्रामचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री संभोग। रति [को०]।

ग्रामचैत्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँव का पवित्र पीपल वृक्ष [को०]।

ग्रामज, ग्रामजात—वि० [सं०] १. गाँव में उत्पन्न। ग्रामीण। २. कृषि या खेत में उपजा हुआ [को०]।

ग्रामजाल—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रामों का समूह या मंडल [को०]।

ग्रामटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा गाँव। कुछ घरों का पुरा। बस्ती। उ०—ग्रामटिका वनिजात नगर वह उभय मास लौं। प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३०। २. अभागा या दरिद्र गाँव (को०)।

ग्रामणी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव, जाति, या समूह का मालिक या मुखिया। २. प्रधान। अगुआ। ३. विष्णु। ४. यक्ष। ५. नाऊ। हज्जाम। ६. कामी पुरुष। ७. एक यक्ष (को०)।

ग्रामणी[2]—संज्ञा स्त्री० १. वेश्या।

यौ०—ग्रामणीपुत्र=वेश्यापुत्र।

२ नील का पेड़।

ग्रामणीसव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का याग जो एक दिन में होता है।

ग्रामतक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रामीण बढ़ई [को०]।

ग्रामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रामदेवता'।

ग्रामदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी एक गाँव में पूजा जानेवाला देवता। २. गाँव की रक्षा करनेवाला देवता।

विशेष—भारत के प्रायः प्रत्येक गाँव में एक न एक ग्रामदेवता होता है।

ग्रामद्रोही—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामद्रोहिन्] ग्राम की मर्यादा या नियम का भंग करनेवाला। ग्रामकंटक।

विशेष—प्राचीन काल में ग्राम के प्रबंध और झगड़े आदि निबटाने का भार गाँव की पंचायत पर ही रहता था। जो उक्त पंचायत के निर्णय के विरुद्ध काम करते या उसका नियम तोड़ते थे, वे ग्रामद्रोही कहलाते और दंड के भागी होते थे।

ग्रामधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रामीण परंपराएँ। गाँव की रीति-नीति। २. स्त्रीसंभोग। मैथुन [को०]।

ग्रामपंचायत—संज्ञा स्त्री० [ग्राम+हिं० पंचायत] ग्रामीण व्यक्तियों की वह आधिकारिक व्यवस्था जो गाँव के झगड़ों का न्याय, गाँव में सफाई, स्वच्छता की व्यवस्था करने आदि का कार्य करती है।

ग्रामधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] कृषि की उपज। खेती की उपज [को०]।

ग्रामपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव का मालिक या स्वामी। २. गाँव की रक्षा करनेवाला सैनिक या सेना।

ग्रामपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का मुखिया [को०]।

ग्रामप्रेष्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो गाँव के सब लोगों की सेवा करता हो। मनु के अनुसार ऐसे व्यक्ति को यज्ञ और श्राद्ध आदि कार्यों में संमिलित न करना चाहिए।

ग्रामभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से लोगों की सेवा करनेवाला मनुष्य।

विशेष—ऐसा मनुष्य यदि ब्राह्मण हो तब भी अब्राह्मण हो जाता है।

ग्राममद्गुरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झगड़ा। टंटा। कलह। २. एक मछली का नाम। ३. एक पौधा [को०]।

ग्राममुख—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार। हाट।

ग्राममृग—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

ग्रामयाजक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह ब्राह्मण जो ऊँच नीच सभी जाति के लोगों का पुरोहित हो।

विशेष—शतातपर के अनुसार ऐसा ब्राह्मण अपने धर्म और वर्ण से पतित होता है और महाभारत के अनुसार ऐसे ब्राह्मण को दान देने का कोई फल नहीं होता।

२. पुजारी (को०)।

ग्रामयाजी—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामयाजिन्] दे० 'ग्रामयाजक' (को०)।

ग्रामयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] बलवा। दंगा (को०)।

ग्रामर—संज्ञा पुं० [अं०] व्याकरण।

ग्रामरथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँव की गली (को०)।

ग्रामवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्राम+वधू] गाँव की बहू। ग्रामीण स्त्री। ग्रामीण वधू। उ०—लौटी ग्रामवधू पनघट से।—आराधना, पृ० ३७।

ग्रामवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। कसबी। रंडी। २. पालकी का साग।

ग्रामवास—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव में निवास या वास करना (को०)।

ग्रामषंड—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामषण्ड] क्लीव। नपुंसक (को०)।

ग्रामसंकर—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामसङ्कर] गाँव की नाली (को०)।

ग्रामसंघ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामसङ्घ] ग्रामों का समूह या मंडल (को०)।

ग्रामसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता। उ०—चित्रमृग भ्रमर गवै गए विलोकि वन, ढीलचटकीले ग्रामसिंह चले धाय कै।—रघुराज (शब्द०)।

ग्रामस्थ—वि० [सं०] ग्रामवासी। ग्रामीण (को०)।

ग्रामहट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का मुखिया या चौधरी। ग्रामकूट।

ग्रामहासक—संज्ञा पुं० [सं०] बहनोई (को०)।

ग्रामांत—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामान्त] गाँव की सीमा। २. गाँव से सटा हुआ भाग। सिवान (को०)।

ग्रामांतर—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामान्तर] दूसरा गाँव (को०)।

ग्रामांतिक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामान्तिक] ग्राम का पड़ोस (को०)।

ग्रामांतीय[1]—वि० [सं० ग्रामान्तीय] ग्राम के पास स्थित (को०)।

ग्रामांतीय[2]—संज्ञा पुं० ग्राम के पासपड़ोस की भूमि (को०)।

ग्रामाक्षपटलिक—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव के लोगों को जुआ खेलाने का प्रबंध करनेवाला व्यक्ति (को०)।

ग्रामाचार—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव के रीतिरिवाज (को०)।

ग्रामाघात—संज्ञा पुं० [सं०] आखेट। मृगया। शिकार।

ग्रामाधिकृत, ग्रामाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का प्रधान। गाँव का मुखिया।

ग्रामाधिपति—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम+अधिपति] ग्राम का प्रबंध करनेवाला एक अधिकारी। उ०—गाँव का प्रबंध ग्रामाधिपति गाँववालों की सलाह से करता था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १७३।

ग्रामाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रामप्रधान। गाँव का मुखिया।

ग्रामानग्राम(प)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामानुग्राम] एक गाँव से दूसरे गाँव। प्रति गाँव। उ०—ग्रामानग्राम तोरनउतंग। वन बड्डि कड्डि विधि निधि पुरंग।—पृ० रा०, १।६०६।

ग्रामिक[1]—वि० [सं०] १. गाँव संबंधी। गाँव का। २. देहाती। गँवार (को०)।

ग्रामिक[2]—संज्ञा पुं० १. वह मनुष्य जिसे गाँववाले अपनी रक्षा के लिये अपना मुखिया चुनें। २. ग्रामीण। ग्रामवासी (को०)।

ग्रामिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा (को०)।

ग्रामी[1]—वि० [सं० ग्रामिन्] १. देहाती। गँवार। २. गाँव का। ३. कामी। लंपट। ३. संगीत विषयक (को०)।

ग्रामी[2]—संज्ञा पुं० १. ग्रामप्रधान। गाँव का मुखिया। ३. ग्रामनिवासी (को०)।

ग्रामीण[1]—वि० [सं०] १. देहाती। गँवार। २. ग्राम (संगीत) संबंधी (को०)। ३. ग्राम या गाँव संबंधी (को०)।

ग्रामीण[2]—संज्ञा पुं० १. मुरगा। २. कौआ। ३. सूअर। ४. कुत्ता। ५. ग्राम का वासी या निवासी (को०)।

ग्रामीणा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पेड़। २. पालकी का साग।

ग्रामीणा[2]—संज्ञा स्त्री० गाँव की रहनेवाली स्त्री। ग्रामनिवासिनी (को०)।

ग्रामीन(प)—वि० [सं०] १. गाँव में उत्पन्न। २. गँवार (को०)।

ग्रामीय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ग्रामीया] गाँव का। गाँव से संबंधित (को०)।

ग्रामीय[2]—संज्ञा पुं० ग्रामवासी। देहाती (को०)।

ग्रामेय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ग्रामेयी] १. गाँव में उत्पन्न। २. देहाती। गँवार (को०)।

ग्रामेय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रामवासी (को०)।

ग्रामेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी (को०)।

ग्रामेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन का एक प्रकार या भेद (को०)।

ग्रामेश, ग्रामेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रामाधिपति' (को०)।

ग्रामोद्योग—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम+उद्योग] गाँव के धंधे। ग्रामीण उद्योग।

ग्रामोफोन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जिसमें गीत आदि भरे और इच्छानुसार समय समय पर सुने जा सकते हैं।

विशेष—इस बाजे में कुछ विशिष्ट द्रव्यों से बने एक प्रकार के गोल तवे पर, जिसे चूड़ी कहते हैं, और जिस पर गोल रेखाएँ रहती हैं, सूई लगे हुए एक यंत्र की सहायता से सब प्रकार के बोले हुए वाक्य या गाए हुए गीत आदि एक विशेष रूप से अंकित हो जाते हैं और उन अंकित वाक्यों या गीतों को जब इच्छा हो, ध्वनि उत्पन्न करनेवाले एक दूसरे यंत्र की सहायता से सुन सकते हैं।

ग्राम्य[1]—वि० [सं०] १. गाँव से संबंध रखनेवाला। ग्रामीण। २. बेवकूफ। ३. मूढ़। ३. प्राकृत। असली।

ग्राम्य[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का रतिबंध। २. काव्य का एक दोष। वह काव्य जिसमें गँवारू शब्दों की अधिकता हो अथवा जिसमें गँवारू विषयों का वर्णन हो, इस दोष से दूषित समझा

जाता है। ३. अश्लील शब्द या वाक्य। ४. मैथुन। स्त्रीप्रसंग। ५. मिथुन राशि। ६. गधा, घोड़ा, खच्चर, बैल आदि पशु जो पाले जाते और गाँवों में रहते हैं।

ग्राम्यकंद—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम्यकंद] स्थलकंद [को०]।

ग्राम्यकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुष्मांड [को०]।

ग्राम्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम्यकर्मन्] १. ग्रामवालों का पेशा। २. स्त्रीसंभोग। मैथुन [को०]।

ग्राम्यकुंकुम—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम्यकुङ्कुम] कुसुंब।

ग्राम्यदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रामदेवता'।

ग्राम्यदोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्राम्य' [को०]।

ग्राम्यधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. मैथुन। स्त्रीप्रसंग। २. ग्रामीण का कर्तव्य (को०)।

ग्राम्यधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव की फसल। खेती। उपज [को०]।

ग्राम्यपशु—संज्ञा पुं० [सं०] पालतू जानवर [को०]।

ग्राम्यबुद्धि – वि० [सं०] मूढ़। मूर्ख [को०]।

ग्राम्यमृग—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता [को०]।

ग्राम्यवल्लभ—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी [को०]।

ग्राम्यवादी—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम्यवादिन्] ग्राम के वाद या झगड़ों आदि का निर्णय करनेवाला व्यक्ति [को०]।

ग्राम्यसुख—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। स्त्रीप्रसंग [को०]।

ग्राम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पेड़। २. तुलसी।

ग्राम्याश्व—संज्ञा पुं० [सं०] गधा [को०]।

ग्राव—संज्ञा पुं० [सं० ग्रावन्] १. पत्थर। ओला। बिनौरी। ३. पर्वत। पहाड़। ४. बादल (को०)।

ग्राव[2]—वि० १. कठोर। २. ठोस [को०]।

ग्रावस्तुत्—संज्ञा पुं० [सं०] सोलह ऋत्विजों में से तेरहवाँ ऋत्विज जिसे अच्छावाक् भी कहते हैं।

ग्रावह—संज्ञा पुं० [सं० ग्रावन्] पत्थर की कील।

ग्रावहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में एक ऋत्विक् जिसके हाथ में अभिषव का पत्थर रहता है।

ग्रावायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नाम।

ग्रास—संज्ञा पुं० [सं०] १. उतना भोजन जितना एक बार मुँह में डाला जाय। गस्सा। कौर। निवाला। २. पकड़ने की क्रिया। पकड़। गिरफ्त। ३. सूर्य या चंद्रमा में ग्रहण लगना। जैसे,—खग्रास, सर्वग्रास। ४. संगीत का एक भेद। उ०—आछी भाँति तान गावत बाँकी रीतिन सुरग्राम ग्रास गहि चोख चटक सों।—घनानंद, पृ० ४२५। ५. आहार निगलने का कार्य (को०)। ६. आहार (को०)। ७. अस्पष्ट उच्चारण (को०)।

ग्रासक—वि० [सं०] १. पकड़नेवाला। ३. निगलनेवाला। ३. छिपाने या दबानेवाला।

ग्रासकट—संज्ञा पुं० [अं०] घास काटनेवाला। घसियारा।

ग्रासकारी— वि० [सं० ग्रासकारिन्] ग्रसनेवाला। निगलनेवाला [को०]।

ग्रासना—क्रि० स० [सं० ग्रास] १. पकड़ना। धरना। निगलना। उ० ग्रासत चित्त गयंद को बिरह ग्राह जब आय। हरि प्यारे मन कमल लै नेही देत छुड़ाय।—रसनिधि (शब्द०)। २. कष्ट देना। सताना।

ग्रासप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रास या कौर का आकार [को०]।

ग्रासशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] गले में किसी खाद्य वस्तु का अटक जाना [को०]।

ग्रासाच्छादन - संज्ञा पुं० [सं०] खाना कपड़ा। भोजनवस्त्र [को०]।

ग्राह[1] - संज्ञा पुं० [सं०] १. मगर। घड़ियाल। २. ग्रहण। उपराग। ३. पकड़ना। लेना। ग्रहण करना। ४. ज्ञान। ५. ग्रहण करनेवाला। ग्राहक। ६. आग्रह (को०)। ७. कैदी (को०)। ८. समझ। बोध (को०)। ९. प्राप्ति (को०)। १०. चयन (को०)। ११. निश्चय (को०)। १२ रोग (को०)। १३. बड़ा मत्स्य (को०)। १५. कार्यारंभ (को०)। १६. लकवा। पक्षाघात (को०)। १७ हत्था। मुठिया (तलवार आदि का)।

ग्राह[2]—वि० १. ग्रहण करनेवाला। लेनेवाला। २. पकड़नेवाला [को०]।

ग्राहक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ग्राहिका] १. ग्रहण करनेवाला। २. मोल लेनेवाला। खरीदनेवाला। खरीददार। ३. लेने या पाने की इच्छा रखनेवाला। चाहनेवाला। ४. वह ओषधि जिसके सेवन से पतला दस्त आना बंद हो जाय और बँधा पाखाना होने लगे। ५. बाज पक्षी। ६. एक प्रकार का साग जिसे चौपतिया कहते हैं। ७. शरीर में प्रविष्ट विष को चिकित्सा द्वारा दूर करनेवाला वैद्य। विषवैद्य। ८. लोगों को कैद करनेवाला व्यक्ति। पुलिस अधिकारी (को०)।

ग्राहक[2]—वि० [वि० स्त्री० ग्राहिका] १. ग्रहण करनेवाला। २. मल रोकनेवाला। बंदी करनेवाला। ४. समझानेवाला [को०]।

ग्राहिका संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिवली का तीसरा बल।

ग्राहिणी -संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्भाग्य [को०]।

ग्राही[1]—संज्ञा पुं० सं० ग्राहिन] १. वह जो ग्रहण करे। स्वीकार करनेवाला। जैसे,—दानग्राही। २. मल को रोकनेवाला पदार्थ। कब्ज करनेवाली चीज। ३. कैथ। कपित्थ।

ग्राही[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्राह या घड़ियाल की मादा [को०]।

ग्राहुक—वि० [सं०] ग्राहक। ग्रहण करनेवाला [को०]।

ग्राह्य—वि० [सं०] १. लेने योग्य। २. स्वीकार करने योग्य। मानने-लायक। ३. जानने योग्य। समझने योग्य। ३. कैद करने योग्य (को०)। ५. मान्य। स्वीकृत (को०)।

ग्रिव(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्रीवा] उ०—भेख बनावै सोभा बढ़ि सुंदरि सेली गूँथि ग्रिव नावै।—सं० दरिया, पृ० १०४।

ग्रीक[1]—वि० [अं०] यूनान देश का। यूनान देश संबंधी।

ग्रीक[2]—संज्ञा स्त्री० ग्रीस या यूनान देश की भाषा।

ग्रीक[3]—संज्ञा पुं० ग्रीस या यूनान देश का निवासी।

ग्रीखम(पु)— संज्ञा पुं० [सं० ग्रीष्म] दे० 'ग्रीष्म'।

ग्रीज—संज्ञा पुं० [अं० ग्रीज या ग्रीस] १. पशुओं की चर्बी। २. गाढ़ा किया हुआ तेल मिश्रित कोई पदार्थ जो कागज चिपकाने, जिल्द बंदी करने, रबर आदि जोड़ने, कल पुर्जों आदि को चलता रखने के काम में इस्तेमाल किया जाता है।

ग्रीव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ग्रीव'। उ०—कर चरन न्यास भुज ग्रीव ढोरि मुरि चलत लटक सों।—घनानंद, पृ० ४२५।

घउरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फलों का गुच्छा। घौर। घवरि। उ०—ओनइ रही केरन्ह की घउरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४।

घघरबेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुँघराला+बेल] एक प्रकार की लता। बंदाल।

घघरा—संज्ञा पुं० [हिं० घन+घेरा] [स्त्री० घघरी] स्त्रियों का एक चुननदार पहनावा जो कटि से लेकर पैर तक का शरीर ढाकने के लिये होता है। लहँगा।

घघरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घघरा] छोटा लहँगा।

घचाघच—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नरम चीज में किसी धारदार या नुकीली वस्तु के चुभने या धँसने का शब्द।

घट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. घड़ा। जलपात्र। कलसा। २. पिंड। शरीर। उ०—वा घट के सौ टूक कै दीजे नदी बहाय। नेह भरेहू पै जिन्हें दौरि रुखाई जाय।—रसनिधि (शब्द०)। ३. मन। हृदय। जैसे,—अंतरयामी घट घट वासी। ४. कुंभक प्राणायाम (को०)। ५. कुंभ राशि। ६. एक तौल। २० द्रोण की तौल। ७. हाथी का कुंभ। ८. किनारा। ९. नौ प्रकार के द्रव्यों में से एक जिसे तुला भी कहते हैं। वि० दे० 'तुलापरीक्षा'।

मुहा०—घट में बसना या बैठना=(१) हृदय में स्थापित होना। मन में बसना। ध्यान पर चढ़ा रहना। जैसे—जिसके घट में राम बसते हैं, वही कुछ देता है। (२) किसी बात का मन में बैठना। हृदयंगम होना।

घट²—संज्ञा पुं० [हिं० घटा] मेघ। बादल। घटा। उ०—सहनाइ नफेरिय नेक बजं। सु मनों घट भद्दव मास गजं।—पृ० रा०, २४।१८२।

घट³—वि० [हिं० घटना] घटा हुआ। कम। थोड़ा। छोटा। मध्यम। उ०—घट बढ़ रकम बनाइ कै सिसुता करी तगीर।—रसनिधि (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'बढ़' के साथ ही अधिकतर होता है। अकेले इसका क्रियावत् प्रयोग 'घटकर' ही होता है। जैसे,—वह कपड़ा इससे कुछ घटकर है।

घटकंचुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० घटकञ्चुकी] तांत्रिकों की एक रीति।

विशेष—इसमें भैरवी चक्र में संमिलित स्त्रियों की कंचुकियाँ लेकर एक घड़े में भर दी जाती हैं। फिर एक एक पुरुष बारी बारी से एक एक कंचुकी निकालता है। जिस पुरुष के हाथ में जिस स्त्री की कंचुकी (चोली) आती है, उसी के साथ वह संभोग कर सकता है।

घटक¹—वि० [सं०] १. दो पक्षों में बातचीत करानेवाला। बीच में पड़नेवाला। मध्यस्थ। २. मिलानेवाला। योजक।

घटक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाह संबंध तय करानेवाला व्यक्ति। बरेखिया। २. दलाल। ३. काम पूरा करनेवाला। चतुर व्यक्ति। ४. वंशपरंपरा बतलानेवाला। चारण। ५. वह सामग्री जिसके मेल से कोई पदार्थ बना हो। अवयवभूत वस्तु। उपादान वस्तु। ६. बिना फूल लगे फल देनेवाला वृक्ष। जैसे, गूलर। ७. घड़ा।

घटकना(पु)—क्रि० स० [अनु० घटक्] १. उदरस्थ करना। २. दे० 'गटकना'।

घटकरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घटकर्ण] दे० 'घटकर्ण'। उ०—जयति दसकंठ घटकरन बारिदनाद कदन कारन कालनेमि हंता।—तुलसी (शब्द०)।

घटकर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल।

घटकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभकर्ण।

घटकर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] विक्रम की सभा के नवरत्नों में एक कवि का नाम।

विशेष—इनका नाम कालिदास के साथ विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में आता है। इनका बनाया नीतिसार नामक एक ग्रंथ मिलता है जिसे 'घटकर्पर काव्य' भी कहते हैं। इनका छोटा सा काव्य यमक अलंकार से परिपूर्ण है। 'यदि कोई इससे सुंदर यमकालंकारयुक्त कविता करे तो मैं फूटे घड़े के टुकड़े से जल भरूँगा' इस प्रतिज्ञा के कारण इनका नाम घटकर्पर या घटखर्पर पड़ा है।

घटका—संज्ञा पुं० [सं० घटक (=शरीर।) अथवा अनु० घर्र घर्र शब्द] मरने के पहले की वह अवस्था जिसमें साँस रुक रुककर घरघराहट के साथ निकलती है। कफ छेंकने की अवस्था। घर्रा।

क्रि० प्र०—घटका लगना=मरते समय कफ छेंकना।

घटकार—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार।

घटग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] जल भरनेवाला व्यक्ति। पनहारा (को०)।

घटज—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि। उ०—कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा।—मानस, २।६६।

घटजोनी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घटयोनि] दे० 'घटयोनि'। उ०—बालमीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी।—मानस, १।३।

घटती—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना] १. कमी। कसर। न्यूनता। अवनति। 'बढ़ती' का उलटा।

मुहा०—घटती का पहरा=अवनति के दिन। बुरा जमाना।

२. हीनता। अप्रतिष्ठा। उ०—घटती होइ जाहि ते अपनी ताको कीजै त्याग।—सूर (शब्द०)।

घटदासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नायक और नायिका का सम्मिलन करा देनेवाली दासी। २. कुटनी।

घटन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० घटनीय, घटित] १. गढ़ा जाना। रूप या आकार देना। २. होना। उपस्थित होना। ३. मिलाना। जोड़ना। ४. प्रयास। गति। प्रयत्न। ५. कलह विरोध।

घटना¹—क्रि० अ० [सं० घटन] १. उपस्थित होना। वाके होना। होना। जैसे,—वहाँ ऐसी घटना घटी कि सब लोग आश्चर्य में आ गए। २. लगना। सटीक बैठना। आरोप होना। मेल में होना। मेल मिल जाना। जैसे,—यह कहावत उनपर ठीक घटती है। उ०—अब तो तात दुरावौं तोहीं। दारुण दोष

अक्ष । पाँसा । ५. अक्षपेटिका । ६. अक्ष की आय या प्राप्ति । ७. जुआ खिलानेवाला व्यक्ति [को०] ।

ग्लान¹—वि० [सं०] १. ज्वर आदि रोगों से पीड़ित । बीमार रोगी । २. थका हुआ । ३. कमजोर ।

ग्लान²—संज्ञा स्त्री० १. दीनता । २. थकान । श्रांति (को०) । ३. बीमारी । रोग (को०) ।

ग्लानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ग्लेय] १. शारीरिक या मानसिक शिथिलता । अनुत्साह । खेद । अक्षमता । २. मन की एक वृत्ति जिसमें अपने किसी की बुराई या दोष आदि को देखकर अनुत्साह, अरुचि और खिन्नता उत्पन्न होती है । पश्चात्ताप । ३. साहित्य में वीभत्स रस का एक स्थायी भाव ।

विशेष साहित्यदर्पण के अनुसार यह व्यभिचारी भाव के अंतर्गत है । रति, परिश्रम, मनस्ताप और भूख, प्यास आदि उत्पन्न दुर्बलता ही ग्लानि है । इसमें शरीर काँपने लगता है, शक्ति घट जाती है और किसी कार्य के करने का उत्साह नहीं होता ।

४. पतन । ह्रास । उ०—जब जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब युग युग में वह अवतार लेता है ।—हिंदू० सभ्यता, पृ० १८८ ।

ग्लानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ग्लानि' । उ०—धर्म ग्लानी भई जब ही जब, तब तब तुम वपु धारचो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६२ ।

ग्लास—संज्ञा पुं० [अं०] १. शीशा । २. दे० 'गिलास' ।

ग्लास्नु—वि० [सं०] श्रांत । थका हुआ [को०] ।

ग्लूकोज—संज्ञा पुं० [अं० ग्लूकोज] १. फलों की चीनी । २. अंगूर की चीनी । जो रासायनिक रीति से तैयार की जाती है । उ०—बच्चे को ग्लूकोज पिलाने का प्रयत्न करके विफल होकर...सिर झुकाए थी ।—जिप्सी, पृ० ५११ ।

ग्लेशियर—संज्ञा पुं० [अं०] हिमखंड । हिमशिला जो गतिशील होती है । यह धीरे धीरे चलकर नीचे उतरता जाता है और फिर किसी नदी में मिल जाता है । उ०—अजपथों से जा जाकर पहाड़ों पर के सरोवरों और ग्लेशियरों में पांडवों के तपस्या स्थल और नए तीर्थों का आविष्कार करना भी आसान नहीं है ।—किन्नर०, पृ० ९३ ।

ग्लौ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर । ३. पृथ्वी [को०] ।

ग्लौता—दे० [सं० ग्लोतृ] श्रांत । थका हुआ [को०] ।

ग्वाँड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० गुरड] १. घेरा । वृत्त । २. किसी मकान के चारों ओर का बाड़ा । ३. चहारदीवारी के अंदर घिरा हुआ स्थान । उ०—ग्वाँड़ा बिच आसण जिनि माँड़ौ ।—गोरख०, पृ० २३९ ।

ग्वाड़(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ग्वाँड़ा] दे० 'ग्वाँड़ा' । उ०—धवला सूँ राजै धणी चंगो दीसै ग्वाड़ ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४३ ।

ग्वाड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ग्वाँड़ा] उ०—ग्वाड़ा माँहीं आनंद उपनौं ।—कबीर ग्रं०, पृ० १३७ ।

ग्वायख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गवाक्ष, हिं० गोख, गोखा] दे० 'गोखा' । उ०—सिल विकट पास सुखेण रे, तिरसूल ग्वायख तेणरे ।—रघु० रू०, पृ० २२४ ।

ग्वार—संज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] एक वार्षिक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी और बीजों की दाल होती है । कौरी । खुरथी ।

विशेष—इसकी कई जातियाँ होती हैं । इसकी पत्तियों की खाद बहुत अच्छी होती है और उन्हें चौपाए बहुत चाव से खाते हैं । कहीं कहीं इसे अदरक के पौधों पर छाया करने के लिये भी लगाते हैं । यह वर्षा के आरंभ में बोई जाती है और जाड़े के मध्य में तैयार हो जाती है । इसमें पीले रंग के एक प्रकार के लंबे फूल भी लगते हैं । वैद्यक में इसके फली को बादी, मधुर, भारी, दस्तावर, पित्तनाशक, दीपक और कफकारक माना है और पत्तों को रतौंधी दूर करनेवाला और पित्तनाशक कहा है ।

ग्वारनट—संज्ञा स्त्री० [अं० गारनेट] एक प्रकार का बढ़िया रंगीन रेशमी कपड़ा ।

ग्वारनेट—संज्ञा स्त्री० [अं० गारनेट] दे० 'ग्वारनट' ।

ग्वारपाठा—संज्ञा पुं० [सं० कुमारी+पाठा] घीकुआँर ।

ग्वारफली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वार+फली] ग्वार नामक पौधे की फली जिसकी तरकारी बनती है । वि० दे० 'ग्वार' ।

ग्वारि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वाली] दे० 'ग्वालिन' । उ०—पूछति पाहुनि ग्वारि हा हा हो मेरी आली, कहा नाउँ, को है चित वित्त को चोर ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४२ ।

ग्वारिया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ग्वार+इया (प्रत्य०)] दे० 'ग्वाल' । उ०—ग्वारिया को भेपु धरैं गाँइनि में आवै ।—छीत०, पृ० ५४ ।

ग्वारिन¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वार+इन (प्रत्य०)] दे० 'ग्वार' ।

ग्वारिन²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वालिन] १. ग्वाले की स्त्री । ग्वाली । २. गोपी ।

ग्वारी³(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ग्वार' । उ०—फेनी फूल निमोना डिड़सा रूप रतालू ग्वारी जी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

ग्वारी⁴(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वाली] १. ग्वाला की स्त्री । २. गोपी ।

ग्वाल—संज्ञा पुं० [सं० गो+पाल, प्रा० गोवाल] १. अहीर । २. एक छंद का नाम जिसे सार और शानु भी कहते हैं । इसके प्रत्येक चरण में दो अक्षर होते हैं, जिनमें से पहला गुरु और दूसरा लघु होता है । जैसे —ग्वाल । धार । कृष्ण । सार ।

ग्वालककड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वाल+ककड़ी] जंगली चिचड़ा जिसके बीज, जड़ और पत्तियाँ आदि ओषधि के काम में आती हैं । इसमें छोटे छोटे फल भी लगते हैं जो पकने पर गहरे लाल रंग के हो जाते हैं ।

ग्वालककरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वाल+ककड़ी] दे० 'ग्वालककड़ी' ।

ग्वालदाड़िम—संज्ञा पुं० [हिं० ग्वाल+दाड़िम] मालकंगनी की जाति का एक छोटा पेड़ या क्षुप।

विशेष—यह अफगानिस्तान, पंजाब और उत्तर भारत में चार हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी और लाल या भूरे रंग की होती हैं। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और उसपर (छापेखाने में) छापने के लिये चित्र आदि खोदे जाते हैं।

ग्वालबाल—संज्ञा पुं० [हिं० ग्वाल+बाल] १. अहीरों के लड़के। २. कृष्ण के संगी साथी [को०]।

ग्वाला—संज्ञा पुं० [सं० गोपालक; प्रा० गोवालअ] दे० 'ग्वाल'।

ग्वालिन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वाल+इन (प्रत्य०)] ग्वाले की स्त्री। ग्वाल जाति की स्त्री।

ग्वालिन[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वार] ग्वार। खुरथी। कौरी।

ग्वालिन[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० गोपालिका] तीन चार अंगुल लंबा एक बरसाती कीड़ा जिसे घिनौरी या गिजाई भी कहते हैं।

ग्वाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वाला] ग्वाले की स्त्री।

ग्वैंठना↺†—क्रि० स० [सं० गुएठन, हिं० गुमेठना] मरोड़ना। ऐंठना। घुमाना या टेढ़ा करना। उ०—सौंहें हू चाह्यो न तैं केती खाई सौंह। एहो क्यों बैठी किए ऐंठी ग्वैंठी गौंह।—बिहारी (शब्द०)।

ग्वैंठा[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० गोंइंठा] दे० 'गोइंठा'।

ग्वैंठा[2]†—वि० [हिं० ऐंठा का अनु०] [वि० स्त्री० ग्वैंठी] ऐंठा हुआ। टेढ़ा। मेढ़ा।

ग्वैंड़ा↺†—संज्ञा पुं० [हिं० गाँव+ड़ा] गाँव के आसपास की भूमि। उ०—(क) घर घर ते पकवान चलाये। निकसि गाँव के ग्वैंड़े आये।—सूर (शब्द०) (क) यदपि तेज रौहाल वर लगी न पलको बार। तउ ग्वैंड़ो घर को भयो पैंड़ो कोस हजार।—बिहारी (शब्द०)।

ग्वैंड़े†—क्रि० वि० [हिं० ग्वैंड़ा] निकट। पास। करीब। उ०—ग्वैंड़े आय टेरत है, नेह सों निवेरत हैं, जातें भरि पावत हैं भाव भरि ग्वारई।—घनानंद, पृ० २०४।

ग्वैयाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गोइंयाँ] दे० 'गोइंयाँ'।

घ

घ—हिंदी वर्णमाला के व्यंजनों में से कवर्ग का चौथा व्यंजन जिसका उच्चारण जिह्वामूल या कंठ से होता है। यह स्पर्श वर्ण है। इसमें घोष, नाद, संवार और महाप्राण प्रयत्न होते हैं।

घंघर↺†—संज्ञा पुं० [अनु० घनघुन+रव] दे० 'घुँघरू'। उ०—किंकिन सु पाइं घंघर सु गज राज निसाँन सबद्द प्रति।—पृ० रा०, २५।२७६।

घंट[1]—संज्ञा पुं० [सं० घण्ट] १. शिव का एक नाम। २. एक प्रकार का व्यंजन। चटनी [को०]।

घंट[2]—संज्ञा पुं० [सं० घट] १. घड़ा। २. मृतक की क्रिया में वह जलपात्र जो पीपल में बाँधा जाता है।

घंट[3]—संज्ञा पुं० [सं० घण्टा] दे० 'घंटा'। उ०—घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरो करहिं पाइक फहराहीं।—मानस, १।३०२।

यौ०—घंटघड़ियाल।

घंटक—संज्ञा पुं० [सं० घण्टक] एक क्षुप जिसका मूल कफनाशक है। घंटाकर्ण [को०]।

घंटा—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० घंटी] १. धातु का एक बाजा जो केवल ध्वनि उत्पन्न करने के लिये होता है, राग बजाने के लिये नहीं।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक तो औंधे बरतन के आकार का जिसमें एक लंगर लटकता रहता है और जो लंगर के हिलने से बजता है। दूसरा जिसे घड़ियाल कहते हैं थाली की तरह गोल होता है और मुँगरी से ठोंककर बजाया जाता है।

क्रि० प्र०—बजाना।

मुहा०—घंटे मोरछल से उठाना=अरवंत वृद्ध के शव को बाजे गाजे के साथ श्मशान पर ले जाना।

२. वह घड़ियाल जो समय की सूचना देने के लिये बजाया जाता है। ३. घंटा बजने का शब्द। घंटे की ध्वनि। जैसे—घंटा सुनते ही सब लोग चल पड़े।

क्रि० प्र०—होना।

४. दिन रात का चौबीसवाँ भाग। साठ मिनट या ढाई घड़ी का समय। ५. लिंगेंद्रिय—(बाजारू)। ६. ठेंगा।

मुहा०—घंटा दिखाना=किसी माँगने या चाहनेवाले को कोई वस्तु न देना। किसी माँगी या चाही हुई वस्तु का अभाव बताना। जैसे,—रुपया माँगने जाओगे तो वह घंटा दिखा देगा। घंटा हिलाना=व्यर्थ का काम करना। झख मारना। सिर पटकना। हाथ मलना। जैसे,—तुम समय पर तो वहाँ पहुँचे नहीं; अब घंटा हिलाओ।

घंटाक—संज्ञा पुं० [सं० घण्टाक] सं० 'घंटक'।

घंटाकरन—संज्ञा पुं० [सं० घण्टाकर्ण] एक घास का पौधा जिसके पत्ते धोए या अरुई की तरह के होते हैं।

घंटाकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव के एक उपासक का नाम जो कान में इसलिये घंटा बाँधे रहता था कि जब कहीं राम या विष्णु का नाम लिया जाय, तब वह अपना सिर हिला दे और घंटे के शब्द के कारण वह नाम न सुने। २. एक पौधा। घंटक। घंटाकरन।

घंटाघर—संज्ञा पुं० [हिं० घंटा+घर] वह ऊँचा धौरहर जिसपर एक

ऐसी बड़ी धर्मघड़ी लगी हो जो चारों ओर से दूर तक दिखाई देता हो और जिसका घंटा दूर तक सुनाई देता हो।

घंटाताड—वि० [सं० घण्टाताड] घंटा बजानेवाला। घंटावादक। घांटिक (को०)।

घंटानाद—संज्ञा पुं० [सं० घण्टानाद] १. घंटे की ध्वनि। २. कुबेर के एक मंत्री का नाम (को०)।

घंटापथ—संज्ञा पुं० [सं० घण्टापथ] १. वह सड़क जो १० धनुष चौड़ी हो। नगर की मुख्य सड़क। राजमार्ग। २. भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य पर मल्लिनाथ की टीका का नाम (को०)।

घंटापाटलि—संज्ञा पुं० [सं० घण्टापाटलि] मुष्कक वृक्ष (को०)।

पर्या०—गोलीढ। झाटल। मोक्ष। मुष्कक। काष्ठपाटलि।

घंटाबीज—संज्ञा पुं० [सं० घण्टाबीज] जमालगोटे का पौधा और उसका बीज (को०)।

घंटारव—संज्ञा पुं० [सं० घण्टारव] १. घंटे की ध्वनि। २. सनई का पौधा। शणपुष्पिका (को०)।

घंटारवा—संज्ञा स्त्री० [सं० घण्टारवा] सनई। शणपुष्पिका (को०)।

घंटावादक—वि० [सं० घण्टावादक] दे० 'घंटाताड'।

घंटाशब्द—संज्ञा पुं० [सं० घण्टाशब्द] १. घंटे की ध्वनि। २. कांस्य। काँसा (को०)।

घंटास्वन—संज्ञा पुं० [सं० घण्टास्वन] दे० 'घंटारव'।

घंटिक—संज्ञा पुं० [सं० घण्टिक] नक्र। मगर। घड़ियाल (को०)।

घंटिका[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० घण्टिका] १. बहुत छोटा घंटा। २. घंटी। घाँटी। ललरी। ३. घुँघरू।

यौ०—क्षुद्रघंटिका। छुद्रघंटिका।

घंटिका[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० घण्टिका] छोटे छोटे लंबे घड़े जो रहँट में लगे रहते हैं। घरिया। उ०—श्रवणकूप की रहँट घटिका राजत सुभग समाज।—सूर (शब्द०)।

घंटी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० घण्टिका] पीतल या फूल की छोटी लोटिया।

घंटी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० घण्टा या घण्टिका] १. बहुत छोटा घंटा।

विशेष—यह औंधे बरतन के आकार का होता है और जिसके अंदर लंगर बँधा रहता है। घंटी कई कामों के लिये बजाई जाती है। लोग प्रायः पूजा के समय घंटी बजाते हैं। अब नौकरों को बुलाने तथा लोगों को सावधान करने के लिये भी घंटी बजाई जाती है।

२. घंटी बजने का शब्द।

क्रि० प्र०—होना।

३. घुँघरू। चौरासी। ३. गले की नाल का वह भाग जो अधिक उभड़ा रहता है। गले की हड्डी की वह गुरिया जो अधिक निकली रहती है। ५. गले के अंदर मांस की वह छोटी पिंडी जो जीभ की जड़ के पास लटकती रहती है। कौआ।

मुहा०—घंटी उठाना या बैठाना=गले की घंटी की सूजन को दबाकर मिटाना।

घंटी[३]—वि० [सं० घण्टिन्] १. जिसमें घंटियाँ लगी हों। २. घंटे की भाँति बजनेवाला।

घंटी[४]—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम (को०)।

घंटील संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो चारे के काम में आती है और जमीन पर दूर तक फैलती है। गधे इसे बहुत खाते हैं। यह पंजाब के मुजफ्फरगढ़, झंग आदि स्थानों में बहुत होती है।

घंटु—संज्ञा पुं० [सं० घण्टु] १. ताप। प्रकाश। ज्योति। २. हाथी की सजावट में उसकी छाती पर बाँधी जानेवाली घूँघरूदार पट्टी। ३. गजघंटा (को०)।

घंड—संज्ञा पुं० [सं० घण्ड] मधुमक्खी (को०)।

घंडी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घंटी] घाँटी। गले का कौआ। उ०—घंडी तले वंकतालि वनाई। घंट तले कछु स्वाद न पाई।—प्राण०, पृ० ७५।

घँगोल†—संज्ञा पुं० [देश०] कुमुद। कोईं।

घँघरा—संज्ञा पुं० [हिं० घाँघरा] दे० 'घघरा'। उ०—स्त्रियों का पहिरावा ओढ़ना, घँघरा या छोटेपन में सुथना है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ६।

घँघराघोर†—संज्ञा पुं० [हिं० घघरा+घोर] छुआछूत के विचार का अभाव। भ्रष्टाचार। घालमेल।

घँघरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाँघरा] दे० 'घघरी'। उ०—घँघरी लाल जरकसी सारी सोंधे भीनी चोली जू।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४६।

घँघोरना†—क्रि० स० [हिं० घन+घोरना] दे० 'घँघोलना'।

घघोलना—क्रि० स० [हिं० घन+घोलना] १. हिलाकर घोलना। पानी को हिलाकर उसमें कुछ मिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. पानी को हिलाकर मैला करना।

संयो० क्रि०—डालना।

घँटियार†—संज्ञा पुं० [हिं० घाँटी] पशुओं के गले का एक रोग जिसमें उनके गले में काँटे से पड़ जाते हैं और वे चारा नहीं निगल सकते।

घँसना—क्रि० [हिं० घिसना] दे० 'घिसना'।

घइलिया(पु)† संज्ञा स्त्री० [हिं० घैला] छोटा घड़ा। गागर। उ०—काच माटी कै घइलिया भरि लै पनिहार।—धरम०, पृ० ८।

घइली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घैला] गगरी। छोटा घड़ा।

घई(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० गम्भीर] १. गंभीर भँवर। पानी का चक्कर। उ०—आये सदा सुधारि गोसाई जन ते बिगरि गई है। थके वचन पैरत सनेह सरि परे मानो घोर घई है।—तुलसी (शब्द०)। २. थूनी। टेक। ३. वह दरार जो जोलाहों के तूर में १½ अंगुल गहरी और इतनी ही चौड़ी और गज भर लंबी खुदी होती है।

घई(पु)[२]—वि० जिसकी थाह न लग सके। अत्यंत गंभीर। बहुत गहरा। अथाह। उ०—प्रीति प्रतीति रीति शोभा सरि थाहत जहँ तहँ घई।—तुलसी (शब्द०)।

घउरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फलों का गुच्छा । घौर । बवरि । उ०—ओनइ रही केरन्ह की घउरी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४ ।

घघरवेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुँघराला+वेल] एक प्रकार की लता । वंदाल ।

घघरा—संज्ञा पुं० [हिं० घन+घेरा] [स्त्री० घघरी] स्त्रियों का एक चुननदार पहनावा जो कटि से लेकर पैर तक का शरीर ढाकने के लिये होता है । लहँगा ।

घघरो—संज्ञा स्त्री० [हिं० घघरा] छोटा लहँगा ।

घचाघच—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नरम चीज में किसी धारदार या नुकीली वस्तु के चुभने या धँसने का शब्द ।

घट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. घड़ा । जलपात्र । कलसा । २. पिंड । शरीर । उ०—वा घट के सौ टूक कै दीजै नदी बहाय । नेह भरेहू पै जिन्हैं दौरि रुखाई जाय ।—रसनिधि (शब्द०) । ३. मन । हृदय । जैसे,—अंतरयामी घट घट वासी । ४. कुंभक प्राणायाम (को०) । ५. कुंभ राशि । ६. एक तौल । २० द्रोण की तौल । ७. हाथी का कुंभ । ८. किनारा । ६. नौ प्रकार के द्रव्यों में से एक जिसे तुला भी कहते हैं । वि० दे० 'तुलापरीक्षा' ।

मुहा०—घट में वसना या वैठना=(१) हृदय में स्थापित होना । मन में वसना । ध्यान पर चढ़ा रहना । जैसे—जिसके घट में राम वसते हैं, वही कुछ देता है । (२) किसी दात का मन में वैठना । हृदयंगम होना ।

घट²—संज्ञा पुं० [हिं० घटा] मेघ । बादल । घटा । उ०—सहनाइ नफेरिय नेक वजं । सु मनों घट भद्दव मास गजं ।—पृ० रा०, २४।१८२ ।

घट³—वि० [हिं० घटना] घटा हुआ । कम । थोड़ा । छोटा । मध्यम । उ०—घट वढ़ रकम वनाइ कै सिसुता करी तगीर ।—रसनिधि (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'वढ़' के साथ ही अधिकतर होता है । अकेले इसका क्रियावत् प्रयोग 'घटकर' ही होता है । जैसे,—यह कपड़ा इससे कुछ घटकर है ।

घटकंचुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० घटकञ्चुकी] तांत्रिकों की एक रीति ।

विशेष—इसमें भैरवी चक्र में संमिलित स्त्रियों की कंचुकियाँ लेकर एक घड़े में भर दी जाती हैं । फिर एक एक पुरुष वारी वारी से एक एक कंचुकी निकालता है । जिस पुरुष के हाथ में जिस स्त्री की कंचुकी (चोली) आती है, उसी के साथ वह संभोग कर सकता है ।

घटक¹—वि० [सं०] १. दो पक्षों में वातचीत करानेवाला । वीच में पड़नेवाला । मध्यस्थ । २. मिलानेवाला । योजक ।

घटक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाह संबंध तय करानेवाला व्यक्ति । वरेखिया । २. दलाल । ३. काम पूरा करनेवाला । चतुर व्यक्ति । ४. वंशपरंपरा वतलानेवाला । चारण । ५. वह सामग्री जिसके मेल से कोई पदार्थ वना हो । अवयवभूत वस्तु । उपादान वस्तु । ६. विना फूल लगे फल देनेवाला वृक्ष । जैसे, गूलर । ७. घड़ा ।

घटकना(पु)—क्रि० स० [अनु० घटक्] १. उदरस्थ करना । २. दे० गटकना' ।

घटकरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घटकर्ण] दे० 'घटकर्ण' । उ०—जयति दसकंठ घटकरन वारिदनाद कदन कारन कालनेमि हंता ।—तुलसी (शब्द०) ।

घटकर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल ।

घटकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभकर्ण ।

घटकर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] विक्रम की सभा के नवरत्नों में एक कवि का नाम ।

विशेष—इनका नाम कालिदास के साथ विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में आता है । इनका वनाया नीतिसार नामक एक ग्रंथ मिलता है जिसे 'घटकर्पर काव्य' भी कहते हैं । इनका छोटा सा काव्य यमक अलंकार से परिपूर्ण है । 'यदि कोई इससे सुंदर यमकालंकारयुक्त कविता करे तो मैं फूटे घड़े के टुकड़े से जल भरूँगा' इस प्रतिज्ञा के कारण इनका नाम घटकर्पर या घटखर्पर पड़ा है ।

घटका—संज्ञा पुं० [सं० घटक(=शरीर ।) अथवा अनु० घर्र घर्र शब्द] मरने के पहले की वह अवस्था जिसमें साँस रुक रुककर घरघराहट के साथ निकलती है । कफ छेंकने की अवस्था । घर्रा ।

क्रि० प्र०—घटका लगना=मरते समय कफ छेंकना ।

घटकार—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार ।

घटग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] जल भरनेवाला व्यक्ति । पनहारा (को०) ।

घटज—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि । उ०—कुसमउ देखि सनेहु सँभारा । वढ़त विंधि जिमि घटज निवारा ।—मानस, २ । ६६ ।

घटजोनी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घटयोनि] दे० 'घटयोनि' । उ०—वालमीकि नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी । —मानस, १ । ३ ।

घटती—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना] १. कमी । कसर । न्यूनता । अवनति ।'वढ़ती' का उलटा ।

मुहा०—घटती का पहरा=अवनति के दिन । बुरा जमाना ।

२. हीनता । अप्रतिष्ठा । उ०—घटती होइ जाहि ते अपनी ताको कीजै त्याग ।—सूर (शब्द०) ।

घटदासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नायक और नायिका का सम्मिलन करा देनेवाली दासी । २. कुटनी ।

घटन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० घटनीय, घटित] १. गढ़ा जाना । रूप या आकार देना । २. होना । उपस्थित होना । ३. मिलाना । जोड़ना । ४. प्रयास । गति । प्रयत्न । ५. कलह विरोध ।

घटना¹—क्रि० अ० [सं० घटन] १. उपस्थित होना । वाके होना । होना । जैसे,—वहाँ ऐसी घटना घटी कि सब लोग आश्चर्य में आ गए । २. लगना । सटीक वैठना । आरोप होना । मेल में होना । मेल मिल जाना । जैसे,—यह कहावत उनपर ठीक घटती है । उ०—अब तो तात दुरावौं तोहीं । दारुण दोप

भटइ अति मोहीं ।—तुलसी (शब्द०) । ३. उपयोग में आना । काम आना । उ०– लाभ कहा मानुष तन पाए । काम वचन मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराए ।—तुलसी (शब्द०) ।

घटना[२]—क्रि० अ० [हिं० कटना] कम होना । छोटा होना । क्षीण होना । जैसे,—कूएँ का पानी घट रहा है । उ०–श्रवण घटहु पुनि दृग घटहु, घटौ सकल बल देहु । इते घटे घटिहै कहा, जो न घटै हरि नेह ।—तुलसी (शब्द०) ।

घटना[३]—क्रि० स० [सं० घटन] १. बनाना । रचना । २. पूरा करना । उ० – सखा सोच त्यागहु बल मोरें । सब विधि घटब काज मैं तोरें ।—मानस, ४ । ६ ।

घटना[४]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोई बात जो हो जाय । वाकआ । हादसा । वारदात । जैसे,—यहाँ ऐसी बड़ी घटना कभी नहीं हुई थी । उ०—अघट घटना सुघट, सुघट विघटन विकट, भूमि पाताल जल गगन गंता—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—घटनाक्रम । घटनाचक्र =घटनाओं की परंपरा या उनका सिलसिला । घटनावली=घटनाओं का समूह । घटनास्थल=वह स्थान जहाँ घटना घटित हुई हो ।

२. योजना । ३. समूहीकरण ४. गजघटा । गजयूथ ।

घटनाई†– संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़नई] दे० 'घड़नई' ।

घटपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु विद्या (इमारत) में वह खंभा जिसका सिरा घड़े और पल्लव के आकार का बना हो ।

घटपर्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रायश्चित्त न करने और जाति में संमिलित न होनेवाले पतित व्यक्ति का प्रेतकर्म जो उसकी जीवितावस्था में ही उसके परिजनों द्वारा संपन्न होता है [को०] ।

घटवढ़[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना+बढ़ना] १. कमीवेशी । न्यूनाधिकता । २. नृत्य की एक क्रिया ।

घटबढ़[२]– वि० कमवेश । अपेक्षित से अधिक या कम ।

घटयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि ।

घटभेदनक—संज्ञा पुं० [सं०] वर्तन बनाने का एक उपकरण [को०] ।

घटराशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक द्रोण का मान लगभग सोलह सेर का होता है ।

घटवाई[१]—संज्ञा पुं० [हिं० घाट+वाई] १. घाटवाला । घाट का कर लेनेवाला । २. विना कर लिए या तलाशी लिए न जाने देनेवाला । रोकनेवाला । उ० – आवन जान न पावत कोऊ तुम मग में घटवाई । सूरश्याम हमको विरमावत खीझत बहिनी माई । – सूर (शब्द०) ।

घटवाई[२]—संज्ञा स्त्री० वह कर या महसूल जो घाट का अधिकारी यात्रियों से घाट पर उतरने चढ़ने के बदले लेता है ।

घटवाई[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटवाना] कम करवाई । कम करवाने की क्रिया या पारिश्रमिक ।

घटवादन—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में मिट्टी के घड़े को औंधा करके बजाने की क्रिया ।

घटवाना—क्रि० स० [हिं० घटाना का प्रे० रूप] घटाने का काम कराना । कम कराना ।

घटवार—संज्ञा पुं० [हिं० घाट+पाल या वाला] १. घाट का महसूल लेनेवाला । उ०—ये घटवार घाट घट रोकें घोखैं धार बहावें ।—तुरसी श०, पृ० ३०८ । २. मल्लाह । केवट । ३. घाट पर बैठकर दान लेनेवाला ब्राह्मण । घाटिया । ४. घाट का देवता ।

घटवारिया – संज्ञा पुं० [हिं० घाट+वाला] दे० 'घटवालिया' ।

घटवाल—संज्ञा पुं० [हिं० घाट+पाल [दे० 'घटवार' ।

घटवालिया—संज्ञा पुं० [हिं० घाट+वाला] तीर्थस्थानों में नदी या सरोवर के घाट पर बैठकर दान लेनेवाला पंडा । तीर्थपंडा । घाटिया ।

घटवाह—संज्ञा पुं० [हिं० घाट + वाह (प्रत्य०)] घाट का ठेकेदार । घाट का कर वसूल करनेवाला ।

घटवाही—संज्ञा पुं० स्त्री० [हिं० घाट+वाही] दे० 'घटवाई' ।

घटसंभव—संज्ञा पुं० [सं० घटसम्भव] अगस्त्य मुनि ।

घटस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी मंगल कार्य या पूजन आदि के समय, विशेषतः नवरात्र में, घड़े में जल भरकर रखना जो कल्याणकारक समझा जाता है । २. नवरात्र का आरंभ या पहला दिन जिसमें घट की स्थापना होती है ।

घटहा†—संज्ञा पुं० [हिं० घाट +हा (प्रत्य०) १ घाट का ठेकेदार । २. वह नाव जो इस पार से उस पार जाती हो ।

घटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मेघों का घना समूह । उमड़े हुए बादलों का ढेर । मेघमाला । कादंबिनी । उ०–त्यों पदमाकर वारहि वार सुवार बगारि घटा करती हो ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १५८ ।

क्रि० प्र०—उठना । —उनयना । —उमड़ना । —घिरना । —छाना । —झूमना ।

२. समूह । झुंड । उ०—रजनीचर मत्त गयंद घटा विघटैं मृगराज के साज लरैं । झपटैं भट कोटि मही पटकैं गरजैं रघुवीर की सौंह करैं ।—तुलसी (शब्द०) ३. चेष्टा । प्रयत्न । प्रयास (को०) । ४. सैनिक कार्य के लिये एकत्र हाथियों का झुंड (को०) । ५. सभा । गोष्ठी (को०) ।

घटाई (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना + ई (प्रत्य०)] १. हीनता । अप्रतिष्ठा । बेइज्जती । उ०—भूप मन आई यह निपट घटाई होति भक्ति सरसाई नहीं जानै घटी प्रीति है ।—प्रिया (शब्द०) । २. घटाने की क्रिया ।

घटाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का उतना भाग जितना एक घड़े के अंदर आ जाय । घड़े के अंदर की खाली जगह । उ०—देह को संयोग पाइ जीव ऐसो नाम भयो, घट के संयोग घटाकाश ज्यों कहायो है ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६०८ ।

घटाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुस्तंभ का अष्टम भाग । वास्तु विद्या में खंभे के नौ विभागों में से आठवाँ विभाग ।–वृहत्०, पृ० २३० ।

घटाटोप—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादलों की घटा जो चारों ओर से घेरे हों । २. गाड़ी या बहली को ढक लेनेवाला ओहार । पालकी या पीनस का ओहार । किसी वस्तु को पूर्णतः ढक लेनेवाला कपड़ा । ३. बादलों की भाँति चारों ओर से घेर लेनेवाला दल वा समूह । उ०—घटाटोप करि चहुँ दिसि

घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी।—मानस ६।३८। ४. आडंबर।

घटाना—क्रि० स० [हिं० घटना] १. कम करना। क्षीण करना। २. बाकी निकालना। काटना। जैसे,—सौ रुपये में से पचास घटा दो। ३. अप्रतिष्ठा करना। बेकदरी करना। जैसे,—तुमने आप अपने को घटाया है।

घटाव—संज्ञा पुं० [हिं० घटना] १. कम होने का भाव। न्यूनता। कमी। २. अवनति। तनज्जुली।

यौ०—घटाव बढ़ाव=कमी बेशी। न्यूनता और वृद्धि।

३. नदी की बाढ़ की कमी। 'चढ़ाव' का उलटा।

मुहा०—घटाव पर होना=बाढ़ का कम होना।

घटावना‡—क्रि० स० [हिं० घटाव+ना] दे० 'घटाना'।

घटिघम—संज्ञा पुं० [सं० घटिन्धम] कुंभकार। कुम्हार (को०)।

घटि[1]—वि० [हिं०] दे० 'घट'।

घटि[2]†—क्रि० वि० घटकर।

घटि[3]‡—संज्ञा स्त्री० घटी। कमी।

घटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घंटा पूरा होने पर घड़ियाल बजानेवाला व्यक्ति। घंटा बजानेवाला सिपाही। घड़ियाली। २. घड़नई के सहारे जलाशय या नदी को पार करानेवाला। ३. नितंब।

घटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घटी यंत्र। टाइमपीस। घड़ी। २. एक घड़ी का समय। २४ मिनट का समय। ३. छोटा घड़ा। गगरी। ४. एक प्रकार का जल का घड़ा जिससे दिन की घड़ियों का ज्ञान होता था (को०)। ५. घुटना। जानु (को०)।

यौ०—घटिकायंत्र। घटिकावधान। घटिकाशतक। घटिकास्थान।

घटिकायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० घटिकायन्त्र] दे० 'घटीयंत्र'।

घटिकावधान—संज्ञा पुं० [सं०] एक घड़ी में कई काम करनेवाला व्यक्ति।

घटिकाशतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक घड़ी में सौ श्लोक बनानेवाला कवि। २. एक घड़ी में एक साथ सौ काम करनेवाला व्यक्ति।

विशेष—बहुत से लोग ऐसी साधना करते हैं कि वे एक साथ शतरंज खेलते जाते, पद्य बनाते जाते तथा गणित करते जाते हैं और इस प्रकार एक घंटे के भीतर सब काम पूरा उतार देते हैं।

घटिकास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रियों के ठहरने का स्थान। पथिकशाला। चट्टी। सराय।

घटिघट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम (को०)।

घटित—वि० [सं०] १. बना हुआ। रचा हुआ। रचित। निर्मित। २. जो हुआ हो। जो एक बार हो गया हो (को०)।

घटिताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना] कमी। न्यूनता। त्रुटि।

घटिया—वि० [हिं० घट+इया (प्रत्य०)] १. जो अच्छे मोल का न हो। कम मोल का। खराब। सस्ता। 'बढ़िया' का उलटा। २. अधम। तुच्छ। नीच। जैसे,—वह बड़ा घटिया आदमी है।

घटियारी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे खवी भी कहते हैं। यह पंजाब में होती है और इसमें अदरक की सी महक होती है।

घटिहा(पु)†—वि० [हिं० घात+हा (प्रत्य)] १. घात लगानेवाला। घात पाकर अपना स्वार्थ साधनेवाला। २. चालाक। मक्कार। ३. धोखेबाज। बेईमान। ४. व्यभिचारी। लंपट। ५. दुष्ट। दुःखदायी। खल। उ०—कह गिरधर कविराय सुनो हो निर्दय पपिहा। नेक रहन दे मोहिं चोंच मूँदे रह घटिहा।—गिरधर (शब्द०)।

घटी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. २४ मिनट का समय। घड़ी। मुहूर्त। २. समयसूचक यंत्र। टाइमपीस। क्लाक। ३. छोटा घड़ा। कलसी। गगरी। ४. रहँट की घरिया। ५. प्राचीन काल में समय जानने के काम में आनेवाला एक विशेष जलपात्र।

यौ०—घटीकार=कुम्हार। घटीग्रह, घटीग्राह=पानी भरनेवाला व्यक्ति।

घटी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना] १. कमी। न्यूनता। २. हानि। क्षति। नुकसान। घाटा।

मुहा०—घटी आना या पड़ना=व्यवसाय में हानि होना।

घटी[3]—संज्ञा पुं० [सं० घटिन्] १. कुंभराशि। २. शिव।

घटीघट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०)।

घटीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० घटीयन्त्र] १. समयसूचक यंत्र। घड़ी। २. संग्रहणी रोग का एक भेद जो असाध्य माना जाता है। ३. रहँट जिससे कूँए से पानी निकाला जाता है। ४. दिन का समय जानने का जलपात्र (को०)।

घटूका(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घटोत्कच] भीमसेन का घटोत्कच नामक पुत्र जो हिडिंबा राक्षसी से पैदा हुआ था। उ०—कहत नाइ सिर बचन घटूका। सुनिये नाथ क्षमा करि चूका।—सबल (शब्द०)।

घटेरुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० घाटी+सं० रुज] पशुओं का एक प्रकार का रोग जिसमें उनका गला फूल आता है।

घटोत्कच—संज्ञा पुं० [सं०] हिडिंबा राक्षसी से उत्पन्न भीमसेन का पुत्र जिसे महाभारत युद्ध में कर्ण ने मारा था।

घटोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि।

घटोर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० घटोदर] मेढ़ा। मेष।—(डिं०)।

घट्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घाट। चुंगी या महसूल लेने का स्थान। २. क्षुब्ध करना। क्षोभण।

घट्ट[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० घट] शरीर। उ०—उत्तर आज स उत्तरउ सीय पड़ेसी घट्ट। सोहागिण घर आँगणइ दोहागिणि रइ घट्ट।—ढोला०, दू० २६०।

घट्ट[3]—संज्ञा पुं० [हिं० घाट] घाटी। तलहटी। उ०—अति आणंद उमाहियउ वहइ ज पूगल वट्ट। बीजइ पुहरि उलाँघियउ आडवलारउ घट्ट।—ढोला०, दू० ४२४।

घट्ट[4](पु)—संज्ञा पुं० [सं० घट=घड़ा] घड़ा। कुंभ। उ०—सहस गौ मँगाइ सवच्छिय, देइ द्रव्य लै अच्छी अच्छिय। सहस घट्ट सिव ऊपर कीनो, तीन उपास नेम तब लीनो।—पृ० रा०, १।४०२।

घट्टकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चुंगी की चौकी (को०)।

घट्टजीवी—संज्ञा पुं० [सं० घट्टजीविन्] १. घाट के महसूल से जीविको-

पार्जन करनेवाला व्यक्ति । २. वैश्या स्त्री में रजक से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति [को०] ।

घट्टन – संज्ञा पुं० [सं०] १. हिलाना डुलाना । चलाना । २. संघटन । संयोजन [को०] ।

घट्टना – संज्ञा पुं० [सं०] १. हिलाना । डुलाना । चलाना । २. रगड़ना । घोटना । मलना । ४. जीविका । वृत्ति (को०) ।

घट्टा¹—संज्ञा पुं० [हिं० घटना] १. घाटा । घटी । कमी । टोटा । २. दरार । छेद । जैसे—सिर पर ऐसी लाठी पड़ी कि घट्टा खुल गया ।

मुहा०—घट्टा खुलना=दरार हो जाना । फट जाना ।

घट्टा²Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० घृष्ट, प्रा० घट्ट] दे० 'घट्ठा' । उ०—धनु खींचत घट्टा पड़े दूजे काके हाथ ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १०५ ।

घट्टा³Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० घटा] दे० 'घटा' । उ०—प्रलय काल के जनु घन घट्टा ।—मानस, ६, ८६ ।

घट्टित¹—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में पैर चलाने का एक प्रकार जिसमें एँड़ी को जमीन पर दबाकर पंजा नीचे ऊपर हिलाते हैं ।

घट्टित²—वि० [सं०] १. हिलाया डुलाया हुआ । २. निर्मित । ३. रगड़कर चिकनाया हुआ । ४. दबाया हुआ [को०] ।

घट्टी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना] घटी । कमी ।

घट्ठ—स्त्री० पुं० [सं० घट्टन] संघटन । जमावड़ा ।

घट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० घृष्टक, प्रा० घट्ठ] शरीर पर वह उभड़ा हुआ चिह्न जो किसी वस्तु की रगड़ लगते लगते पड़ जाता है । जैसे,—तलवार की मूठ पकड़ते उसकी उँगलियों में घट्ठे पड़ गए हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—घट्ठा पड़ना=अभ्यास होना । मश्क होना ।

घड़†—संज्ञा स्त्री० [सं० घट्ट या घट] १. दल । समूह । सेना । २. दे० 'घटा' । उ०—आज धरा दस ऊनम्यउ काली घड़ सखराँह । उवा धड़ देसी ओलँगा कर कर लाँबी बाँह ।—ढोला०, दू. २७१ ।

घड़घड़—संज्ञा पुं० [अनु०] बादल गरजने, गाड़ी चलने आदि का शब्द ।

घड़घड़ाना¹—क्रि० अ० [अनु०] गड़गड़ या घड़घड़ शब्द करना । बादल गरजने या गाड़ी आदि चलने का शब्द होना । गड़गड़ाना जैसे,—बादल घड़घड़ा रहे हैं ।

घड़घड़ाना²—क्रि० स० [अनु०] किसी वस्तु को चलाना या खींचना जिससे घड़घड़ शब्द हो । जैसे,—वह गाड़ी घड़घड़ाता आ पहुँचता ।

घड़घड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु घड़घड़] १. घड़घड़ शब्द होने का भाव । २. बादल या गाड़ी चलने का शब्द ।

घड़त—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गढ़त' ।

घड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गढ़न' ।

घड़नई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ा+नैया] दे० 'घड़नैल' ।

घड़ना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'गढ़ना' । उ०—पाथरी घड़ीयों के औघद लोह ।—बीसल० रास, पृ० ६४ ।

घड़नाईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ा+नैया] दे० 'घड़नैल' । उ०—सुरदुर पुर को बहुरों फिरं । चढ़ि घड़नाई सरिता तिरै ।—अर्ध, पृ० ४३ ।

घड़नैल—संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा+नैया (=नाव)] बाँस में घड़े बाँधकर बनाया हुआ ढाँचा जिससे छोटी छोटी नदियाँ पार करते हैं ।

घड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० घट अथवा सं० घट+क (प्रत्य०)] मिट्टी का बना हुआ गगरा । जलपात्र । बड़ी गगरी । कलसा । घैला । कुंभ । ठिल्ला ।

मुहा०- घड़ों पानी पड़ जाना=अत्यंत लज्जित होना । लज्जा के मारे गड़ जाना । जैसे,—जब मैंने मुँह पर यह बात कही तो उसपर घड़ों पानी पड़ गया ।

घड़ा²Ⓟ—वि० [हिं० घना] अधिक । उ०—अवर जनम बारे घड़ा हो नरेस ।—बी० रासो, पृ० ६५ ।

घड़ा³Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० घट्ट] सेना । उ०—तुरक घड़ा नव तेरही तेरह साथ कबंध ।—रा० रू०, पृ० ७० ।

घड़ाई -संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गढ़ाई' ।

घड़ाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'गढ़ाना' । उ०—लड़की के लिये दो एक चीज चाँदी की घड़ाना जरूरी है ।—पिंजरे० पृ०१०५ ।

घड़ामोड़Ⓟ†—वि० [हिं० घड़ा (=सेना) +मोड़ना] शूरवीर । —पराक्रमी (डिं०) ।

घड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० घटिका] १ मिट्टी का बरतन जिसमें रखकर सोनार लोग सोना चाँदी गलाते हैं । २. मिट्टी का छोटा प्याला । ३. शहद का छत्ता । ४. बच्चादानी । गर्भाशय । ५. मिट्टी की नाँद जिसमें लोहार लोहा गलाते हैं । ६. रहँट में लगी हुई छोटी छोटी ठिलियाँ जिनमें पानी भरकर आता है ।

घड़ियाल¹—संज्ञा पुं० [सं० घटिकालि, प्रा० घड़िआलि=घंटों का समूह] वह घंटा जो पूजा में या समय की सूचना के लिये बजाया जाता है ।

विशेष दिल्ली में इस शब्द को स्त्रीलिंग बोलते हैं ।

घड़ियाल²—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा और हिंसक जलजंतु । ग्राह ।

विशेष—घड़ियाल आठ दस हाथ लंबा और गोह या छिपकली के आकार का होता है । इसकी पीठ पर का चमड़ा काला और कड़ा होता है । इसकी ठोर का ऊपरी भाग लोटे के आकार का होता है जिसे तूँबो या मटुक कहते हैं ।

घड़ियाली¹—संज्ञा पुं० [हिं० घड़ियाल] १. समय की सूचना के लिये घंटा बजानेवाला । २. घंटा बजानेवाला ।

घड़ियाली²—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ियाल] एक प्रकार का घंटा जो पूजन के समय देवालय आदि में बजाया जाता है । विजयघंटा ।

घड़िला†—संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा] छोटा घड़ा ।

घड़ी¹—संज्ञा [सं० घटी] १. काल का एक मान । दिन रात का ३२ वाँ भाग । २४ मिनट का समय । वि० दे० मुहा० 'घड़ी कूकना' ।

मुहा०—घड़ी घड़ी=बार बार । थोड़ी थोड़ी देर पर । घड़ी

तोला, घड़ी माशा=कभी कुछ, कभी कुछ। एक क्षण में एक बात, दूसरे क्षण में दूसरी बात। अस्थिर बात या व्यवहार। जैसे– उनकी बात का क्या ठिकाना, घड़ी तोला, घड़ी माशा। **घड़ी गिनना**=(१) किसी बात का बड़ी उत्सुकता के साथ आसरा देखना। अत्यंत उत्कंठित होकर प्रतीक्षा करना। (२) मृत्यु का आसरा देखना। मरने के निकट होना। **घड़ी में घड़ियाल है**=(१) जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं। न जाने कब काल आए। (२) क्षण भर में न जाने क्या से क्या हो जाता है। दशा पलटते देर नहीं लगती।

विशेष—बहुत बुड्ढे आदमी के मरने पर उसे लोग घंटा बजाते हुए श्मशान पर ले जाते हैं, इसी से यह मुहावरा बना है।

घड़ी देना=मुहूर्त बतलाना। सायत बतलाना। उ०—भरैं गो चलैं गंग गति लेई। तेहि दिन कहाँ घड़ी को देई।—जायसी (शब्द०)। **घड़ी भर**=थोड़ी देर। थोड़ा समय। जैसे—घड़ी भर ठहरो, हम आए। **घड़ी सायत पर होना** = मरने के निकट होना।

२ समय। काल। उ०—जिस घड़ी जो होना होता है, वह हो ही जाता है। ३. अवसर। उपयुक्त समय। जैसे,—जब घड़ी आएगी तब काम होते देर न लगेगी। ४. समयसूचक यंत्र। जैसे,—क्लाक, टाइम पीस, वाच आदि।

यौ०—घड़ीसाज। धर्मघड़ी। धूपघड़ी।

मुहा०—**घड़ी कूकना**—घड़ी की ताली ऐंठना जिससे कमानी कस जाये और झटके से पुरजे चलने लगें। घड़ी में चाभी देना।

विशेष—प्राचीन काल में समय के विभाग जानने के लिये भिन्न भिन्न युक्तियाँ काम में लाते थे। कहीं किसी पटल पर बने वृत्त की परिधि के विभाग करके और उसके केंद्र पर एक शंकु या सूई खड़ी कर के उसकी (धूप में पड़ी हुई) छाया के द्वारा समय का पता लगाते थे। कहीं नाँद में पानी भरकर उसपर एक तैरता हुआ कटोरा रखते थे। कटोरे की पेंदी में महीन छेद होता था जिससे क्रम क्रम से पानी आकर कटोरा भरता था। जब नियत चिह्न पर पानी आ जाता था, तब कटोरा डूब जाता था। इस नाँद को धर्मघड़ी कहते थे। घटी या घड़ी नाम इसी नाँद का सूचक है। भारतवर्ष में इसका व्यवहार अधिक होता था।

घड़ी२—संज्ञा स्त्री० [सं० घट] घड़ा का स्त्रीलिंग और अल्पार्थक रूप। छोटा घड़ा।

घड़ीदिआ—संज्ञा पुं० [हिं० घड़ी+दीआ=दीपक] वह घड़ा जो घर के किसी प्राणी के मरने पर घर में रखा जाता है और १०–१२ दिनों तक रहता है। घड़े के पेंदे में बहुत छोटा छेद कर दिया जाता है जिसमें से होकर बूँद-बूँद पानी टपकता है और मुँह पर एक दीपक जलाकर रख दिया जाता है। इसे घंट भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।

घड़ीसाज—संज्ञा पुं० [हिं० घड़ी+फा० साज] घड़ी की मरम्मत करनेवाला।

घड़ीसाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ी+फा० साजी] घड़ी की मरम्मत का कार्य या व्यवसाय।

घड़ुवा†—संज्ञा पुं० [सं० कमण्डल अथवा हिं० गेरना+उवा (प्रत्य०) =गेरुवा] दे० 'गड़ुवा'। उ०—कच्ची माटी के घड़ुवा हो रस बूँदन सान।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ३८।

घड़ैला—संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा+ऐला (प्रत्य०)] दे० 'घड़ोला'। उ०—एकै मिट्टी के घड़ा घड़ैला एकै कोहरा सोना।—कबीर श०, पृ० ६२।

घड़ोला—संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा+ओला (प्रत्य०)] छोटा घड़ा। झंझर।

घड़ौंची—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ा+औंची (प्रत्य०)] पानी से भरा घड़ा रखने की तिपाई या ऊँची जगह। लटका। पनहेंडा।

घढ़ना†(पु)—क्रि० स० [सं० घटन] दे० 'गढ़ना'। उ०—नीर निचोर भरी मृदु मूरति का विरंचि या घाट घढ़ी।—घनानंद, पृ० ४६४।

घण१(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० घन] दे० 'घन'। उ०—जब ही बरसइ घण घणउ तबही कहइ प्रियाव।—ढोला०, दू० २७।

घण२†—वि० दे० 'घन'। उ०—दादुर मोर टवक्क घण बीजलड़ी तरवारि।—ढोला०, दू० ४८।

घणकठा†—संज्ञा पुं० [देश०] डिंगल के अनुसार एकलवैणों नामक छंद का एक भेद। उ०—दूसरे एकल वैणों गीत को घणकठा भी कहते हैं।—रघु० रू०, पृ० ११६।

घणा—वि० [सं० घन] दे० 'घना'। उ०—तिण पइ थोड़ा अति घणा वेच्या लाख लवंत।—ढोला०, दू० ८३।

घणीअर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० घन+कर] हथौड़ा धारण करनेवाला। लोहार। उ०—घणीअर मारे तित ताल ज्यों कहै नोहारू।—प्राण०, पृ० २८५।

घणेरी†—वि० [हिं०] दे० 'घनेरी'। उ० बसत घणेरी बरतन ओछा कहो गुरु क्या कीजै।—रामानंद०, पृ० १४।

घत†—संज्ञा पुं० [हिं० घात] १. घात। २. ढंग।

घतर†—संज्ञा पुं० [देश०] प्रभात काल। तड़का। भोरहरी।

घतिया१—संज्ञा स्त्री० [हिं० घात] दाँव। घात। उ०—बन के घरही विरहीजन के रिपु बोलि उठे अपनी घतियाँ।—गंग० ग्रं०, पृ० ६६।

घतिया२—वि० [हिं० घात+इया (प्रत्य०)] घात करनेवाला। धोखा देनेवाला।

घतियाना—क्रि० स० [हिं० घात+इयाना (प्रत्य०)] १ अपनी घात या दाँव में लाना। मतलब पर चढ़ाना। २. चुराना। छिपाना।

घन१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। उ०—बरषा ऋतु आई हरि न मिले माई। गगन गरजि घन दइ दामिनी दिखाई।—सूर० १०। ३३१७। २. लोहारों का बड़ा हथौड़ा जिससे वे गरम लोहा पीटते हैं। उ०—चोट अनेक परैं घन की सिर लोह बधै कछु पावक नाहीं।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६००।

क्रि० प्र०—चलाना।

यौ०—**घन की चोट**=बड़ा भारी आघात।

३. लोहा। (डिं०)। ४. मुख। (डिं०)। ५. समूह। झुंड। ६. कपूर। उ०—न जक धरत हरि हिय धरे नाजुक कमला बाल। भजत भार भयभीत ह्वै घन चंदन बन माल।—बिहारी (शब्द०)। ७. घंटा। घड़ियाल। ८. वह गुणनफल जो किसी अंक को उसी अंक से दो बार गुणा करने से लब्ध हो। जैसे,—३×३×३=२७ अर्थात् २७ तीन का घन है।—(गणित)। ९. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई (ऊँचाई या गहराई) तीनों का विस्तार। उ०—घन दृढ़ घन विस्तार पुनि घन जेहिं गढ़त लोहार। घन अंबुद घन सघन धन घनरुचि नंदकुमार।—नंददास (शब्द०)। १०. एक सुगंधित घास। ११. अभ्रक। अबरक। १२. कफ। खँखार। १३. नृत्य का एक भेद। १४. धातु का, ढालकर बनाया हुआ बाजा जो प्रायः ताल देने के काम आता है। जैसे,—झाँझ, मँजीरा, करताल इत्यादि। १५. वेदमंत्रों के पाठ की एक विधि। १६. त्वचा। छाल। १७ शरीर। उ०—कंप छुट्यो घन स्वेद बढ्यो तनु रोम उठ्यो अँखियाँ भरि आईं।—मतिराम (शब्द०)।

घन२—वि० १ घना। गझिन।

मुहा०—घन का=बहुत घना। जैसे,—घन के बाल, घन का जंगल।

२. जिसके अणु परस्पर खूब मिले हों। गठा हुआ। ठोस। ३. दृढ़। मजबूत। भारी। ४. बहुत अधिक। प्रचुर। ज्यादा। ५. शुभ। भाग्यशाली (को०)। ६. विस्तृत (को०)।

घनक(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० घन] १. गड़गड़ाहट। २. चोट। प्रहार।

घनकना१—क्रि० अ० [हिं० घनक] गरजना। तेज आवाज करना। गड़गड़ाना। घहरना।

घनकना१—क्रि० स० चोट करना। प्रहार करना।

घनकफ—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षोपल। करका। ओला (को०)।

घनकारा(पु)—वि० [हिं० घनक] गर्जन करनेवाला। ऊँची आवाज करनेवाला।

घनकाल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात का मौसम।

घनकोदंड—संज्ञा पुं० [सं० घनकोदण्ड] इंद्रधनुष। मदाइन। उ०—कुटिल कच भ्रुव तिलक रेखा शीश शिखी शिखंड। मदन धनु मनो शर सँधाने देखि घनकोदंड।—सूर (शब्द०)।

विशेष मेघ और धनुषवाची शब्दों के संयोग से जो शब्द बनेंगे, उनका यही अर्थ होगा।

घनक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं० घन+क्षेत्र] लंबाई चौड़ाई और गहराई का विस्तार।

घनगरज—संज्ञा स्त्री० [हिं० घन+गर्जन] १. बादल के गरजने की ध्वनि। २. एक प्रकार की तोप। ३. एक प्रकार की खुभी जो असाढ़ या वर्षारंभ में उत्पन्न होती है।

विशेष—लोग ऐसा मानते हैं कि जब बादल गरजते हैं, तब इसके बीज जो भूमि के अंदर रहते हैं, भूमि फोड़कर गाँठ के रूप में निकल पड़ते हैं। इसकी तरकारी बनाई जाती है। अवध में इसे भुइँफोड़ और पंजाब में ढिंगरी कहते हैं।

घनगर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघगर्जन। बादलों का गरजना। २. कड़कड़ाती प्रचंड ध्वनि या गरज [को०]।

घनगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] सोने और चाँदी का मिश्रण [को०]।

घनघटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बादलों का जमघट। गहरी काली घटा।

घनघन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घंटे की घन् घन् की ध्वनि। उ०—रथ का घर्घर। घंटों की घनघन।—अपरा, पृ० २११।

घनघनाना१—क्रि० अ० [अनु०] घन् घन् शब्द होना। घंटे की सी ध्वनि निकलना। उ०—घघघनात घंटा चहुँ ओरा।—जायसी (शब्द०)।

घनघनाना२—क्रि० स० [अनु०] घन घन शब्द करना।

घनघनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घन घन शब्द निकलने का भाव। घन् घन् की ध्वनि।

घनघोर१—संज्ञा पुं० [सं० घन+घोर] १. घनघनाहट। भीषण ध्वनि। उ०—सब शब्द घोर, घनघोर घने घंटन को, झालर की झुरमुट, झाँझन की झनकार।—गोपाल (शब्द०)। २. बादल की गरज।

घनघोर२—वि० १. बहुत घना। गहरा। उ० अंधकार उद्गीरण करता अंधकार घनघोर अपार।—अपरा०, पृ० १५४। २. जिसे देख और सुनकर जी दहल जाय। जिसका दर्शन और श्रवण भयानक हो। भीषण। भयावना। जैसे, घनघोर, शब्द, घनघोर युद्ध।

यौ०—घनघोर घटा=बड़ी गहरी काली घटा। बादलों का घना समूह।

घनचक्कर१—वि० [हिं० घन+चक्र] १. मूर्ख। बेवकूफ। मूढ़। २. निठल्ला। आवारागर्द।

घनचक्कर२—संज्ञा पुं० [हिं० घन+चक्र] १. वह व्यक्ति जिसकी बुद्धि सदैव चंचल रहे। चंचल बुद्धि का आदमी। २. वह जो व्यर्थ इधर उधर फिरा करे। ३. एक प्रकार की आतिशबाजी। चकरी। चरखी। ४. सूर्यमुखी का फूल। ५. गर्दिश। चक्कर। ६. फेरफार। जंजाल।

मुहा०—घनचक्कर में आना या पड़ना फेर में फँसना। संकट में पड़ना। उ० मैं बड़े घनचक्कर में पड़ गया पर इसकी क्या चिंता।—श्यामा०, पृ० १११।

घनजंबाल—संज्ञा पुं० [सं० घनजम्बाल] घना दलदल [को०]।

घनज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली [को०]।

घनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घना होने का भाव। घनापन। २. ठोसपन। ३. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई का भाव। ४. दृढ़ता। मजबूती।

घनताल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चातक पक्षी। पपीहा। २. करताल।

घनतोल—संज्ञा पुं० [सं०] चातक। पपीहा।

घनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. घना होने का भाव। घनापन। सघनता। २. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई तीनों का भाव। ३. अणुओं का परस्पर मिलान। गठाव। ठोसपन।

घनदार—वि० [सं० घन+फा० दार (प्रत्य०)] घना। गुंजान।

घनद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] विकंटक का क्षुप। जवासा। २. गोखरू [को०]।

घनधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिलके आदि के भीतर का रस। वसा। लसीका [को०]।

घनध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बादलों की गरज। २. गंभीर और मंद्र आवाज।

घननाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादलों की गरज। २. रावण का पुत्र, मेघनाद। उ०—निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार। कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार।—मानस, ७।६७।

घननाभि—संज्ञा पुं० [सं०] बादलों का मुख्य अवयव। धूम [को०]।

घनपटल—संज्ञा पुं० [सं० घन=पटल+आवरण] मेघाडंबर। बादलों का समूह या आवरण। उ०—जथा गगन घनपटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी।—मानस १।११७।

घनपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र, जो मेघों के अधिपति कहे जाते हैं।

घनपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुनर्नवा। गदहपूरना [को०]।

घनपद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घनमूल' [को०]।

घनपदवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघों का मार्ग। आकाश [को०]।

घनपापंड—संज्ञा पुं० [सं० घनपापण्ड] मयूर। मोर [को०]।

घनप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोर। मयूर। २. एक घास जिसकी पत्तियाँ डंठल की ओर पतली और ऊपर की ओर चौड़ी होती हैं। यह पहाड़ों पर मिलती है और औषध के काम में आती है। मोरशिखा।

घनफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई (गहराई या ऊँचाई) तीनों का गुणनफल। २. वह गुणनफल जो किसी संख्या को उसी संख्या से दो बार गुणा करने से प्राप्त हो। दे० 'घन'। ३. दे० 'घनद्रुम'।

घनबहेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० घन+बहेड़ा] अमलतास।

घनबा—पु—संज्ञा पुं० [हिं० घन+बाण] एक प्रकार का बाण। उ०—चले चंदबान, घनबान और कुहूकबान चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।—भूषण (शब्द०)।

घनबास पु—संज्ञा पुं० [सं० घन+हिं० बास (=निवास)] आकाश। उ०—अंबर पुस्कर नभ बियत अंतरिच्छ घनबास।—नंद० ग्रं० पृ० १०।

घनबेल पु—वि० [हिं० घन+बेल] जिसमें बेलबूटे बने हों। बेलबूटेदार। उ०—कहुँ कहुँ कुचन पर दरकी अँगिया घनबेलि।—सूर (शब्द०)।

घनबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० घन+हिं० बेल] एक प्रकार का बेला। उ०—बहुत फूली फूली घनबेली। केवड़ा चंपा कुंद चमेली।—जायसी (शब्द०)।

घनबोध—वि० [सं० घन+बोध] १. अत्यंत ज्ञानवान्। परम ज्ञानी। २. जिसको जान सकना अत्यंत दुरूह हो। उ०—कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध। सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासो कवन बिरोध।—मानस, ६।४७।

घनमान—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ की लंबाई, चौड़ाई और मोटाई का संमिलित मान [को०]।

घनमूल—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में किसी घन (राशि) का मूल अंक। जैसे,—२७ का घनमूल ३ होगा, क्योंकि ३ का घन २७ है।

घनरव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घननाद'।

घनरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। पानी। २. कपूर। ३. हाथी का एक रोग जिसमें उसका खून बिगड़ जाता है, पैर के नाखून गलने लगते हैं और पाँव लँगड़ाने लगता है। इस रोग को हाथियों का कोढ़ समझना चाहिए। ४. घना या गाढ़ा सत (को०)। ५. मोरट नाम का पौधा जिसका रस गाढ़ा होता है (को०)। ६. पीलुपर्णी।

घनरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमाई हुई शर्करा। मिसरी [को०]।

घनवर—संज्ञा पुं० [सं०] मुखाकृति। चेहरा [को०]।

घनवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में घन का वर्ग [को०]।

घनवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश। अंतरिक्ष [को०]।

घनवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं को पीटकर बढ़ाने की क्रिया।

घनवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली [को०]।

घनवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अमृतस्रवा नामक लता। २. बिजली। क्षणप्रभा। विद्युत् [को०]।

घनवास—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्मांड। कोंहड़ा [को०]।

घनवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। पवन।

घनवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र, जिसका वाहन मेघ है। २. शिव, जिनका वाहन घन की तरह श्वेत है।

घनवाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० घन+वाही (प्रत्य०)] १. लोहे का घन से कूटने का काम। २. वह गड्ढा या स्थान जहाँ घन चलानेवाला खड़ा होता है।

घनवीथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बादलों का मार्ग आकाश [को०]।

घनश्याम[1]—वि० [सं] बादलों के समान काला।

घनश्याम[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. काला बादल। २. श्रीकृष्ण। ३. रामचंद्र जी। उ०—शोक की आग लगी परिपूरन आइ गए घनश्याम बिहाने।—केशव (शब्द०)।

घनश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघमाला [को०]।

घनसमै पु—संज्ञा पुं० [सं० घनसमय] वर्षाऋतु। बरसात। उ०—घनसमै मानहु घुमरि करि घनपटल गलगाजहीं।—भूषण ग्रं०, पृ० १२।

घनसाँवरो पु—वि० [हिं०] मेघ की तरह काला। उ० —कमलनयन घनसाँवरों बपु बाहु बिसाल।—छीत०, पृ० ४।

घनसाँवल पु—वि० [हिं०] दे० 'घनसाँवरो'। उ०—श्री रघुपति जदुपति घनसाँवल फुनि जन सरन परे।—छीत०, पृ० १२।

घनसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। पानी। २. कपूर। उ०—गारि राख्यो चंदन बगारि राख्यो घनसार।—मतिराम (शब्द०)। ३. महा मेघ। घना बादल। ४. पारद। पारा (को०)। ५. चंदन (को०)।

घनसारी– वि० स्त्री० [सं० घनसार] बादल के समान (काली। उ०- घनसारी कारी बरुनी राजत प्यारी झपकारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५७।

घनस्याम(पु)—वि० संज्ञा पुं० [सं० घनश्याम] दे० 'घनश्याम'।

घनस्वन—संज्ञा पुं० [सं०] मेघगर्जन [को०]।

घनहर(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० घन+धर, प्रा० घणहर, घणधर] मेघ। बादल। उ०—घनहर गरजें बजें नगारा।—कबीर श०, पृ० ५७।

घनहरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० धान+हारा (प्रत्य०)] धानवाला। एक धान अन्न भुनानेवाला। दाना भुनाने के लिये भड़भूँजे के पास जानेवाला।

घनहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा या मोटा पिंड वा क्षेत्र। २. अन्न आदि नापने का एक मान जो एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा, और एक हाथ गहरा होता है। खारी। खारिका।

घनांजनी—संज्ञा स्त्री० (सं० घनाञ्जनी] दुर्गा [को०]।

घनांत—संज्ञा पुं० [सं० घनान्त] १. वर्षा का समाप्तिकाल। २. शरद् ऋतु। ३. वेद मंत्रों के 'घन' नामक विकृति पाठ के कर्ता।

यौ०—घनांत पाठी=वे वेदपाठी जो घनपाठ नामक अष्टवि कृतियों के पाठ में निष्णात हों।

घनांधकार—संज्ञा पुं०[सं० घनान्धकार] गहरा अंधेरा। निविड़अंधकार।

घना[1]—संज्ञा स्त्री० [प्रा० घणा] स्त्री। उ०—तिहारी घना ने भैया वदनि वदी ई तुमैं दुंगी गरे की दुलरी ओरु कमरि की तगड़ी।—पोद्दार अभि० ग्रं, पृ० ६१५।

घना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुद्रजटा। २. माषपर्णी। ३. एक प्रकार का वाद्य।

घना[3]†—संज्ञा पुं० [सं० घन] पेड़ों का समूह। जंगल।

घना[4] वि० [सं० घन] [स्त्री० घनी] १. जिसके अवयव या अंश पास पास सटे हों। पास पास स्थित। सघन। गझिन। गुंजान। जैसे—घना जंगल, घने बाल, घनी बुनावट। २. घनिष्ठ। नजदीकी। निकट का। जैसे,—हमारा उनका बहुत घना संबंध है। ३. बहुत अधिक। ज्यादा। उ०—उतें रुखाई है घनी, थोरो मुख पै नेह।—रसनिधि (शब्द०)। ४. गाढ़ा। प्रगाढ। उ०—अति कड़ुआ खट्टा घना रे वाको रस है भाई।—धरम०, पृ० ५।

विशेष—संख्या की अधिकता सूचित करने के लिये इस शब्द के बहुवचन रूप 'घने' का प्रयोग होता है। वि० दे० 'घने'।

घनाकर, घनागम—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।

घनाक्षरी—संज्ञा पुं० [सं०] दंडक या मनहर छंद जिसे साधारण लोग कवित्त कहते हैं।

विशेष—यह छंद ध्रुपद राग में गाया जा सकता है। १६-१५ के विश्राम से प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर होते हैं। अंत में प्रायः गुरु वर्ण होता है। शेष के लिये लघु गुरु का कोई नियम नहीं है।

घनाघन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. मस्त हाथी। ३ बरसनेवाला बादल। उ०—गगन अगन घनाघन तें सघन तम सेनापति नेंकहू न नैन मटात हैं।—कवित्त०, पृ० ६३।

घनात्मक—वि० [सं०] १. जिसकी लंबाई, चौड़ाई और मोटाई, (ऊँचाई वा गहराई) बराबर हो। २. जो लंबाई, चौड़ाई और मोटाई को गुणा करने से निकला हो (आयतन के लिये)।

घनात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद् ऋतु [को०]।

घनानंद—संज्ञा पुं० [सं० घनानन्द] १. गद्य काव्य का एक भेद। २. हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम जिनको आनंदघन भी कहते हैं।

घनामय—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर [को०]।

घनामल—संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ का साग। वास्तुक शाक [को०]।

घनाली(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० घन+अवली] मेघपंक्ति। बादलों का समूह। उ०—करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से चंचला थी चमकी, घनाली घहराई थी।—साकेत, पृ० २७४।

घनाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश [को०]।

घनिष्ट—वि० [सं०] १. गाढ़ा घना। बहुत अधिक। २. सबसे अधिक घना। सबसे अधिक निकट। अत्यंत निकट। पास का। निकटस्थ। नजदीकी। जैसे, घनिष्ठ संबंध।

घनिष्ठता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घनिष्ठ होने की स्थिति का भाव। २. गाढ़ी मैत्री। घनी दोस्ती।

घनीभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमकर गाढ़ा होना। २. ठोस बनना। ३. केंद्रीभूत होना [को०]।

घनीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घनीभवन'।

घनीभूत—वि० [सं०] अत्यंत गाढ़। प्रगाढ़। सघन। केंद्रीभूत। उ०—घनीभूत हो उठे पवन, फिर श्वासों की गति होती रुद्ध।—कामायनी, पृ० १७।

घने—वि० [सं० घन] १. बहुत। अनेक—(संख्या में)। उ०—बापुरो बिभीषण पुकारि बार बार कह्यो वानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहैं।—तुलसी (शब्द०)। २. सघन।

घनेतर—वि० [सं०] १. जो ठोस न हो। मृदु। २ तरल [को०]।

घनेरा(पु)†—वि० [हिं० घना+एरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० घनेरी]। बहुत अधिक। अतिशय। उ०—(क) कोपि कपिन दुरघट गढ़ घेरा। नगर कोलाहल भयो घनेरा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुनु मुनि बरनी कबिन घनेरी।—मानस, १। १२४।

विशेष—संख्या की अधिकता सूचित करने के लिये इस शब्द के बहुवचन रूप 'घनेरे' का प्रयोग होता है। दे० 'घनेरे'।

घनेरे—वि० [हिं० घने] १. बहुत। अधिक। अगणित।—(संख्या में)। उ०—(क) बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे। —तुलसी (शब्द०)। (ख) निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।—तुलसी (शब्द०)। २. सघन।

घनो—(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'घना'। उ०—हाट बाट हाटक पिघलि चलो घी सो घनो, कनक कराही लंक तलफत ताय सो।—तुलसी (शब्द०)।

घनोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] मुखाकृति। मुखड़ा। चेहरा। [को०]।

घनोदधि—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम [को०]।

घनोदय—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल । वर्षा ऋतु का प्रारंभ [को०] ।

घनोपल—संज्ञा पुं० [सं०] ओला । करका । पत्थर । बिनौरी ।

घनौची†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घड़ौची' । उ०—देहली नाघ कर, दहलीज के उधर, घनौची पर सुघर घड़े रक्खे वरन । —आराधना, पृ० ७८ ।

घन्नई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ा+नाव] मिट्टी के घड़ों और लकड़ी के लट्ठों को जोड़कर बनाया हुआ बेड़ा जिससे छोटी छोटी नदियाँ पार करते हैं । घरनई । घरनैली ।

घपचिआना†[1]—क्रि० अ० [हिं० घपची] १. चक्कर में आना । २. घबराना ।

घपचिआना†[2]—क्रि० स० १. किसी को चक्कर में डालना । २. घबराहट पैदा करना ।

घपची—संज्ञा स्त्री० [हिं० घन+पंच] किसी वस्तु को पकड़कर घेर रखने के लिये दोनों हाथों के पंजों की गठन । दोनों हाथों की मजबूत पकड़ । उ०—कितना ही उसने मुझको छुड़ाया झिड़क झिड़क । पर मैं तो घपची बाँध के उसको चिमट गया—नजीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

मुहा०—घपची बाँधकर पानी में कूदना=दोनों घुटनों को छाती से सटाकर और उन्हें दोनों हाथों के घेरे में कसकर पानी में कूदना ।

घपला—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दो परस्पर भिन्न वस्तुओं की ऐसी मिलावट जिसमें एक से दूसरे को अलग करना कठिन हो । २. गड़बड़ । गोलमाल ।

क्रि० प्र०—करना ।—डालना ।—पड़ना ।

यौ०—घपलेबाज=घपला या गड़बड़ी करनेवाला । घपलेबाजी=घपला या गोलमाल करना ।

घपुआ†—वि० [हिं० भकुआ] मूर्ख । जड़ । नासमझ । उल्लू । भकुआ ।

घपूचंद—संज्ञा पुं० [हिं० घप्पू+चंद] मूर्ख । जड़ । नासमझ ।

घपोका†—वि० [हिं०] दे० 'घपुआ' ।

घपोकानंदन—संज्ञा पुं० [हिं० घपुआ+नंदन] मूर्ख । जड़ । नासमझ ।

घप्पू†—वि० [हिं०] दे० 'घपुआ' ।

घबड़ाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घबराना' ।

घबड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घबराहट' ।

घबर—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहवर] दे० 'घबराहट' । उ०—सबर राख कुसमै समै, कासूँ घबर करीस । खिण खिण ले जगची खबर जबर सगत जगदीस ।—बाँकी० ग्रं० भा० ३. पृ० ६१ ।

घबराट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घबराहट' । उ०—एक अजीब किस्म की वहशत और घबराट पैदा करती है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५५ ।

घबराना[1]—क्रि० अ० [सं० गह्वर > हिं० गहवर या हिं० गड़बड़ाना] १. व्याकुल होना । अधीर या अशांत होना । चंचल होना । भय या आशंका से आतुर होना । उद्विग्न होना । जैसे,—(क) उसकी बीमारी का हाल सुन सब घबरा गए । (ख) सेना को आते देख नगरवाले घबराकर भागने लगे । २. सकपकाना । भौंचक्का होना । किंकर्तव्यविमूढ़ होना । ऐसी अवस्था में होना जिसमें यह न सूझ पड़े कि क्या कहें या क्या करें । हक्काबक्का होना । सिटपिटाना । जैसे,—वकील की जिरह से गवाह घबरा गया । ३. हड़बड़ाना । उतावली में होना । जल्दी मचाना । आतुर होना । जैसे,—घबराओ मत, थोड़ी देर में चलते हैं । ३. जी न लगना । उचाट होना । ऊबना । जैसे,—यहाँ अकेले बैठे बैठे जी घबराता है ।

संयो० क्रि०—उठना । जाना ।

घबराना[2]—क्रि० स० १. व्याकुल करना । अधीर करना । शांति भंग करना । जैसे,—तुमने तो आकर मुझे घबरा दिया । २. भौंचक्का करना । ऐसी अवस्था में डालना जिससे कर्त्तव्य न सूझ पड़े । ३. जल्दी में डालना । हड़बड़ी में डालना । जैसे,—उसको घबराओ मत, धीरे धीरे काम करने दो । ४. हैरान करना । नाकों दम करना । ५. उचाट करना ।

घबराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० घबराना] १. व्याकुलता अधीरता । उद्विग्नता । अशांति । २. किंकर्त्तव्यविमूढ़ता । ऐसी अवस्था जिसमें क्या कहना या करना चाहिए, यह न सूझ पड़े । ३. हड़बड़ी । उतावली ।

घमंकना(पु)†—क्रि० अ० [अनु०] घम् की ध्वनि करना । घमकना । उ०—घूघर घमंकि पाइन बिसाल । नृत्तंत जननि जनु अग्ग बाल ।—पृ० रा०, ६ । ४६ ।

घमंका(पु)†—संज्ञा पुं० [अनु०] १. घूँसा । मुष्टिकाप्रहार ।

क्रि० प्र०—जड़ना ।—देना ।—पड़ना ।

२. वह प्रहार या चोट जिसके पड़ने से 'घम्' शब्द हो ।

घमंड—संज्ञा पुं० [सं० गर्व ?] १. अभिमान । गरूर । शेखी । अहंकार । गर्व ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

मुहा०—घमंड पर आना या होना=अभिमान करना । इतराना । घमंड निकलना=घमंड दूर होना । गर्व चूर्ण होना । घमंड टूटना=मान ध्वस्त होना । गर्व चूर्ण होना ।

२. बल । वीरता । जोर । भरोसा । सहारा । आसरा । जैसे,—तुम किसके घमंड पर इतना कूदते हो ? उ०—जासु घमंड बदति नहिं काहुहि कहा दुरावति मोसों ।—सूर (शब्द०) ।

घमंडना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घुमड़ना' । उ०—घन घमंड नभ गर्जत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ।—मानस, ४ । १४ ।

घमंडिन—वि० स्त्री० [हिं० घमंड+इन (प्रत्य०)] दे० 'घमंडी' ।

घमंडी—वि० [हिं० घमंड] [वि० स्त्री० घमंडिन] अहंकारी । अभिमानी । मगरूर । शेखीबाज ।

घम[1]—संज्ञा पुं० [सं० घर्म, हिं० घाम] धूप । घाम ।

विशेष—समस्त शब्दों में ही इसके प्रयोग मिलते हैं, जैसे—घमघमा, घमछैयाँ आदि ।

घम[२]—संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो कोमल तल पर कड़ा आघात लगने से होता है। जैसे,—पीठ पर घम से मुक्का लगा।

घमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घम् घम् की आवाज। गर्जन। गंभीर ध्वनि।

घमकना[१]—क्रि० अ० [अनु० घम्] घम् घम् या और किसी प्रकार का गंभीर शब्द होना। घहराना। गरजना। उ०—सुकवि घुमड़ि घनघटा बाँधि घमकत पावस घन।—व्यास (शब्द०)।

घमजना[२]—क्रि० स० १. घम् से घूँसा मारना। मुष्टिका प्रहार करना। २. घम् घम् की आवाज करना।

घमका[१]—संज्ञा पुं० [अनु०] प्रहार का शब्द। चोट की आवाज। गदा या घूँसा पड़ने का शब्द। आघात की ध्वनि। उ०—(क) घाइन के घमके उठैं, दियो डमरु हर डार। नचे जटा फटकारि कै, भुज पसारि ततकार।—लाल (शब्द०)। (ख) घाइन घमके मचे घनेरे। बखतरपोस गिरे बहुतेरे।—सूदन (शब्द०)।

घमका[२]—संज्ञा पुं० [हिं० घाम] ऊमस। घमसा।

घमकाना(पु)—क्रि० स० [हिं० घमकना] १. घम् घम् की ध्वनि। उत्पन्न करना। २. बजाना।

घमखोर†—वि० [हिं० घाम+फा० खोर (खानेवाला)] घाम खानेवाला। जो धूप में रह सके।

घमघमा†—संज्ञा पुं० [हिं० घाम] १. धूप। २. दिन का वह समय जिसमें धूप हो।

घमघमाना[१]—क्रि० स० [हिं० घाम] घाम लेना। धूप से शरीर गर्म करना। किसी व्यक्ति या वस्तु को धूप की गरमी से प्रभावित करना।

घमघमाना[२]—क्रि० अ० [अनु०] घम घम शब्द करना। गंभीर शब्द करना।

घमघमाना[३]—क्रि० स० १ प्रहार करना। भारी आघात लगाना। २. घूँसा मारना।

घमछैयाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाम+छाँह] कुछ कुछ घाम और छाया अथवा वह जगह जहाँ कुछ घामछाँह हो। उ०—कहा गई कान्ह ! तुम्हारी गैयाँ ? हाय ! कहाँ जमुना की कूलें कुंजन की घमछैयाँ।—पूर्ण०, पृ० २८०।

घमर—संज्ञा पुं० [अनु०] नगाड़े ढोल आदि का भारी शब्द। गंभीर ध्वनि। उ०—माखन खात पराए घर को। नित प्रति सहस मथानी मथिए मेघ शब्द दधि माट घमर को।—सूर (शब्द०)।

घमरा—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गराज] भृंगराज नाम की बूटी। भँगरा। भँगरैया।

घमरौल—संज्ञा स्त्री० [अनु० घम् घम्] १. हल्ला गुल्ला। ऊधम। २. गड़ड़। घोटाला।

घमस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घमसा'।

घमसा—संज्ञा पुं० [हिं० घाम] १. वह गरमी जो अधिक धूप और हवा रुकने के कारण होती है। धूप की गरमी। ऊमस २. घनापन। सघनता। आधिक्य।

घमसान—संज्ञा पुं० [अनु० घम+सान (प्रत्य०)] भयंकर युद्ध घोर रण। गहरी लड़ाई। उ०—(क) हरि की आयुध अवशि धरैंतौं ठानि घोर घमसान।—रघुराज (शब्द०)। (ख) सान धरैं करवाल लिये घमसान करें।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—घमसान का=घोर। भयंकर। जैसे,—घमासान की लड़ाई।

घमाका—संज्ञा पुं० [अनु० घम्] 'घम्' का शब्द। भारी आघात का शब्द।

घमाघम[१]—संज्ञा स्त्री० [अनु० घम्] १. घम् घम् की ध्वनि। २. धूमधाम। चहल पहल। ३. भारी आघात का शब्द।

घमाघम[२]—क्रि० वि० घम् घम् शब्द के साथ। भारी आघात के शब्द के साथ। जैसे,—उसने घमाघम चार घूँसे जमा दिए।

घमाघमी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. दे० 'घमाघम'। २. मारपीट।

घमाना[१]†—क्रि० अ० [हिं० घाम] १. घाम लेना। सरदी हटाने के लिये धूप में बैठना। २. धूप खाना। धूप ऊपर पड़ने देना। ३. फल आदि का घाम लगकर पीला होना।

घमाना[२]†—क्रि० स० धूप दिखाना। किसी चीज को सुखाने के लिये घाम में रखना।

घमायल†—वि० [हिं० घमाना] घाम की गरमी से पका हुआ। घाम के प्रभाव से युक्त। (प्रायः फल के लिये प्रयुक्त)

घमासान—देश० पुं० [हिं०] दे० 'घमसान'।

घमाहा†—संज्ञा पुं० [हिं० घाम] वह बैल जो धूप में काम करने से जल्दी हाँफने लगे। वह बैल जो धूप न सह सके।

घमीला—वि० [हिं० घाम] घाम खाया हुआ। घाम या धूल लगने से मुरझाया हुआ।

घमूह—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

विशेष—प्रायः करील आदि की झाड़ियों के नीचे यह बहुत होती है। इसका स्वाद कुछ कड़ुवापन लिये नमकीन होता है। इसके नरम कल्लों ही को चौपाए खाते हैं। यह घास मथुरा, आगरा, फीरोजपुर, झंग आदि स्थानों में होती है।

घमोई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] कटंगी बाँस का एक प्रकार का रोग जिसके पैदा होने से उस बाँस में नए कल्ले नहीं निकलने पाते। इस बाँस की जड़ों में बहुत से पतले और घने अंकुर निकलते हैं जो बाँस की बाढ़ और नए कल्लों की उत्पत्ति रोक देते हैं। उ०—अब ही ते मन संसय होई। बेनु मूल सुत भएहु घमोई।—मानस, ६।१०।

घमोया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पौधा जो गोभी की तरह का होता है।

विशेष—इसके पत्ते कटावदार तथा काँटों से भरे होते हैं। पत्तों के पीछे तथा कटान की नोकों पर काँटे होते है। इसमें केवल एक डंठल ऊपर की ओर जाता है, इधर उधर टहनियाँ नहीं फैलतीं। फूल पीछे और प्याले के आकर के होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर कँटीले बीजकोश रह जाते हैं। इसके

डंठलों और पत्तों से एक प्रकार का पीला रस निकलता है जो आँख के रोगों में उपकारी माना जाता है। यह पौधा उजाड़ स्थानों में आपके आप बहुत उगता है।

पर्या०—स्वर्णक्षीरी। सत्यनाशी। भड़भाँड़।

घमौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाम] दे० 'अम्हौरी'।

घयलवा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घैला'। उ०—भरल घयलवा ढरकि गए, धन ठाढ़ी पछितात।—कबीर ग्रं०, पृ० ६२।

घर—संज्ञा पुं० [सं० गृह प्रा० हर > घर] [वि० घराऊ घरू, घरेलू] १. मनुष्यों के रहने का स्थान जो दीवार आदि से घेरकर बनाया जाता है। निवासस्थान। आवास। मकान।

यौ०—**घरकत्ती। घरघालन। घरघुसना। घरजमाई। घरजोत। घरदासी। घरद्वार। घरफोरी घरबसा। घरबसी। घरबार। घरबैसी।**

मुहा०—**अपना घर समझना**=आराम की जगह समझना। संकोच का स्थान न समझना ऐसा स्थान समझना जहाँ घर का सा व्यवहार हो। जैसे,—इसे आप अपना घर समझिए, जो जरूरत हो, माँग लीजिए। **घर आबाद होना**=दे० 'घर बसना'। **घर उठना**=घर बनना। **घर उजड़ना**=(१) परिवार की दशा बिगड़ना। कुल की समृद्धि नष्ट होना। घर पर तबाही आना। घर की संपत्ति नष्ट होना। (२) परिवार पर विपत्ति आना। घर के प्राणियों का तितर बितर होना या मर जाना। **घर करना**=(१) बसना। रहना। निवास करना। घर बनाना। जैसे,—उन्होंने अब जंगल में अपना घर किया है। (२) किसी वस्तु का जमने या ठहरने के लिये जगह बनाना। समाने या अँटने के लिये स्थान निकालना। जैसे,—पैर ने जूते में अभी घर नहीं किया है; इसी से जूता कसा मालूम होता है। (३) किसी वस्तु का जमने या ठहरने के लिये गड्ढा करना। घुसना। धँसना। बिल बनाना। छेद करना। जैसे,—(क) फोड़े पर जो पट्टी रखी है, वह चार दिन में घर करके सब मवाद निकाल देगी। (ख) कीड़े काठ में घर करते हैं। (४) घर का प्रबंध करना। घर सँभालना। किफायत से चलना। जैसे,—अब तुम बड़े हुए, घर करना सीखो। **(स्त्री का) घर करना**=पत्नी भाव से किसी के घर में रहना। खसम करना। **आँख में घर करना**=(१) इतना पसंद आना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जँचना। (२) प्रिय होना। प्रेमपात्र होना। **चित्त, मन या हृदय में घर करना**=इतना पसंद आना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जँचना। अत्यंत प्रिय होना। प्रेमपात्र होना। **दीआ घर करना**=दीपक बुझाना। **घर का**=(१) निज का। अपना। जैसे—घर का मकान, घर का पैसा, घर का बगीचा। (२) आपस का। पराए का नहीं। संबंधियों या आत्मीय जनों के बीच का। जैसे,—(क) घर का मामला, घर की बात, घर का वास्ता। (ख) उनका हमारा तो घर मामला है। (३) अपने परिवार या कुटुंब का प्राणी। संबंधी। भाई बंधु। सुहृद्। उ०—तीन बुलाए तेरह आए, नए गाँव की रीत। बाहरवाले खा गए घर के गावें गीत।—लोकोक्ति। (४) पति। स्वामी। भर्तार। उ०—घर के हमारे परदेस को सिधारे यातें दया करि बूझी हम रीति राहवारे की।—कविंद (शब्द०)। **घर का अच्छा**=समृद्ध कुल का। अच्छे खानदान का। खाने पीने से खुश। **घर का आदमी**—अपने कुटुंब का प्राणी। भाई बंधु। इष्ट मित्र। जैसे आप तो घर के आदमी हैं; आपसे छिपाना क्या? **घर का आँगन हो जाना**=(१) घर खँडहर हो जाना। घर उजड़ जाना। घर पर तबाही आना। (२) स्त्री को बच्चा होना। घर में संतान उत्पन्न होना। **घर का उजाला**=(१) कुलदीपक। कुल की समृद्धि करनेवाला। कुल की कीर्ति बढ़ानेवाला। भाग्यवान्। (२) वह जिसे देखकर घर के सब प्राणी प्रफुल्लित हों। अत्यंत प्रिय। लाडला। बहुत प्यारा। (३) बहुत सुंदर। रूपवान्। **घर का चिराग**=दे० 'घर का उजाला'। **घर का चिराग गुल होना**=(१) घर का सर्वनाश हो जाना। (२) इकलौते पुत्र का मर जाना। जैसे—उनके घर का चिराग ही गुल हो गया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५८०। **घरवा या घरौना करना**=घर उजाड़ना। घर सत्यानाश करना। **घर का बोझ उठाना या सँभालना**=घर का प्रबंध करना। गृहस्थी का कामकाज देखना। **घर का भेदिया या भेदी**=घर का सब भेद जाननेवाला। ऐसा निकटस्थ मनुष्य जो सब रहस्य जानता हो। जैसे—घर का (भेदी) भेदिया लंका दाह। **घर का भोला**=अपने परिवार में सबसे मूर्ख। बिलकुल सीधा सादा। जैसे—वह ऐसा ही तो घर का भोला है जो इतने में ही तुम्हें दे देगा। **घर का काट खाना या काटने दौड़ना**=घर में रहना अच्छा न लगना। घर में जी न लगना। घर उजाड़ और भयानक लगना। घर में उदासी छाना।

विशेष—जब घर का कोई प्राणी कहीं चला जाता है या मर जाता है, तब ऐसा बोलते हैं।

घर का न घाट का=(१) जिसके रहने का कोई निश्चित स्थान न हो। (२) निकम्मा। बेकाम। **घर का हिसाब**=(१) अपने लेन देन का लेखा। निज का लेखा। (२) अपने इच्छानुसार किया हुआ हिसाब। मनमाना लेखा। **घर का रास्ता**=सीधा या सहज काम। जैसे—इस काम को घर का रास्ता न समझना। **घर का मर्द, शेर, वीर या बहादुर**=अपने ही घर में बल दिखाने वा बढ़ बढ़कर बोलनेवाला। परोक्ष में शेखी बघारनेवाला और मुकाबिले के लिये सामने न आनेवाला। **घर (घरहिं या घर ही) के बाढ़े**=घर ही में बढ़ बढ़कर बात करनेवाला। बाहर कुछ पुरुषार्थ न दिखानेवाला। पीठ पीछे शेखी बघारनेवाला। सामने न आनेवाला। उ० (क) मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढ़े। तुलसी (शब्द०)। (ख) ग्वालिनि हैं घर ही की बाढ़ी। निसि अरु दिन प्रति देखति हौं, आपनें ही आँगन ठाढ़ी।—सूर०, १०।७७४। **घर का नाम उछालना या डुबोना**=कुल को कलंकित करना। अपने भ्रष्ट और निष्कृष्ट आचरण से अपने परिवार की प्रतिष्ठा खोना। **घर की**=घरवाली। गृहिणी। स्त्री। **घर की बात**=(१) कुल से

संबंध रखनेवाली बात। (२) आपस की बात। आत्मीय जनों के बीच की बात। **घर की पूँजी**=अपने पास की संपत्ति। निज का धन। **घर की तरह बैठना**=आराम से बैठना। खूब फैलकर बैठना। बैठने में किसी प्रकार का संकोच न करना। **घर की तरह बैठो**=सिमट कर बैठो। ऐसा बैठो कि औरों के लिये भी बैठने की जगह रहे। **घर की तरह रहना**=आराम से रहना। अपना घर समझकर रहना। **घर की खेती**=अपनी ही वस्तु। अपने यहाँ होने या मिलने वाली चीज़। जैसे—इसके लिये क्या बात है। यह तो घर की खेती है, जितनी कहिए उतनी भेज दें। **घर की मुर्गी साग बराबर**=घर की अच्छी वस्तु की भी इज्जत नहीं होती है। **घर के घर**=(१) भीतर ही भीतर। गुप्त रीति से। बिना और लोगों को सूचना दिए। जैसे—तुमने तो घर के घर सौदा कर लिया, हमें बतलाया तक नहीं। (२) बहुत से घर। जैसे,—हैजे में घर के घर साफ हो गए। **घर के घर रहना**=किसी व्यवसाय में न हानि उठाना न लाभ। बराबर रहना। जैसे, इस सौदे में हम घर के घर रहे। **घर से घर बंद होना**=बहुत से घरों का उजड़ जाना। बहुत से घरों के रहनेवालों का मर जाना या कहीं चला जाना। **घर खोज मिटा**=जिसके घर का चिह्न तक न रह जाय। जिसका कुल क्षय हो जाय। नष्ट। निगोड़ा—(स्त्रियों का अभिशाप या गाली)। **घर खोना**=घर सत्यानाश करना। घर उजाड़ना। घर की संपत्ति नष्ट करना। उ०—चूकते ही चूकते तो सब गया। चूककर खोना न अब घर चाहिए।—चुभते०, पृ० ३८। **घर गई**=घर उजड़ी। निगोड़ी।—(स्त्रियों का अभिशाप या गाली। **घर घर**=हर एक घर में। सबके यहाँ। जैसे,—घर घर यही हाल है। **घर घर के हो जाना**=तितर बितर हो जाना। इधर उधर हो जाना। मारे मारे फिरना। बेठिकाने हो जाना। उ०—तेरे मारे यातुधान भए घर घर के।—तुलसी (शब्द०)। **घर घलना**=(१) घर बिगड़ना। घर उजड़ना। परिवार की बुरी दशा होना। (२) कुल में कलंक लगना। उ०—कहे ही बिना घर केते घले जू।—देव (शब्द०)। **घर घाट**=(१) रंग ढंग। चाल ढाल। गति और अवस्था। जैसे,—पहले उनका घर घाट देख लो, तब कुछ करो। (२) ढंग। ढब। प्रकृति। जैसे,—वह और ही घर घाट का आदमी है। (३) ठौर ठिकाना। घर द्वार। स्थिति। जैसे,—घर घाट देखकर संबंध किया जाता है। **घर घाट मालूम होना**=रंग ढंग मालूम होना। सारी अवस्था विदित होना। कोई बात छिपी न रहना। **घर घालना**=(१) घर बिगाड़ना। परिवार में अशांति या दुःख फैलाना। परिवार को हानि पहुंचाना। जैसे,—इस जूए ने जाने कितने घर घाले हैं। (२) कुल को दूषित करना। कुल की मर्यादा भ्रष्ट करना। कुल में कलंक लगना। जैसे,—इस कुटनी ने न जाने कितने घर घाले हैं। (३) लोगों को मोहित करके वश में करना। प्रेम से व्यथित करना। जैसे—अभी इसे सयानी तो होने दो, न जाने कितने घर घालेगी।—(बाजारू)। **घरघुसना**=घर में घुसा रहनेवाला। हर घड़ी अंतःपुर में पड़ा रहनेवाला। सदा स्त्रियों के बीच में बैठा रहनेवाला। बाहर निकलकर काम काज न करनेवाला। **घर चढ़कर लड़ने आना**=लड़ाई करने के लिये किसी के घर पर जाना। **घर चलना**=गृहस्थी का निर्वाह होना। घर का खर्च वर्च चलना। **घर चलाना**=गृहस्थी का निर्वाह करना। **घर डुबोना**=(१) घर की संपत्ति नष्ट करना। घर तबाह करना। (२) कुल में कलंक लगाना। **घर डूबना**=(१) घर तबाह होना। (२) कुल में कलंक लगना। **घर जमना**=गृहस्थी ठीक होना। घर का सामान इकट्ठा होना। **घर जाना**=घर का बिगड़ना। कुल का नाश होना। **घरत जुगु**=गृहस्थी का प्रबंध। **घर झँकनी**=एक घर से दूसरे घर घूमनेवाली। अपने घर न बैठनेवाली। **घर तक पहुँचना**=माँ बहन की गाली देना। बाप दादों तक चढ़ जाना। बाप दादे बखानना। **घर घाम में छवाना**=(१) कष्ट देना। (२) धमकी देना। **घर तक पहुँचना**=(१) समाप्तितक पहुँचाना। ठिकाने तक ले जाना। संपूर्ण करना। पूरा उतारना। जैसे,—जिस काम को उठाओ, उसे घर तक पहुँचाओ। (२) बुद्धि ठिकाने ले आना। बात को ठीक ठीक समझा देना। कायल करना। जैसे,—झूठे को घर तक पहुँचा दिया। **घर दामाद लेना**=दामाद को अपने घर रखना। **घर देखना**=किसी के घर कुछ माँगने जाना। जैसे, यहाँ कुछ न मिलेगा दूसरा घर देखो। **घर देखना, देख लेना, या पाना**=रास्ता देख लेना। परच जाना। ढर्रा निकाल लेना जैसे,—(क) तुम और किसी से तो कुछ माँगते नहीं; सीधा हमारा घर देख पाया है। (ख) बुढ़िया के मरने का सोच नहीं, यम के घर देख लेने का सोच है। **किसी के घर पड़ना**=किसी के घर में पत्नी भाव से जाना। **(किसी वस्तु का) घर पड़ना**=घर में आना। प्राप्त होना। मिलना। मोल मिलना। जैसे,—यह चीज क्या भाव घर पड़ी? **घर पर गंगा आना**=बिना परिश्रम के कार्य पूरा हो जाना। उ०—आलसी घर गंगा आई मिटि गई गर्मी भई सियराई।—कबीर सा०, पृ० ५४५। **घर पीछे**=एक एक घर में। एक एक घर से। जैसे,—घर पीछे एक रुपया वसूल करो। **घर फटना**=(१) मकान की दीवार आदि में दरार पड़ना। (२) घर में बच्चा उत्पन्न होना। (३) छाती फटना। बुरा लगना। असह्य होना। न भाना। जैसे,—लेने को तो रुपया ले लिया, अब देते हुए क्यों घर फटता है? (४) घर में बिगाड़ होना। **घरफूँक तमाशा या मामला**=घर का सत्यानाश करने वाली बात। ऐसी बात जिससे घर की संपत्ति नष्ट हो। घर पर तबाही लानेवाली चाल ढाल। **घर फूँक तमाशा देखना**=घर की संपत्ति नष्ट करके अपना मनोरंजन करना। अपनी हानि करके मौज उड़ाना। जैसे,—रोजोशब यही चरचे यही कहकहे, यही चहचहे घर फूँक तमाशा देखा।—फिसाना०, भा० २, पृ० ६। **घर फोड़ना**=घर में विग्रह उत्पन्न करना। परिवार में झगड़ा लगाना। परिवार में उपद्रव खड़ा करना। **घर बंद होना**=(१) घर में ताला लगना। (२) घर में

प्राणी न रह जाना। घर का कोई मालिक न रहना। घर के प्राणियों का तितर बितर होना। (३) किसी घर से कोई संबंध न रह जाना। **घर बिगाड़ना**=(१) घर उजाड़ना। घर की समृद्धि नष्ट करना। घर तबाह करना। परिवार की हानि करना। (२) घर में फूट फैलाना। घर में झगड़ा खड़ा करना। घर के प्राणियों में परस्पर लड़ाई कराना। (३) कुलवती को बहकाना। घर की बहू बेटी को बुरे मार्ग पर ले जाना। **घर बनना**=(१) मकान तैयार होना। (२) घर की आर्थिक स्थिति अच्छी होना। घर संपन्न होना। घर भरा पूरा होना। **घर बनाना**=(१) मकान तैयार करना। (२) निवासस्थान करना। जमकर रहना। बसना। (३) घर भरना। घर को धनधान्य से पूर्ण करना। घर की आर्थिक दशा सुधारना। अपना लाभ करना। जैसे,—नौकरों पर कोई आँख रखनेवाला नहीं है, वे अपना घर बना रहे हैं। **घर बरबाद होना**=घर बिगड़ना। घर की समृद्धि नष्ट होना। परिवार की दशा बिगड़ना। **घर बसना**=(१) घर आबाद होना। घर में प्राणियों का होना। (२) घर की दशा सुधरना। घर में धनधान्य होना। (३) घर में स्त्री या बहू आना। ब्याह होना। (४) दुलहा दुलहिन का समागम होना। **घर बसाना**=(१) घर आबाद करना। घर में नए प्राणी लाना। (२) घर की दशा सुधारना। घर को धनधान्य से पूरित करना। (३) घर में स्त्री या बहू लाना। विवाह करना। **घर बेचिराग हो जाना**=नामलेवा न रह जाना। एकलौते बेटे का मर जाना। **घर बैठना**=(१) घर में बैठना। एकांत सेवन करना। (२) काम पर न जाना। काम छोड़ना। नौकरी छोड़ना। जैसे,—(क) वह चार दिन कोई काम करता है, फिर घर बैठ रहता है। (ख) तुमसे काम नहीं होता, तुम घर बैठो। (३) कोई काम न मिलना। बेकार रहना। बेरोजगार रहना। जीविका न रहना। जैसे,—आजकल वह घर बैठा है; उसे कोई काम दिलाओ। अधिक वर्षा से मकान का गिरना। जैसे—लगातार बारह घंटे पानी बरसने से कई घर बैठ गए। (किसी स्त्री का किसी पुरुष के) **घर बैठना**=किसी के घर पत्नी भाव से चली जाना। किसी को खसम बनाना। **घर बैठे रोटी**=बिना मेहनत की रोटी। बिना परिश्रम की जीविका। **घर बैठे**=(१) बिना कुछ काम किए। बिना हाथ पैर डुलाए। बिना परिश्रम। जैसे,—घर बैठे १०० रुपया महीना मिलता है, कम है? (२) बिना कहीं गए आए। बिना कुछ देखे भाले। बिना बाहर जाकर सब बातों का पता लगाए। बिना देश काल की अवस्था जाने। जैसे,—घर बैठे बातें करते हो, बाहर जाकर देखो तो जान पड़े। (३) बिना कहीं गए आए। एक ही स्थान पर रहते हुए। बिना यात्रा आदि का कष्ट उठाए। जैसे,—इस पुस्तक को पढ़ो और घर बैठे देश देशांतरों का वृत्तांत जानो। **घर बैठे की नौकरी**=बिना परिश्रम की नौकरी। **घर बैठे बैर दौड़ाना**=मंत्र के बल से अपने पास किसी वस्तु या व्यक्ति को बुला लेना। मोहन करना। मूठ चलाना। **घर भर**=घर के सब प्राणी। सारा परिवार। जैसे,—घर भर यहाँ आया है। **घर भरना**=(१) घर को धनधान्य से पूर्ण करना। घर में धन इकट्ठा करना। अपना लाभ करना। माल अपने घर में रखना। (२) (अकर्मक प्रयोग) घाटा पूरा होना। हानि की पूर्ति होना। (३) घर का प्राणियों से भरना। घर में मेहमानों और कुटुंबवालों का इकट्ठा होना। **घर में**=स्त्री। जोरू। घरवाली। जैसे,—उनके घर में बीमार हैं।—(बोल०)। **घर भाँय भाँय करना**=घर का सूनापन खलना। सूनेपन के कारण घर का डरावना लगना। **कुछ घर में आना**=अपना लाभ होना। प्राप्ति होना। जैसे,—उनकी नौकरी जाने से घर में क्या आ जायगा। (किसी स्त्री को) **घर में डालना**=रख लेना। रखेली बनाना। जोरू बनाना। (किसी स्त्री का) **घर में पड़ना**=किसी के घर पत्नी भाव से जाना। किसी की घरवाली होना। **घर सिर पर उठा लेना**=बहुत अधिक शोर करना। ऊधम मचाना। **घर से**=(१) पास से। पल्ले से जैसे—तुम्हारे घर से क्या गया। (२) पति। स्वामी। (३) स्त्री। पत्नी।—(बोल०)। **घर से पाँव निकालना**=इधर उधर बहुत घूमना। शासन में न रहना। स्वेच्छाचार करना। मर्यादा के बाहर चलना। जैसे,—तुमने बहुत घर से पाँव निकाले हैं; मैं अभी जाकर कहता हूँ। **घर से बाहर पाँव निकालना**=वित्त से बाहर काम करना। समाई से अधिक खर्च करना। **घर से देना**=(१) अपने पास से देना। अपनी गाँठ से देना। जैसे—जब वह तुम्हारा रुपया देता ही नहीं है तब क्या मैं तुम्हें अपने घर से दूँगा? (२) अपना रुपया खोना। स्वयं हानि उठाना; जैसे तुम इनकी जमानत न करो, नहीं तो घर से देना होगा। **घर सेना**=(१) घर में पड़े रहना। बाहर न निकलना। (२) बेकार बैठे रहना। इधर उधर काम धंधे के लिये न जाना। **घर होना**=(१) गृहस्थी चलना। निबाह होना। घर का काम चलना। जैसे,—ऐसे करतबों से कहीं घर होता है? (२) घर के प्राणियों में मेलजोल होना। घर में सुख शांति होना। स्त्री पुरुष में बनना।

२. जन्मस्थान। जन्मभूमि। स्वदेश। ३. घराना। कुल। वंश। खानदान। जैसे,—किसी अच्छे या बड़े घर लड़की ब्याहेंगे। वह अच्छे घर का लड़का है। उ०—जो घर बर कुल होय अनूपा। करिय विवाह सुता अनुरूपा।—तुलसी (शब्द०)। ४. कार्यालय। कारखाना। आफिस। दफ्तर। जैसे,—डाकघर, तारघर, पुतलीघर, रेलघर, बंकघर इत्यादि। ५. कोठरी। कमरा। जैसे,—ऊपर के खंड में केवल चार घर हैं। ६. आड़ी खड़ी खिंची हुई रेखाओं से घिरा स्थान। कोठा। खाना। जैसे,—कुंडली या यंत्र का घर। ७. शतरंज आदि का चौकोर खाना। कोठा।

मुहा०—घर बंद होना=गोटी शतरंज के मुहरे आदि चलने का रास्ता न रहना।

८. कोई वस्तु रखने का डिब्बा या चोंगा। कोश। खाना। केस। जैसे,—चशमें का घर, तलवार का घर। ९. पटरी आदि से घिरा हुआ स्थान। खाना। कोठा। जैसे,—आलमारी के घर, संदूक के घर। १०. ग्रहों की राशि। ११. किसी वस्तु के अँटने या सामने का स्थान। छोटा गड्ढा। जैसे,—पानी ने स्थान स्थान पर घर कर लिया है।

क्रि० प्र०—करना।

१२. किसी वस्तु (नगीना आदि) को जमाने या बैठाने का स्थान। जैसे,—नगीने का घर। १३. छेद। बिल। सूराख। जैसे,—छलनी के घर। बटन के घर।

मुहा०—घर भरना=छेद मूँदना। बिल बंद करना।

१४. राग का स्थान। मुकाम। स्वर। जैसे,—यह चिड़िया कई घर बोलती है।

मुहा०—घर में कहना=ठीक ठीक स्वर ग्राम के साथ गाना। घर से कहना=(१) ठीक ठीक स्वर के साथ गाना। (२) चिड़ियों का अच्छी बोली बोलना। कोकिल आदि का मधुर स्वर से बोलना।

१५. उत्पत्ति स्थान। मूल कारण। उत्पन्न करनेवाला। जैसे,—(क) रोग का घर खाँसी। (ख) खीरा रोग का घर है। १६. गृहस्थी। घरबार। जैसे,—घर देखकर चलो। १७, घर का असबाब। गृहस्थी का सामान। जैसे,—वह अपना इधर उधर घूमता है; मैं घर लिए बैठी रहती हूँ।—(क्व०)। १८. भग या गुदेंद्रिय।—(बाजारू)।

क्रि० प्र०—चिरना।—फटना।

१९. चोट मारने का स्थान। वार करने का स्थान या अवसर।

मुहा०—घर खाली छोड़ना या देना=वार न करना। वार चूक जाना।

२०. आँख का गोलक या गड्ढा। २१. चौखटा। फ्रेम। जैसे,—तसवीर का घर। २२. वह स्थान जहाँ कोई वस्तु बहुतायत से हो। भांडार। खजाना। जैसे,—काश्मीर मेवों का घर है। २३. दाँव। पेंच। युक्ति। जैसे,—वह कुश्ती के सब घर जानता है। २४. केले, मूँज या बाँस का समूह जो एकत्र घने होकर उगते हैं।

यौ०—घर घाट=दाँव पेंच।

घरइया†—वि० [हिं० घर+ऐया (प्रत्य०)] दे० 'घरैया'।

घरऊ†—वि० [हिं० घर] दे० 'घराऊ' या 'घरू'। उ०—इस प्रांत के निवासियों की घरऊ बातचीत।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४९।

घरगिरस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घरगृहस्थी'। उ०—मैं तो घर-गिरस्ती के बीच में हूँ।—सुनीता, पृ० २५।

घरगृहस्थ—संज्ञा पुं० [हिं० घर+सं० गृहस्थ] परिवार के साथ रहनेवाला व्यक्ति जो गृहस्थी के निर्वाह के लिये धनोपार्जन करता है।

घरगृहस्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर+गृहस्थी] परिवार के सभी सदस्य तथा उनके उपभोग की सभी वस्तुएँ।

घर घराना¹—क्रि० अ० [अनुध्व०] घर्र घर्र शब्द करना। कफ के कारण गले से साँस लेते समय शब्द निकलना।

घर घराना²—संज्ञा पुं० [हिं० घर+घराना] कुल परिवार। वंश। जैसे,—अंधा बाँटे शीरनी घर घराने खाँय।

घरघराहट—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० घर्र घर्र] १. घर्र घर्र शब्द निकलने का भाव। २. कफ के कारण गले से साँस लेते समय निकला हुआ शब्द।

घरघलू†(पु)—वि० [हिं० घर+घालना] दे० 'घरघाल'। उ०—घरघलू बँसुरिया कों कोऊ हटकै। बैठी रहन न देति घरी घर गौंहन घरी है निपट कै।—घनानंद, पृ० ४८८।

घरघाल—वि० [हिं० घर+घालना] घर बिगाड़नेवाला। कुल की समृद्धि नष्ट करनेवाला। परिवार की बुरी दशा करनेवाला। कुल में कलंक लगानेवाला। उ०—घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी।—तुलसी (शब्द०)।

घरघालक—वि० [हिं०] दे० 'घरघाल'। उ०—(क) पर घरघालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव के पीरा।—मानस, १। ९७। (ख) छाँडत क्यों हे भूखो बालक। जनपालक ऐसे घरघालक। नंद ग्रं०, पृ० २८८।

घरघालणी†—वि० [हिं० घरघालन] घर उजाड़नेवाली। घर का नाश करनेवाली। उ०—घणी बुरी घरघालणी पातर सूँ हूँ पाम।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ५।

घरघालन—वि० [हिं० घर+घालन] [वि० स्त्री० घरघालनी] घर बिगाड़नेवाला। परिवार में दुःख या अशांति फैलानेवाला। परिवार की दशा बिगाड़नेवाला। कुल में कलंक लगानेवाला। उ०—ये बड़े नैन दिखाय दे नेक तू ए घरघालनी घूँघट-वाली।—(शब्द०)।

घरघुस, घरघुसड़, घरघुसा, घरघुस्सू—वि० [हिं० घर+घुसना] दे० 'घर' शब्द के अंतर्गत। मुहा० 'घरघुसना'। उ०—अब भी मैं अपने घरघुस्सू स्वभाव के कारण उन्हें छुट्टी नहीं दे पाती।—जिप्सी, पृ० ७४।

घरचित्ता—संज्ञा पुं० [हिं० घर+चीतर] एक प्रकार का साँप जो प्रायः मनुष्यों के घर में ही रहा करता है।

घरजँवाई—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घरजमाई'।

घरजमाई—संज्ञा पुं० [हिं० घर+सं० जामाता, हिं० जँवाई, जमाई] ससुराल में स्थायी रूप से रहनेवाला दामाद। घरदामाद।

घरजाया—संज्ञा पुं० [हिं० घर+जाया=उत्पन्न] [स्त्री० घरजाई] दास। गुलाम। उ०—(क) राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि, तुलसी तिहारो घरजायउ है घर को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हौं राधा की राधा मेरी। कीरति की घरजाई चेरी।—घनानंद, पृ० २७८।

घरटिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० घरट्टिका] चक्की। जाँता। उ०—पूजोनी घर री घरटिया जग पीस र खाय।—राम० धर्म०, पृ० ५३।

घरटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० घरट्टिका, प्रा० घरट्टिया] दे० 'घरट्टिका'। उ०— घरटी उडघा अन्न ज्यों कै पीसा कइ पीस।—राम० धर्म०, ६४।

घरट्ट, घरट्टक संज्ञा पुं० [सं०] चक्की। जाँता।

घरट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्की। जाँता [को०]।

घरणी— संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जिसके पास गृह या घर हो।† २. दे० 'घरनी'।

घरदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर+फ़ा० दारी] घर का काम काज। गृहस्थी का व्यवस्था।

घरदासी—संज्ञा स्त्री० [हिं०घर+सं०दासी] गृहिणी। भार्या। पत्नी।

घरद्वार—संज्ञा पुं० [हिं० घर+सं० द्वार] १. रहने का स्थान। ठौर। ठिकाना। जैसे,—बिना इनका घर द्वार जाने हम इनके विषय में क्या कह सकते हैं। २. गृहस्थी। घर का आयोजन। जैसे,—जब वह बाहर जाता है, तब उसे घर द्वार की कुछ भी सुध नहीं रहती। ३. निज की सारी संपत्ति। जैसे,—हम अपना घरद्वार बेचकर तुम्हारा रुपया चुका देंगे।

घरद्वारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घरद्वार+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का कर जो पहले घर पीछे लिया जाता था।

घरद्वारी[2]—संज्ञा पुं० दे०'घरबारी'।

घरन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की पहाड़ी भेड़ जिसे जुँबली भी कहते हैं।

घरनई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घन्नई'।

घरनाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ा+नाली] एक प्रकार की पुरानी तोप। रहकला।

घरनाव[1]—संज्ञा पुं० [सं० घरनी+आव (प्रत्य०)] गृहिणीत्व। पत्नीत्व। घरनीपन।

घरनाव[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ा+नाव] दे० 'घन्नई'। उ०— नहिं नावक घरनाव, नहिं मलाह नहिं तूमरा।—नट०, पृ० १४८।

घरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे०'घरनी'। उ०—देखि विवस वृषभानु घरनि यों हँसति हँसति तहँ आई।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८४।

घरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहिणी, प्रा० घरणी] घरवाली। भार्या। गृहिणी। उ०— (क) गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरँगी मेरी प्रभु सों निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तरनिहु मुनि घरनी होई जाई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) बिन घरनी घर भूत का डेरा।—(कहा०)।

घरनैली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घरनई+एली (प्रत्य०)] दे० 'घन्नई'।

घरपत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं०घर+पत्ती=भाग] वह चंदा जो घर पीछे लगाया जाय। बेहरी।

घरपरना—संज्ञा पुं० [सं० घर+परना (=बनाना)] कच्ची मिट्टी का गोल पिंडा जिसपर ठठेरे घरिया बनाते हैं।

घरपोई†—वि० [हिं० घर+पोना] घर की पकाई हुई। उ०— तुम अवहीं जेई घरपोई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२३।

घरप्रांतर—संज्ञा पुं० [हिं० घर+सं० प्रांतर] १. घर और पड़ोस। २. घर का पड़ोस। उ०—पार हुए घरप्रांतर अंतर में निरवमान।—अर्चना, पृ० ८०।

घरफुँकना†—वि० [हिं० घर+फूँकना] घर फूँकनेवाला। घर वर्बाद करनेवाला।

घरफोड़ना—वि० [हिं० घर+फोड़ना] घर में झगड़ा लगानेवाला। घर के प्राणियों में बिगाड़ करानेवाला।

घरफोरन‡, घरफोरना—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० घरफोरनी] दे० 'घरफोड़ना'।

घरफोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर+फोड़ना] परिवार में कलह फैलानेवाली। घर के प्राणियों में बिगाड़ करानेवाली। उ०— (क) घरचो मोर घरफोरी नाऊँ। —तुलसी (शब्द०)। (ख) पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी।—मानस, २१४।

घरबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर+बंदी] चित्रकला में पहले छोटे छोटे चिह्नों से स्थान घेरकर अलग अलग पदार्थों को अंकित करने के लिये स्थान नियत करना।

घरबसा—संज्ञा पुं० [हिं० घर+बसना] [स्त्री० घरबसी] उपपति। यार। उ०—ए हो घरबसे! आजु कौन घर बसे हौ। —घनानंद (शब्द०)।

घरबसी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०घर+बसना] रखेली स्त्री। उपपत्नी। सुरैतिन। उ०—तेरे घाले घर जात घरी औ न घर आज तू तौ घरबसी उर बसी उरबसी सी।—गंग ग्रं०, पृ० ४७।

घरबसी[2]—वि० स्त्री० १. घर बसानेवाली। घर की समृद्धि करनेवाली। भाग्यवती। २. (व्यंग्य) घर उजाड़नेवाली। सत्यानाश करनेवाली। उ०—ललित लाल निहारि महरि मन बिचारि डारि दे घरबसी लकुट बेगि कर ते।—तुलसी (शब्द०)।

घरबार—संज्ञा पुं० [हिं० घर+बार<सं० द्वार] [वि० घरबारी] १. रहने का स्थान। ठौर ठिकाना। २. घर का जंजाल। गृहस्थी। जैसे,—वह घरबार छोड़कर साधु हो गया। ३. निज की सारी संपत्ति। जैसे,—घरबार बेचकर हमारा रुपया दो।

घरबारी—संज्ञा पुं० [हिं० घर+बार] बाल बच्चोंवाला। गृहस्थ। कुटुंबी। उ०—अब तो श्याम भये घरबारी।—सूर (शब्द०)।

घरबैसी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर+बैठना] 'घरबसी'।

घरम†—संज्ञा पुं० [सं० घर्म] १. घाम। धूप। २. स्वेद। उ०— कहइत नाम पेमे भये भोर। पुलक कंप तनु घरमहि नोर।— विद्यापति, पृ० ६३३।

घरमकर†—संज्ञा पुं० [सं० घर्मकर] सूर्य।

घरयार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घरियार'। उ०—घरी बजी घरयार सुन बजिकै कहत बजाइ। बहुरि न पैहै यह हरि चरनन चित लाइ।—सं० सप्तक, पृ० १७४।

घरर घरर—संज्ञा पुं० [अनु०]वह शब्द जो किसी कड़ी वस्तु को दूसरी कड़ी वस्तु पर रगड़ने से होता है। घिसने का शब्द।

घररना[1]—क्रि० अ० [अनुध्व०घरर घरर] घरर घरर ध्वनि होना।

घररना[2]—क्रि० स० १. रगड़ना। घिसना। घँसना। २. घरर घरर ध्वनि पैदा करना।

घरराट†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] गर्जना । ध्वनि । उ०—अमरप लीधाँ उछर्फं घरा हुंदं घरराट ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६ ।

घरवा—संज्ञा पुं० [हिं० घर + वा (प्रत्य०)] १. छोटा मोटा घर । कुटी । उ०—जो घरवा में वोलै भाई । काहिनामतोहि कहहु बुझाई ।—कबीर सा०, पृ० ३६७६ । २ घरौंदा ।

घरवात(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + वात (प्रत्य०) अथवा सं० वस्तु > हिं० वात] घर की संपत्ति । घर का सामान । गृहस्थी । उ०—कृश गात ललात जो रोटिन को घरवात घरै खुरपी खरिया । तुलसी (शब्द०) ।

घरवाला—संज्ञा पुं० [हिं० घर + वाला (प्रत्य०)] [स्त्री० घरवाली] १. घर का मालिक । २. पति । स्वामी ।

घरवाली संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + वाली (प्रत्य०)] गृहिणी । भार्या । पत्नी ।

घरवाहा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घरवा' ।

घरवैया—संज्ञा पुं० [हिं० घरैया] घराती । घर के लोग । उ०—बस गाँव का और कोई नहीं था । जो थे घरवैया थे ।—नई०, पृ० ५१ ।

घरसा†—संज्ञा पुं० [सं० घर्ष] रगड़ा । उ०—जोग न लोग लुगाइन के संग, भोग न रोगन के घरसा में ।—मतिराम (शब्द०) ।

घरहु(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + हु (प्रत्य)] घरवाली । घरनी । पत्नी । उ०—सपिन ओट सलपह घरह दूलह दुति दृग देखि ।—पृ० रा०, १४ । ३३ ।

घरहराना[1]—क्रि० स० [अनुध्व०] दे० 'घहराना' । उ०—घरहराइ अति वरखा करई ।—नंद ग्रं०, पृ० १६२ ।

घरहराना[2]—क्रि० अ० [सं० गह्वर] गहवर होना । व्याकुल होना । उ०—यों कहि कुँवरि ग्रीव जब गोई । घरहराइ तब सहचरि रोई ।—नंद ग्रं०, पृ० १४१ ।

घरहराना[3]—क्रि० अ० [हिं० घड़घड़ाना] गर्जन करना । कड़कना । उ०—तड़तड़ाहि तड़ि वज्र से परें । घरहराहि घन ऊधम करें । नंद ग्रं०, पृ० ३०७ ।

घरहाँई[1](पु) संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + सं० घाती > हिं० घाई] १. घर घालनेवाली । घर में विरोध करानेवाली स्त्री । इधर का उधर लगानेवाली । चुगुलखोर स्त्री । २. वह स्त्री जो किसी के घर की बुराई सबसे कहती फिरे । अपकीर्ति फैलानेवाली । निंदा फैलानेवाली । लांछन लगानेवाली । चवाव करनेवाली । उ०—(क) घरहाई चवाव न जो करतीं तो भलो औ बुरो पहिचानती मैं ।—हनुमान कवि (शब्द०) । (ख) घरहाइन की घैरु हू लाज न सकी बचाय । अरी हरी चित लै गयो लोचन चारु नचाय । शृं० सत० (शब्द०) । (ग) घरहाइन चरचैं चलें चातुर चाइन सैन । तदपि सनेह सने लगैं ललकि दुहूँ के नैन ।—शृं० सत० (शब्द०) ।

घरहाँई[2](पु)†— वि० बदनामी फैलानेवाली । कलंक की बात चारो ओर कहनेवाली । चवाइन । चुगुलखोर । उ०—ये घरहाई लुगाई सबै निस द्यौस नेवाज हमैं दहती हैं । प्राण पियारे तिहारे लिये सिगरे ब्रज को हँसिबो सहती हैं ।—नेवाज (शब्द०) ।

घराँव—संज्ञा पुं० [हिं० घर + आँव (प्रत्य०)] घर का सा संबंध । घनिष्ठता । परस्पर मेलजोल का भाव ।

घरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा] दे० 'घड़ा' । उ०—पगी प्रेम नँदलाल के भरन आपु जल जाइ । घरी घर के तरैं घरनि देति ढरकाइ ।—मति० ग्रं०, पृ० ४४५ ।

घराऊ वि० [हिं० घर + आऊ (प्रत्य०)] १. घर का । घर से संबंध रखनेवाला । गृहस्थी संबंधी । जैसे,—घराऊ झगड़ा । २. आपस का । निज का । घर के प्राणियों या इष्ट मित्रों के बीच का ।

घराड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर] १. दे० 'डीह' । २. दे० 'गड़ारी' ।

घराती—संज्ञा पुं० [हिं० घर + आती (प्रत्य०)] विवाह में कन्या की ओर के लोग । कन्या के पक्ष के लोग । उ०—एक ओर सब बैठ बराती । एक ओर सब लगें घराती ।—रघुराज (शब्द०) ।

घराना—संज्ञा पुं० [हिं० घर + आना (प्रत्य०)] खानदान । वंश । कुल । जैसे,—वह अच्छे घराने का आदमी है, उस घराने की गायकी प्रसिद्ध है ।

घरारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घररना (= घिसना)] रगड़ खाकर घिसने के कारण बनी लकीर, चिह्न या निशान ।

घरिआर†—संज्ञा पुं० [हिं० घड़ियाल] दे० 'घड़ियाल' ।

घरिआरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घड़ियाली' ।

घरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घरनी । पत्नी ।

घरियक(पु)—क्रि० वि० [हिं० घड़ी + एक] घड़ी भर । थोड़े समय तक । कुछ देर तक ।

घरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घड़िया' । उ०—यह संसार रहट की घरिया ।—कबीर सा०, पृ० ५८८ ।

घरियाना†—क्रि० स० [हिं० घरी (=तह)] घरी लगाना । कपड़े को तह लगाकर लपेटना ।

घरियार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घड़ियाल' । उ०—तहाँ घरनि घरियार बजावैं ।—कबीर सा०, पृ० १५४८ ।

घरियारी† संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घड़ियाली' । उ०—मनसिज घरियारी अरी गजर बजावैं बाल ।—राम० धर्म०, पृ० २४८ ।

घरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ी] समय । काल । घड़ी । उ०—(क) मानहु मीचु घरी गनि लेई ।—मानस, २ । ४० । (ख) धन्य है वह घरी जिसमें इस आनंद की लूट हुई ।—श्यामा०, पृ० १०६ ।

घरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर(=कोठा, खाना)] तह । परत । लपेट । उ०—राखौं घरी बनाय, ह्वै आवौं नृपद्वार लौं । तब लीजो पट आय, जो चाहो सो दीजियो ।—(शब्द०) ।

घरी[3](पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घड़िया' । उ०—लागी घरी रहट कै सींचहिं अमृत बेल ।—जायसी ग्रं०, पृ० १३ ।

घरीक(पु)†—क्रि० वि० [हिं० घड़ी + एक] कुछ देर । एक घड़ी भर । थोड़ी देर । उ०—(क) जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढे ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६४ । (ख) बिरह दहन लागी दहन घर न घरीक थिराति । रहत घड़ी सी ती भई बूड़ति औ उतराति ।—शृं० सत० (शब्द०)

घरुग्रा¹†—संज्ञा पुं० [हिं० घर+उवा (प्रत्य०)] १. घर का अच्छा प्रबंध। गृहस्थी का ठीक ठीक निर्वाह। गृहस्थी का बँधा खर्च वर्च। २. वह व्यक्ति जो गृहस्थी का प्रबंध समझबूझ से करे। घरुग्रादार।

घरुग्रा²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० घर] छोटा घर। उ०—बलुग्रा के घरुग्रा में बसते फुलवत देह अपाने।—कबीर ग्रं०, पृ०२७६।

घरुग्रादार†—संज्ञा पुं० [हिं० घर+फ़ा० दार] [स्त्री० घरुग्रादारिन] घर या गृहस्थी का उत्तम प्रबंध करनेवाला। वह मनुष्य जो समझ बूझकर गृहस्थी का खर्च चलावे।

घरुग्रादारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घर+दारी] घर का उत्तम प्रबंध करने का भाव। गृहस्थी का निर्वाह।

घरुवा—संज्ञा पुं० वि० [हिं० घर] १. दे० 'घरुग्रा'। २. 'घरू'।

घरू†—वि० [हिं० घर+ऊ (प्रत्य०)] जिसका संबंध घर गृहस्थी से हो। घर का। घराऊ। उ०—सब समाचार लिखि पत्र से एक घरू मनुष्य पठायो।—दो सौ बावन०, भा० १. पृ० १४८।

घरेला—वि० [हिं० घर+एला (प्रत्य०)] दे० 'घरेलू'।

घरेलू—वि० [हिं० घर+एलू (प्रत्य०)] १. जो घर में आदमियों के पास रहे। पालतू। पालू।—(पशुओं के लिये)। जैसे,—घरेलू कुत्ता। २. घर का। निज का। घरू। खानगी। ३. घर का बना हुआ।

घरैया¹†—वि० [हिं० घर+ऐया (प्रत्य०)] घर का। अपने कुटुंब का। अत्यंत घनिष्ठ संबंधी।

घरैया²†—संज्ञा पुं० १. घर का आदमी। घर का प्राणी। निकटस्थ संबंधी। उ०—द्रौपदी विचारै रघुराज आजजाति लाज, सब हैं घरैया पै न टेर के सुनैया हैं।—रघुराज (शब्द०)। २. दे० 'घराती'।

घरो(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घड़ा'। उ०—बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।—तुलसी (शब्द०)।

घरौंदा—संज्ञा पुं० [हिं० घर+औंदा (प्रत्य०)] १. कागज, मिट्टी, धूल आदि का बना हुआ छोटा घर जिसे छोटे बच्चे खेलने के लिये बनाते हैं। २. छोटा मोटा घर।

घरौंधा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घरौंदा'। उ०—(क) पवि को पहार कियो ख्याल ही कृपाल राम बापुरो विभीषण घरौंधा हुतो बाल को।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०१। (ख) अब हम दोनों जरा जरा से बच्चे नहीं हैं कि कागज का घरौंधा बनावें।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

घरौना—संज्ञा पुं० [हिं० घर+औना (प्रत्य०)] १. घर। मकान। निवासस्थान। उ०—तजि के घरौना काहू रूखन की छाया तरे सोये ह्वै हैं छौना ह्वै बिछौना करि पात के।—हनुमान (शब्द०)। २. मिट्टी, धूल आदि का बना हुआ छोटा घर जिसे बच्चे खेलने के लिये बनाते हैं। घरौंदा।

घर्घर—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक बाजा जिससे ताल दिया जाता था। २. गाड़ी आदि के चलने का गंभीर शब्द। घड़घड़ाहट। उ०—रथ का घर्घर घंटों की घनघन।—अणिमा, पृ० ३६। २. घरघर शब्द। ३. हास। अट्टहास। हँसी। ४. भूसी की आग। तुषाग्नि। ५. उलूक। ६. परदा। ७. द्वार। ८. पर्वत का दर्रा। ९. लकड़ी आदि के चटकने की आवाज। १०. मथानी के चलाने का शब्द। ११. मथानी। १२. घाघरा नदी।

घर्घरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर्घर ध्वनि। २. घाघरा नदी [को०]।

घर्घरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षुद्रघंटिका। करधनी। २. घोड़े के गले में पहनाई जानेवाली छोटी घंटी। ३. गंगा। ४. घुँघरू। ५. एक प्रकार की प्राचीन काल की वीणा [को०]।

घर्घरिका—संज्ञा पुं० [सं०] १. आभूषणों में प्रयुक्त घुँघरू। क्षुद्रघंटिका। नूपुर। २. एक प्रकार का बाजा। ३. लावा [को०]।

घर्घरित—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर के घुरघुराने की ध्वनि [को०]

घर्घरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'घर्घरा'।

घर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. घाम। धूप। सूर्यातप। २. एक प्रकार का यज्ञपात्र। ३. ग्रीष्म काल। ४. स्वेद। पसीना।

यौ०—घर्मचर्चिका, घर्मविचर्चिका=अम्हौरी। घमौरी। घर्मजल, घर्मतोय=प्रस्वेद। पसीना। घर्मदीधिति, घर्मद्युति, घर्मरश्मि=सूर्य। घर्मबिंदु। घर्मांबु। घर्मांशु। घर्मार्द्र=पसीने से तर। घर्मोदक=पसीना।

घर्मबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० घर्मबिन्दु] पसीना।

घर्मस्वेद—वि० [सं०] ताप के कारण जिसके शरीर से पसीना निकल रहा हो।

घर्मांत—संज्ञा पुं० [सं० घर्मान्त] ग्रीष्म ऋतु का अंत। वर्षा का आरंभ।

घर्मांबु—संज्ञा पुं० [सं० घर्माम्बु] स्वेद। पसीना।

घर्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। उ०—जयति घर्मांशु संदग्ध संपाति नव पक्ष लोचन, दिव्य देह दाता।—तुलसी (शब्द०)।

घर्माक्त—वि० [सं०] धूप से तप्त। स्वेदयुक्त। पसीने से लथपथ। उ०—घर्माक्त विरक्त पार्श्वदर्शन से खींच नयन।—अपरा, पृ० ६२।

घर्रा—संज्ञा पुं० [अनुध्व० घरर घरर (=घिसने या रगड़ने का शब्द)] १. एक प्रकार का अंजन जो अफीम, फिटकिरी, घी, कपूर, हड़, जल बत्ती, इलायची, नीम की पत्ती इत्यादि को एक में घिसकर बनाया जाता है। यह अंजन आँख आने पर लगाया जाता है। २. गले की घरघराहट जो कफ के कारण होती है।

मुहा०—घर्रा चलना=मरते समय कफ छेंकने के कारण साँस का घरघराहट के साथ रुक रुककर निकलना। घुँघरू बोलना। घटका लगना। घर्रा लगना=दे० 'घर्रा चलना'।

२. कूएँ आदि की मिट्टी अथवा जल को व्यक्तियों द्वारा बैल की तरह खींचने का काम।

घर्राटा—संज्ञा पुं० [अनुध्व० घर्र+आटा (प्रत्य०)] घर्र घर्र का शब्द। वह शब्द जो गहरी नींद में साँस लेते समय नाक से निकलता है।

मुहा०—घर्राटा मारना=(१) गहरी नींद में नाक से घर्र घर्र शब्द निकलना। जैसे,—वह घर्राटा मारकर सो रहा है।

(२) गहरी नींद में सोना । घर्राटा लेना=दे० 'घर्राटा मारना' ।

घर्रामी—संज्ञा पुं० [हिं० घर+आमी (प्रत्य०)] छप्पर छाने का काम करनेवाला । छपरबंद ।

घर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. रगड़ । घर्षण । २. पीसना । चूर्ण करना । [को०] ।

घर्षक—वि० [सं०] १. रगड़नेवाला । पीसनेवाला । माँजने, चमकाने या पालिश करनेवाला [को०] ।

घर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रगड़ । घिस्सा । २. पेषण । चूर्णीकरण ।

घर्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा । हलदी ।

घर्षित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० घर्षिता] १. घिसा, पिसा अथवा रगड़ा हुआ । २. अच्छी तरह साफ किया हुआ । माँजा हुआ [को०] ।

घलना†—क्रि० अ० [हिं० घालना] १. छूटकर गिर पड़ना । फेंका जाना । २. हथियार का चल जाना । चढ़े हुए तीर या भरी हुई गोली का छूट पड़ना । जैसे,—तीर घल गया । उ०—इक ओर बानन की जु अवली अरि वलिन तुरतहि घली ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १३ । ३. मारपीट हो जाना । जैसे—आज बाजार में उन दोनों से घल गई ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

घलाघल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घलना] १. मारपीट । आघात प्रतिघात । उ०—नैनन ही की घलाघल कै घने घायल को कछु तेल नहीं फिर ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १५६ । २. डालना । फेंकना । उ०—लाल गुलाल घलाघल में दृग ठोकर दै गई रूप अगाधा ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०६ ।

घलाघली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घलाघल' । उ०—वर बान तीर तुपकन ओपन की भई जु घलाघली ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७ ।

घलुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० घाल या सं० लघुक>लघुआ] वह अधिक वस्तु जो खरीदार को उचित तौल के अतिरिक्त दी जाय । घेलौना । घाल ।

घवद—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'गौद', 'घौद' ।

घवरि†—संज्ञा स्त्री० [सं० गह्वर] फलों या पत्तियों का गुच्छा । घौद । उ०—बिरचे कनकमय रंभखंभ अचंभ अरु मणिपात जू । तिमि घवरि घनि फणि पोहि लोहित सुमन मंजु लखात जू ।—विश्राम (शब्द०) । (ख) हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि ।—तुलसी (शब्द०) ।

घवहा†—वि० [हिं० घाव+हा (प्रत्य०)] चोटीला । घायल । उ०—पागल घोर घवहा कुत्ते की तरह वह भौंकने लगा ।—नई०, पृ० ५८ ।

घवाहिल†—वि० [हिं०] दे० 'घवहा' ।

घवैल—वि० [हिं०] दे० 'घवहा' । उ०—तब नकली बम हो चाहे असली हाथ से छूट जाने पर कुछ न कुछ घवैल तो जरूर करेगा ।—मैला०, पृ० २६५ ।

घसकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खिसकना' ।

घसखुदा—संज्ञा पुं० [हिं० घास खोदना] १. घसियारा । वह व्यक्ति जो घास काटने का काम करे । घास खोदनेवाला । २. अनाड़ी या मूर्ख व्यक्ति ।

घसत—संज्ञा पुं० [?] बकरा । अज । (डिं०) ।

घसन—संज्ञा पुं० [घर्षण] रगड़ । उ०—छरा हू उतारि धरे पायर घसन ते ।—नट०, पृ० ७३ ।

घसना¹†—क्रि० अ० [सं० घर्षण] रगड़ना । घिसना । उ०—मुँह धोवति एँड़ी घसति हँसति अनँगवति तीर । धँसति न इंदीवर नयनि कालिंदी के नीर ।—बिहारी (शब्द०) ।

घसना²—क्रि० स० [सं० घसन] खाना । भक्षण करना ।—(डिं०)

घसिटना—क्रि० अ० [सं० घर्षित+ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु का इस प्रकार खिंचना कि वह भूमि से रगड़ खाती हुई एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय ।

घसियारा—संज्ञा पुं० [हिं० घास+आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० घसियारी या घसियारिन] घास बेचनेवाला । घास छीलकर लानेवाला ।

घसियारिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० घसियारा] घास बेचनेवाली स्त्री । उ०—क्या रानी क्या दीन घसियारिनी ।—प्रेमघन० भा०, २, पृ० ३३५ ।

घसियारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घसियारा] घास बेचनेवाली स्त्री ।

घसीट—संज्ञा स्त्री० [हिं० घसीटना] १. जल्दी जल्दी लिखने का भाव । २. जल्दी का लिखा हुआ लेख । ३. घसीटने का भाव । ४. वह मोटा फीता या इसी प्रकार की और कोई पट्टी जिसकी सहायता से हवा में उड़ते हुए पालों को मस्तूल आदि से बाँधते हैं ।—(लश०) ।

घसीटना—क्रि० स० [सं० घृष्ट, प्रा० घस्ट+ना (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु को इस प्रकार खींचना कि वह भूमि से रगड़ खाती हुई एक स्थान से दूसरे स्थान को जाय । कढ़ोरना । उ०—मुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी । लगे घसीटन धरि धरि झोटी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—घसीटाघसीटी=खींचातानी । खींचतान । खींचाखींची ।

२. जल्दी जल्दी लिखना । जल्दी जल्दी लिखकर चलता करना । जैसे,—चार अक्षर घसीट दो । ३. किसी मामले में डालना । किसी काम में जबरदस्ती शामिल करना । जैसे,—तुम्हारे जो जी में आए करो, अपने साथ औरों को क्यों घसीटते हो । ४. खींचकर ले जाना । इच्छा के विरुद्ध ले आना । उ०—राजभवन से अपने डेरे में घसीट लाए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३८ ।

घस्मर—वि० [सं०] १. पेटू । भक्षक । २. विध्वंसक । विनाशक [को०] ।

घस्र¹—वि० [सं०] क्षतिकारक । हानिकर । घातक [को०] ।

घस्र²—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन । दिवस । २. सूर्य । ३. गर्मी । ४. शिव । ५. कुंकुम [को०] ।

घस्सा—संज्ञा पुं० [सं० घृष्ट] दे० 'घिस्सा' ।

घहघह†—संज्ञा पुं० [सं० घर्घर] घहर घहर की ध्वनि । उ०—गहगह सुगौरिय गंग घहघह सु घुमड़ि तरंग ।—पृ० रासो, पृ० ८० ।

घहनाना¹†—क्रि अ० [अनुध्व०] धातुखंड पर आघात लगने से शब्द होना । घंटे आदि की ध्वनि निकलना । घहराना ।

उ०—झेलन की झनकार मची तहँ घन घंटा घहनाने। नदत नाग माते मग जाते दिगदंती सकुचाने।—रघुराज (शब्द०)।

घहनाना[2]Ⓟ†—क्रि० स० घंटा आदि बजाना। बजाकर ध्वनि उत्पन्न करना।

घहरना—क्रि० अ० [अनु०] गरजने का सा शब्द करना। गंभीर ध्वनि निकालना। घोर शब्द करना। उ०—जहँ के तहँ समाय रहे अस वेद नगारा घहरत है।—देवस्वामी (शब्द०)।

घहराना—क्रि० अ० [अनु०] १. गरजने का सा शब्द करना। गंभीर शब्द करना। गरजना। चिग्घाड़ना। उ०—(क) धौंसा लगे घहरान। शंख लगे हहरान। छत्र लगे थहरान। केतु लगे फहरान।—गोपाल (शब्द०)। (ख) हय हिहिनात भागे जात घहरात गज, भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७४। २. घिरना। फैलना। छाना। उ०—(क) चारिहू ओर ते पौन झकोर झकोरन घोर घटा घहरानीं।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) अंबर में पावन होम धूम घहराये।—साकेत, पृ० २१७।

घहरानि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घहराना] १. गंभीर ध्वनि। तुमुल शब्द। गरज। उ०—सुनत घहरानि ब्रज लोग चकित भए।—सूर० (राधा०), २०६०। २. घहराने की क्रिया या भाव।

घहरारा[1]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० घहराना] घोर शब्द। गंभीर ध्वनि। गरज। उ०—एक ओर जलद के माचे घहरारे मंजु एक ओर नाकन के नदत नगारे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

घहरारा[2]Ⓟ†—वि० गरजनेवाला। घोर शब्द करनेवाला।

घहरारीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घहराना] गंभीर ध्वनि। घोर शब्द। गरज। उ०—पुर ते छवि भारी कढ़ी सवारी भै घहरारी नाकन की।—रघुराज (शब्द०)।

घांटिक—संज्ञा पुं० [सं० घाण्टिक] १. स्तुतिपाठक। २. घंटा बजानेवाला। ३. धतूरा [को०]।

घाँⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० ख या हिं० घाट (=ओर)] १. दिशा। दिक्। २. ओर। तरफ। उ०—सूर तबहिं हम सों जो तेरी घाँ ह्वै लरती।—सूर (शब्द०)।

घाँघरा—संज्ञा पुं० [देशी घग्घर; अथवा सं० घर्घर (=क्षुद्रघंटिका)] [स्त्री० अल्पा० घाँघरी] १. वह चुननदार और घेरदार पहनावा जो स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं और जो पैर तक लटकता रहता है। लहँगा। लोविया। वोड़ा। वजरवट्टू।

घाँघरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० घाँघरा। उ०—इसी रीति घाँघरी धरी कसकर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६।

घाँघरो†Ⓟ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घाँघरा'। उ०—घाँघरो झीन सों सारी मिहिन सों पीन नितंबनि भार उठै खचि।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १०६।

घाँघल†—संज्ञा पुं० [अप० घंघल] झगड़ा। बखेड़ा। कष्ट। उ०—थाह निहालइ, दिन गिणइ, मारू आसालुध्ध। परदेसे घाँघल घणा बिखउ न जाणइ मुध्ध।—ढोला०, दू० १७।

घाँची†Ⓟ—संज्ञा पुं० [देशी घंचिय; गुज घांची या हिं० घान+ची] तेली।—(डिं०)।

घाँटी†—संज्ञा स्त्री० [सं० घण्टिका] १. गले के अंदर की घंटी। कौआ। ललरी।

मुहा०—घाँटी बैठाना=गले की घंटी की सूजन को दबाकर मिटाना।

विशेष—यह रोग बच्चों को बहुत होता है। दे० 'कौवा'।

२. गला। जैसे,—उतरा घाँटी, हुआ माटी।

घाँटो—संज्ञा पुं० [हिं० घट] एक प्रकार का चलता गाना जो चैत के महीने में गाया जाता है।

घाँहⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० घाँ] तरफ। ओर। उ०—छकी अछेह उछाह मत तनक तकी यहि घाँह। दै छतिया छद छोभ हद गई छुवावत छाँहँ।—शृं० सत० (शब्द०)।

घाँही†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घाँह'।

घाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० ख अथवा हिं० घाट (=ओर)] ओर। तरफ। जैसे,—चहुँ घा।

घाइⓅ—संज्ञा पुं० [सं० घात, प्रा० घाइ] दे० 'घाव'। उ०—धीर न धरति धरी देखे बिनु मरी जाति ऐसो कछु करी दियो घाइनि में नौन है।—गंग ग्रं०, पृ० ५३।

घाइबो†Ⓟ—क्रि० स० [ब्रज०] दे० 'घाना'।

घाइलⓅ† वि० [हिं० घाय] दे० 'घायल'। उ०—प्रथम नगरि नूपुर रही जुरत सुरत रन गोल। घाइल ह्वै सोभा बढ़त कुच भर अधर कपोल।—स० सप्तक, पृ० ३७३।

घाईंⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाँ या घा] ओर। तरफ। अलंग। उ०—(क) प्यारी लजाय रही मुख फेरि दियो हँसि हेरि सखीन की घाईं। सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। (ख) हँसै कुंद हे मुकुंद सहैं बन बागन में करैं चहुँ घाईं कीर कोकिला चवाई हैं।—दीनदयाल (शब्द०) २. दो वस्तुओं के बीच का स्थान। संधि। उ०—चुरियानहु में चपि चूर भयो दबि छंद पछेलिन घाईं कहूँ।—हरिसेवक (शब्द०)। ३. बार। दफा। ४. पानी में पड़नेवाला भँवर। गिरदाब।

घाईं[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० गभस्ति(=उँगली)] १. दो उँगलियों के के बीच की संधि। अँगूठे और उँगली के मध्य का कोण। अंटी। २. पेड़ी और डाल के बीच का कोना।

घाईं[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाव] १. चोट। आघात। मार। प्रहार। वार। उ०—जदपि गदा की बड़ी बड़ाई। पै कछु और चक्र की घाई।—लाल (शब्द०)। २. पटेबाजी की विशेष चोट। जैसे,—दो की घाई, चार की घाई। ३. धोखा। चालबाजी। उ०—दई घोर अँध्यार में घोर घाई। कभू सामुहें दाहिने वाम घाई।—सूदन (शब्द०)।

मुहा०—घाइयाँ बताना=झाँसा देना। टालटूल करना।

घाईं[3]Ⓟ—वि० [सं० घातिन] दे० 'घाती'। उ०—संशय सावज शरिर महँ संगहि खेल जुआर। ऐसा घाई बापुरा जीवहिं मारै झार।—कबीर ग्रं०, पृ० ८८।

घाईं[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाही] पाँच वस्तुओं का समूह। पँचकरी। गाही।

घाउ[1]—संज्ञा पुं० [सं० घात, प्रा० घाय] १. दे० 'घाव'। २. प्रहार। चोट। उ०—परेउ निसानहिं घाउ राउ अवधहिं चले। सुरगन बरषहिं सुमन सगुन पावहिं भले।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६१।

घाऊघप—वि० [हिं० खाऊ+गप या घप] १. चुपचाप माल हजम करनेवाला। गुप्त रूप से दूसरे का धन खानेवाला। उ०—कौड़ी लाभे देनचा बगुचा घाऊघप्प।—संतवाणी०, पृ० १५४। २. चुपचाप अपना मतलब निकालनेवाला। जिसकी चाल जल्दी न खुले। जिसका भेद कोई न पावे। चुप्पा।

घाएँ[1]—संज्ञा स्त्री० [देश० अथवा सं० घात] १. ओर। तरफ। २. अवसर। बार। दफा।

घाएँ[2]—क्रि० वि० ओर से। तरफ से।

घाग—संज्ञा पुं० [हिं०] १. चतुर। काइयाँ। खुर्राट। उ०—अपने मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे पुराने धुराने डाग बड़े घाग यह खटराग लाए।—ठेठ०, पृ० २। २. दे० 'घाघ'।

घागरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० गगरी] दे० 'घड़ा'। उ०—हस्त विनोद देत करताली। चित सो घागरी राखिला।—दक्खिनी०, पृ० ३३।

घागही†—संज्ञा स्त्री० [देश०] सनई। पटसन।

घाघ[1] संज्ञा पुं० [हिं०] १. गोंड़े के रहनेवाले एक बड़े चतुर और अनुभवी व्यक्ति का नाम जिनकी कही बहुत सी कहावतें उत्तरीय भारत में प्रसिद्ध हैं। खेती बारी, ऋतुकाल तथा लग्न मुहूर्त्त आदि के संबंध में इनकी विलक्षण उक्तियाँ किसान तथा सर्वसाधारण लोग बहुत कहा करते हैं। जैसे.—मुए चाम से चाम कटावे, सकरी भुइँयाँ सोवै, कहे घाघ ये तीनों भकुआ, उढ़रि जाय औ रोवै। २. अत्यंत चतुर मनुष्य। अनुभवी। गहरा चालाक। खुर्राट। सयाना। ३. इंद्रजाली। जादूगर। बाजीगर। उ०—जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं। काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाघ, मगर के खेले कहा भट पद पावहीं।—केशव (शब्द०)।

घाघ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० घुग्घू] उल्लू की जाति का एक पक्षी जो चील के बराबर होता है। घाघस।

घाघरइ🄟†—संज्ञा पुं० [हिं० घाघरा] लहँगा। घाघरा। उ०—घम्म घमंतइ घाघरइ उलट्यउ जाँण गयंद। मारू चाली मंदिरे भीणे बादल चंद।—ढोला०, दू० ५३७।

घाघरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० घर्घर (=क्षुद्रघंटिका)] [स्त्री० अल्पा० घाघरी] वह चुननदार और घेरदार पहनावा जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं और जिससे कमर से लेकर एँड़ी तक का अंग ढका रहता है। लहँगा।

यौ०—घाघरा पलटन=औरतों का दल या झुंड।—(बोल०)।

घाघरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० घर्घर (=उल्लू)] एक प्रकार का कबूतर।

घाघरा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधे का नाम।

घाघरा[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० घर्घर] सरजू नदी का नाम।

घाघरा पलटन—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाघरा+अं० प्लैटून] स्काटलैंड देश के पहाड़ी गोरों की सेना जिनका पहनावा कमर से घुटने तक लँहगे की तरह का होता है।

घाघस[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घाघ[2]'।

घाघस[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बढ़िया और बड़ी मुरगी।

घाघी—संज्ञा स्त्री० [सं० घर्घर] मछली फँसाने का बड़ा जाल।

घाट[1]—संज्ञा पुं० [सं० घट्ट] १. नदी, सरोवर या और किसी जलाशय का वह स्थान जहाँ लोग पानी भरते या नहाते धोते हैं। नदी, झील आदि का वह किनारा जिसपर पानी तक उतरने के लिये सीढ़ियाँ आदि बनी हों।

मुहा०—घाट घाट का पानी पीना=(१) चारों ओर देश-देशांतर में घूमकर अनुभव प्राप्त करना। अनेक स्थानों में या अनेक प्रकार के व्यापारों में रहकर जानकार होना। (२) इधर उधर मारे मारे फिरना।

२. नदी या जलाशय के किनारे का वह स्थान जहाँ धोबी कपड़े धोते हैं। जैसे,—धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। ३. नदी या जलाशय के किनारे का वह स्थान जहाँ नाव पर चढ़कर या पानी में हलकर लोग पार उतरते हैं।

मुहा०—घाट धरना=राह छेंकना। जबरदस्ती करने के लिये रास्ते में खड़े होना। उ०—घाट धरचो तुम यहै जानि कै करत ठगन के छंद।—सूर (शब्द०)। घाट मारना=नदी की उतराई न देना। नाव या पुल का महसूल बिना दिए चले जाना। घाट लगना=नदी के किनारे बहुत से आदमियों का पार उतरने के लिये इकट्ठा होना। नाव का घाट लगना=नाव का किनारे पर पहुँचना। (किसी का) किसी घाट लगना=कहीं ठिकाना पाना। कहीं आश्रय पाना। घाट नहाना=किसी के मरने पर उदकक्रिया करना।

४. तंग पहाड़ी रास्ता। चढ़ाव उतार का पहाड़ी मार्ग। उ०—(क) घाट छोड़ि कस औघट रेंगहु कैसे लगिहहु पारा हो।—कबीर (शब्द०)। (ख) है आगे परवत की बाटैं। विषम पहार अगम सुठि घाटैं।—जायसी (शब्द०)। ५. पहाड़। पर्वत। ६. ओर। तरफ। दिशा। ७. रंगढंग। चालढाल। डौल। ढब। तौर तरीका। भेद। मर्म। उ०—जो करनी अंतर बसै, निकसै मुँह की बाट। बोलत ही पहिचानिए, चोर साहु को घाट।—कबीर (शब्द०)। ८. तलवार की धार जिसमें उतार चढ़ाव होता है। तलवार की बाढ़ का ऊपरी भाग। ९. अँगिया का गला। १०. जौ की गिरी। ११. मोठ और बाजरे की खिचड़ी। उ०—उस जाट की स्त्री ने गरम घाट उसके सामने रख दी।—राज०, इति० पृ० ६०२। १२. दुलहिन का लहँगा। १३. ठाट बाट। उ०—प्राण गए तें रहै न कोऊ सकल देखतें घाट बिलावै।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६०१। १४. गठन। आकृति। रूपरेखा। उ०—मृगनयणी मृगपति मुखी मृगमद तिलक निलाट। मृगरिपु कटि सुंदर वणी मारू अइहइ घाट।—ढोला०, दू० ४६६।

घाट[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० घात या हिं० घट (=कम)] १. धोखा। छल। कपट। उ०—ज्ञान बंधु, विरोध कीन्हों, घाट भई

अब मोहि सों।—कबीर सा०, पृ० ५१। २. खोटपन। बुराई। कुकर्म।

घाट³—वि० [हिं० घट] कम। थोड़ा। उ०—निसदिन तोलै पूर घाट अब सुपनेहु नाहीं।—पलटू०, पृ० ३६।

घाट⁴—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० घाटी, घटिका] १. गरदन का पिछला भाग। २. नाव आदि पर चढ़ने या उतरने का स्थान। ३. कलश। घट (को०)।

घाटकप्तान—संज्ञा पुं० [हिं० घाट+अं० कैप्टेन] बंदरगाह का प्रधान अध्यक्ष या अधिकारी।

घाटना(पु)—क्रि० स० [हिं० घटा या सं० √घट् (=मिलाना, एकमेल करना)] पाट देना। घटा की तरह फैला देना। उ० घाटी अवनि अकास सर, डाटी दुज्जन जाल। काटी दस दसकंध के, मुंड आज त्रिकराल।—स० सप्तक, पृ० ३६७।

घाटबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाट+बंदी] १. नाव या जहाज खोलने की मनाही। किश्ती खोलने या चलाने की मुमानियत। २. घाट बँधने या रुकने का भाव या क्रिया।

घाटवाल—संज्ञा पुं० [हिं० घाट+वाला (प्रत्य०)] घाट पर बैठनेवाला ब्राह्मण जो स्नान करनेवालों से दान लेता है। घाटिया। गंगापुत्र।

घाटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० घटना] घटी। हानि। नुकसान। जैसे,—इसे व्यवसाय में उन्हें बड़ा घाटा आया।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—होना।—उठाना।—देना।—सहना।—बैठना।—खाना।

मुहा०—घाटा उठाना=हानि सहना। नुकसान में पड़ना। घाटा भरना—(१) नुकसान भरना। अपने पल्ले से रुपया देना। (२) नुकसान पूरा करना। हानि की कसर निकालना। कमी पूरी करना।

घाटा(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० घट्ट] घाटी। उ०—साद करे किम सुदुर है, पुलि पुलि थक्के पाँव। सयणे घाटा वउलिया वइरि जु हुआ वाव।—ढोला०, दू०, ३८५।

घाटा³—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घड़ा। २. गरदन के पीछे का हिस्सा। ३. नाव आदि से उतरने के लिये किनारे का स्थान [को०]।

घाटारोह†—संज्ञा पुं० [हिं० घाट+सं० अवरोध] घाट का रोकना। घाट से किसी को उतरने न देना। उ०—(क) च्यारि दरा घाटी जिती कीने घाटारोह।—ह० रासो, पृ० १३०। (ख) हयवासहु बोरहु तरनि कीजै घाटारोह।—तुलसी (शब्द०)।

घाटि(पु)†¹—संज्ञा पुं० [हिं० घटना] कम। न्यून। उ०—भुगते बिन न घाटि ह्वै जाहीं। कब भुगतै यह मो मन माहीं।—नंद ग्रं०, पृ० ३१८।

घाटि²—संज्ञा स्त्री० [सं० घात, हिं० घट (=कम)] नीच कर्म। पाप। बुराई। उ०—रावन घाटि रची जग माहीं।—तुलसी (शब्द०)।

घाटि³—क्रि० वि० किसी की तुलना में कम। घटकर।

घाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गरदन का पिछला भाग। गरदन और रीढ़ का संधिभाग।

घाटिया—संज्ञा पुं० [सं० घाट+इया (प्रत्य०)] तीर्थस्थानों के घाटों पर बैठकर स्नान करनेवालों से दक्षिणा लेनेवाला ब्राह्मण। गंगापुत्र।

घाटी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाट] १. पर्वतों के बीच की भूमि। पहाड़ों के बीच का मैदान। पर्वतों के बीच का सँकरा मार्ग। दर्रा। उ० है आगे परवत की पाटी। विषम पहार अगम सुठि घाटी।—जायसी (शब्द०)। २. पहाड़ की ढाल। चढ़ाव उतार का पहाड़ी मार्ग। उ०—चलूँ चलूँ सब कोइ कहै पहुँचै बिरला कोय। एक कनक इक कामिनी, दुर्गम घाटी दोय।—कबीर (शब्द०)। ३. महसूली वस्तुओं को ले जाने का आज्ञापत्र। रास्ते का कर या महसूल चुकाने का स्वीकारपत्र।

घाटी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] गले का पिछला भाग।

घाटी³—वि० [हिं० घाटि] कम। न्यून। उ०—कंचन चाहि अधिक कए कएलहु काचहु तह भेल घाटी।—विद्यापति, पृ० ३६७।

घाटो¹(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घाटा'।

घाटो²—संज्ञा पुं० [हिं० घट] एक प्रकार का गीत जो चैत बैसाख में गाया जाता है। घाँटो।

घाटो³—वि० [हिं० घटना] दरिद्र।—(डिं०)।

घात¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० घाती] १. प्रहार। चोट। मार। धक्का। जरब। उ०—(क) चुकै न घात मार मुठ भेरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कपीश कूद्यो बात घात बारिधि हिलोरि कै।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—होना।

मुहा०—घात चलाना=मारण, मोहन आदि प्रयोग करना। मूठ चलाना। जादू टोना करना।

२. वध। हत्या।

यौ०—गोघात। नरघात। विश्वासघात।

३. अहित। बुराई। उ०—हित की कहो न, कहो अंतसमय घात की।—प्रताप (शब्द०)। ४. (गणित में) गुणनफल। ५. (ज्योतिष में) प्रवेश। संक्रांति।

यौ०—घाततिथि। घातवार।

६. बाण। तीर। इषु।

घात²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अभिप्राय सिद्ध करने का उपयुक्त स्थान और अवसर। कोई कार्य करने के लिये अनुकूल स्थिति। दाँव। सुयोग। उ०—आप अपनी घात निरखत खेल जम्यो बनाइ।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—तकना।

मुहा०—घात पर चढ़ना=किसी को ऐसी स्थिति होना जिससे दूसरे का मतलब सिद्ध हो। अभिप्राय साधन के अनुकूल होना। दाँव पर चढ़ना। वश में आना। हत्थे चढ़ना। घात में

आना=दे० 'घात पर चढ़ना'। घात में पाना=किसी को ऐसी स्थिति में पाना जिससे कोई अर्थ सिद्ध हो। वश में पाना। घात लगना=सुयोग मिलना। किसी कार्य के लिये अनुकूल स्थिति होना। उ०—हमरिउ लागी घात तव हमहूँ देब कलक।—विश्राम (शब्द०)। घात लगाना=अवसर हाथ में लेना। युक्ति भिड़ाना। तदबीर करना। काम निकालने का ढर्रा निकालना। उ०—केलि के राति अघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई।—मतिराम (शब्द०)।

२. किसी पर आक्रमण करने या किसी के विरुद्ध और कोई कार्य करने के लिये अनुकूल अवसर की खोज। किसी कार्य सिद्धि के लिये उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा। ताक। जैसे,—शेर या बिल्ली का शिकार की घात में रहना।

मुहा०—घात में फिरना=ताक में घूमना। अनिष्ट साधने के लिये अनुकूल अवसर ढूँढ़ते फिरना। उ०—उससे बचे रहना; वह बहुत दिनों से तुम्हारी घात में फिर रहा है। घात में बैठना=आक्रमण करने या मारने के लिये छिपकर बैठना। किसी के विरुद्ध कोई कार्य करने के लिये गुप्त रूप से तैयार रहना। उ०—चित्रकूट अचल अहेरी बैठो घात मानो पातक के व्रात घोर सावज संघारिहैं।—तुलसी (शब्द०)। घात में रहना=किसी के विरुद्ध कोई कार्य करने के लिये अनुकूल अवसर ढूँढ़ते रहना। ताक में रहना। घात में होना=किसी के विरुद्ध कार्य करने की ताक में होना। घात लगाना=किसी कार्य के लिये अनुकूल अवसर ढूँढ़ना। मौका ताकना। जैसे, वह बहुत देर से घात लगाए बैठा है।

३. दाँवपेंच। चाल। छल। चालबाजी। कपट युक्ति। उ०—मोसों कहति श्याम हैं कैसे ऐसी मिलई घातें।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—(किसी के बल पर) घात करना=किसी के उकसाने या भरोसे पर चाल करना। बहलाना। उ०—ताके बल करि मो सो घाती। रहिहैं गोय कहाँ किहि भाँती।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०७। घातें बताना=(१) चाल सिखाना। (२) चालबाजी करना। रास्ता बताना। बहलाना।

४. रंग ढंग। तौर तरीका। ढब। धज।

घातक[1]—वि० [सं०] १. घात करनेवाला। २. मार डालनेवाला। हत्यारा। हिंसक। ३. हानिकर।

घातक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घात करनेवाला व्यक्ति। २. जल्लाद। वधिक। ३. फलित ज्योतिष में वह योग जिसका फल किसी की मृत्यु हो। ४ शत्रु। दुश्मन।

घातकी—संज्ञा पुं० [सं० घातक] दे० 'घातक'।

घातकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] शार्ङ्गधर संहिता में वर्णित एक प्रकार का मूत्ररोग [को०]।

घातचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० घातचन्द्र] अशुभ राशि का चंद्रमा। अशुभ राशि पर स्थित चंद्रमा [को०]।

घाततिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अशुभ तिथि [को०]।

घातन[1]—वि० [सं०] वध करनेवाला। कत्ल करनेवाला [को०]।

घातन[2]—संज्ञा पुं० १. घात। प्रहार। २. वध। कत्ल। ३. बलिदान। पशुबलि करना [को०]।

घातनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] अशुभ फल देनेवाले नक्षत्र [को०]।

घातवर्त्तना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोहल मुनि के मत से नृत्य में एक प्रकार की वर्त्तना।

घातवार—संज्ञा पुं० [सं०] घातक दिन। अशुभ दिन [को०]।

घातस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वधस्थान। बूचड़खाना [को०]।

घाता—संज्ञा पुं० [हिं० घात या घाल] वह थोड़ी सी चीज जो सौदा खरीदने के बाद ऊपर से ली या दी जाती है। घाल। घलुआ।

घाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आघात। वध। २. पक्षियों को जाल में फँसाना या मारना। ३. चिड़िया फँसाने का जाल [को०]।

घातिक—संज्ञा पुं० [सं० घातक] दे० 'घातक'।

घातिनी—वि० स्त्री० [सं०] १. मारनेवाली। वध करनेवाली। २. नाश करनेवाली।

यौ०—बालघातिनी=छोटे शिशुओं को मारनेवाली। उ० बड़ी विकराल बालघातिनी न जात कहि, बाहू बल बालक छबीले छोटे छरैगी।—तुलसी (शब्द०)।

घातिया—संज्ञा पुं० [सं० घात+इया (प्रत्य०)] दे० 'घाती'।

घाती[1]—वि० [सं० घातिन्] [वि० स्त्री० घातिनी] १. वध करनेवाला। मारनेवाला। घातक। संहारक। उ०—हम जड़ जीव जीवगण घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती।—तुलसी (शब्द०)।

२. नाश करनेवाला।

घाती[2]—वि० पुं० [हिं० घात=(धोखा, छल)] १. छली। विश्वासघाती। २. घात में रहनेवाला।

घातुक—वि० [सं०] १. हिंसक। नाशकारी। २. क्रूर। निष्ठुर। अनिष्टकारी।

घात्य—वि० [सं०] मारे जाने के योग्य। वध्य [को०]।

घान[1]—संज्ञा पुं० [सं० घन(=समूह)] १. उतनी वस्तु जितनी एक बार डालकर कोल्हू में पेरी जाय। जैसे,—पहले घान का तेल अच्छा नहीं होता। २. उतनी वस्तु जितनी एक बार चक्की में डालकर पीसी जाय। ३. उतनी वस्तु जितनी एक बार में पकाई या भूनी जाय। जैसे,—दो घान पूरियाँ निकालकर अलग रख दो।

मुहा०—घान उतरना=(१) कोल्हू में एक बार डाली हुई वस्तु से तेल या रस आदि निकलना। (२) कड़ाही में से पकवान का निकलना। घान उतारना=कोल्हू में से तेल, रस आदि या कड़ाही में से पकवान निकालना। घान डालना=(१) कोल्हू में पेरने या कड़ाई में एक बार में तलने के लिये कोई वस्तु डालना। (२) किसी काम में हाथ लगाना। घान पड़ना=कोल्हू में पेरने या कड़ाही में पकाने के लिये वस्तु का डाला जाना। घान पड़ जाना=किसी काम में हाथ लग जाना। किसी कार्य का आरंभ हो जाना। घान लगना=घान का कार्य आरंभ होना।

घान[2]—संज्ञा पुं० [हिं० घना=बड़ा हथौड़ा] १. प्रहार। चोट। आघात। उ०—मंद मंद उर पै अनंद ही के आँसुन की,

रसें सुबू दें मुकतान ही के दाने सी। कहै पद्माकर प्रपंची पञ्चानन न, कानन की भान पै परी त्यों घोर घाने सी।—पद्माकर (शब्द०)। २. हथौड़ा।

घाना[1]†—क्रि० स० [सं० घात, प्रा० घाय+ना (प्रत्य०)] मारना। संहार करना। नाश करना। उ०—वाग तोरि खाइ, बल आपनो जनाइ ताको एक पूतघाइ तब सिंधु पार जाइहौं।—हनुमान (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग व्रजभाषा में घायवो, घैवो आदि रूपों में ही मिलता है।

घाना[2]—क्रि० स० [हिं० गहना (=पकड़ना)] पकड़ाना।

घाना[3]—संज्ञा पुं० [हिं० घन] संहार। युद्ध। संघर्ष। उ०—मिलै फौज दोऊ उमै मेघ मावों। तहाँ खान जादौ करै घोर घानौ।—सुजान०, पृ० २१।

घाना[4]†—वि० [हिं०] दे० 'घना'। उ०—जाय पाप सुखदौहौं घाना। निस्चय वचन कबीर क माना।—कबीर बी०, पृ० २१२।

घानि—संज्ञा स्त्री० [सं० घ्राण] सुगंध। उ०—तुम घर कौल सो उपना तिहुपुर पसरी घानि।—चित्रा०, पृ० १३८।

घानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घान] १. उतनी वस्तु जितनी एक बार में चक्की में डालकर पीसी या कोल्हू में डालकर पेरी जा सके। वि० दे० 'घान'। उ०—(क) समर तैलिक यंत्र तिल तमीचर निकर, पेरि डारे सुभट घालि घानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुकृत सुमन तिल मोद वास विधि जतन यंत्र भरि घानी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि०प्र०—उतरना।—उतारना।—डालना।—पड़ना।

मुहा०—घानी करना=पेरना।

२. ढेर। समूह।

घानो की सवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मालखंभ की एक कसरत जिसमें एक हाथ में मोगरा पकड़कर मलखंभ के चारों ओर घानी या कोल्हू के बैल के समान चक्कर देते हैं।

घापट†—संज्ञा पुं० [हिं० घात] छल। धोखा। चपला। उ०—चौपट साहेब घापट कीहेन।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३।

घाम†—संज्ञा पुं० [सं० घर्म, प्रा० घम्म] धूप। सूर्यातप। उ०—घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलिपुंज। जमुना तीर तमाल तरु मिलति मालती कुंज।—विहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—निकलना।—लगना।—होना।

मुहा०—घाम खाना=(१) गरमी के लिये धूप में रहना। (२) ऐसे स्थान पर रहना जहाँ धूप या सूर्य की गरमी का प्रभाव पड़े। घाम लगना=लू लगना। घर घाम में छाना=आफत में डालना। विपत्ति में डालना। घर में घाम आना=बड़ी कठिनता का सामना होना। बड़ी मुसीबत होना। जैसे,—इस काम को करना सहज नहीं है, घर में घाम आ जायगा।

घामड़—वि० [हिं० घाम+ड़ (प्रत्य०)] १. घाम या धूप से व्याकुल (चौपाया)। धूप लग जाने के कारण हर समय हाँफनेवाला (चौपाया)। २. जिसके होश ठिकाने न हों। नासमझ। मूर्ख। जड़। गावदी। बोदा। ३. आलसी। मट्ठर।

घामनिधि—संज्ञा पुं० [सं० घर्म, प्रा० घम्म, हिं० घाम+सं० निधि] सूर्य।

घाय†—संज्ञा पुं० [सं० घात, प्रा० घाय] [वि० घायल] घाव। जख्म। उ०—जिनके घाय अघाय युवक जन भरत उसासें।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १८०।

घायक—वि० [सं० घातक] १. विनाशक। मारनेवाला। उ०—दुर्जन दल घायक श्री रघुनायक सुखदायक त्रिभुवन शासन।—केशव (शब्द०)। २. घायल करनेवाला। जिससे घाव हो जाय।

घायल[1]—वि० [हिं० घाय+ल (प्रत्य०)] जिसको घाव लगा हो। चोट खाया हुआ। चुटैल। जख्मी। आहत।

घायल[2]†—संज्ञा पुं० कनकौए के एक रंग का नाम।

घार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] छिड़कना। तर करने की क्रिया। आर्द्र करना। सिंचन [को०]।

घार[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त्त] पानी के बहाव से कटकर बना हुआ मार्ग या गड्ढा।

घारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरिक] घास फूस से छाया हुआ वह मकान जहाँ चौपाए बाँधे जाते हैं। खरका।

घाल[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० घालना] सौदे की उतनी वस्तु जितनी गाहक को तौल या गिनती के ऊपर दी जाय। घलुआ।

मुहा०—घाल न गिनना—पसंगे बराबर भी न समझना। तुच्छ समझना। हेय समझना। उ०—(क) रघुबीर बल गर्वित विभीषण घाल नहि ता कहँ गनै।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चढ़हिं कुँवर मन करें उछाहू। आगे घाल गनै नहि काहू।—जायसी (शब्द०)।

घाल[2]—संज्ञा पुं० [सं० घाल, या प्रा० √घल्ल(=फेंकना)] आघात। प्रहार।

घालक—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० घालना] [स्त्री० घालिका] १. मारनेवाला। उ०—जो प्रभु भेष धरें नहि बालक कैसें होंहि पूतना घालक।—सूर० १०।११०४। २. नाश करनेवाला। उ०—बोले वचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक।—मानस ६।५०।

घालकता—संज्ञा स्त्री० [हिं० घालक+ता (प्रत्य०)] मारने का काम। विनाश करने की क्रिया। उ०—अति कोमल कै सब बालकता। बहु दुष्कर राक्षस घालकता।—केशव (शब्द०)।

घालना†—क्रि० स० [सं० घटन, प्रा० घडन या घलन] १. किसी वस्तु के भीतर या ऊपर रखना। डालना। रखना। उ०—(क) को अस हाथ सिंह मुख घालै। को यह बात पिता सों चालै।—जायसी (शब्द०)। (ख) सो भुजबल राख्यो उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली।—तुलसी (शब्द०)। (ग) स्यंदन घालि तुरत गृह आना।—तुलसी (शब्द०)। २. फेंकना। चलाना। छोड़ना। उ०—(क) जिन नैनन बसत हैं रसनिधि मोहनलाल। तिनमें क्यों घालत अरी तैं भरि मूठ गुलाल।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) पहिल घाव घालौ तुम आछे। हिये होंस रहि जैहे पाछे।—लाल (शब्द०)। ३. कर डालना। उ०—केहि के बल घालेसि बन खीसा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पूर्वी हिंदी (प्रांतिक) में 'घालना' क्रिया का प्रयोग 'डालना' के समान संयो० क्रि० के रूप में भी होता है। जैसे, 'कद घालेसि'।

४. बिगाड़ना। नाश करना। जैसे, घर घालना। उ०—चित्र केतु कर घर इन घाला।—तुलसी (शब्द०)। ५. मार डालना। वध करना। ६. दे० 'नाखना', 'नंखना'।

घालमेल—संज्ञा पुं० [हिं० घालना+मेल] कई भिन्न प्रकार की वस्तु की एक साथ मिलावट। गड्डबड्ड। २. मेल जोल। घनिष्ठता।

क्रि० प्र०— करना।—रखना।—बढ़ाना।

घालिका—वि०, संज्ञा स्त्री० [हिं० घालक] नष्ट करनेवाली। विनाश करनेवाली।

घालिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घालना] नाश करनेवाली। मार डालनेवाली।

घाव—संज्ञा पुं० [सं० घात, प्रा० घाअ, घाय] शरीर पर का वह स्थान जो कट या चिर गया हो। क्षत। जख्म। चोट। २. आघात। प्रहार।

मुहा०—घाव खाना=जख्मी होना। घायल होना। घाव पर नमक या नोन छिड़कना=दुख के समय और दुःख देना। शोक पर और शोक उत्पन्न करना। घाव देना=दुःख पहुँचाना। शोक में डालना। घाव पूजना या भरना=घाव का अच्छा होना।

घावपत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० घाव+पत्ता] ओषधि कार्य में प्रयुक्त होनेवाली एक प्रकार की लता।

विशेष—इसके पत्ते पान के आकार के, प्रायः एक बालिश्त लंबे और ८-१० अंगुल चौड़े होते हैं और नीचे की ओर कुछ सफेदी लिए होते हैं। यह घावों पर उनको सुखाने और फोड़ों पर उनको बहाने के लिये बाँधा जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि यदि यह सीधा बाँधा जाय तो कच्चा फोड़ा पककर फूट जाता है; और यदि उलटा बाँधा जाय तो बहता हुआ फोड़ा सूख जाता है। मालवा में इसे 'तांबेसर' कहते हैं।

घावर†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घाव'। उ०—(क) कोलो साल न छाड़ै रे सब घावर काढ़ै रे।—दादू० बानी, पृ० ६०६। (ख) देह कौं कृपान लगे देह ही कौं घावरौ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५८५।

घावरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जो बहुत ऊँचा और सुंदर होता है।

विशेष—इसकी छाल चिकनी और सफेद होती है और हीर की लकड़ी बहुत चमकीली तथा दृढ़ होती है। यह पेड़ हिमालय पर ३००० फुट की ऊँचाई पर होता है। इसकी लकड़ी नाव, जहाज तथा खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी पत्तियों से चमड़ा सिझाया और कमाया जाता है।

घावरिया(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० घाव+वरिया] (वाला) हिं० घावर+इया (प्रत्य०)] घावों की चिकित्सा करनेवाला। सतिया। जर्राह। उ०—तब चाल्यो लै लाठी कर में। पहुँच्यो घावरिया के घर में। ताहि कह्यो फोहा अस दीजै। घाव पाँव को तुरत भरीजै।—निश्चल (शब्द०)।

घावेस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० घाव+सं० ईश] आघात करनेवाला। वध करनेवाला। मारनेवाला। उ०—गुणरा गहर गुरडरा गामीं घण नामा मुररा घावेस।—रघु० रू०, पृ० १४८।

घास¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ आहार। खाद्यपदार्थ। २. चारा। तृण।

यौ०—घासकुंद, घासस्था=चरागाह। घासकूट=पुआल की गाँज। तृणस्तूप।

घास²—संज्ञा स्त्री० [सं० घासि] १. पृथ्वी पर उगनेवाले छोटे छोटे उद्भिद् जिन्हें चौपाए चरते हैं। तृण। चारा।

क्रि० प्र०—काटना।—चरना।—छीलना।

यौ०—घास पात=(१) तृण और वनस्पति। (२) खर पतवार। कूड़ा करकट। घास फूस=(१) कूड़ा करकट। खर पतवार। (२) बेकाम चीज।

मुहा०—घास काटना या खोदना=(१) तुच्छ काम करना। छोटा और सहज काम करना। (२) व्यर्थ काम करना। निरर्थक प्रयत्न करना। उ०—तुम सों प्रेमकथा को कहिबो मनो काटिबो घास।—सूर (शब्द०)। (३) किसी काम को बेपरवाही से जल्दी जल्दी करना। घास खाना=पशु बनना। पशु के समान हो जाना। घास छीलना=(१) खुरपे से घास को जड़ के पास से काटना। (२) दे० 'घास काटना'।

२. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। ३. कागज पन्नी आदि के महीन कटे हुए टुकड़े जो ताजिए या और किसी वस्तु पर सजावट के लिये चिपकाए जाते हैं।

घासलेट—संज्ञा पुं० [अं० गैस लाइट] १. मिट्टी का तेल। २. अग्राह्य वस्तु।

घासलेटी—वि० [हिं० घासलेट+ई (प्रत्य०)] निकृष्ट। अश्लील। गंदा।

यौ०—घासलेटी साहित्य।

घासि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अग्नि। २. घास [को०]।

घासी†—संज्ञा स्त्री० [सं० घासि] घास। चारा। तृण। उ०—चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी।—तुलसी (शब्द०)।

घाह¹(पु)† संज्ञा पुं० [सं० गभस्ति(=उँगली)] उँगलियों के बीच की संधि। गावा। घाई। उ०—धारैं बान, कूल धनु भूषण जलकर, भँवर सुभंग सब घाहैं।—तुलसी (शब्द०)।

घाह²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० घा (=ओर)] दिशा। ओर।

घिघेव(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० घींचना] खींचतान। उ०—गा घिघेव यह जीउ हमारा। बंद तोहार बंद मो डारा।—इंद्रा०, पृ० ८६।

घिअ†—संज्ञा पुं० [सं० घृत, प्रा० घिअ] दे० 'घी'।

घिऑड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० घृतभाण्ड या हिं० घी+हंडा] घी रखने का मिट्टी का बरतन। घृतपात्र। अमृतबान।

घिआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घिया'।

घिउ†—संज्ञा पुं० [सं० घृत] दे० 'घी'।

घिग्गी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'घिग्घी'। उ०—जिस समय मुझसे कोई धमका कर पूछता है उस समय डर के मारे मेरी घिग्गी बँध जाती है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६५।

घिग्घी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. साँस लेने में वह रुकावट जो रोते रोते पड़ने लगती है। हिचकी। सुबकी। २. डर के मारे मुँह से स्पष्ट शब्द न निकलना। बोलने में रुकावट जो भय के मारे पड़ती है।

मुहा०— घिग्घी बँधना=(१) रोते रोते साँस का रुक रुककर निकालना और स्पष्ट शब्द मुँह से बाहर न होना। हिचकी बँधना। (२) डर के मारे मुँह से साफ बोली न निकलना।

घिघियाना—क्रि० अ० [हिं० घिग्घी] १. रो रोकर विनती करना। करुण स्वर से प्रार्थना करना। गिड़गिड़ाना। उ०—एक आध बार कैसे भी मगर घिघिया पुतिया कर बेदाग निकल गए।—मान०, भा० ५ ५ पृ० १५८। † २. चिल्लाना।

घिचपिच[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु० या सं० घृष्ट पिष्ट] १. स्थान की संकीर्णता। जगह की तंगी। सँकरापन। २. थोड़े स्थान में बहुत से व्यक्तियों या वस्तुओं का समूह। ३. किसी काम को करने के समय आगा पीछा करना।

घिचपिच[2]—वि० जो साफ न हो। अस्पष्ट। जैसे,—बड़ी घिचपिच लिखावट है, साफ पढ़ी नहीं जाती।

घिचपिचाना—क्रि० अ० [हिं० घिचपिच] इधर उधर करना। आगापीछा करना। हिचकिचाना।

घिन—संज्ञा स्त्री० [सं० घृणा अथवा घृणि (=अप्रिय)] [क्रि० घिनाना। वि० घिनौना] १. चित्त की वह खिन्नता जो किसी बुरी या कुत्सित वस्तु को देख या सुन कर उत्पन्न होती है। अरुचि। नफरत। घृणा। २. किसी गंदी चीज को देख सुन कर जी मचलाने की सी अवस्था। जी बिगड़ना।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

मुहा०—घिन खाना=घृणा करना। नफरत करना।

घिनाना—क्रि० अ० [हिं० घिन से नामिक धातु] घृणा करना। नफरत करना। उ०—ज्ञान गहीरिन सों रुचि माने अहीरिन सों घनश्याम घिनाने।—रसकुसुमाकर (शब्द०)।

घिनावना—वि० [हिं० घिन+आवना (प्रत्य०)] स्त्री० घिनावनी] जिसे देखकर घिन लगे। घृणित। बुरा। गंदा। घिनौना।

घिनौची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घिड़ौंची'।

घिनौना†—वि० [हिं० घिन+औना > आवना (प्रत्य०)] दे० 'घिनावना'। उ०—जो सुनने में आनंद लाने के स्थान पर अत्यंत विरुद्ध और घिनौने वरंच कभी कभी भयावने भी प्रतीत होते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६२।

घिनौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिन] ग्वालिन नाम का कीड़ा।

घिन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'घिरनी'। २. दे० 'गिन्नी'।

घियां—संज्ञा पुं० [सं० घृत, प्रा० घिय] दे० 'घी'।

घियरा㉯†—संज्ञा पुं० [हिं० घिय+रा (प्रत्य०)] दे० 'घी'। उ०—अँसुवनि जल सों अधिक जगति जोति परेखनि होत मनौ घियरा।—घनानंद, पृ० ४१८।

घिया[1]㉯†—संज्ञा पुं० [हिं० घिय] घृत। घी। उ०—चाँद सुरुज दोऊ बने अहीरा, घोर दहिया घिया काढ़ा हो।—कबीर सा० सं०, पृ० ५०।

घिया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० घी] १. एक प्रकार की बेल जिसके फलों की तरकारी होती है।

विशेष —इसके पत्ते कुम्हड़े की तरह के गोल गोल और फूल सफेद रंग के होते हैं। घिया दो प्रकार का होता है—एक लंबे फल का और दूसरा गोल फल का, जिसे कद्दू कहते हैं। इसकी एक जाति कड़ुई भी होती है जिसे तितलौकी कहते हैं। घिया बहुत मुलायम होता है तथा गुण में शीतल और रोगी के लिये पथ्य माना जाता है। इसके बीज का तेल (कद्दू का तेल) सिर का दर्द दूर करने के लिये लगाया जाता है। इसे लौकी या लौआ भी कहते हैं।

२. घियातोरी। नेनुआँ।

घियाकश—संज्ञा पुं० [हिं० घिया+फा० कश] चौकी के आकार की एक वस्तु जिसमें उभड़े हुए छेद घिया, कद्दू, पेठे आदि को बारीक छीलने के लिये बने रहते हैं। कद्दूकश।

घियातरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिया+तरोई] दे० 'घियातोरी'।

घियातोरई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] 'घियातोरी'।

घियातोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिया+तोरी] एक प्रकार की बेल जिसके लंबे लंबे फलों की तरकारी होती है।

विशेष—इसके पत्ते गोल और फूल पीले रंग के होते हैं। फल लंबाई में ८—१० अंगुल और मोटाई में दो ढाई अंगुल होते हैं। पूरब में इसे नेनुआँ कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं। एक साधारण, जिसके फल लंबे और बड़े होते हैं; और दूसरा सतपुतिया जो धौद में फलती और छोटे फलोंवाली होती है।

घियापत्थर†—संज्ञा पुं० [घृतप्रस्तर] एक प्रकार का मुलायम और पिघलने वाला पत्थर। उ०—घिया पत्थर (एस्टीटाइट) से मुहरे और मूर्तियाँ बनाते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १६।

घिरत㉯†—संज्ञा पुं० [सं० घृत] दे० 'घृत'। उ०—(क) घेरत अति घिरत चभोरे। लै खाँड़ सरस बोरे।—सूर०, १०।१८३। (ख) साह की बातें सुणें त्यों त्यों उमंग प्रकासै। घिरत का कुंभ सींचै होम ज्यों उजासै।—रा० रू०, पृ० ११६।

घिरन—संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] गले से एँड़ी तक का लंबा चोंगा। उ०—उनके शरीर पर घिरन क्या सिर की टोपी के लिये ही कपड़ा नहीं था।—फूलो०, पृ० ८१।

घिरनई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घरनई'।

घिरना—क्रि० अ० [सं० ग्रहण] १. किसी चारों ओर फैली हुई वस्तु के बीच में पड़ना। किसी वस्तु से चारों ओर व्याप्त होना। सब ओर से छेंका जाना। आवृत होना। आवेष्टित होना। घेरे में आना। जैसे,—वह चारों ओर शत्रुओं से घिर गया। २. चारों ओर छाना। चारों ओर इकट्ठा होना। जैसे,—घटा घिरना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग घटा और बादल के ही साथ प्राप्त होता है।

घिरनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घरनई'।

घिरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० घूर्णन] १. गराड़ी। चरखी। २. चक्कर। फेरा।

मुहा०—घिरनी खाना=चक्कर लगाना। चारों ओर फिरना। ३. रस्सी बटने की चरखी। ४. दे० 'गिन्नी'। ५. एक जलपक्षी जो जल के ऊपर फड़फड़ाता रहता है और मछली देखते ही चट से टूट पड़ता है। कौड़ियाला। किलकिला। ६. लोटन कबूतर।

घिरवाना—क्रि० स० [हिं० घेरना] किसी से घेरने का काम कराना। २. एक जगह इकट्ठा कराना।

घिराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घेरना] १. घेरने की क्रिया या भाव। २. पशुओं को चराने का काम। ३. पशुओं को चराने की उजरत या मजदूरी।

घिरायँद—संज्ञा पुं० [सं० क्षार, हिं० खार, खरायँद] मूत्र की दुर्गंध।

घिराव—संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] १. घेरने या घिरने की क्रिया या भाव। २. घेरा। ३. किसी मिल आदि पर सार्वजनिक या सरकारी अधिकार या नियंत्रण करने के लिये छोटे कर्मचारियों और मजदूर वर्ग द्वारा घेरा डालने का आंदोलन। घेराव।

घिरावदार—वि० [हिं० घिराव+फा० दार] घेरेवाला। घेरादार।

घिरित(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० घृत] घृत। घी। उ०—अपने हाथ देव नहवावा। कलस सहस इक घिरित भरावा।—जायसी (शब्द०)।

घिरिनपरेवा†—संज्ञा पुं० [हिं० घिरनी (=चक्कर)+परेवा] १. गिरहबाज कबूतर। २.कौड़ियाला पक्षी जो मछली के लिये पानी के ऊपर मँडराता रहता है। उ०—(क) कहँ वह भौंर कँवल रस लेवा। आइ परै होइ घिरिन परेवा।—जायसी (शब्द०)। (ख) घिरिनपरेवा गीउ उठावा। चहै बोल तमचूर सुनावा।—जायसी (शब्द०)।

घिरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिरना] १. मनुष्यों का घेरा जो शिकार को घेरने के लिये बनाया जाय।

मुहा०—घिरिया में घिरना=असमंजस या कठिनता में पड़ना। ऐसी अवस्था में पड़ना जिसमें निस्तार कठिन हो। ‡ २. दे० 'घरिया'।

घिरौंची संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घड़ौंची'।

घिरौना‡ - संज्ञा पुं० [देश०] कूड़ा जमा करने का घेरेदार बड़ा पात्र। उ०—कूड़े डालने के निमित्त जो ऊँचे ऊँचे वर्तन (घिरौने) मिलते हैं, वे उस स्थान के लोगों की स्वच्छता तथा सौंदर्यप्रियता के द्योतक हैं।—आर्य० भा०, पृ० ४४।

घिरौरा†—संज्ञा पुं० [देश०] घूस का बिल। उ०—माछी कहै अपनो घर माछरू मूसो कहै अपनो घर ऐसो। कोने घुसी कहै घूस घिरौरा, बिलारि औ व्याल बिले मुँह वैसो।—केशव (शब्द०)।

घिराना†—क्रि० स० [अनु० घर्र] रगड़ना। घिसना।

घिर्त†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घृत] दे०'घृत'। उ०—घर का घिर्त रेत में डारै छाछ ढूँढ़ता डोलै।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० २४।

घिर्राना†—क्रि० स० [अनु० घिर घिर] १. घसीटना (पू० हिं०)। २. घिघियाना। गिड़गिड़ाना (बुंदेल०)।

घिर्री—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की घास। २. दे० 'घिरनी'। ३. दे० 'गिन्नी'।

घिलवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घलुआ'। उ०—मैंने फिर देखा नौकर ने उसकी झोली में अन्न दिया, और घिलवे में सूखे गालों पर दिया, एक पूरा चाँटा।—मानव०, पृ० ९४।

घिव‡—संज्ञा पुं० [सं० घृत] दे० 'घी'।

घिवहा‡- वि० [हिं० घिव+हा (प्रत्य०)] १. घी का बना हुआ। २. घी से संबंधित।

घिसकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'खसकना'।

घिसघिस—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिसना] १. वह देर जो सुस्ती के कारण हो। कार्य में शिथिलता। अनुचित विलंब। अतत्परता। जैसे,—इसी तुम्हारी घिसघिस में बारह बज गए। २. कोई बात स्थिर करने में व्यर्थ का विलंब। अनिश्चय। गड़बड़ी।

घिसटना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घसिटना'।

घिसन† संज्ञा स्त्री० [हिं० घिसना] १. रगड़। २. घिसने के कारण होनेवाली कमी या छीज।

घिसना¹—क्रि० स० [सं० घर्षण, प्रा० घसण] १. एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर रखकर खूब दबाते हुए इधर उधर फिराना। रगड़ना। जैसे,—इसको पत्थर पर घिस दो, तो चिकना हो जायगा।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—घिस घिस कर चलना=बहुत दिनों तक खूब काम में लाया जाना और चलना।

२.किसी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस प्रकार रगड़ना कि उसका कुछ अंश छूटकर अलग हो जाय। जैसे,—चंदन घिसना।

मुहा०—घिस लगाने को नहीं=घिसकर तिलक या अंजन लगाने भर को भी नहीं। लेशमात्र नहीं।

३. संभोग करना (बाजारू)।

घिसना²—क्रि० अ० रगड़ खाकर कम होना या छीजना। जैसे,—जूते की एँड़ी चलते चलते घिस गई।

संयो० क्रि०—जाना। उठना।

घिसपिस†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. दे० 'घिस घिस'। २. सट्टा बट्टा। मेल जोल।

घिसवाना—क्रि० स० [हिं० घिसना का प्रे० रूप] घिसने का काम कराना। रगड़वाना।

घिसा—वि० [हिं० घिसना] १. घिसा हुआ। रगड़ा हुआ। २. पुराना। जीर्ण।

घिसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिसना] १. घिसने की क्रिया। २. घिसने की मजदूरी। ३. घिसने का भाव।

घिसाना—क्रि० स० [हिं० घिसना का प्रे० रूप] रगड़ना।

घिसान—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिसना] १. रगड़। घिसन। २. कमी। छीजन।

घिसावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० घिसना] १. रगड़। घिसना। २. घिसने की मजदूरी। घिसाई।

घिसिआना†, घिसियाना—क्रि० स० [सं० घर्षण] घसीटना।

घिसिरपिसिर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घिसपिस'।

घिसोहर—वि॰ [हिं॰ घिस+ओहर (प्रत्य॰)] जमीन को स्पर्श करनेवाला (वस्त्र)। उ॰—वह इतना लंबा और घिसोहर है।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ २६८।

घिस्टपिस्ट—संज्ञा पुं॰ [सं॰ घृष्ट पिष्ट] १. गहरा मेल जोल। प्रगाढ़ मित्रता। गहरी घनिष्ठता। २. अनुचित संबंध। अपवित्र संबंध।

घिस्समघिस्सा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ घिसना] १. गहरा धक्का। खूब भीड़ भाड़। २. लड़कों का एक खेल जिसमें एक अपनी डोरी या नख को दूसरे की नख या डोरी में फँसाकर झटका देता या रगड़ता है जिसमें दूसरे की डोरी कट जाय।

घिस्सा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ घिसना] रगड़ा। जैसे,—घिस्सा लगते ही कनकौआ कट गया।

क्रि॰ प्र॰—पड़ना।—बैठना।—लगना।

२. धक्का। ठोकर। ३. वह आघात जो पहलवान अपनी कुहनी और कलाई के बीच की हड्डी की रगड़ से देते हैं। कुंदा। रद्दा। ४. लड़कों का एक खेल जिसमें एक अपनी नख या डोरी की रगड़ से दूसरे की नख या डोरी को काटने का यत्न करता है।

घींच†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ घीचना या सं॰ ग्रीव] गरदन। ग्रीवा। उ॰—घींच मैं मीच न नीचहिं सूझत मोह की कीच फँस्यो है।—ठाकुर॰, पृ॰ १२।

घींचना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ कर्षण, हिं॰ खींचना] खींचना। ऐंचना।

घींचाघींची—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ घींचना] दे॰ 'खींचतान'। उ॰—एक हाड दुइ कुत्ता लागे घींचाघींचीं करते।—सं॰ दरिया, पृ॰ १३४।

घी—संज्ञा पुं॰ [पुं॰ घृत, प्रा॰ घीअ] दूध का चिकना सार जिसमें से जल का अंश तपाकर निकाल दिया गया हो। तपाया हुआ मक्खन। घृत।

मुहा॰—**घी कड़कड़ाना**=साफ और सोंधा करने के लिये घी को तपाना। **घी का कुप्पा लुंढ़ना या लुढ़काना**=(१) किसी बहुत बड़े धनी का मर जाना। किसी बड़े आदमी की मृत्यु होना। (२) भारी हानि होना। बहुत नुकसान होना। **घी के कुप्पे से जा लगना**=किसी ऐसे स्थान तक पहुंच जाना जहाँ खूब प्राप्ति हो। किसी ऐसे धनी तक पहुंच होना जहाँ खूब माल मिले। **घी के चीराग जलाना**=दे॰ 'घी के दीए जलना'। उ॰—यह कहो कि आज ठाकुर साहब घी के चिराग जलाएँगे। फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ १९६। **घी का डोर**=घी की धार जो दाल आदि में डालते समय बँध जाती है। **घी का डोरा डालना**=किसी के भोजन में तपाया हुआ घी डालना। **घी के जलना**=दे॰ 'घी के दीए जलना'। **घी के दीए जलना**=(१) कामना पूरी होना। मनोरथ सफल होना। (२) आनंद मंगल होना। उत्सव होना। (३) सुख सौभाग्य की दशा होना। धन धान्य की पूर्णता होना। समृद्धि होना। ऐश्वर्य होना। **घी के दिए जलाना**=(१) आनंद मंगल मनाना। उत्सव मनाना। २. सुख संपत्ति का भोग करना। बड़े सुख चैन से रहना। **घी के दिए (दीप) भरना**=(१) आनंद मंगल मनाना। उत्सव मनाना। उ॰—नृप गहे ऋषिराज के पाय कह्यो अब दीप भरो सब घी के।—हनुमान (शब्द॰)। (२) सुख संपत्ति का भोग करना। बड़े सुख चैन से रहना। **घी खिचड़ी**=खूब मिला जुला। **घी खिचड़ी होना**=खूब मिल जुल जाना। अभिन्न हृदय होना। (**किसी की) पाँचों उँगलियाँ घी में होना**=खूब आराम चैन का मौका मिलना। सुख भोग का अवसर मिलना। खूब लाभ होना। **घी गुड़ देना**=अच्छी खातिर करना। उ॰—आगत का स्वागत समुचित है, पर क्या आँसू लेकर ? प्रिय होते तो ले लेती उसको मैं घी गुड़ देकर।—साकेत पृ॰ २८२।

घीउ, घींऊ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ घृत] दे॰ 'घी'।

घीकुआर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ घृतकुमारी] एक प्रसिद्ध क्षुप जो खारी रेतीली जमीन पर अथवा नदियों के किनारे अधिकता से होता है।

विशेष—इसके पत्ते ३-४ अंगुल चौड़े, हाथ डेढ़ हाथ लंबे, दोनों किनारों पर अनीदार, बहुत मोटे और गूदेदार होते हैं जिनके अंदर हरे रंग का और लसीला गूदा होता है। यह गूदा बहुत पुष्टिकारक समझा जाता है और कई रोगों में व्यवहृत होता है। एलुआ इसी के रस से बनाया जाता है। वैद्यक में यह शीतल, कड़ुआ, कफनाशक और पित्त, खाँसी, विष, श्वास तथा कुष्ठ आदि को दूर करनेवाला माना गया है। पत्तों के बीच से एक मोटा डंडा या मूसला निकलता है जो मधुर और कृमि तथा पित्त नाशक कहा गया है। इसी डंडे में लाल फूल निकलता है जो भारी होता है और वात, पित्त तथा कृमि का नाशक बतलाया गया है।

घीकुवाँर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ घृतकुमारी] ग्वारपाठा। गोंडपट्ठा।

घीपकⓅ†—वि॰ [सं॰ घृतपक्व] घी में पका हुआ। घी से निर्मित। उ॰—घीपक जलपक जेते गने। कटुआ बटुवा ते सब गने। चित्रा॰, पृ॰ १०३।

घीवⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ घृत] दे॰ 'घी' उ॰—दूध के बीच में घीव जैसे, ऐसे फूल के बीच में बास है जो—कबीर॰ रे॰, पृ॰ २७।

घीसⓅ—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक बड़ा चूहा। घूस। उ॰—बैठि सिंघ बट पान लगावहि घीस गल्योरे लावे।—कबीर ग्रं॰, पृ॰ ३०७।

घीसना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ घिसना] १. रगड़ना। २. घसीटना।

घीसाⓅ†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ घिसना] घिसने या रगड़ने की क्रिया। रगड़। माँजा। उ॰—घरिका लाइ करै तन घीसू। नियर न होइ करै इबलीसू।—जायसी (शब्द॰)।

घुंघट, घुंघटुⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ घूँघट] दे॰ 'घूँघट'। उ॰—(क) इक करन पलटि इक करन लंत। घुंघट्ट वदल लज्जा सुमंत।—पृ॰ रा॰ १४। २८। (ख) जब नानक मुख ते बोला। तब कौलै ने घुंघट खोला।—प्रा॰ण॰, पृ॰ ११९।

घुंट—संज्ञा पुं॰ [सं॰ घुण्ट] गुल्फ। टखना [को॰]।

घुंटक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ घुण्टक] [स्त्री॰ घुंटिका] दे॰ 'घुंट'।

घुंटिक—संज्ञा पुं० [सं० घुण्टिक] [स्त्री० घुंटिका] कंडा [को०]।

घुंटित(पु)—वि० [हिं० घोंटना] घोंटा हुआ। चिकना। उ०—पट्टिय घुंटित मेन तिमिर कज्जल छवि छीनिय। भुअं जुग गोस धनुष्प वदन राका रुचि भीनिय।—पृ० रा०, १४।७४।

घुंड—संज्ञा पुं० [सं० घुण्ड] भ्रमर। भौंरा [को०]।

घुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि] १. कपड़े की सिली हुई मटर के आकार की छोटी गोली जिसे अँगरखे या कुरते आदि का पल्ला बंद करने के लिये टाँकते हैं। कपड़े का गोल बटन। गोपक।

मुहा०—घुंडी लगाना=(१) घुंडी टाँकना। (२) घुंडी में तुकमे से अँगरखे आदि का पल्ला अटकाना। **जी की घुंडी खोलना**=हृदय की गाँठ खोलना। चित्त से दुर्भाव या द्वेष निकालना। **दिल की घुंडी खोलना(पु)**=दे० 'जी की घुंडी खोलना'। उ०—प्रान पपीहौं दे आनंद घन दिल की घुंडी खोल।—घनानंद पृ० ४२१।

२. हाथ या पैर में पहनने के कड़े के दोनों छोरों पर की गाँठ जो कई आकार की बनाई जाती है। ३. बाजू, जोशन, आदि गहनों में लगी हुई धातु की गोल गाँठ जिसे सूत के घर में डालकर गहनों को कसते हैं। यह घुंडी प्रायः लटकती रहती है। ४. एक प्रकार की घास। ५. धान का अंकुर जो खेत कटने पर जड़ से फूटकर निकलता है। दोहला।

घुंडीदार[1]—वि० [हिं० घुंडी+फा० दार] जिसमें घुंडी लगी हो।

घुंडीदार[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार की सिलाई जिसमें एक टाँके के बाद दूसरा टाँका फंदा डाल कर लगाते जाते हैं।

घुंसा—संज्ञा पुं० [देश०] वह लकड़ी जिसके सहारे से जाठ उठाकर कोल्हू में डालते हैं।

घुइयाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] अरुई नाम की तरकारी।

घुँगची—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घुँघची'।

घुँघची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जा, प्रा० गुंचा] १. एक प्रकार की मोटी बेल जो प्रायः जंगलों में बड़ी बड़ी झाड़ियों के ऊपर फैली हुई पाई जाती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों की सी और खाने में कुछ मीठी होती हैं और फूल सेम के फूलों के समान होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर मटर की तरह की फलियाँ गुच्छों में लगती हैं जो जाड़े में सूखकर फट जाती हैं और जिनके अंदर के लाल लाल बीज दिखाई पड़ते हैं। ये ही बीज घुँघची या गुंजा के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका सारा अंग लाल होता है केवल मुखपर छोटा सा काला छींटा रहता है जो बहुत सुंदर लगता है। सफेद रंगकी घुँघची भी होती है, जिसके मुँह पर काला दाग नहीं होता। मुलेठी या जेठी मधु इसी घूँघची की जड़ है। वैद्यक में घुँघची कड़ई, बलकारक, केश और त्वचा को हितकारी तथा व्रण, कुष्ठ, गंज इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है। जड़ और पत्ते विषनाशक कहे जाते हैं। सफेद घुँघची वशीकरण की सामग्री मानी जाती है।

२. इस लता का बीज। उ०—कंचन घुँघची आनि तुला एकै मैं तौले।—पलटू०, पृ० ७१।

पर्या०—रक्तिका। गुंजिका। कृष्णला। काकिनी। कक्षा। कनीची। काकचिंची। कांची। सौम्या। शिखंडी। अरुणा। कांबोजी। काकशिंबी। चटकी।

घुँघनी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भिगोकर घी या तेल में तला हुआ चना, मटर या और कोई अन्न। घुघरी।

मुहा०—**घुँघनिया या घुघनी मुँह में रखकर बैठना**=चुपचाप बैठना। मौन होकर रहना।

घुँघर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घूँघर' उ०—ताही घुँघर मत गत भ्रमर भ्रमरत ऐसो। बनी है छवि बिसाल प्रेम जाल गोलक जैसो।—नंद ग्रं०, पृ० ३९६।

घुँघरारे(पु)†—वि० [हिं० घुमरना+वारे] घुघराले। घूँघरवाले। उ०—मृगमद मलय अलक घुँघरारे। उन मोहन मन हरे हमारे।—सूर (शब्द०)।

घुँघराले—वि० [हिं० घुमरना+वाले] [वि० स्त्री० घुघराली] घूमे हुए (बाल)। टेढ़े और बल खाए हुए (बाल)। छल्लेदार। घूँघरवाले। कुंचित।

घुँघरू—संज्ञा पुं० [अनु० घुन् घुन्+सं० रव या रू] १. किसी धातु की बनी हुई गोल और पोली गुरिया जिसके अंदर 'घन घन' बजने के लिये कंकड़ भर देते हैं। चौरासी। मंजीर।

मुहा०—**घुँघरू सा लदना**=शरीर में बहुत अधिक फुंसियाँ, चेचक या छाले आदि निकलना।

२. ऐसी गुरियों का बना हुआ पैर का गहना जो बच्चे या नाचने वाले पहनते हैं।

मुहा०—**घुँघरू बाँधना**=(१) नाचने में चेला करना। (२) नाचने के लिये तैयार होना।

३. गले का वह घुर घुर शब्द जो मरते समय कफ छेंकने के कारण निकलता है। घटका। घटुका।

मुहा०—**घुघरू बोलना**=घर्रा लगना। घटका लगना। मरते समय कफ छेंकना।

४. वह कोश जिसके अंदर चने का दाना रहता है। बूट के ऊपर की खोल। ५. सनई का फल जिसके अंदर बीज रहते हैं।

विशेष—सूखने पर ये सनई के फल बजते हैं जिसके कारण लड़के इन्हें खेल के लिये पाँव में बाँधते हैं। संस्कृत एवं प्राकृतिक गाथाओं में भी इसके प्रयोग मिलते हैं; यथा—'शणफल वज्जुन पयसा'।—पृ० रा०, १।

घुँघरूदार—वि० [हिं० घुँघरू+फा० दार] जिसमें घुँघरू लगे हों।

घुँघरूबंद—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुँघरू+सं० बन्ध, फा० बंद] वह वेश्या जो नाचने गाने का काम करती हो।

घुँघरू मोतिया—संज्ञा पुं० [हिं० घुँघरू+मोतिया] एक प्रकार का मोतिया बेला।

घुँघुवारे(पु)—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० घुँघुवारी] दे० 'घुँघराले'। उ०—घुँघुवारी लटैं लटकैं मुख ऊपर।—तुलसी (शब्द०)।

घुँट—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली पेड़ जिसे घोंट भी कहते हैं। इसकी छाल और फलियों से चमड़ा सिझाया जाता है।

घुँटना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घुटना'।

घुआ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घूआ'।

घुइयाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घुइयाँ'।

घुइरना—क्रि० स० [हिं० घूरना] सं० 'घूरना'।
घुइसा संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घूस'।
घुकुग्रा, घुकुवा—संज्ञा पुं० [हिं० घूग्रा] दे० 'घूका'।
घुग्घी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. तिकोना लपेटा हुग्रा कंवल ग्रादि जिसे किसान या गड़ेरिए धूप, पानी ग्रौर शीत से वचने के लिये सिर पर डालते हैं। घोंघी। खड़ग्रा। २. कपोत जाति की एक चिड़िया जिसका रंग खूब पकी ईंट की तरह का होता है। इसकी वोली कवूतर से भिन्न होती है। टुटरू। पेंड़की। पंडुक। फाख्ता।
घुग्घू—संज्ञा पुं० [सं० घूक] १. उल्लू नाम की चिड़िया। उलूक। २. मिट्टी का एक खिलौना जो फूंकने से वजता है।
घुघुग्रा—संज्ञा पुं० [हिं० घुग्घू + ग्रा (प्रत्य०)] दे० 'घुग्घू'।
घुघुग्राना—क्रि० ग्र० [हिं० घुग्घू] १. उल्लू पक्षी का वोलना। २. विल्ली का गुर्राना ३. उल्लू की तरह वोलना। ४. विल्ली की तरह गुर्राना।
घुघुनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घुँघनी'। उ०—वाँटैं घुघुनी चना मिठाई जव गृह ग्रावैं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २९।
घुघुरारे—वि० [हिं०] दे० 'घुँघराले'। उ०—फिर घुघुरारे वार फिर वह वड़ी ग्राँखें, फिर मीठी मुसकिराहट। ठेठ०, पृ० २६।
घुघुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'घुँघरू'। २. दे० 'घुँघनी'।
घुघुवाना क्रि० ग्र० [हिं० घुग्घु] दे० 'घुघुग्राना'।
घुघुवार(पु)—वि० [हिं०] दे० 'घुँघराले'। उ०—विथुरे सुथरे चीकने घने घने घुघुवार। रसिकन को जंजीर से वाला तेरे वार।—ग्रकवरी०, पृ० ५१।
घुघ्घू—संज्ञा पुं० [हिं०] उल्लू। घुग्घू। उ०—चीख उठा घुघ्घू डालों में लोगों ने पट दिए द्वार पर।—ग्राम्या, पृ० ६७।
घुटकना—क्रि० स० [हिं० घूंट + करना] १. घूंट घूंट करके पी जाना। पी जाना। पान करना। उ०—नृपसिंधुर सिंधु रसैं घुटकै। गोपाल (शब्द०)। २. निगल जाना।
घुटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुटकना] गले की वह नली जिसके द्वारा खाना पानी ग्रादि पेट में जाते हैं। घुटकने की नली।
घुटन—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुटना] १. दम घुटने की सी स्थिति या भाव। २. मन में घवराहट होने की स्थिति।
घुटना¹—संज्ञा पुं० [सं० घुटक] पाँव के मध्य का भाग या जोड़। जाँघ के नीचे ग्रौर टाँग के ऊपर का जोड़। टाँग ग्रौर जाँघ के वीच की गाँठ। जैसे,—मारूँ घुटना फूटे ग्राँख।—(कहावत)।
मुहा०—घुटना टेकना=(१) घुटनों के वल वैठना। (२) पराजित होना। पराजय होने से लज्जित होना। घुटनों चलना=वैयाँ वैयाँ चलना। घुटनों के वल चलना=दे० 'घुटनों चलना'। घुटनों में सिर देना=(१) सिर नीचा किए चिंतित या उदास होना। (२) लज्जित होना। सिर नीचा करना। घुटनों से लगकर वैठना=हर घड़ी पास रहना। घुटनों से लगा कर वैठाना=पास वैठाए रखना। दूर न जाने देना।
विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग प्रायः माता पिता वच्चों के लिये करते हैं।
घुटना²—क्रि० ग्र० [हिं० घूँटना या घोटना] १. साँस का भीतर ही दव जाना, वाहर न निकलना। रुकना। फँसना। जैसे,—वहाँ तो इतना धुग्राँ है कि दम घुटता है।
मुहा०—घुट घुटकर मरना=दम तोड़ते हुए साँसत से मरना। उ० घुट घुट के मर जाऊँ यह मरजी मेरे सैयाद की है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १०९।
२. उलझकर कड़ा पड़ जाना। फँसना। उ०—हठ न हठीली कर सकै, वहि पावस ऋतु पाइ। ग्रान गाँठ घुटि जाय त्यों मान गाँठ छुटि जाय।—विहारी (शब्द०)।
घुटना³—क्रि० ग्र० [हिं० घोटना] १. घोटा जाना। पीसा जाना। जैसे,—वहाँ रोज भाँग घुटा करती है।
मुहा०— घुटा हुग्रा=छँटा हुग्रा। चालाकी में मँजा हुग्रा। भारी चालाक।
२. रगड़ खाकर चिकना होना। रगड़ से चिकना ग्रौर चमकीला होना। जैसे,—तुम्हारी पट्टी घुट गई कि ग्रभी नहीं। ३. घनिष्ठता होना। मेलजोल होना। जैसे,—दोनों में ग्राजकल खूव घुटती है। ४. मिल जुलकर वात होना। ५. किसी काय का इसलिये वार वार होना जिसमें उसका खूव ग्रभ्यास हो जाय। ६. (सर के) वालों का पूरी तौर से मूँड़ा जाना।
घुटना⁴†—क्रि० स० [ग्रनु०; तुल० पं० घुट्टना] जोर से पकड़ना या कसना। उ०—फिरहिं दुग्रौ मन फेर घुटै कै। सातहु फेर गाँठि सो एकै।—जायसी (शब्द०)।
घुटनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुटना] दे० 'घुटना¹'।
घुटन्ना—संज्ञा पुं० [हिं० घुटना] १. घुटनों तक का पायजामा। २. पतली मोहरी का पायजामा (पंजावी)।
घुटरघुटर—संज्ञा पुं० [ग्रनु०] घर्र घर्र। रुँधे हुए गले की ग्रावाज। उ०—घुटर घुटर जव करने लागा। चेतनता सव तन का भागा। सहजो०, पृ० ३२।
घुटरनि(पु)—क्रि० वि० [हिं० घुटना] घुटनों के वल। उ०—केचित् ग्रन्न गऊ मुख खाहीं। घुटरनि परहिं ग्रकल कछु नाहीं।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६१।
घुटरूँ†—संज्ञा पुं० [सं० घुट + हिं० रू] पाँव के मध्य भाग का जोड़। घुटना।
घुटवाना—क्रि० स० [हिं० घोटना का प्रे० रूप] १. घोटने का काम कराना। २. वाल मुँड़ाना।
घुटा—वि० [हिं० घुटना] १. मुंडित। जैसे—घुटा सिर। २. चतुर। चालाक। जैसे,—घुटा ग्रादमी।
घुटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुटना] १. घोटने या रगड़ने का भाव या क्रिया। २. रगड़कर चिकना ग्रौर चमकीला वनाने का भाव या क्रिया। जैसे,—इस कपड़े पर खूव घुटाई हुई है। ३. रगड़ कर चिकना ग्रौर चमकीला करने की मजदूरी।

घुटाना—क्रि० स० [हिं० घोटना का प्रे० रूप] घोटने का काम कराना।

घुटाला—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घोटाला'।

घुटो—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घुट्टी'।

घुटुरुग्रां—संज्ञा पुं० [हिं० घुटरू] घुटनों के बल चलने की क्रिया।

घुटुरुन—क्रि० वि० [हिं०] घुटनों के बल। उ०—घुटुरुनि चलत अजिर मह विहरत मुख मंडित नवनीत। सूर० १०।९७।

घुटुरू(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घुटना[१]'।

घुटुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घुटना[१]'।

घुटे घुटाए वि० [हिं० घुटना] दे० 'घुटा'। उ०—पाँच छः आदमी एक चबूतरे पर शतरंज खेलते नजर आए मगर वह सब भी घुटे घुटाए तब तो फकीर को ताज्जुब हुआ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १४५।

घुट्टमघुट्ट—वि० [हिं० घुटना] घुटा हुआ। मुंडित। जिसके सिर के बाल मूड़ लिए गए हों। उ०—ब्रह्मचारी हौ क्योंकि वटु हौ। गृहस्थ हौ चूना रूप से संन्यासी हौ क्योंकि घुट्टमघुट्ट हौ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८५३।

घुट्टा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घोटा'।

घुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूंट] वह दवा जो छोटे बच्चों को पाचन के लिये पिलाई जाती है।

क्रि० प्र०—देना।—पिलाना।

मुहा०—घुट्टी में पड़ना=स्वभाव के अंतर्गत होना। जैसे,—झूठ बोलना तो इनकी घुट्टी में पड़ा है। उ०—बेवफाई तो तुम लोगों की घुट्टी में पड़ी है।—सैर०, पृ० ४४।

घुड़—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा] घोड़ा का लघु रूप जो यौगिक शब्दों के आरंभ में प्रयुक्त होता है। जैसे,—घुड़चढ़ा, घुड़सालआदि।

घुड़कना—क्रि० स० [सं० घुर] किसी पर क्रुद्ध होकर उसे डराने के लिये जोर से कोई बात कहना। कड़ककर बोलना। डाँटना। जैसे,—जो लड़के घुड़कने से नहीं मानते, वे मार को भी कुछ नहीं समझते।

घुड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुड़कना] १. वह बात जो क्रोध में आकर डराने के लिये जोर से कही जाय। डाँट। डपट। फटकार। २. घुड़कने की क्रिया।

यौ०—बंदरघुड़की=झूठ मूठ डर दिखाना।

घुड़चढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा+चढ़ना] १. सवार। अश्वारोही। २. एक प्रकार का स्वाँग जिसमें एक मनुष्य अपने पेट के सामने घोड़े के मुँह का और पीछे दुम आदि का आकार बनाकर जोड़ता है, जिससे वह देखने में घोड़े पर सवार जान पड़ता है। गाजी मियाँ की सवारी की नकल दिखाकर भीख माँगने के लिये प्रायः डफाली ऐसा स्वाँग बनाते हैं। इसे लिल्ली घोड़ी भी कहते हैं।

घुड़चढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+चढ़ना] १. विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा घोड़े पर चढ़कर दुलहिन के घर जाता है। २. देहाती रंडी या तवायफ जो प्रायः घोड़ों पर चढ़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है। निकृष्ट श्रेणी की गानेवाली वेश्या। ३. एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े पर रखकर चलाई जाती है। ४. दे० 'घोड़ाचोली'।

घुड़दौड़[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+दौड़] १. घोड़ों की दौड़। २. एक प्रकार का जुए का खेल जिसमें कई एक मनुष्य एक स्थान से अपने अपने घोड़े दौड़ाते हैं। जिसका घोड़ा सबसे आगे निकलकर निश्चित स्थान पर पहले पहुँच जाय, उसकी जीत समझी जाती है। ३. घोड़े दौड़ाने का स्थान या सड़क। ४. एक प्रकार की नाव जिसका अगला भाग घोड़े के मुँह के आकार का बना होता है। इसके बीच में बैठने के लिये बँगला रहता है। ५. अश्वारोही सेना की परेड या कवायद।

घुड़दौड़[२]—क्रि० वि० [हिं० घोड़ा+दौड़] बड़ी तेजी से। अति शीघ्रता से। जैसे—(क) आज घुड़दौड़ कहाँ चले जा रहे हो? (ख) घुड़दौड़ मत चलो; नहीं तो ठोकर लगेगी।

घुड़दौर[१]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घुड़दौड़[१]'।

घुड़दौर[२]†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'घुड़दौड़[२]'।

घुड़ना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० घुड़+ना] भिड़ना। डटना। उ०—जुड़ै पड़ै लड़ै मुड़ै घुड़ै अनेक जंग में।—रा० रू०, पृ० ६०।

घुड़नाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+नाल] एक प्रकार की तोप जो घोड़ों पर चलती है।

घुड़बहल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+बहल] [स्त्री० घुड़बहली] वह रथ जिसमें घोड़े जुतते हों।

घुड़मक्खी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+मक्खी] एकप्रकार की भूरे रंग की मक्खी जो घोड़ों को काटती है।

घुड़मुहाँ[१]—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा+मुँह] १. एक कल्पित मनुष्य जाति जिसका सारा धड़ मनुष्य का सा और मुँह घोड़े का सा माना जाता है। २. वह मनुष्य जिसका मुँह लंबा और बेढंगा हो। लंबे मुँहवाला मनुष्य।

घुड़मुहाँ[२]—वि० जिसका मुँह घोड़े की तरह लंबा हो।

घुड़रोज†, घुड़रोझ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घोड़रोज'।

घुड़ला—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा+ला (प्रत्य०)] १. मिट्टी या किसी धातु या मिठाई का बना हुआ घोड़े के आकार का खिलौना। २. छोटा घोड़ा। ३. कोई छोटी रस्सी या पतली जंजीर जिससे जहाजवाले अनेक काम लेते हैं और जिसे अँगरेजी में लैन यार्ड कहते हैं।

घुड़सवार—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा+सवार] अश्वारोही। घोड़सवार।

घुड़सार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घुड़साल'। उ०—सो ये दोऊ जने अपनी स्त्री लरिका लै कै वा घुड़सार में आइ रहे।—दो सौ बावन०, पृ० २४०।

घुड़साल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+शाला] घोड़ों के बाँधने का स्थान। अस्तबल। पैंड़ा। उ० घोड़ा घुड़साल वृष बैला। छूटे रथ बाज सब खेला।—संत तुरसी०, पृ० ५७।

घुड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० घोटिका, हिं० घोड़ी का अल्पा०] १. छोटी घोड़ी। २. दे० 'घोड़िया'।

घुड़िला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० घुड़+इला (प्रत्य०)] छोटा घोड़ा । उ०—साज सहित इक घुड़िला लैयो, गैया दूध अजीली जू । सुंदर सों इक हाथी लैयो हथनी संग अमोली जू ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३७ ।

घुड़कना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'घुड़कना' ।

घुण संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घुन' ।

यौ०—घुणलिपि=दे० 'घुणाक्षर' ।

घुणाक्षर–संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी कृति या रचना जो अनजान में उसी प्रकार हो जाय, जिस प्रकार घुनों के खाते खाते लकड़ी में अक्षर की तरह के बहुत से चिह्न या लकीरें बन जाती हैं ।

यौ०—घुणाक्षर न्याय=अकस्मात् किसी अनभीष्ट एवं अज्ञात कार्य का बिना प्रयत्न के हो जाना । उ०—यदि वह घुणाक्षर न्याय से किसी प्रकार अपने कर्तव्य कार्य को....।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७६ ।

विशेष—इस न्याय या उक्ति का प्रयोग ऐसे स्थलों पर करते हैं जहाँ किसी के द्वारा ऐसा आकस्मिक कार्य हो जाता है जो उसे ज्ञात या अभीष्ट न रहा हो ।

घुन—संज्ञा पुं० [सं० घुण] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो अनाज, पौधे और लकड़ी आदि में लगता है ।

विशेष—इस कीड़े की कई जातियाँ होती हैं । लकड़ी का घुन अनाज के घुन से भिन्न होता है । जिस लकड़ी या अनाज में यह लगता है, उसे अंदर ही अंदर खाते खाते खोखला कर डालता है । इस कीड़े के भी रेशम के कीड़े के समान कई रूपांतर होते हैं । यह भी पहले गंडेदार लंबे ढोले के रूप में रहता है ।

मुहा०—घुन लगना=(१) घुन का अनाज या लकड़ी को खाना । (२) अंदर ही अंदर किसी वस्तु का क्षीण होना । धीरे धीरे अप्रत्यक्ष रूप में किसी वस्तु का ह्रास होना । अंदर ही अंदर छीजना या नष्ट होना । जैसे,—शरीर में घुन लगना । रोजगार में घुन लगना । जवानी में घुन लगना । उ०—कीट मनोरथ दारु शरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ।—मानस, ७।७१ । घुन झड़ना=घुन की खाई हुई लकड़ी का चूर गिरना ।

घुनघुना—संज्ञा पुं० [अनु०] लकड़ी, पीतल इत्यादि का बना हुआ एक छोटा सा खिलौना, जिसे लड़के हाथ में लेकर बजाया करते हैं । इसका आकार गोल या लंबोतरा गोल होता है । इसमें एक ओर एक दस्ता लगा होता है, जिसे हाथ में पकड़ते हैं । झुनझुना ।

घुनना—क्रि० स० [हिं० घुन] १. घुन के द्वारा लकड़ी आदि का खाया जाना । घुन के खाने से खोखला और कमजोर हो जाना । जैसे,—लकड़ी घुनना, अनाज घुनना । २. किसी दोष के कारण किसी चीज का अंदर ही अंदर छीजना । जैसे,—शरीर घुनना । उ०—(क) दारु सरीर, कीट पहिले सुख, सुमिरि सुमिरि बासर निसि घुनिए ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४४३ । (ख) मोहन को बेनु सुनैं धुनैं सीस मन ही मन मैं । घुपैं भीरी सोच गुनैं गहि बूड़ै सोक है ।—घनानंद, पृ० २०७ ।

संयो० क्रि०—जाना ।

घुना—वि० [हिं० घुनना] १. घुना हुआ । जिसमें घुन लगा हो । २. छीजा हुआ ।

घुनाक्षरन्याय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घुणाक्षर न्याय] दे० 'घुणाक्षर न्याय' । उ०—कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक । होइ घुनाक्षर न्याय जौ पुनि प्रत्यूह अनेक ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०५ ।

घुन्ना—वि० [अनु० घुनघुनाना] [वि० स्त्री० घुन्नी] जो अपने क्रोध द्वेष आदि भावों को मन ही में रक्खे और चुपचाप उनके अनुसार कार्य करे । मन ही मन बुरा माननेवाला । चुप्पा ।

घुन्नी[१]—वि० स्त्री० [हिं० घुन्ना] अपने मन का भाव गुप्त रखनेवाली । चुप्पी (स्त्री) ।

घुन्नी[२]—संज्ञा स्त्री० चुप्पी । मौन ।

क्रि० प्र०—साधना ।

घुप—वि० [सं० कूप या अनु०] गहरा (अँधेरा) । निबिड़ (अंधकार)

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'अँधेरा' शब्द ही के साथ होता है । जैसे, अँधेरा घुप ।

घुमंड(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुमड़ना] दे० 'घुमड़' । उ०—अबिर गुलाल की घुमंड ब्रजनिधि छए हो हो होरी कहत हँसत देत तारी हैं ।—ब्रज०, ग्रं०, पृ० ३० ।

घुमंतू—वि० [हिं० घूमना] बराबर इधर उधर घूमनेवाला । उ०—जाड़ों को नीचे बिताकर अब यह घुमंतू महिषपाल हिमांचल की ऊपरी चारागाहों की ओर जा रहे थे ।—किन्नर०, पृ० ३० ।

घुमँड़ना—क्रि० अ० [हिं० घुमड़ना] दे० 'घुमड़ना' । उ०—निर्भै ह्वै कुरम नृपति पाछैं चल्यौ घुमंडि ।—सुजान०, पृ० २९ ।

घुमघुा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घुमड़' ।

घुमक्कड़—वि० [हिं० घूमना+अक्कड़ (प्रत्य०)] बहुत घूमनेवाला ।

घुमची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जा] दे० 'घुँघची' ।

घुमटी—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुंबद] दे० 'गुमटी' । उ०—घुमट पर एक के ऊपर दूसरी तीन छतरियाँ और हर्मिका है ।—शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० १८२ ।

घुमटा—संज्ञा पुं० [हिं० घूमना+टा (प्रत्य०)] सिर का चक्कर जिस में आँख के सामने अँधेरा सा जान पड़ता है और आदमी खड़ा नहीं रह सकता ।

क्रि० प्र०—आना ।

घुमड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुमड़ना] १. बरसनेवाले बादलों की घेरघार । २. छाना । घिराव । इकट्ठा होना ।

घुमड़नि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुमड़ना] दे० 'घुमड़' । उ०—घन

घुमड़नि मधि चाय सुरेस । बिनु गुन सोभित भयो सुदेस ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६० ।

घुमड़ना— क्रि० अ० [हिं० घूम+अटना] १. बादलों का घूम घूमकर इकट्ठा होना । घने मेघों का छाना । बादलों का इधर उधर घने होकर जमना । उ०—(क) घुमड़ि घुमड़ि घटा घन की घनेरी अवै गरज गई ती फेर गरजन लागी री ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) उमड़ि घुमड़ि घन बरसन लागे ।—गीत । २. इकट्ठा होना । छा जाना । उ०—देव लला गए सोवत तें मुख माहिं महा सुखमा घुमड़ी सी ।—देव । (शब्द०) ।

घमड़ाना†– क्रि० अ० [हिं०] दे० घुमड़ना' । उ०—कहीं भभूके आदि दै धूँवाँ घुमड़ाया ।—सूदन (शब्द०) ।

घुमड़ी— संज्ञा स्त्री० [हिं० घूमना] १. किसी केंद्र पर स्थिर रहकर चारों ओर फिरने की क्रिया । कुम्हार के चाक की तरह घूमने की क्रिया ।

क्रि० प्र० - लगाना । लेना ।

२. वह चक्कर जो इस प्रकार घूमने से लोगों के सिर में आता है ।

क्रि० प्र०—आना ।

३. सिर में चक्कर आने का रोग जिसमें आँख के सामने अँधेरा सा जान पड़ता है । ४. किसी वस्तु के चारों ओर फेरा लगाने की क्रिया । परिक्रमा । ५. पशुओं का एक रोग । घुमनी ।

घुमना†—वि० [हिं० घूमना] [स्त्री० घुमनी] इधर उधर बहुत फिरनेवाला । घूमनेवाला । घुमक्कड़ ।

घुमनी¹—वि० स्त्री० [हिं० घूमना] जो इधर उधर घूमती फिरे । जैसे,—मेलाघुमनी, घरघुमनी ।

घुमनी²— संज्ञा स्त्री० [हिं० घूमना] १. पशुओं का एक रोग जिसमें उनके पेट में पीड़ा होती है और वे इधर उधर चक्कर लगाकर गिर जाते हैं । इसे 'घुमड़ी' भी कहते हैं । २. दे० 'घुमड़ी' ।

घुमरना¹—क्रि० अ० [अनु० घम् घम्] १. घोर शब्द करना । ऊँचे शब्द से बजना । वि०दे० 'घुरना' । उ०—(क) पुर नर नारिन कौं सुख दीन्हौ जो जैसो फल सोइ लह्यौ । सूर धन्य जदुवंस उजागर धन्य धन्य धुनि घुमरि रह्यौ ।—सूर०, १० । ३०८० । (ख) मारे मल्ल एक नहिं उबरे । पटकत धरनि स्रवन नृप घुमरे ।—सूर०, १० । ३१०६ ।

घुमरना(पु)²—क्रि० अ० [हिं० घुमड़ना] १. दे० 'घुमड़ना' । उ०—काम क्रोध की लहर उठतु है मोह पवन झकझोरी । लोभ मोरे हिरदे घुमरतु है सागर वाट न पारी ।—धरम०, पृ० ४३ । †२. दे० 'घूमना' ।

घुमराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुमराना] इधर उधर घूमने की स्थिति । उ०—दृग भरि आए री, मैं कही री कछुक तेरी प्रीति की रीति, आना कानी में भई घुमराई में गए दिन ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५६ ।

घुमराना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घुमरना' । उ०—गरजि घुमरात मद मार गंडनि स्रवत पवन तैं वेग तिहि समय चीन्हौं ।—सूर०, १० । ३०५५ ।

घुमरी†— संज्ञा स्त्री० [हिं० घूम] १. दे० 'घुमड़ी' । उ०—घर आँगन मोहि नाहिं सुहावै, बैठत ही घुमरी सी आवै ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३७३ । २. पानी का भँवर । ३. घुमनी नाम का रोग जो चौपायों को होता है ।

घुमाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० घूमना या देश०] पंजाब में जमीन की एक नाप जो दो बीघों के बराबर होती है । उ०—आठ दस भैंसे हैं, दस बारह घुमाँ जमीन है ।—पिंजरे०, पृ० ६१ ।

घुमाऊ¹†—वि० [हिं० घूमना] १. घुमानेवाला । २. घूमनेवाला । घुमंतू ।

घुमाऊ²†—संज्ञा पुं० रास्ते का मोड़ । घुमाव ।

घुमाना¹ – क्रि० स० [घूमना] १. चक्कर देना । चारो ओर फिराना । २. इधर उधर टहलाना । सैर कराना । ३. किसी ओर प्रवृत्त करना । किसी विषय की ओर लगाना । जैसे;—उनका क्या, जिधर घुमाओ, उधर घूम जायँगे । ४. ऐंठना । मरोड़ना । जैसे,—कल घुमाना ।

घुमाना²—क्रि० अ० [हिं० घूम (=नींद)] शयन करना । सोना ।

घुमारा¹†—वि० [हिं० घूम+आरा (प्रत्य०)] घूमनेवाला । २. घूमता हुआ ।

घुमारा²(पु)—वि० [हिं० घूम(= नींद)] १ उनींदा । २. मत्त । मतवाला । ३. घेरेदार ।

घुमाव—संज्ञा पुं० [हिं० घूम+आव (प्रत्य०)] १. घूमने या घुमाने का भाव । २. फेर । चक्कर ।

यौ०—घुमावदार । घुमावफिराव ।

मुहा०—घुमावफिराव की बात=पेचीली बात । हेरफेर की बात । अस्पष्ट एवं चक्करदार बात ।

३. उतनी भूमि जितनी एक जोड़ी बैल से एक दिन में जोती जाय । ४. रास्ते का मोड़ । ५. † दे० 'घुमाँ' ।

घुमावदार—वि० [हिं० घुमाव+दार] जिसमें कुछ घुमाव फिराव हो । चक्करदार ।

घुमेर(पु) – संज्ञा पुं० [हिं० घूम (=निद्रा)+एर(प्रत्य०) [स्त्री० घुमेरी] फेर । चक्कर । बेसुधी । उ०—निगिद्यौस घुमेरनि भौंरि परचौ अभिलाप महोदधि हेरि हिरै ।—घनानंद, पृ० १३८ ।

घुम्मरना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घुमरना' । उ०—निदरि घनहिं घुम्मरहिं निसाना । निज पराइ कछु सुनिय न काना ।—तुलसी (शब्द०) ।

घुर – संज्ञा पुं० [हिं०] 'घूर' का समस्त रूप । जैसे,—घुरबिन, घुरबिनियाँ, आदि ।

घुरकना(पु)†— क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घुड़कना' । उ०—वृद्ध बाघ सम सबहि गुरेरत घुरकत सबहिन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६ ।

घुरका—संज्ञा पुं० [हिं० घुरघुराना] चौपायों की एक बीमारी ।

घुरघुर—संज्ञा पुं० [अनु०] घुरघुर शब्द जो बिल्ली, सूअर आदि के गले से तथा कफ छेंकने के कारण मनुष्य के गले से भी साँस लेते समय निकलता है ।

घुरघुरा†—संज्ञा पुं० [हिं० घुर घुर से अनु०] झींगुर नाम का कीड़ा । २. गले का एक रोग । कंठमाला ।

घुरघुराना—क्रि० अ० [अनु० घुरघुर] गले से घुर घुर शब्द निकालना।

घुरघुराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुरघुराना] घुरघुर शब्द निकालने का भाव।

घुरचा†—संज्ञा पुं० [हिं० घूरना=घूमना] कपास ओटने की चरखी। (अलमोड़ा)।

घुरड़†—संज्ञा पुं० [हिं० घुड़ (=घोड़ा)] नील गाय। उ०—घुरड़ है, रीछ है, कभी बाघ भी होता है, चीता बहुत है।—फूलो०, पृ० १४।

घुरड़ोज†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घुरड़'।

घुरण—संज्ञा पुं० [सं०] घुर घुर की ध्वनि [को०]।

घुरना¹Ⓟ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घुलना'।

घुरना²—क्रि० अ० [सं० घुर] शब्द करना। बजना। उ०—(क) अवधपुर आए दसरथ राइ। राम लषन अरु भरत सत्रुघन सोभित चारो भाइ। घुरत निसान मृदंग संख धुनि भेरि झाँझ सहनाइ। उमगे लोग नगर के निरखत अतिसुख सबहिंनि पाइ। —सूर०, ६।२६। (ख) डंकन के शोर चहुं ओर महा घोर घुरे मानो घनघोर घोरि उठे भुव ओर तें।—सूदन (शब्द०)।

घुरना³Ⓟ—क्रि० स० [हिं० घुलना (=मिलना)] भेंटना। आलिंगन करना। मिलना। उ० – (क) धाइ धुरि गई जसुमति मैया। इत हँसि दौरि घुरचौ बल भैया।—नंद० ग्रं०, पृ० २८३। (ख) छबीले दृग घुरि घुरि हँसि मुरि जात।—नागरी (शब्द०)।

घुरबिन†—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० घूर+बीनना] घूरे पर से दाना इत्यादि चुननेवाला। गली कूचों में से टूटी फूटी चीजों के टुकड़े आदि एकत्र करनेवाला।

घुरबिनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूरा+बीनना] १. घूरे पर से दाना इत्यादि बीन बीनकर एकत्र करने का काम। २. गली कूचों में से टूटी फूटी चीजों के टुकड़े चुन चुनकर एकत्र करने का काम। उ०—राम गरीबनिवाज हैं राज देत जन जानि। तुलसी मन परिहरत नहिं घुरबिनिया की बानि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८८।

घुरसालⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घुड़सार'। उ०—सुंदर घर ताजी बँधे तुरकिन की घुरसाल।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३७।

घुरहुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर+हर (प्रत्य०)] १. जंगल में पशुओं के चलने से बना हुआ तंग रास्ते का सा निशान। २. वह तंग रास्ता जिसपर केवल एक ही मनुष्य चल सके। पगडंडी।

घुराना†—क्रि० अ० [हिं० घुरना] चारों ओर छा जाना। घर जाना।

घुरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुर् घुर् की आवाज। खर्राटा [को०]।

घुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूअर का मुँह या थूथन [को०]।

घुरुहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घुरहुरी'।

घुर्घुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. घुर घुर की ध्वनि। २. शूकर या श्वान की आवाज। ३. चीलर। यमकीट [को०]।

घुर्घुरक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० घुर्घुरिका] कल कल ध्वनि या गड़गड़ाहट की ध्वनि [को०]।

घुर्मित—क्रि० वि० [सं० घूर्णित] घूमता हुआ। चक्कर खाता हुआ। उ०—पुनि उठि तेहि मारेहु हनुमंता। घुर्मित भूतल परचो तुरंता।—तुलसी (शब्द०)।

घुर्राना†—क्रि० अ० [हिं० घुर्र अनु०] दे० 'गुर्राना'।

घुर्रुवा—संज्ञा पुं० [देश०] जानवरों का एक रोग।

विशेष—यह रोग एक पशु से उड़कर दूसरे में जा व्यापता है और कठिनाई से दूर होता है। इसकी उत्पत्ति एक प्रकार के जहर से होती है जो पशुओं के रुधिर में पैदा हो जाता है। इसमें पशुओं का गला सूज आता है और ज्वर बड़े जोर से चढ़ता है।

घुलंच—संज्ञा पुं० [सं० घुलञ्च] एक प्रकार का तृणधान्य। कसेई। गवेधुक [को०]।

घुलघुलारव—संज्ञा पुं० [सं०] गुटुर गूँ शब्द करनेवाला एक प्रकार का कबूतर [को०]।

घुलना—क्रि० अ० [सं० घूर्णन, प्रा० घुलन] १. पानी, दूध आदि पतली चीजों में खूब हिल मिल जाना। किसी द्रव पदार्थ में मिश्रित हो जाना। हल होना। जैसे,—चीनी को अभी हिलाओ जिसमें पानी में घुल जाय।

संयो० क्रि०—जाना।

यौ०—घुलना मिलना।

मुहा०—घुल घुलकर बातें करना=खूब मिल जुलकर बातें करना। अभिन्नहृदय होकर बातें करना। बड़ी घनिष्ठता के साथ बातें करना। उ०—अब्बासी से और उनसे घुल घुल के बातें होने लगीं—फिसाना०, भा० ३, पृ० २८। **घुल मिलकर**=खूब मेलजोल के साथ। **नजर या आँखें घुलना**=प्रेमपूर्वक आँख से आँख मिलाना। **कलम का घुल जाना**=कलम का स्याही में रहते रहते नरम हो जाना जिससे वह खूब चले।

२. जल आदि के संयोग से किसी पदार्थ के अणुओं का अलग अलग होना। द्रवित होना। गलना। ३. पककर पिलपिला होना। नरम होना। जैसे,—खूब घुले घुले आम लाना। ४. रोग आदि से शरीर का क्षीण होना। दुर्बल होना।

मुहा०—**घुला हुआ**=बुड्ढा। वृद्ध। **घुल घुलकर काँटा होना**=बहुत दुबला हो जाना। इतना हो जाना कि शरीर हड्डियाँ दिखाई दें। **घुल घुलकर मरना**=बहुत दिनों तक कष्ट भोगकर मरना।

५. दाँव का हाथ से निकल जाना या जाता रहना। (जुआरी)। ६. (समय) बीतना। व्यतीत होना। गुजरना। जैसे,—जरा से काम में महीनों घुल गए।

घुलवाना¹—क्रि० स० [हिं० घुलाना का प्रे० रूप] १. गलवाना। द्रवित कराना। २. आँख में सुरमा लगवाना।

घुलवाना²—क्रि० स० [हिं० घोलना का प्रे० रूप] किसी द्रव पदार्थ में मिश्रित कराना। हल कराना।

घुलाना—क्रि० स० [हिं० घुलना] १. गलाना। पिघलाना। द्रवित करना। २. शरीर दुर्बल करना। शरीर क्षीण करना।

३. मुँह में रखकर धीरे धीरे गलाना। चुभलाना। ४. पकाकर पिलपिला करना। गरमी या दाब पहुँचाकर नरम करना। ५. (सुरमा या काजल) लगाना। सारना। ६. (समय) बिताना। व्यतीत करना। गुजारना। जैसे,—इस सुनार को मत दो, यह बरसों घुला देगा। ७. दाब पहुँचाकर या रगड़ के द्वारा एकदिल करना। जैसे,—पान घुलाना।

घुलावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुलना] घुलने का भाव या क्रिया।

घुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घूआ'। उ०—ज्यों सेमर सूवा साखि भुलाना। टोंट देत पुनि घुवा उड़ाना।—घट०, पृ० ३०२।

घुषित—वि० [सं०] जिसकी घोषणा की गई हो। घोषित। ध्वनित। कथित [को०]।

घुष्ट—वि० [सं०] दे० 'घुषित'।

घुष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी। शकट [को०]।

घुसड़ना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घुसना'।

घुसना—क्रि० अ० [सं० कुश (=आलिंगन करना, घेरना) अथवा घर्षण अथवा अयुकरणमूलक देश०] १. कुछ वेगपूर्वक अथवा दूसरे की इच्छा का विरोध करते हुए अंदर जाना। अंदर पैठना। प्रवेश करना।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।—पड़ना।—बैठना।—

यौ०—घुसपैठ। घुसपैठिया।

मुहा०—घुसकर बैठना—(१) छिप रहना। सामने न आना। (२) पास पास बैठना। सटकर बैठना।

२. धँसना। चुभना। गड़ना। ३. किसी काम में दखल देना। अनधिकार चर्चा या कार्य करना। जैसे—तुम क्यों हर एक काम में घुस पड़ते हो। ४. मनोनिवेश करना। किसी विषय की ओर खूब ध्यान लगाना। ५. दूर हो जाना। जाता रहना। जैसे—एक थप्पड़ लगावेंगे; सारी बदमाशी घुस जायगी।

घुसपैठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुसना+पैठना] १. पहुंच। गति। प्रवेश। रसाई २. दखल। हस्तक्षेप।

घुसपैठिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुसपैठ+इया (प्रत्य०)] वह व्यक्ति जो बिना नागरिकता प्राप्त किए शत्रु राष्ट्र में चोरी छिपे रहता हो और वहाँ की खबर अपने राज्य को देता हो। भेदिया। (अं० ईनट्रूडर)।

घुसवाना—क्रि० स० [हिं० घुसना का प्रे० रूप] घुसाने का काम कराना।

घुसाना—क्रि० स० [हिं० घुसना] १. भीतर घुसेड़ना। अंदर पैठाना। २. चुभाना। धँसाना।

संयो० क्रि०—देना।

घुसृण—संज्ञा पुं० [सं०] कुंकुम। केशर। जाफरान [को०]।

घुसेड़ना—क्रि० स० [हिं० घुस+एड़ (स्वा० प्रत्य०)] १. घुसाना। पैठाना। २. धँसाना। चुभाना।

संयो० क्रि०—देना।

घूँगची†—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जा] दे० 'घुँघची'।

घूँघट—संज्ञा पुं० [सं० गुण्ठ] १. स्त्रियों की साड़ी या चादर के किनारे का वह भाग जिसे वे लज्जावश या परदे के लिये सिर पर से नीचे बढ़ाकर मुँह पर डाले रहती हैं। वस्त्र का वह भाग जिससे कुलवधू का मुँह ढँका रहता है। उ०—भावत ना छिन भौन को बैठिवो घूँघट कीन को लाज कहाँ की।—ठाकुर०, पृ० ६।

क्रि० प्र०—खोलना।—घालना।—डालना।

मुहा०—घूँघट उठाना=(१) घूँघट को ऊपर की ओर खसकाना जिससे मुँह खुल जाय। (२) परदा दूर करना। (३) नई आई हुई वधू का सबके सामने मुँह खोलना। घूँघट उलटना=दे० 'घूँघट उठाना'। घूँघट करना=(१) घूँघट डालना। (२) लज्जा करना। शर्म करना। (३) घोड़े का पीछे की ओर गरदन मोड़ना। (सवार)। घूँघट काढ़ना=घूँघट डालना। मुँह को घूँघट से ढकना। घूँघट खाना=लड़ाई के मैदान से मुँह मोड़ना। सेना का युद्धस्थल से पीछे की ओर भागना। लड़ाई में सेना का पीठ दिखाना। घूँघट निकालना=दे० 'घूँघट काढ़ना'। घूँघट मारना=दे० 'घूँघट काढ़ना'।

२. परदे की वह दीवार जो बाहरी दरवाजे के सामने इसलिये रहती है, जिसमें चौक या आँगन बाहर से दिखाई न पड़े। गुलामगर्दिश। ओट। ३. घोड़े की आँखों पर की पट्टी। अँधेरी।

घूँघर—संज्ञा पुं० [हिं० घुमरना] बालों में पड़े हुए छल्ले या मरोड़। उ०—कुंडल मंडित गंड सुदेस। मनिमय मुकट सु घूँघर केस।—नंद ग्रं०, पृ० २६७।

यौ०—घूँघरवाले।

घूँघरवारेⓅ—वि० [हिं०] दे० 'घूँघरवाले'। उ०—मनिगन कँठला कंठ मद्धि केहरि नख सोहत। घूँघरवारे चिहुर रुचिर बानी मन मोहत।—पृ० रा०, १।७१७।

घूँघरवाले—वि० [हिं० घूँघर] टेढ़े छल्लेदार या कुंचित (केश)। झबरीले (बाल)।

घूँघरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा।

घूँघरी† संज्ञा स्त्री० [अनु० घुन+घुर] नूपुर। नेउर। घुँघरू। उ०—(क) पद पद्म की शुभ घूँघरी, मणि नील हाटक सों जरी।—केशव (शब्द०)। (ख) बिछिया अनौट बाँके घूँघरी, जराय जरी, जेहरि छबीली क्षुद्र घंटिका की जालिका।—केशव (शब्द०)।

घूँघरू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घुँघरू'। उ०—गोविंददास घूँघरू बाँधि कै श्री नवनीत प्रिय जी आगें नृत्य करें। दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २८६।

घूँघुटⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घूँघट' १। उ०—पेखि परोसी कों पिया घूँघट मैं मुसिक्याइ।—मति० ग्रं०, पृ० ४४४।

घूँचा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घूँसा'।

घूँट¹—संज्ञा पुं० [अनु० घुट घुट—गले के नीचे पानी आदि उतरने का शब्द] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का उतना अंश जितना एक बार में गले के नीचे उतारा जाय। चुसकी। जैसे,—ऊपर से दो घूँट पानी पी लो।

मुहा०—घूँट फेंकना=किसी पीने की वस्तु का बहुत थोड़ा सा अंश पीने के पहले पृथ्वी पर गिराना, जिसमें नजर न लगे या किसी देवी देवता का अंश निकल जाय। घूँट लेना=घूँट घूँट करके पीना। बहुत थोड़ा थोड़ा करके पीना। जैसे,—

घूँट मत लो, एक साँस में सब दवा पी जाओ। घूँट घूँटकर मारना—तंग करके मारना। दुःख पहुँचा पहुँचाकर मारना।

घूँट²—संज्ञा पुं० [सं० घुट] पहाड़ी टट्टुओं की एक जाति जिसे गूँठ या गुंठा भी कहते हैं।

घूँट³—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़ या झाड़ जो बंगाल को छोड़कर भारतवर्ष के बहुत से स्थानों में होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी, गहरे हरे रंग की और नीचे की ओर कुछ रोएँदार होती हैं। यह बैसाख जेठ में फूलती है और जाड़े में फलती है। इसके फल खाए नहीं जाते, पर उनकी गुठलियाँ खाने के काम में आती हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। छाल और सूखे फल चमड़ा रँगने के काम में आते हैं।

घूँटक—संज्ञा पुं० [हिं० घूँट+एक] एक घूँट। उ० तुलसी चातक माँगनो एक सबै घन दानि। देत जो भू भाजन भरत लेत जो घूँटक पानि।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०६।

घूँटना¹—क्रि० स० [हिं० घूँट] पानी या और किसी द्रव पदार्थ को गले के नीचे उतारना। पीना। उ० तजि और उपाय अनेक सखी अब तो हमको विष घूटनो है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३४।

संयो० क्रि०— जाना।—लेना।

घूँटना²Ⓟ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'घोंटना'। उ०—पवन रुखो बह्यो सबनु नाहीं कह्यौ। कंठ मानों किहूँ आन घूँट्यो।—सुजान०, पृ० १६।

घूँटा†—संज्ञा सं० [सं० घुण्टक, हिं० घुटना] टाँग और जाँघ के बीच का जोड़। घुटना। उ०— मुहु पखारि मुड़हरु भिजै सीस सजल कर छ्वाइ। मौर उचै घूँटेनु तें नारि सरोवर न्हाइ।—बिहारी (शब्द०)।

घूँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूँट] एक औषध जो स्वास्थ्यकर और पाचक होने के कारण छोटे बच्चों को नित्य पिलाई जाती है।

मुहा०—जनम घूँटी=वह घूँटी जो बच्चे को उसका पेट साफ करने के लिये जन्म के दूसरे ही दिन दी जाती है। जब तक यह घूँटी पिलाकर बच्चे का पेट साफ नहीं कर लिया जाता, तब तक उसे माता का दूध नहीं पिलाया जाता।

घूँठनⓅ—क्रि० वि० [हिं० घुटना] घुटने के बल। उ०—रज रंजित अंजित नयन घूँठन डोलत भूमि। लेत बलैया मात लखि भरि कपोल मुख चूमि।—पृ० रा०, १।७१८।

घूँस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घूस'। उ०—जाकी आस रहै मंदिर में होकर घूँस बसै सो घर में।—सहजो०, पृ० २८।

घूँसा—संज्ञा पुं० [हिं० घिस्सा या अनु०] १. बँधी हुई मुट्ठी जो मारने के लिये उठाई जाय। मुक्का। डुक। धमाका। जैसे—घूँसा तानना। २. बँधी हुई मुट्ठी का प्रहार। उ०—विटपों से भट मार, शत्रु का तोड़ दिया घूँसों से वक्ष।—साकेत, पृ० ३८८।

क्रि० प्र०—खाना।—चलाना।—जड़ना।—तानना।—मारना।—लगाना।

यौ०—घूँसेबाज। घूँसेबाजी=घूँसों की लड़ाई। मुष्टियुद्ध। (अं० बाक्सिंग)।

मुहा०— घूँसों का क्या उधार ?=मार का बदला मार से लेने में क्या देर! मारपीट का बदला तुरंत ले।

घूँसेबाज—वि० [हिं० घूँसा+फा० बाज] १. घूँसा मारनेवाला। २. घूँसेबाजी का खेल खेलनेवाला। (अं० बाक्सर)।

घूआ—संज्ञा पुं० [देश०] १. काँस, मूँज या सरकंडे आदि का रुई की तरह का फूल जो लंबे सींकों में लगता है। २. पानी के किनारे मिट्टी में रहनेवाला एक कीड़ा जिसे बुलबुल आदि पक्षी खाते हैं। रेवाँ। ३. दरवाजे में ऊपर या नीचे का वह छेद जिसमें किवाड़े की चूल अटकाई जाती है।

घूक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री घूकी] घुग्घू। उल्लू पक्षी। रुरुआ। उ०—काक कोकनद सोकहत दुखे कुवलय कुलटानि। तारा ओपधि दीप ससि घूक चोर तम हानि।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १३५।

घूकनादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा [को०]।

घूका—संज्ञा पुं० [हिं० घूआ] बाँस, बेंत, रहठे या मूँज इत्यादि का बना हुआ तंग मुँह का बर्तन या डलिया। धकुआ।

घूकारि—संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू का शत्रु कौआ [को०]।

घूगस†—संज्ञा पुं० [देश०] ऊँचा बुर्ज। गरगज।

घूघ¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोघी या फा० खोद] लोहे या पीतल की बनी टोपी जो लड़ाई में सिर को चोट से बचाने के लिये पहनी जाती है। उ०—अरुन रंग आनन छवि लीने। माथे घूघ लोह की दीने।—लाल कवि (शब्द०)।

घूघ²†- संज्ञा पुं० [सं० घूक] उल्लू।

घूघरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० घूघ+हिं घूघ+हिं र (प्रत्य०)] दे० 'घुग्घू'। उ०—घूघर जुत्थ बैठ एक ठाऊँ।—घट०, पृ० ३४१।

घूघराⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घुँघरू'। उ०—सुरति निरति का पहर घूघरा साहिब नें मिलि जाऊँ।—रा० धर्म०, पृ० ४४।

घूघस† संज्ञा पुं० [देश०] किले के भीतर जाने का मार्ग (राज०)।

घूघी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. थैली। २. जेब। खीसा। ३. घुग्घी। पंडुक। पेड़की। फाख्ता।

घूघुअⓅ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घुग्घू'। उ०—बोलि घूघुअ साद दीविय महमती सुर उप्फर्यौ।—पृ० रा० १५।६।

घूघू—संज्ञा पुं० [सं० घूक, हिं० घुग्घू] दे० 'घुग्घू'।

घूटना†— क्रि० स० [हिं० घुटना] साँस रोकना या दबाना। जैसे,—गला घूटना।

घूठन†—क्रि० वि० [देश०] दे० 'घूँठन'।

घूड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० घूरा] दे० घूरा¹'। उ०—दिन बारह वर्षों में घूड़े के भी सुने गए हैं फिरते।—साकेत, पृ० ३०७।

घूनम† संज्ञा स्त्री० [देश०] ब्याह की पगड़ी में लटकनेवाला झब्बा।

घूना†—वि० [देश०] १. चतुर। अनुभवी। खुर्राट। २. दे० 'घुन्ना'।

घूम—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूमना] १. घूमने का भाव। घुमाव। फेर। चक्कर। २. वह स्थान जहाँ से किसी ओर मुड़ना पड़े। मोड़। ३. निद्रा। उ०—प्रिय फिरो, फिरो हा! फिरो फिरो! न इस मोह की घूम से घिरो।—साकेत, पृ० ३१२।

घूमघुमारा—वि० [हिं० घूमना] १. बड़े घेरे का। घेरदार। जैसे,—

घूमघुमारा लहँगा । २. उनींदा । ३. घूर्णित । मत्त । उ०—(क) रस के माते घूमघुमारे ललचौंहे दृग हैं कजरारे ।—ब्रज० वर्णन, पृ० २२ । (ख) कृष्ण रसासव पान अलस कछु घूमघुमारें । -नंद० ग्रं०, पृ० ३ ।

घूमघुमाव—वि० [हिं० घूमना] चक्करदार ।

घूमघुमौआ—वि० [हिं० घूम+घुमाव] वक्र । टेढ़ा । चक्करदार । उ०—सड़क घूमघुमौआ थी ।—किन्नर०, पृ० ४८ ।

घूमना—क्रि० अ० [सं० घूर्णन] १. चारों ओर फिरना । चक्कर खाना । एक ही धुरी पर चारों ओर भ्रमण करना । २ सैर करना । टहलना । ३ देशांतर में भ्रमण करना । सफर करना । ४. एक वृत्त की परिधि में गमन करना । कावा काटना । मँड़राना । ५. किसी ओर को मुड़ना । जैसे,—वहाँ से वह रास्ता पश्चिम को घूम गया है । ६. वापस आना या जाना । लौटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

मुहा०—**घूम जाना**=गायब हो जाना । चंपत होना । रफूचक्कर होना । **घूम पड़ना** = (१) सहसा क्रुद्ध हो जाना । बिगड़ उठना । जैसे,—मैं तो उन्हें समझाने गया था, वे उलटे मेरे ही ऊपर घूम पड़े । (२) विपरीत हो जाना । अपने अनुकूल न रहना ।

†पु७. उन्मत्त होना । मतवाला होना । उ०—बिहँसि बुलाय विलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि । पुलकि पसीजति पूत पिय चूमो मुख चूमि ।—बिहारी (शब्द०) ।

घूमनि पु—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूमना] घूमने का भाव या स्थिति । उ०—कच लट गहि वदनन की चूमनि । नख नाराचन घायल घूमनि ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२२ ।

घूमनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूमना] सिर का चक्कर । घुमटा ।

घूमरपु†, घूमरापु—वि० [हिं० घूमना] १. मत्त । मतवाला । उ०—रूप मनवारी घन आनँद सुजान प्यारी घूमरे कटाछि धूम करै कौन पै घिर ।—घनानंद, पृ० ४१ । २. हिलने वाला । घूमनेवाला । उ०—बहुरि अनेक अगाध जु सरवर । रस झूमरे घूमरे तरवर ।—नँद० ग्रं०, पृ० २८५ ।

घूर—संज्ञा पुं० [सं० कूट, हिं० कूरा] १. वह जगह जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाय । करकट कूड़ा, कतवार आदि फेंकने या एकत्र करने का स्थान । २. कूड़े का ढेर । ३. किसी पोली चीज में उसको भारी करने के लिये भरा हुआ बालू और सुहागा आदि ।—(सोनार) ।

घूरघार—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूरना] दे० 'घूराघारी' ।

घूरनपु—वि० [सं० घूर्ण] घूर्णित । मत्त । उ०—कृस्न रसासव अनिस पान तें घूरन पूरन काम खरे ।—घनानंद, पृ० ३६२ ।

घूरनिपु—संज्ञा स्त्री० [सं० घूर्णन] घूरना । देखने की क्रिया । उ०—चुषनि चुवावनि चाटनि चूमनि । नहि कहि परति प्रेम की घूरनि ।—नंद ग्रं०, पृ० २६६ ।

घूरना—क्रि० अ० [सं० घूर्णन (=इधर उधर फिराना)] १. बार बार आँख गड़ाकर बुरे भाव से देखना । बुरी नीयत से एक टक देखना । जैसे,—स्त्री घूरना । २. क्रोधपूर्वक एकटक देखना । कुपित दृष्टि से ताकना । आँख निकालना । †३. घूमना । टहलना । (बिहार) ।

घूरा—संज्ञा पुं० [सं० कूट, हिं० कूरा] १. कूड़े करकट का ढेर । २. वह स्थान जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता हो । कतवारखाना । उ०—मल से उपजा मल लिपटा मतिमलीन तू घूरा है !—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५५४ ।

घूराघारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूरना+घारना (अनु०)] घूरने की क्रिया । उ०—तुम अपने मुल्क की तरफ से लड़ने आए हो या घूराघारी करने आए हो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १०३ ।

घूर्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घूमना । फिरना । चक्कर खाना । हिलना डुलना [को०] ।

घूर्ण[2] वि० [सं०] घूमता हुआ । चक्कर खाता हुआ । २. भ्रांत । मत्त [को०] ।

यौ०—**घूर्णवायु**=चक्करदार हवा । बवंडर । **घूर्णावर्त**=भँवर उ०—शत घूर्णावर्त तरंग भंग उठते पहाड़ ।—अनामिका, पृ० १५३ ।

घूर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० घूर्णना] १. घूमना । चक्कर खाना । २. भ्रमण । घुमाना [को०] ।

घूर्णि संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'घूर्णन' [को०] ।

घूर्णित—वि० [सं०] १. घूमता हुआ । चकराता हुआ । २. भ्रमित । उ०—कई युगों से संतत, विचलित, मेरा नैशाकाश । दिशाशून्य, उडुरहित, तमोमय घूर्णित, व्यथित, निराश ।—अपलक, पृ० ३८ ।

यौ०—**घूर्णित जल**=आवत । भँवर । **घूर्णित वायु**=ववंडर ।

घूर्नपु—वि० [सं० घूर्ण] दे० 'घूर्ण[2]' । उ०—वारुनी वस घूर्न लोचन विहरत बन सचुपाए ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २५७ ।

घूर्मिल—वि० [सं० घूर्ण, हिं० घूर्म+इल (प्रत्य०)] घूमता हुआ । घूर्मित । उ०—भीड़ से शतमोह घूर्मिल ।—अर्चना, पृ० ७३ ।

घूस[1] संज्ञा स्त्री० [सं० गुहाशय (गुहा+शय) (=चूहा)] चूहे के वर्ग का एक बड़ा जंतु जो प्रायः पृथ्वी के अंदर बड़े लंबे बिल खोदकर रहता है । एक प्रकार का बड़ा चूहा । घूँस । घुँइस ।

घूस[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्याशय (गुह्य+आशय) (गुप्त अभिप्राय से दिया हुआ धन)] वह द्रव्य जो किसी को अपने अनुकूल कोई कार्य कराने के लिये अनुचित रूप से दिया । रिशवत । उत्कोच । लाँच । जैसे—वह घूस देकर अपना काम निकालता है । उ०—कहैं करनेस अब घूस खात लाज नहीं रोजा औ निमाज अंत काम नहीं आवेंगे ।—अकबरी०, पृ० ३३ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—लेना ।

यौ०—**घूसखोर** । **घूसघास** । **घूस पच्चड़**=रिशवत ।

घूसखोर वि० [हिं० घूस+फा० खोर] घूस लेनेवाला । रिश्वती ।

घृणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [सं० घृणित] १. घिन । नफरत । २. वीभत्स रस का स्थायी भाव । ३. दया । करुणा । तरस ।

घृणालु—वि० [सं०] दयालु । करुणावाला [को०] ।

घृणावास—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्मांड । कोहँड़ा ।

घृणास्पद—वि० [सं०] घृणा करने योग्य [को०] ।

घृणि¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश की किरण। २. गर्मी। धूप। ज्वाला। ३. तरंग। लहर। ४. जल। ५. क्रोध। कोप। ६. सूर्य [को०]।

घृणि²—वि० [सं०] १. चमकीला। २. अप्रिय [को०]।

घृणिनिधि¹—संज्ञा पुं० [सं०] तरणि। सूर्य [को०]।

घृणिनिधि²—संज्ञा स्त्री० गंगा नदी [को०]।

घृणित—वि० [सं०] १. घृणा करने योग्य। २. जिसे देखकर या सुनकर घृणा पैदा हो। ३. तिरस्कृत। निंदित।

घृणी—वि० [सं० घृणिन्] १. घृणा करनेवाला। २. कृपालु। दयालु। ३ प्रकाशमान्। दीप्त [को०]।

घृण्य—वि० [सं०] दे० 'घृणित'।

घृत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. घी। तपाया हुआ मक्खन। २. मक्खन (को०)। ३. जल। ४. तेजस। शक्ति (को०)।

यौ०=घृतकरंज, घृतपर्ण, घृतपूर्णक=एक प्रकार का करंज वृक्ष। घृतकेश, घृतदीधिति, घृतप्रतीक, घृतप्रयस, घृतप्रसत्त=अग्नि।

घृत²—वि० [सं०] १. आर्द्र किया हुआ। सिंचित। तर। २. घोतित। आलोकित [को०]।

घृतकुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घीकुवार। गुआरपाठा। गोंड़पट्ठा।

घृतकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घी की कृत्रिम छोटी नदी। २. घी की धारा [को०]।

घृतकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। वह जिसकी दृष्टि स्निग्ध और सहानुभूतियुक्त हो [को०]।

घृतधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घी की धारा। २. पश्चिम देश की एक नदी। ३. पुराणानुसार कुश द्वीप की एक नदी।

घृतप—संज्ञा पुं० [सं०] १. आज्यप नाम के पितृगण। २. वह जो घृत पीए। घी पीनेवाला [को०]।

घृतपूर—संज्ञा पुं० [सं०] घेवर नामक पकवान। वि० दे० 'घेवर'।

घृतप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमेह रोग का एक प्रकार जिसमें मूत्र घी के समान गाढ़ा और चिकना होता है।

घृतमंड—संज्ञा पुं० [सं० घृत+मण्ड] घी का मैल जो मक्खन तपाने से निकलता है [को०]।

घृतमंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० घृतमण्डा] काकमाची। मकोय [को०]।

घृतयाज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घी की आहुति देते समय पढ़ा जानेवाला मंत्र [को०]।

घृतयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

घृतलेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ की बनी हुई घी निकालने की कलछी [को०]।

घृतवत्—वि० [सं०] अतिशय चिक्कण। बहुत चिकना [को०]।

घृतवर—संज्ञा पुं० [सं०] घेवर नामक मिठाई [को०]।

घृतहेतु—संज्ञा पुं० [सं०] घी का कारण या मूल। मक्खन [को०]।

घृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकमाची। मकोय [को०]।

घृताक्त—वि० [सं०] घी से तर। घी चुपड़ा हुआ [को०]।

घृताची—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वर्ग की एक अप्सरा। २ वह करछुनी जिससे यज्ञों में घी अग्नि में डाला जाता है। स्रुवा। ३. कुशनाभ नामक एक प्राचीन राजा की रानी का नाम। ४. गायत्रीस्वरूपा देवी (को०)।

यौ०—घृताचीगर्भसंभवा=बड़ी इलायची।

घृतान्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. घृतयुक्त अन्न। २. प्रज्वलित अग्नि [को०]।

घृतार्चि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रज्वलित अग्नि [को०]।

घृताहवन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

घृताहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] हवन के समय अग्नि में घी डालने की क्रिया। घी की आहुति।

घृताह्व—संज्ञा पुं० [सं०] सरल नाम का एक वृक्ष [को०]।

घृती—वि० [सं० घृतिन्] घी से युक्त। घी से तर। घृताक्त [को०]।

घृतेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा। घी का कीड़ा। तैलपायिक। तेलचट्टा [को०]।

घृतोदंक—संज्ञा पुं० [सं० घृतोदङ्क] घी रखने का कुप्पा [को०]।

घृतोद—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों में वर्णित सात महासागरों में से एक। घृतसमुद्र।

घृनी—वि० [सं० घृणिन्] दयालु।

घृष्ट—वि० [सं०] घिसा या रगड़ा हुआ [को०]।

घृष्टि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घर्षण। रगड़। २. विष्णुक्रांता। अपराजिता। ३. होड़। स्पर्द्धा [को०]।

घृष्टि²—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० घृष्टी] शूकर। सूअर [को०]।

घृष्टिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी। पिठवन [को०]।

घृष्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. शूकर। सूअर। २. घर्षण [को०]।

घेंघ—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का भोजन जो चने की बहुरी को चावलों में मिलाकर पकाने से बनता है। २. गले का एक रोग। घेघा।

घेंघा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घेघा'।

घेंट†—संज्ञा पुं० [हिं० घाँटी] गला। गरदन।

घेंटा—संज्ञा पुं० [अनु० घें घें] [स्त्री० घेंटी] सूअर का बच्चा।

घेंटी†¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] चने की फली जिसके अंदर बीज रूप से चना होता है। २. चने की फली के आकार की कोई वस्तु। ३. एक पक्षी।

घेंटी†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाँटी या सं० कृकाटिका] गले और कंधे का जोड़।

घेंटुला†—संज्ञा पुं० [हिं० घेंटा] [स्त्री० घेंटुलिया] सूअर का छोटा बच्चा।

घेंड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घी+हंडी] मिट्टी का पात्र जिसमें घी रखा जाता है। घिवहँड।

घेघा—संज्ञा पुं० [देश०] १. गले की नली जिससे भोजन या पानी पेट में जाता है। २. गले का एक रोग जिसमें गले में सूजन होकर बतौड़ा सा निकल आता है।

विशेष—यह रोग गोरखपुर, बस्ती आदि जिलों के निवासियों को बहुधा हुआ करता है।

घेड़ौंची—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घनौंची'।

घेतल- संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का भद्दा जूता जिसका पंजा चपटा और मुड़ा हुआ होता है। इसे महाराष्ट्र या दक्षिणी अधिक पहनते हैं।

घेतला—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घेतल'।

घेनौची†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घनौंची'।

घेपना†—क्रि० स० [हिं० घोपना] १.हाथ पैर से रौंदकर मिलाना। एक में लथपथ करना। २. खुरचना। छीलना। ३. स्त्री· प्रसंग करना।—(बाजारू)।

घेर—संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] १. चारों ओर का फैलाव। घेरा। परिधि। २. घेरने की क्रिया या भाव।

यौ०—घेरघार। घेरदार।

घेरघार—संज्ञा स्त्री० [हिं० घेरना] १. चारों ओर से घेरने या छा जाने की क्रिया। जैसे,—बादलों की घेरघार देखने से जान पड़ता है कि पानी बरसेगा। उ०—सब ओर सन्नाटा इस पर बादलों की घेरघार, पसारने पर हाथ भी नहीं सूझता। —ठेठ, पृ० ३२। २. चारों ओर का फैलाव। विस्तार। ३. किसी कार्य के लिये किसी के पास बार बार उपस्थित होने का कार्य। किसी के पास जाकर बार बार अनुरोध या विनय करने का कार्य। खुशामद। विनती। जैसे,—बिना घेरघार किए आजकल जगह नहीं मिलती।

घेरदार—वि० [हिं० घेर+फा० दार] बड़े घेरेवाला। बड़े घेरे का। चौड़ा। जैसे,—घेरदार पायजामा।

घेरना—क्रि० स० [सं० ग्रहण] १. चारो ओर से हो जाना। चारों ओर से छेंकना। सब ओर से आवद्ध करके मंडल या सीमा के अंदर लाना। बाँधना। जैसे,—(क) इस स्थान को टट्टियों से घेर दो। (ख) दुर्ग को खाईं चारो ओर से घेरे है। (ग) इतना अंश लकीर से घेर दो। २. चारो ओर से रोकना। आक्रांत करना। छेंकना। ग्रसना। उ०—(क) धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी।—मानस, २।५५। (ख) गैयन घेरि सखा सब जाए।—सूर (शब्द०)। (ग) बाल बिहाल वियोग की घेरी।—पद्माकर (शब्द०)। ३. गाय आदि चौपायों की चराई करना। चराने का काम अपने ऊपर लेना। चराना। ४. किसी स्थान को अपने अधिकार में रखना। स्थान छेंकना या फँसाए रखना। ५. सेना का शत्रु के किसी नगर या दुर्ग के चारों ओर आक्रमण के लिये स्थित होना। चारों ओर से अधिकार करने के लिये छेंकना। ६. किसी कार्य के लिये किसी के पास बार बार जाकर अनुरोध या विनय करना। खुशामद करना। जैसे,—हमको क्यों घेरते हो; हम इस मामले में कुछ भी नहीं कर सकते।

यौ०—घेरना घारना।

घेरा—संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] १. चारों ओर की सीमा। किसी तल के सब ओर के बाहरी किनारे। लंबाई चौड़ाई आदि का सारा विस्तार या फैलाव। परिधि। जैसे—(क) वह बगीचा दो मील के घेरे में है। (ख) उस घेरे के अंदर मत जाओ। (ग) इस अँगरखे का घेरा बहुत कम है। २. चारों ओर की सीमा की माप का जोड़। परिधि का मान। जैसे,—इस बगीचे का घेरा दो मील है। ३. वह वस्तु जो किसी स्थान के चारों ओर हो (जैसे दीवार आदि) वह जो किसी जगह को चारों ओर से घेरे हो। ४. घिरा हुआ स्थान। हाता। मंडल। जैसे,—उस घेरे के अंदर मत जाना। ५. किसी लंबे और घन पदार्थ की चौड़ाई और मोटाई का विस्तार। पेटा। जैसे,—इस धरन का घेरा ५० इंच है। ६. सेना का किसी दुर्ग या गढ़ को चारों ओर से छेंकने का काम। चारों ओर से आक्रमण। मुहासरा।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

घेराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० √घेर+आई (प्रत्य०)] दे० 'घिराई'।

घेराबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घेरा+फा बंदी] किसी के चारों ओर घेरा डालने की स्थिति या भाव।

घेराव—संज्ञा पुं० [हिं० घेर+आव (प्रत्य०) दे० 'घिराव'।

घेरुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] वह छोटा गड्ढा जो नाली आदि में पानी रोकने के लिये बनाया जाता है। झिर्री।

घेरेदार- वि० [हिं०] चारो ओर से घिरा हुआ। घेरेदार। उ०—इनके समाज में पत्थर के घेरेदार कुछ मकान भी संभवतः बनाए जाते थे।—प्रा० भा० प०, पृ० ६६।

घेलुआ‡—संज्ञा पुं० [हिं० घाम्र] दे० 'घेलौना'।

घेलौना‡—संज्ञा पुं० [हिं० घाल] थोड़े मूल्य की वस्तुओं की बिक्री में उतनी वस्तु जितनी सौदे के ऊपर दी जाती है। वह अधिक वस्तु जो ग्राहक को उचित तौल के अतिरिक्त दी जाय। घाल। घलुआ।

घेवर—संज्ञा पुं० [सं० घृतपूर, या घृतवर, प्रा० घयबर या हिं० घी+पूर] एक प्रकार की मिठाई जो पतले घुले हुए मैदे, घी और चीनी से बनाई जाती है और बड़ी टिकिया या खजले के आकार की और सूराखदार होती है। उ०—(क) सु ते बर घेवर पैसल लागि। लखै चख फेरि गई उर आगि।—पृ० रा०, ६३।७४। (ख) घेवर अति घिरत चभोरे। लै खाँड़ सरस बोरे।—सूर०, १०।१८३।

घेवरनाⓤ—क्रि० स० [सं० घृतवर] लगाना। पोतना। लेप करना। उ० (क) सेंदुर सीस चढ़ाएँ चंदन घेवरें देह।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ४६४। (ख) हिआ देखि सो चंदन घेवरा मिलि कै लिखा बिछोव।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५५।

घेसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का देवदार जो हिमालय में होता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है। बरबर।

घेंचनाⓤ†—क्रि० स० [सं० कर्षण, प्रा० खंचण] दे० 'खींचना'। उ०—उनहू कै घेंच मारि जम लाना।—दे० सागर, पृ० ४७।

घेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घेंटुला'।

घैसाहर(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] फौज। सेना। लश्कर।—(डिं०)।

घैया¹—संज्ञा पुं० [हिं० घी या सं० घात अथवा देश०] १.गाय के थन से निकली हुई दूध की धार जो मुँह लगाकर पी जाय। उ०—आई छाक अवार भई हैं नेंसुक घैया पिएउ सवरे।—सूर० १।४६३। २. ताजे और बिना मथे हुए दूध के ऊपर उतराते हुए मक्खन को काछकर इकट्ठा करने की क्रिया। उ०—(क) कजरी धौरी सेंदुरी धुमरी मेरी गैया। दुहि ल्याऊँ मैं तुरत ही तू करि दे घैया।—सूर० १०।७२५। २. किसी पेड़ या लकड़ी आदि को काटने अथवा उसमें से रस आदि निकालने के लिये शस्त्र से पहुँचाया हुआ आघात।

घैया²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाई या घा] ओर। तरफ। दिशा। उ०—सोहर शोर मनोहर नोहर माचि रह्यो चहुँ घैया।—रघुराज (शब्द०)।

घैर†(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] १. निंदामय चर्चा। बदनामी। अपयश। (गुप्त) उपहास। उ०—चलत घैर घर घर तऊ घरी न घर ठहराइ।—बिहारी (शब्द०)। २. चुगली। गुप्त शिकायत। उ०—तोहि न रुसनो योग बलाय ल्यौं घैर किये मत काहू के लागहि। रघुनाथ (शब्द०)।

घैरो†—वि० [हिं० घैर] बदनामी करनेवाला। उ०—है री वह बैरी घैरी उघरयौ बिगोवनि पै ओछौ जरि गयो गोवै महा भेद बात कों।—घनानंद, पृ० ६२।

घैरु(पु), घैरो†(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घैर'।

घैला†—संज्ञा पुं० [सं० घट] [स्त्री० अल्पा० घैली] घड़ा। कलसा। गगरा।

घैहल†—वि० [हिं० घाव, घायल या घात] जिसको घाव लगा हो। जख्मी। घायल।

घैहा†—वि० [हिं० घाव] घायल। जख्मी। चुटीला।

घोंघ—संज्ञा पुं० [सं० घोङ्घ] बीच का अंतर या अवकाश [को०]।

घोंटा, घोंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० घोराटा, घोराटी] १. उन्नाव का वृक्ष। २. कर्कंधू। बदरी वृक्ष या फल। ३. सुपारी का वृक्ष [को०]।

घोंगा†(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घोंघा'। उ०—हमरे राम नाम वस्तू है खलक लेन चहे घोंगा।—गुलाल०, पृ० २७।

घोंघा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

घोंघची(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जा देश०] दे० 'घुँघची'।

घोंघा¹—संज्ञा पुं० [अनुकरणात्मक देश०] [स्त्री० घोंघी] १. शंख की तरह का एक कीड़ा जो प्रायः नदियों, तालाबों तथा अन्य जलाशयों में पाया जाता है।

विशेष—इसकी बनावट घुमावदार होती है, पर इसका मुँह गोल होता है, जो खुल सकता और बंद हो सकता है। इसके ऊपर का अस्थिकोश शंख से बहुत पतला होता है। वैद्यक में घोंघे का मांस मधुर और पित्तनाशक माना जाता है। घोंघे का चूना भी बनता है।

पर्या०—शंबु। शंबुक। शंबुक्क।

२. गेहूँ की बाल में वह कोश या कोथली जिसमें दाना रहता है।

घोंघा²—वि० १. जिसमें कुछ सार न हो। सारहीन। २. मूर्ख। जड़। बेवकूफ। गावदी।

यौ०—घोंघा बसंत=महामूर्ख। गावदी।

घोंघी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घोंघा'। उ—हंस चुगें ना घोंघी, सिंह चरै न घास।—पलटू०, पृ० १७७। †२ दे 'घुग्घ'।

घोंचवा†—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० घोंचा+वा (स्वा० प्रत्य०)] एक प्रकार का बैल। घोघा।

घोंचा—संज्ञा सं० [हिं० गुच्छा] १. गौद। गुच्छा। घौद। स्तवक। २. वह बैल जिसके सींग मुड़कर कान से जा लगे हों।

घोंची—संज्ञा स्त्री० [हिं घोंचा] वह गाय जिसके सींग कानों की ओर मुड़े हों।

घोंचुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घोंसुआ'।

घोंचू†—वि० [देश०] मूर्ख। गदाई।

घोंट—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक जंगली वृक्ष जो बहुत बड़ा होता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और किसानी के औजार बनाने के काम में आती है। २. घूँट नामक वृक्ष।

घोंटना¹†—क्रि० स० [हिं० घूँट पूर्वी हिं० घोंट] १. घूँटघूँट करके पीना। पानी या और किसी द्रव पदार्थ को थोड़ा थोड़ा करके गले के नीचे उतारना। पीना। उ०—नाम पियाला घोंटि कै कछु और न मोहि चही—जग० बानी०, पृ० ६। २. किसी दूसरे का वस्तु लेकर न लौटाना। हजम करना। पचाना।

घोंटना²—क्रि० स० [सं० घुट] १. (गला) इस प्रकार दबाना कि दम रुक जाय। (गला) मरोड़ना। जैसे—चोर ने लड़के का गला घोंट दिया। २. दे० 'घोटना'।

घोंटा¹—संज्ञा पुं० [सं० घोराटा] १. सुपारी। उ०—घोंटा क्रमुक गुवाक पुनि पूग सुपारी आहि।—अनेकार्थ०, पृ० १०१। २. दे० 'घोंटा'।

घोंटा²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० घूँट] [स्त्री० घोंटी] दे० 'घूँट'। उ०—(क) विजया जीव मिलाइ कै निर्मल घोंटा लेई।—भीखा० श०, पृ० ६६। (ख) नारी घोंटी अमल की अमली सब संसार।—मलूक०, पृ० ६६।

घोंटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूँट] दे० 'घुट्टी'।

घोंटू†—वि० [हिं० घोंटना] १. घोटनेवाला। जैसे,—गलाघोंटू, दमघोंटू। २. रटनेवाला। रट्टू।

घोंपना—क्रि० स० [अनु० घप्] १. भोंकना। धँसाना। चुभाना। गड़ाना। २. बुरी तरह सीना। गाँठना।

घोंरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० घौंर] दे० 'घौद'। उ०—कनकलता मानहुँ फली मरकत मनि की घोंरि।—स० सप्तक, पृ०२६६।

घोंसना†(पु)—क्रि० स० [देश०] दे० 'कोसना'। उ०—अनेक जनों को तो घोंस घोंसकर आपने मार ही डाला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८०।

घोंसला—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० कुशालय] वृक्ष, पुरानी दीवार के मोखे आदि पर खर, पत्ते, घास फूस और तिनके आदि से बना हुआ वह स्थान जिसमें पक्षी रहते हैं। चिड़ियों के रहने और अंडे देने का स्थान। नीड़। खोता।

क्रि० प्र०—बनाना।—रखना।—लगाना।

घोंसुआ†(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० घोंसला] घोंसला। खोता। उ०—बचै न बड़ी सबील हू चील घोंसुआ मांस।—बिहारी (शब्द०)।

घोक†(पु)- संज्ञा पुं० [सं० घोष] शब्द। ध्वनि। उ०—बड़े घोक चावाँ। घड़ी दोय घावाँ।—रा० रू०, पृ० १६२।

घोखना—क्रि० स० [सं० √ घुष्] धारणा के लिये बार बार पढ़ना। स्मरण रखने के लिये बार बार उच्चारण करना। पाठ की बार बार आवृत्ति करना। रटना। घोटना।

घोखवाना—क्रि० स० [हिं० घोखना का प्रे० रूप] बार बार कहलाना। याद कराना। रटवाना।

घोखाना—क्रि० स० [हिं० घोखना] दे० 'घोखवाना'।

घोखू—वि० [हिं० घोखना] बार बार पाठ याद करनेवाला। रट्टू। उ०—परीक्षा का फल प्रगट होते होते उसके अधिकांश रट्टू और घोखू मित्र उससे मीलों पीछे छूट जाते।—शराबी, पृ० ३७।

घोगर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़। वि० दे० 'खरपत'।

घोघ†—संज्ञा पुं० [देश०] बटेर फँसाने का जाल।

घोघट†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण्ठन] दे० 'घूँघट'। उ०—खने खने घोघट विघट समाज। खने खने अब हकारलि लाज।—विद्यापति, पृ० ६।

घोघा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो चने की फसल को हानि पहुँचाता है। यह कीड़ा सरदी से पैदा होता और चने की घेंटियों के अंदर घुसकर दाने खा जाता है, जिससे खाली घेंटी ही घेंटी रह जाती है।

घोघी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घुग्घी'। उ०—पीला सबके पगन सीस घोघी के छतरी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४८।

घोचिल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

घोट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा। अश्व। २. (लाक्षणिक) घोड़े के समान अर्थात् युवक। युवा पुरुष। उ०—उत्तर आज स उत्तरइ ऊपड़िया सी कोट। काय रहेसई पोयणी काय कुवाँरा घोट।—ढोला०, दू० २६६।

घोट²—संज्ञा पुं० [हिं० घोंटना] घोंटने की क्रिया या भाव।

घोटक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा। अश्व।

यौ०—घोटकमुख= दे० 'घुड़मुहाँ'।

घोटकारि—स्त्री० पुं० [सं०] घोड़े का शत्रु। भैंसा। महिष [को०]।

घोटड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० घोट+ड़ा (प्रत्य०)] युवक। उ०—उज्जल दंता घोटड़ा करहइ चढ़ियउ जाहि।—ढोला०, दू० १३६।

घोटना—क्रि स० [सं० √घुट्=आवर्तन या प्रतिघात करना] १. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इसलिये बार बार रगड़ना कि वह दूसरी वस्तु चिकनी और चमकीली हो जाय। जैसे,—कपड़ा घोटना, तख्ती घोटना, दीवार घोटना। कागज घोटना। २. किसी वस्तु को बट्टे या और दूसरी वस्तु से इसलिये बार बार रगड़ना कि वह बहुत बारीक पिस जाय। रगड़ना। जैसे—भाँग घोटना, सुरमा घोटना।

विशेष—घिसने और घोटने में यह अंतर है कि घिसने का प्रभाव, जो वस्तु ऊपर रखकर फिराई जाती है, उसपर वांछित होता है। जैसे—चंदन घिसना; पर घोटने का प्रभाव आधार (जैसे,—कपड़ा, कागज आदि) या उसपर रखी हुई किसी वस्तु (जैसे, सिल पर रखी हुई बादाम, भाँग आदि) पर वांछित होता है। जैसे,—कपड़ा घोटना, भाँग घोटना। पीसने का प्रभाव केवल आधार पर रखी हुई वस्तु ही पर वांछित होता है। जैसे,—भाँग पीसना, आटा पीसना। रगड़ने और घोटने में भी वही अंतर है, जो घिसने और घोटने में है।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

३. किसी पात्र में रखकर कई वस्तुओं को बट्टे आदि से रगड़कर परस्पर मिलाना। हल करना। ४. कोई कार्य, विशेषतः लिखने पढ़ने का कार्य, इसलिये बार बार करना कि उसका अभ्यास हो जाय। अभ्यास करना। मश्क करना। जैसे,—सबक घोटना, पट्टी या तख्ती घोटना। ५. डाँटना। फटकारना। बहुत बिगड़ना। *जैसे,—अफसर ने बुलाकर उन्हें खूब घोंटा।* ६. छुरा या उस्तरा फेरकर शरीर के बाल दूर करना। मूड़ना। ७. (गला) इस प्रकार दबाना कि साँस रुक जाय। (गला) मरोड़ना।

मुहा०—गला घोटना=दे० 'गला' में मुहा०।

घोटना²—संज्ञा पुं० १. घोटने का औजार। वह वस्तु जिससे कुछ घोटा जाय। जैसे—भँगघोटना। उ०—काया कुंडी करै पवन का घोटना। पल्टू०—पृ० ९४। २. रँगरेजों का लकड़ी का वह कुंदा जो जमीन में कुछ गड़ा रहता है और जिस पर रखकर रँगे कपड़े घोटे जाते हैं।

घोटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोटना] वह छोटी वस्तु जिसमें या जिससे कोई वस्तु घोटी जाय।

घोटवाना—क्रि० स० [हिं० घोटना का प्रे० रूप] १. रगड़वाना। घोटकर चिकना कराना। २. पालिश कराना। ३. कुंदी कराना। ४. सिर या दाढ़ी आदि के बाल बनवा डालना।

घोटा—संज्ञा पुं० [हिं० घोटना] १. वह वस्तु जिससे घोटने का काम किया जाय। २. रँगरेजों का एक औजार जिसे वे रँगे हुए कपड़ों पर चमक लाने के लिये रगड़ते हैं। दुवाली। मोहरा। ३. घुटा हुआ चमकीला कपड़ा। ४. भाँग घोटने का सोंटा या डंडा। ५ बाँस का वह चोंगा जिससे घोड़ों, बैलों आदि पशुओं को नमक, तेल या और कोई औषध पिलाई जाती है। ६. नग जड़ियों का एक औजार जिससे वे डाँक को चमकीला बनाते हैं।

विशेष—इस औजार में बाँस की नली में लाख देकर गोरा पत्थर का एक टुकड़ा चिपकाया रहता है। इसी से डाँक को रगड़कर चमकदार करते हैं।

७. रगड़ा। घुटाई। घोटने का काम। ८. क्षौर। हजामत।

क्रि० प्र०—फिरवाना।

घोटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोटाना+आई (प्रत्य०)] १. घोटने का भाव। २. घोटने की क्रिया। ३. घोटने की मजदूरी।

घोटाघोवा—संज्ञा पुं० [देश०] रेवदचीनी की जाति का एक पेड़। कनकुटकी। रेवाचीनी। सीरा।

विशेष—यह वृक्ष खासिया की पहाड़ियों, पूरबी बंगाल तथा

लंका आदि में विशेष होता है। इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है, जो रँगाई तथा दवा के काम में आती है।

घोटाला—संज्ञा पुं० [देश०] घपला। गड़बड़। गोलमाल।

यौ०—गड़बड़ घोटाला।

क्रि० प्र०—करना। —डालना। पड़ना।

मुहा०—घोटाले में पड़ना=निश्चित या ठीक न होना। अस्थिर रहना।

घोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ी (को०)।

घोटी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'घोटिका'।

घोटी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूटं] दे० 'घुट्टी'। उ०—यह कंठी माला पहना देना और यह बीड़ा जन्म घोटी में पिला देना।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ५६६।

यौ०—जन्म घोटी।

घोटू[1]—संज्ञा पुं० [हिं० घोटना] १. वह जो घोटे। घोटनेवाला। २. घोटने का औजार। घोटा।

घोटू[2]—संज्ञा पुं० [हिं० घुटना] पैर की गाँठ। घुटना।

घोठ—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] गोठ। गोष्ठ।

घोड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० घोटक] घोड़ा।

यौ०—घोड़चढ़ा। घोड़दौड़ आदि।

घोड़चढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घुड़चढ़ा'।

घोड़दौड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घुड़दौड़'।

घोड़वच—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+वच] वच नाम की ओषधि की एक किस्म जो घोड़ों को ही दी जाती है।

घोड़मुहा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घुड़मुहाँ'।

घोड़राई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+राई] वह राई जिसके दाने कुछ बड़े बड़े होते हैं। यह मसाले के साथ घोड़ों को खिलाई जाती है।

घोड़रासन—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा+रासन] एक प्रकार का रासन या रास्ना। वि० दे० 'रास्ना'।

घोड़राज—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा+रोज] एक प्रकार का रोज या नीलगाय।

विशेष—यह घोड़े की भाँति बहुत तेज भागता है। कहीं कहीं लोग इसे पालतू बनाकर गाड़ियों में भी जोतते हैं। इसको घोड़रोछ, घोड़रोझ भी कहते हैं।

घोड़ला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़+ला (प्रत्य०)] घोड़ा। उ०—ज्ञान को घोड़ला सून्य में दौरिया, सुरति है सब्द सारा।—सं० दरिया, पृ० ७६।

घोड़सन—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा+सन] एक प्रकार का सन।

घोड़सार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+शाला] घोड़ा बाँधने का स्थान। अस्तबल। पैंडा।

घोड़साल†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घोड़सार'।

घोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० घोटक, प्रा० घोड़ा] [स्त्री० घोड़ी] १. चार पैरोंवाला एक प्रसिद्ध और बड़ा पशु। अश्व। बाजि। तुरंग।

विशेष—इसके पैरों में पंजे नहीं होते, गोलाकार सुम (टाप) होते हैं। यह उसी जाति का पशु है, जिस जाति का गदहा है, पर गदहे से यह मजबूत, बड़ा और तेज होता है। इसके कान भी गदहे के कानों से छोटे और खड़े होते हैं। इसकी गरदन पर लंबे लंबे बाल होते हैं और पूँछ नीचे से ऊपर तक बहुत लंबे लंबे बालों से ढकी होती है। टापों के ऊपर और घुटनों के नीचे एक प्रकार के घट्टे या गाँठें होती हैं। घोड़े बहुत रंगों के होते हैं जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—लाल, सुरंग, कुम्मैत, सब्जा, मुश्की, नुकरा, गर्रा, बादामी, चीनी, गुलदार, अबलक इत्यादि। बहुत प्राचीन काल से मनुष्य घोड़े से सवारी का काम लेते आ रहे हैं, जिसका कारण उसकी मजबूती और तेज चाल है। पोइया, दुलकी, सरपट, कदम, रहवाल, लँगूरी आदि इसकी कई चालें प्रसिद्ध हैं। घोड़े की बोली को हिनहिनाना कहते हैं। जिसमें घोड़ों की पहचान चाल, लक्षण आदि का वर्णन होता है; उस विद्या को शालिहोत्र कहते हैं। शालिहोत्र ग्रंथों में घोड़ों के कई प्रकार से कई भेद किए गए हैं। जैसे,—देशभेद से उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और नीच; जातिभेद से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, तथा गुणभेद से सात्विक, राजसी और तामसी। इनकी अवस्था का अनुमान इनके दाँतों से किया जाता है। इससे दाँतों की गिनती और रंग आदि के अनुसार भी घोड़ों के आठ भेद माने गए हैं—कालिका, हरिणी, शुक्ला, काचा, मक्षिका, शंख, मुशलक और चलता। प्राचीन भारतवासियों को जिन जिन देशों के घोड़ों का ज्ञान था, उनके अनुसार उन्होंने उत्तम, मध्यम आदि भेद किए हैं। जैसे,—ताजिक, तुषार और खुरासान के घोड़ों को उत्तम; गोजिकाण केकाण और प्रौढ़ाहार के घोड़ों का मध्यम, गांधार, साध्यवास और सिंधुद्वार के घोड़ों को कनिष्ठ कहा है। आजकल अरब, स्पेन, फ्लेंडर्स, नारफाक आदि के घोड़े बहुत अच्छी जाति के गिने जाते हैं। नैपाल और बरमा के टाँगन भी प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में कच्छ, काठियावाड़ और (पाकिस्तान में) सिंध के घोड़े उत्तम गिने जाते हैं। शालिहोत्र में रंग, नाप और भँवरी आदि के अनुसार घोड़े स्वामियों के लिये शुभ या अशुभ फल देनेवाले समझे जाते हैं। जैसे,—जिसके चारों पैर और दोनों आँखें सफेद हों, कान और पूँछ छोटी हो, उसे चक्रवाक कहते हैं। यह बहुत प्रभुभक्त और मंगलदायक समझा जाता है। इसी प्रकार मल्लिक, कल्याणपंचक, गजदंत, उष्ट्रदंत आदि बहुत से भेद किए गए हैं। गरदन पर अयाल के नीचे या पीठ पर जो भौंरी (घूमे हुए रोएँ) होती है, उसे साँपिन कहते हैं। उसका मुँह यदि घोड़े के मुँह की ओर हो, तो वह बहुत अशुभ मानी जाती है। भौंरियों के भी कई नाम हैं। जैसे,—भुजबल (जो अगले पैरों के ऊपर होती है), छत्रभंग (जो पीठ या रीढ़ के पास होती है और बहुत अशुभ मानी जाती है), गंगापाट (तंग के नीचे) आदि। घोड़ों के शुभाशुभ लक्षण फारसवाले भी मानते हैं; इससे हिंदुस्तान में घोड़े से संबंध रखनेवाले जो शब्द प्रचलित हैं, उनमें से बहुत से फारसी के भी हैं। जैसे,—स्याहतालू, गावकोहान आदि।

पर्या०—घोटक। तुरग। अश्व। वाजी। वाहु। तुरंगम। गंधर्व।

हय। सैंधव। हरि। वीती। जवन। शालिहोत्र। प्रकीर्णव। वातायन। चामरी। मरुद्रथ। राजस्कंध। विमानक। वह्नि। दधिका। उच्चैःश्रवा। आशु। अरुष। पतंग। नर। सुपर्णसु।

मुहा०—घोड़ा उठाना=घोड़े को तेज दौड़ाना। घोड़ा उलाँगना=किसी नए घोड़े पर पहले पहल सवार होना। घोड़ा कसना=घोड़े पर सवारी के लिये जीन या चारजामा कसना। घोड़ा खोलना=(१) घोड़े का साज या चारजामा उतारना। (२) घोड़े को बंधनमुक्त करना। (३) घोड़ा चुराना या छीनना। जैसे,—चोर घोड़ा खोल ले गए। घोड़ा छोड़ना=(१) किसी ओर घोड़ा दौड़ाना। किसी के पीछे घोड़ा दौड़ाना। (२) घोड़े को घोड़ी से जोड़ा खाने के लिये छोड़ना। घोड़े का घोड़ी से समागम करना। (३) घोड़े को उसके इच्छानुसार चलने देना। (४) दिग्विजय के लिये अश्वमेध का घोड़ा छोड़ना कि वह जहाँ चाहे वहाँ जाय। (५) घोड़े का साज या चारजामा उतारना। दे० 'घोड़ा खोलना'। (६) मजाक करना। कोई ऐसी भोंड़ी बात कहना जिससे लोग हँसें।

विशेष—भाँड़ों के खेल तमाशे में अभिनेता शुरू शुरू में अपने काल्पनिक घोड़े की हास्यपरक प्रशस्ति करते हुए अपना अपना परिचय देते हैं। इसी से इस अर्थ में यह मुहावरा बोलचाल में प्रचलित है।

घोड़ा डालना=किसी ओर वेग से घोड़ा बढ़ाना। जैसे,—उसने हिरन के पीछे घोड़ा डाला। घोड़ा देना=घोड़ी को घोड़े से जोड़ा खिलाना। घोड़ा निकालना=(१) घोड़े को सिखलाकर सवारी के योग्य बनाना। (२) घोड़े को आगे बढ़ा ले जाना। घोड़े पर चढ़े आना=किसी स्थान पर पहुँचकर वहाँ से लौटने के लिये जल्दी मचाना। घोड़ा पलाना=घोड़े पर काठी या जीन कसना। घोड़ा फेंकना=वेग से घोड़ा दौड़ाना। घोड़ा फेरना=(१) घोड़े को सिखाकर सवारी के योग्य बनाना। (२) घोड़े को दौड़ने का अभ्यास कराने के लिये एक वृत्त में घुमाना। कावा देना। घोड़ा बेचकर सोना=खूब निश्चिंत होकर सोना। गहरी नींद में सोना। घोड़ा भर जाना=चलते चलते घोड़े का दम भर जाना। घोड़े का थक जाना। घोड़ा मारना=घोड़े को तेज दौड़ाने के लिये मारना। घोड़े को मार मारकर खूब तेज बढ़ाना।

२. घोड़े के मुख के आकार का वह पेंच या खटका जिसके दबाने से बंदूक में रंजक लगती है और गोली चलती है। उ०—तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बंदूकन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५२४।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—दबाना।

३. घोड़े के मुख के आकार का टोटा जो भार सँभालने के लिये छज्जे के नीचे दीवार में लगाया जाता है। यह काठ का भी होता है और पत्थर का भी। ४. शतरंज का एक मोहरा जो ढाई घर चलता है। ५. कसरत के लिये लकड़ी का एक मोटा कुंदा जो चार पायों पर ठहरा होता है और जिसे लड़के दौड़कर लाँघते हैं। ६. कपड़े आदि टाँगने की खूँटी।

घोड़ा करंज—संज्ञा पुं० [सं० घृतकरञ्ज] एक प्रकार का करंज जो चर्मरोग और बवासीर तथा विष को दूर करनेवाला माना जाता है।

घोड़ागाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+गाड़ी] १. वह गाड़ी जो घोड़े द्वारा चलाई जाती है। २. वह गाड़ी जो डाक के थैले ऐसी जगह पहुँचाती हैं, जहाँ रेल इत्यादि नहीं गई रहती। बहुधा इस गाड़ी में घोड़े ही जोते जाते हैं। डाकगाड़ी। मेल कार्ट।

घोड़ाचोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+चोला(=शरीर)] वैद्यक की एक प्रसिद्ध ओषधि जो अनुपान के भेद से बहुत से रोगों पर दी जाती है।

घोड़ानस—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+नस] वह मोटी नस जो पैर में एड़ी से ऊपर की ओर गई होती है।

विशेष—कहते है, यह नस कट जाने पर आदमी या पशु मर जाता है क्योंकि शरीर का प्रायः सारा रक्त इसी के मार्ग से निकल जाता है।

घोड़ानीम—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+नीम] बकाइन वृक्ष।

घोड़ापलास—संज्ञा पुं० [देश०] मालखंभ की एक कसरत।

विशेष—इसमें एक हाथ मालखंभ पर उलटा ऐंठकर सामने रखते हैं और दूसरे से मोगरे को पकड़ते हैं। जिधर का हाथ मोगरे पर होता है, उसी ओर का पाँव मालखंभ पर फेंककर सवारी बाँधते हैं और दोनों हाथ निकाले हुए ताल ठोकते हैं। इसमें मुँह फूटने का डर रहता है।

घोड़ावच—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+वच] खुरासानी वच जो सफेद होती है और जिसमें बड़ी उग्र गंध होती है।

घोड़ाबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा+बाँस] एक प्रकार का बाँस जो पूर्वी बंगाल और आसाम में बहुत होता है।

घोड़ाबेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा+बेल] एक लिपटनेवाली लता जिसकी जड़ें गँठीली होती हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक बालिश्त के सींकों में लगती हैं और पतझड़ में झड़ जाती हैं। चैत, बैसाख में यह बेल घनी मंजरी के रूप में फूलती है। यह बेल बुंदेलखंड तथा उत्तरीय भारत के कई भागों में मिलती है। बिलाईकंद इसी की जड़ है। इसे सुराल और सरवाला भी कहते हैं।

घोड़िया संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ी+इया (प्रत्य०)] १. छोटी घोड़ी। २. दीवार में गड़ी हुई खूँटी जिससे कपड़े लटकाए जाते हैं। ३. छोटा घोड़ा। ४. जुलाहों का एक औजार। वि० दे० 'घोड़ी'।

घोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा] घोड़े की मादा। २. पायों पर खड़ी काठ की लंबी पटरी जो पानी के घड़े रखने, गोटे पट्टे की बुनाई में तार कसने, सेंवई पूरने, सेव बनाने आदि बहुत से कामों में आती है। पाटा। ३. दूर दूर रखे हुए दो जोड़े बाँसों के बीच में बँधी हुई डोरी या अलगनी जिसपर धोबी कपड़े सुखाते हैं। ४. विवाह की वह रीति जिसमें दूल्हा घोड़ी पर चढ़कर दुलहिन के घर जाता है।

मुहा०—घोड़ी चढ़ना=दूल्हे का बारात के साथ दुलहिन के घर जाना।

५. वे गीत जो विवाह में वरपक्ष की ओर से गाए जाते है। ६. खेल मे वह लड़का जिसकी पीठ पर दूसरे लड़के सवार

होते हैं। ७. जुलाहों का एक औजार जिसमें दोहरे पायों के बीच में एक डंडा लगा रहता है।

विशेष—कपड़ा बुनते बुनते जब बहुत थोड़ा रह जाता है, तब वह झुकने लगता है। उसी को ऊँचा करने के लिये यह काम में लाया जाता है। ८. हाथीदाँत आदि का वह छोटा लंबोतरा टुकड़ा जो तंबूरे, सारंगी, सितार आदि में तूँबे के ऊपर लगा हुआ होता है और जिस पर से होते हुए उसके तार टिके रहते हैं। जवारी।

घोण[1]—संज्ञा पुं० [देश०] बहुत प्राचीन काल का एक बाजा जिसमें तार लगे रहते थे। उन्हीं तारों को छेड़ने से यह बजता था।

घोण[2]†Ⓟ—संज्ञा [सं० घोणा] नासिका। नाक।—(डिं०)।

घोणस संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

घोणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नासिका। नाक। २. घोड़े या सूअर का थूथन। ३. उल्लू पक्षी की चोंच। ४. एक पौधा [को०]।

घोणी—संज्ञा पुं० [सं० घोणिन्] शूकर। सूअर [को०]।

घोनस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घोणस'।

घोमसा—संज्ञा [देश०] एक प्रकार की घास।

घोर[1]—वि० [सं०] भयंकर। भयानक। डरावना। विकराल। २. सघन। घना। दुर्गम। जैसे—घोर वन। ३. कठिन। कड़ा। जैसे—घोर गर्जन, घोर शब्द। ४. गहरा। गाढ़ा। जैसे—घोर निद्रा। ५. बुरा। अति बुरा। जैसे—घोर कर्म, घोर पाप। ६. बहुत अधिक। बहुत ज्यादा। बहुत भारी। उ०—ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।—भूषण (शब्द०)।

घोर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम। २. विष (को०)। ३. भय। डर (को०)। ४. पूज्य भाव (को०)। ५. जाफरान (को०)। ६. स्कंद के पारिषदगण की उपाधि। उ०—स्कंद के पारिषदगण घोर कहे गए हैं।—प्रा० भा० प०, पृ० १०८।

घोर[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० घुर] शब्द। गर्जन। ध्वनि। आवाज। उ०—(क) कहि काकी मन रहत श्रवण सुनि सरस मधुर मुरली की घोर।—सूर (शब्द०)। (ख) घिर कर तेरे चारों ओर, करते हैं घन क्या ही घोर।—साकेत, पृ० २५५।

घोर[4]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा] दे० 'घोड़ा'। उ० (क) चोर मोर घोर पानी पियें बड़े भोर।—(कहा०)। (ख) हस्ति घोर औ कापर सबहिं दीन्ह नव साज।—जायसी ग्रं०, पृ० १४६।

घोर[5]Ⓟ—संज्ञा पुं० [फा० गोर] कब्र। समाधि। उ०—परची हुसेन सुपाच सुनि त्रितिय चित्त इमांन। सजीं घोर हुस्सेन सथ करौं प्रवंस अपांन।—पृ० रा०, ६।२०८।

घोर[6]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घोल'।

घोर[7]—क्रि० वि० अत्यंत। बहुत। जैसे—घोर निर्दय।

घोरघुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कांस्य। काँसा। २. पीतल [को०]।

घोरघोरतर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

घोरदंष्ट्र—वि० [सं०] जिसके दाँतों को देखकर भय उत्पन्न हो। भयावने दाँतवाला [को०]।

घोरदर्शन[1]—वि० [सं०] विकराल। भयानक [को०]।

घोरदर्शन[2]—संज्ञा १. उल्लू। उलूक। २. चीते की जाति का एक मांसाहारी पशु [को०]।

घोरना[1]†Ⓟ—क्रि० स० [हिं० घोलना] दे० 'घोलना'। उ०—(क) जो गिरिपति मसि घोरि उदधि मैं, लै सुरतरु विधि हाथ। ममकृत दोष लिखै बसुधा भरि तऊ नहीं मिति नाथ।—सूर०, १।१११। (क) ठाकुर कहत देखो याके राखिवे के हेत नीम करु भेषज सु घोरि पीजियतु है।—ठाकुर०, पृ० ३६।

घोरना[2]†—क्रि० अ० भारी शब्द करना। गरजना। उ०—फिर फिर सुंदर ग्रीवा मोरत। देखन रथ पाछे जो घोरत।—शकुंतला, पृ० ७।

घोरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घोरपुष्प'।

घोररास, घोररासी—संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़ [को०]।

घोररूप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

घोरवास, घोरवासी—संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़ [को०]।

घोरसार Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घुड़सार'। उ०—हाथी हथिसार जरे घोरे घोरसार ही।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७७।

घोरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रवण चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में बुध की गति। २. रात्रि। रात (को०)।

घोरा†Ⓟ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा] १. घोड़ा। उ०—जहिं लख्ख घोरा मअंगा हजारी।—कीर्ति०, पृ० ३८। २. खूँटा। ३. टोड़ा।

घोराकार, घोराकृति—वि० [सं०] भयानक। डरावना [को०]।

घोरारा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गन्ना।

घोरिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घोड़िया'।

घोरिला†Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ी] १. मिट्टी का बना हुआ लड़कों के खेलने का घोड़ा। उ०—जो प्रभु सनर सुरासुर वावत खगपति पीठ सवारा। तेहि घोरिला चढ़ाइ नृप रानी करवावैं संचारा।—रघुराज (शब्द०)। २. वह खूँटा जिसका मुँह घोड़े के आकार का होता है। उ०—फूलन के विविध हार घोरिलनि उरमत उदार बिच बिच मणि श्यामहार उपमा शुक भाषी।—केशव (शब्द०)।

घोरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'अघोरी'। २. दे० 'घोड़ी'। ३. दे० 'अगौरा'।

घोल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मथा हुआ दही जिसमें पानी न डाला गया हो। तक्र। २. लस्सी। ३. घोलकर बनाई हुई वस्तु [को०]।

घोल†Ⓟ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़] घोड़ा। उ०—काहु कापल काहु घौल, काहु संवल देल घोल।—कीर्ति०, पृ० २४।

घोलदही—संज्ञा पुं० [हिं० घोलना + दही] मट्ठा।

घोलना—क्रि० स० [हिं० घुलना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ में किसी वस्तु को हिलाकर मिलाना। किसी वस्तु को इस प्रकार पानी आदि में डालकर हिलाना कि उसके कण पृथक् पृथक् होकर पानी में फैल जायँ। हल करना। जैसे,—चीनी घोलना, शरबत घोलना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—घोल पीना=(१) शरबत की तरह पी जाना। (२) सहज में मार डालना। सहज में नष्ट कर देना। (३) कुछ न समझना। तृण समझना। घोलकर पी जाना=(१) सहज में मार डालना। देखते देखते नाश कर डालना। (२) कुछ न गिनना। (३) किसी विषय में पूर्णतः निष्णात होना। पारंगत होना।

घोलमघोल(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० घोल] घालमेल। घोटाला। उ०—हाहा हूहू मैं मुवो करि करि घालमघोल।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० ३१६।

घोला—संज्ञा पुं० [हिं० घोलना] २. वह जो घोलकर बना हो। जैसे,—घोली हुई अफीम।

मुहा०—घोले में डालना=(१) खटाई में डालना। रोक रखना। फँसा रखना। उलझन में डाल रखना। किसी काम में बहुत देर लगाना। (२) किसी काम में टालमटूल करना। घोले में पड़ना=बखेड़े में पड़ना। उलझन में फँसना। ऐसे काम में फँसना जो जल्दी न निपटे।

२. नाली जिसके द्वारा खेत सींचने के लिये पानी ले जाते हैं। बरहा।

घोलुवा[1]—वि० [हिं० घोलना+उवा (प्रत्य०)] घोला हुआ। जो घोलकर बना हुआ हो।

घोलुवा[2] संज्ञा पुं० १. घोली हुई पतली दवा। अर्क। २. रसा। शोरबा। ३. पानी में घोली हुई अफीम।

मुहा०—घोलुवा पीना=कड़ुई वस्तु (दवा आदि) पीना। घोलुवा घोलना=किसी कार्य में बहुत देर करना।

घोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. आभीरपल्ली। अहीरों की बस्ती। उ०—बकी जो गई घोष में छल करि यसुदा की गति दीनो।—सूर०, १।१२२। २. अहीर। ३. बंगाली कायस्थों का एक भेद। ४ गोशाला। उ०—(क) आजु कन्हैया बहुत बच्यो री। खेलत रह्यो घोष के बाहर कोउ आयो शिशु रूप रच्यो री।—सूर (शब्द०)। ५. तट। किनारा। ६. ईशान कोण का एक देश। ७. शब्द। आवाज। नाद। उ०—होन लग्यो व्रजगलिन में हुरिहारन को घोष।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ९६। ८. गरजने का शब्द। ९. ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक। १०. शब्दों के उच्चारण में ११ बाह्य प्रयत्नों में से एक। इस प्रयत्न से वर्ण बोले जाते हैं—ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, य, र, ल, व, और ह। ११. शिव। १२. जनश्रुति। अफवाह (को०)। १३. कुटी। झोपड़ी (को०)। १४ कांस्य। काँसा (को०)।

घोषक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] घोषणा या मुनादी करनेवाला [को०]।

घोषक[2]– वि० घोष करनेवाला [को०]।

घोषकुमारी—संज्ञा स्त्री०[सं०घोष+कुमारी] गोपबालिका। गोपिका। उ०—प्रात समै हरि को जस गावत उठि घर घर सब घोषकुमारी।—भारतेंदु ग्रं० भा० २, पृ० ६०६।

घोषण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घोषणा' [को०]।

घोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उच्च स्वर से किसी बात की सूचना। २. राजाज्ञा आदि का प्रचार। मुनादी। डुग्गी।

यौ०—घोषणापत्र=वह पत्र जिसमें सर्वसाधारण के सूचनार्थ राजाज्ञा आदि लिखी हो। सूचनापत्र। विज्ञप्ति।

३. गर्जन। ध्वनि। शब्द। आवाज।

घोषयित्नु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोकिल। २ ब्राह्मण। ३. घोषणा या मुनादी करनेवाला। ४. चारण [को०]।

घोषलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़ुई तोरई।

घोषवत्—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जिसमें घोष प्रयत्नवाले अक्षर अधिक हों।

घोषवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा।

घोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सौंफ। २. कर्कटशृंगी (को०)।

घोषाल—संज्ञा पुं० [सं० घोष] बंगाली ब्राह्मणों की एक जाति।

घोसना[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'घोषणा'।

घोसना[2]†—क्रि० स० [सं० घोषण] घोषित करना। उच्चारित करना।

घोसिनि† —संज्ञा स्त्री० [सं० घोष+इनि (प्रत्य०)] ग्वालिन। गोपी। उ०—दिन दिन घने तन्हि ऐसनि होय। वह घोसिनि घोरक मूले।—विद्यापति, पृ० २६५।

घोसी—संज्ञा पुं० [सं० घोष] अहीर। ग्वाला। दूध बेचनेवाला।

विशेष—जो अहीर मुसलमान होते हैं वे घोसी कहलाते हैं।

घौंटना(पु)†—क्रि० स० [देश०] दे० 'घूँटना'। उ०—घी सो घौंटि रह्यो घट भीतर कुछ सो सोवै सुंदरदास।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १५३।

घौंटु†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घुटना'। उ०—घौंटुन लौं भई कीच रपटि रपटि सगरे परे।—नंद ग्रं०, पृ० ३२४।

घौंर, घौंरा—संज्ञा पुं० [हिं० घवरि] दे० 'घौद'।

घौद—संज्ञा पुं० [देश०] फलों का गुच्छा। गौद। जैसे,—केले का घौद।

घौर—संज्ञा पुं० [हिं० घवर] दे० 'घौद'। उ०– एक एक घौर में हजार केले फले हैं।—मैला०, पृ० ७३।

घौरना(पु)—क्रि० स० [हिं० घोर] दे० 'घोरना'। उ०—अमी रस में रस घौरत काहू।—ह० रासो, पृ० ५८।

घौरा†—संज्ञा [हिं०] पुं० दे० 'घौर'।

घौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे०'घौद'। उ०—जागि सुहाई हरफारयोरी। उनै रही केरा कै घौरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १३।

घौहा[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० घाव+हा (प्रत्य०)] चुटैला आम या कोई फल। वह फल जिसको कुछ चोट लग चुकी हो।

घौहा[2]†—वि० जिसे घाव लगा हो। चुटीला। घायल।

घ्न—वि० [सं०] नष्ट करनेवाला। नाश करनेवाला।

विशेष—यौगिक शब्दों के अंत में इसका प्रयोग होता है; जैसे,– वातघ्न, विषघ्न, पुण्यघ्न आदि।

घ्यूँट†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घूँट'।

घ्राण—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० घ्रेय]१. नाक। उ०—श्रोत्र त्वक चक्षु घ्राण रसना रस को ज्ञान।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५८८।

यौ०—घ्राणेंद्रिय।

२. सूँघने की शक्ति या क्रिया। ३. गंध। सुगंध।

घ्राणक—संज्ञा पुं० [देश०] उतना तेलहन जितना एक बार में पेरने के लिये कोल्हू में डाला जाय। घानी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग संवत् १००२ के एक शिलालेख में आया है जिसमें लिखा है कि 'हर घ्राणक पीछे नारायणदेव आदि ने एक एक पली तेल मंदिर के लिये दिया'। इस शब्द की व्युत्पत्ति का संस्कृत में पता नहीं लगता, यद्यपि 'घानी' या 'घान' शब्द अबतक इसी अर्थ में बोला जाता है।

घ्राणचक्षु—वि० [सं० घ्राणचक्षुस्] १. सूँघकर किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करनेवाला (पशु)। २. अंधा [को०]।

घ्राणतर्पण१—वि० [सं०] १. घ्राणेंद्रिय को तृप्ति देनेवाला। २. सुगंधित। सुगंधयुक्त [को०]।

घ्राणतर्पण२—संज्ञा पुं० [सं०] खुशबू। सौरभ। सुगंध [को०]।

घ्राणपाक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक में होनेवाला एक रोग [को०]।

घ्राणपुटक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक के छिद्र। नासारंध्र [को०]।

घ्राणेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० घ्राणेन्द्रिय] नासिका। नाक [को०]।

घ्रात—वि० [सं०] सूँघा हुआ [को०]।

घ्रातव्य—वि० [सं०] सूँघने योग्य। जिसे सूँघा जा सके [को०]।

घ्राता—वि० [सं० घ्रातृ] सूँघनेवाला [को०]।

घ्राति—संज्ञा संज्ञा [सं० घ्राण] १. सूँघने की क्रिया। २. सौरभ। सुगंध। ३. नाक। नासिका [को०]।

घ्रान(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० घ्राण] सुगंध। उ०—सोरह दल कमल बिगसाई। मधुकर घ्रानि रहा लपटाई। —सं० दरिया, पृ० ६।

घ्रेय—वि० [सं०] सूँघने योग्य [को०]।

ङ

ङ—व्यंजन वर्ण का पाँचवाँ और कवर्ग का अंतिम अक्षर। यह स्पर्श वर्ण है, और इसका उच्चारण स्थान कंठ और नासिका है। इसमें संवार, नाद, घोष और अल्पप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं।

ङ—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूँघने की शक्ति। २. गंध। सुगंध। ३. शिव का एक नाम। भैरव। ४. इंद्रियों का विषय। इंद्रियविषय (को०)। ५. इच्छा। आकांक्षा। स्पृहा (को०)।

च

च—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का २२ वाँ अक्षर और छठा व्यंजन जिसका उच्चारण स्थान तालु है। यह स्पर्श वर्ण है और इसके उच्चारण में श्वास, विवार, घोष और अल्पप्राण प्रयत्न लगते हैं।

चंक(पु)—वि० [सं० चक्र] १. पूरा पूरा। समूचा। सारा। समस्त। २. एक उत्सव जो उत्तर भारत तथा मध्यप्रदेश आदि में फसल कटने पर होता है।

चंका(पु)—क्रि० वि० [हिं० चौका या चहुँघा] चारों ओर से। सब तरफ से। उ०—चक्रवती चकवा चतुरंगिनी चारिउ चापि लई दिसि चंका।—भूषण ग्रं०, पृ० ९६।

चंकुण—संज्ञा पुं० [सं० चङ्कुण] १. रथ। यान। २. वृक्ष [को०]।

चंकुर—संज्ञा पुं० [सं० चङ्कुर] १. रथ। यान। २. वृक्ष। पेड़।

चंक्रम—संज्ञा पुं० [सं० चङ्क्रम] टहलने का स्थान। उ०—बाहर चंक्रम पर भिक्षुणियों का छोटा सा समूह प्रवारण के लिये अपनी ओर से प्रतिनिधि भेजने का चुनाव कर रहा था।—इरा०, पृ० १७।

चंक्रमण—संज्ञा पुं० [सं० चङ्क्रमण] १. धीरे धीरे इधर से उधर घूमना। टहलना। २. बार बार घूमना। बहुत घूमना। ३. मंद गति से या टेढ़े मेढ़े जाना (को०)। ४. उछलना। कूदना। फाँदना (को०)।

चंक्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं० चङ्क्रमा] १. इधर उधर जाना। २. घूमना। टहलना [को०]।

चंक्रमित—वि० [सं० चङ्क्रमित] बार बार घूमा या चक्कर खाया हुआ [को०]।

चंक्रायण—संज्ञा पुं० [सं० चङ्क्रायण] एक प्रवर का नाम।

चंग१—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. डफ के आकार का एक छोटा बाजा जिसे लावनीवाले बजाया करते हैं। लावनीवालों का बाजा। उ०—बजत मृदंग उपंग चंग मिलि भजनन जति तति जास। —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४७४।

यौ०—चंगनवाज=चंग बजानेवाला व्यक्ति।

२. सितारियों की परिभाषा में सितार का चढ़ा हुआ सुर।

चंग२—संज्ञा पुं० [?] गंजीफे के आठ रंगों में से एक रंग।

चंग३—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का तिब्बती जौ। २. एक प्रकार की जौ की शराब जो भूटान में बनती है।

चंग४—संज्ञा स्त्री० [देश०] पतंग। गुड्डी। उ०—रहे राखि सेवा पर भालू। चढ़ी चंगु जनु खैंचि खेलारू।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—चंग चढ़ना या उमहना=बढ़ी चढ़ी बात होना। खूब जोर होना। उ० त्यों पद्माकर दीजै मिलाय क्यों चंग चबाइन की उमही है—पद्माकर (शब्द०)। चंग पर चढ़ाना=

चंग[३]

(१) इधर उधर की बातें कहकर किसी को अपने अनुकूल करना। किसी को अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना। (२) आसमान पर चढ़ा देना। मिजाज बढ़ा देना।

चंग[४]—वि० [सं० चङ्ग] १. दक्ष। कुशल। २. स्वस्थ। तंदुरुस्त। ३. सुंदर। शोभायुक्त। रम्य। मनोहर। उ०—लही ललिता वन लोचन चँग। कही कहुँ कान्ह जुहे तुम चंग।—पृ० रा०, २।३५७।

चंगबाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चंग+बाई] एक प्रकार का वात रोग जिसमें हाथ पैर जकड़ जाते हैं।

चंगला—संज्ञा स्त्री० [सं० चङ्गला] एक रागिनी जो मेघ राग की पुत्रवधू कही जाती है।

चंगा—वि० [सं० चङ्ग] [वि० स्त्री० चंगी] १. स्वस्थ। तंदुरुस्त। नीरोग जैसे—इस दवा से तुम दो दिन में चंगे हो जाओगे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. अच्छा। भला। सुंदर। उ० भले जू भले नंदलाल, वेऊ भली चरन जावक पाग जिनहिं रंगी। सूर प्रभु देखि अंग अंग वानिक कुशल मैं रही रीझि वह नारि चंगी।—सूर (शब्द०)। ३. निर्मल। शुद्ध। जैसे—मन चंगा तो कठौतो में गंगा। उ०—कथा माँहि एकसुना प्रसंगा। राम नाम नौका चित चंगा।—घट०, पृ० २२६।

चंगिम(पु)—वि० [सं० चङ्ग] सुंदर। उ०—तुम मुख चंगिम अधिक चपल भेल कतिखन धरब लुकाइ।—विद्यापति, पृ० २१८।

चंगु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+अंगुल] १. चंगुल। पंजा। उ०—चरग चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परवस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०७।

यौ०—चंगुगत।

२. पकड़। वश। अधिकार।

चंगुल—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार) +अंगुल या फा० चंगाल] १. चिड़ियों या पशुओं का टेढ़ा पंजा जिससे वे कोई वस्तु पकड़ते या शिकार मारते हैं। उ०—(क) फिरत न वारहिं बार प्रचारयो। चपरि चोंच चंगुल हय हति रथ खंड खँड करि डारयो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चीते के चंगुल में फँसि कै करसायल घायल हैं निवहै।—देव (शब्द०)। २. हाय के पंजों की वह स्थिति जो उँगलियों को विना हथेली से लगाए किसी वस्तु को पकड़ने, उठाने या लेने के समय होती है। वकोटा। जैसे—चंगुल भर आँटा साईं को।

मुहा०—चंगुल में फँसना=पंजे में फँसना। वश या पकड़ में आना। काबू में होना।

चंच[१]—संज्ञा पुं० [सं० चञ्च] १. पाँच अंगुल की एक नाप। २. डलिया। चँगेरी (को०)।

चंच[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] दे० 'चंचु'।

चंचत्क—वि० [सं० चञ्चत्क] १. उछलनेवाला। कूदनेवाला। २. गमनशील। चलनेवाला। ३. काँपनेवाला। हिलनेवाला (को०)।

चंचत्पुट—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चत्पुट] संगीत में एक ताल जिसमें पहले दो गुरु, तब एक लघु, फिर एक प्लुत मात्रा होती है। द्विकल के अतिरिक्त यह चतुष्कल और अष्टकल भी होता है।

चंचनाना[१]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'चुनचुनाना'।

चंचनाना†[२]—क्रि० अ० [अनु०] १. झगड़ना। लड़ना। २. बुड़बुड़ाना। बकना झकना। ३. उत्तेजित होना। आवेश में आना। ४. मटर की फली का सूखकर विखरना। ५. ज्यादा आँच से दरार पड़ना। जैसे,—नरिया या लालटेन का शीशा। चंचनाना।

चंचरा—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चरा] एक वर्णवृत। दे० 'चंचरी-४'।

चंचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चरकी] १. भ्रमरी। भँवरी। २. चाँचरि। होली में गाने का एक गीत। ३. हरिप्रिया छंद। इसी को भिखारीदास अपने पिंगल में 'चंचरी' कहते हैं। इसके प्रत्येक पद में १२+१२+१२+१० के विराम से ४६ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक गुरु होता है। जैसे,—सूरज गुन दिसि सजाय, अंतै गुरु चरण ध्याय, चित्त दै हरि प्रियहिं, कृष्ण कृष्ण गावो। ४. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में र स ज ज भ र (SIS IIS ISI ISI SII S S) होते हैं। इसे 'चंचरा', 'चंचली' और 'विवुधप्रिया' भी कहते हैं। जैसे,—री सजै जु भरी हरी नित वाणि तू। औ सदा लहमान संत समाज में नग माँहि तू। भूलि के जु विसारि रामहिं आन को गुण गाइहै। चंपकै सम ना हरी जन चंचरी मन भाइहै। ५. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक पद में २६ मात्राएँ होती हैं। जैसे,—सेतु सीतहि शोभना दरसाइ पंचवटी गए। पाँय लागि अगस्त्य के पुनि अत्रि पै ते विदा भए। चित्रकूट विलोकि कै कै तवही प्रयाग विलोकियो। भरद्वाज वसैं जहाँ जिनते न पावन है वियो।

चंचरी[२]—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चरिन्] भौंरा (को०)।

चंचरीक—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चरीक] [स्त्री० चंचरीकी] भ्रमर। भौंरा। उ०—तेहि पुर वसत भरत विनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक वागा।—तुलसी (शब्द०)।

चंचरीकावली—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चरीकावली] १. भौंरों की पंक्ति। २. तेरह अक्षरों के एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में यगण, मगण, दो रगण और एक गुरु होता है (ISS SSS SIS SIS S)। जैसे,—यमो रे। रागै छाँड़ो यहै ईश भावै। न भूलो माधो को विश्व ही जो चलावै। लखौ या पृथ्वी को वाटिका चंपकी ज्यों। वसौ रागै त्यागै चंचरीकावली ज्यों।

चंचल[१]—वि० [सं० चञ्चल] [वि० स्त्री० चंचला] १. चलायमान। अस्थिर। हिलता डोलता। एक स्थिति में न रहनेवाला। २. अधीर। अव्यवस्थित। एकाग्र न रहनेवाला। अस्थितप्रज्ञ। जैसे,—चंचलबुद्धि, चंचलचित्त। ३. उद्विग्न। घबराया हुआ। ४. नटखट। चुलबुला। जैसे,—चंचल वालक। उ०—देखी बनवारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानो।—केशव (शब्द०)।

चंचल[२]—संज्ञा पुं० १. हवा। वायु। २. रसिक। कामुक। ३. घोड़ा। उ०—अतरै मुकन कमँध आपड़ियी चंचल सहित निजर खल चडियौ।—रा० रू०, पृ० ३३५। ४. [स्त्री० चंचला] व्यभिचारी (को०)।

चंचलता—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चलता] १. अस्थिरता। चपलता। २. नटखटी। शरारत।

चंचलताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चलता+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'चंचलता'।

चंचला—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चला] १. लक्ष्मी। २. बिजली। ३. पिप्पली। ४. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होते हैं (र ज र ज र ल—SIS ISI SIS ISI SIS I)। इसका दूसरा नाम चित्र भी है। जैसे,—री जरा जुरी लखो कहाँ गयो हमैं विहाय। कुंज बीच मोहि तीय ग्वाल बाँसुरी बजाय। देखि गोपिका कहैं परी जु टूटि पुष्प माल। चंचला सखी गई विलाय आजु नंदलाल।

चंचलाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चल+हिं० आई (प्रत्य०)] चपलता। चंचलता। अस्थिरता। चुलबुलाहट।

चंचलाह्य—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चलाह्य] एक सुगंधित पदार्थ [को०]।

चंचलातिशय उक्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चलातिशयोक्ति] दे० 'अतिशयोक्ति'। उ०—बरनन हेतु प्रसक्ति ते उपजत हैं जहँ काज। चंचलातिशय उक्ति तहँ बरनत हैं कविराज।—मति ग्रं०, पृ० ३८८।

चंचलास्य संज्ञा पुं० [सं० चञ्चलास्य] एक सुगंधित द्रव्य।

चंचलाहट—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चल+हिं० आहट (प्रत्य०)] दे० 'चंचलता'।

चंचली—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चली] चंचरी नामक वर्णवृत्त। वि० दे० 'चंचरी—४'।

चंचा—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चा] १. घास फूस या बेत आदि का पुतला जिसे खेतों में पक्षियों आदि को डराने के लिये गाड़ते हैं। २. बेत की बनी हुई कोई चीज जैसे चटाई आदि (को०)। ३. निकम्मा या सारहीन व्यक्ति (को०)।

यौ०—चञ्चापुरुष (१) घास फूस या बेत आदि का पुतला जो खेतों में जानवरों आदि को डराने रोकने के लिये रख दिया जाता है। (२) निःसार व्यक्ति। तुच्छ व्यक्ति।

चंचु¹—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] १. एक प्रकार का साग। चेंच।

विशेष—यह बरसात में उत्पन्न होता है और इसमें पीले पीले फूल और छोटी छोटी फलियाँ लगती हैं। यह कई तरह का होता है। वैद्यक में यह शीतल, सारक, पिच्छिल और बलकारक माना जाता है।

२. रेंड़ का पेड़। ३. मृग। हिरन।

चंचु²—वि० १. ख्यात। प्रसिद्ध। यशस्वी। २. दक्ष। कुशल। जैसे—अक्षरचंचु [को०]।

चंचु³—संज्ञा स्त्री० चिड़ियों की चोंच।

चंचुका—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चुका] चोंच।

चंचुपत्र—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुपत्र] चेंच का साग।

चंचुपुट—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुपुट] चोंच। ठोर।

चंचुपुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चुपुटी] दे० 'चंचुपुट'। उ०—ज्यों सुंदर घन स्वाति को माई। चातक चंचुपुटी न समाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १२८।

चंचुप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुप्रवेश] किसी विषय का थोड़ा ज्ञान। साधारण या अल्पज्ञान [को०]।

चंचुप्रहार—संज्ञा पुं० [सं० चंचुप्रहार] चोंच से प्रहार करना। चोंच से मारना [को०]।

चंचुभृत्—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुभृत्] पक्षी।

चंचुमान्—संज्ञा पुं० [सं० चंचुमत्] पक्षी।

चंचुर¹—वि० [सं० चञ्चुर] दक्ष। निपुण।

चंचुर²—संज्ञा पुं० चेंच का साग।

चंचुल—पुं० [सं० चञ्चुल] हरिवंश के अनुसार विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

चंचुसूची—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुसूची] हंस की जाति की एक चिड़िया। एक प्रकार का बत्तख। कारंडव पक्षी।

चंचू—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चू] चोंच [को०]।

चंचूर्यमाण—वि० [सं० चंचूर्यमाण] [वि० स्त्री० चंचूर्यमाणा] अभद्रता पूर्वक संकेत या इशारा करनेवाला [को०]।

चंट—वि० [सं० चण्ड] १. चालाक। होशियार। सयाना। २. धूर्त। छँटा हुआ। चालबाज।

चंड¹—वि० [सं० चण्ड] [वि० संज्ञा चंडा] १. तेज। तीक्ष्ण। उग्र। प्रखर। प्रबल। घोर। २. बलवान्। दुर्दमनीय। ३. कठोर। कठिन। विकट। ४. उग्र स्वभाव का। उद्धत। क्रोधी। गुस्सावर। ५. जिसके लिंग के अग्रभाग का चमड़ा कटा हो (को०)। ६. उष्ण। तप्त। जैसे.—चंडांशु (को०)। ७. तेज। स्फूर्तिमान (को०)।

चंड²—संज्ञा पुं० १. ताप। गरमी। २. एक यमदूत। ३. एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था। ४. कार्तिकेय। ५. एक शिवगण। ६. एक भैरव। ७. इमली का पेड़। ८. विष्णु का एक पारिषद। ९. राम की सेना का एक बंदर। १०. सम्राट् पृथ्वीराज का एक सामंत जिसे साधारण लोग 'चौंड़ा' कहते थे। इसका नाम चामुंड राय था। ११ पुराणों के अनुसार कुबेर के आठ पुत्रों में से एक।

विशेष—यह शिवपूजन के लिये सूँघकर फूल लाया था, और इसी पर पिता के शाप से जन्मांतर में कंस का भाई हुआ था और कृष्ण के हाथ से मारा गया था।

१२. शिव (को०)। १३. क्रोध। आवेश (को०)।

चंडकर—संज्ञा पुं० [सं० चण्डकर] तीक्ष्ण किरणवाला—सूर्य। उ०—जयति धय बालकपि केलि कौतुक उदित चंडकर मंडल ग्रासकर्त्ता।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६६।

चंडकौशिक—संज्ञा पुं० [सं० चण्डकौशिक] १. एक मुनि का नाम। २. एक नाटक जिसमें विश्वामित्र और हरिश्चंद्र की कथा है। ३. जैन पुराणानुसार एक विषधर साँप।

विशेष—इसने महावीर स्वामी के दर्शन कर डसना आदि छोड़ दिया था और बिल में मुँह डाले पड़ा रहता था। यहाँ तक

कि जब उसे चींटियों ने घेरा, तब भी उसने उनके दबने के डर से करवट तक न बदली ।

चंडता—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डता] १ उग्रता । प्रबलता । घोरता । २. बल । प्रताप । उ०—तुलसी लपन राम रावन विबुध विधि चक्रपानि चंडीपति चंडता सिहात है ।—तुलसी (शब्द०) ।

चंडतुंडक संज्ञा पुं० [सं० चण्डतुण्डक] गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।

चंडत्व—संज्ञा पुं० [सं० चण्डत्व] उग्रता । प्रबलता ।

चंडदीधिति—संज्ञा पुं० [सं० चण्डदीधिति] सूर्य ।

चंडनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डनायिका] १. दुर्गा । २. तांत्रिकों की अष्टनायिकाओं में से एक जो दुर्गा की सखी मानी जाती हैं ।

चंडभानु—संज्ञा पुं० [सं० चण्डभानु] दे० 'चंडकर' (को०) ।

चंडभार्गव—संज्ञा पुं० [सं० चण्डभार्गव] च्यवनवंशी एक ऋषि ।

विशेष—यह महाराज जनमेजय के सर्पयज्ञ के होता थे ।

चंडमुंड—संज्ञा पुं० [सं० चण्डमुण्ड] दो राक्षसों के नाम जो देवी के हाथों से मारे गए थे ।

चंडमुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डमुण्डा] चामुंडा देवी ।

चंडमुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डमुण्डी] महास्थान स्थित तांत्रिकों की एक देवी ।

चंडरश्मि—संज्ञा पुं० [सं० चण्डरश्मि] सूर्य (को०) ।

चंडरसा—संज्ञा पुं० [सं० चण्डरसा] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण होता है । इसी को चौबंसा, शशिवदना और पादांकुलक भी कहते हैं । जैसे,—नय धरु एका, न अनेका । गहु पन साखो, शशिवदना सो ।

चंडरुद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डरुद्रिका] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की सिद्धि जो अष्ट नायिकाओं के पूजन से प्राप्त होती है ।

चंडरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डरूपा] एक देवी (को०) ।

चंडवान्—वि० [सं० चण्डवत्] [वि० स्त्री० चंडवती] १. उष्ण । २. उग्र । प्रखर (को०) ।

चंडवती—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डवती] १. दुर्गा । २. अष्ट नायिकाओं में से एक ।

चंडवात—संज्ञा पुं० [सं० चण्डवात] तेज चलनेवाली हवा जिसके बीच में कभी कभी पानी भी बरसता हो (को०) ।

चंडविक्रम—[सं० चण्डविक्रम] बहुत अधिक शक्तिवाला । प्रचंड शक्तिवाला (को०) ।

चंडवृत्ति—वि० [सं० चण्डवृत्ति] १. विद्रोह करनेवाला । विद्रोही । २. जिद्दी । हठी (को०) ।

चंडवृष्टिप्रपात—संज्ञा पुं० [सं० चण्डवृष्टिप्रपात] एक दंडक वृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण (।।।) और सात रगण (ऽ।ऽ) होते हैं । जैसे,—न नर गिरि धरै भूलि कै राख जो चंडवृष्टि प्रपाताकुलै गोकुलै ।

चंडशक्ति[1]—वि० [सं० चण्डशक्ति] दे० 'चंडविक्रम' (को०) ।

चंडशक्ति[2]—संज्ञा पुं० बलि की सेना के एक दानव का नाम (को०) ।

चंडशील—वि० [सं० चण्डशील] कामी (को०) ।

चंडांशु—संज्ञा पुं० [सं० चण्डांशु] तीक्ष्ण किरणवाला सूर्य । उ०—भरे अतर के अमल बिराजत कनक पराता । चारु चंद्र चंडांशु अकारहि थार विविध अवदाता ।—रघुराज (शब्द०) ।

चंडा[1]—वि० स्त्री० [सं० चण्डा] उग्र स्वभाव की । कर्कशा । दे० 'चांड' ।

चंडा[2]—संज्ञा स्त्री० १. अष्टनायिकाओं में से एक । दुर्गा । २. चोर नामक गंधद्रव्य । ३. केवाँच । कौंछ । ४. सफेद दूब । ५. सौंफ । ६. सोवा । ७. एक प्राचीन नदी का नाम ।

चंडाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्ड+हिं० आई (प्रत्य०)] १. उतावलापन । २. शीघ्रता । ३. उपद्रव । अत्याचार (को०) ।

चंडात—संज्ञा पुं० [सं० चण्डात] १. एक सुगंधित घास या पौधा । २. सुगंधयुक्त करवीर (को०) ।

चंडातक—संज्ञा पुं० [सं० चण्डातक] १. स्त्रियों की चोली या कुरता । २. लहँगा । साया (को०) ।

चंडाल[1]—संज्ञा पुं० [सं० चाण्डाल] [स्त्री० चंडालिन, चंडालिनी] १. चांडाल । श्वपच । डोम । वि० दे० 'चांडाल' । २. एक वर्णसंकर जाति जिसकी उत्पत्ति शूद्र पिता और ब्राह्मणी से मानी जाती है (को०) । ३. इस जाति का व्यक्ति (को०) ।

चंडाल[2]—वि० नीच कर्म करनेवाला । क्रूर कर्म करनेवाला (को०) ।

चंडालकंद—संज्ञा पुं० [सं० चण्डालकन्द] एक कंद ।

विशेष यह कफ-पित्त-नाशक, रक्तशोधक और विषघ्न माना जाता है । पत्तियों की संख्या के हिसाब से इसके पाँच भेद माने गए हैं ।

चंडालता—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालता] १. चंडाल होने का भाव । २. नीचता । अधमता ।

चंडालत्व—संज्ञा पुं० [सं० चण्डालत्व] दे० 'चंडालता' ।

चंडालपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० चण्डालपक्षिन्] काक । कौवा । उ०—सठ स्वपक्ष तव हृदय विसाला । सपदि होहि पक्षी चंडाला ।—मानस, ७।११२ ।

चंडालबाल—संज्ञा पुं० [हिं० चंडाल+बाल] वह कड़ा और मोटा बाल जो किसी के माथे पर निकल आता है और बहुत अशुभ माना जाता है ।

चंडालवल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालवल्लकी] दे० 'चंडालवीणा' ।

चंडालवीणा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालवीणा] एक प्रकार का तंबूरा या चिकारा ।

चंडालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालिका] १. दुर्गा । २. चंडालवीणा । ३. एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ आदि दवा के काम में आती हैं ।

चंडालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालिनी] १. चंडाल वर्ण की स्त्री । २. दुष्टा स्त्री । पापिनी स्त्री । ३. एक प्रकार का दोहा जो

दूषित माना जाता है। जिस दोहे के आदि में जगण पड़े, उसको चंडालिनी दोहा कहते हैं। जैसे,—जहाँ विषम चरननि परै, कहूँ जगण जो आन। वखानना, चंडालिनी, दोहा दुख की खान।

विशेष—प्रथम और तृतीय चरण के आदि के एक ही शब्द में जगण पड़े तो दूषित है। यदि आदि के शब्द में जगण पूरा न हो और दूसरे शब्द से अक्षर लेना पड़े, तो उसमें दोष नहीं है। पर यदि यह भी बचाया जा सके, तो और भी उत्तम है।

चंडावल—संज्ञा पुं० [सं० चण्ड+आवलि] १. सेना के पीछे का भाग। पीछे रहनेवाले सिपाही। 'हरावल' का उलटा। चंदावल। २. वीर योद्धा। बहादुर सिपाही। ३. सतरी। पहरेदार। चौकीदार।

चंडाह—संज्ञा पुं० [देश०] गाढे की तरह का एक मोटा कपड़ा।

चंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डि] दे० 'चंडिका' [को०]।

चंडिग्रा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का देशी लोहा।

चंडिक—वि० [सं० चण्डिक] १. कर्कश स्वरवाला। २. जिसके लिंग के अग्रभाग का चमड़ा कटा हो [को०]।

चंडिकघंट—संज्ञा पुं० [सं० चण्डिकघण्ट] शिव। महादेव।

चंडिका¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डिका] १. दुर्गा। २. लड़ाकी स्त्री। कर्कशा स्त्री। ३. गायत्री देवी।

चंडिका²—वि० स्त्री० लड़ाकी। कर्कशा।

चंडिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डिमन्] १. आवेश। उग्रता। तीक्ष्णता। क्रोध। २. उष्णता। गर्मी। ताप [को०]।

चंडिल—संज्ञा पुं० [सं० चण्डिल] १. रुद्र। २. वथुआ का साग। ३. हज्जाम। नाई [को०]।

चंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डी] १. दुर्गा का वह रूप जो उन्होंने महिषासुर के वध के लिये धारण किया था और जिसकी कथा मार्कंडेय पुराण में लिखी है। दुर्गा। २. कर्कशा और उग्र स्त्री। ३. तेरह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें दो सगण और एक गुरु होता है। जैसे,—न नसु सिगरि नर। आयु तु अलपा। निसि दिन भजत विलासिनी तल्पा। कुबुध कुजन अघ ओघन खंडी। भजहु भजहु जनपालिनी चंडी।

चंडीकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० चण्डीकुसुम] लाल कनेर।

चंडीपति—संज्ञा पुं० [सं० चण्डीपति] शिव। महादेव।

चंडीश—संज्ञा पुं० [सं० चण्डीश] शिव।

चंडीश्वर—संज्ञा पुं० [सं० चण्डीश्वर] शिव। महादेव [को०]।

चंडीसुर—संज्ञा पुं० [सं० चण्डीश्वर] एक तीर्थ का नाम।

चंडु—संज्ञा पुं० [सं० चण्डु] १. चूहा। २. एक प्रकार का छोटा बंदर।

चंडू—संज्ञा पुं० [सं० चण्ड (=तीक्ष्ण) ?] अफीम का किवाम जिसका धूआँ नशे के लिये एक नली के द्वारा पीते हैं।

क्रि० प्र०—पीना।

विशेष—चीनी लोग चंडू बहुत पीते थे। अफगानिस्तान से चंडू बनकर हिंदुस्तान में आता है। वहाँ चंडू बनाने के लिये अफीम को तरल करके कई बार ताव दे देकर छानते हैं।

चंडूखाना—संज्ञा पुं० [हिं० चंडू+खाना] वह घर या स्थान जहाँ लोग इकट्ठे होकर चंडू पीते हैं।

मुहा०—चंडूखाने की गप=मतवालों की झूठी बकवाद। बिलकुल झूठी बात।

चंडूबाज—संज्ञा पुं० [हिं० चंडू+फ़ा० बाज (प्रत्य०)] चंडू पीनेवाला। चंडू पीने का व्यसनी।

चंडूल—संज्ञा पुं० [देश०] १. खाकी रंग की एक छोटी चिड़िया।

विशेष—यह पेड़ों और झाड़ियों में बहुत सुंदर घोंसला बनाती है और बहुत अच्छा बोलती है।

मुहा०—पुराना चंडूल=बेडौल, भद्दा या बेवकूफ आदमी।—(बाजारू)।

चंडेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० चण्डेश्वर] रक्तवर्ण शरीरधारी शिव का एक रूप।

चंडोग्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डोग्रा] दुर्गा की एक शक्ति [को०]।

चंडोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डोदरी] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियत किया था।

चंडोल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+दोल] १. प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे या अंबारी के आकार की होती है और जिसे चार आदमी उठाते हैं। २. मिट्टी का एक खिलौना जिसे चौघड़ा भी कहते हैं। उ०—तीन एक चंडोल में, रैदास शाह कबीर।—कबीर मं०, पृ० १२१।

चंडोला—संज्ञा पुं० [हिं० चंडोल] पालकी। मियाना। खड़खड़िया।

क्रि० प्र०—चढ़ना=किसी कन्या का विवाह के बाद पालकी पर ससुराल जाना।

चंडोली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डोली] मेघराग की एक रागिनी। उ०—हीरा घर गज अरु केवारा। चंडोली घर नित उजियारा।—माधवानल०, पृ० १९४।

चंडोली²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चंडोल का स्त्री०] पालकी।

चंद¹—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र] १. दे० 'चंद्र'। २. एक राग। दे० 'चांद्रक'। उ०—रामसरी खुमरी लागी रट धूया माठा चंद धरु।—वेलि०, दू० २४६। ३. हिंदी के एक प्राचीन कवि।

विशेष—ये दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की सभा में थे। इनका बनाया हुआ पृथ्वीराज रासो बहुत बड़ा काव्य है। ये लाहौर के रहनेवाले थे।

चंद²—संज्ञा पुं० [सं० चन्द] १. चंद्रमा। २. कपूर [को०]।

चंद³—वि० [फ़ा०] १. थोड़े से। कुछ। जैसे,—अभी उन्हें आए चंद रोज हुए हैं। २. कई एक। कुछ। जैसे,—चंद आदमी वहाँ बैठे हैं।

यौ०—चंद दर चंद=कुछ न कुछ। उ०—हर काम के आगाज में चंद दर चंद नुक्स नुमायाँ होते हैं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३२। चंदरोजा=अस्थायी। थोड़े दिनों का। उ०—यह झूठी कलई की हुई मनोहर इमारत चंद रोजा नुमाइश के लिये...।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६८।

चंदक—संज्ञा पुं० [सं० चन्दक] १. चंद्रमा । २. चाँदनी । ३. एक प्रकार की छोटी चमकीली मछली । चाँद मछली । ४. माथे पर पहनने का एक अर्द्धचंद्राकार गहना ।

विशेष—इसके बीच में नग और किनारे पर मोती जड़े रहते हैं । सिर में यह तीन जगह से बँधा रहता है ।

५. नथ में पान के आकार की बनावट जिसमें उसी आकार का नग या हीरा बैठाया रहता है और किनारे पर छोटे छोटे मोती जड़े रहते हैं ।

चंदकपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० चन्दकपुष्प] १. लौंग । २. दे० 'चंद्रकला' ।

चंदचूड़—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रचूड] शिव [को०] ।

चंदचूर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] शिव ।

चंदधर—संज्ञा पुं० [स० चन्द्रधर] ध्रुपद राग का एक भाग [को०] ।

चंदन संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] १. एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और जो दक्षिण भारत के मैसूर, कुर्ग, हैदराबाद, करनाटक, नीलगिरि, पश्चिमी घाट आदि स्थानों में बहुत होता है । उत्तर भारत में भी कहीं कहीं यह पेड़ लगाया जाता है । चंदन की लकड़ी औषध तथा इत्र, तेल आदि बनाने के काम में आती है । हिंदू लोग इसे घिसकर इसका तिलक लगाते हैं और देवपूजन आदि में इसका व्यवहार करते हैं ।

विशेष—चंदन की कई जातियाँ होती हैं जिनमें से मलयागिरि या श्रीखंड (सफेद चदन) ही असली चंदन समझा जाता है और सबसे सुंगधित होता है । इसका पेड़ २०, ३० फुट ऊँचा और सदाबहार होता है । पत्तियाँ इसकी डेढ़ इंच लंबी और बेल की पत्तियों के आकार की होती हैं । फूल पत्तियों से अलग निकली हुई टहनियों में तीन तीन चार चार के गुच्छों में लगते हैं । यह पेड़ प्रायः सूखे स्थानों में ही होता है । इसके हीर की लकड़ी कुछ मटमैलापन लिए सफेद होती है जिसमें से बड़ी सुंदर महक निकलती है । यह महक एक प्रकार के तेल की होती है जो लकड़ी के अंदर होता है । जड़ में यह तेल सबसे अधिक होता है, इससे तेल या इत्र खींचने के लिये इसकी जड़ की बड़ी माँग रहती है । चदन की लकड़ी से चौखटे, नक्काशीदार संदूक आदि बहुत से सामान बनते हैं जिनमें सुगंध के कारण घुन नहीं लगता । हिंदू लोग इसकी लकड़ी को पत्थर पर पानी के साथ घिसकर तिलक लगाते हैं । इसका बुरादा धूप के समान सुगंध के लिये जलाया जाता है । चीन, बरमा आदि देशों के मंदिरों में चंदन के बुरादे की धूप बहुत जलती है । चंदन का पेड़ वास्तव में उस जाति के पेड़ों में है, जो दूसरे पौधों के रस से अपना पोषण करते हैं (जैसे,—बाँदा, कुकुरमुत्ता आदि) । इसी से यह घास, पौधों और छोटी छोटी झाड़ियों के बीच में अधिक उगता है । कौन कौन पौधे इसके आहार के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं, इसका ठीक ठीक पता न चलने से इसे लगाने में कभी कभी उतनी सफलता नहीं होती । यों ही अच्छी उपजाऊ जमीन में लगा देने से पेड़ बढ़ता तो खूब है, पर उसकी लकड़ी में उतनी सुगंध नहीं होती । सरकारी जंगल विभाग के एक अनुभवी अफसर की राय है कि चंदन के पेड़ के नीचे खूब घास पात उगने देना चाहिए, उसे काटना न चाहिए । घास पात के जंगल के बीच में बीज पड़ने से जो पौधा उगेगा और बढ़ेगा, उसकी लकड़ी में अच्छी सुगंध होगी । श्रीखंड या असली चंदन के सिवा और बहुत से पेड़ हैं जिनकी लकड़ी चंदन कहलाती है । जंजीबार (अफ्रीका) से भी एक प्रकार का श्वेत चंदन आता है, जो मलयागिरि के समान व्यवहृत होता है । हमारे यहाँ रंग के अनुसार चंदन के कुछ भेद किए गए हैं । जैसे,—श्वेत चंदन, पीत चंदन, रक्त चंदन इत्यादि । श्वेत चंदन और पीत चंदन एक ही पेड़ से निकलते हैं । रक्त चंदन का पेड़ भिन्न होता है । उसकी लकड़ी कड़ी होती है और उसमें महक भी वैसी नहीं होती । निघंटु रत्नाकर आदि वैद्यक के ग्रंथों में चंदन के दो भेद किए गए हैं—एक बेट्ट, दूसरा सुक्कडि । मलयागिरि के अंतर्गत कुछ पर्वत हैं जो बेट्ट कहलाते हैं । अतः उन पर्वतों पर होनेवाले चंदन का भी उल्लेख है जिसे कैरातक भी कहते हैं । संभव है, यह किरात देश (आसाम और भूटान) से आता रहा हो । चंदन के विषय में अनेक प्रकार के प्रवाद लोगों में प्रचलित हैं । ऐसा कहा जाता है कि चंदन के पेड़ में बड़े बड़े साँप लिपटे रहते हैं । चंदन अपनी सुगंध के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है । अरबवाले पहले भारतवर्ष, लंका आदि से चंदन पश्चिम के देशों में ले जाते थे । भारतवर्ष में यद्यपि दक्षिण ही की ओर चंदन विशेष होता है, तथापि उसके इत्र और तेल के कारखाने कन्नौज ही में हैं । पहले लखनऊ और जौनपुर में भी कारखाने थे । तेल निकालने के लिये चंदन को खूब महीन कूटते हैं । फिर इस बुकनी को दो दिन तक पानी में भिगोकर उसे भभके पर चढ़ाते हैं । भाप होकर जो पानी टपकता है, उसके ऊपर तेल तैरने लगता है । इसी तेल को काछकर रख लेते हैं । एक मन चदन में से २ से ३ सेर तक तेल निकलता है । अच्छे चंदन का तेल मलयागिरि कहलाता है और घटिया मेल का कठिया या जहाजी । चंदन औषध के काम में भी बहुत आता है । क्षत या घाव इससे बहुत जल्दी सूखते हैं । वैद्यक में चंदन शीतल और कड़ुआ तथा दाह, पित्त, ज्वर, छर्दि, मोह, तृषा आदि को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—श्रीखंड । चंद्रकांत । गोशीर्ष । भोगिवल्लभ । भद्रसार । मलयज । गंधसार । भद्रश्री । एकांग । पटरी । वर्णक । भद्राश्रय । सेव्य । रौहिण । ग्राम्य । सर्पेष्ट । पीतसार । महर्घ । मलयोद्भव । गंधराज । सुगंध । सर्पावास । शीतल । शीतगंध । तैलपर्णिक । चंद्रद्युति । सितहिम, इत्यादि ।

२. चंदन की लकड़ी । चंदन की लकड़ी या टुकड़ा ।

क्रि० प्र०—घिसना ।—रगड़ना ।

मुहा०—चंदन उतारना=पानी के साथ चंदन की लकड़ी को घिसना जिसमें उसका अंश पानी में घुल जाय ।

३. वह लेप जो पानी के साथ चंदन को घिसने से बने । घिसे हुए चंदन का लेप ।

मुहा०—चंदन चढ़ाना=घिसे हुए चंदन को शरीर में लगाना ।
४. गंधप्रसार । पसरन । ५. राम की सेना का एक बंदर । ६. छप्पय छंदन के तेरहवें भेद का नाम । ७. एक प्रकार का बड़ा तोता ।

विशेष—यह उत्तरीय भारत, मध्य भारत, हिमालय की तराई और काँगड़े आदि में पाया जाता है ।

चंदनगिरि—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनगिरि] मलयाचल पर्वत ।

चंदनगोपा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनगोपा] अनंतमूल नामक लता [को०] ।

चंदनगोह—संज्ञा पुं० [हिं० चंदन+गोह] एक प्रकार की गोह जो बहुत छोटी होती है ।

चंदनधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनधेनु] वह गाय जो पुत्र द्वारा सौभाग्यवती मृत माता के उद्देश्य से चंदन से अंकित करके दी जाती है ।

विशेष—यह दान वृषोत्सर्ग के स्थान में होता है; क्योंकि पिता की उपस्थिति में पुत्र को वृषोत्सर्ग का अधिकार नहीं होता ।

चंदनपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनपुष्प] १. चंदन का फूल । २. लौंग । लवंग ।

चंदनबावना Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० चंदन+बावना=वामन] चंदन बिरवा । उ०—साधू चंदन बावना, (जाके) एक राम की आस ।—दरिया० बानी, पृ० ३३ ।

चंदनयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनयात्रा] अक्षयतृतीया । वैशाख सुदी तीज । अखै तीज ।

चंदनवती[1]—वि० स्त्री० [सं० चन्दनवती] चंदन से युक्त ।

चंदनवती[2]—संज्ञा स्त्री० केरल देश की भूमि ।

चंदनशारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनशारिवा] एक प्रकार की शारिवा जिसमें चंदन की सी सुगंध होती है ।

चंदनसार—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनसार] १. वज्रसार । नौसादर । २. घिसा हुआ चंदन ।

चंदनहार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+हिं० हार] गले में पहनने की एक प्रकार की माला जो कई तरह की होती है । वि० दे० 'चंद्रहार' ।

चंदना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दना] चंदनशारिवा ।

चंदना[2] Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमस्] चंद्रमा ।

चंदना[3]—क्रि० स० [सं० चन्दन] चंदन का लेपन करना । शरीर में चंदन पोतना ।

चंदनादि—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनादि] चंदन, खस, कपूर, बकुची, इलायची आदि पित्तनाशक दवाओं का वर्ग ।

चंदनादि तैल—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनादि तैल] लाल चंदन के योग से बननेवाला आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध तेल ।

विशेष—यह तैल शरीर के अनेक रोगों पर चलता है और शरीर में नई कांति लानेवाला माना जाता है । रक्त चंदन, अगर, देवदारु, पद्मकाठ, इलायची, केसर, कपूर, कस्तूरी, जायफल, शीतल चीनी, दाल चीनी, नागकेसर इत्यादि को पानी के साथ पीसकर तेल में पकाते हैं और पानी के जल जाने पर तेल छान लेते हैं ।

चंदनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनी] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख रामायण में है ।

चंदनी[2] Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँदनी] दे० 'चाँदनी' । उ०—चमक्कै सनाहं उपमा सु चंडी । मनो चंदनी रैन प्रतिब्यंब मंडी ।—पृ० रा०, २८।१०२ ।

चंदनी[3]—वि० [सं० चन्दनिन्] चंदन से संबंधित [को०] ।

चंदनी[4]—संज्ञा पुं० शिव [को०] ।

चंदनीया—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रनीया] गोरोचन ।

चंदपखान Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपाषाण] दे० 'चंद्रकांत' । उ०—चंद की चाँदनी के परसे मनौं चंदपखान पहार चले च्वै ।—मति० ग्रं०, पृ० ३४८ ।

चंदबान Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रबाण] एक प्रकार का बाण । उ०—चले चंदबान, घनबान और कुहुकबान ।—भूषण (शब्द०) ।

विशेष—इस बाण के सिरे पर लोहे की अर्द्ध चंद्राकार गाँसी या फल लगा रहता है । इस बाण को उस समय काम में लाते हैं, जब किसी का सिर काटना होता है ।

चंदवि Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+हिं० वि०] मोरचंद्रिका । उ०—मोरनि नव तन चंदवि धारे । देखि दृग होत दुखारे । —नंद० ग्रं०, पृ० १६४ ।

चंदसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रश्री] एक प्रकार का बड़ा गहना जो हाथी के मस्तक पर पहनाया जाता है ।

चंदा—वि० [फ़ा०] १. इतना । २. बहुत । अधिक ।

चंदा[1]—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र या चन्द] चंद्रमा । उ०—ज्यों चकोर चंदा को निरखै इत उत दृष्टि न जाहि । सूर श्याम बिन छिन छिन युग सम क्यों करि रैन बिहाहि ।—सूर (शब्द०) ।

यौ०—चंदामामा=लड़कों को बहलाने का एक पद । जैसे,—'चंदा मामा दौड़ि आ । दूध भरी कटोरिया' इत्यादि ।

चंदा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० चंद (=कई एक)] १. वह थोड़ा थोड़ा धन जो कई एक आदमियों से उनके इच्छानुसार किसी कार्य के लिये लिया जाय । बेहरी । उगाही । बरार । २. किसी सामयिक पत्र या पुस्तक आदि का वार्षिक या मासिक मूल्य । ३. वह धन जो किसी सभा, सोसाइटी आदि को उनके सदस्यों या सहायकों द्वारा नियत समय पर दिया जाता है ।

चंदावत—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र] क्षत्रियों की एक जाति या शाखा ।

चंदावती—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रावती] श्री राग की सहचरी एक रागिनी ।

चंदावल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सेना के पीछे रक्षार्थ चलनेवाले सैनिक । चंडावल ।

चंदिका Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रिका] दे० 'चंद्रिका' ।

चंदिनि, चंदिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र] चाँदनी । चंद्रिका । उ०—चैत चतुरदसी चाँदिनी अमल उदित निसिराजु । उडुगन अवलि लसीं दस दिसि उमगत आनंद आजु ।—तुलसी (शब्द०) ।

चंदिनि, चंदिनी[2]—वि० चाँदनी। उजेली। उ०—तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चंदिनि रात न भावा।—तुलसी (शब्द०)।

चंदिर—संज्ञा पुं० [सं० चन्दिर] १. चंद्रमा। उ०—(क) रच्यो विश्वकर्मा सो मंदिर। परम प्रकाशित मानहु चंदिर।—रघुराज (शब्द०) (ख) हेम कलश कल कोट कंगूरे।—कहुँ मंदिर चंदिर सम रूरे।—रघुराज (शब्द०) २. हाथी। ३. कपूर [को०]।

चंदिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दिर] चाँदनी। ज्योत्स्ना। उ०—शारदिया चंदिरा सी, कौन है कर धन्य जो मधुभार मुझपर डालती।—ग्रग्नि०, पृ० २५।

चंदे—अव्य० [फ़ा०] कुछ दिन। थोड़ा समय।

चंदेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चँदेरी] दे० 'चँदेरी'।

चंदेरीपति—संज्ञा पुं० [हिं० चँदेरी+पति] दे० 'चँदेरीपति'।

चंदेल—संज्ञा पुं० [सं० चान्देल] क्षत्रियों की एक शाखा जो किसी समय कालिंजर और महोबे में राज्य करती थी। परमर्दिदेव या राजा परमाल इसी वंश के थे, जिनके सामंत आल्हा और ऊदल प्रसिद्ध हैं। संस्कृत लेखों में यह वंश चांद्रात्रेय के नाम से प्रसिद्ध है।

विशेष—चंदेलों की उत्पत्ति के विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि काशी के राजा इंद्रजित् के पुरोहित हेमराज की कन्या हेमवती बड़ी सुंदरी थीं। वह एक कुंड में स्नान कर रही थी। इसी बीच में चंद्रदेव ने उसपर आसक्त होकर उसे आलिंगन किया। हेमवती ने जब बहुत कोप प्रकट किया, तब चंद्रदेव ने कहा 'मुझसे तुम्हें जो पुत्र होगा, वह बड़ा प्रतापी राजा होगा और उसका राजवंश चलेगा'। जब उसे कुमारी अवस्था ही में गर्भ रह गया, तब चंद्रमा के आदेशनुसार उसने अपने पुत्र को ले जाकर खजुराहो के राजा को दिया। राजा ने उसका नाम चंद्रवर्मा रखा। कहते हैं कि चंद्रमा ने राजा के लिये एक पारस पत्थर दिया था। पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ। उसने महोबा नगर बसाया और कालिंजर का किला बनवाया। खजुराहो के शिलालेखों में लिखा है कि मरीचि के पुत्र अत्रि को चांद्रात्रेय नाम का एक पुत्र था। उसी के नाम पर यह चांद्रात्रेय नाम का वंश चला। सन् ९०० ईसवी से लेकर १५४५ तक इस वंश का प्रबल राज्य बुंदेलखंड और मध्य भारत में रहा। परमर्दिदेव के समय से इस वंश का प्रताप घटने लगा।

चंदोल—संज्ञा पुं० [फ़ा० चंदावल] दे० 'चंदावल'। उ०—तुंगतन अकंपन देख बड़ तोलरा, दस वदन मुसाहिब किया चदोलरा।—रघु० रू०, पृ० १८८।

चंदोवा—संज्ञा पुं० [हिं० चँदवा] दे० 'चँदवा'। उ०—पाँच भाँडे धातु के होई। सोरह हाथ चंदोवा सोई।—कबीर सा०, पृ० ८८४।

चंद्र[1]—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र] १. चंद्रमा।

विशेष—समास में इस शब्द का प्रयोग बहुत अधिक होता है। जैसे,—मुखचंद्र, चंद्रमुखी। कहीं कहीं यह श्रेष्ठ का अर्थ भी देता है। जैसे, पुरुषचँद्र। वि० दे० 'चंद्रमा'।

२. संख्या सूचित करने की काव्यशैली में एक की संख्या। ३. मोर की पूँछ की चंद्रिका। उ०—मदन मोर के चंद्र की झलकनि निदरति तन जोति।—तुलसी (शब्द०)। ४. कपूर। ५. जल। ६. सोना। स्वर्ण। ७. रोचनी नाम का पौधा। ८. पौराणिक भूगोल के १८ उपद्वीपों में से एक। ९. वह बिंदी जो सानुनासिक वर्ण के ऊपर लगाई जाती है। १०. लाल रंग का मोती। ११. पिंगल में टगण का दसवाँ भेद (।। ऽ ।।)। जैसे—मुरलीधर। १२. हीरा। १३. मृगशिरा नक्षत्र। १४. कोई आनंददायक वस्तु। हर्षकारक वस्तु। आल्हादजनक वस्तु। १५. नैपाल का एक पर्वत। १६. चंद्रभागा में गिरनेवाली एक नदी। १७. अर्ध विसर्ग का चिह्न (को०)। १८. लाल या रक्तवर्ण मोती (को०)। १९. सुंदर वस्तु (को०)।

चंद्र[2]—वि० १. आह्लादजनक। आनंददायक। २. सुंदर। रमणीय।

चंद्रक—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रक] १. चंद्रमा। २. चंद्रमा के ऐसा मंडल या घेरा। ३. चंद्रिका। चाँदनी। ४. मोर की पूँछ की चंद्रिका। ५. नहँ। नाखून। ६. एक प्रकार की मछली। ७. कपूर। उ०—करि उपचार थकी नहीं चलि उताल नँदनंद। चंद्रक चंदन चंद तें ज्वाल जगी चौचंद।—शृं० सत० (शब्द०)। ८. मालकोश राग का एक पुत्र (संगीत)। ९. सफेद मिर्च। १०. सहिजन।

चंद्रकन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकन्यका] एला। इलायची। उ०—चंद्रकन्यका, निष्कुटी, त्रिपुटी पुलकनि बोली।—नंद० ग्रं०, पृ० १४६।

चंद्रकर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकर] चंद्रिका। चाँदनी। ज्योत्स्ना। चंद्रमा की किरण [को०]।

चंद्रकला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकला] १. चंद्रमंडल का सोलहवाँ अंश। वि० दे० 'कला'। २. चंद्रमा की किरण या ज्योति। उ०—धानंदद्विज की चंद्रकला अबला सो लला की सजीवन मूरि भई है।—सेवक (शब्द०)। ३. एक वर्णवृत्त जो आठ सगण और एक गुरु का होता है। इसका दूसरा नाम सुंदरी भी है। यह एक प्रकार का सवैया है। जैसे,—सब सों गहि पाणि मिले रघुनंदन भेंटि कियो सब को बड़ भागी। ४. माथे पर पहनने का एक गहना। ५. छोटा ढोल। ६. एक प्रकार की मछली जिसे बचा भी कहते हैं। ७. एक प्रकार की बँगला मिठाई। ८. एक प्रकार का सातताला ताल।

विशेष—इसमें तीन गुरु और तीन प्लुत के बाद एक लघु होता है। इसका बोल यह है—तकिट किट तकिट किट धिक तां तां तां धिम धिम तां तां तां धिम धिक तां तां तां धिम धां।

९. नखाघात का चिह्न। नखक्षत (को०)।

चंद्रकवान्—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकवत्] मयूर। मोर।

चंद्रकलाधर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकलाधर] महादेव।

चंद्रकांत—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकान्त] १. प्राचीन ग्रंथों के अनुसार एक मणि या रत्न।

विशेष—इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह चंद्रमा के सामने करने से पसीजता है और इससे बूँद बूँद पानी टपकता है।
पर्या०—चन्द्रकांत मणि।
२. एक राग जो हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है। ३. चंदन। ४. कुमुद। ५. लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु की राजधानी का नाम।

चंद्रकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकान्ता] १. चंद्रमा की स्त्री। २. रात्रि। रात। ३. मल्लभूमि की एक नगरी जहाँ लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु राज्य करते थे। ४ पंद्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्त।

चंद्रकांति—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकान्ति] १. चाँदी। २. चाँदनी (को०)।

चंद्रकाम—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकाम] वह पीड़ा जो किसी पुरुष को उस समय होती है, जब कोई स्त्री उसे वशीभूत करने के लिये मंत्र तंत्र आदि का प्रयोग करती है।

चंद्रकी—संज्ञा पुं० [सं०चन्द्रकिन्] वह जिसे चंद्रक हो। मोर। मयूर।

चंद्रकुमार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकुमार] १. चंद्रमा का पुत्र—बुध। २. बौद्धों के एक जातक का नाम।

चंद्रकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकुल्या] काश्मीर की एक नदी का प्राचीन नाम।

चंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकूट] कामरूप प्रदेश का एक पर्वत जिसका बहुत कुछ माहात्म्य कालिका पुराण में लिखा है।

चंद्रकूप—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकूप] काशी का एक प्रसिद्ध कुआँ जो तीर्थ स्थान माना जाता है।

चंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकेतु] लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम जिन्हें भरत के कहने से राम ने उत्तर का चंद्रकांत नामक प्रदेश दिया था।

चंद्रक्रीड—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रक्रीड] संगीत का एक ताल (को०)।

चंद्रक्षय—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रक्षय] अमावस्या।

चंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रगिरि] नेपाल का एक पर्वत।
विशेष—यह काठमांडू के पास है और इसकी ऊँचाई ८५०० फुट है।

चंद्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रगुप्त] १. चित्रगुप्त जो यम की सभा में रहते हैं। २. मगध देश का प्रथम मौर्यवंशी राजा।
विशेष—इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी और इसने बलख के यूनानी (यवन) राजा सील्यूकस पर विजय प्राप्त करके उसकी कन्या ब्याही थी। कौटिल्य चाणक्य की सहायता से महानंद तथा और नंदवंशियों को मारकर इसने मगध का राजसिंहासन प्राप्त किया था, जिसकी कथा, विष्णु, ब्रह्म, स्कंद, भागवत आदि पुराणों में मिलती है। इसी कथा को लेकर संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक मुद्राराक्षस बना है। चंद्रगुप्त बड़ा प्रतापी राजा था। इसने पंजाब आदि स्थानों से यवनों (यूनानियों) को निकाल दिया था। यह ईसा से ३२१ वर्ष पूर्व मगध के राजसिंहासन पर बैठा और २४ वर्ष तक राज्य करता रहा।
३. गुप्त वंश का एक बड़ा प्रतापी राजा।
विशेष—इसे विक्रम या विक्रमादित्य भी कहते थे। इसका विवाह लिच्छवी राज की कन्या कुमारी देवी से हुआ था। शिलालेखों से जाना जाता है कि इस राजा ने सन् ३१८ के लगभग समस्त उत्तरी भारत पर साम्राज्य स्थापित किया था। लोगों का अनुमान है कि इसी प्रथम चंद्रगुप्त ने गुप्त संवत् चलाया था।
४. गुप्त वंश का एक दूसरा राजा।
विशेष—यह प्रथम चंद्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त का पुत्र था। इसे विक्रमांक और देवराज भी कहते थे। इसने अपना विवाह नेपाल के राजा की कन्या ध्रुवदेवी के साथ किया था। इसने दिग्विजय करके बहुत से देशों में अपनी कीर्ति स्थापित की थी। शिलालेखों से पता लगता है कि इसने ईसवी सन् ४०० से ४१३ तक राज्य किया था।

चंद्रगृह—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रगृह] कर्क राशि।
विशेष—चंद्र या उसके किसी पर्यायवाची शब्द में गृह या उसके किसी पर्यायवाची शब्द के लगने से 'कर्क राशि' अर्थ होता है।

चंद्रगोल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रगोल] चंद्रमंडल। चंद्रलोक।

चंद्रगोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रगोलिका] चंद्रिका। चाँदनी।

चंद्रग्रहण—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रग्रहण] चंद्रमा का ग्रहण। वि० दे० 'ग्रहण'।

चंद्रघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रघण्टा] नौ दुर्गाओं में से एक (को०)।

चंद्रचंचल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रचञ्चल] खरसा मछली।

चंद्रचंचला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रचञ्चला] दे० 'चंद्रचंचल' (को०)।

चंद्रचित्र—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रचित्र] एक देश का नाम जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में है।

चंद्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रचूड] मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले—शिव। महादेव।

चंद्रचूड़ामणि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रचूडामणि] फलित ज्योतिष में ग्रहों का एक योग। जब नवम स्थान का स्वामी केंद्रस्थ हो तब यह योग होता है। उ०—केंद्री है नवमें कर स्वामी योग चंद्रचूड़ामणि। गुरु द्विज भक्त सकल गुण सागर दाता शूर शिरोमणि (शब्द०)।

चंद्रज—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रज] बुध, जो चंद्रमा के पुत्र माने जाते हैं।

चंद्रजनक—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+जनक] समुद्र। सागर।

चंद्रजोत—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र+ज्योति] १. चंद्रमा का प्रकाश। २. महताबी नाम की आतिशबाजी। उ०—भारत सरस्वती आती है, सफेद चंद्रजोत छोड़ी जाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०१।

चंद्रताल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रताल] एक प्रकार का बारहताला ताल जिसे परम भी कहते हैं।

चंद्रदारा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रदारा] २७ नक्षत्र जो पुराणानुसार दक्ष की कन्याएँ हैं और चंद्रमा को ब्याही हैं।

चंद्रदेव—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+देव] १. चंद्रमा। २. महाभारत में कौरवों की ओर से लड़नेवाले एक योद्धा का नाम (को०)।

चंद्रद्युति—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रद्युति] १. चंद्रमा का प्रकाश या किरण। २. चंदन।

चंद्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+द्वीप] १८ पौराणिक द्वीपों में एक द्वीप का नाम [को०]।

चंद्रपंचांग—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपञ्चाङ्ग] वह पंचांग जो चांद्र तिथि मास के आधार पर निर्मित होता है [को०]।

चंद्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रपर्णी] प्रसारिणी लता।

चंद्रपाद—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपाद] चंद्रमा की किरणें [को०]।

चंद्रपाषाण—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपाषाण] वह पत्थर जिसमें से चंद्रकिरणों का स्पर्श होने से जल की बूँदें टपकने लगती हैं। चंद्रकांत।

चंद्रपुत्र—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपुत्र] चंद्रमा का पुत्र—बुध [को०]।

चंद्रपुली—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र+हिं० पूर] एक प्रकार की बँगला मिठाई जो गरी से बनाई जाती है।

चंद्रपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रपुष्पा] १. चाँदनी। २. बकुची। ३. सफेद भटकटैया।

चंद्रप्रभ[1]—वि० [सं० चन्द्रप्रभ] चंद्रमा के समान ज्योतिवाला। कांतिवान्।

चंद्रप्रभ[2]—संज्ञा पुं० १ जैनों के आठवें तीर्थंकर। इनके पिता का नाम महासेन और माता का नाम लक्ष्मणा था। २ तक्षशिला के राजा एक बोधिसत्त्व जो बड़े दानी थे।

विशेष- एक बार ब्राह्मण ने आकर इनसे इनका मस्तक माँगा। इन्होंने बहुत धन देकर उसे संतुष्ट करना चाहा; पर जब उसने न माना, तब इन्होंने अपने मस्तक पर से राजमुकुट उतारकर उसके आगे रखा। तब ब्राह्मण इन्हें एकांत में ले गया और वहाँ जाकर उसने इनका सिर काट लिया।

चंद्रप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रप्रभा] १.चंद्रमा की ज्योति। चाँदनी। चंद्रिका। २. बकुची नाम की ओषधि। ३. कचूर। ४. वैद्यक की एक प्रसिद्ध गुटिका जो अर्श, भगंदर आदि रोगों पर दी जाती है।

चंद्रप्रासाद—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्र+प्रासाद] छत पर स्थित वह कमरा जिसमें बैठकर लोग चाँदनी का आनंद लेते हैं [को०]।

चंद्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रबन्धु] १ चंद्रमा का भाई। शंख (क्योंकि चंद्रमा के साथ वह भी समुद्र से निकला था)। २. कुमुद।

चंद्रबधूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रबधू(=इंदुवधू)] बीरबहूटी। उ०—नाथ लटू भए लालन जू लखि भामिनि भाल की बंदन बूटी—चोप सों चारु सुधारस लोभ बिंधी बिधु मैं मनो चंद्रबधूटी।—नाथ (शब्द०)।

चंद्रबाण—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रबाण] अर्द्धचंद्र बाण जो सिर काटने के लिये छोड़ा जाता था।

विशेष—इसका फल अर्द्धचंद्राकार बनता था, जिसमें गले में पूरा बैठ जाय।

चंद्रबाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चान्द्रबाला] १. चंद्रमा की स्त्री। २. चंद्रमा की किरण। ३. बड़ी इलायची।

चंद्रबाहु—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रबाहु] एक असुर का नाम।

चंद्रबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रबिन्दु] अर्द्ध अनुस्वार की बिंदी। अर्द्धचंद्राकार चिह्नयुक्त बिंदु जो सानुनासिक वर्ण के ऊपर लगता है। जैसे,—'गाँव' में 'गा' के ऊपर।

चंद्रबिंब—संज्ञा पुं० [सं०चन्द्रबिम्ब]संपूर्ण जाति का एक राग जो दिन के पहले पहर में गाया और हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है।

चंद्रबोड़ा —संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+बँ० बोड़ा] एक प्रकार का अजगर।

चंद्रभवन—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभवन] एक रागिनी का नाम।

चंद्रभस्म—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभस्म] कपूर।

चंद्रभा संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभा] १. चद्रमा का प्रकाश। २. सफेद भटकटैया।

चंद्रभाग—संज्ञा पुं० [चन्द्रभाग] १. चंद्रमा की कला। २. सोलह की संख्या। ३. हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत या शिखर का नाम जिससे चंद्रभागा या चनाव निकली है। ऐसी कथा है कि किसी समय ब्रह्मा ने इसी पर्वत पर बैठकर देवताओं और पितरों के निमित्त चंद्रमा के भाग किए थे।

चंद्रभागा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभागा] पंजाब की चनाब नाम की नदी जो हिमालय के चंद्रभाग नामक खंड से निकलकर सिंधु नदी में मिलती है। वि० दे० 'चनाब'। उ०—शुभ कुरुखेत, अयोध्या, मिथिला, प्राग, त्रिवेनी न्हाए। पुनि शतद्रु औरहु चँद्रभागा, गंग ब्यास अन्हवाए।—सूर, (शब्द०)।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा के आदेश से चंद्रभाग पर्वत से शीता नाम की नदी उत्पन्न हुई। वह नदी चंद्रमा को डुबाती हुई एक सरोवर में गिरी। चंद्रमा के प्रभाव से इसका जल अमृतमय हो गया। इसी जल से चंद्रभागा नाम की कन्या उत्पन्न हुई जिसे समुद्र ने ब्याहा। चंद्रमा ने अपनी गदा की नोक से पहाड़ में दरार कर दिया जिससे होकर चंद्रभागा नदी बह निकली।

चंद्रभाट—संज्ञा पुं०[सं०चन्द्र+हिं०भाट]एक प्रकार के भिक्षुक साधु।

विशेष—ये शिव और काली के उपासक होते है और अपने साथ गाय, बैल, बकरी और बंदर आदि लेकर चलते हैं। ये प्रायः गृहस्थ होते हैं और खेतीबारी करते हैं।

चंद्रभानु—संज्ञा पुं०[सं० चन्द्रभानु] श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा के १० पुत्रों में से सातवें पुत्र का नाम। उ०—भानु स्वभाव तथा अभिमानू। बृहद्भानु स्वरभानु प्रभानू। चंद्रभानु श्रीरवि प्रतिभानू। भानुमान सह दस मतिमानू।—गोपाल (शब्द०)।

चद्रभाल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभाल] मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

चंद्रभास—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभास] तलवार [को०]।

चंद्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभूति] चाँदी।

चंद्रभूषण—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभूषण] महादेव। उ०—सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषण भालहीं।—तुलसी (शब्द०)।

चंद्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमण्डल] १. चंद्रमा का बिंब। २. चंद्रमा का घेरा या मंडल [को०]।

चंद्रमण पु†—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमणि] दे० 'चंद्रमणि'। उ०—मोल मगाड़ै चंद्रमण दहण सुथंभण दाह। दाह हिये लालच दहण, जतन न थंभण जाह।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ५८।

चंद्रमणि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमणि] १. चंद्रकांत मणि। उ०—
(क) चौकी हेम चंद्रमणि लागी हीरा रतन जराय खची।
भुवन चतुर्दश की सुंदरता राधे के मुख मनहि रची।—सूर
(शब्द०)। (ख) केती सोमकला करो, करो सुधा को दान।
नहीं चंद्रमणि जो द्रवै, यह तेलिया पखान।—दीनदयाल
(शब्द०)। २. उल्लाला छंद का एक नाम।

चंद्रमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रमल्लिका] एक प्रकार की चमेली
[चिं०]।

चंद्रमल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रमल्ली] दे० 'चंद्रमल्लिका'। उ०—
चंद्रमल्ली पुंज की नव कुंज विहरत आय।—घनानंद०,
पृ० ३०१।

चंद्रमस्—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमस्] चंद्रमा।

चंद्रमह—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमह] कुत्ता [को०]।

चंद्रमा—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमस्] आकाश में चमकनेवाला एक
उपग्रह जो महीने में एक बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है
और सूर्य से प्रकाश पाकर चमकता है।

विशेष—यह उपग्रह पृथ्वी के सब से निकट है; अर्थात् यह पृथ्वी से २३८८०० मील की दूरी पर है। इसका व्यास २१६२ मील है और इसका परिमाण पृथ्वी का ४९ है। इसका गुरुत्व पृथ्वी के गुरुत्व का ८१ वाँ भाग है। इसे पृथ्वी के चारों ओर घूमने में २७ दिन, ७ घंटे, ४३ मिनट और ११३ सेकेंड लगते हैं, पर व्यवहार में जो महीना आता है, वह २९ दिन, १२ घंटे, ४४ मिनट २.७ सेकेंड का होता है। चंद्रमा के परिक्रमण की गति में सूर्य की क्रिया से बहुत कुछ अंतर पड़ता रहता है। चंद्रमा अपने अक्ष पर महीने में एक बार के हिसाब से घूमता है; इससे सदा प्रायः उसका एक ही पार्श्व पृथ्वी की ओर रहता है। इसी विलक्षणता को देखकर कुछ लोगों को यह भ्रम हुआ था कि यह अक्ष पर घूमता ही नहीं है। चंद्रमंडल में बहुत से धब्बे दिखाई देते हैं जिन्हें पुराणानुसार जनसाधारण कलंक आदि कहते हैं। पर एक अच्छी दूरबीन के द्वारा देखने से ये धब्बे गायब हो जाते हैं और इनके स्थान पर पर्वत, घाटी, गर्त्त, ज्वालामुखी पर्वतों से विवर आदि अनेक पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा का अधिकांश तल पृथ्वी के ज्वालामुखी पर्वतों से पूर्ण किसी प्रदेश का सा है। चंद्रमा में वायुमंडल नहीं जान पड़ता और न बादल या जल ही के कोई चिह्न दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा में गरमी बहुत थोड़ी दिखाई पड़ती है। प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों के मत से भी चंद्रमा एक ग्रह है, जो सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। भास्कराचार्य के मत से चंद्रमा जलमय है। उसमें निज का कोई तेज नहीं है। उसका जितना भाग सूर्य के सामने पड़ता है, उतना दिखाई पड़ता है—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार धूप में घड़ा रखने से उसका एक पार्श्व चमकता है और दूसरा पार्श्व उसी की छाया से अप्रकाशित रहता है। जिस दिन चंद्रमा के नीचे के भाग पर अर्थात् उस भाग पर जो हम लोगों की ओर रहता है, सूर्य का प्रकाश बिलकुल नहीं पड़ता, उस दिन अमावस्या होती है। ऐसा तभी होता है, जब सूर्य और चंद्र एक राशिस्थ अर्थात् समसूत्र में होते हैं। चंद्रमा बहुत शीघ्र सूर्य की सीध से पूर्व की ओर हट जाता है और उसकी एक एक कला क्रमशः प्रकाशित होने लगती है। चंद्रमा सूर्य की सीध (समसूत्र पात) से जितना ही अधिक हट जायगा, उसका उतना ही अधिक भाग प्रकाशित होता जायगा। द्वितीया के दिन चंद्रमा के पश्चिमांश पर सूर्य का जितना प्रकाश पड़ता है, उतना भाग प्रकाशित दिखाई पड़ता है। सूर्य सिद्धांत के मतानुसार जब चंद्रमा सूर्य की सीध से ६ राशि पर चला जाता है तब उसका समग्र आधा भाग प्रकाशित हो जाता है और हमें पूर्णिमा का पूरा चंद्रमा दिखाई पड़ता है। पूर्णिमा के अनंतर ज्यों ज्यों चंद्रमा बढ़ता जाता है, त्यों त्यों सूर्य की सीध से उसका अंतर कम होता जाता है; अर्थात् वह सूर्य की सीध की ओर आता जाता है और प्रकाशित भाग क्रमशः अंधकार में पड़ता जाता है। अनुपात के मतानुसार प्रकाशित और अप्रकाशित भागों के इस ह्रास और वृद्धि का हिसाब जाना जा सकता है। यही मत आर्यभट्ट, श्रीपति, ज्ञानराज, लल्ल, ब्रह्मगुप्त, आदि सभी पुराने ज्योतिषियों का है। चंद्रमा में जो धब्बे दिखाई पड़ते हैं, उनके विषय में सूर्यसिद्धांत, सिद्धांतशिरोमणि, बृहत्संहिता इत्यादि में कुछ नहीं लिखा है। हरिवंश में लिखा है कि ये धब्बे पृथ्वी की छाया हैं। कवि लोगों ने चकोर और कुमुद को चंद्रमा पर अनुरक्त वर्णन किया है। पुराणानुसार चंद्रमा समुद्रमंथन के समय निकले हुए चौदह रत्नों में से है और देवताओं में गिना जाता है। जब एक असुर देवताओं की पंक्ति में चुपचाप बैठकर अमृत पी गया, तब चंद्रमा ने यह वृत्तांत विष्णु से कह दिया। विष्णु ने उस असुर के दो खंड कर दिए जो राहु और केतु हुए। उसी पुराने वैर के कारण राहु ग्रहण के समय चंद्रमा को ग्रसा करता है। चंद्रमा के धब्बे के विषय में भी भिन्न भिन्न कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग कहते हैं कि दक्ष प्रजापति के शाप से चंद्रमा को राजयक्ष्मा रोग हुआ; उसी की शांति के लिये वे अपनी गोद में एक हिरन लिए रहते हैं। किसी किसी के मत से चंद्रमा ने अपनी गुरुपत्नी के साथ गमन किया था; इसी कारण शापवश उनके शरीर पर काला दाग पड़ गया है। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि जब इंद्र ने अहल्या का सतीत्व भंग किया था, तब चंद्रमा ने इंद्र को सहायता दी थी। गौतम ऋषि ने क्रोधवश उन्हें अपने कमंडल और मृगचर्म से मारा, जिसका दाग उनके शरीर पर पड़ गया।

रूस और अमेरिका चंद्रमा संबंधी अभियान और अनुसंधान में लगे हैं। १९५९ के ४ अक्तूबर के दिन रूस ने एक स्वयंचालित अंतर्ग्रही स्टेशन चंद्रमा की ओर छोड़ा जिसने चंद्रमा के अदृश्य भाग के फोटो ४० मिनट तक लिये। अमेरिका भी यह काम कर चुका है। दोनों के मानवहीन अंतरिक्ष यान मंदतम गति से चंद्रतल पर अवतरण कर चुके हैं। मानव

को वहाँ उतारने की चेष्टा में दोनों देश लगे हैं। यह हो जाने पर अनेक नवीन तथ्यों का पता लगेगा।

पर्या०—हिमांशु। इंदु। कुमुदबांधव। विधु। सुधांशु। शुभ्रांशु। ओषधीश। निशाब्जति। अज। जैवातृक। सोम। ग्लौ। मृगांक। कलानिधि। द्विजराज। शशधर। नक्षत्रराज। क्षपाकर। दोषाकर। निशानाथ। शर्वरीश। एणांक। शीतरश्मि। सारस। श्वेतवाहन। नक्षत्रनेमि। उडुप। क्षुधासूति। तिथिप्रणी। अमति। चांदिर। चित्राचीर। पक्षधर। रोहिणीश। अत्रिनेत्रज। पत्रज। सिंधुजन्मा। दशास्य। तारापीड़। निशामणि। मृगलांछन। दाक्षायणीपति। लक्ष्मीसहज। सुधाकर। सुधाधार। शीतभानु तमोहर। तुषारकिरण। हरि। हिमद्युति। द्विजपति। विश्वस्पा। अमृतदीधिति। हरिणांक। रोहिणीपति। सिंधुनंदन। तमोनुद्। एणतिलक। कुमुदेश। क्षीरोदनंदन। कांत। कलावान्। यामिनीपति। सिप्र। सुधानिधि। तुंगी। पक्षजन्मा। समुद्रनवनीत। पीयूषमहा। शीतमरीचि। त्रिनेत्रचूडामणि। सुधांग। परिज्ञा। तुंगीपति। पर्वधि। क्लेदु। जयंत। तपस। खचमस। विकस। दशवाजी। श्वेतवाजी। अमृतसू। कौमुदीपति। कुमुदिनीपति। दक्षजापति। कलामृत। शशभृत्। चणभृत्। छरयाभृत्। निशारत्न। निशाकर। रजनीकर। क्षपाकर। अमृत। श्वेतद्युति। शशलांछन। मृगलांछन।

चंद्रमात्रा—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमात्रा] संगीत में तालों के १४ भेदों में से एक।

चंद्रमाललाट—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमा + ललाट] वह जिसके माथे पर चंद्रमा हो—शिव। महादेव।

चंद्रमाललाम—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमा+ललाम (=तिलक, मस्तक पर का चिह्न)] महादेव। शकर। शिव।। उ० तहाँ दसरथ के समत्थ नाथ तुलसी के चपरि चढ़ायो चाप चद्रमाललाम को।—तुलसी (शब्द०)।

चंद्रमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रमाला] १ २८ मात्राओं का एक छंद। उ०—नृपहि महाभट गुणि अति रिस करि अगणित सायक मारचो—(शब्द०)। २. एक प्रकार का हार। चंद्रहार।

चंद्रमास—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रमास या चन्द्रमास। दे० 'चांद्रमास'।

चंद्रमुख—वि० [सं० चन्द्रमुख] [स्त्री० चन्द्रमुखी] चंद्रमा की तरह सुंदर मुखवाला [को०]।

चंद्रमौलि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमौलि] मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले—शिव। महादेव। उ०—तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि वृषकेतू।—तुलसी (शब्द०)।

चंद्ररत्न—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्ररत्न] मोती [को०]।

चंद्ररेखा, चंद्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० चान्द्ररेखा, चान्द्रलेखा] १. चंद्रमा की कला। २. चंद्रमा की किरण। ३. द्वितीया का चंद्रमा। ४. वकुची। ५. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में म र म य य (SSS, SIS, SSS, ISS, ISS) होता है। उ०—मैं री मैया यही लैहौं चंद्रलेखा खिलौना।—(शब्द०)।

चंद्ररेणु—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्ररेणु] शब्दचोर। काव्यचोर [को०]।

चंद्रललाम—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रललाम] शिव। महादेव [को०]।

चंद्रलोक—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रलोक] चंद्रमा का लोक। उ०—चंद्रलोक दीन्हों शशि को तब फगुआ में हरि आप। सब नक्षत्र को राजा कीन्हों शशिमंडल में छाप।—सूर (शब्द०)।

चंद्रवंश—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रवंश] क्षत्रियों के दो आदि और प्रधान कुलों में से एक जो पुरुरवा से आरंभ हुआ था।

चंद्रवंशी—वि० [सं० चान्द्रवंशिन्] चंद्रवंश का। जो क्षत्रियों के चंद्रवंश में उत्पन्न हुआ हो।

चंद्रवदन—वि० [सं० चान्द्रवदन] [वि० स्त्री० चान्द्रवदनी] दे० 'चंद्रमुख' [को०]।

चंद्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] बीरबहूटी। उ०—द्युतिवंतन कौं विपदा बहु कीन्ही। धरनी कहु चंद्रवधू धरि दीन्हीं।—रामचं०, पृ० ८८।

विशेष—जान पड़ता है, इंद्रवधू को किसी कवि ने 'इंदुवधू' समझकर ही इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया है।

चंद्रवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रवर्त्म] एक वर्णवृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में रगण, नगण, भगण और सगण (SIS, III, SII, IIS) होते हैं। जैसे—रे नभा शिव ललाट शशि समा। जानि त्यागहु धतू हिय तमा।

चंद्रवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रवल्लरी] सोमलता।

चंद्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रवल्ली] १. सोमलता। २. माधवी लता। ३. प्रसारिणी। पसरन।

चंद्रवा—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रातप] चँदवा। चँदोवा। उ०—मांडि रहे चंद्रवा तणौ मिसि फण सहसेई सहसफणि।—वेलि०, दू० १६०।

चंद्रवार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रवार] सोमवार।

चंद्रवाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रवाला] बड़ी इलायची।

चंद्रविंदु संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रविंदु] दे० 'चंद्रबिन्दु'।

चंद्रविहंगम—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रविहङ्गम] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

चंद्रवेष—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रवेष] शिव। महादेव। उ० जहँ चंद्रवेष करिकैं वनिता को ह्वां रहे।—लल्लू (शब्द०)।

चंद्रव्रत—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रव्रत] दे० 'चांद्रायण'।

चंद्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रशाला] १. चाँदनी। चंद्रिका। २. घर ऊपर की कोठरी। सबसे ऊपर का बँगला। अटारी। उ०—(क) चद्रशाला, केलिशाला, पानशाला, पाकशाला, गजशाला हेम की जड़ी मनी।—रघुराज (शब्द०)। (ख) चौकचंद्रशाला छविमाला। रजत कनक की बनी दिवाला।—रघुराज (शब्द०)। (ग) चढ़ी उतंग चद्रशाला में लखी अयोध्या नगरी।—रघुराज (शब्द०)।

चंद्रशालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रशालिका] दे० 'चद्रशाला' [को०]।

चंद्रशिला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रशिला] चद्रकांत मणि [को०]।

चंद्रशुक्ल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रशुक्ल] जंबुद्वीप के एक उपद्वीप का नाम [को०]।

चंद्रशूर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रशूर] हालों या हालिम नाम का पौधा। चंसुर।

चंद्रशृंग—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रशृङ्ग] द्वितीया के चंद्रमा के दोनों नुकीले छोर।

चंद्रशेखर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रशेखर] १ वह जिसका शिरोभूषण चंद्रमा है। शिव। महादेव। २. एक पर्वत का नाम।

विशेष—इस नाम का एक पर्वत अराकान ब्रह्मदेश (बर्मा) में।

३. एक पुराणप्रसिद्ध नगर का नाम। ४. संगीत में अष्टतालों में से एक। एक प्रकार का सावताला ताल जिसका बोल इस प्रकार है।········ भें भें। तक धी तक···ऽ···दिधि तक दिगिदां। थोंगा। गिड़ियों।

चंद्रसंज्ञ संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रसंज्ञ] कपूर [को०]।

चंद्रसंभव—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रसम्भव] बुध (ग्रह) [को०]।

चंद्रसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रसम्भवा] छोटी इलायची [को०]।

चंद्रसा—संज्ञा पुं० [देश०] गंधाविरोजा।

चंद्रसरोवर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रसरोवर] व्रज का एक तीर्थस्थान जो गोवर्द्धन गिरि के समीप है।

चंद्रसेखर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रशेखर] दे० 'चंद्रशेखर'। उ०—धरयो विर्प को ध्यान चंद्रशेखर नहिं ध्यायो।—व्रज० ग्रं०, पृ० १०६।

चंद्रसौध—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र + सौध] दे० 'चंद्रशाला'। उ०—मैंने चंद्रसौध में आपके शयन का प्रबंध करने के लिये कह दिया है।—चंद्र०, पृ० १८५।

चंद्रस्तुत—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रस्तुत] बुध (ग्रह) [को०]।

चंद्रहार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रहार] गले में पहनने का एक गहना या माला। नौलखा हार।

विशेष—इसमें अर्द्धचंद्राकार क्रमशः छोटे बड़े अनेक मनके होते हैं। बीच में पूर्णचंद्र के आकार का गोल पान होता है। यह हार सोने का बनता है और प्रायः जड़ाऊ होता है।

चंद्रहास—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रहास] १. खड्ग। तलवार। २. रावण की तलवार का नाम। उ०—चंद्रहास हर मम परितापं। रघुपति विरह अनल संजातं।—तुलसी (शब्द०)। ३. चाँदी।

चंद्रहासा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रहासा] सोमलता।

चंद्रांक—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्राङ्क] आभूषण विशेष।

चंद्रांकित—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्राङ्कित] महादेव। शिव।

चंद्रांशु—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रांशु] १. चंद्रमा की किरण। २. विष्णु का एक नाम [को०]।

चंद्रा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रा] १. छोटी इलायची। २. वितान। चँदवा। चँदोवा। ३. गुड़ची। गुर्च।

चंद्रा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र] मरने के समय की वह अवस्था जब टकटकी बँध जाती है, गला कफ से रुँध जाता है और बोला नहीं जाता। जैसे—उधर बाप को चंद्रा लग रही थी, इधर बेटे का व्याह हो रहा था।

क्रि० प्र०—लगना।

चंद्रागति घात—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रागतिघात] मृदंग की एक थाप। उ०—ताल धरे वनिता मृदंग चंद्रागतिघात बजै थोरी।—(शब्द०)।

चंद्रातप—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रातप] १. चाँदनी। चंद्रिका। २. चँदवा। वितान।

चंद्रात्मज—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रात्मज] चंद्रमा का पुत्र। बुध [को०]।

चंद्रानन[1]—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रानन] कार्तिकेय [को०]।

चंद्रानन[2]—वि० [वि० स्त्री० चन्द्रानना] चंद्रमा के समान मुखवाला [को०]।

चंद्रापीड़—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रापीड] १. शिव। महादेव। २. काश्मीर का एक राजा।

विशेष—इसका दूसरा नाम वज्रादित्य था। यह प्रतापादित्य का ज्येष्ठ पुत्र था और उसकी मृत्यु के उपरांत ६०४ शकाब्द में सिंहासन पर बैठा था। यह अत्यंत उदार और धर्मात्मा था।

चंद्रायण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रायण] दे० 'चांद्रायण'।

चंद्रायतन—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रायतन] चंद्रशाला।

चंद्रायन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रायण] एक प्रकार के छंद का नाम। जैसे, - आल्ह गयव दरबार कहिय परिमाल सों। धाइल हति बिन चुक्कलह लिय माल सों।—प० रासो, पृ० ४७।

चंद्रारि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रारि] राहु। उ०—चंद रहा चंद्रारि मझारा। मुकुत मिलेउ कौमुदी पसारा—इंद्रा०, पृ० १६४।

चंद्रार्क—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रार्क] १. चंद्रमा और सूर्य। चाँदी, ताँबे आदि के मिश्रण से बनी हुई एक धातु [को०]।

चंद्रार्ध—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रार्ध] चंद्रमा का आधा भाग। अर्धचंद्र [को०]।

चंद्रार्द्धचूड़ामणि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रार्द्धचूडामणि] महादेव। शिव।

चंद्रालोक—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रालोक] १. चंद्रमा का प्रकाश। २. जयदेव नामक कवि रचित अलंकार का एक संस्कृत ग्रंथ।

विशेष—अधिकांश लोगों का मत है कि चंद्रालोककार जयदेव, गीतगोविंदकार जयदेव से भिन्न हैं।

चंद्रावती—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रावती] दे० 'चंद्रावर्त्ता'।

चंद्रावर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रावर्त्ता] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पद में ४ नगण पर १ सगण होता है और ८+७ पर विराम। विराम न होने से 'शशिकला' (मणिगुण शरभ) वृत्त होता है। इसका दूसरा नाम 'मणिगुण निकर' है। जैसे — नचहु सुखद यशुमति सुत सहिता। लहहु जनम इह सखि सुख अमिता।

चंद्रावली—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रावली] कृष्ण पर अनुरक्त एक गोपी का नाम जो चंद्रभानु की कन्या थी।

चंद्रिकांबुज—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रिका+अम्बुज] श्वेतकुमुद [को०]।

चंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रिका] १. चंद्रमा का प्रकाश। चाँदनी। ज्योत्स्ना। कौमुदी। २. मोर की पूँछ पर का वह अर्द्धचंद्राकार चिह्न जो सुनहले मंडल से घिरा होता है। मोर की पूँछ के पर का गोल चिह्न या आँख। उ०—सोभित सुमन मयूर चंद्रिका नील नलिन तनु स्याम।—सूर (शब्द०)। ३. बड़ी इलायची। ४. छोटी इलायची। ५. चाँदा नाम की

मछली। ६. चंद्रभागा नदी। ७. कर्णस्फोटा। कनफोड़ा घास। ८. जूही या चमेली। ९. सफेद फूल की भटकटैया। १०. मेथी। ११. चंद्रशूर। चनसुर। १२. एक देवी। १३. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में न न त त ग (ııı, ııı, SSı SSı, S) और ७+६ पर यति होती है। जैसे,—न नित तगि कहूँ आन को धाव रे। भजहु हर घरी राम को बावरे। १४. वासपुष्पा। १५. संस्कृत व्याकरण का एक ग्रंथ। १६. माथे पर का एक भूषण। बेंदी। बेंदा। उ०—यहि भाँति नाचत गोपिका सब थकित ह्वै झुकि झुकि रहीं। कहिं माल पायल चंद्रिका खसि परी नकवेसर कहीं।—विश्राम (शब्द०)। १७. स्त्रियों का एक प्रकार का मुकुट या शिरोभूषण जिसे प्राचीन काल की रानियाँ धारण करती थीं। चंद्रकला।

चंद्रिकातप—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रिकातप] चाँदनी की उज्वलता। चाँदनी। उ०—चारु चंद्रिकातप से पुलकित निखिल धरातल।—ग्राम्या, पृ० ६८।

चंद्रिकाद्राव—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रिकाद्राव] चंद्रकांत मणि (को०)।

चंद्रिकापायी—संज्ञा पुं० [सं० चद्रिकापायिन्] चकोर (को०)।

चंद्रिकाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रिकाभिसारिका] शुक्लाभिसारिका नायिका।

चंद्रिकोत्सव—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रिकोत्सव] शरद पूनो का उत्सव। शरदोत्सव।

चंद्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रिमा] चाँदनी (को०)।

चंद्रिल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रिल] १. शिव। महादेव। २. नाई (को०)।

चंद्री—वि० [सं० चन्द्रिन्] १. चंद्र की तरह आह्लादक। उ०—चित्ररेष वाला विचित्र चंद्री चंद्रानन।—पृ० रा०, २५।१०९। २. सुनहला। सुवर्ण (सोने) वाला (को०)। ३. वुध (को०)।

चंद्रेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रेष्टा] कुमुदनी (को०)।

चंद्रोदय—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रोदय] १. चंद्रमा का उदय। २. वैद्यक में एक रस जो गंधक, पारे और सोने को भस्म करके बनाया जाता है। मरणासन्न मनुष्य को देने से उसकी बेहोशी थोड़ी देर के लिये दूर हो जाती है। इसे पुष्टई की तरह भी लोग खाते हैं।

३. चँदवा। चँदोवा। वितान।

चंद्रोपराग—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रोपराग] चंद्रग्रहण।

चंद्रोपल संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रोपल] चंद्रकांतमणि।

चंद्रौल—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र] राजपूतों की एक जाति या शाखा।

चंप—संज्ञा पुं० [सं० चम्पक] १. चंपा। २. कचनार। कोविदार वृक्ष।

चंपई—वि० [हिं० चंपा] चंपा के फूल के रंग का। पीले रंग का।

चंपक—संज्ञा पुं० [सं० चम्पक] १. चंपा। २. चंपा केला। ३. सांख्य में एक सिद्धि जिसे रम्यक भी कहते हैं। वि० दे० 'रम्यक'। ४. संपूर्ण जाति का एक राग जिसके गाने का समय तीसरा पहर है। यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है।

चंपकमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पकमाला] १. चंपा के फूलों की माला। २. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पद में भगण, मगण, सगण और एक गुरु (Sıı SSS ııS S) होता है। जैसे,—भूमि सबै काहू कर नाहीं। कृष्ण सखा साँचो जग माहीं।

चंपकरंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पक रम्भा] चंपा केला (को०)।

चंपकली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चंपाकली'। उ०—गल में कटवा, कंठा हँसली, उर में हुमेल, कल चंपाकली।—ग्राम्या, पृ० ४०।

चंपकारण्य—संज्ञा पुं० [सं० चम्पकारण्य] एक पुराना तीर्थ। आधुनिक चंपारन (को०)।

चंपकालु—संज्ञा पुं० [सं० चम्पालु] नाक या रोटी फल का पेड़।

चंपकावती—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पकावती] चंपापुरी (को०)।

चंपकुंद—संज्ञा पुं० [सं० चम्पकुन्द] एक प्रकार की मछली (को०)।

चंपकोश—संज्ञा पुं० [सं० चम्पकोश] कटहल (को०)।

चंपत—वि० [देश०] चलता। गायब। अंतर्धान।

क्रि० प्र०—बनना।—होना।

चंपा[1]—संज्ञा पुं० [सं० चम्पक] १. मझोले कद का एक पेड़।

विशेष—इसमें हलके पीले रंग के फूल लगते हैं। इन फूलों में बड़ी तीव्र सुगंध होती है। चंपा दो प्रकार का होता है। एक साधारण चंपा, दूसरा कटहलिया। कटहलिया चंपा के फूल की महक पके कटहल से मिलती हुई होती है। ऐसा प्रसिद्ध है कि चंपा के फूल पर भौंरे नहीं बैठते। जंगलों में चंपे के जो पेड़ होते हैं, वे बहुत ऊँचे और बड़े होते हैं। इसकी लकड़ी पीली, चमकीली और मुलायम, पर बहुत मजबूत होती है और नाव, टेबुल, कुरसी आदि बनाने और इमारत के काम में आती है। हिमालय की तराई, नैपाल, बंगाल, आसाम तथा दक्षिण भारत के जंगलों में यह अधिकता से पाया जाता है। चित्रकूट में इसकी लकड़ी की मालाएँ बनती हैं।

२. चंपा का फूल। उ०—अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज है।—भूषण ग्रं०, पृ० १०१। ३. एक प्रकार का मीठा केला जो बंगाल में होता है। ४. घोड़े की एक जाति। ५. एक प्रकार का कुसियार या रेशम का कीड़ा जिसके रेशम का व्यवहार पहले आसाम में बहुत होता था। ६. एक प्रकार का बहुत बड़ा सदाबहार पेड़।

विशेष—यह वृक्ष दक्षिण भारत में अधिकता से पाया जाता है। इसकी लकड़ी कुछ पीलापन लिए बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम के अतिरिक्त गाड़ी, पालकी, नाव आदि बनाने के काम में भी आती है। इसे 'सुल्ताना चंपा' भी कहते हैं।

चंपा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पा] एक पुरी जो प्राचीन काल में अंग देश की राजधानी थी। यह वर्तमान भागलपुर के आस पास कहीं रही होगी। कर्ण यहीं का राजा था।

चंपाकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चम्पा+कली] गले में पहनने का स्त्रियों का एक गहना जिसमें चंपा की कली के आकार के सोने के दाने रेशम के तागे में गुँथे रहते हैं। उ०—चंपक की कली

बनी चंपाकली भारी फूलन के हार कंठ सोहत छविकारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४०।

चंपानेर—संज्ञा पुं० [हिं० चंपा+नगर] एक पुराना नगर।

विशेष—इस नगर के खँडहर अबतक बंबई के पंचमहाल जिले के अंतर्गत हैं। ईसवी १५वीं शताब्दी के अंतिम भाग तक यह एक राजपूत सरदार के अधिकार में था। पर सन् १४८२ में अहमदाबाद के बादशाह महमूद ने राजपूतों के आक्रमण से तंग आकर इसे ले लिया और इसके पास ही महम्मदाबाद चंपानेर बसाया। इस नगर को हुमायूँ ने सन् १५३३ में उजाड़ दिया। सन् १८०३ तक इसमें ४००.५०० आदमियों की बस्ती थी। पर अब दो चार घर रह गए हैं।

चंपापुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पापुरी] अंगदेश के राजा की राजधानी। कर्णपुरी। उ०—आपेट जाइ फंदनि पकरि दुरद आनि चंपापुरिय।—पृ० रा०, २६।६।

चंपारण्य—संज्ञा पुं० [सं० चम्पारण्य] प्राचीन काल का एक जंगल जो कदाचित् उस स्थान पर रहा हो, जिसे आजकल चंपारन कहते हैं।

चंपारन - संज्ञा पुं० [सं० चम्पारण्य] बिहार प्रांत का एक प्रदेश या जिला।

चंपाल—संज्ञा पुं० [सं० चम्पालु] दे० 'चंपकालु' [को०]।

चंपावती—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पावती] दे० 'चंपापुरी' [को०]।

चंपू—संज्ञा पुं० [सं० चम्पू] गद्यपद्यमय काव्य। वह काव्यग्रंथ जिसमें गद्य के बीच बीच में पद्य भी हो। जैसे, नलचंपू।

चंपेल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चम्पा+हिं० तेल] चमेली का तेल। उ०—बांधउँ बड़री छांहड़ी, नीरूँ नागरवेल। डाँभ सँभालूँ करहला, चोपड़िसू चंपेल।—ढोला०, दू० ३२०।

चंबक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चुंबक'। उ०—सुई होहिं चेतन्य यथा चंबक कै संगा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ५९।

चंबल[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मण्वती] १. एक नदी जो विंध्य पर्वत से निकलकर इटावे से १२ कोस पर जमुना में जा मिली है। २. नहरों या नालों के किनारे पर लगी हुई लकड़ी जिससे सिंचाई के लिये पानी ऊपर चढ़ाते हैं।

चंबल[2]—संज्ञा पुं० पानी की बाढ़।

मुहा०—चंबल लगना=खूब पानी बढ़ना। जलमय होना।

चंबल[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० चुंबल] १. भीख माँगने का कटोरा या खप्पर। २. चिलम का सरपोश।

चंबली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चुंबल] एक प्रकार का छोटा प्याला।

चंबी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कागज या मोमजामे का एक तिकोना टुकड़ा जो कपड़ों पर रंग छापते समय उन स्थानों पर रखा जाता है, जहाँ रंग चढ़ाना मंजूर नहीं होता। पट्टी। कतरनी।

चंबू—संज्ञा पुं० [?] १. एक प्रकार का धान जो पहाड़ों में बिना सींची हुई जमीन पर चैत में होता है। २. ताँबे, पीतल या और किसी धातु का छोटे मुँह का सुराहीनुमा बरतन जिससे हिंदू देवमूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं। ३. एक प्रकार का तोड़ा जो विशेषकर ओड़छा में बनता है। इसका फूल बहुत उत्तम होता है।

चँसुर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रशूर] हालों या हालिम नाम का पौधा।

विशेष—यह पौधा लगभग दो फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते पतले और कटावदार गुलदावदी के पत्तों के से होते हैं। पत्तों का लोग साग खाते हैं। पौधे के बीज को भी चँसुर कहते हैं।

चँगना(पु)—क्रि० स० [हिं० चंगा या फ़ा० तंग] तंग करना। कसना। खींचना। उ०—राम रंग ही सों रँगरेजवा मेरी अँगिया रंग दे रे।....द्विगुन करम तागन से बीनी, रोम रोम भँझरि अति भीनी, बड़े सुकृत रतनन से कीनी, ख़सक होई तो चँगि दे रे।—देव स्वामी (शब्द०)।

चँगेर, चँगेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चङ्गेरिक] १. बाँस की पट्टियों की बनी हुई छिछली डलिया। थाली के आकार की बाँस की चौड़ी टोकरी। २. फूल रखने की डलिया। डगरी। उ०—रघुनाथ काल्हि भेजे मेवा भाँति भाँतिन के फूलन के हार सों चँगेर सोने की भरी।—रघुनाथ (शब्द०)। ३. चमड़े का जलपात्र। मशक। पखाल। ४. रस्सी में बाँधकर लटकाई हुई टोकरी जिसमें बच्चों को सुलाकर पालना झुलाते हैं। बहुत छोटे बच्चों का वह झूला जिसे बच्चा जनमने पर फूफी आदि संबंधी स्त्रियाँ बच्चे की माँ को भेंट करती हैं। उ०—रघुकुल की सब सुभग सुवासिनि औसन लिए चँगेरी। विविध भाँति की जटित जवाहिर दीपावली घनेरी।—रघुराज (शब्द०)। ५. चाँदी का एक जालीदार पात्र जो प्रायः प्याले के आकार का होता है। यह भी फूल रखने के काम में आता है।

चँगेरा—संज्ञा पुं० [हिं० चँगेरी] बड़ी चगेर। टोकरा।

चँगेल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो पुराने खेड़े या गिरे हुए मकानों के खँडहरों में उत्पन्न होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोल गोल होती हैं और खाने में कुछ कनकनाती हैं। इसमें कुछ कालापन लिए लाल रंग के घंटी के आकार के फूल लगते हैं। बीज गोल गोल होते हैं और हकीमी चिकित्सा में ये खुब्बाजी के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह घास फारस के शीराज, मर्जदरान आदि प्रदेशों में बहुत होती है।

चँगेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चँगेरी] दे० 'चँगेर' या 'चँगेरी'।

चँचरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. माझियों की भाषा में पत्थर के ऊपर से होकर बहनेवाला पानी। २. एक चिड़िया जो भारत में स्थिर रूप से रहती है। यह छोटा घोंसला बनाती है जो जमीन पर घास आदि के नीचे छिपा रहता है। यह प्रायः तीन अंडे देती है। ३. वह अन्न जो दाना पीटने पर भी बाल में लगा रहे। गूरी। कोसी। करही। भूररी। (ज्वार, मूँग आदि के लिये)।

चँचोरना—क्रि० स० [अनु०] दाँतों से दबा दबाकर चूसना। जैसे, हड्डी चँचोरना। दे० 'चचोड़ना'। उ०—या माया के कारने, हरि सों बैठा तोरि। माया करक कर्दम है, कृता गया चँचोरि।—कबीर (शब्द०)।

चँड़ाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्ड(=तेज)] १. शीघ्रता। जल्दी।

फुरती। चटपटी। उतावली। उ०—(क) देखहु जाइ कहा जेवन कियों जसुमति रोहिनी तुरत पठाई। मैं अन्हवाए देति दुहुन कों तुम भीतर अति करी चँड़ाई।—सूर (शब्द०)। (ख) कहा भयो जो हम पै आई कुल की रीति गमाई। हमहूँ कों विधि को डर भारी अजहूँ जाहु चँड़ाई।—सूर (शब्द०)। २. प्रबलता। जबरदस्ती। अधम अत्याचार। उ०—करत चँड़ाई फिरत हौ नागर नंदकिशोर।— (शब्द०)।

चँदनौता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लहँगा। उ०—चँदनौता जों खर दुख भारी। बाँसपूर झिलमिल की सारी।—जायसी (शब्द०)।

चँदर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र] दे० 'चंद्र'। उ०—सेत पियर मन जोत बिलोके और चँदर सम त्रास न रोकै।—इंद्रा०, पृ० ७।

चँदराना†—क्रि० स० [सं० चन्द्र (दिखलाना)] १. झुठलाना। बहकाना। बहलाना। २ जान बूझकर कोई बात पूछना। जान बूझकर अनजान बनना।

चँदला—वि० [हिं० चाँद (=खोपड़ी)] जिसकी चाँद के बाल झड़ गए हों। गंजा। खल्वाट।

चँदवा¹—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रक या चन्द्रातप] १. एक प्रकार का छोटा मंडप जो राजाओं के सिंहासन या गद्दी के ऊपर चाँदी या सोने की चार चोबों के सहारे ताना जाता है। चँदोवा। २. चँदरछत। ३. वितान। उ०—ऊपर राता चँदवा छावा। औ भुइँ सुरंग बिछाव बिछावा।—जायसी (शब्द०)

विशेष—इसकी लंबाई चौड़ाई दो ढाई गज से अधिक नहीं होती और यह प्रायः मखमल, रेशम आदि का होता है, जिसपर कारचोब का काम बना रहता है। इसके बीच में प्रायः गोल काम रहता है।

चँदवा²—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रक] १. गोल आकार की चकती। गोल थिगली या पैवंद। जैसे टोपी का चँदवा। २. [स्त्री० चँदियाँ] तालाब के अंदर का गहरा गड्ढा जिसमें मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। ३. मोर की पूँछ पर का अर्द्धचंद्राकार चिह्न जो सुनहले मंडल के बीच में होता है। मोरपंख की चंद्रिका। उ०—(क) मोरन के चँदवा माथे बने राजत रुचिर सुदेस री। बदन कमल ऊपर अलिगन मनों घूँघरवारे केस री।—सूर (शब्द०)। (ख) सोहत हैं चँदवा सिर मोर के जैसिय सुंदर पाग कसी हैं।—रसखान (शब्द०)। ४. एक प्रकार की मछली।

चँदवार—संज्ञा पुं० [हिं० चांदवार] दे० 'चंदवार'। उ०—जेठ मास बरसात में पगधारे चँदवार।—कबीर मं०, पृ० ५९३।

चँदिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद+इया (प्रत्य)] १. खोपड़ी। सिर का मध्य भाग।

मुहा०—चँदिया पर बाल न छोड़ना=(१) सिर के बाल तक न छोड़ना। सब कुछ ले लेना। सर्वस्व हरण कर लेना। (२) सिर पर जूते लगाते लगाते बाल उड़ा देना। खूब जूते उड़ाना। चँदिया से परे सरक=सिर के ऊपर से अलग जाकर खड़ा हो। पास से हट जा। चँदिया मूँड़ना=(१) सिर मूड़ना। हजामत बनाना। (२) लूटकर खाना। धोखा देकर किसी का धन आदि ले लेना। (३) सिर पर खूब जूते लगाना। चँदिया खाना=(१) बकवाद से तंग करना। सिर खाना। सिर में दर्द पैदा करना। (२) सब कुछ हरण करके दरिद्र बना देना। चँदिया खुजाना=(१) सिर खुजलाना। (२) मार या जूते खाने को जी चाहना। मार खाने का काम करना।

२. छोटी सी रोटी। बचे हुए आटे की टिकिया। पिछली रोटी। ३. किसी ताल में वह स्थान जहाँ सबसे अधिक गहराई हो। जैसे,—इस साल तो ऐसी कम वर्षा हुई कि तालों की चँदिया भी सूख गई। ४. चाँदी की टिकिया।

चँदेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चेदि या हिं० चन्देल] एक प्राचीन नगर। उ०—राव चँदेरी को भूपाल। जाको सेवत सब भूपाल।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह ग्वालियर राज्य के नरवार जिले में है। आज कल की बस्ती में ४, ५ कोस पर पुरानी इमारतों के खँडहर हैं। पहले यह नगर बहुत समृद्ध दशा में था; पर अब कुछ उजड़ गया है। यहाँ की पगड़ी प्रसिद्ध है। चँदेरी में कपड़े (सूती और रेशमी) अब भी बहुत अच्छे बुने जाते हैं। यहाँ एक पुराना किला है जो जमीन से २३० फुट की ऊँचाई पर है। इसका फाटक 'खूनी दरवाजा' के नाम से प्रसिद्ध है; क्योंकि पहले यहाँ अपराधी किले की दीवार पर से ढकेले जाते थे। रामायण, महाभारत और बौद्ध ग्रंथों के देखने से पता लगता है कि प्राचीन काल में इसके आस-पास का प्रदेश चेदि, कलचुरी या हैहय वंश के अधिकार में था और चेदि देश कहलाता था। जब चंदेलों का प्रताप चमका, तब उनके राजा यशोवर्मा (संवत् ९८२ से १०१२ तक) ने कलचुरि लोगों के हाथ से कालिंजर का किला तथा आसपास का प्रदेश ले लिया। इसी से कोई कोई चँदेरी शब्द की व्युत्पति 'चंदेल' से बतलाते हैं। अलबरूनी ने चंदेरी का उल्लेख किया है। सन् १२५१ ईसवी में गयासुद्दीन बलबन ने चंदेरी पर अधिकार किया था। सन् १४३८ में यह नगर मालवा के बादशाह महमूद खिलजी के अधिकार में गया। सन् १५२० में चित्तौर के राणा साँगा ने इसे जीतकर मेदिनीराव को दे दिया। मेदिनीराव से इस नगर को बाबर ने लिया। सन् १५८६ के उपरांत बहुत दिनों तक यह नगर बुंदेलों के अधिकार में रहा और फिर अंत में सन् १८११ में यह ग्वालियर राज्य के अधिकार में आया।

चँदेरीपति—संज्ञा पुं० [हिं० चंदेरी+सं० पति] चंदेरी का राजा। शिशुपाल।

चँदोआ—संज्ञा पुं० [हिं० चंदवा] दे० 'चँदवा'। उ०—संसार ताप से बचाने के निमित्त भक्ति के मंडप का चंदोआ रचा हुआ है। भक्तमाल (श्री०), पृ० ३८२।

चँदोया†—संज्ञा पुं० [हिं० चँदवा], दे० 'चँदवा'।

चँदोवा—संज्ञा पुं० [हिं० चँदवा] दे० 'चँदवा'।

चँपना—क्रि० अ० [सं० चप्] १. बोझ से दबना। दबना। २. लज्जा से दबना। लज्जित होना। ३. उपकार से दबना। एहसान से दबना।

चँपीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँपना] जुलाहों के करघे की भँजनी में एक पतली लकड़ी जो दूसरी भाँज को दबाने के लिये लगी रहती है।

चँबेलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमेली] दे० 'चमेली'। उ०—कोइ चँबेलि नागेसरि बरना। जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४७।

चँबेलिया†—वि० [हिं० चमेली] दे० 'चमेलिया'।

चँबेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमेली] दे० 'चमेली'।

चँभार†—संज्ञा पुं० [हिं० चमार] दे० 'चमार'। उ० जा तन सूँ मुजे कछु नहिं प्यार. असते के नहिं हिंदु थेड चँभार।—दक्खिनी०, पृ० १०१।

चँवर—संज्ञा पुं० [सं० चामर] [स्त्री० अल्पा० चँवरी] १. सुरा गाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो काठ, सोने, चाँदी आदि की डांड़ी में लगा रहता है।

विशेष—यह राजाओं या देवमूर्तियों के सिर पर, पीछे या बगल से डुलाया जाता है, जिससे मक्खियाँ आदि न बैठने पावें। कभी कभी यह खस का भी बनता है। मोर की पूँछ का जो चँवर बनता है, उसे मोरछल कहते हैं। चँवर प्रायः तिब्बती और भोटिया ले आते हैं।

यौ०—चँवरी गाय=वह गाय जिसकी पूँछ के बाल से चँवर बनाया जाता है।

२. घोड़ों और हाथियों के सिर पर लगाने की कलगी। उ०—तैसे चँवर बनाए औ घाले गल झंप। बँधे सेत गजगाह तहँ जो देखै सो कंप।—जायसी (शब्द०)।

चँवरढार—संज्ञा पुं० [हिं० चँवर+ढारना] चँवर डोलानेवाला सेवक। उ०—चँवरढार दुइ चँवर डोलावहिं।—जायसी (शब्द०)।

चँवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चँवर] लकड़ी के बेंट या डाँड़ी में लगा हुआ। घोड़े की पूँछ के बालों का गुच्छा जिससे घोड़े के ऊपर की मक्खियाँ उड़ाई जाती हैं।

चँहकार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहकार] दे० 'चहकार'। उ०—चातक की चँहकार और किलकार से कूजित।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११।

च¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कच्छप। कछुआ। २. चंद्रमा। ३. चोर। ४. दुर्जन। ५. शिव (को०)। ६. चर्वण। भक्षण (को०)।

च²—वि० १. निर्बीज। २. बुरा। अधम। ३. शुद्ध (को०)।

च³—अव्य० [सं०] और (को०)।

चइ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] महावतों की बोली का एक शब्द जिसका व्यवहार हाथी को घुमाने के लिये किया जाता है।

चइत†—संज्ञा पुं० [सं० चैत्र] दे० 'चैत'।

चइन†—संज्ञा पुं० [हिं० चैन] दे० 'चैन'।

चई—संज्ञा स्त्री० [सं० चव्य] पिपरामूल की जाति और लता की तरह का एक प्रकार का पेड़। वि० दे० 'चाव'।

विशेष—यह दक्षिण भारत तथा अन्य स्थानों में नदियों और जलशयों के किनारे होता है। इसकी जड़ जल्दी नष्ट नहीं होती; और यदि वृक्ष काट भी लिया जाय, तो उसमें फिर पत्ते निकल आते हैं। इसके पत्तों का आकार पान का सा होता है। इसकी जड़ तथा लकड़ी दवा के काम में आती है।

चउँकना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० चौंकना] दे० 'चौंकना'।

चओंकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० चौंकना] दे० 'चौंकना'। उ०—हरि धरि हार चओंकि पर राधा। अध माधव कर गिम रहु आधा।—विद्यापति, पृ० ५५०।

चउँहान—संज्ञा पुं० [हिं० चौहान] दे० 'चौहान'।

चउक†—संज्ञा पुं० [हिं० चौक] दे० 'चौक'।

चउकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकी] दे० 'चौकी'।

चउगुन(पु)† वि० [सं० चतुर्गुण] 'चौगुन'। उ०—चाँद वदनी धनि चकोर नयनी। दिवसे दिवसे भेलि चउगुन मलिनी।—विद्यापति०, पृ० १८५।

चउतरा†—संज्ञा पुं० [हिं० चौतरा] दे० 'चबूतरा'।

चउथा†—वि० [हिं० चौथा] दे० 'चौथा'।

चउदस†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौदस] दे० 'चौदस'।

चउदह†—वि० [हिं० चौदह] दे० 'चौदह'।

चउपाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौपाई] दे० 'चौपाई'।

चउपारि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौपाल] दे० 'चौपाल'।

चउर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० चँवर]। मोरछल। उ० धरि धरि सुंदर वेष चले हरषित हिये। चउर चीर उपहार हार मनिगन लिये।—तुलसी (शब्द०)।

चउरा—संज्ञा पुं० [हिं० चौरा] दे० 'चौरा'।

चउरासी(पु)—वि० [हिं० चौरासी] दे० 'चौरासी'। उ०—चरित्र चउरासी हू आलवूँ, बिलबिलती काँई मेल्है जाई।—बी० रासो, पृ० ४७।

चउरास्या—संज्ञा पुं० [हिं०] चारों ओर बैठनेवाले मुसाहिब। जागीरदार। उ०—धार नगरी राजा भोज नरेस। चउरास्या जे कै बसइ असेस।—बी० रासो. पृ० ६।

चउहट्ट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+हाट] चौहट्ट। चौराहा। उ०—चउहट्ट हाट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहुबिधि बना।—मानस, ६।२।

चउहान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चौहान] दे० 'चौहान'।

चक¹—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्रा० चक्क] १. चकई नाम का खिलौना। उ०—इत आवत दै जात दिखाई ज्यों भँवरा चक डोर। उतते सूत न टारत कतहूँ मोसों मानत कोर।—सूर (शब्द०)। २. चक्रवाक पक्षी। चकवा। उ०—संपति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार। तेहि निसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनसार।—तुलसी (शब्द०)। ३. चक्र नामक अस्त्र। ४. चक्का। पहिया ५. जमीन का बड़ा टुकड़ा। भूमि का एक भाग। पट्टी।

यौ०—चकबंदी।

मुहा०—चक काटना=भूमि का विभाग करना। जमीन की हद बाँधना।

६. छोटा गाँव। खेड़ा। पट्टी। पुरवा। ७ करघे को बैसर के कुलवाँसे से लटकती हुई रस्सियों से बँधा हुआ डंडा जिसके दोनों छोरों पर चकडोर नीचे की ओर जाती है।—(जुलाहे) ८. किसी बात की निरंतर अधिकता। तार।

मुहा- चक बँधना=बराबर बढ़ता जाना। एक पर एक अधिक होता जाना। तार बँधना। जैसे,—यहाँ आकर काम करो; देखो रुपयों का चक बँध जाता है।

९. अधिकार। दखल।

मुहा०—चक जमना=रंग जमना। अधिकार होना।

१०. सोने का एक गहना जिसका आकार गोल और उभारदार होता है। इसका चलन पंजाब में है। चौक।

चक²—वि० भरपूर। अधिक। ज्यादा। उ०-(क) उन्होंने चक माल मारा है। (ख) उनकी चक छनी है।—(भंगड़)।

चक³—वि० [सं०] चकपकाया हुआ। भ्रांत। भौचक्का। उ०—चक चकित चित्त चरवीन चुभि चकचकाइ चंडी रहत।—पद्माकर (शब्द०)।

चक⁴—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधु। २. खल।

चकई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकवा] मादा चकवा। मादा सुरखाव। वि० दे० 'चकवा'। उ०—(क) सीते सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार।—तुलसी (शब्द०)।

चकई²—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] घिरनी या गड़ारी के आकार का एक छोटा गोल खिलौना जिसके घेरे में डोरी लपेटी रहती है। इसी डोरी के सहारे लड़के इसे फिराते या नचाते हैं। उ०- (क) भौंरा चकई लाल पाट को लेडुआ माँगु खेलौना।—सूर (शब्द०)। (ख) इततें उत उततें इतै छिन न कहूँ ठहराति। जक न परति चकई भई, फिरि आवति फिरि जाति।—बिहारी (शब्द०)।

चकई³—वि० गोल बनावट का। जैसे,—चकई आड़ू। चकई छाती।

चकचकाना—क्रि० अ० [अनु०] १. पानी, खून, रस या और किसी द्रव पदार्थ का सूक्ष्म कणों के रूप में किसी वस्तु के अंदर से निकलना। रस रसकर ऊपर आना। जैसे,—जहाँ जहाँ बेंत लगा है, खून चकचका आया है। २. भींग जाना। उ०—चख चकित चित्त चरवीन चुभि चकचकाइ चंडिय रहत।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३०।

चकचकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] करताल नाम का बाजा।

चकचाना†—क्रि० अ० [अनु०] चौंधियाना। चकाचौंध लगना। उ०—तो पद चमक चकचाने चंदचूड़ चष चितवत एकटक जंक बँध गई है।—चरण (शब्द०)।

चकचाल†—संज्ञा पुं० [सं० चक+हिं० चाल] चक्कर। भ्रमण। फेरा। उ०—माया मत चकचाल करि चंचल कीए जीव। माया माते मद पिया दादू बिसरा पीव।—दादू (शब्द०)।

चकचावⓅ—संज्ञा पुं० [अनु०] चकाचौंध। उ०—गोकुल के चष से चकचाव गो चोर लौं चौंकि अयान विसासी।—(शब्द०)।

चकचून—वि० [सं० चक्र+चूर्ण] चूर किया हुआ। पिसा हुआ। चकनाचूर। उ०- पान, सुपारी खैर कहँ मिलै करै चकचून। तब लगि रंग न राचै जब लगि होय न चून।—जायसी (शब्द०)।

चकचूर¹—वि० [हिं० चक+चूर] दे० 'चकचून'। उ०—तिनको निरखे दिन चारि गये छिन में चकचूर ह्वै धूर समाये।—दीन० ग्रं०, पृ० १४६।

चकचूर²—संज्ञा पुं० [हिं०] मस्त। बेखुद। उ०—द्रव्य और अधिकार के नशे में ऐसा चकचूर हुआ कि लोक परलोक की कुछ खबर नहीं रही।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २६१।

चकचूरना- क्रि स० [हिं० चक+चूरन] टुकड़े टुकड़े कर डालना। चकनाचूर करना।

चकचूरा- वि० [हिं० चकचूर] दे० 'चकचून'। उ०—अगम पंथ सूँ पग न डिगावै होय जाय चकचूरा।—चरण० बानी, पृ० ८६।

चकचूहटⓅ†- क्रि० अ० [हिं० चकचकाना] चिंता। सोच। धुकधुकी। उ०—नरहर अहै पियारा, चकचूहट जिय होइ।—इंद्रा०, पृ० ५७।

चकचोंहट- Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकचूहट] दे० 'चकचूहट'। उ०—जागत कै चकचोंहट लागा। जस पंछी कर तें उड़ भागा।—हिंदी प्रेम०, पृ० २५८।

चकचोढ़Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चकचौंध'। उ०—फगुवा ताहि मोहिं चकचोढ़ी यह रसरीति ठई।—घनानंद, पृ० ४७४।

चकचोह—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चकचोही'।

चकचोही—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकचोहा] हँसी मजाक। चुहल।

चकचौंध¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकाचौंध] दे० 'चकाचौंध'।

चकचौंध²—वि० चकित। विस्मित। उ०—कोउ जु रहे चकचौंध रुचिर पीतांबर छवि पर।—नंद० ग्रं०, पृ० २७८।

चकचौंधना¹- क्रि० अ० [हिं० चख+चौंधना] आँख का अत्यंत अधिक प्रकाश के सामने ठहर न सकना। अत्यंत प्रखर प्रकाश के सामने दृष्टि स्थिर न रहना। आँख तिलमिलाना। चकाचौंध होना।

चकचौंधना²- क्रि० स० आँख में चमक उत्पन्न करना। आँख में तिलमिलाहट पैदा करना। चकाचौंधी उत्पन्न करना। उ०—(क) अंध धुंध अंबर ते गिरि पर मानो परत वज्र के तीर। चमकि चमकि चपला चकचौंधति श्याम कहत मन धीर।—सूर (शब्द०)। (ख) चकचौंधति सी चितवै चित मैं चित सोवत हूँ महँ जागत है।—केशव (शब्द०)।

चकचौंधाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चकचौंध'। उ०—गरजि बुलावति तोहि चंचला चमकत राह दिखाई। औरन के चकचौंधा लावत तेरी करत सहाई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १११।

चकचौंधी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकाचौंध] दे० 'चकाचौंध'।

चकचौंहⓅ—संज्ञा स्त्री० [देश०] चकाचौंध।

चकचौबंदⓅ—वि० [हिं० चक+फा० चौबंद] दे० 'चाकचौबंद'।

चकचौहना—क्रि० अ० [देश०] चाह से देखना। आशा लगाए टक

बाँधकर देखना। उ०—जनु चातक मुख बूँद सेवाती। राजा चकचौंहत तेहि भाँती।—जायसी (शब्द०)।

चकड़वा—संज्ञा पुं० [हिं० चकरवा] दे० 'चकरवा'।

चकडोर—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकई+डोर] १. चकई की डोरी। चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत। उ०—(क) खेलत अवध खोरि गोली भँवरा चकडोरि, मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे। तुलसी (शब्द०)। (ख) दे मैया भँवरा चकडोरी। जाइ लेहु आरे पर राखी काल्हि मोल लै राखै कोरी।—सूर (शब्द०)। २. जुलाहों के करघे में वह डोरी जो चक या नचनी में लगी हुई नीचे लटकती है और जिसमें बेसर बँधी रहती है।

चकडोल—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रदोल] पुराने ढंग की एक पालकी।

चकत—संज्ञा पुं० [हिं० चकत्ता] दाँत की पकड़। चकोटा।

मुहा०—चकत मारना=दाँत से मांस आदि नोच लेना। चकोटा मारना। दाँतों से काट खाना।

चकता—संज्ञा पुं० [तु० चगताई] दे० 'चकत्ता'।

चकताई(पु)—संज्ञा पुं० [तु० चगताई] दे० 'चकत्ता'।

चकती—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रवत् ?] १. किसी चद्दर के रूप की वस्तु का छोटा गोल टुकड़ा। चमड़े, कपड़े आदि में से काटा हुआ गोल या चौकोर छोटा टुकड़ा। पट्टी। गोल या चौकोर धज्जी। जैसे,—इस पुराने कपड़े में से एक चकती निकाल लो। २. किसी कपड़े, चमड़े, बरतन आदि के फटे या फूटे हुए स्थान पर दूसरे कपड़े, चमड़े या धातु (चद्दर) इत्यादि का टँका या लगा हुआ टुकड़ा। किसी वस्तु के फटे टूटे स्थान को बंद करने या मूँदने के लिये लगी हुई पट्टी या धज्जी। थिगली।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—बादल में चकती लगाना=अनहोनी बात करने का प्रयत्न करना। असंभव कार्य करने का आयोजन करना। बहुत बड़ी चढ़ी बातें कहना। ३. दुंबे भेड़ की गोल और चौड़ी दुम।

चकत्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं० चक्र+वृत्त] १. शरीर के ऊपर बना गोल दाग। चमड़े पर पड़ा हुआ धब्बा या दाग।

विशेष—रक्तविकार के कारण चमड़े के ऊपर लाल, नीले या काले चकत्ते पड़ जाते हैं।

२. खुजलाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से घेरे के बीच पड़ी हुई चिपटी और बराबर सूजन जो उभड़ी हुई चकती की तरह दिखाई देती है। ददोरा। ३. दाँतों से काटने का चिह्न। दाँत चुभने का निशान।

क्रि० प्र०—डालना।

मुहा०—चकत्ता भरना=दाँतों से काटना। दाँतों से मांस निकाल लेना। चकत्ता मारना=दाँतों से काटना।

चकत्ता[2]—संज्ञा पुं० [तु० चगताई] १. मोगल या तातार अमीर चगताई खाँ जिसके वंश में बाबर, अकबर आदि भारतवर्ष के मुगल बादशाह थे। उ०—मोटी भई चंडी बिनु चोटी के चबाय सीस, खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की।—भूषण (शब्द०)। २. चगताई वंश का पुरुष। उ०—मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीनो सरजा सुरेस ज्यों दुचित ब्रजराज को।—भूषण (शब्द०)।

चकदार—संज्ञा पुं० [हिं० चक+फा० दार (प्रत्य०)] वह जो दूसरे की जमीन पर कूआँ बनवावे और जमीन का लगान दे।

चकन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] गुलचाँदनी नाम का फूल। उ०—कमल गुलाब चकन की सैना। होत प्रफुल्लित नव तिय नैना।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ४१।

चकना(पु)—क्रि० अ० [सं० चक(=भ्रांत)] १. चकित होना। भौचक्का होना। चकपकाना। विस्मित होना। उ०—(क) चित्त चितेरी रही चकि सी जकि एक तें ह्वै गइ द्वै तस्वीर सी।—बेनीप्रवीन (शब्द०)। (ख) जदुबंसी धनि धनि मुख कहहीं। हरि की रीति देखि चकि रहहीं।—रघुराज (शब्द०)। २. चौंकना। आशंकायुक्त होना। उ०—(क) चित्र लिये नल को कर मैं। भवन अकेली ह्वै भरमैं। सग सखीनहु सों चकि कै। यो समता मिलवै तकि कै।—गुमान (शब्द०)। (ख) फूलत फूल गुलाबन के चटकाहटि चौंकि चकी चपला सी।—पद्माकर (शब्द०)। (ग) उचकी लची चौंकी चकी मुख फेरि तरेरि बड़ी अँखियाँ चितई।—बेनी (शब्द०)।

चकनाचूर—वि० [हिं० चक=भरपूर+चूर] १. जिसके टूट फूटकर बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो गए हों। चूरचूर। खंड खंड। चूर्णित। उ०—साहब का घर दूर है जैसे लंबी खजूर। चढ़ै तो चाखै प्रेम रस गिरै तो चकनाचूर।—कबीर (शब्द०)। २. बहुत थका हुआ। श्रम से शिथिल। अत्यंत श्रांत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चकपक—वि० [सं० चक (=भ्रांत)] भौचक्का। चकित। हक्का बक्का। स्तंभित।

चकपकाना—क्रि० अ० [सं० चक (=भ्रांत)] १. आश्चर्य से इधर उधर ताकना। विस्मित होकर चारों ओर देखना। भौचक्का होना। उ०—कुँअर को देखते ही बधाई बधाई का चारों ओर से शोर मच गया। कुँअर बहुत चकपकाया कि यह मामला क्या है?—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८०८। २. आशंका से इधर उधर ताकना। चौंकना।

चकफेर—संज्ञा पुं० [सं० चक्र+हिं० फेर] चक्कर। फेरी। उ०—अरी भटू हिय ह्वै लटू घाय रह्यो चकफेर। ब्रजनिधि नैन की लै गयो नेक न लागी बेर।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३६।

चकफेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र, हिं० चक+फेरी] किसी वृत्त या मंडल के चारों ओर फिरने की क्रिया। परिक्रमा। भँवरी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चकबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चक+फा० बंदी] भूमि के कई छोटे छोटे भागों को एक में सम्मिलित करने की क्रिया। जमीन की हदबंदी।

चकबँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चक+बाँटना] भूमि के बड़े खंड को कई हिस्सों में बाँटना।

चकबस्त[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जमीन की हदबंदी । किश्तवार ।

चकबस्त[2]—संज्ञा पुं० काश्मीरी ब्राह्मणों का एक भेद ।

चकवाक—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] एक पक्षी । उ०—उरज मठौना चकवाकन के छौना कैधों मदन खिलौना ये सलौना प्रान ।—पजनेस०, पृ० ३५

चकमक—संज्ञा पुं० [तु० चक़माक़] एक प्रकार का कड़ा पत्थर जिसपर चोट पड़ने से बहुत जल्दी आग निकलती है ।

विशेष—पहले यह बंदूकों पर लगाया जाता था और इसी के द्वारा आग निकालकर बंदूक छोड़ी जाती थी । दियासलाई निकलने के पहले इसी पर सूत रखकर और एक लोहे से चोट देकर आग झाड़ते थे ।

चकमकना—क्रि० अ० [हि० चकपकाना] अचंभित होना । उ०—अद्भुत कर्म कुँवर कान्ह के । निरखि गोप सब अति चकमके ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१० ।

चकमा[1]—संज्ञा पुं० [सं० चक (=भ्रांत)] १. भुलावा । धोखा । उ०—कल तो तुमने उसको गहरा चकमा दिया ।

मुहा०—चकमा खाना=धोखा खाना । भुलावे में आना । चकमा देना=धोखा देना । भुलवाना । भ्रांत करना ।

२. हानि । नुकसान ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—देना ।

३. लड़कों के एक खेल का नाम ।

चकमा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] बबून नामक बंदर की एक जाति ।

चकमाक—संज्ञा पुं० [तु० चक़माक़] दे० 'चकमक' ।

चकमाकी[1]—वि० [तु० चक़माक़] चकमक का । जिसमें चकमक लगा हो ।

चकमाकी[2]—संज्ञा स्त्री० बंदूक ।—(लश०) ।

चकरपु[1]—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] १. चक्रवाक पक्षी । चकवा । २. दे० 'चक्कर' ।

यौ०—चकरमकर=धोखा । भुलावा । झाँसा ।—(लश०) ।

चकरवा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] १. चक्कर । फेर । कठिन स्थिति । ऐसी अवस्था जिसमें यह न सूझे कि क्या करना चाहिए । असमंजस । २. झगड़ा । बखेड़ा । टंटा ।

क्रि० प्र०—में पड़ना ।

चकरसी—संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो पूरबी बंगाल, आसाम और चटगाँव में होता है ।

विशेष—इसके हीर की चमकीली और मजबूत लकड़ी मेज, कुरसी आदि सामान बनाने के काम में आती है । इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है ।

चकरा[1]†—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पानी का भँवर ।

चकरा[2]†—वि० [वि० स्त्री० चौड़ी] चौड़ा । विस्तृत । उ०—सौ योजन विस्तार कनकपुरि चकरी जोजन बीस ।—सूर (शब्द०) ।

चकराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकरा (=चौड़ा)] चौड़ाई । उ०—योजन चार की है चकराई, योजन चार लग गंध उड़ाई ।—कबीर सा०, पृ० ४६१ ।

चकराना[1]—क्रि० अ० [सं० चक्र] १. (सिर का) चक्कर खाना । (सिर) घूमना । जैसे,—देखते ही मेरा सिर चकराने लगा । २. भ्रांत होना । चकित होना । भूलना । जैसे,—वहाँ जाते ही तुम्हारी बुद्धि चकरा जायगी । ३. आश्चर्य से इधर उधर ताकना । चकपकाना । चकित होना । हैरान होना । घबराना ।

चकराना[2]—क्रि० स० आश्चर्य में डालना । चकित करना । हैरान करना ।

चकराना[3]—क्रि० अ० [फ़ा० चाकर] चाकर या सेवक होना ।

चकरानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चाकर] दासी । सेवकिनी । टहलुई ।

चकरिया[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० चकरी + हा (प्रत्य०)] चाकरी करनेवाला । नौकर । सेवक । टहलुवा ।

चकरिया[2]- वि० नौकरी चाकरी करनेवाला ।

चकरिहा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० चाकर] दे० 'चकरिया' ।

चकरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्री] १. चक्की । २ चक्की का पाट । उ०—जँतइत के धन हेरिनि ललइच कोदइत के मन दौरा हो । दुइ चकरी जिन दरन पसारहु तब पैहौ ठिक ठौरा हो ।—कबीर (शब्द०) । ३. चकई नाम का लड़कों का खिलौना । उ—(क) बोलि लिये सब सखा संग के खेलत स्याम नंद की पौरी । तैसेइ हरि तैसेइ सब बालक कर भौंरा चकरीन की जोरी ।—सूर (शब्द०) । (ख) चकरी लौं सकरी गलिन छिन आवति छिन जाति । परी प्रेम के फंद में बधू बितावति राति ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६६ ।

चकरी[2]—वि० चक्की के समान इधर उधर घूमनेवाला । भ्रमित । अस्थिर । चंचल । उ०—हमारे हरि हारिल की लकरी । मन क्रम बचन नंद नंदन उर यह दृढ़ करि पकरी । जागत सोवत स्वप्न दिवस निसि 'कान्ह कान्ह' जक री । सुनत हिये लागत हमैं ऐसो ज्यों करुई कँकरी । सु तो व्याधि हमकों लै आए देखी सुनी न करी । यह तौ सूर तिन्हैं लै सौंपौ जिनके मन चकरी ।—सूर (शब्द०) ।

चकरी[3]—वि० स्त्री० [हिं० चकरा] चौड़ी । दे० 'चकरा' ।

चकरीगिरह—संज्ञा स्त्री० [जहाजी] बेड़े में लगी हुई रस्सी की गाँठ जो उसे रोके रखती है । (लश०) ।

चकल—संज्ञा पुं० [हिं० चक्का] १. किसी पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत उखाड़ने की क्रिया । २. मिट्टी की वह पिंडी जो पौधे को दूसरी जगह लगाने के लिये उखाड़ते समय जड़ के आस पास लगी रहती है ।

क्रि० प्र० उठाना ।

चकलई— संज्ञा स्त्री० [हिं० चकला] चौड़ाई ।

चकला[1]—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, हिं० चक + ला (प्रत्य०)] १. पत्थर या काठ का गोल पाटा जिसपर रोटी बेली जाती है । चौका । २. चक्की । ३. देश का एक विभाग जिसमें कई गाँव या नगर होते हैं । इलाका । जिला ।

यौ०—चकलेदार ।—चकलाबंदी ।

४. व्यभिचारिणी स्त्रियों का अड्डा । रंडियों के रहने का घर या मुहल्ला । कसबीखाना ।

चकला²—वि० [स्त्री० चकली] चौड़ा ।

चकलाना¹—क्रि० स० [हिं० चकल] किसी पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत उखाड़ना । चकल उठाना ।

चकलाना²—क्रि० स० [हिं० चकला] चौड़ा करना ।

चकली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र, हिं० चाक] २. घिरनी । गड़ारी । २. छोटा चकला या चौका जिसपर चंदन घिसते हैं । होरसा ।

चकली²—वि० स्त्री० चौड़ी ।

चकलेदार—संज्ञा पुं० [देश०] किसी प्रदेश का शासक या कर संग्रह करनेवाला । किसी सूबे का हाकिम या मालगुजारी वसूल करनेवाला ।

विशेष—अवध में नवाब की ओर से जो कर्मचारी मालगुजारी वसूल करने के लिये नियुक्त होते थे, वे चकलेदार कहलाते थे ।

चकवँड़¹—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमर्द] एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक ऊँचा एक पौधा । पमार । पवाड़ ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ डंठल की ओर नुकीली और सिरे की ओर गोलाई लिए हुए चौड़ी होती हैं । पीले रंग के छोटे छोटे फूलों के झड़ जाने पर इसमें पतली लंबी फलियाँ लगती हैं । फलियों के अंदर उरद के दाने के ऐसे बीज होते हैं जो खाने में बहुत कड़ुए होते हैं । इसकी पत्ती, जड़, छाल, बीज सब औषध के काम में आते हैं । वैद्यक में यह पित्त वात नाशक, हृदय को हितकारी तथा श्वास, कुष्ट, दाद, खुजली आदि को दूर करनेवाला माना जाता है ।

चकवँड़²—संज्ञा पुं० [सं० चक्र (=चाक)+भाँड] कुम्हारों का वह बरतन जो पानी से भरा हुआ चाक के पास रखा रहता है । पानी हाथ में लगाकर चाक पर चढ़े हुए बरतन के लोंदे को चिकना करते हैं ।

चकवा¹—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] [स्त्री० चकई] एक पक्षी जो जाड़े में नदियों और बड़े जलाशयों के किनारे दिखाई देता है और बैसाख तक रहता है । उ०—चकवा चकई दो जने, इन मत मारो कोय । ये मारे करतार के, रैन बिछोहा होय (शब्द०) ।

विशेष—अधिक गरमी पड़ते ही यह भारतवर्ष से चला जाता है । यह दक्षिण को छोड़ और सारे भारतवर्ष में पाया जाता है । यह पक्षी प्रायः झुंड में रहता है । यह हंस की जाति का पक्षी है । इसकी लंबाई हाथ भर तक होती है । इसके शरीर पर कई भिन्न भिन्न रंगों का मेल दिखाई देता है । पीठ और छाती का रंग पीला तथा पीछे की ओर का खैरा होता है । किसी के बीच बीच में काली और लाल धारियाँ भी होती हैं । पूँछ का रंग कुछ हरापन लिए होता है । कहीं कहीं इन रंगों में भेद होता है । डैनों पर कई रंगों का गहरा मेल दिखाई देता है । यह अपने जोड़े से बहुत प्रेम रखता है । बहुत काल से इस देश में ऐसा प्रसिद्ध है कि रात्रि के समय यह अपने जोड़े से अलग रहता है । कवियों ने इसके रात्रिकाल के इस वियोग पर अनेक उक्तियाँ बाँधी है । इस पक्षी को सुरखाब भी कहते हैं ।

चकवा²—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] १. हाथ से कुछ बढ़ाई हुई आटे की लोई । २. जुलाहों की चरखी तथा नटाई में लगी हुई बाँस की छड़ी ।

चकवा³—संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो मध्य प्रदेश, दक्षिण भारत तथा चटगाँव की ओर बहुत मिलता है ।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी बहुत मजबूत और छाल कुछ स्याही लिए सफेद या भूरी होती है । इसके पत्ते चमड़ा सिझाने के काम में आते हैं ।

चकवाना(पु)†—क्रि० अ० [देश०] चकपकाना । हैरान होना । चकित होना । उ०—मुखचंद की देखि प्रभा दिन में चकवा चकई चकवाने रहैं ।—देव (शब्द०) ।

चकवार, चकवारि†—संज्ञा पुं० [?] कछुआ । कच्छप ।

चकवाह(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चकवा] दे० 'चकवा' ।

चकवी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकवा का स्त्री०] दे० 'चकई', 'चकवा' ।

चकवै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चक्कवै] दे० 'चक्कवै' ।

चकसेनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] काकजंघा ।

चकहा†—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पहिया । चक्का । उ०—महा उतंग मनि जोतिन के संग आनि कैयो रंग चकहा गहत रवि रथ के ।—भूषण (शब्द०) ।

चकही—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकई] दे० 'चकई' । उ०—गई कंदला सरवर पासा । चकही जान्यो चंद्र प्रकासा ।—माधवानल०, पृ० १९८ ।

चकाँडू—संज्ञा पुं० [हिं०] चकैया आँड़ू । चिपटा आड़ू ।

चका(पु)¹†—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] १. पहिया । चक्का । चाक । उ०—बदन बहल कुंडल चका भौंह जुवा हय नैन । फेरत चित मैदान मैं बहलवान बइ मैन ।—रसनिधि (शब्द०) । २. परवाह । प्रतीक्षा । उ०—पहिलँ थकै पाँच सौ पड़िया, मुगलां प्राण चका से मुड़िया ।—राज रू०, पृ० २२७ ।

चका²†—संज्ञा पुं० [हिं० चकवा] [स्त्री० चकी] चक्रवाक । चकवा । उ० नेकु निमेष न लायत नैन चकी चितवै तिय देव तिया सी । मतिराम (शब्द०) ।

चकाकेवल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चक या चक्का+केवल] काले रंग की मिट्टी जो सूखने पर चिटक जाती और पानी पड़ने से लसदार होती है । यह कठिनता से जोती जाती है ।

चकाचक¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तलवार आदि के लगातार शरीर पर पड़ने का शब्द ।

चकाचक²—वि० १. तर । तराबोर । लथपथ । डूबा हुआ । जैसे,—घी में चकाचक । २. पूर्ण सुंदर । दिव्य । उ०—इस तरह मेरे चितेरे हृदय की, बाह्य प्रकृति बनी चकाचक चित्र थी ।—पल्लव, पृ० ८ ।

चकाचक³—क्रि० वि० [सं० चक (= तृप्त होना)] खूब । भरपूर । अघाकर । पेट भर के । जैसे,—आज उनकी चकाचक छनी है ।

चकाचाक—क्रि० वि० [हिं० चकाचक] दे० 'चकाचक'। उ०—बढ़ेउ कमठ कहँ दाह कराहू। चकाचाक भा धाधक हाहू।—इंद्रा० पृ० ६८।

चकाचौंध—संज्ञा स्त्री० [हिं०चक < चख (=सं० चक्षु) या चमक अथवा सं० चक् (=चमकना)+चौ (=चारों ओर)+अंध] अत्यंत अधिक चमक या प्रकाश के सामने आँखों की झपक। अत्यंत प्रखर प्रकाश के कारण दृष्टि की अस्थिरता। कड़ी रोशनी के सामने नजर का न ठहरना। तिलमिलाहट। तिलमिली।

क्रि० प्र०—लगना।—होना।

चकाचौंधी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकाचौंध] 'चकाचौंध'।

चकातरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के पेड़ का नाम।

चकाना(पु)—क्रि० अ० [सं० चक+(भ्रांत)] चकपकाना। चकराना। अचंभे से ठिठक जाना। हैरान होना। घबराना। उ०—(क) रही कहाँ चकआइ चित चल पिय सादर देख। लोहा कंचन होत तहँ पारस परस विसेख।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) दुराधर्ष हर्षी दोऊ युद्ध ठाने। लखें राक्षसौ वानरौ से चकाने।—रघुराज (शब्द०)। (ग) दूत दवकाने चित्रगुप्त हू चकाने औ, जकाने जमजाल पापपुंज लुंज ह्वै गए।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५६।

चकाबू—संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] प्राचीन काल में युद्ध के समय किसी व्यक्ति या वस्तु की रक्षा के लिये उसके चारों ओर के पीछे एक कई मंडलाकार पंक्तियों में सैनिकों की स्थिति। चक्रव्यूह।

चकाबूह—संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] दे० 'चक्रव्यूह'। उ०—का वसाइ जौ गुरु अस बूझा। चकाबूह अभिमनु जो जूझा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२०।

विशेष—इसकी रचना ऐसी चक्करदार होती थी कि इसके अंदर मार्ग पाना बड़ा कठिन होता था। यह एक प्रकार की भूलभुलैयाँ थीं। वि० दे० 'चक्रव्यूह'।

मुहा०—चकाबू में पड़ना या फँसना=फेर में पड़ना। चक्कर में पड़ना। ऐसी स्थिति में होना जिसमें कर्तव्य न सूझ पड़े।

चकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्णमाला में छठा व्यंजन वर्ण। २. दुःख या सहानुभूतिसूचक शब्द। जैसे,—वह वहीं खड़ा सब देखता था पर उसके मुँह से चकार तक न निकला।

चकावल—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़े के अगले पैर में गामचे की हड्डी का उभार।

चकि—वि० [सं० चकित] दे० 'चकित'। उ०—जाहि निरखि वृजवासी गन चकि गये मूढ वनि।—प्रेमघन०, भा०१, पृ० ६१।

चकित[1]—वि० [सं०] १. चकपकाया हुआ। विस्मित। आश्चर्यान्वित। दंग। हक्का बक्का। भौचक्का। भ्रांत। २. हैरान। घबराया हुआ। उ०—(क) अजित रूप ह्वै शैल धरो हरि जलनिधि मथिवे काज। सुर अरु असुर चकित भए देखे किए भक्त के काज।—सूर (शब्द०) (ख) लछिमन दीख उमाकृत वेषा। चकित भए भ्रम हृदय विशेषा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) जागैं बुध विद्या हित पंडित चकित चित जागैं लोभी लालची धरनि धन धाम के।—तुलसी (शब्द०)। ३. चौकन्ना। सशंकित। डरा हुआ। ४. डरपोक। कायर।

चकित[2]—संज्ञा पुं० १. विस्मय। २. आशंका। व्यर्थ भय। ३. कायरता।

चकितवंत(पु)—वि० [सं० चकित+वत् (प्रत्य०)] आश्चर्ययुक्त। विस्मित। भ्रांत। उ०—अब अति चकितवंत मन मेरो। आयो हौं निर्गुन उपदेसन भयों सगुन को चेरो।—सूर (शब्द०)।

चकिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में गणों का क्रम इस प्रकार होता है—ऽ।। ।।ऽ ऽऽऽ ऽऽ। ।।। ऽ। जैसे,—भो सुमति ! न गोविंदा जानो निपट नरा। देखत्ति जिन गोपि ग्वाल के जो गिरिहिं धरा।

चकिताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकित] चकित होने की अवस्था। विस्मय। अचंभा।

चकिया—संज्ञा स्त्री० [चक्रिका] चक्की।

चकुंदा†—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमर्द] चकवँड़। पमाड़। दे० 'चकवँड़'।

चकुरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] छोटी हाँड़ी।

चकुला(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] चिड़िया का बच्चा। चेंटुवा। उ०—अंडन के मनो मंडल मध्य तें द्वै निकसे चकुला चकवा के।—गंग (शब्द०)।

चकुलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रकुल्या] एक प्रकार का पौधा या झाड़ी।

चकूँधना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चकाचौंध'। उ०—कूँधत माँह चकूँधत जीऊ। केहि के कंठ लगौं विन पीऊ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७६।

चकृत(पु)—वि० [सं० चकित] दे० 'चकित'। उ०—राजत वंसी मधुर धुनि मन मोहन की आन। सुनत थकित चकृत रही अद्भुत अति ही तान।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३७।

चकेठ—संज्ञा पुं० [सं० चक्र+यष्टि] बाँस या लकड़ी का एक नोकदार डंडा जिससे कुम्हार अपना चाक घुमाते हैं। कुलालदंड।

चकेंड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रमण्डिका, प्रा० चक्कहंडिया] चकवँड।

चकेवा†—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक, हिं० चकवा] चकवा। उ०—कुचजुग चकेव चरइ गंगाधारे—विद्यापति०, पृ० १८।

चकोट—संज्ञा पुं० [हिं० चकोटना] चकोटने की क्रिया या भाव।

चकोटना—क्रि० स० [हिं० चिकोटी] चुटकी से मांस नोचना। चिकोटी काटना। उ०—चंचल चपेट चोट चरन चकोटि चाहै हहरानी फौज भहरानी जातुधान की।—तुलसी (शब्द०)।

चकोतरा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रगोला] एक प्रकार का बड़ा जँबीरी नीबू। बड़ा नीबू। महा नीबू। सदाफल। सुगंधा। मातुलंग। मधुकर्कटी।

विशेष—इसका स्वाद खट्टापन लिए मीठा होता है। इसकी फाँकों का रंग हलका सुनहला होता है। यह फल जाड़े के दिनों में मिलता है।

चकोता संज्ञा पुं० [हिं० चकत्ता] एक रोग जिसमें घुटने के नीचे छोटी-छोटी फुंसियाँ निकलती हैं और बढ़ती चली जाती हैं।

चकोर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चकोरी] १. एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर जो नैपाल, नैनीताल आदि स्थानों तथा पंजाब और अफगानिस्तान के पहाड़ी जंगलों में बहुत मिलता है। उ०—नयन रात निसि मारग जागे। चख चकोर जानहु ससि लागे।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इसके ऊपर का एक रंग काला होता है, जिसपर सफेद सफेद चित्तियाँ होती हैं। पेट का रंग कुछ सफेदी लिए होता है। चोंच और आँखें इसकी बहुत लाल होती हैं। यह पक्षी झुंडों में रहता है और वैसाख जेठ में बारह बारह अंडे देता है। भारतवर्ष में बहुत काल से प्रसिद्ध है कि यह चंद्रमा का बड़ा भारी प्रेमी है और उसकी ओर एकटक देखा करता है; यहाँ तक कि यह आग की चिनगारियों को चंद्रमा की किरनें समझकर खा जाता है। कवि लोगों ने इस प्रेम का उल्लेख अपनी उक्तियों में बराबर किया है। लोग इसे पिंजरे में पालते भी हैं।

२. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण, एक गुरु और एक लघु होता है। यह यथार्थ में एक प्रकार का सवैया है। जैसे,—भासत ग्वाल सखीगन में हरि राजत तारन में जिमि चंद।

चकोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा चकोर। सरद ससिहिं जनु चितव चकोरी।—तुलसी (शब्द०)।

चकोह—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाह] प्रवाह में घूमता हुआ पानी। भँवर।

चकौंड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चकवँड़] दे० 'चकवँड़'।

चकौंध(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चकाचौंध'। उ०—सेस सीस मनि चमक चकौंधन तनिकहु नहिं सकुचाही।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

चकौटा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का लगान जो बीघे के हिसाब से नहीं होता। २. वह पशु जो ऋण के बदले में दिया जाय। इसे 'मुलबंन' भी कहते हैं।

चक्क¹—संज्ञा पुं० [सं०] पीड़ा। दर्द।

चक्क²—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] १. चक्रवाक। चकवा। उ०—हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।—इतिहास, पृ० २०४।

यौ०—चक्क चक्कि। चक्क चक्की।

२. कुम्हार का चाक। ३. दिशा। प्रांत। उ०—(क) पैज प्रतिपाल भूमिहार को हमाल चहुँ चक्क को अमाल भयो दंडक जहान को।—भूषण (शब्द०)। (ख) भूपन भनत वह चहुँ चक्क चाहि कियो पातसाहि चक ताकि छाती माहिं छेवा है।—भूषण (शब्द०) (ग) आन फिरत चहुँ चक्क धाक-धक्कन गढ़ धुक्कहिं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८।

चक्कर—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] १. पहिए के आकार की कोई (विशेषतः घूमनेवाली) बड़ी गोल वस्तु। मंडलाकार पटल। चाक। जैसे—इस मशीन में एक बड़ा चक्कर है जो बराबर घूमता रहता है। २. गोल या मंडलाकार घेरा। वृत्ताकार परिधि। मंडल। ३. मंडलाकार मार्ग। गोल सड़क या रास्ता। घुमाव का रास्ता। जैसे,—उस बगीचे में जो चक्कर है, उसके किनारे किनारे बड़ी सुंदर घास लगी है। ४. मंडलाकार गति। चक्राकार या उसके समान गति अथवा चाल परिक्रमण। फेरा। ५. पहिए के ऐसा भ्रमण। अक्ष पर घूमना।

मुहा०—चक्कर काटना=वृत्ताकार परिधि में घूमना। परिक्रमा करना। मँडराना। चक्कर खाना=(१) पहिए की तरह घूमना। अक्ष पर घूमना। (२) घुमाव फिराव के साथ जाना। सीधे न जाकर टेढ़े मेढ़े जाना। जैसे,—(क) उतना चक्कर कौन खाय, इसी बगीचे से निकल चलो। (ख) यह रास्ता बहुत चक्कर खाकर गया है। (३) भटकना। भ्रांत होना। हैरान होना। जैसे,—घंटों से चक्कर खा रहे हैं, यह सवाल नहीं आता है। चक्कर देना=(१) मंडल बाँधकर घूमना। परिक्रमा करना। मँडराना। (२) दे० 'चक्कर खाना²'। चक्कर पड़ना=जाने के लिये सीधा न पड़ना। घुमाव या फेर पड़ना। जैसे,—उधर से क्यों जाते हो, बड़ा चक्कर पड़ेगा। चक्कर बाँधना=मंडलाकार मार्ग बनाना। वृत्त बनाते हुए घूमना। चक्कर मारना=(१) पहिए की तरह अक्ष पर घूमना। (२) वृत्ताकार परिधि में घूमना। परिक्रमा करना। (३) चारों ओर घूमना। इधर उधर फिरना। जैसे,—दिन भर तो चक्कर मारते ही रहते हो, थोड़ा बैठ जाओ। चक्कर में आना=चकित होना। भ्रांत होना। हैरान होना। दंग रह जाना। जैसे,—सब लोग उनकी अद्‌भुत वीरता देख चक्कर में आ गए। चक्कर में डालना=(१) चकित करना। हैरान करना। (२) कठिनता या असमंजस में डालना। फेर में डालना। ऐसी स्थिति में करना जिससे यह न सूझ पड़े कि क्या करना चाहिए। हैरान करना। चक्कर में पड़ना=(१) असमंजस में पड़ना। दुबधा में पड़ना। कठिन स्थिति में पड़ना। (२) हैरान होना। माथा खपाना। चक्कर लगाना=(१) परिक्रमा करना। मँडराना। (२) चारों ओर घूमना। इधर उधर फिरना। फेरा लगाना। आना जाना। घूमना फिरना। जैसे,—(क) हम बड़ी दूर का चक्कर लगाकर आ रहे हैं। (ख) तुम इनके यहाँ नित्य एक चक्कर लगा जाया करो।

६. घुमाव। पेंच। जटिलता। दुरूहता। फेरफार। जैसे, यह बड़े चक्कर का सवाल है।

मुहा०—किसी के चक्कर में आना या पड़ना=किसी के धोखे में आना या पड़ना। भुलावे में आना।

७. सिर घूमना। घुमरी। घुमटा। बेहोशी। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

८. पानी का भँवर। जंजाल। ९. चक्र नामक अस्त्र।

मुहा०—चक्कर पड़ना=वज्रपात होना। विपत्ति आना। (स्त्रियाँ)।

१०. कुश्ती का एक पेंच जिसमें अपने दोनों हाथ पेट में घुसे हुए विपक्षी के दोनों मोढ़ों पर रखकर उसकी पीठ अपने

सामने कर लेते हैं और फिर टाँग मारकर उसे चित्त कर देते हैं।

चक्करदार—वि० [हिं० चक्कर+फा० दार] मोड़, घुमाव या उलझनवाला।

चक्करीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चक्कर] दे० 'चकई'। उ०—सु नष्षई सुरंग छाप बाज ताज उट्ठहीं। मनों कि डोरि चक्करी सुहथ्थ हथ्थि नष्षहीं।—पृ० रा०, २१।५३।

चक्कल—वि० [सं०] गोल। वर्तुल [को०]।

चक्कवइⓅ—वि० [सं० चक्रवर्त्ती] चक्रवर्ती (राजा)। सार्वभौम (राजा)। उ० समुरु चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ।—मानस, २।९८।

चक्कवतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्त्ती] चक्रवर्ती राजा।

चक्कवाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] चकवा। चक्रवाक। उ०—रघुबर कीरति सज्जननि सीतल खलनि सु ताति। ज्यों चकोर चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति।—तुलसी (शब्द०)।

चक्कवैⓅ—वि० [सं० चक्रवर्ती, प्रा० चक्कवत्ती, चक्कवइ] चक्रवर्ती (राजा)। आसमुद्रांत पृथ्वी का राजा। उ०—(क) नव सत्त अंत मेवातपति, इक्क छत्त महि चक्कवै।—पृ० रा०, ३।२६। (ख) नहिं तनु सम्हारहिं, छवि निहारहिं निमिप रिपु जन रन जए। चक्कवै लोचन राम रूप सुराज सुख भोगी भए।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५८।

चक्कस—संज्ञा पुं० [फा० चकस] बुलबुल, बाज आदि पक्षियों के बैठने का अड्डा।

चक्का—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्रा० चक्क] १. पहिया। चाका। २. पहिए के आकार की कोई गोल वस्तु। ३. बड़ा चिपटा टुकड़ा। बड़ा कतरा। जैसे,—मिट्टी का चक्का, खली का चक्का। ४. जमा हुआ कतरा। अँथरी। अंठी। थक्का। जैसे,—चक्का दही। ५. ईंटों या पत्थरों का ढेर जो माप या गिनती के लिये क्रम से लगाया गया हो।

क्रि० प्र०—बाँधना।

चक्की[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रिका, प्रा० चक्की] नीचे ऊपर रखे हुए पत्थर के दो गोल और भारी पहियों का बना हुआ यंत्र जिसमें आटा पीसा जाता है या दाना दला जाता है। आटा पीसने या दाल दलने का यंत्र। जाँता।

यौ०—पनचक्की।

क्रि० प्र०—चलना। चलाना।

यौ०—**चक्की का पाट**=चक्की का एक पत्थर। **चक्की की मानी**=(१) चक्की के नीचे के पाट के बीच में गड़ी हुई वह खूँटी जिसपर ऊपर का पाट घूमता है। (२) ध्रुव। ध्रुवतारा। मुहा०—**चक्की छूना**=(१) चक्की में हाथ लगाना। चक्की चलाना आरंभ करना। चक्की चलाना। (२) अपना चरखा शुरू करना। अपना वृत्तांत आरंभ करना। अपनी कथा छेड़ना। आपबीती सुनाना। **चक्की पीसना**=(१) चक्की में डालकर गेहूँ आदि पीसना। चक्की चलाना। (२) कड़ा परिश्रम करना। बड़ा कष्ट उठाना। **चक्की रहाना**=चक्की को टाँकी से खोद खोदकर खुरदरा करना जिसमें दाना अच्छी तरह पिसे। चक्की कूटना।

चक्की[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रिका] १. पैर के घुटने की गोल हड्डी। २. ऊँटों के शरीर पर का गोल घट्टा। Ⓟ† ३. बिजली। वज्र।

चक्की[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] दे० 'चकई'। उ० हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिले अति।—अकबरी०, पृ० ११८।

चक्कीघर—संज्ञा पुं० [हिं० चक्की+घर] १. पनचक्की। २. आटा पीसने का स्थान। ३. कल। उ०—इसी चक्कीघर में काम करो, तो पाँच छह आने रोज मिलें।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ५६६।

चक्कीरहा—संज्ञा पुं० [हिं० चक्की+रहाना] वह व्यक्ति जो चक्की को टाँकी से कूटकर खुरदरी करता है।

चक्कू†—संज्ञा पुं० [हिं० चाकू] दे० 'चाकू'।

चक्कोरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० चकोर] दे० 'चकोर'। उ०—चल्यो सु वारिधि नंद। चक्कोर आनंदकंद। धनपत्ति दीन पठाय। लिय परिसमणि सुखपाय।—प० रासो, पृ० २५।

चक्खⓅ—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु, प्रा० चक्ख, राज० चाख] दे० 'चख'। उ०—खंजर नेत विसाल गय चाही लागइ चक्ख। एकण साटइ मारवी, देह एराकी लक्ख।—ढोला०, दू० ४५८।

चक्खना†—क्रि० स० [हिं० चखना] दे० 'चखना'। उ०—मुसकाकर छोड़ चले मेरी मधुशाला तुम? प्रिय, अब क्या चक्खोगे औरों की हाला तुम? क्वासि, पृ० ३१।

चक्खी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चखना] १. स्वाद के लिये चरपरी खाने की चीज। चाट। २. बटेरों की चुगाई।

चक्नस—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेईमानी। वंचना। छल कपट [को०]।

चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहिया। चाका। २. कुम्हार का चाक। ३. चक्की। जाँता। ४. तेल पेरने का कोल्हू। ५. पहिए के आकार की कोई गोल वस्तु। ६. लोहे के एक अस्त्र का नाम जो पहिए के आकार का होता है।

विशेष—इसकी परिधि की धार बड़ी तीक्ष्ण होती है। शुक्रनीति के अनुसार चक्र तीन प्रकार का होता है—उत्तम, मध्यम और अधम। जिसमें आठ आर (आरे) हों वह उत्तम, जिसमें छह हों वह मध्यम, जिसमें चार हों वह अधम है। इसके अतिरिक्त तोल का भी हिसाब है। विस्तारभेद से १६ अंगुल का चक्र उत्तम माना गया है। प्राचीन काल में यह युद्ध के अवसर पर नचाकर फेंका जाता था। यह विष्णु भगवान् का विशेष अस्त्र माना जाता था। आजकल भी गुरु गोविंदसिंह के अनुयायी सिख अपने सिर के बालों में एक प्रकार का चक्र लपेटे रहते हैं।

मुहा०—**चक्र गिरना या पड़ना**=वज्रपात होना। विपत्ति आना। **चक्र चलाना**=जाल रचना। षड्यंत्र करना।

७. पानी का भँवर। ८. वातचक्र। ववंडर। ९. समूह। समुदाय। मंडली। १०. दल। झुंड। सेना। ११. एक प्रकार का व्यूह या सेना की स्थिति। दे० 'चक्रव्यूह'। १२. ग्रामों या नगरों का समूह। मंडल। प्रदेश। राज्य। १३. एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला हुआ प्रदेश। आसमुद्रांत भूमि।

यौ० - चक्रवर्ती।

१४. चक्रवाक पक्षी। चकवा। १५. तगर का फूल। गुलचाँदनी। १६. योग के अनुसार मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपुर आदि शरीरस्थ छह पद्म। १७. मंडलाकार घेरा। वृत्त। जैसे,—राशिचक्र। १८. रेखाओं से घिरे हुए गोल या चौखूँटे खाने जिनमें अंक, अक्षर, शब्द आदि लिखे हों। जैसे,—कुंडलीचक्र।

विशेष - तंत्र में मंत्रों के उद्धार तथा शुभाशुभ विचार के लिये अनेक प्रकार के चक्रों का व्यवहार होता है। जैसे,—अकडम चक्र, अकथ चक्र, कुलाल चक्र, आदि। रुद्रयामल आदि तंत्र ग्रंथों में महाचक्र, राजचक्र, दिव्यचक्र आदि अनेक चक्रों का उल्लेख है। मंत्र के उद्धार के लिये जो चक्र बनाए जाते हैं, उन्हें यंत्र कहते हैं।

१९. हाथ की हथेली या पैर के तलवे में घूमी हुई महीन महीन रेखाओं का चिह्न जिनसे सामुद्रिक में अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल निकाले जाते हैं। २०. फेरा। भ्रमण। घुमाव। चक्कर। जैसे,—कालचक्र के प्रभाव से सब बातें बदला करती हैं। २१. दिशा। प्रांत। उ०—कहै पद्माकर चहौं तो चहूं चक्रन को चीरि डारों पल में पलैया पैज पन हौं।—पद्माकर (शब्द०)। २२. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक भगण, तीन नगण और फिर लघु, गुरु होते हैं। जैसे—भौननि लगत न कतहुँ ठिकनवाँ। राम विमुख रहि सुख मिल कहवाँ। २३. धोखा। भुलावा। जाल। फरेब।

यौ०—चक्रधर=बाजीगर।

२४. चक्रव्यूह। २५. सैनिकों द्वारा राइफल या बंदूक से एक साथ गोली चलाना। बाढ़। राउंड। २६. एक विशेष पद (को०)।

चक्रक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. नव्य न्याय में एक तर्क। २. एक प्रकार का सर्प। ३. युद्ध की एक रीति (को०)।

चक्रक²—वि० १. पहिए जैसा। २. गोल या वर्तुलाकार (को०)।

चक्रकारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नखी नामक गंधद्रव्य। २. हाथ का नाखून।

चक्रकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रपर्णी लता। पिठवन।

चक्रक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] घटना के बार बार होने का क्रम (को०)।

चक्रगंडु—संज्ञा पुं० [सं० चक्रगण्डु] गोल तकिया (को०)।

चक्रगज—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़।

चक्रगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिधि या गोलाई में गमन करना (को०)।

चक्रगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे 'चक्रतीर्थ' (को०)।

चक्रगुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

चक्रगोप्ता—संज्ञा पुं० [सं० चक्रगोप्तृ] १. रथ का रक्षक। २. राज्यरक्षक। ३. सेनापति (को०)।

चक्रगोसा—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेनापति। २. राज्यरक्षक। ३. वह कर्मचारी या योद्धा जो रथ, चक्र आदि की रक्षा करे।

चक्रग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] परिखा। खाई (को०)।

चक्रग्रहणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्ग की रक्षा के निमित्त बनाया हुआ प्राचीर। २. खाई (को०)।

चक्रचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेली। २. कुम्हार। ३. गाड़ीवान। ४. बाजीगर (को०)।

चक्रचारी—संज्ञा पुं० [सं० चक्रचारिन्] रथ (को०)।

चक्रजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार।

चक्रजीवी—संज्ञा पुं० [सं० चक्रजीविन्] दे० 'चक्रजीवक' (को०)।

चक्रत(पु)—वि० [सं० चकित] 'चकित'। उ०—सो नारायनदास और सगरी सभा वा भेद को समुझे नाहीं। ताते चक्रत ह्वै रहे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०।

चक्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें तीन लघु (लघु की एक मात्रा) और एक गुरु (गुरु की दो मात्राएँ) होती हैं। इसका बोल यह है—ताहं। धिमि धिमि। तकितां। धिधिगन थों। २. एक प्रकार का चौदह ताला ताल जिसमें क्रम से चार द्रुत (द्रुत की आधी मात्रा), एक लघु (लघु की एक मात्रा), एक द्रुत (द्रुत की आधी मात्रा), और एक लघु (लघु की आधी मात्रा) होती है। इसका बोल यह है—जग० जग० नक० थैं० तार्थं। थरि० कुकु० धिमि० दांयं। दां० दां० धिधिकट। धिधि० गन था।

चक्रतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण में वह तीर्थ स्थान जहाँ ऋष्यमूक पर्वतों के बीच तुंगभद्रा नदी घूमकर बहती है। उ०—चक्रतीर्थ महँ परम प्रकासी। बसैं सुदर्सन प्रभु छवि रासी।—रघुराज (शब्द०)। २. नैमिषारण्य का एक कुंड।

विशेष—महाभारत तथा पुराणों में अनेक चक्रतीर्थों का उल्लेख है। काशी, कामरूप, नर्मदा, श्रीक्षेत्र, सेतुबंध रामेश्वर आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थों में एक एक चक्रतीर्थ का वर्णन है। स्कंदपुराण में प्रभास क्षेत्र के अंतर्गत चक्रतीर्थ का बड़ा माहात्म्य लिखा है। उसमें लिखा है कि एक बार विष्णु ने बहुत से असुरों का संहार किया जिससे उनका चक्र रक्त से रंग उठा। उसे धोने के लिये विष्णु ने तीर्थों का आह्वान किया। इसपर कई कोटि तीर्थ वहाँ आ उपस्थित हुए और विष्णु की आज्ञा से वहीं स्थित हो गए।

चक्रतुंड—संज्ञा पुं० [सं० चक्रतुण्ड] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह गोल होता है।

चक्रदंड—संज्ञा पुं० [सं० चक्रदण्ड] एक प्रकार की कसरत जिसमें जमीन पर दंड करके झट दोनों पैर समेट लेते हैं और फिर दाहिने पैर को दाहिनी ओर और बाएँ को बाईं ओर चक्कर देते हुए पेट के पास लाते हैं।

चक्रदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रदन्ती] १. दंतीवृक्ष। २. जमालगोटा।

चक्रदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

चक्रधर¹—वि० [सं०] जो चक्र धारण करे।

चक्रधर²—संज्ञा पुं० १. वह जो चक्र धारण करे। २. विष्णु भगवान्।

३. श्रीकृष्ण। ४. बाजीगर। ऐंद्रजालिक। ५. कई ग्रामों या नगरों का अधिपति। ६. सर्प। साँप। ७. गाँव का पुरोहित। ८. नट राग से मिलता जुलता षाडव जाति का एक राग जो षड्ज स्वर से आरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर नहीं लगता। यह संध्या समय गाया जाता है।

चक्रधारा— संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्र की परिधि [को०]।

चक्रधारी—संज्ञा पुं० [दे० चक्रधारिन्] दे० 'चक्रधर'।

चक्रनख— संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनख नामक औषधि। बघनहाँ।

चक्रनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडकी नदी।

चक्रनाभि— संज्ञा स्त्री० [सं०] पहिए का वह स्थान जिसमें धुरा घूमता है। पहिए के बीच का स्थान [को०]।

चक्रनाम—संज्ञा पुं० [सं० चक्रनामन्] १. माक्षिक धातु। सोनामक्खी। २. चकवा पक्षी।

चक्रनायक— संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनख नाम की औषधि।

चक्रनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहिए का घेरा [को०]।

चक्रपथ - संज्ञा पुं० [सं०] १. गाड़ी की लीक। २. गाड़ी चलने का मार्ग।

चक्रपदाट—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़ [को०]।

चक्रपरिव्याध—संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध या अमलतासका पेड़ [को०]।

चक्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन।

चक्रपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में चक्र धारण करनेवाले, विष्णु।

चक्रपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाड़ी। रथ। २. हाथी।

चक्रपादक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्रपाद' [को०]।

चक्रपानि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चक्रपाणि] दे० 'चक्रपाणि'। उ०—कहै पद्माकर पवित्र पन पालिबे कों चौरे चक्रपानि के चरित्रन कों चाहिए।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २१८।

चक्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रदेश का शासक। सूबेदार। चकलेदार। २. वह जो चक्र धारण करे। ३. वृत्त। गोलाई। ४. शुद्ध राग का एक भेद। ५. सेनापति (को०)। ६. व्यूहरक्षक (को०)। ७. क्षितिज (को०)।

चक्रपूजा - संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक पूजाविधि।

चक्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र जिसमें गोल फल लगा रहता है।

चक्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० चक्रबन्ध] एकप्रकार का चित्रकाव्य जिसमें एक चक्र या पहिए के चित्र के भीतर पद्य के अक्षर बैठाए जाते हैं।

चक्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं० चक्रबन्धु] सूर्य।

चक्रबांधव—संज्ञा पुं० [सं० चक्रबान्धव] सूर्य।

विशेष—सूर्य के प्रकाश में चकवा चकई एक साथ रहते हैं।

चक्रवाड—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्रवाल' [को०]।

चक्रवाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंडल। घेरा। २. समूह। पुंज। ३. क्षितिज। ४. दे० 'चक्रवाल'। ५. चकवा पक्षी [को०]।

चक्रवालधि संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता [को०]।

चक्रभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चक्र धारण करे। २. विष्णु।

चक्रभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। रात्रि।

विशेष—रात में चकवा चकई का जोड़ा अलग हो जाता है।

चक्रभोग— संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रह की वह गति जिसके अनुसार वह एक स्थान से चलकर फिर उसी स्थान पर प्राप्त होता है। इसे परिवर्त भी कहते हैं।

चक्रभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] सान। खराद [को०]।

चक्रभ्रमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

चक्रभ्रमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चक्रभ्रम' [को०]।

चक्रभ्रांति—संज्ञा स्त्री० [चक्रभ्रान्ति] चक्र की गति। चक्र का घूमना [को०]।

चक्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमण्डल] एक प्रकार का नृत्य जिसमें नाचनेवाला चक्र की तरह घूमता है।

विशेष—इस प्रकार के नृत्य में शरीर के प्रायः सब अंगों का संचालन होता है।

चक्रमंडली—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमण्डलिन्] अजगर साँप।

चक्रमन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चङ्क्रमण] दे० 'चंक्रमण'। उ०—'केसोदास' कुसल कुलालचक्र चक्रमन चातुरी चितै कै चारु आतुरी चलत भाजि।—केशव ग्रं०, पृ० ११८।

चक्रमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़।

चक्रमर्दक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्रमर्द' [को०]।

चक्रमीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैष्णवों की चक्र मुद्रा धारण करने की विधि। २. विजयेंद्र स्वामी रचित एक ग्रंथ जिसमें चक्र-मुद्रा-धारण की विधि आदि लिखी है।

चक्रमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

चक्रमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चक्र आदि विष्णु के आयुधों के चिह्न जो वैष्णव अपने बाहु तथा और अंगों पर छापते हैं।

विशेष—चक्र मुद्रा दो प्रकार की होती है, तप्त मुद्रा और शीतल मुद्रा। जो चिह्न आग में तपे हुए चक्र आदि के ठप्पों से शरीर पर दागे जाते हैं, उन्हें तप्त मुद्रा कहते हैं। जो चंदन आदि से शरीर पर छापे जाते हैं, उन्हें शीतल मुद्रा कहते हैं। तप्त मुद्रा का प्रचार रामानुज संप्रदाय के वैष्णवों में विशेष है। तप्त मुद्रा द्वारका में ली जाती है। जैसे,—मूँड़ मूँड़, कंठ बनमाला मुद्राक्र दिए। सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिए।—सूर (शब्द०)।

२. तांत्रिकों की एक अंगमुद्रा जो पूजन के समय की जाती है। इसमें दोनों हाथों को सामने खूब फैलाकर मिलाते और अँगूठे को कनिष्ठा उँगली पर रखते हैं।

चक्रमेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि [को०]।

चक्रयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० चक्रयन्त्र] ज्योतिष का एक यंत्र।

चक्रयान—संज्ञा पुं० [सं०] पहिए से चलनेवाला यान। वह सवारी या गाड़ी जिसमें पहिए हों [को०]।

चक्ररद—संज्ञा पुं० [सं०] सुअर [को०]।

चक्ररिष्टा - संज्ञा स्त्री० [सं०] बक। बगला।

चक्रलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच। गुडूची।

चक्रलिप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में राशिचक्र का कलात्मक भाग अर्थात् २१,६०० भागों में से एक भाग।

चक्रवत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्तिन्] दे० 'चक्रवर्ती'। उ०—माँडी क्रमधे मिसलतां चक्रवत देखण चाम।—राज रू०, पृ० २६५।

चक्रवती(पु) - संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्ती] चक्रवर्ती। राजा। उ०— धर काज मिसलत धार, चक्रवतिय जन विचार। दिस मरुस्थल पति देस, व्रत अलख चव पँडवेस।—राज रू०, पृ० ३०।

चक्रवर्त्ती(पु)—वि० [सं० चक्रवर्तिन्] चक्रवर्ती। उ० —चूडो वीरम धर चक्रवत्ती धारसार मुँह लई धरत्ती।—राज रू०, पृ० १४

चक्रवर्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी दल या समूह की अधीश्वरी। २. जनी नामक गंधद्रव्य। पानड़ी। ३. अलक्तक। आलता (क्वि०)। ४. जटामासी (क्वि०)।

चक्रवर्ती¹—वि० [सं० चक्रवर्तिन्] [स्त्री० चक्रवर्तिनी] आसमुद्रांत भूमि पर राज्य करनेवाला। सार्वभौम।

चक्रवर्ती²—संज्ञा पुं० १. एक चक्र का अधीश्वर। एक समुद्र से लेकर दूसरे समुद्र तक की पृथ्वी का राजा। आसमुद्रांत भूमि का राजा। उ०—चक्रवर्ति के लक्षण तोरे। देखत दया लागि अति मोरे —तुलसी (शब्द०)। २. किसी दल का अधिपति। समूह का नायक। ३. वास्तुक नामक शाक। बथुआ।

चक्रवाक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चक्रवाकी] चकवा पक्षी।

यौ०—चक्रवाकबंधु=सूर्य।

चक्रवाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. हद। सीमा। २. चिरागदान। ३. कार्य में लीन होना (क्वि०)।

चक्रवाड—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्रवाल'।

चक्रवात—संज्ञा पुं० [सं०] वेग से चक्कर खाती हुई वायु। वातचक्र। बवंडर। उ०—तृणावर्त विपरीत महाखल सो नृप राय पठायो। चक्रवात ह्वै सकल घोष में रज धुंधर ह्वै छायो।—सूर (शब्द०)।

चक्रवान्—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौराणिक पर्वत का नाम जो चौथे समुद्र के बीच स्थित माना गया है।

विशेष—यहाँ विष्णु भगवान् ने हयग्रीव और पंचजन नामक दैत्यों को मारकर चक्र और शंख दो आयुध प्राप्त किए थे।

चक्रवाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पुराणप्रसिद्ध पर्वत जो भूमंडल के चारो ओर स्थित प्रकाश और अंधकार (दिन रात) का विभाग करनेवाला माना गया है। लोकालोक पर्वत। २. मंडल। घेरा। ३ दे० 'चक्रवाल'।

चक्रविरहित—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] दे० 'चक्रप्रवृत्ति'।

चक्रवृत्ति संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण, तीन नगण और अंत में लघु गुरु होते हैं।

चक्रवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सूद या ब्याज जिसमें उत्तरोत्तर ब्याजपर भी ब्याजलगता जाता है। सूददरसूद।

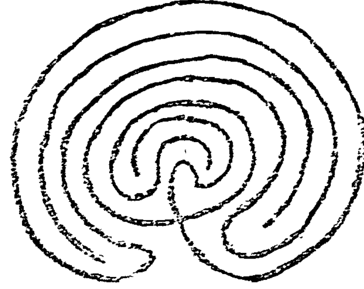
विशेष मनु ने इसे अत्यंत निंदनीय ठहराया है।

२. गाड़ी आदि का भाड़ा।

चक्रवै (पु)—संज्ञा पुं० [सं०चक्रवर्ती, हिं०चक्कवै] दे० 'चक्कवै'। उ०—दास पलटू कहै संत सोइ चक्रवै भया अद्वैत जब भर्म भागी।—पलटू०, भा० २, पृ० २९।

चक्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के युद्ध समय में किसी व्यक्ति या वस्तु की रक्षा के लिये चारो ओर कई घेरों में सेना की कुंडलाकार स्थिति।

विशेष—इसकी रचना इतनी चक्करदार होती थी कि इसके भीतर प्रवेश करना अत्यंत कठिन होता था। महाभारत में द्रोणाचार्य ने यह व्यूह रचा था जिसमें अभिमन्यु मारे गए थे। इसका आकार इस प्रकार माना जाता है।



चक्रशल्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफेद घुँघुची। २. काकतुंडी।

चक्रश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजशृंगी। मेढ़ासींगी।

चक्रसंज्ञ—स्त्री० पुं० [सं०] १. वंग धातु। राँगा। २. चकवा पक्षी।

चक्रसंवर—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

चक्रसाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवाक। चकवा (क्वि०)।

चक्रस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० चक्रस्वामिन्] दे० 'चक्रहस्त' (क्वि०)।

चक्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (क्वि०)।

चक्रांक—संज्ञा पुं० [सं० चक्राङ्क] चक्र का चिह्न जो वैष्णव अपने बाहु आदि पर दगवाते हैं।

यौ०—चक्रांकपुच्छ=(१) मोर। मयूर। (२) मोरपंख। मयूरपंख।

चक्रांकित¹—वि० [सं० चक्राङ्कित] जिसने चक्र का चिह्न दगवाया हो। जिसने चक्र का छापा लिया हो।

चक्रांकित²—संज्ञा पुं० वैष्णवों का एक संप्रदायभेद। इस संप्रदाय के लोग चक्र का चिह्न दगवाते हैं।

चक्रांकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्राङ्की] चक्रावाकी। चकई (क्वि०)।

चक्रांग—संज्ञा पुं० [सं० चक्राङ्ग] १. चकवा। २. रथ या गाड़ी। ३. हंस। ४. कुटकी नाम की ओषधि। ५. एक प्रकार का शाक। हिलमोचिका।

चक्रांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्राङ्गा] १. काकड़ासिंगी। २. सुदर्शन लता।

चक्रांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्राङ्गी] १. कुटकी। २. हंसिनी। मादा-हंस। ३. एक प्रकार का शाक। हुलहुल। हुरहुर। हिलमोचिका। ४. मंजीठ। ५. काकड़ासींगी। वृषपर्णी। मूसाकरनी।

चक्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] किसी अनुचित कार्य या किसी के अनिष्ट-साधन के लिये कई मनुष्यों की गुप्त अभिसंधि।

चक्रांतर—संज्ञा पुं० [सं० चक्रान्तर] एक बुद्ध का नाम।

चक्रांश—संज्ञा पुं० [सं०] राशिचक्र का ३६० वाँ अंश।

चक्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागरमोथा। २. काकड़ासींगी।

चक्राकार—वि० [सं०] पहिए के आकार का। मंडलाकार। गोल।

चक्राकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हंसिनी। मादा हंस। २. चक्रवाकी। चकई।

चक्राकृति—वि० [सं०] दे० 'चक्राकार' [को०]।

चक्राट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मदारी। साँप पकड़नेवाला। २. साँप का विष झाड़नेवाला। ३. धूर्त। धोखेबाज। ४. सोने का एक सिक्का। दीनार।

चक्राथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक कौरव योद्धा का नाम।

चक्राधिवासी—संज्ञा पुं० [सं० चक्राधिवासिन्] नारंगी।

चक्रानुक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्रक्रम' [को०]।

चक्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

चक्रार—संज्ञा पुं० [सं०] पहिए की परिधि और धुरी को मिलानेवाली अराएँ [को०]।

चक्रावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोलाई में होनेवाली गति। २. आँधी [को०]।

चक्रावल—संज्ञा पुं० [सं० चक्रावलि] घोड़ों का एक रोग जिसमें उनके पैरों में घाव हो जाता है। इससे कभी कभी वे लँगड़े भी हो जाते हैं।

चक्राश्म—संज्ञा पुं० [सं० चक्राश्मन्] वह यंत्र जिससे पत्थर दूर तक फेंका जाता था [को०]।

चक्राह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. चकवा पक्षी। चकवाक। २. चकवँड़।

चक्राह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्राह्व' [को०]।

चक्रि—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ता [को०]।

चक्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] चक्र धारण करनेवाला।

चक्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घुटने पर की गोल हड्डी। चक्की। २. झुंड। समूह (को०)। ३. सेना (को०)। ४. दुरभिसंधि (को०)।

चक्रित(पु)—वि० [सं० चकित] दे० 'चकित'। उ०—चहुँ दिसि चितै चक्रित ऋषि भयऊ।—ह० रासो, पृ० २७।

चक्रिय—वि० [सं०] १. रथ पर जानेवाला। २. सफर करनेवाला। यात्रा करनेवाला [को०]।

चक्री¹—संज्ञा पुं० [सं० चक्रिन्] [स्त्री० चक्रिणी] १. वह जो चक्र धारण करे। २. विष्णु। ३. ग्रामजालिक। गाँव का पंडित या पुरोहित। ४. चक्रवाक। चकवा। ५. कुलाल। कुम्हार। ६. सर्प। उ०—मिलि चक्रिन चंदन वात वहै अति मोहत न्यायन हीं मति को।—राम चं०, पृ० ८१। ७. सूचक। गोइंदा। जासूस। मुखबिर। दूत। चर। ८. तेली। ९. बकरा। १०. चक्रवर्ती। ११. चक्रमर्द। चकवँड़। १२. तिनिश वृक्ष। १३. व्याघ्रनख नाम का गंधद्रव्य। बघनहाँ। १४. काक। कौआ। १५. गदहा। गधा। १६. वह जो रथ पर चढ़ा हो। रथ का सवार। १७. चंद्रशेखर के मत से आर्य्या छंद का २२ वाँ भेद जिसमें ६ गुरु और ४५ लघु होते हैं। १८. एक वर्णसंकर जाति जिसका उल्लेख औशनस के 'जातिविवेक' में है। १९. सभा। उ०—चक्री विचाल रघुवर विताल।—रघु० रू०, पृ० २४३। २०. शिव (को०)। २१. मंडल का अधिपति (को०)। २२. ऐंद्रजालिक। बाजीगर (को०)। २३. षड्यंत्र करनेवाला (को०)। २४. वंचक (को०)।

चक्री²—वि० १. चक्रयुक्त। चक्रवाला। २. चक्रधर। चक्रधारी। ३. रथारूढ़। ४. गोल। गोलाईवाला। ५. सूचक [को०]।

चक्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवर्ती। २. तांत्रिकों के चक्र का अधिष्ठाता। ३. चक्र या मंडल का अधिपति (को०)। ४. विष्णु (को०)।

चक्रेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की महाविद्याओं में से एक।

चक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] नकली या बनावटी मित्र [को०]।

चक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. गजक। चाट। मद्य के ऊपर खाने की वस्तु। २. कृपादृष्टि। अनुग्रह। ३. कथन। ४. चखना (को०)।

चक्षम—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति। २. उपाध्याय।

चक्षा—संज्ञा पुं० [सं० चक्षस्] १. बृहस्पति। २. आचार्य। ३. गुरु। स्पष्टता। ४. दर्शन। दृष्टि। नेत्र। ५. चक्षु [को०]।

चक्षुः—संज्ञा पुं० [सं०] चक्षुस् का समासगत रूप [को०]।

चक्षुःपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दृष्टिपथ। २. क्षितिज [को०]।

चक्षुःपीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्षुःपीडा] आँख में होनेवाली पीड़ा [को०]।

चक्षुःराग—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की ललाई [को०]।

चक्षुःश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुःश्रवस्] वह जीव जो आँख ही से सुने। साँप। सर्प।

चक्षु—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुष्] १. दर्शनेंद्रिय। आँख।

मुहा०—चक्षु चार होना=दे० 'आँखें चार होना'। उ०—कोई कुरंगलोचनी किसी नवयुवक से चक्षु चार होते ही।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ११९।

२. विष्णुपुराण में वर्णित अजमीढ वंशी एक राजा जिसके पिता का नाम पुरुजानु और पुत्र का नाम हर्यश्व था। ३. एक नदी का नाम जिसे आजकल आक्सस या जेहूँ कहते हैं।

विशेष—वेदों में इसी का नाम वंक्षुनद है। विष्णुपुराण में लिखा है कि गंगा जब ब्रह्मलोक से गिरी, तब चार नदियों के रूप में चार ओर प्रवाहित हुई। जो नदी केतुमाल पर्वत के बीच से होती हुई पश्चिम सागर में जाकर मिली, उसका नाम चक्षुस् हुआ।

४. देखने की शक्ति (को०)। ५. प्रकाश या रोशनी (को०)। ६. कांति। तेज (को०)।

चक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] 'चक्षुस्' का समासगत रूप [को०]।

चक्षुरपेत—संज्ञा पुं० [सं०] अंधा [को०]।

चक्षुरिंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्षुरिन्द्रिय] देखने की इंद्रिय। आँख।

चक्षुर्गोचर—वि० [सं०] दृष्टिगोचर [को०]।

चक्षुर्दर्शनावरण—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र में वह कर्म जिसके उदय होने से चक्षु द्वारा सामान्य बोध की लब्धि का विघात हो।

चक्षुर्दान—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणप्रतिष्ठा के समय मूर्ति के नेत्रों में अंजन आदि देना या रंग भरना [को०]।

चक्षुर्निरोध—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पट्टी। वह पट्टी जो आँख पर लगाई जाय [को०]।

चक्षुर्बंध—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुर्बन्ध] आँख ढकना (को०)।

चक्षुर्वहल—संज्ञा पुं० [सं०] अजश्रृंगी (को०)।

चक्षुर्वृत—वि० [सं०] दृष्टिवर्धक (को०)।

चक्षुर्मल—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का मल। कीचड़ (को०)।

चक्षुर्वर्द्धनिका—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार शाकद्वीप की एक नदी।

चक्षुर्वैन्य—वि० [सं०] नेत्र रोगवाला (को०)।

चक्षुर्वहन—संज्ञा पुं० [सं०] अजश्रृंगी। मेढ़ासींगी।

चक्षुर्विषय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दृष्टिक्षेत्र। स्थिति। दृश्यता। २. दृष्टि का विषय। कोई दृश्य पदार्थ। ३. क्षितिज (को०)।

चक्षुर्हन्—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार का सर्प जिसे देखते ही जीव जंतुओं की आँखें फूट जाती हैं।

चक्षुर्हा—वि० [सं० चक्षुर्हन्] जिसके देखने मात्र से आँख फूट जाय (को०)।

चक्षुष्—संज्ञा पुं० [सं०] 'चक्षुस्' का समासगत रूप।

चक्षुष्कर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] साँप। सर्प (को०)।

चक्षुष्पति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

चक्षुष्मान्—वि० [सं० चक्षुष्मत्] १. आँखोंवाला। २. सुंदर आँखोंवाला (को०)।

चक्षुष्य¹—वि० [सं०] १. जो नेत्रों को हितकारी हो (औषधि आदि)। २. सुंदर। प्रियदर्शन। ३ नेत्रों से उत्पन्न। नेत्र संबंधी।

चक्षुष्य²—संज्ञा पुं० १. केतकी। केवड़ा। २. शोभांजन। सहजन का पेड़। ३. अंजन। सुरमा। ४. खपरिया। तूतिया।

चक्षुष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वनकुलथी। चाकसू। २. मेढ़ासींगी। अजश्रृंगी। ३. सुंदरी स्त्री (को०)।

चक्षुसू—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख। २. आक्सस या जेहूँ नदी जो मध्य एशिया में है।

चख¹ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुस्] आँख। उ०—मन समुद्र भयो सूर को, सीप भये चख लाल।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ७३।

मुहा०—चखसे मसि चुरानाⓟ= दे० 'आँख का काजल चुराना'। उ०—अस बड़ चोर कहत नहि आवै। चोरि कै चखन ते मसिहि चुरावै।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६।

चख²—संज्ञा पुं० [फ़ा० या अनु०] [वि० चखिया] झगड़ा। तकरार। कलह। टंटा।

यौ०—चख चख = तकरार। बकबक। झकझक। कहासुनी।

चखचौंधⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकचौंध] दे० 'चकचौंध'।

चखना—क्रि० स० [सं० चष] स्वाद लेना। स्वाद लेने के लिये मुँह में रखना। स्वाद या मजा लेते हुए खाना। उ०—साहब का घर दूर है जैसे लंब खजूर। चढ़ै तो चाखै प्रेम रस गिरै तो चकनाचूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—लेना।

चखा | वि० [हिं० चखना] १. चखनेवाला। स्वाद लेनेवाला। २. प्रेमी।

चखाचखी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चख (=झगड़ा)] लागडाँट। विरोध। वैर।

क्रि० प्र०—चलना होना।

चखाना— क्रि० स० [हिं० 'चखना' का प्रे० रूप] खिलाना। स्वाद दिलाना।

चखिⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चख (=आँख)] दे० 'चख'। उ०—हैं चकृति चखि सुर-नर-मुनिवर दुहुँ दिसि नेह किए बरन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७२।

चखिया—वि० [फ़ा० चख (=झगड़ा)] झगड़ालू। तकरार करनेवाला। झकझक करनेवाला।

चखुⓟ— संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] दे० 'चक्षु'। उ०—सखिन कहा हो पान पियारी। मारेहु चखु सर गिरा भिखारी।—इंद्रा०, पृ० ६२।

चखैया - संज्ञा पुं० [हिं० √चख + ऐया (प्रत्य०)] चखनेवाला। स्वाद लेनेवाला। वस्तु का स्वाद लेते हुए खानेवाला। उ०—षरव्वी चखैया चटं चार सच्चै।—प० रासो, पृ० ८२।

चखोड़ाⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० चख + ओड़] मस्तक पर काजल की लंबी रेखा जो बच्चों को नजर से बचाने के लिये लगाई जाती है। दिठौना। डिठौना। उ०—(क) लट लटकनि सिर चारु चखोड़ा सुठि शोभा सोहै शिशु भाल।—सूर (शब्द०)। (ख) अंजन दोउ दृग भरि दीनो। भ्रुव चारु चखोड़ा कीनो।—सूर (शब्द०)।

चखौंड़ाⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० चखोड़ा] दे० 'चखोड़ा'।

चखौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चखना] चटपटा खाना। तीक्ष्ण स्वाद का भोजन।

चगड़—वि० [देश०] चालाक। चतुर।

चगताई—संज्ञा पुं० [तु० चग़ताई] मध्य एशिया के निवासी तुर्कों का एक प्रसिद्ध वंश जो चगताई खाँ से चला था। बाबर, अकबर, आदि भारत के मोगल बादशाह इसी वंश के थे।

चगताई खाँ—संज्ञा पुं० [तु० चग़ताई खाँ] प्रसिद्ध मोगल विजेता चंगेज खाँ का एक पुत्र जो अत्यंत न्यायशील और धार्मिक था।

विशेष—चंगेज खाँ ने १२२७ ई० में इसे बलख बदख्शाँ, काशगर आदि प्रदेशों का राज्य दिया था। सन् १२४१ में इसकी मृत्यु हुई। बाबर इसी के वंश में था।

चगत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० चकत्ता] दे० 'चकत्ता'।

चगयाⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० चकता=मोगल] दे० 'चकत्ता'। उ०—हलकार भड़ाँ ललकार हुवै। चगयां मुख तेज सरेज चुवै।—रा० रू०, पृ० १६६।

चगर—संज्ञा पुं० [देश०] १. घोड़ों की एक जाति। २. एक प्रकार की चिड़िया।

चगुनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो संयुक्त प्रांत, बंगाल और बिहार की नदियों में पाई जाती है। यह १८ इंच लंबी होती है।

चघड़ - वि० [देश०] चतुर। रगड़। धूर्त। चालाक। उ०—चघड़ों की चालों को मिथ्या और तिरस्करणीय प्रमाणित कर जनसाधारण के भ्रम को मिटाएँ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० २६२।

मुहा०—जूतियाँ चटकाना=(१) फटा हुआ या चट्टी जूता पहनकर इधर उधर घूमना जिससे तला बार बार ऐड़ी से लगकर चट चट शब्द करे। जूता घसीटते हुए फिरना। (२) बुरी दशा में इधर उधर पैदल फिरना। मारा मारा फिरना। जैसे,—अपने पास का सब खोकर अब वह गली गली जूतियाँ चटकाता फिरता हैं।

४. उचाटना। अलग करना। दूर करना। छोड़ना। ५. चिढ़ाना। कुपित करना। जैसे,—तुमने उसे नाहक चटका दिया, नहीं तो कुछ और बातें होतीं।

चटकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक अस्त्र जिसका उल्लेख महाभारत में है।

चटकार†—वि० [हिं० चटकारा] दे० 'चटकारा'।

चटकारा¹—वि० [सं० चटुल] १. चटकीला। चमकीला। २. चचल। चपल। तेज। उ०—अटपटात अलसात पलक पट मूँदत कबहूँ करत उघारे। मनहुँ मुदित करकत मणि आँगन खेलत खंजरीट चटकारे -सूर (शब्द०)।

चटकारा²—वि० [अनु० चट] वह शब्द जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को खाते समय तालू पर जीभ लगने से निकलता है। स्वाद को खाते समय तालू पर जीभ लगने से निकलता है। स्वाद से जीभ चटकाने का शब्द।

मुहा०—चटकारे का=चरपरा। मजेदार। तीक्ष्ण स्वाद का। जैसे,—चटकारे का सालन। चटकारे का भुरता। चटकारे भरना=खूब जीभ से चाट चाटकर स्वाद लेना। ओठ-चाटना।

चटकारी†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चटकी।

चटकाली संज्ञा स्त्री० [सं० चटक आलि] १.गौरों की पंक्ति। गौरैया नाम की चिड़ियों का झुंड। २. चिड़ियों की पंक्ति या समूह। उ०—नभ लाली चाली मिसा चटकाली धुनि कीन। रति पाली आली अनत आए बनमाली न।—बिहारी र०, दो० ११५।

चटकाशिरा—संज्ञा पुं० [चटकाशिरस्] पिपरामूल।

चटकाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटकना] १. चिटकने या फूटने का शब्द। २. चटकने या तड़कने का भाव। ३. कलियों के खिलने का अस्फुट शब्द। कलियों के प्रफुटित होने का भाव। उ०—फूलति कली गुलाब की, चटकाहट चहुँ ओर।—बिहारी र०, दो० ८८।

चटकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा चटक [को०]।

चटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] बुलबुल की तरह की एक चिड़िया जो ८ या १० अंगुल लंबी होती है।

विशेष—यह पंजाब और राजपूताना को छोड़ सारे भारतवर्ष में होती है। यह गरमी के दिनों में हिमालय की ओर चली जाती है और वहीं चट्टानों के नीचे या पेड़ों पर अंडे देती है।

चटकीला—वि० [हिं०चटक+ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चटकीली] १. जिसका रंग फीका न हो। खुलता। शोख। भड़कीला। जैसे,—चटकीला रंग। उ०—चटकीलो पट लपटानो कटि वंशीवट यमुना के तट, नागर नट।—सूर (शब्द०)। २. चमकीला। चमकदार। आभायुक्त। उ०—चटकी धोई धोवती, चटकीली मुख जोति। फिरति रसोई के बगर जगर मगर दुति होति।—बिहारी (शब्द०) ३. जिसका स्वाद फीका न हो। जिसका स्वाद नमक, खटाई, मिर्च आदि के द्वारा तीक्ष्ण हो। चरपरा। चटपटा। मजेदार।

चटकीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० चटकीला+पन (प्रत्य०)] १. चमक दमक। आभा। शोखी। २. चरपरापन।

चटकोरा†—संज्ञा पुं० [अनु०] एक खिलौना।

चटक्क (पु)—क्रि० वि० [हिं० चटक] दे० 'चटक'। उ०—दानव तब गय दौरि करे इक बंध कटक्कं। हुअ देवासुर जुद्ध चढ़े देवता चटक्कं। -पृ० रा०, २। १३०।

चटक्कड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [अनु० चट् चट्] पशु को छड़ी से मारने वा ताड़ने का चट् चट् शब्द। उ०—लाँबी काब चटक्कड़ा गय लंबावइ जाल। ढोलउ अजे न वाहुड़इ प्रीतम भो मन साल।—ढोला०, दू० ४१०।

चटक्का (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चटका] दे० 'चटका⁵'। उ०—ताजन मारु चटाक चटक्का सनमुख सेजा भाँजी।—सं० दरिया, पृ० १०७।

चटखना¹—क्रि० स० [हिं० चटकना] दे० 'चटकना'।

चटखना²—संज्ञा पुं० दे० 'चटकना'।

चटखनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटकनी] दे० 'चटकनी'।

चटखार—संज्ञा पुं० [हिं० चट] चाटने का शब्द। उ०—हिम के जो कण उनकी जीभ पर बैठ जाते थे उन्हें चटखार भरे शब्द के साथ निगल जाते थे—जिप्सी, पृ० २३८।

चटखारा—संज्ञा पुं० [हिं० चट] स्वादिष्ट वस्तु खाते समय मुँह से आनेवाली आवाज।

मुहा०—चटखारे भरना=मजे लेकर खाना। खाने के बाद ओठ चाटना।

चटखोता—संज्ञा पुं० [हिं० चरखा] भालुओं का चरखा कातने का खेल।—(कलंदर)।

क्रि० प्र०—कातना।

चटचट— संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चटकने का शब्द। टूटने का शब्द। २ जलती लकड़ियों का चटचट शब्द। ३. वह शब्द जो उँगलियों को खींचने या मोड़कर दबाने से निकलता है। उँगली फूटने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—चट चट बलैया लेना=किसी प्रिय व्यक्ति (विशेषतः बच्चे) की विपत्ति या बाधा दूर करने या मंगल के लिये उँगलियाँ चटकाकर प्रार्थना करना।

विशेष—स्त्रियाँ किसी शत्रु का नाश मनाती हुई हाथों की उँगलियाँ चटकाती हैं। जब बच्चों को नजर लगती है तब प्रायः ऐसा करती हैं जिसका अभिप्राय यह होता हैं कि नजर लगानेवाले का नाश हो जाय।

चटचटा¹†—संज्ञा पुं० [अनु०] चाट चाट का शब्द।

क्रि० प्र०—उठना।

चटचटा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अस्त्रों की टकराहट से होनेवाला शब्द। २. लड़की आदि के जलने से होनेवाला शब्द।

चटचटाना—क्रि० अ० [सं० चट (=भेदन)] १. चटचट करते हुए

टूटना या फूटना। उ०—गर्व वचन प्रभु सुनत तुरत ही तनु बिस्तारचो। हाय हाय करि उरग बारही बार पुकारचो। मरन मरन अब मरत हौं मैं नहिं जान्यो तोहिं। चटचटात अँग फूटहीं राखु राखु प्रभु मोहिं।—सूर (शब्द०)। २. गँठीली लकड़ी, कोयले आदि का चटचट शब्द करते हुए जलना। ३. तेल या गोंद जैसी चीजों के लगने पर सूख चलने की स्थिति में छूने से होनेवाली हलकी ध्वनि।

चटचटायन—संज्ञा पुं० [सं०] जलती हुई लकड़ी या आग का चटचट शब्द करते हुए जलना कौ०।

चटचेटक—संज्ञा पुं० [सं० चेटक] टोना। जादू। उ०—मोहन बसीकरन चटचेटक, मंत्र जंत्र सब जानैं हो। तातैं भले भले सब तुमको भले भले करि मानैं हो।—ब्रज०, पृ० ६०।

चटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चटकना। फटना। २. दरार पड़ना। ३. छोटे छोटे टुकड़े में फटना [कौ०]।

चटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाटना] १. चाटने की चीज। वह गीली वस्तु जिसे एक उँगली से थोड़ा थोड़ा उठाकर जीभ पर रख सकें। अवलेह। २. वह गीली चरपरी वस्तु जो पुदीना, हरा धनिया, मिर्च, खटाई, आदि को एक साथ पीसने से बनती है और भोजन का स्वाद तीक्ष्ण करने के लिये थोड़ी थोड़ी खाई जाती है।

मुहा०—चटनी करना—(१) बहुत महीन पीसना। (२) पीस डालना। चूर चूर कर देना। (३) मार डालना। (४) खा जाना। चटनी की तरह चाटना या चाट जाना=खतम कर देना। सरलता से समाप्त करना। चटनी बनाना=दे० 'चटनी करना'। चटनी समझना=आसान समझना। चटनी होना=(१) खूब पिस जाना। (२) चट हो जाना। चटपट खा लिया जाना। खाने भर को न होना। (३) चुक जाना। खतम हो जाना। उड़ जाना।

३. काठ आदि का चार पाँच अंगुल का मुख्यतः रंगीन और चमकदार एक खिलौना जिसे छोटे बच्चे मुँह में डालकर चाटते या चूसते हैं।

चटपट—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र। जल्दी। तुरंत। झटपट। तत्क्षण। तत्काल। फौरन। उ०—एकै जीव जीवत है उमर अँदाज भर एकै जीव होतै हिंसु होत चटपट हैं।—ठाकुर०, पृ० १३।

मुहा०—चटपट की गिरह=वह फंदा जिसे खींच लेने से चट से गाँठ पड़ जाय। सकरमुद्धी।—(लश०)। चटपट होना=चटपट मर जाना। थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाना। बात की बात में मर जाना।

चटपटा—वि० [हिं० चाट] [स्त्री० चटपटी] चरपरा। तीक्ष्ण स्वाद का। मजेदार।

चटपटाना†—क्रि० अ० [हिं० चटपट] जल्दी करना। हड़बड़ी मचाना।

चटपटि—क्रि० वि० [हिं० चटपटी] दे० 'चटपटी'। उ०—कोउ चटपटि सों उर लपटी कोउ कर वर लपटी। कोउ गल लपटी कहति भलै भलै कान्हर कपटी।—नंद० ग्रं०, पृ० १६।

चटपटी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] [वि० चटपटिया] १. आतुरता। हड़बड़ी। उतावली। शीघ्रता। उ०—तब रंचक तुम हिय मैं आइ। बहुरयौ गए चटपटी लाइ।—नंद ग्रं०, पृ० २७१।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचाना।—होना।

२. घबराहट। व्यग्रता। आकुलता। ३. वह बेचैनी जो किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये हो। उत्सुकता। आकुलता। छटपटी। उ० (क) देखे बिना चटपटी लागति कछू मूँड पड़ि पर ज्यों।—सूर (शब्द०)। (ख) नैननि चटपटी मेरे तब तें लगी रहति कहाँ प्राण प्यारे निर्धन को धन।—सूर (शब्द०)।

चटपटी²—वि० स्त्री० [हिं० चटपटा] दे० 'चटपटा'।

चटपटी³—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपटा] चटपटी चीज। जैसे,—कचालू आदि।

चटपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपटी] आकुलता। बेचैनी। छटपटी। उ०—हहरि हिरन हारियव, हेरि कातरख रट्टिय। अप्प त्रास भय मोह बिरह लग्गी चटपट्टिय।—पृ० रा०, ६।१००।

चटर—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी चीमड़ वस्तु के किसी कड़ी वस्तु पर बार बार पड़ने का शब्द। चटपट शब्द।

मुहा०—चटर करना—मस्तूल आदि को घुमाना या फेरना। चक्कर देना—। (लश०)।

यौ०—चटरचटर=चट चट की आवाज। चटरपटर=चटपट की ध्वनि।

चटरजी—संज्ञा पुं० [बं०] बंग देश के ब्राह्मणों की एक शाखा। चट्टोपाध्याय।

चटरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी नाम का कुधान्य। लतरी। चिपटैया।

चटवाना—क्रि० स० [हिं० चाटना का प्रे० रूप] १. चाटने का काम कराना। चाटने में प्रवृत्त करना। चटाना। २. छुरी, तलवार आदि पर सान रखवाना। सान पर चढ़वाना।

चटशाला—संज्ञा स्त्री० [प्रा० चट=विद्यार्थी+सं० शाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान। छोटी पाठशाला।

चटसार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटशाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान। पाठशाला। उ०—अब समझी हम बात तुम्हारी पढ़े एक चटसार।—सूर (शब्द०)।

चटसाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटशाला] दे० 'चटशाला'। उ०—तिनके सँग चटसाल पठायो। राम नाम सों तिन चित लायो।—सूर (शब्द०)।

चटा—संज्ञा पुं० [प्रा० चट (विद्यार्थी)] चट्टा। चेला। विद्यार्थी। उ०—मनी मार चटसार सुठार चटा से पढ़हीं।—नंद० ग्रं०, पृ० २०३।

चटाई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कट(=चटाई)] वह बिछावन जो घास फूस,

सींक ताड़ के पत्तों, बाँस की पतली फट्टियों आदि का बनता है। तृण का डासना। साथरी।

चटाई[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चाटना] चाटने की क्रिया।

चटाक[१]—संज्ञा [अनु॰] लकड़ी आदि के टूटने, चटकने या चपत के पड़ने आदि का शब्द। जैसे,—चटाक से छड़ी टूटना, चटाक से उँगली फूटना। चटाक से चपत लगाना इत्यादि। उ॰—महा भुजदंड द्वै अंडकटाह चपेट के चोट चटाक दै फोरो।—तुलसी (शब्द॰)।

विशेष—चट, खट आदि अन्य अनुकरण शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि॰ वि॰ पद के समान होता है, अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है।

यौ॰—चटाक पटाक=चटाक या चटपट शब्द के साथ।

चटाक—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चट्टा] चकत्ता। दाग। धब्बा। विशेषतः शरीर पर का। जैसे,—कुष्ठ आदि का।

चटाकर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चट्टा] एक पेड़ जिसका फल खट्टा होता है।

विशेष—यह मध्य भारत के सागर आदि स्थानों में विशेष होता है।

चटाका—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] १. लकड़ी या और किसी कड़ी वस्तु के जोर से टूटने का शब्द।

क्रि॰ प्र॰—होना।

यौ॰—चटाके का=बहुत तेज। उग्र। प्रचंड। जैसे,—चटाके की धूप। चटाके की प्यास।

विशेष—इसका प्रयोग गरमी तथा उसके कारण लगी हुई प्यास आदि की अधिकता ही के लिये प्रायः करते हैं।

२. थप्पड़। तमाचा।

मुहा॰—चटाका जड़ना या लगाना=थप्पड़ मारना।

चटाख—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चटाक] दे॰ 'चटाक'।

यौ॰—चटाख पटाख = दे॰ 'चटाक पटाक'।

चटाचट—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] किसी वस्तु के टूटने में चट चट शब्द।

चटाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ चाटना का प्रे॰ रूप] १. चाटने का काम कराना। जीभ लगाकर किसी वस्तु का थोड़ा थोड़ा अंश मुँह में डालने देना। २. थोड़ा थोड़ा किसी दूसरे के मुँह में डालना। खिलाना। जैसे,—अन्न चटाना। ३. कुछ घूस देना। रिश्वत देना। जैसे,—उन्होंने कुछ चटाया होगा, तब नौकरी मिली है। ४. छुरी तलवार आदि पर सान रखवाना। सान पर चढ़वाना।

चटापटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चटपट] १. शीघ्रता। जल्दी। फुरती। २. किसी संक्रामक रोग के कारण बहुत से मनुष्यों की जल्दी जल्दी मृत्यु।

क्रि॰ प्र॰—होना।

चटारा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] चिता बनानेवाला। उ॰—चिरगट फारि चटारा लै गयो तरी तागरी छूटी।—कबीर ग्रं॰, पृ॰ २७७।

चटावन—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चटाना] बच्चे को पहले पहल अन्न चटाने का संस्कार। अन्नप्राशन।

चटिक(पु)—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ चट] उसी समय तत्क्षण। तत्काल। उ॰—सुनत भूप भाषित चतुरानन। चले चटिक प्रियव्रत जेहि कानन।—रघुराज (शब्द॰)।

चटिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. पिपरामूल। पिप्पलीमूल। २. मादा चटक या गौरैया (को॰)।

यौ॰—चटिकाशिरस=पिप्पलीमूल।

चटियल—वि॰ [देश॰] अनावृत। खुला हुआ। जिसमें पेड़ पौधे न हों। निचाट (मैदान)।

चटिहाट‡—वि॰ [देश॰] जड़। मूर्ख। उजड्ड।

चटिया—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चटी+इया (प्रत्य॰)] १. शिष्य। विद्यार्थी। उ॰—लागन छोहरी संग मानहु चटिया होना।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ३४६।

चटी[१]—वि॰ [सं॰ चटक ?] चटसार। पाठशाला। उ॰—मुनिवृंद जहाँ जिहि वेद पठी, शुक सारग हंस चकोर चटी।—(शब्द॰)।

चटी[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चपटा या चटचट] एक प्रकार की जूती, जो एँड़ी की ओर खुली होती है। चट्टी।

चटीचरि—संज्ञा पुं॰ [देश॰] पेन विशेष। एक प्रकार का पेन।

चटु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. चाटु। प्रिय वाक्य। खुशामद। चापलूसी। २. व्रतियों का एक आसन। ३. उदर। पेट। ४. चिल्लाहट। चीत्कार (को॰)।

चटुक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] काठ का बरतन। कठौता [को॰]।

चटुकार—वि॰ [सं॰ चटु] खुशामद करनेवाला [को॰]।

चटुल—वि॰ [सं॰] १. चंचल। चपल। चालाक। २. सुंदर। प्रियदर्शन। मनोहर। उ॰—छठि छ राग रस रागिनी हरि होरी है। ताला तान बंधान अहो हरि होरी है। चटुल चारु रतिनाथ के हरि होरी है। सीखत होइ अधान अहो हरि होरी है।—सूर (शब्द॰)। (ख) मंजुल महरि मयूर चटुल चातक चकोर गन।—भूषन (शब्द॰)। (ग) मोती लटकन को नवल नट नाचै नयन निरत वर वानि को चटुल चटसार में।—देव (शब्द॰)। (घ) उसके नैनों की पलकें, तरुणतर केतकी के दल के सदृश दीर्घ किंचित् चटुल और किंचित सालस शोभायमान थी।—श्यामा॰, पृ॰ २६।

चटुला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बिजली।

चटुलालस—वि॰ [सं॰] खुशामदपसंद। जो अपनी खुशामद कराना पसंद करता हो [को॰]।

चटुलित—वि॰ [सं॰] १. हिलाया हुआ। २. सजाया हुआ [को॰]।

चटुलोल, चटुललोल—वि॰ [सं॰] १. चंचल। चपल २. सुंदर। सौंदर्यशाली। ३. मृदुभाषी [को॰]।

चटोर—वि॰ [हिं॰ चटोरा] दे॰ 'चटोरा'।

चटोरपन—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चटोर+पन (प्रत्य॰)] दे॰ 'चटोरापन'।

चटोरा—वि॰ [हिं॰ चाट+ओरा (प्रत्य॰)] १. जिसे अच्छी अच्छी चीजें खाने का व्यसन हो। जिसे स्वाद का व्यसन हो। स्वादिष्ट वस्तु खाने का लालची। स्वादलोलुप। जैसे,—चटोरा आदमी। चटोरी जबान। २. लोलुप। लोभी। उ॰—

अधर डोर वंसी सुनिल छवि जल वसुधा वाल। रूप चटोरा मीन दृग आइ फँसत ततकाल।—मुबारक (शब्द०)।

चटोरापन—संज्ञा पुं० [हिं० चटोरा+पन (प्रत्य०)] अच्छी अच्छी चीजें खाने का व्यसन। स्वादलोलुपता।

चट्टा—वि० [हिं० चाटना] १. चाट पोंछकर खाया हुआ। २. समाप्त। नष्ट। गायब। उ०—दया चट्ट हो गई, धर्म धँसि गयो धरणि मैं—(शब्द०)।

चट्टा[1]—संज्ञा पुं० [सं० चेटक (=दास) या प्रा० चट=शिष्य या अनुकरणात्मक चट्टा बट्टा का अंश]। चेला। शिष्य।

चट्टा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कट (=चटाई)] बाँस की चटाई।

चट्टा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] चटियल मैदान। खुला मैदान। ऐसा मैदान जिसमें पेड़ आदि न हो।

चट्टा[4]—संज्ञा पुं० [हिं० चकत्ता] शरीर पर कुष्ठ आदि के कारण निकला हुआ चकत्ता। दाग।

क्रि० प्र०—निकलना।—पड़ना।

चट्टान—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट्टा] पहाड़ी भूमि के अंतर्गत पत्थर का चिपटा बड़ा टुकड़ा। विस्तृत शिलापटल। शिलाखंड।

चट्टावट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चट्टू (=चाटने का खिलौना) (+बट्टा=) अनुकरणात्मक समानभिन्न उच्चारणात्म द्विरुक्ति] १. छोटे बच्चों के खेलने के लिये काठ के खिलौनों का समूह जिसमें चट्टू, झुनझुने और गोले इत्यादि रहते हैं। २. गोले और गोलियाँ जिन्हें बाजीगर एकथैली में से निकालकर लोगों को तमाशा दिखाते हैं।

मुहा०—एक ही थैली के चट्टे बट्टे=एक ही गुट्ट के मनुष्य। एक ही स्वभाव और रुचि के लोग। एक ही मेल के आदमी। एक ही विचार के लोग। चट्टे बट्टे लड़ाना=इधर की उधर लगाकर लड़ाई कराना। चुटकुला छोड़ना। ऐसी बात कहना जिसमें कुछ लोग आपस में लड़ जायँ। जैसे,—तुम्हें बहुत चट्टे बट्टे लड़ाना आता है।

चट्टी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. टिकान। पड़ाव। मंजिल। उ०—सो कहु आगे द्वीप लखाई। तहँ एक चट्टी परम सुहाई।—रघुराज (शब्द०)।

२. फर्रुखाबाद के जिले में पैर में पहनने का एक गहना।

चट्टी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा या अनु० चटचट] एँड़ी की ओर खुला हुआ जूता। स्लिपर। चटी।

चट्टी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाटा (=चपत)] हानि। घाटा। टोटा। नुकसान। तावान।

मुहा०—चट्टी भरना=हानि पूरी करना।

२. दंड। जुरमाना।

मुहा०—चट्टी धरना=दंड लगाना।

चट्टू[1]—वि० [हिं० चाट] स्वादलोलुप। चटोरा।

चट्टू[2]—संज्ञा पुं० [हि चट्टान या अनु०। चट] पत्थर का बड़ा खरल।

चट्टू[3]—संज्ञा पुं० [हिं० चाटना] १. काठ का एक खिलौना जिसे लड़के मुँह में डालकर चाटते हैं।

चट्टू[4]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की दूब जिसे खुरैया भी कहते हैं।

चड़—संज्ञा [अनु०] सुखी लकड़ी आदि के फटने का शब्द।

विशेष—चट पट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है, अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है।

चड़कपूजा—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरखपूजा] दे० 'चरखपूजा'।

चड़चड़—संज्ञा पुं० [अनु०] सूखी लकड़ी के टूटने या जलने का शब्द।

चड़बड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टें टे। बक बक। निरर्थक प्रलाप।

मुहा०—चड़बड़ चड़बड़ करना=बकवाद करना।

चड़स—संज्ञा पुं० [हिं० चरस] दे० 'चरस'। उ०—अलक डोरि तिल चड़स वो निरमल चिबुक निवांण। सींचै नित माली समर प्रेम बाग पहचांण।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ३६।

चड़सी—संज्ञा पुं० [हिं० चरस] चरस पीनेवाले लोग। चरसी।

चड़ाक[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी वस्तु के टूटने का या फूटने या फटने से होनेवाला शब्द।

चड़ाक[2]—वि० [आनुध्व०] भग्न। भंजित। उ०—रस का परिपाक हो गया। चढ़ता चाप चड़ाक हो गया।—साकेत, पृ० ३५६।

चड़ाना—क्रि० स० [हिं० चढ़ाना] दे० 'चढ़ाना'। उ०—घरि आनए बाँभन वरुआ मँथा चड़ावए गाइक चुडुआ।—कीर्ति०, पृ० ४४।

चड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण ?] वह लात जो उछलकर मारी जाय।

क्रि० प्र०—जमाना।—मारना।—लगाना।

चड्डा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] जाँघ की जड़। जंघे का ऊपरी भाग।

चड्डा[2]—वि० [सं० जड] गावदी। मूर्ख।

चड्डी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का लंगोट। २. बच्चों की जाँघिया।

चड्ढना—क्रि० अ० [हिं० चढ़ना] दे० 'चढ़ना'। उ०—विन मग्ग सकै पंछी न चड्ढ।—ह० रासो,

चड्ढी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] लड़कों का वह खेल जिसमें एक लड़का दूसरे की पीठ पर चढ़कर चलता है। इसमें जो लड़का हारता है, उसी की पीठ पर सवारी की जाती है।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

मुहा०—चड्ढी गाँठना=सवार होना। सवारी करना। चड्ढी देना=(१) हारकर पीठ पर चढ़ाना। (२) गुदामैथुन कराना।

२. कच्छा। कछौटी।

चढ़उतर—संज्ञा स्त्री० [चढ़ना+उतरना] चढ़ना उतरना। आवाजाही। आना जाना। उ०—ऋतुओं की चढ़ उतर किंतु तुममें तूफान उठा कब पाई ?—हिम०, पृ० ७७।

चढ़त—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] किसी देवता को चढ़ाई हुई वस्तु। देवता की भेंट।

चढ़ता—वि० [हिं० चढ़ना] १. निकलता और ऊपर आता हुआ। बराबर ऊपर की ओर जाता हुआ। जैसे,—चढ़ता चाँद। २. आरंभ होता और बढ़ता हुआ। अग्रसर होता हुआ। जैसे,—चढ़ती जवानी, चढ़ती बैस।

चढ़ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] १. दे० 'चढ़त'। २. अभ्युदय। उन्नति। उ०—पूँजी पाई साच दिनोदिन होती बढ़ती। सतगुरु के परताप भई है, दौलत चढ़ती। पलटू०, भा० १. पृ० ३६।

यौ०—**चढ़ती कला**=उभरता या निखरता हुआ सौंदर्य । उ०—और उस मुई वेसवा की इस जमाने में ऐसी चढ़ती कला थी और रती बुलंद जो कहती थी वहीं यह करते थे ।—सैर०, पृ० १४ ।

चढ़नⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] चढ़ने की क्रिया या भाव ।

चढ़नदार—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना+फ़ा० दार [प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसे व्यापारी गाड़ी, नाव आदि पर माल के साथ रक्षा के लिये भेजते हैं ।—(लश०) ।

चढ़ना—क्रि० अ० [सं० उच्चलन,प्रा० उच्चडन, चनड्ढ] नीचे से ऊपर को जाना । ऊँचे स्थान पर जाना । 'उतरना' का उलटा । जैसे,—सीढ़ी पर चढ़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—**सूरज या चाँद का चढ़ना**=सूर्य या चंद्रमा का उदय हो कर क्षितिज के ऊपर आना । **दिन चढ़ना**=(१) दिन का प्रकाश फैलना । (२) दिन या काल व्यतीत होना । जैसे,—चार घड़ी दिन चढ़ा । वि० दे० 'दिन' ।

२. ऊपर उठना । उड़ना । उ०—गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा । तुलसी (शब्द०) । ३. नीचे तक लटकती हुई किसी वस्तु का सिकुड़ या खिसककर ऊपर की ओर हो जाना । ऊपर की ओर सिमटना । जैसे,—आस्तीन चढ़ना, बाहीं चढ़ना, पायजामा चढ़ना, पायँचा चढ़ना, मोहरी चढ़ना । ४. एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु का सटना । आवरण के रूप में लगना । ऊपर से टँकना । मढ़ा जाना । जैसे,—किताब पर जिल्द या कागज चढ़ना, छाते पर कपड़ा चढ़ना, तकिए पर खोल या गिलाफ़ चढ़ना, गोट चढ़ना । ५. उन्नति करना । बढ़ना ।

मुहा०—**चढ़ बढ़कर या बढ़ चढ़कर होना**=श्रेष्ठ होना । अधिक महत्व का होना । **चढ़ा बढ़ा या नढ़ा चढ़ा होना**=श्रेष्ठ होना । अधिक बड़ा या अच्छा होना । अधिक होना । विशेष होना । **चढ़ बनना**=मनोरथ सफल होना । सुयोग मिलना । लाभ का अवसर हाथ आना । जैसे,—उनकी आजकल खूब चढ़ बनी है । **चढ़ बजना**=बात बनना । पौ बारह होना । खूब चलती होना । उ०—अधर रस मुरली लूटि करावति । आपुन बार बार लै अँचवति जहाँ तहाँ ढरकावति । आजु महा चढ़ि बाजी वाकी जोई कोई करै बिराजै । करि सिंहासन बैठि अधर सिर छत्र धरे वह गाजै ।—सूर (शब्द०) ।

६. (नदी या पानी का) बाढ़ पर आना । बढ़ना । जैसे,—(क) बरसात के कारण नदी खूब चढ़ी थी । (ख) आज तीन हाथ पानी चढ़ा । ७. आक्रमण करना । धावा करना । चढ़ाई करना । किसी शत्रु से लड़ने के लिये दल बल सहित जाना ।

क्रि० प्र०—आना ।—जाना ।—दौड़ना ।

८. बहुत से लोगों का दल बाँधकर किसी काम के लिये जाना । साज बाज के साथ चलना । गाजे बाजे के साथ कहीं जाना । उ०—आपके साथ मैं सारे इंदरलोक को समेट कुँवर उदयभान को व्याहने चढ़ूँगा ।—इंशाअल्ला (शब्द०) । ९. महँगा होना । भाव का बढ़ना । जैसे,—आज कल घी बहुत चढ़ गया है । १०. स्वर का तीव्र होना । सुर ऊँचा होना । आवाज तेज होना । ११. नदी या प्रवाह में उस ओर को चलना, जिधर से प्रवाह आता हो । धारा का बहाव के विरुद्ध चलना । १२. ढोल, सितार आदि की डोरी या तार का कस जाना । तनना । जैसे,—ढोल चढ़ना, ताशा चढ़ना ।

मुहा०—**नस चढ़ना**=नस का अपने स्थान से हट जाने के कारण तन जाना ।

१३. किसी देवता, महात्मा आदि को भेंट दिया जाना । देवार्पित होना । जैसे, माला फूल चढ़ना । बलि चढ़ना । बकरा चढ़ना । उ०—बात यह चित से कभी उतरे नहीं । हैं उतरते फूल चढ़ने के लिये ।—चुभते०, पृ० ११ । १४. सवारी पर बैठना । सवारी करना । सवार होना । जैसे,—घोड़े पर चढ़ना । गाड़ी पर चढ़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—बैठना ।

१५. किसी निर्दिष्ट कालविभाग जैसे,—वर्ष, मास, नक्षत्र आदि, का आरंभ होना । जैसे,-असाढ़ चढ़ना, महीना चढ़ना, दशा चढ़ना । उ०—(क) चढ़ा असाढ़ दुंद घन गाजा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) चढ़ति दसा यह उतरति जाति निदान । कहउँ न कबहूँ करकस भौंह कमान ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—वार, तिथि या उससे छोटे कालविभाग के लिये 'चढ़ना' का प्रयोग नहीं होता ।

१६. किसी के ऊपर ऋण होना । कर्ज होना । पावना होना । जैसे,—(क) व्याज चढ़ना । (ख) इधर कई महीनों के बीच में उसपर सैकड़ों रुपये महाजनों के चढ़ गए । १७. किसी पुस्तक, बही या कागज आदि पर लिखा जाना । टँकना । दर्ज होना । (यह प्रयोग ऐसी रकम, वस्तु या नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है ।) जैसे,—(क) ५ रुपए आज आए हैं, वे वही पर चढ़े कि नहीं ? (ख) रजिस्टर पर लड़के का नाम चढ़ गया । १८. किसी वस्तु का बुरा और उद्वेगजनक प्रभाव होना । बुरा असर होना । आवेश होना । जैसे,—क्रोध चढ़ना, नशा चढ़ना, ज्वर चढ़ना ।

मुहा०—**पाप या हत्या चढ़ना**=पाप या हत्या के प्रभाव से बुद्धि का ठिकाने न रहना ।

१९. पकने या आँच खाने के लिये चूल्हे पर रखा जाना । जैसे,—दाल चढ़ना, भात चढ़ना, हाँड़ी चढ़ना, कड़ाह चढ़ना । २०. लेप होना । लगाया जाना । पोता जाना । जैसे,—(अंग पर) दवा चढ़ना, वारनिश चढ़ना, रोगन चढ़ना, रंग चढ़ना ।

मुहा०—**रंग चढ़ना**=रंग का किसी वस्तु पर आना । रंग का खिलना । वि० दे० 'रंग' । उ०—सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग ।—सूर (शब्द०) । २१. किसी मामले को लेकर अदालत तक जाना । कचहरी तक मामला ले जाना । जैसे,—चार आदमी जो कह दें, वही मान लो; कचहरी चढ़ने क्यों जाते हो ?

चढ़पटⓅ—क्रि० वि० [हिं० चटपट] शीघ्र । जल्दी । वि० दे० 'चटपट' । उ०—सोमेस सुअन विरचंत रन चढ़पट घट भट्टह

तुटिहि। इय अयुत वत्त पिष्यत नरह भुजति भार अंनक पुट्टहि। —पृ० रा०, १३। १४१।

चढ़वाना—क्रि० स० [हिं० चढ़ाना का प्रे० रूप] चढ़ाने का काम कराना।

चढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] १. चढ़ने की क्रिया या भाव। २. ऊँचाई की ओर ले जानेवाली भूमि। वह स्थान जो आगे की ओर बराबर ऊँचा होता गया हो और जिस पर चलने में पैर कुछ उठाकर रखने के कारण अधिक परिश्रम पड़े। जैसे,—आगे दो कोस की चढ़ाई पड़ती है। ३. शत्रु से लड़ने के लिये दलबल के सहित प्रस्थान। धावा। आक्रमण।

क्रि० प्र०—करना। —होना।

४. किसी देवता की पूजा का आयोजन। ५. किसी देवता को पूजा या भेंट चढ़ाने की क्रिया। चढ़ावा। कड़ाही। उ०—सूर नंद सों कहत जसोदा दिन आए अब करहु चढ़ाई।—सूर (शब्द०)।

चढ़ाउ—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ाव] दे० 'चढ़ाव'।

चढ़ाउतरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना + उतरना] बार बार चढ़ने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—चढ़ा उतरी लगाना=बार बार चढ़ना उतरना।

चढ़ाऊपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना + ऊपर] एक दूसरे के आगे होने या बढ़ने का प्रयत्न। लाग डाट। होड़।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—चढ़ा ऊपरी लगाना=एक दूसरे के आगे होने या बढ़ने का प्रयत्न करना होड़ाहोड़ी करना।

चढ़ाचढ़(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ाचढ़ी] दे० 'चढ़ाचढ़ी'। उ०—ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कुछ त्यों ही नितंब त्यों चातुरई सी। जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ी में किहि धौं कटि बीच ही लूटि लई सी।—पद्माकर ग्रं० पृ० ८३।

चढ़ाचढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न। होड़ाहोड़ी। लागडाँट। खींचतान। उ०—देखत बनी है दुहूँ दल की चढ़ाचढ़ी मैं राम दृग हू पै नेकु लाली जो चढ़ै लगी।—पद्माकर (शब्द०)।

चढ़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] दे० 'चढ़ानी'।

यौ०—सीधी चढ़ान=वह चढ़ाई जिसमें झुकाव या तिरछापन न हो।

चढ़ाना—क्रि० स० [हिं० चढ़ना का प्रे० रूप] १. नीचे से ऊपर ले जाना। ऊँचाई पर पहुँचाना। जैसे,—यह चारपाई ऊपर चढ़ा दो।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

२. चढ़ने का काम कराना। चढ़ने मे प्रवृत्त करना। जैसे,—उसे व्यर्थ पेड़ पर क्यों चढ़ाते हो, गिर पड़ेगा।

क्रि० प्र०—देना।

३. नीचे तक लटकती हुई किसी वस्तु को सिकोड़ या खिसकाकर ऊपर की ओर ले जाना। ऊपर की ओर समेटना। जैसे,—आस्तीन चढ़ाना, मोहरी चढ़ाना, धोती चढ़ाना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

४. आक्रमण कराना। धावा कराना। चढ़ाई कराना। दूसरे को आक्रमण में प्रवृत्त करना।

मुहा०—चढ़ा लाना=आक्रमण या चढ़ाई के लिये किसी को दल बल सहित साथ लाना। जैसे,—वह नादिरशाह को दिल्ली पर चढ़ा लाया।

५. महँगा करना। भाव बढ़ाना। ६. स्वर तीव्र करना। सुर ऊँचा करना। आवाज तेज करना। ७. ढोल सितार आदि की डोरी को कसना या तानना। ८. किसी देवता या महात्मा आदि को भेंट देना। देवार्पित करना। नजर रखना। जैसे,—फूल चढ़ाना, मिठाई चढ़ाना। ९. सवारी पर बैठाना। सवार कराना। जैसे,—घोड़े पर चढ़ाना, गाड़ी पर चढ़ाना। १०. चटपट पी जाना। गले से उतार जाना। जैसे,—वह आज एक लोटा भाँग चढ़ा गया।

विशेष—शिष्टता के व्यवहार में इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग नहीं होता। इसमें पीनेवाले पर अधिक पी जाने आदि का आरोप व्यंग या विनोद के अवसर पर ही होता है।

११. किसी के माथे ऋण निकालना। किसी को देनदार ठहराना। जैसे, उसके ऊपर क्यों इतना कर्ज चढ़ाते जाते हो? १२. किसी पुस्तक, बही, कागज आदि पर लिखना। टाँकना। दर्ज करना। (यह प्रयोग किसी ऐसी रकम, वस्तु या नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है)। जैसे,—इन रुपयों को भी बही पर चढ़ा लो। १३. पकने या आँच खाने के लिये चूल्हे पर रखना। जैसे,—दाल चढ़ाना, हाँड़ी चढ़ाना। १४. लेप करना। लगाना। पोतना। जैसे,—माथे पर चंदन चढ़ाना, दवा चढ़ाना, कपड़े पर रंग चढ़ाना। १५. एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु सटाना। मढ़ना। ऊपर से लगाना। आवरण रूप में लगाना। ऊपर से टाँकना। जैसे—जिल्द चढ़ाना, किताब पर कागज चढ़ाना, छाते पर कपड़ा चढ़ाना, खोल या गिलाफ चढ़ाना, गोट चढ़ाना। १६. सितार, सारंगी, धनुष आदि में तार या डोरी कसकर बाँधना। जैसे—रोदा चढ़ाना।

मुहा०—धनुष चढ़ाना=धनुष की कोटि पर पतंचिका चढ़ाना। धनुष की डोरी को तानकर छोर पर बाँधना या अटकाना। वि० दे० 'धनुष'।

चढ़ानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] ऊँचाई की ओर ले जानेवाली सतह। वह स्थान जो आगे की ओर बराबर ऊँचा होता गया हो, और जिसपर चलने में अधिक परिश्रम पड़े। जैसे,—आगे उस पहाड़ की बड़ी कड़ी चढ़ानी है।

चढ़ाव—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना] १. चढ़ने का भाव।

यौ०—चढ़ाव उतार=ऊँचा नीचा स्थान। ऐसा स्थान जहाँ बार बार चढ़ना और फिर उतरना पड़ता हो।

२. बढ़ने का भाव। उत्तरोत्तर अधिक होने का भाव। वृद्धि। बाढ़। जैसे,—पानी का चढ़ाव, नदी का चढ़ाव।

यौ०—चढ़ाव उतार=एक सिरे पर मोटा और दूसरे सिरे की ओर क्रमशः पतला होते जाने का भाव। गावदुम आकृति। जैसे,—इस छड़ी का चढ़ाव उतार देखो।

३. वह गहना जो दूल्हे के घर की ओर से दुलहिन को विवाह के दिन पहनाया जाता है। ४. विवाह के दिन दुलहिन को दूल्हा के यहाँ से आए हुए गहने पहनाने की रीति। उ०—अब मैं गवनब जहाँ कुमारी। करिहौं चढ़न चढ़ाव तयारी।—रघुराज (शब्द०) ५. दरी के करघे का वह बाँस जो बुननेवाले के पास रहता है। ६. वह दिशा जिधर से नदी या पानी की धारा आई हो। बहाव का उलटा। जैसे,—चढ़ाव पर नाव ले जाने में बड़ी मेहनत पड़ती है।

चढ़ावनी(पु)—वि०[हिं०चढ़ना] चढ़ानेवाली। पहुँचानेवाली। ले जानेवाली। उ०—प्रेम की पढ़ावनी बढ़ावनी विरति ज्ञान, अंत में चढ़ावनी श्री रामराजधानी में—राम० धर्म०, पृ० २६०।

चढ़ावा—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना] १. वह गहना जो दूल्हे की ओर से दुलहिन को विवाह के दिन पहनाया जाता है। उ०—इसके कुछ दिनों पीछे रमानाथ के साथ देववाला का व्याह ठीक हो गया, चढ़ावा भी चढ़ गया।—ठेठ० पृ० १६। २. वह सामग्री जो किसी देवता को चढ़ाई जाय। पुजापा। ३. टोटके की वह सामग्री जो बीमारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये किसी चौराहे या गाँव के किनारे रख दी जाती है। ४. बढ़ावा। दम। उत्साह।

मुहा०—चढ़ाना बढ़ाना देना=जी बढ़ाना। उत्साह बढ़ाना। उसकाना। उत्तेजित करना।

चढ़ैत—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना+ऐत (प्रत्य०)] चढ़नेवाला। सवार होनेवाला।

चढ़ैता—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना+ऐता (प्रत्य०)] दूसरों का घोड़ा फेरनेवाला। चाबुक सवार।

चढ़ैया(पु)—वि० [हिं०चढ़ना+ऐया (प्रत्य०)] चढ़ने या चढ़ानेवाला।

चढ़ौआ†—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ौवा] दे० 'चढ़ावा'।

चढ़ौवा—वि० [हिं० चढ़ना] १. उठी हुई एँड़ी का जूता। खड़ी एँड़ी का जूता। २. चढ़ाना। ३. दे० 'चढ़ावा'—१।

चण[१]—संज्ञा पुं० [सं०] चना [को०]।

चण[२]—वि० प्रसिद्ध। ख्यात। जैसे,—अक्षरचण।

विशेष—समास में अंतिम पद के रूप में ही इनका प्रयोग मिलता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार चणप्=चण प्रत्यय है। इसका प्रयोग 'निष्णात' या विद्या अथवा विषय में पारंगत या विख्यात अर्थ में होता है।

चणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चना। २. एक गोत्रकार ऋषि।

चणका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीसी [को०]।

चणकात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] चाणक्य।

चणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग का नाम। २. क्षुद्र गोक्षुर(को०)।

चणपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुदंती नाम का पौधा जिसकी पत्तियाँ चने की पत्तियों के समान होती हैं।

चणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास जिसके खाने से गाय को दूध अधिक होता है।

विशेष—यह घास औषध के काम में भी आती है और वृष्य तथा बलकारक समझी जाती है।

चणिया—संज्ञा पुं० [गुज० चणियो] एक छोटा लहँगा या घाघरा।

चतरंग—संज्ञा पुं० [हिं० चतुरंग] दे० 'चतुरंग'।

चतर[१]†—वि० [हिं० चतुर] दे० 'चतुर'।

चतर(पु)[२]†—संज्ञा पुं० [सं० छत्र, हिं० छतर] छत्र।

चतरना[१]—क्रि० अ० [हिं० छितराना] छितरना। बिखरना।

चतराना[२]—क्रि० स० छितराना।

चतरभंग—संज्ञा पुं० [सं० छत्रभङ्ग] बैलों का एक दोष, जिसमें उनके डिल्ले का मांस एक ओर लटक जाता है।

विशेष—जिस बैल में यह दोष हो, उसका रखना या पालना हानिकारक और अशुभ समझा जाता है।

चतरभंगा—[हिं० वि० चतरभग] (वह बैल) जिसे चतरभंग का रोग हो।

चतरोई—संज्ञा स्त्री०[देश०]पाँच छह हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी।

विशेष—यह हिमालय में हजारा से नैपाल तक ६००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। इसकी छाल सफेद रंग की होती है और फागुन चैत में इसमें पीले रंग के छोटे फूल लगते हैं। इसकी लकड़ी के रस से एक प्रकार की रसौत बनाते हैं।

चतस्र—संज्ञा पुं० [सं० चतस्रः] चार।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द 'चार' वाचक चतसृ के स्त्री लिंग रूप के प्रथमा बहुवचन का अवशेष है।

चतु:पंच—वि० [सं० चतु:पञ्च] चार या पाँच [को०]।

चतु:पंचाश—वि० [सं०] चौवनवाँ।

चतु:पंचाशत्—संज्ञा पुं० [सं०] चौवन की संख्या।

चतु:पाद्, चतु:पाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चार चरणों से युक्त हो। २. न्यायांग में अभियोग की जाँच पड़ताल की एक कार्यविधि जिसमें चार प्रकार की प्रक्रियाएँ हों अर्थात् तर्क, पक्ष समर्थन, प्रयुक्ति और निर्णय। ३. धनुर्वेद जिसके ग्रहण, धारण, प्रयोग और प्रतिकार ये चार चरण हैं।

यौ०—चतु:पादसंपत्ति=दे० 'चतुष्पद' ३।—माधव०, पृ० ५६।

चतु:शफ—वि० [सं०] चार खुरोंवाला [को०]।

चतु:शाख—वि० [सं०] चार शाखाओंवाला [को०]।

चतु:शाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मकान जिसमें चार बड़े बड़े कमरे हों। २. चौपाल। बैठक। दीवानखाना।

चतु:षष्ठ—वि० [सं०] चौंसठवाँ।

चतु:षष्ठी—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं०] चौंसठ की संख्या या अंक।

चतु:ष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चतुष्टोम' [को०]।

चतु:संप्रदाय—संज्ञा पुं० [सं० चतु:सम्प्रदाय] वैष्णवों के चार प्रधान संप्रदाय—श्री, माध्व, रुद्र और सनक।

चतु:सन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा के चार पुत्र—सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं [को०]।

चतु:सप्तत—वि० [सं०] चौहत्तरवाँ।

चतु:सप्तति—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं०] चौहत्तर की संख्या या अंक।

चतु:सम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चतुस्सम' (को०)।

चतु:सीमा—संज्ञा देश० [सं०] चारो ओर की सीमा। हद (को०)।

चतुठ(पु)—वि० [सं० चतुष्टय] चारो ओर स्थित रहनेवाला। उ०—चहुवान चतुठ चावद्दिसा ६। हिंदवान धर भांन विधि।—गुन रूप सहज लच्छी सु नर सहज वीर बंधी सु सिधि। पृ० रा०, २१।१५६।

चतुरंग१—संज्ञा पुं० [सं० चतुरङ्ग] १. वह गाना जिसमें चार प्रकार (जैसे, साधारण गाना, सरगम, तराना, और तबले, मृदंग, सितार आदि) के बोल गठे हों। उ०—न सा रे रे म म प प नि नि स स नि स रे म नि ध प प ध म म नि ध प ध प म ग रे। तनन तनन तुम दिर दिर तूम दिर तारे दानी। सोरठ चतुरंग सप्त सुरन से। धा तिरकिट धुम किट धा तिर किट धुम किट धा तिर किट धुम किट धा। २. एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना। ३. चतुरंगिणी सेना का प्रधान अधिकारी। ४. सेना के चार अंग हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल। ५. चतुरंगिणी सेना।

चतुरंग२—वि० १. चार अंगोंवाली। चतुरंगिणी (सेना)। उ०—प्रात चली चतुरंग चमू बरनी सों न केशव कैसहु जाई।—केशव (शब्द०)। २. चार अंगोंवाला।

चतुरंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चतुर+अङ्ग] दूत। चर। उ०—वर अयवंत सु दीह आइ चतुरंग सपन्नौ। मज्झ महल नृप बोल बंचि कग्गद कर लिन्नौ।—पृ० रा०, २६।१४।

चतुरंग३—संज्ञा पुं० [सं० चतुरङ्ग] शतरंज का खेल।

विशेष—इस खेल के उत्पत्तिस्थान के विषय में लोगों के भिन्न भिन्न मत हैं। कोई इसे चीन देश से निकला हुआ बतलाते हैं, कोई मिस्र से और कोई यूनान से। पर अधिकांश लोगों का मत है, और ठीक भी है, कि यह खेल भारतवर्ष से निकला है। यहाँ से यह खेल फारस में गया; फारस से अरब में और अरब से यूरोपीय देशों में पहुँचा। फारसी में इसे चतरंग भी कहते हैं। पर अरबवाले इसे शातरंज, शतरंज आदि कहने लगे। फारस में ऐसा प्रवाद है कि यह खेल नौशेरवाँ के समय में हिंदुस्तान से फारस में गया और इसका निकालनेवाला दाहिर का बेटा कोई सस्सा नामक था। ये दोनों नाम किसी भारतीय नाम के अपभ्रंश हैं। इसके निकाले जाने का कारण फारसी पुस्तकों में यह लिखा है कि भारत का कोई युद्धप्रिय राजा, जो नौशेरवाँ का समकालीन था, किसी रोग से अशक्त हो गया। उसी का जी बहलाने के लिये सस्सा नामक एक व्यक्ति ने चतुरंग का खेल निकाला। यह प्रवाद इस भारतीय प्रवाद से मिलता जुलता है कि यह खेल मंदोदरी ने अपने पति को बहुत युद्धासक्त देखकर निकाला था। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि भारतवर्ष में इस खेल का प्रचार नौशेरवाँ से बहुत पहले था। चतुरंग पर संस्कृत में अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें से चतुरंगकेरली, चतुरंग-क्रीडन, चतुरंगप्रकाश और चतुरंगविनोद नामक चार ग्रंथ मिलते हैं। प्रायः सात सौ वर्ष हुए त्रिभंगाचार्य नामक एक दक्षिणी विद्वान् इस विद्या में बहुत निपुण थे। उनके अनेक उपदेश इस क्रीड़ा के संबंध में हैं। इस खेल में चार रंगों का व्यवहार होता था—हाथी, घोड़ा, नौका, और वट्टे (पैदल)। छठी शताब्दी में जब यह खेल फारस में पहुँचा और वहाँ से अरब गया, तब इसमें ऊँट और वजीर आदि बढ़ाए गए और खेलने की क्रिया में भी फेरफार हुआ। तिथितत्व नामक ग्रंथ में वेदव्यास जी ने युधिष्ठिर को इस खेल का जो विवरण बताया है, वह इस प्रकार है,—चार आदमी यह खेल खेलते थे। इसका चित्रपट (बिसात) ६४ घरों का होता था जिसके चारो ओर खेलनेवाले बैठते थे। पूर्व और पश्चिम बैठनेवाले एक दल में और उत्तर दक्षिण बैठनेवाले दूसरे दल में होते थे। प्रत्येक खिलाड़ी के पास एक राजा, एक हाथी, एक घोड़ा, एक नाव और चार वट्टे या पैदल होते थे। पूर्व की ओर की गोटियाँ लाल, पश्चिम की पीली, दक्षिण की हरी और उत्तर की काली होती थीं। चलने की रीति प्रायः आज ही कल के ऐसी थी। राजा चारों ओर एक घर चल सकता था। वट्टे या पैदल यों तो केवल एक घर सीधे जा सकते थे, पर दूसरी गोटी मारने के समय एक घर आगे तिरछे भी जा सकते थे। हाथी चारों ओर (तिरछे नहीं) चल सकता था। घोड़ा तीन घर तिरछे जाता था। नौका दो घर तिरछे जा सकती थी। मोहरे आदि बनाने का क्रम प्रायः वैसा ही था, जैसा आजकल है। हार जीत भी कई प्रकार की होती थी। जैसे,—सिंहासन, चतुराजी, नृपाकृष्ट, षट्पद काककाष्ठ, बृहन्नौका इत्यादि।

चतुरंगिक—संज्ञा पुं० [सं० चतुरङ्गिक] एक प्रकार का घोड़ा जिसके माथे पर चार भौंरी होती है (को०)।

चतुरंगिणी१—वि० स्त्री० [सं० चतुरङ्गिणी] चार अंगोंवाली (विशेषतः सेना)।

चतुरंगिणी२—संज्ञा स्त्री० वह सेना जिसमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदल, ये चारो अंग हों।

चतुरंगिनी(पु)—वि०, संज्ञा स्त्री० [चतुरङ्गिणी] दे० 'चतुरंगिणी'।

चतुरंगी(पु)—वि० [सं० चतुरङ्गिन्] १. जिसकी गति चारो ओर हो। २. चतुर। उ०—चित्रनहारे चित्रि तूं रे चतुरंगी नाह। का चहुआन सु कित्ति कवि मन मनुछत्र हरि लाह।—पृ० रा०, १।७६६।

चतुरंगुल१—संज्ञा पुं० [सं० चतुरङ्गुल] अमलतास।

चतुरंगुल२—वि० चार अंगुल लंबा या चौड़ा (को०)।

चतुरंगुला—संज्ञा स्त्री० [पुं० चतुरङ्गुला] शीतली लता।

चतुरंत१—वि० [सं० चतुरन्त] चौतरफा किनारेवाला (को०)।

चतुरंत२—संज्ञा पुं०, स्त्री० पृथिवी।

चतुरंता—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुरन्ता] पृथिवी (को०)।

चतुर१—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० चतुरा] १. टेढ़ी चाल चलनेवाला। वक्रगामी। २. फुरतीला। तेज। जिसे आलस्य न हो ३. प्रवीण। होशियार। निपुण। उ०—कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू। ४. धूर्त। चालाक। ५. सुंदर (को०)।

चतुर२—संज्ञा पुं० १. शृंगार रस में नायक का एक भेद। वह नायक

जो अपनी चातुरी से प्रेमिका के संयोग का साधन करे। इसके दो भेद हैं—क्रियाचतुर और वचनचतुर। २. वह स्थान जहाँ हाथी रहते हों। हाथीखाना। ३. नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा। ४. वक्र गति। टेढ़ी चाल (को०)। ५. धूर्तता। प्रवीणता। होशियारी (को०)। ६. गोल तकिया (को०)।

चतुरई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चतुराई] चतुरता। चतुराई।
क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।—सीखना।
मुहा०—चतुरई छोलना=चालाकी करना। धोखा देना। उ०—जाहु चले गुन प्रकट सूर प्रभु कहाँ चतुरई छोलत हैं—सूर (शब्द०)। चतुराई तौलना=चालाकी करना। उ०—बहुनायकी आजु में जानी कहा चतुरई तौलत हौं।—सूर (शब्द०)।

चतुरक—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर।

चतुरक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल जिसमें दो दो गुरु, दो प्लुत और इनके बाद क गुरु होता है। यह ३२ अक्षरों का होता है और इसका व्यवहार शृंगार रस में होता है।

चतुरजाति—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्जातक] सं० 'चतुर्जातक'।

चतुरता—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर+ता (प्रत्य०)] चतुर का भाव। चतुराई। प्रवीणता। होशियारी।

चतुरथी(पु)—वि० [सं० चतुर्थ] दे० 'चतुर्थ'। उ०—आकाश चतुरथी तत्त बनाया।—प्राण०, पृ० ३६।

चरतुनीक—संज्ञा पुं० [सं०] चतुरानन। ब्रह्मा।

चतुरपन†—संज्ञा पुं० [हिं० चतुर+पन] चतुराई। चतुरता चतुराई।

चतुरबीज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्बीज] दे० 'चतुर्बीज'।

चतुरभुज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्भुज] दे० 'चतुर्भुज'।

चतुरमास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चातुर्मास] दे० 'चातुर्मास'।

चतुरमुख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मुख] दे० 'चतुर्मुख'।

चतुरम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] अमलवेत, इमली, जँबीरी और कागजी नीबू, इन चार खटाइयों का समूह।—(वैद्यक)।

चतुरशीति—वि० [सं०] चौरासी।

चतुरवर(पु)—वि० चतुर लोगों में श्रेष्ठ। उ० कोइक दिन गुर राम पँ पढ़ी सु विद्या अप्प। चवदसु विद्या चतुरवर सीख लई पट लिप्प।—पृ० रा०, १।७२६।

चतुरश्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मसंतान नामक केतु। २. ज्योतिष में चौथी या आठवीं राशि। ३. दे० 'चतुरस्र' (को०)।

चतुरश्र²—वि० जिसके चार कोने हों। चौकोर।

चतुरसम†—संज्ञा पुं० [सं० चतुस्सम] दे० 'चतुस्सम'। उ०—मंगलमय निज निज भवन लोगन रचे बनाय। बीथी सींची चतुरसम चौकें चारु पुराय।—तुलसी (शब्द०)।

चतुरस्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तिताला ताल जिसमें क्रम से एक गुरु (गुरु की दो मात्राएँ), एक लघु (लघु की एक मात्रा), एक प्लुत (प्लुत की तीन मात्राएँ) होता है। इसका बोल यह है—थरिकुकु थाँ थाँ धिगदाँ। धिधि धिमि धिधि गन थों थों डे। २. नृत्य में एक प्रकार का हस्तक। ३. चतुर्भुज क्षेत्र (को०)। ४. ज्योतिष में चौथी या आठवीं राशि (को०)। ५. ब्रह्मसंतोष नामक केतु (को०)।

चतुरस्र—वि० १. चतुष्कोण (माणिक्य की एक विशेषता)। २. सर्वांगीण (को०)।
यौ०—चतुरस्र पांडित्य=सर्वतोमुखी ज्ञान या विद्वत्ता।

चतुरह—संज्ञा पुं० [सं० चतुरहन्] १. वह याग जो चार दिनों में हो। २. चार दिन का समय या काल (को०)।

चतुरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य में धीरे-धीरे भौंह कँपाने की क्रिया।

चतुरा²—संज्ञा पुं० [हिं० चतुर] [स्त्री० चतुरी] १. चतुर। प्रवीण। २. धूर्त। चालाक।

चतुराई—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर+आई (प्रत्य०)] १. होशियारी। निपुणता। दक्षता। २. धूर्तता। चालाकी।

चतुरात्मा—संज्ञा पुं० [सं० चतुरात्मन्] १. ईश्वर। २. विष्णु।

चतुरानन—संज्ञा पुं० [सं०] चार मुखवाले। ब्रह्मा।
यौ०—चतुरानन का अस्त्र=ब्रह्मास्त्र।

चतुरापन†—संज्ञा पुं० [हिं० चतुरा+पन (प्रत्य०)] चतुराई। होशियारी। उ०—फिर बात चले चतुरापन की चित चाव चढ्यौ सुधि बार दई।—रघुनाथ (शब्द०)।

चतुराम्ल—संज्ञा पुं० [सं० चतुरम्ल] दे० 'चतुरम्ल'।

चतुराश्रम—संज्ञा पुं० [चतुर+आश्रम] जीवन के चारों आश्रम—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास।

चतुरिंद्रिय—संज्ञा पुं० [सं० चतुर+इन्द्रिय] चार इंद्रियोंवाले जीव।
विशेष—प्राचीन काल के भारतवासी मक्खी, भौंरे, साँप आदि की श्रवणेंद्रिय नहीं मानते थे; इसी से उन्हें चतुरिंद्रिय कहते थे।—(वैद्यक)।

चतुराशी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुरशीति] दे० 'चौरासी'। उ०—चतुराशी के दुःख नहीं कछु बरने जाँहीं।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ८।

चतुरासीत(पु) वि० [सं० चतुरशीति] दे० 'चौरासी'। उ०—कला बहुत्तर करि कुसल अति निबद्ध जिय जानि। हेत आदि जानन निपुन चतुरासीत विग्यान।—पृ० रा०, १।७३८।

चतुरी—संज्ञा [देश०] पुराने ढंग की एक प्रकार की पतली नाव जो प्रायः एक ही लकड़ी में खोदकर या और किसी प्रकार से बनाई जाती है।

चतुरुपण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार सोंठ, मिर्च, पीपर और पिपरामूल, इन चार गरम पदार्थों का समूह।

चतुर्¹ वि० [सं० चतः चतुर्] चार।

चतुर्²—संज्ञा पुं० चार की संख्या।
विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग केवल समस्त पदों ही में होता है। जैसे—चतुरंगिणी, चतुरानन।

चतुर्गति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कछुआ। २. विष्णु। ३. ईश्वर।

चतुर्गव—संज्ञा पुं० [सं०] चार बैलों द्वारा जोती जानेवाली गाड़ी (को०)।

चतुर्गुण—वि० [सं०] १. चौगुना। २. चार गुणोंवाला।

चतुर्जातक—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार इलायची (फल), दारचीनी (छाल), तेजपत्ता (पत्ता), और नागकेसर (फूल) इन चार पदार्थों का समूह।

चतुर्णवत् वि० [सं०] चौरानवेवाँ ।
चतुर्णवति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौरानवे की संख्या ।
चतुर्णवति²—वि० चौरानवे ।
चतुर्थ¹—वि० [सं०] चार की संख्या पर का । चौथा । जैसे,—चतुर्थ परिच्छेद ।
चतुर्थ²—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तिताला ताल ।
चतुर्थक—संज्ञा पुं० [सं०] वह बुखार जो हर चौथे दिन आए। चौथिया बुखार ।
चतुर्थकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र के अनुसार वह काल जिसमें भोजन करने का विधान है । दोपहर या उसके लगभग का समय । भोजन का समय ।
चतुर्थभक्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चतुर्थ काल' ।
चतुर्थभाज वि० [सं०] वह जो प्रजा के उत्पन्न किए हुए अन्न आदि में से कर स्वरूप एक चौथाई अंश ले ले । राजा ।
विशेष—मनु के मत से कोई विशेष आवश्यकता या आपत्ति आ पड़ने के समय, केवल प्रजा के हितकर कामों में ही लगाने के लिये, राजा को अपनी प्रजा से उसकी उपज का एक चौथाई तक अंश लेने का अधिकार है ।
चतुर्थांश—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्थ+अंश] १. किसी चीज के चार भागों में से एक । चौथाई । २. चार अंशों में से एक अंश का अधिकारी । एक चौथाई का मालिक ।
चतुर्थांशी—वि० [सं० चतुर्थ+अंशिन्] चौथा भाग पानेवाला [को०]।
चतुर्थाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यास ।
चतुर्थिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्थिकर्मन्] दे० 'चतुर्थी' ।
चतुर्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक का एक परिमाण जो चार कर्ष के बराबर होता है । पल ।
चतुर्थी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी पक्ष की चौथी तिथि । चौथ ।
विशेष—(क) इस तिथि की रात, और किसी किसी के मत से रात के पहले पहर में अध्ययन करना शास्त्रों में निषिद्ध बतलाया गया है । (ख) भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को चंद्रमा के दर्शन करने का निषेध है । कहते हैं, उस दिन चंद्रमा के दर्शन करने से किसी प्रकार का मिथ्या कलंक या अपवाद आदि लगता है ।
२. वह विशिष्ट कर्म जो विवाह के चौथे दिन होता है और जिससे पहले वरवधू का संयोग नहीं हो सकता । गंगा प्रभृति नदियों और ग्रामदेवता आदि का पूजन इसी के अंतर्गत है । ३. एक रसम जिसमें किसी प्रेतकर्म करनेवाले के यहाँ मृत्यु से चौथे दिन बिरादरी के लोग एकत्र होते हैं । चौथा । ४. एक तांत्रिक मुद्रा । ५. संस्कृत में व्याकरण में संप्रदान में लगनेवाली विभक्ति (को०) ।
चतुर्थी²—संज्ञा पुं० तत्पुरुष समास का भेद जिसमें संप्रदान की विभक्ति लुप्त रहती है [को०] ।
चतुर्थी क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चतुर्थी'—३ [को०] ।
चतुर्थी तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चतुर्थी²' ।

चतुर्थीविद्या¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौथा वेद । अथर्ववेद । उ०—किंतु हमारी विशिष्ट दृष्टि में चतुर्थी विद्या अर्थात् अथर्ववेद भी कम महत्वपूर्ण नहीं है ।—सं० दरिया, पृ० ५५ ।
चातुर्दंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. कार्तिकेय की सेना । ३. एक राक्षस का नाम ।
चातुर्दंत—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत हाथी, जिसके चार दाँत हैं ।
चातुर्दश¹—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह ।
चतुर्दश²—वि० दे० 'चतुर्दश' । उ०—धूरिहि ते यह तन भयो, धूरिहि सों ब्रह्मांड । लोक चतुर्दश धूरि के सप्त दीप नवखंड।—नंद० ग्रं०, पृ० १७६ ।
चतुर्दशपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंग्रेजी की एक विशेष प्रकार की कविता, जिसमें चौदह चरण होते हैं । उक्त भाषा में इसे सानेट कहते हैं ।
चतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की चौदहवीं तिथि । चौदस ।
चतुर्दिक्¹—संज्ञा पुं० [सं०] चारो दिशाएँ ।
चतुर्दिक²—क्रि० वि० चारो ओर ।
चतुर्दिश¹—संज्ञा पुं० [सं०] चारो दिशाएँ ।
चतुर्दिश²—क्रि० वि० चारो ओर ।
चतुर्दोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार डंडों का हिंडोला या पालना । २. वह सवारी जिसे चार आदमी कंधों पर उठावें । जैसे,—पालकी, नालकी, आदि ।
२. चंडोल नाम की सवारी ।
चतुर्द्दल¹—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्दल] जिसमें चार दल या चार पंखुरिया हों । उ०—शिव प्रथम चक्र आधार जानि । तहाँ अक्षर चारि चतुर्द्दलानि ।— सुंदर० ग्रं०, भाग १, पृ० ४५ ।
चतुर्द्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह घर जिसमें चारो ओर दरवाजे हों । २. चार दरवाजेवाला घर (को०) ।
चतुर्धा—अव्य० [सं०] चार तरह से । चार प्रकार से । उ०—श्री कृष्ण भगवान् का लोक एक होकर भी लीला भेद से चतुर्धा प्रकाशित होता है ।—पोद्दार अभिनय, पृ० ६३७ ।
चतुर्धाम—संज्ञा पुं० [सं०] चारो धाम । चार मुख्य तीर्थ । वि० दे० 'धाम' ।
चतुर्बाहु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । महादेव । २. विष्णु ।
चतुर्बाहु²—वि० चार भुजाओंवाला [को०] ।
चतुर्बिस—वि० [सं० चतुर्विंश] चौबीस । उ०—चतुर्बिस अध्याय यह कोउ चतुर सुनिहै जु । जै दिन बीतें अनसुने, तिन कौं सिर धुनिहै जु ।— नंद० ग्रं०, पृ० ३०७ ।
चतुर्बीज —संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चतुर्बीज' [को०] ।
चतुर्भद्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों का समुच्चय ।
चतुर्भद्र²—वि० [सं०] [स्त्री० चतुर्भुजा] चार भुजाओंवाला । जिसमें चार भुजाएँ हों ।
चतुर्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

चतुर्भुज—संज्ञा पुं० १. विष्णु । २. वह क्षेत्र जिसमें चार भुजाएँ और चार कोण हों। जैसे,

यौ०—सम चतुर्भुज=चार भुजाओं वाला वह क्षेत्र जिसमें चार समकोण हों और जिसकी चारो भुजाएँ समान हों।

जैसे,—

चतुर्भुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक विशिष्ट देवी । २. गायत्री रूपधारिणी महाशक्ति ।

चतुर्भुजी[1]—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्भुज+ई (प्रत्य०)] १. एक वैष्णव सम्प्रदाय जिसके आचार व्यवहार आदि रामानंदियों से मिलते जुलते होते हैं ।

विशेष—लोग कहते हैं, इस संप्रदाय के प्रवर्तक किसी साधु ने एक बार चार भुजाएँ धारण की थीं, इसी से उसके संप्रदाय का नाम चतुर्भुजी पड़ा ।

२. इस संप्रदाय का अनुयायी ।

चतुर्भुजी[2]—वि० चार भुजाओंवाला । जैसे,-चतुर्भुजी मूर्ति ।

चतुर्मास—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मास] बरसात के चार महीने । असाढ़, सावन, भादों और कुआर का चौमासा ।

चतुर्मुख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें क्रम से एक लघु (लघु की एक मात्रा), एक गुरु (गुरु की दो मात्राएँ), एक लघु (लघु की एक मात्रा) और एक प्लुत (प्लुत की तीन) मात्रा होती है । इसका बोल यह है—तांह । तकि तकि तांहऽथकि थरि । तकि तकि दिधि गन थोंड़े । २. नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा । ३. विष्णु ।

चतुर्मुख[2]—वि० [स्त्री० चतुर्मुखी] जिसके चार मुख हों । चार मुँहवाला ।

चतुर्मुख[3]—क्रि० वि० चारों ओर ।

चतुर्मूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] विराट्, सूत्रात्मा, अव्याकृत और तुरीय इन चारो अवस्थाओं में रहनेवाला, ईश्वर ।

चतुर्मेध—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने चार बलिदान किए हों । चारो के नाम ये हैं-अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध तथा पितृमेध [को०] ।

चतुर्युग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चतुर्युगी' [को०] ।

चतुर्युगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चारों युगों का समय । उतना समय जितने में चारो युग एकबार बीत जायँ । ४३२०००० वर्ष का समय । चौजुगी । चौकड़ी ।

चतुर्वक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] चार मुँहवाले, ब्रह्मा ।

चतुर्वर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म काम और मोक्ष ।

चतुर्वर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ।

चतुर्वाही—संज्ञा पुं० [सं०] चार घोड़ों की गाड़ी । चौकड़ी ।

चतुर्विध[1]—वि० [सं०] चार रूपोंवाला । चौतरफा [को०] ।

चतुर्विध[2]—क्रि० वि० चार रूपों में [को०] ।

चतुर्विंश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का याग ।

चतुर्विंश[2]—वि० चौबीसवाँ ।

चतुर्विंशति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौबीस ।

चतुर्विद्य—वि० [सं०] चारो वेदों का ज्ञाता [को०] ।

चतुर्विद्या[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] चारो वेदों की विद्या ।

चतुर्विद्या[2]—चारो वेद जाननेवाला ।

चतुर्वीज—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्+बीज] काला जीरा, अजवाइन, मेथी और हालिम इन चार प्रकार के दानों या बीजों का समूह ।—(वैद्यक) ।

चतुर्वीर—संज्ञा पुं० [सं०] चार दिनों में होनेवाला एक प्रकार का सोम याग ।

चतुर्वेद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर । ईश्वर । २. चारो वेद ।

चतुर्वेद[2]—वि० चारों वेद जाननेवाला ।

चतुर्वेदी—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदिन्] १. चारो वेदों का जाननेवाला पुरुष । २. ब्राह्मणों की एक जाति ।

चतुर्व्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ चार मनुष्यों अथवा पदार्थों का समूह। जैसे,—(क) राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। (ख) कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध । (ग) संसार, संसार का हेतु, मोक्ष और मोक्ष का उपाय । २. विष्णु ।

विशेष—विष्णुसहस्रनाम के भाष्यकार के अनुसार विष्णु के शरीरपुरुष, छंदपुरुष, वेदपुरुष और महापुरुष ये चार रूप हैं । और पुराणों के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि के कार्यों के लिये वासुदेव, संकर्पण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार रूपों में अवतार लिया था; इसलिये उन्हें चतुर्व्यूह कहते हैं ।

३. योग शास्त्र । ४. चिकित्सा शास्त्र ।

चतुर्हायण, चातुर्हायन—वि० [सं०] १. चार वर्षों का । २. चार बरसों में पैदा हुआ (को०) ।

चतुर्होता—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्होतृ । वेद में वर्णित चारो होम करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

चतुर्होत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर । २. विष्णु ।

चतुल—संज्ञा पुं० [सं०] स्थापन करनेवाला । स्थापक ।

चतुश्चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार तांत्रिक लोग मंत्रों के शुभ या अशुभ होने का विचार करते हैं ।

चतुश्चत्वारिंश—वि० [सं०] चौवालीसवाँ ।

चतुश्चत्वारिंशत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौवालीस की संख्या ।

चतुश्चरण[1]—वि० [सं०] १. चार पैरोंवाला । २. चार विभागों या भागोंवाला [को०] ।

चतुश्चरण[2]—संज्ञा पुं० जानवर [को०] ।

चतुश्शृंग—संज्ञा पुं० [सं० चतुश्शृङ्ग] १. वह जिसके चार सींग हों । २ पुराणों के अनुसार कुशद्वीप के एक वर्षपर्वत का नाम ।

चतुष्क—१. वि० [सं०] जिसके चार अंग या पार्श्व हों । चौपहल ।

चतुष्क³—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का घर। २. एक प्रकार की छड़ी या डंडा।
चतुष्कर, चतुष्करी—संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके चारो पैरों के आगे के भाग हाथी के पैर के समान हों। पंजेवाले जानवर।
चतुष्कर्ण—वि० [सं०] १. (बात) जिसे दो आदमी जानते हों। २. (बात) जो गुप्त न हो (को०)।
चतुष्कर्णी—संज्ञा स्त्री०[सं०]कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।
चतुष्कल—वि० [सं०] चार कलाओंवाला। जिसमें चार मात्राएँ हों। जैसे,—छंदःशास्त्र में चतुष्कल गण, संगीत में चतुष्कल ताल।
चतुष्काष्ठ—अव्य० [सं०] चारो ओर से। चारो तरफ से [को०]।
चतुष्की—संज्ञा स्त्री०[सं०] १. पुष्करिणी का एक भेद। २. मसहरी। ३. चौकी।
चतुष्कोण—१ [सं०] चार कोणवाला। चौकोर। चौकोना।
चतुष्कोण²—वि० संज्ञा पुं० वह जिसमें चार कोण हों।
चतुष्टय—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार की संख्या। २. चार चीजों का समूह। जैसे,—अंतःकरण चतुष्टय। ३. जन्मकुंडली में केंद्र, लग्न और लग्न से सातवाँ तथा दसवाँ स्थान।
चतुष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार स्तोमवाला एक यज्ञ। २. अश्वमेध यज्ञ का एक अंग। ३. वायु।
चतुष्पंचाश—वि० [सं० चतुष्पञ्चाश] चौवनवाँ।
चतुष्पंचाशत्—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पञ्चाशत्] चौवन की संख्या या अंक।
चतुष्पत्री—संज्ञा पुं० [सं०] सुसना नाम का साग। वि० दे० 'चतुष्पर्णी'।
चतुष्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौराहा। चौमुहानी। २. ब्राह्मण।
चतुष्पथरता—संज्ञा स्त्री०[सं०]१. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।
चतुष्पद¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार पैरोंवाला जीव या पशु। चौपाया।
यौ०—चतुष्पदवैकृत।
२. ज्योतिष में एक प्रकार का करण। फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला दुराचारी, दुर्बल और निर्धन होता है। ३. वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक इन चारों का समूह।
चतुष्पद²—वि० चार पदोंवाला। जिसमें अथवा जिसके चार पद हों।
चतुष्पदवैकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक जाति के चौपायों का दूसरी जाति के चौपायों से गमन करना, उनको स्तनपान कराना अथवा इसी प्रकार का और कोई नियमविरुद्ध कार्य करना।
विशेष—फलित ज्योतिष में इस प्रकार की क्रिया को अशुभ और अमंगलसूचक माना है; और ऐसा करनेवाले पशुओं के त्याग का विधान किया गया है।
चतुष्पदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपैया छंद, जिसका प्रत्येक चरण ३० मात्राओं का होता है जैसे,—भे प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौशल्या हितकारी। हर्षित महतारी, मुनिमनहारी, अद्भुत रूप निहारी।—तुलसी।
चतुष्पदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चौपाई छंद जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं। जैसे,—राम रमापति तुम मम देव। सँग दिशि देखो यह यश लेव। २. चार पद का गीत।
चतुष्पर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी अमलोनी। २. सुसना नामक साग जो पानी के किनारे होता है और जिसमें चार चार पत्तियाँ होती हैं।
चतुष्पाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।
चतुष्पाठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्यार्थियों के पढ़ने का स्थान। पाठशाला।
चतुष्पाणि¹—वि० [सं०] जिसके चार हाथ हों। चार हाथोंवाला।
चतुष्पाणि²—संज्ञा पुं० विष्णु।
चतुष्पाद—वि० [सं०] दे० 'चतुष्पद' [को०]।
चतुष्पार्श्व—वि० [सं०] चौतरफा। चौपहला। [को०]।
चतुष्फल—वि० [सं०] जिसमें चार फल या पहल हों। चौपहला।
चतुष्फला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबला नामक ओषधि।
चतुस्तन¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] चार स्तनोंवाली, गाय।
चतुस्तन²—वि० चार स्तनोंवाली [को०]।
चतुस्तना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चतुस्तन' (को०)।
चतुस्तना²—वि० दे० 'चतुस्तन' [को०]।
चतुस्तनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चतुस्तना'¹ [को०]।
चतुस्तनी²—वि० दे० 'चतुस्तना'², [को०]।
चतुस्ताल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें तीन द्रुत और एक लघु होता है। इसका बोल यह है—(१) धा० धरि० धिमि० धिरि था। अथवा (२) धा० धधि० गण धो ई।
चतुस्त्रिंश—वि० [सं०] चौंतीसवाँ।
चतुस्संप्रदाय—संज्ञा पुं० [सं० चतुस्सम्प्रदाय] वैष्णवों के चार संप्रदाय श्री, माध्व, रुद्र और सनक।
चतुस्त्रिंशत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौंतीस की संख्या या अंक।
चतुस्सन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सनक, सनत्कुमार, सनंदन और सनातन ये चारो ऋषि। २. विष्णु।
चतुस्सम—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक औषध जिसमें लौंग जीरा, अजवाइन और हड़ सम भाग होते हैं। यह पाचक, भेदक और आमशूलनाशक होती है। २. एक गंधद्रव्य जिसमें २ भाग कस्तूरी, ४ भाग चंदन, ३ भाग कुंकुम और ३ भाग कपूर का रहता है।
चतुस्सीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौहद्दी (को०)।
चतुस्सूत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यासदेव कृत वेदांत के पहले चार सूत्र जो बहुत कठिन हैं और जिनपर भाष्यकारों का बहुत कुछ मतभेद है। चतुः सूत्रों पर आचार्य शंकर का भाष्य सर्वप्रसिद्ध है। ये चारों सूत्र पढ़ने के लिये लोग प्रायः बहुत अधिक परिश्रम करते हैं।
चतूरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] चार रात्रियों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।
चतौना⁺†—क्रि० स० [हिं० चेताना] चेतावनी देना। सतर्क

करना। जगाना। उ०—वो उस दल अमृत रस पीवैं, उपरि द्वै दल करैं चतौना।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८६२।

चत्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चित्त] दे० 'चित्त'। उ०—सुकी सरिस सुक उच्चरयो, धरयो नारि सिर चित्त। शयन संजोगिय संभरै, मन मै मंडित हित्त।—पृ० रा०, १४।२।

चत्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चत्वार] दे० 'चतुर' या 'चार'।

यौ०—चत्रमास=चार महीना। चौमासा। उ०—दुय चत्र मास वादियो दिखणी, भोमगई सो लियत भवेस।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १०५।

चत्रगुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० शत्रुघ्न] राम के सबसे छोटे भाई। शत्रुघ्न। उ०—अब वरतंत कहौं याही सो, भरत चत्रगुन भाई। दरसत सीता और कौशिल्या, सिया लछमन लहाई।—घट०,पृ०१९६।

चत्रु(पु)—वि० [सं० चतुर] दे० 'चतुर'। उ०—पुत्री दोइ राजं सुराजं विचारी। इकं रूप सारं वियं चत्रुनारी।—पृ० रा०, २।२३४।

चत्रुदश(पु)—सं० पुं० [सं० चतुर्दश] दे० 'चतुर्दश'। उ०—चत्रुदश लोक लीला वरनन करैं। रचा वैराट जग विध वनावा।—तुरसी श०, पृ० १५।

चत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौमुहानी। चौरस्ता। २. वह स्थान जहाँ भिन्न भिन्न देशों से लोग आकर रहें। ३. होम के लिये साफ किया हुआ स्थान। ४. चार रथों का समूह (को०)।

यौ०—चत्वरतरु=चौराहे का वृक्ष।

चत्वरवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

चत्वारिंश—वि० [सं०] चालीसवाँ।

चत्वारिंशत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] चालीस की संख्या या अंक।

चत्वाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. होमकुंड। २. कुश नाम की घास। ३. गर्भ। ४. वेदी। चबूतरा।

चदरा†—संज्ञा पुं० [हिं० चादर] दे० 'चादर'।

चदिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपूर २. चंद्रमा। ३. हाथी। ४. साँप।

चद्दर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चादर] १. चादर। २. किसी धातु का लंबा चौड़ा चौकोर पत्तर।

क्रि० प्र०—काटना।—जड़ना।—मढ़ना।

३. नदी आदि के तेज बहाव में पानी का वह बहता हुआ अंश जिसका ऊपरी भाग कुछ विशेष अवस्थाओं में बिलकुल समतल या चादर के समान हो जाता है।

विशेष—इस प्रकार की चादर में जरा भी लहर नहीं उठती और यह चादर बहुत ही भयानक समझी जाती है। यदि नाव या मनुष्य किसी प्रकार इस चद्दर में पड़ जाय, तो उसका निकलना बहुत कठिन हो जाता है।

मुहा०—चद्दर पड़ना=नदी के बहते हुए पानी के कुछ अंश का एकदम समतल हो जाना।

विशेष—दे० 'चादर'।

४. एक प्रकार की तोप। उ०—गुरदा चद्दर गंज गुबारे। लिए लगाइ तीर कस भारे।—हम्मीर०, पृ० ३०।

विशेष—इसमें बहुत सी गोलियाँ अथवा लोहे के टुकड़े एक साथ तोप में भरकर चलाते थे और यह चद्दर कहलाती थी।

चनक(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० चणक] चना। उ०—जानत हैं चारों फल चार ही चनक को।—तुलसी (शब्द०)।

चनक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चनकना] चनकने का भाव या स्थिति।

चनक[3]—वि० [सं० क्षण] १. क्षणिक। २. खुलना और बंद होना। उ०—चनक मूँद खग मृग सब नाहीं। मदन गुपाल केलि रस छकीं।—घनानंद, पृ० २८९।

चनकन—संज्ञा पुं० [देश०] चनगम।

चनकट(पु)†—संज्ञा स्त्री० [देश०] थप्पड़। उ०—तहँ हनै एकन को मुठिका हनी एकन चनकटैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १४६।

चनकना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'चटकना'। उ०—विरह आँच नहि सहि सकी सखी भई बेताब। चनक गई सीसी गयो छिरकत छनकि गुलाब।—शृं० सत० (शब्द०)।

चनकाम्ल—संज्ञा पुं० [सं० [चणकाम्ल] दे० 'चणकाम्ल'।

चनखना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० अनखना] खफा होना। चिढ़ना। चिटकना। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सों प्यारी जब तूँ बोलत चनख चनख।—हरिदास (शब्द०)।

चनचना—संज्ञा पुं० [अनु०] एक कीड़ा जो तमाखू की फसल को हानि पहुँचाता है। यह तमाखू के पत्तों की नसों में छेद कर देता है जिससे पत्ते सूख जाते हैं। इसे भनभना भी कहते हैं।

चनचनाना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] १. चिढ़ना। खफा होना। क्रुद्ध होना। २. कलह करना। क्रोध प्रकट करना।

चनन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] चंदन। संदल। उ०—ओछकी चनन केवरिया जोहौं बाट। उड़िगे सोननिरैंया पींजर हाथ।—रहीम (शब्द०)।

चनवर(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] कौर। ग्रास।

चनसित—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ। महान्।

विशेष—वैदिक काल में सम्मान के लिये नाम के पहले इस शब्द को लगाकर ब्राह्मणों को संबोधित करते थे।

चना—संज्ञा पुं० [सं० चणक] चैती फसल का एक प्रधान अन्न जिसका पौधा हाथ डेढ़ हाथ तक ऊँचा होता है।

विशेष—इसकी छोटी कोमल पत्तियाँ कुछ खटाई और खार लिए होती हैं और खाने में बहुत स्वादिष्ट होती हैं। इस अन्न के दाने प्रायः गोल होते हैं और इसके ऊपर का छिलका उतार देने पर अंदर से दो दालें निकलती हैं, जो और दालों की तरह उबालकर खाई जाती हैं। यह अनेक प्रकार से खाने के काम आता है। ताजा चना लोग कच्चा भी खाते हैं; और सूखा चना भाड़ में भूनकर खाया जाता है। इससे कई तरह की मिठाइयाँ और खाने की नमकीन चीजें बनती हैं। यह बहुत बलवर्द्धक और पुष्टिदायक समझा जाता है, पर कुछ गुरुपाक होता है। भारत में यह घोड़ों और दूसरे चौपायों को बलिष्ठ करने के लिये दिया जाता है। वैद्यक में इसे मधुर, रूखा और मेह, कृमि तथा रक्तपित्त नाशक, दीपन, रुचि तथा बलकारक माना गया है। इसे बूट, छोले और रहिला भी कहते हैं।

पर्या०—हरिमंथ । चण । मुगंफ । कृष्णचंचुक । बालभोज्य । राजिनस्य । । कंचुकी ।

यौ०—चना चबेना=रूखा सूखा भोजन ।

मुहा०—चने का धारा मरना=इतना दुर्बल होना कि बहुत जरा सी चोट से मर जाय । नाकों चने चबवाना=बहुत तंग करना । बहुत दिक या हैरान करना । नाकों चने चबाना=बहुत हैरान होना । लोहे का चना=अत्यंत कठिन काम । दुष्कर कार्य । विकट कार्य । लोहे का चना चबाना=अत्यंत कठिन कार्य करना ।

चनाखार—संज्ञा पुं० [हिं० चना+खार] चने के डंठलों और पत्तियों आदि को जलाकर निकाला हुआ खार ।

चनाव—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभागा] पंजाब की पाँच नदियों में से एक ।
विशेष—यह लद्दाख के पर्वतों से निकलकर सिंध में मिलती है । यह प्रायः ६०० मील लंबी है ।

चनार—संज्ञा पुं० [फा० चनार] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जो उत्तर भारत, विशेषतः काश्मीर में बहुत अधिकता से होता है ।
विशेष—इसके पत्ते पंजे के आकार के होते हैं और जाड़े में बिलकुल झड़ जाते हैं । इसकी लकड़ी पीलापन लिए सफेद रंग की और बहुत मजबूत होती है । यह बहुत देर में जलती है और मेज कुरसियाँ आदि बनाने के काम आती है ।

चनियारी—संज्ञा स्त्री० [?] एक जलपक्षी जो साँभर झील के निकट और बरमा में अधिकता से पाया जाता है ।
विशेष—इसके पर बहुत सुंदर होते हैं और मेमों की टोपियों में लगाने तथा गुलूबंद बनाने के काम में आते हैं । इसे 'हरगीला' भी कहते हैं ।

चनुअरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चनारी] दे० 'चनोरी' ।

चनेठ—संज्ञा पुं० [हिं०चना+एठ (प्रत्य०)] १. एक की प्रकार घास ।
विशेष—इसकी पत्ती चने की पत्ती से मिलती जुलती होती है । यह बहुधा पशुओं की ओषधि में काम आती है ।
२. इस घास से बनी हुई औषध जो प्रायः पशुओं को दी जाती है ।

चनोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] वह भेड़ जिसके सारे शरीर के रोएँ सफेद हों ।—(गड़ेरिया) ।

चन्न—संज्ञा पुं० [सं० चरण] दे० 'चरण' । उ०—डिगे पंभ ब्रह्मंड दिगपाल हल्ली । धरा चन्न भारं तु लाजे मतुल्ली । पृ० रा०, २।१८४ ।

चन्नण† -संज्ञा पुं० [सं० चन्दन, प्रा० चंदण] दे० 'चंदन' । उ०— चन्नण केसर चरच कियौ उच्छंव मछरीका ।—रा० रू०, पृ० ३५८ ।

चन्ना† संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रक] दे० 'चाँद' उ०— चन्नी रात का चन्ना पड़ मेरी म्हाड़ पो । बिजली तेरी दाद साँई करतै बात । —दक्खिनी०, पृ० ३८६ ।

चन्नी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चंदिनी या चाँदनी] दे० 'चाँदनी' । उ०—चन्नी रात का चन्ना पड मेरी म्हाडी पो ।—दक्खिनी० पृ० ३८६ ।

चन्हारिन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जंगली चिड़िया ।

चप—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोली हुई वस्तु । जैसे,—चूने का चप ।

चपकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपकना] १. एक प्रकार का अंगा । अँगरखा । २. लोहे या पीतल का एक साज जिसे किवाड़, संदूक आदि में इसलिये लगाते हैं, जिसमें बंद संदूक या किवाड़ के पल्ले अटके रहें और झटके आदि से खुल न सकें । इसी के कोढ़े में ताला लगाया जाता है । ३. एक छोटी कील जो हल की हरिस में आगे की ओर लगी होती है ।

चपकना†—क्रि० अ० [हिं० चिपकना] दे० 'चिपकना' ।

चपका—संज्ञा पुं० [हिं० चपकना] एक प्रकार का कीड़ा ।

चपकाना—क्रि० स० [हिं० चिपकाना] दे० 'चिपकाना' ।

चपकलश—संज्ञा स्त्री० [तु०] १. तलवार का युद्ध । २. दंगा । ३. लड़ाई झगड़ा । ४. स्थान की कमी । ५. भीड़ । ६. दिक्कत । अड़चन । कठिनाई (को०) ।

चपकुलिश—संज्ञा स्त्री० [तु०] १. कठिन स्थिति । अड़चन । फेर । कठिनाई । झंझट । अंडस ।
क्रि० प्र०— में पड़ना ।
२. कसामसी । बहुत भीड़भाड़ । अंडस ।

चपट—संज्ञा पुं० [सं० या अनु०] १. चपत । तमाचा । २. दे० चपेट (को०) ।

चपटना†—क्रि० अ० [हिं० चिपटना] दे० 'चिपकना' या 'चिमटना' ।

चपटा†—वि० [हिं० चिपटा] दे० 'चिपटा' ।

चपटा गाँजा—संज्ञा पुं० [हिं० चपटा+गाँजा] दबाया हुआ गाँजा । बालूचर गाँजा ।

चपटाना†—क्रि० स० [हिं० चिपटना का प्रे० रूप] दे० 'चिपकाना' या 'चिमटाना' ।

चपटी¹—वि० स्त्री० [हिं० चिपटी] दे० 'चिपटी' ।

चपटी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] १. एक प्रकार की किलनी जो चौपाये को लगती है । २. ताली । थपोड़ी । ३. योनि । भग ।
मुहा०—चपटी खेलना=दो स्त्रियों का परस्पर योनि मिलाकर रगड़ना । चपटी लड़ाना = दे० 'चपटी खेलना' ।

चपड़कनातिया—वि० [हिं० चपरकनातिया] दे० 'चपरकनातिया' ।

चपड़गट्टू¹—वि० [हिं० चौपट+गटपट] आफत का मारा ।

चपड़गट्टू²—वि० गुत्थमगुत्था ।

चपड़चपड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह शब्द जो कुत्तों के मुँह से खाते या पानी पीते समय निकलता है ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चपटा] १. साफ की हुई लाख का पत्तर । साफ की हुई काम में लाने योग्य लाख । २. लाल रंग का एक कीड़ा या फतिंगा जो प्रायः पाखानों तथा सीड़ लिए हुए गंदे स्थानों में होता है । ३. कोई पिटी हुई या चिपटी वस्तु । पत्तर ।

चपड़ा लेना—क्रि० अ० [हिं० चपड़ा] मस्तूल के जोड़ पर रस्सी लपेटना ।—(लश०) ।

चपड़ी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चपटा] १. तखती । पटिया । २. दे॰ 'चिपड़ी' ।

चपत—संज्ञा पुं॰, स्त्री॰ [सं॰ चर्पट] १. तमाचा या थप्पड़ जो सिर या गाल पर मारा जाय ।

विशेष—कुछ लोग चपत केवल उसी थप्पड़ को कहते हैं, जो सिर पर लगे ।

क्रि॰ प्र॰—जमना ।—जमाना ।—बैठना ।—मारना ।—लगाना । उ॰—बैठती आन बान से तो क्यों । बात बैठी अगर चपत बैठे ।—चुभते॰, पृ॰ ५२ ।

मुहा॰—चपत झाड़ना या धरना=चपत मारना ।

यौ॰—चपतगाह=खोपड़ा । गुद्दी ।

२. धक्का । हानि । नुकसान । जैसे, बैठे बैठाए चार रुपए का चपत बैठ गया ।

क्रि॰ प्र॰—पड़ना ।—बैठना ।

चपतियाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ चपत] चपत लगाना । उ॰—पाँच हिंदुओं के सवारों ने मुझे पकड़ लिया और तुरक तुरक करके लगे चपतियाने ।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ५२५ ।

चपदस्त—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] वह घोड़ा जिसका अगला दाहिना पैर सफेद हो ।

चपनक(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चपटी] दे॰ 'चपटी' । उ॰—कूले तले स्थल है कीनी । गोड़े ऊपर चपनक दीनी ।—प्राण॰, पृ॰२४ ।

चपना—क्रि॰अ॰ [सं॰ चपन (=कूटना, कुचलना)] १. दबना । दाब में पड़ना । कुचल जाना । । उ॰—चपति चंवला की चमक हीरा दमक हिराय । हाँसी हिमकर जोति की होति हास तिय पाय ।—राम॰ धर्म॰, पृ॰ २४२ । २. लज्जा से गड़ जाना । लज्जित होना । सिर नीचा करना । शरमाना । झेंपना । छिप जाना । चौपट होना । नष्ट होना ।

चपनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चपना] १. छिछला कटोरा । कटोरी ।

मुहा॰—चपनी भर पानी में डूब मरना=लज्जा के मारे किसी को मुँह न दिखाना ।

२. एक प्रकार का कमंडल जो दरियाई नारियल का होता है । ३. वह लकड़ी जिसमें गड़ेरिए ताना बाँधकर कंबल की पट्टियाँ बुनते हैं । ४. हाँड़ी का ढक्कन ।

मुहा॰—चपनी चाटना=बहुत थोड़ा अंश पाकर रह जाना ।

५. घुटने की हड्डी । चक्की ।

चपरउनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चपटा] लोहारों का एक औजार जिससे बालटू पीटकर फैलाया जाता है ।

चपरकनातिया—वि॰ [हिं॰ चपरकनाती] दे॰ 'चपरकनाती' ।

चपरकनाती—वि॰ [हिं॰ चपर+तु॰ कनात+हिं॰ ई (प्रत्य॰)] खुशामद करनेवाला ।

चपरगट्टू—वि॰ [हिं॰ चौपट+गटपट] १. सत्यानाशी । चौपटा । २. आफत का मारा । अभागा । ३. गुत्थमगुत्था । एक में उलझा हुआ ।

चपरना¹(पु)—क्रि॰ स॰ [अनु॰ चपचप] १. किसी गीली या चिपचिपी वस्तु को दूसरी वस्तु पर फैलाकर लगाना । वि॰ दे॰ 'चुपड़ना' । उ॰—ऊधो जाके माथे भागु । अबलन योग सिखावन आए चेरिहिं चपरि सोहागु । सूर (शब्द॰) । २. परस्पर मिलाना । सानना । ओतप्रोत करना । उ॰—विषय चिंता दोउ है माया । दोउ चपरि ज्यों तरुवर छाया । सूर (शब्द॰) ।† ३. भाग जाना । खिसक जाना ।

चपरना²(पु)—क्रि॰ स॰ [सं॰ चपल] तेजी करना । जल्दी करना । उ॰—सरल वक्रगति पंचग्रह चपरि न चितवत काहु । तुलसी सूधे सूर ससि समय बिडंवत राहु ।—तुलसी (शब्द॰) ।

चपरनी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] मुजरा । गाना ।—(वेश्याओं की बोली) ।

चपरा¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चपड़ा] दे॰ 'चपड़ा' ।

चपरा²†—वि॰ कोई बात कहकर या कोई काम करके उससे इनकार करनेवाला । मुकर जानेवाला । झूठा ।

चपरा³—अव्य॰ [हिं॰ चपरना] हठात् । मान न मान । ख्वाहमख्वाह । जैसे हो तैसे । उ॰—देखा भाला तोपची चपरा सैयद होय ।

चपराना¹—क्रि॰ स॰ [देश॰] झूठा बनाना । झुठलाना ।

चपराना²(पु)†—क्रि॰ स॰ [हिं॰] बहकाना । उ॰—चोरी करि चपरावत सौहैंनि काहे कौं इतनो फाँफट फाँकत ।—घनानंद, पृ॰ ३३६ ।

चपरास—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चपरासी] १. पीतल आदि धातुओं की एक छोटी पट्टी जिसे पेटी या परतले में लगाकर सिपाही, चौकीदार, अरदली आदि पहनते हैं और जिसपर उनके मालिक, कार्यालय आदि के नाम खुदे रहते हैं । बिल्ला । बैज । २. मुलम्मा करने की कलम । ३. मालखंभ की एक कसरत जो दुबगली के समान होती है । दुबगली में पीठ पर से बेंत आता है और इसमें छाती परसे आता है । ४. बढ़इयों के आरे के दाँतों का दाहिने और बाएँ झुकाव ।

विशेष—बढ़ई आरे के कुछ दाँतों को दाहिनी ओर और कुछ को बाईं ओर थोड़ा मोड़ देते हैं, जिसमें आरे के पत्ते की मोटाई से चिराव के दरज की मोटाई कुछ अधिक हो और लकड़ी आरे को पकड़ने न पावे ।

५. कुरतों के मोढ़े पर की चौड़ी धज्जी ।

चपरासी—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ चप (=बायाँ)+रास्त (= दाहिना)] वह नौकर जो चपरास पहने हो और मालिक के साथ रहे । सिपाही । प्यादा । मिरदहा । अरदली ।

चपरि(पु)—क्रि॰ वि॰ [सं॰ चपल] फुरती से । चपलता से । तेजी से । जोर से । सहसा । एकबारगी । उ॰—(क) जीवन से जागी आगि चपरि चौगुनी लागि तुलसी बिलोकि मेघ चले मुँह मोरि कै ।—तुलसी (शब्द॰) । (ख) तहाँ दशरथ के समर्थ नाथ तुलसी को चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा ललाम को ।—तुलसी (शब्द॰) । (ग) राम चहत सिव चापहि चपरि चढ़ावन ।—तुलसी (शब्द॰) । (घ) चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निवाहु ।—तुलसी (शब्द॰) । (च) कियो छुड़ावन विविध उपाई । चपरि गह्यो तुलसी बरियाई ।—रघुराज (शब्द॰) ।

चपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] एक कदन्न या घास जिसमें चिपटी चिपटी फलियाँ लगती हैं। खेसारी। चिपटैया।

चपरैला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे कूरी भी कहते हैं।

चपल—वि० [सं०] १. कुछ काल तक एक स्थिति में न रहनेवाला। बहुत हिलने डोलनेवाला। चंचल। तेज। फुरतीला। चुलबुला। उ०—(क) भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाय। —तुलसी (शब्द०)। (ख) जस अपजस देखति नहीं देखति साँवर गात। कहा करौं लालच भरे, चपल नैन ललचात।—बिहारी (शब्द०)। २. बहुत काल तक न रहनेवाला। क्षणिक। ३. उतावला। हड़बड़ी मचानेवाला। जल्दबाज। ४. अभिप्रायसाधन में उद्यत। अवसर न चूकनेवाला। चालाक। धृष्ट। उ०—मधुप तुम्ह कान्ह ही की कही क्यों न कही है? यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरी और ही है।—तुलसी (शब्द०)।

चपल²—संज्ञा पुं० १. पारा। पारद। २. मछली। मत्स्य। ३. चातक। पपीहा। ४. एक प्रकार का पत्थर। ५. चोर नामक सुगंधद्रव्य। ६. राई। ७. एक प्रकार का चूहा।

यौ० चपलगति=तेज चाल। चपलचित=चंचल चित्त। चपलस्पर्धा=तीव्र स्पर्धा।

चपलक—वि० [सं०] १. अस्थिर। चंचल। २. बिना सोचे समझे कार्य करनेवाला। अविचारी। जन-गण-मन की चंचलता के ये चपलक अभिव्यंजन आए। मेरे आँगन खंजन आए।—क्वासि, पृ० ८८।

चपलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंचलता। तेजी। जल्दी। उतावली। २. धृष्टता। ढिठाई। उ०—चूक चपलता मेरियै तूँ बड़ो बड़ाई। बंदि छोर बिरदावली निगमागम गाई।—तुलसी (शब्द०)।

चपलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] चपलता। चंचलता।

चपलफाँटा—संज्ञा पुं० [सं० चपल+हिं० फट्टा=धज्जी] जहाज के फर्श के तख्तों के बीच की खाली जगह में खड़े बैठाए हुए तख्ते या पच्चड़, जिनसे मस्तूल आदि फँसे रहते हैं।

चपलस—संज्ञा पुं० [देश०] एक ऊँचा पेड़।

विशेष—इसके भीतर की लकड़ी पीलापन लिए भूरी और बहुत ही मजबूत होती है। इससे सजावट के सामान, चाय के संदूक, नाव के तख्ते आदि बनते हैं। यह ज्यों ज्यों पुरानी होती है, त्यों त्यों कड़ी और मजबूत होती जाती है।

चपला¹—वि० स्त्री० [सं०] चंचला। फुरतीली। तेज।

चपला²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी। २. बिजली। चंचला। ३. आर्या छंद का एक भेद।

विशेष—जिस आर्या दल के प्रथम गण के अंत में गुरु हो, दूसरा गण जगण हो, तीसरा गण दो गुरु का हो, चौथा गण जगण हो, पाँचवें गण का आदि गुरु हो, छठा गण जगण हो, सातवाँ जगण न हो, अंत में गुरु हो, उसे चपला कहते हैं। परंतु केदारभट्ट और गंगादास का मत है कि जिस आर्या में दूसरा और चौथा गण जगण हो वही चपला है। जैसे,—रामा भजौ सप्रेमा, सुमति पैहौ सुमुक्तिहू पैहौ। इसके तीन भेद हैं। (क) मुखचपला। (ख) जघनचपला। (ग) महाचपला।

४. पुंश्चली स्त्री। ५. पिप्पली। पीपल। ६. जीभ। जिह्वा। ७. विजया। भाँग। ८. मदिरा। ९. प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ हाथ ऊँची होती थी और केवल नदियों में चलती थी।

चपला³—संज्ञा स्त्री० [हिं० चप्पड़] जहाज में लोहे या लकड़ी की पट्टी जो पतवार के दोनों ओर उसकी रोक के लिये लगी रहती है।—(लश०)।

चपलाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चपल] चपलता। उ०—रही बिलोकि बिचारि चारु छवि परमिति पार न पाई री। मंजुल तारन की चपलाई चितु चतुरानन करषै री।—सूर (शब्द०)।

चपलान—संज्ञा पुं० [हिं० चप्पड़] जहाज की गलही के अगल बगल के कुंदे जो धक्के सम्हालने के लिये लगाए जाते हैं—(लश०)।

चपलाना¹(पु)—क्रि० अ० [सं० चपल] चलना। हिलना। डोलना।

चपलाना²—क्रि० स० चलाना। हिलाना। डोलाना।

चपली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] जूती। चट्टी।

चपवाना†—क्रि० स० [हिं० चपना प्रे० रूप] चापने या दाबने का कार्य कराना। दबवाना।

चपाक—क्रि० वि० [अनु०] १. अचानक। २. चटपट। झटपट। तुरंत।

चपाकि(पु)—क्रि० वि० [हिं० चपाक] दे० 'चपाक'। उ०—करत करत धंध कछुव न जाने अंध, आवत निकट दिन आगिलौ चपाकि दै।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४१२।

चपाट—संज्ञा पुं० [हिं० चपाट] वह जूता जिसकी एँड़ी उठी न हो। चपौरा जूता।

चपाती—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्पटी] वह पतली रोटी जो हाथ से बेलकर बढ़ाई जाती है। रोटी।

मुहा० चपाती सा पेट=वह पेट जो बहुत निकला हुआ न हो। कृशोदर।

चपातीसुमा—वि० [हिं० चपाती+फा० सुम+हिं० आ (प्रत्य०)] रोटी के से सुमवाला (घोड़ा)।

चपाना—वि० [हिं० चपना] १. एक रस्सी के सूत को दूसरी रस्सी के सूत के साथ बुनकर जोड़ना या फँसाना। रस्सी जोड़ना। २. दबाने का काम कराना। दबवाना। ३. लज्जा से दबाना। लज्जित करना। झिपाना। शरमिंदा करना।

चपेकना—क्रि० स० [हिं० चिपकाना] दे० 'चिपकाना'।

चपेट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपाना (=दबाना)] १. रगड़ के साथ वह दबाव जो किसी भारी वस्तु के वेगपूर्वक चलने से पड़े। झोंका। रगड़ा। धक्का। आघात। घिस्सा। उ०—चारिहु चरन की चपेट चपिट चापे चिपटिगो उचकि चारि आँगुल अचलु गो।—तुलसी (शब्द०)। २. झापड़। थप्पड़।

तमाचा। उ०—याको फल पावहुगे आगे। वानर भालु चपेटन्हि लागे। —तुलसी (शब्द०)।

३. दबाव। संकट।

मुहा०—चपेट में आना=संकट में फँसना। मारा जाना। उ०—हैं हरिन ही चपेट में आते। बाघ पर टूटते नहीं चीते। —चुभते०, पृ० ७०।

चपेटना—क्रि० स० [हिं० चपेट] १. दबाना। दबोचना। दबाव में डालना। रगड़ा देना। २. बलपूर्वक भगाना। आघात पहुँचाते हुए हटाना। जैसे,—सिख लोग शत्रुओं की सेना को चारो ओर से चपेटने लगे। ३. फटकार बताना। डाँटना। जैसे,—उसको हम ऐसा चपेटेंगे कि वह भी क्या समझेगा।

चपेटा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चपेट] १. दे० 'चपेट'।

चपेटा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] दोगला। वर्णसंकर।

चपेटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तमाचा। थप्पड़ (को०)।

चपेटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादो सुदी छठ। भाद्रपद की शुक्ला षष्ठी।

विशेष—यह स्कंदपुराण में संतान के हितार्थ पूजन के लिये गिनाई हुई द्वादश षष्ठिओं में से एक है।

चपेड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० चपेट] थप्पड़। तमाचा।

चपेरना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चापना (=दबाना)] चापना। दबाना। उ०—दुर्मति केर दोहागिनि भेटै ढोटै चापि चपेरै। कह कबीर सोई जन मेरा घर की रार निबेरै।—कबीर (शब्द०)।

चपेहर—संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का नाम।

चपेहा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा तथा उसका फूल।

चपोट सिरीस—संज्ञा स्त्री० [देश०] सिरीस या शीशम की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह शिशिर में अपनी पत्तियाँ झाड़ देता है और जमुना के पूर्व हिमालय की तराई में होता है। यह मध्य भारत, दक्षिण तथा बंबई प्रांत में भी होता है। इसके बीजों में से तेल निकलता है और इसकी पत्ती तथा छाल दवा के काम में आती है। इस पेड़ में से बहुत मजबूत और लंबी धरन निकलती है जो इमारत आदि के काम में आती है।

चपोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपाना या चिपटा] छोटी टोपी। सिर में जमी हुई टोपी।

चपौर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक जलपक्षी।

विशेष—यह शरद ऋतु में बंगाल तथा आसाम में दिखाई पड़ता है। इसकी चोंच और पैर, पीले तथा सिर, गर्दन और छाती हलकी भूरी होती है।

चपौर[2]—[हिं० चपटा] वह जूता जिसकी एँड़ी उठी न हो। चपाट जूता।

चप्पड़—संज्ञा पुं० [हिं० चिप्पड़] दे० 'चिप्पड़'।

चप्पन—संज्ञा पुं० [हिं० चपना + दबना] छिछला कटोरा। दबी हुई या नीची बारी का कटोरा।

चप्परि(पु)—क्रि० वि० [प्रा० चंपण (चाँपना दबाना)] बलपूर्वक। उ०—(क) ठाकुर ठक भए गेल चोरें चप्परि घर लिजिज्अ।—कीर्ति०, पृ० १६। (ख) तेजी ताजि तुरग्र चारि दश चप्परि छुट्टइ। तरुण तुरुक असवार, बाँस जत्रै चावुक फुट्टइ।—कीर्ति०, पृ० ८८।

चप्पल—संज्ञा पुं० [हिं० चपटा ?] १. एक प्रकार का जूता जिसकी एँड़ी चिपटी होती है। वह जूता जिसकी एँड़ी पर दीवार न हो। २. वह लकड़ी जिसपर जहाज की पतवार या और कोई खंभा जड़ा होता है।—(लश०)।

चप्पल सेंहुँड—संज्ञा पुं० [हिं० चपटा + सेहुँड] नागफनी।

चप्पा—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद, प्रा० चऊप्पाव] १. चतुर्थांश। चौथाई भाग। चौथाई हिस्सा। २. थोड़ा भाग। न्यून अंश। ३. चार अंगुल या चार बालिश्त जगह। ४. थोड़ी जगह। उ०—उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो, चप्पा चप्पा कहीं न रहे जहाँ धूम धड़क्का भीड़ भड़क्का न हो।—इंशाअल्ला (शब्द०)।

चप्पी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना + दबना] धीरे धीरे हाथ पैर दबाने की क्रिया। चरणसेवा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चप्पू—संज्ञा पुं० [हिं० चापना] एक प्रकार का डाँड़ जो पतवार का भी काम देता है। कलवारी।

क्रि० प्र०—मारना।

चफाल—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + फाल] वह भूमि जिसके चारों ओर कीचड़ या दलदल हो।

चबक[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] रह रहकर उठनेवाला दर्द। चिलक। टीस। हूल। पीड़ा।

चबक[2]—वि० [हिं० चपना] दब्बू। डरपोक।

चबकना—क्रि० अ० [हिं० चबक] रह रहकर दर्द करना। टीसना। चमकना। चिलकना। हूल मारना। पीड़ा उठना।

चबका—संज्ञा पुं० [हिं० चाबुक] दे० 'चाबुक'। उ०—सहज पलांण पवन करि घोड़ा लै लगांम चित चबका। चेतंनि असवार ग्यांन गुरु करि और तजौ सब ढबका।—गोरख०, पृ० १०३।

चबकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] सूत या ऊन की वह गुथी हुई रस्सी जिससे स्त्रियाँ केश बाँधती हैं। परांदा। मुड़बँधना। चँवरी।

चबड़चबड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'चपड़ चपड़'। उ०—बाजीराव ने हँसकर टोका, और बात बनाना, चबड़-चबड़ करना इन सबसे बढ़कर अच्छा लगता है।—झाँसी०, पृ० ३७।

चबनी हड्डी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चबाना + हड्डी] वह हड्डी जो भुरभुरी और पतली हो।

चबर चबर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. मुँह में कुछ चबाने से होनेवाली ध्वनि। २. व्यर्थ की बकवास।

चबला—संज्ञा पुं० [देश०] पशुओं के मुँह का एक रोग। लाल रोग।

चबवाना—क्रि० स० [हिं० चबाना का प्रे० रूप] चबाने का काम करना।

चबाई—(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चवाई] दे० 'चवाई'। उ०—हिलिमिलि भाँति भाँति हेत करि देख्यो तऊ चेटकी चबाइन के पेट की न पाई मैं।—ठाकुर०, पृ० ५।

चबाना—क्रि० स० [सं० चर्वण] १. दाँतों से कुचलना। जुगालना।

मुहा०—चबा चबाकर बातें करना=स्वर बना बनाकर एकएक शब्द धीरे धीरे बोलना। मठार मठारकर बातें करना। चबे को चबाना=एक ही काम को बार बार करना। किए हुए काम को फिर फिर करना। पिष्टपेषण करना। उ०—बरस पचासक लौ विषय ही में बास किगौ तऊ ना उदास भये चबे को चबाइए —प्रिया० (शब्द०)।

२. दाँत से काटना।

चबारा†—संज्ञा पुं० [हिं० चौबारा] घर के ऊपर का बँगला। चौबारा। उ०—उज्वल अखंड खंड सातएँ महल महामंडल चबारो चद मंडल की चोट ही —देव (शब्द०)।

चबाव(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० चबाव] दे० 'चबाव'।

चबीणा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चबेना] दे० 'चबेना'। उ०—झूठे सुख को सुख कहैं मानत है मन मोद। खलक चबीणाँ काल का कुछ मुख में कुछ गोद —कबीर ग्रं०, पृ० ७१।

चबूतरा—संज्ञा पुं० [सं० चत्वाल, हिं० चौतरा] १. बैठने के लिये चौरस बनाई हुई ऊँची जगह। चौतरा। † २. कोतवाली। बड़ा थाना।

चबेना—संज्ञा पुं० [हिं० चबाना] चबाकर खाने के लिये भूना हुआ अनाज। चर्वण। भूजा।

क्रि० प्र०—करना—होना।

चबेनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चबाना] १. तली दाल और मिठाई आदि जो बरातियों को जलपान के लिये दी जाती है। २. जलपान का सामान। ३. जलपान का मूल्य। ४. रूखा सूखा खाना।

चबेरा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं०] [चर्पट, हिं० चबरा] थप्पड़। झापड़। चाँटा। उ०—सिर पर काल बसतु निसु बासर मारत तुरत चबेरा।—भीखा० श०, पृ० ४।

चबेल—वि० [सं० चतुर्वेल प्रा० चउवेल्ल] चारो ओर। चतुर्दिक्। उ०—कपोल लोल हल्लते। चबेल मुंड झल्लते।—पृ० रा०, १७। ६२।

चबैना(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] दे० 'चबेना'। उ०—सबै चबैना रकाल का पलट उन्हैं नकाल। तीन लोक से जुदा है उन संतन की चाल।—पलटू०, भाग १, पृ० १३।

चबैनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चबेनी] दे० 'चबेनी'। उ०—चना चबैनी गंगजल जो पुरवै करतार। काशी कबहुँ न छाँड़िए विश्वनाथ दरबार।

चब्बा†—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद, हिं० चौवा] दे० 'चौवा'।

चब्बू†—वि [हिं० चबाना] बहुत चबानेवाला। बहुत खानेवाला।

चब्भ—संज्ञा [अनु०] गोता मारने से तालों या नदियों के पानी से होनेवाली ध्वनि। उ०—आबी चिड़ियाएँ मछलियों पर निशाना साध, चब्भ से घुस पानी में से शिकार ले चलीं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

विशेष—इसका प्रयोग क्रि० वि० रूप में 'से' के साथ ही मिलता है अतः लिंग गौण हो जाता है।

चब्भा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. डुबकी। बुड़की। गोता। २. एक जलपक्षी जो गोताखोर होता है। उ०—कौड़ैनी, चब्भा इत्यादि (वारि विहंग)।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० २०।

चब्भू†—वि० [हिं० चब्बू] दे० 'चब्बू'।

चब्भो†—संज्ञा पुं० [हिं० चपकना] दूसरे का दिया हुआ गोता। डुब्बी। डुबकी।

क्रि० प्र०—देना।

चभक[1]—संज्ञा [अनु०] पानी में किसी वस्तु के चभ की ध्वनि करते हुए डूबने का शब्द।

विशेष—'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् आता है।

चभक[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] काटने या डंक मारने की क्रिया।

चभकना†—क्रि० स० [अनुध्व०] १. चबा चबाकर खाना। २. तृप्तिपूर्वक खाना। ३. अधिक खाना।

संयो० क्रि०—डालना। लेना।

चभका—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमक] 'चभक[2]' उ०—वायु धातु रूप त्वचा में प्राप्त होने से त्वचा काली कर्कश हो जाय और उसमें चभका चले तथा तन जाय।—माधव०, पृ० १३५।

चभच्चा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चहबच्चा'। उ०—विधवा सहुआइन ने बड़ी उत्साह से चभच्चा खुदवाया था।—नई०, पृ०३।

चभड़ चभड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह शब्द जो किसी वस्तु को खाते समय मुँह के हिलने आदि से होता है २. कुत्ते, बिल्ली आदि के जीभ से पानी पीने का शब्द।

चभना[1]†—क्रि० अ० [सं० चर्वण, हिं० चाबना] खाया जाना।

चभना[2]—क्रि० अ० [हिं० चपना] कुचल जाना। कुचला जाना। रौंदा जाना। दरेरा खाना। उ०—रह्यो ढीठु ढारसु गहै ससहरि गयौ न सूरु। मुरचौ न मनु मुरवानु चभि, भौ चूरनु चपि चूरु। बिहारी (शब्द०)।

चभाना—क्रि० [हिं० चभना का प्रे० रूप] खिलाना। भोजन कराना।

चभोका†—संज्ञा पुं० [देश०] बेवकूफ। मूर्ख। गावदी।

यौ०—चभोकनंदन=अत्यंत मूर्ख। निहायत बेवकूफ।

चभोकना†—सि० [हिं० चुभकी] १. डुबाना। गोता देना। २. भिगोना। तर करना।

चभोरना—क्रि० स० [हिं० चुभकी] १. डुबोना। गोता देना। २. आप्लावित करना। तर करना। भिगोना। उ०—(क) घेवर अति घिरत चभोरे। लै खाँड़ उपर तर बोरे।—सूर (शब्द०)। (ख) मीठे अति कोमल हैं नीके। ताते तुरत चभोरे घी के।—सूर (शब्द०)।

चमंक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चमक] दे० 'चमक'।

चमंकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० चमकना] दे० 'चमकना'। उ०—बहु कृपान तरवारि चमंकहि जनु दहदिसि दामिनी दमंकहि। मानस, ६।८६।

चमइया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चमार'। उ०—हमसे दीन दयाल न तुमसे, चरन सरन रैदास चमइया।—रै० बानी, पृ० ६८।

चमक—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ चमत्कृत् या अनु॰] १. प्रकाश। ज्योति। रोशनी। जैसे,—आग या सूर्य की चमक बिजली की चमक। २. कांति। दीप्ति। आभा। झलक। दमक। जैसे,—सोने की चमक। कपड़े की चमक।

यौ॰—चमक दमक। दमक चाँदनी।

मुहा॰—चमक देना या मारना=चमकना। झलकना। चमक लाना=चमक उत्पन्न करना। झलकाना।

३. कमर आदि का वह दर्द जो चोट लगने या एकबारगी अधिक बल पड़ने के कारण होता है। लचक। चिक। झटका। जैसे,—उसकी कमर में चमक आ गई है।

क्रि॰ प्र॰—आना।—पड़ना।

४. बढ़ना। उ॰—रात को जाड़ा यद्यपि चमक चला था।—प्रेमघन॰ भा॰ २। ५. चौंक। भड़क। उ॰—जइ तूँ ढोला तावियउ काललयारा तीज। चमक मरेसी मारवी, देख खिवंता बीज।—ढोला॰, दू॰ १५०।

चमक चाँदनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चमक+चाँदनी] बनी ठनी रहनेवाली दुश्चरित्रा स्त्री॰।

चमक दमक—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चमक+दमक अनु॰] १. दीप्ति। आभा। झलक। तड़क भड़क। २. ठाट बाट। लक दक।—जैसे,—दरबार की चमक दमक देखकर लोग दंग हो गए।

चमकदार—वि॰ [हिं॰ चमक+फ़ा॰ दार] जिसमें चमक हो। चमकीला। भड़कीला।

चमकना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ चमक से नामिक धातु] १. प्रकाश या ज्योति से युक्त दिखाई देना। प्रकाशित होना। देदीप्यमान होना। प्रभामय होना। जगमगाना। जैसे, सूर्य का चमकना, आग का चमकना।

संयो॰ क्रि॰—उठना।—जाना।

२. कांति या आभा से युक्त होना। झलकना। भड़कीला होना। दमकना। जैसे,—सोने चाँदी का चमकना। कपड़े का चमकना। ३. कीर्तिलाभ करना। प्रसिद्ध होना। समृद्धिलाभ करना। श्रीसंपन्न होना। उन्नति करना। जैसे,—देखो, वहाँ जाते ही वे कैसे चमक गए। ४. वृद्धि प्राप्त करना। बढ़ती पर होना। बढ़ना। जैसे,—आजकल उनकी वकालत खूब चमकी है।

मुहा॰—किसी की चमकना=किसी की श्रीवृद्धि होना। किसी की बढ़ती और कीर्ति होना।

५. चौंकना। भड़कना। चंचल होना (घोड़े आदि के लिये)। उ॰—चमक तमक हाँसी सिसक मसक झपट लपटानि। जेहि रति सो राते मुकत और मुकति अति हानि।—बिहारी (शब्द॰)। ६. फुरती से खसक जाना। झट से निकल जाना। उ॰—सखा साथ के चमकि गए सब गह्यो श्याम कर धाइ। औरन जानि जान मैं दीनो तुम कहँ जाहु पराइ।—सूर (शब्द॰) ७. एकबारगी दर्द हो उठना। हिलने डोलने में किसी अंग की स्थिति में विपर्यय या गड़बड़ होने से उस अंग में सहसा तनाव लिए हुए पीड़ा उत्पन्न होना। जैसे,—बोझ उठाने में उसकी कमर चमक गई है। ८. मटकना। उँगलियाँ आदि हिलाकर भाव बताना। (जैसा स्त्रियाँ प्रायः करती हैं)। ९. मटककर कोप प्रकट करना। १०. लड़ाई ठनना। झगड़ा होना। उ॰—आजकल उन दोनों के बीच खूब चमक रही है। ११. कमरे में चिक आना। अधिक बल पड़ने या चोट पहुँचने के कारण कमर में दर्द उठना। झटका लगना। लचक आना। जैसे,—बोझ इतना भारी था कि उसे उठाने में कमर चमक गई।

क्रि॰ प्र॰ जाना।

चमकनी—वि॰ स्त्री॰ [हिं॰ चमकना] १. चमक जानेवाली। जल्दी चिढ़ या भड़क जानेवाली २. हाव भाव करनेवाली।

चमकवाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ चमकना का प्रे॰ रूप] चमकाने का काम कराना।

चमका(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ चमत्कार] चमक। प्रकाश।

चमकाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ चमकना] १ चमकीला करना। चमक लाना। दीप्तिमान करना। कांति लाना। ओपना। झलकाना। २ उज्वल करना। निर्मल करना। साफ करना। झक करना। ३. भड़काना। चौंकाना। ४. चिढ़ाना। खिझाना। ५. घोड़े को चंचलता के साथ बढ़ाना। ६. भाव बताने के लिये अँगुली आदि हिलाना। मटकाना। जैसे, उँगली चमकाना।

चमकार—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चमक+आर (प्रत्य॰)] चमक। कौंधा। उ॰—जब आगे कूँयाद देखकर जगमग जोती। बिन दामिनि चमकार सीप बिन उपजै मोती।—सहजो॰, पृ॰ ५१।

चमकारा(पु)[1]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चमक+आरा (प्रत्य॰)] चकाचौंध करनेवाला प्रकाश। चमक।

चमकारा(पु)[2]—वि॰ चमकदार। चमकीला। उ॰—शब्द करीगर रूप चमकारा। शशि अनेक ताही जनु ढारा।—कबीर सा॰, पृ॰ १०४।

चमकारी[1](पु) संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चमकार] १. चमक। प्रकाश। उ॰—अधरबिंब दसनन की शोभा दुति दामिनि चमकारी।—सूर (शब्द॰)। २. बनाव। तड़क भड़क। उ॰—अंग अंग तोरे चमकारी कैसे कहौं तोहि मैं नारी।—कबीर सा॰, पृ॰ ७८।

चमकारी[2]—वि॰ चमकीली।

चमकी संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चमक] कारचोबी में रुपहले या सुनहले या तारों के छोटे छोटे गोल या चकोर चिपटे टुकड़े जो जमीन भरने के काम आते हैं। सितारे। तारे।

चमकीला—वि॰ [हिं॰ चमक+ईला (प्रत्य॰)] १. जिसमें चमक हो। चमकनेवाला। चमकदार। ओपदार। २. भड़कदार। भड़कीला। शानदार।

चमकौवल—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चमक+औवल (प्रत्य॰)] १. चमकाने की क्रिया। २. मटकाने की क्रिया।

चमक्क—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चमक] दे॰ 'चमक'। उ॰—चौदिस चकमक चमक होइ खग्गग तरंगे।—कीर्ति॰, दे॰ १०२।

चमक्कना—क्रि॰ अ॰ दे॰ 'चमकना'। उ॰—(क) तरवारि चमक्कइ बिज्जुझला।—कीर्ति॰, पृ॰ ११०।

चमरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमकना] १. चमकने मटकनेवाली स्त्री। चंचल और निर्लज्ज स्त्री। १. कुलटा स्त्री। व्यभिचारिणी स्त्री। ३. जल्दी चिढ़ जानेवाली स्त्री। भल्लानेवाली स्त्री। झगड़ालू स्त्री।

चमगादड़—संज्ञा पुं० [सं० चर्मचटका, पु० चमचिचड़ी, हिं० चमगिदड़ी] एक उड़नेवाला बड़ा जंतु जिसके चारों पैर परदार होते हैं।
विशेष—यह जमीन पर अपने पैरों से चल फिर नहीं सकता, या तो हवा में उड़ता रहता है या किसी पेड़ की डाल में चिपटा रहता है। दिन के प्रकाश में यह बाहर नहीं निकलता, किसी अँधेरे स्थान में पैर ऊपर और सिर नीचे करके औंधा लटका रहता है। इनके झुंड के झुंड पुराने खंडहरों आदि में लटके हुए पाए जाते हैं। इस जंतु के कान बड़े बड़े होते हैं और उनमें आहट पाने की बड़ी शक्ति होती है। यद्यपि यह जंतु हवा में बहुत ऊपर तक उड़ता है, पर इसमें चिड़ियों के लक्षण नहीं हैं। इसकी बनावट चूहे की सी होती है, इसे कान होते हैं और यह अंडा नहीं देता, बच्चा देता है। अगले पर बहुत लंबे होते हैं और उनके छोरों के पास से पतली हड्डियों की तीलियाँ निकली होती हैं, जिनके बीच में झिल्ली मढ़ी होती है। यही झिल्ली पर का काम देती है। तीलियों के सहारे से यह जंतु झिल्ली को छाते की तरह फैलाता और बंद करता है। यह प्रायः कीड़े मकोड़े और फल खाता है। चमगादड़ अनेक प्रकार के होते हैं। कुछ तो छोटे छोटे होते हैं और कुछ इतने बड़े होते हैं कि परों को दोनों ओर फैलाकर नापने से वे गज डेढ़ गज ठहरते हैं।

चमचम¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बँगला मिठाई जो दूध फाड़कर उसके छेने से बनाई जाती है।

चमचम²—क्रि० वि० [हिं० चमाचम] दे० 'चमाचम'।

चमचमाना¹—क्रि० अ० [हिं० चमक] चमकना। प्रकाशमान होना। दीप्तिमान होना। झलकना। दमकना। उ०—बादर घुमड़ि घुमड़ि आए ब्रज पर बरसत कारे घूम घटा अति ही जल। चपला अति चमचमाति ब्रज जन सब डरडरात टेरत शिशु पिता मत ब्रज गलबल।—सूर (शब्द०)।

चमचमाना²—क्रि० स० चमकाना। झलकाना। चमक लाना। दमक लाना।

चमचा—संज्ञा पुं० [फा० मि० सं० चमस] [स्त्री० चमची] १. डाँड़ी लगी हुई एक प्रकार की छोटी कटोरी या पात्र जिससे दूध, चाय आदि उठा उठाकर पीते हैं। एक प्रकार की छोटी कलछी। चम्मच। डोई। कफचा। †२. चिपटा। ३. नाव में डाँड़ का चौड़ा अग्रभाग। हाथा। हलेसा। पँगई। बैठा। ४. कोयला निकालने का एक प्रकार का फावड़ा। ढूँगा। ५. जहाज के दरजों में अलकतरा डालने की चोंचदार कलछी।—(लश०)।

चमचिच्चड़—वि० [हिं० चाम+चिचड़ी] चिचड़ी या किलनी की तरह चिपटनेवाला। पिंड या पीछा न छोड़नेवाला।

चमचिचोरा—वि० [हिं० चाम+चिचोरना] दे० 'चमचिच्चड़'।

चमची—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमचा] १. छोटा चम्मच। २. आचमनी। ३. छोटा चिमटा। ४. घुला हुआ चूना तथा कत्था निकालने और पान पर फैलाने की चिपटे और चौड़े मुँह की सलाई।

चमच्चना(पु)—क्रि० अ० [हिं० चमचमाना] दे० 'चमकना'। उ०—पलक्की चमच्ची, उठै वीर नच्ची।—हम्मीर रा०, पृ० १३६।

चमजुई—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मयूका] १. एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो पशुओं और कभी कभी मनुष्यों के शरीर पर उत्पन्न हो जाता है। एक प्रकार की बहुत छोटी किलनी। चिचड़ी। २. चिचड़ी की तरह चिमटनेवाली वस्तु या व्यक्ति। उ०—जगमगी जोन्ह ज्वाल जालन सों जारती न जमजोई जामिनि जुगत सम ह्वै जाती क्यों?—देव (शब्द)।

चमजोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमजुई] दे० 'चमजुई'।

चमटना†—क्रि० स० [हिं० चिमटना] दे० 'चिमटना'।

चमटा—संज्ञा पुं० [हिं० चिमटा] दे० 'चिमटा'।

चमड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चर्म+अप० डा (स्वा० प्रत्य०)] १. प्राणियों के सारे शरीर का वह ऊपरी आवरण जिसके कारण मांस, नसें आदि दिखाई नहीं देतीं। चर्म। त्वचा। जिल्द।
विशेष—चमड़े के दो विभाग होते हैं, एक भीतरी और दूसरा ऊपरी। भीतरी एसे तंतु पात्र के रूप में होता है जिसके अंदर रक्त, मज्जा आदि रहते और संचारित होते हैं। इसमें छोटी छोटी गुलथियाँ होती हैं। स्वेदधारक गुलथियाँ एक नली के रूप में होती हैं जिनका ऊपरी मुँह बाहरी चमड़े के ऊपर तक गया रहता है और निचला भाग कई फेरों में घूमी हुई गुलझटी के रूप में होता है। इसका अंश न पिघलकर अलग होता है और न छिलके के रूप में छूटता है। बाहरी चमड़ा या तो समय समय पर झिल्ली के रूप में छूटता या पिघलकर अलग होता है। यह वास्तव में चिपटे कोशों से बनी हुई सूखी कड़ी झिल्ली है जो झड़ती है और जिसके नाखून, पंजे, खुर, बाल आदि बनते हैं।
मुहा०—चमड़ा उधेड़ना या खींचना=(१) चमड़े को शरीर से अलग करना। (२) बहुत मार मारना। विशेष—दे० 'खाल खींचना'। २. प्राणियों के मृत शरीर पर से उतरा हुआ चर्म जिससे जूते, बेग आदि बहुत सी चीजें बनती हैं। खाल। चरसा।
विशेष—काम में लाने के पहले चमड़ा सिझाकर नरम किया जाता है। सिझाने की क्रिया एक प्रकार की रासायनिक क्रिया है, जिसमें टनीन, फिटकरी, कसीस आदि द्रव्यों के संयोग से चर्मस्थित द्रव्यों में परिवर्तन होता है। भारतवर्ष में चमड़े को सिझाने के लिये उसे बबूल, बहेड़े, कत्थे, बलूत, आदि की छाल के काढ़े में डुबाते हैं। पशुभेद से चमड़ों के भिन्न भिन्न नाम होते हैं। जैसे—बरदी (बैल का), भैंसोरी (भैंस का), गोखा (गाय का), किरकिल, कीमुख्त (गदहे या घोड़े का दानेदार), मुरदरी (मरी लाश का), साबर, हुलाली इत्यादि।
मुहा०—चमड़ा सिझाना—चमड़े को बबूल की छाल, सज्जी, नमक आदि के पानी में डालकर मुलायम करना।
३. छाल। छिलका।

चमड़ी— संज्ञा स्त्री० [हि० चमड़ा] चर्म । त्वचा । खाल ।
मुहा०—दे० 'चमड़ा' और 'खाल' ।

चमत्करण—संज्ञा पुं० [सं०] चमत्कार करने या होने की क्रिया ।

चमत्कार— संज्ञा पुं० [सं०] वि० चमत्कारी, चमत्कृत] १. आश्चर्य । विस्मय । २. आश्चर्य का विषय । वह जिसे देखकर चित्त में विस्मययुक्त आह्लाद उत्पन्न हो । अद्‌भुत व्यापार । विचित्र घटना । असाधारण और अलौकिक बात । करामात । ३. अनूठापन । विचित्रता । विलक्षणता । जैसे,—इस कविता में कोई चमत्कार नहीं है । ४. डमरू । ५. अपामार्ग । चिचड़ा

चमत्कारक—वि० [सं०] चमत्कार उत्पन्न करनेवाला । आश्चर्यजनक । विलक्षण । अनूठा ।

चमत्कारिक—वि० [सं०] १. चमत्कार संबंधी । २. चमत्कार पैदा कर देनेवाला । चौंका देनेवाला । ३. विचित्र या असंभव प्रतीत होनेवाला (को०) ।

चमत्कारित—वि० [सं०] चमत्कृत । विस्मित [को०] ।

चमत्कारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमत्कृत करने का भाव या शक्ति । चमत्कारपन [को०] ।

चमत्कारवाद—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह मत जो बाह्य सौंदर्य अर्थात् अलंकारादि को कविता के लिये आवश्यक मानता है । काव्य में चमत्कार का समर्थन करनेवाला वाद या सिद्धांत । उ०—अलंकारों को प्रधानता देने पर किस तरह के चमत्कार-वाद का जन्म होता है, उसकी मिसालें उन्होंने रीतिकालीन कवियों से दी हैं ।—आचार्य०, पृ० १२ ।

चमत्कारी—वि०[सं० चमत्कारिन्] [वि० स्त्री० चमत्कारिणी] जिसमें चमत्कार हो । जिसमें कुछ विलक्षणता हो । अद्‌भुत । २. चमत्कार दिखानेवाला । अद्‌भुत दृश्य उपस्थित करनेवाला । विलक्षण बातें करनेवाला । करामाती ।

चमत्कृत—वि० [सं०] आश्चर्यित । विस्मित ।

चमत्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्चर्य । विस्मय ।

चमदृष्टि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्म + दृष्टि] देखो 'चर्मदृष्टि' । उ०—सुंदर सतगुरु ब्रह्म, पर सिष की चमदृष्टि । सूधी ओर न देखई, देखै दर्पन पृष्ट ।—संतबानी०, पृ० १०७ ।

चमन - संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. हरी क्यारी । २. फुलवारी । घर के अंदर का छोटा बगीचा । ३. गुलजार बस्ती । रौनकदार शहर ।

चमर¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चमरी] १. सुरा गाय । २. सुरा गाय की पूँछ का बना चँवर । चामर । ३. एक दैत्य का नाम ।

चमर²—वि० [हि० चमार] चमार से संबंधित । तुच्छ । हीन ।
विशेष—यह यौगिक शब्दों का पूर्व पद होता है । जैसे, चमरपन, चमरटोला आदि ।

चमरक—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी [को०] ।

चमरख¹— संज्ञा स्त्री० [हि० चाम + रखा] मूँज या चमड़े की बनी हुई चकती जो चरखे के आगे की ओर दोनों पिढ़ई के आस पास की खूँटियों में लगी रहती है और जिसमें से होकर तकला या तेकुआ घूमता है । चरखे की गुड़ियों में लगाने की चक्ती । उ०—(क) एक टका कै चरखा बनावल ढेवुवहि टेकुआ चमरख लावल ।—कबीर (शब्द०) । (ख) और कुबड़ी कमर हो गई सिर हो गया बगला । मुँह सूख कै चमरख हुआ तन हो गया तकला ।- नजीर (शब्द०) ।

चमरख²—वि० स्त्री० दुबली पतली (स्त्री) । जैसे,—वह तो सूखकर चमरख हो गई है ।

चमरखा- संज्ञा पुं० [सं० चर्मकशा] एक सुगंधित जड़ जो उबटन आदि में पड़ती है ।

चमरगाय—संज्ञा स्त्री० [सं० चमर + हि० गाय] सुरा गाय । हिमालय पर्वत के प्रदेशों की वह गाय जिसकी पूँछ का चँवर बनता है । चँवरी गाय । उ०—सब फसल छाई में मिल गई, सैकड़ों भेड़ें और बीसों चमरगाय मर गई और छतें उड़ गईं ।—वो दुनिया, पृ० ७५ ।

चमरगिद्ध—संज्ञा पुं० [चर्म > हि० चमर + गीध] एक बड़ा गिद्ध । नोंचकर मांस खानेवाला गीध ।

चमरचलाक—वि० [हि० चमार + फ़ा० चालाक] निम्न कोटि की चालाकी करनेवाला । गर्हित युक्ति लगानेवाला ।

चमरजुलाहा—संज्ञा पुं० [हि० चमार + जुलाहा] कपड़ा बुननेवाला हिंदू । हिंदू जुलाहा । कोरी ।

चमरदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [हि० चमर + सं० दृष्टि] दे० 'चर्मदृष्टि' । उ०—चमरदृष्टि की कुलफी दीनो, चौरासी भरमावै हो ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ५ ।

चमरटोला—संज्ञा पुं० [हि० चमार + टोला] चमारों का मुहल्ला या निवास ।

चमरटोली—संज्ञा स्त्री० [हि०चमार + टोली] १. चामरों की बस्ती । २. चमारों का झुंड ।

चमरपुच्छ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चँवर । २. लोमड़ी । ३. गिलहरी [को०] ।

चमरपुच्छ²—वि० चँवर की तरह पूँछवाला (पशु) जिसकी पूँछ चँवर के काम आवे [को०] ।

चमरबकुलिया†—संज्ञा स्त्री० [हि० चमरबगली] दे० 'चमरबगली' ।

चमरबगली—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार + बगला] बगले की जाति की काले रंग की एक चिड़िया ।

चमरबैल संज्ञा पुं० [सं० चमर + हि० बैल] याक नाम का एक पहाड़ी बैल जिसके कंधों पर बड़े बड़े बाल होते हैं । उ०—चमरबैल, सिर हिला हिलाकर भूसा रौंदकर खा रहे थे ।—वो दुनिया, पृ० ७३ ।

चमररग¹†—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार + रग] निम्न प्रकृति । तुच्छ प्रकृति । निम्नता । तुच्छता ।

चमररग²† - वि० निम्न या तुच्छ स्वभाववाला । नीच ।

चमरशिखा संज्ञा स्त्री० [सं० चमार + शिखा] घोड़ों की कलँगी । उ०—जबहि राम टीकी में कीनी । तानि देह अगली दुम लीनी । चलत कनौती लई दबाई । चमरशिखा हूँ हलन न पाई ।—रघुराज० (शब्द०) ।

चमरस—संज्ञा पुं० [हिं० चाम] वह घाव जो चमड़े या जूते की रगड़ से हो जाय।

चमराखारी—संज्ञा पुं० [हिं० चमार+खारी] खारी नमक।

चमरावत—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार] चमड़ा या मोट आदि बनाने की मजदूरी जो जमींदार या काश्तकार की ओर से चमारों को मिलती है।

चमरिक—संज्ञा पुं० [सं०] कचनार का पेड़।

चमरिया सेम—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार+सेम] सेम का एक भेद।

चमरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुरा गाय। २. चँवरी। ३. मंजरी।

चमरू—संज्ञा पुं० [देश०] चमड़ा। खाल। चरसा।—(लश०)।

चमरेशियन—संज्ञा पुं० [हिं० चमार] चमरपन। नीचपन। उ०—यह तो आपकी जबान है, उसे किरंटा, चमेरिशयन, गाली जो चाहे कहें लेकिन रंग को छोड़कर वह अँगरेजों से किसी बात में कम नहीं।—गबन, पृ० ११०।

चमरोर—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जिसकी छाया बहुत घनी होती है।

चमरौट—संज्ञा पुं० [हिं० चमार+औट (प्रत्य०) खेत, फसल आदि का वह भाग जो गाँव में चमारों को उनके काम के बदले में मिलता है।

चमरौटिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चमरौटी'।

चमरौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार > चमर + औटी (प्रत्य०)] चमारों की बस्ती।

चमरौधा—संज्ञा पुं० [हिं० चमर+औंधा (प्रत्य०)] दे० 'चमौधा'।

चमला—संज्ञा पुं० [देश०] [अल्पा० चमली] भीख माँगने का ठीकरा। भिक्षापात्र।

चमस—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० चमसी] १. सोमपान करने का चम्मच के आकार का एक यज्ञपात्र जो पलाश आदि की लकड़ी का बनता था। २. कलछा। चम्मच। ३. पापड़। ४. मोदक। लड्डू। ५. उर्द का आटा। धुआँस। ६. एक ऋषि का नाम। ७. नौ योगिश्वरों में से एक।

चमसा¹—संज्ञा पुं० [सं० चमस] चमचा। चम्मच। यज्ञपात्र।

चमसा²†—संज्ञा पुं० [हिं० चौमासा] दे० 'चौमासा'।

चमसि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रोटी या लिट्टी (को०)।

चमसी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चम्मच के आकार का लकड़ी का एक यज्ञपात्र। २. उर्द, मूँग, मसूर आदि की पीठी।

चमसी²—वि० [सं० चमसिन्] सोमरस से पूर्ण चमस पाने का अधिकारी (को०)।

चमसोद्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभासक्षेत्र के पास का एक तीर्थ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि सरस्वती नदी यहीं अदृश्य हुई है। यहाँ पर स्नान करने का बड़ा फल लिखा है।

चमाइन¹†—संज्ञा स्त्री० [देश०] चमार की स्त्री। चमारिन।

चमाइन²†—वि० निम्न प्रकृतिवाली (स्त्री)।

चमाऊ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चामर] चमर। चामर। चँवर। उ०—हाड़ा रायठौर, कछवाहे, गौत और रहे, अटल चकत्ता को चमाउ धरि डरि कै।—भूषण (शब्द०)।

चमाऊ²—संज्ञा पुं० [हिं० चमौवा] दे० 'चमौवा'।

चमाक(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमक] दे० 'चमक'।

चमाकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० चमकना] दे० 'चमकना'।

चमाचम—क्रि० वि० [हिं० चमकना की अनु० द्विरुक्ति] उज्वल कांति के सहित। झलक के साथ। जैसे,– देखो बरतन कैसे चमाचम चमक रहे हैं।

चमार¹—संज्ञा पुं० [सं० चर्मकार] [स्त्री० चमारिन, चमारी] एक नीच जाति जो चमड़े का काम बनाती है। २. उक्त जाति का व्यक्ति। ३. तुच्छ व्यक्ति। निम्न प्रकृतिवाला व्यक्ति।

यौ०—चमार चौदस=(१) चमारों का उत्सव। (२) वह धूमधाम जो छोटे और दरिद्र लोग इतराकर करते हैं। चार दिन का जलसा।

चमार²—वि० निम्न प्रकृतिवाला। तुच्छ।

चमारनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार+नी (प्रत्य०)] दे० 'चमारी'।

चमारिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार+इन (प्रत्य०)] दे० 'चमारी'।

चमारी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार+ई (प्रत्य०)] १. चमार जाति की स्त्री। चमार की स्त्री। २. चमार का काम। ३. चमारी की प्रकृतिवाली स्त्री। ४. कमल का वह फूल जिसमें कमलगट्टे के जीरे खराब हो जाते हैं।

चमारी²—वि० १. चमार संबंधी। २. चमारों जैसा। चमारों की तरह का।

चमालसि(पु)—वि० [हिं० चौवालीस] दे० 'चौवालीस'। उ०—वर्ष वदीत भये कलिकाल के छैसै चमालसि चार हजारा।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १२६।

चमियारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पच काठ।

चमीकर—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक खान जिससे सोना निकलता था। इसी से सोने को चामीकर कहते हैं।

चमीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चामीकर, प्रा० चामीअर] दे० 'चामीकर'। उ०—मोताहल रहती नहीं, हैवर हरि चमीर। जेहलिया जातां जुगां, वा तें रहसी वीर।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ८।

चमुंड¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चामुण्ड] दे० 'चामुंड'। उ०—जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनि। जै सरक्त जै रक्तवीज विड्डाल विहंडिनि।—भूषण ग्रं०, पृ० ३।

चमुंडा†³—वि० [देश०] दुष्ट। पाजी।

चमुव(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमू] दे० 'चमू'। उ०—विजहर चमुव न आवन पाइय। आल्हन घेर लीन्ह तहँ जाइय।—प० रासो पृ० १३८।

चमू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेना। फौज। २. नियत संख्या की सेना जिसमें ७२९ हाथी, ७२९ रथ, २१८७ सवार और ६३४५ पैदल होते थे।

यौ०—चमूनाथ, चमूनायक, चमूप, चमूपति=सेनानायक। सेनापति।

चमूकन—संज्ञा पुं० [हिं० चमोकन] एक प्रकार की किलनी जो चौपायों के शरीर में चिपटी रहती है।

चमूचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिपाही । २. सेनापति ।

चमूरु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग । बालदार पूँछवाला मृग ।

चमूहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

चमेठी–संज्ञा स्त्री० [देश०] पालकी के कहारों की एक प्रकार की बोली ।

विशेष—सवारी लेकर जब कहार खेतों में चलते हैं और रास्ते में अरहर गेहूँ, तीसी आदि की खूटियाँ पड़ती हैं, तो उनसे बचने के लिये अगला कहार 'चमेठी' 'चमेठी' कहकर पिछले कहारों को सावधान करता है ।

चमेलिया—वि० [हिं०] चमेली के रंग का । सोनजर्द ।

चमेली—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पकवेलि (यद्यपि वैद्यक के निघंटु में 'चमेली' शब्द आया है, तथापि वह संस्कृत नहीं प्रतीत होता)] १. झाड़ी या लता जो अपने सुगंधित फूलों के लिये प्रसिद्ध है ।

विशेष—इसमें लंबी पतली टहनियाँ निकलती हैं, जिनके दोनों ओर पतली सींकों में लगी हुई छोटी छोटी पत्तियाँ होती हैं । चमेली दो प्रकार की होती है । एक साधारण चमेली जिसमें सफेद रंग के फूल लगते हैं और दूसरी जर्द चमेली जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं । फूलों की महक बड़ी मीठी होती है । चमेली के फूलों से तेल बासा जाता है जो चमेली का तेल कहलाता है ।

यौ०—चमेली का जाल=एक तरह का कसीदा ।

२. मल्लाहों की बोली में पानी की वह थपेड़ जो ऊँची लहर उठने के कारण दोनों ओर लगती है और जिसके कारण प्रायः नावें डूब जाती हैं ।

चमोई—संज्ञा [देश०] एक पेड़ जिसकी छाल से नेपाली कागज बनाया जाता है ।

विशेष—इसे घनकोटा, सतपूरा, सतबरसा इत्यादि भी कहते हैं । यह पेड़ सिक्किम से भूटान तक होता है ।

चमोकना†—संज्ञा पुं० [हिं० चमोकना] एक प्रकार की बड़ी किलनी या किलना ।

चमोकना†—क्रि० स० [हिं०] १ किलनी का चमड़े से चिपट जाना । २. किलनी की तरह चिमटना । ३. चुटकी से चमड़ा पकड़कर खींचना या तानना जिससे पीड़ा की अनुभूति होती है ।

चमोटा—संज्ञा पुं० [हिं० चाम+औटा (प्रत्य०)] पाँच छह अंगुल का मोटे चमड़े का टुकड़ा जिसपर नाई छुरे को उसकी धार तेज करने के लिये बार बार रगड़ते हैं ।

चमोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाम+औटा (प्रत्य०) १. चाबुक । कोड़ा । उ०—(क) माखनचोर री मैं पायो । मैं जु कही सखी होतु कहा है भाजन लगत भुझायो । जौ चाहौ तो जान क्यों पैहै बहुत दिननु है खायो । बार बार हौं ढूँका लागी मेरी बात न आयो । नोई नेत की करौं चमोटी घूँघट में डरवायो । विहँसति निकसि रही दो दँतियाँ तब लै कंठ लगायो । मेरे लाल को मारि सकै को रोहनि गहि हलरायो । सूरदास प्रभु बालक लीला विमल विमल यश गायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) खोटी परै उचटै सिर चोटी चमोटी लगै मनो काम गुरु की ।—(शब्द०) । २. पतली छड़ी । कमची । बेंत । उ०—चमोटी लगै छमाछम । विद्या आवै झमाझम ।—(पाठशाला के लड़के) । ३. वह चमड़ा जिसे कैदियों की बेड़ियों में लोहे की रगड़ से बचने के लिये लगाते हैं । ४. चमड़े का वह टुकड़ा जिसपर नाई छुरे की धार घिसते हैं । ५. चमड़े का चार पाँच हाथ लंबा तस्मा जो खराद या सान में लपेटा रहता है और जिसे खींचने से खराद या सान का चक्कर घूमता है ।

चमौआ†—संज्ञा पुं० [हिं० चमौवा] दे० 'चमौवा' ।

चमौवा—संज्ञा पुं० [हिं० चाम+औवा (प्रत्य०)] वह भद्दा जूता जिसका तला चमड़े से सिया गया हो । चमरौधा ।

चम्मच—संज्ञा पुं० [फा० तुल० सं० चमस्] एक प्रकार की हलकी कलछी जिससे दूध, चाय तथा और भी खाने पीने की चीजें चलाते और निकालते हैं ।

चम्म चम्म—क्रि० वि० [हिं० चमचम या चमाचम] तेज या तीखी चमक सहित । झलाझल चमक के साथ ।

चम्मड(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० चमडा] १. चमड़ा । २. शरीर (लाक्ष०) । उ०—चम्मड दई बलाइ बिरह दी किसे हाइ गया ।—घनानंद, पृ० ३४० ।

चम्मल—संज्ञा पुं० [हिं० चमला] दे० 'चमला' ।

चम्मोरानी—संज्ञा पुं०[देश०] लड़कों का एक खेल जिसे 'सात समुंदर' भी कहते हैं ।

चम्रिन्न—संज्ञा स्त्री० [सं०] चम्मच में रखा हुआ अन्न या खाने की वस्तु ।

चम्रीथ—वि० [सं०] चम्मच में रखा हुआ ।

चय—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह । ढेर । राशि । २. धुस्स । टीला । ढूह । ३. गढ़ । किला । ४. किसी किले या शहर के चारों ओर रक्षा के लिये बनाई हुई दीवार । धुस । कोट । चहारदीवारी । प्राकार । ५. बुनियाद जिसके ऊपर दीवार बनाई जाती है । नींव । ६. चबूतरा । ७. चौकी । ऊँचा आसन । ८. कफ, वात या पित्त की विशेष अवस्था । ९. यज्ञ के लिये अग्नि आदि का एक विशेष संस्कार । चयन । १०. दुर्ग का द्वार या फाटक [को०] । ११. तिपाई [को०] । १२. लकड़ो का ढेर (को०) । १३. आवरण [को०] । १४. त्रिदोषों में से वात, पित्त या कफ किसी एक का उभर जाना [को०] ।

चयक वि० [सं०] चयन करनेवाला [को०] ।

चयन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. इकट्ठा करने का कार्य । संग्रह । संचय । २. चुनने का कार्य । चुगाई । ३. यज्ञ के लिये अग्नि का संस्कार । ४. क्रम से लगाने की क्रिया । चुनने की क्रिया । ५. क्रम से रखना या लगाना [को०] ।

यौ०—चयनशील=संग्रह करनेवाला या चुननेवाला ।

चयन[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चैन] दे० 'चैन' ।

चयनिका संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चुनी हुई रचनाओं का संग्रह । वह संग्रह जिसमें कविता, कहानी, लेखादि, चुनकर रखे गए हों । २. चयन करनेवाली स्त्री [को०] ।

चयनीय—वि० [सं०] चयन करने योग्य ।

चयित—वि० [सं०] चुना हुआ [को०] ।

चरेद—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरिंद] चरनेवाले पशु ।

चर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा की ओर से नियुक्त किया हुआ वह मनुष्य जिसका काम प्रकाश या गुप्त रूप से अपने तथा पराए राज्यों की भीतरी दशा का पता लगाना हो । गूढ़ पुरुष । उ०—पठए अवध चतुर चर चारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी विशेष कार्य के लिये कहीं भेजा हुआ आदमी । दूत । कासिद । ३. वह जो चले । जैसे,—अनुचर, खेचर, निशिचर । ४. ज्योतिष में देशांतर जिसकी सहायता दिनमान निकालने में ली जाती है । ५. खंजन पक्षी । ६. कौड़ी । कपर्दिका । ७. मंगल । भौम । ८. पासे से खेला जानेवाला एक प्रकार का जूआ । ९. नदियों के किनारे या संगमस्थान पर की वह गीली भूमि जो नदी के साथ बहकर आई हुई मिट्टी के जमने से बनती है । १०. दलदल । कीचड़ । ११. नदियों के बीच में बालू का बना हुआ टापू ।

चर²—संज्ञा पुं० [हिं०] १. छिछला पानी ।—(लश०) । २. नदी का तट ।—(लश०) । ३. नाव या जहाज में एक मूढ़े अर्थात् आड़ी लगी हुई लकड़ी के बाहर की ओर निकले हुए भाग से दूसरे मूढ़े के बीच का स्थान ।—(लश०) ।

चर³—वि० [सं०] १. आपसे आप चलनेवाला । जंगम । जैसे,—चर जीव, चराचर । २. एक स्थान पर न ठहरनेवाला । अस्थिर । जैसे,—चर राशि । चर नक्षत्र । ३. खानेवाला । आहार करनेवाला ।

चर⁴—संज्ञा [अनु०] कागज, कपड़े आदि के फटने का शब्द ।

विशेष—खट, पट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है अतः इसका लिंगविचार व्यर्थ है ।

चरअन्नी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार आना] दे० 'चवन्नी' । उ०—दो अन्नी और चरअन्नी भुजाने में भी एक एक पैसा भुजाना लगता है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ९४६ ।

चरई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पत्थर पर ईंट आदि का बना हुआ वह गहरा गड्ढा जिसमें जानवरों को चारा या पानी दिया जाता है ।

चरई²—संज्ञा स्त्री० [सं० चरिका] तार की वह खूँटी जिसमें जुलाहे तार आदि बाँधते हैं ।

चरक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूत । कासिद । चर । २ गुप्चर । भेदिया । जासूस । ३. वैद्यक के एक प्रधान आचार्य जो शेषनाग के अवतार माने जाते हैं, और जिनका रचा हुआ 'चरकसंहिता' वैद्यक का सर्वमान्य ग्रंथ है । इसके उपदेशक अत्रिपुत्र पुनर्वसु ग्रंथकर्ता अग्निवेश और प्रतिसंस्कारक चरक हैं । ४. मुसाफिर । बटोही । पथिक । ५. दे० 'चटक' ६. चरकसंहिता नाम का ग्रंथ । ७. बौद्धों का एक संप्रदाय । ८. भिखमंगा । भिक्षुक ।

चरक²—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की मछली । उ०—मारे चरक चाल्ह पर हासी । जल तजि कहाँ जाहिं जलवासी ।—जायसी (शब्द०) ।

चरक³—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] कुष्ठ का दाग । सफेद दाग । फूल ।

चरक⁴†—संज्ञा पुं० [अनु०] फटना । दरकना ।

चरकटा—संज्ञा पुं० [हिं० चारा + काटना] १. ऊँट या हाथी के लिये चारा काटकर लानेवाला आदमी । २. तुच्छ मनुष्य । छोटे वित्त का आदमी ।

चरकना(पु)†—क्रि० वि० [अनु०] चिटकना । फटना ।

चरकसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चरक मुनि का बनाया हुआ वैद्यक संबंधी सर्वमान्य एवं अति प्राचीन उपलब्ध संस्कृत ग्रंथ ।

चरका¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरकह्] १. हलका घाव । जख्म ।

क्रि० प्र०—खाना । देना । लगाना । उ०—गबरू जवान के नश्तरे हुस्न का मैं भी चरका खाए हुए हूँ । फिसाना०, भा० ३, पृ० २६ ।

२. गरम धातु से दागने का चिह्न । ३. हानि नुकसान । धक्का ।

क्रि० प्र०—देना ।

४. धोखा ।

क्रि० प्र० खाना ।—देना ।—पढ़ना ।

चरका²—संज्ञा पुं० [देश०] गड़ुवा नामक अन्न का एक भेद ।

चरकाल संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार समय का कुछ विशेष अंश जिसका काम दिनमान स्थिर करने में पड़ता है । २. वह समय जो किसी ग्रह को एक अंश से दूसरे अंश पर जाने में लगता है ।

चरकीन—संज्ञा पुं० [हिं० चिरकीन] मल । पाखाना । वि० दे० 'चिरकीन' । उ०—चुगली उगली चीज है, चुगली है चरकीन । काग हुवै कै कूयरो इण रे रस आधीन ।—बाँकी० ग्रं०, भाग २, पृ० ५४ ।

चरक्का(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरकह्] घाव । चोट । उ०—जंपै न वीर सारंग तं, भोरा नाम अभंग भर । भुग्गै कौन को भुग्गि हैं, करौं चरक्का पग्गवर ।—पृ० रा०, १२ । १२४ ।

चरख संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ख] १. पहिए के आकार का अथवा इसी प्रकार का और कोई घूमनेवाला गोल चक्कर । चाक ।

विशेष—इस प्रकार की चक्कर की सहायता से कुएँ से पानी खींचा जाता है, आतिशबाजी छोड़ी जाती है तथा इसी प्रकार के और बहुत से काम होते हैं ।

२. खराद ।

यौ०—चरखकश ।

क्रि० प्र०—चढ़ना । चढ़ाना ।

३. लकड़ी का एक ढाँचा जिसमें चार अंगुल की दूरी पर दो छोटी चरखियाँ लगी रहती हैं और जिनके बीच में रेशम या कलवत्तू लपेटा जाता है । ४. सूत कातने का चरखा । ५. कुम्हार का चाक । ६. गोफन । ढेलवाँस ७ वह गाड़ी जिसपर तोप चढ़ी रहती है । उ०—चरखिनु आकरषं सदजल बरसै परदल घरषं भले भले ।—सूदन (शब्द०) ।

चरख³—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरग] तेंदुए की जाति का लकड़बग्घा नाम का जानवर । बाज की जाति की एक शिकारी चिड़िया ।

चरखकश—वि० [फ़ा० चर्खकश] १. खराद की डोरी या पट्टा खींचनेवाला। २. खराद चलानेवाला।

चरखड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरख] एक प्रकार का दरवाजा।

चरखपूजा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चर्ख+सं० पूजा] एक प्रकार की पूजा जो चैत की संक्रांति को होती है।

विशेष—इसका आयोजन ७ या ८ दिन पहले होता है। यह पूजा शिव को प्रसन्न करने के लिये की जाती है। इसमें भक्त लोग गाते बजाते और नाचते हुए भक्ति में उन्मत्त से हो जाते हैं, यहाँ तक कि कोई कोई अपनी जीभ छेदते हैं, कोई लोहे के काँटे पर कूदते हैं और कोई अपनी पीठ को बरछी से नाथकर चारों ओर घूमते हैं। जिस खंभे पर इस बरछे को लगाकर चारो ओर घूमते हैं, उसे चरख कहते हैं। ये सब क्रियाएँ एक प्रकार के संन्यासी करते हैं। अंग्रेजी शासनकाल में ये क्रियाएँ बहुत संक्षिप्त हो गईं। बृहद्धर्म पुराण नामक ग्रंथ में इस पूजा का विधान और फल लिखा हुआ है। ऐसी कथा है कि चैत्र की संक्रांति को बाण नामक एक शैव राजा ने भक्ति के आवेश में अपने शरीर का रक्त चढ़ाकर शिव को प्रसन्न किया था।

चरखा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ख] १ पहिए के आकार का अथवा इसी प्रकार का कोई और घूमनेवाला गोल चक्कर। चरख। २. लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से ऊन, कपास या रेशम आदि को कातकर सूत बनाते हैं। रहट।

विशेष—इसमें एक ओर बड़ा गोल चक्कर होता है, जिसे चर्खी कहते हैं और जिसमें एक ओर एक दस्ता लगा रहता है। दूसरी ओर लोहे का एक बड़ा सूआ होता है, जिसे तकुआ या तकला कहते हैं। जब चरखी घुमाई जाती है तब एक पतली रस्सी की सहायता से, जिसे माला कहते हैं, तकुआ घूमने लगता है। उसी तकुए के घूमने से उसके सिरे पर लगे हुए ऊन कपास आदि का कतकर सूत बनता जाता है।

क्रि० प्र०—कातना।—चलाना।

३. कुएँ से पानी निकालने का रहट। ४. ऊख का रस निकालने के लिये बनी हुई लोहे की कल। ५. एक प्रकार का बेलन जिससे पौटिए तार खींचते हैं। ६. सूत लपेटने की गराड़ी। चरखी। रील। ७. गराड़ी। घिरनी। ८. बड़ा या बेडौल पहिया। ९. रेशम खोलने का 'उड़ा' नाम का औजार। १०. गाड़ी का वह ढाँचा जिसमें जोतकर नया घोड़ा निकालते हैं। खड़खड़िया। ११. वह स्त्री या पुरुष जिसके सब अंग बुढ़ापे के कारण बहुत शिथिल हो गए हों। १२. झगड़े बखेड़े या झंझट का काम।

क्रि० प्र०—निकलना।

१३. कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) नीचे होता है।

विशेष—इसमें जोड़ की दाहिनी ओर बैठकर अपनी बाईं टाँग जोड़ भी दाहिनी टाँग में भीतर से डालकर निकालते हैं और अपनी दाहिनी टाँग जोड़ की गर्दन में डालकर दोनों पैर मिलाकर दंड करते हैं जिससे जोड़ चित्त हो जाता है।

चरखाना†—संज्ञा पुं० [हिं० चारखाना] दे० 'चारखाना'।

चरखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरखा का स्त्री० (अल्पा०) १. पहिए की तरह घूमनेवाली कोई वस्तु। २. छोटा चरखा। ३. कपास ओटने की चरखी। बेलनी। ओटनी। ४. सूत लपेटने की फिरकी। ५. धनुष के आकार का लकड़ी का एक यंत्र जिसमें एक खूँटी लगी रहती है और जिसकी सहायता से मोटी रस्सियाँ बनाई जाती हैं। ६. कुएँ आदि से पानी खींचने की गराड़ी। घिरनी। ७. पतली कमानियों से बना हुआ जुलाहों का एक औजार जिसकी सहायता से कई सूत एक में लपेटे जाते हैं। ८. कुम्हार का चाक। ९. एक प्रकार की आतिशबाजी जो छूटने के समय खूब घूमती है।

चरखे का गलखोड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी उलटे उखाड़ से फेंकना चाहता है तब उसकी पीठ पर से चरखे के समान करवट लेकर अपनी टाँग उसकी गर्दन पर चढ़ाते हैं और उसका एक हाथ और एक पाँव गलखोड़े से बाँधकर उसे गिरा देते हैं। इसी को चरखे का गलखोड़ा कहते हैं।

चरग—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरगी] १. बाज की जाति की एक शिकारी चिड़िया। चरख। उ०—चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परबस हाड़पर परिहैं पुहुमी नीर।—तुलसी (शब्द०)। २. लकड़बग्घा नामक जंतु जो कुत्तों का शिकार करता है।

चरगजाⓊ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार+गज+ई (प्रत्य०)] कफन। अर्थी का कपड़ा। शव ढाँकने का कपड़ा। उ०—चारगजी चरगजी मँगाया, चढ़ा काठ की घोड़ी। चारों कोने आग लगाया, फूँक दियो जस होरी।—संतवाणी०, भाग २, पृ० ४।

चरगल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शिकारी पक्षी। चरग। उ०—मृगमद मृगवन स्वान नखानहु। ग्राम स्वान बहु गढ़ महँ आनहु। जुरर बाज बहु कुही कुहेला। चरगल गरवा सोकर भेला।—प० रा०, पृ० १८।

चरगृह, चरगेह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरराशि'।

चरचना¹Ⓤ†—क्रि० स० [सं० चर्चन] १. देह में चंदन आदि लगाना उ०—चरचति चंदन अंग हरन अति ताप पीर के।—व्यास। (शब्द०) २. लेपना। पोतना। ३. भाँपना। अनुमान करना। समझ लेना। उ०—चरचहि चेष्टा परखहि नारी निपट नाहि औषध तहँ बारी।—(शब्द०)। ४. पहचानना। उ०—चेला चरचन गुरु गुन गावा। खोजत पूछि परम रस पावा।—जायसी (शब्द०)।

चरचना²—क्रि० स० [सं० चर्चन] पूजन करना। उ०—तबहि नंद जू कही श्याम सो हमरे सुरपति पूजा। गोधन गिरि पै बाहि चरचिहैं याही है मुखपूजा।—सूदन (शब्द०)।

चरचर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चरचराने की ध्वनि या स्थिति।

चरचरा¹—संज्ञा पुं० [अनु०] खाकी रंग की एक चिड़िया जिसकी

जिसकी छाती सफेद होती है और जिसके शरीर के ऊपरी भाग पर चारखानेदार धारियाँ होती हैं।

विशेष—यह प्रायः ६ से १० अंगुल तक लंबी होती है और समस्त भारत में पाई जाती है। इसका अंडा देने का कोई निश्चित समय नहीं है। इसके मुनिया (लाल, हरा, तेलिया आदि) और सिपाड़ा आदि अनेक भेद हैं।

चरचरा[2]—वि० [हिं० चिड़चिड़ा] दे० 'चिड़चिड़ा'।

चरचराटा—संज्ञा पुं० [देश०] रोबदाब। दबदबा। उ०—नाना अब तो सब तरफ अंग्रेजों का चरचराटा है।—झाँसी०, पृ० ४७।

चरचराना[1]—क्रि० अ० [अनु०] १. चर चर शब्द के साथ टूटना या जलना। उ०—गगड़ गड़गड़ान्यो खंभ फाट्यो चरचराय कै निकस्यो नर नाहर को रूप अति भयानो है।—(शब्द०)। २. घाव आदि का खुश्की से तनना और दर्द करना। चर्राना।

चरचराना[2]—क्रि० स० चर चर शब्द के साथ (लकड़ी आदि) तोड़ना।

चरचराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरचराना+हट (प्रत्य०)] १. चरचराना का भाव। २. चर चर शब्द के साथ किसी चीज के टूटने या फटने का शब्द।

चरचरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] दे० 'चर्चरी' या 'चाँचर'।

चरचा—संज्ञा स्त्री० [हिं० चर्चा] दे० 'चर्चा'। उ०—(क) हरिजन हरि चरचा जो करैं। दासी सुत जो हिरदै धरैं।—सूर (शब्द)। (ख) निज लोक बिसरे लोकपति घर की न चरचा चालहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ग) पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की उस चरचा ने प्रत्येक पुरवासी को हर्षित किया।—लक्ष्मण (शब्द०)।

चरचारी(पु)—वि० [हिं० चरचा] १. चरचा चलानेवाला। २. निंदक। शिकायत करनेवाला। उ०—हौं हारी समुझाइ कै चरचारीहि डरै न। लगे लगीहैं नैन ये नित चित करत अचैन।—शृं० सत० (शब्द०)।

चरचित(पु)—वि० [सं० चर्चित] दे० 'चर्चित'।

चरचित्त(पु)—वि० [सं० चलचित्त] दे० 'चलचित्त'।

चरज—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरग़] चरख नाम का पक्षी। उ०—हारिल चरज आप बँद परे। बनकुकरी जलकुकरी चरे।—जायसी (शब्द०)।

चरजना(पु)—क्रि० अ० [सं० चर्चन] १. बहकावा या भुलावा देना। बहाली देना। उ०—चंचला चमाकैं चहुँ ओरन ते चाय भरी, चरज गई ती फेर चरजन लागी री।—पद्माकर (शब्द०)। २. अनुमान करना। अंदाज लगाना। उ०—अरज गरज सुनि चरजि चित्त महँ हरज मरज बरकाई।—रघुराज (शब्द०)।

चरट—संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी।

चरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पग। पैर। पाँव। कदम।

यौ०—चरणपादुका। चरणपीठ। चरणवंदन=चरण छूना। चरणसेवा=बड़ों की सेवा शुश्रूषा।

मुहा०—चरण छूना=दंडवत या प्रणाम आदि करना। बड़े का अभिवादन करना। चरण देना=पैर रखना। उ०—जेहि गिरि चरण देइ हनुमंता।—तुलसी (शब्द०)। चरण पड़ना=आगमन होना। कदम जाना। जैसे—जहँ जहँ चरण पड़ें संतन के तहँ तहँ बंटाधार।—(शब्द०)। चरण लेना=पैर पड़ना। पैर छूकर प्रणाम करना।

२. बड़ों का सांनिध्य। बड़ों की समीपता। बड़ों का संग। उ०—ग्वाल सखा कर जोरि कहत है हमहिं श्याम तुम जनि बिसरायहु। जहाँ जहाँ तुम देह धरत हौं तहाँ तहाँ जनि चरण छुड़ायहु।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—में आना।—में रखना।—में रहना।—छूटना।—छोड़ना।

३. किसी छंद, श्लोक या पद्य आदि का एक पद। दल।

यौ० चरणगुप्त।

४ किसी पदार्थ का चतुर्थांश। किसी चीज का चौथाई भाग। जैसे,—नक्षत्र का चरण, युग का चरण आदि। ५. मूल। जड़। ६. गोत्र। ७. क्रम। ८. आचार। ९. विचरण करने का स्थान। घूमने की जगह। १०. सूर्य आदि की किरण। ११ अनुष्ठान। १२. गमन। जाना। १३. भक्षण। चरने का काम। १४. नदी का वह भाग जो तटवर्ती पर्वत, गुफा आदि तक चला गया हो (को०)। १५. वेद की कोई शाखा (को०)। १६. खंभा। स्तंभ (को०)। १७. किसी संप्रदाय का विहित कर्म (को०)। १८. आधार। सहारा (को०)।

चरणकमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमलवत् चरण। कमल के समान पैर।

चरणकरणानुयोग—संज्ञा पुं० [सं०] जैन साहित्य में वे ग्रंथ आदि जिसमें किसी के चरित्र पर बहुत ही सूक्ष्म रूप से विचार या व्याख्या की गई हो।

चरणगत—वि० [सं०] १. चरणों पर गिरा हुआ। २. आश्रित। अधीन।

चरणगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके कई भेद होते हैं। इसमें कोष्ठक बनाकर अक्षर भरे जाते हैं, जिनके पढ़ने के क्रम भिन्न होते हैं। जैसे, (१)—

इं	जी	सं	त	कि	रा	र	ली
द्र	त	गी	लै	ये	म	स	न
क्षु	गी	सं	त	भ	का	व	दी

इंद्रजीत संगीत लै किये राम रस लीन। क्षुद्र गीत संगीत लै भये काम बस दीन।—(शब्द०)। (२)—

रा	का	रा	ज
म	स	मा	स
रा	धा	मी	त
सा	ल	सी	मु

दो०—राकाराज जराकारा मासमास समासमा। राधा मीत तमीधारा साल सीस सुसील सा (शब्द०)।

चरणाचार—संज्ञा पुं० [सं० चरण+चार] गमन। गति। चलना। उ०—कितने वन उपवन उद्यान कुसुम कलि सजे निरुपमिते, सहज भार चरणाचार से लजे।—अनामिका, पृ० १४१।

चरणग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० चरणग्रंथि] पैरों के नीचे की तरफ की गाँठ [को०]।

चरणचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैरों के तलुए की रेखा। पाँव की लकीरें। २. कीचड़, धूल या बालू आदि पर पड़ा हुआ पैर का निशान। ३. पत्थर आदि पर बनाया हुआ चरण के आकार का चिह्न जिसका पूजन होता है।

चरणतल—संज्ञा पुं० [सं०] पैर का तलुआ।

चरणदास—संज्ञा पुं० [हिं०] दिल्ली के रहनेवाले एक महात्मा साधु का नाम जो जाति के ढूसर बनिए थे।

विशेष—इनका जन्म सं० १७६० वि० में और शरीरांत सं० १८३८ वि० में हुआ था। इनके बनाए कई ग्रंथ हैं जिनमें से स्वरोदय बहुत ही प्रसिद्ध है। इन्होंने अपना एक पृथक् संप्रदाय चलाया था। इस संप्रदाय के साधु अबतक पाए जाते हैं और चरणदासी साधु कहलाते हैं।

चरणदासी¹—वि० [हिं० चरणदास+ई (प्रत्य०)] महात्मा चरणदास के संप्रदाय का। चरणदास का अनुयायी।

चरणदासी²—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण+दासी] १. स्त्री। पत्नी। २. जूता। पनही।

चरणप—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष। पादप [को०]।

चरणपर्व—संज्ञा पुं० [सं० चरणपर्वन्] दे० 'चरणपर्वण' [को०]।

चरणपर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ। एँड़ी।

चरणपादुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खड़ाऊँ। पाँवड़ी। २. पत्थर आदि पर बना हुआ चरण के आकार का चिह्न जिसका पूजन होता है। चरणचिह्न।

चरणपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] चरणपादुका। पाँवड़ी। खड़ाऊँ।

चरणयुग, चरणयुगल—संज्ञा पुं० [सं०] दोनों चरण या पैर [को०]।

चरणरज—संज्ञा पुं० [सं०] पाँव की धूल।

चरणलग्न—वि० [सं०] दे० 'चरणगत'।

चरणव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] वेद की शाखाओं का विभाग करनेवाला एक ग्रंथ [को०]।

चरणशरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] चरण का आश्रय। अधीनता। उ०—मरा हूँ हजार मरण, पाई तव चरण शरण।—आराधना, पृ० ६।

चरणशुश्रूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चरणसेवा'।

चरणसेवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पाँव दबाए या सेवा करे। २. भृत्य। नौकर [को०]।

चरणसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण+सेवा] पैर दबाना। बड़ों की सेवा।

चरणसेवी—संज्ञा पुं० [सं० चरणसेविन्] १. सेवक। नौकर। २. चरणों में रहनेवाला [को०]।

चरणा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चरण] काछा। वि० दे० 'चरना'।

क्रि० प्र०—काछना।

चरणा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों की योनि का एक रोग। इस रोग में मैथुन के समय स्त्री का रज बहुत जल्दी स्खलित हो जाता है।

चरणाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अक्षपाद। गौतम।

चरणाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] चुनार नामक स्थान जो काशी और मिर्जापुर के बीच है।

विशेष—यहाँ एक छोटा सा पहाड़ है, जिसकी एक शिला पर बुद्धदेव का चरणचिह्न है। आजकल यह शिला एक मसजिद में रखी हुई है और मुसलमान उसपर के चिह्न को 'कदमरसूल' बतलाते हैं।

चरणागति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पैरों पर गिरना [को०]।

चरणानुग वि० [सं०] १. किसी बड़े के साथ या उसकी शिक्षा पर चलनेवाला। अनुगामी। २. शरणागत।

चरणामृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पानी जिसमें किसी महात्मा या बड़े के चरण धोए गए हों। पादोदक।

मुहा०—चरणामृत लेना=किसी महात्मा या बड़े का चरण धोकर पीना।

२. एक में मिला हुआ दूध, दही, घी, शक्कर और शहद जिसमें किसी देवमूर्ति को स्नान कराया गया हो।

विशेष—हिंदू लोग बड़े पूज्य भाव से चरणामृत पीते हैं। चरणामृत बहुत थोड़ी मात्रा में पीने का विधान है।

क्रि० प्र०—लेना।

मुहा०—चरणामृत लेना=बहुत ही थोड़ी मात्रा में कोई तरल पदार्थ पीना। चरणामृत पीना=पंचामृत लेना। चरणामृत माथे या सिर लगाना=किसी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिये उसके पादोदक को माथे पर रखना। चरणामृत को प्रणाम करना।

चरणायुध—संज्ञा पुं० [सं०] मुरगा। अरुणशिखा।

चरणारविंद—संज्ञा पुं० [सं०] कमल के समान चरण। चरणकमल।

चरणार्द्ध—वि० [सं०] १. चरण या चतुर्थांश का आधा। किसी चीज का आठवाँ भाग। २. किसी श्लोक या छंद के पद का आधा भाग।

चरणास्कंदन—संज्ञा पुं० [सं० चरणास्कंदन] पैरों से रौंदना। कुचलना [को०]।

चरणि—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य।

चरणोदक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरणामृत'।

चरणोपधान—संज्ञा पुं० [सं०] पाँव रखने का स्थान। पाँवदान [को०]।

चरण्यु—वि० [सं०] चरणशील। चलनेवाला। गतिशील [को०]।

चरत—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा पक्षी जिसका शिकार किया जाता है। वि० दे० 'चीनी मोर'।

चरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चलने का भाव। २. पृथ्वी।

चरतिरिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] मिर्जापुर के जिले में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास जो मामूली होती है।

चरती—संज्ञा पुं० [हिं० चरना (=खाना)] वह जो व्रत न हो। व्रत के दिन उपवास न करनेवाला।

यौ०—बरती चरती।

चरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] चलने का भाव।

चरथ¹—वि० [सं०] चलनेवाला। जंगम।

चरथ²—संज्ञा पुं० १. वह जो चलनेवाला या गतिशील हो। २. गति। चलनशीलता। ३. जीवन। ४. मार्ग (को०)।

चरदास—संज्ञा स्त्री० [देश०] मथुरा जिले में होनेवाली एक प्रकार की कपास जो कुछ घटिया होती है।

चरद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह संपत्ति जिसका स्थानांतर किया जा सके। चल संपत्ति (को०)।

चरनंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चरण+अङ्ग] पैर।

चरन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० चरण] दे० 'चरण'। चूक परी सेवन नहिं पाए, चरन सरोज पुनीत।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३७।

विशेष—'चरन' के यौगिक आदि के लिये देखो 'चरण' के यौगिक।

चरनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण और धनिष्ठा आदि कई नक्षत्र जिनकी संख्या भिन्न आचार्यों के मत से अलग अलग है।

चरनचर†—संज्ञा पुं० [सं० चरण+चर] पैदल सिपाही।

चरनदासी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण+दासी] जूता। पनही। —(साधु)।

चरन धरन—संज्ञा पुं० [सं० चरण+हिं० धरना] खड़ाऊँ।

चरनपीठ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चरणपीठ] दे० 'चरणपीठ'। उ०—(क) तुलसी प्रभु निज चरनपीठ मिस भरत प्रान रखवारो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सिंहासन सुभग राम चरनपीठ धरत। चालत सब राज काज आयसु अनुसरत।—तुलसी (शब्द०)।

चरनबरदार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चरण+फ़ा० बरदार] बड़े आदमियों का जूता उठाने और रखनेवाला नौकर।

चरनवस्त्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चरण+वस्त्र] पाँव के वस्त्र। उ०—जो जहाँ लौ श्रीगुसांई जी नारायनदास के घर विराजे तहाँ लौ नारायनदास नित्य नौतन सामग्री, धोती, उपरेना, वागा, सिज्या, वस्त्र, चरनवस्त्र सब नए नराई करते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११२।

चरना¹—क्रि० स० [सं० चर (=चलना) मि० फ़ा० चरीदन] पशुओं का खेतों या मैदानों में घूम घूमकर घास चारा आदि खाना।

मुहा०—अक्ल का चरने जाना=दे० 'अक्ल' के मुहावरे।

चरना²—क्रि०अ० [सं० चर (=चलना)] घूमना फिरना। विचरना। उ०—जेहि ते विपरीत क्रिया करिये। दुख से सुख मानि सुखी चरिये।—तुलसी (शब्द०)।

चरना³—संज्ञा पुं० [सं० चरण (=पैर)] काछा। उ०—इस बात के सुनते ही राजा ने चरना काछकर उस देव को ललकारा।—लल्लू (शब्द०)।

चरना⁴—संज्ञा पुं० [देश०] सुनारों का एक औजार जिससे नक्काशी करने में सीधी लकीर या लंबा चिह्न बनाया जाता है।

चरनायुध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चरणायुध] दे० 'चरणायुध'। उ०—परै न पहर चरनायुध करैं न सोर पसरै न प्राची ओर कर दिनकर को।—रघुनाथ (शब्द०)।

चरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चर (=गमन)] चाल। गति। उ०—लसत कर प्रतिबिंब मनि आँगन घटुरुवनि चरनि।—तुलसी (शब्द०)।

चरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना] १. पशुओं के चरने का स्थान। चरी। चरागाह। २. वह नाद जिसमें पशुओं को खाने के लिये चारा दिया जाता है। ३. चौतरे के आकार का बना हुआ वह लंबा स्थान जिसपर पशुओं को चारा दिया जाता है। ४. पशुओं का आहार, घास, चारा आदि। उ०—कमल वदन कुम्हिलात सवन के गौवन छाँड़ी तृन की चरनी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—कहीं कहीं चरही शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

चरन्नी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार+आना] दे० 'चवन्नी'।

चरपट—संज्ञा पुं० [सं० चर्पट] १. चपत। तमाचा। थप्पड़। २. किसी की वस्तु उठाकर भाग जानेवाला। चाई। उचक्का। उ०—(क) जो लौं जीवै तौ लौं हरि भजि रे मन और बात सब बादि। द्योस चारि के हला भला तू कहा लेइगो लादि। धनमद जोवनमद राजमद भूल्यो नगर विवादि। कहि हरिदास लोभ चटपट यों काहे की लगै फिरादि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। (ख) चरपट चोर गाँठि छोरा मिलैं रहहिं तेहि नाँच। जो तेहि हाट सजग रहइ गाँठि ताकरि गइ बाँच।—जायसी (शब्द०)। ३. एक प्रकार का छंद। चर्पट। उ०—तोमर उनइस चरपट साता। हरियक आठ भुजंगप्रयाता।—विश्राम (शब्द०)।

चरपनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वेश्या का गाना। मुजरा। (वेश्याओं और सपर्दाइयों की परिभाषा)।

चरपर—वि० [हिं० चरपरा] दे० 'चरपरा'।

चरपरा¹—वि० [अनु०] स्वाद में तीक्ष्ण। झालदार। तीता। उ०—(क) खंडहि, कीन्ह आँब चरपरा। लौंग इलाची सो खँडवरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) मीठे चरपरे उज्वल कौरा। हौंस होइ तौ ल्याऊ औरा।—सूर (शब्द०)।

विशेष—नमक, मिर्च, खटाई आदि के संयोग से यह स्वाद उत्पन्न होता है।

चरपरा²—वि० [सं० चपल अथवा हिं० अनु०] चुस्त। तेज। फुरतीला।

चरपराना—क्रि० अ० [हिं० चरचर] घाव का चर्राना। घाव में खुश्की के कारण तनाव लिए हुए पीड़ा होना।

चरपराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरपरा+आहट (प्रत्य०)] १. स्वाद की तीक्ष्णता। झाल। २. घाव आदि की जलन। ३. द्वेष। डाह। ईर्ष्या।

चरपरी—वि० स्त्री० [अनु०] दे० 'चटपटी'। उ०—चरपरी बोली द्वादस प्रकार के वचन साध के।—सहजो०, पृ० १८।

चरफरा—वि० [हिं०] दे० 'चरपरा'।

चरफराना ⓤ—क्रि० अ० [अनु०] तड़फड़ाना। तड़पना। उ०—चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहु आनि रथ जोरे।—तुलसी (शब्द)।

चरब—वि० [फ़ा० चर्ब] १. तेज। तीखा। उ०—समर सुरब से चरब शस्त्र सत परब सरिस धरि।—गोपाल (शब्द०)। २. चरबीदार। चिकना। स्निग्ध।

यौ०—चरबजबानी=(१) बहुत अधिक और जल्दी जल्दी बोलना। (२) चिकनी चुपड़ी बातें करना। खुशामद करना।

चरबदस्त—वि० [हिं० चरब+फ़ा० दस्त] १. कुशल चालाक। २. कारीगर (को०)।

चरबजबान—वि० [हिं० चरब+फ़ा० जबान] १. बहुभाषी। २. वाचाल। ३. चापलूस। ४. बिना सोचे समझे बोलनेवाला।

चरबना—संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] भुना हुआ अन्न। चबैना। दाना।

चरबजुबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चरबजुबानी] १. चापलूसी। वाचालता। उ०—चरबजुबानी हाय हाय। शोखिवपानी हाय हाय।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ६७८।

चरबाँक—वि० [फ़ा० चर्ब (=तेज)] १. चतुर। चालाक। होशियार। २. शोख। निर्भय। निडर। चंचल। उ०—राखे हैं सुर मदन ये ऐसे ही चरबाँक। पैनी भौंहन की दरी अब नैननि कौं बाँक।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—चरबाँक दीदा=(१) जिसकी दृष्टि चंचल हो। चंचल नेत्रवाला। (२) ढीठ। निडर। शोख।

चरबा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरबह्] प्रतिमूर्ति। नकल। खाका।

मुहा०—चरबा उतारना=(१) खाका खींचना। नक्शा उतारना। चित्र खींचना। (२) किसी की नकल करना।

चरबाई ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'चरबाँक'। उ०—सूधी राधे कुँवरि। श्याम है अति चरबाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १६५।

चरबाक—वि० [हिं० चरबाँक] दे० 'चरबाँक'।

चरबाना—क्रि० स० [सं० चर्म] ढोल पर चमड़ा मढ़ाना।

चरबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सफेद या कुछ पीले रंग का एक चिकना गाढ़ा पदार्थ जो प्राणियों के शरीर में और बहुत से पौधों और वृक्षों में भी पाया जाता है। मेद। वपा। पीह।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह शरीर की सात धातुओं में से एक है और मांस से बनता है। अस्थि इसी का परिवर्तित और परिवर्धित रूप है। पाश्चात्य रासायनिकों के अनुसार सब प्रकार की चरबियाँ गंध और स्वादरहित होती हैं और पानी में घुल नहीं सकतीं। बहुत से पशुओं और वनस्पतियों की चरबियाँ प्रायः दो या अधिक प्रकार की चरबियों के मेल से बनी होती हैं। इसका व्यवहार औषध के रूप में खाने, मरहम आदि बनाने, साबुन और मोमबत्तियाँ तैयार करने, इंजिनों या कलों में तेल की जगह देने और इसी प्रकार के दूसरे कामों में होता है। शरीर के बाहर निकाली हुई चरबी गरमी में पिघलती और सरदी में जम जाती है।

मुहा०—चरबी चढ़ना=मोटा होना। चरबी छाना=(१) (किसी मनुष्य या पशु आदि का) बहुत मोटा हो जाना। शरीर में मेद बढ़ जाना।

विशेष—ऐसी अवस्था में केवल शरीर की मोटाई बढ़ती है, उसमें बल नहीं बढ़ता।

(२) मदांध होना। गर्व के कारण किसी को कुछ न समझना। आँखों में चरबी छाना=दे० 'आँख' के मुहावरे।

चरभ—संज्ञा पुं० [सं०] चर राशि। चरगृह।

चरभवन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में चर राशि।

चरभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ पशु चरते हैं। चरागाह।

चरम¹—वि० [सं०] अंतिम। हद दर्जे का। सबसे बढ़ा हुआ। चोटी का। पराकाष्ठा।

चरम²—संज्ञा पुं० १. पश्चिम।

यौ०—चरमगिरि=अस्ताचल। उ०—रुचिरतर निज कनक किरणों को तपन, चरमगिरि को खींचता था कृपण सा।—अंपि०, पृ० ६६।

२. अंत।

यौ०—चरमकाल=अंतकाल। मृत्यु का समय।

चरम³—संज्ञा पुं० [सं० चर्मन्] दे० 'चर्म'।

यौ०—चरमदृष्टि ⓤ=दे० 'चर्मदृष्टि'।

चरमर—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी से तनी हुई या चीमड़ वस्तु (जैसे, जूता, चारपाई) के दबने या मुड़ने का शब्द। जैसे,—उनका जूता खूब चरमर बोलता है।

चरमरा¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे तकड़ी भी कहते हैं। वि० दे० 'तकड़ी'।

चरमरा²—वि० [हिं० चरमराना अनु०] चरमरा शब्द करनेवाला। जिससे चरमर शब्द निकले। जैसे,—चरमरा जूता।

चरमराना—क्रि० अ० [अनु०] चरमर शब्द होना। जैसे,—जूते का चरमराना।

चरमराना²—क्रि० स० किसी चीज में से चरमर शब्द उत्पन्न करना।

चरमण्वती ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मण्वती] चंबल नदी।

चरमवया—वि० [सं० चरमवयस्] वृद्ध (को०)।

चरमराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेष, कर्क, तुला और मकर राशि।

चरमाचल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरमगिरि' (को०)।

चरमाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरमगिरि' (को०)।

चरमू—संज्ञा पुं० [हिं० चर्म] चर्म। त्वचा। उ०—चरमू सपरस मिलि गयौ सुधि बुधि रह्यौ न कोइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० १८०।

चरमूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मूर्ति जो एक ही जगह स्थापित न रहे, बल्कि आवश्यकतानुसार अन्य स्थान पर भी लाई जा सके (को०)।

चरमोत्कर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत उन्नति। सर्वोपरि विकास। उ०—शाहजहाँ के शासन काल में मुगल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुका था।—हिं० आं० प्र०, पृ० ७।

चरम्म(पु) संज्ञा पुं० [सं० चर्मन्] ढाल। उ०—खड़ाखड़ी चरम्म है, झड़ाझड़ी खड़ग्गरा। गले बलावली दले करे बली गरज्जरा। —रघु० रू०, पृ० ६१।

चरलीता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की काष्ठौषध। उ०—जब चिराइता चित्रक चीता। चोक चोब चीनी चरलीता।—सूदन (शब्द०)।

चरवाँक—वि० [हिं० चरवाँक] दे० 'चरवाँक'।

चरवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया और मुलायम चारा। धम्मन।

विशेष—यह खेत या खेत की जमीन में बारहो मास अधिकता से उत्पन्न होता है। बैल और घोड़े इसे बड़े चाव से खाते हैं। कहीं कहीं वह गायों और भैंसों को उनका दूध बढ़ाने के लिये भी दिया जाता है।

चरवा(पु)²—संज्ञा पुं० [देश०] एक बर्तन का नाम। ताँबे या पीतल का एक पात्र। उ०—शिष्य एक भूमि को ताम्र विकारा ताके पात्र कहावहिं। पुनि चरवा चरई तष्टी तुषला झारी लोटा गावहिं।—सुंदर०, ग्रं०, भा० १, पृ० ७४।

चरवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चराना] १. चराने का काम। २. चराने की मजदूरी।

चरवाना—क्रि० स० [हिं० चराना का प्रे० रूप] चराने का काम कराना।

चरवाहा—संज्ञा पुं० [हिं० चरना+वाहा (प्रत्य०)] दे० 'चरवाह'।

चरवाहा—संज्ञा पुं० [हिं० चरना+वाहा(=वाहक)] गाय भैंस आदि चरानेवाला। पशुओं को चराई पर ले जानेवाला। वह जो पशु चरावे। चौपायों का रक्षक।

चरवाही¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चर+वाही (प्रत्य०)] पशु चराने का काम। २. वह धन या वेतन जो पशु चराने के बदले में दिया जाय। चराने की मजदूरी।

चरवाही(पु)²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना+वाही] इधर उधर फिरना। आवारा की तरह घूमना। उ०—सुरत निशानी गात तकि सकुचत नहिं समुहात। चरवाही जानो करो बेपरवाही बाम। —स० सप्तक, पृ० २६४।

चरवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कहारों का एक सांकेतिक शब्द। इसमें आगेवाला कहार पीछेवाले कहार को इस बात की सूचना देता है कि रास्ते में गाड़ी एक्का आदि है।

चरवैया—वि० [हिं० चरना+वैया (प्रत्य०)] १. चरनेवाला। २. चरानेवाला।

चरव्य—वि० [सं०] चरु बनाने योग्य।

चरस¹—संज्ञा पुं० [सं० चर्म] १. भैंस या बैल आदि के चमड़े से बना हुआ थैला। २. चमड़े का बना हुआ वह बहुत बड़ा डोल जिससे प्रायः खेत सींचने के लिये पानी निकाला जाता है। चरसा। तरसा। पुर। मोट। उ०—चिबुक कूप, रसरी अलक, तिल सु चरस दृग बैल। बारी बैस गुलाब की. सींचत मनमय छैल।—(शब्द०)।

विशेष—इसमें पानी बहुत अधिक आता है और उसे खींचने के लिये प्रायः एक या दो बैल लगते हैं।

३. भूमि नापने का एक परिमाण जो किसी किसी के मत से २१०० हाथ का होता है। गोचर्म। ४. गाँजे के पेड़ से निकला हुआ एक प्रकार का गोंद या चेप जो देखने में प्रायः मोम की तरह का और हरे अथवा कुछ पीले रंग का होता है और जिसे लोग गाँजे या तंबाकू की तरह पीते हैं। नशे में यह प्रायः गाँजे के समान ही होता है।

विशेष—यह चेप गाँजे के डंठलों और पत्तियों आदि से उत्तर-पश्चिम हिमालय में नेपाल, कुमाऊँ, काश्मीर से अफगानिस्तानों और तुर्किस्तान तक बराबर अधिकता से निकलता है, और इन्हीं प्रदेशों का चरस सबसे अच्छा समझा जाता है। बंगाल, मध्यप्रदेश आदि देशों में और योरप में भी, यह बहुत ही थोड़ी मात्रा में निकलता है। गाँजे के पेड़ यदि बहुत पास पास हों तो उनमें से चरस भी बहुत ही कम निकलता है। कुछ लोगों का मत है कि चरस का चेप केवल नर पौधों से निकलता है। गरमी के दिनों में गाँजे के फूलने से पहले ही इसका संग्रह होता है। यह गाँजे के डंठलों को हावन दस्ते में कूटकर या अधिक मात्रा में निकलने के समय उस पर से खरोचकर इकट्ठा किया जाता है। कहीं कहीं चमड़े का पायजामा पहनकर भी गाँजे के खेतों में खूब चक्कर लगाते हैं जिससे यह चेप उसी चमड़े में लग जाता है, पीछे उसे खरोचकर उस रूप में ले आते हैं जिसमें वह बाजारों में बिकता है। ताजा चरस मोम की तरह मुलायम और चमकीले हरे रंग का होता है पर कुछ दिनों बाद वह बहुत कड़ा और मटमैले रंग का हो जाता है। कभी कभी व्यापारी इसमें तीसी के तेल और गाँजे की पत्तियों के चूर्ण की मिलावट भी देते हैं। इसे पीते ही तुरंत नशा होता है और आँखें बहुत लाल हो जाती हैं। यह गाँजे और भाँग की अपेक्षा बहुत अधिक हानिकारक होता है और इसके अधिक व्यवहार से मस्तिष्क में विकार आ जाता है। पहले चरस मध्यएशिया से चमड़े के थैलों या छोटे छोटे चरसों में भरकर आता था। इसी से उसका नाम चरस पड़ गया।

चरस²—संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ज] आसाम प्रांत में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। इसे बन मोर या चीनी मोर भी कहते हैं।

चरसा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चरस] १. भैंस बैल आदि का चमड़ा। २. चमड़े का बना हुआ थैला। ३. चरस। मोट। पुर। ४. भूमि का एक परिमाण। गोचर्म। वि० दे० 'चरस'।

चरसा²—संज्ञा पुं० [हिं० चरस] चरस पक्षी।

चरसिया—संज्ञा पुं० [हिं० चरस+इया (प्रत्य०)] दे० 'चरसी'।

चरसी—संज्ञा पुं० [हिं० चरस+ई (प्रत्य०)] १. वह जो चरस की सहायता से कुएँ से पानी निकलता हो। चरस द्वारा खेत सींचनेवाला। २. वह जो चरस पीता हो। चरस का नशा करनेवाला। जैसे,—चरसी यार किसके? दम लगाया खिसके।—कहावत।

चरहल(पु)—वि० [हिं० चरना] चरनेवाला। उ०—ऑंव की

बोरे चरहल करहल, निबिया छोलि छोलि खाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १४८।

चरहा†—वि० [हिं० चरना+हा (प्रत्य०)] चारा युक्त। चारेवाला (खेत या मैदान)।

चरही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना+ही (प्रत्य०)] दे० 'चरनी'।

चराई संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना] १. चरने का काम। चरने की क्रिया। २. चराने का काम। चराने की मजदूरी।

चराऊ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना] वह स्थान जहाँ पशु चरते हैं। चरागाह। चरनी।

चराक¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

चराक²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चिराग] रोशनी। दीपक। उ०—भैंसे को चाँदी की हाँसली आदि अच्छे अच्छे गहरणे पहनाय रात को चराकों से भिड़काते हैं।—राम० धर्म०, पृ० २८६।

चराकी—संज्ञा पुं० [हिं चराक (=चिराग)] रोशनी करना। प्रकाश करना। उ०—शेष नाग सेवा करै चंद्र पूरै चराकी। लेखरण वाके हाथ है कछू काढ़त वाकी।—राम० धर्म०, पृ० ४६।

चराग†—संज्ञा पुं० [हिं० चिराग] दे० 'चिराग'।

चरागान—संज्ञा पुं० [फ़ा० चराग का बहु०] दीपोत्सव [को०]।

चरागाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह मैदान या भूमि जहाँ पशु चरते हों। पशुओं के चरने का स्थान। चरनी। चरी।

चराचर—वि० [सं०] १. चर और अचर। जड़ और चेतन। स्थावर और जंगम। उ०—त्रिभुवन हार सिंगार भगवती सलिल चराचर जाकै ऐन। सूरजदास विधाता के तप प्रकट भई संतन सुखदैन।—सूर (शब्द०)। २. जगत्। संसार। ३. कौड़ी।

चराचरगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. परमेश्वर।

चरान¹—संज्ञा पुं० [हिं० चरना] चौपायों के चरने की भूमि।

चरान²—संज्ञा स्त्री० चरने की क्रिया या भाव।

चरान³—संज्ञा पुं० [हिं० चर (=दलदल)] समुद्र के किनारे का वह दलदल जिसमें से नमक निकाला जाता है।

चराना—क्रि० स० [हिं०चरना] १. पशुओं को चारा खिलाने के लिये खेतों या मैदानों में ले जाना। जैसे,—गाय, भैंस चराना। २. किसी को धोखा देना। बातों में बहलाना। मूर्ख बनाना। जैसे,—हम तुम्हारे सरीखे सैकड़ों को रोज चराया करते हैं।

चराव—संज्ञा पुं० [सं० चर] पशुओं के चरने का स्थान। चरनी। चरागाह।

चरावना†(पु)—क्रि० स० [हिं चराना] दे० 'चराना'।

चरावर¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० [देश०] व्यर्थ की बात। बकवाद। उ०—फागुन में एक प्रेम को राज है काहे बेकाज करो हो चरावर।—(शब्द०)।

चरावर²—संज्ञा पुं० [हिं० चरना] चरागाह। उ०—शादी गमी में रियासत से लकड़ियाँ मिलती हैं, सरकारी चरावर में लोगों की गउएँ चरती हैं; और भी कितनी बातें हैं।—काया० पृ० १६२।

चरिंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'चरिंदा' [को०]।

यौ०—चरिंद परिंद = पशुपक्षी।

चरिंदा—संज्ञा [फ़ा० चरिंदह्] चरनेवाला जीव। जैसे,—गाय, भैंस, बैल आदि पशु। हैवान।

चरि—संज्ञा सं० [सं०] पशु।

चरिचना(पु)—क्रि० स० [हिं० चरचना] दे० 'चरचना'। उ०—मिलि नारि सबनि अर्चरिज्ज करि, जल धोए उज्वल करयौ। सापंड धूप दीपह चरिच, सित मन सिद्धौ आचरयौ।—पृ० रा०, ११५८१।

चरित¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहन सहन। आचरण। २. काम। करनी। करतूत। कृत्य। जैसे,—अभी आप उनके चरित नहीं जानते। ३. किसी के जीवन की विशेष घटनाओं या कार्यों आदि का वर्णन। जीवनचरित। जीवनी। उ०—लघुमति मोरि चरित अवगाहा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—किसी किसी के मत से चरित दो प्रकार का होता है—एक अनुभव, दूसरा लीला। पर यह भेद सर्वसंमत नहीं है।

चरित²—वि० १. गया हुआ। गत। २. किया हुआ। आचरित। ३. प्राप्त। ४. जाना हुआ। ज्ञात [को०]।

चरितकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरितलेखक' [को०]।

चरितनायक—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रधान पुरुष जिसके चरित्र का आधार लेकर कोई पुस्तक लिखी जाय।

चरितलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी की जीवनसंबंधी घटनाएँ या जीवनी लिखनेवाला लेखक [को०]।

चरितवान्—वि० [सं०] दे० 'चरित्रवान्'।

चरितव्य—वि० [सं०] आचरण करने योग्य। करने योग्य।

चरितार्थ—वि० [सं०] १. जिसके उद्देश्य या अभिप्राय की सिद्धि हो चुकी हो। कृतकृत्य। कृतार्थ। २. जो ठीक ठीक घटे। जो पूरा उतरे। जैसे,—आपवाली कहावत यहीं चरितार्थ होती है।

चरितार्थी—वि० [सं० चरितार्थिन्] सफलता की इच्छा रखनेवाला [को०]।

चरित्तर—संज्ञा पुं० [सं० चरित्र] धूर्तता की चाल। मिस। बहाना।

क्रि० प्र०—करना।—खेलना।—दिखाना।

नखरेबाजी। नकल। जैसे,—यह सब स्त्रियों के चरित्तर हैं।

चरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वभाव। २. वह जो किया जाय। कार्य। ३. करनी। करतूत। ४. चरित। वि० दे० 'चरित'।

यौ०—चरित्रचित्रण=चरित्रवर्णन।

५. व्यवहार। आचार (को०)।

चरित्रण—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्रवर्णन। चरित्रकथन। उ०—ज्योतिर्विज्ञान एक ऐसा विषय है कि प्रायः अपरिचितों का चरित्रण उसकी ग्रहस्थिति की गहराई देखकर किया जा सकता है।—शुक्ल अभि० ग्रं० (जीवनी), पृ० ६७।

चरित्रनायक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरितनायक'।

चरित्रबंधक—संज्ञा पुं० [सं० चरित्रबन्धक] मैत्री निभाने की प्रतिज्ञा। वि० दे० 'चरित्रबंधककृत' [को०]।

चरित्र-बंधक-कृत—संज्ञा पुं० [सं० चरित्रबन्धककृत] १. वह धन जो किसी के पास किसी शर्त पर गिरवी रखा जाय। २. उक्त प्रणाली [को०]।

चरित्रवान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चरित्रवती०] अच्छे चरित्रवाला। उत्तम आचरणोंवाला। अच्छे चाल चलनवाला। सदाचारी।

चरित्रांकन—संज्ञा पुं० [सं० चरित्र + अङ्कन] चरित्र का पूरा विवरण देना। चरित्र का निरूपण या विवेचन। व्याख्या सहित चरित्र प्रस्तुत करना।

चरित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली का पेड़।

चरिम—संज्ञा पुं० [सं० चर] चर्या। आचरण। उ०—युआन चांग यहाँ धर्मपाल को उद्धृत करते हैं जो कहते हैं कि बीजाश्रम में पूर्व चरिम नहीं है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३६४।

चरिष्णु—वि० [सं०] चलनेवाला। जंगम।

चरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चर या हिं० चारा] १. वह जमीन जो किसानों को अपने पशुओं के चारे के लिये जमींदार से बिना लगान मिलती है। २. वह प्रथा या नियम जिसके अनुसार किसान ऐसी जमीन जमींदार से लेता है। ३. वह खेत या मैदान जो इस प्रथा के अनुसार चारे के लिये छोड़ दिया गया हो। ४. छोटी ज्वार के हरे पेड़ जो चारे के काम आते हैं। कड़वी।

चरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० चर (= दूत)] १. संदेशा ले जानेवाली दूती। २. मजदूरनी। दासी। नौकरानी।

चरीद—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरिंद या हिं० चरना] वह जानवर जो चरने के लिये निकला हो। —(शिकारी)।

चरु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चरव्य] १. हवन या यज्ञ की आहुति के लिये पकाया हुआ अन्न। हव्यान्न। हविष्यान्न। उ० हाँड़ी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज।—तुलसी (शब्द०)। २. वह पात्र जिसमें उक्त अन्न पकाया जाय। ३. मिट्टी के कसोरे में पकाया हुआ चार मुट्ठी चावल। ४. बिना माँड पसाया हुआ भात। वह भात जिसमें माँड़ मौजूद हो। ५. पशुओं के चरने की जमीन। ६. वह महसूल जो ऐसी जमीन पर लगाया जाय। ७. यज्ञ। ८. बादल। मेघ।

चरुआ†—संज्ञा पुं० [सं० चरु] [स्त्री० अल्पा० चरुई] मिट्टी के चौड़े मुँह का बरतन, खासकर वह बरतन जिसमें प्रसूता स्त्री के लिये कुछ औषध मिला हुआ जल पकाया जाता है।

क्रि० प्र० चढाना।

चरुई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरुआ] छोटा चरुआ। उ०—चरुई के भात चूल्हि ने खाया दालि जो हँसी ठठाई।—सं० दरिया, पृ० ११८।

चरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का धान। चरक।

चरुखला†—संज्ञा पुं० [हिं० चरखा] सूत कातने का चरखा। उ०—जो चरखा जरि जाय बढ़ैया ना मरै। मैं कातौं सूत हजार चरुखला ना जरै।—कबीर (शब्द०)।

चरुचेली—संज्ञा पुं० [सं० चरुचेलिन्] शिव।

चरुपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें हविष्यान्न रखा या पकाया जाय।

चरुव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान। एक प्रकार का पूआ जिसमें चित्र से बने रहते हैं।

चरुस्थाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पात्र जिसमें हविष्यान्न रखा या पकाया जाय। चरुपात्र।

चरू(ु)†[1] संज्ञा पुं० [सं० चरु] दे० 'चरु'।

चरू[2] –संज्ञा स्त्री० [हिं० चरी] दे० 'चरी'।

चरेर—वि० [हिं० चरेरा] दे० चरेरा'।

चरेरा[1]—वि० [चरचर से अनु०] [वि० स्त्री० चरेरी] १. कड़ा और खुरदुरा २. कर्कश। रूखा। उ०—मधुप तुम कान्ह ही की कही क्यों न कही है। यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरिए रही है।—तुलसी (शब्द०)।

चरेरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो हिमालय की तराई और पूर्वी बंगाल में अधिकता से होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी कुछ ललाई लिए हुए सफेद रंग की और बहुत मजबूत होती है। यह प्रायः इमारत के काम में आती है और इसके फलों से एक प्रकार का तेल भी निकलता है।

चरेरू†—संज्ञा पुं० [हिं० चरना] चिड़िया। पक्षी।

चरेलो—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना ?] ब्राह्मी बूटी।

चरैया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चरना] १. चरानेवाला। २. चरनेवाला।

चरैया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरैया] दे० 'चिड़िया'।

चरैला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चार + ऐला(= चूल्हे का मुँह)] एक प्रकार का चूल्हा जिसपर एक साथ चार चीजें पकाई जा सकती हैं।

चरैला[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जाल जिसमें झील या तालाब के किनारे रहनेवाले पक्षी पकड़े जाते हैं।

चरोखर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चारा + खर] पशुओं के चरने की जगह। चरी।

चरोतर—संज्ञा पुं० [सं० चिरोत्तर] वह भूमि जो किसी मनुष्य को उसके जीवन भर के लिये दी गई हो।

चरौवा†—संज्ञा पुं० [हिं० चराना] १. पशुओं के चरने का स्थान। २. चरी।

चर्क—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज का मार्ग। रुख।—(लश०)।

चर्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चर्चा। २. स्तुति। ३. महिमा [को०]।

चर्ख[1]—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] चक्र। उ०—यक यक अर्जुन सिफत तीरां कमान धर चलावें चर्ख के अंदर जते पर।—दक्खिनी०, पृ० १५७।

चर्ख—संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ख] १. चक्र। चक्कर। २. कुम्हार का चाक। ३. आकाश। ४. खराद।

यौ० चर्खकश=खराद की डोरी खींचनेवाला आदमी।

५. खिंची हुई कमान। ६. ढेलवाँस। गोफन। ७. चरखी। चरखा।

यौ०—चर्खजन=चरखा कातनेवाला।

८. एक प्रकार का बाज। १०. पहिया। चक्र। ११. रहट। कुएँ से पानी निकालने का गर्रा। १२. दामन का घेरा। १३. चारों ओर घूमना। फिरना। १४. कुर्ते का गला (को०)।

चर्खकश—संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्खकश] १. खराद की डोरी या पट्टा खींचनेवाला। २. खराद चलानेवाला।

चर्खा—संज्ञा पुं० [हिं० चरखा] दे० 'चरखा'।

चर्खी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरखी] दे० 'चरखी'।

चर्च¹—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह मंदिर जिसमें ईसाई प्रार्थना करते हैं। गिरजा। २. ईसाई धर्म का कोई संप्रदाय।

विशेष—ईसाई धर्म में अनेक संप्रदाय हैं और अनेक संप्रदाय के चर्च या प्रार्थनामंदिर भिन्न भिन्न होते हैं। जो ईसाई जिस संप्रदाय का होता है, वह उसी संप्रदाय के चर्च में जाता और फलतः उसी चर्च का अनुयायी कहलाता है।

चर्च²—संज्ञा पुं० [सं०] विचार। ध्यान। चिंतन (को०)।

चर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] चर्चा करनेवाला।

चर्चन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चर्चा। २. लेपन।

चर्चर—वि० [सं०] गमनशील। चलनेवाला।

चर्चरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चर्चरी। २. नाटक में वह गान जो किसी एक विषय की समाप्ति और जवनिकापात होने पर और किसी दूसरे विषय के आरंभ होने और जवनिका उठने से पहले होता रहता है। इसी बीच में पात्र तैयार होते रहते हैं और दर्शकों के मनोरंजन के लिये यह गान होता है।

विशेष—(क) कालिदास के विक्रमोर्वशी नाटक में अनेक चर्चरिकाएँ हैं। (ख) आधुनिक नाटकों में केवल किसी अंक की समाप्ति पर ही पात्रों को तैयार होने का समय मिलता है। गर्भांक या दृश्य की समाप्ति पर दूसरा अंक आरंभ होने से पहले जो गान होता है वह भी चर्चरिका ही है।

चर्चरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का गाना जो वसंत में गाया जाता है। फाग। चाँचर। २. होली की धूमधाम। होली का उत्सव। होली का हुल्लड़। ३. एक वर्णवृत्त जिसमें रगण, भगण, दो जगण, भगण और तब फिर रगण (र, स, ज, ज, भ, र) होता है। जैसे,—वीन ये सुनिकै चली मिथिलेशजा हरषाय कै। हाँकिकै पहुँचै रथै सुरआपगा ढिग जायकै। ४. करतलध्वनि। ताली बजाने का शब्द। ५. ताल के मुख्य ६० भेदों में से एक। ६. चर्चरिका। ७. प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल या बाजा जो चमड़े से मढ़ा हुआ होता था। ८. आमोद प्रमोद। क्रीडा। ९. गाना बजाना। नाचना कूदना। आनंद की धूम।

चर्चरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाकाल भैरव। २. साग। भाजी। ३. केशविन्यास। बाल सँवारने की क्रिया।

चर्चस्—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर की नौ निधियों में से एक।

चर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जिक्र। वर्णन। बयान। उ०—(क) हरिजन हरि चरचा जो करैं। दासी सुत सो हिरदै धरैं।—सूर (शब्द०)। (ख) निज लोक बिसरै लोक पति घर की न चरचा चालहीं।—तुलसी (शब्द०)। वार्तालाप। बातचीत। ३. किंवदंती। अफवाह। उ०—पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की उस चर्चा ने प्रत्येक पुरवासी को हर्षित किया।—लक्ष्मण (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठना।—करना।—चलना।—छिड़ना।—होना।

४. लेपन। पोतना। ५. गायत्रीरूपा महादेवी। ६. दुर्गा।

चर्चि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आवृत्ति। २. विचारणा (को०)।

चर्चिक—वि० [सं०] वेद आदि जाननेवाला।

चर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चर्चा। जिक्र। २. दुर्गा। ३. एक प्रकार का सेम।

चर्चिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन आदि का लेपन। २. लेपन की वस्तु। अंगराग (को०)।

चर्चित¹—वि० [सं०] १. लगा या लगाया हुआ। पोता हुआ। लेपित। जैसे।—चंदन चर्चित नील कलेवर पीतवसन वनमाली।—(शब्द०)। २. जिसकी चर्चा हो। ३. विचारित (को०)। ४. (वेदपाठ) इति जुड़ा हुआ (को०)।

चर्चित²—संज्ञा पुं० लेपन।

चर्णारविंद Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० चरणारविन्द] दे० 'चरणारविंद'। उ०—उनको चर्णारविंद धरो तुम जायी। दर्शन करत जलन मिट जायी।—कबीर सा०, पृ० १५१०।

चर्न Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० चरण] दे० 'चरण'। उ०—चप्पो पील तर चर्न चहुवान रायं।—प० रासो, पृ० ८४।

चर्नाद्रि Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० चुनार] दे० 'चरणाद्रि' या 'चुनार'।

चर्पट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चपत। थप्पड़। २. हाथ की खुली हुई हथेली। ३. चेतावनी (ला०)।

चर्पट²—वि० विपुल। अधिक।

चर्पटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी छठ।

चर्पटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रोटी या चपाती।

चर्परा—वि० [हिं० चरपरा] दे० 'चरपरा'।

चर्पण—संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] दे० 'चर्वण'।

चर्बजबानी—वि० [फा० चरबजबानी] दे० 'चरबजबानी'। उ०—आप ज्यादे चर्बजबानी न करें, मैं आपके कौल फैल से बखूबी वाकिफ हूँ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १२२।

चर्बन Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] चबेना। अन्न के दाने। उ०—ऐसी विधि फंद पसारा। कछु बाहरि चर्बन डारा।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० १३१।

चर्बना Ⓟ—क्रि० स० [सं० चर्वण] दे० 'चबाना'। उ०—इस ब्रह्म पोष सम करत घोष। पौरान प्रगट इक वचन मोष। दाढ़ाग्र इक्क चर्बंत फुनिंद। इक धरत ध्यान जानिक मुनिंद।—पृ० रा०, ६।४४।

चर्बित—वि० [सं० चर्वित] दे० 'चर्वित'।

चर्बी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरबी] दे० 'चरबी'।

चर्भट—संज्ञा पुं० [सं०] ककड़ी।

चर्भटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चर्चरी गीत। २. चर्चा। ३. आनंद। क्रीड़ा। ४. आनंदध्वनि।

चर्म—संज्ञा पुं० [सं० चर्मन्] १. चमड़ा।

यौ०—चर्मकार।

२. ढाल। सिपर।

चर्मकरंड—संज्ञा पुं० [सं० चर्मकरण्ड] कौटिल्य अर्थशास्त्र में कथित चमड़े का बड़ा कुप्पा जिसके सहारे नदी के पार उतर जाय।

चर्मकरण—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े की वस्तु बनाने का कार्य [को०]।

चर्मकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक सुगंधद्रव्य। २. मांसरोहिणी लता। रोहिनी।

चर्मकशा, चर्मकषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सुगंधद्रव्य। चमरखा। २. मांसरोहिणी नाम की लता। ३. एक प्रकार का थूहड़ जिसे सातला कहते हैं।

चर्मकार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चर्मकारी] चमड़े का काम करनेवाली जाति। चमार।

विशेष—मनु के अनुसार निषाद पुरुष और वैदेही स्त्री के गर्भ से इस जाति की उत्पत्ति है। पराशर ने तीवर और चांडाली से चर्मकार की उत्पत्ति मानी है।

पर्या०—चमार। कारावर। पादुकृत्। चर्मकृत्। चर्मक। कुवट। पादुकाकार।

चर्मकारक—संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार [को०]।

चर्मकारी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मकार्य: अथवा चर्मकार+हिं० ई (प्रत्य०)] चर्मकार का काम [को०]।

चर्मकारी[2]—संज्ञा पुं० [सं० चर्मकारिन्] दे० 'चर्मकार'।

चर्मकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार का काम। चमड़े के जूते, जीन आदि की सिलाई का काम।

चर्मकील—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बवासीर। २. एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर में एक प्रकार का नुकीला मसा निकल आता है और जिसमें कभी कभी बहुत पीड़ा होती है। न्यच्छ।

चर्मकूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर छिद्र। रोमछिद्र। उ०—जो स्वरलहरी उत्पन्न हो रही है वह उसके चर्मकूपों को भेदकर उसके रक्त में प्रविष्ट हो रक्त को उत्तप्त कर रही है। —वैशाली० पृ० ११७। २. चमड़े का कुप्पा (को०)।

चर्मकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चर्मकार' [को०]।

चर्मघाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक [को०]।

चर्मग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

चर्मचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० चर्मचक्षुष्] साधारण चक्षु। ज्ञानचक्षु का उलटा।

चर्मचटका, चर्मचटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

चर्मचित्रक—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कुष्ठ। कोढ़ का रोग।

चर्मचेल—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा उलटकर बनाया गया पहनावा या ओढ़ना [को०]।

चर्मज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोआँ। रोम। २. लहू। खून।

चर्मज[2]—वि० चमड़े से उत्पन्न होनेवाला।

चर्मणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी [को०]।

चर्मण्य[1]—वि० [सं०] चमड़े का बना हुआ [को०]।

चर्मण्य[2]—संज्ञा पुं० चमड़े का काम [को०]।

चर्मण्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंबल नदी।

विशेष—यह विंध्याचल पर्वत से निकलकर इटावे के पास यमुना में मिलती है। इसका दूसरा नाम शिवनद भी है।

२. केले का पेड़।

चर्मतरंग—संज्ञा पुं० [सं० चर्मतरङ्ग] चमड़े पर पड़ी हुई शिकन। झुर्री।

चर्मतिल—वि० [सं०] फुंसियोंवाला (शरीर) [को०]।

चर्मदंड—संज्ञा पुं० [सं० चर्मदण्ड] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चाबुक।

चर्मदल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़।

विशेष—इसमें किसी स्थान पर बहुत सी फुंसियाँ हो जाती हैं और तब वहाँ का चमड़ा फट जाता है। इसमें बहुत पीड़ा होती है और दूषित स्थान किसी प्रकार छूआ नहीं जा सकता।

चर्मदूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाद का रोग।

चर्मदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] साधारण दृष्टि। आँख। ज्ञानदृष्टि का उलटा।

चर्मदेहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मशक के ढंग का एक प्रकार का बाजा जो प्राचीन काल में मुँह से फूँककर बजाया जाता था।

चर्मद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।

चर्मनालिका, चर्मनासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चाबुक।

चर्मपट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमोटी। [को०]

चर्मपत्रा, चर्मपत्री—संज्ञा [सं०] चमगादड़।

चर्मपादुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूता।

चर्मपीड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मपीडिका] एक प्रकार की शीतला (रोग) जिसमें रोगी का गला बंद हो जाता है।

चर्मपुट, चर्मपुटक—संज्ञा पुं० [सं०] तेल, घी आदि रखने का चमड़े का बना हुआ कुप्पा।

चर्मप्रभेदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा काटने का औजार। सुतारी।

चर्मप्रसेवक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चर्मप्रसेविका] दे० 'चर्मपुट' [को०]।

चर्मबंध—संज्ञा पुं० [सं० चर्मबन्ध] चाबुक।

चर्ममंडल—संज्ञा पुं० [सं० चर्ममण्डल] एक प्राचीन देश का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

चर्ममय—वि० [सं०] चर्मयुक्त। चमड़े का बना हुआ [को०]।

चर्ममसूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मसूरिका रोग का एक भेद।

विशेष—इसमें रोगी के शरीर में छोटी छोटी फुंसियाँ या छाले निकल आते हैं, कंठ रुक जाता है और अरुचि, तंद्रा प्रलाप तथा विकलता होती है।

चर्ममुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्ममुण्डा] दुर्गा।

चर्ममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्र में एक प्रकार की मुद्रा जिसमें बायाँ हाथ फैलाकर उँगली सिकोड़ लेते हैं।

२. चमड़े का सिक्का (को०)।

चर्मयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का कोड़ा या चाबुक।

चर्मरंग—संज्ञा पुं० [सं० चर्मरङ्ग] पौराणिक भूगोल के अनुसार एक देश जो कूर्मखंड के पश्चिमोत्तर में है।

चर्मरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मरङ्गा] एक प्रकार की लता जिसे आवर्तकी और भगवद्वल्ली भी कहते हैं।

चर्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसका फल बहुत विषैला होता है। इसकी गणना स्थावर विषों में की गई है।

चर्मरु—संज्ञा पुं० [सं०] चमार [को०]।

चर्मस्र—संज्ञा पुं० [सं०] चमार।

चर्मवंश—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था।

चर्मवसन—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

चर्मवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे वाद्य जिनपर चमड़ा मढ़ा होता है, जैसे, ढोल, नगाड़ा आदि [को०]।

चर्मवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।

चर्मव्यवसायी—संज्ञा पुं० [सं० चर्मव्यवसायिन्] वह व्यक्ति जो चमड़े का व्यापार करे [को०]।

चर्मसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मसम्भवा] इलायची।

चर्मसार—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में शरीर के अंतर्गत चमड़े के अंदर रहनेवाला वह रस जो खाए हुए पदार्थों से बनता है।

चर्मांत—संज्ञा पुं० [सं० चर्मान्त] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का उपयंत्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में चीर फाड़ आदि में होता था।

चर्माभस्—संज्ञा पुं० [सं० चर्माम्भस्] चमड़े में का रस। चमड़े के अंदर होनेवाला रस जो खाए हुए पदार्थों से बनता है। चर्मसार। लसीका।

चर्माख्य—संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़ रोग का भेद।

चर्मानिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक नदी का नाम।

चर्मानुरंजन—संज्ञा पुं० [सं० चर्मानुरंजन] बदन रँगने के लिये प्रयुक्त सिंदूर की तरह का एक द्रव्य [को०]।

चर्मार—संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार। चमार।

चर्मारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चर्मानुरंजन' [को०]।

चर्मावकर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का काम [को०]।

चर्मावकर्ता—संज्ञा पुं० [चर्मावकर्तृ] दे० 'चर्मकार' [को०]।

चर्मावकर्ती—संज्ञा पुं० [सं० चर्मावकर्तृन्] दे० 'चर्मकार' [को०]।

चर्मिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो ढाल में लेकर लड़े। हाथ में ढाल लेकर लड़नेवाला योद्धा।

चर्मिक[2]—वि० ढालवाला या जिसके हाथ में ढाल हो।

चर्मी[1]—संज्ञा पुं० [सं० चर्मिन्] १. चर्म धारण करनेवाला सैनिक। २ भोजपत्र का वृक्ष। ३. केला। ४. दे० 'चर्मिक'।

चर्मी[2]—वि० १. ढालवाला। २. चमड़ेवाला या चमड़े का।

चर्य—वि० [सं०] १. जो करने योग्य हो। २. जिसका करना आवश्यक हो। कर्तव्य।

चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जो किया जाय। आचरण। जैसे,—व्रतचर्या, दिनचर्या आदि। २. आचार। चाल चलन। ३. कामकाज। ४. वृत्ति। जीविका। ५. सेवा। ६. विहित कार्य का अनुष्ठान और निषिद्ध का त्याग। ७. खाने की क्रिया का भाव। भक्षण। ८. चलने की क्रिया का भाव। गमन।

चर्यापरीषत् संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थान पर न रहना, बल्कि निर्द्वंद्वतापूर्वक चारों ओर विचरना। (जैन धर्म)।

चर्र—संज्ञा [अनु०] कोई चीज फाड़ने से उत्पन्न ध्वनि। जैसे, कागज कपड़ा, चमड़ा आदि।

विशेष—इसका क्रि० वि० रूप में व्यवहार होता है अतः लिंग-निर्वचन अनावश्यक है।

मुहा०—चर्र चर्र फाड़ना=चर्र चर्र की आवाज पैदा करते हुए फाड़ते जाना।

चर्राना—क्रि० अ० [अनु०] १. लकड़ी आदि का टूटने या तड़कने के समय चर चर शब्द करना। २. शरीर के थोड़ा छिल जाने या घाव पर जमी हुई पपड़ी आदि के उखड़ जाने के कारण खुजली या सुरसुरी मिली हुई हलकी पीड़ा होना। ३. खुश्की और रुखाई के कारण (जैसा प्रायः जाड़े में होता है) किसी अंग में तनाव और हलकी पीड़ा होना। जैसे,—बहुत दिनों से तेल नहीं लगाया, इससे बदन चर्राता है। ४. किसी बात की वेगपूर्ण इच्छा होना। किसी बात की आवश्यकता से अधिक और वेगकी चाह होना। जैसे,—शौक चर्राना, मुहब्बत चर्राना।

चर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० चर्राना] लगती हुई व्यंगपूर्ण बात। चुटीली बात।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—बोलना।—सुनना।

चर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चर्व्य] १. किसी चीज को मुँह में रखकर दाँतों से बराबर तोड़ने की क्रिया। चबाना। २. वह वस्तु जो चबाई जाय। ३. भुना हुआ दाना आदि जो चबाकर खाया जाता है। चबैना। बहुरी। दाना। ४. आस्वादन (को०)। ५. रसास्वादन [को०]।

चर्वणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चर्वण करना। २. चर्वण करनेवाला दाँत। ३. आस्वादन। ४. रसास्वादन [को०]।

चर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. थप्पड़। चाँटा। झापड़। २. चबाने का कार्य या स्थिति [को०]।

चर्वित—वि० [सं०] १. चबाया हुआ। दाँतों से कुचला हुआ। २. आस्वादित (को०)। ३. रसास्वादित (को०)।

चर्वितचर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] जो हो चुका हो, उसे फिर से करना। किसी किए हुए काम या कही हुई बात को फिर से करना या कहना। पिष्टपेषण।

चर्वितपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] उगालदान। पीकदान [को०]।

चर्विल—संज्ञा पुं० [सं०] गाजर की तरह एक अँगरेजी तरकारी जो कुआर कातिक में क्यारियों में बोई जाती है।

चर्व्य[1]—वि० [सं०] १. चबाने योग्य। २. जो चबाकर खाया जाय।

चर्व्य[2]—संज्ञा पुं० आहार। भोजन। खाद्य [को०]।

चर्षणि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य। आदमी।

चर्षणि[2]—संज्ञा स्त्री० कुलटा स्त्री०। बंधकी।

चर्षणि[3]—वि० १. निरीक्षक। पर्यवेक्षक। २. गमनशील। गतिशील। फुर्तीला। सक्रिय [को०]।

चर्षणी संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनुष्य जाति। मानव जाति। २. कुलटा स्त्री (को०)।

चर्स संज्ञा पुं० [हिं० चरस] दे० 'चरस'।

चह्लाना ‍(पु)‍ क्रि० स० [हिं० चढ़ाना] दे० 'चढ़ाना'। उ०—तुलसी माला वहुत चह्लावे हरजी के गुण न निर्गुण गावे।—दक्खिनी०, पृ० ९७।

चलंत—वि० [हिं० चलना] १. चलनेवाला। २. चलता हुआ।

चलंता—वि० [हिं० चलना] १. चलता हुआ। २. चलनेवाला।

चलंदरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना + दरी] पौसला। प्याउ। पौसरा।

चल¹—वि० [सं०] १. चंचल। अस्थिर। चलायमान। उ०—श्रावन समै में दुखदाइनि भई री लाज चलन समै में चल पलन दगा दई।—इतिहास, पृ० ४००। २. हिलने डुलनेवाला। ३. एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने योग्य।

यौ०—चलदल। चल संपत्ति। चलवन। चलचित्र।

३. जंगम। गतिशील (को०)। ४ घबराया हुआ। (को०)। ५. क्षणिक। क्षणस्थायी (को०)।

चल²—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा। २. दोहा छंद का एक भेद जिसमें ११ गुरु और २६ लघु मात्राएँ होती हैं। जैसे,—जन्म सिंधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंक। सिय मुख समता पाव किमि चंद्र बापुरो रंक।—तुलसी (शब्द०)। ३. शिव। महादेव। ४. विष्णु। ५. कंपन। काँपना। ६. दोष। ऐब। नुक्स। ७. भूल। चूक। ८. धोखा। छल कपट। ९. नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा जिसमें हाथ के इशारे से किसी को बुलाया जाता है। १०. नृत्य में शोक, चिंता, परिश्रम या उत्कंठा दिखलाने के लिये कुछ गहरी साँस लेना। ११. वायु (को०)। १२. काक। कौआ (को०)।

चल³ ‍(पु)‍—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाल] चाल। गड़बड़। भागना। उ०—सम वेष ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके, वीर जाने हाँके देत. मीर जाने चल तें।—भूषण ग्रं०, पृ० ३०८।

चलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. माल। धन। २. वह राशि जिसके कई मान या मूल्य हों। ३. चलक राशि का प्रतीक चिह्न (को०)।

चलक² ‍(पु)‍†—वि० [हिं० चिलक] दे० 'चमक'। उ०—नासा सुक तुंड वारौं ओठन पै बिंब वारौं मोतिन की माल वारौं दंतन चलक पै।—मोहन०, पृ० ९४।

चलकना—क्रि० अ० [अनु०] १. चमकना। उ०—नर नारिन के मुख कमलन की शोभा दूनी चलकि उठी।—देवस्वामी (शब्द०)। २. दे० 'चिलकना'।

चलकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी से ग्रहों का स्वाभाविक अंतर। २. वह जिसके कान सदा हिलते रहें। ३. हाथी।

चलकर्न ‍(पु)‍—संज्ञा पुं० [सं० चलकर्ण] हाथी। उ०—मत्त महाउत हाथ में, मंद चलनि चलकर्न।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १४३।

चलका—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की साधारण नाव।

चलकेतु संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष या पुच्छल तारा जो पश्चिम दिशा में उदय होता है।

विशेष—इसमें दक्षिण की ओर उठी हुई एक चोटी सी होती है। उदय होने के उपरांत यह क्रमशः उत्तर की ओर बढ़ता और पीछे आकाश में किसी स्थान में अस्त हो जाता है। कभी कभी यह उत्तरी ध्रुव, सप्तर्षि मंडल या अभिजित् नक्षत्र तक भी पहुँच जाता है। फलित के अनुसार किसी के मत से इसके उदय होने के दस महीने और किसी के मत से अठारह महीने बाद देश में दुर्भिक्ष और कई प्रकार का अनिष्ट होता है।

चलचंचु संज्ञा पुं० [सं० चलचञ्चु] चकोर।

चलचलाव—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] १. प्रस्थान। यात्रा। चलाचली। २. महाप्रस्थान। मृत्यु। मौत।

चलचा संज्ञा पुं० [देश०] ढाक। पलास।

चलचाल वि० [सं०] चल विचल। चंचल। अस्थिर। उ०—होन न देहूँ कहूँ चलचाल सुराखौं हिए पै मिलाय कै मालहिं।—(शब्द०)।

चलचित्त—वि० [सं०] चंचल चित्तवाला। अनिश्चय पूर्ण मनवाला।

चलचलिय ‍(पु)‍—[सं० चल + चलित] चंचल। अस्थिर। उ०—चहूँ चक्क चलचलिय सेस चलचलिय सहससिर।—रघु० रू०, पृ० ४२।

चलचूक—संज्ञा स्त्री० [सं० चल (=चंचल) + हिं० चूक (भूल)] धोखा। छल। कपट। उ०—जो चलचूक गने कछु या महँ तो यह न्याउ अनंग के आगे।—गुमान (शब्द०)।

चलचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गतिशील चित्र। २. चलता फिरता दिखनेवाला चित्र। उ०—श्यामा श्याम के अगणित लीला, विलास स्वामी जी के नेत्रों के आगे किसी अनंत चलचित्र के बदलते दृश्यों की भाँति निरंतर आते चले जाते हैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १८८। २. सिनेमा।

चलण ‍(पु)‍—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] मार्ग। रास्ता। राह। उ०—करहा वामन रुप करि, चिहुँ चलणे पग पूरि।—ढोला, दू० ४९७।

चलता¹—वि० [हिं० चलना] [वि० स्त्री० चलती] १. चलता हुआ। गमन करता हुआ। गतिवान्। जैसे,—चलती गाड़ी।

यौ०—चलता खाता=बैंक का वह खाता जिसका हिसाब हमेशा चालू रहता है. जब चाहे उसमें रुपया जमा किया जा सकता है और निकाला जा सकता। चलता छप्पर=छाता (फकीरों की भाषा)। चलता पुरजा=व्यवहारकुशल। चालाक। चुस्त। व्यवहारतत्पर। चलता लेखा=दे० 'चलता-खाता'। चलता समय=जीवन का अंतिम समय। जीवनांत। चलता समाँ=दे० 'चलता समय'।

मुहा०—चलता करना=(१) हटाना। भगाना। भेजना। जैसे,—(क) अब इन्हें क्यों बैठाए हो? चलता करो। (ख) इस कागज को आज चलता करो। (२) किसी प्रकार निपटाना। झगड़ा दूर करना। जैसे,—किसी प्रकार इस मामले को चलता करो। चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना=होते हुए कार्य में बाधा डालना। चलता बनना=चल देना। प्रस्थान करना। उ०—तुम तो वहाँ से चलते बने, पकड़े गए

हम । चलता होना=चल देना । प्रस्थान करना । । चलता फिरता नजर आना=चलता बनना ।

२. जिसका क्रमभंग न हुआ हो । जो बराबर जारी हो ।

मुहा०—चलता लेखा या खाता=वह हिसाब जिसके संबंध का लेनदेन बराबर होता रहे और जिसकी बाकी न गिराई गई हो ।

३. जिसका चलन अधिक हो । जिसका रवाज बहुत हो । प्रचलित । उ०—यह चलती चीज है दुकान पर रख लो ।

यौ०—चलता गाना=वह गाना जो शुद्ध राग रागनियों के अंतर्गत न हो, पर जिसका प्रचार सर्वसाधारण में हो । जैसे,—दादरा, लावनी इत्यादि ।

४. काम करने योग्य । जो आसक्त न हुआ हो । जैसे, चलता बैल । ५. व्यवहार में तत्पर । व्यवहारपटु । चालाक । चुस्त ।

चलता²—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी, बहुत मजबूत और अंदर से लाल होती है ।

विशेष—यह बंगाल, मदरास और मध्यभारत में बहुत अधिकता से उत्पन्न होता है । इसकी लकड़ी प्रायः इमारत में काम आती है और पानी में जल्दी नहीं सड़ती । इसके पुराने पत्तों से हाथीदाँत साफ किया जाता है । इसमें बेल के आकार का बड़ा फल लगता है जो कच्चा भी खाया जाता है और जिसकी तरकारी भी बनती है । फल में रेशा बहुत अधिक होता है इसलिये उसे कच्चा या तरकारी बनने पर चूस चूस कर खाते हैं ।

२. रास्ते में वह स्थान जहाँ फिसलन और कीचड़ बहुत अधिक हो । (कहारों की परि०) । ३. कवच । झिलम ।

चलता³—संज्ञा स्त्री० [सं०] चल होने का भाव । चंचलता । अस्थिरता ।

चलती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] मान मर्यादा । प्रभाव अधिकार । जैसे,—आजकल उस दरबार में उनकी बड़ी चलती है ।

चलतू—वि० [हिं० चलना] १. दे० 'चलता' । २. (भूमि) जो जोती बोई जाती हो । आबाद ।

चलत्पूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रक नामक मछली [को०] ।

चलत्तरबाज—वि [हिं० चरित्तर+फ़ा० बाज] चालबाज । चरित्तर या चरित्रवाली । धूर्ता । नखरा करनेवाली । नकल करनेवाली । उ०—लाडो-हमको यह बातें जरा नहीं भाती हैं । बन्नो—अरी चल चलत्तरबाज ! हमसे उड़ती है ।—सैर०, भा० १. पृ० २१ ।

चलदंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे झींगा कहते हैं ।

चलदल—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष । उ०—चलदल पत्र पताकपट दामिनि कच्छप माथ । भूत दीप दीपक शिखा त्यों मन भृत्ति अनाथ ।—(शब्द०) ।

यौ०—चलदलदल=पीपल का पत्ता । उ०—थिर नहीं तरंग बुदबुद तड़ित अग्निसिखा पन्नग सरित त्यौंही धन जोवन तन अथिर चलदलदल कैसो चरित ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११८

चलद्विप—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल [को०] ।

चलन¹—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] १. चलने का भाव । गति । चाल ।

यौ०—चलनहार ।

२. रिवाज । रस्म । व्यवहार । रीति ।

मुहा०—चलन से चलना=अपने पद या मर्यादा आदि के अनुकूल काम करना । उचित रीति से व्यवहार करना ।

३. किसी चीज का व्यवहार, उपयोग या प्रचार । जैसे—(क) आजकल ऐसी टोपी का बहुत चलन है । (ख) बादशाही जमाने के रुपयों का चलन अब उठ गया ।

क्रि० प्र० उठना ।—चलना । होना ।

यौ०—चलनसार ।

चलन²—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में एक क्रांतिपात गति अथवा विषुवत् की उस समय की गति, जब दिन और रात बराबर होते हैं ।

यौ०—चलनकलन ।

चलन³—संज्ञा पुं० [सं०] १. गति । भ्रमण । २. काँपना । कंपन । ३. हिरन । ४. चरण । पैर । उ०—चरन चलन गतिवंत पुनि अंघ्रिपाद पद पाइ ।—अनेकार्थ०, पृ० ३२ । ५. नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा ।

चलनक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों के पहनने का छोटा साया [को०] ।

चलनकलन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का गणित ।

विशेष—इसके द्वारा पृथ्वी की गति के अनुसार दिन रात के घटने बढ़ने का हिसाब लगाया जाता है ।

चलनदरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलन+दर; जलंदरी] वह स्थान जहाँ रास्ता चलनेवालों को पुण्यार्थ जल पिलाया जाता हो । पौसरा ।

चलनसमीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया । वि० दे० 'समीकरण' ।

चलनसार—वि० [हिं० चलन+सार (प्रत्य०)] १. जिसका उपयोग या व्यवहार प्रचलित हो । जैसे,—चलनसार सिक्का । २. जो अधिक दिनों तक काम में लाया जा सके । जो बहुत दिनों तक चले । टिकाऊ । जैसे,—चलनसार कपड़ा ।

चलनसारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलनसार+ई (प्रत्य०)] १.प्रचलित या चालू उपयोग या व्यवहार । २. बहुत दिनों तक टिकाऊ होने की स्थिति । दीर्घकालिक उपयोगिता ।

चलनहार†—वि० [हिं० चलना+हार (प्रत्य०)] जो अभी चल रहा हो । २. जो चलने को तैयार हो । ३. दे० 'चलनसार' ।

चलना¹—क्रि० अ० [सं० चलन] १. एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना । गमन करना । प्रस्थान करना ।

विशेष—यद्यपि 'जाना' और 'चलना' दोनों क्रियाएँ कभी कभी समान अर्थ में प्रयुक्त होती हैं, तथापि दोनों के भावों में कुछ अंतर है । 'जाना' क्रिया में स्थान की ओर विशेष लक्ष्य रहता है; पर 'चलना' में गति की ओर विशेष लक्ष्य रहता है । जैसे,—चलती गाड़ी पर सवार होना ठीक नहीं है । चलना क्रिया से भूतकाल में भी क्रिया की समाप्ति अर्थात् किसी स्थान पर पहुँचने का बोध नहीं होगा । जैसे,—वह दिल्ली चला । पर 'जाना' से भूतकाल में पहुँचने का बोध हो सकता है । जैसे,—'वह गाँव में गया' । वक्ता अपने साथ प्रस्थान करने के संबंध

में जब किसी से प्रश्न या अनुरोध करेगा, तब वह 'चलना' क्रिया का प्रयोग करेगा, 'जाना' का नहीं। जैसे,—(क) तुम मेरे साथ चलोगे? (ख) अब यहाँ से चलो।

२. गति में होना। हिलना डोलना। हरकत करना। जैसे.—नाड़ी चलना, कल चलना, पुरजा चलना, घड़ी चलना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—किसी का चलना=किसी का काम चलना। गुजर होना। निर्वाह होना। जैसे,—इतने में हमारा नहीं चल सकता। पेट चलना=(१) दस्त आना। (२) निर्वाह होना। गुजर होना। जैसे,—इतने में पेट कैसे चलेगा? मन चलना या दिल चलना=इच्छा होना। लालसा होना। किसी वस्तु के लिये चित्त चंचल होना। प्राप्ति की इच्छा होना। जैसे,—(क) जिस किसी की चीज हुई, उसी पर तुम्हारा मन चल जाता है। (ख) उसका मन पराई स्त्री पर कभी नहीं चलता। मुँह चलना=(१) खाते समय मुँह का हिलना। खाया जाना। भक्षण होना। जैसे,—जब देखो, तब उसका मुँह चलता रहता है। (२) मुँह से बकवाद या अनुचित शब्द निकालना। जैसे,—तुम्हारा मुँह बहुत चलता है, तुमसे चुप नहीं रहा जाता। (३) कै होना। वमन होना। जैसे,—उसका मुँह चल रहा है, कोई चीज पेट में ठहरती नहीं। मुँह पेट चलना=कै दस्त होना। हाथ चलना=(१) मारने के लिये हाथ उठाना। (२) मारना। जैसे,—उसके ऊपर जब देखो तब तुम्हारा हाथ चलता है। चल बसना=मर जाना। अपने चलते=भरसक। यथाशक्ति। उ०—(क) अपने चलत न आजु लगि अनभल काहु क कीन्ह।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अपने चलते तो हम ऐसा कभी न होने देंगे। इसके चलते=इस बात के होते हुए। इसके कारण।

३. कार्यनिर्वाह में समर्थ होना। निभना। जैसे,—यह लड़का इस दरजे में चल जायगा।

मुहा०—चल निकलना=किसी कार्य में उन्नति करना। किसी विषय में क्रमशः आगे बढ़ना। जैसे,—उन्हें काम सीखते थोड़े ही दिन हुए; पर वे चल निकले हैं।

४. प्रवाहित होना। बहना। जैसे,—मोरी चलना, हवा चलना। ५. वृद्धि पर होना। बाढ़ पर होना। जैसे,—अब यह पौधा भी चला। ६. किसी कार्य में अग्रसर होना। किसी कार्य का आगे बढ़ना। किसी युक्ति का काम में आना। जैसे,—सब उपाय करके तो तुम हार गए; अब कोई और तरकीब चलो। ७. आरंभ होना। छिड़ना। जैसे,—बात चलना, जिक्र चलना, चर्चा चलना। ७. जारी रहना। क्रम या परंपरा का निर्वाह होना। जैसे,—(क) वंश चलना, नाम चलना। (ख) जब तक रामचरितमानस रहेगा, तब तक तुलसीदास जी का नाम चला जायगा। ६. खाने पीने की वस्तु का परोसा जाना। खाने के लिये रखा जाना। जैसे,—इसके बाद अब मिठाई चलेगी। १०. बराबर काम देना। टिकना। ठहरना। खटाना। जैसे,—यह जूता कुछ भी न चला। ११. व्यवहार में आना। लेन देन के काम में आना। जैसे,—यह रुपया यहाँ नहीं चलेगा। १२. प्रचलित होना। प्रचार पाना। जारी होना। रवाज पाना। जैसे.—रीति चलना, चाल चलना। (ख) कुछ दिनों तक गोल टोपी खूब चली, पर अब उसकी चाल उठती जाती है। उ०—रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु बचन न जाई।—तुलसी (शब्द०)। १३. प्रयुक्त होना। व्यवहृत होना। काम में लाया जाना। जैसे, तलवार चलना, फावड़ा चलना। १४. अच्छी तरह काम देना। उपयोग या व्यवहार में अनुकूल होना। जैसे—कलम चलती नहीं। १५. तीर गोली आदि का छूटना। १६. लड़ाई झगड़ा होना। विरोध होना। शत्रुता होना। जैसे,—आजकल उन दोनों में खूब चल रही है। १७. किसी व्यवसाय की वृद्धि होना। किसी व्यापार का बढ़ना। काम चमकना। जैसे,—(क) यह दूकान खूब चली। (ख) कुछ दिनों तक लाख का काम खूब चला था।

मुहा०—चल निकलना=किसी काम का ढर्रे पर आना। किसी कार्य का निर्वाह होने लगना। किसी कार्य में सफलता होना। जैसे,—अब तो तुम्हारा रोजगार चल निकला।

१८. पढ़ा जाना। बाँचा जाना। उचरना। जैसे,—यह लिखावट तो हमसे नहीं चलती। १९. कृतकार्य होना। सफल होना। प्रभाव करना। कारगर होना। उपाय लगना। वश चलना। जैसे,—(क) यहाँ तुम्हारी एक भी न चलेगी। (ख) उस पर जादू टोना कुछ नहीं चल सकता।

मुहा०—किसी की चलना=(किसी का) उपाय लगना। वश चलना। प्रयत्न सफल होना। उ०—अंग निरखि अनंग लज्जित सकै नहिं ठहराय। एक की कहा चलै शत शत कोटि रहत लजाय।—सूर (शब्द०)।

२०. आचरण करना। व्यवहार करना। जैसे,—बड़ों के आज्ञानुसार चलने से कभी धोखा नहीं होता। २१. गले के नीचे उतरना। निगला जाना। खाया जाना। जैसे,—अब बिना घी के एक कौर नहीं चलता। २२. थान में से कपड़ा उतारते समय कपड़े का बीच में मोटा सूत आदि पड़ जाने के कारण सीधा न फटना, कुछ इधर उधर हो जाना। (बजाज)। †२३. बासी होना। सड़ना। जैसे,—सालन चल गया। दाल चल गई। २४. अटना। पूरा पड़ना।—जैसे, राशन पाँच दिन और चलेगा।

चलना²—क्रि० स० शतरंज या चौसर आदि खेलों में किसी मोहरे या गोटी आदि को अपने स्थान से बढ़ाना या हटाना, अथवा ताश या गंजीफे आदि खेलों में किसी पत्ते को खेल के कामों के लिये सब खेलनेवालों के सामने फेंकना। जैसे,—हाथी चलना, वजीर चलना दहला चलना, एक्का चलना आदि।

चलना³—संज्ञा पुं० [हिं० चलनी] बड़ी चलनी या छलनी। २. चलनी की तरह का लोहे का एक बड़ा कलछुला या डोई जिससे खँड़सार में उबलते हुए रस के ऊपर का फेन, मैल आदि साफ करते हैं। ३. हलवाइयों का एक औजार जो छेददार डोई के समान होता है और जिससे शीरा या चाशनी इत्यादि साफ की जाती है। छन्ना।

चलनार(पु)†—वि० ([हिं० चलना+आर (प्रत्य०)] चलनहार।

उ०—कहे तुका सवहि चलनार। एक राम विन नहीं वा सार। —दक्खिनी०, पृ० १०४।

चलनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलन] दे० 'चलन'।

चलनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्रियों के पहनने का घाघरा या साया। २. रेशमी झालर।

चलनी[1]†—संज्ञा स्त्री० [सं० चालनी, हिं०] दे० 'छलनी'।

चलनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साधारण कोटि की स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का छोटा साया। २. हाथी बाँधने का रस्सा [को०]।

चलनौस—संज्ञा पुं० [हिं० चलना+औंस (प्रत्य०)] वह पदार्थ जो चलने से छलनी में रह जाय। चोकर। चालन।

चलनौसना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चलनौस'।

चलपत[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० चलपत्र (=चंचल पत्रवाला अर्थात् पीपल)] दे० 'चलपत्र'।

चलपत[2]—वि० पीपल के पत्ते की तरह चंचल। अत्यंत चंचल। उ०—ढोलउ मन चलपत थयउ ऊमउ साहइ लाज। साहमउ वीसू आवियउ, आइ कियउ सुभराज।—ढोला०, दू० ४४७।

चलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष।

चलपूँजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चल+पूँजी] वह पूँजी जिससे एक मनुष्य केवल एक बार उत्पादन कर सकता है।

चलवाँक[1]—वि० [हिं०] दे० 'चरवाँक'।

चलवाँक[2]—वि० [हिं० चलना+बाँका] तेज चलनेवाला। शीघ्रगामी।

चलबिचल—वि० [हिं०] दे० 'चलविचल'।

चलमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिलीय मत से वह मित्र (राजा) जो सदा साथ न दे सके। वि० दे० 'अनर्थ सिद्धि'।

चलमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० चल+मुद्रा] जो मुद्रा चलन में हो। वह मुद्रा जिसका चलन पूरे देश में समान रूप से हो।

चलवंत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० चल+वत] पैदल सिपाही। प्यादा।

चलवाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] चलने का कार्य या स्थिति।

चलवाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चालना] १. चालने का काम या स्थिति। २. चालने की मजदूरी।

चलवाना—क्रि० स० [हिं० चलना का प्रे० रूप] १. चलने का कार्य दूसरे से कराना। २. चालने का काम कराना।

चलविचल[1] वि० [सं० चल+विचल] १. जो अपने स्थान से हट गया हो। जो ठीक जगह से इधर उधर हो गया हो। उखड़ा पुखड़ा। अंडबंड। वेठिकाने। जैसे,—(क) इतने ऊपर से कूदते हो, कोई हड्डी चलविचल हो जायगी, तो रह जाओगे। (ख) उसका सब काम चलविचल हो गया। २. जिसके क्रम या नियम का उल्लंघन हुआ हो। अव्यवस्थित।

चलविचल[2]—संज्ञा स्त्री० किसी नियम या क्रम का उल्लंघन। नियमपालन में त्रुटि। व्यतिक्रम। उ०—जहाँ जरा सी चलविचल हुई, कि सब काम बिगड़ जायगा।

विशेष—इस शब्द को कहीं कहीं पुं० भी बोलते हैं।

चलवैया[1]—वि० [हिं० चलना] चलनेवाला।

चलवैया[2]—वि० [हिं० चालना] चालनेवाला।

चलसंपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० चलसम्पत्ति] वह संपत्ति जिसका स्थानांतर हो सके। वह संपत्ति जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जा सके।

चला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिजली। दामिनी। २. पृथ्वी। भूमि। ३. लक्ष्मी। ४. पिप्पली। पीपल। ५. शिलारस नाम का गंध द्रव्य।

चला[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चाल या चलना] १. व्यवहार। प्रचार। रिवाज। चाल। रीति रस्म। दस्तूर। २. अधिकार। प्रभुत्व। स्वामित्व। उ०—अभी तो ऐसा नहीं हो सकता; जब तुम्हारा चला हो, तब तुम जो चाहे सो करना।

चलाऊ—वि० [हिं० चल+आऊ (प्रत्य०)] १. जो बहुत दिन तक चले। चिरस्थायी। मजबूत। टिकाऊ। २. बहुत चलने फिरने या घूमनेवाला।

चलाक†—वि० [फ़ा० चालाक] दे० 'चालाक'।

चलाकी†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चालाकी] दे० 'चालाकी'।

चलाऊ—वि० [हिं० चल+आऊ (प्रत्य०)] १. चिरस्थायी। टिकाउ। २. चलने फिरने या घूमनेवाला। ३. चलने को तैयार।

चलाका(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० चला (=बिजली)] बिजली। विद्युत्। तड़ित्। उ०—सुंदर कसौटी बीच ललित लकीर जिमि मेघ मैं चलाका जैसे शोभा प्रेम जाल की।—(शब्द०)।

चलाचल[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] १. चलाचली। २. गति। चाल। उ०—उपदेव विराट भिरे बल सों। पुरई धुनि चाप चलाचल सों।—गोपाल (शब्द०)।

चलाचल[2](पु)—वि० [सं०] चंचल। चपल। उ०—नैनिन की गति गूढ़ चलाचल केशवदास अकाश चढ़ैगी।—केशव (शब्द०)।

चलाचली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] १. चलने के समय की घबराहट, धूम या तैयारी। चलने की हड़बड़ी। रवारवी। २. बहुत से लोगों का प्रस्थान। बहुत से लोगों का किसी एक स्थान से चलना। उ०—हय चले, हाथी चले संग छाँड़ि साथी चले, ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो।—भूषण (शब्द०)। ३. चलने की तैयारी या समय। ४. महाप्रस्थान की तैयारी या समय। अंतिम समय।

क्रि० प्र०—लगना।—होना।

चलाचली[2]—वि० जो चलने के लिए तैयार हो। चलनेवाला। उ०—बिरह विपत्ति दिन परत ही तजे सुखन सब अंग। रहि अब लौं अब दुख भए चलाचली जिय संग।—बिहारी (शब्द०)।

चलातंक—संज्ञा पुं० [सं० चलातङ्क] एक प्रकार का वातरोग, जिसमें हाथ पाँव आदि अंग काँपने लगते हैं। कंपवाई। राशा।

चलान—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] १. भेजे जाने या चलने की क्रिया। २. भेजने या चलने की क्रिया। ३. किसी अपराधी का पकड़ा जाकर न्याय के लिये न्यायालय में भेजा जाना।

जैसे, कल संध्या को वह पकड़ा गया; और आज उसकी चलान हो गई। ४. माल असबाब आदि का एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाना। जैसे,– आज यहाँ से दस बोरों की चलान हो गई है, आठ दिन में माल आपको वहां मिल जायगा। ५. एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा या आया हुआ माल। जैसे,—हाल में एक नई चलान आई है, उसमें आपके काम की बहुत सी चीजें हैं।

क्रि० प्र०—आना। भेजना।—मँगाना।

६. वह कागज जिसमें किसी की सूचना के लिये भेजी हुई चीजों की सूची या विवरण आदि हो। रवन्ना

विशेष—(क) इस प्रकार की चलान प्रायः सरकारी खजानों या तहसीलों आदि से दूसरे दफ्तरों में भेजे जानेवाले रुपए के साथ भेजी जाती है (ख) वह चलान चुंगी आदि के संबंध में माल के लिये राहदारी के परवाने का भी काम देती है।

क्रि० प्र०—देना।—भेजना।—लिखना, आदि।

विशेष—(क) उर्दू वालों ने इस शब्द को 'चालान' बना लिया है। (ख) पश्चिम में यह शब्द प्रायः पुंलिंग माना जाता है।

चलानदार—संज्ञा पुं० [हिं० चलान+फ़ा० दार (प्रत्य०)] वह मनुष्य जो माल की चलान के साथ उसकी रक्षा के लिये जाता है।

चलाना—क्रि० स० [हिं० चलना] १. किसी को चलने में लगाना। चलने के लिये प्रेरित करना। जैसे,—गाड़ी, घोड़ा, नाव या रेल आदि चलाना। २. गति देना। हिलाना डुलाना। हरकत देना। जैसे,—चरखा चलाना। (कलछी आदि से) दाल भात चलाना, घड़ी चलाना।

मुहा०—(किसी) की चलाना=प्रसंगवश किसी का जिक्र करना। किसी के बारे में कुछ कहना। जैसे,—हम और किसी की नहीं चलाते, अपने बारे में ही कह सकते हैं। पेट चलाना=(१) दस्त लाना। जैसे,—यह दवा एकदम पेट चला देगी। (२) निर्वाह करना। गुजर करना। मन या दिल चलाना=इच्छा करना। लालसा करना। जैसे,—वह चीज तुम्हें मिलने की नहीं; क्यों व्यर्थ मन चलाते हो। मुँह चलाना=खाना। भक्षण करना। जैसे,—तुम खाली क्यों बैठे हो, धीरे धीरे मुँह चलाते चलो। मुँह पेट चलाना=कै दस्त लाना। हाथ चलाना=मारने के लिये हाथ उठाना। पीटना।

३. कार्यनिर्वाह में समर्थ करना। निभाना। जैसे,—हम इन्हें भी जैसे तैसे अपने साथ चला ले जायँगे। ४. प्रवाहित करना। बहाना। जैसे,—मोरी चलाना, हवा चलाना। ५. वृद्धि करना। उन्नति करना। ६. किसी कार्य को अग्रसर करना। किसी काम को जारी या पूरा करना। जैसे, (क) हमने यह काम चला दिया है। (ख) काम चलाने भर को इतना बहुत है। ७. आरंभ करना। छेड़ना। जैसे,—बात चलाना। जिक्र चलाना। ८. बराबर बनाए रखना। जारी रखना। जैसे,—वंश चलाना, नाम चलाना, कारखाना चलाना। ९. खाने पीने की वस्तु परोसना। खाने की चीज आगे रखना। १०. बराबर काम में लाना। टिकाना। जैसे,—वह कोट अभी आप तीन बरस और चलावेंगे। ११. व्यवहार में लाना। लेन देन के काम में लाना। जैसे,– इन्होंने यह खोटा रुपया भी चला दिया। १२. प्रचलित करना। प्रचार करना। जैसे,—(क) रीति चलाना, धर्म चलाना। (ख) आप तो यह एक नई रीति चलाते हैं। (ग) मुहम्मद साहब ने मुसलमानी धर्म चलाया था। १३. व्यवहृत करना। प्रयुक्त करना। जैसे,—तलवार चलाना, लाठी चलाना, कलम चलाना, हाथ पैर चलाना। १४. तीर, गोली आदि छोड़ना। किसी वस्तु को किसी ओर लक्ष्य करके वेग के साथ फेंकना। जैसे,—ढेला या गुलेला चलाना। १५. किसी वस्तु से प्रहार करना। किसी चीज से मारना। जैसे,—हाथ चलाना। डंडा चलाना। १६. किसी व्यवसाय या व्यापार की वृद्धि करना। काम चमकाना। जैसे, जब सब लोग हार गए, तब उन्होंने कारखाना चलाकर दिखला दिया। १७. आचरण कराना। व्यवहार कराना। १८. थान में से कपड़ा उतारते समय उसे सीधा न फाड़कर असावधानी आदि के कारण टेढ़ा या तिरछा फाड़ना। (बजाज)।

चलानी[१]†—संज्ञा स्त्री० [चलान] खरीद तथा बिक्री के लिये माल बाहर भेजने तथा लाने का कार्य।

चलानी[२]—वि० हिं० चलान संबंधी। चलानवाला। उ०—ऊँह तुम खाँटी चलानी घी हो। मैला०, पृ० ६५।

चलायमान—वि० [सं०] १. चलनेवाला। जो चलता हो। २. चंचल। ३. विचलित।

चलाव†—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] १. चलने का भाव। यात्रा। प्रयाण। पयान। रवानगी। उ०—तपावंत छाला लिख दीन्हा। बेग चलाव चहूँ दिसि कीन्हा।—जायसी (शब्द०)। २ दे० 'चलावा'।

चलावक(पु)—वि० [हिं०] चलानेवाला। उ०—राज माहँई ईंणि परिरहई। राज चलावकँ और परधान। ईण सुँ विरोध नहु बोलिजइ।—बीसल० रास०, पृ० ५३।

चलावनहार(पु)†—वि० [हिं० चलावना+हार (प्रत्य०)] प्रवर्तक।

चलावनहारा(पु)†—वि० [हिं० चलावन+हारा (प्रत्य०)] चलानेवाला। प्रवर्तक। उ०—श्री गुसाईं जी आप पुष्टिमार्ग के चलावनहारे हैं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११२।

चलावना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'चलाना'।

चलावा—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] १. रीति। रस्म। रवाज।

क्रि० प्र०—चलना।

२. द्विरागमन। गौना। मुकलावा। ३. एक प्रकार का उतारा जो प्रायः गावों में भयंकर बीमारी पड़ने के समय किया जाता है।

विशेष—इसे लोग बाजा बजाते हुए अपने गाँव की सीमा के बाहर ले जाकर किसी दूसरे गाँव की सीमा पर रख जाते हैं और समझते हैं कि बीमारी इस गाँव से निकलकर उस गाँव में चली गई।

४ शव की श्मशानयात्रा। मुर्दे को श्मशान ले जाना। उ०—बड़े ठाटबाट धूमधाम से चलावा हुआ। —सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १४२।

चलार्थ—वि० [सं०] प्रचलनवाला। हमेशा चलनेवाला।

यौ०—१. चलार्थपत्र = चलपत्र। २. चलार्थ मुद्रा = वह मुद्रा जिसका व्यवहार निरंतर होता है।

चलासन—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के मत से एक प्रकार का दोष जो सामयिक व्रत में आसन बदलने के कारण होता है।

चलि—संज्ञा पुं० [सं०] १. आवरण। २ अँगरखा।

चलित¹—वि० [सं०] १. अस्थिर। चलायमान। २. चलता हुआ।

यौ०—चलितग्रह। चलितवित्त।

चलित²—संज्ञा पुं० नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा जिसमें ठोड़ी की गति से क्रोध या क्षोभ प्रकट होता है।

चलितग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र में वह ग्रह जिसके फल का कुछ अंश भोगा जा चुका हो और कुछ भोगने को बाकी रह गया हो।

चलित्र¹ पु संज्ञा पुं० [सं० चरित्र] दे० 'चरित' या 'चरित्र'। उ०—आगे चले चलित्र अनंता। पंचि गुणां का किया सयंता। —प्राण०. पृ० ४२।

चलित्र²—वि० [सं०] अपनी ही शक्ति से चलनेवाला।

चलिष्णु—वि० [सं०] चलने का इच्छुक। चलने को उद्यत [को०]।

चलु—संज्ञा पुं० [सं०] पूरे मुँह से भरा हुआ पानी। मुँह भर पानी [को०]।

चलुक¹—संज्ञा पुं० [सं०] चुल्लू में लिया हुआ जल [को०]।

चलुक²—वि० चुल्लू भर (पानी) [को०]।

चलैया¹†—वि० [हिं० चलना] चलनेवाला।

चलैया²†—वि० [हिं० चलना] चालनेवाला।

चलौना†—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] १. वह कलछा या लकड़ी का डंडा जिससे दूध, पानी या और कोई द्रव्य पदार्थ हिलाया जाता है। २. वह लकड़ी का टुकड़ा जिससे चरखा चलाया जाता है।

चलौवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चलावा'।

चल्लना पु—क्रि० अ० [हिं० चलना] दे० 'चलना'। उ०—चढ़ै लोक चल्लै, मसीतां महल्लै। झरोखो सभायो, उठी साह आयो।—रा० रू०, पृ० ३२।

चल्लवा पु†—संज्ञा पुं० [हिं० चिलवा] दे० 'चेल्हा'।

चल्ला पु—संज्ञा पुं० [हिं० चिल्ला (= धनुष की डोरी)] प्रत्यंचा। रोदा। उ०—सुनतंहि जोधार पुर चोगदद तूटे, कवान चल्ले तें सायद से छूटे।—रघु० रू०, पृ० २३६।

चल्ली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] तकले पर लपेटा हुआ सूत या ऊन आदि। कुकड़ी।

चल्हवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] चेल्हा।

चवंवेद पु—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेद] उ०—चवंवेद बंभं हरी किति भाखी। जिनें धम्म साधम्म संसार साखी।—पृ० रा०, १,६।

चवकी पु†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकी] दे० 'चौकी'।

चवठ्ठी पु—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्षष्टि] चौंसठ। यहाँ योगिनियों से तात्पर्य है जिनकी संख्या चौंसठ कही जाती है। उ०—चवट्ठी चिकारैं फिकारैं फिकौर। गमं गिद्ध गड्ढैं पलं पूचि चड्ढै।—पृ० रा०, ७।१२४।

चवड़ पु—क्रि० वि० [देश०] प्रगट में। उ०—भिड़ै सचेत वहाला भारथ, चवडै खेत करै चित चोज।—रघु० रू०, पृ० १२।

चवद पु—वि० संज्ञा पुं० [हिं० चौदह] चौदह। उ०—कल चवद तरणी दुय तुक मिलैं मोहरा तामही। कल त्रितिय चवदैं पोडस अले दसकल चतुरथी तुक में चही। —रघु० रू०, पृ० ६६।

चवदसु पु—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्दश] दे० 'चतुर्दश'। उ०—कोइक दिन गुर राम पैं पढी सु विद्या अप्प। चवदसु विद्या चतुरवर लई सीग्र पट विप्प।—पृ० रा०, १।७२९।

चवदा—वि० [हिं० चौदह] दे० 'चौदह'। उ०—चवदा ही सब लोक नौछावरि व्रज पर करौ। फाग अनोखो नोक और न पर कै सम धरौ। —व्रज० ग्रं०, पृ० ३२।

चवन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (चार) + आना + ई (प्रत्य०)] चार आने मूल्य का चाँदी या निकल का सिक्का।

चवना पु—क्रि० अ० [सं० च्यवन] चूना। टपकना।

चवना पु [सं०] कहना। बोलना। उ०—जै जै सवद्द बंदिन चवहिं, मागध पुत्र पवित्र मति। अनघन प्रवाह बहु पुहवि परि, वरष्यो जेम पुरंद गति —पृ० रा०, १।४७२।

चवपैया -संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चौपैया'।

चवर¹—संज्ञा पुं० [हिं० चँवर] दे० 'चँवर'।

चवर²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोहड़, जोहड़] जलकुंड। उ०—ऊसर खेत कै कुसा मँगाए, चाँचर चवर कै पानी। —कबीर श०, भा० २, पृ० ४३।

चवरना पु—क्रि० अ० [सं० चपल, हिं० चवर] तेजी या वेग से बढ़ाना। उ०—आवहि सावज धात जब मारहु खाँड़पवारि। चवरि जो आगे ह्वै चले छाड़हु सोनहा झारि। —चित्रा०, पृ० २४।

चवरा—संज्ञा पुं० [सं० चवल] लोबिया।

चवरार पु—क्रि० वि० [देश०] चतुर्दिक्। चारो ओर। उ०—गुर लज्ज ऊवर भर सजित रहि है पप्पर चवरार हय। पृ० रा० २४। १०४।

चवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चवर्गीय] च से ञ तक के अक्षरों का समूह। इन अक्षरों का उच्चारण तालु से होता है।

चवल—संज्ञा पुं० [सं०] लोबिया।

चवा पु—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौवाई] चारों ओर से चलनेवाली हवा। एक साथ सब दिशाओं से बहनेवाली वायु। उ०—लागि दवारि पहार टही टहकी कपि लंक यथा खरखौकी। चारु चवा चहुँ ओर चली झपटी लपटैं सो तमीचर तौकी तुलसी (शब्द०)।

चवाई—वि० [हिं० चवाव][वि० स्त्री० चवाइन] १. बदनामी की चर्चा फैलानेवाला। कलंकसूचक प्रवाद फैलानेवाला। दूसरों की बुराई करनेवाला। निंदक। उ०—(क) मैं तरुनी तुम तरुन तन चुगल चवाई गाँव। मुरली लै न बजाइयो कबहुँ हमारे गाँव।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) चौचँद चार चवाइन के चहुँ ओर मचैं बिरचैं करि हाँसी (शब्द०)। (ग) चार चवाइनै लै दुरबीनन धाम्रो न आज तमाशे लखात हैं।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २. झूठी बात करनेवाला। व्यर्थ इधर की उधर लगानेवाला। चुगलखोर। उ०—सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत। सूरश्याम मोहिं गोधन की सौं हौं माता तू पूत। सूर (शब्द०)।

चवाउ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चवाव'।

चवाय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चवाव'। उ०—(क) डारि दियो गुरु लोगनि को डर गाँव चवाय मैं नाँव धराए।—मति० ग्रं०, पृ० ४२१। (ख) गोकुल की गैल मैं गोपाल ग्वाल गोधन मैं गोरज लपेटे लेखे ऐसी गति कीनी है। चौंकि चौंकि चतुर चवायन चलावत है, रही चुपचाप चोप चित्त मति चीनी है।—नट०, पृ० ६५।

चवाली[१](पु)—वि० [देश०] हीन। खराब। निकम्मा। उ०—कवल बदन काया करि कंचन चेचनि करौ जपमाली। अनेक जनम लाँ पातिग छूटै जपंत गोरष चवाली।—गोरख०, पृ० १०१।

चवाली[२]—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० चौवालीस] दे० 'चौवालीस'। उ०—इकतीस चवाली रात्रि मानि। सब घुटिय साठि दिन राति जानि।—हु० रासो, पृ० ३१।

चवालीस—संज्ञा पुं० [हिं० चौवालीस] दे० 'चौवालीस'।

चवाव—संज्ञा पुं० [हिं० चौवाई] १. चारों ओर फैलनेवाली चर्चा। प्रवाद। अफवाह। २. चारों ओर फैली हुई बदनामी। निंदा की चर्चा। किसी की बुराई की चर्चा। उ०—(क) नैनन तें यह भई बड़ाई। घर घर यहै चवाव चलावत हमसों भेंट न माई।—सूर (शब्द०)। (ख) ये घरहाई लोगाई सबै, निसि द्योस निवाज हमैं दहती हैं। बातें चवाव भरी सुनि कै रिस लागति पै चुप ह्वै रहती हैं।—निवाज (शब्द०)। (ग) ज्यों ज्यों चवाव चलै चहुँ ओर धरै चित चाव ये त्योंहि त्यों चोखे (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—चलाना।

३. पीठ पीछे की निंदा। चुगलखोरी।

चवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चविका'।

चविक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ [को०]।

चविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चव्य नाम की ओषधि। वि० दे० 'चव'।

चवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० चवाई] दे० 'चवाई'।

चव्य-चव्यक—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओषधि। वि० दे० 'चाब'।

चव्यजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपीपल।

चव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चव्य'।

चशक—संज्ञा स्त्री० [हिं० चसका] वह भोजन जो साहूओं के यहाँ से किसी विशेष अवसर पर कार्यार्थियों को मिलता है।

चशम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चश्म] दे० 'चश्म'।

विशेष—चशम के यौ० आदि के लिये देखो 'चश्म'।

चशमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मह्] दे० 'चश्मा'।

चश्म—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नेत्र। आँख। लोचन। नयन।

यौ०—चश्मदीद। चश्मनुमाई। चश्मपोशी। आदि।

मुहा०—चश्म बद दूर=बुरी नजर दूर हो। बुरी नजर न लगे।

विशेष—इस वाक्य का व्यवहार किसी चीज की प्रशंसा करते समय उसे नजर लगने से बचाने के अभिप्राय से किया जाता है।

चश्मक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चश्म] १. मनमोटाव। वैमनस्य। ईर्ष्या। द्वेष। २. चश्मा। ऐनक। ३. आँख का इशारा।

चश्मजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मजन] वह जो आँख से इशारा करता है [को०]।

चश्मजदन—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मजदन] १. क्षण। निमेष। लमहा। २. पलक झपकना [को०]।

चश्मदीद—वि० [फ़ा०] जो आँखों से देखा हुआ हो।

यौ०—चश्मदीद गवाह=वह साक्षी जो अपनी आँखों से देखी घटना कहे। वह गवाह जो चश्मदीद माजरा बयान करे।

चश्मनुमाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] घूरकर किसी के मन में भय उत्पन्न करना। धमकी या घुड़की। आँख दिखाना।

चश्मपोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आँख चुराना। सामने न होना। कतराना।

चश्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मह्] १. कमानी में जड़ा हुआ शीशे या पारदर्शी पत्थर के तालों का जोड़ा, जो आँखों पर उनका दोष दूर करने, दृष्टि बढ़ाने अथवा धूप, चमक या गर्द आदि से उनकी रक्षा करने और उन्हें ठंढा रखने के अभिप्राय से लगाया जाता है। ऐनक।

विशेष—चश्में के ताल हरे, लाल, नीले, सफेद, और कई रंग के होते हैं। दूर की चीजें देखने के लिये नतोदर और पास की चीजें देखने के लिये उन्नतोदर तालों का चश्मा लगाया जाता है।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—लगाना।—लगना।

मुहा०—चश्मा लगना=आँखों में चश्मा लगाने की आवश्यकता होना। जैसे, अब तो उनकी आँखें कमजोर हो गई हैं; चश्मा लगता है।

२. पानी का सोता। स्रोत।

यौ०—चश्म ए-खिज्र, चश्म-ए-हैवाँ=अमृत का कुंड या सोता। चश्म ए-सार=जहाँ पर बहुत से चश्मे हों।

३. छोटी नदी। छोटा दरिया। ४. कोई जलाशय। ५. सुई का छेद।

चष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] नेत्र। आँख।

यौ०—चषचोल।

चषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मद्य पीने का पात्र। वह बरतन जिसमें शराब पीते हैं। प्याला। उ०—(क) प्राण ये मन रसिक ललिता धी लोचन चपक पिवति मकरंद सुख रासि अंतर सची।—सूर (शब्द०)। (ख) इंद्रनील मणि महा चषक था सोम रहित उलटा लटका।—कामायनी, पृ० २४। २. मधु। शहद। ३. एक विशेष प्रकार की मदिरा।

चषचोल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चष + चोल (= वस्त्र)] आँख की पलक। आँख का परदा। उ०—चलिगो कुंकुम गात तें दलिगो नयो निचोल। दुरै दुरायो क्यों सुरत मुरत जुरत चषचोल।—शृं० सत० (शब्द०)।

चषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन। भक्षण। २. वध करना। क्षय करना। हनन करना।

चषति—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन। भक्षण। २ वध। हनन। ३. पतन। क्षय। ह्रास [को०]।

चषाल—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के यूप में लगी हुई पशु बाँधने की गराड़ी।

चष्षि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] चक्षु। नेत्र। उ०—अति उंच उतंग कुरंग कुरं। धरि चष्षि गिलंद उडंद पुरं।—पृ० रा०, १२। ३५।

चस—संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी किनारदार कपड़े के ऊपर या नीचे की ओर बनी हुई कलाबत्तू या किसी दूसरे रंग के रेशम या सूत की पतली लकीर या धारी।

चसक¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हलका दर्द। कसक। २. गोटे या अतलस आदि की पतली गोट जो संजाफ या मगजी के आगे लगाई जाती है।

चसक²—संज्ञा पुं० [सं० चषक] दे० 'चषक'।

चसकना—क्रि० अ० [हिं० चसक] हलकी पीड़ा होना। मीठा दर्द होना। टीसना।

चसका—संज्ञा पुं० [सं० चषण] १. किसी वस्तु (विशेषतः खाने पीने की वस्तु) या किसी काम में एक या अनेक बार मिला हुआ आनंद, जो प्रायः उस चीज के पुनः पाने या उस काम के पुनः करने की इच्छा उत्पन्न करता है। शौक। चाट। २. इस प्रकार की पड़ी हुई आदत। लत। जैसे,—उसे शराब पीने का चसका लग गया है।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।

चसकी(पु)—वि० [हिं० चसका] चाववाला। चाह या चसकावाला। उ०—भाव के कुंड नेह के जल में, प्रेम रंग दइ बोर। चसकी चास लगाइ के रे, खूब रँगी झकझोर।—संतवाणी० भा० २, पृ० २।

चसना¹—क्रि० अ० [सं० चषण] १. प्राण त्यागना। मरना। २. फंदे से फँसकर किसी मनुष्य का कुछ देना, विशेषतः किसी गाहक का माल खरीदना।—(दलाल)। (पु) ३. चखना। स्वाद लेना। चाटना। उ०—गिरि मद्धि गहिर गुझझइ वसहि, नीर समीप न संचरहिं। सोमेस सुतन आपेट डर, इम डढाल उस सह चसहि।—पृ० रा०, ६। १०१।

चसना²—क्रि० अ० [हिं० चाशनी] दो चीजों का एक में सटना। लगना। चिपकना। उ०—ज्यों नाभी सर एक नाल नव कनक कमल विवि रहे चसी री।—सूर (शब्द०)।

चसम‡¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्म] सं० 'चश्म'।

चसम²—संज्ञा पुं० [देश०] रेशम में तागों में से निकला हुआ निकम्मा अंश। रेशम का खुज्झा।

चसमा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मह्] दे० 'चश्मा'।

चस्का—संज्ञा पुं० [हिं० चसका] दे० 'चसका'।

चस्पा—वि० [फ़ा०] चिपकाया हुआ। सटाया हुआ। लेई आदि से लगाया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चस्म(पु)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्म] दे० 'चश्म'। उ०—हूर बिना सरोद सब आजँ चस्म बिना सब दरसैं।—मलूक० बानी, पृ० ४।

चस्मा(पु)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मह्] दे० 'चश्मा' उ०—दिए ललाट लगाए चस्मा घुरकत हरदम।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १४।

चस्सी—संज्ञा पुं० [देश०] हथेली और तलवों की खुजली।

चह¹—संज्ञा पुं० [सं० चय] १. नदी के किनारे कच्चे घाटों पर लकड़ियाँ गाड़कर और घासफूस तथा बालू आदि से पाटकर बनाया हुआ चबूतरा, जिसपर से होकर मनुष्य और पशु आदि नावों पर चढ़ते हैं। पाट। २. बाँस या तख्ते बिछाकर आरपार आने जाने के लिये बनाया हुआ अस्थायी पुल।

क्रि० प्र०—बाँधना।

चह²(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चाह] गड्ढा। गर्त।

यौ०—चहबच्चा।

चहक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहकना] 'चहकना' का भाव। लगातार होनेवाला पक्षियों का मधुर शब्द। चिड़ियों का चहचह शब्द।

चहक²—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'चहला'।

चहकना¹—क्रि० अ० [अनु०] १. पक्षियों का आनंदित होकर मधुर शब्द करना। चहचहाना। २. उमंग या प्रसन्नता से अधिक बोलना।—(बाजारू)।

चहकना²—क्रि० स० [हिं० चहका] जलाना। आग लगाना। उ०—सीरी समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकैं।—घनानंद, पृ० २७। २. दे० 'चमकना'।

चहका¹—संज्ञा पुं० [सं० चय] ईंट या पत्थर का फर्श।

चहका²—संज्ञा पुं० [देश०] १. जलती हुई लकड़ी लुआठी। लूका।

मुहा०—चहका देना या लगाना = लूका लगाना। आग लगाना। जलाना।—(स्त्रियों की गाली)।

२. बनेठी। ३. होली के अवसर पर गाया जानेवाला एक प्रकार का गाना।

चहका³—संज्ञा पुं० [हिं० चहला] कीचड़। चहला।

चहकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहक] दे० 'चहक'।

चहकारना†—क्रि० अ० [हिं० चहकार] दे० 'चहकना'।

चहकारा¹(पु)—वि० [हिं० चहकना] कलरव करनेवाला। चहकनेवाला।

चहकारा²—संज्ञा पुं० [हिं० चहकार] चहक।

चहचहा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चहचहाना] १. 'चहचहाना' का भाव। चहक। २. हँसी दिल्लगी। ठट्ठा। चुहलबाजी।
क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

चहचहा²—वि० [वि० स्त्री० चहचही] १. जिसमें चह चह शब्द हो। उल्लास शब्दयुक्त। उ०—चहचही चुहिल चहूँकित अलीन की।—रसखान (शब्द०)। २. आनंद और उमंग उत्पन्न करनेवाला। बहुत मनोहर। उ० चहचही चहल चहूँधा चारु चंदन की चंद्रक चुनीन चौक चौकनि चढ़ी है आब।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२५। ३. ताजा। हाल का।

चहचहाना—क्रि० अ० [अनु०] पक्षियों का चह चह शब्द करना। चहकना। चहकारना।

चहचहाट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहचहाना+आट (प्रत्य०)] दे० 'चहचहाहट'।

चहचहाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहचहाना+आहट (प्रत्य०)] चहचहाने का भाव या स्थिति।

चहटा†—संज्ञा पुं० [अनु०] कीचड़। पंक।

चहड्ना(पु)—वि० [प्रा० चड (मध्यागम ह)>चहड+ना (प्रत्य०)] ऊँचे चढ़ना। उ०—बीज न देख चहड्डियाँ प्री परदेस गयाँह। आपण लीय झबुक्कड़ा, गलि लागी सहराँह।—ढोला०, दू० १५२।

चहता†—संज्ञा पुं० [हिं० चाहता या चहेता] दे० 'चहेता'।

चहनना†—क्रि० स० [हिं० चहलना] चहलना। दबाना। रौंदना।
मुहा०—चहनकर खाना=बहुत अच्छी तरह खाना। कसकर खाना। उ०—लुचुई पोइ पोइ घी भेई। पाछे चहन खाँड़ सो जेई।—जायसी (शब्द०)।

चहना(पु)—क्रि० स० [हिं० चाहना] १. चाहना। पसंद करना। २. देखना। उ०—जब हसि हलधर हरि तन चह्यो। हरि तब सब हलधर सौं कह्यो।—नंद ग्रं०, पृ० २६६।

चहनि†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाहना] दे० 'चाह'।

चहबचा—[हिं० चहबच्चा] दे० 'चहबच्चा'। उ०—बाँपी बापी कूप तड़ाग तैं भरैं चहबचा लाय। प० रा०, पृ० ५५।

चहबच्चा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चाह=(कुआँ)+बच्चा] १. पानी (विशेषतः गंदा या मल आदि का) भर रखने का छोटा गड्ढा या हौज। २. धन गाड़ने या छिपा रखने का छोटा तहखाना।
विशेष—कुछ लोग इसे 'चौबच्चा' कहते हैं।

चहव्व(पु)—संज्ञा, पुं० [हिं० चहबच्चा] दे० 'चहबच्चा'। उ०—जनु रंक पाए दव्व, नल नलन नीर चहव्व।—पृ० रा०, २०। १३८।

चहर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहल] १. आनंद की धूम। आनंदोत्सव। रौनक। उ०—हरख भए नंद करत बधाई दान देत कहा कहो महर की। पंच शब्द ध्वनि बाजत नाचत गावत मंगलचार चहर की।—सूर (शब्द०)। २. जोर का शब्द। शोर गुल। हल्ला। उ०—मथति दधि जसुमति मथानी धुनि रही घर गहरि। श्रवन सुनति न महरि बातें जहाँ तहँ गई चहरि।—सूर (शब्द०)। ३. उपद्रव। उत्पात। उ०—सुत को बरजि राखो महरि। जमुन तट हरि देख ठाढ़े डरनि आवैं बहुरि। सूर श्यामहि नेक बरजो करत है अति चहरि।—सूर (शब्द०)।

चहर²—वि० १. बढ़िया। उत्तम। २. चुलबुला। तेज। उ०—गूढ़ गिरिगिरि गुलगुल से गुनाव रंग चहर चगर चटकीले हैं बालक के।—सूदन (शब्द०)।

चहर³—संज्ञा पुं० [हिं० चौहट] चौक। बाजार। चत्वर। उ०—इह देही का गरब न करना माटी में मिल जासी। यो संसार चहर की बाजी साँझ पड्या उठि जासी।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६९।

चहरना¹(पु)†—क्रि० अ० [हिं० चहर] आनंदित होना। प्रसन्न होना। उ०—आनंद भरी जसोदा उमगि अंग न समाति आनंदित भई गोपी गावती चहरि के।—सूर (शब्द०)।

चहरना²—क्रि० स० [?] निंदा करना। उ०—गह चढ़िया संतोष गज, धर पड़ ज्यानूँ धोक। चढ़िया ज्यानूँ चहरजे, लालच गरधम लोक।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ५६।

चहराना†(पु)¹—क्रि० अ० [हिं०] १. दे० 'चहरना'। २. दे० 'चराँना'।

चहराना²—क्रि० अ० [देश०] दरकना। फटना। तड़कना। चटकना।

चहरुम—वि० [फ़ा० चहारुम] दे० 'चहारुम'।

चहल¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. कीचड़। कीच। कर्दम। उ०—चहचही चहल चहूँधा चारु चंदन की चंदक चुनीन चौक चौकनि चढ़ी है आब।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२५। २. कीचड़ मिली हुई कड़ी चिकनी मिट्टी की जमींन जिसमें बिना हल चलाए जोताई होती है।

चहल²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहचहाना] आनंद की धूम। आनंदोत्सव। रौनक।
यौ०—चहल पहल।

चहल³(पु)†—वि० [फ़ा० चिहिल] चालीस। जैसे,—चहल्लुम में चहल। उ०—कहे हैं बाजरूरत ता चहल माल परियाँ कूँ ही समज बेलाड़ का हाल। दक्खिनी०, पृ० १७९।

चहलकदमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहल+अ० कदम×हिं० ई (प्रत्य०)] धीरे धीरे टहलना, घूमना या चलना।

चहलना¹†—क्रि० स० [हिं० चहनना] १. दे० 'चहनना'।
मुहा०—चहलकर खाना=दे० 'चहनकर खाना'।
†२. किसी वस्तु को पैरों से दबाना। रौंदना'।

चहलपहल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. किसी स्थान पर बहुत से लोगों के आने जाने की धूम। अबादानी। २. बहुत से लोगों के आने जाने के कारण किसी स्थान पर होनेवाली रौनक। आनंदोत्सव। आनंद की धूम।
क्रि० प्र०—मचाना। होना।

चहला†—संज्ञा पुं० [सं० चिकिल] कीचड़। पंक। उ०—(क) चंदन के चहला में परी परी पंकज की पँखुरी नरमी मैं।—(शब्द०)। (ख) इक भीजैं, चहलैं परैं, बूड़ैं, बहैं हजार।—बिहारी र०, दो० ४६१।

चहली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुएँ से पानी खींचने की चारखी। गराड़ी। घिरनी।

चहलुम—संज्ञा पुं० [फ़ा० चेहलुम] दे० 'चेहलुम'।

चहा–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाह] चाह। इच्छा। मनोरथ। कामना। उ०–औरन के अनबाढ़े कहा अरु बाढ़े कहा नहिं होत चहा है।–भूषण ग्रं०, पृ० ६३।

चहार–वि० संज्ञा पुं० [फ़ा०] चार। चार की संख्या।

यौ०–चहारगोशा=चौकोना। चहारचंद=चौगुना। चहारदह =चौदह। चौदह की संख्या। चहारयारी=मुसलमानों का सुन्नी नामक संप्रदाय जो मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी चार खलीफों में विश्वास रहता है जिनके नाम अबूबकर (६३२-३४ ई०), उमर (६३४-४४), उसमान (६४४-५५ ई०) और अली (६५५-६६ ई०) हैं।

चहारदीवारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी स्थान के चारो ओर की दीवार। प्राचीर। कोट। परिखा। परकोटा।

चहारम†–वि० [फ़ा० चहारुम] दे० 'चहारुम'। उ०–चहारम उस कते सकरात जब होय। जबान बंद होयगा सब ओ अकल खोय।–दक्खिनी०, पृ० ११४।

चहारुम[1]–वि० [फ़ा०] चौथा। चतुर्थ।

चहारुम[2]–संज्ञा पुं० किसी वस्तु के चार भागों में से एक भाग। चतुर्थांश। चौथाई भाग।

चहीला㉑†–संज्ञा पुं० [देश०] मार्ग। रास्ता। उ०–दियै चहीलै चालतां आर गाल इक दोय। खाड़ेती खोटो हुवै, धवल न खोटौ होय।–बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४२।

चहुँ㉑–वि० [हिं० चार] चार। चारो। उ०–चहुँ का संगी चहुँ संगि हेंतु।–प्राण०, पृ० ६०।

विशेष–यह शब्द यौगिक के पहले आता है। जैसे, चहूँघा, चहुँचक्र (चारो ओर) आदि।

चहुँक–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौंक] दे० 'चिहुँक'।

चहुँकना–क्रि० अ० [हिं० चौंकना] दे० 'चिहुँकना'।

चहुँखाँ㉑–वि० [हिं० चहु+खाँ (घर)] चारों ओर। चतुर्दिक्। उ०–अब सुनहु वंस तिनकै अपार यह। भइय सृष्टि चहुँखाँ (चहुँघा) निवार।–ह० रासो, पृ० ५।

चहुँटना†–क्रि० स० [हिं०] चोट पहुँचाना। चपेटना।

चहुआन–संज्ञा पुं० [हिं० चौहान] दे० 'चौहान'। उ०–दक्खिन दिसि रनथंभगढ़, तहँ हमीर चहुआन।–हम्मीर०, पृ० १।

चहुरा†–वि० पुं० [हिं०] १. 'चौधरा'। २. 'चौहरा'।

चहुरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चहु] एक पात्र या मान।

चहुवान–संज्ञा पुं० [हिं० चौहान] दे० 'चौहान'।

चहूँ㉑†–वि० [सं० चतुर, हिं० चौ] दे० 'चहुँ'।

चहूँटना†–क्रि० अ० [हिं० चिमटना] सटना। लगना। मिलना। उ०–डोरी लागी भय मिटा, मन पाया विश्राम। चित्त चहूँटा राम सों, याही केवल धाम।–कबीर (शब्द०)।

चहेटना–क्रि० स० [देश०] १. किसी चीज को दबाकर उसका रस या सार भाग निकालना। गारना। निचोड़ना। उ०–चंद चहेट समेटि सुधारस कीन्हों तबै सिय के अधरान को। २. दे० 'चपेटना'।

चहेता–वि० [हिं० चाहना+एता (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चहेती] जिसके साथ प्रेम किया जाय। जिसे चाहा जाय। प्यारा।

चहेती–वि० स्त्री० [हिं० चहेता] जिसे चाहा जाय। प्यारी। जैसे,–चहेती स्त्री।

चहेल†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चहला] १. चहला। कीचड़। २. वह भूमि जहाँ कीचड़ बहुत हो। दलदली भूमि।

चहोड़ना–क्रि० स० [हिं०] दे० 'चहोरना'।

चहोड़ा–संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चहोना'।

चहोरना[1]†–क्रि० अ० [देश०] १. धान या अन्य किसी वृक्ष के पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना। २. सहेजना। सँभालना। देख भालकर सुरक्षित करना। उ०–काटी कूटी माछरी छीके धरी चहोरि। कोई एक औगुन मन बसा दह में परी बहोरि।–कबीर (शब्द०)।

चहोरना[2]–क्रि० स० दे० 'चगोरना'।

चहोरा–संज्ञा पुं० [हिं० चहोरना] जड़हन धान जिसे रोपुवा धान भी कहते हैं।

चांग–संज्ञा पुं० [सं० चाङ्ग] १. दाँतों की सफेदी या सुंदरता। २. चांगेरी या अमलोनी नामक साग [को०]।

चांगेरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० चाङ्गेरिका] एक वनोपधि जो वात-पित्त-नाशक होती है [को०]।

चांगेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० चाङ्गेरी] अमलोनी जिसका साग होता है। चट्टी लोनी।

चांचल्य–संज्ञा पुं० [सं० चाञ्चल्य] चंचलता। चपलता।

चांड–संज्ञा पुं० [सं० चाण्ड] १. तेजी। वेग। प्रचंडता [को०]।

चांडाल–संज्ञा पुं० [सं० चाण्डाल] [स्त्री० चांडाली, चांडालिन] १. अत्यंत नीच जाति। डोम। श्वपच।

विशेष–मनु के अनुसार चांडाल शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न हैं और अत्यंत नीच माने गए हैं। उनकी बस्ती ग्राम के बाहर होनी चाहिए, भीतर नहीं। इनके लिये सोने चाँदी आदि के बरतनों का व्यवहार निषिद्ध है। ये जूठे बरतनों में भोजन कर सकते हैं। चाँदी सोने के बरतनों को छोड़ और किसी बरतन में यदि चांडाल भोजन कर ले, तो वह किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता। कुत्ते, गदहे आदि पालना, मुरदे का कफन आदि लेना, तथा इधर उधर फिरना इनका व्यवसाय ठहराया गया है। यज्ञ और किसी धर्मानुष्ठान के समय इनके दर्शन का निषेध हैं। इन्हें अपने हाथ से भिक्षा तक न देनी चाहिए, सेवकों के हाथ से दिलवानी चाहिए। रात्रि के समय इन्हें बस्ती में नहीं निकलना चाहिए। प्राचीन काल में अपराधियों का वध इन्हीं के द्वारा कराया जाता था। लावारिसों की दाह आदि क्रिया भी वही करते थे।

पर्या०–श्वपच। प्लव। मातंग। दिवाकीर्ति। जनंगम निषाद। श्वपाक। अंतेवासी। पुक्कस। निकृष्ट।

२. कुकर्मी, दुष्ट, दुरात्मा, क्रूर या निष्ठुर मनुष्य। पतित मनुष्य।

चांडालिका संज्ञा स्त्री० [सं० चाण्डालिका] १. दे० 'चंडालिका'। २. दुर्गा का एक नाम (को०)।

चांडालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चाण्डालिनी] तंत्रसाधना की एक देवी (को०)।

चांडाली—संज्ञा स्त्री० [सं० चाण्डाली] १. चांडाल जाति की स्त्री। वह स्त्री जो चांडाल जाति की हो। २ चांडाल की स्त्री (को०)।

चांदनिक—वि० [सं० चान्दनिक] [वि० स्त्री० चांदनिकी] १. चंदन का बना हुआ। २. चंदन संबंधी। ३. चंदन से बासा हुआ। ४. चंदन में होने, रहने या पाया जानेवाला (को०)।

चांद्र¹—वि० [सं० चान्द्र] [वि० स्त्री० चान्द्री] चंद्रमा संबंधी। जैसे,—चांद्रमास। चांद्रवत्सर।

चांद्र²—संज्ञा पुं० १. चांद्रायण व्रत। २. चंद्रकांत मणि। ३. अदरख। ४. मृगशिरा नक्षत्र। ५. लिंग पुराण के अनुसार प्लक्ष द्वीप का एक पर्वत।

चांद्रक—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रक] सोंठ।

चांद्रपुर—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रपुर] वृहत्संहिता के अनुसार एक नगर जिसमें एक प्रसिद्ध शिवमूर्ति के होने का उल्लेख है।

चांद्रभागा——संज्ञा स्त्री० [सं० चान्द्रभागा] दे० 'चंद्रभागा' (को०)।

चांद्रमस¹—वि० [सं० चान्द्रमस] चंद्रमा संबंधी।

चांद्रमस²—संज्ञा पुं० १. मृगशिरा नक्षत्र। २. चांद्र वर्ष (को०)।

चांद्रमसायन—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रमसायन] बुध ग्रह।

चांद्रमसायनि—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रमसायनि] दे० 'चांद्रमसायन' (को०)।

चांद्रमसी¹—वि० स्त्री० [सं० चान्द्रमसी] चंद्रमा की। चंद्रमा संबंधी (को०)।

चांद्रमसी²—संज्ञा स्त्री० वृहस्पति की पत्नी (को०)।

चांद्रमाण—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रमाण] काल का वह परिमाण जो चंद्रमा की गति के अनुसार निर्धारित किया गया हो।

चांद्रमास—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रमास] वह मास जो चंद्रमा की गति के अनुसार हो। उतना काल जितना चंद्रमा का पृथ्वी की एक परिक्रमा करने में लगता है।

विशेष—चांद्रमास दो प्रकार का होता है। एक गौण, दूसरा मुख्य। कृष्ण प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक का काल गौण या पूर्णिमांत और शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक का काल मुख्य या अमांत चांद्रमास कहलाता है।

चांद्रवत्सर—संज्ञा पुं० [पुं० चान्द्रवत्सर] वह वर्ष जो चंद्रमा की गति के अनुसार हो।

चांद्रवर्ष—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रवर्ष] दे० 'चांद्रवत्सर' (को०)।

चांद्रव्रतिक¹—वि० [सं० चान्द्रव्रतिक] जो चांद्रायण व्रत करे।

चांद्रव्रतिक²—संज्ञा पुं० राजा।

चांद्राख्य—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्राख्य] अदरक (को०)।

चांद्रायण—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रायण] [वि० चान्द्रायणिक] १. महीने भर का एक कठिन व्रत जिसमें चंद्रमा के घटने, वढ़ने के अनुसार आहार घटाना बढ़ाना पड़ता है।

विशेष—मिताक्षरा के अनुसार इस व्रत का करनेवाला शुक्ल प्रतिपदा के दिन त्रिकालस्नान करके एक ग्रास मोर के अंडे के बराबर का खाकर रहे। द्वितीया को दो ग्रास खाय। इसी प्रकार क्रमशः एक एक ग्रास नित्य बढ़ाता हुआ पूर्णिमा के दिन पंद्रह ग्रास खाय। फिर कृष्णप्रतिपदा को चौदह ग्रास खाय। द्वितीया को तेरह, इसी प्रकार क्रमशः एक एक ग्रास नित्य घटाता हुआ कृष्ण चतुर्दशी के दिन एक ग्रास खाय और अमावस्या के दिन कुछ न खाय, उपवास करे। इस व्रत में ग्रासों की संख्या आरंभ और अंत में कम तथा बीच में अधिक होती है, इसी से इसे यवमध्य चांद्रायण कहते हैं। इसी व्रत को यदि कृष्ण प्रतिपदा से पूर्वोक्त क्रम से (अर्थात् प्रतिपदा को चौदह ग्रास, द्वितीया को तेरह इत्यादि) आरंभ करे और पूर्णिमा को पूरे पंद्रह ग्रास खाकर समाप्त करे तो वह पिपिलिका तनुमध्य चांद्रायण भी होगा। कल्पतरु के मत से एक यतिचांद्रायण होता है, जिसमें एक महीने तक नित्य तीन तीन ग्रास खाकर रहना पड़ता है। सुभीते के लिये चांद्रायण व्रत का एक और विधान भी है। इसमें महीने भर के सब ग्रासों को जोड़कर तीस से भाग देने से जितने ग्रास आते हैं, उतने ग्रास नित्य खाकर महीने भर रहना पड़ता है। महीने भर के ग्रासों की संख्या २२५ होती है, जिसमें तीस का भाग देने से ७½ ग्रास होते हैं। पल प्रमाण का एक ग्रास लेने से पाव भर के लगभग अन्न होता है अतः इतना ही हविष्यान्न नित्य खाकर रहना पड़ता है। मनु, पराशर, बौधायन, इत्यादि सब स्मृतियों में इस व्रत का उल्लेख है। गौतम के मत से इस व्रत के करनेवाले को चंद्रलोक की प्राप्ति होती है। स्मृतियों में पापों और अपराधों के प्रायश्चित्त के लिये भी इस व्रत का विधान है।

२. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ और १० के विराम से २१ मात्राएँ होती हैं पहले विराम पर जगण और दूसरे पर रगण होना चाहिए। जैसे,—हरि हर कृपानिधान परम पद दीजिए। प्रभु जू दयानिकेत, शरण रख लीजिए।

चांद्रायणिक—वि० [सं० चांद्रायणिक] [वि० स्त्री० चांद्रायणिकी] चांद्रायण व्रत करनेवाला (को०)।

चांद्रि—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रि] बुधग्रह (को०)।

चांद्री¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चान्द्री] १. चंद्रमा की स्त्री। २. चाँदनी। ज्योत्स्ना। ३. सफेद भटकटैया।

चांद्री²—वि० चंद्रमा संबंधी।

चांपिला—संज्ञा स्त्री० [सं० चाम्पिला] चंपा नदी (सम्यता, आधुनिक चंबल) (को०)।

चांपेय—संज्ञा पुं० [सं० चाम्पेय] १. चंपक। २. नागकेसर। ३. किंजल्क। ४. सोना। सुवर्ण। ५. धतूरा (को०)।

चांपेयक—संज्ञा पुं० [सं० चाम्पेयक] किंजल्क। केसर। (को०)।

चांस—संज्ञा पुं० [अं०] अवसर। मौका। उ०—रानी साहब चंदा को आपके मुकाबले में रुपये में एक आना चांस भी नहीं है। —गोदान पृ० १२६।

चांसलर—संज्ञा पुं० [अं०] विश्वविद्यालय का वह प्रधान अधिकारी जिसके बाद वाइस चांसलर होता है।

चाँइयाँ—वि० [हिं० चाँई] दे० 'चाँई'।

चाँई[1]—वि० [सं० चञ्चुर (= दक्ष) या देश० चई (=नैपालकी एक जंगली जाति जो डाका डालती है।)] १. ठग। उचक्का। २. होशियार। छली। चालाक।

चाँई[2]—संज्ञा पुं० वह जो चाँईपन करता है। चाँई का कार्य करनेवाला व्यक्ति।

चाँई[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] सिर में होनेवाली एक प्रकार की फुंसियाँ जिनसे बाल झड़ जाते हैं।

चाँई[4]—वि० जिसके बाल झड़ गए हों। गंजा।

चाँईचूईं—संज्ञा स्त्री० [देश०] सिर में होनेवाली एक प्रकार की फुंसियाँ जिनके कारण बाल गिर जाते हैं।

चाँक—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (= चार)+अंक=चिह्न)] १. काठ की वह थापी जिसपर अक्षर या चिह्न खुदे होते हैं और जिससे खलियान में अन्न की राशि पर ठप्पा लगाते हैं। २. खलियान में अन्न की राशि पर डाला हुआ चिह्न। ३. टोटके के लिये शरीर के किसी पीड़ित स्थान के चारों ओर खींचा हुआ घेरा। गोंठ।

चाँकना—क्रि० सं० [हिं० चाँक] १. खलियान में अनाज की राशि पर मिट्टी, राख या ठप्पे से छापा लगाना जिसमें यदि अनाज निकाला जाय, तो मालूम हो जाय। उ० तुलसी तिलोक की समृद्धि सौज संपदा सकेलि चाँकि राखी राशि जागरु जहान गो।—तुलसी (शब्द०)। २. सीमा बाँधने के लिये किसी वस्तु को रेखा या चिन्ह खींचकर चारों ओर से घेरना। हद खींचना। हद बाँधना। उ०—सकल भुवन शोभा जनु चाँकी।—तुलसी (शब्द०)। ३. पहचान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न डालना।

चाँका—संज्ञा पुं० [हिं० चाँक] दे० 'चाँक'। २. दे० 'चक्का'।

चाँगज—संज्ञा पुं० [देश०] पुं० 'चाँगड़ा'।

चाँगड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] तिव्वत देश का एक प्रकार का बकरा।

चाँगला[1] वि० [हिं० चंगा] १. स्वस्थ। तंदुरुस्त। हृष्टपुष्ट। २. चतुर। चालाक।

चाँगला[2]—संज्ञा पुं० घोड़ों का एक रंग।

चाँच ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोंच, अन्य रूप, चंच, चाँच, चूँच] दे० 'चंचु'। उ०—बाबहिया तू चोर थारी चाँच करावसूँ। राति ज दीन्हीं लोर मँइ जाएयउ प्री आवियउ। —ढोला०, दू० ३०।

चाँचर—संज्ञा पुं० [देश०] सालपान नाम का क्षुप। वि० दे० 'सालपान'।

चाँचर, चाँचरि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] वसंत ऋतु में गाया जानेवाला एक राग। चर्चरी राग जिसके अंतर्गत, होली, फाग, लेद इत्यादि माने जाते हैं। उ०—तुलसीदास चाँचरि मिसु, कहे राम गुणग्राम।—तुलसी (शब्द०)।

चाँचरि[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. वह जमीन जो एक वर्ष तक या कई वर्षों तक बिना जोती बोई छोड़ दी जाय। परती छोड़ी हुई जमीन। २. एक प्रकार की मटियारी भूमि।

चाँचर, चाँचरि[3] संज्ञा पुं० [देश०] १. टट्टी या परदा जो किवाड़ के बदले काम में लाया जाय।

चाँचिया—संज्ञा पुं० [हिं० चाँई ?] १. एक प्रकार की छोटी जाति जो चाँईगिरी, चोरी, लूट मार का काम करती है। २. दे० 'चाँई'। ३. चोर। ४. डाकू।

चाँचियागलवत, चाँचियाजहाज—संज्ञा पुं० [हिं० चाँई ?] डाकुओं का जहाज जो समुद्र में सौदागरों के जहाजों को लूटता है।

चाँचियागिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँचिया+फ़ा० गीरी] चाँईपन, चोरी, डाका आदि का धंधा।

चाँची—संज्ञा पुं० [हिं० चाँचिया] दे० 'चाँचिया'।

चाँचु ⓟ—संज्ञा पुं० [देश०] चोंच। उ० वकासुर रचि रूप माया रह्यो छल करि आइ। चाँचु पकरि पुहुमी लगाई इक अकास समाइ।—सूर (शब्द०)।

चाँट—संज्ञा पुं० [हिं० छींटा] हवा में उड़ता हुआ जलकण का प्रवाह जो तूफान आने पर समुद्र में उठता है।—(लश०)।

मुहा०—चाँट मारना=जहाज के बाहरी किनारों के तख्ते पर या पाल पर पानी छिड़कना।

विशेष—यह पानी इसलिये छिड़का जाता है जिसमें तख्ते धूप की गरमी से न चिटकें या पाल कुछ भारी हो जाय।

चाँटा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चिमटना] [स्त्री० चाँटी] च्यूँटा। चिउँटा। उ०—(क) नेरे दूर फूल जस काँटा। दूर जो नेरे जस गुरु चाँटा।—जायसी (शब्द०) (ख) अदल कहौं प्रथमै जस होई। चाँटा चलत न दुखवै कोई।—जायसी (शब्द०)।

चाँटा[2]—संज्ञा पुं० [अनु० चट या सं० चट (=तोड़ना)] थप्पड़। तमाचा। चपत।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

चाँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँटा] १. चींटी। उ०—कीन्हेसि लावा, एंदुर चाँटी।—जायसी (शब्द०)। २. वह कर जो पहले कारीगरों पर लगाया जाता था। ३. तबले की संजाफदार मगजी जिसपर तबला बजाते समय तर्जनी उँगली पड़ती है। ४. तबले का वह शब्द जो इस स्थान पर तर्जनी उँगली का आघात पड़ने से होता है।

चाँड़[1]—वि० [सं० चंड] १. प्रबल। बलवान्। उ०—दान कृपान बुद्धि बल चाँड़े।—लाल (शब्द०)। २. उग्र। उद्धत। शोख। उ०—धीर धरहु फल पावहुगे। अपने ही पिय के मुख चाँडे कबहूँ तो बस आवहुगे।—सूर (शब्द०)। ३. बढ़ा चढ़ा। श्रेष्ठ। ४. अघाया हुआ। अफरा हुआ। तृप्त। उ०—ऊधो तुम्हरी बात इमि जिमि रोगी हित माँड़। जो जेंवत है सेर भर सो किमि होवै चाँड़।—विश्राम (शब्द०)। ५. चतुर। चालाक।

चाँड़[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्ड (=प्रबल)] १. भार सँभालने का खंभा। टेक। थूनी।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. बिछाने की बड़ी सफेद चद्दर। सफेद फर्श। ३. ऊपर तानने का सफेद कपड़ा। छतगीर। ४. गुलचाँदनी। तगर।

चाँदमारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद + मारना] बंदूक का निशाना लगाने का अभ्यास। दीवार या कपड़े पर बने हुए चिह्नों को लक्ष्य करके गोली चलाने का अभ्यास।

चाँदला†—सं० [हिं० चाँद] १. (दूज के चंद्रमा के समान) टेढ़ा। वक्र। कुटिल। २. दे० 'चँदला'।

चाँदनी वस्त्र(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चाँदनी + सं० वस्त्र] सफेद बारीक मलमल। उ०—राधे निरखति चाँदनी पहिरी चाँदनीवस्त्र। वदन-चंद्रिका-चाँदनी चतुरानन को अस्त्र।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १८।

चाँदवाला—संज्ञा पुं० [हिं० चाँद + बाला] कान में पहनने का एक प्रकार का बाला जो अर्धचंद्राकार होता है।

चाँद सूरज—संज्ञा पुं० [हिं० चाँद + सूरज] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ चोटी में गूँथकर पहनती हैं।

चाँदा—संज्ञा पुं० [हिं० चाँद] १. वह लक्ष्य स्थान जहाँ दूरबीन लगाई जाती है। २. पैमाइश या भूमि की माप में वह विशेष स्थान जिसकी दूरी को लेकर हदबंदी की जाती है। ३. छप्पर का पाखा। ४. एक लकड़ी का पटरा जिसपर अभ्यास के लिये निशान बने रहते हैं। ५. ज्यामिति में प्रयुक्त होनेवाला एक उपकरण जो चंद्रमा की आकृति का होता है और कोण बनाने या नापने के काम आता है।

चाँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] १. एक सफेद चमकीली धातु जो बहुत नरम होती है। इसके सिक्के, आभूषण और बरतन इत्यादि बनते हैं।

विशेष—यह खानों में कभी शुद्ध रूप में कभी दूसरे खनिज पदार्थों में गंधक, संखिया, सुरमे आदि के साथ मिली हुई पाई जाती है। इसका गुरुत्व सोने के गुरुत्व का आधा होता है। इसका अम्लक्षार बड़ी कठिनता से बनता है। चाँदी के अम्लक्षार को नौसादर के पानी में घोलकर सुखाने से ऐसा रासायनिक पदार्थ तैयार होता है, जो हलकी रगड़ से भी बहुत जोर से भड़कता है। वैद्य लोग इसे भस्म करके रसौषध बनाते हैं। हकीम लोग भी इसका वरक रोगियों को देते हैं। चाँदी का तार बहुत अच्छा खिंचता है जिससे कारचोबी के अनेक प्रकार के काम बनते हैं। चाँदी से कई एक ऐसे क्षार बनाए जाते हैं जिनपर प्रकाश का प्रभाव बड़ा विलक्षण पड़ता है। इसी से उनका प्रयोग फोटोग्राफी में होता है।

पर्या०—रौप्य। रजत। चामीकर।

यौ०—चाँदी का जूता=वह धन जो किसी को अपने अनुकूल या वश में करने को दिया जाता है। जैसे,—घूस, इनाम आदि। चाँदी का पहरा=सुख समृद्धि का समय। सौभाग्य की दशा। धनधान्य की पूर्णता की अवस्था।

मुहा०—चाँदी कर डालना या देना=जला कर राख कर डालना जैसे,—तुम तो तमाकू को चाँदी कर डालते हो, तब दूसरे को देते हो। चाँदी काटना=(१) खूब रुपया पैदा करना। खूब माल मारना। (२) स्त्री से प्रथम समागम करना। सुंदर स्त्री से प्रथम समागम करना।

२. धन की आय। आर्थिक लाभ। उ०—आजकल तो उनकी चाँदी है। ३. खोपड़ी का मध्य भाग। जाँद। चँदिया।

मुहा०—चाँदी खुलवाना=चाँद के ऊपर बाल मुड़ाना।

४. एक प्रकार की मछली जो दो या तीन इंच लंबी होती है।

चाँप¹—संज्ञा पुं० [सं० चाप] दे० 'चाप'।

चाँप²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना] १ चँप या दब जाने का भाव। दबाव। २. रेल पेल। धक्का : उ०—कोई काहू न सम्हारै होत आप तस चाँप। धरति आपु कहँ काँपै सरग आपु कहँ काँप।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

२ बंदूक का वह पुरजा जिसके द्वारा कुंदे से नली जुड़ी रहती है। ३. पैर की आहट। पैर जमीन पर पड़ने का शब्द। वि० दे० 'चाप'।

चाँप³—संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने की वे कीलें जिन्हें लोग अगले दाँतों पर जड़वाते हैं।

चाँप⁴†(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चंपा] चंपा का फूल। उ०—कोई परा भँवर होय बास कीन जनु चाँप। कोइ पतंग भा दीपक कोइ अधजर तन काँप।—जायसी (शब्द०)।

चाँपना—क्रि० स० [सं० चपन (=माँडना)] १. दबाना। मोड़ना। उ०—बड़ भागी अंगद हनुमाना। चाँपत चरणकमल विधि नाना।—तुलसी (शब्द०)। २. जहाज का पानी निकालने के लिये पंप का पेंच चलाना।—(लश०)।

चाँपर—वि० [सं० चपल] दे० 'चपल'। उ०—तागो तेसी तोड़ बंधन कोई बाँधै नहीं। चापर चल्यो चहोड़ सरहट हक में मीरिया।—राम० धर्म०, पृ० ७१।

चाँपाकल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँपना + कल] वह कल या मशीन जिससे हाथ से दबाकर पानी निकालते हैं।

चाँयँचाँयँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] व्यर्थ की बकवाद। बकबक।

क्रि० प्र०—करना। मचाना।

चाँवँचाँवँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'चाँयँ चाँयँ'।

चाँवर¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चामर] दे० 'चँवर'। उ०—चित चाँवर हेत हरि ढारै दीपक ज्ञान हरि जोति विचारै।—दादू०, पृ० ६६८।

चाँवर²†—संज्ञा पुं० [हिं० चावल] [स्त्री० चाँवरी] दे० 'चावल'। उ०—(क) सो एक दिन वह बाई अपने घर में बैठी चाँवर बीनत हती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१७। (ख) तिल चाँवरी बतासे मेवा दियो कुँवरि की गोद।—सूर० १०। ७०४।

चा—संज्ञा स्त्री० [चीनी० चा] दे० 'चाय'।

चाइ(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रा० चय,] शरीर। देह। उ०—सा पंजर दिय राज बर। सस्त्र लगै नहिं चाइ।—पृ० रा० २५। ५२५।

चाइ²—संज्ञा पुं० [हिं० चाय]। उमंग। उ०—किय हाइलु चित-

चाइ लगि बजि पाइल तुव पाइ। पुनि सुनि सुनि मुँह मधुर धुनि क्यों न लालु ललचाइ।—बिहारी र०, दो० ४१२।

चाउ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० चाव] दे० 'चाव'।

चाउर†—संज्ञा पुं० [हिं० चावल] दे० 'चावल'।

चाऊ¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चाव] दे० 'चाव'।

चाऊ²—संज्ञा पुं० [देश०] ऊँट या बकरे का बाल।—(पहाड़ी)।

चाक—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्रा० चक्क] १. पहिए की तरह का वह गोल (मंडलाकार) पत्थर जो एक कील पर घूमता है और जिसपर मिट्टी का लोंदा रखकर कुम्हार बरतन बनाते हैं। कुलालचक्र।

विशेष—इसके किनारे पर एक जगह ढबूए के बराबर एक छोटा सा गड्ढा होता है जिसे कुम्हार 'वित्ती' कहते हैं। इसी वित्ती में डंडा अटकाकर चाक घुमाते हैं।

२. गाड़ी या रथ का पहिया। उ०—विविध कला के लगे पताके छूवैं जे रविरथ चाके।—रघुराज (शब्द०)। ३. चरखी जिसपर कुएँ से पानी खींचने की रस्सी रहती है। गराड़ी। घिरनी। ४. मिट्टी की वह गोल थरिया जिसमें मिस्त्री जमाते हैं। ५. थापा जिससे खलियान की राशि पर छापा लगाते हैं। वि० दे० 'चाकना'। ६. सान जिसपर छुरी, कटार आदि की धार तेज की जाती है। ७. ढेंकली के पिछले छोर पर बोझ के लिये रखी हुई मिट्टी की पिंडी। ८. मिट्टी का वह बरतन जिसमें ऊख का रस कड़ाह में पकने के लिये डाला जाता है। ९. मंडलाकार चिह्न की रेखा। गोंड़ला।

चाक¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. दरार। चीर।

मुहा०—चाक करना या देना=चीरना। फाड़ना। चाक होना=चीरा जाना। फाड़ा जाना।

२. आस्तीन का खुला हुआ मोहरा।

यौ०—चाके गरेबाँ=गरेबान का खुला हुआ भाग।

चाक²—वि० [तु० चाक] १. दृढ़। मजबूत। पुष्ट। २. हृष्ट पुष्ट। तंदुरुस्त।

यौ०—चाक चौबंद=(१) हृष्ट पुष्ट। तगड़ा। (२) चुस्त। चालाक। फुरतीला। तत्पर।

चाक³—संज्ञा पुं० [अं०] खरिया मिट्टी। दुद्धी।

यौ०—चाक प्रिंटिंग=एक प्रकार की सफेद रंग की छपाई जो प्रायः पुस्तकों के टायटिल पेज (आवरणपत्र) आदि पर होती है। इसकी स्याही खरिया के योग से बनती है।

चाकचक—वि० [तु० चाक+अनु० चक] चारों ओर से सुरक्षित। दृढ़। मजबूत। उ०—चाकचक चमूके अचाकचक चहूँ ओर चाक सी फिरत धाक चंपति के लाल की।—भूषण (शब्द०)।

चाकचक्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमक दमक। चमचमाहट। उज्वलता। २. शोभा। सुंदरता।

चाकचिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चाकचक्य' [को०]।

चाकचिक्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनतिक्ता या श्वेतबुह्ना नाम का एक विशेष पौधा [को०]।

चाकट†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कड़ा जो हाथ में पहना जाता है।

चाकदिल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बुलबुल।

चाकना—क्रि० स० [हिं० चाक] १. सीमा बाँधने के लिये किसी वस्तु को रेखा या चिह्न खींचकर चारों ओर से घेरना। हद खींचना। उ०—सकल भुवन शोभा जनु चाकी।—तुलसी (शब्द०)। २. खलियान में अनाज की राशि पर मिट्टी या राख से छापा लगाना जिसमें यदि अनाज निकाला जाय, तो मालूम हो जाय। उ०—तुलसी तिलोक की समृद्धि सौंज संपदा सकेलि चाकि राखी राशि जाँगर जहान भो।—तुलसी (शब्द०)। ३. पहचान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न डालना।

चाकर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० चाकरानी] दास। भृत्य। सेवक। नौकर।

चाकरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाकर+नी (प्रत्य०)] दे० 'चाकरानी'।

चाकरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाकर+आनी (प्रत्य०)] नौकरानी। दासी। लौंडी।

चाकरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सेवा। नौकरी। टहल। खिदमत।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—चाकरी बजाना=सेवा करना। खिदमत करना।

चाकला†—वि० [हिं० चकला] दे० 'चकला'।

चाकलेट—संज्ञा पुं० [अं०] १. ककाओ के बीज को पीसकर तैयार किया गया पदार्थ। २. इस पदार्थ के योग से बनी मिठाई या मधुर पेय पदार्थ। एक विशेष विदेशी मिठाई। ३. सुंदर लड़का जिसके साथ प्रकृतिविरुद्ध संभोग किया जाय। लौंडा।

चाकसू—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुष्या] १. वनकुलथी का पौधा। २. वनकुलथी का बीज।

विशेष—ये बीज बहुत छोटे और काले काले होते हैं। औषध के रूप में ये पीसकर आँख में डाले जाते हैं।

३. निर्मली का वृक्ष या बीज।

चाका—संज्ञा पुं० [हिं० चाक] १. दे० 'चाक'। २. पहिया।

चाकि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चाक] दे० 'चाक'। उ०—कबीर हरि रस यौं पिया बाकी रही न थाकि। पाका कलस कुँभार का बहुरि न चढ़ई चाकि।—कबीर ग्रं०, पृ० १६।

चाकी¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाक] आटा पीसने का यंत्र। चक्की।

चाकी²—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] १. बिजली। वज्र।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

२. पटे की एक चोट जो सिर पर की जाती है।

चाकू—संज्ञा पुं० [तु० चाकू] कलम, फल तथा छोटी मोटी चीजों को काटने, छीलने आदि का औजार। छुरी।

चाक्र—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चाक्री] १. चक्र संबंधी। २. चक्र की आकृतिवाला। ३. जिसमें पहिए लगे हों (गाड़ी)। ४. चक्र द्वारा किया जानेवाला (युद्ध) [को०]।

चाक्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] चक्र नामक ऋषि के वंशधर जिनका उल्लेख छांदोग्य उपनिषद् में है।

चाक्रिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूसरों की स्तुति गानेवाला। चारण। भाट।

विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में चाक्रिक के अन्नभोजन का निषेध है।

२. तेली। ३. गाड़ीवान। ४. कुम्हार। ५. अनुचर। सहचर।

चाक्रिक[2]—वि० [वि० स्त्री० चाक्रिकी] १. चक्राकार। २. चक्र संबंधी। ३. किसी चक्र या मंडली से संबंध रखनेवाला।

चाक्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम।

चाक्रिण—संज्ञा पुं० [सं०] तेली या कुम्हार का लड़का [को०]।

चाक्रेय—वि० [सं०] चक्र संबंधी [को०]।

चाक्षुष[1]—वि० [सं०] १. चक्षु संबंधी। २. आँख से देखने का। जिसका बोध नेत्र से हो। चक्षुर्ग्राह्य।

चाक्षुष[2]—संज्ञा पुं० १. न्याय में प्रत्यक्ष प्रमाण का एक भेद। ऐसा प्रत्यक्ष जिसका बोध नेत्रों द्वारा हो। २. छठे मनु का नाम।

विशेष—भागवत के मत से ये विश्वकर्मा के पुत्र थे। इनकी माता का नाम आकृति और स्त्री का नाम नड्वला था। पुरु कुत्स्न, अमृत, द्युमान्, सत्यवान्, धृत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिवि और उल्लुक इनके पुत्र थे। जिस मन्वंतर के ये स्वामी थे, उसके इंद्र का नाम मंत्रद्रुम था। मत्स्यपुराण में पुत्रों के नामों में कुछ भेद है। मार्कंडेय पुराण में चाक्षुष मनु की बड़ी लंबी चौड़ी कथा आई है। उसमें लिखा है कि अनमित्र नामक राजा को उनकी रानी भद्रा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन रानी उस पुत्र को लेकर बहुत प्यार कर रही थी। इतने में पुत्र एकबारगी हँस पड़ा। जब रानी ने कारण पूछा, तब पुत्र ने कहा— मुझे खाने के लिये एक बिल्ली ताक में बैठी है। मैं तुम्हारी गोद में ८-९ दिन से अधिक नहीं रहने पाऊँगा, इसी से तुम्हारा मिथ्या प्रेम देखकर मुझे हँसी आई। रानी यह सुनकर बहुत दुखी हुई। उसी दिन विक्रांत नामक राजा की रानी को भी एक पुत्र हुआ था। भद्रा कौशल से अपने पुत्र को विक्रांत की रानी की चारपाई पर रख आई और उसका पुत्र लाकर आप पालने लगी। विक्रांत राजा ने उस पुत्र का नाम आनंद रखा। जब आनंद का उपनयन होने लगा, तब आचार्य ने उसे उपदेश दिया 'पहले अपनी माता की पूजा करो'। आनंद ने कहा— मेरी माता तो यहाँ है नहीं; अतः जिसने मेरा पालन किया है, उसी की पूजा करता हूँ"। पूछने पर आनंद ने सब व्यवस्था कह सुनाई। पीछे राजा और रानी को ढारस बँधाकर वे स्वयं तपस्या करने लगे। आनंद की तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसे मनु बना दिया और उसका नाम चाक्षुष रखा।

३. स्वायंभुव मनु के पुत्र का नाम। ४. चौदहवें मन्वंतर के एक देव गण का नाम।

चाक्षुषयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर दृश्यों को देखकर तृप्त होने की क्रिया का भाव। नाटक आदि देखना [को०]।

चाख संज्ञा पुं० [सं० चाष] दे० 'चाष'।

चाखनहार—वि० [हिं० चाखना+हार (प्रत्य०)] १. चखनेवाला। खानेवाला। २. रस लेनेवाला। उ०—दारिंव दख लेहि रस, विरसहि आँव सहार। हरिअर तन सुवटा कर जो अस चाखनहार।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४९।

चाखना†—क्रि० स० [हिं० चखना] दे० 'चखना'।

चाखुरा[1] संज्ञा स्त्री० [देश०] घास जो खेतों की निराई करके निकाली गई हो।

चाखुरा†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेखुर] गिलहरी।

चाचपुट—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक। इसमें एक गुरु, एक लघु और एक लुप्त स्वर होता है।

चाचर (पु)†—संज्ञा पुं० [देशी चड (शिखा), तुलनीय हिं० टाँटर] मस्तक। उ०—अवतार छात नमो अवधेसर सफतोवाला प्रातसमै चरणाँ नहीं नमायो चाचर नर वे अवराँ चरण नमैं। — रघु० रू०, पृ० २५१।

चाचर, चाचरि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] १. होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत। चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, लेद आदि माने जाते हैं। उ०—तुलसिदास चाचरि मिस कहे राम गुन ग्राम।— तुलसी (शब्द०)। २. होली में होनेवाले खेल तमाशे। होली का स्वाँग और हुल्लड़। होली की धमार। हर्षक्रीड़ा। उ०—(क) श्रुति, पुराण बुध सम्मत चाचरि चरित मुरारि।—तुलसी। (ख) तैंसी ये वसंत पाँचैं चाय सों चाचरि मानै, रंग राचैं कीच माचै केसर के नीर की।— देव (शब्द०)। ३. उपद्रव। दंगा। हलचल। हल्ला गुल्ला। ४. युद्धक्षेत्र।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

चाचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] योग की एक मुद्रा। उ०—महदाकाश चाचरी मुद्रा शक्ती जाना।—कबीर (शब्द०)।

चाचा—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० चाची] काका। पितृव्य। बाप का भाई। वि० दे० 'चचा'।

चाची—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाचा] चाचा की स्त्री। काकी।

चाट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाटना] १. चटपटी चीजों के खाने या चाटने की प्रबल इच्छा। स्वाद लेने की इच्छा। मजे की चाह। २. एक बार किसी वस्तु का आनंद लेकर फिर उसी का आनंद लेने की चाह। चसका। शौक। लालसा।

क्रि० प्र०—लगना।

३. प्रबल इच्छा। कड़ी चाह। लोलुपता। जैसे,—तुम्हें तो बस रुपए की चाट लगी है।

क्रि० प्र०—लगना।—होना।

४. लत। आदत। बान। टेव। धत। ५. मिर्च, खटाई, नमक आदि डालकर बनाई हुई चरपरे स्वाद की वस्तु। चरपरी और नमकीन खाने की चीजें। गजक। जैसे, सेव, दही बड़ा, दालमोट इत्यादि। ऐसी चीजें शराब पीने के पीछे ऊपर से भी खाई जाती हैं। जैसे,—चाट की दुकान।

चाट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्वासघाती चोर। वह जो किसी का विश्वासपात्र बनकर उसका धन हरण करे। ठग।

विशेष—स्मृतियों में ऐसे व्यक्ति का दंडविधान है।

२. उचक्का। चाँई। उ०—चाट, उचाट सी चेटक सी चुटकी भ्रकुटीन जम्हाति अमेठी।—देव (शब्द०)।

चाटक(पु)†—वि० [हिं० चटक] दे० 'चटक'। उ०—लोकचार चाटक दिन चारी।—चरनी०, पृ० ४४।

चाट की टँगड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुश्ती का एक पेंच जो उस समय काम में लाया जाता है जब प्रतिपक्षी (जोड़) पहलवान के पेट के नीचे घुस आता है और अपना बायाँ हाथ उसकी कमर पर लेता है।

विशेष—इसमें पहलवान अपने बाएँ हाथ से प्रतिपक्षी का बायाँ हाथ (जो पहलवान की कमर पर होता है) दबाते हुए उसकी दाहिनी कलाई को पकड़ता है और अपना दाहिना हाथ और पैर बढ़ाकर बाईं जाँघ और पिंडली पर धक्का मारकर उसे गिराता है।

चाटना—क्रि० स० [अनु० चट चट (=जीभ चलने का शब्द)] १. खाने या स्वाद लेने के लिये किसी वस्तु को जीभ से उठाना। किसी पतली या गाढ़ी चीज को जीभ से पोंछकर मुँह में लेना। जीभ लगाकर खाना। जैसे,—शहद चाटना, अवलेह चाटना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।—डालना।

२. पोंछकर खा लेना। चट कर जाना। जैसे,—इतना हलुआ था, सब चाट गए।

मुहा०—चाट पोंछकर खाना=सब खा जाना। कुछ भी न छोड़ना।

३. (प्यार आदि से) किसी वस्तु पर जीभ फेरना। जैसे—गाय अपने बछड़े को चाट रही है।

यौ०—चूमना चाटना=प्यार करना।

४. कीड़ों का किसी वस्तु को खा जाना। जैसे, जितना कागज था, सब दीमक चाट गए। ५. धन संपत्ति बेच डालना। ६. खुशामद करना।

चाटपुट संज्ञा पुं० [सं०] तबले का एक ताल। दे० 'चाचपुट'।

चाटनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाटना] चाटने का कार्य। उ०—चुपनि, चुपावनि, चाटनि चूमनि। नहि कहि परति प्रेम की घूरनि।—नंद० ग्रं०, पृ० २६६।

चाटा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० चाटी] वह बरतन जिसमें कोल्हू का पेरा हुआ रस इकट्ठा होता है। नांद।

चाटी—संज्ञा स्त्री० [देश] मिट्टी की मटकी जिसका दल खूब मोटा हो।

चाटु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मीठी बात। प्रिय बात। उ०—घनआनंद जीवन प्रान सुजान तिहारियै बातनि जीजिऐ जू। नित नीके रहौ तुम चाटु कहाय असीस हमारियो लीजियै जू।—रसखान०, पृ० ५६। २. झूठी प्रशंसा या विनय से भरी हुई ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न या अनुकूल करने के लिये कही जाय। खुशामद। चापलूसी।

चाटुक—संज्ञा पुं० [सं०] मीठी बात [को०]।

चाटुकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. खुशामद करनेवाला। झूठी प्रशंसा करनेवाला। चापलूस। खुशामदी। २. बृहत्संहिता के अनुसार सोने के तार में पिरोए मोतियों की वह माला जिसके बीच में एक तरलक मणि हो।

चाटुकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चाटुकार+हिं० ई (प्रत्य०)] झूठी प्रशंसा या खुशामद करने का काम। चापलूसी।

चाटुता—संज्ञा स्त्री० [सं० चाटु+ता (प्रत्य०)] दे० 'चाटुकारी'।

चाटुपटु—संज्ञा पुं० [सं०] भंड। भाँड़।

चाटुवटु, चाटुवटु—संज्ञा पुं० [सं०] विदूषक। जोकर। भाँड़ [को०]।

चाटुलोल—वि० [सं०] १ चाटुकार। कुशल चाटुकार। २. खूबसूरती से हिलनेवाला [को०]।

चाटूक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाटुकारिता। चापलूसी। उ०—क्या क्रूरता ही पुरुषार्थ का परिचय है? ऐसी चाटूक्तियाँ भावी शासक को अच्छा नहीं बनातीं।—अजात०, पृ० २४।

चाटूल्लोल—वि० [सं०] दे० 'चाटलोल' [को०]।

चाठ—संज्ञा पुं० [देश] खाद्य वस्तु। वि० दे० 'चाट'। उ०—परनिंदा आठूँ पहर चाटै विष री चाट। क्यों नँह तुम प्राणी करै पंच रतन री पाठ।—बाँकी ग्रं०, भाग ३, पृ० ५५।

चाठा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चाटा'। उ०—ल्योकी लेज पवन का ढींकू मन मटका ज बनाया। सत की पाटि सुरति का चाठा सहजि नीर मुकलाया।—कबीर ग्रं०, पृ० १६१।

चाड़[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँड़ सं० चण्ड (=प्रबल)] गहरी चाह। चाव। प्रेम। वि० दे० 'चाँड़'। उ०—(क) हित पुनीत सब स्वारथहि अरि अशुद्ध बिन चाड़। निज मुख मानिकसम दमन भूमि परे ते हाड़।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कुच गिरि चड़ि अति थकित ह्वै चली दीठि मुख चाड़। फिरि न टरी परियै रही परी चिबुक के गाड़।—बिहारी (शब्द०)। (ग) काहे को काहु को दीजै उराहनो आवै इहाँ हम आपनी चाड़ैं।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

चाड़[2](पु)—वि० [सं० चाट, प्रा० चाडु] चुगलखोर। उ०—साह दुकानाँ चोरटा, साहब कानाँ चाड़। लागे चित मत हर लिए, वे शोभा का फाड़।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५०।

चाड़िला—वि० [हिं० चाँड़िला] दे० 'चाँड़िला'।

चाड़ी†—संज्ञा स्त्री० [सं० चाटु] पीठ पीछे की निंदा। चुगली।

क्रि० प्र०—खाना।

चाडू[3]†—वि० [सं० चण्ड, हिं० चाँड़ (=तेज)] तेज प्रखर। अधिक। उ०—मान न करु थोरा करु लाडू। मान करत रिस मानै चाडू।—जायसी ग्रं०, (गुप्त) पृ० ३२६।

चाढ़(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाह] १. इच्छा। २. प्रेम। ममता।

चाढ़[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] चढ़ाई।

चाढ़ा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० चाढ़] [स्त्री० चाढ़ी] १. प्रेमपात्र। प्यारा। प्रिय। उ०—धन्य धन्य भक्तन के चाढ़े।—सूर

(शब्द०)। २. चाहनेवाला। प्रेमी। आशिक। आसक्त। उ०—(क) तुम हम पर रिस करति हौ हम हैं तुव चाढ़े। निठुर भई हौं लाड़िली कब के हम ठाढ़े।—सूर (शब्द०) (ख) दिन थोरी भोरी अति कोरी देखत ही जु श्याम भए चाढ़े।—सूर (शब्द०)।

चाणक—संज्ञा पुं० [सं० चाणक्य] १. ईर्ष्या। २. धूर्तता। चाल। दगाबाजी। होशियारी। उ०—आगे चाणन के तड़ाके लगाए हैं।—सुन्दर ग्रं०, पृ० ५६।

चाणक्य—संज्ञा पुं० [सं०] चणक ऋषि के वंश में उत्पन्न एक मुनि जिनके रचे हुए अनेक नीति ग्रंथ प्रचलित हैं। ये पाटलिपुत्र के सम्राट् चंद्रगुप्त के मंत्री थे और कौटिल्य नाम से भी प्रसिद्ध हैं। मुद्राराक्षस के अनुसार इनका असली नाम विष्णुगुप्त था।

विशेष—विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों तथा कथासरित्सागर आदि संस्कृत ग्रंथों में तो चाणक्य का नाम आया ही है, बौद्ध ग्रंथों में भी इनकी कथा बराबर मिलती है। बुद्धघोष की बनाई हुई विनयपिटक की टीका तथा महानाम स्थविर-रचित महावंश की टीका में चाणक्य का वृत्तांत दिया हुआ है। चाणक्य तक्षशिला (एक नगर जो रावलपिंडी के पास था) के निवासी थे। इनके जीवन की घटनाओं का विशेष संबंध मौर्य चंद्रगुप्त की राज्यप्राप्ति से है। ये उस समय के एक प्रसिद्ध विद्वान् थे, इसमें कोई संदेह नहीं। चंद्रगुप्त के साथ इनकी मैत्री की कथा इस प्रकार है। पाटलिपुत्र के राजा नंद या महानंद के यहाँ कोई यज्ञ था। उसमें ये भी गए और भोजन के समय एक प्रधान आसन पर जा बैठे। महाराज नंद ने इनका काला रंग देख इन्हें आसन पर से उठवा दिया। इसपर क्रुद्ध होकर इन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि जबतक मैं नंदों का नाश न कर लूँगा तबतक अपनी शिखा न बाँधूँगा। उन्हीं दिनों राजकुमार चंद्रगुप्त राज्य से निकाले गए थे। चंद्रगुप्त ने चाणक्य से मेल किया और दोनों आदमियों ने मिलकर म्लेच्छ राजा पर्वतक की सेना लेकर पटने पर चढ़ाई की और नंदों को युद्ध में परास्त करके मार डाला। नंदों के नाश के संबंध में कई प्रकार की कथाएँ हैं। कहीं लिखा है कि चाणक्य ने शकटार के यहाँ निर्माल्य भेजा जिसे छूते ही महानंद और उसके पुत्र मर गए। कहीं विषकन्या भेजने की कथा लिखी है। मुद्राराक्षस नाटक के देखने से जाना जाता है कि नंदों का नाश करने पर भी महानंद के मंत्री राक्षस के कौशल और नीति के कारण चंद्रगुप्त को मगध का सिंहासन प्राप्त करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ पड़ीं। अंत में चाणक्य ने अपने नीतिबल से राक्षस को प्रसन्न किया और चंद्रगुप्त को मंत्री बनाया। बौद्ध ग्रंथों में भी इसी प्रकार की कथा है, केवल महानंद के स्थान पर धननंद है (दे० 'चंद्रगुप्त')। चाणक्य के शिष्य कामंदक ने अपने 'नीतिसार' नामक ग्रंथ में लिखा है कि विष्णुगुप्त चाणक्य ने अपने बुद्धिबल से अर्थशास्त्र रूपी महोदधि को मथकर नीतिशास्त्र रूपी अमृत निकाला। चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' संस्कृत में राजनीति विषय पर एक विलक्षण ग्रंथ है। इनके नीति के श्लोक तो घर घर प्रचलित हैं। पीछे से लोगों ने इनके नीति ग्रंथों से घटा बढ़ाकर वृद्धचाणक्य, लघुचाणक्य, बोधिचाणक्य आदि कई नीतिग्रंथ संकलित कर लिए। चाणक्य सब विषयों के पंडित थे। 'विष्णुगुप्त सिद्धांत' नामक इनका एक ज्योतिष का ग्रंथ भी मिलता है। कहते हैं, आयुर्वेद पर भी इनका लिखा वैद्यजीवन नाम का एक ग्रंथ है। न्यायभाष्यकार वात्स्यायन और चाणक्य को कोई कोई एक ही मानते हैं, पर यह भ्रम है जिसका मूल हेमचंद का यह श्लोक है—वात्स्यायनो मल्लनागः, कौटिल्यश्चणकात्मजः। द्रामिलः पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः।

चाणाक्ष—वि० [सं० चण्ड, हिं० चाँड़=तेज+अक्ष] तेज निगाहवाला।

चाणूर—संज्ञा पुं० [सं०] कंस का एक मल्ल जिसे धनुपयज्ञ के समय श्रीकृष्ण ने मारा था।

चाणूरमर्दन, चाणूरसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०]।

चातक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चातकी] एक पक्षी जो वर्षाकाल में बहुत बोलता है। पपीहा। वि० दे० 'पपीहा'।

विशेष—इस पक्षी के विषय में प्रसिद्ध है कि यह नदी, तड़ाग आदि का संचित जल नहीं पीता, केवल बरसता हुआ पानी पीता है। कुछ लोग यहाँ तक कहते हैं कि यह केवल स्वाती नक्षत्र की बूँदों ही से अपनी प्यास बुझाता है। इसी से यह मेघ की ओर देखता रहता है और उससे जल की याचना करता है। इस प्रवाद को कवि लोग अपनी कविता में बहुत लाए हैं। तुलसीदास जी ने तो अपनी सतसई में इसी चातक को लेकर न जाने कितनी सुंदर सुंदर उक्तियाँ कही हैं।

पर्या०—स्तोकक। सारंग। मेघजीवन। तोकक।

यौ०—चातकानंदवर्धन=(१) मेघ। बादल। (२) वर्षाकाल।

चातकनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चातक+हिं० नी (प्रत्य०)] चातकी। पपीहरी। उ०—मैं न चाहती तव वह हार, करे, जननि! मेरा शृंगार। पर मैं ही चातकनी बनकर तुझे पुकारूँ बारंबार। पल्लव, पृ० १०१।

चातकानंदन—संज्ञा पुं० [सं० चातकानन्दन] १. वर्षाकाल। २. मेघ।

चातकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा पपीहा। माता चातक।

चातर[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चादर] १. मछली पकड़ने का बड़ा जाल। २. षड्यंत्र। साजिश।

चातर[2]—वि० [सं० चातुर या चतुर] दे० 'चातुर' या 'चतुर'।

चातुरंत—वि० [सं० चातुरन्त] चारों तरफ से चार समुद्रों से निर्धारित होनेवाली (भूमि की सीमा)। उ०—मौर्य चातुरंत राज्य की नीति और संगठन। भा० इ० रू०, पृ० ६३७।

चातुर[1]—वि० [सं०] १. नेत्रगोचर। २. चतुर। ३. खुशामदी। चापलूस।

चातुर[2]—संज्ञा पुं० १. गोल तकिया या मसनद। २. चार पहियों की गाड़ी।

चातुरई—संज्ञा स्त्री० [सं० चातुर+हिं० ई (प्रत्य०), अथवा सं० चातुरी, हिं० चतुराई] दे० 'चतुराई'। उ०—ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कछु त्यों ही नितंब त्यों चातुरई सी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८३।

चातुरक¹—वि० [सं०] 'चातुर' [को०]।

चातुरक²—संज्ञा पुं० दे० 'चातुर' [को०]।

चातुरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार पासों का खेल। १. छोटा गोल तकिया [को०]।

चातुरता†—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुरता] दे० 'चतुरता'।

चातुरमास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चातुर्मास्य] दे० 'बरसात'। 'चातुर्मास्य'। उ०—नटनागर वृच्छलता लिपटी, लखि कै सुधि का नहिं लावहिंगे? सखिचातुरमास मैं आतुर ह्वै करि, चातुर का नहिं आवहिंगे।—नट०, पृ० ७७।

चातुराश्रमिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चातुराश्रमिकी] चार आश्रमों से किसी एक में रहनेवाला [को०]।

चातुराश्रमी—वि० [चातुराश्रमिन्] [वि० स्त्री० चातुराश्रमिणी] दे० 'चातुराश्रमिक' [को०]।

चातुराश्रम्य—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम।

चातुरिक—संज्ञा पुं० [सं०] सारथी। रथवान।

चातुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चतुरता। चतुराई। व्यवहारदक्षता। २. चालाकी। धूर्तता।

चातुरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कलहंस। हंस। २ कारंड [को०]।

चातुर्जात, चातुर्जातक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भावप्रकाश के अनुसार चार सुगंध द्रव्य—नागकेसर, इलायची, तेजपात और दालचीनी। २. गुजरात के प्राचीन राजाओं के प्रधान कर्मचारी की उपाधि। प्रशासक।

चातुर्थक, चातुर्थिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्त्री० चातुर्थिकी] चौथे दिन आनेवाला ज्वर। चौथिया बुखार।

चातुर्थक, चातुर्थिक²—वि० चौथे दिन होनेवाला।

चातुर्दश—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २. वह जो चतुर्दशी को उत्पन्न हो।

चातुर्दशिक—वि० [सं०] चतुर्दशी की तिथि से विद्या आरंभ करनेवाला [को०]।

चातुर्भद्र, चातुर्भद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार पदार्थ—अर्थ, धर्म काम और मोक्ष। २. वैद्यक के अनुसार ये चार ओषधियाँ—नागरमोथा, पीपल (पिप्पली), अतीस और काकड़ासिंगी। कोई कोई चक्रदत्त के अनुसार इन चार चीजों को लेते हैं—जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी और पीपल।

चातुर्भद्रावलेह—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक प्रसिद्ध अवलेह जो जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी और पीपल को एक साथ पीसकर शहद मिलाने से बनता है। चौहद्दी।

विशेष—यह अवलेह श्वास, कास, अतीसार और ज्वर से उपकारी होता है और बच्चों को बहुत दिया जाता है।

चातुर्महाराजिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु भगवान्। २. बुद्ध का एक नाम।

चातुर्मास—वि० [सं०] चार महीनों में होनेवाला। चार महीने का।

चातुर्मासिक—वि० [सं०] चार महीने में होनेवाला। (यज्ञ, कर्म आदि)।

चातुर्मासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर्णमासी।

चातुर्मास्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार महीने में होनेवाला एक वैदिक यज्ञ।

विशेष—कात्यायन श्रौतसूत्र अध्याय ८ में इस यज्ञ का पूरा विधान लिखा है। सूत्र के अनुसार फाल्गुनी पौर्णमासी से इस यज्ञ का आरंभ होना चाहिए, पर भाष्य और पद्धति में लिखा है कि इसका आरंभ फाल्गुन, चैत्र या वैशाख की पूर्णिमा से हो सकता है। इस यज्ञ के चार पर्व हैं—वैश्वदेव, वरुणघास, शाकमेध और सुनाशीरीय।

२. चार महीने का एक पौराणिक व्रत जो वर्षा काल में होता है।

विशेष—वराह के मत से अषाढ़ शुक्ल द्वादशी या पूर्णिमा से इसका उद्यापन करना चाहिए। मत्स्य पुराण में इस व्रत के अनेक विधान और फल लिखे हैं। जैसे,—गुड़त्याग करने से स्वर मधुर होता है, मद्य मांस त्याग करने से योगसिद्धि होती है, बटलोई में पका भोजन त्यागने से संतान की वृद्धि होती है, इत्यादि, इत्यादि। यह विष्णु भगवान् का व्रत है, अतः 'नमोनारायण' मंत्र के जप का भी विधान है। सनत्कुमार के मत से इसका आरंभ आषाढ़ शुक्ल एकादशी, पूर्णिमा या कर्क की संक्रांति से होना चाहिए। इन चार महीनों में काठक गृह्यसूत्र के मत से यात्रियों को एक ही स्थान पर जमकर रहना चाहिए। इस नियम का पालन बौद्ध भिक्षु (यति) करते हैं।

चातुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] चतुराई। निपुणता। दक्षता।

चातुर्वर्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। २ चारों वर्णों का अनुष्ठेय धर्म। जैसे,—ब्राह्मण का धर्म यजन, याजन, दान, अध्यापन, अध्ययन और प्रतिग्रह; क्षत्रिय का धर्म बाहुबल से प्रजापालन इत्यादि।

चातुर्विद्य¹—वि० [सं०] चारों का ज्ञाता [को०]।

चातुर्विद्य²—संज्ञा पुं० चारों वेद [को०]।

चातुर्विध्य—वि० [सं०] चार विधि या प्रकार का [को०]।

चातुर्होत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चातुर्होत्रिय] वह यज्ञ जो चार होताओं द्वारा संपन्न हो।

चातृंगि(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० चातक] दे० 'चातक'। उ०—उक्कंबी सिर हथ्थड़ा, चाहंती रस लुब्ध। ऊँची चढ़ि चातृंगि जिउं मागि निहालइ मुध्ध।—ढोला०, दू० १६।

चातृक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चातक] दे० 'चातक'। उ०—पिया पिया चातृक प्रिय कहहीं। बिरहिनि लाग मदन दुख जरहीं।—कबीर सा०, पृ० २४६।

चातृग(पु), चातृगा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चातक] दे० 'चातक'। उ०—(क) मन चित चातृग ज्यू रटै, पिव पिव लागी प्यास। दादू दरसन कारनै पुरवहु मेरी आस।—दादू०, पृ० ५५। (ख) इक अभिमानी चातृगा विचरत जग माहिं।—रै० बानी, पृ० ६।

चात्र—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमंथन यंत्र का एक अवयव।
विशेष - यह बारह अंगुल की खैर की लकड़ी होती है जिसके अगले छोर में लोहे की एक कील लगी होती है और पीछे की ओर छेद होता है।

चात्रक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चातक] दे० 'चातक'। उ० - मनो चात्रक मोर आनंद बने।—हम्मीर०, पृ० १४४।

चात्रिक(पु) संज्ञा पुं० [सं० चातक] दे० 'चातक'।

चात्रिग—संज्ञा पुं० [सं० चातक] दे० 'चातिक'। उ० देह गेह नहिं सुधि सरीरा। निसदिन चितवत चात्रिग मीरा।—दादू०, पृ० ४६६।

चात्वाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवनकुंड। २. उत्तर वेदी। ३. दर्भ। डाभ। कुश। ४. गड्ढा।

चादर—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. कपड़े का लंबा चौड़ा टुकड़ा जो ओढ़ने के काम में आता है। हलका ओढ़ना। चौड़ा दुपट्टा। पिछौरी।
यौ०—चादर छिपौवल=लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के के ऊपर चादर डाल देते हैं और दूसरी गोल के लड़कों से उसका नाम पूछते हैं। जो ठीक नाम बता देता है वह चादर से ढके लड़के को स्त्री बनाकर ले जाता है।
मुहा०—चादर उतरना=बेपर्द करना। इज्जत उतारना। अपमानित करना। मर्यादा बिगाड़ना।
विशेष—स्त्रियों के संबंध में इस मुहावरे को उसी अर्थ में बोलते हैं, जिस अर्थ में पुरुषों के लिये 'पगड़ी उतारना' बोलते हैं। चादर ओढ़ाना या डालना=किसी विधवा को रख लेना। चादर रहना या लाज की चादर रहना=इज्जत रहना। कुल की मर्यादा रहना। प्रतिष्ठा का बना रहना। उ०—लाल बिनु कैसे लाज चादर रहेगी आज कादर करत आप बादर नए नए।—श्रीपति (शब्द०)। चादर से बाहर पैर फैलाना=(१) अपनी हद से बाहर जाना। (२) अपने वित्त से अधिक खर्च आदि करना। चादर हिलाना=युद्ध में शत्रुओं से घिरे हुए सिपाही का युद्ध रोकने या आत्मसमर्पण करने के लिये कपड़ा हिलाना। युद्ध रोकने का झंडा दिखाना।
२. किसी धातु का बड़ा चौखूँटा पत्तर। चद्दर। ३. पानी की चौड़ी धार जो कुछ ऊपर से गिरती हो। ४. बढ़ी हुई नदी या और किसी वेग से बहते हुए प्रवाह में स्थान स्थान पर पानी का वह फैलाव जो बिलकुल बराबर होता है, अर्थात् जिसमें भँवर या हिलोरा नहीं होता। ५. फूलों की राशि जो किसी देवता या पूज्य स्थान पर चढ़ाई जाती है। जैसे, मजार पर चादर चढ़ाना। ६. खेमा। तंबू। शिविर। उ०—दक्खिन की ओर तेरे चादर की चाह सुनि, चाहि भाजी चाँदबीबी चौंकि भाजे चकवै।—गंग०, पृ० १०३।

चादरा—संज्ञा पुं० [हिं० चादर] मरदानी चादर। बड़ी चादर।

चादरी—संज्ञा पुं० [हिं० चादर] एक प्रकार का हथियार। उ०—तोप, बाण, चादरि हथनालि, जंबूर बंदूक। तमंचा कमान, सेल इन नें त्यागो।—ह० रासो, पृ० १५६।

चान(पु)—संज्ञा पुं० [चाँद] दे० 'चाँद'। उ०—आध बदन तन्हि देखल मोर। चान अँएठ करि चलल चकोर।—विद्यापति, पृ० ५६४।

चानक[1]—(पु)—क्रि० वि० [हिं० अचानक] अचानक। सहसा। अकस्मात्। उ०—हरिनी जनु चानक जाल परी जनु सोनचिरी अबहीं पकरी।—गुमान (शब्द०)।

चानक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गहरी चाह। प्रेम। चाव। उ०—मूरति अनुप एक आय कै अचानक मैं चानक लगाय अजों हिय को हरति है।—दीन० ग्रं०, पृ० १०।

चानण(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० चाँदना] दे० 'चाँदना'। उ०—कवन खंड बोले सो होय। नानक गुरुमुख चानण लोय।—प्राण०, पृ० ५।

चानणी—संज्ञा पुं० [हिं० चाँदनी] चाँदनी अर्थात् शुक्ल पक्ष। उ०—भड़भड़िया सादूल रा, वीस विखम्मी वार। चैत इग्यारस चाँनणी असुरा सुणी पुकार।—रा० रू०, पृ० २४१।

चानन—संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] दे० 'चंदन'। उ०—चानन भरम सेवाल हम सजनी पूछत सकल मन काम।—विद्यापति, पृ० ४६६।

चनायल—वि० [हिं० चान] चाँदना या प्रकाश। उ०—ओअंकार हुआ चनायल। तदहुँ तीन देव उपायल।—प्राण०, पृ० १।

चानस†—संज्ञा पुं० [अं० चांस] ताश का एक खेल। २. दे० 'चांस'।

चाप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष। कमान। २. गणित में आधा वृत्तक्षेत्र।
विशेष—सूर्यसिद्धांत में ग्रहादि के चाप निकालने की क्रिया दी हुई है।
३. वृत्त की परिधि का कोई भाग। ४. धनुराशि।

चाप[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना] १. दबाव।
क्रि० प्र०—पड़ना।
२. पैर की आहट। पैर जमीन पर पड़ने का शब्द। जैसे,—इतने में किसी के पैर की चाप सुनाई दी।

चापक—संज्ञा पुं० [सं० चाप+क] धनुष। उ०—लखिन बतिस बहुतरि कला बाल बेस पूरन सगुन। क्रीड़त गिलोल जब लाल कर (तब) मार जानि चापक सुमन।—पृ० रा० १।७२७।

चापजरबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाप+अ० जरीब] किसी जमीन की सीधी नाप। लंबाई की नाप।

चापट[1] संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपटना] दाने की वह भूसी जो आटा पीसने पर निकलती है। चोकर।

चापट[2]—वि० [हिं० चापड़] दे० 'चापड़'।

चापड़[1]—वि० [सं० चिपिट, हिं० चिपटा, चपटा] १. जो दबकर चिपटा हो गया हो। जो कुचले जाने के कारण जमीन के बराबर हो गया हो। २. बराबर। समतल। हमवार। ३. मटियामेट। चौपट। उजाड़। जैसे,—ऐसी बाढ़ आई कि कई गाँव चापड़ हो गए।

चापड़[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चापट] चोकर। भूसी।

चापदंड—संज्ञा पुं० [सं० चापदण्ड] वह डंडा जिससे कोई वस्तु आगे की ओर बेली जाय।

चापना—क्रि० स० [सं० चाप (=धनुष)] दबाना। मींड़ना। उ०—चापत चरण लखन उर लाए। समय सप्रेम परम सचुपाए।—तुलसी। (शब्द०)।

चापर—वि० [हिं० चापड़] दे० 'चापड़'।

चापल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंचलता। शोखी। २. अस्थिरता। ३. क्षोभ (को०)।

चापल(पु)²—वि० [हिं० चपल] चंचल।

चापलता—संज्ञा स्त्री० [हिं० चापल+ता (प्रत्य०)] चंचलता। ढिलाई। उ०—लघुमति चापलता कवि छमहू।—तुलसी (शब्द०)।

चापलूस—वि० [फ़ा० [लल्लो चप्पो करनेवाला। खुशामदी। चाटुकार।

चापलूसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह झूठी प्रशंसा जो केवल दूसरे को प्रसन्न और अनुकूल रखने के लिये की जाय।

चापल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चापल' (को०)।

चापी—संज्ञा पुं० [सं० चापिन्] १. वह जो धनुष धारण करे। धनुर्धर। २. शिव। ३. धनुराशि।

चापू—संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय के आसपास के प्रदेशों की एक प्रकार की छोटी बकरी जिसके बाल बहुत लंबे और मुलायम होते हैं।

विशेष—इसके बालों के कंबल आदि बनते हैं।

चाफंद—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+फंदा] मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल।

चाब¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चव्य] १. गजपिप्पली की जाति का एक पौधा जिसकी लकड़ी और जड़ औषध के काम में आती है।

विशेष—एशिया के दक्षिण और विशेषतः भारत में यह पौधा या तो नदियों के किनारे आपसे आप उगता है या लकड़ी और जड़ के लिये बोया जाता है। इसकी जड़ में बहुत दिनों तक पनपने की शक्ति रहती है और पौधे को काट लेने पर उसमें फिर नया पौधा निकलता है। इसमें काली मिर्च के समान छोटे फल लगते हैं जो पहले हरे रहते हैं और पकने पर लाल हो जाते हैं। यदि कच्चे फल तोड़कर सुखा लिए जायँ, तो उनका रंग काला हो जाता है। ये फल भी औषध के काम में आते हैं और 'चव' कहलाते हैं। कुछ लोग भूल से इसी के फल को 'गजपिप्पली' कहते हैं; पर 'गजपिप्पली' इससे भिन्न है। बंगाल में इसकी लकड़ी और जड़ से कपड़े आदि रँगने के लिये एक प्रकार का पीला रंग निकाला जाता है। डाक्टरों के मत से 'चव' के फल के गुण बहुत से अंशों में काली मिर्च के समान ही हैं। वैद्यक में चाब को गरम, चरपरी, हलकी, रोचक, जठराग्नि प्रदीपक और कृमि, श्वास, शूल और क्षय आदि को दूर करनेवाली तथा विशेषतः गुदा के रोगों को दूर करनेवाली माना है।

पर्या०—चविका। चव्य। चवी। रत्नावली। तेजोवती। कोला। नाकुली। कोलवल्ली। कुटिल। सप्तक। कुकर।

२. इस पौधे का फल। ३. चार की संख्या।—(डिं०)। ४. कपड़ा।—(डिं०)।

चाब²—संज्ञा पुं० [सं० चप (=एक प्रकार का बाँस)] एक प्रकार का बाँस।

चाब³—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाबना] १. वे चौखूँटे दाँत जिनसे भोजन कुचलकर खाया जाता है। २. डाढ़। दाढ़। चौभड़। ३. बच्चे के जन्मोत्सव की एक रीति जिसमें संबंध की स्त्रियाँ गाती बजाती और खिलौने कपड़े आदि लेकर आती हैं।

चाबक—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कोड़ा। दे० 'चाबुक'। उ०—चढ़ि घोड़ों लीयउ चाबकउ।—बी० रासो, पृ० ५८।

चाबन—संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] चबेना। दाना। उ०—मूँड पलोसि कमर बँधि पोथी। हमको चावन उनको रोटी।—कबीर ग्रं० पृ० २६६।

चाबना¹—क्रि० स० [सं० चर्वण, प्रा० चब्बण] १. दाँतों से कुचल कुचलकर खाना। चबाना। जैसे,—चने चबाना। उ०—चाबत पान चलीं झमकि पूतनिका मदमान।—सुकवि (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।—लेना।

२. खूब भोजन करना। खाना।

चाबना²—क्रि० स० [सं० चर्वण] रसास्वादन करना (ला०) (जैसे, रसचर्वणा)। उ०—चारयो वेद चावति, पढ़ति छओ दरसन, नव रस निरुपति, षट रस खाति है।—गंग०, पृ० ३।

चाबस†—अव्य० [हिं० शाबस] शाबास। वाह वाह।

चाबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाप (=दबाव) या पुर्त्त० चेव] १. कुंजी। ताली।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—चाबी देना=(१) कुंजी ऐंठकर ताला बंद करना। (२) कुंजी के द्वारा किसी कल की कमानी को ऐंठकर कसना जिसमें झटके के कारण उसके सब पुरजे फिर ज्यों के त्यों चलने लगें। जैसे,—घड़ी में चाबी देना। चाबी भरना=दे० 'चाबी देना'।

२. कोई ऐसा पच्चड़ जिसे दो जुड़ी हुई वस्तुओं की संधि में ठोंक देने से जोड़ दृढ़ हो जाय।

क्रि० प्र०—भरना।

मुहा०—चाबी भरना=वह युक्ति करना जिसके द्वारा किसी व्यक्ति से अपने इच्छानुसार काम कराया जा सके।

चाबुक¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. कोड़ा। हंटर। सोंटा।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—फटकारना।—मारना। लगाना।

यौ०—चाबुकसवार।

२. कोई ऐसी बात जिससे किसी कार्य के करने की उत्तेजना उत्पन्न हो। जैसे,—तुम्हारी व्यंग्यभरी बात ही उसके लिये चाबुक हो गई।

चाबुक²—वि० तेज। तीव्र। फुर्तीला।

चाबुक³—संज्ञा पुं० [तु० चाबुक] प्याला।

चाबुकजन—वि० [फ़ा० चाबुकज़न] कोड़ा मारनेवाला।

चाबुकजनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चाबुकज़नी] कोड़ा मारना।

चाबुकदस्त—वि० [फ़ा०] कुशल। दक्ष।

चाबुकदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कुशलता। दक्षता [को०]।

चाबुकसवार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा चाबुकसवारी] घोड़े को विविध प्रकार की चालें सिखानेवाला। घोड़े की चाल दुरुस्त करनेवाला। घोड़े को निकालनेवाला।

चाबुकसवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चाबुक सवार का काम या पेशा।

चाभ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाब] दे० 'चाब'।

चाभना—क्रि० स० [हिं० चाबना] खाना। भक्षण करना। उ०—

चुपचाप चटपट चाभ चूभकर चले भी आते।—प्रेमघन०, भा २, पृ० ८५।

मुहा०—माल चाभना=(१) अनेक प्रकार के स्वादिष्ट और पौष्टिक पदार्थ खाना। बढ़िया बढ़िया चीजें खाना। (२) मौज करना। सुख से रहना।

चाभा—संज्ञा पुं० [हिं० चबाना] बैलों का एक रोग जिसमें उनकी जीभ पर काँटे से उभड़ आते हैं और उनसे कुछ खाते नहीं बनता।

चाभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाबी] दे० 'चाबी'।

चाम—संज्ञा पुं० [सं० चर्म] चमड़ा। खाल। चमड़ी।

यौ०—चाम के दाम=चमड़े के सिक्के।

वि०—ऐसा प्रसिद्ध है कि निजाम नामक एक भिश्ती ने हुमायूँ को डूबने से बचाया था और इसके बदले में आधे दिन की बादशाही पाई थी। उसी आधे दिन की बादशाहत में उसने चमड़े के सिक्के चलाए थे।

मुहा०—चाम के दाम चलाना=अपनी जबरदस्ती के भरोसे कोई काम करना। अन्याय करना। अंधेर करना। उ०—(क) ऊधो अब कछु कहत न आवै। सिर पै सौति हमारे कुब्जा चाम के दाम चलावै।—सूर (शब्द०)। (ख) बतियान सुनाय के सौतिन की छतियान में साल सलाय ले री। सपने हू न कीजय मान अए अपने जोबना बलाय ले री। परमेस जू रूप तरंगन सों अँग अँगन रूप रुलाय ले री। दिन चारिक तू पिय प्यारे के प्यार सों चाम के दाम चलाय ले री।—परमेश (शब्द०)।

चास²—संज्ञा स्त्री० [देश०] हल की नोक से चिरी हुई भूमि की रेखा। उ०—एक दो चास रावल ने खींचकर निकाली, वहाँ मोती पैदा हो गए। बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ८१।

चामचोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाम+चोरी] गुप्त रूप से पर-स्त्री गमन।

चामड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमड़ी] दे० 'चमड़ी'।

चामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौर। चँवर। चौंरी। २. मोरछल। ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण, जगण और रगण होते हैं। जैसे,—रोज रोज राधिका सखीन संग आइ कै। खेल रास कान्ह संग चित्त हर्ष लाइकै। बाँसुरी समान बोल सप्त ग्वाल गाइ कै। कृष्ण ही रिझावही सु चामरै डुलाई कै।

चामरग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेवक जो चँवर डुलाने का कार्य करता है [को०]।

चामरग्राहिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चामरग्राह' [को०]।

चामरग्राही—संज्ञा पुं० [सं० चामरग्राहिन्] दे० 'चामरग्राह' [को०]।

चामरपुष्प, चामरपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँस। २. सुपारी का पेड़। ३. केतकी। ४. आम।

चामरपाल†—संज्ञा पुं० [हिं० चामर+पाल] तुर्क। उ०—माँगा चले रिण भाँजिया, चौड़े चामरपाल।—रा० रू०, पृ० २७४।

चामरपुष्पक—देश० पुं० [सं०] दे० 'चामरपुष्प' [को०]।

चामरव्यंजन—संज्ञा पुं० [चामर+व्यंजन] चँवर [को०]।

चामरिक—संज्ञा पुं० [सं०] चँवर डुलानेवाला।

चामरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरा गाय।

चामरी²—संज्ञा पुं० [चामरिन्] घोड़ा [को०]।

चामिल†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चवल] दे० 'चंबल'। उ०—चामिल तेरे वालों आये।—लाल (शब्द०)।

चामीकर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। स्वर्ण। उ०—चारु चामीकर चंद चपला चमक चोखी, केसरि चटक कौन लेखे लेखियति है।—घनानंद, पृ० ५८। २. स्वर्ण संबंधी।

चामीकर²—वि० १. स्वर्णमय। सुनहरा। २. स्वर्ण संबंधी।

चामीकराचल, चामीकराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत [को०]।

चामुंडराज—संज्ञा पुं० [सं० चामुण्डराज] गुजरात का एक राजा जो चापोत्कट वंशीय सामंतराज का भांजा था। इसकी मृत्यु १०२५ ईसवी में हुई थी।

चामुंडराय—संज्ञा पुं० [सं० चामुण्ड+प्रा० राय] महाराज पृथिवीराज का एक सामंत जो 'बयाणा' के राजा दाहर का पुत्र और दाहिमा क्षत्रिय था।

चामुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० चामुण्डा] एक देवी का नाम जिन्होंने शुंभ, निशुंभ के चंड, मुंड नामक दो सेनापति दैत्यों का वध किया था।

पर्या०—चर्चिका। चर्ममुंडा। मार्जारकर्णिका। कर्णमोटी। महागंधा। भैरवी। कापालिनी।

चाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] खाद्य पदार्थ [को०]।

चाय¹—संज्ञा स्त्री० [चीनी० चा] एक पौधा या झाड़ जो प्रायः दो से चार हाथ तक ऊँचा होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ १०-१२ अंगुल लम्बी, ३-४ अंगुल चौड़ी और दोनों सिरों पर नुकीली होती हैं। इसमें सफेद रंग के चार पाँच दलों के फूल लगते हैं जिनके झड़ जाने पर एक, दो, या तीन बीजों से भरे फल लगते हैं। यह पौधा कई प्रकार का होता है। इसकी सुगंधित और सुखाई हुई पत्तियों को उबालकर पीने की चाल अब प्रायः संसार भर में फैल गई है। चाय पीने का प्रचार सबसे पहले चीन देश में हुआ। वहाँ से क्रमशः जापान, बरमा, श्याम, आदि देशों में हुआ। चीन देश में कहीं कहीं यह कहानी प्रचलित है कि धर्म नामक कोई ब्राह्मण चीन देश में धर्मोपदेश करने गया। वहाँ वह एक दिन चलते चलते थककर एक स्थान पर सो गया। जागने पर उसे बहुत सुस्ती मालूम हुई। इसपर क्रुद्ध होकर वह अपनी भौं के बाल नोच नोचकर फेंकने लगा। जहाँ जहाँ उसने बाल फेंके, वहाँ वहाँ कुछ पौधे उग आए जिनकी पत्तियों को खाने से वह आध्यात्मिक ध्यान में मग्न हो गया। वे ही पौधे चाय के नाम से प्रसिद्ध में मग्न चीन में पहले औषध के रूप में इसका व्यवहार चाहे बहुत प्राचीन काल से हो रहा हो पर इस प्रकार उबालकर पीने की चाल वहाँ ईसा की सातवीं या आठवीं शताब्दी के पहले नहीं थी। भारतवर्ष में आसाम तथा मनीपुर आदि प्रदेशों में यह पौधा जंगली होता है। नागा की पहाड़ियों पर भी इसके जंगल पाए गए हैं। पर इसके पीने की प्रथा का प्रचार

भारतवर्ष में नहीं था। चीन से चाय मँगा मँगाकर जबसे ईस्ट इंडिया कंपनी यूरोप को भेजने लगी तभी से इसकी ओर ध्यान आकर्षित हुआ और भारत में उसके लगाने का भी उद्योग आरंभ हुआ। पहले पहल यहाँ मालाबार के किनारे पर चीन से बीज मँगाकर चाय उत्पन्न करने की चेष्टा अंग्रेजों द्वारा की गई क्योंकि तब तक यह नहीं ज्ञात था कि यह पौधा भारतवर्ष में भी जंगली होता है। पर यह चाय उस चाय से भिन्न थी जो आसाम में होती है। लुशाई चाय की पत्तियाँ सबसे बड़ी होती हैं। नागा चाय की पत्तियाँ पतली और छोटी होती हैं। चाय की पत्तियाँ यों ही सुखाकर नहीं पी जाती हैं। वे अनेक प्रक्रियाओं से सुगंधित और प्रस्तुत की जाती हैं। चाय के अनेक प्रकार के जो नाम आजकल प्रचलित हैं, उनमें से अधिकांश क्षुपभेद के सूचक नहीं हैं, केवल प्रक्रिया के भेद से या पत्तियों की अवस्था के भेद से रखे गए हैं। साधारणतः चाय के दो भेद प्रसिद्ध हैं - काली चाय और हरी चाय। यद्यपि चीन में कहीं कहीं पत्तियों में यह भेद देखा जाता है; जैसे— कियाङ्सू पर्वत की हरी चाय जिसे मुंगली कहते हैं और कानटन (कैंटन) की घटिया काली चाय, पर अधिकतर यह भेद भी अब प्रक्रिया पर निर्भर है। काली चायों में पीको, बोहिया कांगो, सूचंग बहुत प्रसिद्ध हैं और हरी चायों में से ट्वंकि, हैसन, बारुद आदि। काली चायों में से पीको सबसे स्वादिष्ट और उत्तम होती है और हरी चायों में से बारुद चाय सबसे बढ़िया मानी जाती है। नारंगी पीको में बहुत अच्छी सुगंध होती है। ये दोनों प्रकार की चाय पहली चुनाई की होती हैं, जब कि पत्तियाँ बिल्कुल नए कल्लों के रूप में रहती हैं। चाय बीजों से उत्पन्न की जाती है।

२. चाय उबाला हुआ पानी। चाय का काढ़ा। ३. दूध तथा चीनी मिश्रित चाय का काढ़ा या पानी।

क्रि० प्र०—पीना।—बनाना।—लेना।

यौ०—चायपानी = जलपान।

चाय[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चाव] दे० 'चाव'।

चाय[3]—संज्ञा पुं० [सं० चय] समूह। उ०—सुपन सुफल दिल्ली कथा, कही चंदबरदाय। अब आगे करि उच्चरौं पिथ्थ अंकुर गुन चाय।—पृ० रा०, ३। ५८।

चाय[4]—संज्ञा पुं० [देशज] पुत्र। उ०—नाथावत चाय आसकन कविराय साम के काम सादूल के चाय।—रा० रू०, पृ० १५१।

चायक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चाय] चाहनेवाला। प्रेमी। उ०—जय यदुकुल नई इंदु सत चकोर चायक चतुर।—रघुराज (शब्द०)।

चायक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] चुननेवाला। चयन करनेवाला।

चायदान—संज्ञा पुं० [हिं० चाय + फ़ा० + दान] वह बरतन जिसमें चाय बनाई जाती है या बनाकर रखी जाती है।

चायदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाय + दानी] दे० 'चायदान'।

चायचौकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाय + चौकी] चौकी। उ०—तिब्बती ढंग की चायचौकी और बैठने की गद्दी के साथ मेज, कुर्सी, पलंग और आलमारी भी है।—किन्नर०, पृ० ५४।

चायल—वि० [हिं० चायक] १. चाहने योग्य। २. चाह वाली। उ०— चाय भरी चायल चपल दृग जोरती।—हम्मीर०, पृ० २।

चार[1]—वि० [सं० चत्वारः, > प्रा० चत्तारो] १. जो गिनती में दो और दो हो। तीन से एक अधिक जैसे, चार आदमी।

यौ०—चार ताल = तबले या मृदंग के एक ताल का नाम। चौताला। चार पाँच = (१) इधर उधर की बात। हीला-हवाला। (२) हुज्जत। तकरार। चार मगज = हकीमी में चार वस्तुओं के बीजों की गिरी खीरा, ककड़ी, कद्दू और खरबूजा।

मुहा०—चार आँखें करना = आँखें मिलाना। देखा देखी करना। सामने आना। साक्षात्कार करना। मिलना। जैसे,—अब वह हमारे सामने चार आँखें नहीं करता। चार आँखें होना = नजर से नजर मिलना। देखा देखी होना। साक्षात्कार होना। चार चाँद लगना = (१) चौगुनी प्रतिष्ठा होना। (२) चौगुनी शोभा होना। सौंदर्य बढ़ना (क्वि०)। चार के कंधे पर चढ़ना या चलना = मर जाना। मशान को जाना। चार पगड़ी करना = जहाज का लंगर डालना। चार पाँच करना = (१) हीला हवाला करना। इधर उधर करना। बातें बनाना। (२) हुज्जत करना। तकरार करना। चार पाँच लाना = दे० 'चार पाँच करना'। चारो फूटना = चारों आँखें फूटना (दो हिये की दो ऊपर की)। अंधा होना। उ०—आठो गात अकारथ गारचो। करी न प्रीति कमल लोचन सों जन्म जुवा ज्यों हारचो। निसि दिन विषय विलासनि विलसत फूटि गई तब चारचो।—सूर (शब्द०)। चारो खाने चित्त गिरना या पड़ना = ऐसा चित्त गिरना जिससे हाथ पाँव फैल जायँ। हाथ पाँव फैलाए पीठ के बल गिरना। किसी दारुण संवाद को पाकर स्तंभित होना। अकस्मात् कोई प्रतिकूल बात सुनकर रुका रह जाना। बेसुध होना। सकपका उठना।

२. कई एक। बहुत से। जैसे,—चार आदमी जो कहें उसे मानो। ३. थोड़ा बहुत। कुछ। जैसे,—चार आँसू गिराना।

यौ०—चार तार = चार थान कपड़े या गहने। कुछ कपड़ा लत्ता और जेवर। चार दिन = थोड़े दिन। कुछ दिन। जैसे,—चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी पाख। चार पैसे = कुछ धन। कुछ रुपया पैसा। जैसे,—जब चार पैसे पास रहेंगे तब लोग हाँ जी हाँ जी करेंगे।

चार[2]—संज्ञा पुं० चार की संख्या। चार का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४।

चार[3]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चारित, चारी] १. गति। चाल। गमन। २. बंधन। कारागार। ३. गुप्त दूत। चर। जासूस। ४. दास। सेवक। उ०—लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी।—मानस, ३।२१। ५. चिरौंजी का पेड़। पियार। अचार। ६. कृत्रिम विष। जैसे,—मछली फँसाने की कँटिया में लगा चारा, चिड़ियों को बेहोश करने की गोली आदि। ७. आचार। रीति। रस्म। जैसे,—ब्याहचार, द्वारचार। उ०—(क) फेरे पान फिरा सब कोई। लाग्यो ब्याहचार सब होई।—जायसी (शब्द०)।

(ख) भइ भाँवरि न्योछावरि राज चार सब कीन्ह ।—जायसी (शब्द०) । (ग) औरहु चार करावहु मुनिवर शशि सूरत सुत देखें ।—रघुराज (शब्द०) । (घ) अर्ध रात्रि लौं सकल चार करि आप जाहु जनवासे ।—रघुराज (शब्द०) ।

चार आइना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का कवच या बकतर जिसमें लो की चार पटरियाँ होती हैं; एक छाती पर एक पीठ पर और दो दोनों बगल में (भुजा के नीचे) ।

चारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय भैंस चरानेवाला । चरवाहा । २. चलानेवाला । संचारक । ३. गति । चाल । ४. चिरौंजी का पेड़ । पियाल । ५. कारागार । ६. गुप्तचर । जासूस । ७. सहचर। साथी । ८ अश्वारोही । सवार। ९. घूमनेवाला ब्राह्मण छात्र या ब्रह्मचारी । १०. मनुष्य । ११. चरकनिर्मित ग्रंथ या सिद्धांत ।

चारक[२]—वि० चार एक । थोडे । उ०—यह संपदा दिवस चारक की सोचसमझ मन माहीं । सूर सुनत उठि चली राधिका, दै दूती गलबाहीं ।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ६१ ।

चारक—संज्ञा पुं० [सं०] वह कैद जिसमें न्यायाधीश विचारकाल में किसी को रखे हवालात ।

चारकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चारकर्मन्] जासूसी । गुप्तचर का काम [को०]।

चारकाने—संज्ञा पुं० [हिं० चार+कान=मात्रा] चौसर या पासे का एक दाँव ।

विशेष—यह उस समय होता है जब नई बाजी के तीनो पासे इस प्रकार पड़ते हैं कि एक पासे में तो दो चित्ती और बाकी दोनों पासों में एक एक चित्ती ऊपर की ओर दिखाई पड़ती है ।

चारखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० चार खानह्] एक प्रकार का कपड़ा जिसमें रंगीन धारियों के द्वारा चौखूटे घर बने रहते हैं ।

चारचंचु—वि० [सं० चारचञ्चु] सुंदर गति या चालवाला [को०] ।

चारचंद—वि० [सं० चार+फ़ा० चंद] चौगुना ।

चारमारग—संज्ञा पुं० [सं० चार+मार्ग] व्यवहार आदि में धूर्तता ।

क्रि० प्र०—बूझना । लेना=भेद का पता लगाना । रहस्य की बात जान लेना ।

चारचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० चारचक्षुष्] वह जो दूतों ही के द्वारा सब बातों की जानकारी प्राप्त करे । राजा ।

चारचण—वि० [सं०] दे० 'चारचंचु' ।

चारचश्म—वि० [फ़ा०] १. निर्लज्ज । २. नमकहराम । ३. असौजन्यवाला ।

चारज—संज्ञा पुं० [अं० चार्ज] १. कार्यभार । काम की जिम्मेदारी । चार्ज ।

मुहा०—चारज देना=किसी काम को छोड़ते समय उसका भार अपने स्थान पर आए हुए मनुष्य को सहेजकर देना । चारज लेना=किसी कार्य के भार को उससे अलग होनेवाले मनुष्य से सहेजकर लेना ।

२. सुपुर्दगी । निगरानी । संरक्षा का भार ।

चारजामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चारजामह्] चमड़े या कपड़े का बना हुआ वह आसन जिसे घोड़े की पीठ पर कसकर सवारी करते हैं । जीन । पलान । काठी । गद्दी ।

चारटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मचारिणी वृक्ष । भूम्यामलकी ।

चारटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नली नामक गंधद्रव्य ।

चारटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चारटा' [को०] ।

चारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वंश की कीर्ति गानेवाला । भाट । वंदीजन । २. राजस्थान की एक जाति ।

विशेष—सह्याद्रिखंड में लिखा है कि जिस प्रकार वैतालिकों की उत्पत्ति वैश्य और शूद्रा से है, उसी प्रकार चारणों की भी है; पर चारणों का वृषलत्व कम है । इनका व्यवसाय राजाओं और ब्राह्मणों का गुण वर्णन करना तथा गाना बजाना है । चारण लोग अपनी उत्पत्ति के संबंध में अनेक अलौकिक कथाएँ कहते हैं ।

३. भ्रमणकारी ।

चारणविद्या, चारणवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का अंश ।

चारताल—संज्ञा पुं० [हिं० चारताल] दे० 'चौताला' ।

चारतूल—संज्ञा पुं० [सं०] चँवर [को०] ।

चारदा—संज्ञा पुं० [हिं० चार+दा (प्रत्य०)] १. चौपाया । २. (कुम्हारों की बोली में) गदहा ।

चार दिन—संज्ञा पुं० [सं० चार+दिन] थोड़े दिन ।

यौ०—चार दिन की चाँदनी=चंदरोजा चमक दमक ।

चारदिवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चहारदीवारी] १. वह दीवार जो किसी स्थान की रक्षा के लिये उसके चारो ओर बनाई जाय । घेरा । होता । २ शहरपनाह । प्राचीर । कोट ।

चारधाम—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के चार तीर्थों का सामूहिक नाम । इनका नाम इस तरह है—१. जगन्नाथपुरी, २. बदरिकाश्रम, ३. रामेश्वरम्, ४. द्वारका ।

चारन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चारण] दे० 'चारण' ।

चारना(पु)—क्रि० सं० [सं० चारण] चराना । उ०—(क) गो चारत मुरली धुनि कीन्हा । गोपी जन के मन हर लीन्हा । —गोपाल (शब्द०) । (ख) जहँ गो चारत नित गोपाला । संग लिये ग्वालन की माला ।

चार नाचार—क्रि० वि० [फ़ा०] विवश होकर । लाचार होकर । मजबूरन् ।

चारपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौमुहानी । २. राजमार्ग [को०] ।

चारपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार+पाया] छोटा पलंग । खाट । खटिया । मंजी । माचा ।

मुहा०—चारपाई पर पड़ना=(१) चारपाई पर लेटना । (२) बीमार होना । अस्वस्थ होना । रोगग्रस्त होना । चारपाई धरना, पकड़ना या लेना=(१) इतना बीमार होना कि चारपाई से उठ न सके । अत्यंत रुग्ण होना । (२) चारपाई पर लेटना । सोना । जैसे,—तुम खाते ही चारपाई पकड़ते हो । चारपाई में कान निकलना=चारपाई का टेढ़ा होना ।

चारपाई में कज पड़ना। चारपाई से (किसी की) पीठ लगना= बीमारी के कारण चारपाई से उठ न सकना। (किसी का) चारपाई से लगना=दे० 'चारपाई से पीठ लगना'।

चारपाया—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चौपाया। चार पाँववाला पशु। जानवर।

चारप्रचार—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर छोड़ना। खुफिया पुलिस पीछे लगना (को०)।

चारबाक—संज्ञा पुं० [सं० चार्वाक] दे० 'चार्वाक'। उ०—जैन बोध अरु साकत सैना। चारबाक चतुरंग बिहूना।—कबीर ग्रं०, पृ० २४०।

चारपाल—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर। जासूस (को०)।

चारपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चारपाल' (को०)।

चारबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] अंग। अवयव। अंगों में गाँठ या जोड़।

चारबाग—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. चौखूँटा बगीचा। २. वह चौखूँटा शाल या रूमाल जो भिन्न भिन्न रंगों के द्वारा चार बराबर खानों में बँटा होता है।

चारबालिश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का गोल तकिया।

चारभट—संज्ञा पुं० [सं०] वीर सैनिक (को०)।

चारभटी—संज्ञा पुं० [सं०] साहस (को०)।

चारभानु—वि० [सं० चारु+भानु] सुंदर गौर वर्ण वाली। अनेक सूर्यों के समान ओपवाली। उ०—चारभानु कामिन उजियारी। मानसरोवर है वह नारी।—कबीर सा०, पृ० ७१।

चारमग्ज—संज्ञा पुं० [फ़ा० चार+मग्ज] १. अखरोट। २. मिट्टी की गोली जिसे बच्चे खेलते हैं। ३. खरबूजा, खीरा, ककड़ी तथा कद्दू का बीज।

चारमेख—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार+फ़ा० मेख] एक प्रकार का दंड जिसका मध्यकाल में प्रचलन था। इसमें अपराधी को लिटाकर उसके हाथ तथा पैर चार खूँटी में बाँध दिए जाते थे।

चारयारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार+फ़ा० यारी] १. चार मित्रों की मंडली। २. मुसलमानों में सुन्नी संप्रदाय की एक मंडली जो अबूबक्र, उमर, उसमान और अली इन्हीं चारों को खलीफा मानती है। ३. चाँदी का एक चौकोर सिक्का जिसपर मुहम्मद साहब के चार मित्रों या खलीफों के नाम अथवा कलमा लिखा रहता है। चारयारी का रुपया।

विशेष—यह सिक्का अकबर तथा जहाँगीर के समय में बना था। इस सिक्के या रुपए के बराबर चावल तौलकर उन लोगों को खिलाते हैं जिनपर कोई वस्तु चुराने का संदेह होता है, और कह देते हैं कि जो चोर होगा उसके मुँह से खून निकलने लगेगा। इस धमकी में आकर कभी कभी चुरानेवाले चीजों को फेंक या रख जाते हैं।

चारवा—संज्ञा पुं० [हिं० चार+पाँव] चौपाया। पशु। जानवर।

चारवात—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिं० चार+वात] चौवाई। चक्रवात। उ०—आती जग की छवि स्वर्ण प्रात, स्वप्नों की नभ सी रजत रात। भरती दश दिशि को चारवात, तुझमें वन वन की सुरभि साँस।—ग्राम्या, पृ० १०४।

चारवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीष्म की गरम हवा। लू।

चारसु(पु)—वि० [हिं०] चार। चारों। उ०—जिनं रूप चारसं। वदंत वेद चारसं। अनन्त तेज उग्गयं। मरविक देव भग्गयं।—पृ० रा०, २।१३६।

चारा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चारना] १ पशुओं के खाने की घास, पत्ती, डंठल आदि। २. चिड़ियों, मछलियों या और जीवों के खाने की वस्तु। ३. आटा या और कोई वस्तु जिसे कटिया में लगाकर मछली फँसाते हैं।

चारा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] उपाय। इलाज। तदबीर।

चाराजोई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दूसरे से पहुँची हुई या पहुँचनेवाली हानि के प्रतिकार या बचाव का उपाय। नालिश। फरियाद। जैसे,—अदालत से चाराजोई करना।

चारायण—संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के एक आचार्य जिनके मत का उल्लेख वात्स्यायन ने किया है।

चारासाज—वि० [फ़ा० चार+साज] विपत्ति के समय का परोपकारी। आपत्ति काल में सहायक बननेवाला। उ०—ये कहाँ की दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासेह। कोई चारासाज होता कोई गमगुसार होता।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४६५।

चारि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'चार'।

चारिक—वि० [हिं० चार+एक] १. चार। दो चार। कुछ। किंचित्। थोड़ी। उ०—काहू कौ कहे सुनेते जाही ओर चाहैं ताही ओर इक टक घरी चारिक चहत हैं।—शिखर०, पृ० ३२९।

२. कुछ समय या दिनों का।

चारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दासी। २. यात्रा। भ्रमण (को०)।

चारिटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चारटी' (को०)।

चारिणी[1]—वि० स्त्री० [सं०] आचरण करनेवाली। चलनेवाली।

चारिणी[2]—संज्ञा स्त्री० करुणी वृक्ष।

चारित[1]—वि० [सं०] १. जो चलाया गया हो। चलाया हुआ। २. भभके द्वारा खींचा हुआ। उतारा हुआ (अर्क)।

चारित[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चार] पशुओं के चरने का चारा। धरनि धेनु चारितु चरत प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ। हाथ कछू नहि लागिहै किये गोड़ की गाइ।—तुलसी (शब्द०)।

चारित[3]—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चलाया जाय। चलाया जानेवाला। आरा। उ०—नारितु चारित करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी।—तुलसी (शब्द०)।

चारितार्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] चरितार्थ होने की अवस्था या भाव (को०)।

चारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलक्रमागत आचार। २. चालचलन। व्यवहार। स्वभाव। ३. संन्यास (जैन)।

यौ०—चारित्र धर्म=संन्यास धर्म।

४. मरुत्‌गणों में से एक।

चारित्रविनय—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र द्वारा नम्र या विनीत भाव प्रदर्शन। शिष्टाचार। नम्रता।

चारित्रमार्गणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चरित्र की खोज। चारित्र का अनुसरण। (जैन)।

विशेष—चारित्र पाँच प्रकार का है—(क) सामयिक, (ख) छेदोपस्थापनीय, (ग) परिहारविशुद्धि, (घ) सूक्ष्म सपर्या, (ङ) आधारन्यास। इनके विपक्षी संयम और असंयम है।

चारित्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की समाधि।

चारित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

चारित्रिक—वि० [सं०] १. चरित्र संबंध। २. उत्तम चरित्रवाला। [को०]।

चारित्री—वि० [सं० चारित्रिन्] १. उत्तम चरित्रवाला। सदाचारी [को०]।

चारित्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र।

चारिवाच—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी।

चारी[1]—वि० [सं० चारिन्] [वि० स्त्री० चारिणी] १. चलनेवाला। जैसे,—आकाशचारी। २. आचरण करनेवाला। व्यवहार करनेवाला। जैसे, स्वेच्छाचारी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग हिंदी में प्रायः समास में ही होता है।

चारी[2]—संज्ञा पुं० १. पदाति सैन्य। पैदल सिपाही। २. संचारी भाव।

चारी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य का एक अंग।

विशेष—श्रृंगार आदि रसों का उद्दीपन करनेवाली मधुर गति को चारी कहते हैं। किसी किसी के मत से एक या दो पैरों से नाचने का ही नाम चारी है। चारी के दो भेद हैं—एक भूचारी, दूसरा आकाशचारी। भूचारी २६ प्रकार की होती है। यथा – समनखा, नूपुरविद्धा, तिर्यङ्मुखी, सरला, कातरा, कवीरा, विश्लिष्ट, रथचक्रिका, पांचिरेतिका, तलदर्शनी, गजहस्तिका, परावृत्ततला, चारुताड़िता, अर्द्धमंडला, स्तंभक्रीडनका, हरिणत्रासिका चारुरेचिका, तलोद्वृत्ता, संचारिता, स्फूरिका, लघितजंघा, संघटिता, मदालसा, उत्कुंचिता, अतितिर्यक्कुंचिता, और अपकुंचिता। मतांतर से भूचारी १६ प्रकार की होती है– समपादस्थिता, विद्धा, शकवद्धिका, विकाधा, ताड़िता, आवद्धा, एड़का, क्रीडिता, उरुवृत्ता, द्वंदिता, जनिता, स्पंदिता, स्पंदितावती, समतन्वी, समोत्सारितघट्टिता और उच्छृवंदिता। आकाशचारी १६ प्रकार की होती हैं—विपेक्षा, अधरी, अग्रिताड़िता, भ्रमरी, पुरःक्षेपा, सूचिका, अपक्षेपा, जंघावती, विद्धा, हरिणप्लुता, उरुजंघांदोलिता, जंघा, जंघनिका, विद्युत्कांता, भ्रमरिका और दंडपार्श्वा। मतांतर से—विभ्रांता, अतिक्रांता, अपक्रांता, पार्श्वक्रांतिका, उर्द्ध्वजानु, दोलोद्वृत्ता, पादोद्वृत्ता, नूपुरपादिका, भुजंगभासिका, शिप्ता, आविद्धा, ताला, सूचिका, विद्युत्क्रांता, भ्रमरिका और दंडपादा।

चारु[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चार्वी] सुंदर मनोहर।

चारु[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृहस्पति। २. रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र। ३. कुंकुम। केसर।

चारुक—संज्ञा पुं० [सं०] सरपत के बीज जो दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में ये बीज मधुर, रूखे, रक्तपित्तनाशक, शीतल, वृष्य, कसैले और वात उत्पन्न करनेवाले माने जाते हैं।

चारुकेशरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागरमोथा। २. तरुणी पुष्प। सेवती का फूल।

चारुगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुगुच्छा—संज्ञा पुं० [सं० चारु+हिं० गुच्छा] अंगूर।

चारुगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुघोणा—वि० [सं०] सुंदर नाकवाला [को०]।

चारुचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चारुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरता। मनोहरता। सुहावनापन।

चारुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चारुता' [को०]।

चारुदर्शन—वि० [सं०] देखने में सुंदर लगनेवाला [को०]।

चारुदेष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र जिन्होंने निकुंभ आदि दैत्यों के साथ युद्ध किया था (हरिवंश)। २. गंडूप के एक पुत्र का नाम।

चारुधामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चारुधारा' [को०]।

चारुधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पत्नी शची।

चारुधिष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्यारहवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

चारुनालक—संज्ञा पुं० [सं०] कोकनद। रक्त कमल।

चारुनेत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हरिण।

चारुनेत्र[2]—वि० सुंदर नेत्रवाला।

चारुपद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसारणी। पसरन। गंधपसार।

चारुपुट—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक।

चारुफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर या दाख की एक बेल। द्राक्षालता।

चारुबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण की एक पुत्री (हरिवंश)।

चारुयश—संज्ञा पुं० [सं० चारुयशस्] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम (महाभारत अनुशासन पर्व)।

चारुरावा—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्राणी। शची।

चारुलोचन[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चारुलोचना] सुंदर नेत्रवाला [को०]।

चारुलोचन[2]—संज्ञा पुं० हिरन [को०]।

चारुवक्त्र—वि० [सं०] सुंदर। सुंदर चेहरेवाला [को०]।

चारुवर्धना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर स्त्री। सुंदरी [को०]।

चारुविंद—संज्ञा पुं० [सं० चारुविन्द] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम (हरिवंश)।

चारुवेश—संज्ञा पुं० [सं०] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र (हरिवंश)।

चारुव्रता—वि० [सं०] महीने भर व्रत करनेवाली [को०]।

चारुशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रत्न [को०]।

चारुशील—वि० [सं०] अच्छे स्वभाववाला [को०]।
चारुश्रवा¹—संज्ञा पुं० [सं० चारुश्रवस्] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र।
चारुश्रवा² वि० सुंदर कानवाला।
चारुसार—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना [को०]।
चारुहासिनी¹ वि० स्त्री० [सं०] सुंदर हँसनेवाली। मनोहर मुसकानवाली।
चारुहासिनी²—संज्ञा स्त्री० १. मनोहर मुसकानवाली स्त्री। २. वैताली नामक छंद का एक भेद।
चारुहासी वि० [सं० चारुहासिन्] [वि० स्त्री० चारुहासिनी] सुंदर हँसनेवाला।
चारेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] भूपाल। राजा [को०]।
चारोली—संज्ञा पुं० [देश०] गुठली।
चार्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सड़क जो छह हाथ चौड़ी होती थी।
चार्चा(पु)† संज्ञा स्त्री० [हिं०] चर्चा। उ०—अच्छर बारि पंडित पढ़ि भूले करैं चार्चा सोई।—जग० श०, पृ० ५४।
चार्चिक—वि० [सं०] कुशल या दक्ष (वेदपाठी)। वेदपाठ में कुशल [को०]।
चार्चिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंगराग। २. अंगराग लेपन [को०]।
चार्ज—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी काम का भार। कार्यभार। जैसे,—(क) उन्होंने ३ तारीख को आफिस का चार्ज ले लिया। (ख) लार्ड रीडिंग ने २ तारीख को बंबई में, जहाज पर, नए वायसराय को चार्ज दिया।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

२. संरक्षण। सुपुर्दगी। देखरेख। अधिकार। जैसे,—सरकारी अस्पताल सिविल सर्जन के चार्ज में है। ३. अभियोग। आरोप। इलजाम। जैसे,—मालूम नहीं अदालत ने उनपर क्या चार्ज लगाया है।

यौ०—चार्जशीट।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना। देना।—लेना।

४ दाम। मूल्य। जैसे,—(क) आपके प्रेस में छपाई का चार्ज अन्य प्रेसों की अपेक्षा अधिक है। (ख) इतना चार्ज मत कीजिए।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पड़ना।

५. किराया। भाड़ा। जैसे,—अगर आप डाकगाड़ी से जायँगे तो आपको डयोढ़ा चार्ज देना पड़ेगा।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।

६. हमला। आक्रमण। जैसे, लाठी चार्ज।

चार्जशीट संज्ञा पुं० [अं०] अभियोगपत्र। फर्द जुर्म। उ०—जमींदारों से इच्छानुसार रपोर्ट लेते रहे। चार्जशीट तैयार करते रहे।—काले०, पृ० ७०।
चार्टर¹—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह लेख जिसमें किसी सरकार की ओर से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार देने की बात लिखी रहती है। सनद। अधिकारपत्र। जैसे,—चार्टर ऐक्ट। २. किसी शर्त पर जहाज को किराए पर लेना या देना। जैसे—चीनी व्यापारियों ने माल लाने के लिये हाल में दो जापानी जहाज चार्टर किए हैं।
चार्टर² वि० [अं० चार्टर्ड] जो राजा की सनद से स्थापित हुआ हो। जैसे,—महारानी के लेटर्स पेटेंट्स से स्थापित होने के कारण कलकत्ता, मद्रास, बंबई और इलाहाबाद के हाइकोर्ट चार्टर्ड हाइकोर्ट कहाते हैं।
चार्म¹ संज्ञा पुं० [अं०] [वि० चार्मिंग] आकर्षण [को०]।
चार्म²—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चार्मी] १. चर्म संबंधी। २. चमड़े का। ३. चमड़े में मढ़ा हुआ। जैसे, रथ आदि। ४. ढालवाला। ढालयुक्त [को०]।
चार्मण¹—वि० [सं०][वि० स्त्री० चार्मणी]चमड़े से ढँका हुआ [को०]।
चार्मण²—संज्ञा पुं० १. खालों का समूह। २. ढालों का समूह [को०]।
चार्मिक— वि० [सं०][वि० स्त्री० चार्मिकी]चमड़े का बना हुआ [को०]।
चार्मिण—संज्ञा [सं०] ढालधारियों का समूह [को०]।
चार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्रात्य वैश्य द्वारा सवर्ण स्त्री से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति (मनु)। २. दूतकार्य। दौत्य (को०)। ३. जासूसी। भेद लेने का कार्य (को०)।
चार्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित एक प्रकार का मार्ग या पथ जो एक दंड चौड़ा होता था।
चार्वाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक अनीश्वरवादी और नास्तिक तार्किक।

पर्या०—बार्हस्पत्य। नास्तिक। लौकायतिक।

विशेष—ये नास्तिक मत के प्रवर्तक बृहस्पति के शिष्य माने जाते हैं। बृहस्पति और चार्वाक कब हुए इसका कुछ भी पता नहीं है। बृहस्पति को चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्र का एक प्रधान आचार्य माना है। सर्वदर्शनसंग्रह में इनका मत दिया हुआ मिलता है। पद्मपुराण में लिखा है कि असुरों को बहकाने के लिये बृहस्पति ने वेदविरुद्ध मत प्रकट किया था। नास्तिक मत के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि जब धर्मबल से दैत्य बहुत प्रबल हुए तब देवताओं ने विष्णु के यहाँ पुकार की। विष्णु ने अपने शरीर से मायामोह नामक एक पुरुष उत्पन्न किया जिसने नर्मदा तट पर दिगंबर रूप में जाकर तप करते हुए असुरों को बहकाकर धर्ममार्ग से भ्रष्ट किया। मायामोह ने असुरों को जो उपदेश किया वह सर्वदर्शनसंग्रह में दिए हुए चार्वाक मत के श्लोकों से बिलकुल मिलता है। जैसे,-मायामोह ने कहा है कि यदि यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग जाता है तो यजमान अपने पिता को क्यों नहीं मार डालता इत्यादि। लिंगपुराण में त्रिपुरविनाश के प्रसंग में भी शिवप्रेरित एक दिगंबर मुनि द्वारा असुरों के इसी प्रकार बहकाए जाने की कथा लिखी है जिसका लक्ष्य जैनों पर जान पड़ता है। वाल्मीकिरामायण अयोध्या कांड में महर्षि जाबालि ने रामचंद्र को वनवास छोड़ अयोध्या लौट जाने के लिये जो उपदेश दिया है वह भी चार्वाक के मत से बिलकुल मिलता है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि नास्तिक मत बहुत

प्राचीन है। इसका आविर्भाव उसी समय से समझना चाहिए जब वैदिक कर्मकांडों की अधिकता लोगों को कुछ खटकने लगी थी चार्वाक ईश्वर और परलोक नहीं मानते। परलोक न मानने के कारण ही इनके दर्शन को लोकायत भी कहते हैं। सर्वदर्शनसंग्रह में चार्वाक के मत से सुख ही इस जीवन का प्रधान लक्ष्य है। संसार में दुःख भी है, यह समझकर जो सुख नहीं भोगना चाहते, वे मूर्ख हैं। मछली में काँटे होते हैं तो क्या इससे कोई मछली ही न खाय? चौपाए खेत पर जायँगे, इस डर से क्या कोई खेत ही न बोवे? इत्यादि। चार्वाक आत्मा को पृथक् कोई पदार्थ नहीं मानते। उनके मत से जिस प्रकार गुड़ तंडुल आदि के संयोग से मद्य में मादकता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतों के संयोगविशेष से चेतनता उत्पन्न हो जाती है। इनके विश्लेषण या विनाश से 'मैं' अर्थात् चेतनता का भी नाश हो जाता है। इस चेतन शरीर के नाम के पीछे फिर पुनरागमन आदि नहीं होता। ईश्वर, परलोक आदि विषय अनुमान के आधार पर हैं। पर चार्वाक प्रत्यक्ष को छोड़कर अनुमान को प्रमाण में नहीं लेते। उनका तर्क है कि अनुमान व्याप्तिज्ञान का आश्रित है। जो ज्ञान हमें बाहरी इंद्रियों के द्वारा होता है उसे भूत और भविष्य तक बढ़ाकर ले जाने का नाम व्याप्तिज्ञान है, जो असंभव है। मन में यह ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, यह कोई प्रमाण नहीं क्योंकि मन अपने अनुभव के लिये इंद्रियों का ही आश्रित है। यदि कहो कि अनुमान के द्वारा व्याप्तिज्ञान होता है तो इतरेतराश्रय दोष आता है, क्योंकि व्याप्तिज्ञान को लेकर ही तो अनुमान को सिद्ध किया चाहते हो। चार्वाक का मत सर्वदर्शनसंग्रह, सर्वदर्शनशिरोमणि और बृहस्पतिसूत्र में देखना चाहिए। नैषध के १७वें सर्ग में भी इस मत का विस्तृत उल्लेख है।

यौ०—चार्वाक दर्शन=चार्वाक निर्मित दर्शन ग्रंथ। चार्वाक मत=चार्वाक का सिद्धांत या दर्शन।

२. एक राक्षस जो कौरवों के मारे जाने पर ब्राह्मण वेश में युधिष्ठिर की राजसभा में जाकर उनको राज्य के लोभ से भाई बंधुओं को मारने के लिये धिक्कारने लगा। इसपर सभास्थित ब्राह्मण लोग हुंकार छोड़कर दौड़े और उन्होंने छद्मवेशधारी राक्षस को मार डाला।

चार्वी–संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि। २. चाँदनी। ज्योत्स्ना। ३. दीप्ति। आभा। ४. सुंदर स्त्री। ५ कुबेर की पत्नी। ६. दारु हलदी।

चाल[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना, सं० चार] १. गति। गमन। चलने की क्रिया। जैसे—इस गाड़ी की चाल बहुत धीमी है। २. चलने का ढंग। चलने का ढब। गमन प्रकार। जैसे,—यह घोड़ा बहुत अच्छी चाल चलता है। उ०—रहिमन सूधी चाल तें प्यादा होत वजीर। फरजी मीर न ह्वै सकै, टेढ़े की तासीर।—रहीम (शब्द०)। ३. आचरण। चलन। वर्ताव। व्यवहार। जैसे,—(१) अपनी इसी बुरी चाल से तुम कहीं नहीं टिकने पाते। (२) अपने सुत की चाल न देखत उलटी तू हम पै रिस ठानति।—सुर (शब्द०)।

यौ०—चालचलन। चालढाल।

मुहा०—चाल सुधारना=आचरण ठीक करना।

४. आकार प्रकार। ढब। बनावट। आकृति। गढ़न। जैसे,—इस चाल का लोटा हमारे यहाँ नहीं बनता। ५. चलन। रीति। रवाज। रस्म। प्रथा। परिपाटी। जैसे,—हमारे यहाँ इसकी चाल नहीं है। ६. गमन का मुहूर्त। चलने की सायत। चाला। उ०—पोथी काढ़ि गवन दिन देखैं कौन दिवस है चाल।—जायसी (शब्द०)। ७. कार्य करने की युक्ति। कृतकार्य होने का उपाय। ढंग। तदबीर। ढब। जैसे,—किसी चाल से यहाँ से निकल चलो। ८. धोखा देने की युक्ति। चालाकी। कपट। छल। धूर्तता। उ०— जोग कथा पठई ब्रज को सब सठ चेरी की चाल चलाकी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—चालबाली।

मुहा०—चाल चलना (अकर्मक)=धोखा देने की युक्ति का कृतकार्य होना। धूर्तता से कार्य सिद्ध होना। जैसे,—यहाँ तुम्हारी चाल नहीं चलेगी। चाल चलना (सकर्मक)=धोखा देने का आयोजन करना चालाकी करना। धूर्तता करना। जैसे,—हमसे चाल चलते हो, बचा! चाल में आना=धोखे में पड़ना। धोखा खाना। प्रतारित होना।

९. ढंग। प्रकार। विधि। तरह। जैसे,—मैंने उसे कई चाल से समझाया पर उसकी समझ में न आया। १०. शतरंज। चौसर, ताश आदि के खेल में गोटी को एक घर से दूसरे घर में ले जाने अथवा पत्ते या पासे को दाँव पर डालने की क्रिया। जैसे,—देखते रहो, मैं एक ही चाल में मात करता हूँ।

क्रि० प्र०—चलना।

११. हलचल। धूम। आंदोलन। उ०—सातहू पताल काल सबद कराल राम भेदे सात ताल चाल परी सात सात में।—तुलसी (शब्द०)। १२. आहट। हिलने डोलने का शब्द। खटका। उ०—देखो सब वृक्ष निश्चल हो गए, मृग और पक्षियों की कुछ भी चाल नहीं मिलती।—(शब्द०)।

मुहा०—चाल मिलना=हिलने डोलने का शब्द सुनाई देना। आहट मिलना।

†१३. वह मकान जिसमें बहुत से किराएदार रहते हों। किराए का बड़ा मकान (बंबई)।

चाल[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर का छप्पर या छत। छाजन। २. स्वर्णचूड़ पक्षी। ३. चलना। गतिशील होना (को०)। ४. नीलकंठ (को०)।

चालक[१]—वि० [सं०] १. चलानेवाला। संचालक।

चालक[२]—संज्ञा पुं० १. वह हाथी जो अंकुश न माने। नटखट हाथी। २. नृत्य में भाव बताने या सुंदरता लाने के लिये हाथ चलाने की क्रिया।

चालक(पु)[३]—संज्ञा पुं० [हिं० चाल (=धूर्तता)] चाल चलनेवाला। धूर्त। छली। उ०—घरघाल, चालक, कलहप्रिय कहियत परम परमारथी।—तुलसी (शब्द०)।

चालकुंड—संज्ञा पुं० [सं० चालकुण्ड] चिलका नाम की झील जो उड़ीसा में है।

चालचलन—संज्ञा पुं० [हिं० चाल + चलन] आचरण। व्यवहार। चरित्र। शील। जैसे,— उसका चालचलन अच्छा नहीं है।

चालढाल संज्ञा स्त्री० [हिं० चाल+ढाल] १. आचरण। व्यवहार। २. ढंग। तौर तरीका।

चालण पु- संज्ञा पुं० [सं० चालन] दे० 'चलन'।

यौ०—चालणहार=चलनेवाला। उ०—छउ सातम दिन आवीयो। निहचइ ओलगि चालणहार।—वीसल० रास, पृ० ४९।

चालणी पु†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चालनी या चालनी] दे० 'चालनी'। उ०—बांका ठहरै वार जो, मिल चालणी मझार।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ४९।

चालन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चलाने की क्रिया। परिचालन। २. चलने की क्रिया। गति। गमन। ३. चलनी। छलनी। ४. चालने की क्रिया (को०)।

चालन[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चालना] भूसी या चोकर जो आटा चलने के पीछे रह जाता है। चलनौस।

चालनहार[1] पु—संज्ञा पुं० [हिं० चालन+हार (प्रत्य०)] चलानेवाला। ले जानेवाला।

चालनहार[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] चलनेवाला। उ०—तौ दिसि उत्तर चालनहार के मारग केतोइ फेर परैं किन। वा उजयीनि के आछे अटा परसे बिन तू चलियो कितहू जिन।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)।

चालना[1] पु†—क्रि० स० [सं० चालन] १. चलाना। परिचालित करना। २. एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना। ३. बिदा करा ले आना (बहू आदि)। ४. हिलाना। डोलाना। इधर उधर फेरना। उ०—चालत न भुजवल्ली बिलोकनि बिरह बस भइ जानकी। तुलसी (शब्द०)। ५. कार्यनिर्वाह करना। भुगताना। उ०—चालत सब राज काज आयसु अनुसरत।— तुलसी (शब्द०)। ६. बात उठाना। प्रसंग छेड़ना। उ०—बनमाली दिसि सैन कै ग्वाली चाली बात। —(शब्द०)। ७. आटे को चलनी में रखकर इधर उधर हिलाना जिसमें महीन आटा नीचे गिर जाय और भूसी या चोकर चलनी में रह जाय। छानना।

चालना[2]—क्रि० अ० [सं० चालन] १. चलना। गति में होना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना।

यौ०- चालनहार= चलनेवाला।

२. बिदा होकर आना। चाला होना (नववधू का)। उ०— पाखहू न बीत्यो चलिआएहूमै पीहर तें नीके कै न जानी सासु ननद जेठानी है।—शिवराम (शब्द०)

चालना[3]—संज्ञा पुं० [सं० चालन] बड़ी चलनी।

चालनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चलनी। छलनी। उ०—चालनी कहे सूई से कि तेरी पेंदी में छेद।—मैला०, पृ० ७०।

चालनीय—वि० [सं०] जो चलाया या हिलाया जा सके [को०]।

चालबाज—वि० [हिं० चाल+फ़ा० बाज] धूर्त। छली।

चालबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चालबाज] चालाकी। छल। धोखेबाजी। धूर्तता।

चाला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चाल] १. प्रस्थान। कूच। रवानगी। २. नई बहू का पहले पहल मायके से ससुराल या ससुराल से मायके जाना। ३. यात्रा का मुहूर्त। प्रस्थान के लिये शुभ दिन। चलने की सायत। जैसे,—आज पूरब का चाला नहीं है।

मुहा०—चाला देखना=यात्रा का मुहूर्त विचारना। चाला निकालना=मुहूर्त निश्चित करना।

चाला[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चालना=छानना] १. एक प्रकार का कृत्य जो किसी व्यक्ति के मर जाने पर उसकी षोड़शी आदि की क्रिया की समाप्ति पर रात के समय किया जाता है।

विशेष—इसमें एक चलनी में राख या बालू डालकर उसे छानते हैं; और जमीन पर गिरी हुई राख या बालू में बननेवाली आकृतियों से इस बात का अनुमान करते हैं कि मृत व्यक्ति अगले जन्म में किस योनि में जायगा। यह कृत्य प्रायः घर की कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री एकांत में करती है, और उस समय किसी को, विशेषतः बालकों को, वहाँ नहीं आने देती।

चालाक—वि० [फ़ा०] १. चतुर। व्यवहारकुशल। दक्ष। २. धूर्त। चालबाज।

चालाकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. चतुराई। व्यवहारकुशलता। दक्षता। पटुता। २. धूर्तता। चालबाजी।

क्रि० प्र० करना।

मुहा०—चालाकी खेलना=चालाकी करना।

३ युक्ति। कौशल।

चालान संज्ञा पुं० [हिं० चलना] १. भेजे हुए माल की फिहरिस्त। बीजक। इनवायस (व्यापारी)। २. भेजा हुआ माल या रुपया अथवा उसका ब्योरेवार हिसाब।

यौ०—चालानदार। चालानबही।

३. रवन्ना। चले जाने या माल आदि ले जाने का आज्ञापत्र। ४. मुजरिमों का विचार के लिये अदालत में भेजा जाना। अपराधियों का सिपाहियों के पहरे में थाने या न्यायालय की ओर प्रस्थान।

क्रि० प्र० करना।—होना।

चालानदार—संज्ञा पुं० [हिं० चालान+फ़ा० दार] १. वह व्यक्ति जो भेजे हुए माल के साथ जाता है और जिसकी जिम्मेदारी पर माल भेजा जाता है। चढ़नदार। जमादार। २. जिसके जिम्मे या जिसके पास चालान का कागज हो।

चालानबही—संज्ञा स्त्री० [हिं० चालान+बही] १. वह बही जिसमें बाहर से आनेवाले या बाहर जानेवाले माल का ब्योरा लिखा जाता है।

चालिया—[हिं० चाल+इया (प्रत्य०)] चालबाज। धूर्त। छली। धोखेबाज।

चालिस†—वि० [हिं० चालीस] दे० 'चालीस'।

चाली¹—वि० [हिं० चाल] १. चालिया। धूर्त। चालबाज। २. चंचल। नटखट। शरीर। उ०—जनम को चाली ए री अद्भुत दै ख्याली आजु काली की फनाली पै नचत बनमाली है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३१।

चाली†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाल] १. चाल। रस्म रिवाज। २. चलने का तरीका। चाल।

चाली‡³ संज्ञा पुं० [हिं० चलना] व्यक्तियों का वह दल जो अपने दल से हटा दिया गया हो

चालीस¹—वि० [सं० चत्वारिंशत्, प्रा० चत्तालीस, चालीस] जो गिनती में बीस और बीस हो। तीस से दस अधिक। जैसे,—चालीस दिन।

चालीस²—संज्ञा पुं० बीस और बीस की संख्या। बीस और बीस का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४०।

चालीसवाँ¹—वि० [हिं० चालीस] जिसका स्थान उनतालीसवें के आगे हो। जिसके पीछे उनतालीस और हों। जो क्रम में उनतालीस वस्तुओं के आगे पड़ता हो। जैसे, चालीसवाँ प्रकरण।

चालीसवाँ²—संज्ञा पुं० [हिं० चालीस] मुसलमानों में मृतक कर्म करने में चालीसवें दिन का कृत्य। चहलुम।

चालीससरा†—वि० [हिं० चालीस+सरा] १. विशुद्ध। शुद्ध (घी)। २. अज्ञ। मूर्ख (व्यक्ति)।

चालीसा—संज्ञा पुं० [हिं० चालीस] [स्त्री० चालीसी] १. चालीस वस्तुओं का समूह। जैसे, चालीसा चूरन (जिसमें चालीस चीजें पड़ती हैं)। २. चालीस दिन का समय। चिल्ला। ३. चालीस वर्ष का समय।

क्रि० प्र०—लगना=(१) चालीस वर्ष का होना। (२) पढ़ने आदि के लिये चश्मे की आवश्यकता पड़ना।

४. चालीस पद्यों का ग्रंथ वा काव्य। जैसे, हनुमानचालीसा। ५. दे० 'चालीसवाँ'।

चालुक्य—संज्ञा [सं०] सं० दक्षिण का एक अत्यंत प्रबल और प्रतापी राजवंश जिसने शक संवत् ४११ से लेकर ईसा की १२ वीं शताब्दी तक राज्य किया।

विशेष—विल्हण के विक्रमांकचरित् में लिखा है कि चालुक्य वंश का आदिपुरुष ब्रह्मा के चुलुक (चुल्लू) से उत्पन्न हुआ था। पर चालुक्य नाम का यह कारण केवल कविकल्पित ही है। कई ताम्रपत्रों में लिखा पाया गया है कि चालुक्य चंद्रवंशी थे और पहले अयोध्या में राज्य करते थे। विजयादित्य नाम के एक राजा ने दक्षिण पर चढ़ाई की और वह वहीं त्रिलोचन पल्लव के हाथ से मारा गया। उसकी गर्भवती रानी ने अपने कुलपुरोहित विष्णुभट्ट सोमयाजी के साथ मूड़िवेमु नामक स्थान में आश्रय ग्रहण किया। वहीं उसे विष्णुवर्धन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने गंग और कादंब राजाओं को परास्त करके दक्षिण में अपना राज्य जमाया। विष्णुवर्धन का पुत्र पुलिकेशी (प्रथम) हुआ जिसने पल्लवों से वातापी नगरी (आजकल की बादामी) को जीतकर उसे अपनी राजधानी बनाया। पुलिकेशी (प्रथम) शक ४११ में सिंहासन पर बैठा। पुलिकेशी (प्रथम) का पुत्र कीर्तिवर्मा हुआ। कीर्तिवर्मा के पुत्र छोटे थे इससे कीर्तिवर्मा की मृत्यु के उपरांत उसके छोटे भाई मंगलीश गद्दी पर बैठे। पर जब कीर्तिवर्मा का जेठा लड़का सत्याश्रय बड़ा हुआ तब मंगलीश ने राज्य उसके हवाले कर दिया। वह पुलिकेशी द्वितीय के नाम से शक ५३१ में सिंहासन पर बैठा और उसने मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र, कोंकण, कांची, आदि को अपने राज्य में मिलाया। यह बड़ा प्रतापी राजा हुआ। समस्त उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करनेवाले कन्नौज के महाराज हर्षवर्धन तक ने दक्षिण पर चढ़ाई करके इस राजा से हार खाई। चीनी यात्री हुएनसांग ने इस राजा का वर्णन किया है। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि फारस के बादशाह खुसरो (दूसरा) से इसका व्यवहार था, तरह तरह की भेंट लेकर दूत आते जाते थे। पुलिकेशी के उपरांत चंद्रादित्य, आदित्यवर्मा, विक्रमादित्य क्रम से राजा हुए। शक ६०१ में विनयादित्य गद्दी पर बैठा। यह भी प्रतापी राजा हुआ और शक ६१८ तक सिंहासन पर रहा। शक ६७८ में इस वंश का प्रताप मंद पड़ गया, बहुत से प्रदेश राज्य से निकल गए। अंत में विक्रमादित्य (चतुर्थ) के पुत्र तैल (द्वितीय) ने फिर राज्य का उद्धार किया और चालुक्य वंश का प्रताप चमकाया। इस राजा ने प्रबल राष्ट्रकूटराज का दमन किया। शक ८९१ में महाप्रतापी त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य (छठा) के नाम से राजसिंहासन पर बैठा और इसने चालुक्य विक्रमवर्ष नाम का संवत् चलाया। इस राजा के समय के अनेक ताम्रपत्र मिलते हैं। विल्हण कवि ने इसी राजा को लक्ष्य करके विक्रमांकदेवचरित् नामक काव्य लिखा है। इस राजा के उपरांत थोड़े दिनों तक तो चालुक्य वंश का प्रताप अखंड रहा पर पीछे घटने लगा। शक ११११ तक वीर सोमेश्वर ने किसी प्रकार राज्य बचाया, पर अंत में मैसूर के हयशाल वंश के प्रबल होने पर वह धीरे धीरे हाथ से निकलने लगा। इस वंश की एक शाखा गुजरात में और एक शाखा दक्षिण के पूर्वी प्रांत में भी राज्य करती थी।

चाल्य वि० [सं०] दे० 'चालनीय' [को०]।

चाल्ह (पु)† संज्ञा स्त्री० [देश०] चेल्हवा मछली। उ०—बात कहन भइ देस गुहारी। केवटहि चाल्ह समुँद महँ मारी।—जायसी (शब्द०)।

चाल्हा(पु)† संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'चाल्ह'। उ०—तत खन चाल्हा एक देखावा। जनु धौलागिरि परबत आवा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२७।

चाल्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाव में वह स्थान जो नरिया के पास ही बाँस की फट्टियों से पटा रहता है और जहाँ खेनेवाले मल्लाह बैठते हैं।

चावँचावँ संज्ञा दे० [अनुध्व०] दे० 'चायँ चायँ'।

चाव¹—संज्ञा पुं० [हिं० चाह] १. प्रबल इच्छा। अभिलाषा। लालसा। अरमान। उ०—(क) चित्रकेतु पृथ्वीपतिराय। सुतहित भयो

तासु हिय चाव।—सूर (शब्द०)। (ख) चहौ दीप वह देखा, सुनत उठा तस चाव।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठना।—करना।—होना।

मुहा०—चाव निकालना=लालसा पूरी करना।

२. प्रेम। अनुराग। चाह। उ०—ज्यों ज्यों चवाव चलैं चहुँ ओर धरैं चित चाव पै त्यों ही त्यों चोखे—(शब्द०)। ३ शौक। उत्कंठा। उ०—चोप घटी कि मिटी चित चाव, कि आलस नींद, कि बेपरवाही।—(शब्द०)। लाड़ ४. प्यार। दुलार। नखरा।

यौ०—चावचोचला=नाजनखरा। चावभाव=प्रेमभाव।

यौ०—उमंग। उत्साह। आनंद। उ०—यहि विधि जासु प्रभाव, श्री दसरथ महिपाल मणि। और सबै चित चाव, सुत बिनु तपित रहत हिय।—रघुराज (शब्द०)।

चाव[2]—संज्ञा पुं० [सं० चप] एक प्रकार का बाँस। वि० दे० 'चाव'।

चावड़ा संज्ञा पुं० [चावण] चावण। खत्रियों का एक वर्ग।

चावड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पथिकों के उतरने का स्थान। चट्टी। पड़ाव। जैसे, चावड़ी बाजार।

चावण—संज्ञा पुं० [देश०] गुजरात का एक प्रसिद्ध और प्राचीन राजपूत वंश जिसने कई शताब्दियों तक गुजरात में राज्य किया। इस वंश की राजधानी अनहलवाड़ा थी।

विशेष—जिस समय महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था उस समय सोमनाथ चावण राजा के अधिकार में था। इस वंश की उत्पत्ति का ठीक पता नहीं है। कोई कोई चावड़ों को विदेश से आया बतलाते हैं पर अधिकांश लोग इन्हें विस्तृत प्रमार वंश की शाखा मानते हैं। इनके सबसे प्राचीन पूर्वज का नाम वछराज मिलता है। वछराज दीव या दीउ नामक स्थान में राज्य करते थे वछराज के पुत्र वेणीराज के समय जब दीउ टापू का अधिकांश समुद्रमग्न हो गया तब उनकी रानी वहाँ से चहू नामक स्थान में भागी जहाँ उसके गर्भ से वनराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ और डाकुओं का बड़ा भारी दल इकट्ठा करके इधर उधर लूट मार करने लगा। अंत में अनहल नामक चरवाहे ने पट्टन नगर के खँडहरों में प्रमारों का बहुत सा संचित धन उसे दिखा दिया। इसी धन के बल से उसने उसी स्थान पर संवत् ८०२ में अनहलवाड़ा नामक नगर बसाया।

चावर—संज्ञा पुं० [हिं० चावल] दे० 'चावल'।

चावरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० चावल] चावल। उ०—रतन मिलै तिल चावरि कीनी। भरि भरि गोद सबनि को दीनी।—नंद० ग्रं०, पृ० २४१।

चावल—संज्ञा पुं० [तण्डुल अथवा मुंडारी] १. एक प्रसिद्ध अन्न। धान के बीज की गुठली। तंडुल।

मुहा०—चावल चबवाना=जिन जिन पर किसी वस्तु के चुराने का संदेह हो उन्हें चारयारी रुपया भर चावल यह कहकर चबवाना कि जो चोर होगा उसके मुँह से थूकने पर खून निकलेगा। यह वास्तव में एक प्रकार की धमकी है जिससे डरकर कभी कभी चोर चीजें फेंक देते हैं।

२. राँधा चावल। भात। ३. छोटे छोटे बीज के दाने जो किसी प्रकार खाने के काम में आवें। जैसे, लटजीरा के चावल, जवाइन के चावल, इत्यादि। ४. एक रत्ती का आठवाँ भाग या उसके बराबर की तौल।

मुहा० चावल भर=रत्ती के आठवें भाग के बराबर।

चावा—वि० [हिं० चाहना] प्रसिद्ध। उ०—मेछ महाबल मारियो चौड़े एकण चोट। जवन अमायो जांणता जो चावौ नवकोट।—रा० रू०, पृ० ३९३।

चाशनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. चीनी, मिस्री या गुड़ का रस जो आँच पर चढ़ाकर गाढ़ा और मधु के समान लसीला किया गया हो। शीरा।

मुहा०—चाशनी में पागना=मीठा करने के लिये चाशनी में डुबाना।

२ किसी वस्तु में थोड़े से मीठे आदि की मिलावट। जैसे,—तमाकू में खमीरे की चाशनी।

क्रि० प्र०—देना।

३. चसका। मजा। जैसे,—अब उसे इसकी चाशनी मिल गई है। ४. नमूने का सोना जो सुनार को गहने बनाने के लिये सोना देनेवाला गाहक अपने पास रखता है और जिससे वह बने हुए गहने के सोने का मिलान करता है।

विशेष—जब किसी सोनार को बहुत सा सोना जेवर बनाने के लिये दिया जाता है तब बनानेवाला उसमें का थोड़ा सा (लगभग १ माशा) सोना निकालकर अपने पास रख लेता है और जब सोनार जेवर बनाकर लाता है तब वह उस जेवर के सोने को कसौटी पर कसकर अपने पास नमूने से मिलाता है। यदि जेवर का सोना नमूने से न मिला तो समझा जाता है कि सुनार ने सोना बदल लिया या उसमें कुछ मिला दिया।

चाशनीगिर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बादशाहों या नवाबों का वह कर्मचारी जो भोज्य पदार्थ का निरीक्षण चखकर करता था।

चाष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलकंठ पक्षी। उ०—चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहु सकल मंगल कहि देई।—मानस, १।३०३। २. चाहा पक्षी।

चाष[2]—संज्ञा पुं० [सं० √चक्ष्] आँख। नेत्र। उ०—अचरज देखि चाष लागै न निमेष कहुँ।—प्रिया (शब्द०)।

चास[1]—संज्ञा स्त्री० [देश० चास] १. जोत। बाह। २. दे० 'चस'।

चास[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी चीज की जाँच के लिये उसमें से निकाला हुआ भाग। चाशनी। उ०—चसकी चास लगायकै, खूब रँगी झकझोरा।—कबीर श०, भा० २, पृ० ८३।

चासना—क्रि० अ० [हिं० चास] जोतना।

चासनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाशनी] दे० 'चाशनी'।

चासा—संज्ञा पुं० [देश०] १. उड़ीसा की एक जाति जो किसानी पर निर्वाह करती है। २. हलवाहा। हल जोतनेवाला। ३. किसान। खेतिहर।

चासू—वि० [हिं०] दे० 'चुस्त'। उ०—बाँहे सुंदरि बहरखां, चासू

चुड़ स विचार। मनुहरि कटि तर मेखला, पग झाँझर झणकार।—ढोला०, दू० ४८१।

चाह[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा (आद्यंत विपर्यय) चाइ हिं० चाहि। अथवा सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह अथवा सं० √चक्ष् > चाख, चाह] १. इच्छा। अभिलाषा। २. प्रेम। अनुराग। प्रीति। ३. पूछ। आदर। कदर। जैसे,—अच्छे आदमी की सब जगह चाह है। उ०—जाकी यहाँ चाहना है ताकी वहाँ चाहना है, जाकी यहाँ चाह ना है वाकी वहाँ चाह ना।— पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५७२। ४. माँग। जरूरत। आवश्यकता।

चाह[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. खबर। समाचार। २. गुप्त भेद। मर्म। उ०—(क) राव रंक जँह लग सब जाती। सब की चाह लेति दिन राती।—जायसी (शब्द०)। (ख) पुर घर घर आनंद महा मुनि चाह सोहाई।—तुलसी (शब्द०)।

चाह[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाय] दे० 'चाय'।

चाह[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाव] दे० 'चाव'।

चाह[5]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कुआँ।

यौ०—चाहकन=कुआँ खोदनेवाला।

चाहक—Ⓟ संज्ञा स्त्री० [हिं० चाहना] १. चाहनेवाला। कामना करनेवाला। उ०—जस चाहक गाहक गाहक ही। ह० रासो, पृ० ४६। २. प्रेम करनेवाला।

चाहत—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाह+त (प्रत्य०)] चाह। प्रेम।

चाहत[2]—वि० इच्छित। उ०—पदमावति चाहत ऋतु पाई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ०, १४६।

चाहना[1]—क्रि० स० [हिं० चाह] १. इच्छा करना। अभिलाषा करना। २. प्रेम करना। स्नेह करना। प्यार करना ३. लेने या पाने की इच्छा प्रकट करना। माँगना। जैसे—हम तुमसे रुपया पैसा कुछ नहीं चाहते। ४. प्रयत्न करना। जोर करना। कोशिश करना। जैसे,—उसने बहुत चाहा कि हाथ छुड़ाकर निकल जायँ पर एक न चली। ५.चाह से देखना। ताकना। निहारना। उ०—पुनि रुपवंत बखानौ काहा। जावत जगत सबै मुख चाहा।—जायसी (शब्द०)। ६. ढूँढ़ना। खोजना। तलाश करना।

चाहना[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाहना] चाह। जरूरत। उ०—ग्वाल कवि वे ही परसिद्ध सिद्ध जो हैं जग, वे ही परसिद्ध ताकी यहाँ है सराहना। जाकी यहाँ चाहना है ताकी वहाँ चाहना है, जाकी यहाँ चाह ना है ताकी वहाँ चाह ना।—ग्वाल (शब्द०)।

चाहमानⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० चौहान] दे० चौहान।

चाहलⓅ—वि० [हिं० चाह+ल (प्रत्य०)] चाह से युक्त। चाहनेवाला। उ०—वरति चारु उप्पर उतंड अच्छित मुत्ताहल। ससि उप्पर ससि किरनि, धीर सुष्पे गुन चाहल।—पृ० रा०, १६। १५१।

चाहा[1]—संज्ञा पुं० [चाष] जल के निकट रहनेवाला बगले की तरह का एक पक्षी जिसका सारा शरीर गुलदार और पीठ सुनहरी होती है। उ०—उड़ आवानी, हिरहरी, वया, चाहा चुगते कर्दम, कृमि, तृन।—ग्राम्या०, पृ० ३८।

विशेष—यह जल अथवा कीचड़ के कीड़े मकोड़े खाता है। इसका लोग मांस के लिये शिकार करते हैं। यह पक्षी कई प्रकार का होता है।

यौ०—चाहा करमाठी—गर्दन सफेद, शेष सब काला। चाहा चुपका=चोंच और पैर लाल, शेष सब खाकी। चाहा वगोधी=पैर लाल, शेष सब शरीर चितकबरा। चाहा लमगोड़ा=चितकबरा, चोंच और पैर कुछ अधिक लंबे।

चाहाⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०, हिं० चाह] खबर। उ० को सिंहल पहुँचावै चाहा।—जायसी० ग्रं०, पृ० १५६।

चाहिⓅ—अव्य० [सं० चैव (=और भी, बंग० चेये चाइते] अपेक्षाकृत (अधिक)। बनिस्बत। से (बढ़कर)। उ० (क) ससि चौदस जो दई सँवारा। ताहू चाहि रूप उजियारा। जायसी (शब्द०)। (ख) मेघहिं चाहि अधिक वे कारे। भयो असूझ देखि अँधियारे।— जायसी (शब्द०)। (ग) जीव चाहि सो अधिक पियारी। माँगौ जीउ देउँ बलिहारी।—जायसी (शब्द०)। (घ) कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहि चाहि।— तुलसी (शब्द)।

चाहिⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाह] दे० 'चाह'। उ०—सुत को सुनो पुरान यों, लोगनि कह्यो निहोरि। चाहि चाहि सुत नाह मुख मुसिक्यानी मुख मोरि।—मति० ग्रं०, पृ० ४४४।

चाहिअⓅ—अव्य० [हिं० चाहिए] दे० 'चाहिए'। उ०—गुरुपहि चाहिअ ऊँच हिआऊ। दिन दिन ऊँचे राखै पाऊ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २३०।

चाहिए—अव्य० [हिं० चाहना] उचित है। उपयुक्त है। मुनासिब है। जैसे,—लड़कों को चाहिए कि अपने माँ बाप का कहना मानें।

विशेष—यह शब्द 'विधि' सूचित करने के लिये संयो क्रि० की भाँति क्रियाओं में भी लगता है; जैसे, करना चाहिए, आना चाहिए, तुम्हें कभी ऐसा नहीं करना चाहिए, इत्यादि।

चाही[1]—वि० स्त्री० [हिं० चाह] चाही हुई। जो चाही जाय। चहेती। प्यारी।

चाही[2]—वि० [फ़ा० चाह (=कुँवाँ)] (वह भूमि) जो कुँवें से सींची जाय।

चाही[3]Ⓟ—अव्य० [हिं० चाहि] दे० 'चाहि[1]'। उ०—अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही।— मानस, २। २१।

चाहुⓅ—अव्य० [हिं० चाहिए] दे० 'चाहिए'। उ०—केओ बोल देखए देहे जनु काहु। केओ बोल ओझा आनि चाहु।— विद्यापति, पृ० ३९९।

चाहुवानⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० चौहान] दे० 'चहुआन'। उ०—श्रीकंठ भट्ट गय अरि सुथान। वीसलदे भेटयौ चाहुवान।—पृ० रा०, १। ४४२।

चाहे—अव्य० [हिं० चाहना] १. जी चाहे। इच्छा हो। मन में आवे। जैसे,—(क) तुम जहाँ चाहे वहाँ जाओ, मुझसे मतलब। (ख) इनमें से चाहे जिसको लो। २. यदि जी चाहे तो। जैसा जी चाहे। या तो। उ०—चाहे वह लो चाहे यह। ३. होना चाहता हो। होने-

वाला हो। जैसे,—चाहे जो हो, हम वहाँ अवश्य जायँगे।

चिंकारा—संज्ञा पुं० [हिं० चिंकारा] दे० 'चिंकारा'।

चिंगट—संज्ञा पुं० [सं० चिङ्गट] [स्त्री० अल्पा चिंगटी] एक प्रकार की मछली। झिंगवा। झिंगा।

विशेष—यह मछली केकड़े की जाति के अंतर्गत है। दे० 'झिंगा'।

चिंगड़—संज्ञा पुं० [सं० चिङ्गड] झींगा मछली [को०]।

चिंगड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चिङ्गड़ा] झींगा मछली।

चिंगना—संज्ञा पुं० [देश०] १. किसी पक्षी, विशेषतः मुर्गी का छोटा बच्चा। २. किसी जानवर का बच्चा। ३. बच्चा। छोटा बालक।

चिंगारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिनगारी] दे० 'चिनगारी'।

चिंघाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० चीत्कार अथवा अनु०] १. चीख मारने का शब्द। चिल्लाहट। २. किसी जंतु का घोर शब्द। ३. हाथी की बोली। चिग्घाड़।

क्रि० प्र०—मारना।

चिंघाड़ना—क्रि० अ० [सं० चीत्कार] १. चीखना। चिल्लाना। २. हाथी का चिल्लाना। ३. गरजना।

चिंचन्न(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चिञ्चिनी] इमली का पेड़। उ०—कहूँ दाडिमी चूव चिंचन्न चंपी। मनो लाल मानिक्क पीरोज थप्पी।—पृ० रा०, २। ४७०।

चिंचा—संज्ञा स्त्री० [सं० चिञ्चा] १. इमली। २. इमली का फल या बीज। चिआँ। ३. गुंजा (को०)।

चिंचाटक—संज्ञा पुं० [सं० चिञ्चाटक] चेंच साग।

चिंचाम्ल—संज्ञा पुं० [सं० चिञ्चाम्ल] १. चूका या चूकनाम का साग। २. एक प्रकार का फेनक जो इमली से बनता था (को०)।

चिंचिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिञ्चिनी, या सं० तिन्तिड़ी] १. इमली का पेड़। २. इमली का फल। उ०—तेरी महिमा तें चलैं चिंचिनी-चियाँ रे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७१।

चिंची—संज्ञा स्त्री० [सं० चिञ्ची] गुंजा। घुँघची।

चिंचोटक—संज्ञा पुं० [सं० चिञ्चोटक] चेंच साग।

चिंजा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० चिरञ्जीवी] [स्त्री० चिंजी] लड़का। पुत्र। बेटा। उ०—गिरत गब्भ को है गरब्भ चिंजी चिंजा डर।—भूषण (शब्द०)।

चिंजी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिंजा] लड़की। कन्या।

चिंड—संज्ञा पुं० [सं० चिण्डी] नृत्य का एक भेद। नाच का एक भेद। नाच का एक ढंग। उ०—उलथा टँकी आलम सदिंड। पद पलटि हुरमयो निशंक चिंड।—केशव (शब्द०)।

चिंगुला—संज्ञा पुं० [हिं० चिंगुला] दे० 'चिंगुला'।

चिंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चिञ्चिका] गुंजा। घुँघची [को०]।

चिंचिड़—संज्ञा पुं० [सं० चिञ्चिड] परवल [को०]।

चिंत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्ता] चिंतना। चिंता। ध्यान। याद। सोच। फिक्र। उ०—सो करिअ चधारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा।—मानस, १। १८६।

चिंतक[1]—वि० [सं० चिन्तक] १. चिंतन करनेवाला। ध्यान रखनेवाला। उ०—(क) जे रघुबीर चरन चिंतक तिन्हकी गति प्रकट दिखाई। अविरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तब पाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६४। (ख) सिय पद चिंतक जे जग माहीं। साधु सिद्धि पावहिं सक नाहीं।—रामाश्वमेध (शब्द०)। २. सोचनेवाला। विचार करनेवाला। ध्यान करनेवाला।

यौ०—शुभचिंतक। हितचिंतक=खैरख्वाह।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में अधिक होता है।

चिंतक[2]—संज्ञा पुं० मनन या चिंतन करनेवाला व्यक्ति। दार्शनिक। विचारक।

चिंतन—संज्ञा पुं० [सं० चिन्तन] [वि० चिंतनीय, चिंतित, चिंत्य] ध्यान। बार बार स्मरण। किसी बात को बार बार मन में लाने की क्रिया। उ०—श्री रघुबीर चरन चिंतन तजि नाहीं ठौर कहूँ।—तुलसी (शब्द०)। २. विचार। विवेचन।

यौ०—चिंतनशील=विचारक।

चिंतना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० चिन्तन] १. चिंतन करना। ध्यान करना। स्मरण करना। उ०—सनक शंकर ध्यान ध्यावत निगम अबरन बरन। शेष शारद ऋषि सुनारद संत चिंतत चरन।—सूर (शब्द०)। २. सोचना। समझना। गौर करना। विचारना।

चिंतना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्तना] १. ध्यान। स्मरण। भावना। २. चिंता। सोच। ३. गंभीर विचार। मनन। चिंतन(को०)।

चिंतनीय—वि० [सं० चिन्तनीय] १. चिंतन करने योग्य। ध्यान करने योग्य। भावनीय। २. चिंता करने योग्य। जिसकी फिक्र उचित हो। ३. विचार करने योग्य। सोचने समझने योग्य। विचारणीय।

चिंतवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चिन्तन] दे० 'चिंतन'।

चिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्ता] १. ध्यान। भावना। २. वह भावना जो किसी प्राप्त दुःख या दुःख की आशंका आदि से हो। सोच। फिक्र। खटका। उ०—चिंता ज्वाल शरीर वन, दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुवाँ नहिं देखिए, उर अंतर धुँधुआय।—गिरधर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—चिंता लगना=चिंता का बराबर बना रहना। जैसे,—मुझे दिन रात इसी की चिंता लगी रहती है। कुछ चिंता नहीं=कुछ परवाह नहीं। कोई खटके की बात नहीं।

विशेष—साहित्य में चिंता करुण रस का व्यभिचारी भाव माना जाता है, अतः वियोग की दस दशाओं में से चिंता दूसरी दशा मानी गई है।

३. मनन। चिंतन। गंभीर विचार।

यौ०—चिंताधारा—विचार की दिशा।

चिंताकुल—वि० [सं० चिन्ताकुल] चिंता से व्यग्र।

चिंतापर—वि० [सं० चिन्तापर] चिंतामग्न। चिंतन में रत। उ०—हैं झाँक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष, अटल, कुछ चिंतापर।—पल्लव, पृ० ८।

चिंतातुर—वि० [सं० चिन्तातुर] चिंता से घबराया हुआ।

चिंतामग्न—वि० [सं० चिंतामग्न] गहरे विचार में लीन [को०]।

चिंतामणि—संज्ञा पुं० [सं० चिन्तामणि] १. कल्पित रत्न जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय वह पूर्ण कर देता है। उ०—रामचरित चिंतामणि चारू। संत सुमत तिय सुभग सिंगारू।—तुलसी (शब्द०)। २ ब्रह्मा। ३. परमेश्वर। ४. एक बुद्ध का नाम। ५. घोड़े के गले की एक शुभ भौंरी। ६. वह घोड़ा जिसके कंठ में उक्त भौंरी हो। ७ स्कंदपुराण (गणपतिकल्प) के अनुसार एक गणेश जिन्होंने कपिल के यहाँ जन्म लेकर महाबाहु नामक दैत्य से उस चिंतामणि का उद्धार किया था जिसे उसने कपिल से छीन लिया था। ८. यात्रा का एक योग। ९. वैद्यक में एक योग जो पारा, गंधक, अभ्रक और जयपाल के योग से बनता है। १०. सरस्वती देवी का मंत्र जिसे लोग बालक की जीभ पर विद्या आने के लिये लिखते हैं।

चिंतामनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चिन्तामणि] दे० 'चिंतामणि'।

चिंतावेश्म—संज्ञा पुं० [सं० चिन्तावेश्मन] सलाह करने का घर या स्थान। मंत्रणागृह। गोष्ठीगृह।

चिंति—संज्ञा पुं० [सं० चिन्ति] १. एक देश। २. इस देश का निवासी।

चिंतिड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्तिडी] इमली।

चिंतित—वि० [सं० चिन्तित] जिसे चिंता हो। चिंतायुक्त। फिक्रमंद।

चिंतिति—संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्तिति] चिंता [को०]।

चिंतिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्तित] दे० चिंतित [को०]।

चिंत्य—वि० [सं० चिन्त्य] भावनीय। विचारणीय। विचार करने योग्य।

चिंदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टुकड़ा।

मुहा०—चिंदी चिंदी करना=किसी वस्तु को ऐसा तोड़ना कि उसके छोटे छोटे टुकड़े हो जायँ। हिंदी की चिंदी निकालना=अत्यंत तुच्छ भूल निकालना। कुतर्क करना।

चिंधी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिंदी] दे० 'चिंदी'। उ०—फटी चिन्धियाँ पहने, भूखे भिखारी, फकत जानते हैं तेरी इंतजारी।—हिम० त०, पृ० ४८।

चिंपा—संज्ञा पुं० [देश०] एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, अरहर और तमाखू को खा डालता है।

चिंपाजी—संज्ञा पुं० [अं० शिंपंजी] अफ्रीका का एक बनमानुस जिसकी आकृति मनुष्य से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

विशेष—इसका सिर ऊपर से चिपटा, माथा दबा हुआ, मुँह बहुत चौड़ा, कान बड़े और उभड़े हुए, नाक चिपटी तथा शरीर के बाल काले और मोटे होते हैं। इसके सिर, कंधे और पीठ पर बाल घने और पेट तथा छाती पर कम होते हैं। इसका मुख बिना रोएँ का और रंग गहरा ऊदा होता है। दोनों ओर के गुलमुच्छे काले होते हैं। इसका कद भी मनुष्य के बराबर होता है। चिंपांजी झुंड में रहते हैं।

चिंआँ—संज्ञा पुं० [सं० चिञ्चा (=इमली)] इमली का बीज। उ०—तेरी महिमा ते चलैं चिंचिनी चिंआँ रे।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—चिंआँ सी=छोटी। बहुत छोटी। जैसे,—चिंआँ सी आँख।

चिंउँटा—संज्ञा पुं० [हिं० चिमटा] एक कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और जिस चीज को चिमटता है उसे जल्दी छोड़ता नहीं। चींटा।

मुहा०—गुड़ चिउँटा होना=एक दूसरे से गुथ जाना। चिमट जाना। गुत्थमगुत्था होना। चिउँटे के पर निकलना=ऐसा काम करना जिससे मृत्यु हो। मरने पर होना।

चिउँटों को जब पर निकलते हैं तब वे हवा में उड़ते हैं और गिर पड़कर मर जाते हैं।

चिंउँटिया रेंगान—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिउँटा+रेंगना] १. बहुत धीमी चाल। बहुत सुस्त चाल। अत्यंत मंद गमन। हौले हौले चलना। २. सिर के बालों की बड़ी बारीक कटाई जिसमें चिउँटी रेंगती हुई देख पड़े। (नाई)।

चिंउँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिमटना] एक बहुत छोटा कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और अपने नुकीले मुँह से काटता और चिमटता है। चींटी। पिपीलिका।

विशेष—चिउँटियों के मुँह के दोनों किनारों पर दो निकली हुई नोकें होती हैं जिनसे वे काटती या चिमटती हैं। इनकी जीभ एक नली के रूप में होती है जिससे वे रसीली चीजें चूसती हैं। चिंउँटी की अनेक जातियाँ होती है। मधुमक्खियों के समान चींटियों में भी नर, मादा के अतिरिक्त क्लीव होते हैं जो केवल कार्य करते हैं, संतानोत्पत्ति नहीं करते। चिंउँटियाँ झुंड में रहती है। इनके झुंड में व्यवस्था और नियम का अद्भुत पालन होता है। समुदाय के लिये भोजन संचित करके रखना, स्थान को रक्षित बनाना आदि कार्य बड़ी तत्परता के साथ किए जाते हैं। इनका श्रम और अध्यवसाय प्रसिद्ध है।

मुहा०—चिउँटी की चाल=बहुत सुस्त चाल। मंद गति।

चिंगना(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] बच्चा। उ०—अपने सुत के मूँड़न करावैं छूत लगन न पावै। अजया के चिंगना धर मारै तनिको दया न आवै।—कबीर श०, भाग० २, पृ० ४१।

चिंगुरना†—क्रि० अ० [अनुकरणमूलक देश० अथवा हिं० चंग] १. बहुत देर तक एक स्थिति में रहने के कारण किसी अंग का जल्दी न फैलना। नसों का इस प्रकार संकुचित होना कि हाथ पैर जल्दी फैलाते न बने। २. सिकुड़ना। पूरे फैलाव में बल पड़ने से कमी आना। जैसे,—कपड़े, कागज आदि का चिंगुरना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

चिंगुरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगुला।

चिंगुरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चिंगुरना] बहुत देर तक एक स्थिति

में रहने के कारण किसी अंग का ऐसा संकोच कि वह फैलाने से जल्दी न फैले ।

क्रि० प्र०—धरना । —पकड़ना । —लगना ।

चिंगुला—संज्ञा पुं० [देश०] १. बच्चा । बालक । २. किसी पक्षी का छोटा बच्चा ।

चिंहार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चिन्हार] दे० 'चिन्हार' । उ०—ग्रौर चिहार प्रीतम को लीजै । जो सिखवै सो कारज कीजै ।—इंद्रा०, पृ० ५१ ।

चिउड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चिपिट, प्रा० चिविड़] एक प्रकार का चर्वण जो हरे, भिगोए या उबाले हुए धान को कूटने से बनता हैं । चिड़वा । चूरा ।

चिउरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चिउड़ा] दे० 'चिउड़ा' । उ०—दधि चिउरा उपहार अपारा । भरि भरि कावरि चले कहारा ।—मानस, १।३०५ ।

चिउरा²—संज्ञा पुं० [हिं० चावल, चाउर] दे० 'चावल' । उ०—लै चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मिताई ।—तुलसी (शब्द०) । २. चिउली ।

चिउली¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. महुए की जाति का एक जंगली पेड़ जो हिमालय के आसपास भूटान तक होता है ।

विशेष—इसका पतझड़ होता है । इसमें से एक प्रकार का तेल निकलता है जो मक्खन की तरह जम जाता है । इस तेल के जमे हुए कतरों को चिउरा या चिउली का पानी या फुलवा भी कहते हैं । नेपाल आदि में इसे घी में मिलाते हैं ।

२. एक प्रकार का रंगीन रेशमी कपड़ा ।

पर्या०—चिउरा । फुलवारा । चार चूरी ।

चिउली²—संज्ञा स्त्री० [सं० चिपिट, प्रा० चिविड, चिविल] चिकनी सुपारी ।

चिक—संज्ञा स्त्री० [तु० चिक] १. बाँस या सरकंडे की तीलियों का बना हुआ झँझरीदार परदा । चिलमन । २. पशुओं को मारकर उनका मांस बेचनेवाला । बूचर । बकर कसाई (बूचरों की दुकान पर चिक टँगी रहती है इसी से यह शब्द बना है) । उ०—जाट जुलाह जुरे दरजी मरजी पै चढ़े चिक चोर चमारे ।—(शब्द०) ।

चिक²—संज्ञा स्त्री० [देश०] कमरका वह दर्द जो एकबारगी अधिक बल पड़ने के कारण होता है । चमक । चिलक । झटका । लचक ।

चिक³—संज्ञा स्त्री० [अं० चेक] किसी बंक या महाजन के नाम वह कागज जिसमें अपने खाते से रुपया देने का आदेश रहता है । हुंडी ।

चिकट¹—वि० [सं० चिक्लद नक्कण (भेद नि०)] १. चिकना और मैल से गंदा । जिस पर मैल जमा हो । मैला कुचैला । २. लसीला । चिपचिपा ।

चिकट²—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का रेशमी या टसर का कपड़ा । २. वे कपड़े जिन्हें भाई अपनी बहन को उस समय देता है जब बहिन की संतान का विवाह होता है ।

चिकटना—क्रि० अ० [हिं० चिकट या चिक्कट से नामिक धातु] जमी हुई मैल के कारण चिपचिपा होना ।

चिकटा—वि० [हिं० चिकट] दे० 'चिकट' । उ०—गुरु गुरु अंतर जानो भाई । गुरु चिकटा गुरु चोख जनाई ।—तुरसी सा०, पृ० ३११ ।

चिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जो हिमालय पर ८,००० फुट की ऊँचाई तक मिलता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और पीलापन लिए होती है । अमृतसर में इनकी कंघियाँ बहुत अच्छी बनती हैं । कठौत आदि बनाने के काम में भी यह लकड़ी आती है । इसके पत्तों की खाद बनती है । फूलों में मीठी सुगंध होती है ।

चिकन¹—[सं० चिक्कन] दे० 'चिकना' ।

यौ०—चिकनमुहाँ=(१) भलमुहाँ बननेवाला । चिकनी चुपड़ी बात करनेवाला । (२) अच्छी सूरतवाला ।

चिकन²—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का महीन सूती कपड़ा जिसपर उभड़े हुए बेल या बूटे बने रहते हैं । कसीदा काढ़ा हुआ कपड़ा । सूजनकारी का कपड़ा ।

यौ०—चिकनकारी । चिकनगर ।

चिकनई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकनई] दे० 'चिकनाई' । उ०—पत बचाती है उसी की चिकनई । गाल का तिल क्यों न हो बेतेल ही ।—चोखे०, पृ० ७२ ।

चिकनकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चिकन बनाने का काम ।

चिकनगर, चिकनदोज—संज्ञा पुं० [फ़ा० चिकनगर, चिकनदोज] चिकन काढ़नेवाला । चिकन का काम करनेवाला ।

चिकना—वि० [सं० चिक्कण] [वि० स्त्री० चिकनी] १. जो छूने में खुरदार न हो । जो ऊबड़ खाबड़ न हो । जिसपर उँगली फेरने से कहीं उभाड़ आदि न मालूम हो । जो साफ और बराबर हो । जैसे,—चिकनी चौकी, चिकनी मेज । २. जिसपर सरकने में कुछ रुकावट न जान पड़े । जैसे,—यहाँ की मिट्टी बड़ी चिकनी है, पैर फिसल जायगा ।

मुहा०—चिकना देख फिसल पड़ना—केवल सौंदर्य या धन देखकर रीझ जाना । धन या रूप पर लुभा जाना ।

३. जिसमें रुखाई न हो । जिसमें तेल आदि का गीलापन हो । जिसमें तेल लगा हो । स्निग्ध । तेलिया । तर्लोस ।

मुहा०—चिकना घड़ा=(१) वह जिसपर अच्छी बातों का कुछ असर न पड़े । ओछा । निर्लज्ज । बेहया । (२) जिसके पेट में कोई बात न पचे । क्षुद्र स्वभाव का । चिकने घड़ पर पानी पड़ना=किसी पर अच्छी बात का प्रभाव न पड़ना ।

४. साफ सुथरा । सँवारा हुआ । जैसे,—तुम्हारा चिकना मुँह देखकर कोई रुपया नहीं दिए देता ।

मुहा०—चिकना चुपड़ा=बना ठना । छैल चिकनियाँ । सँवार सिंगार किए हुए । चिकनी चुपड़ी=दे० 'चिकनी चुपड़ी बातें' । चिकनी चुपड़ी बातें=मीठी बातें जो किसी को प्रसन्न करने, बहकाने या धोखा देने के लिये कही जायँ । बनावटी स्नेह से भरी बातें । कृत्रिम मधुर भाषण । जैसे,—उनकी चिकनी चुपड़ी बातों में मत आना । चिकना मुँह=सुंदर और सँवारा हुआ चेहरा । चिकने मुँह का ठग=ऐसा धूर्त जो देखने में और

बातचीत से भलामानुस जान पड़ता हो । वंचक । ५. चिकनी चुपड़ी बातें कहनेवाला । केवल दूसरों को प्रसन्न करने के लिये मीठी बातें कहनेवाला । लप्पो चप्पो करनेवाला । चाटुकार । खुशामदी । ६. स्नेही । अनुरागी । प्रेमी । उ०—जे नर रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह । तुलसी ते प्रिय राम को कानन बसहिं कि गेह ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०८ ।

चिकना²—संज्ञा पुं० तेल, घी, चरबी आदि चिकने पदार्थ । जैसे, इसमें चिकना कम देना ।

चिकनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकना+ई (प्रत्य०)] १. चिकना होने का भाव । चिकनापन । चिकनाहट । २ स्निग्धता । सरसता । ३. घी, तेल, चरबी आदि चिकने पदार्थ ।

चिकनाना¹—क्रि० स० [हिं० चिकना+ना (प्रत्य०)] १. चिकना करना । खुरदुरा न रहने देना । बराबर करके साफ करना । २. रूखा न रहने देना । तेलौंस करना । स्निग्ध करना । ३. मैल आदि साफ करके निखारना । साफ सुथरा करना । सँवारना ।

संयो० क्रि०—देना । लेना ।

चिकनाना²—क्रि० अ० १. चिकना होना । २. स्निग्ध होना । ३. चरबी से युक्त होना । हृष्ट पुष्ट होना । मोटाना । जैसे,—देखो ये जब से यहाँ रहने लगे हैं, कैसे चिकना आए हैं । ४. स्नेहयुक्त होना । अनुरक्त होना । प्रेमपूर्ण होना । उ०—नहिं नचाइ चितवति दृगनु, नहिं बोलति मुसकाइ । ज्यौं ज्यौं रुखी रुख करति, त्यौं त्यौं चितु चिकनाइ ।—बिहारी र०, दो० ३६४ ।

चिकनापन—संज्ञा पुं० [हिं० चिकना+पन (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव । चिकनाई । चिकनाहट ।

चिकनारा—वि० [हिं चिकना+आरा (प्रत्य०)] दे० 'चिकना' । उ०—केस सुदेस चमक चिकनारे कारे अति सटकारे । भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१७ ।

चिकनावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकना+वट (प्रत्य०)] दे० 'चिकनाहट' ।

चिकनाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकना+हट (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव । चिक्कणता । चिकनापन ।

चिकनियाँ—वि० [हिं० चिकन+इयाँ (प्रत्य०)] दे० 'चिकनिया' । उ० (क) सूरदास प्रभु वाके बस परि अब हरि भए चिकनियाँ ।—सूर (शब्द०) । (ख) या माया रघुनाथ की बौरी खेलन चली अहेरा हो । चतुर चिकनियाँ चुनि चुनि मारै काहु न राखै नेरा हो ।—कबीर (शब्द०) ।

चिकनिया—वि० [हिं० चिकना] छैला । शौकीन । बाँका । बना ठना । उ०—सबही ब्रज के लोक चिकनिया मेरे भाएँ घास । अब तौ इहै बसी री माई नहिं मानौंगी त्रास ।—सूर (शब्द०) ।

यौ०—छैल चिकनियाँ ।

चिकनी¹—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'चिकना' ।

चिकनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चिकनी सुपारी' ।

चिकनी मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकनी+मिट्टी] १. काले रंग की लसदार मिट्टी जो सिर मलने आदि के काम में आती है । करैली मिट्टी । काली मिट्टी ।

विशेष—चना, अलसी, जो आदि इस मिट्टी में बहुत अधिक होते हैं ।

२. पीले या सफेद रंग की साफ लसीली मिट्टी जो बड़ी नदियों के ऊँचे करारों में होती है और लीपने पोतने के काम में आती है ।

चिकनी सुपारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिक्कणी] एक प्रकार की उबाली हुई सुपारी जो चिपटी होती है । चिकनी डली ।

विशेष—दक्षिण के कनारा नामक प्रदेश में यह सुपारी उबालकर बनाई जाती है, इसी से इसे दक्खिनी सुपारी भी कहते हैं ।

चिमर†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा । चिकट ।

चिकरना—क्रि० अ० [सं० चीत्कार, प्रा० चीत्कार, चिक्कार] चीत्कार करना । जोर से चिल्लाना । चिंघाड़ना । चीखना ।

चिकवा¹—संज्ञा पुं० [तु० चिक+हिं० वा (प्रत्य०)] बकर कसाब । मांस बेचनेवाला । बूचड़ । चिक ।

चिकवा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशमी या टसर का कपड़ा । चिकट । उ०—चिकवा चीर मघौना लोने । मोति लाग औ छापे सोने ।—जायसी (शब्द०) ।

चिकार—संज्ञा पुं० [सं० चीत्कार, प्रा० चिक्कार] चीत्कार । चिल्लाहट । चिंघाड़ । उ०—परेउ भूमि करि घोर चिकारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।—होना ।

चिकारना—क्रि० अ० [हिं० चिकार के नामिक धातु] चीत्कार करना । चिंघाड़ना ।

चिकारा—संज्ञा पुं० [हिं० चिकार] [स्त्री० अल्पा चिकारी] १. सारंगी की तरह का एक बाजा ।

विशेष—इस बाजे में जिसमें नीचे की ओर चमड़े से मढ़ा कटोरा रहता है और ऊपर डाँड़ी निकली रहती है । चमड़े के ऊपर से गए हुए तारों या घोड़े के बालों को कमानी से रेतने से शब्द निकलता है ।

२. हिरन की जाति का एक जंगली जानवर जो बहुत फुरतीला होता है । इसे छिकरा भी कहते हैं ।

चिकारी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकारा] छोटा चिकारा ।

चिकारी²†—संज्ञा स्त्री० [देश०] मच्छड़ की तरह का एक छोटा कीड़ा ।

चिकित—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

चिकितान—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

चिकितायन—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित ऋषि के वंशज ।

चिकित्सक—संज्ञा पुं० [सं०] रोग दूर करने का उपाय करनेवाला । वैद्य ।

चिकित्सन—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा करना [को०] ।

चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० चिकित्सित, चिकित्स्य] १. रोग दूर करने की युक्ति या क्रिया । शरीर स्वस्थ या नीरोग करने का उपाय । रोगशांति का उपाय । रोगप्रतीकार । इलाज ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विशेष—आयुर्वेद के दो विभाग हैं, एक तो निदान जिसमें पहचान के लिये रोगों के लक्षण आदि का वर्णन रहता है और दूसरा चिकित्सा जिसमें भिन्न भिन्न रोगों के लिये भिन्न भिन्न ओषधियों की व्यवस्था रहती है। चिकित्सा तीन प्रकार की मानी गई है—दैवी, आसुरी और मानुषी। जिसमें पारे की प्रधानता हो वह दैवी, जो छह रसों के द्वारा की जाय वह मानुषी और जो अस्त्र प्रयोग या चीर फाड़ के द्वारा हो वह आसुरी कहलाती है।

२. वैद्य का व्यवसाय या काम। वैदगी।

चिकित्सालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ रोगियों के आरोग्य का प्रयत्न किया जाय। शफाखाना। अस्पताल।

चिकित्सावकाश—संज्ञा पुं० [सं०] वह अवकाश जो किसी कर्मचारी को बीमारी के इलाज आदि के लिये चिकित्सक के पत्र के आधार पर दिया जाता है।

चिकित्साव्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्य एवं चिकित्सक का व्यवसाय या पेशा।

चिकित्साशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें रोग के लक्षण, और उपचार आदि की विवेचना रहती है।

चिकित्सित¹—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा हो गई हो। जिसकी दवा हुई हो।

चिकित्सित²—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

चिकित्स्य—वि० [सं०] जो चिकित्सा के योग्य हो। साध्य।

चिकिन¹—वि० [सं०] चिपटी नाकवाला [को०]।

चिकिन†²—संज्ञा पुं० [हिं० चिकन] दे० 'चिकन'।

चिकिल—संज्ञा पुं० [सं०] कीचड़। पंक।

चिकीर्षक—वि० [सं०] कार्य करने की इच्छा करनेवाला [को०]।

चिकीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० चिकीर्षित, चिकीर्ष्य] करने की इच्छा। जैसे,—नाश-कर्म-चिकीर्षा।

चिकीर्षित¹—वि० [सं०] करने के लिये इच्छित।

चिकीर्षित²—संज्ञा पुं० इच्छा। मनोरथ। तात्पर्य।

चिकुटी⑨—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चिकोटी', 'चुटकी'। उ०—भृकुटी नचाइ भाल त्रिकुटी उचाई कर चिकुटी रचाइ चित चायन चुनति फिरै।—देव (शब्द०)।

चिकुर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिर के बाल। केश। २. पर्वत। ३. साँप आदि रेंगनेवाले जंतु। सरीसृप। ४. एक पेड़ का नाम। ५. एक पक्षी का नाम। ६. एक सर्प का नाम। ७ छछूँदर। गिलहरी। चिखुरा।

यौ०- चिकुरकलाप। चिकुरनिकर। चिकुरपक्ष। चिकुरपाश। चिकुर भार। चिकुर हस्त=केशों की लट। बालों की सजावट जुल्फ।

चिकुर²—वि० चंचल। चपल।

चिकुला—संज्ञा पुं० [सं० चिकुर] चिड़िया का बच्चा।

चिकूर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिकुर'।

चिकोटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चुटकी', 'चिमटी'।

क्रि० प्र०—काटना।

चिक्क¹—वि० [सं०] चिपटी नाकवाला।

चिक्क²—संज्ञा पुं० छछूँदर।

चिक्कट¹—संज्ञा पुं० [सं० चिक्कण (भेद नि०) अथवा हिं० चिकना+कीट या काट] गर्द, तेल आदि की मैल जो कहीं जम गई हो। कीट।

चिक्कट²—वि० जिसपर मैल जमी हो। मैला कुचैला। गंदा।

चिक्कण¹—वि० [सं०] चिकना।

चिक्कण²—संज्ञा पुं० १. सुपारी का पेड़ या फल। २. हड़। हर्रे। ३. आयुर्वेद में पाक या आँच की तीन अवस्थाओं में से एक। कुछ तेज आँच।

चिक्कणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी।

चिक्कणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुपारी। २. हड़।

चिक्कदेव—संज्ञा पुं० [सं०] मैसूर के एक यादववंशी राजा का नाम जिसने ई० सन् १६७२ से लेकर १७०४ तक राज्य किया था।

चिक्कन†—वि० [सं० चिक्कण] दे० 'चिकना', 'चिक्कण'।

चिक्करना—क्रि० अ० [सं० चीत्कार] चीत्कार करना। चिंघाड़ना। चीखना। जोर से चिल्लाना। उ०—चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।—मानस, १।२६१।

चिक्कस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जौ का आटा। २. हलदी और तेल में मिला हुआ जौ का आटा जो जनेऊ या ब्याह में उबटन की तरह मला जाता है।

चिक्कस²—संज्ञा पुं० [देश०] लोहे, पीतल आदि के छड़ का बना हुआ वह अड्डा जिसपर बुलबुल, तोते आदि बैठाए जाते हैं।

चिक्का¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुपारी। २. चूहा (को०)। ३. हाथी के शरीर का मध्यवर्ती भागविशेष। मातंग (को०)।

चिक्का²†—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० चक्रक] १. दे० 'चक्का'। २ ढेला। ३. एक खेल।

चिक्कार—संज्ञा पुं० [सं० चीत्कार] दे० 'चिकार'।

चिक्कारना⑨—क्रि० अ० [सं० चित्कार, हिं० चिक्कार+ना (प्रत्य०)] चिग्घाड़ना।

चिक्कारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चिकारा'।

चिक्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्कार] चिक्कार। चिकारना। उ०—चटकत गायक मानहु बिज्जु पतन चिक्कारी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २७।

चिक्किण—वि० [सं०] दे० 'चिक्कण' [को०]।

चिक्किर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चूहा जिसके काटने से सूजन और सिर में पीड़ा आदि होती है। २. चिखुरा। गिलहरी।

चिक्लिद—संज्ञा पुं० [सं०] १. नमी। आर्द्रता। २. चंद्रमा [को०]।

चिखर†—संज्ञा पुं० [देश०] चने का छिलका। चने की भूसी। चने की कराई।

चिखल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कीचड़। २. दलदल [को०]।

चिखुर—संज्ञा पुं० [सं० चिक्कर, हिं० चिखुरा] [स्त्री० चिखुरी] चिखुरा। गिलहरी। उ०—कीचस आगे चिखुर बियानी मालु भई है भक्ता।—संत०, दरिया, पृ० १२७।

चिखुरन--संज्ञा स्त्री० [देश० अथवा हिं०] 'खुरचन' का वर्ण विपर्यय । वह घास जो खेत को निराकर निकाली जाती है ।

चिखुरना--क्रि० स० [देश०] जोते हुए खेत में से घास निकालकर बाहर करना ।

चिखुरा†--संज्ञा पुं० [सं० चिक्किर या चिकुर] [स्त्री० चिखुरी] गिलहरी ।

चिखुराई--संज्ञा स्त्री० [हिं० चिखुरना] १. चिखुरने का काम या भाव । २. चिखुरने की मजदूरी ।

चिखुरी--संज्ञा स्त्री० [हिं० चिखुरा] गिलहरी ।

चिखौनी--संज्ञा स्त्री० [हिं० चीखना] १. चीखने या चखने की क्रिया । स्वाद लेने या देने की क्रिया । २. चखने की वस्तु । स्वाद लेने की वस्तु । चटपटे स्वाद की थोड़ी सी वस्तु ।

चिगछ(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० चिकित्सा, प्रा० चिगिच्छा] चिकित्सा । दवा । रोगप्रतीकार । इलाज । उ०--गज चिगछ इच्छ जानंत सव्व । नाटिक निवास सम सेस कव्व ।--पृ० रा०, ६ । ६ ।

यौ०--चिगछगुन [हिं० चिगछ+गुन] चिकित्सा की विद्या । उ०--मुनिवर तब तहँ प्राय के गज चिगछगुन कीन । उ०--रा० २७ । ७ ।

चिगता†--संज्ञा पुं० [तु० चगत्ता] चगताई वंश का मुसलमान । उ०--चिगतां उथेल पथरे चरित, रसते मेल अमेल रुग ।--रा० रू०--पृ० ६६ ।

चिगवा--संज्ञा स्त्री०[देश०] दे० 'चिनगी' । उ०--नंद सूर दोइ भाठी कीन्हीं, सुषमनि चिगवा लागी रे ।--कबीर ग्रं०, पृ० ११० ।

चिगना, चिगाना--क्रि० स० [देश०] दे० 'चिनना' । उ०--दोइ पुड जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महारस भारी । काम क्रोध दोइ किया बलीता छूटि गई संसारी ।--कबीर ग्रं०, पृ० ११० ।

चिग्ग--संज्ञा स्त्री० [हिं० चिक] दे० 'चिक' ।

चिघरना†--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'चिघाड़ना' । उ०- मंदिर में वदी हैं चारण, चिघर रहे हैं वन में वारण ।--अर्चना, पृ० ५१ ।

चिग्घाड़--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चिघाड़' ।

चिंघाड़--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चिघाड़' ।

चिग्घाड़ना--क्रि० अ० [हिं० चिग्घाड़+ना (प्रत्य०)] दे० 'चिंघाड़ना' ।

चिग्घार--संज्ञा स्त्री० [हिं० चिग्घाड़]दे० 'चिंघाड़' । उ०--सुनि रोदन चिग्घार दयावंश बढ़ो पंडित ।--प्रेमघन, भा० १, पृ० २१ ।

चिचटका†--वि० [हिं० चीकट] मैला । गंदा ।

चिचड़ा--संज्ञा पुं०[देश०]१. डेढ़, दो हाथ ऊँचा एक पौधा । अपामार्ग ।

विशेष--इसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं । गाँठों के दोनों ओर पतली टहनियाँ या पत्तियाँ लगी होती हैं । पत्तियाँ दो तीन अंगुल लंबी, नसदार और गोल होती हैं । फूल और बीज लंबी लंबी सींकों में गुच्छे होते हैं । बीज जीरे के आकार के होते हैं और कुछ नुकीले तथा रोएँदार होने के कारण कपड़ों से कभी कभी लिपट जाते हैं । इस पौधे की जड़ मूसला होती है । इसकी जड़, पत्ती, आदि सब दवा के काम में आती है । ऋषिपंचमी का व्रत रहनेवाले इसकी दतुवन करते हैं । कर्मकांडी इसे बहुत पवित्र मानते हैं । श्रावणी उपाकर्म के गणस्नान के अनंतर इससे मार्जन करने का विधान है । यह पौधा बरसात में अन्य घासों के साथ उगता है और बहुत दिनों तक रहता है ।

पर्या०--अपामार्ग । ओंगा । झंझाभार । लटजीरा ।

२. किलनी या किल्नी नाम का कीड़ा जो पशुओं के शरीर में चिमटकर उनका रक्त पीता है ।

चिचड़ी--संज्ञा स्त्री० [?] एक कीड़ा जो चौपायों या कुत्तों बिल्लियों के शरीर से चिमटा रहता है और उनका खून पिया करता है । किलनी । किल्नी ।

मुहा०--चिचड़ी सा चमटना=पीछा न छोड़ना । साथ में बना रहना । पिंड न छोड़ना ।

चिचान(पु)--संज्ञा पुं० [सं० सिचान] बाज पक्षी । उ०--प्राज काल्हि पल छिनक में मारग मेला हिए । काल चिचाना नर चिड़ा ओजड़ औ औचित । कबीर (शब्द०) ।

चिचावना--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'चिचियाना' । उ०--काल चिचावत है कहा तू जाग पियारे मित । कबीर सा० सं०, पृ० ७८ ।

चिचिंगा--संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'चचींडा' ।

चिचिंड--संज्ञा पुं० [सं० चिचिण्ड] चचींडा । चिचिंडा ।

चिचिंडा--संज्ञा पुं० [सं० चिचिण्ड] दे० 'चचींडा' ।

चिचियाना†--क्रि० अ० [अनु० चीं चीं] चिल्लाना । चीखना । हल्ला करना । उ० नंदराय के भौन में खड़े करत सब गाज। जय जय करि चिचियाइए तबै मिलत ब्रजराज । सुकवि (शब्द०) । (ख) चंगुल तर चिचियैहो हो, तब मिलिहै मिजाज ।--पलटू०, भाग ३, पृ० १६ ।

चिचियाहट संज्ञा संज्ञा [हिं० चिचियाना] चिल्लाहट ।

चिचुकना--क्रि० अ० [अनु० या देश०] दे० 'चुचुकना' ।

चिचेंडा--संज्ञा पुं० [हिं० चचींडा] दे० 'चचींडा' ।

चिचोड़ना†--क्रि० स० [अनु० या देश०] दे० 'चचोड़ना' ।

चिचोड़वाना--क्रि० स० [हिं० चिचोड़ना का प्रे० रूप] दे० 'चचोड़वाना' ।

चिच्चिटिंग--संज्ञा पुं० [सं० चिच्चिटिङ्ग] एक विषैला कीड़ा [को०] ।

चिच्छक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शक्ति जिसका नाम चित् है । चित् शक्ति । परमात्मा ।

चिच्छल--संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक देश का नाम । २. इस देश का निवासी ।

चिच्याना(पु)--क्रि० अ० [अनु०] दे० 'चिचियाना' । उ०--चिच्याइ मरै चुप साधै की चातक स्वाति समैं ही सनै सु बिसेखो ।--केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ७१ ।

चिजारा--संज्ञा पुं०[हिं० चिनना ?] कारीगर । मेमार । उ०--(क) कबिरा देवल ढहि परा भई ईंट संहार । कोई चिजारा चूनिया, मिला न दूजी बार ।--कबीर (शब्द०) । (ख) करी चिजारा प्रीतड़ी ज्यों ढहै न दूजी बार ।--(शब्द०) ।

चिज्जड़ वि० [सं० चिज्जड़] जो जड़ एवं चेतन दोनों हो [को०] ।

चिट--संज्ञा स्त्री० [हिं० चीड़ना] १ कागज का टुकड़ा । २. पुरजा । रुक्का । छोटा पत्र । ३. कपड़े आदि का छोटा टुकड़ा ।

क्रि० प्र०--निकलना । फटना ।

चिटक--वि० [अनु०] चिक्कर । मैला । गंदा ।

चिटकना क्रि०अ० [अनु०] १. सूखकर जगह जगह पर फटना। खरा होकर दरकना। रुखाई के कारण ऊपरी सतह में दराज पड़ना। जैसे,—चौकी धूप में मत रखो, चिटक जायगी। २. गठीली लकड़ी आदि का जलते समय 'चिट चिट' शब्द करना। ३ चिढ़ना। चिड़चिड़ाना। बिगड़ना। जैसे, तुम्हें तो मैं कुछ कहता नहीं, तुम क्यों चिटकते हो? ४. शीशे आदि का फटना ५. शुष्क होना। सूखना। उ०—सूखे ओठ गला, चिटका, मुख लटका प्राण पियासे।—क्वासि, पृ० ७१।

चिटका—संज्ञा पुं० [हिं० चिता] चिता।

चिटकाना क्रि० स० [अनु०] १. किसी सूखी हुई चीज को तोड़ना या तड़काना। २. गठीली लकड़ी आदि को जलाकर उसमें से 'चिट चट' शब्द उत्पन्न करना। ३. खिझाना। ऐसी बात कहना जिससे कोई चिढ़े। ४. ज्यादा आँच या ताप देकर शीशे को टूटने देना।

चिटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिट्की] दे० 'चिट्की'। उ०—चिटकी देइबजावै तारी। अइया मनसहूँ बूझि तुम्हारी।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३२५।

चिटखनी—संज्ञा स्त्री० [अनु० या हिं० सिटकिनी] दे० 'सिटकिनी'। उ०—पर भीतर से चिटखनी लगी हुई थी और किवाड़ नहीं खुला।—संन्यासी, पृ० ४६४।

चिटनवीस—संज्ञा पुं० [हिं० चिट+फ़ा० नवीस] चिट्ठीपत्री, हिसाब किताब आदि लिखनेवाला। लेखक। मुहर्रिर। कारिंदा।

चिटनीस संज्ञा पुं० [मरा० चिटणीस, हिं० चिटनवीस] लेखक। उ०—उसको त्वरा से लिखी जाने योग्य बनाने के विचार से शिवाजी के चिटनीस (मंत्री, सरिश्तेदार) बालाजी अवाजी ने इसके अक्षरों को मोड़ (तोड़ मरोड़) कर नई लिपि तैयार की जिससे इसको मोड़ी कहते हैं।—भा० प्रा० लि०, पृ० १३०।

चिटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रशास्त्र के अनुसार चांडाल वेशधारिणी योगिनी, जिसकी उपासना वशीकरण के लिये की जाती है।

चिटुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुटकी] दे० 'चुटकी'।

चिट्ट संज्ञा स्त्री० [हिं० चिट] दे० 'चिट'।

चिट्टा¹—वि० [सं० सित, प्रा० चित] वि० स्त्री० चिट्टी] १. सफेद। धवल। श्वेत। २. गोरा। जैसे, गोरा चिट्टा।

चिट्टा²—संज्ञा पुं० कुछ विशेष प्रकार की मछलियों के ऊपर का सीप के आकार का सफेद छिलका या पपड़ी। यह दुअन्नी से लेकर रुपए तक के बराबर होता है और इससे रेशम के लिये माँड़ी तैयार की जाती है।

चिट्टा³—संज्ञा पुं० [देश०] रुपया।—(दलाल)।

चिट्टा⁴—संज्ञा पुं० [हिं० चिटकना] वह उत्तेजना जो किसी को कोई ऐसा काम करने के लिये दी जाय जिसमें उसकी हानि या हँसी हो। झूठा बढ़ावा।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—चिट्टा देना, चिट्टा लड़ाना—झूठा बढ़ावा देना।

चिट्ठा—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिट] दे० 'चिट'।

चिट्ठा संज्ञा पुं० [हिं० चिट] १. हिसाब की बही। खाता। लेखा। जमाखर्च या लेनदेन की किताब।

मुहा०—चिट्ठा बाँधना=लेखा तैयार करना।

२. वह कागज जिसपर वर्ष भर का हिसाब जाँचकर नफा नुकसान दिखाया जाता है। फर्द। ३. किसी रकम की सिलसिलेवार फिहरिस्त। सूची। टिक्की। जैसे, चंदे का चिट्ठा। उ०—चिट्ठा सकल नरेसन केरे। आवहिं चले दुगामन नेरे।—सबल (शब्द०)। ४. वह रुपया जो प्रतिदिन प्रति सप्ताह या प्रति मास मजदूरी या तनखाह के रूप में बाँटा जाय। उ०—दिय चिट्ठा चाकरी चुकाई। बसे सबै सेवा मन लाई।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चुकाना।—बाँटना।—बाँटना।

५. खर्च की फिहरिस्त। उन वस्तुओं की मूल्य सहित सूची जो किसी कार्य के लिये आवश्यक हों। लगनेवाले खर्च का ब्योरा। जैसे,—इस मकान में तुम्हारा अधिक नहीं लगेगा, बस २००) का चिट्ठा है। ६. ब्योरा। विवरण।

मुहा०—कच्चा चिट्ठा=पूरा और ठीक ठीक वृत्तांत। ऐसा सविस्तर वृत्तांत जिसमें कोई बात छिपाई न गई हो। कच्चा चिट्ठा खोलना=गुप्त बातों को पूरे ब्योरे के साथ प्रकट करना। गुप्त वृत्तांत कहना। रहस्य उद्घाटित करना।

७. सीधा जो बाँटा जाय। रसद।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—बँटना।—बाँटना।—मिलना।—खोलना।

चिट्ठी संज्ञा स्त्री० [हिं० चिट] १. वह कागज जिसपर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये किसी प्रकार का समाचार आदि लिखा हो। पत्र। खत।

क्रि० प्र०—देना।—भेजना।—मँगाना।—पढ़ना, आदि।

यौ०—चिट्ठीरसाँ। चिट्ठी पत्री।

२. वह छोटा पुरजा जो किसी माल विशेषतः कपड़े आदि के साथ रहता है और जिसपर उस माल का दाम लिखा रहता है। ३. वह छोटा पुरजा या कागज जिसपर कुछ लिखा हो। ४. एक क्रिया जिसके द्वारा यह निश्चय किया जाता है कि कोई माल पाने या कोई काम करने का अधिकारी कौन बनाया जाय।

विशेष—जितने आदमी अधिकारी बनने योग्य होते हैं उन सब के नाम या संकेत अलग अलग कागज के छोटे टुकड़ों पर लिखकर उनकी गोलियाँ एक में मिलाकर उनमें से कोई एक गोली उठा ली जाती है। जिसके नाम की गोली निकलती है वह उसी माल के पाने या काम करने का अधिकारी समझा जाता है। इस क्रिया से लोग प्रायः यह भी निश्चय किया करते हैं कि कोई काम (जैसे, विवाह आदि) करना चाहिए या नहीं।

क्रि० प्र०—उठना।—डालना।—पड़ना।

५. किसी बात का आज्ञापत्र।

मुहा०—चिट्ठी करना=किसी के नाम हुंडी करना। किसी को रुपए दे देने की लिखित आज्ञा देना। चिट्ठी डालना=लाटरी डालना।

६. किसी प्रकार का निमंत्रणपत्र।

क्रि० प्र०—बँटना।

चिट्ठीपत्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिट्ठी+पत्री] १. पत्र। खत। जैसे,—वहाँ से कोई चिट्ठीपत्री आती है। २. पत्रव्यवहार। खत किताबत। जैसे,—आपसे उनसे चिट्ठीपत्री है।

क्रि० प्र०—होना।

चिट्ठीरसाँ—संज्ञा पुं० [हिं० चिट्ठी+फा० रसाँ] चिट्ठी बाँटनेवाला। डाकिया। हरकारा। पोस्टमैन।

चिड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक या देश०] चिड़िया।

चिड़चिड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० चिचिण्ड अथवा अनुकरणात्मक देश०] दे० 'चिचड़ा'।

चिड़चिड़ा²—संज्ञा पुं० [अनु०] एक छोटा पक्षी जिसका रंग भूरा होता है।

चिड़चिड़ा³—वि० [हिं० चिड़चिड़ाना] शीघ्र चिढ़नेवाला। थोड़ी सी बात पर अप्रसन्न होनेवाला। तुनकमिजाज।—जैसे,—चिड़चिड़ा आदमी, चिड़चिड़ा स्वभाव।

चिड़चिड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] १. गठीली लकड़ी, पानी मिले हुए तेल आदि के जलने में चिड़चिड़ शब्द होना। २. सूखकर जगह जगह से फटना। खरा होकर दरकना। रुखाई के कारण ऊपरी सतह का पपड़ी की तरह हो जाना। जैसे,—जाड़े का हवा ले ओंठ चिड़चिड़ाना, रुखाई मे बदन चिड़चिड़ाना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. चिढ़ना। बिगड़ना। क्रोध लिए हुए बोलना। झुँझलाना।

संयो० क्रि०—उठना।

चिड़चिड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़चिड़ाना+हट (प्रत्य०)] १. चिड़चिड़ाने का भाव। २. चिढ़ने का भाव।

चिड़वा—संज्ञा पुं० [हिं० चिविट] हरे, भिगोए या कुछ उबाले हुए धान को भाड़ में भूनकर और कूटकर बनाया हुआ चिपटा दाना। चिउड़ा (बहु० में 'चिड़वे' अधिक बोलते हैं)।

विशेष—इसे लोग सूखा तथा दूध दही में भिगोकर भी खाते हैं।

चिड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चटक] गौरा पक्षी। गोरैया का नर।

चिड़ाना—क्रि० स० [हिं० चिढ़ाना] दे० 'चिढ़ाना'।

चिड़ारा—संज्ञा पुं० [देश०] नीची जमीन का खेत जिसमें जड़हन बोया जाता है। डवरी।

चिड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक, हिं० चिड़ा] आकाश में उड़नेवाला जीव। वह प्राणी जिसके ऊपर उड़ने के लिये पर हों। पक्षी। पखेरू। पंछी।

यौ०—चिड़ियाखाना। चिड़ियाघर। चिड़िया चुनमुन=चिड़िया तथा उसी तरह के छोटे पक्षी। चिड़ियानोचन=चारों ओर का तकाजा। चारों ओर की माँग। बहुत से लोगों का किसी बात के लिये अनुरोध या दवाव। जैसे,—घर से रुपया आ जाता तो हम इस चिड़ियानोचन से छुट्टी पाते। सोने की चिड़िया=(१) खूब धन देनेवाला असामी। (२) अत्यंत सुंदर व्यक्ति। (३) रमणीक स्थान।

मुहा०—अप्राप्य वस्तु। अलभ्य वस्तु। ऐसी वस्तु जिसका होना असंभव हो। चिड़िया के छिनाले में पकड़ा जाना=व्यर्थ की आपत्ति में फँसना। नाहक झंझट में पड़ना। चिड़िया का खेत खाना=असावधानी के कारण अवसर निकल जाने से हानि उठाना। उ०—घर रखवाला बाहरा, चिड़िया खाया खेत। आधा परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत।—कबीर सा० सं०, पृ० ६५। चिड़िया फँसाना=(१) किसी स्त्री को बहकाकर सहवास के लिये राजी करना (अशिष्ट)। (२) किसी देनेवाले धनी आदमी को अनुकूल करना। किसी मालदार को दाँव पर चढ़ाना।

२. अँगिया की वह सीवन जिससे कटोरियाँ मिली रहती हैं। ३. चिड़िया के आकार का गढ़ा हुआ काठ का टुकड़ा जो टेक देने के लिये कहारों की लकड़ी, लँगड़ों की बैसाखी, मकानों के खंभों आदि पर लगा रहता है। आड़ा लगा हुआ काठ का टुकड़ा जिसका एक सिरा ऊपर की ओर चिड़िया की गरदन की तरह उठा हो। ४. पायजामे या लहँगे का नली की तरह का वह पोला भाग जिसमें इजारबंद या नाला पड़ा रहता है। ५. ताश का एक रंग जिसमें तीन गोल पँखड़ियों की बूटी बनी होती है। चिड़ी। ६ लोहे का टेढ़ा अँकुड़ा जो तराजू की डाँड़ी में लगा रहता है। ७. गाड़ी में लगा हुआ लोहे का टेढ़ा कोढ़ा या अँकुड़ा जिसमें रस्सी लगाकर पेंजनी बाँटते हैं। ८. एक प्रकार की सिलाई जिसमें पहले कपड़े आदि के दोनों सिरों पल्लों को सीकर तब सिलाई की ओरवाले उनके दोनों सिरों को अलग अलग उन्हीं पल्लों पर उलटकर इस प्रकार बखिया कर देते हैं कि उसमें एक प्रकार की बेल सी बन जाती है।

चिड़ियाखाना—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया+फा० खानह] वह स्थान या घर जिसमें अनेक प्रकार के पक्षी या पशु आदि देखने के लिये रखे जाते हैं। पक्षिशाला।

चिड़ियाघर—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया+घर] दे० 'चिड़ियाखाना'।

चिड़ियावाला—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया+वाला] उल्लू। गावदी। मूर्ख। जड़ (बाजारू)।

चिड़िहार†(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया+हार (प्रत्य०)] चिड़ीमार। बहेलिया। चिड़िया पकड़नेवाला। व्याध।

चिड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़ा] १ दे० 'चिड़िया'। २. ताश का एक रंग जिसमें तीन गोल पंखड़ियों की काली बूटी बनी रहती है।

चिड़ीखाना—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़ी+फा० खानह] चिड़ियाखाना। पक्षिशाला। उ०—एते द्विज आने रंग रंगन बखाने, देश देशन ते आने चिड़ीखाने हरिनाथ के।—अकबरी०, पृ० ६१।

चिड़ीमार—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़ी+मारना] बहेलिया। चिड़िया पकड़नेवाला। व्याध।

चिढ़—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिढ़ना] चिढ़ने का भाव। क्रोध लिए

हुए घृणा। विरक्ति। अप्रसन्नता। कुढ़न। खिजलाहट। नफरत। जैसे,—मुझे ऐसी बातों से बड़ी चिढ़ है।

मुहा०—**चिढ़ निकालना**=ढूँढकर ऐसी बात कहना जिससे कोई चिढ़े। चिढ़ाने की युक्ति निकालना। छेड़ने का ढंग निकालना। कुढ़ाना। खिझाना। जैसे,—इस बात से यदि इतना चिढ़ोगे तो लड़के चिढ़ निकाल लेंगे।

चिढ़कना—क्रि० अ० [हिं० चिढ़ना] दे० 'चिढ़ना'।

चिढ़काना क्रि० स० [हिं० चिढ़ाना] दे० 'चिढ़ाना'।

चिढ़ना—क्रि० अ० [हिं० चिड़चिड़ाना] १. अप्रसन्न होना। विरक्त होना। खिन्न होना। नाराज होना। बिगड़ना। कुढ़ना। खीजना। झल्लाना। जैसे,—तुम थोड़ी सी बात पर भी क्यों चिढ़ जाते हो।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

२. द्वेष रखना। बुरा मानना। जैसे,—न जाने क्यों मुझसे वह बहुत चिढ़ता है।

चिढ़वाना—क्रि० स० [हिं० चिढ़ाना का प्रे० रूप] दूसरे से चिढ़ाने का काम कराना।

चिढ़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिढ़ना] १. चिढ़ानेवाली बात या वजह। २. चिढ़ने का भाव या स्थिति।

चिढ़ाना—क्रि० स० [हिं० चिढ़ना] १. अप्रसन्न करना। नाराज करना। चिढ़ाना। खिझाना। कुढ़ाना। कुपित और खिन्न करना। जैसे,—ऐसी बात कहकर मुझे बार बार क्यों चिढ़ाते हो ?

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी को कुढ़ाने के लिये मुँह बनाना, हाथ चमकाना या किसी प्रकार की और कोई चेष्टा करना। खिझाने के लिये किसी की आकृति, चेष्टा या ढंग की नकल करना।

मुहा०—**मुँह चिढ़ाना**=किसी को छेड़ने या खिजाने के लिये विलक्षण आकृति बनाना। बिराना।

३. कोई ऐसा प्रसंग छेड़ना जिसे सुनकर कोई लज्जित हो। कोई ऐसी बात कहना या ऐसा काम करना जिससे किसी को अपनी विफलता, अपमान आदि का स्मरण हो। उपहास करना। ठट्ठा करना।

चिढ़ौनी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिढ़+औनी (प्रत्य०)] वह बात जिसके कहने से कोई चिढ़ जाय।

चित्[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चैतन्य। चेतना। ज्ञान।

यौ०—चिदाकाश। चिदानंद। चिन्मय।

चित्[२]—संज्ञा पुं० १. चुननेवाला। बीननेवाला। इकट्ठा करनेवाला। २. अग्नि। ३. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो जीव-पद-वाच्य, भोक्ता, अपरिच्छिन्न, निर्मल-ज्ञान-स्वरूप और नित्य कहा गया है। (शेष दो पदार्थ अचित् और ईश्वर हैं)।

चित्[३]—प्रत्य० संस्कृत का एक अनिश्चयवाची प्रत्यय जो कः, किम् आदि सर्वनाम शब्दों में लगता है। जैसे; कश्चित्, किंचित्।

चित[१]—वि० [सं०] १. चुनकर इकट्ठा किया हुआ। २. ढका हुआ। आच्छादित। ३. संचित। जमा किया हुआ (को०)।

चित[२]—संज्ञा पुं० [सं० चित] चित्त। मन। उ०—अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६६।

विशेष—दे० 'चित्त'।

मुहा०—दे० 'चित्त' के मुहावरे।

चित[३]Ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० चितवन] चितवन। दृष्टि। नजर। उ०—चित जानकी अघ को कियो। हरि तीन ह्वै अवलोकियो।—केशव (शब्द०)।

चित[४]—वि० [सं० चित (=ढेर किया हुआ)] इस प्रकार पड़ा हुआ मुँह, पेट आदि शरीर का अगला भाग ऊपर की ओर हो और पीठ, चूतड़ आदि पीछे का भाग नीचे की ओर किसी आधार से लगा हो। पीठ के बल पड़ा हुआ। 'पट' या 'औंधा' का उलटा। जैसे, चित कौड़ी।

यौ०—**चित भी मेरी पट भी मेरी**=(१) हर हालत में अपने आप को बड़ा चढ़ाकर दिखाना। (२) पासे या कौड़ी खेलने में बेईमानी करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—चितपट।

मुहा०—**चित करना**=कुश्ती में पछाड़ना। कुश्ती में पटकना। **चारो खाने (या थाने) चित**=(१) हाथ पैर फैलाए बिलकुल पीठ के बल पड़ा हुआ। (२) हक्का बक्का। स्तंभित। ठक। जड़ीभूत। **चित होना**=बेसुध होकर पड़ जाना। बेहोश होना जैसे,—इतनी भाँग में तो तुम चित हो जाओगे।

चित[५] क्रि० वि० पीठ के बल। जैसे,—चित गिरना, चित पड़ना, चित लेटना।

चितउनⓊ संज्ञा स्त्री० [हिं० चितवन] दे० 'चितवन'।

चितउरⓊ—संज्ञा पुं० [हिं० चित्तौर] दे० 'चित्तौर'। उ०—देहि असीस सबै मिलि तुम्ह माथें निति छात। राजकरहु गढ़ चित-उर राखहु पिय अहिवात।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०६।

चितकबरा[१] वि० [सं० चित्र+कर्बुर] [स्त्री० चितकबरी] सफेद रंग पर काले, लाल या पीले दागवाला। काले पीले या और किसी रंग पर सफेद दागवाला। रंगबिरंगा। कबरा। चितला। शबल। वि० दे० 'कबरा'।

चितकबरा[२]—संज्ञा पुं० चितकबरा रंग।

चितकाबरा—वि० [हिं० चितकबरा] दे० 'चितकबरा'।

चितकूटⓊ—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकूट] दे० 'चित्रकूट'।

चितगरीⓊ—वि० [सं० चित+गर (प्रत्य०)] चेतवाली। होशियार। उ०—भई जो सयान भई चितगरी। पढ़ि विद्या भइ, विद्याधरी।—इंद्रा०, पृ० १७।

चितगुपतिⓊ—संज्ञा पुं० [सं० चित्रगुप्त] दे० 'चित्रगुप्त'।

चितचोर—संज्ञा पुं० [हिं० चित+चोर] चित्त को चुरानेवाला। जी को लुभावनेवाला। मनोहर। मनभावना। मन को आकर्षित करनेवाला। प्यारा। प्रिय।

चितपट—संज्ञा पुं० [हिं० चित+पट] १. एक प्रकार का खेल या बाजी जिसमें किसी फेंकी हुई वस्तु के चित या पट पड़ने प

हार जीत का निर्णय होता है। (लोग प्रायः कौड़ी, पैसा, जूता आदि फेंकते हैं)। २. कुश्ती। मल्लयुद्ध।

चितवाहु—संज्ञा पुं० [हिं० चित + सं० बाहु] तलवार के ३२ हाथों में से एक। उ०— आविद्ध निर्मयार्द कुल चितवाहु निसृत रिपु दुर्खं।— रघुराज (शब्द०)।

चितभंग— संज्ञा पुं० [सं० चित्त+भंग] १. ध्यान न लगना। उचाट। उदासी। उ०—(क) मेरो मन हरि चितवन समझानो। यह रसमगन रहति निसि बासर हार जीत नहिं जानो। सूरदास चितभंग होत क्यों जो जेहि रूप समानो।—सूर (शब्द०)। (ख) कमल, खंजन, मीन मधुकर होत है चितभंग।—सूर (शब्द०)। (ग) देव मान मन भंग चितभंग मद क्रोध लोभादि पर्वत दुर्ग भुवन भर्ता।—तुलसी (शब्द०)। २. बुद्धि का लोप। होश का ठिकाने न रहना। मतिभ्रम। भौचक्का-पन। चकपकाहट।

चितरकना (पु)—संज्ञा पुं० [सं० चित्रक + हिं० ना प्रत्य०] दे० 'चित्रक'। उ०—अजमोदा चितकरना, पतरज वायभिरंग। सोंधा सोंग त्राफला नासहिं मारुत अग।—इंद्रा०, पृ० १५१।

चितरकारी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्रकारी] दे० 'चित्रकारी' उ०—पलंग को छोड़ खाली गोद से उठ गै सजन मीता। चितरकारी लगे खाने हमन को घर हुआ रीता।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२।

चितरन (पु)—संज्ञा पुं० [सं० चित्रण] दे० 'चित्रण'।

यौ०—चितरनहार=चित्रण करनेवाला।

चितरना (पु)— क्रि० स० [सं० चित्र] चित्रित करना। चित्र बनाना। नक्काशी करना। वेल बूटे बनाना।

चितरवा— वि० पुं० [सं० चित्रक] एक प्रकार की चिड़िया जिसका रंग ईंट का सा लाल होता है। इसके डैनों पर काली चित्तियाँ पड़ी होती हैं और आँखें अनारदाने के समान सफेद और लाल होती हैं।

चितरा— संज्ञा पुं० [सं० चित्र] दे० 'चीतल'।

चितराला— संज्ञा पुं० [सं० चित्र] एक प्रकार का झुंडों में रहनेवाला जंतु, जो पेड़ों पर चढ़कर गिलहरियों आदि को खा जाता है।

चितरोख (पु)†— संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रक] एक प्रकार की चिड़िया। चितरवा। उ०—धौरी पांडुक कहि पिय ठाऊँ। जो चितरोखन दूसर नाऊँ।— जायसी (शब्द०)।

चितला¹—वि० [सं० चित्रल] कबरा। चितकबरा। रंगबिरंगा।

चितला²- संज्ञा पुं० १. लखनऊ का एक प्रकार का खरबूजा जिसपर चित्तियाँ पड़ी होती हैं। २. एक प्रकार की बड़ी मछली जो लंबाई में तीन चार हाथ और तौल में डेढ़ दो मन होती है।

विशेष— इसकी पीठ बहुत उठी हुई होती है और उसपर पूँछ के पास पर होते हैं। इसमें काँटे बहुत होते हैं। गले से लेकर पेट के नीचे तक ५१ काँटों की पंक्ति होती है। इस मछली की पीठ का रंग कुछ मटमैला और तामड़ा तथा बगल का चाँदी की तरह सफेद होता है। यह मछली बंगाल, उड़ीसा और सिंध में होती है। इसमें से तेल बहुत निकलता है जो खाने जलाने के काम में आता है।

चितवन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतना] ताकने का काम भाव या ढंग। अवलोकन। दृष्टि। कटाक्ष। नजर। निगाह। उ०—सलज्ज लोचनों की मनोहारी चितवन।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १२५।

मुहा०—चितवन चढ़ाना=त्योरी चढ़ाना। भौं चढ़ाना। कुपित दृष्टि करना। क्रोध की दृष्टि से देखना।

चितवना (पु)†—क्रि० स० [हिं० चेतना] देखना। ताकना। निगाह करना। अवलोकन करना। दृष्टि डालना। उ०—चितवति चकित चहूँ दिसि सीता।—मानस, १। २३२। (ख) सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।—मानस, १। २३२।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

चितवनि†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चितवन] दे० 'चितवन'। उ०—(क) चितवनि चारु भृकुटि वर बाँकी। तिलक रेख शोभा जनु चाँकी। तुलसी (शब्द०)। (ख) तुलसीदास पुनि भरेइ देखियत राम कृपा चितवनि चितए —तुलसी (शब्द०)। (ग) अनियारे दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान। वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान।—बिहारी र०, दो० ५८८।

चितवाना†(पु)—क्रि० स० [हिं० चितवना का प्रे० रूप] दिखाना। तकाना। उ०—चितवो चितवाए हँसाए हँसो औ बोलाए से बोलो रहै मति मौने।—केशव (शब्द०)।

चितविलास (पु)— संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का डिंगल गीत। उ०— इण पर दुहो अरटिया वालो फिर तुक आदि तिका अंत फालो। धुरै तिका मोहरा तुध धारो, चितविलास सो गीत उचारो।—रघु० रू, पृ० १०५।

चितसरिया (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्रसारी] दे० 'चित्रसारी'। उ०— चित चितसरिया मैं चिहलों लिखाई।—धरनी०, पृ० १।

चितहिलोल (पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का डिंगल गीत। उ०—प्रौढ़ गीतरै उपरै तवै उल्लालो तोल। कहै मंद तिणनू सुकवि, आखै चितहिलोल।—रघु० रू, पृ० १६३।

चिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चुनकर रखी हुई लकड़ियों का ढेर जिसपर रखकर मुरदा जलाया जाता है। मृतक के शवदाह के लिये बिछाई हुई लकड़ियों की राशि।

क्रि० प्र० —बनाना।—लगाना।

पर्या०—चित्या। चिति। चैत्य। काष्ठमठी।

यौ०—चितापिंड=वह पिंडदान जो शवदाह के उपरांत होता है। चिताभस्म=चिता की राख।

मुहा०—चिता चुनना=शवदाह के लिये लकड़ियों को नीचे ऊपर क्रम से रखना। चिता साजना। चिता तैयार करना। चिता पर चढ़ना=मरना। चिता में बैठना=सती होने के लिये विधवा का मृत पति की चिता में बैठना। मृत पति के शरीर के साथ जलना। सती होना। चिता साजना=दे० 'चिता चुनना'।

२. श्मशान। मरघट। उ०—भीख माँगि भव खाहिं चिता नित सोवहिं। नाचहिं नगन पिशाच, पिसाचिन जोवहिं।—तुलसी (शब्द०)।

चिताउनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतावनी] दे० 'चेतावनी'। उ०—चलन न देतो देव चंचल अचल करि, चाबुक चिताउनीन मारि मुँह मोरतो।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १६५।

चिताना—क्रि० स० [हिं० चेताना] १. सचेत करना। सावधान करना। होशियार करना। खबरदार करना। किसी आवश्यक विषय की ओर ध्यान दिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

३. आत्मबोध करना। ज्ञानोपदेश करना। ४. (आग) जगाना। सुलगाना। जलाना।—(साधु)।

चिताप्रताप—संज्ञा पुं० [सं०] जीते ही चिता पर जला देने का दंड।

विशेष—जो स्त्री पुरुष का खून कर देती थी उसे चंद्रगुप्त के समय जीते जी जला दिया जाता था।—(कौ०)।

चितापिंड—संज्ञा पुं० [सं० चितापिण्ड] श्मशान में शवदाह के पूर्व किया जानेवाला पिंडदान।

चिताभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्मशान।

चितार(पु)—वि० [सं० चित्रल] रंग बिरंगा। उ०—है यह हीरन सों जड़ी रंगन तापै करी कछु चित्र चितार सी। देखो जू लालन कैसी बनी है नई यह सुंदर कंचन आरसी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १४७।

चितारना(पु)—क्रि० स० [हिं० चित+आर (प्रत्य०) से नाम०] स्मरण करना। याद में लाना। उ०—औरंग सा पातसाह आलम कूँ चितारै। अकबर के त्रास की चितानां बिसारे।—रा० रू०, पृ० १०१।

चितारी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चितेरा'।

चितारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] विधवा का सती होने के लिये चिता पर जाना।

चितावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिताना] चिताने की क्रिया। सतर्क या सावधान करने की क्रिया। वह सूचना जो किसी को किसी आवश्यक विषय की ओर ध्यान देने के लिये दी जाय। सावधान रहने की पूर्वसूचना। चेतावनी।

क्रि० प्र०—देना।

चितासाधन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रसार के अनुसार चिता या श्मशान के ऊपर बैठकर इष्टमंत्र का अनुष्ठान जो चतुर्दशी या अष्टमी को डेढ़ पहर रात गए किया जाता है।

चिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चिता। २. समूह। ढेर। ३. चुनने या इकट्ठा करने की क्रिया। चुनाई। ४. शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि का एक संस्कार। ५. यज्ञ में ईंटों का एक संस्कार। इष्टका संस्कार। ६. दीवार में ईंटों की चुनाई। ईंटों की जोड़ाई। ७. चैतन्य। ८. दुर्गा। ९. दे० 'चित्ती'। १०. समझ। बोध (कौ०)।

चितिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. करधनी। मेखला। २. दे० 'चिति'।

चितिया—वि० [हिं० चित्ती+इया (प्रत्य०)] जिसपर दाग या चित्ती पड़ी हो। दागवाला।

चितिया गुड़—संज्ञा पुं० [देश०] खजूर की चीनी की जूसी से जमाया हुआ गुड़।

चितिव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की वह क्रिया जिसके द्वारा किसी दीवार या मकान में लगनेवाली ईंटों और पटियों की संख्या और नाप आदि का निश्चय होता है।

विशेष—लीलावती के अनुसार दीवार का क्षेत्रफल निकालकर उसमें ईंटों के क्षेत्रफल का भाग देने से जो फल होगा वही ईंटों की संख्या होगी। इसी प्रकार की और और क्रियाएँ स्तर आदि निकालने के लिये हैं।

चितु†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चित, हिं० चित्त] दे० 'चित्त'। उ०—फिरि फिरि चितु उत हीं रहतु, टुटी लाज की लाव।—बिहारी र०, दो० १०।

चितेरा—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकार या हिं० चित (=सं० चित्र)+एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० चितेरिन] चित्रकार। चित्र बनानेवाला। तसवीर खींचनेवाला। मुसौवर। कमंगर। उ०—चकित भई देखैं ढिग ठाढ़ी। मनो चितेरे लिखि लिखि काढ़ी।—सूर (शब्द०)।

चितेरिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चितेरा] १. चित्र बनानेवाली स्त्री। २. चित्रकार की स्त्री।

चितेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं] दे० 'चितेरिन'।

चितेला†—संज्ञा पुं० [हिं० चितेरा] दे० 'चितेरा'।

चितौन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चितवन] दे० 'चितवन'।

चितौना—क्रि० स० [हिं० चितवना] दे० 'चितवना'।

चितौनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चितवन] दे० 'चितवन'। उ०—तिरछी चितौनि मैन बरछी सी कौन।—मति० ग्र०, पृ० ३४५।

चितौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चितावनी] दे० 'चितावनी'।

चित्कार—संज्ञा पुं० [सं० चीत्कार] दे० 'चीत्कार'।

चित्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतःकरण का एक भेद। अंतःकरण की एक वृत्ति।

विशेष—वेदांतसार के अनुसार अंतःकरण की चार वृत्तियाँ हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति को मन, निश्चयात्मक वृत्ति को बुद्धि और इन्हीं दोनों के अंतर्गत अनुसंधानात्मक वृत्ति को चित्त और अभिमानात्मक वृत्ति को अहंकार कहते हैं। पंचदशी में इंद्रियों के नियंता मन ही को अंतःकरण माना है। आंतरिक व्यापार में मन स्वतंत्र है, पर वाह्य व्यापार में इंद्रियाँ परतंत्र हैं। पंचभूतों की गुणसमष्टि से अंतःकरण उत्पन्न होता है जिसकी दो वृतियाँ हैं मन और बुद्धि। मन संशयात्मक और बुद्धि निश्चयात्मक है। वेदांत में प्राण को मन का कारण कहा है। मृत्यु होने पर मन इसी प्राण में लय हो जाता है। इसपर शंकराचार्य कहते हैं कि प्राण में मन की वृत्ति लय हो जाती है, उसका स्वरूप नहीं। क्षणिकवादी बौद्ध चित्त ही को आत्मा मानते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अग्नि अपने को प्रकाशित करके दूसरी वस्तु को भी प्रकाशित करती है, उसी प्रकार चित्त भी करता है। बौद्ध लोग चित्त के चार भेद करते हैं—कामावचर रूपावचर, अरूपावचर और लोकोत्तर। चार्वाक के मत से मन ही आत्मा है। योग के आचार्य पतंजलि चित्त को स्वप्रकाश नहीं स्वीकार करते। वे चित्त को दृश्य और जड़ पदार्थ मानकर सका एक

अलग प्रकाशक मानते हैं जिसे आत्मा कहते हैं। उनके विचार में प्रकाश्य और प्रकाशक के संयोग से प्रकाश होता है, अतः कोई वस्तु अपने ही साथ संयोग नहीं कर सकती। योगसूत्र के अनुसार चित्तवृत्ति पाँच प्रकार की है--प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दप्रमाण; एक में दूसरे का भ्रम—विपर्यय; स्वरूपज्ञान के बिना कल्पना—विकल्प; सब विषयों के अभाव का बोध—निद्रा और कालांतर में पूर्व अनुभव का आरोप स्मृति कहलाता है। पंचदशी तथा और दार्शनिक ग्रंथों में मन या चित्त का स्थान हृदय या हृत्पद्मगोलक लिखा है। पर आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान अंतःकरण के सारे व्यापारों का स्थान मस्तिष्क में मानता है जो सब ज्ञानतंतुओं का केंद्रस्थान है। खोपड़ी के अंदर जो टेढ़ी मेढ़ी गुरियों की सी बनावट होती है, वही अंतःकरण है। उसी के सूक्ष्म मज्जा-तंतु-जाल और कोशों की क्रिया द्वारा सारे मानसिक व्यापार होते हैं। भूतवादी वैज्ञानिकों के मत से चित्त, मन या आत्मा कोई पृथक् वस्तु नहीं है, केवल व्यापार-विशेष का नाम है, जो छोटे जीवों में बहुत ही अल्प परिमाण में होता है और बड़े जीवों में क्रमशः बढ़ता जाता है। इस व्यापार का प्राणरस (प्रोटोप्लाज्म) के कुछ विकारों के साथ नित्य संबंध है। प्राणरस के ये विकार अत्यंत निम्न श्रेणी के जीवों में प्रायः शरीर भर में होते हैं; पर उच्च प्राणियों में क्रमशः इन विकारों के लिये विशेष स्थान नियत होते जाते हैं और उनसे इद्रियों तथा मस्तिष्क की सृष्टि होती है।

२. वह मानसिक शक्ति जिससे धारणा, भावना आदि की जाती हैं। अंतःकरण। जी। मन। दिल।

मुहा०—**चित्त उचटना**=जी न लगना। विरक्ति होना। **चित्त करना**=इच्छा करना। जी चाहना। जैसे, ऐसा चित्त करता है कि यहाँ से चल दें। **चित्त चढ़ना**=दे० 'चित्त पर चढ़ना'। उ०—तब चित चढ़ेउ जो शंकर कहेऊ।—मानस, १। ६३। **चित्त विहुँटना**=(१) चित्त में पीड़ा होना। (२) चित्त के लिये आकर्षक होना। **चित्त चुराना**=मन मोहना। मोहित करना। चित्त आकर्षित करना। उ०—नैन सैन दै चितहि चुरावति यहै मंत्र टोना सिर डारि।—सूर (शब्द०)। **चित्त देना**=ध्यान देना। मन लगाना। गौर करना। उ०—चित दै सुनो हमारी बात।—सूर (शब्द०)। **चित्त धरना**=(१) ध्यान देना। मन लगाना। उ०—कहौं सो कथा सुनो चित धार। कहै सुनै सो लहै सुख सार। —सूर (शब्द०)। (२) मन में लाना। उ०—हमारे प्रभु अवगुन चित न धरौ।—सूर (शब्द०)। **चित्त पर चढ़ना**=(१) ध्यान पर चढ़ना। मन में बसना। बार बार ध्यान में आना। जैसे,—तुम्हारे तो वही चित्त पर चढ़ा हुआ है। (२) ध्यान में आना। स्मरण होना। याद पड़ना। **चित्त बंटना**=चित्त एकाग्र न रहना। ध्यान दो ओर हो जाना। एक विषय की ओर ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान इधर उधर होना। **चित्त बँटाना**=ध्यान इधर उधर करना। ध्यान एक ओर न रहने देना। **चित्त में धँसना या जमना**=दे० 'चित में बैठना'। **चित्त में बैठना**=जी में जमना। हृदय में दृढ़ होना। मन में धँसना। हृदयंगम होना। उ०—अब हमरे चित बैठ्यो यह पद होनी होउ सो होउ।—सूर (शब्द०)। **चित्त में होना या चित्त होना**=इच्छा होना। जी चाहना। उ० यह चित होत जाउँ मैं अबहीं यहाँ नहीं मन लागत।—सूर (शब्द०)। **चित्त लगना**=मन लगना। जी न घबराना। जी न ऊबना। मन की प्रवृत्ति स्थिर रहना। जैसे,—(क) काम में तुम्हारा चित्त नहीं लगता। (ख) अब यहाँ हमारा चित्त नहीं लगता। **चित्त लेना**=इच्छा होना। जी चाहना। जैसे—अपना चित्त ले चले जाओ। **चित्त से उतरना**=(१) ध्यान में न रहना। भूल जाना। उ०—सूर श्याम चित तें नहिं उतरत वह वन कुंज थली।—सूर (शब्द०)। (२) दृष्टि से गिरना। प्रिय या आदरणीय न रह जाना। विरक्तिभाजन होना। **चित्त से न टलना**=ध्यान में बराबर बना रहना। न भूलना। उ०—सूर चित तें टरति नाहीं राधिका की प्रीति।—सूर (शब्द०)।

३. नृत्य में एक प्रकार की दृष्टि जिसका व्यवहार शृंगार में प्रसन्नता प्रकट करने के लिये होता है।

विशेष—दे० 'चित्त'।

चित्त²—वि० १. विचार किया हुआ। विचारित। २. अनुभूत या अनुभव किया हुआ। ३. इच्छित। चाहा हुआ। ४. इंद्रियगम्य। गोचर [को०]।

चित्तक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चित्रक] दे० 'चित्रक'।

चित्तकलित—वि० [सं०] चित्त में या चित्त द्वारा जिसका कलन किया गया हो। अनुमति। अपेक्षित। अवकलित [को०]।

चित्तखेद—संज्ञा पुं० [सं०] शोक। दुःख [को०]।

चित्तगर्भ—वि० [सं०] मनोहर। सुंदर।

चित्तचारी—वि० [चित्तचारिन्] दूसरे के इच्छानुसार आचरण करनेवाला [को०]।

चित्तचोर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चित्तचोर' [को०]।

चित्तज—संज्ञा पुं० [सं०] चित्त से उत्पन्न, कामदेव।

चित्तजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० चित्तजन्मन्] कामदेव [को०]।

चित्तज्ञ—वि० [सं०] दूसरे की इच्छा या चित्त को जाननेवाला [को०]।

चित्तधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विचारधारा [को०]।

चित्तनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी [को०]।

चित्तनाश—संज्ञा पुं० [सं०] विवेक या चेतना का नाश [को०]।

चित्तनिर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसाद। हर्ष। प्रसन्नता। शांति [को०]।

चित्तप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त का संस्कार जो मैत्री, करुणा, हर्ष, उपेक्षा आदि के उपयुक्त व्यवहार द्वारा होता है। जैसे, किसी को सुखी देख उससे मित्रभाव रखना, दुखी के प्रति करुणा दिखाना, पुण्यवान् को देख प्रसन्न होना, पापी के प्रति उपेक्षा रखना। इस प्रकार के साधन से चित्त में राजस और तामस की निवृत्ति होकर केवल सात्विक धर्म का प्रादुर्भाव होता है।

चित्तप्रमाथी—वि०[सं० चित्तप्रमाथिन्] उत्तेजना पैदा करनेवाला। हृदय को मथनेवाला [को०]।

चित्तभंग—संज्ञा पुं० [सं० चित्तभङ्ग] बदरिकाश्रम के एक पर्वत का नाम।

चित्तभू—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

चित्तभूमि—संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त की अवस्थाएँ।

विशेष—व्यास के अनुसार ये अवस्थाएँ पाँच हैं—क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध। क्षिप्त अवस्था वह है जिसमें चित्त रजोगुण के द्वारा सदा अस्थिर रहे; मूढ़ वह है जिसमें चित्त तमोगुण के कारण निद्रायुक्त या स्तब्ध हो, विक्षिप्त वह है जिसमें चित्त अस्थिर रहे, पर कभी कभी स्थिर भी हो जाय, एकाग्र वह है जिसमें चित्त किसी एक विषय की ओर लगा हो, और निरुद्ध वह है जिसमें सब वृत्तियों का निरोध हो जाय, संस्कार मात्र रह जाय। इनमें से पहली तीन अवस्थाएँ योग के अनुकूल नहीं हैं। पिछली दो योग या समाधि के उपयुक्त हैं। समाधि की भी चार भूमियाँ हैं—मधुमती, मधुप्रतीका, विशोका और ऋतंभरा, जिनके लिये दे० 'समाधि'।

चित्तभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. विचारसंबंधी भेद। २. चंचलता। अस्थिरता [को०]।

चित्तभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें संताप, मोह, विकलता, हँसना, गाना, नाचना, धतूरा खाए जैसी अवस्था आदि उपद्रव होते हैं।

चित्तभ्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्तभ्रान्ति] दे० 'चित्तभ्रम' [को०]।

चित्तयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

चित्तर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चित्र] दे० 'चित्र'।

चित्तरसारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्रसारी] दे० 'चित्रसारी'। उ०— जहँ सोने कै चित्तरसारी। बैठि बरात जानु फुलवारी। जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१२।

चित्तराग—संज्ञा पुं० [सं०] कामना। अनुराग [को०]।

चित्तल—संज्ञा पुं० [सं० या सं० चित्रल] एक प्रकार का मृग। चीतल।

चित्तवान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चित्तवती] उदार चित्त का।

चित्तविकार—संज्ञा पुं० [सं०] विचार या भाव का परिवर्तन [को०]।

चित्तविक्षेप—संज्ञा पुं०[सं०] चित्त की चंचलता या अस्थिरता जो योग में बाधक है।

विशेष—इसके नौ भेद हैं—व्याधि, स्त्यान (अकर्मण्यता), संशय, प्रमाद (त्रुटि), आलस्य, अविरति (वैराग्य का अभाव), भ्रांतिदर्शन (मिथ्या अनुभव), अलब्धभूमिकत्व (समाधि की अप्राप्ति), और अनवस्थितत्व (चित्त का न टिकना)।

चित्तविद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चित्त की बात जाने। २. बौद्ध दर्शन के अनुसार चित के भेदों और रहस्यों को जाननेवाला पुरुष।

चित्तविप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] उन्माद।

चित्तविभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चित्तविभ्रम' [को०]।

चित्तविभ्रम संज्ञा पुं० [सं०] १. भ्रांति। भ्रम। भौचक्कापन। २. उन्माद।

चित्तविश्लेष संज्ञा पुं० [सं०] चित्त फटना। विराग [को०]।

चित्तविश्लेषण—संज्ञा पुं० [सं०] मैत्रीभंग। मनमुटाव [को०]।

चित्तवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्त की गति। चित्त की अवस्था।

विशेष—योग में चित्तवृत्ति पाँच प्रकार की मानी गई है—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन सबके भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो भेद हैं। अविद्या आदि क्लेशहेतुक वृत्ति क्लिष्ट और उससे भिन्न अक्लिष्ट हैं।

२. विचार। ३ मनःस्थिति। भाव।

चित्तवेदना संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की वेदना [को०]।

चित्तवैकल्य—संज्ञा पुं० [सं०] चित्त की विकलता [को०]।

चित्तशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] विकाररहित चित्त। निर्विकार चित्त [को०]।

चित्तसारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्रसारी] दे० 'चित्रसारी'।

चित्तहारी—वि० [सं० चित्तहारिन्] मन को लुभानेवाला [को०]।

चित्ताकर्षक—वि०[सं०] मनमोहक। चित्त को आकर्षित करनेवाला। उ०—कई मंत्रों में पति पत्नी के प्रेम का चित्ताकर्षक चित्र खींचा है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११०।

चित्तापहारक—वि० [सं०] मनोहर। सुंदर।

चित्ताभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. आसक्ति। २. पूरी चेतनता [को०]।

चित्तारना(पु)—क्रि० स० [हिं० चितारना] दे० 'चितारना'। उ०—चुगइ चितारइ भी चुगइ, चुगि चुगि चित्तारेह। कुरभी बच्चा मेल्हि कइ, दूरि थकाँ पालेह।—ढोला०, दू० २०२।

चित्तासंग—संज्ञा पुं० [सं० चित्तासङ्ग] प्रेम। अनुराग [को०]।

चित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धिवृत्ति। प्रज्ञा। चिंतन। २. ख्याति। ३. कर्म। ४ अथर्व ऋषि की पत्नी का नाम।

चित्ती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रिका, प्रा० चित्त, हिं० चित (= सफेद दाग अथवा सं० श्वित्रिक] १. छोटा दाग या चिह्न। छोटा धब्बा। बुँदकी। उ०— पीले मीठे अमरूदों में अब लाल लाल चित्तियाँ पड़ीं।—ग्राम्या, पृ० ३६।

यौ०—चित्तीदार = जिसपर दाग या धब्बा हो।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—चित्ती पड़ना = बहुत खरी सेंकने के कारण रोटी में स्थान स्थान पर जलने का काला दाग पड़ना।

२. कुम्हार के चाक के किनारे पर का वह गड्ढा जिसमें डंडा डालकर चाक घुमाया जाता है। ३. मादा लाल। मुनिया। ४. अजगर की जाति का एक मोटा साँप जिसके शरीर पर चित्तियाँ होती हैं। चीतल। ५. एक ओर कुछ रगड़ा हुआ इमली का चिआँ जिससे छोटे लड़के जूआ खेलते हैं।

विशेष—इमली के चीएँ को लड़के एक ओर इतना रगड़ते हैं कि उसके ऊपर का काला छिलका बिल्कुल निकल जाता है और उसके अंदर से सफेद भाग निकल आता है। दो तीन लड़के मिलकर अपनी अपनी चित्ती एक में मिलाकर फेंकते हैं और दाँव पर चिएँ लगाते हैं। फेंकने पर जिस लड़के के चिएँ का

सफेद भाग ऊपर पड़ता है, वह और लड़कों के दाँव पर लगाए हुए चीएँ जीत लेता है।

चित्ती[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित (=पेट के बल पड़ा हुआ)] वह कौड़ी जिसकी चिपटी और खुरदरी पीठ प्रायः नीचे होती है और ऊपर चित रहती है। टैयाँ। उ०—अंतर्यामी यहौ न जानत जो मो उरहि बिती। ज्यों जुआरि रस बीधि हारि गथ सोचत पटकि चिती (शब्द०)।

विशेष—यह फेंकने पर चित अधिक पड़ती है, इसी से इसे चित्ती कहते हैं। जुआरी इससे जुए का दाँव फेंकते हैं।

चित्तोद्रेक—संज्ञा पुं० [सं०] घमंड। अहंकार [को०]।

चित्तौड़(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चित्तौर] दे० 'चित्तौर'।

चित्तौर—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकूट प्रा० चितउड़, चितऊड़ हिं० चितउर] एक इतिहासप्रसिद्ध प्राचीन नगर जो उदयपुर के महाराणाओं की प्राचीन राजधानी थी।

विशेष—अलाउद्दीन के समय में प्रसिद्ध महारानी पद्मावती या पद्मिनी यहीं कई सहस्र क्षत्राणियों के साथ चिता में भस्म हुई थीं। ऐसा प्रसिद्ध है कि राणाओं के पूर्वपुरुष बाप्पा रावल ने ही ईसवी सन् ७२८ में चित्तौर का गढ़ बनवाया और नगर बसाया था। सन् १५६८ तक तो मेवाड़ के राणाओं की राजधानी चित्तौर ही रही; उसके पीछे जब अकबर ने चित्तौर का किला ले लिया, तब महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नामक नगर बसाया। चित्तौर का गढ़ एक ऊँची पहाड़ी पर है जिसके नीचे चारों ओर प्राचीन नगर के खंडहर दिखाई पड़ते हैं। हिंदूकाल के बहुत से भवन अभी यहाँ टूटे फूटे खड़े हैं। किले के अंदर भी बहुत से देवमंदिर, कीर्तिस्तंभ, खवासिनस्तंभ सिंगारचौरी आदि प्रसिद्ध हैं। राणा कुंभ ने संवत् १५०५ में गुजरात और मालवा के सुलतान को परास्त करके यह कीर्तिस्तंभ स्मारक स्वरूप बनवाया था। यह १२२ फुट ऊँचा और नौ खंडों का है।

चित्य[१]—वि० [सं०] १. चुनने या इकट्ठा करने योग्य। २. चिता संबंधी।

चित्य[२]—संज्ञा पुं० १. चिता। २. अग्नि।

चित्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चुनने का कार्य। एकत्र करना। २. बनाना। ३. चिता [को०]।

चित्र[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चित्रित] १. चंदन आदि से माथे पर बनाया हुआ चिह्न। तिलक। २. विविध रंगों के मेल से बनी हुई नाना वस्तुओं की आकृति। किसी वस्तु का स्वरूप या आकार जो कागज, कपड़े, पत्थर, लकड़ी, शीशे आदि पर तूलिका अथवा कलम और रंग आदि के द्वारा बनाया गया हो। तसवीर। उ०—चित्रलिखित कपि देखि डेराती। —तुलसी (शब्द०)।

यौ०—चित्रकला। चित्रविद्या।

क्रि० प्र०(पु)—उरेहना।—खींचना।—बनाना।—लिखना। करना—अचरज करना। अचंभा करना। उ०—अहो मित्र कछु चित्र न कीजै। हरि की महिमा मैं मनु दीजै।—नंद० ग्रं०, पृ० २६३।

मुहा०—चित्र उतारना=(१) चित्र बनाना। तसवीर खींचना। (२) वर्णन आदि के द्वारा ठीक ठीक दृश्य सामने उपस्थित कर देना।

३. काव्य के तीन अंगों में से एक जिसमें व्यंग्य की प्रधानता नहीं रहती। अलंकार। ४. काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें पद्यों के अक्षर इस क्रम से लिखे जाते हैं कि हाथी, घोड़े, खड्ग, रथ, कमल आदि के आकार के बन जाते हैं। ५. एक प्रकार का वर्णवृत्त जो समानिका वृत्ति के दो चरणों को मिलाने से बनता है। ६. आकाश। ७. एक प्रकार का कोढ़ जिसमें शरीर में सफेद चित्तियाँ या दाग पड़ जाते हैं। ८. एक यम का नाम। ९. चित्रगुप्त। १० रेंड़ का पेड़। ११. अशोक का पेड़। १२. चीते का पेड़। चित्रक। १३. धृतराष्ट्र के चौदह पुत्रों में से एक।

चित्र[२]—वि० १. अद्भुत। विचित्र। आश्चर्यजनक। विस्मयकारी। उ०—हे नृप, ह्याँ कछु चित्र न मानि। ते सब हरहिं मिलेई जानि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१८। २. चितकबरा। कबरा। ३. रंगविरंगा। कई रंगों का। ४. अनेक प्रकार का। कई तरह का। ५. चित्र के समान ठीक। दुरुस्त। उ०—बाँके पर सुठि बाँक करेहीं। रातिहि कोट चित्र कै लेहीं। —जायसी (शब्द०)।

चित्र[३](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रिणी] दे० 'चित्रिणी'। उ०—चारि जाति है त्रीय तन पदमिनि हस्तिनि चित्र। फुनि संषिनिय प्रमान इह मन नह रंजिय मित्त॥ पृ० रा० २५।११६।

चित्रकंठ—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकण्ठ] कबूतर। कपोत। परेवा।

चित्रकंबल—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकम्बल] १. कालीन। २. हाथी की भूल जिसपर चित्र बने रहते हैं [को०]।

चित्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिलक। २ चीते का पेड़। चित्त। ३. चीता। बाघ। ४. शूर। बलवान्। ५. रेंड़ का पेड़। ६. चिरायता। ७. मुचकुंद का पेड़। ८. चित्रकार।

चित्रकर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्र बनानेवाला। चित्रकार। २. ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति विश्वकर्मा पुरुष और शूद्रा स्त्री से कही गई है। ३. तिनिश का पेड़। ४. अभिनेता [को०]।

चित्रकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकर्मन्] १. चित्र बनाना। २. विचित्र कार्य करना। ३. आलेखन। ४. इंद्रजाल [को०]।

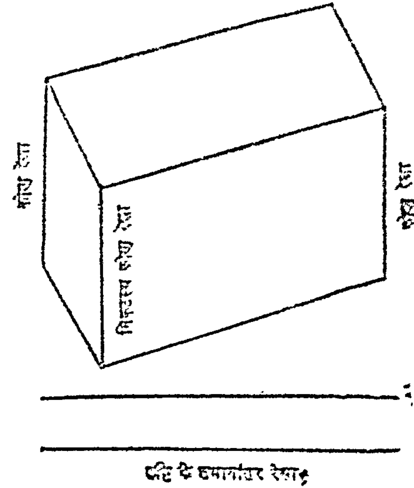
चित्रकर्मी—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकर्मिन्] १. चित्रकार। मुसौवर। कमंगर। २. विचित्र कार्य करनेवाला। ३. तिमिश वृक्ष।

चित्रकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या। तस्वीर बनाने का हुनर।

विशेष—चित्रकला का प्रचार चीन, मिस्र, भारत आदि देशों में अत्यंत प्राचीन काल से है। मिस्र से ही चित्रकला यूनान में गई, जहाँ उसने बहुत उन्नति की। ईसा से १४०० वर्ष पहले मिस्र देश में चित्रों का अच्छा प्रचार था। लंदन के ब्रिटिश म्युजियम में ३००० वर्ष तक के पुराने मिस्री चित्र हैं। भारतवर्ष में भी अत्यंत प्राचीन काल से यह विद्या प्रचलित थी, इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। रामायण में चित्रों, चित्रकारों और चित्रशालाओं का वर्णन बराबर आया है। विश्वकर्मीय

शिल्पशास्त्र में लिखा है कि स्थापक, तक्षक, शिल्पी आदि में से शिल्पी को ही चित्र बनाना चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों को अंकित करने में प्राचीन भारतीय चित्रकार कितने निपुण होते थे, इसका कुछ आभास भवभूति के उत्तररामचरित के देखने से मिलता है, जिसमें अपने सामने लाए हुए वनवास के चित्रों को देख सीता चकित हो जाती हैं। यद्यपि आजकल कोई ग्रंथ चित्रकला पर नहीं मिलता है, तथापि प्राचीन काल में ऐसे ग्रंथ अवश्य थे। काश्मीर के राजा जयादित्य की सभा के कवि दामोदरगुप्त ने आज से ११०० वर्ष पहले अपने कुट्टनीमत नामक ग्रंथ में चित्रविद्या के 'चित्रसूत्र' नामक एक ग्रंथ का उल्लेख किया है। अजंता गुफा के चित्रों में प्राचीन भारतवासियों की चित्रनिपुणता देख चकित रह जाना पड़ता है। बड़े बड़े विज्ञ युरोपियनों ने इन चित्रों की प्रशंसा की है। इन गुफाओं में चित्रों का बनाना ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व से आरंभ हुआ था और आठवीं शताब्दी तक कुछ न कुछ गुफाएँ नई खुदती रहीं। अतः डेढ़ दो हजार वर्ष के प्रत्यक्ष प्रमाण तो ये चित्र अवश्य हैं। चित्रविद्या सीखने के लिये पहले प्रत्येक प्रकार की सीधी टेढ़ी, वक्र आदि रेखाएँ खींचने का अभ्यास करना चाहिए। इसके उपरांत रेखाओं के ही द्वारा वस्तुओं के स्थूल ढाँचे बनाने चाहिए। इस विद्या में दूरी आदि के सिद्धांत का पूरा अनुशीलन किए बिना निपुणता नहीं प्राप्त हो सकती। दृष्टि के समानांतर या ऊपर नीचे के विस्तार का अंकन तो सहज है, पर आँखों के ठीक सामने दूर तक गया हुआ विस्तार अंकित करना कठिन विषय है। इस प्रकार की दूरी का विस्तार प्रदर्शित करने की क्रिया को 'पर्सपेक्टिव' (Perspective) कहते हैं। किसी नगर की दूर तक सामने गई हुई सड़क, सामने को बही हुई नदी आदि के दृश्य बिना इसके सिद्धांतों को जाने नहीं दिखाए जा सकते। किस प्रकार निकट के पदार्थ बड़े और साफ दिखाई पड़ते हैं, और दूर के पदार्थ क्रमशः छोटे और धुँधले होते जाते हैं, ये सब बातें अंकित करनी पड़ती हैं। देखें चित्र उदाहरण के लिये दूर पर रखा हुआ एक चौखूँटा संदूक लीजिए। मान लीजिए कि आप उसे एक ऐसे किनारे से देख रहे हैं जहाँ से उसके दो पार्श्व या तीन कोण दिखाई पड़ते हैं। अब चित्र बनाने के निमित्त हम एक पेंसिल आँखों के समानांतर लेकर एक आँख दबाकर देखेंगे तो संदूक की सबके निकटस्थ खड़ी कोणरेखा (ऊँचाई) सबसे बड़ी दिखाई देगी; जो पार्श्व अधिक सामने रहेगा, उसके दूसरे ओर की कोणरेखा उससे छोटी और जो पार्श्व कम दिखाई देगा, उसके दूसरे ओर की कोणरेखा सबसे छोटी दिखाई पड़ेगी। अर्थात् निकटस्थ कोणरेखा से लगा हुआ उस पार्श्व का कोण जो कम दिखाई देता है, अधिक दिखाई पड़नेवाले पार्श्व के कोण से छोटा होगा।

दूसरा सिद्धांत आलोक और छाया का है जिसके बिना सजीवता नहीं आ सकती। पदार्थ का जो अंश निकट और सामने रहेगा वह खुलता (आलोकित) और स्पष्ट होगा; और जो दूर या बगल में पड़ेगा, वह स्पष्ट और कालिमा लिए होगा। पदार्थों का उभार और गहराई आदि भी इसी आलोक और छाया के नियमानुसार दिखाई जाती है। जो अंश उठा या उभरा होगा,



दृष्टि के समानांतर रेखाएँ

वह अधिक खुलता होगा, और जो धँसा या गहरा होगा वह कुछ स्याही लिए होगा। इन्हीं सिद्धांतों को न जानने के कारण बाजारू चित्रकार शीशे आदि पर जो चित्र बनाते हैं वे बेलबाड़ से जान पड़ते हैं। चित्रों में रंग एक प्रकार की कूँची से भरा जाता है जिसे चित्रकार कलम कहते हैं। पहले यहाँ गिलहरी की पूँछ के बालों की कलम बनती थी। अब विलायती ब्रुश काम में आते हैं।

चित्रकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. चीता। २. तेंदुआ (को०)।

चित्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] चित्र बनानेवाला। चितेरा।

चित्रकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्रकार+ई (प्रत्य०)] १. चित्रविद्या। चित्र बनाने की कला। २. चित्रकार का काम। चित्र बनाने का व्यवसाय।

चित्रकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का काव्य जिसके अक्षरों को विशेष क्रम से लिखने से कोई विशेष चित्र बन जाता है। ऐसा काव्य अधम समझा जाता है।

चित्रकुंडल—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकुण्डल] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रकुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कोढ़। श्वेत कुष्ठ (को०)।

चित्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध रमणीक पर्वत जहाँ वनवास के समय राम और सीता ने बहुत दिनों तक निवास किया था।

विशेष—यह तीर्थ स्थान बाँदा जिले में है और प्रयाग से २७ कोस दक्षिण में पड़ता है। इस पहाड़ के नीचे पयोष्णी नदी बहती है जिसमें मंदाकिनी नाम की एक और छोटी नदी मिलती है। रामनवमी और दीवाली के अवसर पर यहाँ बहुत दूर दूर से तीर्थ यात्री आते हैं। वाल्मीकि ने रामायण में इस स्थान को भारद्वाज के आश्रम से साढ़े तीन योजन दक्षिण की ओर लिखा है।

२. चित्तौर (शिलालेखों में चित्तौर का यही नाम आता है)।
३. हिमवत् खंड के अनुसार हिमालय के एक शृंग का नाम।

चित्रकृत्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिनिश का पेड़। २. चित्रकार (को०)।

चित्रकृत्[2]—वि० अद्भुत। विचित्र [को०]।

चित्रकेतु संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके पास चित्रित पताका हो। २. भागवत के अनुसार लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम। ३. गरुड़ के एक पुत्र का नाम। ४. वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम। ५ कंसा के गर्भ से उत्पन्न देवभाग यादव का एक पुत्र। ६. भागवत के अनुसार शूरसेन देश का एक राजा जिसे पुत्रशोक से संतप्त देख नारद ने मंत्रोपदेश दिया था।

चित्रकोट—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकूट] चित्तौर। उ०—उगरावत ग्रासखांन ग्रासमांन सा है। उर्दंगिध चित्रकोट कियौ सौ निवा है। —रा० रू०, पृ० १२२।

चित्रकोण—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुटकी। २. काली कपास।

चित्रकोल—संज्ञा पुं० [सं०] छिपकली [को०]।

चित्रगंध—संज्ञा पुं० [सं० चित्रगन्ध] हरताल।

चित्रगढ़—संज्ञा पुं० [हिं० चित्र+गढ़] दे० 'चित्रकोट'। राजनवर रप्पिय प्रसन कग्गि सब्ब सामंत। उ०—माल मुत्ति दिय चंद कवि चल्यौ चित्रगढ़ मंति।—पृ० रा०, २४। ४८१।

चित्रगत—वि० [सं०] चित्रित [को०]।

चित्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह यमराजों में से एक जो प्राणियों के पाप और पुण्य का लेखा रखते हैं।

विशेष—चित्रगुप्त के संबंध में पद्मपुराण, गरुणपुराण, भविष्यपुराण आदि पुराणों में कथाएँ मिलती हैं। स्कंदपुराण के प्रभासखंड में लिखा है कि चित्र नाम के कोई राजा थे, जो हिसाब किताब रखने में बड़े दक्ष थे। यमराज ने चाहा कि इन्हें अपने यहाँ लेखा रखने के लिये ले जाँय। अतः एक दिन जब राजा नदी में स्नान करने गए, तब यमराज ने उन्हें उठा मँगाया और अपना सहायक बनाया। इसपर राजा की एक बहिन अत्यंत दुखी हुई और चित्रपथा नाम की नदी होकर चित्र को ढूँढ़ने समुद्र की ओर गई। भविष्यपुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा सृष्टि बनाकर ध्यान में मग्न हुए तब उनके शरीर से एक विचित्रवर्ण पुरुष कलम दवात हाथ में लिए उत्पन्न हुआ। जब ब्रह्मा का ध्यान भंग हुआ तब उस पुरुष ने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! मेरा नाम और काम बताइए'! ब्रह्मा जी ने संतुष्ट होकर कहा—'तुम हमारे शरीर से उत्पन्न हुए हो; इसलिये तुम कायस्थ हुए और तुम्हारा नाम चित्रगुप्त हुआ। तुम प्राणियों के पाप पुण्य का लेखा रखने के लिये यमराज के यहाँ रहो'। भट्ट, नागर, सेनक, गौड़, श्रीवास्तव, माथुर, अहिष्ठान, शैकसेन और अंबष्ठ ये चित्रगुप्त के पुत्र हुए। यह कथा पीछे की गढ़ी हुई जान पड़ती है; क्योंकि ऊपर जो नाम दिए हैं, वे प्रायः देशभेद सूचक हैं। गरुडपुराण के चित्रकल्प में तो लिखा है कि यमपुर के पास ही एक चित्रगुप्तपुर है, जहाँ चित्रगुप्त के अधीनस्थ कायस्थ लोग बराबर काम किया करते हैं। बिहार, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के सब कायस्थ अपने को चित्रगुप्त के वंशज बतलाते हैं। यमद्वितीया के दिन कायस्थ लोग चित्रगुप्त और कलम दावात की पूजा करते हैं।

चित्रगृह—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रशाला [को०]।

चित्रघंटा—संज्ञा स्त्री० [चित्रघण्टा] एक देवी जो नौ दुर्गाओं में तृतीय मानी जाती हैं।

चित्रचाप संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रजल्प—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में रस के अंतर्गत एक वाक्यभेद। वह भावपूर्ण और अभिप्रायगर्भित वाक्य जो नायक और नायिका रूठकर एक दूसरे के प्रति कहते हैं।

विशेष—चित्रजल्प के दस भेद किए गए हैं, यथा—प्रजल्प, परिजल्पित, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्पित, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प।

चित्रजात संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चित्रगांग'।

चित्रण—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रमय वर्णन। शब्दों द्वारा ऐसा वर्णन करना जिससे वर्ण्य का मानसिक चित्र उपस्थित हो जाय। संश्लिष्ट रूपयोजना। उ०—स्थानवर्णन में तो वस्तुवर्णन की सूक्ष्मता कुछ दिनों तक वैसी ही बनी रही पर ऋतुवर्णन में चित्रण उतना आवश्यक नहीं समझा गया जितना कुछ इनी गिनी वस्तुओं का कथन मात्र करके भावों के उद्दीपन का वर्णन।—चिंतामणि, भा० १, पृ० १६।

चित्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०]विचित्रता। उ०—धीर गति से वह बदलता जा रहा नित खेल के पट। चित्रता पर उस चतुर की आज-तक यक रही रही है।—चिंता, पृ० ७८।

चित्रतंडुल—संज्ञा पुं० [सं०चित्रतण्डुल] वायविडंग।

चित्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें दो द्रुत, एक प्लुत, और तब फिर एक द्रुत होता है। इसका बोल यह है,—ड्गु० ड्गु० धुमि धुमि थरिया तक तक ऽ' थों।

चित्रतैल संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ी या अंडी का तेल।

चित्रत्वक्—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र।

चित्रत्वच्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चित्रत्वक्'।

चित्रदंडक—संज्ञा पुं०[सं० चित्रदण्डक] १. सूरन। २. कपास (को०)।

चित्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] पंचदशी नामक वेदांत ग्रंथ के अनुसार एक दीप। पट के ऊपर बने हुए चित्र के समान जगत् के विविध रूपों का आभास जिसे मायामय और मिथ्या समझना चाहिए।

चित्रदेव—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का अनुचर।

चित्रदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महेंद्रवारुणी लता। २. शक्ति या देवी का एक भेद।

चित्रधर्मा - संज्ञा पुं० [सं० चित्रधर्मन्] एक दैत्य का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

चित्रधाम - संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि में पृथ्वी पर बनाया हुआ एक चौखूँटा चक्र जो चारखाने की तरह होता था और जिसके खानों को भिन्न भिन्न रंगों से भरते थे। सर्वतोभद्र मंडल।

चित्रना(पु)—क्रि० स० [सं० चित्र+ना (प्रत्य०)] १. चित्रित करना । चित्र बनाना चितरना । उ०—चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि केशवदास निहारि । जनु विश्वरूप को अमल आरसी रची विरंचि विचारि ।—केशव (शब्द०) । २. रंग भरना । चित्रित करना ।

चित्रनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका । मैना ।

चित्रपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तित्तिर पक्षी । तीतर ।

चित्रपट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कपड़ा, कागज या पटरी जिसपर चित्र बनाया जाय या बना हो । चित्राधार । २. वह वस्त्र जिसपर चित्र बने हों । छींट । ३. चित्र । तसवीर (को०) । ४. सिनेमा की फिल्म । सिनेमा ।

चित्रपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा चित्रपट । उ०—प्राणों की चित्रपटी में आँकी सी करुण कथाएँ ।—यामा, पृ० २७ ।

चित्रपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चित्रपट' (को०) ।

चित्रपत्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुतली के पीछे का भाग जिसपर किरण पड़ने से पदार्थों के रूप दिखाई पड़ते हैं ।

चित्रपत्र²—वि० विचित्र पक्ष युक्त । रंग बिरंगे परवाला (पक्षी) ।

चित्रपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपित्थपर्णी वृक्ष । २. द्रोणपुष्पी । गूमा ।

चित्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली ।

चित्रपथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभास तीर्थ के अंतर्गत ब्रह्मकुंड के पास की एक छोटी नदी जो अब सूख गई है; केवल बरसात में कुछ बहती है । वि० दे० 'चित्रगुप्त' ।

चित्रपदा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में २ भगण और २ गुरु होते हैं । जैसे, रूपहिं देखत मोहैं । ईश कहौ नर को हैं । संभ्रम चित्त अरूझैं । रामहिं यों सब बूझैं ।—केशव (शब्द०) । २. मैना चिड़िया । सारिका । ३. लजालू नाम की लता । छुईमुई लजाधुर ।

चित्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ । २. कर्णस्फोट लता । कनफोड़ा । ३. जलपिप्पली । ४. द्रोणपुष्पी । गूमा ।

चित्रपादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका । मैना ।

चित्रपिच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर । मोर ।

चित्रपुंख—संज्ञा पुं० [दे० चित्रपुङ्ख] बाण । तीर ।

चित्रपुट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छह ताला ताल जिसमें दो लघु, दो द्रुत, एक लघु, और एक प्लुत होता है । इसका बोल यह है—दिगिदां । धिमितक । दा० दा० तक थों । किट धरि धिधिगन थों ऽ' ।

चित्रपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़िया (को०) ।

चित्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] रामसर नाम की शर जाति की घास ।

चित्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमड़ा ।

चित्रपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] गौरा पक्षी । गौरैया ।

चित्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चितला मछली । २. तरबूज ।

चित्रफलक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीदाँत, पत्थर, काठ, कागज आदि का तख्ता जिसपर चित्र बनाया जाता है ।

चित्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ककड़ी । २. बैंगन । ३. कंटकारि । भटकटैया । ४. लिंगिनी लता । ५. महेंद्रवारुणी । ६. फलुई मछली ।

चित्रबर्ह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोर । मयूर । २. गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।

चित्रभानु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. सूर्य । ३. चित्रक । चीते का पेड़ । ४ अर्क । मदार । ५. भैरव । ६. अश्विनीकुमार । ७. साठ संवत्सरों के बारह युगों में से चौथे युग के पहले वर्ष का नाम । ८. मणिपुर के राजा जो अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा के पिता थे ।

चित्रभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी भाषा जिसमें विचारों को इस भाँति प्रस्तुत किया जाय कि उनकी कल्पना साकार हो ।

चित्रभाषावाद—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रभाषा का सिद्धांत या मत ।

चित्रभाष्य—संज्ञा पुं० [सं०] कूटनीतिक भाषा या व्यंजना (को०) ।

चित्रभूत—वि० [सं०] दे० 'चित्रगत' (को०) ।

चित्रभेषजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठगूलर । कठूमर ।

चित्रभोग—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का वह सहायक या खैरख्वाह जो ग्राम, बाजार, वन आदि में मिलनेवाले पदार्थों तथा गाड़ी, घोड़े आदि से समय पर सहायता करे ।

चित्रमंच—संज्ञा पुं० [सं० चित्रमञ्च] एक प्रकार का ताल (को०) ।

चित्रमंडप—संज्ञा पुं० [सं० चित्रमण्डप] १. अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा के पिता का नाम । २. अश्विनीकुमार (को०) ।

चित्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० चित्रमण्डल] एक प्रकार का सर्प (को०) ।

चित्रमति—वि० [सं० चित्र+मति] विचित्र बुद्धिवाला । जिसकी बुद्धि विलक्षण हो । उ०—विश्वामित्र पवित्र चित्रमति वामदेव मुनि ।—केशव (शब्द०) ।

चित्रमद—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक आदि में किसी स्त्री का अपने पति या प्रेमी का चित्र देखकर विरहसूचक भाव दिखलाना ।

चित्रमृग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हिरन जिसकी पीठ पर सफेद सफेद चित्तियाँ होती हैं । चीतल ।

चित्रमेखल—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर । मोर ।

चित्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] चौंसठ कलाओं में से एक अर्थात् बूढ़े को जवान और जवान को बूढ़ा बना देने की विद्या । वि० दे० 'कला' ।

चित्रयोधी¹—वि० [सं० चित्रयोधिन्] विचित्र युद्ध करनेवाला । भारी योद्धा ।

चित्रयोधी²—संज्ञा पुं० १. अर्जुन । २. अर्जुन का पेड़ ।

चित्ररथ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. एक गंधर्व का नाम जो कश्यप और दक्षकन्या मुनि के पुत्र थे ।

विशेष—चित्ररथ कुबेर के सखा माने जाते हैं । ये गंधर्वराज, अंगारपर्ण, दग्धरथ और कुबेरसख भी कहलाते हैं ।

३. श्रीकृष्ण के पुत्र गद के एक पुत्र का नाम । ४. महाभारत के अनुसार अंग देश के एक राजा का नाम । ५. एक यदुवंशी राजा जो विष्णु पुराण के अनुसार रुषद्गु और भागवत के

अनुसार विशद्गुरु के पुत्र थे। ६. महाभारत के अनुसार ऋपद्गुरु नामक राजा के एक पुत्र।

चित्ररथ[2]—वि० विचित्र रथवाला।

चित्ररथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत भीष्मपर्व में वर्णित एक नदी।

चित्ररश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] मरुतों में से एक।

चित्ररेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाणासुर की कन्या ऊषा की एक सहेली। वि० दे० 'चित्रलेखा'।

चित्ररेफ—संज्ञा पुं० [सं०] १. भागवत के अनुसार शाकद्वीप के राजा प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि के सात पुत्रों में से एक।

विशेष—मेधातिथि ने अपने सात पुत्रों को सात वर्ष बाँट दिए थे जिनके नामों के अनुसार ही उन वर्षों के नाम पड़े।

२. एक वर्ष या भूविभाग का नाम।

चित्रल—वि० [सं०] चितकबरा। रंगविरंगा। चितला।

चित्रलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मँजीठ।

चित्रला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखा इमली।

चित्रलिखन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुंदर लिखावट। खुशखती।—(मनु०) २. चित्र बनाने का काम।

चित्रलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लिपि, जिसमें संकेतों के व्यंजक चित्रों द्वारा अभिप्राय या आशय का बोध कराया जाता है। लिपिविकास की वह अवस्था जिसमें चित्रात्मक रेखाप्रतीकों से भाषा का लेखन किया जाता था। चित्रात्मक लिपि। (अं० पिक्टोग्राफिक लिपि)।

चित्रलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार (को०)।

चित्रलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुंदर अक्षर लिखना। २. चित्र बनाना (को०)।

चित्रलेखनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूलिका (को०)।

चित्रलेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तसवीर बनाने की कलम। कूँची।

चित्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १ मगण, १ भगण, १ नगण और तीन यगण होते हैं। जैसे,—मै भीनी यों गुणनि सुनु यथा कामरी पाइ बारी। बोलो ना आलि! कहत तुमसों दीन ह्वै बारि बारी। २. बाणासुर की एक कन्या ऊषा की एक सखी जो कूष्मांड की लड़की थी। यह चित्रकला में बड़ी निपुण थी। ३. एक अप्सरा का नाम। ४. चित्र बनाने की कलम। तसवीर बनाने की कूची।

चित्रलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रवदाल—संज्ञा पुं० [सं०] पाठीन मत्स्य। पहिना मछली।

चित्रवन—संज्ञा पुं० [सं०] गंडकी के किनारे का पुराणप्रसिद्ध एक वन।

चित्रवर्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। २. मुद्राराक्षस के अनुसार कुलूत देश के एक राजा का नाम।

चित्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विचित्र लता। २. महेंद्रवारुणी।

चित्रवहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी।

चित्रवाज—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा (को०)।

चित्रवाण—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत। में वर्णित मणिपुर के एक नाग राजा।

चित्रविचित्र—वि० [सं०] १. रंग विरंगा। कई रंगों का। २. वेलबूटेदार। नक्काशीदार।

चित्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या।

विशेष—दे० 'चित्रकला'।

चित्रविन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] आलेखन। चित्रकर्म। चित्र बनाना (को०)।

चित्रवीर्य[1]—वि० [सं०] विचित्र बली।

चित्रवीर्य[2]—संज्ञा पुं० लाल रेंड। रक्त एरंड।

चित्रवेगक—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

चित्रशार्दूल—संज्ञा पुं० [सं०] चीता (को०)।

चित्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह घर जहाँ चित्र बनते हों या विक्रयार्थ रखे जाते हों। २ वह घर जहाँ चित्र हों। वह घर जिसमें बहुत सी तसवीरें टँगी हों। ३ वह स्थान जहाँ चित्रकारी सिखाई जाती हो ४. वह घर या भवन जहाँ भिति पर चित्र बने हों (को०)।

चित्रशिखंडज—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रशिखण्डिज] बृहस्पति।

चित्रशिखंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रशिखण्डिन्] सप्त ऋषि। मरीचि अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ—ये सात ऋषि।

चित्रशिर—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रशिरस्] १. एक गंधर्व का नाम। २. सुश्रुत के अनुसार मल मूत्र से उत्पन्न एक विष। गंदगी का जहर।

चित्रशिल्पी—संज्ञा पुं० [सं० चित्र+शिल्पिन्] चित्रकार (को०)।

चित्रशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] एक विषैला कीड़ा (को०)।

चित्रश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिशय या अद्भुत सुंदरता (को०)।

चित्रसंग—संज्ञा पुं० [सं० चित्रसङ्ग] १६ अक्षरों का एक वर्णवृत्त।

चित्रसंस्थ—वि० [सं०] चित्रित। आलेखित (को०)।

चित्रसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चित्रशाला' (को०)।

चित्रसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] चीतल साँप।

चित्रसार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्रसारी] दे० 'चित्रसारी'। उ०—चित्रसार पर तक्षक आया। रानी केर तहँ पलंग रहाया।—कबीर सा०, पृ० ७२।

चित्रसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र + शाला] १. वह घर जहाँ चित्र टँगे हों या दीवार पर बने हों। २. सजा हुआ सोने का कमरा। विलासभवन। रंगमहल।

चित्रसाल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चित्रशाला'। उ०—अति चित्रसाल बनी निज महली हरिजन तहँ उरझाने।—प्राण०, पृ० ६४।

चित्रसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। २. एक गंधर्व का नाम। ३. एक पुरुवंशी राजा जो परीक्षित के पुत्रों में से थे। ४. शंबरासुर के एक पुत्र का नाम (हरिवंश)। ५. चित्तौर का एक राजा (पद्मावत)।

चित्रस्थ—वि० [सं०] चित्रित। अंकित। उ०—कहा मांडवी ने उलूक भी लगता है चित्रस्थ भला।—साकेत, पृ० ३९४।

चित्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] वार का एक हाथ। हथियार चलाने का एक हाथ (महाभारत)।

चित्रांकन—संज्ञा पुं० [सं० चित्राङ्कन] १. चित्र अंकित करना। २. चित्रांकन कर्म (को०)।

चित्रांग¹—वि० [सं० चित्राङ्ग] [वि० स्त्री० चित्रांगी] जिसका अंग विचित्र हो। जिसके अंग पर चित्तियाँ, धारियाँ हों।

चित्रांग²—संज्ञा पुं० १. चित्रक। चीता। २. एक प्रकार का सर्प। चीतल। ३. चीतल मृग। ३. ईंगुर। ५. हरताल।

चित्रांगद—संज्ञा पुं० [सं० चित्राङ्गद] १. सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न राजा शांतनु के एक पुत्र जो विचित्रवीर्य के छोटे भाई थे। २. देवीभागवत के अनुसार एक गंधर्व का नाम। ३. महाभारत, अश्वमेध पर्व में वर्णित दशार्ण देश के एक प्राचीन राजा।

चित्रांगदा—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्राङ्गदा] १. मणिपुर के राजा चित्रवाहन की कन्या जो अर्जुन को ब्याही थी। २. रावण की एक स्त्री जो वीरबाहु की माता थी।

चित्रांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्राङ्गी] १. मजीठ। २. कनसलाई नाम का एक कीड़ा। कनखजूरा।

चित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्ताईस नक्षत्रों में से चौदहवाँ नक्षत्र।

विशेष—इसकी तारा संख्या एक मानी गई है, पर यह योगतारा भी दिखाई देता है। इसकी कला ४० और विक्षेप दो कला है। इसका कलांश तेरह है; अर्थात् यह सूर्य कक्षा के तेरहवें अंश के बीच अस्त और तेरहवें अंश पर उदय होता है। यह पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम में अस्त होता है (सूर्यसिद्धांत)। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सुंदर और चित्र विचित्र होने के कारण ही इसे चित्रा कहते हैं। फलित में यह पार्श्वमुख नक्षत्र माना गया है। इसमें गृहारंभ, गृहप्रवेश, हाथी, रथ, नौका, घोड़े आदि का व्यवहार शुभ है। इस नक्षत्र में जिसका जन्म होता है वह राक्षसगण में माना जाता है; विवाह की गणना में इसका मेल मनुष्यगण के साथ नहीं होता। रात्रिमान को १५ भागों में बाँट देने से मुहूर्त निकल आता है। इनमें से चौदहवें मुहूर्त को चित्रा का मुहूर्त मान लेना चाहिए, चाहे और कोई दूसरा नक्षत्र भी हो। जो जो कार्य चित्रा नक्षत्र में हो सकते हैं, वे सब चित्रा मुहूर्त में भी हो सकते हैं।

२. मूषिकपर्णी। ३. ककड़ी या खीरा। ४. दंती वृक्ष। ५. गंडदूर्वा। ६. मजीठ। ७. वायविडंग। ८. मूसाकानी। आखुकर्णी। ९. अजवाइन। १०. सुभद्रा। ११. एक सर्प का नाम। १२. एक नदी का नाम। १३. एक अप्सरा का नाम। १४. एक रागिनी जो भैरव राग की पाँच स्त्रियों में मानी जाती है। १५. संगीत में एक मूर्छना का नाम। १६. पंद्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसमें पहले तीन मगण, फिर दो यगण होते हैं। जैसे—मो मो मो माया [illegible] [illegible] [illegible] चित्त [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। १७. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है। इसकी पाँचवीं, आठवीं और नवीं मात्रा लघु होती है। यह चौपाई का एक भेद है। जैसे—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।—(शब्द०)। १८. प्राचीन काल का एक बाजा जिसमें तार लगे होते थे। १९. चित्रलेखा नाम।

चित्राक्ष¹—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्राक्ष²—वि० [वि० स्त्री० चित्राक्षी] चित्रित या सुंदर नेत्रवाला।

चित्राक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्राटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. शिव का अनुचर घंटाकर्ण। ३. बलि दिए हुए बकरे के रक्त से रंजित ललाट या मस्तक (को०)।

चित्रादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद पुराण के प्रभास खंड में वर्णित प्रभास क्षेत्र में स्थित [illegible] स्थापित सूर्य मूर्ति।

चित्राधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. चित्रपट। २. चित्र रखने का स्थान।

चित्रान्न—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी के दूध में पकाया और अगस्त के फूल के रस में रँगा हुआ जो और चावल।

चित्रापूप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पूआ (को०)।

चित्राम—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्र + म (प्रत्य०)] चित्रकारी। उ०—कोटि किए चित्राम बहु एक चित्र के माहिं। यों सुंदर सब जगत मध्य चित्र दूसरा नाहिं।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८०३।

चित्रायस—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात। खेड़ी।

चित्रायुध¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिव्यास्त्र धारी। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रायुध²—वि० विलक्षण अस्त्रयुक्त।

चित्रार—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकार] चित्रकार।

चित्राल—संज्ञा पुं० [सं० चित्रालय] काश्मीर के पश्चिम का एक पहाड़ी प्रदेश।

चित्रालय—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रशाला (को०)।

चित्रावसु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों से मंडित रात्रि।

चित्राश्व—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यवान का एक नाम।

चित्रास—संज्ञा पुं० [सं० चित्र] चित्रों का समूह। चित्रसारी। उ०—सुंदर आसन बैठि करि चित्रौ अनत चित्रास।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७०३।

चित्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्र का महीना।

चित्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मिनी आदि स्त्रियों के चार भेदों में से एक।

विशेष—[illegible]

चित्रित—वि० [सं०] १. चित्र में अंकित किया हुआ। चित्र द्वारा दिखाया हुआ। [illegible] जैसे,—[illegible] २. [illegible]।

जिसपर नक्काशी हो। ३. जिसपर चित्तियाँ या रंग की धारियाँ हों।

चित्री वि० [सं० चित्रिन्] १. चित्रयुक्त। चित्रित। उ०—ऊँचा मंदर धौलहर माटी चित्री पौलि।—कबीर ग्रं०, पृ० ७४।

२. चितकबरा। कबरा।

चित्रीकरण, चित्रीकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनेक वर्णों से रँगना। २. चित्रांकन। ३. अलंकरण। सजाना। ४. आश्चर्य [को०]।

चित्रीकृत—वि० [सं०] १. चित्र रूप में प्रस्तुत किया गया। उ०—मेरा मेरा मैं, जिस शब्द योजना से चित्रीकृत भावराशि की अनुभूति प्राप्त कर रहा है, उसका उपादान सामाजिक है, वैयक्तिक नहीं। काव्यशास्त्र, पृ० ५६। २. सजाया हुआ।

चित्रेश—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रा नक्षत्र के पति चंद्रमा।

चित्रोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकाश। २. अलंकृत भाषा में कथन। ३. प्रिय और सुंदर उक्ति या भाषण (को०)।

चित्रोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न ही के शब्दों में उत्तर हो या कई प्रश्नों का एक ही उत्तर हो। जैसे,—(क) कोकहिये जल सो सुखी काकहिये पर श्याम। काकहिये जे रस बिना कोकहिये सुख बाम। इसमें 'कोक' 'काक' 'पाम' आदि उत्तर दोहे के शब्दों ही में निकल आते हैं। (ख) गाउ पीठ पर लेहु अंग राग अरु हार करु। गृह प्रकाश कर देहु कान्ह कह्यो 'सारंग नहीं।' यहाँ 'सारंग नहीं' से सब प्रश्नों का उत्तर हो गया। (ग) को शुभ अक्षर? कौन युवति जो धन वश कीनी? विजय सिद्धि संग्राम राम कहँ कौने दीनी? कंसराज यदुवंश बसत कैसे केशवपुर? वट सों कहिए कहा? नाम जानहु अपने उर। कहि कौन युवति जग जनन किय कमलनयन सूक्षम वरणि? सुन वेद पुराणन में कहीं सनकादिक 'शंकरतरुणि'। इसे 'प्रश्नोत्तर' भी कहते हैं।

चित्रोत्पला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उड़ीसा की एक नदी जिसे आज कल 'चितरतला' कहते हैं। २. मत्स्य, मारकंडेय और वामन पुराण के अनुसार एक नदी जो ऋक्षपाद पर्वत से निकली है।

चित्रोपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका उल्लेख महाभारत में है।

चित्र्य—वि० [सं०] १. पूज्य। २. चुनने या इकट्ठा करने योग्य।

चिथड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चीर्ण=फटा हुआ या चीर अथवा चीवर अथवा देश०)] फटा पुराना कपड़ा। कपड़े की धज्जी। लत्ता। लुगरा।

यौ०—चिथड़ा गुदड़ा=फटे पुराने कपड़े।

मुहा०—चिथड़ा लपेटना=फटे पुराने कपड़े पहनना।

चिथाड़ना—क्रि० स० [सं० चीर्ण] १. चीरना। फाड़ना। कपड़े, चमड़े, कागज आदि चद्दर के रूप की वस्तुओं को फाड़कर टुकड़े टुकड़े करना। धज्जी धज्जी करना। २. धज्जियाँ उड़ाना। अपमानित। लज्जित करना। नीचा दिखाना। जलील करना।

चिथरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चिथड़ा] दे० 'चीथरा'। उ०—चिथरा पहिरि लँगोटी साका कै गया।—पलटू०, भा० २, पृ० ७६।

चिद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चित्' [को०]।

चिदाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश के समान निर्लिप्त और सबका आधारभूत ब्रह्म। परब्रह्म।

चिदात्मक—वि० [सं०] चेतना से युक्त [को०]।

चिदात्मा—संज्ञा पुं० [सं० चिदात्मन्] चैतन्य स्वरूप परब्रह्म।

चिदानंद—संज्ञा पुं० [सं० चिदानन्द] चैतन्य और आनंदमय परब्रह्म।

चिदाभास—संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य स्वरूप परब्रह्म का आभास या प्रतिबिंब जो महत्तत्व या अंतःकरण पर पड़ता है। २. जीवात्मा।

विशेष—अद्वैतवादियों के मत से अंतःकरण में ब्रह्म का आभास पड़ने से ही ज्ञान होता है। माया के संयोग से यह ज्ञान अनेक रूप विशिष्ट दिखाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार स्फटिक पर जिस रंग की आभा पड़ती है, वह उसी रंग का दिखाई पड़ता है।

चिदालोक—संज्ञा पुं० [सं०] सदैव बना रहनेवाला आत्मप्रकाश [को०]।

चिद्घन[1]—वि० [सं०] जिसमें चेतना हो। चेतनायुक्त [को०]।

चिद्घन[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्म [को०]।

चिद्रूप—संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य स्वरूप ब्रह्म। ज्ञानमय परमात्मा।

चिद्विलास—संज्ञा पुं० [सं० चित्+विलास] १. चैतन्य स्वरूप ईश्वर की माया। उ०—तुलसिदास कह चिद्विलास जग बूझत बूझत बूझै।—तुलसी (शब्द०)। २. शंकराचार्य के एक शिष्य।

विशेष—बहुतों का विश्वास है कि शंकरविजय नामक ग्रंथ इन्हीं का लिखा है, जिसमें चिद्विलास वक्ता और विज्ञानकंद श्रोता हैं।

चिन—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जो हिमालय पर शिमले के आसपास बहुत होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारतों में लगती है।

२. एक घास जिसे चौपाए बड़ी रुचि से खाते हैं।

विशेष—यह घास खेतों के किनारे होती है। इसे सुखाकर भी रख सकते हैं।

चिनक—संज्ञा पुं० [हिं० चिनगी] १. जलन लिए हुए पीड़ा। चुनचुनाहट। २. मूत्रनाली की जलन या पीड़ा जो सुजाक में होती है।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिनग[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चिनक] दे० 'चिनक'।

चिनग[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिनगी] दे० 'चिनगी'। उ०—पट-विजना तहँ अधिक सतावै। छटनि ते उछटि चिनग जनु आवै।—नंद० ग्रं०, पृ० १३२।

चिनगटा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] चिथड़ा।

चिनगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, हिं० चुन+अंगार?] १. जलती हुई आग का छोटा कण या टुकड़ा। जैसे,—एक चिनगारी आग इसपर रख दो। २. दहकती हुई आग में

से फूट फूटकर उड़नेवाला कण। अग्निकण। स्फुलिंग।

क्रि० प्र०—उड़ना।—छूटना।—फूटना।

मुहा०—आँखों से चिनगारी छूटना=क्रोध से आँखें लाल लाल होना। चिनगारी छोड़ना=धीरे से ऐसी बात कर बैठना जिससे किसी प्रकार का उपद्रव खड़ा हो जाय। कोई ऐसी बात कह देना जिससे लोगों में लड़ाई झगड़ा हो जाय। ऐसी चाल चलना जिससे एक नई बात खड़ी हो जाय। चिनगारी डालना=(१) आग लगाना। (२) दे० 'चिनगारी छोड़ना'।

चिनगी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, हिं० चुन+अग्नि, प्रा० अग्गि] १. अग्निकण। दे० 'चिनगारी'। २. चुस्त और चालाक लड़का। ३. वह लड़का जो नटों के साथ रहता है (नट)।

चिनत्तीं—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेना] चेना की रोटी।

चिनना—संज्ञा पुं० [सं० चिनोति से √चि + नु (विकरण), हिं० चुनना] दे० 'चुनना'।

चिनवाना—क्रि० स० [हिं० चिनना] दे० 'चुनवाना'। उ०—जीवित मनुष्य को अग्नि में जला देना अथवा दीवार में चिनवा देना इन शासकों के लिये साधारण कार्य था।—हिंदी काव्य०, पृ० ६६।

चिनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिनना] चिनने, चुनने या जोड़ाई करने का कार्य अथवा उस कार्य की मजदूरी।

चिनाई दौड़—संज्ञा स्त्री० [छीनना+दौड़] जहाज की घुमाव फिराव की चाल। जहाज का चक्कर।—(लश०)।

चिनाना‡(पु)—क्रि० स० [सं० चयन] १. चुनवाना। चिनवाना। २. ईंट आदि की जोड़ाई करना। दीवार या घर उठवाना।

चिनाव—संज्ञा पुं० [चन्द्रभागा] पंजाब की एक नदी। चंद्रभागा।

चिनार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बृहद् वृक्ष जो काश्मीर में होता है। इसकी पत्तियाँ हाथ के समान होती हैं।

चिनिग—संज्ञा पुं० [देश०] बटेर जाति का एक पक्षी जो घाघरा से छोटा, किंतु उसी जाति का होता है।

चिनिया—वि० [हिं० चीनी] १. चीनी के रंग का। सफेद। २. चीन देश का। चीनी।

चिनिया केला—संज्ञा पुं० [हिं० चिनिया+केला] छोटी जाति का एक केला जो बंगाल में होता है। यह खाने में बहुत मीठा होता है।

चिनिया घोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चीन या चीनी] वह घोड़ा जिसके चारों पैर सफेद हों और सारे बदन में लाल और कुछ सफेद खिचड़ी बाल हों।

चिनियापोत—संज्ञा पुं० [हिं० चिनिया+पोत] एक प्रकार का सिल्क का वस्त्र। नकली रेशमी कपड़ा। उ०—काशी के बहुमूल्य बसन बहु बिधि बहुरंगी। अतलस चिनियापोत बासकट तास ताफता।—रत्नाकर, भा० १. पृ० १०६।

चिनियाबत—संज्ञा पुं० [हिं० चिनिया+बत] बत्तक की तरह एक चिड़िया।

चिनियाबदाम—संज्ञा पुं० [हिं० चिन+बादाम] मूँगफली।

चिनियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चुच् ?] सुसना का साग।

चिनोती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनौती] दे० 'चुनौती'। उ०—यह तो मुझे चिनोती देता है, अरे मरी लोथ के खानेवाले खड़ा रह।—शकुंतला, पृ० १२७।

चिनौटिया—वि० [हिं० चिनना] चुना हुआ। चुननवाला।

चिनौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनौती] दे० 'चुनौती। उ०—मनू के ओठ सिकुड़े। चिनौती सी देती हुई बोली, मेरे भाग्य में एक नहीं दस हाथी लिखे हैं।—झाँसी०, पृ० ३२।

चिन्न संज्ञा पुं० [सं०] चना।

चिन्मय¹—वि० [सं०] ज्ञानमय।

चिन्मय²—संज्ञा पुं० परमेश्वर।

चिन्ह—संज्ञा पुं० [सं० चिह्न] दे० 'चिह्न'।

चिन्हवाना—क्रि० स० [हिं० 'चीन्हना' का प्रे० रूप] पहचनवाना। परिचित करना। ठीक लक्षण बता देना। पहचान करा देना।

चिन्हाटी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्ह+आटी (प्रत्य०)] दे० 'चिन्हानी'।

चिन्हाना‡—क्रि० स० [हिं० 'चीन्हना' का प्रे० रूप] पहचनवाना। परिचित कराना।

चिन्हानी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्ह] १. चीन्हने की वस्तु। पहचान। लक्षण। २. ऐसी वस्तु जिससे किसी बात या मनुष्य का स्मरण हो। स्मारक। यादगार। चिह्न। रेखा। धारी। लकीर।

क्रि० प्र०—खींचना।—पारना।

चिन्हार—[हिं० चिन्ह] जानपहचान का। जिससे जान पहचान हो। परिचित।

चिन्हारी‡—वि० [हिं० चिन्ह] जानपहचान। भेंट मुलाकात। परिचय। उ०—कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी।—मानस, १। ५०।

चिन्हित(पु)—वि० [सं० चिह्नित] दे० 'चिह्नित'।

चिन्हौटी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्ह+औटी (प्रत्य०)] दे० 'चिन्हानी'।

चिपकना—क्रि० अ० [अनुकरणात्मक देश०] १. बीच में किसी लसीली वस्तु के कारण दो वस्तुओं का इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न हो सकें। सटना। चिमटना। श्लिष्ट होना। जैसे,—इस पुस्तक के पन्ने चिपक गए हैं।

क्रि० प्र०—जाना।

२. प्रगाढ़ रूप से संयुक्त होना। लिपटना। ३. स्त्री पुरुष का संयोग होना। स्त्री पुरुष का परस्पर प्रेम में फँसना। ४. रोजगार से लगना। किसी काम में लगना।

चिपकाना क्रि० स० [हिं० चिपकना] १. किसी लसीली वस्तु को बीच में देकर दो वस्तुओं को परस्पर इस प्रकार जोड़ना कि वे जल्दी अलग न हो सकें। चिमटना। श्लिष्ट करना। चस्पाँ करना। जैसे,—इस कागज पर टिकट चिपका दो।

संयो० क्रि०—देना ।

२. प्रगाढ़ आलिंगन करना । लिपटाना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

३. नौकरी लगाना । किसी काम धंधे में लगाना ।

चिपचिप—संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द या अनुभव जो किसी लसदार वस्तु को छूने से होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

चिपचिपा—वि० [अनु० चिपचिपा या हिं० चिपकना] जिसे छूने से हाथ चिपकता हुआ जान पड़े । लसदार । लसीला । जैसे,—चोटा, शहद, चाशनी आदि वस्तु ।

चिपचिपाना—क्रि० अ० [हिं० चिपचिप] छूने से चिपचिपा जान पड़ना । लसदार मालूम होना । जैसे,—स्याही में गोंद अधिक है, इसी से चिपचिपाती है ।

चिपचिपाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपचिपा] चिपचिपाने का भाव । लसीलापन । लस । लसी ।

चिपट[1]—वि० [सं०] चिपटी नाकवाला [को०] ।

चिपट[2]—संज्ञा पुं० चिड़वा [को०] ।

चिपटना—क्रि० अ० [सं० चिपिट (=चिपटा)] १. इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न हो सके । चिपकना । सटना । चिमटना । २. दे० 'चिपकना' ।

चिपटा—वि० [सं० चिपिट] [स्त्री० चिपटी] जो कहीं से उठा या उभड़ा हुआ न हो । जिसकी सतह दबी और बराबर फैली हुई हो । जैसे,—(क) चिपटी नाक, चिपटा दाना, चिपटे बीज । उ०—पेड़ पर से गिरकर फल चिपटा हो गया ।

चिपटाना—क्रि० स० [हिं० चिपटना] १. चिपकाना । सटाना । २. लिपटाना । आलिंगन करना ।

चिपटी[1]—वि० स्त्री० [हिं० चिपटा] दे० 'चिपटा' ।

चिपटी[2]—संज्ञा स्त्री० १. कान में पहनने की एक प्रकार की वाली जिसे नैपाली स्त्रियाँ पहनती हैं । २. भग । योनि ।

मुहा०—चिपटी खेलना=दो स्त्रियों का कामवश परस्पर योनि से योनि घिसना । उ० आओ पड़ोसिन चिपटी खैलें, बैठे से बेगार भली ।—(शब्द०) । चिपटी लड़ाना=दे० 'चिपटी खेलना' ।

चिपड़ा†—वि० [हिं० चीपड़] जिसकी आँख में अधिक चीपड़ रहता हो । जिसकी आँख से अधिक चीपड़ निकलता हो ।

चिपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिप्पड़] गोबर के पाथे हुए चिपटे टुकड़े । उपली । गोहँठी ।

क्रि० प्र०—पाथना ।

चिपरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपड़ी] दे० 'चिपड़ी' ।

चिपिट[1]—वि० [सं०] चिपटा ।

चिपिट[2]—संज्ञा पुं० १. चिउड़ा । चिड़वा । २. चिपटी नाकवाला । मनुष्य जिसका दर्शन अशुभ माना जाता है । ३. दृष्टि की चकपकाहट जो आँखों को उँगली आदि से दबाने से हो ।

विशेष—इस प्रकार की चकपकाहट से कभी एक के दो या तीन पदार्थ दिखाई देते हैं, कभी पदार्थ नीचे या ऊपर हटे हुए दिखाई पड़ते हैं ।

चिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिपीटक' [को०] ।

चिपिटग्रीव—वि० [सं०] छोटी गरदनवाला [को०] ।

चिपिटनासिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो कैलास पर्वत के उत्तर पड़ता है । तातार या मंगोल देश जहाँ के निवासियों की नाक चपटी होती है । २. उस देश के निवासी, तातार या मंगोल ।

चिपिटनासिक[2]—वि० चिपटी नाकवाला ।

चिपीटक—संज्ञा पुं० [सं०] चिउड़ा । चिड़वा ।

चिपुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] चेल्हवा मछली ।

चिपुट—संज्ञा पुं० [सं०] चिउड़ा [को०] ।

चिप्प—संज्ञा पुं० [सं०] नख का एक रोग जिसमें नाखून के नीचे मांस में जलन और पीड़ा होती है और कभी कभी नाखून पक भी जाता है ।

चिप्पख—[हिं० चिपकना] १. चिपका या दबका हुआ ।

चिप्पड़—संज्ञा पुं० [सं० चिपिट] १. छोटा चिपटा टुकड़ा । जैसे,—इसके ऊपर कागज का एक चिप्पड़ लगा दो । २. सूखी लकड़ी आदि के ऊपर की छूटी हुई छाल का टुकड़ा । पपड़ी । ३. किसी वस्तु के ऊपर से छीलकर निकाला हुआ टुकड़ा ।

चिप्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृहत्संहिता के अनुसार एक रात्रिचर जतु । २. एक चिड़िया का नाम । उ०—बाँसा, बटेर, लव औ सिचान । धूती रु चिप्पिका चटक भान ।—सूर (शब्द०) ।

चिप्पी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिप्पड़] १. छोटा । चिप्पड़ । २. उपली । गोहँठी । ३. वह बटखरा जिससे सीधा तौला जाता है । ४. सीधा । जिस (साधु) । ५. फटे बर्तन पर लगाया जानेवाला धातु का टुकड़ा । ६. पतली, छोटी और चिपटी लकड़ी का टुकड़ा जिसे जोड़ को कसने के लिये लगाते हैं । पच्चर । ७. कागज का छोटा टुकड़ा जो कहीं चिपकाया जाय ।

चिबि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चिवि' [को०] ।

चिबिल्ला†—वि० [हिं०] दे० 'चिलबिला' ।

चिबु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिबुक' [को०] ।

चिबुक—संज्ञा पुं० [सं०] ठुड्ढी । ठोड़ी ।

यौ०—चिबुककूप=ठोड़ी का गड्ढा । उ०—चिबुककूप छवि उभकै जोई । जगत कूप पुनि परै न सोई ।—नंद० ग्रं०, पृ० १२३ ।

चिमगादड़†—संज्ञा पुं० [हिं० चमगादड़] दे० 'चमगादड़' ।

चिमटना—क्रि० अ० [हिं० चिपटना] १. चिपकना । सटना । लस जाना । २. प्रगाढ़ आलिंगन करना । लिपटना । जैसे,—वह अपने भाई को देखते ही उससे चिमटकर रोने लगा । ३. हाथ पैर आदि सब अंगों को लगाकर दृढ़ता से पकड़ना । कई स्थानों पर कसकर पकड़ना । गुथना । जैसे, चींटों का चिमटना । जैसे,—शेर को देखते ही वह एक पेड़की डाल से चिमट गया । ४. पीछे पड़ जाना । पीछा न छोड़ना । पिंड न छोड़ना ।

चिमटवाना—क्रि० स० [हिं० चिमटना का प्रे० रूप] दूसरे से चिमटाने का काम कराना ।

चिमटा—संज्ञा पुं० [हिं० चिमटना] [स्त्री० अल्पा० चिमटी] लोहे, पीतल आदि की दो लंबी और लचीली फट्टियों का बना हुआ एक औजार जिससे उस स्थान पर की वस्तुओं को पकड़कर उठाते हैं, जहाँ हाथ नहीं ले जा सकते । दस्तपनाह।

चिमटाना—क्रि० स० [हिं० चिमटना] १. चिपकाना । सटाना । लसना । २. लिपटाना । आलिंगन करना ।

चिमटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिमटा] १. छोटा चिमटा । २. सोनारों का एक औजार जिससे तार आदि मोड़ने और महीन रवे उठाने का काम लिया जाता है ।

विशेष—और भी कई पेशेवाले इस नाम के औजार का प्रयोग करते हैं । इसे चिमोटी या चिकोटी भी कहते हैं ।

चिमड़ा—वि० [हिं०] दे० 'चीमड़' ।

चिमन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चमन] दे० 'चमन' ।

चिमनी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. ऊपर उठी हुई शीशे की वह नली जिससे लंप का धुआँ बाहर निकलता और प्रकाश फैलता है । २. किसी मकान, कारखाने, या भट्ठी के ऊपर लोहे या ईंटों का बना वह लंबा छेद जिससे धूआँ बाहर निकलता है ।

विशेष—चिमनी कई प्रकार की बनाई जाती है । रहने के मकानों में जो चिमनी बनती है,वह बहुत ऊपर उठी हुई नहीं होती पर कल कारखानों (जैसे, पुतलीघर) में जो चिमनियाँ होती हैं वे बहुत ऊँची उठाई जाती हैं जिसमें धूआँ बहुत ऊपर जाकर आकाश में फैल जाय ।

चिमि—संज्ञा पुं० [सं०] तोता [को०] ।

चिमिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिमि' [को०] ।

चिमोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिमटना] १. चिमटने की क्रिया या भाव । २. चिमटने के कारण पड़नेवाला दबाव या भार ।

चिमोटा—संज्ञा पुं० [हिं० चमोटा] दे० 'चमोटा' ।

चिमोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिमटी] दे० 'चिमटी' ।

चियारना—क्रि० स० [देश०] बाना । फैलाना । खोलना । जैसे,—दाँत चियारना ।

चिरंजीव[1]—वि० [सं० चिरञ्जीव] चिरजीवी ।

विशेष—इस शब्द से दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया जाता है । यह शब्द पुत्रवाचक भी है ।

चिरंजीव[2]—संज्ञा पुं० बेटा । जैसे, आपके चिरंजीव ने ऐसा कहा है ।

चिरंजीव[3]—अव्य० एक आशीर्वादात्मक शब्द अर्थात् बहुत दिन तक जीओ [को०] ।

चिरंजीवी—वि० [सं० चिरञ्जीविन्] दे० 'चिरजीवी' ।

चिरंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिरण्टी] १. सयानी लड़की जो पिता के घर रहे । २. युवती ।

चिरंतन—वि० [सं० चिरन्तन] बहुत दिनों का । पुरातन । पुराना ।

चिरंम—संज्ञा पुं० [सं० चिरम्म] चील ।

चिरंभण—संज्ञा पुं० [सं० चिरम्भण] दे० 'चिरंम' ।

चिर[1]—वि० [सं०] बहुत दिनों का । दीर्घकालवर्ती । जैसे,—चिरकाल, चिरायु । उ०—हो एहु संतत पियहि पियारी । चिर अहिवात असीस हमारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—चिरकमनीय चिरकुमार=ब्रह्मचारी । आजीवन अविवाहित । उ०—चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य दीप्त । —अनामिका, पृ० ५८ । चिरनवीन=सदा नया रहनेवाला । उ०—उज्ज्वल, अधीर और चिरनवीन । —अनामिका, पृ० ५८ । चिरपोषित=जिसका पोषण, रक्षण बहुत काल तक किया गया हो । चिरकाल से रक्षित अथवा पालित । उ०—अपनी ही भावना की छायाएँ चिरपोषित ।—अनामिका, पृ० ७० । चिरप्रतीक्षित=जिसकी प्रतीक्षा बहुत दिनों से की जा रही हो । उ०—उसके बाद चिरप्रतीक्षित औ चिरकमनीय, उसके स्वप्न और जागरण की आराध्य देवी । —वो दुनिया, पृ० १२ । चिरसमाधि=(१) सदा से समाधिस्थ । बहुत काल से प्रसुप्त । उ०—चिरसमाधि में अचिर प्रकृति जब तुम अनादि तब केवल तम ।—अनामिका, पृ० ३१ । (२) मृत्यु ।

चिर[2]—क्रि० वि० बहुत दिन । अधिक समय तक । दीर्घकाल तक । जैसे, चिरस्थायी । चिरजीवी । उ० चिर जीवहु सुत चारि चक्रवर्ती दशरत्थ के ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—चिरायु । चिरकाल । चिरकारी । चिरक्रिय । चिरजात । चिरजीवी । चिररोगी । चिरनव्य । चिरशांति । चिरसंगी ।

चिर[3]—संज्ञा स्त्री० तीन मात्राओं का गण जिसका प्रथम वर्ण लघु हो ।

चिरई—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] चिड़िया । पक्षी ।

चिरउँजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरौंजी] दे० 'चिरौंजी' । उ०—राय करौंदा बौंर चिरउँजी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४ ।

चिरक—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरकना] बहुत जोर लगाने पर होनेवाला थोड़ा सा पाखाना ।

चिरकट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चिरकुट' । उ०—केचित् चिरकट बीनहिं पंथा । निर्गुन रूप दिखावैं कंथा ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६२ ।

चिरकढाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरकना+ढाँसना] १. एक न एक रोग का नित्य बना रहना । कभी कुछ रोग कभी कुछ । सदा बनी रहनेवाली अस्वस्थता । २. नित्य का झगड़ा । रगड़ा ।

चिरकना—क्रि० अ० [अनु०] थोड़ा थोड़ा मल निकलना । थोड़ा थोड़ा हगना ।

चिरकमनीय—संज्ञा स्त्री० [सं०] जो स्थायी रूप से सुंदर हो । वह जिसका सौंदर्य स्थायी हो । उ०—चिरप्रतीक्षित और चिरकमनीय उसके स्वप्न और जागरण की आराध्य देवी ।—वो दुनिया, पृ० १२ ।

चिरकार—वि० [सं०] दे० 'चिरकारिक' [को०] ।

चिरकारिक—वि० [सं०] दीर्घसूत्री । चिरकारी ।

चिरकारी--वि० [सं० चिरकारिन्] [वि० स्त्री० चिरकारिणी] काम में देर लगानेवाला । दीर्घसूत्री ।

चिरकाल--संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घकाल । बहुत समय । जैसे–चिरकाल से यह प्रथा चली आई है ।

चिरकीन¹--वि० [फ़ा०] मैला । गंदा (लश०) । उ०--माया की चिरकीन लखौ तुम देखि कै मूँदौ नाक ।--पलटू०, भा० ३, पृ० १० । २. चिरकनेवाला ।

चिरकीन²--संज्ञा पुं० उर्दू भाषा के एक बीभत्स रस के कवि ।

चिरकुट--संज्ञा पुं० [सं० चिर+कुट्ट (=काटना)]फटा पुराना कपड़ा । चिथड़ा । गूदड़ । उ० काढ़हु कंथा चिरकुट लावा । पहिरहु राते दगल सुहावा ।--जायसी (शब्द०) ।

चिरक्रिय--वि० [सं०] काम में देर लगानेवाला । दीर्घसूत्री ।

चिरक्रियता-- संज्ञा स्त्री० [सं०] दीर्घसूत्रता ।

चिरगट--संज्ञा पुं० [हिं० चीर+गट] दे० 'चिरकुट' । उ०--चिरगट फारि चटारा लै गयो तरी तागरी छूटी ।--कबीर ग्रं०, पृ० २७१ ।

चिरचना--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'चिड़चिड़ाना' ।

चिरचिटा--संज्ञा पुं० [देश०] १. चिचड़ा । अपामार्ग । २. एक ऊँची घास जो बाजरे के पौधे के आकार की होती है । इसे चौपाए खाते हैं ।

चिरचिरा¹--वि० [हिं० चिड़चिड़ा] दे० 'चिड़चिड़ा' ।

चिरचिरा²--संज्ञा पुं० [हिं० चिचड़ा] दे० 'चिचड़ा' ।

चिरचिराहट-- संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़चिड़ाना] दे० 'चिड़चिड़ाहट' ।

चिरजीवक संज्ञा पुं० [सं०] जीवक नाम का वृक्ष ।

चिरजीवन-- संज्ञा पुं० [सं०] अमर जीवन (को०) ।

चिरजीवी¹--वि० [सं० चिरजीविन्] १. बहुत दिनों तक जीनेवाला । दीर्घजीवी । २. सब दिन जीवित रहनेवाला । अमर ।

चिरजीवी²--संज्ञा पुं० १. विष्णु । २. कौवा । ३. जीवक वृक्ष । ४. सेमर का पेड़ । ५. मार्कंडेय ऋषि । ६. अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम जो चिरजीवी माने गए हैं ।

चिरत†--संज्ञा पुं० [सं० चिरत] दे० 'चरित' । उ०--कोट सत चिरत रघुनाथ कियो ।--रघु० रू०, पृ० ५७ ।

चिरताल†--वि० [हिं० चिरत+आल(प्रत्य०)] १. चरित्रवाला । चिट्टेवाज । २. नखरेबाज । उ०--सूँसकरै गालाँ सहै, चुग़ । वड़ो चिरताल ।--बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ५६ ।

चिरतिक्त-- संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता ।

चिरतुषाररेखा--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत आदि की वह ऊँचाई जहाँ सर्वदा बर्फ जमी रहती है ।

चिरत्न--वि० [सं०] [वि० स्त्री० चिरत्नी] पुरातन । पुराना ।

चिरत्व--संज्ञा पुं० [सं०] स्थायित्व । चिरजीवन का भाव । दीर्घत्व । उ० फिर ओओगे निश्चय । निज चिरत्व से पस्तों ।--ग्राम्या, पृ० ६८ ।

चिरना¹--क्रि० अ० [सं० चीर्ण, हिं० चीरना या अनुकरणात्मक] १. फटना । सीध में कटना । जैसे,--कपड़ा चिरना, लकड़ी चिरना । २. लकीर के रूप में घाव होना । सीधा क्षत होना । जैसे, फट्टी मत छुओ, उँगली चिर जायगी ।

चिरना²--संज्ञा पुं० १. चीरने का औजार । २. सोनारों का एक औजार । ३. कुम्हारों का वह धारदार लोहा जिससे वे नरिया चीरते हैं । ४. कसेरों का एक औजार जिससे वे थाली के बीच में ठप्पा या गोल लकीर बनाते हैं ।

चिरनिद्रा--संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु (को०) ।

चिरपरिचित--वि० [सं०] पुराना परिचित । जिससे सदा से जान पहचान हो ।

चिरप्रवृत्त--वि० [सं०] १. बहुत दिनों तक टिकनेवाला । २. दीर्घकाल से किसी कार्य में लगा हुआ (को०) ।

चिरप्रसूता--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसे बच्चा दिए बहुत दिन हो गया हो (को०) ।

चिरपाकी--संज्ञा पुं० [सं० चिरपाकिन्] कैथ । कपित्थ ।

चिरपुष्प-- संज्ञा पुं० [सं०] बकुल । मौलसिरी ।

चिरवत्ती--वि० [हिं० चिरना+वत्ती] चिथड़ा चिथड़ा । टुकड़ा टुकड़ा । पुरजा पुरजा ।

मुहा०--चिरवत्ती कर डालना=चिथड़े चिथड़े कर डालना । फाड़ कर टुकड़े टुकड़े करना (कागज, कपड़ा आदि) ।

चिरविल्व--संज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष । कंजा ।

चिरम--संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा । घुँघची । उ०--पाइ तरुनिकुच उच्च पद चिरम ठग्यो सबु गाउँ । छुटैं ठौर रहिहै वहै जु हो मोलु छबि नाउँ ।--बिहारी र०, दो० २३७ ।

चिरमिटी--संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा । घुँघची ।

चिरमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चिरम' (को०) ।

चिरमेही--संज्ञा पुं० [सं० चिरमेहिन] देर तक मूतनेवाला अर्थात् गधा (को०) ।

चिरला--संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी ।

विशेष--यह पंजाब, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान और फारस में होती है । यह महीनों तक बिना पत्तियों के ही रहती है । इसमें काले रंग के मीठे फल लगते हैं जिनका व्यवहार औषध में होता है ।

चिरवल--संज्ञा पुं० [सं० चिरविल्व या चिरवल्ली] एक पौधा जो बंगाल और उड़ीसा से लेकर मदरास और सिंहल तक होता है ।

विशेष--यह पौधा छह महीने तक रहता है । इसकी जड़ की छाल से एक प्रकार का सुंदर रंग निकलता है जिससे मछलीपट्टन, नेलोर आदि स्थानों में कपड़े रँगे जाते हैं । इन स्थानों में इस पौधे की खेती होती है । असाढ़ में इसके बीज बोए जाते हैं । इस पौधे को सुरबुली भी कहते हैं ।

चिरवाई--संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरवाना] १. चिरवाने का भाव या

कार्य। २. चिरवाने की मजदूरी। ३. पानी बरसने पर खेतों की पहली जोताई।

चिरवाना—क्रि० स० [हिं० चीरना का प्रे० रूप] चीरने का काम कराना। फड़वाना।

चिरविस्मृत—वि० [सं०] जो बहुत दिनों से भुलाया जा चुका हो।

चिरवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़ का वृक्ष।

चिरस्थ—वि० [सं०] दे० 'चिरस्थायी' [को०]।

चिरस्थायी—वि० [सं० चिरस्थायिन्] बहुत दिनों तक रहनेवाला।

चिरस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत समय से मिलनेवाला प्यार। उ०—उसके प्रति अपनी चिरस्नेह तपस्या का रहस्योद्घाटन किया।—वो दुनिया, पृ० १२।

चिरस्मरणीय—वि० [सं०] १. बहुत दिनों स्मरण रखने योग्य। २. पूजनीय। प्रशंसनीय।

चिरहँटा—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़ी + हंता] चिड़ीमार। बहेलिया। व्याध। उ०—कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा। कतहुँ पखंडी काठ नचावा।—जायसी (शब्द०)।

चिरहुला—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० चिरहुली] १. चिड़ा। २. पक्षी।

चिरांदा—वि० [अनु० चिर चिर (=लकड़ी आदि के जलने का शब्द)] थोड़ी थोड़ी बात पर बिगड़नेवाला। चिड़चिड़ा।

चिराइता—संज्ञा पुं० [हिं० चिरायता] दे० 'चिरायता'।

चिराइंध—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरायँध] दे० 'चिरायँध'।

चिराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीरना] १. चीरने का भाव या क्रिया। २. चीरने की मजदूरी।

चिराक—संज्ञा पुं० [फ़ा० चराग] दे० 'चिराग'। उ०—(क) सोहत चंद्र चिराक बीजना करत दसौं दिसि।—जयसिंह (शब्द०)। (ख) गुलगुली गिलमैं गलीचा है, गुनीजन हैं चाँदनी है चिकैं है चिराकन की माला है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६५।

चिराकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरागी] दे० 'चिरागी'। उ०—चंद चिराकी चहुं दिसा सब सीतल जानैं। सूरज भी सेवा करै, जैसे भल मानैं।—दादू०, पृ० ६२५।

चिराग—संज्ञा पुं० [फ़ा० चिराग, चराग] दीपक। दीआ।

क्रि० प्र०—गुल करना।—जलना।—जलाना।—बुझना।—बुझाना।—बढ़ाना।

यौ०—चिराग गुल पगड़ी गायब = मौका मिलते ही धन का उड़ा दिया जाना। चिराग जले = अँधेरा होने पर। सध्या समय। चिराग बत्ती का वक्त = संध्या का समय। चिराग सहरी, चिराग सुबह = (१) वह दिया जो बुझने बुझने को हो। (२) वह व्यक्ति जिसके जीवन के अंतिम दिन करीब हों। मरणासन्न। चिराग का गुल = दिए या चिराग का फुचड़ा जो रोशनी तेज करने के लिये झाड़ दिया जाता है।

मुहा०—चिराग का हँसना = चिराग से फूल झड़ना। चिराग को हाथ देना = चिराग बुझाना। चिराग गुल करना = (१) दीआ बुझाना। (२) किसी के वंश का विनाश करना। (३) रोनक मिटाना। चिराग गुल होना = (१) दीए का बुझ जाना। (२) रौनक मिटना। उदासी छाना। (३) किसी वंश का विनाश होना। चिराग ठंढा करना = चिराग बुझाना। चिराग तले अँधेरा होना = (१) किसी ऐसे स्थान पर बुराई होना जहाँ उसके रोकने का प्रबंध हो। जैसे, हाकिम के सामने अत्याचार होना, पुलिस के सामने चोरी होना, किसी उदार धनी के किसी संबंधी का भूखों मरना, इत्यादि इत्यादि। (२) किसी ऐसे मनुष्य द्वारा कोई बुराई होना जिससे उसकी संभावना न हो। जैसे, किसी विद्वान् द्वारा कोई कुकर्म होना, इत्यादि। चिराग दिखाना = रोशनी दिखाना। सामने उजाला करना। चिराग बढ़ाना = रोशनी बुझाना। चिराग बत्ती करना = दीआ जलाना। दीआ जलाने की तैयारी करना। चिराग लेकर ढूँढना = बड़ी छानबीन के साथ ढूँढ़ना। चारों ओर हैरान होकर ढूँढ़ना। परस्पर लाभ पहुँचना। चिराग से फूल झड़ना = चिराग की जली हुई बत्ती में गोल गोल फुचड़े निकलना या गिरना। चिराग से गुल झड़ना। चिराग से चिराग जलना = एक दूसरे से लाभान्वित होना। चिराग से फूल झड़ना = चिराग का गुल झड़ना।

चिरागदान—संज्ञा पुं० [फ़ा० चिराग + दान] दीअट। फतीलसोज। शमादान।

चिरागी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चिराग जलाने का खर्च। किसी स्थान पर दीआ बत्ती करते रहने का खर्च या मजदूरी। २. जुआरियों के अड्डे पर चिराग जलानेवाले की मजदूरी जो बहुधा दाँव जीतनेवाला खिलाड़ी प्रत्येक दाँव जीतने पर देता है। ३. वह भेंट जो किसी मजार पर चढ़ाई जाती है।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—देना।

चिराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफेद पुनर्नवा। २. चिरायता।

चिरातन Ⓤ वि० [सं० चिरन्तन] १. पुरातन। पुराना। २. जीर्ण। उ० हम तो तबही तें जोग लियो। पहिरि मेखला चीर चिरातन पुनि पुनि फेरि सियाए।—सूर (शब्द०)।

चिरातिक्त—संज्ञा पुं० [सं० चिरतिक्त] दे० 'चिरतिक्त'।

चिराद—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

चिराद—संज्ञा पुं० [सं० चिराद] बराक की जाति की एक प्रकार की बड़ी चिड़िया जिसका मांस स्वादिष्ट होता है।

चिराना—वि० [हिं० चिराना] बहुत पुराना। अधिक दिनों का।

यौ०—पुरान चिरान = बहुत पुराना। अधिक दिनों का।

चिराना[1]—क्रि० स० [हिं० चीरना] चीरने का काम कराना। फड़वाना। जैसे,—फोड़ा चिराना, लकड़ी चिराना।

चिराना[2]—वि० [सं० चिरन्तन] १. पुराना। पुरातन। उ०—भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना।—मानस, १।३६। २. जीर्ण।

यौ०—पुराना चिराना।

चिरायँध—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्म + गंध] वह दुर्गंध जो चरबी, चमड़े, बाल, मांस आदि जीवों के अंगों के अंशों के जलने से फैलती है।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उठना।—फैलना।—निकलना।

मुहा०—चिरायँध फैलना=बदनामी फैलना।

चिरायता—संज्ञा पुं० [सं० चिरतिक्त या चिरात्] दो ढाई हाथ ऊँचा एकपौधा जो हिमालय के किनारे कमठंढे स्थानों में काश्मीर से भूटान तक होता है। खसिया की पहाड़ियों पर भी यह पौधा मिलता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और तुलसी की पत्तियों के बराबर होती हैं। जाड़े के दिनों में इसके फूल लगते हैं। सूखा पौधा (जड़, डंठल, फूल, सब) औषध के काम में आता है। फूल लगने के समय पौधा उखाड़ा जाता है और दबाकर बाहर भेजा जाता है। नैपाल के मोरंग नामक स्थान से चिरायता बहुत आता है। चिरायते का सर्वांग कड़वा होता है; इसी से यह ज्वर में बहुत दिया जाता है। वैद्यक में यह दस्तावर, शीतल तथा ज्वर, कफ, पित्त, सूजन, सन्निपात, खुजली, कोढ़ आदि को दूर करनेवाला माना जाता है। इसकी गणना रक्तशोधक ओषधियों में है। डाक्टरी में भी इसका व्यवहार होता है। चिरायते की बहुत सी जातियाँ होती हैं। एकप्रकारका छोटा चिरायता दक्षिण में बहुत है। एक चिरायता कल्पनाथ के नाम से प्रसिद्ध है जो सबसे अधिक कड़ुआ होता है। *गीमा नाम का एक पौधा भी चिरायते ही* की जाति का है जो सारे भारत में जलाशयों के किनारे होता है। दक्षिण देश के वैद्य और हकीम हिमालय के चिरायते की अपेक्षा शिलारस या शिलाजीत नाम का चिरायता अधिक काम में लाते हैं जो मदरास प्रांत के कई स्थानों में होता है।

पर्या०—भूनिंब। अनार्यतिक्त। कैरात। कांडतिक्तक। किरातक। किराततिक्त। चिरतिक्त। रामसेवक। सुतिक्तक। चिराटिका। काटुतिक्ता।

चिरायु¹—वि० [सं० चिरायुस्] चिरंजीवी। बड़ी उम्रवाला। बहुत दिनों तक जीनेवाला। दीर्घायु।

चिरायु²—संज्ञा पुं० देवता।

चिरारी⁽ᵘ⁾—संज्ञा स्त्री० [सं० चार] चिरौंजी। उ०—खरिक दाख अरु गरीं चिरारी। पीड़ बदाम लेत बनवारी।—सूर (शब्द०)।

चिराव—संज्ञा पुं० [हिं० चिरना] १. चीरने का भाव या क्रिया। २. घाव जो चीरने से हो।

चिरिंटिका, चिरिंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिण्टिका, चिरिण्टी] दे० 'चिरंटी'।

चिरि¹—संज्ञा पुं० [सं०] तोता [को०]।

चिरि⁽ᵘ⁾²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरी] दे० 'चिरी'।

चिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पुराना अस्त्र [को०]।

चिरिया†⁽ᵘ⁾—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चिड़िया'। उ०—चिरिया सी जागी चिंता जनक के जियरे।—इतिहास, पृ० २८७।

चिरिहार⁽ᵘ⁾†—संज्ञा पुं० [हिं० चिरी+हार (=वाला) (प्रत्य०)] पक्षी फँसानेवाला। बहेलिया। उ०—जौं न होत चारा कै आसा। किन चिरिहार ढुकत लेई लासा।—जायसी (शब्द०)।

चिरो⁽ᵘ⁾—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़िया] दे० 'चिड़िया'। उ०—चिरी-को मरन बालकन को खेल है।—श्यामा०, पृ० १५।

चिरु—संज्ञा पुं० [सं०] कंधे और बाँह का जोड़। मोढ़ा।

चिरैता†—संज्ञा पुं० [हिं० चिरायता] दे० 'चिरायता'।

चिरैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़िया] १. दे० 'चिड़िया'। २. वर्षा का पुष्य नक्षत्र। उ०—अद्रा धान पुनर्बसु पैया। गया किसान जो बोवै चिरैया।—घाघ०, पृ० ७३। ३. परिहत का सिरा जिसे जोतनेवाला पकड़ता है।

चिरौंजी—संज्ञा स्त्री० [सं० चार+बीज] पियार या पियाल वृक्ष के फलों के बीज की गिरी। पियार के बीज की गिरी जो खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है और मेवों में समझी जाती है। यह किशमिश, बादाम के साथ पकवानों और मिठाइयों में भी पड़ती है। इसे पियार मेवा भी कहते हैं। दे० 'पियार'।

चिरौटा—संज्ञा पुं० [हिं०चिड़ा+औटा (प्रत्य०)] १ चिड़ा। गौरा पक्षी। २. चिड़िया का छोटा बच्चा।

चिरौरी—संज्ञा पुं० [देश०] प्रार्थना। उ०—और कर्मचारियों का बहुत सा समय चिरौरी बिनती करने में कट जाता था।—काया०, पृ० १७१।

चिर्क—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. गंदगी। मैल। २. मल। टट्टी। पाखाना। ३. मवाद। पीब।

चिर्भटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।

चिर्म—संज्ञा पुं० [फ़ा०, तुलनीय सं० चर्म] चमड़ा।

चिर्मिठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरमिटी] दे० चिरमिटी'। उ०—क्या मैं सोने के सुहावने दाने को काले मुँह की चिर्मिठी के साथ तोल दूँ?—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ११५।

चिर्राहिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरायँध] दे० 'चिराइन'। उ०—माँस का चटचटाकर जलना और उसमें से चिर्राहिन की दुर्गंध निकलना।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २. पृ० ८१।

चिर्री—संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिका (=एक अस्त्रका नाम)] बिजली। वज्र।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।—मारना=बिजली गिरना। स्त्रियाँ शाप में कहती हैं, तुम्हें चिर्री मारे।

चिलक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] १. आभा। कांति। द्युति। चमक। झलक। उ०—(क) कहै रघुनाथ वाके मुखकी लुनाई आगे चिलकजुन्हाइनकी चंद सरसानो है।—रघुनाथ (शब्द०) (ख) जब वाके रद की चिलक चमचमाती बहु कोनि। होति दुति चंद की चपति चंचला जोति।—शृंगार (शब्द०)। (ग) चिलक तिहारी चाहि के सूधो तिलक ने।—शृंगार सत० (शब्द०)। २. रह रहकर उठनेव दर्द। टीस। चमक। ३. एकबारगी पीड़ा होकर बंद जानेवाला दर्द। जैसे,—उठते बैठते कमर में चिलक होती है

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिलका[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] तिलक नामक पौधा।

चिलकना—क्रि० अ० [हिं० चिल्ली (=बिजली) या अनु०] १. रह रहकर चमकना। चमचमाना। झलकना। २. दर्द का रहरहकर उठना। ३. एकबारगी पीड़ा होकर बंद हो जाना। थमकना।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिलका[१]—संज्ञा पुं० [हिं० चिलक] चमकता हुआ चाँदी का सिक्का रुपया।

चिलका[२]—वि० [हिं० चिलक (= चमक)] चमका। चौंधा। उ०—यह सब माया मृगजल, झूठा झिलिमिलि होइ। दादू चिलका देखि करि सत करि जाना सोइ।—दादू०, पृ० २१९।

चिलका[३]—संज्ञा स्त्री० [देश०] उड़ीसा की एक बड़ी झील।

चिलका[४]—संज्ञा पुं० [देश०] नवजात शिशु।

चिलकाना—क्रि० स० [हिं० चिलक] १. चमकाना। झलकाना। २. किसी वस्तु को इतना माँजना कि वह चमकने लगे। उज्वल करना।

चिलकी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] १. चाँदी का रुपया। २. एक प्रकार का रेशमी वस्त्र।

चिलकी[२] वि० स्त्री० चमकीली।

चिलगोजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चिलगोज़ह्] एक प्रकार का मेवा। चीड़ या सनोबर का फल।

विशेष—दे० 'चीड़'।

चिलचिल—संज्ञा पुं० [हिं० चिलकना] अभ्रक। अबरक। भोंड़ल।

चिलचिलाना[१]—क्रि० अ० [हिं० 'चिलकना] बहुत तेज चमकना। कड़ी धूप होना। जैसे, चिलचिलाती धूप।

चिलचिलाना[२]—क्रि० स० चमकाना।

चिलड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] उलटा नाम का पकवान।

चिलता संज्ञा पुं० [फ़ा० चिलतह्] एक प्रकार का जिरहबकतर। एक प्रकार का कवच।

चिलपों—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्ल+पों] दे० 'चिल्लपों'। उ०—कहीं किसी पर मार पड़ती थी, कहीं कोई अपनी चीजें लिए भाग जाता था। चिलपों मची हुई थी।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ८०२।

चिलबिल—संज्ञा पुं० [सं० चिरबिल्व] १. एक बड़ा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और खेती के औजार बनाने के काम में आती है। इसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों की सी होती हैं। २. एक बड़ा पौधा जिसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और पेड़ी, डाल आदि बहुत हलकी और हरे रंग की होती हैं।

विशेष—यह बरसात में उगता है और चार पाँच हाथ तक ऊँचा होता है। यह पौधा तालों में भी होता है जहाँ उसके पानी के भीतर का भाग फूलकर खूब मोटा हो जाता है। इस भाग को खुखड़ी कहते हैं जिससे माली ब्याह के मौर, झालर, तोरण आदि बनाते हैं।

चिलबिला, चिलबिल्ला वि० [सं० चल+बल] [वि० स्त्री० चिलबिल्ली] चंचल। चपल। शोख। नटखट। जैसे,—यह बड़ा चिलबिला लड़का है।

चिलम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कटोरी के आकार का मिट्टी का एक बरतन जिसका निचला भाग चौड़ी नली के रूप में होता है।

विशेष—इसपर तमाकू और आग रखकर तमाकू पीते हैं। साधारणतः चिलम को हुक्के की नली के ऊपर बैठाकर तमाकू पीते हैं। पर कभी कभी चिलम की नली को हाथ में लेकर भी पीते हैं। तमाकू के अतिरिक्त गाँजा, चरस आदि भी इस पर रखकर पिए जाते हैं।

यौ०—चिलमचट। चिलमबरदार।

मुहा०—चिलम चढ़ाना=(१) चिलम पर तमाकू, गाँजा आदि, और आग रखकर उसे पीने के लिये तैयार करना। (२) गुलामी करना। चिलम पीना = चिलम पर रखे हुए तमाकू का धूआँ पीना। चिलम चाटना या चिलम चाटते फिरना = चिलम (गाँजे या तमाकू) को पीने के लिये अड्डे से अड्डे पर जाना। चिलम भरना=दे० 'चिलम चढ़ाना'।

चिलमगर्दा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चिलमगर्दह्] हुक्के में हाथ भर की या इससे अधिक लंबी बाँस की नली जो चूल और जामिन से मिली होती है। इसपर चिलम रखी जाती है। नैचाबंद।

चिलमचट—वि० [फ़ा० चिलम+हिं० चाटना] १. बहुत अधिक चिलम पीनेवाला। वह जो चिलम पीने का बहुत आदी हो। २. इस प्रकार खींचकर चिलम पीनेवाला कि वह चिलम दूसरे के पीने योग्य न रहे।

चिलमची—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] देग के आकार का एक बरतन जिसके किनारे चारों ओर थाली की तरह दूर तक फैले होते हैं। इसमें लोग हाथ धोते और कुल्ली आदि करते हैं।

यौ०—चिलमची बरदार =हाथ मुँह धुलानेवाला नौकर।

चिलमन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बाँस की फट्टियों का परदा। चिक।

क्रि० प्र०—डालना।—बाँधना।—लटकाना।

चिलमपोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धातु का एक झँझरीदार ढक्कन जिससे चिलम ढँक देने से चिनगारी नहीं उड़ती।

चिलमबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] हुक्का पिलानेवाला खिदमतगार।

चिलामिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुगनू। खद्योत। २. बिजली। ३. एक प्रकार की कंठी।

चिलमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गले में पहनने की एक प्रकार की माला। २. जुगनू। ३. बिजली।

चिलवन(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० चिलमन] दे० 'चिलमन'। उ०—बैठि लखत ऋतु शोभा सुगुखि सदा चिलवन बिन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ९।

चिलवाँस—पुं० [?] एक प्रकार का फंदा जिससे चिड़ियाँ फँसाई जाती हैं।

चिलवा—संज्ञा पुं० [हिं० चीलर] दे० 'चिलड़'। उ०—इसकी परवा न रही कि ताजा हवा मिलती है या नहीं, भोजन कैसा मिलता है, कपड़े कितने मैले हैं, उनमें कितने चिलवे पड़े हुए

हैं कि खुजाते खुजाते देह में दिदोरे पड़ जाते हैं।—काया०, पृ० २८२।

चिलसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तमाकू जो काश्मीर में होता है। यह श्रीनगर के आसपास बहुत होता है और अप्रैल में बोया जाता है।

चिलहुल—संज्ञा पुं० [सं० चिल] एक प्रकार की छोटी मछली जो डेढ़ बालिश्त के लगभग होती है। यह सिंध, पंजाब, उत्तर प्रदेश और बंगाल की नदियों में पाई जाती है।

चिला—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्ला] दे० 'चिल्ला³'। उ०—चंद चिलो गहि मारो बान।—कबीर श०, पृ० २०।

चिलिम†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलम] दे० 'चिलम'।

चिलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल] चिलहुल मछली।

चिलुआ संज्ञा स्त्री० [हिं० चेल्हवा] दे० 'चेल्हवा'।

चिल्काउर—संज्ञा स्त्री० [?] प्रसूता स्त्री। जच्चा।

चिल्ल¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चिल्ला] १. चील। २. दुखती हुई आँख [को०]।

चिल्ल²—वि० दुखती आँखवाला। कीचड़ भरी आँखवाला [को०]।

चिल्लका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर [को०]।

चिल्लड़—संज्ञा पुं० [सं० चिल (=वस्त्र)] जूँ की तरह का एक बहुत छोटा सफेद रंग का कीड़ा जो मैले कपड़ों में पड़ जाता है। इस कीड़े के काटने से शरीर में बड़ी खुजली होती है और छोटे छोटे दाने पड़ जाते हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।—बीनना।

चिल्लपों—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्लाना+अनु० पों] चिल्लाना। शोर-गुल। पुकार। दोहाई।

क्रि० प्र०—करना।—मचना। मचाना।

चिल्लभक्ष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नख या नखी नाम का गंधद्रव्य।

चिल्लवाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्लाना] बच्चों का चिल्लाना जो जमुवा के रोग में होता है।

चिल्लवाना—क्रि० स० [हिं० चिल्लाना का प्रे० रूप] चिल्लाने का काम दूसरे से कराना। चिल्लाने में प्रवृत्त करना।

चिल्ला¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. चालीस दिन का समय।

यौ०—चिल्ले का जाड़ा=बहुत कड़ी सरदी।

विशेष—धनके पंद्रह, मकर पचीस। जाड़ा जानो दिन चालीस। इन्हीं चालीस दिनों के जाड़े को चिल्ले का जाड़ा कहते हैं।

२. चालीस दिन का व्रत। चालीस दिन का बंधेज या किसी पुण्यकार्य का नियम (मुसल०)।

क्रि० प्र०—खींचना।

चिल्ला²—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक जंगली पेड़। २. उर्द, मूँग या रौंदे के मैदे की परौंठी या घी चुपड़कर सेंकी हुई रोटी। चीला। उनटा।

चिल्ला³—संज्ञा पुं० [फ़ा० चिल्लह्] धनुष की डोरी। पतंचिका। उ०—कई प्रकार के गुण जानती थी जिनमें से धनुष का चिल्ला बनाना, चौगान खेलना, तीर चलाना, और कई बाजे बजाना था।—हुमायूँ०, पृ० ४८।

क्रि० प्र०—चढ़ाना। उतारना।

चिल्ला⁴—संज्ञा पुं० [देश०] पगड़ी का छोर जिसमें कलाबत्तू का काम बना रहता है। तिल्ला।

चिल्ला⁵—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मुसलिम विचारों के अनुसार एक साधना जिसके द्वारा अस्वाभाविक शक्ति वश में की जाती है।

चिल्लाना—क्रि० अ० किसी प्राणी का जोर से बोलना। मुँह से ऊँचा स्वर निकालना। शोर करना। हल्ला करना।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

चिल्लाभ—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी छोटी चोरी करनेवाला। गिरहकट। चाँई [को०]।

चिल्लाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्लाना] १. चिल्लाने का भाव। २. हल्ला। शोर। गुल।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

चिल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दोनों भौंहों के बीच का स्थान। २. एक प्रकार का बथुवा साग जिसकी पत्तियाँ छोटी होती हैं। ३. झिल्ली नामक कीड़ा। झिल्लिका। झींगुर (को०)। ४. बिजली। वज्र (को०)।

यौ०Ⓟ—चिल्लिका लता=(१) भौं। भ्रू। (२) Ⓟ वज्र। बिजली।

चिल्ली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली नाम का कीड़ा।

चिल्ली²—संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिका (=एक अस्त्र का नाम)] बिजली। वज्र। चिर्री। उ०—चम्हू तें, चिल्लिन तें, प्रलै की बिजुल्लिन तें जमतुल्य जिल्लिन तें जगत उजेरो।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३०५। (ख) चिल्लिन को चाचा औ बिजुल्लिन को बाप बड़ो बाँकुरो बबा है बड़वानल अजब को।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

चिल्ली³—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोध। २. बथुआ साग।

चिल्ली⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्त?] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी छाल गहरे खाकी रंग की होती है और जिसपर सफेद चित्तियाँ होती हैं।

विशेष—यह देहरादून, रुहेलखंड, अवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ एक बालिश्त से कुछ कम लंबी होती हैं और गर्मी के दिनों में यह फलता है। इसके फल मछलियों के लिये जहर होते हैं।

चिल्हⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] दे० 'चील' और 'चील्ह'। उ०—करपि मुट्ठि कम्मान तानि कन बान छनं किय। मनहु चिलह दिसि सदल भौंर बासं नमनं किय।—पृ० रा०, १। ६३१।

चिल्हवाँस—संज्ञा पुं० [हिं० चिलवास] दे० 'चिलवाँस'। उ०—भई पुछारि लीन्ह बनबासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिल्हवाँसू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३६३।

ल्हवाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चील] एक खेल जिसे लड़के पेड़ों पर चढ़कर खेलते हैं। गिल्हर। गिलहर।

ल्ही॰—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] चील नाम की चिड़िया। उ०—चिकारी चहूँ ओर ते चार चिल्हीं।—सूदन (शब्द०)]

ल्होर—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ह, हिं० चील्ह+ओर (प्रत्य०)] दे० 'चिल्ही'।

वि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिबुक। ठोढ़ी।

विट—संज्ञा पुं० [सं०] चिउड़ा। चिड़वा।

विल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की झाड़ी [को०]।

वुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठुड्डी। ठोढ़ी। २. मुचकुंद वृक्ष।

हर॰—वि० [देश०] चित्र विचित्र। अद्भुत। उ०—बाजी चिहर रचाइ करि, रह्या अपरछन होइ। माया पट पड़दा दिया, तार्थे लखै न कोइ।—दादू०, पृ० २३४।

हराना—क्रि० अ० [देश०] चिटकना। दरार पड़ना। उ०—मीन लिया कोउ मार ठाँव ढेला चिहराना। पलटू०, भा० १, पृ० २५।

चहाना—क्रि० अ० [हिं०] चिल्लाना। शोर करना।

चहार॰—संज्ञा पुं० [सं० चीत्कार, हिं० चिग्घाड़] चीत्कार। चिल्लाहट। चिघाड़। दे० 'चिकार'। उ०—मिले सेन पंमार चालुक्क एतं। फुहू रैन जुट्टं मनौं प्रेत हेतं। भरं सीस तुट्टं विछुट्टं विहारं। करें गल्ल अजें पिसाचं चिहारं। पृ० रा०, १२। १०४।

चिहारना॰—क्रि० अ० [हिं० 'चिहार' से नामिक धातु] चिग्घाड़ना चिल्लाना।

चिहारि॰—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिहार] दे० 'चिहार'। उ०—गाढ़े गहो गहिर गुहारियौ चिहारि कियौ एही दीनबंधु अब दीन कहूं दलि गो।—गंग०, पृ० १।

चिहुँकना॰—क्रि० अ० [सं० चमत्कृ, प्रा० चवंक्कि] चौंकना।

चिहुँटना॰—क्रि० स० [सं० चिपिट, हिं० चिमटना अथवा हिं० चमोटना (=चमड़े सहित अंग का कोई भाग पकड़ना)] १. चुटकी काटना। चुटकी से शरीर का मांस इस प्रकार पकड़ना जिसमें कुछ पीड़ा हो।

मुहा०—चित्त चिहुँटना=चित्त में संवेदना उत्पन्न करना। मर्म स्पर्श करना। चित्त में चुभना। उ०—लै चुभकी निकसै धँसै विहंसै अंग दिखाय। तकि तकि चित चिहुँटै खरी ऐड भरी अँगिराय।—शृंगार सत० (शब्द०)।

२. चिपटना। लिपटना। उ०—बाल को लाल लई चिहुँटी रिस के मिस लाल सों बाल चिहुँटी।—देव (शब्द०)।

चिहुटनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। घुँघची। चिरमिटी।

चिहुँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिहुँटना] चुटकी। चिकोटी। उ०—बाल को लाल लई चिहुँटी रिस के मिस लाल सो बाल चिहूँटी। —देव (शब्द०)।

चिहु॰—संज्ञा पुं० [प्रा० चीअ=चिता] दे० 'चिता'। उ०—दोनों दय कीने मैं आई। चिहु रचि अग्नि जरौ मैं जाई।—आलम।—हिं० क० का० पृ० २१६।

चिहु॰²—वि० [हिं० चहुँ] दे० 'चहुँ'। उ०—नगन तिद्धिअनु जासु नाम चिहु चक्क चलाइय।—पृ० रा० (उ०), पृ० २१।

चिहुर॰—संज्ञा पुं० [सं० चिकुर या चिहुर] सिर के बाल। केश। उ०—छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।—सूर (शब्द०)।

चिहुरार॰—संज्ञा पुं० [सं० चिकुर या चिहुर+भार] केशभार चिकुरभार।

चिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चिह्नित] १. वह लक्षण जिससे किसी चीज की पहचान हो। निशान। २. पताका। झंडी। ३. किसी प्रकार का दाग या धब्बा। ४. छाप (पैरों का निशान) (को०)। ५. रेखा। लकीर (को०)। ६. पद आदि की सूचक चीज (को०)। ७. लक्ष्य (को०)। ८. स्मृति दिलानेवाली वस्तु (को०)।

चिह्नकारी—वि० [सं० चिह्नकारिन्] १. चिह्न बनानेवाला। २. घाव करनेवाला। घायल करनेवाला। ३. मार डालनेवाला। ४. भयानक (को०)।

चिह्नधारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामा नाम की लता। कालीसर।

चिह्नित—वि० [सं०] चिह्न किया हुआ। जिसपर चिह्न हो।

चीं, चींचीं—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पक्षियों अथवा छोटे बच्चों का बहुत महीन शब्द। २. पक्षियों अथवा बच्चों का बहुत महीन स्वर में बहुत बोलना या शोर करना।

मुहा०—चीं बोलना=अयोग्यता, अकर्मण्यता या अधीनता स्वीकार करना। दुर्बल होना।

यौ०—चींचपड़।

चींचख—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिल्लाहट। रोना।

चींचपड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द या कार्य जो किसी बड़े या सबल के सामने प्रतिकार या विरोध के लिये किया जाय। जैसे,—अगर जरा भी चींचपड़ करोगे तो हाथ पैर तोड़कर रख दूँगा।

चींटवा—संज्ञा पुं० [हिं० चींटा] दे० 'चींटा' या 'च्यूँटा'। उ०—राम मरै तो हम मरैं नातर मरै बलाय। अविनासी का चींटवा, मरै न मारा जाय—कबीर (शब्द०)।

चींटा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चिउँटा'।

चींटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चींटी] दे० 'चिउँटी'।

चींतना¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीतना] दे० 'चीतना'।

चींतना²॰—क्रि० स० [हिं० चितना] १. चिंता करना। २. चेतना।

चींना गोला—संज्ञा पुं० [हिं० छींटा+गोला] दे० 'छींटा गोला'।

चींथना—क्रि० स० [हिं० चीथना] दे० 'चीथना'।

चींथरा॰—संज्ञा पुं० [हिं० चिथड़ा] दे० 'चिथड़ा'। उ० बोले हम यों भयो चींथरा बदन तुम्हारो।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५।

चीक१—संज्ञा स्त्री० [सं० चीत्कार] पीड़ा या कष्ट आदि के कारण बहुत जोर से चिल्लाने का शब्द। चिल्लाहट।

चीक२†—संज्ञा पुं० [हिं० चिक] मांस बेचनेवाला। कसाई। बूचर।
विशेष—प्रायः बूचरों की दूकानों पर आड़ के लिये चिकें टँगी रहती हैं, इसी से उन्हें चीक कहते हैं।

चीक३—संज्ञा पुं० [सं० चिक्किल] दे० 'कीच' या 'कीचड़'।

चीकट१—संज्ञा पुं० [हिं० कीचड़] १. तेल की मैल। तलछट। २. मटियार। लसार मिट्टी।

चीकट२—संज्ञा पुं० [देश०] १. चिकट नाम का रेशमी कपड़ा। †२. वह कपड़े या जेवर आदि जो कोई मनुष्य अपने भांजे या भांजी के विवाह में अपनी बहन को देता है।

चीकट३—वि० बहुत मैला या गंदा।

चीकड़‡—संज्ञा पुं० [सं० चिक्किल या चिखाल्ल] दे० 'कीचड़'।

चीकन‡—वि० [सं० चिक्कण] दे० 'चिकना'।

चीकना१—क्रि० अ० [सं० चीत्कार] १. पीड़ा या कष्ट आदि के कारण जोर से चिल्लाना।
संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।
२. बहुत जोर से चिल्लाना। बहुत ऊँचे स्वर से बात करना।

चीकना(पु)२—वि० [हिं० चिकना] वि० स्त्री० चीकनी] दे० 'चिकना'। उ०—अलकावलि काली चीकनी घुँघुराली।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३०।

चीकर‡—संज्ञा पुं० [देश०] कूएँ के ऊपर बना हुआ वह स्थान जिससे मोट या चरस आदि से निकाला हुआ पानी गिराया जाता है और जहाँ से पानी नालियों द्वारा होकर खेतों में पहुँचता है।

चीख—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चीख] दे० 'चीक'।
यौ०—चीख पुकार = कष्ट के समय की चिल्लाहट।

चीखना१—क्रि० स० [सं० चषण] किसी चीज को उसका स्वाद जानने के लिये थोड़ी मात्रा में खाना या पीना।

चीखना२‡—संज्ञा पुं० [हिं० चिखना या चिखना] भोजन में स्वाद-वृद्धि लाने के लिये थोड़ी मात्रा में खाया जानेवाला पदार्थ। जैसे, चटनी, तरकारी आदि।

चीखना३—क्रि० अ० [हिं० चीकना] दे० 'चीकना'।

चीखर, चीखल—संज्ञा पुं० [सं० चिक्किल या चिखल्ल] १. कीच। कीचड़। उ०—दल दाभ्या चीखल जला, बिरहा लागी आगि। तिनका बपुरा ऊबरा, गल पूरा के लागि।—कबीर (शब्द०)। २. गारा।

चीखुर संज्ञा पुं० [हिं० चिखुरा] गिलहरी।

चीज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चीज] वह जिसकी वास्तविक, काल्पनिक अथवा संभावित परंतु दूसरों से पृथक् सत्ता हो। सत्तात्मक वस्तु। पदार्थ। वस्तु। द्रव्य। जैसे,—(क) बहुत भूख लगी है, कोई चीज (खाद्यपदार्थ) हो तो लाओ। (ख) मेरे पास ओढ़ने के लिये कोई चीज (रजाई, दोहर या कोई कपड़ा) नहीं है। (ग) उनकी सब चीजें (लोटा, थाली, कपड़ा, किताबें आदि) हमारे यहाँ रखी हुई हैं।
यौ०—चीज वस्तु = सामान। असबाब।
२. आभूषण। गहना। जैसे,—(क) वह चीज रखकर रुपए लाए हैं। (ख) लड़की के हाथ पैर नंगे हैं, इसे कोई चीज बनवा दो।
यौ० चीज वस्तु = जेवर आदि।
३. गाने की चीज। राग। गीत। जैसे,—(क) कोई अच्छी चीज सुनाओ। (ख) उसने दो चीजें बहुत अच्छी सुनाई थीं।
४. विलक्षण वस्तु। विलक्षण जीव। जैसे, (क) क्या कहूँ मेरी अँगूठी गिर गई, वह एक चीज थी। (ख) आप भी तो एक चीज हैं। ५. महत्व की वस्तु। गिनती करने योग्य वस्तु। जैसे,—(क) काशी के आगे मथुरा क्या चीज है। (ख) उनके सामने ये क्या चीज हैं।

चीठ संज्ञा स्त्री० [हिं० चीकट (=कीचड़)] मैल। उ०—कीड़े काठ जु खाइया, खाया किनहू दीठ। होत उघाई देखिया भीतर जाम्या चीठ।—कबीर (शब्द०)।

चीठा†—संज्ञा पुं० [हिं० चिट्ठा] दे० 'चिट्ठा'। उ०—नाम की लाज राम करुन कर, केहि न दिए कर चीठे।—तुलसी (शब्द०)।

चीठी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिट्ठी] दे० 'चिट्ठी'।

चीड़१—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का देशी लोहा। २. जूते के लिये चमड़ा साफ करने की क्रिया (मोचियों की परिभाषा)। ३. दे० 'चीढ़'।

चीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीड़ नाम का पेड़।

चीढ़—संज्ञा पुं० [सं० सरल. प्रा० सरड़, चड्ड, चीड़ अथवा सं० चीड़ा या क्षीर (=चीढ़)?] १. एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़, जो भूटान से काश्मीर और अफगानिस्तान में बहुत अधिकता से होता है।
विशेष—इसके पत्ते सुंदर होते हैं और लकड़ी अंदर से नरम और चिकनी होती है जो प्रायः इमारत और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। पानी पड़ने से यह लकड़ी बहुत जल्दी खराब हो जाती है। इस लकड़ी में तेल अधिक होता है; इसलिये पहाड़ी लोग इसके टुकड़ों को जलाकर उनसे मशाल का काम लेते हैं। इसकी लकड़ी औषध के काम में भी आती है। इसके गोंद को गंधाबिरोजा कहते हैं। ताड़-पीन (तेल) भी इसी वृक्ष से निकलता है। कुछ लोग चिलगोजे को इसी का फल बताते हैं; पर चिलगोजा इसी जाति के दूसरे पेड़ का फल है। प्राचीन भारतीयों ने इसकी गणना गंधद्रव्य में की है और वैद्यक में इसे गरम, कासनाशक, चरपरा और कफनाशक कहा है। इसके अधिक सेवन से पित्त और कफ का दूर होना भी कहा है। इसे चील या सरल भी कहते हैं।
२. चीड़ नाम का देशी लोहा।

चीणो(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रंग। उ०—रोहड़ भड़ वंकड़ै सेल्ह पद्धर कर तोले। अस चीणो ओरियो, रुद्र जाडा धमरोले।—रा० रू०, पृ० ८७।

चीत(पु)†१—संज्ञा पुं० [सं० चित्त] १. चित्त। मन। दिल। उ०—ढोला आमण दूमणउ नखती खूदइ भीति। हमथी कुण छइ आगली वसी तुहारइ चीति।—ढोला०, दू० १३७। २. इच्छा। विचार। उ०—कै खाना कै सोवना, और न कोई

चीत। सतगुरु सब्द विसारिया, आदि अंत का मीत।—कबीर सा० सं०, पृ० ६२।

चीत²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चित्रा] चित्रा नक्षत्र। उ०—तोहि देखे पिउ पलुहै काया। उतरा चीत बहुरि करु माया।—जायसी (शब्द०)।

चीत³—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

चीतकार¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चीत्कार] दे० 'चीत्कार'।

चीतकार²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकार] दे० 'चित्रकार'।

चीतना¹—क्रि० स० [सं० चेत] [वि० चीता] १. सोचना। विचारना। भावना करना। २. चैतन्य होना। होश में आना। ३. स्मरण करना। याद करना।

चीतना²—क्रि० स० [सं० चित्र] चित्रित करना। तसवीर या बेल बूटे बनाना। उ०—द्वार बुहारत फिरत अष्ट सिधि। कौरेन सथिया चीतत नव निधि।—सूर (शब्द०)।

चीतर¹—संज्ञा पुं० [हिं० चीतल] दे० 'चीतल'।

चीतर²—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र] एक प्रकार का साँप जो छोटे आकार का, लगभग एक हाथ लंबा, होता है और जिसकी पूँछ की मोटाई बराबर होती है।

चीतल—संज्ञा पुं० [सं० चित्री (=लंबी धारी या दाग)] १. एक प्रकार का हिरन जिसके शरीर पर सफेद रंग की चित्तियाँ या बुँदकियाँ होती हैं।

विशेष—यह मझोले कद का होता है और सारे भारत में प्रायः जल के किनारे झुंडों में पाया जाता है। इसके अयाल नहीं होती है। इसकी मादा गर्भ धारण के आठ महीने बाद बच्चा देती है।

२. अजगर की जाति का पर उससे छोटा एक प्रकार का साँप।

विशेष—इसके शरीर पर छोटी छोटी चित्तियाँ होती हैं। इसके आगे का भाग पतला और मध्य का बहुत भारी होता है। यह खरगोश, बिल्ली या बकरे के छोटे बच्चों को निगल जाता है।

३. एक प्रकार का सिक्का।

चीता¹—संज्ञा पुं० [सं० चित्रक] १. बिल्ली की जाति का एक प्रकार का बहुत बड़ा हिंसक पशु।

विशेष—यह प्रायः दक्षिणी एशिया और विशेषतः भारत के जंगलों में पाया जाता है। यह आकार में बाघ से छोटा होता है और इसकी गरदन पर अयाल नहीं होती। इसकी कमर बहुत पतली होती है और इसके शरीर पर लंबी, काली और पीली धारियाँ होती हैं जो देखने में सुंदर होती हैं। यह बहुत तेजी से चौकड़ी भरता है और इसी प्रकार प्रायः हिरनों को पकड़ लेता है। यह साधारणतः बहुत हिंसक होता है और प्रायः पेट भरे रहने पर भी शिकार करता है। संध्या समय यह जलाशयों के किनारे छिपा रहता है और पानी पीनेवाले जानवरों को उठा ले जाता है। चीता मनुष्यों पर जल्दी आक्रमण नहीं करता; पर एक बार जब उसके मुँह में आदमी का खून लग जाता है, तो फिर वह प्रायः गाँवों में उसी के लिये घुस जाता है और मनुष्यों के बालकों को उठा ले जाता है। यह पेड़ पर नहीं चढ़ सकता, पर पानी में बहुत तेजी से तैर सकता है। इसकी मादा एक बार में ३–४ तक बच्चे देती है। भारत में इसका शिकार किया जाता है। कहीं कहीं बड़े आदमी इसे दूसरे जानवरों का शिकार करने के लिये भी पालते हैं। इसका बच्चा पकड़कर पाला भी जा सकता है।

२. एक प्रकार का बहुत बड़ा क्षुप जिसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं।

विशेष—इसकी कई जातियाँ हैं जिनमें अलग अलग सफेद, लाल, काले या पीले फूल लगते हैं। पर सफेद फूलवाले चीते के सिवा और रंग के फूलवाले चीते बहुत कम देखने में आते हैं। इसके फूल बहुत सुगंधित और जूही के फूलों से मिलते जुलते होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। इसकी छाल और जड़ ओषधि के काम में आती है। यह बहुत पाचक होता है। वैद्यक में इसे चरपरा हलका, अग्निदीपक, भूख बढ़ानेवाला, रूखा, गरम और संग्रहणी, कोढ़, सूजन, बवासीर, खाँसी और यकृत् दोष आदि को दूर करनेवाला तथा त्रिदोषनाशक माना है। कहते हैं, लाल फूलवाले चीते की जड़ के सेवन से शरीर स्थूल हो जाता है और काले फूल के चीते की जड़ के सेवन से बाल काले हो जाते हैं।

पर्या०—चित्रक। अनल। वह्नि। विभाकर। शिखावान्। शुष्मा। पावक। दारुण। दाहक। शिखी। हुतभुक्। पाची। इसके अतिरिक्त अग्नि के प्रायः सभी पर्याय इसके लिये व्यवहृत होते हैं।

चीता²—संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्त। हृदय। दिल। उ०—अति अनंद गति इंद्री जीता। जाको हरि बिन कबहुँ न चीता।—तुलसी ग्रं० पृ० १०।

चीता³—संज्ञा पुं० [सं० चेत] संज्ञा। होश हवास। उ०—तिन को कहा परेखो कीजै कुबजा के मीता को। चढ़ि चढ़ि सेज सातहूँ सिधू बिसरी जो चीता को।—सूर (शब्द०)।

चीता⁴—वि० [हिं० चेतना या चीतना] [वि० स्त्री० चीती] सोचा हुआ। विचारा हुआ। जैसे,—अब तो तुम्हारा चीता हुआ।

यौ०—मनचीता। मनचीती।

चीतावती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चेत] यादगार। स्मारक चिह्न।

चीतार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकार, प्रा० चित्त+आर (प्रत्य०)] चितेरा। वह व्यक्ति जो चित्र बनाता हो। उ०—षोडस गज उरद्ध, राज कमी गवष्प तस। संभ समय चीतार, पत्र कीनो पैसकस।—पृ० रा०, ३। ५६।

चीतारना¹—क्रि० स० [हिं० चीता] याद करना। उ०—चीतारंती चुगतियाँ कुंझी रोवहियाँह। दूरा हुंता तउ पलइ जउ न मेल्ह हियाँह।—ढोला०, दू० २०३।

चीतारना²—क्रि० स० [सं० चित्रण] चित्रित करना। उच्चारण करना। वर्णन करना। उ०—ओअंकार बीरज संसारे। ओअंकार गुरमुख चीतारे।—प्रा० पृ० २।

चीतिⓊ—संज्ञा पुं० [सं० चित्र] दे० 'चित्र'।

चीतोड़†—संज्ञा पुं० [हिं० चित्तौर] दे० 'चित्तौर'। उ०— पाई कंकरण सिर बंधीयो मोड़। प्रथम पयाणउ दूरग चीतोड़।—वी० रासो, पृ० १२।

चीत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] चिल्लाहट। हल्ला। शोर। गुल। चिल्लाने का शब्द।

चीथड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चीथना] फटे पुराने कपड़े का छोटा रद्दी टुकड़ा।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—पहनना।—बनना।—होना।

मुहा०—**चीथड़ा लपेटना**=फटा पुराना और रद्दी कपड़ा पहनना। **चीथड़ों लगना**=बहुत दरिद्र होना। इतना दरिद्र होना कि पहनने को केवल चीथड़े ही मिलें।

चीथना—क्रि० स० [सं० चीर्ण] टुकड़े टुकड़े करना। चोंथना। फाड़ना (विशेषतः कपड़े के लिये)।

चीथरा—संज्ञा पुं० [हिं० चीथड़ा] दे० 'चीथड़ा'।

चीदह्—वि० [फ़ा० चीदह या चिदः] चुना हुआ। छाँटा हुआ (क्व०)।

चीदा—वि० [फ़ा चीदह्] दे० 'चीदह्'।

चीन—संज्ञा पुं० [सं०] १. झंडी। पताका। २. सीसा नामक धातु। नाग। ३. तागा। सूत। ४. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। ५. एक प्रकार का हिरन। ६. एक प्रकार की ईख। ७. एक प्रकार का साँवाँ अन्न। दे० वि० 'चेना'। ८. एक प्रसिद्ध पहाड़ी देश जो एशिया के दक्षिण-पूर्व में है। इसकी राजधानी पेकिंग हैं।

विशेष—यहाँ के अधिकांश निवासी प्रायः बौद्ध हैं। चीन के निवासी अपनी भाषा में अपने देश को 'चंगक्यूह' कहते हैं। कदाचित् इसीलिये भारत तथा फारस के प्राचीन निवासियों ने इस देश का नाम अपने यहाँ 'चीन' रख लिया था। चीन देश का उल्लेख महाभारत, मनुस्मृति, ललितविस्तार आदि ग्रंथों में बराबर मिलता है। यहाँ के रेशमी कपड़े भारत में चीनांशुक नाम से इतने प्रसिद्ध थे कि रेशमी कपड़े का नाम ही 'चीनांशुक' पड़ गया है। चीन में बहुत प्राचीन काल का क्रमबद्ध इतिहास सुरक्षित है। ईसा से २६५० वर्ष पूर्व तक के राजवंश का पता चलता है। चीन की सभ्यता बहुत प्राचीन है, यहाँ तक कि युरोप की सभ्यता का बहुत कुछ अंश—जैसे, पहनावा, बैठने और खाने पीने आदि का ढंग, पुस्तक छापने की कला आदि—चीन से लिया गया है। यहाँ ईसा के २१७ वर्ष पूर्व से बौद्ध धर्म का संचार हो गया था पर ईसवीं सन् ६१ में मिंगती राजा के शासनकाल में, जब भारतवर्ष से ग्रंथ और मूर्तियाँ गईं, लोग बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित होने लगे। सन् ६७ में कश्यप मतंग नामक एक बौद्ध पंडित चीन में गए और उन्होंने 'द्वाचत्वारिंशत् सूत्र' का चीनी भाषा में अनुवाद किया। तबसे बराबर चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार बढ़ता गया। चीन से झुंड के झुंड यात्री विद्याध्ययन के लिये भारत वर्ष में आते थे। चीन में अबतक ऐसे कई स्तूप पाए जाते हैं जिनके विषय में चीनियों का कथन है कि वे सम्राट् अशोक के बनवाए हैं।

यौ०—**चीन की दीवार**=एक प्रसिद्ध दीवार जिसे ईसा से प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व एक चीनी सम्राट् ने उत्तरीय जातियों के आक्रमण से अपने देश की रक्षा करने के लिये बनवाया था। यह दीवार प्रायः १५०० मील लंबी है और बहुत ऊँची, चौड़ी और दृढ़ बनी है। इसका कुछ अंश मंगोलिया और चीन देश की विभाजक सीमा है। इसकी गणना संसार के सात सबसे अधिक आश्चर्यजनक पदार्थों (सप्ताश्चर्य) में की जाती है।

मुहा०—**चीन का, या चीनी का बरतन या खिलौना आदि**=दे० 'चीनी मिट्टी'।

९. उक्त देश का निवासी।

चीन[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० चीन्ह] दे० 'चिह्न'।

चीन[3]‡—संज्ञा पुं० [सं० चयन] दे० 'चुनन'।

चीनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चेना नामक अन्न। २. कँगनी नामक अन्न। ३. चीनी कपूर।

चीनकर्पूर—संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर।

चीनज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का इस्पात लोहा जो चीन से आता है।

चीनना—क्रि० स० [हिं० चीन्हना] दे० 'चीह्नना'। उ०—द्वादश धनुष द्वादशै विष्का मनमोहन पट चिबुक चिह्न चित चीन।—सूर (शब्द०)।

चीनपिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंदूर। सेंदुर। २. इस्पात लोहा।

चीनवंग—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

चीनांशुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की लाल बनात जो पहले चीन से आती थी। २ चीन से आनेवाला एक प्रकार का कपड़ा। ३. रेशमी वस्त्र। उ०— शुचिते, पहनाकर चीनांशुक रख सका न तुझे अतः दधि मुख।—अपरा, पृ० १६६।

चीना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चीन] १ चीन देशवासी। २. एक तरह का साँवाँ। वि० दे० 'चेना'। ३. चीन देश का एक सुकुमार वृक्ष। उ०—मृदुलता सिरिस मुकुल सुकुमार, विपुल पुलकावलि चीना डाल।—गुंजन, पृ० ५०।

चीना[2]—वि० चीन देश संबंधी। चीन देश का। जैसे,—चीना बादाम।

चीना[3]—संज्ञा पुं० [सं० चिह्न] एक प्रकार का सफेद कबूतर जिसके शरीर पर लाल या काली चित्तियाँ होती हैं।

चीना[4]—संज्ञा पुं० [सं० चीनाक] चीनी कपूर।

चीनाक—संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर।

चीना ककड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चीना+कर्कटी] एक प्रकार की छोटी ककड़ी।

विशेष—वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, रुचिकारक, भारी, वातवर्द्धक, पित्तरोग नाशक और दाह, शोथ आदि को हरनेवाली कहा है।

चीनाचंदन—संज्ञा पुं० [हिं० चीना+चंदन] एक प्रकार का पक्षी जो दक्षिण भारत में पाया जाता है।

विशेष—इसके पीले शरीर पर काली धारियाँ होती है और

इसका स्वर मनोहर होता है। मधुरभाषी होने के कारण यह पाला जाता है।

चीनाबादाम—संज्ञा पुं० [हिं० चीन+फ़ा० बादाम] मूँगफली।

चीनिया—वि० [देश०] चीन देश का। चीन देश संबंधी।

यौ० **चीनिया केला**=एक प्रकार का देशी केला। वि० दे० 'चीनी चंपा'। 'चीनिया बादाम'।

चीनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीन (देश)+ई (प्रत्य०) सं० अथवा सिता] या दानेदार सफेद रंग का एक प्रसिद्ध मीठा पदार्थ जो चूर्ण रूप में होता है और ईख के रस, चुकंदर, खजूर आदि पदार्थों से बनाया जाता है।

विशेष—चीनी का व्यवहार प्राय: मिठाइयाँ बनाने और पीने के दूध या पानी आदि को मीठा करने के लिये होता है। तरल पदार्थ में यह बहुत सरलता से घुल जाती है। भारतवर्ष में चीनी केवल ईख के रस से ही उसको बार बार उबाल और साफ करके बनाई जाती है। पर संसार के अन्य भागों में यह और भी बहुत से पौधों के मीठे रस और विशेषत: चुकंदर के रस से बनाई जाती है। जिस देशी चीनी में मैल अधिक हो उसे 'कच्ची चीनी' और जिसमें मैल कम हो उसे पक्की चीनी कहते हैं। अब भारतवर्ष में दानेदार चीनी (जिसे लोग प्रारंभ में विलायती कहा करते थे क्योंकि पहले ऐसी चीनी विदेश से ही आती थी) भी तैयार होने लगी है। प्रारंभ में लोग इसका प्रयोग अधार्मिक समझते थे परंतु अब इसका प्रयोग बिना किसी हिचक के होता है। चीनी की खपत भारतवर्ष में अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। खाँड़, राब, गुड़ आदि इसी के पूर्ण और अपरिष्कृत रूप हैं। प्राचीन भारतीयों ने इनकी गणना मंगलद्रव्यों में की है। सुश्रुत के अनुसार ईख का रस उबालकर बनाए हुए पदार्थ ज्यों ज्यों साफ होकर राब, गुड़, चीनी, मिस्री आदि बनते हैं, त्यों त्यों वे उत्तरोत्तर शीतल, स्निग्ध, भारी, मधुर और तृष्णा शांत करनेवाले होते जाते हैं।

चीनी[2]—वि० चीन देश संबंधी। चीन देश का। जैसे, चीनी मिट्टी, कबाब चीनी, चीनी भाषा।

चीनी[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पौधा जो पंजाब और पश्चिम हिमालय में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ प्राय: चारे के काम में आती हैं।

चीनी कपूर—संज्ञा पुं० [हिं० चीनी+सं० कपूर] एक प्रकार का कपूर।

चीनी कबाब—संज्ञा पुं० [हिं० चीनी+कबाब] दे० 'कबाब चीनी'।

चीनी चंपा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत उत्तम केला जो आकार में छोटा होता है। इसी को 'चिनिया केला' चीनिया केला भी कहते हैं।

चीनीदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीनी+फ़ा० दान+ई (प्रत्य०)] वह पात्र जिसमें चीनी रखी जाती है। उ०—चीनी के लिये चीनीदानी आगे कर दी।—वो दुनिया, पृ० २२।

चीनी मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीनी (वि०)+मिट्टी] एक प्रकार की मिट्टी जो पहले पहल चीन के किंग वि० चिन् नामक पहाड़ से निकली थी और अब अन्य देशों में भी कहीं कहीं पाई जाती है।

विशेष—इसके ऊपर पालिस बहुत अच्छी होती है और इससे तरह तरह के खिलौने, गुलदान और छोटे बड़े बरतन बनाए जाते हैं जो 'चीन के' या 'चीनी क,' कहलाते हैं। आजकल इस प्रकार की मिट्टी मध्यप्रदेश तथा बंगाल के कुछ जिलों में भी पाई जाती है।

चीनी मोर—संज्ञा पुं० [हिं० चीनी+मोर] सोहन चिड़िया की जाति का एक पक्षी।

विशेष—यह पक्षी संयुक्त प्रांत, बंगाल और आसाम में अधिकता से होता है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है, इसलिये शिकारी प्राय: इसका शिकार करते हैं।

चीन्ह—संज्ञा पुं० [सं० चिह्न] दे० 'चिह्न'।

चीन्हना—क्रि० स० [हिं० चीन्ह से नामिक धातु] पहचानना।

यौ०—**चीन्हा परिचय**=जान पहचान।

चीन्हा[1]—संज्ञा पुं० [सं० चिह्न] १. दे० 'चिह्न'। २. परिचय।

चीप[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. चार अंगुल की एक लकड़ी जो जूते के कलबूत में सबसे पीछे भरी या चढ़ाई जाती है (चमारों की परि०)। २. जमीन में से निकली हुई मिट्टी का वह अंश जो एक बार फावड़ा चलाने से खुदकर निकल आए। ३. दे० 'चेप'।

चीप[2]—संज्ञा पुं० १. वृक्ष, पेड़। २. मुर्दा जलाने के लिये एकत्र लकड़ियों का ढेर। उ०—तब आयस नरपति कियौ कोय न बालै दीप। आज्ञा भंग जो को करै, ताहि बँधाऊ चीप।—पृ० रा०, २३। २५ पृ० ६७८।

चीप[3]—वि० [अं०] सस्ता। कम दाम का।

चीपड़—संज्ञा पुं० [हिं० कीचड़] वह सफेद लसदार पदार्थ जो आँख के कोनों से निकलता है। आँख का कीचड़।

चीपी⊕—संज्ञा स्त्री० [देश०] दरियाई नारियल का कमंडल। उ०—चित्त चीपी ज्ञान डीबी ध्यान ईंधन लावन।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६६।

चीफ[1]—संज्ञा पुं० [अं० चीफ़] बड़ा सरदार या राजा, विशेषत: किसी जाति या प्रांत का अधिकारप्राप्त प्रधान।

यौ०—**रूलिंग चीफ**=(भारतवर्ष में स्वतंत्रता के पूर्व का) वह राजा जिसे अपने राज्य के आंतरिक कार्यों के संबंध में पूर्ण अधिकार होता था। **चीफ़ एक्जिक्यूटिव अफसर**=मुख्य प्रबंध अधिकारी। उ०—अभी हिमाचल सरकार ने अस्थायी तौर से रियासत को सँभालने के लिये मुख्य प्रबंधाधिकारी चीफ एक्जिक्यूटिव अफसर भेजा है।—किन्नर०, पृ० ७।

चीफ[2]—वि० प्रधान। श्रेष्ठ। मुख्य। बड़ा। जैसे, चीफ एडीटर=प्रधान संपादक।

चीफ कमिश्नर—संज्ञा पुं० [अं० चीफ़ कमिश्नर] १. वह प्रधान अधिकारी जिसको किसी कार्य को करने का अधिकारपत्र मिला हो। २. किसी छोटे प्रदेश का प्रधान अधिकारी।

विशेष—स्वतंत्रता के पूर्व चीफ कमिश्नर का पद लेफ्टिनेंट गवर्नर

(छोटे लाट) के पद से कुछ छोटा समझा जाता था और उसके अधिकार में स्वतंत्र प्रांत होता था। इसकी नियुक्ति स्वयं गवर्नर जनरल इन कौंसिल के द्वारा होती थी और वह गवर्नर जनरल का विशिष्ट अधिकारप्राप्त प्रतिनिधि होता था। सीमांप्रांत तथा मध्यप्रदेश आदि प्रांत चीफ कमिश्नर के अधीन थे।

चीफ कोर्ट—संज्ञा पुं० [अ० चीफ कोर्ट] ब्रिटिश व्यवस्था के अनुसार किसी छोटे प्रांत का प्रधान न्यायालय।

विशेष—भारतवर्ष के पंजाब, अवध तथा दक्षिणी बरमा की सबसे बड़ी अदालत 'चीफकोर्ट' कहलाती थी। इसके चीफ जज और जजों की नियुक्ति गवर्नर जेनरल इन कौंसिल द्वारा होती थी।

चीफ जज—संज्ञा पुं० [अं० चीफ+जज] हाई कोर्ट के जजों में प्रधान। हाईकोर्ट का प्रधान जज।

चीफ जस्टिस—संज्ञा पुं० [अं० चीफ+जस्टिस] हाई कोर्ट का प्रधान जज।

चीफ मिनिस्टर—संज्ञा पुं० [अं० चीफ+मिनिस्टर] प्रांतीय विधान सभा के बहुमत दल का नेता। मुख्यमंत्री।

चीमड़[1]—वि० [हिं० चमड़ा] जो खींचने, मोड़ने या झुकाने आदि से न फटे या न टूटे। जैसे,—चीमड़ कपड़ा, चीमड़ कागज, चीमड़ लकड़ी आदि।

विशेष—यह विशेषण केवल उन्हीं पदार्थों के लिये व्यवहृत होता है, जो खींचने से बढ़ या मोड़ने अथवा झुकाने से टूट सकते हैं।

चीमड़[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मक] अमलतास की जाति का, पर बहुत छोटा एक प्रकार का पौधा।

विशेष—इसके बीज दस्तावर होते हैं; और आँख आने पर पीसकर आँखों में डाले जाते हैं। इसे चाकसू या बनार भी कहते हैं।

चीमर†—संज्ञा पुं०, वि० [हिं० चीमड] दे० 'चीमड'।

चीयाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० चियाँ] दे० 'चियाँ'।

चीर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्त्र। कपड़ा। उ०—(क) प्रातकाल असनान करन को यमुना गोपि सिधारी। लै कै चीर कदंब चढ़े हरि बिनवत हैं ब्रजनारी।—सूर (शब्द०)। (ख) कीर के कागज ज्यों नृप चीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६१। २. वृक्ष की छाल। ३. पुराने कपड़े का टुकड़ा। चिथड़ा। लत्ता। ४. गौ का थन। ५. चार लड़ियों-वाली मोतियों की माला। ६. मुनियों, विशेषतः बौद्ध भिक्षुओं के पहनने का कपड़ा। ७. एक बड़ा पक्षी जो प्रायः तीन फुट लंबा होता है और जिसका शिकार किया जाता है।

विशेष—यह कुमाऊँ, गढ़वाल तथा अन्य पहाड़ी जिलों में पाया जाता है। इसकी दुम लंबी और बहुत खूबसूरत होती है। यह 'चीर चीर' शब्द कहता है, इसी से इसे चीर कहते हैं।

८ धूप का पेड़। वि० दे० 'चीड़'। ९. छप्पर का मँगरा। मथौथ। १०. सीसा नामक धातु।

चीर[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीरना] १. चीरने का भाव या क्रिया।

यौ०—चीर फाड़ = चीरने या फाड़ने का भाव या क्रिया।

२. चीरकर बनाया हुआ शिगाफ या दरार।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

३. कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) पीछे से कमर पकड़े होता है। इसमें दाहिने हाथ से जोड़ का दाहिना हाथ और बाएँ से बायाँ हाथ पकड़कर पहलवान उसके दोनों हाथों को अलग करता हुआ निकल आता है।

चीरक—संज्ञा पुं० [सं०] लिखित प्रमाण के दो भेदों में से एक जिसे विकृत लेख कहते हैं।

चीरचरम(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० चीरचर्म] बाघंबर। मृगचर्म। मृगछाला।

चीरचोर—संज्ञा पुं० [सं० चीर+चोर] चीर हरण करनेवाले श्रीकृष्ण। उ०—चीरचोर चितचोर और को सरवसु दै अपनायौ।—घनानंद०, पृ० ४११।

चीरना—क्रि० स० [सं० चीर्ण (= चीरा हुआ अथवा अनुरणानात्मक)] [संज्ञा चीरा] किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान तक एक सीध में यों ही अथवा किसी धारदार या दूसरी चीज से धँसा या फाड़कर खंड या फाँक करना। विदीर्ण करना। फाड़ना। जैसे,—आरी से लकड़ी चीरना, नश्तर से घाव चीरना, नाव का पानी चीरना, दोनों हाथों से भीड़ चीरना आदि।

यौ०—चीरना फाड़ना।

मुहा०—माल (या रुपया आदि) चीरना = किसी प्रकार, विशेषतः कुछ अनुचित रूप से, बहुत धन कमाना।

चीरनिवसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक देश का नाम जो कूर्म विभाग के ईशान कोण में बतलाया जाता है। २. उक्त देश का निवासी।

चीरपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चेंच नाम का साग।

चीरपरिग्रह—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चीरवासा[1]' [को०]।

चीरपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] साल का पेड़।

चीर फाड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीर+फाड़] १. चीरने फाड़ने का काम। २. चीरने फाड़ने का भाव।

चीरल्लि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक मत्स्य।

चीरवासा[1]—संज्ञा पुं० [सं० चीर वासस्] १. शिव। महादेव। २. यक्ष।

चीरवासा[2]—वि० १. छाल या वल्कल पहननेवाला। २. चिथड़े पहनने-वाला [को०]।

चीरहरण—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण की एक लीला जिसमें वे गोपियों का वस्त्र लेकर उस समय वृक्ष पर चढ़ गए थे, जब वे नंगी होकर यमुना में स्नान कर रही थीं।

चीरा—संज्ञा पुं० [हिं० चीरना] १. एक प्रकार का लहरिएदार रंगीन कपड़ा जो पगड़ी बनाने के काम में आता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।—बनाना।

यौ०—चीराबंद।

२. गाँव की सीमा पर गाड़ा हुआ पत्थर या खंभा आदि।
३. चीरकर बनाया हुआ क्षत या घाव।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—लगाना।

मुहा०—चीरा उतारना या तोड़ना=(किसी पुरुष का स्त्री के साथ) प्रथम समागम करना। कुमारी का कौमार्य नष्ट करना।

यौ०—चीरावंद।

चीरावंद[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चीरा=कपड़ा+फा० वंद] चीरा बाँधनेवाला। वह जो लोगों के लिये चीरे बाँधकर तैयार करता है।

चीरावंद[2]—वि० स्त्री० [हिं० चीरा (क्षत)+फा० वंद] जिसने पुरुष के साथ समागम न किया हो। कुमारी (बाजारू)।

चीरावंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीरा (=पगड़ी का कपड़ा)+फा० वंदी] एक प्रकार की बुनावट जो पगड़ी बनाने के लिये ताश के कपड़े पर कारचोबी के साथ की जाती है। इस बुनावट की पगड़ी कुछ जातियों में विवाह के समय वर को पहनाई जाती है।

चीरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँख पर बाँधी जानेवाली पट्टी। २. धोती, सोड़ी आदि की लाँग। ३. झींगुर [को०]।

चीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झिंगुर। झिल्ली।

चीरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदरीनारायण के निकट की एक प्राचीन नदी का नाम।

विशेष—जिसके पास वैवस्वत मनु ने तपस्या की थी। इसका नाम महाभारत में आया है।

चीरितच्छया—संज्ञा स्त्री० [सं०] पालक का साग।

चीरी[1]—संज्ञा पुं० [सं० चीरिन्] १. झींगुर। झिल्ली। २. एक प्रकार की छोटी मछली।

चीरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़ी या चिड़िया] चिड़िया। पक्षी। उ०—सासति सहत दास कीजे पेखि परिहास चीरी को मरन खेलु बालकनि को सो है।—तुलसी (शब्द०)।

चीरी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीढ़ या चीड़] दे० 'चीड़'।

चीरी[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिट या चिट्ठी] चिट्ठी। उ०—सात वरस पेहलो रह्यो चीरी जगह न मोकल्यो कोई।—बी० रासो, पृ० ४४।

चीरीवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कीड़ा। मनु के मत से नमक चुरानेवाला मनुष्य दूसरे जन्म में इसी योनि में जन्म लेता है।

चीरु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चीर] दे० 'चीर'।

चीरुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फल जिसे वैद्यक में रुचिकर, दाहजनक और कफ-पित्त-वर्धक माना है।

चीरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर [को०]।

चीरू†—संज्ञा पुं० [सं० चीर] लाल रंग का चीर जो विदेश से आता है।

चीर्ण—वि० [सं०] फटा हुआ। चीरा या चीरा हुआ।

चीर्णपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीम का पेड़। २. खजूर का पेड़।

चील—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] गिद्ध और बाज आदि की जाति की पर उनसे कुछ दुर्बल एक प्रसिद्ध चिड़िया।

विशेष—यह संसार के प्रायः सभी गरम देशों में पाई जाती है, और कई प्रकार के रंगों की होती है। बहुत तेज उड़ती है और आसमान में बहुत ऊँचाई पर प्रायः बिना पर हिलाए चक्कर लगाया करती है। यह कीड़े मकोड़े, चूहे, मछलियाँ, गिरगिट और छोटे छोटे पक्षी खाती है। यह अपने शिकार को देखकर तिरछे उतरती है और बिना ठहरे हुए झपट्टा मारकर उसे लेती हुई आकाश की ओर निकल जाती है। बाजारों में मछली और मांस की दूकानों के आसपास प्रायः बहुत सी चीलें बैठी रहती हैं और रास्ता चलते लोगों के हाथों से झपट्टा मारकर खाद्यपदार्थ ले जाती हैं। यह ऊँचे ऊँचे वृक्षों पर अपना घोंसला बनाती है और पूस माघ में तीन चार अंडे देती है। अपने बच्चों को यह दूसरे पक्षियों के बच्चे लाकर खिलाती है। यह बहुत जोर से चीं, ची करती है इसी से इसका नाम चिल या चील पड़ा है। हिंदू लोग अपने मकानों पर इसका बैठना अशुभ समझते हैं और बैठते ही इसे तुरंत उड़ा देते हैं।

पर्या०—आतापी। शकुनि। खभ्रांत। कंठनीड़क। चिलंतन।

यौ० चील झपट्टा=(१) किसी चीज को औचक में झपट्टा मारकर लेने की क्रिया। (२) लड़कों का एक खेल जिसमें वे एक दूसरे के सिर पर, उनकी टोपी उतारकर धौल लगाते हैं।

मुहा० चील का मूत=वह चीज जिसका मिलना बहुत कठिन, प्रायः असंभव हो।

चीलड़—संज्ञा पुं० [हिं० चीलर] दे० 'चीलर'।

चीलमण(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] सर्प की मणि। उ०—चाल करा गज चीलमण निजकर माँहि लियंत। मोताहल मय कुंभरै ऊपर वार ग्वियंत।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७०।

चीलर—संज्ञा पुं० [देश०] जूँ की तरह का सफेद रंग का एक छोटा कीड़ा जो मैले कपड़ों में पड़ जाता है।

विशेष—दे० 'चिल्लड़'।

क्रि० प्र०—पड़ना।

चीलवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० चिलड़ा नाम का पकवान।

विशेष—दे० 'उलटा'।

चीला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चिलड़ा' या चिल्ला'।

चीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली। झींगुर।

चीलू—संज्ञा पुं० [सं०] आड़ू की तरह का एक प्रकार का पहाड़ी मेवा।

चील्लक—संज्ञा पुं० [सं०] झिल्ली। झींगुर।

चील्ह—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] दे० 'चील' (पक्षी)।

चील्हड़, चील्हर—संज्ञा पुं० [हिं० चीलर] दे० 'चीलर'।

चील्हाराव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चील्ह+राव] शेषनाग। उ०—चील्हाराव सीस हजारू ढालवा लागा, दीगीस ढालवा लागा दिसावा दुकाल।—रघु० रू०, पृ० २०१।

चील्हीं†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तंत्रोपचार जिसे बालकों के कल्याणार्थ स्त्रियाँ करती हैं। उ०—भनै रघुराज मुख चूमति चरण नापि चील्ही करवाय राई लोन उतारयो है।—रघुराज (शब्द०)।

चीवर—संज्ञा पुं० [सं०] १. योगियों, संन्यासियों या भिक्षुओं का फटा पुराना कपड़ा। १. बौद्ध संन्यासियों के पहनने के वस्त्र का ऊपरी भाग।

विशेष—बौद्ध संन्यासियों के पहनने का वस्त्र दो भागों में होता है। ऊपरी भाग को चीवर और नीचे के भाग को निवास कहते हैं।

चीवरी—संज्ञा पुं० [सं० चीवरिन्] १. बौद्ध भिक्षुक। २. भिखमंगा।

चीस¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीस] दे० 'टीस'।

चीस²(पु)†—संज्ञा स्त्री० [गुज०] किलकारी। चिटकार। चिचियाहट। कूक। उ०—धरे गैन सीसं चले [रंवेद रीसं। गदा मुदगदंत पारंत चीसं।—पृ० रा०, २। ६३।

चीसका(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चसका] दे० 'चसका'। उ०—अलम बाँका बड़ा छुटै ना चीसका जीव के संग जब मुहें लागै।—पलटू०, भा० २, पृ० ३६।

चीसना—क्रि० अ० [हिं० चीस] दे० 'चीखना'।

चीसाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीस] दे० 'चिंघाड़'। २. चीखन। उ०—भाग्यो हस्ती चीसाँ मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी।—कबीर ग्रं०, पृ० २१०।

चीहं†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चीख] चिल्लाहट। चीत्कार।

चुंग†—संज्ञा पुं० [देश०] सिर का आभूषण।

चुंगल—संज्ञा पुं० [हिं० चौं+अंगुल या फ़ा० चंगाल] १. चिड़ियों या जानवरों का पंजा जो कुछ टेढ़ा या झुका हुआ होता है। चंगुल। २. मनुष्य के पंजे की वह स्थिति जो उँगलियों को बिना हथेली से लगाए किसी वस्तु को लेने या पकड़ने में होती है। बटोरा हुआ पंजा। बकोटा। चंगुल। जैसे—चुंगल भर आटा साँई को दो।

मुहा०—चुंगल में फँसना=वश में आना। काबू में होना। पकड़ में आना।

चुंगली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाक में पहनने का एक आभूषण जिसे 'समथा' भी कहते हैं। एक प्रकार की नथ।

चुंगा†—संज्ञा पुं० [हिं० चोंगा] दे० 'चोंगा'।

चुंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुंगल] १. चुंगल भर वस्तु। चुटकी भर चीज।

यौ०—चुंगी पैंठ=वह पैंठ या बाजार जिसमें हर एक दूकानदार से जमींदार को चुंगल भर चीज मिलती हो।

२. वह महसूल जो शहर के भीतर आनेवाले बाहरी माल पर लगता हो।

यौ०—चुंगी कचहरी=नगरपालिका का कार्यालय जहाँ अन्य कार्यों के साथ चुंगी वसूलने का भी कार्य होता है। चुंगी घर=चुंगी की वसूली के लिये बना हुआ घर। चुंगी चौकी—वह स्थान जो चुंगी की वसूली और देखरेख के लिये बना हो।

चुंगुल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चंगुल] दे० 'चुंगल'—१। उ०—ज्यों छुधित बाज लखि गन कुलंग। चुंगुल चपेट करि देत भंग।—सूदन (शब्द०)।

चुंच—संज्ञा स्त्री० [चञ्चु] दे० 'चोंच'।

चुंचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चरी] दे० चुंचुरी'।

चुंचु¹—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] १. छछुंदर। २. वैदेहिक स्त्री और ब्राह्मण से उत्पन्न एक संकर जाति।

चुंचु²—संज्ञा स्त्री० १. बूटी या पौधा। चिनियारी।

चुंचुक—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुक] बृहत्संहिता के अनुसार नैर्ऋत्य कोण पर स्थित एक देश।

चुंचुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चुरी] वह जूआ जो इमली के चीओं से खेला जाय।

चुंचुल—संज्ञा पुं० [सं० चुञ्चुल] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो संगीत शास्त्र का बड़ा भारी पंडित था।

चुंचुली—संज्ञा स्त्री० [सं० चुञ्चुली] दे० 'चुंचुरी'।

चुंटली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] घुँघची।

चुंटा, चुंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० चुण्टा, चुण्टी] दे० 'चुंडा'।

चुंडा—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० चुंडी] कूआँ। कूप।

चुंडित(पु)—वि० [हिं० चुंडी] चुटियावाला। चुंडीवाला। उ०—योगी कहै योग है नीको द्वितीया और न भाई। चुंडित मुंडित मौन जटाधरि तिनहुं कहाँ सिधि पाई।—कबीर (शब्द०)।

चुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुंदी] दे० 'चुंदी'।

चुंदी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चुन्दी] कुटनी। दूती।

चुंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूड़ा] बालों की शिखा जिसे हिंदू सिर पर रखते हैं। चुटैया।

चुंधा—वि० [हिं० चौ (=चार+अंध)] [स्त्री० चुंधी] १. जिसे सुझाई न पड़े। २. छोटी छोटी आँखों वाला।

चुंधियाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'चुँधलाना'।

चुंब—संज्ञा पुं० [सं० चुम्ब] दे० 'चुंबन (को०)।

चुंबक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चुंबन करे। २. कामुक। कामी। ३. धूर्त मनुष्य। ४. ग्रंथों को केवल इधर उधर उलटनेवाला। विषय को अच्छी तरह न समझनेवाला। ५. पानी भरते समय घड़े के मुँह पर बँधा हुआ फंदा। फाँस। ६. एक प्रकार का पत्थर या धातु जिसमें लोहे को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति होती है।

विशेष—चुंबक दो प्रकार का होता है—एक प्राकृतिक दूसरा कृत्रिम। प्राकृतिक चुंबक एक प्रकार का लोहा मिला पत्थर होता है जो बहुत कम मिलता है। इससे कृत्रिम या बनावटी चुंबक ही देखने में अधिक आता है जो या तो घोड़े की नाल के आकार का होता है या सीधी छड़ के आकार का। यदि चुंबक की छड़ को लोहे के चूर के ढेर में डालें तो दिखाई पड़ेगा कि लोहे का चूर उस छड़ में यहाँ से वहाँ तक बराबर नहीं लिपटता बल्कि दोनों छोरों पर सबसे अधिक लिपटता है। इन दोनों छोरों को आकर्षण प्रांत कहते हैं। छड़ के मध्य भाग को मध्य या शून्य प्रांत कहते हैं। कभी कभी किसी छड़ के आकर्षण प्रांत दो से अधिक होते हैं। यदि किसी चुंबक-शलाका को उसके मध्यभाग (मध्याकर्षण केंद्र) पर से ऐसा ठहरावें कि वह चारों ओर घूम सके तो वह घूमकर उत्तर-दक्खिन रहेगी, अर्थात् उसका एक सिरा उत्तर की ओर और दूसरा दक्खिन की ओर रहेगा। ध्रुवदर्शक यंत्र में इसी प्रकार की शलाका लगी रहती है। पर ध्यान रखना चाहिए कि शलाका

का यह उत्तर दक्षिण हमारे भौगोलिक उत्तर दक्षिण से ठीक ठीक मेल नहीं खाता. कहीं ठीक उत्तर से कई अंश पूर्व और कहीं पश्चिम की ओर होता है । इस अंतर को चुंबक प्रवृत्ति कहते हैं। इसे निकालने के लिये भी एक यंत्र होता है। यह चुंबक प्रवृत्ति पृथ्वी के भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न होती है जिसका हिसाब किताब जहाजी रखते हैं। इसके अतिरिक्त किसी स्थान की यह चुंबकप्रवृत्ति सब काल में एक सी नहीं रहती, शताब्दियों के हेर फेर के अनुसार कुछ मौलिक परिवर्तनों के कारण वह बदला करती है । किसी चुंबक का एक प्रांत दूसरे चुंबक के उसी प्रांत को आकर्षित न करेगा, अर्थात् एक चुंबकशलाका का उत्तर प्रांत दूसरी चुंबक शलाका के उत्तर प्रांत को आकर्षित न करेगा, दक्षिण प्रांत को करेगा । जिस वस्तु को चुंबक के दोनों प्रांत आकर्षित करें. वह स्थायी चुंबक नहीं है, केवल आकर्षित होने की शक्ति रखनेवाला है । जैसे, साधारण लोहा आदि । स्थायी चुंबक के पास लोहे का टुकड़ा लाने से उसमें भी चुंबक का गुण आ जायगा, अर्थात् वह भी दूसरे लोहे को आकर्षित कर सकेगा । ऐसे चुंबक को स्थायी चुंबक कहते हैं। इस्पात में यद्यपि चुंबक शक्ति अधिक नहीं दिखाई देती, पर एकबार उसमें यदि चुंबक शक्ति आ जाती है, तो फिर वह जल्दी नहीं जाती । इसी से जितने कृत्रिम स्थायी चुंबक मिलते हैं, वे इस्पात ही के होते हैं। कृत्रिम चुंबक या तो चुंबक के संसर्ग द्वारा बनाए जाते हैं अथवा इस्पात की छड़ में विद्युत्प्रवाह दौड़ाने से । विद्युत्प्रवाह द्वारा बड़े शक्तिशाली चुंबक तैयार होते हैं। अब यह निश्चित हुआ है कि चुंबक विद्युत का ही गुण है ।

चुंबकीय—वि०[सं०]१.चुंबक संबंधी । २.जिसमें चुंबक का गुणहो। उ०—और ठेले जाने की वह क्रिया चुंबकीय खिंचाव—कभी कभी ऐसा प्रबल होता है कि उसके लिये अकूल समुद्र में फांद पड़ने या चट्टान से टकराकर उसपर अपना सिर पटकने के लिये भी वह स्वेच्छा से राजी हो जाती है ।—जिप्सी, पृ० ३६६।

चुंबन—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बन] [वि० चुंबनीय, चुंबित] प्रेम के आवेग में होंठो से (किसी दूसरे के) गाल आदि अंगों को स्पर्श करने या दबाने की क्रिया । चुम्मा । बोसा ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

चुंबना(पु)—क्रि० स० [सं० चुम्बन] १. चूमना । बोसा लेना । उ०—कबहुँक माखन रोटी लै कै खेल करत पुनि माँगत । मुख चुंबत जननी समझावत आय कंठ पुनि लागत ।— सूर (शब्द०) । २. स्पर्श करना । छूना । उ०—धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहु रवि ससि दुति निंदत ।—मानस, ७ । २७ ।

चुंबा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चुम्बा] चुंबन (को०) ।

चुंबा²—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'सुंबा' । (लश०) ।

चुंबित—वि० [सं० चुम्बित] १. चूमा हुआ । २. प्यार किया हुआ । ३. स्पर्श किया हुआ । छुआ हुआ ।

चुंबी—वि० [सं० चुम्बिन्] १. चूमनेवाला । जो चूमे । २. छूनेवाला । स्पर्श करनेवाला (को०) ।

विशेष—यौगिक शब्द बनाने में इसका प्रयोग अधिक होता है । जैसे, गगनचुंबी ।

३. संपर्कयुक्त । संबंधित (को०) ।

चुँगना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० चुगना] दे० 'चुगना' ।

चुँगाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० चुगाना] दे० 'चुगाना' ।

चुँघाना—क्रि० स० [हिं० चुसाना] चुसाना । चुसाकर पिलाना । उ०—अब न तो कुछ शीत उष्ण में बचाव करना पड़ेगा और न भूख प्यास के समय दूध ही चुँघाना पड़ेगा । ये सिद्ध लोगों के दिए हुए धागे यंत्र आपही बालक की रक्षा करेंगे ।—श्रद्धाराम (शब्द०) ।

चुँदरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनरी या चूनरी] दे० 'चुनरी' ।

चुँदरीगर—संज्ञा पुं०[हिं०चूँदरी+फ़ा० गर] चुँदरी तैयार करनेवाला, रँगरेज ।

चुँधलाना†—क्रि० अ० [हिं० चौ (=चार)+अंध (=अंधा)] आँखों का सहसा अधिक प्रकाश के सामने पड़ने के कारण स्तब्ध होना । चौंधना । चकाचौंध होना । आँखों का तिलमिलाना ।

चुँभना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० चुभना] दे० 'चुभना' ।

चुअना¹†(पु) क्रि० अ० [हिं० चूना] दे० 'चूना' ।

चुअना²—वि० चूनेवाला ।

यौ०—चुअना लोटा । चुअना घर ।

चुअना³†—संज्ञा पुं० छाजन या छप्पर का वह स्थान जहाँ से होकर पानी चूता है ।

चुआ¹—संज्ञा पुं० [देश] एक प्रकार का पहाड़ी देश ।

चुआ² संज्ञा पुं० [हिं० चोआ] दे० 'चोआ' ।

चुआई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुआना] १ चुआने का काम । टपकाने की क्रिया । २. चुआने की मजदूरी ।

चुआ⁴ संज्ञा पुं० [हिं० चुआना (=टपकाना)] वह छेद जिससे पानी आवे (लश०) ।

चुआन—संज्ञा स्त्री' [हिं० चूना] जल आने का स्थान । खाईं । नहर । गड्ढा । सोता । उ०—(क) सब देवताओं को वश में कर नगर में चारों ओर जल की चुआन चौड़ी करवाई और अग्नि पवन का कोट बनाय निर्भय हो वह सुख से राज्य करने लगा ।— लल्लू (शब्द०) । (ख) वहपुरी किस की है किजिसके चहूँ ओर ताँबे का कोट और पक्की चुआन, चौड़ी खाई, स्फटिक के चार फाटक इत्यादि हैं ।—लल्लू (शब्द०) ।

चुआना—क्रि० स० [हिं० चूना (= टपकना)] १. टपकना । बूँद बूँद गिराना । २. चुपड़ना । चिकनाना । रसमय करना । रसीला बनाना । उ०—बैप सुबनाइ सुचि वचन कहै चुआइ जाइ तो न जरनि धरनि धन धा म की ।—तुलसी (शब्द०) । ३. भमके से अर्क उतारना । जैसे,—शराब चुआना । ४. दे० 'दुहाना' ।

चुआव—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुआना] चुआने की क्रिया या भाव ।

चुकंदर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाजर या शलजम की तरह की एक जड़ जो सुर्खी लिए होती है और तरकारी के काम में आती है ।

विशेष—इसका स्वाद कुछ मीठापन लिए होता है । कहीं कहीं इससे खाँड़ भी निकाली जाती है । चुकंदर ऐसे स्थानों पर

बहुत उपजता है जहाँ खारी मिट्टी या खारा पानी मिलता है। समुद्र के किनारे चुकंदर की पैदावार अच्छी होती है। इसके लिये शोरा और नमक मिला पानी खाद का काम करता है।

चुक¹—संज्ञा पुं० [सं० चुक्र] दे० 'चूक'।

चुक²(पु)—अव्य० [हिं० कुछ] थोड़ा। किंचित्। उ०—मुख चुक दिखलाई मिहिर नजर बरसाई।—घनानंद, पृ० ४५६।

चुकचुकाना¹—क्रि० अ० [हिं० चूना + टपकाना] १. किसी द्रव पदार्थ का बहुत बारीक छेदों से होकर सूक्ष्म कणों के रूप में बाहर आना। रस का बाहर फैलना। उ०—चमड़े पर रगड़ लगने से खून चुकचुका आया। २. पसीजना। आर्द्र होना। चुचाना।

चुकचुकाना²—क्रि० अ० [हिं० चुकना की द्विरुक्ति] बिल्कुल चुक जाना। समाप्त होना। जैसे,—अब सारी चीज चुकचुका गई। सब चुकचुकाने पर तुम आए।

चुकचुहिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. छोटी चिड़िया जो बहुत तड़के बोलने लगती है। २. कागज या चमड़ों का बना हुआ एक खिलौना जो हिलाने या दबाने से चूँ चूँ शब्द करता है।

चुकट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चुटका] दे० 'चुकटा'। उ० जग में भक्त कहावई चुकट चून नहिं देय। सिव जोरू का ह्वै रहा, नाम गुरू का लेय।—संतवाणी०, पृ० ५३।

चुकट—संज्ञा पुं० [हिं० चुटका] दे० 'चुटका'।

चुकटा—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुटका] चंगुल। चुटकी।

मुहा०—चुटका भर=चंगुल भर। उतना (आटा आदि) जितना चंगुल या चुटकी में आवे।

चुकटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुटकी] दे० 'चुटकी'। उ०—सो उह गाम में एक वैष्णव चुटकी माँगती।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० २०८।

चुकता—वि० [हिं० चुकना] बेबाक। निःशेष। अदा (ऋण या रुपए पैसे के हिसाब किताब के संबंध में इसे बोलते हैं।) जैसे,—एक महीने में हम तुम्हारा सब रुपया चुकता कर देंगे।

चुकताना†—क्रि० स० [हिं० चुकता + ना (प्रत्य०)] चुकता करना। चुकाना।

चुकती—वि० [हिं० चुकता] दे० 'चुकता'।

चुकना¹—क्रि० अ० [सं० च्युत्कृ, प्रा० चुक्कि] १. समाप्त होना। खतम होना। निःशेष होना। न रह जाना। बाकी न रहना। उ०—(क) सारी किताब छपने को पड़ी है, कागज अभी से चुक गया। (ख) प्रान पियारे की गुन गाथा साधु कहाँ तक मैं गाऊँ। गाते गाते चुकै नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ।—श्रीधर (शब्द०)। २. बेबाक होना। अदा होना। चुकता होना जैसे,—उनका सब ऋण चुकता हो गया। ३. तै होना। निबटना। जैसे,—झगड़ा चुकना। (पु) ४. चूकना। भूल करना। त्रुटि करना। कसर करना। अवसर के अनुसार कार्य न करना। उ०—(क) काल सुभाउ करम बरिआई। भलेइ प्रकृति बस चुकइँ भलाई।—मानस, १।७ (ख) तेउ न पाइ अस समय चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं।—तुलसी (शब्द०)। (पु) ५. खाली जाना। निष्फल होना। व्यर्थ होना। लक्ष्य पर न पहुँचना। उ० —चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठ भेरी।—मानस, २।१३३।

विशेष—यह क्रिया और क्रियाओं के साथ समाप्ति का अर्थ देने के लिये संयुक्त रूप में भी आती है। जैसे, तुम यह काम कर चुके ? तुम कब तक खा चुकोगे ? वह अब चल चुके होंगे। व्यंग्य के रूप में भी इस क्रिया का प्रयोग बहुत होता है। जैसे, तुम अब आ चुके, अर्थात् तुम अब नहीं आओगे। 'वह दे चुका' अर्थात् वह न देगा।

चुकना²—वि०—चूकनेवाला। अवसर खोनेवाला। भूलनेवाला।

चुकरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] रेवंद चीनी।

चुकरैंड़—संज्ञा पुं० [देश० दोमुहाँ साँप जिसे गूँगी भी कहते हैं। उ —लेखनि डक भुजंग की रसना अयननि जानि। गज रद मुख चुकरैंड़ के कक्षा शिक्षा बखानि।—केशव (शब्द०)।

चुकवाना क्रि० स० [हिं० चुकाना का प्रे० रूप] अदा कराना। दिलाना। बेबाक करना।

चुकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुकता] चुकने या चुकता होने का भाव।

चुकाना—क्रि० स० [हिं० चुकना] १. बेबाक करना। किसी प्रकार का देना साफ करना। अदा करना। परिशोधकरना। जैसे,—दाम चुकाना, रुपया चुकाना, ऋण चुकाना। २. निबटाना। तै करना। ठहराना। जैसे,—सौदा चुकाना, झगड़ा चुकाना।

चुकाव—संज्ञा पुं० [हिं० चुकना] चुकने, चुकाए जाने की स्थिति, क्रिया या भाव [को०]।

चुकावड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चुकाव + ड़ा (प्रत्य०)] बेबाकी। चुकाने की क्रिया या भाव।

चुकावरा†—संज्ञा पुं० [हिं० चुकाना] कर्जा चुका देने की क्रिया या भाव।

चुकिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] तेलियों की घानी में पानी देने का बरतन। कुल्हिया।

चुकौता—संज्ञा पुं० [हिं० चुकाना + औता (प्रत्य०)] ऋण का परिशोध। कर्ज की सफाई।

मुहा०—चुकौता लिखना=भरपाई का कागज लिखकर देना। कर्जा चुकता पाने की रसीद देना। भरपाई करना।

चुक्का†—संज्ञा पुं० [सं० चुक्र] दे० 'चूक²' (खटाई) [को०]।

चुक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० चखना ?] १. मिट्टी का गोल छोटा बरतन जिसमें शराब आदि पीते हैं। २. पुरवा।

चुक्कार—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहनाद। गरज। गर्जन।

चुक्की†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूक] धोखा। छल। कपट।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।

चुक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूक नाम की खटाई। चुक। महाम्ल। वृक्षाम्ल। २. एक प्रकार का खट्टा शाक। ३. अमलबेद। ४. सड़ाया हुआ अम्लरस। काँजी। संधान।

क्क— संज्ञा पुं० [सं०] चूका का साग।

फल—संज्ञा पुं० [सं०] इमली।

वास्तुक—संज्ञा पुं० [सं०] अमलोनी का साग।

वेधक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की काँजी।

क्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अमलोनी का साग; २. इमली।

काम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १ चूक नाम की खटाई। २. चूका का साग।

काम्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमलोनी का साग।

क्रिका, चुक्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अमलोनी का साग। नोनिया। २. इमली।

क्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० चुक्रिमन्] खट्टापन। खटास [को०]।

क्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हिंसा। वध। २. क्षालन। प्रक्षालन (को०)।

चुखाना—क्रि० स० [सं० चूष] १. दुहते समय गाय के थन से दूध उतारने के लिये पहले उसके बछड़े को पिलाना। उ०—आई ही गाइ दुहाइबे कों सु चुखाइ चली न बछानि को घेरति। नेकु हेराय नहीं कब की वह माय रिसाय अटा चढ़ि टेरति।—देव (शब्द०)। २. चखाना। उ०—भरि अपने कर कनक कचोरा पीवति प्रियहि चुखाए।—सूर (शब्द०)।

चुगद[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० चुगद] १. उल्लू पक्षी। २ मूर्ख व्यक्ति। मूढ़ व्यक्ति। बेवकूफ आदमी।

चुगद[2]—वि० मूर्ख। मूढ़। बेवकूफ।

चुगना[1]—क्रि० स० [सं० चयन] चिड़ियों का चोंच से दाना उठाकर खाना। चोंच से दाना बीनना। उ०—उथलहिं सीप मोति उतराहीं। चुगहिं हंस औ केलि कराहीं।—जायसी (शब्द०)।

चुगना[2]—संज्ञा पुं० चिड़ियों का आहार। चुग्गा।

चुगल—संज्ञा पुं० [फ़ा० चुगुल] १. परोक्ष में दूसरे की निंदा करनेवाला। पीठ पीछे शिकायत करनेवाला। इधर की उधर लगानेवाला। लुतरा। उ०—कहा करैं रसखान को, कोऊ चुगल लबार। जो पै राखनहार है माखन चाखनहार।—रसखान (शब्द०)। २. वह कंकड़ जिसे चिलम के छेद में रखकर तंबाकू भरते हैं। गिट्टी। गिट्टक।

चुगलखोर—संज्ञा पुं० [फ़ा० चुगुलखोर] परोक्ष में निंदा करनेवाला। पीठ पीछे शिकायत करनेवाला। इधर की उधर लगानेवाला। लुतरा।

चुगलखोरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चुगुलखोरी] चुगली खाने का काम। परोक्ष में निंदा करने की क्रिया या भाव।

चुगलस—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लकड़ी।

चुगला—संज्ञा पुं० [हिं० चुगल] दे० 'चुगलखोर'।

चुगलाना—क्रि० स० [हिं० चुभलाना] दे० 'चुभलाना'।

चुगली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चुगली] पीठ पीछे की शिकायत। दूसरे की निंदा जो उसकी अनुपस्थिति में तीसरे से की जाय। उ०—अपने नृप को इहै सुनायो। व्रजवासिन बटपारिन हैं सब चुगली आपहि जाय लगायो।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—चुगली खाना = पीठ पीछे निंदा करना। झूठी निंदा करना।

चुगा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चुगना] वह अन्न आदि जो चिड़ियों के आगे चुगने के लिये डाला जाय। चिड़ियों का चारा।

चुगा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चोगा] दे० 'चोगा'।

चुगाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुगना + ई (प्रत्य०)] चुगने की क्रिया या भाव।

चुगाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुगाना + ई (प्रत्य०)] चुगाने की क्रिया या भाव। २. चुगाने की मजदूरी।

चुगाना—क्रि० स० [हिं० चुगना] चिड़ियों को दाना खिलाना। चिड़ियों को चारा डालना। उ०—छाँड़ु मन हरि विमुखन को संग। जिनके संग कुबुधि उपजत है परत भजन में भंग। कहा होत पय पान कराए, विष नहिं तजत भुजंग। कागहि कहा कपूर चुगाए स्वान न्हवाए गंग।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

चुगल[✻]—संज्ञा पुं० [फ़ा० चुगुल] दे० 'चुगल'।

चुगुलखोर—संज्ञा पुं० [फ़ा० चुगलखोर] दे० 'चुगुलखोर'।

चुगुलखोरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चुगुलखोरी] दे० 'चुगुलखोरी'।

चुगली[✻]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चुगुली] दे० 'चुगली'।

चुग्गा—संज्ञा पुं० [हिं० चुगना] दे० 'चुगा'।

चुघी—संज्ञा स्त्री० [देश०] चखने की थोड़ी सी वस्तु। चाट। चसका।

चुचआना[✻]—क्रि० अ० [हिं० चुचाना] दे० 'चुचाना'। उ०—सोभित स्रवनति जड़ित सु कुंडल स्वेद बुंद चुचआइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६।

चुचकना—क्रि० अ०—[हिं० चुचुकना] दे० 'चुचुकना'।

चुचकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुचकारना या अनु०] चुमकारने या चुचकारने की ध्वनि या क्रिया। चुचकारी।

चुचकारना—क्रि० स० [अनु०] प्यार से चुंबन के ऐसा शब्द मुँह से निकालकर बोलना। चुमकारना। पुचकारना। दुलारना। प्यार दिखाना। उ०—(क) मैया बहुत बुरो बलदाऊ। कहन लगे वन बड़ो तमासो, सब मोड़ा मिलि आऊ। मोहूँ को चुचकारि गये लैं, जहाँ सघन वन झाऊ। भागि चले कहि गयो उहाँ ते, काटि खाइहै हाऊ।—सूर (शब्द०)। (ख) चाहि चुचकारि चूँवि लालत लावत उर तैसे फल पावत जैसे सुबीज बए हैं।—तुलसी (शब्द०)।

चुचकारी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चुचकारने की क्रिया या भाव।

चुचाना—क्रि० अ० [सं० च्यवन] कण कण या बूँद बूँद करके निकलना। चूना। टपकना। रसना। निचुड़ना। गिरना। ('चूना' या 'टपकना' क्रिया के समान इसका प्रयोग भी टपकनेवाली वस्तु (जैसे, पानी) तथा जिसमें से टपके (जैसे, घर) दोनों के लिये होता है।) उ०—(क) अकुलित जे

पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात। सूर (शब्द०)। (ख) बाल भाव जिय में सुध आई अस्तन चले चुचाय।—सूर (शब्द०) (ग) चौगुनो रंग चढ़ो चित मैं चुनरी के चुचात लला के निचोरत।—देव (शब्द०)।

चुचावना—क्रि० अ० [हिं० चुचाना] दे० 'चुचाना'। उ०—रही गुही बेनी, लखे, गुहिवे के त्यौहार। लागे नीर चुचावने, नीठि सुखाए बार।—बिहारी (शब्द०)।

चुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तन। चूँची। २. थन। ऐन (को०)।

चुचु—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] दे० 'चञ्चु'।

चुचुआना—क्रि० अ० [हिं० चुचाना] दे० 'चुचाना'।

चुचुक—संज्ञा पुं० [सं०] १.कुचाग्र भाग। स्तन के सिरे या नोक पर का भाग जो गोल घुंडी के रूप में होता है। ढिपनी। २. दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश। ३. उक्त देश का निवासी।

चुचुकना†—क्रि० अ० [सं० शुष्क+ना (प्रत्य०)या देश] सूखकर सिकुड़ जाना। ऐसा सूखना जिसमें झुर्रियाँ पड़ जायँ। नीरस होकर संकुचित हो जाना, जैसे,—फल का चुचुकना, चेहरे का चुचुकना।

चुचुकारना†—क्रि० स० [हिं० चुचकारना] दे० 'चुचकारना।

चुचूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चुचुक' (को०)।

चुच्चु—संज्ञा पुं० [सं०] पालक की तरह का एक प्रकार का साग जिसे चौपतिया भी कहते हैं।

चुच्चू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चुच्चु' (को०)।

चुटक[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गलीचा या कालीन।

चुटक[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० चोट+क (=करनेवाला)] कोड़ा। चाबुक।

चुटक[3]—संज्ञा स्त्री० [अनु० चुटचुट] चुटकी।

चुटकना[1]—क्रि० स० [हिं० चोट] कोड़ा मारना। चाबुक मारना। उ०—करे चाह सौं चुटकि कै खरें उड़ौहैं मैन। लाज नवाएँ तरफरत, करत खूँद सी नैन।—बिहारी र०, दो० ५४२।

चुटकना[2]—क्रि० स० [हिं० चुटकी] १. चुटकी से तोड़ना। जैसे,—साग चुटकना, फल चुटकना।

चुटकना[3]†—क्रि० अ० [देश०] साँप काटना।

चुटकला—संज्ञा पुं० [हिं० चुटकुला] दे० 'चुटकुला'।

चुटका—संज्ञा पुं० [हिं० चुटकी] १. बड़ी चुटकी। २. चुटकी भर आटा या और कोई अन्न।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

चुटकार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुटकी+आर (प्रत्य०)] चुटकी बजाने की ध्वनि या क्रिया।

चुटकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुटकार] दे० 'चुटकी'। उ०—मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि, प्रात ही जगावत गुलाब चुटकारी दै।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० १५७।

चुटकी—संज्ञा स्त्री० [अनु० चुट चुट] १. अँगूठे और बीच की उँगली (अथवा तर्जनी) की वह स्थिति जो दोनों को मिलाने या एक को अन्य पर रखने से होती है। किसी वस्तु को पकड़ने, दबाने या लेने आदि के लिये अँगूठे और बीच की (अथवा और किसी) उँगली का मेल। जैसे.–चुटकी में लेना। चुटकी से उठाना। २. अँगूठे और मध्यमा और तर्जनी के योग से ध्वनि पैदा करना।

विशेष—चुटकी प्रायः संकेत करने, किसी का ध्यान आकर्षित करने, किसी को बुलाने, जगाने अथवा ताल देने आदि के लिये बजाई जाती है। हिंदुओं में यह प्रथा है कि जब किसी को जँभाई आती है, तब पास के लोग चुटकियाँ बजाते हैं।

यौ०—चुटकी बजानेवाला=खुशामदी। चापलूस। चुटकी भर=उतना जितना अँगूठे और मध्यमा के मिलाने पर दोनों के बीच आ जाय। बहुत थोड़ा। जरा सा जैसे, चुटकी भर आटा, चुटकी भर नमक। चुटकियों में=बहुत शीघ्र। चट पट। जैसे,—देखते रहो, अभी चुटकियों में यह काम होता है।

मुहा०—चुटकी देना=दे० 'चुटकी बजाना'। उ०—जो मूरति जल थल में व्यापक निगम न खोजत पाई। सो मूरति तू अपने आँगन चुटकी दै दै नचाई।–सूर (शब्द०)। चुटकी बजाना=अँगूठे को बीच की उँगली पर रखकर जोर से छटकाकर शब्द निकालना। चुटकी बजाने में या चुटकी बजाते=उतनी देर में जितनी देर चुटकी बजती है। चट पट। देखते देखते। बात की बात में। जैसे,–यह काम तो चुटकी बजाते होगा। चुटकी बैठाना=किसी ऐसे काम का अभ्यास होना जो चुटकी से पकड़कर किया जाय। जैसे,–उखाड़ना नोचना आदि। चुटकियों में या चुटकियों पर उड़ाना=(१) बात की बात में निबटाना। अत्यंत तुच्छ या सहज समझना। (२) कुछ न समझना। कुछ परवाह न करना जैसे,–(क) ऐसे मामलों को तो मैं चुटकियों में उड़ाता हूँ। (ख) वह मेरा क्या कर सकता है, ऐसों को तो मैं चुटकियों पर उड़ाता हूँ। चुटकी लगाना=(१) किसी वस्तु को पकड़ने नोचने, खींचने दबाने आदि के लिये अँगूठे और मध्यमा (अथवा और किसी उँगली) को मिलाकर काम में लाना। कपड़े के थान को उँगलियों से फाड़ना। थान पर से कपड़ा उतारना। (३) रुपया पैसा चुराने के लिये उँगलियों से जेब फाड़ना। जेब काटना। (४) दूध दुहने के लिये चुटकी से गाय का थन पकड़ना। (५) चुटकी से पत्तों को मोड़कर दोना बनाना।

२. चुटकी भर आटा। थोड़ा आटा। जैसे,–साधु को चुटकी दे दो।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—चुटकी माँगना=भिक्षा माँगना।

३. चुटकी बजाने का शब्द। वह शब्द जो अँगूठे को बीच की उँगली पर रखकर जोर से छटकाने से होता है। उ० किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाएँ।—तुलसी (शब्द०)। ४. अँगूठे और तर्जनी के संयोग से किसी प्राणी के चमड़े को दबाने या पीड़ित करने की क्रिया।

क्रि० प्र०—काटना।

मुहा०—चुटकी उड़ाना=दे०'चुटकी लेना'। चुटकी भरना=(१) चुटकी काटना। (२) चुभती या लगती हुई बात कहना। वि० दे० 'चुटकी लेना'। चुटकी लगाना=चुटकी से पकड़ना। चुटकी लेना=(१) हँसी उड़ाना।

दिल्लगी उड़ाना । ठट्ठा करना । उपहास करना । २. व्यंग्य वचन बोलना । चुभती या लगती बात कहना । ३. चुटकी से खोदना । चुटकी से दबाना । चुटकी भरना । उ०—बार बार कर गहिगहि निरखत घूँघट ओट करौ किन न्यारो । कबहुँक कर परसत कपोल छुइ चुटकी लेत ह्वाँ हमहिं निहारो ।—सूर (शब्द०) ।

४. अँगूठे और उँगली से मोड़कर बनाया हुआ गोखरू, गोटा या लचका । (कभी कभी यह किश्तीनुमा भी होता है, जिसे किश्ती की चुटकी कहते हैं) । ६. बंदूक के प्याले का ढकना । बंदूक का घोड़ा । (लश०) । ७. कटावदार गुलबदन या मशरू ८. पैर की उँगलियों में पहनने का चाँदी का एक गहना । एक प्रकार का चौड़ा छल्ला । ९. कपड़ा छापने की एक रीति । १० काठ आदि की बनी हुई एक प्रकार की चिमटी जिसमें कागज या किसी और हलकी वस्तु को पकड़ा देने से वह इधर उधर उड़ने नहीं पाती । ११. पेचकश । १२. दरी के ताने का सूत ।

चुटकुला—संज्ञा पुं० [हिं० चोट या चुट(=छोटी,छोटी) + कला] १. विलक्षण बात । विनोदपूर्ण बात । चमत्कारपूर्ण उक्ति । थोड़े में कही हुई ऐसी बात जिससे लोगों को कुतूहल हो । मजेदार बात।

यौ०—चुटकुलाबाज । चुटकुलाबाजी । चुटकुलेबाज । चुटकुलेबाजी।

मुहा०—चुटकुला छेड़ना या छोड़ना=(१) विलक्षण बात कह बैठना । दिल्लगी की बात करना । २. कोई ऐसी बात कहना जिससे एक नया मामला खड़ा हो जाय । जैसे,—उसने एक ऐसा चुटकुला छोड़ दिया कि दोनों आपस में ही लड़ पड़े ।

२ दवा का कोई छोटा सा नुसखा जो बहुत गुणकारक हो । लटका।

चुटपुटिया†—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] चुटपुट की आवाज करनेवाली एक प्रकार की बारूद की छोटी टिक्की जिसे बच्चे जमीन पर घिसकर छोड़ते हैं ।

चुटफुट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फुटकर वस्तु । फुटकर चीज ।

चुटला¹—वि० [हिं० चुटिला] दे० 'चुटीला' ।

चुटला²—संज्ञा पुं० [हिं० चोटी या सं० चूड़ा] १. एक गहना जो सिर पर चोटी या वेणी के ऊपर पहना जाता है । २. स्त्रियों की बाँधी हुई वेणी । जूरा ।

चुटाना¹—क्रि० अ० [हिं० चोट से नामिक धातु] चोट खाना । घायल होना ।

चुटिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोटी+इया (प्रत्य०)] बालों की वह लट जो सिर के बीचोबीच रखी जाती है । शिखा । चुंदी । (हिंदू, चीनी आदि इस प्रकार की शिखा रखते हैं ।)

मुहा०—(किसी की) चुटिया हाथ में होना=(किसी का) अपने अधीन होना । (किसी का) अपने नीचे दबना ।

चुटिया²—संज्ञा पुं० [हिं० चोट या चोटी] चोरों या ठगों का सरदार ।

चुटियाना†—क्रि० स० [हिं० चोट] १. चोट पहुँचाना । घाव करना । घायल करना । जख्मी करना । २. काटना । डसना ।

चुटयाना—क्रि० अ० चोट खाया जाना । घायल होना ।

चुटैलाⓊ संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चुटीला²' ।

चुटीलना—क्रि० स० [हिं० चोट] चोट करना या पहुँचाना ।

चुटीला¹—वि० [हिं० चोट][वि० स्त्री० चुटिली] १. चोट खाया हुआ । जिसे चोट लगी हो । जिसे घाव लगा हो । २. लगनेवाला । चुभनेवाला । जैसे,—उनका वाक्प्रहार बड़ा चुटीला था ।

चुटीला²—संज्ञा पुं० [हिं० चोटी] छोटी चोटी । अगल बगल की पतली चोटी । मेंढ़ी । सखि, रावावर कैसा सजीला । देखो री गुइयाँ नजर नहिं लागे अँगुरिन कर चट काट चुटीला । —हरिश्चंद्र, (शब्द०) ।

चुटीला³—वि० चोटी का । सिरे का । सबसे बढ़िया । भड़कदार ।

चुटुकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुटकी] दे० 'चुटकी' ।

चुटैल—वि० [हिं० चोट] १. जो चोट खाए हो । जिसे चोट लगी हो । घायल । २. चोट करनेवाला । आक्रमण करनेवाला ।

चुट्टना—क्रि० स० [सं० चिव् (=चमने), प्रा० चुंट; अप०, राज० चुट्ट] दे० 'चुनना' ।

चुट्टा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चुटला] दे० 'चुटला' ।

चुड़¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चूड] दे० 'चुड्ड' ।

चुड़²—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] चूड़ा ।

चुड़ना—क्रि० अ० [हिं० चूरना] दे० 'चुरना' ।

चुड़ला—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ा+ला (प्रत्य०)] दे० 'चूड़ा' (हाथ में पहननेवाला) । वि० दे० 'चुरिला' ।

चुड़ाव—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली जाति ।

चुड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ी] दे० 'चूड़ी' ।

चुड़िहारा—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ि+हारा (प्रत्य०)] [स्त्री० चूड़िहारिन] चूड़ी बनाने या बेचनेवाला ।

चुडुक्का¹—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया] लाल की तरह एक छोटी सी चिड़िया ।

विशेष—इसकी चोंच और पैर काले, पीठ मटमैले रंग की तथा पूँछ कुछ लंबी होती है । यह स्थिर नहीं रहती; बराबर इधर उधर फुदकती रहती है ।

चुडुक्का²—वि० [अनु०] धूर्त । लंपट । इधर उधर बात लगानेवाला ।

चुड़ेलवाल—संज्ञा स्त्री० [देश०] वैश्यों की जाति ।

चुड़ैल—संज्ञा स्त्री० [चूड़ा (=चोटी)+ऐल (प्रत्य०)] १. भूत की स्त्री । भूतनी । डायन । प्रेतनी । पिशाचिनी ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि चुड़ैलों के सिर में बड़ी भारी चोटी होती है जिसे काट लेने से वे वशीभूत हो सकती हैं ।

२. कुरूपा और विकराल स्त्री । ३. क्रूर स्वभाव की स्त्री । दुष्टा स्त्री ।

चुड्ड—संज्ञा स्त्री० [च्युत=भग] भग । योनि ।—(पंजाबी) ।

चुड्डो—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड] एक प्रकार की गाली जो स्त्रियों को दी जाती है । छिनाल ।

चुत¹—संज्ञा पुं० [सं०] गुदद्वार । गुदा का द्वार ।

चुतⓊ**²**—वि० [सं० च्युत] दे० 'च्युत' ।

चुत्यनाⓊ**†**—क्रि० स० [हिं० चोयना या चोयना] दे० 'चोंथना' ।

चुत्यल¹—वि०[हिं० चुहल]ठट्ठेबाज । ठठोल । विनोदप्रिय । मसखरा ।

चुत्यल²—संज्ञा पुं० [हिं० चुत्या] दे० 'चुत्या' ।

चुत्यलपना—संज्ञा पुं० [हिं० चुत्यल+पन] ठठोली । हँसी । दिल्लगी । मसखरापन ।

चुत्था[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चोंथना] वह बटेर जिसे लड़ाई में दूसरे बटेर ने घायल किया हो।

चुत्था[2]—वि० नोचा हुआ। चोंथा। घायल किया हुआ (बटेर)।

चुथना—क्रि० अ० [हिं० चोथना या चोंथना] १. नोचा खसोटा जाना। २. घायल होना।

चुथाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० (चोथाई)] चुथने की क्रिया या स्थिति।

चुथाना—क्रि० स० [हिं० चुथना का प्रे० रूप] चोथने का काम किसी और से कराना।

चुथौवल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुथना+औवल (प्रत्य०)] नोच बकोट। नोचा खसोटी।

चुदक्कड़—वि० पुं०, स्त्री० [हिं० चोदना] १. बहुत अधिक चोदने वाला। अत्यंत कामी। २. बहुत अधिक चुदानेवाली।

चुदना—क्रि० अ० [हिं० चोदना] चोदा जाना। पुरुष से संयुक्त होना। किसी स्त्री का मैथुन कराना।

चुदवाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चुदाई'।

चुदवाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदवाना] वह धन जो प्रसंग करने या कराने के बदले में दिया जाय।

चुदवाना—क्रि० अ०, कि० स० [हिं०] दे० 'चुदाना'।

चुदवास—संज्ञा स्त्री० [हिं०चुदवाना+आस (प्रत्य०)][वि०चुदवासी] चुदवाने की इच्छा। मैथुन कराने की कामना।

क्रि० प्र०—लगना।

चुदवासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदवाना] वह स्त्री जिसे मैथुन कराने की कामना हो।

चुदवैया—संज्ञा पुं० [हिं० चुद+वैया (प्रत्य०)] १. वह जो चोदनेवाला है। वह जो स्त्रीप्रसंग करनेवाला है। २. पति। भतार (गाली)।

चुदाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] चोदने की क्रिया या भाव। स्त्री-प्रसंग। मैथुन।

चुदाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदवाना] वह धन जो चुदाने के बदले में मिले।

चुदाना[1]—क्रि० अ० [हिं० चोदना का प्रे० रूप] चोदने का काम कराना। (स्त्री का) पुरुष से प्रसंग कराना। मैथुन कराना।

चुदाना[2]—क्रि० स० किसी स्त्री का पुरुष-समागम कराना। किसी स्त्री को पुरुष से संयुक्त कराना।

चुदास—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना+आस (प्रत्य०)] चोदने की इच्छा। स्त्रीप्रसंग करने की कामना।

चुदासा—संज्ञा पुं० [हिं० चोदना] [स्त्री० चुदासी] वह पुरुष जिसे स्त्रीप्रसंग करने की कामना हो।

चुदैया—वि० [हिं०] दे० 'चुदवैया'।

चुदौवल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] चोदना। चोदाने की क्रिया या भाव।

चुनंदा‡—वि० [हिं० चुनिंदा] चुना हुआ। अच्छा। बढ़िया।

चुन—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण, हिं० चून] १. आटा। पिसान। २. चूर। चूर्ण। बुकनी। रेत।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः समास में होता है। जैसे,—लोहचुन, बैरचुन।

चुनचुना[1]—संज्ञा पुं० [देश०] कसेरों का लोहे का एक औजार।

चुनचुना[2]—वि०[देश०] १. जिसके छूने या खाने से चुनचुनाहट उत्पन्न हो। जिसके स्पर्श से कुछ जलन लिए हुए पीड़ा उत्पन्न हो। जिसकी झाल या तीक्ष्णता छूने से जान पड़े। २. चिढ़ने-वाला। रोनेवाला। बात बात पर पिनकनेवाला (लड़का)।

चुनचुना[3]—संज्ञा पुं० [हिं० चुनचुनाना] सूत के ऐसे महीन सफेद कीड़े जो पेट में पड़ जाते है और मल के साथ निकलते हैं। बच्चों को ये कीड़े बहुत कष्ट देते।

मुहा०—चुनचुना लगना=(१) मलद्वार में कृमियों के काटने के कारण जलन और खुजली होना। (२) बहुत बुरा लगना।

चुनचुनाना—क्रि० अ० [अनु०] १. जीभ या चमड़े पर तीक्ष्ण लगना। कुछ जलन लिए हुए चुभने की सी पीड़ा करना। जैसे, राई का लेप बदन पर चुनचुनाता है। २. ठिनकना। रोना। चीं चीं करना (लड़कों के लिये)।

चुनचुनाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं०√चुनचुना+हट (प्रत्य०)] शरीर पर कुछ जलन लिए चुभने की सी पीड़ा। झाल या तीक्ष्णता जिसका अनुभव त्वचा को हो।

चुनचुनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनचुनाना] १. चुनचुनाने की क्रिया या भाव। २. जलन।

चुनचुनी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चुलचुली'।

चुनट—संज्ञा स्त्री० [हिं०√चुन+ट (प्रत्य०)] वह सिकुड़न जो दाब पड़ने के कारण कपड़े, कागज आदि में पड़ जाती है। चुनन। चुनावट। बल। शिकन। सिलवट।

विशेष—प्रायः लोग टोपी, धोती, कुरते आदि पर उँगली या चिएँ आदि से दबादबाकर शोभा के लिये चुनट डालते हैं।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लाना।

चुनत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० [हिं०] 'चुनट'।

चुनन—संज्ञा पुं० [हिं० चुनना] वह सिकुड़न जो दाव पाकर कपड़े, कागज आदि पर पड़ती है। सिलवट। शिकन। चुनट।

चुननदार—वि० [हिं० चुनन+दार] जिसमें चुनन पड़ी हो। जो चुना गया हो।

चुनना—क्रि० स० [सं०√चि+नु (विकरण प्रत्य०)] १. छोटी वस्तुओं को हाथ, चोंच आदि से एक एक करके उठाना। एक एक करके इकट्ठा करना। बीनना। जैसे,—दाना चुनना। २. बहुतों में से छाँटकर अलग करना। समूह में से एक एक वस्तु पृथक् करके निकालना या रखना। जैसे,—अनाज में से कंकड़ियाँ चुनकर फेंकना। ३. बहुतों में से कुछ को पसंद करके रखना या लेना। समूह या ढेर में से यथारुचि एक को छाँटना। इच्छानुसार संग्रह करना। जैसे,—(क) इनमें जो पुस्तकें अच्छी हों उन्हें चुन लो। (ख) इस संग्रह में अच्छी अच्छी कविताएँ चुनकर रखी गई हैं।

मुहा०—चुना हुआ=बढ़िया। उत्तम। श्रेष्ठ।
४. सजाकर रखना। तरतीब से लगाना। क्रम से स्थापित करना। जैसे,—आलमारी में किताबें चुन दो। ५. तह पर तह रखना। जोड़ाई करना। दीवार उठाना। उ०—कंकड़ चुन चुन महल उठाया लोग कहैं घर मेरा। ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा।—(शब्द०)।
मुहा०—दीवार में चुनना=किसी मनुष्य को खड़ा करके उसके ऊपर ईंटों की जोड़ाई करना। जीते जी किसी को दीवार में गड़वा देना।
६. चुटकी या खर्रे से दवा दबाकर कपड़े में चुनन या सिकुड़न डालना। शिकन डालना। जैसे, धोती चुनना, कुरता चुनना। इत्यादि। ७. नाखून या उँगलियों से खोंटना। चुटकी से कपटना। चुटकी से नोचकर अलग करना। जैसे, फूल चुनना। उ०—माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकार। फूली फूली चुन लई कालि हमारी बार।—कबीर (शब्द०)।

चुनरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०√चुन+री (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का लाल रँगा हुआ कपड़ा जिसके बीच में थोड़ी थोड़ी दूर पर सफेद बुँदकियाँ।
विशेष—चुनरी रँगते समय कपड़े को स्थान स्थान पर चुनकर बाँध देते हैं जिससे रंग में डुबाने पर बँधे हुए स्थानों पर सफेद सफेद बुँदकियाँ छूट जाती हैं। अब चुनरी कई रँगों और कई प्रकार की बूटियों से बनती हैं।
२. लाल रंग के एक नग का छोटा टुकड़ा। याकूत। चुन्नी।

चुनवट—संज्ञा स्त्री० [हिं०√चुन+वट (प्रत्य०)] चुनने की क्रिया या भाव। चुनट।

चुनवाँ¹—संज्ञा पुं० [हिं० चुनना] लड़का। शागिर्द (सुनार)।

चुनवाँ²—वि० चुका हुआ। चुनिंदा। बढ़िया।

चुनवाना—क्रि० स० [हिं० चुनना का प्रे० रूप] चुनने का काम कराना। वि० दे० 'चुनाना'।

चुनवारी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०√चुन+वारी (प्रत्य०)] दे० 'चुनरी'। उ०—चिक्कन चिलकदार चुनवारी कारी सोधे भीनी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१४।

चुनवारी²—वि० [हिं० चुनट (=चुनना)] चुन्नटवाली। उ०—मुख पर तेरे लट्री लटलटकी। काली घूँघरवाली प्यारी चुनवारी मेरे जिग्र खटकी।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० १८०।

चुनांचि—अव्य० [फ़ा० चुनां+चह] दे० 'चुनांचे'। उ० चुनांचि रौला को किसी के हाथ का भोजन पाने में कोई एतराज नहीं।—किन्नर०, पृ० १०२।

चुनांचुनीं—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. ऐसा वैसा। इस तरह उस तरह। इधर उधर की बात। वह जो मतलब की बात न हो। जैसे,—अब चुनांचुनी मत करो, रुपया लाओ। २. बनावटी बात।
क्रि० प्र०—करना।—निकालना।

चुनांचे—अव्य० [फ़ा० चुनां+चह] इसलिये। इस वास्ते। अतः। उ०—चुनांचे मैं खुद गौर करता हूँ तो मुझे रणधीर सिंह की तबियत शराब और रंडी से निहायत मुतनफ्फिर मालूम देती है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३२।

चुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०√चुन+आई (प्रत्य०)] १. चुनने की क्रिया या भाव। बिनने की क्रिया या भाव। २. दीवार की जुड़ाई या उसका ढंग। ३. चुनने की मजदूरी।

चुनाखा—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ी+नख] वृत्त बनाने का औजार। परकार। कंपास।

चुनाना—क्रि० स० [हिं० चुनना का प्रे०] १. बिनवाना। इकठ्ठा करवाना। २. अलग करवाना। छँटवाना। ३. सजवाना। क्रम या ढंग से लगवाना। ४. दीवार की जोड़ाई कराना। ५. दीवार में गड़वाना। ६. चुनन शिकन डलवाना।

चुनाव—संज्ञा पुं० [हिं० √चुन+आव (प्रत्य०)] १. चुनने का काम। बिनने का काम। २. बहुतों में से कुछ को या किसी एक को किसी कार्य के लिये पसंद या नियुक्त करने का काम। जैसे,—इस वर्ष कौंसिल का चुनाव अच्छा हुआ है। ३. बहुमत के आधार पर किसी को चुनना।
यौ०—चुनावचिह्न=उम्मीदवार की मतपेटिका का चिह्नविशेष। चुनाव प्रचार=किसी को चुनने के लिये उसका प्रचार करना। चुनावयाचिका=चुने हुए व्यक्ति के चुनाव को अवैध मानने की न्यायालय में प्रार्थना करना।
मुहा०—चुनाव लड़ना=चुने जाने के लिये उम्मीदवार होना।

चुनावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० √चुन+आवट (प्रत्य०)] चुनन। चुनट। दे० 'चुनवट'।

चुनावना (पु)—क्रि० स० [हिं०] १. चुनवाना। २. चुगाना। खिलाना (विशेषतया चिड़ियों को)।

चुनिंदा—वि० [फ़ा० चुनीदह् अथवा हिं०+चुनना+इंदा(प्रत्य०)] १. चुना हुआ। छँटा हुआ। २. बहुतों में से पसंद किया हुआ। अच्छा। बढ़िया। ३. गण्य। प्रधान। खास खास।

चुनियाँ (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुन्नी] दे० 'चुन्नी'।

चुनिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] (सुनारों की बोली में) लड़की। कन्या।

चुनिया गोंद—संज्ञा पुं० [चूनी+गोंद] ढाक का गोंद। पलास का गोंद। कमरकस। (यह ओषध के काम में आता है)।

चुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्णिका या चर्णीकृत] १. मानिक या और किसी रत्न का बहुत छोटा टुकड़ा। चूनी। चुन्नी। उ०—चहचही चहल चहूँधा चारु चंदन की चंदक चुनीन चौक चौजन चढ़ी हैं आब।—पद्माकर (शब्द०)। २. मोटे अन्न या दाल आदि का पीसा हुआ चूर्ण जिसे प्रायः गरीब लोग खाते हैं।
यौ०—चुनी भूसी=मोटे अन्न का पीसा हुआ चूर्ण या चोकर आदि।

चुनुआँ—संज्ञा पुं० [हिं० चुनवाँ] दे० 'चुनवाँ'।

चुनौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनौटी] दे० 'चुनौटी'।

चुनौटिया (रंग)—संज्ञा पुं० [हिं० चुनौटी] एक रंग जो कालापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का खैरा या काकरेजी रंग। उ०—पचरँग रँग बेंदी बनी, खरी उठी मुखजोति। पहिरें चीर चुनौटिया चटक चौगुनी होति।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—यह रंग हल्दी, दर्रा, कसीस और पतंग (बक्कम) की लकड़ी के संयोग से बनता है। इसकी रँगाई लखनऊ में होती है। यह आकिलखानी रंग से कुछ अधिक काला होता है।

चुनौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूना+औटी (प्रत्य०)] डिबिया की तरह का वह बरतन जिसमें पान लगाने या तंबाकू में मिलाने के लिये गीला चूना रखा जाता है।

चुनौती[1]—संज्ञा स्त्री० [?] १. प्रवृत्ति बढ़ानेवाली बात। उत्तेजना। बढ़ावा। चिट्टा। उ०—मदन नृपति को देश महामद बुद्धि बल बसि न सकत उर चैन। सूरदास प्रभु दूत दिनहि दिन पठवत चरित चुनौती दैन।—सूर (शब्द०) २. युद्ध के लिये उत्तेजना या आह्वान। ललकार। उ०—(क) लछिमन अति लाघव सों नाक कान बिनु कीन्हि। ताके कर रावन कहँ मनहु चुनौती दीन्हि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) छठे मास नहिं करि सकै बरस दिना करि लेय। कहै कबीर सो संत जन यमै चुनौती देय।—कबीर (शब्द०)।
क्रि० प्र० देना।
३. वह आह्वान जो किसी को वादविवाद करके अथवा और किसी प्रकार किसी विषय का निर्णय या अपना पक्ष प्रमाणित करने के लिये दिया जाता है। प्रचार।

चुनौती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनौटी] दे० 'चुनौटी'।

चुन्नट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चुनट'।
यौ०—चुन्नटदार। उ०—बंगाली सज्जन रेशमी कुर्ता और चुन्नटदार धोती पहने थे और ऊपर से रेशमी चादर ओढ़े थे।—संन्यासी, पृ० १८४।

चुन्नत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चुनट'।

चुन्नन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनन] दे० चुनन'।

चुन्ना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चुरना] दे० 'चुरना'।

चुन्ना†[2]—वि० [वि० स्त्री० चुन्नी] चुननेवाला। जैसे चुन्नी दाल।

चुन्ना[3]—क्रि० स० [हिं० चुनना] दे० 'चुनना'।

चुन्ना[4]†—संज्ञा पुं० [हिं० चूना] दे० 'चूना'।

चुन्ना[5]—वि० [हिं० चूना=टपकना] चूने या रिसनेवाला। जैसे,—चुन्ना लोटा।

चुन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्णिका या चूर्णीकृत] १. मानिक, याकूत या और किसी रत्न का बहुत छोटा टुकड़ा। बहुत छोटा नग। २. अनाज का चूर। भूसी मिले अन्न के टुकड़े। ३. स्त्रियों की चद्दर। ओढ़नी। ४. लकड़ी का बारीक चूर जो आरी से चीरने पर निकलता है। कुनाई। ५. चमकी या सितारे जो स्त्रियाँ अपना सौंदर्य बढ़ाने के लिये माथे और कपोलों पर चिपकाती हैं। उ०—तिलक सँवारि जो जो चुन्नी रची। दुइज माँझ जानहु कचपची।—जायसी (शब्द०)।
मुहा०—चुन्नी रचना=मस्तक और कपोलों पर सितारे या चमकी लगाना।

चुप—वि० [सं० चुप (चोपन)=मौन] जिसके मुँह से शब्द न निकले। अवाक्। मौन। खामोश। जैसे,—चुप रहो। बहुत मत बोलो।
क्रि० प्र०—करना।—रहना।—साधना।—होना।
यौ० चुपचाप=(१) मौन। खामोश। (२) शांत भाव से। बिना चंचलता के। जैसे,—यह लड़का घड़ी भर भी चुपचाप नहीं बैठता। (३) बिना कुछ कहे सुने। बिना प्रकट किए। गुप्त रीति से। धीरे से। छिपे छिपे। जैसे,—(क) वह चुपचाप रुपया लेकर चलता हुआ। (ख) उसने चुपचाप उसके हाथ में रुपए दे दिए। (४) निरुद्योग। प्रयत्नहीन। अयत्नवान्। निठल्ला। जैसे—अब उठो, यह चुपचाप बैठने का समय नहीं है। चुपचुप=दे० 'चुपचाप'। चुपछिनाल=(१) छिपे छिपे व्यभिचार करनेवाली स्त्री। (२) छिपे छिपे कोई काम करनेवाला। गुप्त गुंडा। छिपा रुस्तम।
मुहा०—चुप करना=(१) बोलने न देना। † (२) चुप होना। मौन रहना। जैसे,—चुप करके बैठो। चुप नाधना, चुप लगाना, चुप साधना=मौनावलंबन करना। खामोश रहना। †चुप मारना=मौन होना। चुपके से=दे० 'चुपका' का मुहा०।

चुप[2]—संज्ञा स्त्री० मौन। खामोशी। जैसे,—(क) सबसे भली चुप। (ख) एक चुप सौ को हरावे। उ० ऐसी मीठी कुछ नहीं जैसी मीठी चुप।—कबीर (शब्द०)।

चुप[3] संज्ञा स्त्री० [देश०] पक्के लोहे की वह तलवार जिसमें टूटने से बचाने के लिये एक कच्चा लोहा लगा रहता है।

चुपका—हिं० [हिं० चुप] [वि० स्त्री० चुपकी] १. मौन। खामोश।
क्रि० प्र०—होना।
मुहा०—चुपके से=बिना किसी से कुछ कहे सुने। शांत भाव से। छिपाकर। गुप्त रूप से।
२. चुप्पा। घुन्ना।

चुपकाना†—क्रि० स० [हिं० चुपका] मौन करना। न बोलने देना। खामोश करना।

चुपकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुप] मौन। खामोशी।
क्रि० प्र०—साधना।
मुहा०—चुपकी लगाना=मुँह से बात न निकालना। सन्नाटे में रहना।

चुपचाप—क्रि० वि० [हिं० चुप+अनुध्व० चाप] दे० 'चुप' शब्द का यौगिक 'चुपचाप'।

चुपचुप—क्रि० वि० [हिं०] दे० यौ० 'चुपचाप'।

चुपचुपाते—क्रि० वि० [हिं० चुपचुपाना] दे० यौ० 'चुपचुप'।

चुपचुपाना—क्रि० अ० [अनुध्व या हिं० चिपचिपाना] दे० 'चिपचिपाना'।

चुपड़ना—क्रि० स० [अनुर०] १. किसी गीली वस्तु को फैलाकर लगाना। किसी चिपचिपी वस्तु का लेप करना। पोतना। जैसे,—रोटी में घी चुपड़ना। दोष छिपाना। किसी दोष का आरोप दूर करने के लिये इधर उधर की बातें करना। जैसे,—उसने अपराध तो किया ही है, अब आपके

चुपड़ने से क्या होता है। २. चिकनी चुपड़ी कहना। चापलूसी करना। खुशामद करना।

चुपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० √चुपड़ + आ (प्रत्य०)] वह जिसकी आँखों में बहुत कीचड़ हो। कीचड़ से भरी आँखोंवाला।

चुपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुपड़ना] १. घी लगाई हुई सादी रोटी।

क्रि० प्र०—खाना।

२. चिकनी बात। प्रिय वचन। खुशामद की बात।

चुपरना—क्रि० स० [हिं० चुपड़ना] दे० 'चुपड़ना'।

चुपरी आलू—संज्ञा पुं० [देश०] पिंडालू या खालू जो मद्रास और मध्य भारत में अधिकता से होता है।

चुपाना¹—क्रि० अ० [हिं० चुप] चुप हो रहना। मौन रहना। खामोश रहना। न बोलना।

चुपाना²—क्रि० स० चुप करना। शांत करना। खामोश करना।

चुप्पा—वि० [हिं० चुप] [वि० स्त्री० चुप्पी] जो बहुत कम बोले। जो अपनी बात को मन में लिए रहे। जो बात का उत्तर जल्दी न दे। घुन्ना।

चुप्पी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुप] मौन। खामोशी।

क्रि० प्र०—साधना।

चुबकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुभकी] दे० 'चुभकी'। उ०—जोग जुगित सूँ चुबकी लेकरि काग प टि हंमा होइ जावो।—चरण० बानी, पृ० ६६।

चुबलाना—क्रि० स० [अनु०] किसी वस्तु को जीभ पर रखकर स्वाद लेने के लिए मुँह में इधर उधर डुलाना। मुँह में लेकर धीरे धीरे आस्वादन करना।

चुबुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिबुक' [को०]।

चुब्र—संज्ञा पुं० [सं०] मुख। चेहरा [को०]।

चुभकना—क्रि० अ० [अनु०] पानी में चुभ चुभ शब्द करते हुए गोता खाना। बार बार डूबना उतराना।

चुभकाना—क्रि० स० [अनु०] पानी में गोता देना। बार बार पकड़कर डुबाना।

चुभकी—संज्ञा स्त्री० [अनु० चुभ चुभ] १. डुब्बी। गोता। उ०—(क) लै चुभकी चलि जाति जित जित जलकेलि अधीर। कीजत केसरि नीर से तित तित केसरि नीर।—बिहारी र०, दो १५२। (ख) जल बिहार मिस भीर में ल चुभकी इक बार। दह भीतर मिलि परस्पर दोऊ करत बिहार।—पद्माकर (शब्द०)। २. चुभकने की क्रिया या भाव।

चुभन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुभना] १. चुभने की क्रिया का भाव। २. दर्द। टीस।

क्रि० प्र०—होना।

चुभना—क्रि० स० [अनु०] १. किसी नुकीली वस्तु का दबाव पाकर किसी नरम वस्तु के भीतर घुसना। गड़ना। धँसना। जैसे,—काँटा चुभना, सुई चुभना। २. हृदय में खटकना। चित्त पर चोट पहुँचना। मन में व्यथा उत्पन्न होना। जैसे, उसकी चुभती हुई बातें कहाँ तक सुनें। ३. मन में बैठना। हृदय पर प्रभाव करना। चित्त में बना रहना। जैसे,—उसकी बात मेरे मन में चुभ गई। उ०—टरति न टारे यह छवि मन में चुभी।—सूर (शब्द०)। ४. मग्न। लीन। तन्मय। उ०—जिमि बालि चल्यो लखि दुंदुभी तिमि सोह्यो मति रन चुभी।—गोपाल (शब्द०)।

चुभर चुभर—क्रि० वि० [अनु०] १. ओंठ से चूस चूसकर पीने का शब्द। २. बच्चों के दूध पीने का शब्द।

चुभलाना—क्रि० स० [अनुध्व०] दे० 'चुबलाना'।

चुभवाना—क्रि० स० [हिं० चुभना का प्रे० रूप] चुभाने का कार्य दूसरे से कराना।

चुभाना—क्रि० स० [हिं० चुभना का प्रे० रूप] धँसाना। गड़ाना।

चुभीला—वि० [हिं० चुभना + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चुभीली] १. नुकीला। २. मन में खटकने या चुभनेवाला। ३. मन को आकर्षित करनेवाला।

चुभोना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'चुभाना'।

चुभौना—वि० [हिं० चुभना + औना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चुभौनी] दे० 'चुभीला'।

चुमकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूमना + कार] चूमने का सा शब्द जो प्यार दिखाने के लिये निकालते हैं। पुचकार।

चुमकारना—क्रि० स० [हिं० चुमकार] प्यार दिखाने के लिये चूमने का सा शब्द निकालना। पुचकारना। दुलारना। जैसे,—वह बच्चे से चुमकारकर सब बातें पूछने लगा।

चुमकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चुमकार'।

चुमवाना—क्रि० स० [हिं० चूमना का प्रे० रूप] चूमने का काम दूसरे से कराना।

चुमाना—क्रि० स० [हिं० चूमना] किसी दूसरे के सामने चूमने के लिये प्रस्तुत करना।

चुमुचुमायन—संज्ञा पुं० [सं०] घाव की खुजलाहट जो उसके पूजने के लगभग होती है [को०]।

चुमुन—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बन] दे० 'चुंबन'। उ०—साजनि तोहर सिनेह भल भेल। पहिया चुमुन कि दूर गेल।—विद्यापति, पृ० ३०६।

चुम्मक—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बक] दे० 'चुंबक'।

चुम्मा—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बा, हिं० चूमना] चुंबन। बोसा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

यौ०—चुम्माचाटी = चुम्मा देना तथा प्यार से अंगों को चाटना।

चुरंगी—संज्ञा पुं० [हिं० चौरंगी] चार अंग या विभागवाला। दे० 'चौरंगी'। उ०—चुरंगी सु बीरं, जुटे जुद्ध धीरं। छुटे मोष बानं, सुदे आसमानं।—पृ० रा०, १। ६४०।

चुर¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. बाघ आदि के रहने का स्थान। माँद। २. चार पाँच आदमियों के बैठने का स्थान। बैठक। उ०—घाट, बाट, चौपार, चूर, देवल, हाट, मसान।—भगवत रसिक।—(शब्द०)।

चुर²—संज्ञा पुं० [अनु०] कागज, सूखे पत्ते आदि के मुड़ने या टूटने का शब्द।

चुर³—[सं० प्रचुर] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—प्रेम प्रसंसा बिनय युत बेंग बचन ये आदि। तेहि ते होत अनंद चुर फुर उर लागत नाहि।—विश्राम (शब्द०)।

चुरइल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुड़ैल] दे० 'चुड़ैल'। उ०—देखि रूप मुख परचै खरा। विधि एह चुरइल कै अपछरा।—चित्रा० पृ० ३३।

चुरकट[1]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चिरकुट'।

चुरकट[2]—वि० [हिं०] दे० 'चुरकुट'।

चुरकट[3]—संज्ञा पुं० [हिं० चोरकट] दे० 'चोरकट'।

चुरकना—क्रि० अ० [अनु०] १. बोलना। चहचहाना। चहकना। चीं चीं करना। चें चें करना। (व्यंग्य या तिरस्कार में बोलते हैं)। † २. चटकना। चूर होना। ३ टूटना। फटना।

चुरकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोटी] चुटिया। शिखा।

चरकुट—क्रि० वि० [हिं० चूर+कूटना] चकनाचूर। चूर चूर। चूर्णित। उ०—मुष्टिकौ गद मरदि चार गूर चुरकुट करयो कंस मनु कंप भयो भई रंगभूमि अनुराग रागी।—सूर (शब्द०)।

चुरकुस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० चर] चूर चूर। चूरमूर। चूर्ण। बुकनी। उ०—तिलक पलीता माथे दसन बज्र के बान। जेहि हेरहिं तेहि मारहिं चुरकुस करै निदान।—जायसी (शब्द०)।

चुरगना—क्रि० अ० [हिं० चुरकना] १. दे० 'चुरकना' २. प्रसन्न होकर बोलना। अल्हड़पन से बोलना।

चुरगम†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुरगना] १. प्रसन्न होकर की जानेवाली बात। २. कानाफूसीवाली बात।

चुरचुरा—वि० [अनु०] जो खरा होने के कारण जरा सा दबाने से चूर चुर शब्द करके टूट जाय। जैसे,—कुमकुमा, पापड़ आदि।

चुरचुराना[1]†—क्रि० अ० [अनु०] १. बहुत थोड़े आघात से चूर चूर हो जाना। २. चुर चुर शब्द करना या होना। ३. पक जाना। चुर जाना। चुरना।

चुरचुराना[2]—क्रि० स० १. किसी खरी चीज को चूर चूर करना। २. चुर चुर शब्द उत्पन्न करना।

चुरट—संज्ञा पुं० [हिं० चुरट] दे० 'चुरुट'।

चुरना[1]†—क्रि० अ० [सं० चूर (=जलना, पकना)] १. आँच पर खौलते हुए पानी के साथ किसी वस्तु का पकना। गीली वस्तु का गरम होना। सीझना। जैसे,—दाल चुराना। २. आपस में गुप्त मंत्रणा या बातचीत होना।

चुरना[2]—संज्ञा पुं० [चुनचुनाना] सूत के से महीन सफेद कीड़े जो पेट में पड़ जते हैं और मल के साथ निकलते हैं। ये कीड़े बच्चों को बहुत कष्ट देते हैं। चुनचुना।

क्रि० प्र०—लगना।

चुरना[3]—वि० चुरनेवाला। जिसकी सहायता से कोई वस्तु जल्दी से चुर जाय। जैसे,—चुरना नमक।

चुरना†[4]—क्रि० अ० [हिं०] चोरी जाना।

चुरमुर[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] खरी या कुरकुरी वस्तु के टूटने का शब्द। करारी चीजों के टूटने की आवाज। जैसे,—सूखी पत्तियों का चुरमुर होना। उ०—चना चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुँह खोलै।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

चुरमुर[2]†—वि० [हिं०] दे० 'चुरमुरा'।

[चुरमुराना][1]—क्रि० अ० [अनु०] चरमुर शब्द करके टूटना।

चुरमुराना[2]—क्रि० स० [अनु०] चुरमुर शब्द करके तोड़ना। जैसे,—चना, पापड़ आदि चुरमुराना।

चुरवाना[1]—क्रि० स० [हिं० चुराना (=पकाना)] पकाने का काम करना।

चुरवाना[2]—क्रि० स० [हिं० चुराना का प्रे० रूप] 'चोरवाना'।

चुरस[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़े आदि की शिकन। सिलवट। सिकुड़न।

चुरस[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] चुरुट।

चुरा(पु)[1]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० चूरा'। उ०—देखत चुरे कपूर ज्यों उपै जाय जिन लाल। छिन छिन होत खरी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी (शब्द०)।

चुरा[2] संज्ञा स्त्री० [सं०] चारी।

चुराई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुरना] चुरने की क्रिया या भाव। पकने का काम।

चुराई[2]—वि० [हिं० चुर+आई (प्रत्य०)] चोरी की हुई। जैसे, चुराई कविता, चुराई धोती।

चुराना[1]—क्रि० स० [सं० चुर (=चोरी करना)] १. किसी वस्तु को उसके स्वामी के परोक्ष या अनजान में ले लेना। किसी दूसरे की वस्तु को इस प्रकार ले लेना कि उसे खबर न हो। गुप्त रूप से पराई वस्तु हरण करना। चोरी करना।

मुहा०—चित्त चुराना=मन को आकर्षित करना। मन मोहित करना।

२. परोक्ष में करना। लोगों की दृष्टि से बचाना। छिपाना। जैसे,—वह लड़का पैसा हाथ में चुराए है।

मुहा०—आँख चुराना—नजर बचाना। सामने मुँह न करना। जी चुराना=(१) वशीभूत करना। (२) काम की उपेक्षा करना। मन लगाकर काम न करना।

३ किसी वस्तु के देने या काम के करने में कसर। जैसे,—(क) यह गाय दूध चुराती है। (ख) यह गवैया सुर चुराता है।

मुहा०—जाँगर चुराना =काम करने में कसर रखना।

४. किसी के भाव आदि अपना लेना। भाव चुराना।

चुरावना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'चुराना'। उ०—मोरि मुखै मुसकाय के चारु चितै 'मतिराम' चुरावन लागी।—मति० ग्रं०, पृ० २८३।

चुरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चुरी'। [को०]।

चुरिला†—संज्ञा पुं० [हिं० चुड़ला] १. कांच का मोटा टुकड़ा जिससे लड़के तख्ती या पट्टी को रगड़कर चमकाते हैं। २. लोहे की एक चूड़ी जिसमें तागा बाँधकर नचनी के बीचो बीच में बाँध देते हैं। (जुलाहे)।

चुरिहार†—संज्ञा पुं० [हिं० चुड़िहारा] दे० 'चुड़िहारा'।

चुरिहारा—संज्ञा पुं० [हिं० चुड़िहारा] दे० 'चुड़िहारा'।

चुरी(पु)†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ी] दे० 'चूड़ी'। उ०—(क) किंकिनी कटि कुनित कंकन कर चुरी झनकार। हृदय चौकी चमकि बैठी सुभग मोतिन हार।—सूर (शब्द०)। (ख) घर घर हिंदुनि तुरुकिनी देति असीस सराहि। पतिन राखि चादर, चुरी तैं राखी जयसाहि।—बिहारी (शब्द०)।

चुरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा कुँआ।

चुरुट—संज्ञा पुं० [अ० शेरुट (=चेरूट)] तंबाकू के पत्ते या चूर की बत्ती जिसका धूआँ लोग पीते हैं। इसका दोनों सिरा कटा रहता है। सिगार का केवल एक सिरा कटा रहता है।

चुरू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चुलुक] चुल्लू। उ०—(क) हँसि जननी चुरु भरवाए। तब कछु कछु मुख पखराए।—सूर (शब्द०)। (ख) धरि तुष्टी झारी जल ल्याई। भरयो चुरू खरिका लै आई।—सूर (शब्द०)।

चुरैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुड़ैल] दे० 'चुड़ैल'।

चूट—संज्ञा पुं० [हिं० चुरुट] दे० 'चुरुट'।

चुरुट¹—संज्ञा पुं० [हिं० चुरुट] दे० 'चुरुट'।

चुर्स—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुरस] दे० 'चुरस'।

चुल¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चल (=चंचल)] १. किसी अंग के मले या सहलाए जाने की इच्छा। खुजलाहट। २. मस्ती। कामोद्वेग।

मुहा०—चुल उठना=(१) खुजलाहट होना। (२) प्रसंग की इच्छा होना। काम का वेग होना। चुल मिटाना=कामवासना तृप्त करना।

चुल²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुर] दे० 'चुर' (माँद)।

चुलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण की एक नदी का नाम।

चुलचुलाना—क्रि० अ० [हिं० चुल] खुजलाहट होना। चुल होना।

चुलचुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुलचुलाना] चुल या खुजली उठने का भाव। चुल। खुजलाहट।

क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।—मिटाना।—होना।

चुलचुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुलचुलाना] चुल। खुजलाहट।

क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।—मिटाना।

चुलबुल—संज्ञा स्त्री० [सं० चल + बल अथवा चलोद्वल] चुलबुलाहट। चंचलता। चपलता।

चुलबुला—वि० [सं० चल + बल] [वि० स्त्री० चुलबुली] १. जिसके अंग उमंग के कारण बहुत अधिक हिलते डोलते रहें। चंचल। चपल। २. नटखट।

चुलबुलाना—क्रि० अ० [हिं० चुलबुल] १. चुलबुल करना। रह रहकर हिलना डोलना। २. चंचल होना। चपलता करना।

चुलबुलापन—संज्ञा पुं० [हिं० चुलबुल+पन (प्रत्य०)] चंचलता। चपलता। शोखी।

चुलबुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुलबुल+आहट (प्रत्य०)] चंचलता। चपलता। शोखी।

चुलबुलिया—वि० [हिं० चुलबुला+इया (प्रत्य०)] दे० 'चुलबुल'।

चुलबुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुलबुल+ई (प्रत्य०)] चंचलता। चपलता। शोखी।

चुलहाया—वि० [हिं० चुल+हाया (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चुलहाई] कामोद्वेग युक्त। काम की प्रबलतावाला।

चुलाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'चुवाना'।

चुलाव¹—संज्ञा पुं० [देश०] वह पुलाव जिसमें मांस न पड़ा हो।

चुलाव²—संज्ञा पुं० [हिं० चुवाना] चलाने या चुवाने का भाव या क्रिया।

चुलियाला—संज्ञा पुं० [? अथवा देश०] एक मात्रिक छंद का नाम जिसमें १३ और १६ के विश्राम से २९ मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में एक जगण और एक लघु होता है।

विशेष—दोहे के अंत में एक जगण और एक लघु रखने से यह छंद सिद्ध होता है। कोई इसके दो और कोई चार पद मानते हैं। जो दो पद मानते हैं; वे दोहे के अंत में एक जगण और एक लघु रखते हैं। जो चार पद मानते हैं, वे दोहे के अंत में एक यगण रखते हैं। जैसे,—(क) मेरी बिनती मानि कै हरि जू देखो नेक दया करि। नाहीं तुम्हारी जात है दुख हरिबे की टेक सदा कर (ख) हरि प्रभु माधव बीर वर मन मोहन गोपति अविनासी। कर मुरलीधर धीर नरवरदायक काटत भव फाँसी। जम विपदाहर राम प्रिय मन भावन संतन घटवासी। अब मम ओर निहारि दुख दारिद हटि कीने सुखरासी।

चुली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुल्लू] १. दान करने के लिये हथेली में जल लेकर दिया जाने वाला संकल्प। २. चुल्लू। चुल्ली।

चुलुंप—संज्ञा पुं० [सं० चुलुम्प] बच्चों का लाड़ प्यार करना। शिशुओं का लालन [को०]।

चुलुंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० चुलुम्पा] बकरी [को०]।

चुलुंपी—संज्ञा पुं० [सं० चुलुम्पिन्] एक प्रकार का मत्स्य [को०]।

चुलुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. उर्द के डूबने भर को जल। २. भारी दलदल। गहरा कीचड़। ३. गहरी की हुई हथेली जिसमें पानी इत्यादि पी सकें। चुल्लू। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का बरतन जो नापने के काम में आता था। ५. एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम। ६. उड़द का धोवन (को०)।

चुलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

चुलुकी—संज्ञा पुं० [सं० चुलुकिन्] जलसूकर (को०)।

चुलुपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरी [को०]।

चुलूक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चुलुक] दे० 'चुलुक'।

चुल्ल¹—वि० [सं०] कीचड़ भरी आँखवाला [को०]।

चुल्ल²—संज्ञा पुं० कीचड़ भरी आँख [को०]।

चुल्ल³—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुल] दे० 'चुल'।

चुल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] चुल्लू [को०]।

चुल्लपन—संज्ञा पुं० [हिं० चुल्ला+पन (प्रत्य०)] चंचलता। नटखटपना। पाजीपन। शरारतीपन।

चुल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिशुमार या सूँस नाम का एक जलजंतु। २. एक प्रकार का जलपात्र (को०)।

चुल्ला¹—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ा (=वलय)] काँच का छोटा छल्ला जो जुलाहों के करघे में लगा रहता है।

चुल्ला²—वि० [अनु०] चिलबिल्ला। नटखट। पाजी।

चुल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चुल्ली' [को०]।

चुल्ली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अग्न्याधान। चूल्हा। २. चिता। ३.

तीन विभागोंवाला विशाल कक्ष जिसका एक विभाग उत्तरमुख, दूसरा पूर्वमुख और तीसरा पश्चिममुखी हो (कौ०)।

चुल्ली[२]†—वि० [हिं० चुलल+ई (प्रत्य०)] चिलबिला। नटखट।

चुल्ली[३]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चुल्लू'।

चुल्लू—संज्ञा पुं० [सं० चुलुक] गहरी की हुई हथेली जिसमें भरकर पानी आदि पी सकें। एक हाथ की हथेली का गड्ढा। (इस शब्द का प्रयोग पानी आदि द्रव पदार्थों के ही संबंध में होता है। जैसे,- चुल्लू भर पानी, चुल्लू से दूध पीना, इत्यादि।)

यौ०—चुल्लु भर=उतना (जल, दूध आदि) जितना चुल्लू में आ सके।

मुहा०—चुल्लू चुल्लू साधना=थोड़ा थोड़ा करके अभ्यास करना। चुल्लू भर पानी में डूब मरो=मुँह न दिखाओ। लज्जा के मारे मर जाओ। (जब कोई अत्यंत अनुचित कार्य करता है तब उसके प्रति धिक्कार के रूप में यह मुहा० बोलते हैं)। चुल्लू भर लहू पीना=शत्रु का वध करने के बाद चुल्लू भर खून पीना (प्राचीन काल में इसका चलन था। महाभारत के अनुसार भीम ने दुःशासन के साथ यही किया था)। चुल्लू में उल्लू होना=बहुत थोड़ी सी भाँग या शराब में बेसुध होना। चुल्लू में समुद्र न समाना=छोटे पात्र में बहुत वस्तु न आना। कुपात्र या क्षुद्र मनुष्य से कोई बड़ा या अच्छा काम न हो सकना।

विशेष– यद्यपि कुछ लोग दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाई हुई अंजली को भी चुल्लू कहते हैं, पर यह ठीक नहीं है।

चूल्हौना—संज्ञा पुं० [हिं० चूल्हा+औना (प्रत्य०)] दे० 'चूल्हा'। उ०—समधी के घर समधी आयो, आयो बहू को भाई। गोड़ चुल्हौने दै रहे, चरखा दियो उड़ाई।—कबीर (शब्द०)।

चुवना[१]—क्रि० अ० [हिं० चुअना] दे० 'चूना'।

चुवना[२]— क्रि० स० [हिं० चुगना] दे० 'चुगना'।

चुवना[३]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चुअना'[२]।

चुवा†– संज्ञा पुं० [देश०] हड्डी की नली के अंदर का मांस। मज्जा। भेजा।

चुवा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० चौआ (चार पैरोंवाला)] पशु। चौपाया। उ०– चारु चुवा चहुँ ओर चलें लपटें झपटें सो तमीचर तौकी।—तुलसी (शब्द०)।

चुवा[२](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चोवा] दे० 'चोवा'। उ०—चंदन खौरि चुवा ही की वेंदी नवेली तिया सब संग सँघाती।—गंग०, पृ० ३७।

चुवाना—क्रि० स० [हिं० चूना का प्रे० रूप] टपकाना। गिराना। बूँद बूँद करके गिराना। थोड़ा थोड़ा गिराना। उ०—(क)। रीभत गाय बच्छ हित सुधि करि प्रेम उमँगि थन दूध चुवावत। जसुमति बोलि उठी हरषित ह्वै कान्हो धेनु चराये आवत।—सूर (शब्द०)। (ख) कोई मुख सीतल नीर चुवावैं। कोइ अंचल सों पवन डोलावैं।—जायसी (शब्द०)।

चुवावनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुवाना] चुवाने का कार्य या स्थिति। उ०—चुसनि, चुवावनि, चाटनि, चूमनि। नहि कहि परति प्रेम की घूरनि।—नंद ग्रं०, पृ० २६६।

चुशमा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चश्मा] दे० 'चश्मा'। सोता। उ० दुइ चुशमे पानी के करे। पानी साथ सम्पूर्ण भरे।—प्राण०, पृ० २२।

चुसनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] चूसने का कार्य या स्थिति। उ०—चुसनि चुवावनि चाटनि चूमनि। नहि कहि परति प्रेम की घूरनि।—नंद० ग्रं०, पृ० २६६।

चुस(पु)—वि० [सं० चोष्य] दे० 'चोष्य'। उ०—चारि प्रकार विचित्र सुव्यंजन। भक्ष्य भोज्य चुस, लिह मनरंजन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०२।

चुसकी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० चसक] मद्य पीने का पात्र। पानपात्र। प्याला।—(डिं०)।

चुसकी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] १. ओठ से किसी पीने की चीज को सुड़कने की क्रिया। ओठ से लगाकर थोड़ा थोड़ा करके पीने की क्रिया। सुड़क। २. उतना जितना एक बार सुड़का जाय। घूँट। दम। जैसे,—दो चुसकियाँ और लेने दो।

क्रि० प्र०—लगाना।—लेना।

चुसना[१]—क्रि० अ० [हिं० चूसना] १. चूसा जाना। ओठ से खींचकर पिया जाना। चचोड़ा जाना। २. निचुड़ जाना। गर जाना। निकल जाना। ३. सारहीन होना। शक्तिहीन होना। ४. धनशून्य होना। देते देते पास में कुछ रह न जाना। जैसे,—हम तो चुस गए, अब हमारे पास रहा क्या?

संयो० क्रि०—जाना।

चुसना[२]—संज्ञा पुं० [हिं० चुसनी] बड़ी चुसनी।

चुसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] १. बच्चों का एक खिलौना जिसे वे मुँह में डालकर चूसते हैं। २. दूध पिलाने की शीशी।

चुसवाना—क्रि० स० [हिं० चूसना का प्रे० रूप] चूसने का काम कराना। चूसने में प्रवृत्त करना। चूसने देना।

चुसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] चूसने की क्रिया या भाव।

चुसाना—क्रि० स० [हिं० चूसना का प्रे० रूप] चूसने का काम कराना। चूसने में प्रवृत्त करना। चूसने देना।

चुसौअल—संज्ञा स्त्री० [हिं०√चुस+औवल (प्रत्य०)] दे० 'चुसौवल'।

चुसौवल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] १. अधिकता से चूसने की क्रिया। २. बहुत से आदमियों द्वारा चूसने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

चुस्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुसकी] दे० 'चुसकी'। उ०—क्लार्क ने एक चुस्की लेकर कहा।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४६२।

चुस्त[१]—वि० [फ़ा०] १. कसा हुआ। जो ढीला न हो। संकुचित। जैसे,—यह अंगा बहुत चुस्त है। २. जिसमें आलस्य न हो। तत्पर। फुरतीला। चलता।

यौ०—चुस्त चालाक=तेज और समझदार। चुस्तदम=दृढ़ व्यक्तित्व जिसका हो। जिसके निश्चय में ढीलढाल न हो। दृढ़ निश्चयवाला। उ०—इस राह पहुँचे चुस्तदम करि नाँव

उसका लेह।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २८४।
३ दृढ़। मजबूत।

चुस्त[2]—संज्ञा पुं० जहाज का वह भाग जो अंदर की ओर झुका हो। मूड़।— (लश०)।

चुस्त[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूने हुए मांस का जला हुआ भाग। २. भूना हुआ मांस। ३. तुष। भूसी। ४. छाल। छिलका (को०)।

चुस्ता—संज्ञा पुं० [सं० चुस्त (= मांसपिडविशेष)] बकरी के बच्चे का आमाशय जिसमें पिया हुआ दूध भरा रहता है।

चुस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. फुरती। तेजी। २. कसावट। तंगी। ३ दृढ़ता मजबूती।

चुहचाँना(पु)†—क्रि० अ० [अनुध्व०] चिड़ियों का बोलना। चहचहाना। उ०—चिरैंया चुहचाँनी, सुन चकई की बानी, कहत जसोदा रानी जागो मेरे लाला —नंद० ग्रं०, पृ० ३३७।

चुहँटी(पु)† संज्ञा स्त्री० [देश०] चुटकी। उ०—चुहँटी चिबुक चाँपि चूमि लोल लोचन को रस मैं बिरस कह्यो बचन मलीनो है।—(शब्द०)।

चुहचाहट†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों का शब्द। चहकार।

चुहचुहा—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० चुहचुही] १. चुहचुहाता हुआ। रसीला। २. चटकीला। शोख। उ०—पहिरे चीर सुहिसुरंग सारी चुहचुह चूनरो बहुरंगनो। नीललहँगा लालचोली कसि उबटि केसरि सुरंगनो।—सूर (शब्द०)।

चुहचुहाहट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुहचुह+आहट (प्रत्य०)] दे० 'चुहचाहट'। उ०—मैं तेरी हूँ इसकी साखी दिला जा, जरा चुह चुहाहट सुनने को आजा।—हिम०, पृ० ४८।

चुहचुहाता—वि० [हिं० चुहचुहाना] रसभरा। रसीला। सरस। रँगीला। मजेदार। जैसे,—कोई चुहचुहाता कवित्त सुनाइए।

चुहचुहाना—क्रि० अ०[अनु०] १. रस टपकना। चटकीला लगना। २. चिड़ियों का बोलना। चहकार मचाना। कलरव करना। चहचहाना। उ०—चिरई चुहचुहानी चंद की ज्योति परानी रजनी बिहानी प्राची पिय री प्रवीन की।—सूर (शब्द०)।

चुहचुही[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमकीले काले रंग की एक बहुत छोटी चिड़िया जो प्रायः फूलों पर बैठती है।

विशेष—यह देखने में बहुत चंचल और तेज होती है। बोली भी इसकी प्यारी होती है। इसे 'फुलसुँघनी' भी कहते हैं।

चुहचुही[2]—वि० [अनु०] दे० 'चुहचुहा' उ०—चारु चुहचुही मेंजी एड़िन ललाई लखैं, चपरि चलत च्वै बरन बूकी रोरी को।—घनानंद, पृ० २०८।

चुहचूही(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुहचुही] दे० 'चुहचुही'। उ०—भोर होत बोलहि चुहचूही। बोलै पाँडुक एकै तूही।—जायसी (शब्द०)।

चुहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुहटना] १. चुहटने की क्रिया या भाव। २. शपथ। क़सम। सौंगंध।

चुहटना[1]—क्रि० स० [देश०] १. रौंदना। कुचलना। उ०—फिरि फेरी अहुटत चलत चुहटत दुहू पहटत आइ।—सूदन (शब्द०)। २. चिकोटी काटना।

चुहटना[2] क्रि० प्र० चिमटना।

चुहटनी†—संज्ञा [देश०] घुँघची। गुंजा।

चुहड़†- संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'चुहड़ा'।

चुहड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० चुहड़ी] भंगी १. हलालखोर। २. नीच। धोखेबाज व्यक्ति। वह व्यक्ति जो फरेब रचता हो। (ला०)।

चुहना†—क्रि० स० [सं० चूषण] दाँतों से दबाकर किसी वस्तु के रस को चूसना। जैसे,—ऊख चुहना।

चुहरबाजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुहलबाजी] दे० 'चुहलबाजी'। उ०—संत की चाल संसार से भिन्न है, सकल संसार में चुहरबाजी।—कबीर० रे०, पृ० १६।

चुहल—संज्ञा स्त्री० [अनु० चुहचुह (= चिड़ियों की बोली)] हँसी। ठठोली। विनोद। मनोरंजन।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

चुहलपन—संज्ञा पुं० [हिं० चुहल+पन (प्रत्य०)] दे० 'चुहलबाजी'।

चुहलबाज—वि० [हिं० चुहल+फ़ा० बाज (प्रत्य०)] ठठोल। मसखरा। दिल्लगीबाज। ठट्ठेबाज। विनोदी।

चुहलबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुहलबाज+ई (प्रत्य०)] हँसी। ठठोली। दिल्लगी। मसखरापन।

चुहादंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूहादंती] दे० 'चूहादंती'।

चुहिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूहा] चूहा का स्त्री० और अल्पा० रूप।

चुहिल—वि० [हिं० चुहचुहाना] जहाँ रौनक न हो। रमणीक।

विशेष—स्थान के संबंध में बोलते हैं।

चुहिली—संज्ञा स्त्री० [देश०] चिकनी सुपारी।

चुहुँटना(पु)[1]—क्रि० स० [अनु०] १. चिकोटी काटना। २. चुटकी से पकड़ना।

चुहुँटना[2]—वि० १. चिकोटी काटनेवाला। २. कसकर पकड़ने या दबानेवाला।

चुहुकना†—क्रि० स० [सं० चूष] चूसना।

चुहुटना[1]†—क्रि० अ० [हिं० चिमटना] चिमटना। चिपकना। पकड़ना।

चुहुटना[2]—वि० [वि० स्त्री० चुहुटनी] चिमटनेवाला। चिपकने या पकड़नेवाला। उ०—हँसि उतारि हिय तें दई तुम जु तिहिं दिना लाल। राखति प्रान कपूर ज्यों वहै चुहुटनी माल।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—यहाँ चुहुटनी शब्द श्लिष्ट है। इसका एक अर्थ घुँघची या गुंजा दूसरा अर्थ चिपकने या पकड़नेवाली है।

चुहुटनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंची। घुँघची। उ०—हँसि उतारि हिय तें दई तुम जु तिहि दिना लाल। राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चुहुटनी माल।—बिहारी (शब्द०)।

चूँ[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. छोटी चिड़ियों या उनके बच्चों के बोलने का शब्द। उ०—चूँ चूँ चूँ चूँ चूँ चूँ क्या सब बेचूँ बेचूँ करती हैं।—नजीर (शब्द०)। २. चूँ शब्द।

मुहा०—चूं तक न करना=चुप रहना। एकदम मौन रहना। चूं न होना या चूं तक न होना=सन्नाटा होना। शांति होना। कोई उज्र या विरोध न करना। उ०—महरी—और आदमी इधर उधर से शड़ाप शड़ाप कोड़े जमाते हैं। कोई चूं तक नहीं करता।—फसाना०, भा० ३, पृ० ४।

चूं²—क्रि० वि० [फ़ा०] १. किस कारण से। क्यों। उ०—दादू दृग दीदार हिये के चूं बेचूं बेज्वाबी। घट०, पृ० २११। २. जो। यदि। अगर (कौ०)। ३. सदृश। समान (कौ०)।

यौ०—चूं चाँ=दे० 'चूंचरा'।

चूंकि—क्रि० वि० [फ़ा०] इस कारण से कि। क्योंकि। इसलिये कि।

चूंच(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] दे० 'चोंच'। उ०—तान चूंच सो पकरि के, चित चिरिया हो जाय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५२।

चूंचरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चूं (=क्यों)+(चरा=क्या)] १. प्रतिवाद। विरोध। २. आपत्ति। उज्र। ३. बहाना। मिस।

चूंची†—संज्ञा स्त्री० [सं० चुचि] दे० 'चूची'।

चूंचूं—संज्ञा पुं० [अनु०] १. चिड़ियों के बोलने का शब्द। दे० 'चूं'।

क्रि० प्र०—चूं चूं होना=चिड़ियों का चहचहाना।

२. किसी प्रकार का चूं चूं शब्द। ३. कोलाहल। निरर्थक शब्द। बेमतलब की बात।

यौ०—चूं चूं का मुरब्बा=अनेक बेमेल चीजों का मेल।

मुहा०—चूं चूं करना=बेमतलब की बात करना। चूं चूं लगाना=बेमतलब का शोर करना।

४. एक प्रकार का खिलौना जिसे दबाने या खींचने से चूं चूं शब्द होता है।

चूंटना—क्रि० स० [हिं० चुटकना] तोड़ने के लिये चुटकी से पकड़ना।

चूंदरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूनरी] दे० 'चुनरी'। उ०—दै उर जेब जवाहिर की चुनि चोप सों चूंदरी लै पहिरावत। (शब्द०)।

चूंदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुंदी] दे० 'चुंदी'।

चूंप—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोप] उत्साह। चोप। उमंग। उ०—चावंडदास का भैरूंदास भैरूं के रूप। चावडसी चद्र प्रहास अरी ग्रास की चूंप।—रा० रू, पृ० १५१।

चूअरी†- संज्ञा स्त्री० [देश०] जरदालू। खूबानी।

चूऊ—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का महीन ऊनी कपड़ा जो पहाड़ी देशों में बनता है।

चूक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूकना] १. भूल। गलती। उ०—इह जानि चूक निरुगो नृपति रहै बत्त सुविहान कौ।—पृ० रा०, १०।१०।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—पड़ना।—होना।

२. दरार। दर्ज। शिगाफ।—(लश०)। ३. छल। कपट। फरेब। दगा। धोखा। उ०—(क) अहो हरि बलि सों चूक करी।—परमानंद दास (शब्द०)। (ख) धरम राज सौं चूक करि दुरजोधन लै लीन्ह। राजपाट अरु वित्त सब बनबास दै दीन्ह।—लल्लू (शब्द०)।

चूक²—संज्ञा पुं० [सं० चुक्र] १. नीबू, इमली, आम, अनार या आँवले आदि किसी खट्टे फल के रस को गाढ़ा करके बनाया हुआ एक पदार्थ जो अत्यंत खट्टा होता है। वैद्यक में इसे दीपन और पाचन कहा है। २. एक प्रकार का खट्टा साग। चूका।

चूक³—वि० बहुत अधिक खट्टा। इतना खट्टा जो खाया न जा सके।

चूकना—क्रि० अ० [सं० च्युत्कृ, प्रा० चुक्कि] १. भूल करना। गलती करना। २. लक्ष्यभ्रष्ट होना। ३. सुअवसर खो देना। उ०—समय चूकि पुनि का पछिताने।—तुलसी (शब्द०)। †४. समाप्त होना। चुकना।

संयो० क्रि०—जाना।

चूका—संज्ञा पुं० [सं० चुक्र] एक प्रकार का खट्टा साग जिसे चूक भी कहते हैं। वैद्यक में इसे हलका, रुचिकारक और दीपक माना है।

चूखना(पु)—क्रि० स०[सं० चूषण, हिं० चुहुकना]चूसना। उ०—देखैं परहित लागि प्रेम रस चूखैं ऊखन।—पलटू०, भा० १, पृ० ११।

चूघना(पु)—क्रि स० [हिं० चोंघना] चोंघना। चुगना। आहार करना। उ०—कहु कबीर परगट भई खेड। ले ले कौ चूघैं नित भेड।—कबीर ग्रं०, पृ० २७४।

चूच(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चु] दे० 'चोंच' उ०—जैसे पंखी चूच करि चुगत अहार पुनि तैसे ज्ञानी उर में उपासना धरत हैं।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६४०।

चूची—संज्ञा स्त्री० [सं० चूचि या चूचुक] १ स्तन का अग्रभाग। कुच के ऊपर की घुंडी। २. स्त्री की छाती। स्तन। कुच।

यौ०—चूचीपीता=बहुत छोटा (बच्चा)। नासमझ। नादान।

मुहा०—चूची पीना=चूची को मुँह में लगाकर उसका दूध पीना। स्तनपान करना। चूची मलना=(पुरुष का) संभोग के समय आनंदवृद्धि के लिये स्त्री के स्तन को हाथों से दबाना, मलना या मर्दन करना।

चूचुक—संज्ञा पुं० [सं०] कुच का अग्र भाग। चूची की ढेपनी। उ०— चूचुक सारी परसि रहे तेहि निहुरि लखति सी। सुकवि श्याम को निरखि निरखि विहँसति सकुचति सी।—व्यास (शब्द०)।

चूजा¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० चूजह्] मुरगी का बच्चा।

चूजा²—वि० जिसकी अवस्था अधिक न हो। कमसिन। (बाजारू)।

चूड़, चूड़क—संज्ञा पुं० [सं० चूड, चूडक] १. चोटी। शिखा। २. मस्तक पर की कलगी, जैसी मुरगे या मोर के सिर पर होती है। ३. शंखचूड़ नामक दैत्य। ४. खंभे, मकान, या पहाड़ आदि का ऊपरी भाग। कंकण। ५. छोटा कूआँ।

चूड़ांत¹—वि० [सं० चूडान्त] चरम सीमा। पराकाष्ठा।

चूड़ांत²—क्रि० वि० अत्यंत। बहुत अधिक।

चूड़ा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चूडा] १. चोटी। शिखा। चुरकी।

यौ०—चूड़ाकरण। चूड़ाकर्म। चूड़ामणि। चूणारत्न।

२. मोर के सिर पर की चोटी। ३. छाजन आदि में वह सबसे ऊँचा भाग जिसे मँगरा कहते हैं। ४. कूआँ। ५. घुँघची। ६. मस्तक। ७. प्रधान (नायक या नायिका)। अग्र। श्रेष्ठ। ८. बाँह में पहनने का एक प्रकार का अलंकार। ९. चूड़ाकरण नाम का संस्कार। १०. पर्वतशिखर। पहाड़ का शृंग (को०)।

चूड़ा[3]—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ा (=बाहुभूषण)] १. कंकण। कड़ा। वलय। २. हाथों में पहनने के लिये छोटी बड़ी बहुत सी चूड़ियों का समूह जो किसी जाति में नववधू और किसी किसी जाति में प्रायः सब विवाहिता स्त्रियाँ पहनती हैं।

विशेष—चूड़े प्रायः हाथी दाँत के बनते हैं। उनमें की सबसे छोटी चूड़ी पहुँचे के पास रहती है और बीच की चूड़ियाँ गावदुम रहती हैं।

चूड़ा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० चूहड़ा] दे० 'चूहड़ा'।

चूड़ा[4]—संज्ञा पुं० [हिं० चिउड़ा] दे० 'चिउड़ा'।

चूड़ाकरण—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ाकरण] किसी बच्चे का पहले पहल सिर मुड़वाकर चोटी रखवाना। मुंडन।

विशेष—हिंदुओं के १६ संस्कारों में से यह भी एक संस्कार है। यह बच्चे की उत्पत्ति से तीसरे या पाँचवें वर्ष होता है।

चूड़ाकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ाकर्मन्] चूड़ाकरण।

चूड़ामणि—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ामणि] १. सिर में पहनने का शीशफूल नाम का एक गहना। बीज। २. सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति। सबमें श्रेष्ठ। सरदार। मुखिया। अग्रगण्य। ३. घुँघची। गुंजा।

चूड़ाम्ल—संज्ञा पुं० [सं० चूडाम्ल] इमली।

चूड़ार—वि० [सं० चूडार] १. जिसके मस्तक पर चूड़ा हो। (मनुष्य)। २. (पक्षी) जिसके मस्तक पर कलँगी हो। [को०]।

चूड़ाल[1]—संज्ञा पुं० [सं० चूडाल] सिर [को०]।

चूड़ाल[2]—वि० चूड़ायुक्त [को०]।

चूड़ाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चूडाला] १. सफेद घुँघची। २. नागरमोथा। ३. एक प्रकार की घास जिसे निर्विषी भी कहते हैं।

चूड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ी+इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का धारीदार कपड़ा।

चूड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ा] १. हाथ में पहनने का एक प्रकार का वृत्ताकार गहना जो लाख, काँच, चाँदी या सोने आदि का बनता है।

विशेष—भारतीय स्त्रियाँ चूड़ी को सौभाग्य चिह्न समझती हैं और प्रत्येक हाथ में कई कई चूड़ियाँ पहनती हैं। पहनी हुई चूड़ी का टूट जाना अशुभ समझा जाता है। युरोप, अमेरिका आदि की स्त्रियाँ केवल दाहिने हाथ में और प्रायः एक ही चूड़ी पहनती हैं पर अब विदेशों में भी चूड़ी पहनने का रवाज हो गया है।

क्रि० प्र०—उतारना।—चढ़ाना।—पहनना। पहनाना।

मुहा०—चूड़ियाँ ठंढी करना या तोड़ना=पति के मरने के समय स्त्री का अपनी चूड़ियाँ उतारना या तोड़ना। वैधव्य का चिह्न धारण करना। चूड़ियाँ पहनना=स्त्रियों का वेश धारण करना। औरत बनना (व्यंग्य और हास्य में)। जैसे,—जब तुम इतना भी नहीं कर सकते, तो चूड़ियाँ पहन लो। (किसी पर या किसी के नाम की) चूड़ियाँ पहनना=स्त्री का किसी को अपना उपपति बना लेना। स्त्री का किसी के घर बैठ जाना। चूड़ियाँ पहनाना=विधवा स्त्री से अथवा विधवा स्त्री का विवाह कराना। चूड़ियाँ बढ़ाना—चूड़ियाँ उतारना। चूड़ियों को हाथों से अलग करना। (चूड़ियों के साथ 'उतारना' शब्द का प्रयोग स्त्रियों में अनुचित और अशुभ समझा जाता है।)

२. वह मंडलाकार पदार्थ जिसकी परिधि मात्र हो और जिसके मध्य का स्थान बिल्कुल खाली हो। वृत्ताकार पदार्थ। जैसे, मशीन की चूड़ी (जो किसी पुरजे को खसकने से बचाने के लिये पहनाई जाती है)। ३. फोनोग्राफ या ग्रामोफोन बाजे का रेकार्ड जिसमें गाना भरा रहता है अथवा भरा जाता है।

विशेष—पहले पहल जब केवल, फोनोग्राफ का आविष्कार हुआ था, तब उसके रेकार्ड लंबे और कुंडलाकार बनते थे और उक्त बाजे में लगे हुए एक लंबे नल पर चढ़ाकर बजाए जाते थे। उन्हीं रेकार्डों को चूड़ी कहते थे। पर आजकल के ग्रामोफोन के रेकार्डों को भी, जो तवे के आकार की गोल पटरियाँ होती हैं, चूड़ी कहते हैं।

४. चूड़ी की आकृति का गोदना जो स्त्रियाँ हाथों पर गोदाती हैं। ५. रेशम साफ करनेवालों का एक औजार।

विशेष—यह चंद्राकार मोटे कड़े की शकल का होता है और मकान की छत में बाँस की एक कमानी के साथ बँधा रहता है। इसके दोनों ओर दो टेकुरियाँ होती हैं। बाईं ओर की टेकुरी में साफ किया हुआ और दाहिनी ओर की टेकुरी में उलझा हुआ रेशम लपेटा रहता है।

चूड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ा] वे छोटी छोटी मेहराबें जिसमें कोई बड़ी मेहराब विभक्त रहती है।

चूड़ीदार—वि० [हिं० चूड़ी+फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें चूड़ी या छल्ले अथवा इसी आकार के घेरे पड़े हों।

यौ०—चूड़ीदार पायजामा=तंग और लंबी मोहरी का एक प्रकार का पायजामा जिसमें चुस्त ऐंठन के कारण पैर के पास चूड़ी के आकार के घेरे या शिकनें पड़ी रहती हैं।

चूड़ो†—संज्ञा पुं० [हिं० चूहड़ा] दे० 'चुहड़ा'।

चूत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

यौ०—चूतकलिका। चूतमंजरी। चूतलतिका। चूतांकुर। चूतायष्टि=आम की शाखा या डाल।

चूत[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० च्युति (=भग)] स्त्रियों की भगेंद्रिय। योनि। भग।

यौ०—चूतसलामी=मुसलमानों की एक रस्म और उसमें सुहागरात को पति द्वारा पत्नी को दिया जानेवाला उपहार।

चूतड़—संज्ञा पुं० [सं०] १. आम का पेड़। २. छोटा कुआ (को०)।

चूतड़ – संज्ञा पुं० [हिं० चूत+तल] कमर के नीचे और जाँघ के ऊपर गुदा के बगल का मांसल भाग । नितंब ।

मुहा०—चूतड़ दिखाना = कठिन समय पर भाग जाना । पीठ दिखाना । चूतड़ पीटना या बजाना = बहुत प्रसन्न होना । खूब खुश होना । चूतड़ों का लहू मरना = एक स्थान पर जमकर बैठने के योग्य होना ।

चूतर†—संज्ञा पुं० [हिं० चूतड़] दे० 'चूतड़' ।

चूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदा । चूतड़ [को०] ।

चूतिया—वि० [हिं० चूत+ईया (प्रत्य०)] नासमझ । गावदी । उ०—चूतिया चलाक चोर चौपट चवाई च्युत चौकस चिकित्सक चिविल्ला औ चमार है । -गंग०, पृ० १२६ ।

क्रि० प्र०—फँसना ।—फँसाना ।—बनाना । —समझना ।

चूतियाखाता—वि० [हिं० चूतिया + खाता] दे० 'चूतिया' ।

चूतियाचक्कर—वि० [हिं० चूतिया+चक्कर] दे० 'चूतिया' ।

चूतियापंथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूतिया+पंथी] मूर्खता । नासमझी । बेवकूफी ।

चूतियाशहीद—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूतिया+फ़ा० शहीद] मूर्खों का सिरताज । बहुत बड़ा मूर्ख ।

चून[1]—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] १. आटा । पिसान । २. दे० 'चूना' ।

चून[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा थूहड़ जो हिमालय के दक्षिणी भाग में तथा पंजाब के कुछ जिलों में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसके दूध में गटापारचा का अंश बहुत अधिक होता है । ताजे दूध में बहुत सुगंध होती है और वह आँख के लिये बहुत हानिकारक होता है । बासी दूध लगने से शरीर में छाले पड़ जाते हैं ।

चून[3]—संज्ञा पुं० [हिं० चुनना] दे० 'चुग्गा' । उ०—मूढ़ काग समझै नहीं मोह माया सेवै । चून चुनावै कोयली, अपना कर लेवै । —दरिया० बानी०, पृ० ३ ।

चूनर, चूनरी संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चुनरी' ।

चूना[1]—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] एक प्रकार का तीक्ष्ण क्षार भस्म जो पत्थर, कंकड़, मिट्टी, सीप, शंख या मोती आदि पदार्थों को भट्ठियों में फूँककर बनाया जाता है ।

विशेष—तुरंत फूँककर तैयार किए हुए चूने को कली या बिना बुझा हुआ चूना कहते हैं । यह ढोंके या उसी स्वरूप में होता है जिसमें उसका मूल पदार्थ फूँके जाने से पहले रहता है । कंकड़ का बिना बुझा चूना 'बरी' कहलाता है । बिना बुझा चूना हवा लगने से अपनी शक्ति और गुण के अनुसार तुरंत या कुछ समय में चूर्ण के रूप में हो जाता है और उसकी शक्ति और गुण में कमी होने लगती है । पर पानी के संयोग से बिना बुझे चूने की यह दशा बहुत जल्दी हो जाती है । उस अवस्था में उसे 'भरका' या बुझा हुआ चूना कहते हैं । बिना बुझे चूने पर जब पानी डाला जाता है, तब पहले तो वह पानी को खूब सोखता है, पर थोड़ी ही देर बाद उसमें से बुलबुले छूटने लगते हैं और बहुत तेज गरमी निकलती है । तेज चूने के संयोग से शरीर चरचने लगता है और उसमें कभी कभी छाले तक पड़ जाते हैं । पत्थर का चूना बहुत तेज होता है और मकान की दीवारों पर सफेदी करने, खेत में खाद की तरह डालने, छींट आदि छापने, पान के साथ लगाकर खाने और दवाओं आदि के काम में आता है । कंकड़ का चूना भी प्रायः इन्हीं कामों में आता है; पर इसका सबसे अधिक उपयोग इमारत के काम में, ईंट पत्थर आदि जोड़ने और दीवारों पर पलस्तर करने के लिये होता है । शंख, सीप और मोती आदि का चूना प्रायः खाने और ओषध के काम में ही आता है ।

मुहा० –चूना काटना = खुजली होना । चूना छूना या फेरना = चूने को पानी में घोलकर दीवारों पर सफेदी करने के लिये पोतना । दीवारों पर चूने की सफेदी करना । चूना लगाना = खूब धोखा देना, हानि पहुँचाना या दिक करना । बहुत लज्जित करना ।

यौ०—चूनादानी । चुनौटी ।

चूना[2]—क्रि० अ० [सं० च्यवन] १. पानी या किसी दूसरे द्रव पदार्थ का किसी छेद या छोटी दरज में से बूँद बूँद होकर नीचे गिरना । टपकना । जैसे,—छत में से पानी चूना, लोटे में से दूध चूना, भींगे कपड़े से पानी चूना आदि ।

संयो० क्रि०—जाना । पड़ना ।

२. किसी चीज का, विशेषतः फल आदि का, अचानक ऊपर से नीचे गिरना । जैसे, आम चूना, महुआ चूना । ३. किसी चीज में ऐसा छेद या दरज हो जाना जिसमें से होकर कोई द्रव पदार्थ बूँद बूँद गिरे । जैसे, छत चूना, लोटा चूना, पीपा चूना आदि । ४. गर्भपात होना । गर्भ गिरना । (क०) उ०—दिक पालन की, भुव पालन की, लोक पालन की किन मातु गई च्वै ।—केशव (शब्द०) ।

चूना[3]†—वि० [हिं० चूना (क्रि०अ०),] चुअना जिसमें किसी चीज के चूने योग्य छेद या दरज हो । जैसे,—चूना घड़ा, चूना घर ।

चूनादानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूना+फ़ा० दान] वह छोटी डिबिया या इसी प्रकार का कोई पात्र जिसमें पान या सुरती के साथ खाने के लिये चूना रखा जाता है । चुनौटी ।

चूनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्णिका] १. अन्न का छोटा टुकड़ा । अन्नकण ।

यौ०—चूनी भूसी = मोटे अन्न का पीसा हुआ चूर्ण या चोकर आदि ।

२. रत्नकण । चुन्नी । दे० 'चुन्नी' ।

चूनेदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूनादानी] दे० 'चूनादानी' ।

चूप(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोप] दे० 'चोप'[1] । उ०—श्रवन शब्द कौं ग्रहत हैं नयन ग्रहत हैं रूप । गंध ग्रहत है नासिका रसना रस की चूप ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ५० ।

चूपड़ी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुपड़ना] घी चुपड़ी हुई रोटी । किसी चिकनी वस्तु का लेप की हुई वस्तु । उ०—रूखा सूखा खाइ कै, ठंढा पानी पीव । देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव ।—संतवाणी०, पृ० ६१२

चूमचाम संज्ञा स्त्री० [हिं० चूमा से विरुद्ध स्वर द्विरुक्त] चूमना। सहलाना। प्यार दिखाना। उ०—छू मत तू प्रणय गान जिसके उलझे वितान। मादक, मोहक, मलीन चूमचाम की लुभान। कर न मुझे चाहकीत, एक गीत, एक गीत।—हिम०, पृ० ६०।

चूमना¹—क्रि० स० [सं० चुम्बन] प्रेम के आवेश में अथवा यों ही होठों से (किसी दूसरे के) गाल आदि अंगों को अथवा किसी और पदार्थ को स्पर्श करना, चूसना या दबाना। चुंमा लेना। बोसा लेना।

मुहा०—चूमकर छोड़ देना=किसी भारी कार्य को आरंभ करके या किसी वस्तु को छूकर बिना उसका पूरा उपयोग किए छोड़ देना। चूमना चाटना प्यार करना। चूमना।

विशेष—किसी किसी देश में आदर सम्मान के लिये भी बड़ों के हाथ आदि अंगों को चूमते हैं।

चूमना²—संज्ञा पुं० हिंदुओं में विवाह की एक रस्म जिसमें वर की अँजुली में चावल और जौ भरकर पाँच सोहागिनी स्त्रियाँ मंगल गीत गाती हुई वर के माथे, कंधे और घुटने आदि पाँच अंगों को हरी दूब से छूती और तब उस दूब को चूमकर फेंक देती हैं।

चूमनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूमना] चूमने का कार्य। चुंबन। उ०—चुपनि, चुवावनि, चाटनि चूमनि। नहीं कहि परति प्रेम की घूरनि। नंद० ग्रं०, पृ० २६६।

चूमा—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बन, हिं० चूमना] चूमने की क्रिया। चुंबन। चुम्मा। मिट्ठी।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

यौ०—चूमाचाटी।

चूमाचाटी—संज्ञा पुं० [हिं० चूमना+चाटना] चूमने और चाटने का काम। चूम और चाटकर प्रेम प्रकट करने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना—होना।

चूर—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] १. किसी पदार्थ के बहुत छोटे छोटे टुकड़े जो उस पदार्थ को खूब तोड़ने, कूटने आदि से बनते हैं।

मुहा०—चूर करना या चूरचूर करना=किसी पदार्थ को तोड़ फोड़ कर उसके बहुत महीन कण जो इस पदार्थ को रेती से रेतने अथवा आरी से चीरने आदि से निकलते हैं। बुरादा। भूर।

यौ०—चूरचार=बहुत छोटा या बारीक टुकड़ा।

चूर²—वि० १. (किसी कार्य आदि में) तन्मय। निमग्न। तल्लीन। जैसे—काम में चूर, शेखी में चूर। २. जिसपर नशे का बहुत अधिक प्रभाव हो। नशे में बहुत मदमस्त। जैसे,—भाँग में चूर, शराब में चूर, गाँजे में चूर।

चूर³—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूल] दे० 'चूल³'।

चूरण¹—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] दे० 'चूर्ण¹'।

चूरण²—वि० दे० 'चूर्ण²'।

चूरन संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] १. दे० 'चूर्ण'। २. बहुत महीन पीसी हुई पाचक औषधों का चूर्ण।

चूरनहार—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णहार] एक प्रकार की जंगली बेल जिसके पत्ते बहुत लंबे, चिकने और कुछ मोटे होते हैं।

विशेष—इसमें मीठी गंधवाले छोटे छोटे फूल भी लगते हैं। इसकी जड़, पत्तियों और छाल आदि का व्यवहार औषधों में होता है। वैद्यक में इसे कसैला, गरम त्रिदोषनाशक, रुधिरविकार को दूर करनेवाला और कृमिनाशक माना है। कहते हैं, विषम ज्वर की यह बहुत अच्छी दवा है।

चूरना(पु)—क्रि० स० [सं० चूर्णन] १. चूर करना। टुकड़े टुकड़े करना। २. तोड़ना। तोड़ डालना। उ०—(क) ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यों मिल्यो धुलोक जाइ। गेह चूरि ज्यों चकोर चद्रमैं मिलै उड़ाय।—केशव (शब्द०)। (ख) बाँधि गा सुवा करत सुख केली। चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली।—जायसी (शब्द०)।

चूरमा—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] रोटी या पूरी को चूर चूर करके घी में भुना हुआ और चीनी मिलाया हुआ एक खाद्य पदार्थ। बहुधा यह बाजरे का बनता है।

चूरमूर¹—संज्ञा पुं० [देश०] वे खूँटियाँ जो जौ या गेहूँ के कट जाने पर खेत में रह जाती हैं।

चूरमूर²—नष्ट। टूटा हुआ। तोड़ा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना। उ०—औरन को सुधि सहज भुलावत हिय हुलसावत। सब जगचिंता चूरमूर करि दूर बहावत।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ३।

चूरा¹—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] किसी वस्तु का पीसा हुआ भाग। चूर्ण। बुरादा। वि० दे० 'चूर'।

चूरा²—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ा] दे० 'चिउड़ा'।

चूरामणि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चूड़ामणि] दे० 'चूड़ामणि'।

चूरामनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ामणि] १. श्रेष्ठ। शिरोमणि। उ०—विधु बदन चकोर चारु चतुर चूरामनि चदवित चरन।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८८। २. दे० 'चूड़ामणि'।

चूरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ी] दे० 'चूड़ी'।

यौ०—चूरीगर=चूड़ी बनानेवाला। मनिहार। उ०—टूक, टूक चूरीगर लीन्हा। धरिया करम आंच पुनि दीन्हा।—घट० पृ० २२३।

चूरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] १. चूर। चूरा। २. चूरमा।

चूरू—संज्ञा पुं० [हिं० चूर] एक प्रकार का चरस जो गाँजे के मादा पेड़ों से निकलती और कुछ निकृष्ट समझी जाती है।

चूर्ण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूखा पीसा हुआ अथवा बहुत ही छोटे छोटे टुकड़े में किया हुआ पदार्थ। सफूफ। बुकनी। २. कई पाचक औषधों का बारीक पीसा हुआ सफूफ। ३. अबीर। ४. धूल। गर्द। ५. चूना। ६. कौड़ी। कपर्दक। ७. आटा। पिसान (को०) ८. गंधद्रव्य का चूर्ण (को०)।

चूर्ण²—वि० १. जो किसी प्रकार तोड़ा फोड़ा या नष्ट भ्रष्ट किया गया हो। जैसे,—गर्व चूर्ण करना। २. चूर्ण किया हुआ। चाँदी, सोना आदि का किया हुआ चूर (को०)।

चूर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १.सत्तू । सतुआ । २.वह गद्य जिसमें छोटे छोटे शब्द हों तथा लंबे समासवाले शब्द और कठोर या श्रुतिकटु अक्षर न हों । ३.एक प्रकार का वृक्ष । शाल्मली विशेष । ४ एक प्रकार का शालिधान्य । ५ गंधद्रव्य का चूर्ण (को०) ।

चूर्णकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १.चूर्ण करनेवाला । २. आटा बेचनेवाला । ३. एक वर्णसंकर जाति ।

विशेष—पराशर के मत से यह नट जाति की स्त्री और पुंड्रक जाति के पुरुष से उत्पन्न हुई थी ।

चूर्णकार[2]—वि० १. चूर्ण करनेवाला । पीसनेवाला । २ चूना फूँकनेवाला [को०] ।

चूर्णकुंतल—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णकुन्तल] अलक । जुल्फ । लट ।

चूर्णखंड—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णखण्ड] कंकड़ ।

चूर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] चूर्ण करना [को०] ।

चूर्णपारद—संज्ञा पुं० [सं०] शिगरफ ।

चूर्णमुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुट्ठी भर गंधद्रव्य का चूर्ण [को०] ।

चूर्णयोग—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से सुगंधित पदार्थों का मिश्रण ।

चूर्णशाकांक—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णशाकाङ्क] गौरसुवर्ण नाम का साग जो चित्रकूट में अधिकता से होता है । वि० दे० 'गौरसुवर्ण' ।

चूर्णहार—संज्ञा पुं० [सं०] चूरनहार नाम की बेल ।

चूर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आर्या छंद का का दसवाँ भेद जिसमें १८ गुरु और २१ लघु होते हैं । २. तौल में ३२ रत्ती मोतियों की संख्या के हिसाब से भिन्न भिन्न लड़ियाँ ।

चूर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कौड़ा । कपर्दक ।

यौ०—चूर्णिदासी=चक्की पीसनेवाली । पिसनहारी ।

२. चूर्णन । चूर्ण करना या बनाना (को०) । ३.एक सौ कौड़ियों का समूह (को०) । ४. कार्षापण नामक प्राचीन सिक्का (को०) । ५. पाणिनि कृत अष्टाध्यायी के सूत्रों पर पतंजलि मुनिप्रणीत महाभाष्य (को०) ।

यौ०—चूर्णिकृत्=महाभाष्यकार पतंजलि ।

चूर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.सत्तू । सतुआ । २. गद्य का एक भेद । दे० 'चूर्णक' । ३. ग्रथ की जानकारी के लिये उसका भाष्य या शब्दार्थ आदि देना ।

चूर्णिकृत—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णिकृत] महाभाष्यकार पतंजलि मुनि ।

चूर्णित—वि० [सं०] १. चूर्ण किया हुआ । २. पीसा हुआ (को०) ।

चूर्णी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.कार्षापण नामक पुराना सिक्का या कौड़ी । २. एक प्राचीन नदी का नाम । पतंजलि प्रणीत व्याकरण का भाष्य ।

चूर्णी[2]—वि० [सं० चूर्णिन्] चूर्ण । मिलाया हुआ या चूर्ण से बनाया हुआ [को०] ।

चूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाना । गमन करना [को०] ।

चूर्मा—संज्ञा पुं० [हिं० चूरमा] दे० 'चूरमा' ।

चूल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चूला] १.चोटी । शिखा । २. रीछ के बाल ।—(कलंदरों की भाषा) ३. सिर के बाल (बंग०) । ४. सबसे ऊपर का कमरा (को०) ।

चूल[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी लकड़ी का वह पतला सिरा जो किसी दूसरी लकड़ी के छेद में उसके साथ जोड़ने के लिये ठोंका जाय ।

मुहा०—चूलें ढीली होना=अधिक परिश्रम के कारण बहुत थकावट होना ।

चूल[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का थूहड़ । वि० दे० 'चून'[3] ।

चूलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी की कनपटी । २. हाथी के कान का मैल । ३. खंभे का ऊपरी भाग । ४. किसी घटना या विषय की परोक्ष से सूचना ।

चूलका—संज्ञा स्त्री० [सं० चूलिका] दे० 'चूलिका[1]' । उ०—व्यवहारसूत्र की चूलका में लिखा है कि पाँचवें काल में किसी मनुष्य की मुक्ति नहीं होगी ।—कबीर मं०, पृ० २४९ ।

चूलदान—संज्ञा पुं० [सं० चुल्लि+आधान] १.बावर्चिखाना । रसोईघर । पाकशाला ।—(लश०) । २. बैठने या चीजें आदि रखने के लिये सीढ़ीनुमा बना हुआ स्थान । गेलरी ।—(लश०) ।

चूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.चोटी । शिखा । २.सबसे ऊपर का कमरा । चंद्रशाला [को०] ।

चूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] लूची नामक पक्वान्न । मैदे की पतली पूरी । लुचुई ।

चूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चूलक । २. नाटक का एक अंग जिसमें नेपथ्य से किसी घटना के हो जाने की सूचना दी जाती है ।

विशेष—संस्कृत साहित्यके नियमानुसार रंगशाला पर युद्ध या मृत्यु आदि का दृश्य दिखलाना निषिद्ध है; इसलिये उसकी सूचना नेपथ्य से हो जाया करती है । संस्कृत के नाटककार भवभूतिकृत वीरचरित नाटक में इस प्रकार की एक चूलिका है । उसमें नेपथ्य से कहा जाता है—'राम ने परशुराम पर विजय पा ली है; अतः हे विमानपर बैठनेवालो, आपलोग मंगलगीत आरंभ करें ।

३. मुर्गे की कलँगी (को०) । ४. हाथी की कनपटी या कर्णमूल (को०) । ५. धनुष का सिरा या ऊपरी भाग (को०) ।

चूलिकोपनिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं० चुलिन्] अथर्ववेदीय एक उपनिषद् का नाम ।

चूली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष । उ०—खेतों का सबसे बड़ा भूभाग जंगलों से अलग है, और वहाँ चूली, बेमी, अखरोट के अतिरिक्त दूसरे तरह के वृक्ष नहीं हैं ।—किन्नर०, पृ० ६५ ।

चूल्हा—संज्ञा पुं० [सं० चुल्लि] अंगीठी की तरह का मिट्टी या लोहे आदि का बना हुआ पात्र जिसका आकार प्रायः घोड़े की नाल का साया अर्द्धचंद्राकार होता है और जिसपर नीचे आग जलाकर, भोजन पकाया जाता है ।

यौ०—दोहरा चूल्हा=वह चूल्हा जिसपर एक साथ दो चीजें पकाई जा सकें ।

मुहा०—चूल्हा जलना=भोजन बनना । जैसे,—आज उनके घर

चूल्हा नहीं जला। चूल्हा न्योतना=घर के सब लोगों को निमंत्रण देना। चूल्हा फूँकना=भोजन पकाना। चूल्हे में डालना=(१) नष्ट भ्रष्ट करना। (२) दूर करना। चूल्हे में जाना=नष्ट भ्रष्ट होना। अस्तित्व मिटना। चूल्हे में पड़ना=दे० 'चूल्हे में जाना'। (इन मुहावरों का प्रयोग क्रोध में या अत्यंत निरादर प्रकट करने के समय होता है) जैसे,—चूल्हे में जाय तुम्हारा तमाशा। चूल्हे में डालो अपनी सौगात। चूल्हे से निकलकर भाड़ या भट्ठी में जाना=छोटी विपत्ति से निकलकर बड़ी विपत्ति में फँसना।

चूषण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चूषणीय, चूष्य] चूसने की क्रिया।

चूषणीय—वि० [सं०] चूसने योग्य। जो चूसा जाय।

चूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हाथी की कमर में बाँधी जानेवाली बड़ी पेटी या पट्टा। २. चूसने का कार्य या स्थिति (को०)। ३. पेटी या कमर बंद (को०)।

चूष्य—वि० [सं०] चूसने के योग्य। जो चूसा जाय या जो चूसा जा सके।

चूसना—क्रि० स० [सं० चूषण] १. जीभ और होंठ के संयोग से किसी पदार्थ का रस खींच खींचकर पीना। जैसे,—आम चूसना, गँडेरी चूसना। २. किसी चीज का सार भाग ले लेना। जैसे—किसी स्त्री का पुरुष को चूस लेना। किसी बदमाश का भले आदमी को चूसना अर्थात् उसका धन आदि अपहरण करना।

संयो० क्रि०—डालना। लेना।

३. किसी वस्तु को चूस चूसकर समाप्त करना जैसे,—लेमनचूस का चूसना। ४. किसी वस्तु का गीलापन सोख लेना।

चूहड़—संज्ञा पुं० [हिं० चूहड़ा] दे० 'चूहड़ा'।

चूहड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० चूहड़ी] १. भंगी या मेहतर। चांडाल। श्वपच। २. निम्न प्रकार का या लफंगा व्यक्ति।

चूहर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चूहड़ा] दे० 'चूहड़ा'।

चूहरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चूहड़ा] दे० 'चूहड़ा'। उ०—जीभ का फूहरा, पंथ का चूहरा। तेज तमा घरै आप खोवै।—कबीर रे०, पृ० ३२।

चूहरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुरिहारिन] चूड़ी बेचने या पहनानेवाली स्त्री। चुड़िहारिन।

चूहरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] 'चूहड़ा' का स्त्री० रूप।

चूहा—संज्ञा पुं० [अनु० चूँ+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० चूहिया, चूही आदि] चार पैरोंवाला एक प्रसिद्ध छोटा जंतु जो प्रायः घरों या खेतों में बिल बनाकर रहता है। मूसा। मूषक।

विशेष—यह समस्त एशिया, युरोप और अफ्रिका में पाया जाता है और इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। साधारणतः भारतीय चूहों का रंग कालापन लिए खाकी होता है, पर नीचे के भाग में कुछ सफेदी भी होती है। इसके दाँत बहुत तेज होते हैं और यह खाने पीने की चीजों के सिवा कपड़ों और दूसरी चीजों को भी काटकर बहुत हानि पहुँचाता है। कभी कभी यह मनुष्यों को भी काटता है। इसके काटने से एक प्रकार का हलका विष चढ़ता है। किसी किसी जाति के चूहे बहुत लड़ाके होते हैं और आपस में खूब लड़ते हैं। इसकी मादा एक साथ कई बच्चे देती है। इस देश में विलायत से मिलते जुलते एक प्रकार के सफेद चूहे भी आते हैं जिन्हें विलायती चूहा कहते हैं। इनके एक जोड़े से बढ़कर एक साल के अंदर कई सौ चूहे हो जाते हैं। इस जाति के चूहे प्रायः अपने बच्चों को जन्मते ही या कुछ दिनों के अंदर खा जाते हैं। साधारणतः चूहे प्रायः कुत्तों और विशेषतः बिल्लियों के शिकार हो जाते हैं।

चूहादंती[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूहा+दाँत] स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की पहुँची जो चाँदी या सोने की बनती है।

विशेष—इसके दाने चूहे के दाँत से लंबे और नुकीले होते हैं और रेशम या सूत में पिरोए रहते हैं।

चूहादंती[2]—वि० चूहे के दाँत के आकार का।

चूहादान—संज्ञा पुं० [हिं० चूहा+फ़ा० दान] [स्त्री० चूहादानी] चूहों को फँसाने का एक प्रकार का पिंजड़ा। चूहेदानी।

चूही—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूहिया] दे० 'चुहिया'। उ०—कौन कुबुद्धि लगी यह तोकों होत सिंह तैं चूही।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८३९।

चूहेदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूहादानी] दे० 'चूहादान'।

चेंज—संज्ञा पुं० [अं०] १. (एक स्थान से दूसरे स्थान को) वायुपरिवर्तन के लिये जाना। वायुपरिवर्तन। हवा बदलना। जैसे,—डाक्टरों की सलाह से वे चेंज में गए हैं। २. (किसी जंकशन पर) एक गाड़ी से उतरकर दूसरी पर चढ़ना। बदलना। जैसे, मुगलसराय में चेंज करना पड़ेगा। ३. बड़े सिक्कों का छोटे सिक्कों में बदलना। विनिमय। जैसे,—(क) आपके पास नोट का चेंज होगा? (ख) टिकट बाबू को नोट दिया है, चेंज ले लूँ तो चलता हूँ।

चें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों के बोलने का शब्द। चीं चीं।

मुहा०—चीं बोलना=दे० 'चीं' के मुहा० में 'चीं बोलना'।

चेंगड़ा—संज्ञा पुं० [अनु०] [स्त्री० चेंगड़ी] छोटा बच्चा। बालक।

चेंगना—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'चेंगड़ा'।

चेंगा[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चेंगड़ा'।

चेंगा[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेनगा] दे० 'चेनगा'।

चेंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] चमड़े की चकती अथवा सन या सुतली का घेरा जिसे पैंजनी और पहिए के बीच में इसलिये पहना देते हैं कि जिसमें दोनों एक दूसरे से रगड़ न खायँ।

चेंघी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेंगी] दे० 'चेंगी'।

चेंचर†—वि० [चें चें से अनु०] चें चें करनेवाला। बक बक करनेवाला। बकवादी। बक्की।

चेंचियाना†—क्रि० अ० [अनुध्व० या हिं० चिचियाना] दे० 'चिचियाना' उ०—चेंचियाकर महाराजिन ने सचेत किया।—भस्मावृत० पृ० ९३।

चेंचुआ†—संज्ञा पुं० [चें चें से अनु०] चातक का बच्चा।

चेंचुला‡—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्वान्न।

विशेष—इसके बनाने में पहले गूँधे हुए आटे या मैदे को पूरी की तरह पतला बेलकर गोंठते और चौखूँटा बनाकर कुछ दबा देते हैं और तब घी आदि में तल लेते हैं।

चें चें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चिड़ियों के बोलने का शब्द। चीं चीं। २. व्यर्थ की बकवाद। बकबक।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

चेंबर—संज्ञा पुं० [अं०] वह बड़ा कमरा जिसमें किसी विषय की मंत्रणा हो। सभागृह।

चेंबर आफ कामर्स—संज्ञा पुं० [अं० चेंबर ऑव् कामर्स] किसी नगर के प्रधान व्यापारियों की वह सभा जिसका संघटन उन व्यापारियों के व्यापार संबंधी स्वत्वों की रक्षा के लिये हुआ हो।

चेंटियारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] अबलक रंग का एक प्रकार का बहुत बड़ा जलपक्षी।

विशेष—इसके पैर प्रायः हाथ भर लंबे और चोंच एक बालिश्त की होती है। इसके सिरपर बाल या पर नहीं होते। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और इसी लिये इसका शिकार किया जाता है।

चेंटी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चींटी] दे० 'चिउँटी'।

चेंटुआ‡—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया] चिड़िया का बच्चा। उ०—अंड फोरि करयो चेंटुआ तुष परयो नीर निहारि। गहि चंगुल चातिक चतुर डारयो बाहिर बारि।—तुलसी (शब्द०)।

चेंड़ा‡—संज्ञा पुं० [हिं० चींगड़ा] दे० 'चेंगड़ा'।

चेंथरी‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] मस्तक का सबसे ऊपरी भाग। उ०—अक्कल चेथरी में चढ़ गई सो अब उने कछु सूझत नइयां।—झाँसी०, पृ० १६१।

चेंघी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोंगी] दे० 'चोंगी'।

चेंपें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह धीमा शब्द या कार्य जो किसी बड़े के सामने किसी प्रकार का विरोध प्रकट करने के लिये किया जाय। चीं चपड़। २. व्यर्थ की बकवाद। बकबक।

चेंप‡—संज्ञा पुं० [देश०] ऊख का छिलका।

चेअर—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. बैठने की कुरसी।

यौ०—ईजी चेअर=आराम कुरसी।

२. किसी विश्वविद्यालय में किसी विषय के पढ़ाने के लिये किसी महान् व्यक्ति के नाम पर स्थापित की हुई व्यवस्था। जैसे,—इतिहास की बड़ौदा चेयर, कानून की टैगोर चेयर। ३. अध्यक्ष के पद पर बैठा हुआ व्यक्ति। जैसे—चेअर का प्रस्ताव।

चेयरमैन—संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या बैठक का प्रधान। सभापति। अध्यक्ष।

चेउरी†—संज्ञा पुं० [हिं० जेवड़ी (=रस्सी)] कुम्हार का वह डोरा जिसके द्वारा चाक पर तैयार किया हुआ बरतन शेष मिट्टी से काटकर अलग किया और उतारा जाता है।

चेक—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह रुक्का या आज्ञापत्र जो किसी बंक आदि के नाम लिखा गया हो और जिसके देने पर वहाँ से उसपर लिखी हुई रकम मिल जाय। एक प्रकार की हुंडी।

विशेष—साधारणतः चेकों का एक निश्चित स्वरूप हुआ करता है। किसी बंक के नाम चेक लिखने का अधिकार उसी को होता है जिसका रुपया बैंक में जमा हो।

मुहा०—चेक काटना=चेक लिखकर (चेक बुक में से अलग कर या उसमें से काटकर) देना।

यौ०—चेक बुक—बहुत से सादे चेकों को सीकर बनाई हुई किताब।

२. बहुत सी सीधी रेखाओं पर आड़ी खींची हुई रेखाएँ जिनसे बहुत से चौकोर खाने बन जायँ। चारखाना। ३. एक प्रकार का चारखाने का कपड़ा।

चेकित१—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चेकित२—वि० बहुत बड़ा ज्ञानी।

चेकितान१—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २. केकय देश के राजा धृष्टकेतु के पुत्र का नाम जिसने महाभारत के युद्ध में पांडवों की सहायता की थी।

चेकितान२—वि० बहुत बड़ा ज्ञानी।

चेचक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शीतला या माता नामक रोग।

चेचकरू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसके मुँह पर शीतला के दाग हों।

चेजा—संज्ञा पुं० [हिं० छेव ?] सूराख। छेद। छिद्र। उ०—आँखड़ियाँ रतनालिया चेजा करै पताल। मैं तोहि बूझौं माछली तू क्यों बंधी जाल।—कबीर (शब्द०)।

चेजारा—संज्ञा पुं० [देश०] दीवाल उठानेवाला। दीवाल की चुनाई करनेवाला। स्थपति। थवई। राजगीर। उ०—कबीर मंदिर ढहि पड्या सैंट भई सैंवार। कोई चेजारा चिणि गया, मिल्या न दूजी बार।—कबीर ग्रं०, पृ० २२।

चेट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चेटी या चेटिका] १. दास। सेवक। नौकर। २. पति। खाविंद। ३. नायक और नायिका को मिलानेवाला प्रवीण पुरुष। भँड़ुवा। ४. एक प्रकार की मछली। भाँड़।

चेटक१—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवक दास। नौकर। २. चटक मटक। ३. दूत। ४. जल्दी। फुरती। ५. चाट। चसका। मजा।

क्रि० प्र०—लगना।

६. उपपति। जार (कौ०)।

चेटक२—संज्ञा पुं० [हिं०] १. जादू या इंद्रजाल विद्या। नजरबंद का तमाशा। उ०—कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया।—ब्रज०, पृ० १५०। २. भाड़ों का तमाशा। कौतुक। उ०—(क) कतहूँ नाद शब्द हो भला। कतहूँ नाटक चेटक कला।—जायसी

(शब्द०)। (ख) नट ज्यों जिन पेट कुपेट कुकोटिक चेटक कौटिक ठाट ठटयो।—तुलसी (शब्द०)।

चेटकनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेटक] 'चेटक' का स्त्री० रूप।

चेटका—संज्ञा स्त्री० [सं० चिता] १. मुर्दा जलाने की चिता। २. श्मशान। मरघट। उ०—जरे जूह नारी चढ़ी चित्रसारी। मनो चेटका में सती सत्यधारी।—केशव (शब्द०)।

चेटकी—संज्ञा पुं० [हिं० चेटक] १. इंद्रजाली। जादूगर। उ०—किसबी किसान कुल बनिक, भिखारी, भाट चाकर चपल नट, चोर, चार चेटकी —तुलसी ग्रं०, पृ० २२०। २. अनेक प्रकार के कौतुक करनेवाला। कौतुकी। उ०—परम गुरु रतिनाथ हाथे सिर दियो प्रेम उपदेश। चतुर चेटकी मथुरानाथ सो कहियो जाय ग्रादेश।—सूर (शब्द०)।

चेटवा—संज्ञा पुं० [हिं० चेटुवा] दे० 'चेटुवा'।

चेटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवा करनेवाली स्त्री। दासी।

चेटिकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० चेटिका] दे० 'चेटिका'।

चेटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। लौंडी।

चेटुका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चेटुका'।

चेटुका(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चोटुक] दे० 'चेटुवा'। उ०—अलल पच्छ के चेटुका, वाको कौन कहो उपदेश। उलटि मिलै परिवार में, वासे कौन कहै संदेस।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५१।

चेटुवा—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया] चिड़िया का बच्चा। उ०—देव मृदु निनद विनोद मदनालै रव रटत समोद चारु चेटुवा चटक के।—देव (शब्द०)।

चेड़—संज्ञा पुं० [सं० चेड] दे० 'चेटक' [को०]।

चेड़क—संज्ञा पुं० [सं० चेडक] दे० 'चेटक'।

चेड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० चेडिका] दे० 'चेटिका' [को०]।

चेड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चेडी] दे० 'चेटी' [को०]।

चेतंता—वि० [हिं०] १. सावधान। चौकन्ना। २. चेतन। सचेत।

चेत्—अव्य० [सं०] १. यदि। अगर। २. शायद। कदाचित्।

चेत—संज्ञा पुं० [सं० चेतस्] १. चित्त की वृत्ति। चेतना। संज्ञा। होश। २. ज्ञान। बोध। उ०—मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम।—तुलसी (शब्द०)। ३. सावधानी। चौकसी। ४. खयाल। स्मरण। सुध।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—दिलाना।—धराना।—रखना। —पड़ना। होना।

५. चित्त। मन।

चेतक१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चेतकी] हर्रे। उ०—अभया, पथ्या, अव्यथा, अमृता, चेतक होइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०४।

चेतक२—संज्ञा पुं० महाराणा प्रताप का प्रसिद्ध ऐतिहासिक घोड़ा।

चेतक३—वि० [सं०] १. सचेत करनेवाला। २. चेतन [को०]।

चेतक४—वि० [सं० चेटक] जादूभरी। उ०—घात लै अनूठी भरे चेतक चितौन मूठी, घूँघरि चिलक चौंध बीच कौंध सों टिकै।—घनानंद०, पृ० ४४।

चेतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हरीतकी। साधारण हड़। २. सात प्रकार की हड़ों में से एक विशेष प्रकार की हड़ जिसपर तीन धारियाँ होती हैं।

विशेष—यह हड़ दो प्रकार की होती है। एक सफेद और बड़ी जो प्राय: पाँच छह अंगुल लंबी होती है; और दूसरी काली और छोटी जो प्राय: एक अंगुल लंबी होती है। भावप्रकाश के अनुसार पहले प्रकार की हड़ के पेड़ के नीचे जाने से भी पशुओं और पक्षियों तक को दस्त हो जाता है। आजकल के बहुत से देशी चिकित्सकों का विश्वास है कि इस प्रकार की हड़ को हाथ में लेने या सूँघने से दस्त हो जाता है; पर इस जाति की हड़ अब कहीं नहीं मिलती।

३. चमेली का पौधा। ४. एक रागिनी का नाम जिसे कुछ लोग श्री राग की प्रिया मानते हैं।

चेतत—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेत+त (प्रत्य०)] दे० 'चेतना'।

चेतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मा। जीव। २. मनुष्य। आदमी। ३. प्राणी। जीवधारी। ४. परमेश्वर।

यौ०—चेतन मन=मन का वह स्तर या भाग जिसमें विचारों के प्रति मन उद्यत रहता है।

चेतनकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़।

चेतनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चेतन का धर्म। चैतन्य। सज्ञानता।

चेतनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चेतनता'।

चेतना१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि। २. मनोवृत्ति ३. ज्ञानात्मक मनोवृत्ति। ४. स्मृति। सुधि। याद। ५. चेतनता। चैतन्य। संज्ञा। होश।

चेतना२—क्रि० अ० [हिं० चेत+ना (प्रत्य०)] १. संज्ञा में होना। होश में आना। २. सावधान होना। चौकस होना। उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत, यह अधचरा बचाइ ले।—सम्मन (शब्द०)।

चेतना३—क्रि० स० [सं० चिन्तन] विचारना। समझना। ध्यान देना। सोचना। जैसे,—धर्म चेतना, आगम चेतना, भला चेतना, बुरा चेतना।

चेतनीय—वि० [सं०] १. जो चेतन करने योग्य हो। २. जानने योग्य। ज्ञान करने योग्य।

चेतनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक लता।

चेतन्य—वि० [सं० चैतन्य] दे० 'चैतन्य'।

चेतवनि१(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतावनी] दे० 'चेतावनी'।

चेतवनि२(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चितवन] दे० 'चितवन'।

चेतव्य—वि० [सं०] जो चयन (संग्रह) करने योग्य हो। इकट्ठा करने लायक। संग्रह योग्य।

चेता१—संज्ञा पुं० [सं० चित्] १. संज्ञा। होश। बुद्धि। २. स्मृति। याद।—(पश्चिम)।

मुहा०—चेता भूलना=याद न रहना। स्मरण न रहना।

चेता२—वि० [सं० चेतस्] चेतनावाला।

विशेष—समस्त पदों के अंत में ही इसका प्रयोग मिलता है। जैसे, धर्मचेता।

चेताना--क्रि० स० [हिं० चेत या चेतना] १. भूली बात याद दिलाना। २. ज्ञानोपदेश करना। ३. चेतावनी देना। ४. जलाना या सुलगाना (पूर्वी)। जैसे, आग या चूल्हा चेताना। ५. धमकी देना।

चेतावनी--संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतना] वह बात जो किसी को होशियार करने के लिये कही जाय। सतर्क होने की सूचना।
क्रि० प्र०--देना। मिलना।

चेतिका(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० चिति] मुरदा जलाने की चिता। सरा। उ०--चेतिका करुणा रची, सब छाँड़ि और उपाइ। क्यों जियों जननी बिना, मरिहूँ मिलै जो आइ।--केशव (शब्द०)।

चेतुरा--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो संसार के सब भागों में पाई जाती है।
विशेष--इसके नर और मादा के रंग में भेद होता है। यह पेड़ों पर कटोरे के आकार का घोंसला बनाती है।

चेतुवा(पु)--वि० [हिं० चेत+उवा (प्रत्य०)] चेतनेवाला। उ०--जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार। चेतुवा है तो चेतहु, दिवस परतु हैं धार।--कबीर बी०, पृ० १६६।

चेतोजन्मा†--संज्ञा पुं० [सं० चेतोजन्मन्] कामदेव।

चेतोभव--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चेतोजन्मा' [को०]।

चेतोभू--संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

चेतोविकार--संज्ञा पुं० [सं०] चित्त संबंधी विकार [को०]।

चेतोहर--वि० [सं०] चेतना का हरण करनेवाला [को०]।

चेतौनी†--संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतावनी] दे० 'चेतावनी'।

चेत्य--वि० [सं०] १. जो जानने योग्य हो। ज्ञातव्य। २. जो स्तुति करने योग्य हो।

चेदि--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम।
विशेष--यह किसी समय शुक्तिमती नदी के पास था। महाभारत का शिशुपाल इसी देश का राजा था। वर्तमान बुंदेलखंड का चंदेरी नगर इसी प्राचीन देश की सीमा के अंतर्गत है। इस देश का नाम त्रैपुर और चैद्य भी है।
२. इस देश का राजा। ३. इस देश का निवासी। ४. कौशिक मुनि के पुत्र का नाम।

चेदिक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चेदि'।

चेदिपति--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चेदिराज'।

चेदिराज--संज्ञा पुं० [सं०] १. शिशुपाल नामक राजा जिसका वध श्रीकृष्ण ने किया था। २. एक वसु का नाम जिन्हें इंद्र से एक विमान मिला था और जो पृथ्वी पर नहीं चलते थे, ऊपर ही ऊपर आकाश में भ्रमण करते थे। इनका दूसरा नाम उपरिचर भी था।

चेन[1]--संज्ञा स्त्री० [अं०] बहुत सी छोटी छोटी कड़ियों को एक में गूथकर बनाई हुई शृंखला। सिकड़ी। जंजीर। जैसे,--रेलगाड़ी के दो डिब्बों को जोड़ने की चेन, घड़ी में लगाने की चेन।

चेन[2]--संज्ञा पुं० [हिं० चैन] दे० 'चैन'। उ०--दिन रात्रि सेवा बिनु चेन परत नाहीं।--दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ८३।

चेन[3]†--संज्ञा पुं० [सं० चणक, हिं० चीना] दे० 'चेना[1]'। उ०--बारह पानी चेन, नहीं तो लेन का देन।--लोकोक्ति।

चेनआ--संज्ञा स्त्री० [हिं० चेनवा] दे० 'चेनवा'।

चेनगा--संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तर तथा पश्चिम भारत की नदियों और बड़े बड़े तालाबों, विशेषतः ऐसी नदियों और तालाबों में जिनमें घास अधिक हो, पाई जाती है।
विशेष--यह प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है और इसका सिर गिरई से कुछ बड़ा होता है। इसे प्रायः नीच जाति के और गरीब लोग खाते हैं। इसे चेंगा या चेनआ भी कहते हैं।

चेनवा†--संज्ञा पुं० [हिं० चेना] दे० 'चेना'।

चेना[1]--संज्ञा पुं० [सं० चणक] १. कँगनी या साँवाँ की जाति का एक अन्न जो चैत, बैसाख में बोया या असाढ़ में काटा जाता है।
विशेष--इसके दाने छोटे, गोल और बहुत सुंदर होते हैं। इसे पानी की बहुत आवश्यकता होती है, यहाँ तक कि काटने से तीन चार दिन पहले तक इसमें पानी दिया जाता है। इसी लिये खेतिहरों में एक मसल है--'बारह पानी चेन, नहीं तो लेन का देन।' कहते हैं, इस देश में यह अन्न मिस्र या अरब से आया है। यह हिमालय में १०,००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह पानी या दूध में चावल की तरह पकाकर खाया जाता है और बहुत पौष्टिक समझा जाता है। शिमला के आसपास के लोग इसकी रोटियाँ भी बनाकर खाते है। पंजाब में इसकी खेती प्रायः चारे के लिये ही होती है। वैद्यक में इसे शीतल, कसैला, शक्तिवर्धक और भारी माना है।
२. चेंच नामक साग।

चेना[2]--संज्ञा पुं० [हिं० चीना] दे० 'चीनी कपूर'।

चेप[1]--संज्ञा पुं० [हिं० चिपचिप से अनु०] १. कोई गाढ़ा चिपचिपा या लसदार रस। जैसे,--आम का चेप, सीतला का चेप। २. लासा जो चिड़ियों को फँसाने के लिये बाँस की लग्घियों में लगाया जाता है। उ०--बनतन को निकसत लसत हँसत हँसत उत आय। दृगखंजन गहि लै गयो, चितवनि चेप लगाय।--बिहारी (शब्द०)।

चेप[2]--संज्ञा पुं० [हिं० चोप] चाव। उत्साह।

चेप[3]--संज्ञा पुं० [अनु०] ढेला। मिट्टी का ढेला। उ०--हमरे वचने जे तोहहि विराम। फेंके लेओ चेप पवि पुनु ठाम।--विद्यापति, पृ० ३०३।

चेपदार--वि० [हिं० चेप+फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें चेप या लस हो। चिपचिपा।

चेपना†--क्रि० स० [हिं० चेप से नामिक धातु] चिपकाना। सटाना।

चेपांग--संज्ञा पुं० [देश०] नैपाल में रहनेवाली एक पहाड़ी जाति।

चेबुला--संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी छाल चमड़ा सिझाने और रंग बनाने में काम आती है।

विशेष—यह ऊँचाई में ८० या १०० फुट तक होता है और समस्त भारत में पाया जाता है।

चेय¹—वि० [सं०] जो चयन करने योग्य हो। जो संग्रह करने योग्य हो। चयनीय।

चेय²—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं०] वह अग्नि जिसका विधानपूर्वक संस्कार हुआ हो।

चेयर—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'चेअर'।

चेयरमैन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'चेअरमैन'।

चेरौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चेड या चेड] दास। सेवक। गुलाम।

चेरना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छेनी जिससे नकाशी करनेवाले सीधी लकीर बनाते हैं।

चेरा¹(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० चेटक, प्रा० चेडग्र, चेड़ा] [स्त्री० चेरी] १. नौकर। दास। सेवक। गुलाम। उ०—करम वचन मन राउर चेरा : राम करहु तेहिके उर डेरा।—मानस, २।१३१। २. चेला। शिष्य। शागिर्द। विद्यार्थी।

चेरा²—संज्ञा पुं० [देश०] मोटे ऊन का बना हुआ। गलीचा।

चेराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेरा+ई] दासत्व। सेवा। नौकरी। उ०—ऐसे करि मोकों तुम पायो मनो इनकी मैं करों चेराई। सूरश्याम वे दिन बिसराये जब बांधे तुम ऊखल लाई।—सूर (शब्द०)।

चेरायता†—संज्ञा पुं० [हिं० चिरायता] दे० 'चिरायता'।

चेरि, चेरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० चेटि या चेडि अथवा चेटी, चेडी] 'चेरा' का स्त्री० रूप।

चेरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्राम। गाँव। २. तंतुवाय या बुनकरों की बस्ती या मुहल्ला [को०]।

चेरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० चेटिका, चेडिका, प्रा० चेडिया] दासी। जैसे—रानी की बात, चेरिया सुभाव नहीं जाता।

चेरु—वि० [सं०] जिसे संग्रह करने का अभ्यास हो। संग्रह करनेवाला।

चेरुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] एक खाद्य पदार्थ जो सतुआ सानकर पिठौरा की तरह बनाकर अदहन में पकाने से तैयार होता है।

चेरुई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] घड़े के आकार का, पर उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का मिट्टी का बरतन।

चेरु—संज्ञा स्त्री० [सं० सेरु (जकड़ने वाले) अथवा देश०] एक जंगली जाति जिसके रीति रिवाज क्षत्रियों से प्रायः मिलते जुलते हैं।

विशेष—पाँच छह सौ वर्ष पहले भारत के अनेक स्थानों में इस जाति का बहुत जोर था, और अनेक प्रदेशों में इसका राज्य था। कहते हैं, यह नाग जाति के अंतर्गत है। बिहार के अनेक स्थानों में इस जाति के लोगों की बनवाई हुई बहुत सी पुरानी इमारतें हैं। आजकल इस जाति के लोग मिरजापुर जिले तथा दक्षिण भारत में पाए जाते हैं।

चेल¹—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। कपड़ा।

यौ०—चेलगंगा=महाभारत में वर्णित एक नदी जो गोकर्ण के समीप है। चेलचीरा=वस्त्र से फाड़ा हुआ टुकड़ा। चेलधावक, चेलनिर्णेजक, चेलप्रक्षालक=धोबी।

चेल²—वि० अधम। निकृष्ट।

विशेष—इसका प्रयोग समस्त पद के अंत में होता है। जैसे,—भार्याचेल=अधम या निकृष्ट पत्नी।

चेलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक मुनि का नाम।

चेलक²—संज्ञा पुं० [हिं० चेंगड़ा या हिं० चेला] १. बालक। कुमार। शिशु। उ०—गोरि मद्धि इक चेलक वासं। देव सरूप कोटि रवि भासं।—पृ० रा०, २४। ३२१। २. चेला। शिष्य।

चेलकाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेला] चेलहाई। चेलों का समूह। शिष्यवर्ग।

चेलकी(पु)—संज्ञा स्त्री०[हिं० चेलक] दे० 'चेटिका' उ०—हास्यारथ करे चेलकी। भोज घणां देसी तेड़वहोड़।—बी० रासो, पृ० २४।

चेलगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० चेलगङ्गा] एक प्राचीन नदी का नाम जो किसी समय गोकर्ण क्षेत्र (वर्तमान मालाबार) में बहती थी, और जिसका उल्लेख महाभारत में आया है।

चेलप्रक्षालक¹—वि० [सं०] कपड़ा धोनेवाला [को०]।

चेलप्रक्षालक²—संज्ञा पुं० धोबी [को०]।

चेलवा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेल्हवा] दे० 'चेल्हवा'।

चेलहाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेला+हाई (प्रत्य०)] चेलों का समूह। शिष्यवर्ग।

मुहा०—चेलहाई करना=भेंट और पूजा आदि संग्रह करने के लिये चेलों में घूमना।

चेला¹—संज्ञा पुं० [सं० चेटक, प्रा० चेडग्र, चेडा] [स्त्री० चेलिन, चेली] १. वह जिसने दीक्षा ली हो। वह जिसने कोई धार्मिक उपदेश ग्रहण किया हो। शिष्य।

क्रि० प्र०—करना।—बनना।—बनाना।—होना।

मुहा०—चेला मूँड़ना=चेला बनाना। शिष्य बनाना।

विशेष—संन्यासियों में दीक्षा के समय दीक्षित का सिर मूँड़ा जाता है; इसी से यह मुहावरा बना है।

२. वह जिसने शिक्षा ली हो। वह जिसने कोई विषय सीखा हो। शागिर्द। विद्यार्थी। छात्र।

विशेष—दीक्षा या शिक्षा देनेवाले को गुरु और दीक्षा या शिक्षा लेनेवाले को उस (गुरु) का चेला कहते हैं।

यौ०—चेलाचाटी—चेलों का वर्ग या समूह।

चेला²—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का साँप जो बंगाल में अधिकता से पाया जाता है। २. एक प्रकार की छोटी मछली। चेल्हा।

चेलान¹—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज की लता।

चेलान²†—संज्ञा पुं० [हिं० चेला+आन (प्रत्य०)] [स्त्री० चेलानी] १. चेलों का समूह। २. चेलों की बस्ती या निवास।

चेलाल—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज की लता।

चेलाशक—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े आदि में लगनेवाला कीड़ा।

चेलिक—वि० [सं० चेटक, हिं० चेला] शिष्य। शागिर्द। उ०—बूढ़ न बार तरुन नहिं चेलिक वाको तिलक लगाई हो।—धरम०, पृ० ५०।

चेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चिउली नाम का रेशमी कपड़ा। २. चोली। अँगिया (को०)।

चेलिकाई—संज्ञा स्त्री० दे० [हिं०] दे० 'चेलकाई' या 'चेलहाई'। उ०—रैनिदिवस मैं तहवाँ नारि पुरुष समताई हो। ना मैं बालक ना मैं बूढ़ो ना मोरे चेलिकाई हो।—कबीर (शब्द०)।

चेलिन, चेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेला का स्त्री० रूप] शिष्या।

चेलुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के बौद्ध भिक्षु।

चेल्हवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल (=मछली)] एक तरह की छोटी मछली जो चमकीली और पतली होती है।

चेल्हा—संज्ञा स्त्री० [हिं० चेल्हवा] दे० 'चेल्हवा'।

चेवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण और पश्चिम भारत में होता है।

विशेष—इसकी चटाइयाँ और टोकरियाँ बनाई जाती हैं और इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं।

चेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

चेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंगों की गति। भावभंगी। २. क्रिया [को०]।

चेष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चेष्टा करे। चेष्टा करनेवाला। २. एक प्रकार का रतिबंध।

चेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] चेष्टा करना। चेष्टा का भाव या स्थिति [को०]।

चेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शरीर के अंगों की वह गति या अवस्था जिससे मन का भाव या विचार प्रकट हो। वह कायिक व्यापार जो आंतरिक विचार या भाव का द्योतक हो। २. नायिका या नायक का वह प्रयत्न या उपाय जो नायक नायिका के प्रति प्रेम प्रकट करने के लिये हो। ३. उद्योग। प्रयत्न। कोशिश। ४. कार्य। काम। ५. श्रम। परिश्रम। ६ इच्छा। कामना। ख्वाहिश। ७. मुँह की वह आकृति जिससे मानसिक स्थिति प्रकट होती है (को०)।

चेष्टानाश—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टि का अंत। प्रलय।

चेष्टानिरूपण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी व्यक्ति की चेष्टा को देखना या लक्षित करना [को०]।

चेष्टाबल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में ग्रहों का विशेष गति या स्थिति के अनुसार अधिक बलवान् हो जाना। जैसे, उत्तरायण में सूर्य या वक्रगामी मंगल अथवा चंद्रमा के साथ संयुक्त कोई ग्रह। इससे ग्रह का शुभ या अशुभ फल बढ़ जाता है।

चेष्टित[१]—वि० [सं०] चेष्टायुक्त। सचेष्ट। उ०—आत्मरक्षा के लिये चेष्टित नहीं दिखलाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१२।

चेष्टित[२]—संज्ञा पुं० १. कार्य। व्यवहार। २. गतिविधि [को०]।

चेष्टिता—वि० स्त्री० [सं०] गतिवाली। स्थितियुक्त। क्रियावाली। उ०—जनसिंधु तरंगवेष्टिता। नगरी थी अब द्वीपचेष्टिता।—साकेत, पृ० ३४२।

चेस—संज्ञा पुं० [अं०] १. एकार का लोहे का चौकठा, जिसके बीच में कंपोज किए हुए टाइप रखकर प्रेस पर छापने के लिये कसे जाते हैं। जब टाइप इसमें रखकर कस दिए जाते हैं, तब फिर वे कहीं इधर उधर खिसक नहीं सकते। २. शतरंज का खेल।

यौ०—चेस बोर्ड=शतरंज की बिसात।

चेस्टर—संज्ञा स्त्री० [अं०] बड़ा और लंबा कोट। उ०—चेस्टर में सर्दी से सिकुड़ता हुआ।—भस्मावृत०, पृ० १७।

चेहरई[१]—वि० [हिं० चेहरा] हलका गुलाबी (रंग)।

चेहरई[२]—संज्ञा स्त्री० १. चित्रकला में मूर्ति की बनावट। २. चेहरे में रंग भरना। ३. वह छड़ी जिसपर चेहरा बना हो।

चेहरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चेह्‌रह्] १ शरीर का वह ऊपरी गोल और अगला भाग जिसमें मुँह, आँख, माथा, नाक आदि सम्मिलित है। मुखड़ा। वदन।

यौ०—*चेहरा मोहरा*=सूरत शकल। आकृति। **चेहराशाही**= वह रुपया जिसपर किसी बादशाह का चेहरा बना हो। **चेहराकुशा**=चित्रकार। **चेहरानवीश**=हुलिया लिखनेवाला। **चेहराबंदी**=हुलिया।

मुहा०—*चेहरा उतरना*—लज्जा, शोक, चिंता या रोग आदि के कारण चेहरे का तेज जाता रहना। **चेहरा जर्द होना**= चेहरा सूखना। चेहरे का रंग उतर जाना। उ०—क्या बताऊँ हाथों के तोते उड़ गए। अरे अब क्या होगा सिपहआरा का चेहरा जर्द हो गया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६१। **चेहरा तमतमाना**=गरमी या क्रोध आदि के कारण चेहरे का लाल हो जाना। **चेहरा बिगड़ना**=(१) मार खाने के कारण चेहरे की रंगत फीकी पड़ जाना। (२) निस्तेज या विवर्ण हो जाना। **चेहरा बिगाड़ना**= इतना मारना कि सूरत न पहचानी जाय। बहुत मारना। **चेहरा भाँपना**=किसी के मन की बात चेहरे से जान लेना। **चेहरा होना**=फौज में नाम लिखा जाना। **चेहरे पर हवाइयाँ उड़ना**=घबराहट से चेहरे का रंग उतर जाना। २. किसी चीज का अगला भाग। सामने का रुख। आगा। ३. कागज, मिट्टी या धातु आदि का बना हुआ किसी देवता, दानव या पशु आदि की आकृति का वह साँचा जो लीला या स्वाँग आदि में स्वरूप बनने के लिये चेहरे के ऊपर पहना या बाँधा जाता है। प्रायः बालक भी मनोविनोद और खेल के लिये ऐसा चेहरा लगाया करते हैं।

क्रि० प्र०—उतारना।—बाँधना।—लगाना।

मुहा०—*चेहरा उठाना*=नियमपूर्वक पूजन आदि के उपरांत किसी देवी या देवता का चेहरा लगाना।

विशेष—हिंदुओं का नियम है कि जिस दिन नृसिंह, हनुमान या काली आदि देवी देवताओं का चेहरा उठाना (लगाना) होता है, उस दिन वे दिन भर उस देवी या देवता के नाम से व्रत या उपवास करते हैं; और तब संध्या समय विधिपूर्वक उस देवी या देवता का पूजन करने के उपरांत चेहरा उठाते हैं।

चेहल[१]—वि० [फ़ा०] चालीस [को०]।

चेहल[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहल] दे० 'चहल'।

चेहलुम—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] १. वह रसम जो मुसलमानों में मुहर्रम के चालीसवें दिन होती है। २. मृत्यु का चालीसवाँ दिन (को॰)। ३. उक्त दिन होनेवाला उत्सव।

चेहाना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ चिहाना] दे॰ 'चिहाना'।

चैंवर—संज्ञा पुं॰ [अं॰] दे॰ 'चेंवर'।

चैंसलर—संज्ञा पुं॰ [अं॰ चांसलर] दे॰ चैंसेलर।

चैंसेलर—संज्ञा पुं॰ [अं॰ चांसलर] १. जर्मनी के राष्ट्रपति का अभिधान। २. यूनिवर्सिटी का प्रधान। विश्वविद्यालय का मुख्य अधिकारी। चांसलर।

विशेष—युनिवर्सिटी में चैंसलर का वही काम है, जो प्रायः सभा समितियों में सभापति का हुआ करता है। चैंसलर के साथ एक सहायक या वाइस चैंसेलर भी होता है। चैंसलर के अधिकांश कार्य प्रायः वाइस चैंसेलर को ही करने पड़ते हैं।

चैंटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चेंटी या चींटी] दे॰ 'चिउँटी'।

चैं—संज्ञा पुं॰ [सं॰ चय] समूह। ढेर। उ॰—उठयो वट चौंकि चहुँ ओर चितवन लग्यो चित्त चिंता जगी चैन चै चोरिगो।—रघुराज (शब्द॰)।

चैक—पुं॰ [अं॰ चेक] दे॰ 'चेक'।

चैकित—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

चैकितान—वि॰ [सं॰] जो चेकितान के वंश में उत्पन्न हुआ हो।

चैकित्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जो चैकित ऋषि के गोत्र का हो।

चैत—संज्ञा पुं॰ [सं॰ चैत्र] १. वह चांद्र मास जिसकी पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र पड़े। फागुन के बाद और वैसाख से पहले का महीना। †२. चैती फसल। रबी की फसल।

चैतन्य[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. चित्स्वरूप आत्मा। चेतन आत्मा। २. ज्ञान।

विशेष—न्याय में ज्ञान और चैतन्य को एक ही माना है। और इसे आत्मा का धर्म कहलाया है। पर सांख्य के मत से ज्ञान से चैतन्य भिन्न है। यद्यपि इसमें रूप, रस, गंध आदि विशेष गुण नहीं हैं, तथापि संयोग, विभाग और परिमाण आदि गुणों के कारण सांख्य में इसे अलग द्रव्य माना है और ज्ञान को बुद्धि का धर्म बतलाया है।

३. परमेश्वर। ४. प्रकृति। ५. एक प्रसिद्ध बंगाली वैष्णव धर्मप्रचारक जिनका पूरा नाम श्रीकृष्ण चैतन्यचंद्र था।

विशेष—इनका जन्म नवद्वीप में १४०७ शकाब्द के फागुन की पूर्णिमा को रात में चंद्रग्रहण के समय हुआ था। इनकी माता का नाम शची और पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र था। कहते हैं बाल्यावस्था में ही इन्होंने अनेक प्रकार की विलक्षण लीलाएँ दिखलानी आरंभ कर दी थीं। पहले इनका विवाह हुआ था, पर पीछे ये संन्यासी हो गए थे। ये सदा भगवद्भजन में मग्न रहते थे। पहले इनके शिष्यों और तदुपरांत अनुयायियों की भी संख्या बहुत बढ़ गई थी। अब भी बंगाल में इनके चलाए हुए संप्रदाय के बहुत से लोग हैं जो इन्हें श्रीकृष्णचंद्र का पूर्ण अवतार मानते हैं। ४८ वर्ष की अवस्था में इनका शरीरांत हो गया था। इनके चैतन्य महाप्रभु और निमाई आदि और भी कई नाम हैं।

यौ॰—चैतन्यचरितामृत=कृष्णदास कविराज लिखित चैतन्यदेव का जीवनचरित। चैतन्यवाहिनी नाडी=इंद्रियज ज्ञान को मस्तिष्क तक पहुँचानेवाली नाड़ी। चैतन्य संप्रदाय=चैतन्यदेव द्वारा प्रवर्तित मत।

चैतन्य[2]—वि॰ १. चेतनायुक्त। सचेत। २. होशियार। सावधान।

चैतन्यघन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] चैतन्य रूप परमात्मा। उ॰—सर्वदिस सब काल, पूरि रह्यो चैतन्यघन। सदा एकरस चाल, वंदन वा परब्रह्म कौ।—ब्रज॰ ग्रं॰, पृ॰ १०६।

चैतन्यता—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'चेतनता'।

चैतन्यभैरवी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] तांत्रिकों की एक भैरवी का नाम।

चैतन्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] अनाहत चक्र की चौथी मात्रा।

चैतसिक—वि॰ [सं॰] चित्त या चेतन संबंधी। उ॰—अमुक अमुक प्रकार के सत्वों को जो कायिक और चैतसिक धर्म सामान्य है उनको आगम 'समागत' संज्ञा से प्रज्ञप्त करता है।—संपूर्णा॰ अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ३३४।

चैता[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ चित्रित] एक पक्षी जिसका सिर काला छाती चितकबरी और पीठ काली होती है।

चैता[2]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चैत+आ (प्रत्य॰)] दे॰ 'चैती'।

चैतस्वरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चैत+स्वर] चैत में गाया जानेवाला गीत। चैतागीत (बहार)।

चैती[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चैत+ई (प्रत्य॰)] १. वह फसल जो चैत में काटी जाय। रब्बी।

क्रि॰ प्र॰—कटना।—बोना।—होना।

२. जमुआ नील जो चैत में बोया जाता है। ३. एक प्रकार का चलता गाना जो चैत में गाया जाता है।

चैती[2]—वि॰ चैत संबंधी। चैत का। जैसे,—चैती गुलाब।

चैती गौरी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चैती+गौरी] चैत में संध्या समय गाई जानेवाली एक रागिनी। वि॰ 'चैत्रगौड़ी'।

चैतुआ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चैत+उआ (प्रत्य॰)] रब्बी की फसल काटनेवाला।

चैत्त[1]—वि॰ [सं॰] चित्त संबंधी। चित्त का।

चैत्त[2]—संज्ञा पुं॰ बौद्धों के मत से विज्ञान स्कंध के अतिरिक्त शेष सब स्कंध।

विशेष—बौद्ध लोग रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार ये पाँच स्कंध मानते हैं। वि॰ दे॰ 'स्कंध' और 'संज्ञा'।

चैत्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान। घर। २. मंदिर। देवाल। ३. वह स्थान जहाँ यज्ञ हो। यज्ञशाला। ४. वृक्षों का वह समूह जो गाँव की सीमा पर रहता है। ५ बुद्ध ६. बुद्धि की मूर्ति। ७. अश्वत्थ का पेड़। ८. वेल का पेड़। ९. बौद्ध संन्यासी या भिक्षु। १०. बौद्ध संन्यासियों के रहने का मठ। विहार। ११. वह मंदिर जो आदिबुद्ध के उद्देश्य से बना हो। १२. चिता। १३. वल्मीक। बमौट (को०)। १४. भूमिभाग का सूचक पत्थर का ढेर (को०)। १५. समाधिमंदिर (को०)। १६. चिंतन। विचार (को०)। १७. राजमार्गस्थित कोई वृक्ष (को०)।

यौ०—चैत्यतरु। चैत्यद्रुम। चैत्यवृक्ष। चैत्यपाल।

चैत्य²—वि० चिता संबंधी। चिता का।

चैत्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वत्थ। पीपल। २. चैत्य का प्रधान अधिकारी। ३. वर्तमान राजगृह के पास के एक प्राचीन पर्वत का नाम।

विशेष—इस पर्वत पर एक चरणचिह्न है जिनके दर्शनों के लिये प्रायः जैनी वहाँ जाते हैं।

चैत्यतरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वत्थ। पीपल। २. गाँव का कोई प्रसिद्ध वृक्ष।

चैत्यद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वत्थ। पीपल। २. अशोक का पेड़।

चैत्यपाल—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्य का रक्षक। चैत्यक। प्रधान अधिकारी।

चैत्यमुख—संज्ञा पुं० [सं०] कमंडलु।

चैत्ययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसका वर्णन आश्वलायन गृह्यसूत्र में आया है।

विशेष—प्राचीन काल में इस यज्ञ का संकल्प किसी चीज के खो जाने पर और अनुष्ठान उस चीज के मिल जाने पर होता था।

चैत्यवंदन—संज्ञा पुं० [सं० चैत्यवन्दन] १. जैनियों या बौद्धों की मूर्ति। २. जैनियों या बौद्धों का मंदिर। ३. चैत्य या देवालय संबंधी धन की रक्षा।

चैत्यविहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बौद्धों का मठ। २. जैनियों का मठ।

चैत्यवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] 'चैत्यतरु'।

चैत्यस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ बुद्धदेव की मूर्ति स्थापित हो। २. कोई पवित्र स्थान।

चैत्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मास जिसकी पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र पड़े। संवत् का प्रथम मास। चैत। २. सात वर्षपर्वतों में से एक। ३. बौद्ध भिक्षुक। ४. यज्ञभूति। ५. देवालय। मंदिर। ६. चैत्य। ७. पुराणानुसार चित्रा नक्षत्र के गर्भ से उत्पन्न बुध ग्रह का एक पुत्र जो पुराणोक्त सातों द्वीपों का स्वामी माना जाता है।

चैत्र²—वि० चित्रा नक्षत्र संबंधी। चित्रा नक्षत्र का।

चैत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्रमास। चैत्र।

चैत्रगौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ओड़व जाति की एक रागिनी जो संध्या समय अथवा रात के पहले पहर में गाई जाती है।

विशेष—कोई कोई आचार्य इसे श्रीराग की पुत्रवधू मानते हैं।

चैत्रमख—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्र मास के उत्सव जो प्रायः मदन संबंधी होते हैं।

चैत्ररथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर के बाग का नाम जो चित्ररथ का बनाया हुआ और इलावर्त खंड के पूरब में अवस्थित माना जाता है। २. एक प्राचीन मुनि का नाम जिनका जिक्र महाभारत में आया है।

चैत्ररथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का बाग। चैत्ररथ।

चैत्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका नाम हरिवंश में आया है।

चैत्रसखा—संज्ञा पुं० [सं० चैत्रसख] कामदेव। मदन।

चैत्रावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चैत्रशुक्ला त्रयोदशी। २. चैत्र की पूर्णिमा।

पर्या०—मधूत्सव। सुवसत। काममह। वासंती। फर्दमी।

चैत्रि—संज्ञा पुं० [सं०] चैतमास। चैत (को०)।

चैत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चैत्रि' (को०)।

चैत्री¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा। चैत की पूर्णिमा।

चैत्री²—संज्ञा पुं० [सं० चैत्रिन्] चैतमास (को०)।

चैदिक—वि० [सं०] चेदि देश संबंधी। चेदि देश का।

चैद्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुपाल।

चैद्य²—वि० चेदि संबंधी। चेदि का (को०)।

चैन¹—संज्ञा पुं० [सं० शयन] १. आराम। सुख। आनंद।

क्रि० प्र०—आना।—करना। देना।—पड़ना।—मिलना। होना।

मुहा०—चैन उड़ाना=चैन करना। आनंद करना। चैन पड़ना=शांति मिलना। सुख मिलना। चैन से कटना=सुखपूर्वक समय बीतना। चैन की बाँसुरी बजाना=आनंद का भोग करना।

२. शांति। मानसिक शांति।

चैन²—संज्ञा पुं० [सं० चैलक ?] एक नीच जाति।

चैपला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। उ०—कहत पीपलो पीपली, नित्तहि चैपला आइ। मीत खूब यह अरथ को समझ लेहु चित लाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

चैयाँ ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [?] बाँह। उ०—चैयाँ चैयाँ गहो चैयाँ बैयाँ बैयाँ ऐसे बोल्यो।—सूर (शब्द०)।

चैराही†—वि० [हिं०] दे० 'चेहरई' (रंग)।

चैल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपड़ा। वस्त्र। २. पहनने के योग्य बना हुआ कपड़ा। पोशाक।

यौ०—चैलधावक=धोबी।

चैलक—संज्ञा पुं० [सं०] शूद्र पिता और क्षत्रिया माता से उत्पन्न एक प्राचीन वर्णसंकर जाति।

चैला—संज्ञा पुं० [हिं० चीरना, छीलना] [स्त्री० अल्पा० चैली] कुल्हाड़ी से चीरी हुई लकड़ी का टुकड़ा जो जलाने के काम में आता है। फट्टा।

चैलाशक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो कपड़े में लगनेवाले कीड़ों को खाता है।

चैलिक—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े का टुकड़ा।

चैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चैला] १. लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो छीलने या काटने से निकलता है। २. जमे हुए खून का टुकड़ा या लच्छा जो गरमी के कारण नाक से निकलता है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

चैलेंज—संज्ञा पुं० [श्रं०] किसी प्रकार लड़ने, झगड़ने अथवा मुकाबला या वादविवाद आदि करने के लिये दी हुई ललकार। चिनौती। चुनौती।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मिलना।

चों†—अव्य० [फा० चूँ] क्यों। उ०—'चना के लड्डुआ चों लायौ, मेरे पीहर में जलेबी रसदार'।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० ८७६।

चोंकⓊ संज्ञा स्त्री० [?] वह चिह्न जो चुंबन में दाँत लग जाने के कारण गाल पर पड़ जाता है। उ० चहचही चुभके चुभी हैं चोंक चुंबन की लहलही लाँबी लटें लटकी सुलक पर। -पद्माकर (शब्द०)

चोंकना†—क्रि० स० [हिं० चोंका से नामिक धातु] १. स्तन मुँह से लगाकर दूध पीना। २. पानी पीना।

चोंकर† संज्ञा पुं० [हिं० चोकर] दे० 'चोकर'।

चोंका संज्ञा पुं० [सं० चूषण या देश०] १. चूसने की क्रिया या भाव। २. गाय या भैंस के स्तन को दबाकर उससे दूध की धारा फोड़कर मुँह में डालना।

मुहा०—चोंका पीना (१) बच्चों का माँ के स्तन में मुँह लगाकर दूध पीना। ( ) गाय या भैंस के स्तन से धार फोड़कर मुँह मे डालना।

चोंकूटा†Ⓤ—वि० [हिं० चौखूँटा] चौखूँटा। चतुष्कोण। उ०—किए रुपइया एकठे चोंकूटे अरु गोल। रीते हाथिन वै गए सु हरि बोलौ हरि बोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० ३१५।

चोंखⓊ— वि० [हिं० चोखा]दे० 'चोखा'। उ० अब तो पियहु चोंख मद मेरा। होड की पूजै कारज तोरा।—इंद्रा०, पृ० ७६।

चोंखना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'चोखना'।

चोंगा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चुंगी] बाँस की वह खोखली नली या पोर जिसका एक सिरा गाँठ के कारण बंद हो और दूसरा सिरा खुला हो। सोनार आदि इसमें प्रायः अपने औजार रखते हैं। २. इस आकार की कागज आदि की बनी हुई नली जो कोई चीज रखने के लिये बनाई जाय।

चोंगा†²—वि० [हिं०] अनाड़ी। मूर्ख। बेवकूफ।

चोंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोंगा का स्त्री० अल्पा०] भाथी में की वह नली जिसके द्वारा होकर हवा निकलती है।

चोंघनाⓊ—क्रि० स० [हिं० चुगना] दे० 'चुगाना'। उ०—कबिरा टुक टुक चोंघता, पल पल गई बिहाय। जीव जँजालों परि रहा, दिया दमामा आय।—कबीर (शब्द०)।

चोंधा†—वि० [हिं०] बेवकूफ। मूर्ख। नासमझ।

चोंच—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चु] १. पक्षियों के मुँह का अगला भाग जो हड्डी का होता है और जिसके द्वारा वे कोई चीज उठाते, तोड़ते और खाते हैं। पक्षियों के लिये यह सम्मिलित हाथ, होंठ और दाँत का काम देती है। ठोंट। तुंड। २. मुँह। (हास्य या व्यंग्य में)। जैसे,—बहुत हुआ, अब अपनी चोंच बंद करो।

मुहा०—चोंच खोलना=बात कहना। उ०—जब ब नरूर दो देखें तो क्या कहती हो। जरा चोंच तो खोलो।—फिसाना० भाग ३, पृ० ५८६। दो दो चोंचें होना=कहा सुनी होना। कुछ लड़ाई झगड़ा होना। चोंच बंद करना या कराना=भय से चुप रहना या भय दिखाकर चुप करना।

चोंचला† संज्ञा पुं० [हिं० चोचला] दे० 'चोचला'।

चोंचाल—वि० [हिं० चंचल या चोचला] चंचल। चपल। नटखट उ०—रामू कितना चोंचाल था —गोदान, पृ० २६६।

चोंटनाⓊ—क्रि० स० [हिं० चिकोटी या अनु०] नोचना। तोड़ना। उ०—बढ़त निकसि कुच कोर रुचि, कढ़त गौर भुजमूल। मनु लुटि गौ लोटनु चढ़त चोंटत ऊँचे फूल।—बिहारी र०, दो० ६६८।

चोंटली—संज्ञा स्त्री० [?] सफेद घुँघची।

चोंड़ा†¹—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ा] १. स्त्रियों के सिर के बाल। जूड़ा। झोंटा।

मुहा०—चोंड़े पर (कोई काम करना)=सिर पर चढ़कर या सामने होकर (कोई काम करना)।

२. सिर। माथा। मस्तक।

चोंड़ा²—संज्ञा पुं० [सं० चुण्डा (=छोटा कुआँ)] वह छोटा कच्चा कुआँ जो खेत के आसपास सिंचाई के लिये खोद लिया जाता है।

चोंतरा†—संज्ञा पुं० [हिं० चौतरा] दे० 'चबूतरा'। उ०—अपने चोंतरा पर बैठे हतो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३००।

चोंथ¹—संज्ञा पुं० [अनु०] गाय भैंस आदि के उतने गोबर का ढेर जितना हगते समय एक बार गिरे।

मुहा०—चोंथ लगाना=हगकर गुह का ढेर लगाना।

चोंथ²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोंथना] चोंथने की क्रिया या भाव।

चोंथना†—क्रि० स० [अनु०] १ किसी चीज में से उसका कुछ अंश बुरी तरह फाड़ना या नोचना। चीथना। २. हाथापाई में बुरी तरह घायल करना। नोचना बकोटना। ३. किसी का धन जबरदस्ती ले लेना।

चोंधना†—क्रि० स० [हिं० चोथना] दे० 'चोंथना'।

चोंधर—वि० [हिं० चौंधियाना] १. जिसकी आँखें बहुत छोटी हों। २. मूर्ख। गावदी।

चोंधरा†—वि० [हिं० चोंधर] दे० 'चोंधर'।

चोंप¹†—संज्ञा पुं० [हिं० चोप] दे० 'चोप'।

चोंप²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोब] दे० 'चोब'।

चोंहका†—संज्ञा पुं० [हिं० चोंका] दे० 'चोंका'।

चोत्रा—संज्ञा पुं० [हिं० चूत्राना (=टपकाना)] १. एक प्रकार का सुगंधित द्रव पदार्थ जो कई गंधद्रव्यों को एक साथ मिलाकर गरमी की सहायता से उनका रस टपकाने से तैयार होता है।
विशेष—इसके तैयार करने की कई रीतियाँ हैं—(क) चंदन का बुरादा, देवदार का बुरादा और मरसे के फूलों को एक में मिलाते और गरम करके उनमें से रस टपकाते हैं। (ख) केसर, कस्तूरी आदि को मरसे के फूलों के रस में मिलाते और गरम करके उसमें से रस टपकाते हैं। (ग) देवदार के निर्यास को गरम करके टपकाते हैं।
२. वह कंकड़, पत्थर या इसी प्रकार की और कोई चीज जो किसी बाट की कमी को पूरा करने के लिये पलड़े पर रखी जाती है। पसँगा। ३. खेलमें लगे हुए दो समूहों में से किसी समूह का वह आदमी किसी खिलाड़ी के थक जाने पर या चोट खाने पर उसके स्थान पर खेलता है।
मुहा०—चोत्रा लगना=किसी की ओर से कोई काम करना।
४. वह थोड़ी चीज जो किसी प्रकार की कमी पूरी करने के लिये उसी जाति की अधिक चीज के साथ रखी जाती है। ५. वह दाँव जो मुख्य जुआरी के साथ दूसरे जुआरी छोटी रकम के रूप में लगाते हैं। ६. दे० 'चोटा' या 'छोत्रा'।

चोईं[1]†—संज्ञा स्त्री० [? या हिं०] कुछ मछलियों के शरीर पर होनेवाला गोलाकार छिलका।

चोई—संज्ञा स्त्री० [?] दाल का वह छिलका जो उसको भिगो और मलकर अलग किया जाता है और जो दाल चुरते समय आपसे आप दाने से अलग होकर ऊपर उतरा जाता है। कराई। २. मछली के ऊपर का चमकदार छिलका।

चोक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भड़भाँड़ या सत्यानासी नामक क्षुप की जड़ जिसका व्यवहार औषधि में होता है।

चोक[2]—संज्ञा पुं० [चोत्रा] चोत्रा नाम का गंधद्रव्य। उ०—केसर अगर कपूर, चोक (व) वेदोकत चन्नण।—रा० रू०, पृ० ३५९।

चोकर—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० चून (=आटा)+कराई (=छिलका)] आटे का वह अंश जो छानने के बाद छलनी में बच जाता है। यह प्रायः पीसे हुए अन्न (गेहूँ, जौ आदि) की भूसी या छिलका होता है।

चोकस—वि० [गुज० चोकस, हिं० चौकस] दे० 'चौकस'। उ०—एक भाइ चोकस हतो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २०९।

चोका[1]†—संज्ञा पुं० [सं० चूषण] चूसने की क्रिया। चूसना।
मुहा०—चोका लगाना=मुँह लगाकर चूसना। उ०—ते छकि रस नव केलि करेहीं। चोका लाइ अधर रस लेंहीं।—जायसी ग्रं०, पृ० १४०।

चोका‡[2]—वि [हिं० चोखा] दे० 'चोखा'।

चोकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकी] दे० 'चौकी'।

चोक्ष—वि० [सं०] १. शुद्ध। पवित्र। २. दक्ष। होशियार। ३. तीक्ष्ण। तेज। ४. जिसकी प्रशंसा की गई हो।

चोख[1]Ⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखा] तेजी। फुरती। वेग। उ०—एक जे सयाने भर माठी जल आने लै चढ़ाए धाम धाम फेंट बाँधि ठाढ़े चोख सों।—हनुमान (शब्द०)।

चोख[2]—वि० [सं० चोक्ष] दे० 'चोखा'।

चोख†[3]—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु, हिं० चख] आँख (बँग०)।

चोखना[1]‡क्रि० स० [सं० चूषण हिं० चूसना] चूसना या चूसकर पीना।

चोखना[2]—क्रि० अ० १. स्तनपान किया जाना (बच्चों द्वारा)। २. दुहा जाना (गाय आदि का)। ३. धार तेज किया जाना।

चोखना[3]‡—संज्ञा पुं० [सं० चिचिक्कर] चूहा। मूसा।

चोखनिⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखना] चोखने की क्रिया या भाव। चूषण।

चोखा[1]—वि० [सं० चोक्ष] १. जिसमें किसी प्रकार का मैल, खोट या मिलावट आदि न हो। जो शुद्ध और उत्तम हो। जैसे,—चोखा घी, चोखा माल। २. जो सच्चा और ईमानदार हो। खरा। जैसे,—चोखा असामी। ३ जिसकी धार तेज हो। धारदार। ४. सबमें चतुर या श्रेष्ठ। जैसे, तुम्हीं चोखे निकले जो अपना सब काम करके छुट्टी पा गए।

चोखा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. उबाले या भूने हुए बैंगन, आलू या अरुई आदि को नमक मिर्च आदि के साथ मलकर (और कभी कभी घी या तेल में छौंककर) तैयार किया हुआ सालन। भरता। भुरता। २. चावल।—(डिं०)।

चोखी—वि० स्त्री० [हिं० चोखा] दे० 'चोखा'[1]।
मुहा०—चोखी चुटकियाँ लेना=खिल्ली उड़ाना। उ०- उनकी चूक पर चोखी चुटकियाँ ले उनकी अतरात्मा दुखाई जाय।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४६७। चोखी छुरी चलाना=चुभती बात कहना। उ०—उन्हीं पर अपनी जीभ की चोखी छुरी चलाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०६।

चोखाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखा+ई (प्रत्य०)] 'चोखा' का भाव। चोखापन।

चोखाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखना] 'चोखना' का भाव या काम। चूसने की क्रिया या भाव। चुसाई।

चोखाना[1]—क्रि० स० [हिं० चोखना] १. स्तनपान करना (बच्चों द्वारा)। २. (गाय आदि का) दूध दुहना। ३. धार चोखी करना।

चोखाना[2]‡—क्रि० अ० [हिं० चोख से नामिक धातु] उग्र होना। प्रचंड होना। जैसे,- किसके बूते पर इतना चोखाते हो?

चोगड़दⓊ‡—क्रि० वि० [हिं० चौगिद] दे० 'चौगिर्द'। उ०—पाँच सात छोरा चोगड़दे बैंडो कहि कहि बोलैं।—राम० धर्म०, पृ० ४५।

चोगद—संज्ञा पुं० [हिं० चुगद] दे० 'चुगद'।

चोगर—संज्ञा पुं० [फ़ा० चुगद] वह घोड़ा जिसकी आँखें उल्लू की सी हों।
विशेष—ऐसा घोड़ा ऐबी समझा जाता है।

चोगा¹—संज्ञा पुं० [तु० चोगा] पैरों तक लटकता हुआ बहुत ढीला ढाला एक प्रकार का पहनावा जिसका आगा बंद नहीं होता और जिसे प्रायः बड़े आदमी पहनते हैं। लबादा।

चोगा²—संज्ञा पुं० [हिं० चुगा] दे० 'चुगा'।

चोगान—संज्ञा पुं० [हिं० चौगान] दे० 'चौगान'।

चोच—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाल। वल्कल। २. चमड़ा। खाल। ३. तेजपत्ता। ४. दालचीनी। ५. नारियल। ६. केला। ७. फल का वह अंश जो खाद्य न हो (को०)। ८. तालफल। ताड़ का फल (को०)।

चोचक—संज्ञा पुं० [सं०] वल्कल। छाल (को०)।

चोचलहाई†—वि० स्त्री० [हिं० चोचला+हाई (प्रत्य०)] चोचला करनेवाली। नखरेबाज।

चोचला—संज्ञा पुं० [अनु०] १. अंगों की वह गति या चेष्टा जो प्रिय के मनोरंजनार्थ या किसी को मोहित करने के लिये अथवा हृदय की किसी प्रकार की, विशेषतः जवानी की, उमंग में की जाती है। हाव भाव। २. नखरा। नाज।

यौ०—चोचलेबाज=नखरेबाज। चोचलेबाजी=नखरा या नखरेबाजी।

मुहा०—चोंचला दिखाना या बघारना=प्रसन्न करने के लिये हाव भाव दिखाना।

चोज—संज्ञा पुं० [सं० √चुद्] १. वह चमत्कारपूर्ण उक्ति जिससे लोगों का मनोविनोद हो। दूसरों को हँसानेवाली युक्तिपूर्ण बात। सुभाषित। २. हँसी ठट्ठा, विशेषतः व्यंग्यपूर्ण उपहास। उ०—किहि के बल उत्तर दीजै उन्हें सो सुनै वनै चोज चवाइन को।—प्रताप (शब्द०)।

चोज्य Ⓟ—वि० [देश०] स्वादु। स्वादयुक्त। उ०—भक्ष्य भोज्य अरु लेज्य चोज्य अो चोस्य पेय ले अमित भरें। ब्रज० ग्रं०, पृ० १६८।

चोट—संज्ञा स्त्री० [सं० चुट (=काटना)] १. एक वस्तु पर किसी दूसरी वस्तु का वेग के साथ पतन या टक्कर। आघात। प्रहार। मार। जैसे,—लाठी की चोट, हथौड़े की चोट। उ०—पत्थर की चोट से यह शीशा फूटा है।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।—पहुँचाना।—मारना।—लगना।—लगाना।—सहना।

मुहा०—चोट खाना=आघात ऊपर लेना। प्रहार सहना।

२. आघात या प्रहार का प्रभाव। घाव। जख्म। जैसे,—(क) चोट पर पट्टी बाँध दो। (ख) उसे सिर में बड़ी चोट आई।

यौ०—चोट चपेट=घाव। जख्म।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—लगना।

मुहा०—चोट उभरना=चोट में फिर से पीड़ा होना। चोट खाए हुए स्थान का फिर से दर्द करना।

३. किसी को मारने के लिये हथियार आदि चलाने की क्रिया। वार। आक्रमण।

क्रि० प्र०—करना।—सहना।

मुहा०—चोट खाली जाना=वार का निशाने पर न बैठना। आक्रमण व्यर्थ होना। चोट बचाना=चोट न लगने देना।

४. किसी हिंसक पशु का आक्रमण। किसी जानवर का काटने या खाने के लिये झपटना। जैसे,—यह जानवर आदमियों पर बहुत कम चोट करता है।

क्रि० प्र०—करना।

५. हृदय पर का आघात। मानसिक व्यथा। मर्मभेदी दुःख। शोक। संताप। जैसे,—इस दुर्घटना से उन्हें बड़ी चोट पहुँची। ६. किसी के अनिष्ट के लिये चली हुई चाल। एक दूसरे को परास्त करने की युक्ति। एक दूसरे की हानि के लिये दाँव पेंच। चकाचकी। जैसे,—आजकल दोनों में खूब चोटें चल रही हैं।

क्रि० प्र०—चलना।

७. व्यंग्यपूर्ण विवाद। आवाजा। बौछार। ताना। जैसे,—इन दोनों कवियों में खूब चोटें चलती हैं। ८. विश्वासघात। धोखा। दगा। जैसे,—यह आदमी ठीक वक्त पर चोट कर जाता है। ९. बार। दफा। मरतबा। उ०—(क) आओ एक चोट हमारी तुम्हारी हो जाय। (ख) कल यह बुलबुल कई चोट लड़ा।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जिसमें विरोध की भावना होती है।

चोटइल†—वि० [हिं० चोट+इल (प्रत्य०)] दे० 'चुटैल'।

चोटड़ियाल Ⓟ†—वि० [हिं० चोटड़ी+याल (प्रत्य०)] चोटीवाला। उ०—बहलायण आतुर मेघ वले। जिम चोटड़ियाल समुद्र चले।—रा० रू०, पृ० १०४।

चोटड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोटी] चुटिया। शिखा।

चोटना—क्रि० स० [हिं० चोटना] दे० 'चकोटना'। उ०—चोटले के समान पीड़ा होय, यह मांस मेदोगत वायु का लक्षण है।—माधव०, पृ० १३५।

चोटहा—वि० [हिं० चोट+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोटही] जिसपर आघात का चिह्न हो। जिसपर चोट या निशान हो।

चोटहिल†—वि० [हिं० चोट+हिल (प्रत्य०)] दे० 'चोटइल'।

चोटा—संज्ञा पुं० [हिं० चोआ] राब का वह पसेव जो उसे कपड़े में रखकर दबाने या छानने से निकलता है। इसका व्यवहार प्रायः तंबाकू या देशी शराब या स्पिरिट आदि बनाने में होता। लपटा। चोआ। माठ। छोआ। जूसी।

चोटाना¹†—क्रि० अ० [हिं० चोट से नामिक धातु] चोट खाना।

थोड़ा थोड़ा कुचलना। कुचकुचाना (कच्चा श्राम आँवला आदि)।

चोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लहँगा (को०)।

चोटियाल‡—वि० [चोट+इयल (प्रत्य०)] चोट करनेवाला। चुटैल।

चोटिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोटी+इया (प्रत्य०)] दे० 'चोटी'।

चोटिया‡²—संज्ञा पुं० चोटीधारी। चोटीवाला। छात्र।

चोटियाना¹†—क्रि० स० [हिं० चोट से नामिक धातु] चोट लगाना वा मारना।

चोटियाना²—क्रि० स० [हिं० चोटी] १. चोटी पकड़ना। २. बल-प्रयोग करना।

चोटियाल(पु)‡—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गीत।

विशेष—गरवत गीत के दो दो पदों के बाद दस मात्राएँ रखकर तुकांत करने से चोटियाल गीत बनता है। जैसे,—गरवत कीजै गीत, पद दुय, दुय रे ऊपरें। मोहरा दसकल गीत, चोटियाल तिरणूँ चवँ।—रघु० रू०, पृ० १३०।

चोटियाल²‡—वि० [हिं० चोटी] [वि० स्त्री० चोटियाली] लंबे केशोंवाला।

चोटियाल³‡—संज्ञा पुं० भूत। प्रेत। पिशाचादि।

चोटी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चूडा] १. सिर के मध्य में के थोड़े से और कुछ बड़े बाल जो प्रायः हिंदू नहीं मुड़ाते या काटते। शिखा। चुंदी।

मुहा०—चोटी कटाना=(१) साधु या संन्यासी होना। (२) वस में होना (ला०)। चोटी कतरना=वस में करना। चोटी दबाना=दे० 'चोटी हाथ में होना'। चोटी रखना=चोटी के लिये सिर के बीच के बाल बढ़ाना। (किसी की) चोटी (किसी के) हाथ में होना=किसी प्रकार के दबाव में होना। काबू में होना। जैसे, अब वे कहाँ जायँगे उनकी चोटी तो हमारे हाथ में है।

यौ०—चोटीवाला।

२. एक में गुँथे हुए स्त्रियों के सिर के बाल।

मुहा०—चोटी करना=सिर के बालों को एक में मिलाकर गूँथना। वि० दे० 'कंघी चोटी करना'।

क्रि० प्र०—गूँधना।—बाँधना।

३. सूत या ऊन आदि का वह डोरा जिसका व्यवहार स्त्रियों को चोटी गूँधने और अंत में बालों को बाँधने में होता है। ४. पान के आकार का एक प्रकार का आभूषण जिसे स्त्रियाँ अपने जूड़े में खोंसती या बाँधती हैं। ५. पक्षियों के सिर के वे पर जो आगे की ओर ऊपर उठे रहते हैं। कलगी। ६. सबसे ऊपर का उठा हुआ भाग। शिखर। जैसे,—पहाड़ की चोटी। मकान की चोटी।

मुहा०—चोटी का=सबसे बढ़िया। अच्छा। सर्वोत्तम।

७ चरम सीमा। जैसे,—आजकल दाल का भाव चोटी पर है।

चोटी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] लहँगा। साया। पेटीकोट (को०)।

चोटीदार—वि० [हिं० चोटी+फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसके चोटी हो। चोटीवाला।

चोटीपोटी†—वि० स्त्री० [देश०] १. चिकनी चुपड़ी (बात)। खुशामद से भरी हुई (बात)। २. झूठी या बनावटी (बात)। इधर उधर की (बात)। उ०—तुम जानति राधा है छोटी। चतुराई अँग अँग भरी है पूरन ज्ञान न बुद्धि की मोटी। हम सों सदा दुरावति सो यह बात कहत मुख चोटी पोटी।—सूर (शब्द०)।

चोटीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० चोटी+वाला] भूत, प्रेत या पिशाच।

चोट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+टा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोट्टी] वह जो चोरी करता हो। चोर।

यौ०—चोट्टी का या चोट्टी वाला=एक प्रकार की गाली।

चोड़—संज्ञा पुं० [सं० चोड] १. उत्तरीय वस्त्र। २. चोल नामक प्राचीन देश। ३. कुरती। अँगिया। चोली (को०)।

चोड़क—संज्ञा पुं० [सं० चोडक] एक प्रकार का पहनने का कपड़ा।

चोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चोडा] बड़ी गोरखमुंडी।

चोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चोडी] १. स्त्रियों के पहनने की साड़ी। २. कुरती। चोली (को०)।

चोढ़ा†—संज्ञा पुं० [?] उमंग। उ०—गूँज गरे सिर मोरपखा मतिराम हों गाय चरावत चोढ़े। मतिराम ग्रं०, पृ० ३४८।

चोतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दालचीनी। २ छाल। वल्कल।

चोथ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चोंथ'।

चोथना†—क्रि० स० [हिं० चोंथना] १. नोचना। २. फाड़ना।

चोथाई संज्ञा स्त्री० [हिं० चोंथ+आई (प्रत्य०)] १. चोंथने का काम या स्थिति। २. चोंथने की मजदूरी।

चोद¹ संज्ञा पुं० [सं०] १. चाबुक। २. वह लंबी लकड़ी जिसके सिरे पर कोई तेज और नुकीला लोहा लगा हो।

चोद²—वि० प्रेरक (को०)।

चोदक¹—वि० [सं०] चोदना करनेवाला। प्रेरणा करनेवाला। कोई काम करने के लिये उकसानेवाला।

चोदक²—संज्ञा पुं० कार्य में प्रवृत्त करानेवाला विधि वाक्य (को०)।

यौ०—चोदकवाक्य।

चोदक्कड़¹—संज्ञा पुं० [हिं० चोदना] बहुत अधिक स्त्रीप्रसंग करनेवाला। अत्यंत कामी।—(बाजारू)।

चोदक्कड़²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदना या चुदक्कड़] बहुत चोदवानेवाली स्त्री।

चोदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चोदना'¹।

चोदना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह वाक्य जिसमें कोई काम करने का विधान हो। विधि वाक्य। २. प्रेरणा। ३. योग आदि के संबंध का प्रयत्न।

चोदना—क्रि० स० स्त्रीप्रसंग करना। संभोग करना।

संयो० क्रि—डालना।—देना।

चोदवास†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चोदास'।

चोदवासा‡—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० चोदवासी] दे० 'चोदासा'।

चोदाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना+ई (प्रत्य०)] १. चोदने की क्रिया। संभोग। २. चोदने का भाव।

चोदास संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना+आस (प्रत्य०)] स्त्री को

पुरुषप्रसंग की अथवा पुरुष को स्त्रीप्रसंग की प्रबल कामना। कामेच्छा।

क्रि० प्र०—लगना।

चोदासा वि० पुं० [हिं० चोदास] [वि० स्त्री० चोदासी] जिसे चोदास लगी हो। जिसे संभोग की प्रबल इच्छा हो।

चोदू[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चोदना] दे० 'चोदक्कड़'।

चोदू[2]—वि [हिं० चोदू (=चूतिया)] कायर। डरपोक। उ०—मंगण मिलियाँ रोय दे, चोदू खूँब कहाय।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३८।

चोद्य[1]—वि० [सं०] जो प्रेरणा करने योग्य हो।

चोद्य[2]—संज्ञा पुं० १. प्रश्न। सवाल। २. वादविवाद में पूर्वपक्ष।

चोप(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चाव] १. चाह। इच्छा। ख्वाहिश। २. चाव। शौक। रुचि। उ०—दै उर जेब जवाहिर की पुनि चोप सो चूँदरि लै पहिरावत।—सुंदरी सिंदूर (शब्द०)। ३. उत्साह। उमंग। उ०—(क) अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप। मनहु मत्त गजगन निरखि सिंघ किसोरहि चोप—मानस १।२६७। (ख) चीर के चोंच चकोरन की मनो चोप ते चंग चुवावत चारे।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

४. बढ़ावा। उत्तेजना।

क्रि० प्र०—देना।

चोप[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चूना (=टपकना)] कच्चे आम की ढेपनी का वह रस जो उसमें से सींके तोड़ते समय बहता है।

विशेष—इसका असर तेजाब का सा होता है। शरीर में जहाँ लग जाता है, वहाँ छाला पड़ जाता है।

चोप[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चोब] दे० 'चोब'।

चोपदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० चोबदार] दे० 'चोबदार'।

चोपन[1]—वि० [सं०] हिलने डुलनेवाला [को०]।

चोपन[2]—संज्ञा पुं० मंदगति।

चोपड़[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चुपड़ना] घी तेल इत्यादि स्नेह पदार्थ। जो चुपड़ा जा सके। उ०—कापड़ चोपड़ पान रस, दे सह खाँचे दाम।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६०।

चोपड़[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चौपड़] दे० 'चौपड़'। उ०—सो श्री गोवर्धन नाथजी आप वासों वाते करें, चोपड़ खेलें।—दो सौ बावन०, भा० पृ० ८२।

चोपना(पु)—क्रि० अ० [हिं० चोप] किसी वस्तु पर मोहित हो जाना। मुग्ध हो जाना।

चोपरना(पु)—क्रि० स० [हिं० चुपड़ना] दे० 'चुपड़ना'। उ०—तेल फुलेल कहा चोपरना। समुझि देखि निश्चै करि मरना।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३३४।

चोपी[1](पु)—वि० [हिं० चोप] १. इच्छा रखनेवाला। चाह रखनेवाला। २. जिसके मन में उत्साह हो। उत्साही।

चोपी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोप+ई (प्रत्य०)] कच्चे आम की ढेपी तोड़ देने पर निकलनेवाला रस। चोप।

चोब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. शामियाना खड़ा करने का बड़ा खंभा। २. नगाड़ा या ताशा बजाने की लकड़ी। ३. सोने या चाँदी से मढ़ा हुआ डंडा।

यौ०—चोबदार।

४. छड़ी। सोंटा। डंडा।

चोबकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का जरदोजी का काम।

चोबचीनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक काष्ठौषध।

विशेष—यह चीन और जापान में होनेवाली एक लता की जड़ है जिसके पत्ते अश्वगंधा के पत्रों के समान होते हैं। इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है। यह रक्तशोधक होती है और गरमी तथा गठिया आदि की दवाओं में पड़ती है। वैद्यक में इसे तिक्त, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, मलमूत्र शोधक और शूल, वात, फिरंग, उन्माद तथा अपस्मार आदि रोगों को दूर करनेवाली कहा है।

चोबदस्त, चोबदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लाठी (को०)।

चोबदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह नौकर जिसके पास चोब या असा रहता है। असाबरदार।

विशेष—ऐसे नौकर प्रायः राजों, महाराजों और बहुत से रईसों की ड्योढ़ियों पर समाचार आदि ले जाने और ले आने तथा इसी प्रकार के दूसरे कामों के लिये रहते हैं। सवारी या बारात आदि में ये आगे आगे चलते हैं।

चोबा—संज्ञा पुं० [हिं० चोब] दे० 'चोब'–१।

चोबी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोब] दे० 'चोब। उ०—छिमा भाव सहज की चोबी मोरी ज्ञान की डोरी।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ४२।

चोभ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुभना] १. चुभने की स्थिति या भाव। चुभन। २. चुभनेवाली चीज।

चोभना‡—क्रि० स० [हिं० चोभ] दे० 'चुभाना'।

चोभा[1]‡—संज्ञा पुं० [हिं० चोभना] १. वह पोटली जिसमें कई दवाएँ बँधी होती हैं और जिससे शरीर के किसी पीड़ित अंग विशेषतः आँख को सेंकते हैं। लोथा।

मुहा०—चोभा देना=औषध को पोटली में बाँधकर उससे शरीर के किसी पीड़ित अंग को सेंकना।

२. एक प्रकार का औजार जिसमें लकड़ी के दस्ते या लट्टू में आगे की ओर चार पाँच मोटी सूइयाँ रहती हैं।

विशेष—इस औजार से आँवले या पेठे आदि का मुरब्बा बनाने के पहले उसे इसलिये कोंचते हैं कि उसके अंदर तक रस या शीरा चला जाय।

चोभकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोभना+फ़ा० कारी] बहुमूल्य पत्थरों पर रत्नों या सोने आदि का ऐसा जड़ाव जो कुछ उभरा हुआ हो।

चोभाना‡—क्रि० स० [हिं० चुभाना] दे० 'चुभाना'।

चोम—संज्ञा स्त्री० [अं० जोम] १. जोश। उत्साह। २. गर्व। घमंड। अभिमान (राज०)।

चोया—संज्ञा पुं० [हिं० चोआ] दे० 'चोआ'।

चोर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो छिपकर पराई वस्तु का अपहरण करे। स्वामी की अनुपस्थिति या अज्ञानता में छिपकर कोई चीज ले जानेवाला मनुष्य। चुराने या चोरी करनेवाला। तस्कर।

मुहा०—चोर की दाढ़ी में तिनका=चोर का सशंकित रहना। चोर के घर छिछोर=दे० 'चोर के घर ढिंढोर'। चोर के घर ढिंढोर=पक्के बदमाश से किसी नौसिखुए का उलझना। चोर के घर में मोर पड़ना=धूर्त के साथ धूर्तता होना। चोर के पांव कितने=चोर की हिम्मत कम होती है। उ०—इन गीदड़ भपकियों में हम न आने के चोर के पाँव कितने।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २३८। चोर चोर मौसेरै भाई=बुरै लोगों में स्नेह सहयोग होना। चोर पड़ना=चोर का आकर कुछ चुरा ले जाना। चोर पर मोर पडना=धूर्त के साथ धूर्तता होना। चालाक के साथ चालाकी होना। चोर से कहे चोरी करो, शाह से कहना जागता रह=दो विरोधी तत्वों को प्रोत्साहन देना। उ०—पुलिसवाले चोर से कहें चोरी कर शाह से कहें जागता रह।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८४। चोरों का पीर उठाईगीर=चोरों से भी बड़ा उचक्का। चोरी से धोखा बड़ा ठहराना। उ०—यह शख्स बदमास भी परले सिरे के थे। चोरों के पीर उठाई गीरों के लँगोटिए यार।- फिसाना०, भा० ३, पृ० ४१। मन में चोर बैठना=मन में किसी प्रकार का खटका या संदेह होना।

यौ०—चोर चकार=चोर उचक्का। चोरीचकारी, चोरीचिकारी=चोरी पूर्ण मजाक। उ०—क्या चोरीचिकारी की। खुदा न ख्वासता किसी को कत्ल कर डाला किसी को मार डाला किसी का घर फांदे।—फिसाना० भा० ३, पृ० ७९। कामचोर। मुँहचोर।

२. घाव आदि में वह दूषित या विकृत अंश जो अनजान में अंदर रह जाता है और जिसके ऊपर का घाव अच्छा हो जाता है।

विशेष—ऐसा दूषित अंश अंदर ही अंदर बढ़ता रहता है और शीघ्र ही उस घाव का मुँह फिर से खोलना पड़ता है।

३. वह छोटी संधि या अवकाश जिसमें से होकर कोई पदार्थ बह या निकल जाय जिसके कारण इसी प्रकार का और कोई अनिष्ट हो। जैसे, छत में का चोर। मेंहदी का चोर।

विशेष—मेंहदी का चोर हथेली की संधियों आदि का वह सफेद अंश कहलाता है जिसपर असावधानी से मेंहदी नहीं लगती या दाव पड़ने से मेंहदी के सरक जाने के कारण रंग नहीं चढ़ता। यद्यपि इससे किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता, तथापि यह देखने में भद्दा जान पड़ता है।

४. खेल में वह लड़का जिससे दूसरे लड़के दाँव लेते हैं और जिसे औरों की अपेक्षा अधिक श्रम का काम करना पड़ता है।

विशेष—चोर को प्रायः दूसरे खिलाड़ियों को छूना, ढूँढ़ना या अपनी पीठ पर चढ़ाकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना पड़ता है। खेल में चोर जिसे छूता या ढूँढ लेता है वही चोर हो जाता है।

मुहा०—चोर चोर खेलना=इस प्रकार का खेल खेलना।

५. ताश या गंजीफे आदि का वह पत्ता जिसे खिलाड़ी अपने हाथ में दबाए या छिपाए रहता है और जिसके कारण दूसरे खिलाड़ियों की जीत में बाधा पड़ती है।

यौ०—गुलाम चोर=ताश का एक खेल जिसमें गड्डी में का एक पत्ता गुप्त रूप से निकालकर छिपा दिया जाता है और शेष पत्ते सब खिलाड़ियों में रंग और टिप्पियों के हिसाबसे जोड़ा मिलाने के लिये बाँट दिए जाते हैं। अंत में किसी खिलाड़ी के हाथ में छिपाए हुए पत्ते के जोड़ का पत्ता रह जाता है। जिसके हाथ में वह पत्ता रह जाता है, वह भी चोर कहलाता है।

६. चोरक नाम का गंधद्रव्य। ७. (मन की) दुर्भावना। जैसे, मन का चोर। ८. रहस्य संप्रदाय का पारिभाषिक शब्द जिसका अर्थ है षड्विकार या मृत्यु।

चोर²—वि० १. जिसके वास्तविक स्वरूप का ऊपर से देखने से पता न चले।

चोर उरद—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+उरद] उरद का वह कड़ा दाना जो न तो चक्की में पिसता है और न गलाने से गलता है।

चोरकंटक संज्ञा पुं० [सं० चोरकण्टक] चोरक नामक गंधद्रव्य।

चोरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का गठिवन जिसकी गणना गंधद्रव्यों में होती है।

विशेष—वैद्यक में इसे तीव्रगंध, कड़ुआ और वात, कफ, नाक तथा मुँह के रोग, अजीर्ण, कृमिदोष, रुधिरविकार और मेद आदि का नाशक माना जाता है।

२. एक प्रकार का गंधद्रव्य जिसका व्यवहार औषधों में भी होता है और जिसे असवरग भी कहते हैं।

चोरकट संज्ञा पुं० [हिं० चोर+कट (=काटनेवाला)] चोर। चोट्टा। उचक्का।

चोरकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चोरकर्मन्] चोरी [को०]।

चोरखाना—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+फा० खानह्] १. संदूक आदि में का गुप्त खाना। २. पिंजड़े आदि में का वह छोटा खाना जो बड़े खाने के अंदर हो।

चोरखिड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+खिड़की] छोटा चोर दरवाजा।

चोरगढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० चोर+ हिं० गढ़ा] गुप्त या छिपा हुआ गड्ढा।

चोरगणेश—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक गणेश।

विशेष—इनके विषय में यह विश्वास है कि यदि जप करने के समय हाथ की उँगलियों में संधि रह जाय, तो ये उसका फल हरण कर लेते हैं।

चोरगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+गली] १. वह पतली और तंग गली जिसे बहुत कम लोग जानते हों। २. पायजामे का वह भाग जो दोनो जाँघों के बीच में रहता है।

चोरचकार—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+अनु० चकार] [स्त्री० चोर चकारी] चोर । उचक्का ।

चोरचमार—वि० हिं० चोर+चमार] चोरी करनेवाला । नीच कार्य करनेवाला ।

चोरछिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दो चीजों के बीच का अवकाश । संधि । दरज ।

चोरछेद—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+छेद] दे० 'चोरछिद्र' ।

चोरजमीन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+जमीन] वह जमीन जो ऊपर से देखने में तो ठीक जान पड़े, पर नीचे से पोली हो और जिसपर पैर रखते ही नीचे धँस जाय ।

चोरटा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+टा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोरटी] दे० 'चोट्टा' ।

चोरताला—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+ताला] वह ताला जिसका पता दूर से या ऊपर से न लगे ।

विशेष—ऐसा ताला प्रायः किवाड़ों के पल्ले के अंदर लगा रहता है ।

चोरथन—वि० [हिं० चोर+थन] दुहने के समय अपना पूरा दूध न देनेवाली और थनों में कुछ दूध चुरा रखनेवाली (गौ, भैंस या बकरी आदि) ।

चोरदंत—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+दंत] वह दाँत जो बत्तीस दाँतों के अतिरिक्त निकलता है और निकलने के समय बहुत कष्ट देता है ।

चोरदंता१—संज्ञा पुं० [हिं० चोरदंत+आ (प्रत्य०)] दे० 'चोरदंत' ।

चोरदंता२—वि० जिसके चोरदंत निकले हों । चोरदाँत वाला ।

चोरदरवाजा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+दरवाजा]] किसी मकान में पीछे की ओर या अलग कोने में बना हुआ कोई ऐसा गुप्त द्वार जिसका ज्ञान बहुत कम लोगों को हो ।

चोरदाँत—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+दाँत] दे० 'चोरदंत' ।

चोरद्वार—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+द्वार] दे० 'चोरदरवाजा' ।

चोरधज—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+धज] तलवार की लड़ाई का एक तरीका ।

चोरना(पु)—क्रि० स० [हिं० चोर से नामिक धातु] चुराना ।

चोरपट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+पाट (सन)] एक प्रकार का जहरीला पौधा जो दक्षिण हिमालय, आसाम, बरमा और लंका में अधिकता से होता है ।

विशेष—अगिया की तरह इसके पत्तों और डंठलों पर भी बहुत जहरीले रोएँ होते हैं जो शरीर में लगने से सूजन पैदा करते हैं । सूजे हुए स्थान पर बड़ी जलन होती है और वह कई दिनों तक रहती है । इसमें से बहुत बढ़िया रेशा निकल सकता है, पर इसी दोष के कारण कोई इसे छूता नहीं; और इसलिए इसका कोई उपयोग भी नहीं हो सकता । इसे सूरत भी कहते हैं ।

चोरपहरा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर (=गुप्त)+पहरा] १. वह पहरा जो शत्रु के जासूसों से सेना की रक्षा के लिये गुप्त रूप से बैठाया जाता है २. किसी प्रकार का गुप्त पहरा ।

चोरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चोरपुष्पी' ।

चोरपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चोरपुष्पी' ।

चोरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसका डंठल कुछ लाली लिए होता है ।

विशेष—इसके पत्ते लंबे और रोएँदार होते हैं । इसमें आसमानी रंग का फूल लगता है । जो नीचे की ओर लटका रहता है । वैद्यक में इसे नेत्रों के लिये हितकारी और मूढ़गर्भ को आकर्षण करनेवाला माना है । इसे अंधाहुली या शंखाहुली भी कहते हैं ।

पर्या०—शंखिनी । केशिनी । अवाक्पुष्पी । भ्रमरपुष्पी । राज्ञी ।

चोरपेट—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+ पेट] १. वह पेट जिसमें के गर्भ का जल्दी पता न लगे । २. किसी चीज के मध्य में वह गुप्त स्थान जिसमें रखी हुई कोई चीज लोगों पर प्रकट न हो । ३. वह चीज जिसके मध्य में कोई ऐसा गुप्त स्थान हो ।

चोरपैर—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+पैर] ऐसे ढंग से रखे जानेवाले पैर जिनकी आहट न मालूम हो ।

चोरबजार—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+बाजार] वह बाजार जहाँ अवैध व्यापार होता हो या चोरी से चीजें बिकती हों ।

चोरबजरिया—वि० [हिं० चोरबजार+इया (प्रत्य०)] चोरबाजारी करनेवाला ।

चोरबत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+बत्ती] बिजली की एक प्रकार की बत्ती जो बटन दबाकर जलाई जाती है । यह सूखी बैटरी से जलती है । टार्च ।

विशेष—यह चोरों के लिये विशेष लाभप्रद होता है क्योंकि इसे जलाने के लिये दियासलाई की जरूरत नहीं पड़ती तथा इसका प्रकाश चौतरफा न पड़कर सामने पड़ता है । अतः गुप्त स्थान में पड़ी वस्तु देखी जा सकती है और साथ ही दूसरे इसका प्रकाश करनेवाले को नहीं देख सकते । यदि किसी व्यक्ति के मुँह पर इसका प्रकाश डाला जाय तो उसकी आँख चौंधने लगती है तथा वह चोरबत्ती जलानेवाले को नहीं पहचान सकता । अतः चोर भागते समय भी इससे लाभ उठा लेते हैं ।

चोरबदन—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+ फा० बदन] वह मनुष्य जिसकी मोटाई प्रकट न हो । वह मनुष्य जो वास्तव में बलवान् हो, पर देखने में दुबला जान पड़े ।

चोरबाजार—संज्ञा पुं० [हिं०चोर+बाजार] काला बाजार । चोरी से खरीदा या बेचा जाना । गैरकानूनी व्यापार । निश्चित मूल्य से अधिक पर बेचा जाना ।

चोरबाजारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+बाजारी] चोर बाजार का व्यापार । चोर बाजार में खरीदने या बेचे जाने की स्थिति या भाव ।

चोर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो छिपकर पराई वस्तु का अपहरण करे। स्वामी की अनुपस्थिति या अज्ञानता में छिपकर कोई चीज ले जानेवाला मनुष्य। चुराने या चोरी करनेवाला। तस्कर।

मुहा०—**चोर की दाढ़ी में तिनका**=चोर का सशंकित रहना। **चोर के घर छिछोर**=दे० 'चोर के घर ढिढोर'। **चोर के घर ढिढोर**=पक्के बदमाश से किसी नौसिखुए का उलझना। **चोर के घर में मोर पड़ना**=धूर्त के साथ धूर्तता होना। **चोर के पाँव कितने**=चोर की हिम्मत कम होती है। उ०—इन गीदड़ भपकियों में हम न आने के चोर के पाँव कितने।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २३८। **चोर चोर मौसेरे भाई**=बुरे लोगों में स्नेह सहयोग होना। **चोर पड़ना**=चोर का आकर कुछ चुरा ले जाना। **चोर पर मोर पड़ना**=धूर्त के साथ धूर्तता होना। चालाक के साथ चालाकी होना। **चोर से कहे चोरी करो, शाह से कहना जागता रह**=दो विरोधी तत्वों को प्रोत्साहन देना। उ०—पुलिसवाले चोर से कहें चोरी कर शाह से कहें जागता रह।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८४। **चोरों का पीर उठाईगीर**=चोरों से भी बड़ा उचक्का। **चोरी से धोखा बड़ा ठहराना**। उ०—यह शख्स बदमास भी परले सिरे के थे। चोरों के पीर उठाई गीरों के लँगोटिए यार।- फिसाना०, भा० ३, पृ० ४१। **मन में चोर बैठना**=मन में किसी प्रकार का खटका या संदेह होना।

यौ०—**चोर चकार**=चोर उचक्का। **चोरीचकारी, चोरीचिकारी**=चोरी पूर्ण मजाक। उ०—क्या चोरीचिकारी की। खुदा न ख्वासता किसी को कत्ल कर डाला किसी को मार डाला किसी का घर फाँदे।—फिसाना० भा० ३, पृ० ७९। कामचोर। मुँहचोर।

२. घाव आदि में वह दूषित या विकृत अंश जो अनजान में अंदर रह जाता है और जिसके ऊपर का घाव अच्छा हो जाता है।

विशेष—ऐसा दूषित अंश अंदर ही अंदर बढ़ता रहता है और शीघ्र ही उस घाव का मुँह फिर से खोलना पड़ता है।

३. वह छोटी संधि या अवकाश जिसमें से होकर कोई पदार्थ वह या निकल जाय जिसके कारण इसी प्रकार का और कोई अनिष्ट हो। जैसे, छत में का चोर। मेंहदी का चोर।

विशेष—मेंहदी का चोर हथेली की संधियों आदि का वह सफेद अंश कहलाता है जिसपर असावधानी से मेंहदी नहीं लगती या दाव पड़ने से मेंहदी के सरक जाने के कारण रंग नहीं चढ़ता। यद्यपि इससे किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता, तथापि यह देखने में भद्दा जान पड़ता है।

४. खेल में वह लड़का जिससे दूसरे लड़के दाँव लेते हैं और जिसे औरों की अपेक्षा अधिक श्रम का काम करना पड़ता है।

विशेष—चोर को प्रायः दूसरे खिलाड़ियों को छूना, ढूँढ़ना या अपनी पीठ पर चढ़ाकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना पड़ता है। खेल में चोर जिसे छूता या ढूँढ लेता है वही चोर हो जाता है।

मुहा०—**चोर चोर खेलना**=इस प्रकार का खेल खेलना।

५. ताश या गंजीफे आदि का वह पत्ता जिसे खिलाड़ी अपने हाथ में दबाए या छिपाए रहता है और जिसके कारण दूसरे खिलाड़ियों की जीत में बाधा पड़ती है।

यौ०—**गुलाम चोर**=ताश का एक खेल जिसमें गड्डी में का एक पत्ता गुप्त रूप से निकालकर छिपा दिया जाता है और शेष पत्ते सब खिलाड़ियों में रंग और टिप्पियों के हिसाब से जोड़ा मिलाने के लिये बाँट दिए जाते हैं। अंत में किसी खिलाड़ी के हाथ में छिपाए हुए पत्ते के जोड़ का पत्ता रह जाता है। जिसके हाथ में वह पत्ता रह जाता है, वह भी चोर कहलाता है।

६. चोरक नाम का गंधद्रव्य। ७. (मन की) दुर्भावना। जैसे, मन का चोर। ८. रहस्य संप्रदाय का पारिभाषिक शब्द जिसका अर्थ है षड्विकार या मृत्यु।

चोर[2]—वि० १. जिसके वास्तविक स्वरूप का ऊपर से देखने से पता न चले।

चोर उरद—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+उरद] उरद का वह कड़ा दाना जो न तो चक्की में पिसता है और न गलाने से गलता है।

चोरकंटक संज्ञा पुं० [सं० चोरकण्टक] चोरक नामक गंधद्रव्य।

चोरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का गठिवन जिसकी गणना गंधद्रव्यों में होती है।

विशेष—वैद्यक में इसे तीव्रगंध, कड़ुआ और वात, कफ, नाक तथा मुँह के रोग, अजीर्ण, कृमिदोष, रुधिरविकार और मेद आदि का नाशक माना जाता है।

२. एक प्रकार का गंधद्रव्य जिसका व्यवहार औषधों में भी होता है और जिसे असवरग भी कहते हैं।

चोरकट संज्ञा पुं० [हिं० चोर+कट (=काटनेवाला)] चोर। चोट्टा। उचक्का।

चोरकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चोरकर्मन्] चोरी [को०]।

चोरखाना—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+फा० खानह्] १. संदूक आदि में का गुप्त खाना। २. पिंजड़े आदि में का वह छोटा खाना जो बड़े खाने के अंदर हो।

चोरखिड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+खिड़की] छोटा चोर दरवाजा।

चोरगढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० चोर+ हिं० गढ़ा] गुप्त या छिपा हुआ गड्ढा।

चोरगणेश—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक गणेश।

विशेष—इनके विषय में यह विश्वास है कि यदि जप करने के समय हाथ की उँगलियों में संधि रह जाय, तो ये उसका फल हरण कर लेते हैं।

चोरगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+गली] १. वह पतली और तंग गली जिसे बहुत कम लोग जानते हों। २. पायजामे का वह भाग जो दोनो जाँघों के बीच में रहता है।

चोरचकार—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+अनु० चकार] [स्त्री० चोर चकारी] चोर। उचक्का।

चोरचमार—वि० हिं० चोर+चमार] चोरी करनेवाला। नीच कार्य करनेवाला।

चोरछिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दो चीजों के बीच का अवकाश। संधि। दरज।

चोरछेद—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+छेद] दे० 'चोरछिद्र'।

चोरजमीन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+जमीन] वह जमीन जो ऊपर से देखने में तो ठीक जान पड़े, पर नीचे से पोली हो और जिसपर पैर रखते ही नीचे धँस जाय।

चोरटा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+टा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोरटी] दे० 'चोट्टा'।

चोरताला—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+ताला] वह ताला जिसका पता दूर से या ऊपर से न लगे।

विशेष—ऐसा ताला प्रायः किवाड़ों के पल्ले के अंदर लगा रहता है।

चोरथन—वि० [हिं० चोर+थन] दुहने के समय अपना पूरा दूध न देनेवाली और थनों में कुछ दूध चुरा रखनेवाली (गौ, भैंस या बकरी आदि)।

चोरदंत—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+दंत] वह दाँत जो बत्तीस दाँतों के अतिरिक्त निकलता है और निकलने के समय बहुत कष्ट देता है।

चोरदंता¹—संज्ञा पुं० [हिं० चोरदंत+आ (प्रत्य०)] दे० 'चोरदंत'।

चोरदंता²—वि० जिसके चोरदंत निकले हों। चोरदाँत वाला।

चोरदरवाजा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+दरवाजा] किसी मकान में पीछे की ओर या अलग कोने में बना हुआ कोई ऐसा गुप्त द्वार जिसका ज्ञान बहुत कम लोगों को हो।

चोरदाँत—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+दाँत] दे० 'चोरदंत'।

चोरद्वार—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+द्वार] दे० 'चोरदरवाजा'।

चोरधज—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+धज] तलवार की लड़ाई का एक तरीका।

चोरना(पु)—क्रि० स० [हिं० चोर से नामिक धातु] चुराना।

चोरपट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+पाट (सन)] एक प्रकार का जहरीला पौधा जो दक्षिण हिमालय, आसाम, बरमा और लंका में अधिकता से होता है।

विशेष—अगिया की तरह इसके पत्तों और डंठलों पर भी बहुत जहरीले रोएँ होते हैं जो शरीर में लगने से सूजन पैदा करते हैं। सूजे हुए स्थान पर बड़ी जलन होती है और वह कई दिनों तक रहती है। इसमें से बहुत बढ़िया रेशा निकल सकता है, पर इसी दोष के कारण कोई इसे छूता नहीं; और इसलिए इसका कोई उपयोग भी नहीं हो सकता। इसे सूरत भी कहते हैं।

चोरपहरा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर (=गुप्त)+पहरा] १. वह पहरा जो शत्रु के जासूसों से सेना की रक्षा के लिये गुप्त रूप से बैठाया जाता है २. किसी प्रकार का गुप्त पहरा।

चोरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चोरपुष्पी'।

चोरपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चोरपुष्पी'।

चोरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसका डंठल कुछ लाली लिए होता है।

विशेष—इसके पत्ते लंबे और रोएँदार होते हैं। इसमें आसमानी रंग का फूल लगता है। जो नीचे की ओर लटका रहता है। वैद्यक में इसे नेत्रों के लिये हितकारी और मूढ़गर्भ को आकर्षण करनेवाला माना है। इसे अंधाहुली या शंखाहुली भी कहते हैं।

पर्या०—शंखिनी केशिनी। अध:पुष्पी। अमरपुष्पी। रात्री।

चोरपेट—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+पेट] १. वह पेट जिसमें के गर्भ का जल्दी पता न लगे। २. किसी चीज के मध्य में वह गुप्त स्थान जिसमें रखी हुई कोई चीज लोगों पर प्रकट न हो। ३. वह चीज जिसके मध्य में कोई ऐसा गुप्त स्थान हो।

चोरपैर—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+पैर] ऐसे ढंग से रखे जानेवाले पैर जिनकी आहट न मालूम हो।

चोरबजार—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+बाजार] वह बाजार जहाँ अवैध व्यापार होता हो या चोरी से चीजें बिकती हों।

चोरबजरिया—वि० [हिं० चोरबजार+इया (प्रत्य०)] चोरबाजारी करनेवाला।

चोरबत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+बत्ती] बिजली की एक प्रकार की बत्ती जो बटन दबाकर जलाई जाती है। यह सूखी बैटरी से जलती है। टार्च।

विशेष—यह चोरों के लिये विशेष लाभप्रद होता है क्योंकि इसे जलाने के लिये दियासलाई की जरूरत नहीं पड़ती तथा इसका प्रकाश चौतरफा न पड़कर सामने पड़ता है। अतः गुप्त स्थान में पड़ी वस्तु देखी जा सकती है और साथ ही दूसरे इसका प्रकाश करनेवाले को नहीं देख सकते। यदि किसी व्यक्ति के मुँह पर इसका प्रकाश डाला जाय तो उसकी आँख चौंधने लगती है तथा वह चोरबत्ती जलानेवाले को नहीं पहचान सकता। अतः चोर भागते समय भी इससे लाभ उठा लेते हैं।

चोरबदन—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+फ़ा० बदन] वह मनुष्य जिसकी मोटाई प्रकट न हो। वह मनुष्य जो वास्तव में बलवान् हो, पर देखने में दुबला जान पड़े।

चोरबाजार—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+बाजार] काला बाजार। चोरी से खरीदा या बेचा जाना। गैरकानूनी व्यापार। निश्चित मूल्य से अधिक पर बेचा जाना।

चोरबाजारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर+बाजारी] चोर बाजार का व्यापार। चोर बाजार में खरीदने या बेचे जाने की स्थिति या भाव।

से मोट द्वारा अथवा वाहे से दोगला या वेड़ी द्वारा निकालकर पानी गिराते हैं। पानी गिराने की कुएँ की ढाल। चिउलारा। लिलारी।

चौंडा²—संज्ञा पुं० [हिं० चोंड़ा] दे० 'चोंडा'। (स्त्रियों के सिर का बाल)।

चौंढ़ा‡—संज्ञा पुं० [हिं० चौंडा] दे० 'चौड़ा¹'।

चौंतरा‡—संज्ञा पुं० [सं० चत्वर, हिं० चौतरा] दे० 'चबूतरा'।

चौंतिस¹—वि० [सं० चतुस्त्रिंशत् प्रा० चतुत्तिसो, पा० चउतीसो] जो गिनती में तीस और चार हो।

चौंतिस²—संज्ञा पुं० तीस और चार की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३४।

चौंतिसवाँ—वि० [हिं० चौंतिस+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तेंतीसवें के उपरांत पड़े। जिसका स्थान तेंतीस और वस्तुओं के पीछे हो।

चौंतीस‡—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० चौंतिस] दे० 'चौंतिस'।

चौंध—संज्ञा स्त्री० [सं० √चक् (=चमकना) या चौं (=चारो ओर)+अंध] अत्यंत अधिक चमक या प्रकाश के सामने दृष्टि की अस्थिरता। चकाचौंध। तिलमिलाहट।

चौंधना(पु)‡—क्रि० अ० [हिं० चौंध] १. किसी वस्तु का क्षणिक प्रकाशित होना। चमकना। चौंध होना। २. तेज प्रकाश आँखों पर पड़ने से अंधकार के अलावा कुछ न दिखाई देना।

चौंधा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चौंध] चकाचौंध।

चौंधा²‡—संज्ञा पुं० [सं० चतुर+ध्यान] सावधानता। जागरूकता। सतर्कता।

यौ०—चौंधा चाटक=सावधानी और प्रतिभा।

चौंधियाना—क्रि० अ० [हिं० चौंध] १. अत्यंत अधिक चमक या प्रकाश के सामने दृष्टि का स्थिर न रह सकना। चकाचौंध होना। जैसे,—आँख चौंधियाना। २. दृष्टि मंद होना। आँखों से सुझाई न पड़ना (तिरस्कार)।

चौंधी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौंध] १. चकचौंध। तिलमिलाहट। उ०—चितवत मोहिं लगी चौंधी सी जानौं न कौन कहाँ तें आए। —तुलसी (शब्द०)। २. आँखों का एक रोग जो दिन में बराबर ताप खाने से या कमजोरी से हो जाता है। इसके रोगी को रात में केवल रोशनी दिखाई देती है और कुछ नहीं।

चौंप(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोप] दे० 'चोप'।

चौंरगाय—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौंर+गाय] सुर नाम की गाय।

चौंर—संज्ञा पुं० [सं० चामर] १. सुरा या चौंरी मृग (=चामर मृग) गाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो एक डाँड़ी में लगा रहता है और पीछे या बगल से राजा महाराजाओं या देवमूर्तियों के सिरों पर इसलिये हिलाया जाता है जिसमें मक्खियाँ आदि न बैठने पावें। चँवर। दे० 'चँवर'।

क्रि० प्र०—करना।—डुलाना।—होना।

मुहा०—चौंर ढलना=सिर पर चँवर हिलाया जाना। चौंर ढालना=सिर पर चौंर हिलाना। चौंर ढुरना=दे० 'चौंर ढलना'। चौंर ढुराना=दे० 'चौंर ढालना'।

२. भडभाँड की जड़। सत्यानाशी की जड़। चोक। ३. पिंगल में मगण के पहले भेद (ऽ) की संज्ञा। जैसे, 'श्री'। ४. झालर। फुँदना। उ०—(क) तैसइ चौंर बनाए औ घाले गल झंप। बँधे सेत गजगाह तहँ जो देखै सो कंप। —जायसी (शब्द०)। (ख) वहु फूल की माल लपेटि के खंभन धूप सुगंध सो ताहि धुपाइए। तापै चहूँ दिसि चंद छपा से सुसोभित चौंर घने लटकाइए।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

चौंरा¹—संज्ञा पुं० [सं० चुण्ड (=गड्ढा)] १. अनाज रखने का गड्ढा। गाड़। † २. चौड़ा।

चौंरा²—संज्ञा पुं० [हिं०] चँवर। चौंर। उ० तीन एक चंडोल में, रैदास शाह कबीर। गरीबदास चौंरा करे, बादशाह बलबीर।—कबीर मं०, पृ० १२१।

चौंरा³(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चौंर+आ (प्रत्य०)] सफेद पूँछवाला बैल।

चौंराना(पु)—क्रि० [सं० चामर] १ चँवर डुलाना। चँवर करना। २. कूँचा फेरना। झाड़ू देना। बुहारना। उ०—चौंरावत सब राजमग चंदन जल छिरकाइ। प्रकट पताका घर घरन बाँधत हिय हरसाइ।—पद्माकर (शब्द०)।

चौंरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चामर, हिं० चौंर + ई (प्रत्य०)] १. काठ की डाँड़ी में लगा हुआ घोड़े की पूँछ के बालों का गुच्छा जो मक्खियाँ उड़ाने के काम में आता है। घोड़े के सवार इसे प्रायः अपने पास रखते हैं। २. वह डोरी जिससे स्त्रियाँ सिर के बाल गूँथकर बाँधती हैं। चोटी या वेणी बाँधने की डोरी। उ०—चौंरी डोरी बिगलित केश। झूमत लटकत मुकुट सुदेश।—सूर (शब्द०)। ३. सफेद पूँछवाली गाय। ४. सुरा गाय। ५. किसी चीज के आगे लटकनेवाला फुँदना।

चौंसठ¹—वि० [सं० चतुःषष्ठि, प्रा० चउसट्ठि] जो गिनती में साठ और चार हो।

चौंसठ²—संज्ञा पुं० साठ और चार की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—६४।

चौंसठवाँ—वि० [हिं० चौंसठ+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तिरसठवें के उपरांत पड़े। जिसका स्थान तिरसठ और वस्तुओं के बाद हो।

चौंहा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'गलफड़ा'।

चौंही‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] हल की एक लकड़ी जिसे परिहारी भी कहते हैं।

चौ¹—वि० [सं० चतुः, प्रा० चउ] चार (संख्या)।

यौ०—चौपहल। चौबगला। चौमासा। चौघड़ा।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अब समास ही में होता है।

चौ²—संज्ञा पुं० मोती तौलने का एक मान। जौहरियों का एक तौल।

चौ³—प्रत्य० [सं० स्य अथवा त्यक, प्रा० च्चअ, तुल० मरा० चा] [अन्य रूप चइ, चउ, ची, चो] संबंध कारक की विभक्ति। का। उ०—सादूलो लाजै ससौ, घात करण घिरतांह कूँभायल चौ खाय पल, गजमोती खिरतांह।—बाँकी० ग्रं० भा० १, पृ० ३१।

चौअन—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० चौवन] दे० चौवन'।

चौआ¹—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद] गाय, बैल, भैंस आदि पशु। चौपाया (विशेषकर गाय बैल के लिये)।

चौआ²—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)] १.हाथ की चार उँगलियों का विस्तार। चार अंगुल की माप। २.ताश का वह पत्ता जिसपर चार बूटियाँ हों। वि० दे० 'चौवा'।

चौआई‡ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौवाई] दे० 'चौवाई'।

चौआना‡ⓤ—क्रि० अ० [हिं० चौंकना] १. चकपकाना। चकित होना। विस्मित होना। उ०—भोर भए जागे यतिराई। चहुँ दिशि लखत भए चौआई।—रघुराज (शब्द०)। २. चौकन्ना होना। घबरा जाना। उ०—साँच दाम जेतनो रह्यो, तेतनो लिख्यो देखान। पीपा कह तू बावरो, वणित चित्त चौआन।—रघुराज (शब्द०)। ३. सतर्क होना।

चौक—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक्क] १. चौकोर भूमि। चौखूँटी खुली जमीन। २. घर के बीच की कोठरियों और बरामदों से घिरा हुआ वह चौखूँटा स्थान जिसके ऊपर किसी प्रकार की छाजन न हो। आँगन। सहन। ३. चौखूँटा चबूतरा। बड़ी वेदी। ४. मंगल अवसरों पर आँगन में या और किसी समतल भूमि पर आटे, अबीर आदि की रेखाओं से बना हुआ चौखूँटा क्षेत्र जिसमें कई प्रकार के खाने और चित्र बने रहते हैं। इसी क्षेत्र के ऊपर देवताओं का पूजन आदि होता है। उ०—(क) कदली खंभ, चौक मोतिन के, बाँधे बंदनवार।—सूर (शब्द०)। (ख) मंगलचार भए घर घर में मोतिन चौक पुराए।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र० - पूरना।—बैठना।

५. नगर के बीच में वह लंबा चौड़ा खुला स्थान जहाँ बड़ी बड़ी दुकानें आदि हों। शहर का बड़ा बाजार।

६. वेश्याओं की बस्ती या मुहल्ला जो अधिकतर चौक या मुख्य चौराहों के पास होता है। उ०—चौक में जाके अपने कुनबे की किसी को बिठाओ। खुद जाके बैठो।—सैर०, भा० १ पृ० २८।

मुहा० चौक में बैठना=वेश्यावृत्ति करना। वेश्या का धंधा या पेशा करना। उ०—जो चौक में बैठना होता तो यह छह रूपे और खाने पर न पड़े रहते।— सैर०, भा० १,पृ० २८।

७. नगर के बीच का वह स्थान जहाँ से चारों ओर रास्ते गए हों। चौराहा। चौमुहानी। ८. चौसर खेलने का कपड़ा। बिसात। उ०—राखि सत्रह पुनि अठारह चोर पाँचों मारि। डारि दे तू तीन काने चतुर चौक निहारि।—सूर (शब्द०)। ९. सामने के चार दाँतों की पंक्ति। उ०—दसन चौक बैठे जनु हीरा। औ बिच बिच रँग स्याम गँभीरा।-जायसी (शब्द०)। १०. सीमंत कर्म। अठवाँसा। मोड़े। ११. चार समूह। उ०—पुनि सोरहो सिंगार जस चारिहु चौक कुलीन। दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभट चौ खीन।—जायसी (शब्द०)।

चौकगोभी—संज्ञा स्त्री० [देश० चौक ?+हिं० गोभी] एक प्रकार की गोभी।

चौकचाँदनी संज्ञा स्त्री० [हिं० चौक+चाँदनी] भादों के कृष्ण पक्ष में पड़नेवाला एक त्योहार।

चौकठ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चौखट'।

क्रि० प्र०—पूजना=मुख्य द्वार पर किवाड़ लगाते समय एक प्रकार का पूजन संस्कार करना जो मंगल के लिये होता है।—लाँघना।

चौकठा—संज्ञा पुं० [हिं० चौकठ] दे० 'चौखटा'।

चौकड़–वि० [हिं० चौ+सं० कला (=अंग,भाग)] दुरुस्त। बढ़िया। अच्छा। जैसे,—चौकड़ माल।—(बाजारू)।

चौकड़पाऊ—संज्ञा पुं० [१.] बुंदेलखंड में होली के दिनों में गाया जानेवाला एक गीत।

चौकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+कड़ा] १. कान में पहनने की बाली जिसमें दो दो मोती हों। २. फसल की एक प्रकार की बँटाई जिसमें से जमींदार को चौथाई मिलता है।

चौकड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+सं० कला (=अंग)] १. हरिण की वह दौड़ जिसमें वह चारों पैर एकसाथ फेंकता हुआ जाता है। चौफाल कुदान। फलाँग। कुलाँच। उड़ान। छलाँग।

क्रि० प्र०—भरना।

मुहा०—चौकड़ी भूल जाना=एक भी चाल न सूझना। बुद्धि का काम न करना। किंकर्तव्यविमूढ़ होना। सिटपिटा जाना। घबरा जाना। भौचक्का रह जाना।

२. चार आदमियों का गुट्ट। मंडली।

यौ०—चांडाल चौकड़ी=उपद्रवी मनुष्यों की मंडली।

३.एक प्रकार का गहना। ४. चार युगों का समूह। चतुर्युगी। ५.पलथी।

क्रि० प्र०—मारना।

६.चारपाई की वह बुनावट जिसमें चार चार सुतलियाँ इकट्ठी करके बुनी गई हों।

७.मंदिरों का शिखर जो चार खंभों पर स्थित रहता हो।

चौकड़ी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+घोड़ी] वह गाड़ी जिसमें चार घोड़े जुतें। चार घोड़ों की गाड़ी।

चौकनिकास—संज्ञा पुं० [हिं० चौक+निकास] वह कर या महसूल जो किसी चौक (बाजार) में बैठनेवाले दुकानदारों से लिया जाता है।

चौकनाⓤ‡—क्रि० अ० [हिं० चौंकना] दे० 'चौंकना'। उ०—देव कहा कहौं राधिका के गुन तौं तिन सौतिन के उर सालैं। आजु लौं लाज लजी चित चौकति सीख यथोचितु सादर चालैं।—देव ग्रं०, पृ० ६५।

चौकन्ना—वि० [हिं० चौ (=चारो ओर)+कान] १. सावधान। होशियार। चौकस। सजग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. चौंका हुआ। आशंकित। ३. विपत्ति का सामना करने के लिये प्रस्तुत।

चौकरीⓤ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकड़ी] दे० 'चौकड़ी'।

चौकल—संज्ञा पुं० [सं०] चार मात्राओं का समूह। इसके पाँच भेद हैं (SS, IIS, ISI SII IIII)।

चौकलिआई‡—वि० [हिं० छिकुला] छिलकेदार। उ०—हूँ तो रांधन

कंती धोवा दारि, चौकलिमाई रांध गई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६५६।

चौकस– वि० [हिं० चौ (=चार) +कस (कस=कसा हुआ)] १. सावधान। सचेत। चौकन्ना। होशियार। खबरदार। २. ठीक। दुरुस्त। पूरा। जैसे,—चौकस माल।

चौकसाई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकसी] दे० 'चौकसी'।

चौकसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकस+ई (प्रत्य०)] सावधानी। होशियारी। निगरानी। निगहबानी। खबरदारी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

चौका—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक्क] १. पत्थर का चौकोर टुकड़ा। चौखूँटी सिल। २. काठ या पत्थर का पाटा जिसपर रोटी बेलते हैं। चकला। ३. सामने के चार दाँतों की पंक्ति। उ०—नैकु हँसौही बानि तजि लख्यो परत मुँहु नीठि। चौका चमकनि चौंधि में परति चौंधि सी डीठि।—बिहारी (शब्द०)। ४. सिर का एक गहना। सीसफूल। ५. वह ईंट जिसकी लंबाई चौड़ाई बराबर हो। ६. वह लिपा पुता स्थान जहाँ हिंदू लोग रसोई बनाते खाते हैं। (इस स्थान पर बाहरी लोग या बिना नहाए धोए घर के लोग भी नहीं जाने पाते।)। ७. मिट्टी या गोबर का लेप जो सफाई के लिये किसी स्थान पर किया जाय। मिट्टी या गोबर की तह जो लीपने या पोतने में भूमि पर चढ़े।

क्रि० प्र०—देना।—फेरना।—लगाना।

यौ०—चौका बरतन चौका बासन=बरतन माँजना और रसोईघर की सफाई तथा लिपाई पुताई करना। उ०—कुछ दिनों से नौकर हटाकर घर का काम धंधा करना शुरू कर दिया है, चौका बासन भी करती है।—सुनीता, पृ० २२। चौकाचार=चौके चूल्हे का आचार। उ०—चौकाचार विचार राग अनुरागेऊँ।—जग० श०, पृ० ६१। चौके की राँड़=जो विवाह के तुरंत बाद ही विधवा हो गई हो।

मुहा०—चौका बरतन करना=बरतन माँजने और रसोई का घर लीपने पोतने का काम करना। चौका धोलना=दे० 'चौका लगाना'। चौका लगाना=(१) लीप पोतकर बराबर करना। (२) सत्यानाश करना। चौपट करना। उ०—कियो तीन तेरह सबै चौका चौका लाय।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ८. एक प्रकार का जंगली बकरा जिसे सींग होते हैं।

विशेष—यह प्रायः जलाशय के आसपास की झाड़ियों में रहता है। रंग इसका बादामी होता है। यह २ फुट ऊँचा और ४, ५ फुट लंबा होता है। बचपन ही से यदि यह पाला जाय तो रह सकता है। इसके बाल पतले और रूखे होते हैं। इसे चौसिंघ भी कहते हैं।

९. एक ही स्थान पर मिला या सटाकर रखी हुई एक ही प्रकार की चार वस्तुओं का समूह। जैसे, अंगौछे का चौका, चुनरी का चौका, चौकी का चौका, मोतियों का चौका। १०. ताश का वह पत्ता जिसमें चार बूटियाँ हों। जैसे, ईंट का चौका। ११. एक प्रकार का मोटा कपड़ा जो फर्श या जाजिम बनाने के काम में आता है। १२. एक बरतन का नाम। १३. किसी स्थान को लीपकर उसमें आटे से रेखाएँ पारना। इस स्थान पर पवित्र कार्य या विवाह आदि होता है। १४. कुलाँच भरना। उ०—हमारी कुम्मैत घोड़ी जुते हुए खेत में चौका चलती है।—ज्ञान०, पृ० ९९।

चौकाल–वि० [?] चौगुना। उ०—मुश्क से खुशबू में रेशम से चमक में ये चौकाले हैं। जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०२।

चौकिया सोहागा—संज्ञा पुं० [हिं० चौकी+सोहागा] छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ सोहागा जो औषध के लिये विशेष उपयुक्त होता है।

चौकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्की] १. काठ या पत्थर का चौकोर आसन जिसमें चार पाए लगे हों। छोटा तख्त। उ०—चौक में चौकी जराय जरी जिहि पै खरी बार बगारत सौंधे।—पद्माकर (शब्द०)। २. कुरसी।

मुहा०—चौकी देना=बैठने के लिये कुरसी देना। कुरसी पर बैठाना।

३. मंदिर में मंडप की ओर के खंभों के ऊपर का वह घेरा जिसपर उसका शिखर स्थित रहता है। ४. मंदिर में मंडप के खंभों के बीच का स्थान जिसमें से होकर मंडप में प्रवेश करते हैं। ५. पड़ाव या ठहरने की जगह। टिकान। अड्डा। सराय। जैसे—चले चलो आगे की चौकी पर डेरा डालेंगे।

मुहा०—चौकी जाना=कसब कमाने जाना। खरची पर जाना।

६. वह स्थान जहाँ आसपास की रक्षा के लिये थोड़े से सिपाही आदि रहते हों। जैसे, पुलिस की चौकी। ७. किसी वस्तु की रक्षा के लिये या किसी व्यक्ति को भागने से रोकने के लिये रक्षकों या सिपाहियों की नियुक्ति। पहरा। खबरदारी। रखवाली। उ०—करिके निसंक तट बट के तटे तू बास चौके मत चौकी यहाँ पाहरू हमारे की।—कविंद (शब्द०)।

यौ०—चौकी पहरा।

मुहा०—चौकी देना=पहरा देना। रखवाली करना। चौकी बैठना=पहरा बैठना या निगरानी के लिये सिपाही तैनात होना। चौकी बैठाना=पहरा बैठाना। खबरदारी के लिये पहरा बैठाना। चौकी भरना=पहरा पूरा करना। अपनी बारी के अनुसार पहरा देना।

८. वह भेंट या पूजा जो किसी देवी देवता, ब्रह्म, पीर आदि के स्थान पर चढ़ाई जाती है।

मुहा०—चौकी भरना=किसी देवी या देवता के दर्शनों को मन्नत के अनुसार जाना। ९. जादू। टोना। १०. तेलियों के कोल्हू में लगी हुई एक लकड़ी। ११. गले में पहनने का एक गहना जिसमें चौकोर पटरी होती है। एक प्रकार की जुगनी। पटरी। उ०—(क) चौकी बदलि परी प्यारे हरि।—हरिदास (शब्द०)। (ख) मानो लसी तुलसी हनुमान हिए जग जीत जराय के चौकी।—तुलसी (शब्द०)। १२. रोटी बेलने का

छोटा चकला। १३. भेड़ों और बकरियों का रात के समय किसी खेत में रहना।

विशेष—खाद के लिये किसान प्रायः भेड़ों को खेत में रखते हैं, जिनके मल मूत्र से खाद होती है।

१४. मेलों के अवसर पर निकलनेवाली देवमूर्तियों की सवारी।

क्रि० प्र०—उठना।—चलना।—पहुँचना।

चौकीदार—संज्ञा पुं० [हिं० चौकी+फ़ा० दार] १. पहरा देनेवाला। २. गोड़ैत। ३. वह टा जो महतो की बगल में भाँज की डोरी फँसाने के लिये गड़ा रहता है। (जुलाहे)।

चौकीदारा†—संज्ञा पुं० [हिं० चौकीदार+आ (प्रत्य०)] चौकीदार रखने का चंदा। चौकीदारी।

चौकीदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकीदार+ई (प्रत्य०)] १. पहरा देने का काम। रखवाली। पहरेदारी। २. चौकीदार का पद। ३. वह चंदा या कर जो चौकीदार रखने के लिये दिया जाय।

चौकीदौड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकी+दौड़] प्रतियोगिकात्मक दौड़ का एक प्रकार जिसमें दौड़नेवालों के लिये चौकियाँ रखी रहती हैं।

चौकुरा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+कूरा] फसल की बटाई जिसमें से तीन चौथाई असामी और एक चौथाई जमींदार लेता है।

चौकोन†—वि० [सं० चौ+कोन] दे० 'चौकोना'।

चौकोना—वि० [सं० चतुष्कोण, प्रा० चउक्कोण] [स्त्री० चौकोनी] [वि० चौकोनियाँ] जिसके चार कोने हों। चौखूँटा। चतुष्कोण।

चौकोर—वि० [सं० चतुष्कोण, प्रा० चउक्कोण] १. जिसके चार कोने हों। चौखूँटा। चतुष्कोण। २. क्षत्रियों की एक जाति या शाखा।

चौक्ष—वि० [सं०] १. पवित्र। निर्मल। स्वच्छ। २. सुंदर। लुभावना। आनंददायक। ३. चोखा [को०]।

चौखंड¹—संज्ञा पुं० [देश०] [वि० चौखंडी] १. वह घर जिसमें चार खंड हों। चौमंजिला मकान। २. वह घर जिसमें चार आँगन या चौक हों।

चौखंड²—वि० चार खंडोंवाला। उ०—आसन बासन मानुस अंडा। भए चौखंड जो ऐस पखंडा।—जायसी (शब्द०)।

चौखंडा¹—संज्ञा पुं० वि० [हिं० चौखंड+आ (प्रत्य)] दे० 'चौखंड'।

चौखंडा²—संज्ञा पुं० [हिं० चखौड़ा] डीठा। अनख। काला विंदु जिसे स्त्रियाँ बच्चों के सिर में इसलिये लगा देती है जिससे उन्हें नजर न लगे। डिठौना। उ०—पुनि नैनन महँ काजर कीन्हा। दिष्टिनेवार चौखंडा दीन्हा।—चित्रा०, पृ० १६७।

चौखंडी—संज्ञा पुं० [हिं० चौखंड] चौपाल। बैठक। उ०—ता ऊपर जो कुंदन मंडी। सो चित्रावलि की चौखंडी।—चित्रा०, पृ० ६०।

चौखट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+काठ] १. द्वार पर लगा हुआ चार लकड़ियों का ढाँचा जिसमें किवाड़ के पल्ले लगे रहते हैं। २. देहली। डेहरी। दहलीज।

मुहा०—चौखट लाँघना=घर के अंदर या बाहर जाना।

चौखटा—संज्ञा पुं० [हिं० चौखट] १. 'चौखट'। २. चार लकड़ियों का ढाँचा जिसमें मुँह देखने का या तसवीर का शीशा जड़ा जाता है। आइना, तसवीर आदि का फ्रेम।

चौखटा¹Ⓟ—क्रि० स० [हिं० सं० चोषण, चोखना] चखना। आस्वादन करना। उ०—मीने बरिस घन सुनिआरे चौखतहु तसु नाम।—विद्यापति, पृ० ३४३।

चौखना²—वि० [हिं० चौ+सं० खण्ड > हिं० खन (जैसे, सतखन)] चार खंड का। चौमंजिला (मकान)।

चौखा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+खाई] वह स्थान जहाँ चार गाँवों की सीमा मिलती हो।

चौखाना‡—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० चारखाना] दे० 'चारखाना'।

चौखानिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+खानि (=जाति, प्रकार)] अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज आदि चार प्रकार के जीव। उ०—मानुष तें बड़ पापिया, अक्षर गुरुहि न मानि। बार बार मन कुकुही गर्भ धरे चौखानि।—कबीर (शब्द०)।

चौखूँट¹—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+खूँट] १. चारो दिशा। २. भूमंडल।

चौखूँट²—क्रि० वि० चारो ओर।

चौखूँट³—वि० दे० चौखूँटा।

चौखूँटा—[वि० हिं० चौ+खूँट] जिसमें चार कोने हों। चौकोना। चतुष्कोण।

चौगड़ा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+गोड़ (=पैर)] १. खरहा। खरगोश।

चौगड़ा²—वि० चार पैरोंवाला।

चौगड़ा³—संज्ञा पुं० [हिं० चौघड़ा] दे० 'चौघड़ा'।

चौगड्डा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+गड्ड (=मेल)] १. वह स्थान जहाँ चार गावों की सीमा मिली हों। चौहद्दा। चौसिहा। चौखा। २. चार चीजों का समूह।

चौगड्डी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+गड्ढा] बाँस की फट्टियों का वह ढाँचा जिसमें जानवर फँसाते हैं।

चौगान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक खेल जिसमें लकड़ी के बल्ले से गेंद मारते हैं। यह घोड़े पर चढ़कर भी खेला जाता है। यह खेल हाकी या पोलो नामक अँगरेजी खेलों के ही समान होता है। उ० (क) ते तव सिर कुंदुकसम नाना। खेलिहहिं भालु कीसचौगाना।—मानस ६। २। (ख) श्री मोहन खेलत चौगान। द्वारावती कोट कंचन में रच्यो रुचिर मैदान। यादव वीर बराइ बटाई इक हलधर इक आपै ओर। निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चैश्रवा के पोर। लीले सुरँग, कुमैत श्याम तेहि पर दै सब मन रंग।—सूर (शब्द०)। २. चौगान खेलने की लकड़ी जो आगे की ओर टेढ़ी या झुकी होती है। उ०—(क) कर कमलनि विचित्र चौगाने खेलन लगे खेल रिझए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लै चौगान बटा करि आगे प्रभु आए जब बाहर। सूरश्याम पूछत सब ग्वालन खेलैंगे केहि ठाहर।—सूर (शब्द०)। ३. चौगान खेलने का मैदान। उ०—अंतःपुर चौगान लौं निकसत कसमस होइ। नरनारी

धावत सुख छावत पूछत कोउ नहिं कोइ।—रघुराज (शब्द०)। ४. नगाड़ा बजाने की लकड़ी।

चौगानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **चौगान** ?] हुक्के की सीधी नली जिससे धुआँ खींचते हैं। निगाली। सटक।

चौगिर्द—क्रि० वि० [हिं० **चौ**+फ़ा० **गिर्द** (=तरफ)] चारो ओर। चारो तरफ।

चौगुन†—वि० [चतुर्गुण, हिं० **चौगुना**] दे० 'चौगुना'।

चौगुना—वि० [चतुर्गुण, प्रा० **चउग्गुण**] [वि० स्त्री० **चौगुनी**] चार बार और उतना ही। चतुर्गुण। चहारचंद।

मुहा०—**मन चौगुना होना**=उत्साह बढ़ना। चित्त और प्रसन्न होना। उ०—विध्यावली तिया सी न देखी कहूँ तिया नैना बीध्यो प्रभु पिया देखि कियो मन चौगुनो।—प्रिया (शब्द०)।

चौगुनोⓊ†—वि० [हिं० **चौगुना**] दे० 'चौगुना'। उ०—चौगुनो रंगु चढ्यौ चित मैं चुनरी के चुचात लला के निचोरत।—देव ग्रं०, पृ० १५०।

चौगून[१]Ⓤ†—वि० [हिं० **चौगुन**] दे० 'चौगुना'।

चौगून[२]—संज्ञा पुं० [हिं० **चौगुना**] १. चौगुना होने का भाव। २. आरंभ में गाने या बजाने में जितना समय लगाया जाय, आगे चलकर उसके चौथाई समय में गाना या बजाना। दून से भी आधे समय में गाना या बजाना।

विशेष—प्रायः किसी चीज के गाने या बजाने का आरंभ धीरे धीरे होता है, पर आगे चलकर उसकी लय बढ़ा दी जाती है और वही गाना या बजाना जल्दी जल्दी होने लगता है। जब गाना या बजाना साधारण समय से आधे समय में हो तब उसे दून, तिहाई समय में हो, तब उसे तिगून और जब चौथाई समय में हो, तब उसे चौगून कहते हैं।

चौगोड़ा[१]—वि० [हिं० **चौ** (=चार)+**गोड़** (=पैर)] चार पैरोंवाला।

चौगोड़ा[२]—संज्ञा पुं० खरगोश। खरहा।

चौगोड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० **चौ** (=चार)+**गोड़** (=पैर)] १. एक प्रकार की ऊँची चौकी जिसके पायों में चढ़ने में लिये सीढ़ी की तरह डंडे लगे रहते हैं। टिकटी।

विशेष—यह छत, दीवार आदि ऊँचे स्थानों तक पहुँचने, झाड़ने पोंछने, सफेदी या रंग आदि करने के काम में आती है।

२. बाँस की तीलियों का बना हुआ एक ढाँचा या फंदा जिसके चारों पल्लों में तेल में पकाया हुआ पीपल का गोंद लगा रहता है।

विशेष—बहेलिए इससे चिड़िया फँसाते हैं।

† ३. मेंढक। मंडूक।

चौगोशा—संज्ञा पुं० [हिं० **चौ**+फ़ा० **गोशा**] चौखूँटी तश्तरी जिसमें मेवे, मिठाइयाँ आदि रखकर कहीं भेजते हैं।

चौगोशिया[१]—वि० स्त्री० [फ़ा०] चार कोनेवाली।

चौगोशिया[२]—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की टोपी जो कपड़े के चार तिकोने टुकड़ों को सीकर बनाई जाती है।

चौगोशिया[३]—संज्ञा पुं० तुरकी घोड़ा।

चौघड़—संज्ञा पुं० [हिं० **चौ** (=चार)+**दाढ़**] किनारे का वह चौड़ा और चिपटा दाँत जो आहार कूँचने या चबाने के काम में आता है।

चौघड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० **चौ** (=चार)+**घर** (=खाना)] १. चाँदी सोने आदि का बना हुआ एक प्रकार का डिब्बा जिसमें चार खाने बने होते हैं।

विशेष—यह कई आकार का बनता है। विशेषतः गोल होता है और खाने फूल की पँखुड़ी के आकार के बनाए जाते हैं। इन खानों में इलायची, लौंग, जावित्री, सुपारी इत्यादि भरकर महफिलों में रखते हैं।

२. चार खानों का बरतन जिसमें मसाला आदि रखते हैं। ३. दीवाली के दिनों में बिकनेवाला मिट्टी का एक खिलौना जिसमें आपस में जुड़ी हुई चार छोटी छोटी कुल्हियाँ होती हैं। लड़के इसमें मिठाई आदि रखकर खाते हैं। ४. पत्ते की खोंगी जिसमें चार बीड़े पान हों। जैसे,—दो चौघड़े उधर दे आओ। ५. बड़ी जाति की गुजराती इलायची। ६. एक प्रकार का बाजा। चौडोल। उ०—सो तुषार तेइस गज पावा। दुंदुभि औ चौघड़ा दियावा।—जायसी (शब्द०)।

चौघड़िया[१]—वि० [हिं० **चौ** (=चार)+**घड़ी**+**इया** (प्रत्य०)] चार घड़ियों का। चार घड़ी संबंधी। जैसे, चौघड़िया मुहूर्त।

चौघड़िया[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **चौ** (=चार)+**गोड़ा** (=पावा)] एक प्रकार की छोटी ऊँची चौकी जिसमें चार पावे होते हैं। तिरपाई। तिपाई। स्टूल।

चौघड़िया मुहूर्त—संज्ञा पुं० [हिं० **चौघड़िया**+सं० **मुहूर्त**] एक प्रकार का मुहूर्त जो प्रायः किसी जल्दी के काम के लिये, एक के दिन के अंदर ही निकाला जाता है।

विशेष—जब कोई शुभ मुहूर्त दूर होता है, और यात्रा या इसी प्रकार का और कोई काम जल्दी करना होता है, तब इस प्रकार मुहूर्त निकलवाया जाता है। ऐसा मुहूर्त दिन के दिन या एक दो दिन के अंदर ही निकला जाता है। ऐसा मुहूर्त घड़ी, दो घड़ी या चार घड़ी का होता है और उतने ही समय में उस कार्य को आरंभ कर दिया जाता है।

चौघड़ी†—वि० स्त्री० [हिं० **चौ**+**घेरा**] चारतह की। चार परत की।

चौघर[१]—वि० [देश०] घोड़ों की एक चाल। चौफाल। पोइयाँ। सरपट। उ०—अबलक अबरस लखी सिराजी। चौघर चाल समुँद सब ताजी।—जायसी (शब्द०)।

चौघरⓊ[२]—संज्ञा पुं० [हिं० **चौघड**] दे० 'चौघड़'।

चौघरा—संज्ञा पुं० [हिं० **चौ**+**घर**] १. पीपल की दीयट जिसके दीये में चार बत्तियाँ जलती हैं। २. दे० 'चौघड़ा'।

चौघरियाⓊ—संज्ञा स्त्री० [देश०] शहनाई। रोशनचौकी। उ०—बाजन लागु चपल चौघरिया चित्त चतुरता भागि रे।—धरनी०, पृ० २८।

चौघोड़ीⓊ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **चौ**+**घोड़ा**] चौकड़ी गाड़ी। चार घोड़ों की गाड़ी या रथ।

चौचंदⓊ†—संज्ञा पुं० [हिं० **चौथ**+**चंद** या **चवाव**+**चंड**] १. कलंक-सूचक अपवाद। बदनामी की चर्चा। निंदा। उ०—सखि!

हौं वा रँगीले के रंगी रँगी ये चवाइनैं चौचंद कीबो करैं। —शृं० सत० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—चौचंद पारना=चवाव करना। बदनामी करना।

२. शोर। उ०—चित चोपन चाह के चौचंद में हहराय हिराय के हारि परौं।—घनानंद० पृ० २६।

चौचंदहाई(पु)—वि० स्त्री० [हिं० चौचंद+हाई (प्रत्य०)] चवाव करनेवाली। बदनामी फैलानेवाली। दूसरों की बुराई करनेवाली। उ०—चौचंदहाई जरैं ब्रज की जे परायो बनो सब भाँति बिगारैं।—ठाकुर (शब्द०)।

चौज—संज्ञा पुं० [चोज] दे० 'चोज'।

चौजाम—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+जाम (प्रहर)] चार प्रहर।

चौजामा(पु)—वि० [हिं० चौजामा+आ (प्रत्य)] चार प्रहर की। चार पहर की। उ०—मुसाफिर चेत करो निसि बीत गई चौजामा।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ८४६।

चौजुगी संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्युगी. हिं० चौ+सं० युग] चार युगों का काल।

चौठी—संज्ञा स्त्री० [चतुर्थी हिं, चौथी] लवनी का चौथा अंश। ताड़ी चुआने के बर्तन का चौथा भाग।

चौजुत(पु)—वि० [चौ+सं० युक्त, प्रा० जुवत] चतुर्दिक्। चारो ओर।

चौड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० चौड] चूड़ाकरण संस्कार।

चौड़[2]—वि० [हिं० चौपट] चौपट। सत्यानाश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चौड़कर्म—संज्ञा पुं० [सं० चौडकर्मन्] दे० 'चौड़'।

चौड़ना—क्रि० स० [हिं० चौड] चौपट करना। सत्यानाश करना।

चौड़ा[1]—वि० [हिं०चौ (=चार)+पाट(=चौड़ाई) या सं० चिपिट =चिपटा] [वि०स्त्री०चौड़ी] लंबाई की ओर के दोनों किनारों के बीच विस्तृत। लंबाई से भिन्न दिशा की ओर फैला हुआ। चकला।

यौ०—चौड़ा चकला।

चौड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० चुटा (=कूएँ के पास का गड्ढा)] १. कूँए के पास का वह गड्ढा जिसमें मोट आदि से निकाला हुआ पानी गिरता है। चौड़ा। २. गड्ढा। वह गड्ढा जिसमें अनाज रखते हैं।

चौड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौड़ा+ई (प्रत्य०)] लंबाई से भिन्न दिशा की ओर का विस्तार। लंबाई के दोनों किनारों के बीच का फैलाव।

चौड़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौड़ा+आन (प्रत्य०)] चौड़ाई।

चौड़ाना—क्रि० स० [हिं० चौड़ा से नामिक धातु] चौड़ा करना। फैलाना।

चौड़ाव—संज्ञा पुं० [हिं० चौड़ा+आव (प्रत्य०)] दे० 'चौड़ान'।

चौड़ी—वि० स्त्री० [हिं० चौड़ा का स्त्री०] दे० 'चौड़ा'।

चौडोल[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चंडोल'।

चौडोल[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+ढोल ?] एक प्रकार का बाजा जिसे चौघड़ा भी कहते हैं। उ०—आसपास बाजत चौडोला। दुंदुभि झाँझ तूरडफ ढोला।—जायसी (शब्द०)।

चौतगो—वि० [हिं० चौ+तागा] वह डोरा जिसमें चार तागे लगे हों।

चौतनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+तनी (=बंद)] १. चौतनी। उ०—भाल तिलक मसि बिंदु बिराजत सोहति सीस लाल चौतनियाँ।—तुलसी (शब्द०)। २. अँगिया। चोली। चौबंदी। उ०—नारँगी नीबू उरोजनि जानि दए नख बानर चौतनियाँ में।—सेवक श्याम (शब्द०)।

चौतनिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौतनी+इया (प्रत्य०)] दे० 'चौतनियाँ'। उ०—(क) करत सिंगार चार भैया मिलि शोभा बरनि न जाइ। चित्र विचित्र सुभग चौतनिया इंद्रधनुष छवि छाइ।—सूर (शब्द०)।

चौतनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+तनी (=बंद)] बच्चों की टोपी जिसमें चार बंद लगे रहते हैं। उ०—(क) पीत चौतनी सिरन सुहाई। तुलसी (शब्द०)। (ख) रुचिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस। नख सिख सुंदर बंधु दोउ शोभा सकल सुदेस।—मानस, १।२१९।

चौतरका—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+तड़क (=लकड़ी, धरन)] एक प्रकार का खेमा या तंबू।

चौतरफ—क्रि० वि०, वि० [हिं० चौ+तरफ] चारों ओर। सभी ओर।

चौतरफा—अव्य० [हिं० चौ+तरफ] चारो ओर। चारों तरफ।

चौतरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० चत्वरक] दे० 'चबूतरा'।

चौतरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+तार] एकतारे की तरह का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये चार तार होते हैं।

चौतरा[3]—वि० चार तारोंवाला। जिसमें चार तार हों।

चौतरिया[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौतरा] छोटा चबूतरा।

चौतरिया[2]—वि० [हिं० चौ+तार+इया (प्रत्य०)] चार तारोंवाला।

चौतहा—वि० [हिं० चौ+तहा] चार तहोंवाला।

चौतही—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+तह] खेस की बनावट (लहरिएदार) का एक कपड़ा जो इतना लंबा होता है कि चार तह करके बिछाने पर भी एक मनुष्य के लेटने भर को होता है।

चौतार संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद] चौपाया। चतुष्पद

चौताल—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+ताल] १. मृदंग का एक ताल।

विशेष—इसमें छह दीर्घ अथवा १२ लघु मात्राएँ होती हैं और चार आघात और दो खाली होते हैं। इसका बोल यह है—धा धा धिनता कत्ता गेदिनता तेटेकता गदिधिन।

२. एक प्रकार का गीत जो होली में गाया जाता है।

चौताला वि० [हिं० चौ+ताल] चार तालोंवाला। जिसमें चार ताल हों।

चौताली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपास की ढेंढी या डोडा जिसमें से रूई निकलती है।

चौतुका¹—वि० [हिं० चौ+तुक+आ (प्रत्य०)] जिसमें चार तुक हों।

चौतुका²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का छंद जिसके चारों चरणों की तुक मिली हो।

चौथ¹—संज्ञा स्त्री० [पुं० चतुर्थी, प्रा० चउत्थि, हिं० चउथि] १. प्रतिपक्ष की चौथी तिथि। हर पखवारे का चौथा दिन। चतुर्थी।

मुहा०—चौथ का चाँद = भाद्र शुक्ल चतुर्थी का चंद्रमा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि कोई देख ले तो झूठा कलंक लगता है। उ०—लगै न कहुँ ब्रज गलिन में आवत जात कलंक। निरखि चौथ को चंद यह सोचत सुमुखि ससंक।—पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—भागवत आदि पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने चौथ का चंद्रमा देखा था; इसी से उन्हें स्यमंतक मणि की चोरी लगी थी। अबतक हिंदू भादों सुदी चौथ के चंद्रमा का दर्शन बचाते हैं; और यदि किसी को झूठ मूठ कलंक लगता है तो कहते हैं कि उसने चौथ का चाँद देखा है। काशी में लोग इसे ढेला चौथ कहते हैं।

२. चतुर्थांश। चौथाई भाग। ३. मराठों का लगाया हुआ एक प्रकार का कर जिसमें आमदनी या तहसील का चतुर्थांश ले लिया जाता था।

चौथ²ⓟ†—वि० चौथा। उ०—चंपकलता चौथ दिन जान्यो मृगमद सीर लगायो।—सूर (शब्द०)।

चौथपनⓟ—संज्ञा पुं० [सं० चौथा+पन] मनुष्य के जीवन की चौथी अवस्था। बुढ़ाई। बुढ़ापा। उ०—होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग जनम गएउ हरि भगति बिनु।—मानस १।१४२।

चौथा¹—वि० [सं० चतुर्थ, प्रा० चउत्थ] [वि० स्त्री० चौथी] क्रम में चार के स्थान पर पड़नेवाला। तीसरे के उपरांत का। जिसके पहले तीन और हों।

चौथा²—संज्ञा पुं० मृतक के घर होनेवाली एक रीति जिसमें संबंधी तथा बिरादरी के लोग इकट्ठे होते हैं और दाह करनेवाले को रुपया पगड़ी आदि देते हैं। यदि मृतक की विधवा स्त्री जीवित हो तो उसे धोती चद्दर आदि दी जाती है। जैसे,—कल तुम उनके चौथे में गए थे?

चौथाई संज्ञा पुं० [हिं० चौथा+ई (प्रत्य०)] चौथा भाग। चार सम भागों में से एक भाग। चतुर्थांश। चहारुम।

चौथिⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौथ] दे० 'चौथ'।

चौथिआई†—संज्ञा पुं० [हिं० चौथाई] दे० 'चौथाई'।

चौथिहार†—वि०, संज्ञा पुं० [चौथी+हार (प्रत्य०)] चौथी लानेवाला।

चौथिया—संज्ञा पुं० [हिं० चौथा] १. वह ज्वर जो प्रति चौथे दिन आए।

क्रि० प्र०—आना।

यौ०—चौथिया ज्वर। चौथिया बुखार।

२. चौथाई का हकदार। चतुर्थांश का अधिकारी।

चौथी¹—वि० स्त्री० [हिं० चौथा का स्त्री०] दे० 'चौथा'।

चौथी²—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्थी] १. विवाह की एक रीति जो विवाह हो जाने पर चौथे दिन होती है। इसमें वर कन्या के हाथ के कंगन खोले जाते हैं। उ०—चौथे दिवस रंगपति आए। विधि चौथी कर चार कराए।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—चौथी का जोड़ा=वह जोड़ा या लहँगा जो वर के घर से आता है और जिसे दुलहिन चौथी के दिन पहनती है। चौथी खेलना=चौथी के दिन दूल्हा दुलहिन का एक दूसरे के ऊपर मेवे, फल आदि फेंकना। चौथी छूटना=चौथी के दिन वर कन्या के हाथों का कंगन खुलना। चौथी की रीति होना। चौथी छुड़ाना=चौथी की रीति करना।

२. विवाह तथा गौने के चौथे दिन वधू के घर से वर के घर आनेवाला उपहार। उ०—गौने के औस छ सातक बीते न, चौथी कहा अबहीं चलि आई।—मति० ग्रं०, पृ० ३१६।

विशेष—चौथी भेजने की प्रथा दो प्रकार की है। एक के अनुसार विवाह तथा गौना दोनों में चौथी भेजी जाती है। परंतु कहीं कहीं वधू के ससुराल रहने पर ही चौथी भेजी जाती है। यह चार दिनों के पूर्व या बाद भी भेजी जाती है।

३. मुसलमानों की एक प्रथा, जिसमें शादी के बाद लड़का अपनी पत्नी से मिलने के लिये ससुराल आता है। इस प्रथा के अनुसार मिलन चौथी आने पर ही होता है। ४. फसल की बाँट जिसमें जमींदार चौथाई लेता है और असामी तीन चौथाई। चौकुर।

चौथैया¹†—संज्ञा पुं० [हिं० चौथाई] चौथाई। चतुर्थांश।

चौथैया²—संज्ञा स्त्री० छोटी नाव जिसमें बहुत थोड़ा बोझ लद सके।

चौदंता¹—वि० [सं० चतुर्दन्त] [वि० स्त्री० चौदंती] १. चार दाँतोंवाला। जिसके चार दाँत हों। जो पूरी बाढ़ को न पहुँचा हो। बचपन और जवानी के बीच का। उभड़ती जवानी का।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार घोड़े के बच्चों और बैलों आदि के लिये होता है।

२. अल्हड़। उग्र। उद्दंड।

चौदंता²—संज्ञा पुं० स्याम देश के हाथी की एक जाति जिसे चार दाँत होते हैं।

चौदंती¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौदंता] अल्हड़पन। उद्दंडता। धृष्टता। ढिठाई।

चौदंती² वि० स्त्री० दे० 'चौदंता'।

चौदⓟ† वि० [हिं० चौदह] दे० 'चौदह'। उ०—चौद ब्रह्मंड रह्या भर पानी।—रामानंद०, पृ० ११।

चौदश—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्दशी] दे० 'चौदस'।

चौदस—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्दशी, प्रा० चउद्दसि] वह तिथि जो किसी पक्ष में चौदहवें दिन होती है। चतुर्दशी। उ०—फागुन वदि चौदस को शुभ दिन अरु रविवार सुहायो। नखत उत्तरा आप विचारयो काल कंस को आयो।—सूर (शब्द०)।

चौदसि(पु)†—वि० [हिं० चौदस] क्रम में चौदस को पड़नेवाला। दे० 'चौदस'। उ०—कीन्ह घरगजा मरदन, ग्रौ सखि कीन्ह ग्रन्हान। पूनि कै चाँद जो चौदसि, रूप गएउ छवि भान।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४३।

चौदसी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौदस] १. चतुर्दशी। २. पूर्णिमा (मुसलमान पूनम को चौदहवीं कहते हैं)।

मुहा०—चौदसी का चाँद=(१) पूर्ण कलाग्रों से उदित होनेवाला चाँद। (२) बहुत सुंदर व्यक्ति (ला०)।

चौदह¹—वि० [सं० चतुर्दश प्रा०, चउद्दस, ग्रप० चउद्दह] जो गिनती में दस ग्रौर चार हो। जो दस से चार ग्रधिक हो।

चौदह² संज्ञा पुं० दस ग्रौर चार के जोड़ की संख्या जो ग्रंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—१४।

मुहा० —चौदह विद्या, चौदह भुवन, चौदह रत्न=दे० 'विद्या', 'भुवन' ग्रौर 'रत्न'।

यौ०—चौदह खंड=चौदह भुवन। उ०—चौदह खंड बसै जाके मुख, सबको करत ग्रहारा हो।—कबीर श०, भा० २, पृ० १४। चौदह चंदा=चौदह विद्याग्रों का प्रकाश। उ०—चौसठ दीवा जोय के, चौदह चंदा माहिं। तेहिं घर किसका चाँदना, जेहिं घर सतगुरु नाहिं। -कबीर सा० सं० भा० १, पृ० १७। चौदह ठहर=चौदह लोक। उ०—वाखरि एक विधाते कीन्हा चौदह ठहर पाठ सो लीन्हा।—कबीर बी०, पृ० १२।

चौदहवाँ—वि० [हिं० चौदह+वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान तेरहवें स्थान के उपरांत हो। जिसके पहले तेरह ग्रौर हों।

चौदहवीं—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौदह+वीं=(प्रत्य०)] मुसलमानों के ग्रनुसार पूर्णिमा की तिथि।

मुहा०—चौदहवीं का चाँद=(१) पूनम का चाँद। (२) पूरे चाँद जैसा सुंदर व्यक्ति।

चौदांत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+दांत] दो हाथियों की लड़ाई। हाथियों की मुठभेड़। उ०—पीलहि पील देखावा भयो दोहूँ चौदांत। राजा चहै बुर्द भा शाह चहै शह मात।—जायसी (शब्द०)।

चौदावाँ—वि० [हिं० चौ(=चार)+दाँव] यह खेल (विशेषतः सोरही या इसी प्रकार का ग्रौर जूए का खेल) जिसमें चार दाँव हों। वह खेल जिसमें चार दाँव लग सके।

चौदा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चौना] दे० 'चौना'।

चौदा(पु)†²—वि० [हिं० चौदह] दे० 'चौदह'। उ०—जब बरस चौदा मने ग्रो ग्राया। इल्म होर हिकमत हुनर सब पाया। —दक्खिनी०, पृ० ३६३।

चौदानिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौदानी] दे० 'चौदानी'।

चौदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+दाना+ई० (प्रत्य०)] १. एक प्रकार की बाली जिसमें चार पत्तियों की सोने की जड़ाऊ टिकड़ी लगी होती है। २. कान की वह बाली जिसमें मोती के चार दाने लगे हों।

चौदायनि—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र प्रवर्तक ऋषि का नाम।

चौदीग्राँ, चौदीवाँ—वि० [हिं० चौदावाँ] दे० 'चौदावाँ'।

चौधर¹—क्रि० वि० [हिं० चौ+घर] चारों ग्रोर। चारों तरफ। उ०—रचा दो तख्त जल्वे का खुशी सूँ, के चौधर चौंक मोतियाँ सूँ सँवारे।—दक्खिनी०, पृ० ७५।

चौधर²—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों की एक जाति। उ० -ऐराकी कक्षी सबज सुरपा समद सुरंग। वादामी ग्रवलष बनै, चौधर नुकर पिलंग।—प० रासो, पृ० १३८।

चौधराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौधरी] १. चौधरी का काम। २. चौधरी का पद।

चौधरात—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौधरी] दे० 'चौधराना'।

चौधराना—संज्ञा पुं० [हिं० चौधरी] चौधरी का काम। २. चौधरी का पद। ३. वह जो चौधरी को उसके कामों के बदले मिले। ४. कुनवियों का मुहल्ला या टोला।

चौधरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौधरी] चौधरी की स्त्री।

चौधरी—संज्ञा पुं० [सं० चतुर (=तकिया, मसनद)+धर (=धरनेवाला)] १. किसी जाति, समाज या मंडली का मुखिया जिसके निर्णय को उस जाति, समाज या मंडली के लोग मानते हैं। प्रधान। उ०—भनै रघुराज कारपण्य परम चौधरी हैं जग के विकार जेते सबै सरदार हैं।—(शब्द०)। २. कुनबी या कुर्मी नामक जाति।

विशेष—कुछ लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति 'चतुर्धुरीण' शब्द से बतलाते हैं।

चौधारी¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+धारा] वह कपड़ा जिसमें ग्राड़ी ग्रौर बेड़ी धारियाँ बनी हों। चारखाना। उ०—पेमया ढोरिया ग्रौ चौधारी। साम, सेत; पीयर हरियारी। जायसी (शब्द०)।

चौधारी²—वि० [देश०] चौपहलू। उ०—दोनों चरणों का इकसार चौधारी (चौपहलू) चूरा, घुंघरू ग्रौर नुपूर।—पोद्दार ग्रभि० ग्रं०, पृ० १६३।

चौना†—संज्ञा पुं० [पुं० च्यवन] कूएँ पर का वह ढालुवाँ स्थान जहाँ खेत सींचनेवाले ढेंकुली या चरस ग्रादि से पानी निकालकर गिराते हैं। चीकर। लिलारी।

चौनावा—वि० [हिं० चौ+नाव (वि० रेखा)] [स्त्री० चौनावी] (तलवार ग्रादि का फल) जिसपर चार नाँवें बनी हों। जिसमें गड्ढे बने हों।

चौप—संज्ञा पुं० [हिं० चोप] दे० 'चोप'।

चौपई—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पदी] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ होती हैं ग्रौर ग्रंत में गुरु लघु होते हैं। जैसे,—राम रमापति तुम मम देव। नहिं प्रभु होत तुम्हारी

सेव। दीन दयानिधि भेव अभेव। मम दिशि देखो यह यश लेव।

चौपखा†—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+सं० पक्ष, हिं० पाख] परिखा। चहारदीवारी।

चौपग†—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+पग] चार पैरों वाला पशु। चौपाया।

चौपट¹—वि० [हिं० चौ (=चार)+पट (=किवाड़ा), या हिं० चापट] चारों ओर से खुला हुआ। अरक्षित।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

चौपट²—वि० [हिं० चौ (=चार)+पट (=सतह) तात्पर्य, चारो तरफ से बराबर या विपरीत(=नष्ट)] नष्ट भ्रष्ट। विध्वंस। तबाह। बरबाद। सत्यानाश। उ०—जो दिन प्रति अहार कर सोई। विस्व वेगि सब चौपट होई।—मानस, १।१८०।

यौ०–चौपट चरण = जिसके कहीं पहुंचते ही सब कुछ नष्ट भ्रष्ट हो जाय। सत्जकदम। चौपटा।

चौपटहा†—वि० [हिं० चौपट+हा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चौपटही] चौपट करनेवाला। नष्ट करनेवाला। सर्वनाशी।

चौपटा—वि० [हिं० चौपट] चौपट करनेवाला। नाश करनेवाला। काम बिगाड़नेवाला। सत्यानाशी।

चौपटानंद—वि० [हिं० चौपटा+नंद] अत्यंत सत्यानाशी। जिसका आगंछ बुरा हो।

चौपड़—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पट, प्रा० चउप्पट] १. चौसर नाम का खेल। नर्दबाजी। २. इस खेल की बिसात और गोटियाँ आदि। ३. पलंग आदि की वह बनावट जिसमें चौसर के से खाने बने हों। ४. आंगन की बनावट जिसमें चौसर के खाने बने हों।

चौपत†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+परत] कपड़े की तह या घड़ी जो लगाई जाती है।

चौपत²—संज्ञा स्त्री० दे० 'चौपतिया'।

चौपत³—संज्ञा पुं० पत्थर का वह टुकड़ा जिसमें एक कील लगी रहती हैं और जिसपर कुम्हार का चाक रहता है।

चौपतना—क्रि० स० [हिं० चौपत से नामिक धातु] तह लगाना। परत लगाना। (कपड़े आदि की)।

चौपताना†—क्रि० स० [हिं० चौपत] कपड़े आदि की तह लगाना। घड़ी लगाना।

चौपतिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+पत्ती] १. एक प्रकार की घास जो गेहूं के खेत में उत्पन्न होकर फसल को बहुत हानि पहुंचाती हैं। २. एक प्रकार का साग। उटंगन। ३. कशीदे आदि में वह बूटी जिसमें चार पत्तियाँ हों।

चौपतिया²—वि० १. चार पत्तियोंवाला। २. (कशीदा) जिसमें चार पत्तियाँ दिखलाई गई हों।

चौपथ—संज्ञा पुं० [पुं० चतुष्पथ] १. चौराहा। चौरस्ता। चौमुहानी। २. चौपत नाम का पत्थर जिसपर चाक रहता है।

चौपद(ए)†—संज्ञा पुं० [पुं० चतुष्पद] चार पैरों वाला पशु। चौपाया।

चौपया†—संज्ञा पुं० [हिं० चौपाया] दे० 'चौपाया'।

चौपर¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौपड़] दे० 'चौपड़'।

चौपर²(ए)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौपड़ (=चौसर के खानेवाला आंगन)] आंगन। प्रांगण। उ०—स्यामगोर कर मूंदरी हीरन की जु उदोत। मनो मदनपुर चौपरें दीपमालिका होत।—ब्रज ग्रं०, पृ० ६६।

चौपरतना—क्रि० स० [हिं० चौ (=चार)+परत+ना (प्रत्य०)] कपड़े आदि की तह लगाना। कपड़े आदि को चारों ओर से कई फेर मोड़कर परत बैठाना।

चौपरि(ए)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौपड़] दे० 'चौपड़'। उ०—मनपति सोहत स्याम ढिग सरसुति राधे संग। दंपतिहित संपतिसहित खेलत चौपरि रंग।—ब्रज ग्रं०, पृ० ६५।

चौपल—संज्ञा पुं० [पुं० चतुष्फलक] चौपत नाम का पत्थर जिसपर कुम्हार का चाक रहता है।

चौपहरा वि०—[हिं० चौ (=चार)+पहर] १ चार पहर का। चार पहर संबंधी। २. चार चार पहर के अंतर का।

मुहा०—चौपहरा देना=चार चार पहर के अंतर पर घोड़े से काम लेना।

चौपहल¹—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+पहल] चार पहल या पार्श्व।

चौपहल²—वि० [हिं० चौ+फा० पहलू, मि० सं० फलक] जिसके चार पहल या पार्श्व हों। जिसमें लंबाई, चौड़ाई और मोटाई हो। वर्गात्मक।

चौपहला¹—वि० [हिं० चौपहल+आ (प्रत्य०)] दे० 'चौपहल'।

चौपहला²—वि० [हिं० चौपहल+आ (प्रत्य०)] एक प्रकार का डोला। वि० दे० 'चौपाल ५'।

चौपहलू—वि० [हिं० चौपहल+ऊ (प्रत्य०)] दे० 'चौपहला'।

चौपहिया¹†—वि० [हिं० चौ+पहिया] चार पहियों का। जिसमें चार पहिए हों।

चौपहिया²—संज्ञा स्त्री० चार पहियों की गाड़ी।

चौपहलू(ए)—वि० [हिं० चौपहला] दे० 'चौपहला'। उ०—हाथनि चारि चारि चूरी पाइनि इकसार चूरा चौपहिलू इक टक रहे हरि हेरी।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

चौपही(ए)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौपाई] दे० 'चौपाई'। उ०—कथा संसकृत सुनि कछु थोरी। भाषा बाँधि चौपही जोरी।—माधवानल०, पृ० १८७।

चौपा†—संज्ञा पुं० [पुं० चतुष्पाद] दे० 'चौपाया'।

चौपाई—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पदी] १. एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। इसके बनाने में केवल द्विकल और त्रिकल का ही प्रयोग होता है। इसमें किसी त्रिकल के बाद दो गुरु और सबसे अंत में जगण या तगण न पड़ना चाहिए। इसे रूप चौपाई या पादाकुलक भी कहते हैं।

विशेष—वास्तव में चौपाई (चतुष्पदी) वही है जिसमें चार चरण हों और चारों चरणों का अनुप्रास मिला हो। जैसे,—छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई। तरनिउ मुनिघरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।

पर साधारणतः लोग दो चरणों को ही (जिन्हें वास्तव में अर्धाली कहते हैं) चौपाई कहते और मानते हैं। मात्रिक के अतिरिक्त कुछ चौपाइयाँ ऐसी भी होती हैं जो वर्णवृत्त के अंतर्गत आती हैं और जिनके अनेक भेद और भिन्न भिन्न नाम हैं। उनका वर्णन अलग अलग दिया गया है।

†२. चारपाई। खाट।

चौपाड़—संज्ञा पुं० [हिं० चौपाल] दे० 'चौपाल'।

चौपायनि—संज्ञा पुं० [सं०] चुप नामक ऋषि के वंशज।

चौपाया[1]—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद, प्रा० चउप्पाव] चार पैरोंवाला पशु। गाय, बैल, भैंस आदि पशु। (प्रायः गाय बैल आदि के लिये ही अधिक बोलते हैं)।

चौपाया[2]—वि० जिसमें चार पाये लगे हों।

चौपार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौपाल] दे० 'चौपाल'।

चौपाल—संज्ञा पुं० [हिं० चौबार] १. खुली हुई बैठक। लोगों के बैठने उठने का वह स्थान जो ऊपर से छाया हो, पर चारों ओर खुला हो।

विशेष गाँवों में ऐसे स्थान प्रायः रहते हैं जहाँ लोग बैठकर पंचायत, बातचीत आदि करते हैं।

२. बैठक। उ०—सब चौपारहि चंदन खँभा। बैठा राजा भइ तब सभा।—जायसी (शब्द०)। ३. दालान। बरामदा। ४. घर के सामने का छायादार चबूतरा। ५. एक प्रकार की खुली पालकी जिसमें परदे या किवाड़ नहीं होते। चौपहला।

चौपास(पु)†—क्रि० वि० [हिं० चौ (=चार) पास+(=तरफ)] चारों ओर। उ०- वेढ़ल सकल सखी चौपासा। अति खीन स्वास वहइ तसु नासा।—विद्यापति, पृ० ४८३।

चौपुरा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+पुर (=चरस)+आ (प्रत्य०)] वह कुआँ जिसपर चार पुर या मोट एक साथ चल सकें। वह कुआँ जिसपर चार चरसे एक साथ चलते हों।

चौपेज—वि० [हिं० चौ (=चार)+अं० पेज (=पृष्ठ)] १. चार पृष्ठोंवाला। २. एक ताव कागज में चार पृष्ठ होनेवाला (पुस्तकों की छपाई आदि)।

यौ०—चौपेजी छपाई।

चौपैया—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पदी] १. चार चरणों वाले एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ और १२ के विश्राम से ३० मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है।

विशेष—इसके आरंभ में एक द्विकल के उपरांत सब चौकल होने चाहिए और प्रत्येक चौकल में सम के उपरांत सम और विषम के उपरांत विषम कल का प्रयोग होना चाहिए; साथ ही चारो चरणों का अनुप्रास भी मिलना चाहिए। जैसे,—भै प्रकट कृपाला, दीन दयाला, कौशल्या हितकारी। हर्षित महतारी, मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी। लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा, निज आयुध भुजचारी। भूषन वनमाला, नयन बिशाला, शोभा सिंधु खरारी।

†२. चारपाई। खाट।

चौफला—वि० [हिं० चौ+फल] जिसमें चार फल या धारदार लोहे हों (चाकू)।

चौफुलिया—वि० [हिं० चौ+फूल+इया (प्रत्य०)] १. जिसमें चार फूल एक साथ निकलते हों (पौधा)। २. जिसमें चार फूल एक साथ बने हों (चित्र)।

चौफेर—क्रि० वि० [हिं० चौ+फेर] चारो ओर। चारो तरफ।

चौफेरी[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+फेरा] चारो ओर घूमना। परिक्रमा।

चौफेरी[2]†—क्रि० वि० चारो ओर।

चौफेरी[3]—संज्ञा स्त्री० मुगदर का एक हाथ जिसमें बगली का हाथ करके मुगदर को पीठ की ओर से सामने छाती के समानांतर लाकर इतना तानते हैं कि वह छाती की बगल में बहुत दूर तक निकल जाता है।

चौबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+बंद] १. एक प्रकार का छोटा चुस्त अंगा या कुरती जिसमें जामे की तरह एक पल्ला नीचे और एक पल्ला ऊपर होता है और दोनों बगल चार बंद लगते हैं। बगलबंदी। †२. राजस्व। कर। ३. घोड़े के चारो सुमों की नालबंदी। ४. चारों ओर से बंद करने, घेरने, बाँधने का भाव।

चौबंसा—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण होता है। जैसे,—नय धरु एका। न भजु अनेका। इसे शशिवदना, चंडरसा और पादाकुलक भी कहते हैं।

चौबगला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+बगल+आ (प्रत्य०)] मिरजई, फतुही, कुरती, अंगे इत्यादि में बगल के नीचे और कली के ऊपर का भाग।

चौबगला[2]—वि० चारो ओर का। जो चारों ओर हो।

चौबगला†[3]—क्रि० वि० चारों ओर। चारो तरफ।

चौबगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+अ० बगल] बगलबंदी।

चौबच्चा—संज्ञा पुं० [हिं० चहबच्चा] १. कुंड। हौज। छोटा गड्ढा जिसमें पानी रहता है। २. वह गड्ढा जिसमें धन गड़ा हो। जैसे, किले के भीतर कई चौबच्चे भरे पड़े हैं।

चौबरदी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+बर्द (=बैल)+ई (प्रत्य०)] चार बैलों की गाड़ी।

चौबरसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+बरस+ई (प्रत्य०)] १. वह उत्सव या क्रिया, आदि जो किसी घटना के चौथे बरस हो। २. वह श्राद्ध आदि जो किसी के निमित्त उसके मरने के चौथे बरस हो।

चौबरा†—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (चिह्नचार)+बाँट (=हिस्सा)] फसल की वह बँटाई जिसमें से जमींदार चतुर्थांश लेता है।

चौबरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौबारी+इया (प्रत्य०)] दे० 'चौबारा'। उ०—खेलत रहलीं बाबा चौबरिया आइ गए अनहार हो।—धरम०, पृ० ३४।

चौबा—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदी] [स्त्री० चौबाइन] १. ब्राह्मणों की एक जाति या शाखा। २. मथुरा का पंडा। दे० 'चोबे'।

चौवाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौबे] चौबे की स्त्री।

चौबाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+वाई (=हवा)] १. चारों ओर से बहनेवाली हवा। २. अफवाह। किंवदंती। उड़ती खबर। ३. धूमधाम की चर्चा।

चौबाछा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+बाछना (=कर या चंदा वसूल करना)] एक प्रकार का कर जो दिल्ली के बादशाहों के समय में लगता था।

विशेष—यह कर चार वस्तुओं पर लगता था—पाग (प्रति मनुष्य), ताग अर्थात् करधनी (प्रति बालक), कूरी अर्थात् अलाव या कौड़ा, (प्रति घर), और पूँछी (प्रति चौपाया)।

चौबानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+बानी] चार प्रकार की वाणी, हैं—परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी। उ०—परा पसंती मधमा वैखरी, चौबानी ना मानी। पाँच कोष नीचे कर देखो, इनमें सार न जानी।—कबीर० श०, भा० २, पृ० ६६।

चौबार—संज्ञा पुं० [हिं० चौबारा] दे० 'चौबारा'।

चौबारा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+बार (=द्वार)] १. कोठे के ऊपर की वह कोठरी जिसके चारों ओर दरवाजे हों। बँगला। बालाखाना। २. खुली हुई बैठक। लोगों के बैठने उठने का ऐसा स्थान जो ऊपर से छाया हो, पर चारों ओर खुला हो।

चौबारा[२]—क्रि० वि० [हिं० चौ (=चार)+बार (=दफा)] चौथी दफा। चौथी बार।

चौबारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौबारा का स्त्री०] दे० 'चौबारा'।

चौबाहा[१]†—वि० [हिं० चौ+बाहना (=जोतना)] बोने से पूर्व चार बार जोता जानेवाला (खेत)।

चौबाहा[२]†—संज्ञा पुं० चार बार जोतने की क्रिया।

चौबिसा†—वि० [हिं० चौबीस] दे० 'चौबीस'।

चौबीस[१]—वि० [सं० चतुर्विंशत्, प्रा० चउबीसा] जो गिनती में बीस और चार हो। बीस से चार अधिक।

चौबीस[२]—संज्ञा पुं० बीस से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२४।

चौबीसवाँ वि० [हिं० चौबीस+वाँ (प्रत्य०)] क्रम में जिसका स्थान तेइसवें के आगे हो। जिसके पहले तेईस और हों।

चौबे—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदी, प्रा० चउव्वेदी, हिं० चउबेदी] [स्त्री० चौबाइन] ब्राह्मणों की एक जाति या शाखा।

विशेष—मथुरा के सब पंडे चौबे कहलाते हैं।

चौबोला—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+बोल] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ८ और ७ के विश्राम से १५ मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु गुरु होता है। जैसे,—रघुबर तुम सों विनती करौं। कीजै सोई जाते तरौं। भिखारीदास ने इसके दुगुने का चौबोला मानकर १६ और १४ मात्राओं पर यति मानी है।

चौभड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+दाढ़] दाढ़ का वह चौड़ा, चिपटा और गड्ढेदार दाँत जिससे आहार कूचते या चबाते हैं।

चौभर—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौमर] दे० 'चौभर'।

चौभी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोभना] नाँगर या नगरा में मिला हुआ हल का वह भाग जिसमें फल लगा होता है और जुताई के समय जिसका कुछ भाग फाल के साथ जमीन के अंदर रहता है।

चौमंजिला—वि० [हिं० चौ (=चार)+फा० मंज़िल] चार मरातिब या खंडोंवाला (मकान आदि)।

चौमस‡ संज्ञा पुं० [हिं० चौ+मास] वह खेत जो रबी की बोवाई के लिये वर्षा के चार मास जोता गया हो। चौमासा।

चौमसिया[१]—वि० [हिं० चौ+मास] १. चार महीने का। २. वर्षा के चार महीनों में होनेवाला। ३. मौसम संबंधी।

चौमसिया[२]—संज्ञा पुं० वह हलवाहा जो चार महीने के लिये नौकर रखा गया हो।

चौमसिया[३]—संज्ञा पुं० [हिं० चार+माशा] चार माशे का बाट। चार माशे तौल का बटखरा।

चौमहला—वि० [हिं० चौ+महल] चार खंडों का। चार मरातिब का (मकान)।

चौमाप—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+माप] [वि० चौमापी] १. किसी चीज की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई तथा काल नापने का चार अंग। २. उक्त चारों अंगों का समन्वित रूप। चारों आयाम।

चौमार्ग†—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मार्ग] चौरस्ता। चौमुहानी।

चौमास—संज्ञा पुं० [हिं० चौमासा] दे० 'चौमासा'।

चौमासा[१]—संज्ञा पुं० [सं० चातुर्मास] १. वर्षा काल के चार महीने आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन। चातुर्मास। २. वर्षा ऋतु के संबंध की कविता। ३. खरीफ की फसल उगने का समय। ४. वह खेत जो वर्षा काल के चार महीनों (असाढ़, सावन, भादों और कुवार) में जोता गया हो। ५. किसी स्त्री के गर्भवती होने के चौथे महीने में किया जानेवाला उत्सव। ६. दे० 'चौमसिया'।

चौमासा[२]—वि० १. चौमासे में होनेवाला। चौमासा संबंधी। २. चार मास में होनेवाला।

चौमासी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौमास+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना जो प्रायः बरसात में गाया जाता है।

चौमासी—वि० दे० 'चौमासा'।

चौमुख[१]—क्रि० वि० [हिं० चौ (=चार)+मुख (=ओर)] चारो ओर। चारो तरफ। उ०—चमचमात चामीकर मंदिर चौमुख चित्त विचारु।—रघुराज (शब्द०)।

चौमुख[२]—वि० दे० 'चौमुखा'। जैसे, चौमुख दियना (=दीये)।

चौमुखा—वि० [हिं० चौ=चार+मुख=आ=(प्रत्य०)] [स्त्री० चौमुखी] १. चार मुँहोंवाला। जिसके मुँह चारों ओर हों।

यौ०—चौमुखा दीया=वह दीपक जिसमें चारों ओर चार बत्तियाँ जलती हों।

मुहा०—चौमुखा दिया जलाना=दिवाला निकालना।

विशेष—लोग कहते हैं कि प्राचीन समय में जब महाजन को अपने दिवाले की सूचना देनी होती थी, तब वह अपनी दूकान पर चौमुख दीया जला देता था।

चौमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (=चार)+फ़ा० मुहाना] चौराहा चौरस्ता। चतुष्पथ।

चौमेंड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+मेंड़+आ (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ पर चार मेंड़ या सीमाएँ मिलती हों।

चौमेखा¹—वि० [हिं० चौ (=चार)+मेख+अ (प्रत्य०)] चार मेखोंवाला। जिसमें चार मेख या कीलें हों।

चौमेखा²- संज्ञा पुं० एक प्रकार का कठोर दंड जिससे अपराधी को जमीन पर चित या पट लिटाकर उसके दोनों हाथों और दोनों पैरों में मेखें ठोंक देते थे।

चौरंग¹—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+रंग (=प्रकार, ढब)] तलवार का एक हाथ। तलवार चलाने का एक ढब जिससे चीजें कटकर चार टुकड़े हो जाती हैं। खड्ग प्रहार का एक ढंग।

चौरंग²—वि० १ तलवार के वार से कई टुकड़ों में कटा हुआ। खड्ग के आघात से खंड खंड। उ०—कहूँ तेग को धालिके, करहिं टूक चौरंग। सुनि, लखि पितु बिसुनाथ नृप, होत मनहिं मन दंग। —(शब्द०)।

क्रि० प्र० करना।—काटना।

मुहा०—चौरंग उड़ाना या काटना=(१) तलवार आदि से किसी चीज को बहुत सफाई से काटना। (२) एक में बँधे हुए ऊँट के चारों पैरों को तलवार के एक हाथ में काटना।

विशेष—देशी रियासतों तथा अन्य स्थानों में वीरता की परीक्षा के लिये यह परीक्षा थी। इसमें ऊँट के चारों पैर एक साथ बाँध दिए जाते हैं। ऊँट के पैर की नलियाँ बहुत मजबूत होती हैं; इसलिये जो उन चारों पैरों को एक ही हाथ में काट देता है, वह बहुत बीर समझा जाता है। २. चार रंगोंवाला। ३. चारो तरफ समान रूप से होनेवाला। ४. जो चारों तरफ एक जैसा हो।

चौरंगा—वि० [हिं० चौ+रंग] वि स्त्री० चौरंगी] चार रंगों का। जिसमें चार रंग हो। सुंदर। चित्र विचित्र। उ०—वहन वटी सो तुरंग चमर पसगी चौरंगा। पंच घाट पंचास अस्सि तबोली पंगा।—पृ० रा०, १२। ११८।

चौरंगिया—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+रंग] मालखंभ की एक कसरत जिसमें बेंत को एक जंघे पर बाहर की ओर से लेकर पिंडरी को छुलाते हुए उसी पैर के अँगूठे में अटकाते हैं और फिर दूसरे जंघे से उसे भीतर लेकर पिंडरी से बाहर करते हुए दूसरे अँगूठे में अटकाते हैं।

चौरंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. चौराहा। बंगाल में कलकत्ते का एक प्रमुख स्थान।

चौर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूसरों की वस्तु चुरानेवाला। चोर। यौ०—चौकर्म=चोरी।

२. एक गंध द्रव्य। ३. चौरपुष्पी। चौरपंचाशिका के रचयिता संस्कृत के एक कवि का नाम।

चौर²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चमर] दे० 'चमर'। उ०—चौर ढले हैं न्याचे पवन घेरी।—दक्खिनी०, पृ० ३०।

चौर³—संज्ञा पुं० [सं० चुण्डा] ताल जिसमें बरसाती पानी बहुत दिन तक रुका रहे। खादर।

चौरई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चौराई'।

चौरचार†—संज्ञा स्त्री० [देश०] चहल पहल।

चौरठ†—संज्ञा पुं० [हिं० चाउर+पीठा] 'चौरेठा'।

चौरठा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चौरेठा'।

चौरदार†—संज्ञा पुं० [सं० चमर, हिं० चौर+फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'चँवरदार'। उ०—चौरदार सुखपाली गइया। चौरा पर उन खबर जनइया।—घट०, पृ० १६२।

चौरस¹—वि० [हिं० चौ (=चार)+(एक) रस (=समान)] १. जो ऊँचा नीचा न हो। समथल। हमवार। बराबर। जैसे, चौरस मैदान। २. चौपहल। वर्गात्मक।

चौरस²—संज्ञा पुं० १. ठठेरों का एक औजार जिससे वे खुरचकर बरतन चिकने करते हैं। २. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और एक यगण होता है। इसको 'तनुमध्या' कहते हैं। जैसे,—तू यों किमि आली। घूमैं मतवाली (सुनार)।

चौरसा¹—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+रस] १. ठाकुर जी की शय्या की चद्दर २. चार रुपये भर का बाट (सुनार)।

चौरसा²—वि० जिसमे चार रस हों। चार रसोंवाला।

चौरसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौरसाना] १. चौरसाने की क्रिया। २. चौरसाने का भाव। ३. चौरसाने की मजदूरी।

चौरसाना—क्रि० स० [हिं० चौरस से नामिक धातु] चौरस करना। बराबर करना। हमवार करना।

चौरसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौरस] १. बाँह पर पहनने का एक चौखूँटा गहना।

विशेष—सीतापुर आदि जिलों में इसका प्रचार है।

२. चौरस करने का औजार। ३. अन्न रखने का कोठा या बखार।

चौरस्ता—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+फा० रास्ता] चौराहा।

चौरह†—संज्ञा पुं० [हिं० चौरा[दे० 'चौरा'। उ०—जब वह लहरें मारता कबीरचौरह के समीप पहुँचा, तब सामने कबीर साहब को बैठा देखा।—कबीर मं०, पृ० ८०।

चौरहा†—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+राह+आ (प्रत्य०)] दे० 'चौराहा'।

चौरा¹—संज्ञा पुं० [सं० चत्वरक प्रा० चउर] [स्त्री० अल्पा० चौरी] १. चौतरा। चबूतरा। वेदी। २. किसी देवी, देवता, सती, मृत महात्मा, भूत, प्रेत आदि का स्थान जहाँ वेदी या चबूतरा बना रहता है। जैसे, सती का चौरा। उ०—पेट को मारि मरैं पुनि ह्वै चौरा पुजावत देव समानैं।—रघुराज भूत (शब्द०)। ३. चौपाल। चौबारा।

चौरा²(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० चौला या देश०] लोबिया। बोड़ा। अर्वा। रवाँस। उ०—गेहूँ चाँवर चना उरद जव मूँग मोठ ति ल। चौरा मटर मसूर तुवर सरसों मड़ुवा मिल।—सूदन (शब्द०)।

चौरा³—संज्ञा पुं० [सं० चामर] वह बैल जिसकी पूँछ सफेद हो।

चौरा⁴—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री का एक नाम।

चौराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+राई] १. चौलाई नाम का साग। उ०—चौराई तो राई तोराई मुरई मुरब्बा भारी भी।—विश्राम (शब्द०)। २. अगरवाले बनियों की एक रीति जिसमें किसी उत्सव पर किसी को निमंत्रण देते समय उसके द्वार पर हल्दी में रँगे पीले चावल रख आते हैं। ३. एक चिड़िया।

विशेष—इसकी गरदन मटमैली, डैने चितकबरे, दुम नीचे सफेद और ऊपर लाल और चोंच पीली होती है। इसके पैर भी पीले ही होते हैं।

चौरानवे¹—वि० [सं० चतुर्नवति, प्रा० चउण्णवइ] नब्बे से चार अधिक।

चौरानवे²(पु)†—संज्ञा पुं० नब्बे से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—९४।

चौराया†(पु) संज्ञा पुं० [हिं० चौराहा] दे० 'चौराहा'। उ०—विकट चौरायो पवन आवत चहुँ ओर की।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० ५७५।

चौराष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] षाड़व जाति का एक संकर राग जो प्रातःकाल गाया जाता है।

चौरासी¹—वि० [सं० चतुरशीति, प्रा० चउरासीइ] अस्सी से चार अधिक। जो संख्या में अस्सी और चार हो।

चौरासी²—संज्ञा पुं० १. अस्सी से चार अधिक की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८४। २. चौरासी लक्ष योनि। उ०—आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी—मानस, १।८।

विशेष—पुराणों के अनुसार जीव चौरासी लाख प्रकार के माने गए हैं।

मुहा०—चौरासी में पड़ना या भरमना=निरंतर बार बार कई प्रकार के शरीर धारण करना। आवागमन के चक्र में पड़ना। उ०—चौरासी पर नाचत उस उपदेसत छविधारी।—देवस्वामी। (शब्द०)।

३. एक प्रकार का घुँघरू। पैर में पहनने का घुँघरुओं का गुच्छा जिसे नाचते समय पहनते हैं। उ०—मानिक जड़े सीम औ काँधे। चँवर लाग चौरासी बाँधे—जायसी (शब्द०)। ४. पत्थर काटने की एक प्रकार की टाँकी। ५ एक प्रकार की रुखानी।

चौराहा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+राह(=रास्ता)] वह स्थान जहाँ चार रास्ते या सड़कें मिलती हों। वह स्थान जहाँ से चार तरफ को चार रास्ते गए हों।

चौरियाना†—क्रि० अ० [हिं० चौरी से नामिक धातु] दूब या घास का फैलकर घना होना।

चौरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौरा] १. छोटा चबूतरा। वेदी। उ०—रची चौरी आप ब्रह्मा चरित खंभा लगाइ के।—सूर (शब्द०) २. किसी देवी, देवता सती आदि के लिये बनाया हुआ छोटा चौरा या चबूतरा जिसके ऊपर एक छोटा सा स्तूप जैसा बना होता है। इस स्तूप में मूर्ति या प्रतीक की पूजा की जाती है। कहीं कहीं स्तूप में एक ओर तिकोना या गोल गड्ढा होता है जिसमें दिया रखते हैं। दे० 'चौरा'—²। ३. मूल स्थान। आदि स्थान। ४. अकेले दूब का या जमीन पर पसरनेवाली किसी एक घास का घना और छोटा विस्तार। घास या दूब का थक्का। जैसे,—दूब की चौरी।

चौरी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक पेड़ जो हिमालय पर तथा रावी नदी के किनारे के जंगलों में होता है। मदरास तथा मध्य प्रदेश में भी यह पेड़ मिलता है।

विशेष—इसकी लकड़ी चिकनी और बहुत मजबूत होती है और मेज, कुरसी, आलमारी, तसवीर के चौखटे आदि बनाने के काम में आती है। इसकी छाल दवा के काम में आती है।

२. एक पेड़ जिसकी छाल से रंग बनता और चमड़ा सिझाया जाता है।

चौरी³—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोरी। २. गायत्री का एक नाम।

चौरेठा—संज्ञा पुं० [हिं० चाउर+पीठा] पानी के साथ पीसा हुआ चावल।

चौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी। स्तेय।

यौ०—चौर्यरत=गुप्त मैथुन। चौर्यवृत्ति=(१) चोरी पर जीविका चलानेवाला। (२) चोरी करनेवाला।

चौर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी [को०]।

चौल¹—संज्ञा पुं० [सं०] चोल नामक देश। वि० दे० 'चोल'।

चौल²—वि० [सं०] चूड़ाकर्म संबंधी [को०]।

चौल³—संज्ञा पुं० मुंडन। चूड़ाकर्म [को०]।

चौलकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चौलकर्मन्] चूड़ाकर्म। मुंडन।

चौलड़ा वि० [हिं० चौ+लड़] जिसमें चार लड़ें हों।

चौला—संज्ञा पुं० [देश०] लोबिया। बोड़ा।

चौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+राई (=दाने)] एक पौधा जिसका साग खाया जाता है। उ०—चौलाई लाल्हा अरु पोई। मध्य मेलि निबुआन निचोई।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह हाथ भर के करीब ऊँचा होता है। इसकी गोल पत्तियाँ सिरे पर चिपटी होती हैं और डंठलों का रंग लाल होता है। यह पौधा वास्तव में छोटी जाति का मरसा है। इसमें भी मरसे के समान मंजरियाँ लगती हैं जिनमें राई के इतने बड़े काले दाने पड़ते हैं। वैद्यक में चौलाई हलकी, शीतल रूखी, पित्त-कफ-नाशक, मल-मूत्र-निःसारक, विष-नाशक और दीपन मानी जाती है।

पर्याय—तंडुलीय। मेघनाद। कांडेर। तंडुलेरक। भंडीर। विषघ्न। अल्पमारिष, इत्यादि।

चौलावा†—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+लाना (=लगाना)] ऐसा कुआँ जिसमें एक साथ चार मोट चल सकें।

चौलि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चौलुक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. चुलुक ऋषि के वंशज। २. 'चालुक्य'।

चौली—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ा ।

चौवन¹—वि० [सं० चतुष्पञ्चाशत्, प्रा० चतुपञ्चासो, प्रा० चउवएण] पचास से चार अधिक । जो गिनती में पचास से चार ऊपर हो ।

चौवन²—संज्ञा पुं० पचास से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—५४ ।

चौवा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)] १. हाथ की चार उँगलियों का समूह । २. अँगूठे को छोड़कर बाकी चार उँगलियों की पंक्ति में लपेटा हुआ तागा । जैसे,—एक चौवा तागा ।

मुहा०—चौवा करना=चार उँगलियों में तागा आदि लपेटना ।

३. हाथ की चार उँगलियों का विस्तार । चार अंगुल की माप । ४. ताश का वह पत्ता जिसमें चार बूटियाँ हों । ‡५. गुड्डी की डोर को पंजा फैलाकर अगूठे और कनिष्ठिका में इस प्रकार लपेटना जिसमें एक डोर एक दूसरे को बीच से काटती हुई जाय । इसका आकार अंग्रेजी अंक 8 की तरह होता है ।

चौवा‡—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद] गाय, बैल, आदि पशु । चौपाया ।

चौवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+वाई (=वात)] दे० 'चौवाई' ।

चौवालीस—वि० [सं० चतुश्चत्वारिंशत्, प्रा० चतुचत्तालीसति, प्रा० चउच्चालीसइ] चालिस से चार अधिक । जो गिनती चार ऊपर चालीस हो ।

चौवालीस—संज्ञा पुं० चालीस से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४४ ।

चौवाह(पु)—वि० [सं० चतुर्बाहु] चार बाहुवाला । चतुर्बाहु । उ०—चतुर वीर चहुवान च्यार मुष्षो चौवाहँ ।—पृ० रा०, १।२७६।

चौस¹—संज्ञा पुं० [हिं० (=कृषि)] १. चार बार जोता हुआ खेत । दे० 'चौवाहा' । २. खेत का चौथी बार जोता जाना ।

चौस²‡—संज्ञा पुं० [देश०] बुकनी । चूरा । चूर्ण ।

चौसई(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बहुत मोटा कपड़ा । दुसूती से भी मोटा गरीबों के काम का सस्ता कपड़ा । उ०—ताके आगे चौसई आनि धरै बहुतेर ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६६।

चौसठ—वि० [हिं०] दे० 'चौंसठ' ।

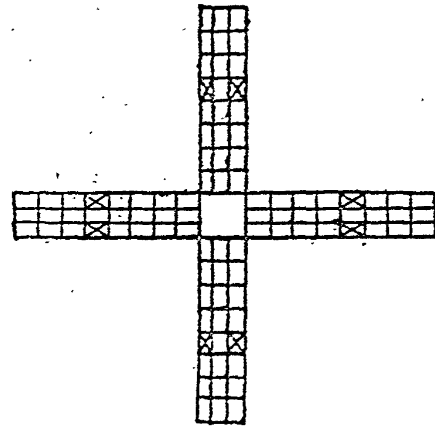
यौ०—चौसठो घड़ी=दिन रात । सारा दिन । आठो पहर । चौसठ सीढ़िया=तांत्रिकों एवं सिद्धनाथों की परंपरा में ६४ वर्णों की सीढ़ी । ये वर्ण मूला-से लेकर ऊपर के कमलों के दलों पर होते हैं । कुछ वर्णों और दलों का योग ६४ होता है । उ० अकृत निर्भ (?) लाई । उलट दरियाव निर्भरिया । यहि विधि चढ़ना चौसठ सीढ़िया ।—रामानंद०, पृ० १० ।

चौसर—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+सर (=बाजी) अथवा सं० चतुस्सारि] १. एक प्रकार का खेल जो बिसात पर चार रंगों की चार चार गोटियों और तीन पासों से दो मनुष्यों में खेला जाता है । चौपड़ । नर्दबाजी ।

विशेष—दोनों खेलनेवाले दो दो रंगों की आठ आठ गोटियाँ ले लेते हैं और बारी बारी से पासे फेंकते हैं । पासों के दाँव आने पर कुछ विशेष नियमों के अनुसार गोटियाँ चली जाती हैं । यह खेल जब पासों के बदले सात कौड़ियाँ फेंककर खेला जाता है, तब उसे पचीसी कहते हैं ।

क्रि० प्र०—खेलना ।

२. इस खेल की बिसात जो प्रायः कपड़े की बनी होती है ।



विशेष—इसका मध्य भाग थैली का सा होता है जिसमें खेल की समाप्ति पर गोटियाँ भरकर रखी जाती हैं । मध्य भाग के चारों सिरों की तरफ चार लंबे चौकोर टुकड़े सिले रहते हैं । जिनमें से हर एक की लंबाई में आठ आठ चौकोर खानों की तीन तीन पंक्तियाँ होती हैं ।

क्रि० प्र०—बिछाना ।

यौ०—चौसर का बाजार=चौक बाजार । वह स्थान जिसके चारों ओर एक ही तरह के चार बाजार हों ।

चौसर²—संज्ञा पुं० [चतुरसृक्] चौलड़ी । चार लड़ों का हार । उ०—(क) चौसर हार अमोल गरे को देहु न मेरी माई ।—सूर (शब्द०) । (ख) और भाँति भए वए चौसर चंदन चंद । बिहारी (शब्द०) ।

चौसरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौसर] दे० 'चौसर' ।

चौसल्ला‡—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+सालना] किसी वस्तु को ऊपर रखने के लिये आधार स्वरुप रखी चार लकड़ियाँ । २. चौसल्ले पर रखी हुई वस्तु ।

चौसिंघा¹—वि० [हिं० चौ (=चार)+सींघ] चार सींगोंवाला । जिसके चार सींग हों । जैसे, चौसिंघा बकरा ।

चौसिंघा²—संज्ञा पुं० [हिं० चौसिंहा] दे० 'चौसिंहा' ।

चौसिंहा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)=सींव (सीमा)+हा (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ चार गाँवों की सीमाएँ मिलती हों ।

चौहट(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+हाट] दे० 'चौहट्टा' । उ०—चौहट हाट समान वेद चहुँ जानिए । विविध भाँति की वस्तु बिकत तहँ मानिए ।—विश्राम (शब्द०) ।

चौहटा—संज्ञा पुं० [हिं० चौहट+आ(प्रत्य०)] चौहट्टा । बाजार । उ०—जुरे हैं कंचन चौहटे अपुने अपुने टोल ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८८।

चौहट्ट—संज्ञा पुं० [हिं० चौ+हट्ट] दे० 'चौहट्टा' । उ०—चौहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु विधि बना ।—तुलसी (शब्द०) ।

चौहट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (चार)+हाट] १. स्थान जिसके चारों ओर दूकानें हों । चौक २. चौमुहानी । चौरस्ता । चौराहा ।

चौहड़¹—संज्ञा पुं० [हिं० चौभड़] दे० 'चौभड़' ।

चौहड़²⑭† संज्ञा पुं० [हिं० चोहड़] छोटा जलाशय। जोहड़।

चौहत्तर¹—वि० [सं० चतुःसप्तति:, प्रा० चौहत्तरि] जो सत्तर से चार अधिक हो। जो गिनती में सत्तर और चार हो।

चौहत्तर²—संज्ञा पुं० तिहत्तर के बाद की संख्या। सत्तर से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—७४।

चौहद्दी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० चातुर्भद्र, प्रा० चाउहद्द+ई (प्रत्य०)] एक अवलेह जो जायफल, पिप्पली, काकड़ासिंगी और पुष्करमूल को पीसकर शहद में मिलाने से बनता है।

चौहद्दी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ+अ० हद+हिं० ई (प्रत्य०)] चारों ओर की सीमा।

चौहरा¹—वि० [हिं० चौ (=चार)+हर (प्रत्य०)] १. जिसमें चार फेरे या तहें हों। चार परतवाला। जैसे, चौहरा कपड़ा।†२. चौगुना। जो चार बार हो। उ०—दोहरे, तिहरे, चौहरे भूषन जाने जात।—बिहारी र०, दो ६८०। ३. चार लड़वाला। उ०—हीरा लाल जवाहिर घर के मानिक मोती चौहरा। कौन बात की कमी हमारे भरि भरि राखे भौंहरा।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१४।

चौहरा²—संज्ञा पुं० [हिं० चौघड़ा] वह पत्ता जिसमें पान के बीड़े लपेटे हों। चौघड़ा।

चौहलका—संज्ञा पुं० [हिं० चौ (=चार)+अ० हलका ?] गलीचे की बुनावट का एक प्रकार।

चौहान—संज्ञा पुं० [देश०] अग्निकुल के अंतर्गत क्षत्रियों की प्रसिद्ध शाखा।

विशेष—इसके मूल पुरुष के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि उसके चार हाथ थे और उसकी उत्पत्ति राक्षसों का नाश करने के लिये वशिष्ठ जी के यज्ञकुंड से हुई थी। प्रायः एक हजार वर्ष पहले मालवे और राजपूताने में इस जाति के राजाओं का राज्य था और पीछे इसका विस्तार दिल्ली तक हो गया था। भारत के प्रसिद्ध अंतिम सम्राट् पृथ्वीराज इसी चौहान जाति के थे। कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि इस जाति के मूल पुरुष माणिक्य नामक एक राजा थे, जो लगभग ईस्वी सन् ८०० में अजमेर में राज्य करते थे। इस जाति के क्षत्रिय प्रायः सारे उत्तरीयभारत में फैले गए हैं।

चौहैं⑭—क्रि० वि० [देश०] चारों ओर। चारों तरफ। उ०—राम कहै चकित चुरैलैं चहुँ अल्लैं त्यों मवी सकरि भल्लैं चौहैं चकित मसान को।—रामकवि (शब्द०)।

च्यवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूना। झरना। टपकना। २. एक ऋषि का नाम।

विशेष—इनके पिता भृगु और माता पुलोमा थीं। इनके विषय में कथा है कि जब ये गर्भ में थे, तब एक राक्षस इनकी माता को अकेली पाकर हर ले जाना चाहता था। यह देख च्यवन गर्भ से निकल आए और उस राक्षस को उन्होंने अपने तेज से भस्म कर डाला। ये आपसे आप गर्भ से गिर पड़े थे, इसी से इनका नाम च्यवन पड़ा। एक बार एक सरोवर के किनारे तपस्या करते करते इन्हें इतने दिन हो गए कि इनका सारा शरीर वल्मीक (बिमौट=दीमक की मिट्टी) से ढक गया, केवल चमकती हुई आँखें खुली रह गई। राजा शर्याति की कन्या सुकन्या ने इनकी आँखों को कोई अद्भुत वस्तु समझ उनमें काँटे चुभा दिए। इसपर च्यवन ऋषि ने क्रुद्ध होकर राजा शर्याति की सारी सेना और अनुचर वर्ग का मलमूत्र रोक दिया। राजा ने घबराकर च्यवन ऋषि से क्षमा माँगी और उनकी इच्छा देख अपनी कन्या सुकन्या का उनके साथ ब्याह कर दिया। सुकन्या ने भी उस वृद्ध ऋषि से विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं की। विवाह के पीछे एक दिन अश्विनीकुमारों ने आकर सुकन्या से कहा—'बूढ़े पति को छोड़ दो, हम लोगों से विवाह कर लो'। पर जब वह किसी प्रकार संमत न हुई, तब अश्विनीकुमारों ने प्रसन्न होकर च्यवन ऋषि को बूढ़े से सुंदर युवक कर दिया। इसके बदले में च्यवन ऋषि ने राजा शर्याति के यज्ञ में अश्विनीकुमारों को सोमरस प्रदान किया। इंद्र ने इसपर आपत्ति की। जब इन्होंने नहीं माना, तब इंद्र ने इनपर वज्र चलाया। च्यवन ऋषि ने इसपर क्रुद्ध होकर एक महा विकराल असुर उत्पन्न किया, जिसपर इंद्र भयभीत होकर इनकी शरण में आया।

च्यवनप्राश—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध अवलेह जिसके विषय में यह कथा है कि च्यवन ऋषि का वृद्धत्व और अंधत्व नाश करने के लिये अश्विनीकुमारों ने इसे बनाया था।

विशेष—इसका वर्णन इस प्रकार है—पके हुए बड़े बड़े ताजे ५०० आँवले लेकर मिट्टी के पात्र में पकाकर रस निकाले और उस रस में ५०० टके भर मिस्री डालकर चाशनी बनावे। यदि संभव हो तो इसे चाँदी के बरतन में रखे; नहीं तो उसी मिट्टी के पात्र में ही रहने दे। फिर उसमें मुनक्का, अगर, चंदन, कमलगट्टा, इलायची, हड़ का छिलका, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, गुरच, काकड़ासिंगी, पुष्करमूल, कचूर, अड़ूसा, विदारीकंद, वरियारा, जीवंती, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोना, कटियाली, बेल की गिरी, अरलू, कुंभेर और पाठा—ये सब चीजें टके टके भर मिलावे और ऊपर से मधु ६ टके भर, पिप्पली २ टके भर, तज २ टंक, तेजपात २ टंक, नागकेशर २ टंक, इलायची २ टंक और वंसलोचन २ टंक इन सबका चूर्ण कर डाले। फिर सबको मिलाकर रख ले। इससे स्वरभंग, यक्ष्मा, शुक्रदोष आदि दूर होते हैं और स्मृति, कांति, इंद्रियसामर्थ्य, बलवीर्य आदि की अत्यंत वृद्धि होती है।

च्यार⑭ वि०, संज्ञा पुं० [हिं० चार] दे० 'चार'।

च्यावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चुआना। २. निकाल देना।

च्यावना⑭—क्रि० स० [सं० च्यावन] चुआना। उ०—पूरन इंदु सी कुंदन सी मृदु मंद हँसी रस बुंदनि च्यावै। चंपक फूलनि पीत दुकूलनि पी गल मैं भुजमूलनि ल्यावै।—देव ग्रं०, पृ० ७२।

च्युत—वि० [सं०] १. टपका हुआ। गिरा हुआ। चुआ हुआ। झड़ा हुआ। २. गिरा हुआ। पतित। ३. भ्रष्ट। ४. अपने स्थान से हटा हुआ। ५. विमुख। पराङ्मुख। जैसे, कर्तव्य से च्युत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—च्युतात्मा=कुटिल। च्युताधिकार=पद से हटाया हुआ।

च्युतमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो प्रीति नामक श्रुति से आरंभ होता है। इसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

च्युतषड़ज—संज्ञा पुं० [सं० च्युतषडज] संगीत में एक विकृत स्वर

जो मेदा नामक श्रुति से आरंभ होता है। इसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

च्युतसंस्कारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्यदर्पण के मत से काव्य का वह दोष जो व्याकरणविरुद्ध पदविन्यास से होता है। काव्य का व्याकरण संबंधी दोष।

विशेष—यह दोष प्रधान दोषों में है।

च्युतसंस्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'च्युतसंस्कारता'।

च्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पतन। स्खलन। झड़ना। गिरना। २. गति। उपयुक्त स्थान से हटना। ३. चूक। कर्तव्यविमुखता। ४. अभाव। कसर। ५. गुदद्वार। गुदा। ६. भग। योनि।

च्युप—संज्ञा पुं० [सं०] मुख। चेहरा [को०]।

च्यूँटा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चिउँटा'।

च्यूँटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चिउँटी'।

च्यूड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'चिउड़ा'।

च्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ या फल।

च्योना—संज्ञा पुं० [देश०] घटिया।

च्योल—संज्ञा पुं० [सं०] चूना। टपकना। गिरना [को०]।

छ

छ—हिंदी वर्णमाला में व्यंजनों के स्पर्श नामक भेद के अंतर्गत चवर्ग का दूसरा व्यंजन। इसके उच्चारण का स्थान तालु है। इसके उच्चारण में अघोष और महाप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं।

छंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्ग प्रा० उच्छंग, पुं० हिं० उछंग > छंग] गोद। अंक। उ०—खर को कहाँ अरगजा लेपन मर्कट भूषण अंक। गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै खहि छंग (शब्द०)।

छंगा - वि० [हिं० छह + उँगली] छह उँगलियोंवाला। जिसके एक पंजे में छह उँगलियाँ हों।

छंगू—वि० छह + अंगु (= अंगुली)] दे० 'छंगा'।

छंछ(पु)—संज्ञा पुं० [अनु० या प्रा० छिछोली > छिछ > छंछ]। छींटा। धार। प्रवाह। उ०—रुधि छंछछुट्टि संमुह चलिय मति अद्भुत सुदिप्पियौ। —पृ० रा०, ३। २४।

छंछाल(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं० छंछ + आल (प्रत्य०)] १. हाथी। २. हाथी की सूँड। उ०—बहै जोर छंछाल तैं मुक्ख नीरं। लगे गंड गुंजार सो भौर भीरं।—प० रासो, पृ० १६७।

छंछाल(पु)²—वि० मस्त। मदमस्त। उ०—छकियो गज छंछाल, घोरंग यूँ बाणां लग्यो।—नट०, पृ० १७२।

छंछोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँछ + बरी] एक पकवान। दे० 'छँछोरी'।

छंडना(पु)†—क्रि० स० [हिं० छोड़ना] दे० 'छँड़ना'।

छंद¹—संज्ञा पुं० [सं० छन्दस्] १. वेदों के वाक्यों का वह भेद जो अक्षरों की गणना के अनुसार किया गया है।

विशेष—इसके मुख्य सात भेद हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती। इनमें प्रत्येक के आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची और ब्राह्मी नामक आठ आठ भेद होते हैं। इनके परस्पर संमिश्रण से अनेक संकर जाति के छंदों की कल्पना की गई है। इन मुख्य सात छंदों के अतिरिक्त अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, अतिधृति कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अभिकृति और उत्कृति नाम के छंद भी हैं जो केवल यजुर्वेद के यजुओं में होते हैं। वैदिक पद्य के छंदों में मात्रा अथवा लघु गुरु का कुछ विचार नहीं किया गया है; उनमें छंदों का निश्चय केवल उनके अक्षरों की संख्या के अनुसार होता है।

२. वेद। वि० 'वेद'। ३. वह वाक्य जिसमें वर्ण या मात्रा की गणना के अनुसार विराम आदि का नियम हो।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—वर्णिक और मात्रिक। जिस छंद के प्रति पाद में अक्षरों की संख्या और लघु गुरु के क्रम का नियम होता है, वह वर्णिक या वर्णवृत्त और जिसमें अक्षरों की गणना और लघु गुरु के क्रम का विचार नहीं, केवल मात्राओं की संख्या का विचार होता है, वह मात्रिक छंद कहलाता है। रोला, रूपमाला, दोहा, चौपाई इत्यादि मात्रिक छंद हैं। वंशस्थ, इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, मालिनी, मंदाक्रांता इत्यादि वर्णवृत्त हैं। पादों के विचार से वृत्तों के तीन भेद होते हैं-समवृत्ति, अर्धसम वृत्ति और विषमवृत्ति। जिस वृत्ति में चारों पाद समान हों वह समवृत्ति, जिसमें वे असमान हों वह विषमवृत्ति और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण समान हों, वह अर्धसमवृत्ति कहलाता है। इन भेदों के अनुसार संस्कृत और भाषा के छंदों के अनेक भेद होते हैं।

४. वह विद्या जिसमें छंदों के लक्षण आदि का विचार हो। यह छह वेदांगों में मानी गई है। इसे पाद भी कहते हैं। ५. अभिलाषा। इच्छा। ६. स्वैराचार। स्वच्छाचार। मनमाना व्यवहार। ७. बंधन। गाँठ। ८. जाल। संघात। समूह। उ०—बीज के बृंद में है तम छंद कलिंदजा बुंद लसै दरसानी।—(शब्द०)। ९. कपट। छल। मक्कर। उ०—(क) राजबार अस गुणी न चाही जेहि टूना कर खोज। यही छंद ठग विद्या छला सो राजा भोज।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहा कहति तू बात अयानी। वाके छंद भेद को जानै मीन कबहुँ धौं पीवत पानी।—सूर (शब्द०)।

यौ०—छंदकपट = दे० 'छलछंद'। उ०—हम देखें इहि भाँति गुपाल। छंदकपट कछु जानति नाहिन सूधी हैं ब्रज की सब बाल।—सूर०, १०। १७७८।

छलछंद=कपट। धोखेबाजी। चालबाजी। उ०—छोभ छलछंदन को बाढ़ पाप छंदन को फिकिर के फंदन को फारिहै पै फारिहै।—पद्माकर (शब्द०)।

१०. चाल। युक्ति। कला। उपाय। उ०—फंद की मृगी लौं छंद छुटिबे को नेकौ नाहिं, चारचौं ओर कोरि कोरि भाँतिन सों रोक है।—घनानंद, पृ० २०७। ११. चालबाजी। उ०—(क) योगिहि बहुत छंद ओराहीं। बूँद सुआती जैसे पाहीं।—जायसी (शब्द०)। (ख) सुनि नँद नंद प्यारे तेरे मुख चंद सम चंद पै न भयो कोटि छंद करि हारयो है—केशव (शब्द०)। १२. रंग ढंग। आकार। चेष्टा। उ०—गिरगिट छंद धरै दुख तेता। खन खन पीत रात खन सेता।—जायसी (शब्द०)। १३. विष। जहर। १६. ढक्कन। आवरण। १७. पत्ती।

छंद²—संज्ञा पुं० [सं० छन्दक] एक आभूषण जो हाथ में चूड़ियों के बीच पहना जाता है।

छंद³—वि० [सं० छन्द] आकर्षक। मनोरम। २. ऐकांतिक। गोपनीय। अप्रकट। गुप्त। ३. प्रशंसक (को०)।

छंदक¹—वि० [सं० छन्दक] १. रक्षक। २. छली।

छंदक²- संज्ञा पुं० १ कृष्णचंद्र का एक नाम। २. बुद्धदेव के सारथी का नाम। ३. छल।

छंदज—संज्ञा पुं० [सं० छन्दज] वैदिक देवता। ऐसा देवता जिनकी स्तुति वेदों में हो। वसु आदि देवता।'

छंदन—संज्ञा पुं० [सं० छन्दन] तुष्ट करना। प्रसन्न करना। रिझाना (को०)।

छंदना(पु)—क्रि० अ० [सं० छंद (=बंधन)] पैरों में रस्सी लगाकर बाँधा जाना।

छंदपातन—संज्ञा पुं० [सं० छदपातन] बनावटी साधु। साधु वेशधारी ठग। छली। धोखेबाज।

छंदप्रबंध—संज्ञा पुं० [हिं० छंद+प्रबंध] दे० 'छन्द;प्रबंध'।

छंदबंद—संज्ञा पुं० [हिं० छंद+बंद] छल। कपट। धोखा।

छंदवासिनी—वि० स्त्री० [सं० छन्दवासिनी] स्वतंत्र जीविकावाली। (स्त्री०) जो किसी दूसरे पर निर्भर न करती हो।—(को०)।

छंदस्कृत—संज्ञा पुं० [सं० छन्दस्कृत] [स्त्री० छंदस्कृता] १. वेद, जिसमें गायत्री आदि छंद हैं। २. वेदमंत्र।

छंदःप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० छन्दःप्रबन्ध] पद्यरचना। छंदरचना।

छंदःशास्त्र—संज्ञा पुं० [छन्द.शास्त्र] वह शास्त्र जिसमें छंदरचना संबंधी नियमों का विवेचन हो।

छंदःस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं० छन्दःस्तुभ] १. वैदिक देवता जिनकी स्तुति वेदों में की गई है। २. ऋषि जो वैदिक छंदों द्वारा देवताओं की स्तुति करें। ३. सूर्य का सारथी। अरुण।

छंदानुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० छन्दानुवृत्ति] खुशामद। चापलूसी। प्रसन्न करना। संतुष्ट करना(को०)।

[illegible]त—वि० [सं० छन्दित] संतुष्ट किया हुआ। तोषित। प्रसन्न। रीझा हुआ। (को०)।

छंदी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छंद (=बंधन)] एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ हाथों में कलाई के पास पहनती हैं।

विशेष—यह गोल कंगन की तरह होता है जिसपर रवे की जगह गोल चिपटी टिकिया बैठाई रहती है। यह कंगन और पछेले के बीच में पहना जाता है।

छंदी²—वि० [हिं० छंद+ई (प्रत्य०)] कपटी। धोखेबाज। छली।

छंदेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० छद+एली (प्रत्य०)] १. एक आभूषण। दे० 'छंदी'। २. छलछंद करनेवाली औरत।

छंदोग—संज्ञा पुं० [सं० छन्दस्+ग] १ सामगान करनेवाला पुरुष सामग। सामवेदी। २. सस्वर छंद या पद्य पढ़नेवाला व्यक्ति (को०)। ३. सामवेद (को०)।

छंदोगपरिशिष्ट—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोगपरिशिष्ट] सामवेद के गोभिल सूत्र का परिशिष्ट भाग जो कात्यायन जी का बनाया हुआ है।

छंदोदेव—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोदेव] महाभारत के अनुसार मतंग नामक चांडाल।

विशेष—इनकी उत्पत्ति नापित पिता और ब्राह्मणी माता से हुई थी। इन्होंने ब्राह्मणत्व लाभ करने के लिये जब बड़ी तपस्या की, तब इंद्र ने इन्हें वर दिया कि तुम कामरूप विहंग होगे। तुम्हारा नाम छंदोदेव होगा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब वर्णों की स्त्रियाँ तुम्हारी पूजा करेंगी।

छंदोदोष—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोदोष] छंदरचना का एक दोष (को०)।

छंदोबद्ध—वि० [सं० छन्दोबद्ध] श्लोकबद्ध। जो पद्य के रूप में हो। जैसे, छंदोबद्ध ग्रंथ।

छंदोभंग—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोभङ्ग] छंद रचना का एक दोष जो मात्रा, वर्ण आदि की गणना या लघुगुरु आदि के नियम का पालन न होने के कारण होता है।

छंदोम—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोम] १. द्वादशाह याग के अंतर्गत एक कृत्य का नाम।

विशेष—यह द्वादशाह याग के आठवें, नवें और दसवें दिन तीन दिन तक होता था और प्रतिदिन उन तीन स्तोमों का गान होता था जो इसी नाम से विख्यात हैं। इस यज्ञ का फल कोई कोई राज्यप्राप्ति मानते हैं।

२. वे तीन स्तोम जिनका गान छंदोम में होता था।

छंम(पु)†—वि० [सं० क्षम] समर्थ। जीवित। शक्तियुक्त। उ०—ज्यों दव लग्गे जंगल रहै छंम कोइ घास। त्यों मेवाड़ उवेलियो मेट कमंधामास।—रा० रू०, पृ० १७८।

छँगुनिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छगुनी'।

छगुलिया, छँगुली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छगुनी'।

छँछार—संज्ञा पुं० [प्रा० छिछोली] १. धारा। फुहारा। स्राव उ०—सुनि सोर दान छुट्टे छँछार। जनु भूत भंति भयभीत भार। पृ० रा०, ५। १८। २. दे 'छंछाल'¹।

छंछोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँछ+बरी] एक प्रकार का पकवान जो छाँछ में बनाया जाता है। उ०—डुभकौरी, मुँगछौरी, रिकवछ• ढँढहर क्षीर, छँछौरी जी।—रघुनाथ (शब्द०)।

छँटना—क्रि० अ० [सं० चर्तन (=तोड़ना, छेदना)] १. कटकर अलग होना। किसी वस्तु के अवयवों का छिन्न होना। जैसे, पेड़ की डाल छँटना, सिर के बाल छँटना। २. अलग होना। दूर होना। निकल जाना। जैसे, मैल छँटना। ३. समूह से अलग होना। तितर बितर होना। छितराना। जैसे, बादल छँटना, गोल के आदमियों का छँटना। ४. साथ छोड़ना। संग से अलग हो जाना।

मुहा०—छँटे छँटे फिरना या रहना=दूर दूर रहना। साथ बचाना। कुछ संबंध या लगाव न रखना।

५. चुना जाना। चुनकर अलग कर लिया जाना। जैसे,—इसमें से अच्छे अच्छे आम तो छँट गए हैं।

मुहा० छँटा या छँटा हुआ=(१) चुना हुआ। अलग किया हुआ। (२) चालाक। चतुर। धूर्त।

६. साफ होना। मैल निकलना। जैसे, धूआँ छँटना, पेट छँटना। ७ क्षीण होना। दुबला होना। जैसे, बदन छँटना।

छँटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] १. छाँटने का काम। छँटाई। २. काम करनेवालों में से कुछ को हटाना। कर्मचारियों की संख्या में कमी करना।

छँटवाना क्रि० स० [हिं० छाँटना] १. किसी वस्तु का व्यर्थ या अधिक भाग कटवा देना। २. बहुत सी वस्तुओं में से कुछ वस्तुओं को पृथक् कराना। चुनवाना। ३. कटवाना। छिलवाना।

छँटा—वि० [हिं० छाँटना] [वि० स्त्री० छँटी] (पशु) जिसके पैर छाने गए हों। जिसके पिछले पैर बाँधकर उसे चरने के लिये छोड़ा जाय।

विशेष—यह शब्द प्रायः लद्दू घोड़ों और गदहों आदि के लिये आता है।

छँटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] १. छाँटने का काम। अलग अलग करने का काम। बिलगाने का काम। २. चुनाई। चुनने की क्रिया। ३. साफ करने का काम। ४. छाँटने की मजदूरी। ५. दे० 'छँटनी' २।

छँटाना—क्रि० स० [हिं० छाँटना] दे० 'छँटवाना'।

छँटाव—संज्ञा पुं० [हिं० छाँटना] १. दे० 'छाँटन'। २. छाँटने का भाव और क्रिया। छँटाई।

छँटैल वि० [हिं० छाँटना+ऐल (प्रत्य०)] १. छँटा हुआ। चालबाज। २. छाँटकर पृथक् किया हुआ।

छँड़ना[1]—क्रि० स० [हिं० छोड़ना] १. छोड़ना। त्यागना। २. अन्न को ओखली में डालकर कूटना। छाँटना।

छँड़ना[2]—क्रि० अ० [सं० छर्दन, प्रा० छड्डण] ओकना। कै करना। वमन करना।

छँड़रना—क्रि० अ० [सं०√छिद् या देश०] १. दे० 'छिनकना'। २. छेद का फैलकर या दबाव में कट जाना।

छँड़ाना—क्रि० स० [हिं० छुड़ाना] छीनना। छुड़ाकर ले लेना। उ०—(क) लेहु छँड़ाइ सीय कहँ कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सखन संग हरि जेवँत जात। सुबल सुदामा श्रीदामा सँग सब मिलि भोजन रुचि सों खात। ग्वालन कर ते कौर छँड़ावत मुख लै मेलि सराहत जात।—सूर (शब्द०)।

छँड़ुआ[1]—वि० [हिं० छाँड़ना] १. जो छोड़ दिया गया हो। मुक्त। २. जो दंड आदि से मुक्त हो। अदंड्य। ३. जिसके ऊपर किसी प्रकार दबाव या शासन न हो।

छँड़ुआ[2]—संज्ञा पुं० १. वह पशु जो किसी देवता के उद्देश्य से छोड़ा गया हो। देवता को उत्सर्ग किया हुआ पशु। २. ब्याज, कर या ऋण आदि का वह भाग जिसे पानेवाले ने छोड़ दिया हो। छूट।

छँदना—क्रि० अ० [सं० छन्द (=बंधन)] पैरों में रस्सी लगाकर बाँधा जाना।

छँह—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाया] छाँह। छाया। आवरण। उ०—ततारि तुंअर नरिंद भयौ तरु गहर पत्त छँह।—पृ० रा०, ७। १६६।

छँहाना—क्रि० अ० [हिं० छाँह] छाया में विश्राम लेना। सुस्ताना। शीतल होना। उ०—चला जात जस होइ बटोही। आइ छँहाइ बिरिछ तर वोही।—इंद्रा०, पृ० ३।

छ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. काटना। २. ढाँकना। आच्छादन। ३. घर। ४. खंड। टुकड़ा।

छ[2]—वि० [सं०] १. निर्मल। साफ। २. तरल। चंचल।

छ[3]—वि० [सं० षट्, प्रा० छ] गिनती में पाँच से एक अधिक। जो संख्या में पाँच और एक हो। छः। छह।

छ[4]—संज्ञा पुं० १. वह संख्या जो पाँच से एक अधिक हो। २. उस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६।

छइल—संज्ञा पुं० [अप० छल्ल] रसिक। छैला। उ०—घन सो जउवन छइलओ जाती। कामिनी बिनु कइसे गेलि मधुराती।—विद्यापति, पृ० ८६।

छई—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षयी] दे० 'क्षयी'।

छक—संज्ञा स्त्री० [सं० चकन (=तृप्ति)] १. तृप्ति। परिपूर्णता। २. मद। नशा। ३. आकांक्षा। लालसा।

छकड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० शकट, प्रा० सगड़ो, छगडो] बोझ लादने की दुपहिया गाड़ी जिसे बैल खींचते हैं। बैलगाड़ी। सग्गड़। लढ़ी।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

मुहा०—छकड़ा लादना=छकड़े में बोझ या सामान भरना।

छकड़ा[2]—वि० जिसका ढाँचा ढीला हो गया हो। जिसके अंजर पंजर ढीले हो गए हों। टूटा फूटा।

क्रि० प्र० होना।

छकड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छह+करी] वह पालकी जिसे छह कहार उठाते हों।

छकड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० छह+कड़ा] १. छह का समूह। छह की राशि। २. वह पालकी जिसे छह कहार उठाते हों।

छकड़िया। ३. चारपाई बुनने का एक प्रकार जिसमें छह बाध उठाए और छह बैठाए जाते हैं।

छकड़ी[२]—वि० जिसमें छह अवयव हों। छह से बना हुआ।

छकना[१]—क्रि० अ० [सं० चकन (=तृप्त होना)] [संज्ञा छाक] १. खा पीकर अघाना। तृप्त होना अफरना। जैसे,—उसने खूब छककर खाया। उ०—मब्वासी, हुजूर वह खूब छककर खा चुकी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६१।

संयो० क्रि०—जाना।

२. तृप्त होकर उन्मत्त होना। मद्यादि पीकर नशे में चूर होना। उ०—(क) ते छकि नव रस केलि करेहीं। जोग लाइ अधरन रस लेहीं।—जायसी (शब्द०)। (ख) केशवदास घर घर नाचत फिरहिं गोप एक रहे छकि ते मरेई गुनियत हैं।—केशव (शब्द०)।

छकना[२]—क्रि० अ० [सं० चक (=भ्रांत)] १. चकराना। अचंभे में आना। २. हैरान होना। तंग होना। दिक होना। जैसे—वहाँ जाकर हम खूब छके, कहीं कोई नहीं था।

छकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छकड़ी'।

छकाछक—वि० [हिं० छकना] १. तृप्त। अघाया हुआ। संतुष्ट। २. परिपूर्ण। भरा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।

३. उन्मत्त। नशे में चूर। मदमत्त।

छकाना[१]—क्रि० स० हिं० छकना] १. खिला पिलाकर तृप्त करना। खूब खिलाना पिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. मद्य आदि से मदमत्त करना।

छकाना[२]—क्रि० स० [सं० चक्र (=भ्रांत)] १. अचंभे में डालना। चक्कर में डालना। २. हैरान करना। दिक करना। तंग करना। जैसे, तुमने तो कल हमें खूब छकाया।

संयो० क्रि०—डालना।

छकिहारी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाक+हारी (प्रत्य०)] छाक ले जानेवाली। उ० जित तित छकिहारी जुरि चलीं। लगति रवाँनी ब्रज की गलीं।—घनानंद, पृ० २१७।

छकीला—वि० [हिं०√छक=ईला (प्रत्य०)] छका हुआ। मस्त। उ०—रंगनि ढरीले ही छकीले मद मोह तें।—घनानंद, पृ० ११२।

छकौंही(पु)—वि० [हिं० √छक+औंही (प्रत्य०)] १. मस्त करनेवाली। छका देनेवाली। २. छकी हुई। मस्त।

छकुर—संज्ञा पुं० [हिं० छ+कूरा] फसल की वह बँटाई जिसमें उपज का छठा भाग जमींदार पाता है।

छक्कवै(पु)—वि० [सं० चक्रवर्ती] दे० 'चक्कवै'। उ०—अनंगपाल छक्कवै बुद्धि जो इसी रुकिल्लिय।—पृ० रा० (उ०), पृ० ८६।

छक्का—संज्ञा पुं० [सं० षट्क या षट्क, प्रा० छक्को] १. छह का समूह या वह वस्तु जो छह अवयवों से बनी हो। २. जूए का एक दाँव जिसमें कौड़ी या चित्ती फेंकने से छह कौड़ियाँ चित्त पड़ें। यही दाँव दो, या दस, या चौदह कौड़ियों के चित्त पड़ने पर भी माना जाता है।

मुहा०—छक्का पंजा=दाँवपेच। चालबाजी। छक्का पंजा भूलना=युक्ति काम न करना। चाल न चलना। कर्तव्य न सुझाई पड़ना। बुद्धि का काम न करना।

३. पासे का एक दाँव जिसमें पासा फेंकने से छह बिंदियाँ ऊपर पड़ें।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—फेंकना।

४. जुआ। द्यूत।

क्रि० प्र०—खेलना।—फेंकना।—डालना।

५. वह ताश जिसमें छह बूटियाँ हों। ६. पाँच ज्ञानेंद्रियों और छठे मन का समूह। होश हवास। सुध। संज्ञा। औसान।

मुहा०—छक्के छूटना=(१) होश हवास जाता रहना। होश उड़ना। बुद्धि काम न करना। स्तब्ध होना। उ०—सुननेवालों के छक्के छूट जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ०३४०। (२) हिम्मत हारना। साहस छूटना। घबरा जाना। जैसे, नई सेना के आते ही शत्रुओं के छक्के छूट गए। छक्के छुड़ाना (१) चकित करना। विस्मित करना। हैरान करना। (२) साहस छुड़ाना। अधीर करना। घबरा देना। पस्त करना। पैर उखाड़ देना। जैसे,—सिखों ने काबुलियों के छक्के छुड़ा दिए। उ०—घोड़े पर इस तरह सवार होते हैं जैसे किसी ने मेख गाड़ दी, मगर टट्टू ने इनके भी छक्के छुड़ा दिए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २३।

छग—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छगी] छाग। बकरा।

छगड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० छगल या छगलक] [स्त्री० छगड़ी] बकरा। उ०—(क) एक छगड़ी एक छगड़ा लीलिसि नौ मन लीलिसि केराँव। बारह भैंसा सरसों लीलिसि औ चौरासी गाँव। कबीर (शब्द०)। (ख) ना मैं छगड़ी ना मैं भेंडी ना मैं छुरी गँडास में।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०२।

छगण—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा गोबर। कंडा।

छगन[१]—संज्ञा पुं० [सं० चङ्गट (=एक छोटी मछली) या चिङ्गट (=झींगा मछली)] छोटा बच्चा। प्रिय बालक।

छगन[२]—वि० बच्चों के लिये एक प्यार का शब्द। उ०—कहत मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७७।

यौ०—छगन मगन, छगना मगना=छोटे छोटे बच्चे। प्यारे बच्चे। हँसते खेलते बच्चे। (बच्चों के लिये प्यार का शब्द)। उ०—(क) बछह छबीलो छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई। सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु की ललित लरिकाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७७। (ख) गिरि गिरि परत घुटुरुवनि रेंगत खेलत है दोउ छगना मगना।—सूर० १०। ११२। (ग) कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायो। सुफलकसुत मेरे प्राण हतन को कालरूप ह्वै आयो।—सूर (शब्द०)।

छगना(पु)—क्रि० अ० [सं० चकन, हिं० छकना] तृप्त होकर उन्मत्त होना। भर जाना। छकना। उ०—बहुआन कन्ह अग्गै सुबर

ता पच्छै लोहन दग्यो। जाजुलित सत्त वर वीर मति वीर वीर रस सों छग्यो।—पृ० रा०, ५।४३।

छगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छगली] छोटी बकरी।

छगल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छगला, छगली] १. छाग। बकरा। २. वृद्धदारक नामक पेड़। विधारा। ३. अत्रि ऋषि का नाम। ४. नीले रंग का कपड़ा। ५. वह देश जहाँ बहुत बकरे होते हैं।

यौ०—छगलांत्रिका, छगलांत्री=(१) भेड़िया। (२) विधारा या अजांत्री वृक्ष।

छगलक—संज्ञा पुं० [सं०] छाग। बकरा (कौ०)।

छगुन—वि० [हिं० छ+गुणा] छगुणा। छह गुना। उ०—छिप्यो छपाकर छितिज छीरनिधि छगुन छंद छल छीन्हो।—श्यामा०, पृ० १२०।

छगुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी+उँगली] हाथ के पंजे की सबसे छोटी उँगली। कनिष्ठिका। काली उँगली। छिगुनी।

छगर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० छत्रदण्ड या शकट (=गाड़ी, बोझ या देश०)] छत्र आदि सामान। उ०—अति गँभीर पट्टपंग मन सु दब्बै दृग लज्जइ। कवन काज छगरह पानिग्राही भट कज्जइ।—पृ० रा०, ६१। ६५६।

छछंद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० छलछन्द] दे० 'छलछंद'। उ०—सो जोग्यंद्र जोग जुगता अविचल सारं। छछंद मुक्ता भै अमपारं।—गोरख, पृ० १६१।

छछहा(पु)†—वि० [देश०] वेगवान। बननेवाला। गतिशील। उ०—छछहा दूत चहु दिस छंडे, अवनी पत मंडे आरंभ।—रघु० रू०, पृ० १००।

छछिआ, छछिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँछ+इया (प्रत्य०)] १. छाँछ पीने या नापने का छोटा पात्र। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १७६।
२. छाछ। मट्ठा। तक्र।

छछिहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँछ+हारी (प्रत्य०)] दही बिलोनेवाली। अहीरिन। उ०—इला च्युगुला सुषमन नारी। वेगि बिलोइ ठाढ़ी छछिहारी।—कबीर ग्रं०, पृ० २६०।

छछीन(पु)†—वि० [सं० क्षीण] अति क्षीण। दुर्बल। कृश। उ०—छछीन हीन लंकयं। कमान काम अंकयं।—पृ० रा०, २५। १३८।

छछुंदर†—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० चच्छुन्दर] दे० 'छछूँदर'।

छछूँदर—संज्ञा पुं० [सं० छुच्छुन्दर] [स्त्री० छछूँदरी] १. चूहे की जाति का एक जंतु।

विशेष—इसकी बनावट चूहे की सी होती है, पर इसका थूथन अधिक निकला हुआ और नुकीला होता है। इसके शरीर के रोएँ भी छोटे और कुछ आसमानी रंग लिए खाकी या राख के रंग के होते हैं। यह जंतु दिन को बिलकुल नहीं देखता और रात को छू छू करता चरने के लिये निकलता है और कीड़े मकोड़े खाता है। इसके शरीर से बड़ी तीव्र तीव्र दुर्गंध आती है। लोगों का विश्वास है कि छछूँदर के छू जाने से तलवार का लोहा खराब हो जाता है और फिर वह अच्छी काट नहीं करता। यह भी कहा जाता है कि जब साँप छछूँदर को पकड़ लेता है, तब उसे दोनों प्रकार से हानि पहुँचती है; यदि छोड़ दे तो अंधा हो जाय और यदि खा ले तो वह मर जाता है; इसी से तुलसीदास ने कहा है—धर्म सनेह उभयमति घेरी। भइ गति साँप छछूँदर केरी। छछूँदर तंत्रों के प्रयोगों में भी काम आता है।

२. एक प्रकार का यंत्र या तावीज जिसे राजपूताने में पुरोहित अपने यजमानों को पहनाता है। यह गुल्ली के आकार का सोने चाँदी आदि का बनाया जाता है। ३. एक आतिशबाजी जिसे छोड़ने से छू छू का शब्द निकलता है। ४. वह व्यक्ति जो छछूँदर की तरह व्यर्थ इधर उधर घूमता हो।

मुहा०—छछूँदर छोड़ना—ऐसी बात कहना जिससे लोगों में हलचल मच जाय। आग लगाना।

छछेरू†—संज्ञा पुं० [हिं० छाछ+एरू (प्रत्य०)] घी का वह फेन या मैल जो खरा करते समय उसके ऊपर आ जाता है।

छजना—क्रि० अ० [सं० सज्जन, हिं० सजना] १. शोभा देना। सजना। अच्छा लगना। सोहना। उ०—(क) बालम के बिछुरे व्रजबाल को हाल कह्यो न परै कछु ह्याहीं। ज्वै सो गई दिन तीन ही में तब औधि लौं क्यों छजिहै छहीं छाहीं।—केशव (शब्द०)। (ख) कूबर अनूप रूप छतरी छजत तैसी छज्जन में मोती लटकत छवि छावने।—गिरधर (शब्द०)
२. उपयुक्त जान पड़ना। ठीक जँचना। उचित जान पड़ना।

छज्जा—संज्ञा पुं० [हिं० छाजना या छाना] १. छाजन या छत का वह भाग जो दीवार के बाहर निकला रहता है। ओलती। उ०—कूबर अनूप रूप छतरी छजत तैसी छज्जन में मोती लटकत छवि छावने।—गिरधर (शब्द०)। २. कोठे या पाटन का वह भाग जो कुछ दूर तक दीवार के बाहर निकला रहता है और जिसपर लोग हवा खाते या बाहर का दृश्य देखने के लिये बैठते हैं। उ० छज्जन तें छूटति पिचकारी। रँगि गई बाखरि महल अटारी।—सूर (शब्द०)। ३. दीवार या दरवाजे के ऊपर लगी हुई पत्थर की पट्टी जो दीवार से बाहर निकली रहती है। ४. टोपी या हैट के किनारे का निकला हुआ भाग जिससे धूप से बचाव होता है।

मुहा०—छज्जेदार=जिसका किनारा आगे की ओर निकला हुआ हो। जिसमें छज्जा हो। जैसे, छज्जेदार टोपी।

छझा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० छज्जा] दे० 'छज्जा'। उ०—अबर अतर सों तर हैं जिनसे सुमन झड़े हैं। मखतूल के छझे हैं जिय में रहे अड़े हैं।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५६।

छटंकी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० छटाँक] १. छटाँक का बटखरा। वह बाट जिससे छटाँक वस्तु तौली जाय।

छटंकी[2]—वि० १. बहुत छोटा। छटाँक भर का। दुबला पतला। कृशगात (व्यक्ति)। २. नटखट। चंचल (बालक)।

छटक—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक।

छटकना—क्रि० अ० [अनु० या हिं० छूटना] १. किसी वस्तु का दाव या पकड़ से वेग के साथ निकल जाना। वेग से अलग हो जाना। सटकना। जैसे, हाथ के नीचे से गोली छटक गई। मुट्ठी में से मछली छटक गई। २. दूर दूर रहना। अलग अलग फिरना। जैसे, वह कई दिनों से छटका छटका फिरता है। ३. वश में से निकल जाना। बहक जाना। दाँव से निकल जाना। हत्थे न चढ़ना। हाथ न आना। जैसे, देखना, उसे दम दिलासा देते रहना; छटकने न पावे। ४. कूदना। उछलना।

छटका—संज्ञा पुं० [हिं० छटकना] मछलियों के फँसाने का एक गड्ढा जो दो जलाशयों के बीच तंग मेंड़ पर खोदा जाता है। उ०—छटका परे छटकि कहाँ जइहो मीन बझा है जाले। —सं० दरिया, पृ० १०६।

विशेष यह गड्ढा चार छह हाथ लंबा और हाथ दो हाथ चौड़ा तथा दो तीन हाथ गहरा होता है। मछलियाँ एक जलाशय से दूसरे में जाने के लिये कूदती हैं और इसी गड्ढे में गिरकर रह जाती हैं। यह गड्ढा प्रायः धान के खेतों की मेंड़ पर पानी सूखने के समय खोदा जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

छटकाना—क्रि० अ० [हिं० छटकना] १. छटक जाने देना। किसी वस्तु को दाब या पकड़ से बलपूर्वक निकल जाने देना।

छटकाना[2]—क्रि० स० १. बलपूर्वक झटका देकर पकड़ या बंधन से छुड़ाना। छुड़ाना। जैसे, हाथ छटकाना। उ०—रिसि करि खीझि खीझि लट झटकति श्याम भुजनि छटकाए दीन्हों।—सूर (शब्द०)। २. खोलना। मुक्त करना। छोड़ देना। जैसे, गाय का बंधन छटकाना। ३ पकड़ या दवाव में रखनेवाली वस्तु का बलपूर्वक अलग करना। बंधन को जोर करके दूर करना। जैसे.—रस्सी छटकाना।

छटना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'छँटना'।

छटपट[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] छटपटाने की क्रिया। बंधन या पीड़ा के कारण हाथ पैर फटकारने की क्रिया। उ०—गजराज पंक में धँसा हुआ। छटपट करता था फँसा हुआ।—साकेत, पृ० १५६।

क्रि०प्र०— करना।

छटपटा[2]—वि० चंचल। चपल। नटखट।

छटपटाना—क्रि० अ० [अनु०] १. बंधन या पीड़ा के कारण हाथ पैर फटकारना। तड़फड़ाना। तड़फना। जैसे,—(क) देखो बछड़े का गला फँस गया है, वह छटपटा रहा है। (ख) वह दर्द के मारे छटपटा रहा है। २. बेचैन होना। व्याकुल होना। विकल होना। अधीर होना। ३. किसी वस्तु के लिये आकुल होना। अधीनतापूर्वक उत्कंठित होना।

छटपटी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. घबराहट। व्याकुलता। बेचैनी। अधीनता। २. किसी वस्तु के लिये आकुलता। गहरी उत्कंठा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

छटाँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ+टाँक, टक] एक तौल जो सेर का सोलहवाँ भाग है। पाव भर का चौथाई।

मुहा०—छटाँक भर=(१) तौल में पाव का चौथाई भाग। (२) बहुत थोड़ा। स्वल्प। कम।

छटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीप्ति। प्रकाश। प्रभा। झलक। २. शोभा। सौंदर्य। छवि। ३. बिजली। उ०—चमकहिं खड्ग छटा सी राजे।—रघुनाथ (शब्द०)। ४. न टूटनेवाली परंपरा या शृंखला। लड़ी (को०)। ५. ढेर। पुंज। राशि। संघात (को०)।

छटाफल—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़। पूग का वृक्ष या फल।

छटाभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विद्युत्। क्षणप्रभा। २. बिजली की चमक। २. चेहरे की कांति।

छटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० साँटी (=छड़ी)] छड़ी। उ०—नितंति देवनटी छवि जटी। लटकै जनु कि छटन की छटी।—नंद० ग्रं०, पृ० २२७।

छटूँद—संज्ञा पुं० [देश०] राजस्व या कर के रूप में लिया जानेवाला *आय का छठा भाग। उ०—छटूँद (खिराज) वास्तविक* आय के छठे हिस्से की दर से लगाई और बराबर छहमाही किस्तों से अदा की जायगी।—राज०, पृ० १०४५।

छटूक(पु)—वि० [हिं० छ+टूक] छह टुकड़ों में विभक्त। क्षत-विक्षत। उ०- लाल तिहारे नैन सर अचिरज करत अचूक। बिन कंचुक छेदैं करैं छाती छेद छटूक।—मति० ग्रं०, पृ० ४५३।

छटैल—वि० [हिं० छँटना] १. छँटा हुआ। २. चालाक।

छट्ठ—संज्ञा स्त्री० [सं० षष्ठ] दे० 'छठ'।

छट्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० षष्ठी] दे० 'छठी'।

यौ०—छट्ठी बरही=दे० 'छठी बारही'।

छठ—संज्ञा स्त्री० [सं० षष्ठ, प्रा० छट्ठ] पखवारे का छठा दिन। प्रति पक्ष की छठी तिथि।

छठई—वि० स्त्री० [हिं० छठवाँ] दे० 'छठा'।

छठयाँ, छठवाँ—वि० पुं० [सं० षष्ठक] दे० 'छठा'। उ०—करी छठी छठयें दिन राती। नगरी सकल भई रँगराती।—रस र०, पृ० २१।

छठा—वि० [सं० षष्ठक] [वि० स्त्री० छठी] जो क्रम में पाँच और वस्तुओं के उपरांत हो। गिनती के क्रम से जिसका स्थान छह पर हो।

मुहा०— छठे छमासे=कभी कभी। बहुत दिनों पर।

छठी—संज्ञा स्त्री० [सं० षष्ठी, प्रा० छट्ठी] १. जन्म से छठे दिन की पूजा। छट्ठी। उ०—काजर रोरी आनहु (मिलि) करौ छठी को चार। ऐपन की सी पूतरी सब सखियनि कियाँ सिंगार —सूर०, १०।४०।

यौ०—छठी बरही=जन्म से छठे और बारहवें दिन का उत्सव उ०—छठी बारही लोक वेद विधि करि सुविधान विधानी। राम लखन रिपुदवन भरत धरे नाम ललित मुनि ज्ञानी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—करी छठी छठयें दिन राती। रस र०, पृ० २१। पूजना।—पूजना।

मुहा०—छठी का दूध निकलना=कठिन श्रम पड़ना। बहुत हैरानी होना। भारी संकट पड़ना। छठी का दूध याद आना=सब सुख भूल जाना। बचपन की सारी खिलाई पिलाई निकल जाना। घोर परिश्रम पड़ना। बहुत हैरानी होना। भारी संकट पड़ना। छठी का राजा=पुश्तैनी अमीर। पुराना रईस।

२. भाग्य। नियति। तकदीर। उ०—पढ़िबो परचो न छठी छ मत ऋगु, जजुर अथर्वन, साम को।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३७।

मुहा०=छठी में नहीं पड़ना=(१) भाग्य में न होना। (२) प्रकृति में न होना। प्रकृतिविरुद्ध होना स्वभाव के प्रतिकूल होना। जैसे,—देना तो उनकी छठी में ही नहीं पड़ा है।

३. एक देवी जिनकी पूजा छठी के दिन होती है।

छड़—संज्ञा स्त्री० [सं० शर] धातु या लकड़ी आदि का लंबा पतला बड़ा टुकड़ा। धातु या लकड़ी का डंडा। जैसे, लोहे का छड़, बाँस की छड़।

विशेष—बहुत से स्थानों में यह शब्द पुं० भी बोला जाता है।

छड़ना—क्रि० स० [हिं० छँटना] १. अनाज आदि को ओखली में कूटकर साफ करना। ओखली में रखकर अनाज कूटना जिसमें कने निकल जायँ और अनाज साफ हो जाय। छाँटना। जैसे, चावल छड़ना। ⓟ २. त्यागना। छाँड़ना। छोड़ना।

छड़वाली—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छड़ियाल'।

छड़ाई—क्रि० स० [हिं०] दे० 'छुड़ाना'। उ० जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेज तजि गयेउ पराई।—मानस, १।१५८।

छड़ा१ संज्ञा पुं० [हिं० छड़] १. पैर में पहनने का चूड़ी के आकार का एक गहना। यह चाँदी की पतली छड़ या ऐंठे हुए तारों का बनाया जाता है और पाँच से लेकर दस बीस तक एक एक पैर में पहना जाता है। २. मोतियों के लड़ों का गुच्छा। लच्छा।

छड़ा२ वि० [हिं० छाँड़ना] [वि०स्त्री० छड़ी] अकेला। एकाकी।
यौ०—छड़ी सवारी। छड़ी छटाँक।

छड़ानाⓟ—क्रि० स० [हिं०] छीन लेना। अपने वश में कर लेना। उ०—जासु देस नृप लीन्ह छड़ ई। समर सेन तजि गयेउ पराई।—मानस, १।१५८।

छड़ाल१ वि० [हिं० छड़ियाल] कुंतधारी। भालावाला। उ०—मार लियौ कहतै मुहर, उर खीजियौ छड़ाल।—रा० रू०, पृ० २४१।

छड़ाबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० छड़+बाँस] जहाज पर की झंडी। फरहरा (लश०)।

छड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी, छड़ (>छड़ी=दंड)+इया (प्रत्य०)] छड़ीवाला। दंडधारी डेवढ़ीदार। दरबान। द्वारपाल। उ०—(क) द्वार खड़े प्रभु के छड़िया तहँ भूपति जान न पावत नेरे।—कविता० कौ०, भा० १, पृ० १४६। (ख) पटिया आँगन और की लट छट छड़िया काम। तिल जो चिबुक पर लसत है सो सिंगार रस धाम।—मुबारक (शब्द०)।

छड़ियाल—संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी] एक प्रकार का भाला या बरछा।

छड़ी१—संज्ञा स्त्री० [हिं० छड़] १. सीधी पतली लकड़ी। पतली लाठी। २. लहँगे, पाजामे आदि में गोखरू, चुटकी आदि की सीधी टँकाई।—(दरजी)। ३. झंडी जिसे लोग मुसलमान पीरों की मजार पर चढ़ाते हैं। सद्दा। झंडी। जैसे, मदार की छड़ी। ४. गुड़िया पीटने या चौथी छुड़ाने की पतली लकड़ी।

छड़ी२—वि० स्त्री० [हिं० छाँड़ना] अकेली। एकाकिनी।

मुहा०—छड़ी छटाँक या छड़ी सवारी=(१) बिना किसी संगी साथी के। अकेले। एकाकी। (२) बिना कोई बोझ या असबाब लिए। तन तनहा।

छड़ीदार१—वि० [हिं० छड़ी+दार (प्रत्य०)] १. जो छड़ी लिए हो। छड़ीवाला। २. जिसमें सीधी पतली लकीरें हों। लकीरदार। सीधी लकीरोंवाला।—(कपड़ा)। जैसे, छड़ीदार छींट, छड़ीदार गलता।

छड़ीदार२ संज्ञा पुं० चोबदार। आसाबरदार। द्वारपालक। रक्षक। उ०—छड़ीदार तब बचन सुनावा। कोउ नहिं साथ राय के भावा।—कबीर सा०, पृ० ४८३।

छड़ीबरदार संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी+फ़ा० बरदार] बड़े आदमियों की सवारी के साथ सोने चाँदी की छड़ी लिए हुए चलनेवाला। सेवक। चोबदार।

छड़ीला—संज्ञा पुं० [सं० शैलेय] दे० 'छरीला'।

छण—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] दे० 'क्षण'।

छणदा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणदा] दे० 'क्षणदा'।

छत१—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] १. एक घर की दीवारों के ऊपर का पटिया, चूना, कंकड़ आदि डालकर बनाया हुआ फर्श। पाटन। उ०—छिति पर, छान पर, छाजत छतान पर, ललित लतान पर, लाड़िली की लट पै।—पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—कच्चे मकान की छत कड़ियों पर पतले बाँस या उनकी खपचियाँ बिछाकर उसके ऊपर लसदार मिट्टी की तह बैठाने से तैयार होती है। ऐसी छत भीतरी होती है। जिसके ऊपर खपरैल आदि का छाजन रहता है।

मुहा०—छत पटना या पड़ना=दीवार के ऊपर बैठाई हुई कड़ियों पर कंकड़, सुरखी, चूना आदि पीटा जाना। छत बनाना।

२. घर के ऊपर की खुली हुई पाटन। ऊपर का खुला हुआ कोठा। जैसे,—गरमी में लोग छत पर सोते हैं। ३. ऊपर तानने की चादर। चाँदनी। छतगीर।

मुहा०—छत बाँधना=बादलों का घेरकर छाना।

४ छत्र। उ०—जिन घर उदैसिंह छत जैहो। पवर न को जोड़ घर ऐहो।—रा० रू०, पृ० १५।

छतⓟ२—संज्ञा पुं० [सं० क्षत] घाव। जख्म। उ०—सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छत जनु लाग अँगारू।—मानस १।१६१।

छत३—क्रि० वि० [सं० सत्] होते हुए। रहते हुए। आछत। उ०—(क) गनती गनिबे ते रहे छतहू अछत समान। अलि अब ये तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान।—बिहारी र०, दो० २७५। (ख) प्रान पिंड को तजि चलै मुवा कहै सब कोय। जीव छतै जामें मरै सूछम लखै न सोय।—कबीर (शब्द०)। (ग)

पंख छता परबस परयो सूवा के बुधि नाहिं।—संतवानी०, पृ० ३२।

छतगीर—संज्ञा स्त्री० [हिं० छत+फा० गीर] दे० 'छतगीरी'।

छतगीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छत+फा० गीर] १. वह कपड़ा या चाँदनी जो किसी कमरे में ऊपर की ओर शोभा के लिये छत से सटी हुई टँगी रहती है। २. वह कपड़ा जो रात को सोने के समय ओस आदि से रक्षित रहने के लिये पलँग के ऊपरी भाग में उसके पायों के ऊपर चारो ओर चार डंडे लगाकर तान दिया जाता है।

छतज—संज्ञा पुं० [सं० क्षतज] १. रक्त। खून। लहू। उ०—रघुनंदन दसकंध के काटे मुंड कराल। छलक्यो छतज कबंध तें करयो भूमि नभ लाल।—स० सप्तक, पृ० ३६७। २. रक्त के समान लाल उ० - छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला।—मानस, ६। ५२।

छतना ॐ- संज्ञा पुं० [सं० छादन, हिं० छाता, अव०छतौना] पत्तों का बना हुआ छाता। उ०—सोहन सचाई बात करत रचाई दोऊ छबि सों बचाई छींटें ओर छतनान की।—रसकुसुमाकर (शब्द०)।

छतनार†—वि० [हिं० छाता या छतना] छाते की तरह फैला हुआ। दूर तक फैला हुआ। विस्तृत।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः वृक्षों के लिये होता है।

छतर(ॐ)—संज्ञा पुं० [सं० छत्र] दे० 'छत्र'। उ०—खाक रोबी सब सूँ बेहतर था मुझे। ना छतर हो तख्त यो अफसर मुझे।—दक्खिनी०, पृ० १८८।

छतरना—क्रि० अ० [सं० स्तरण] दे० 'छितरना'। उ०—बाहर स्टेशन की तरफ नील फूल की लता चढ़ाई हुई सारे स्टेशन की दीवार पर छतर रही है।—काले०, पृ० ३७।

छतरिया विष—संज्ञा पुं० [सं० छत्र+हिं० इया (प्रत्य०+)विष] एक प्रकार की खुमी जो बहुत विषैली होती है।

छतरी—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० छत्र] १. छाता। २. पत्तों का बना हुआ छाता। उ०—लै कर सुघर खुरुपिया पिय के साथ। छइबै एक छतरिया बरखत पाथ।—रहीम (शब्द०)। ३. मंडप। ४. राजाओं की चिता या साधु महात्माओं की समाधि के स्थान पर स्मारक रूप से बना हुआ छज्जेदार मंडप। ५. कबूतरों के बैठने के लिये बाँस की फट्टियों का बना हुआ टट्टर जो एक ऊँचे बाँस के सिरे पर बँधा रहता है। ६. कहारों की डोली के ऊपर छाया के लिये रखा हुआ बाँस की फट्टियों का टट्टर जिसपर कपड़ा डालते हैं। ७. बहल या इक्के आदि के ऊपर का छाजन। ८. जहाज के ऊपर का भाग। ९. खुमी। कुकुरमुत्ता। १०. छोटा छाता। ११. एक प्रकार का गुब्बारा या छाता जिसके सहारे व्यक्ति वायुयान से कूदकर जमीन पर आ सकता है। पैराशूट।

छतरीदार—वि० [हिं० छतरी+फा० दार] जिसके ऊपर छतरी लगी हो। छतरी से युक्त।

यौ०—छतरीधारी=देखें 'छतरीबाज'।

छतरीनुमा—वि० [हिं० छतरी+फा० नुमह्] छतरी के आकार-वाला। छतरी जैसा।

छतरीबाज—संज्ञा पुं० [हिं० छतरी+फा० बाज] छतरी या (पैराशूट) के सहारे वायुयान से उतरकर आक्रमण करने-वाले सैनिक। छतरी के द्वारा वायुयान से उतरनेवाला।

छतरीसेना संज्ञा पुं० [हिं०] छतरी के सहारे वायुयानों से उतरने-वाली सेना।

छतलाट - संज्ञा स्त्री० [हिं० छत+लोटना] एक प्रकार की कसरत जिसमें गच के ऊपर पेट के बल पट लेटकर लोटते हैं। इससे तोंद नहीं निकलती।

छता†—संज्ञा पुं० [सं० छत्र] १. छाता। २. छत्रसाल। उ०—सीस भयो हरहार सुमेरु छता भयो आप सुमेरु को बासी।—मतिराम (शब्द०)।

छति(ॐ)†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षति] हानि। त्रुटि। नुकसान। उ०—का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नए के भोरे।—मानस, १। २७२।

छतिया(ॐ)—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाती] छाती। वक्षस्थल। उ०—सुनहु श्याम तुमको ससि डरपत है कहत ए सरन तुम्हारी। सूर श्याम विरुझाने सोए लिए लगाइ छतियाँ महतारी।—सूर० (शब्द०)।

छतियाना—क्रि० स० [हिं० छाती] १. छाती के पास ले जाना। २. बंदूक छोड़ने के समय कुंदे को छाती के पास लगाना। बंदूक तानना।

छतिवन—संज्ञा पुं० [सं०सप्तपर्ण, प्रा०सत्तपण्ण, सत्तवण्णसत्तिवण्ण, सत्तिवन्न;छत्तिवण्ण छत्तवण्ण] एक पेड़ जो भारत के प्रायः सभी तरप्रदेशों में थोड़ा बहुत मिलता है। सप्तपर्णी। सप्तच्छद।

विशेष—इसके एक एक पत्ते में सात सात छोटी छोटी पत्तियाँ होती हैं। इसका पेड़ बड़ा होता है और इसकी टहनियों के तोड़ने से दूध निकलता है। इसकी छाल वृष्य, कृमिनाशक, पुष्टिकारक, ज्वरघ्न और संकोचक होती है। इसका दूध फोड़े पर लगाया जाता है और तेल में मिलाकर दर्द दूर करने के लिये कान में डाला जाता है। इसकी लकड़ी संदूक, अलमारी आदि बनाने के काम में आती है। दशमूल नामक काढ़े में इसकी छाल पड़ती है।

छतीस(ॐ)‡—वि० संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छत्तीस'।

छतीश(ॐ)- संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छत्तीस'। उ० - सप्तस्वर सों गाऊँ बजाऊँ सब रागरागिनी पुत्र वधून सहीत छत्तीश।—अकबरी०, पृ० १०५।

छतीसा—वि० [हिं० छत्तीस] [वि०स्त्री० छत्तीसी] १. जिसे छत्तीस बुद्धि हो। चतुर। सयाना। चालाक। उ०—(क) पीसी है मनोज की सी छूटेगी छतीसी छँटी सुरत उड़ी सी भरी भाग की नदी सी है।—रघुराज (शब्द०)। (ख) आए हौ पठाए वा छतीसे छलिया के इतै बीस बिसै ऊधौ बीरबावन कलोंच ह्वै।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १४५। २. मक्कार। धूर्त। जैसे,—नाई की जाति बड़ी छतीसी होती है।

छतीसापन—संज्ञा पुं० [हिं० छतीसा+पन] मक्कारी। चालाकी। धूर्तता।

छतीसी—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'छत्तीसी'।

छतुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छतरी] दे० 'छतारी'। उ०—फोउ कर पीकदान कोऊ के छतुरी छवि छाजत।—प्रेमघन०, पृ० १२।

छतौना—संज्ञा पुं० [हिं० छाता] १. छाता। २. छत्रक। खुमी।

छत्त¹†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छत'।

छत्त²(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० छत्र प्रा० छत्त] दे० 'छत्र'। उ०—चलइ तें चामर परइ धरिअ छत्त तिरहुति उगाहिअ।—कीर्ति०, पृ० ५८।

छत्तर†—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'छत्र'। २ दे० 'सत्र'।

छत्तरी†—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय] दे० 'क्षत्रिय'। उ०—मालूम होता हैं, छत्तरी वंस है।—मान०, भा० ५, पृ० ६।

छत्ता—संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] १. छाता। छतरी। २. पटाव या छत जिसके नीचे से रास्ता हो। ३. मधुमक्खी, भिड़ आदि के रहने का घर जो मोम का होता है और जिसमें बहुत से खाने रहते हैं। ४. छाते की तरह दूर तक फैली हुई वस्तु। छतनार चीज। चकत्ता। जैसे, दूब का छत्ता। दाद का छत्ता। ५. कमल का बीजकोश। (पु) ६. छत्रसाल राजा।

छति संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र में कथित चमड़े का कुप्पा आदि जिसके सहारे नदी पार उतरते थे।

छत्ती(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय] क्षत्रिय। क्षत्री। उ०—रुधि धार पारं भूमि रत्ती। रमैं जानि बांसतं निस्संक छत्ती।—पृ० रा०, १२। १०६।

छत्तीस¹—वि० [षटत्रिंशत्, प्रा० छत्तीसा] जो गिनती में तीस और छह हो। उ०—विगसंत बदन छत्तीस बंस। जदुनाथ जन्म जनु जदुन बंस।—पृ० रा०, १। ७७१५।

छत्तीस²—संज्ञा पुं० १. तीस और छह के योग की संख्या। २. इस संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३६।

छत्तीसवाँ—वि० [हिं० छत्तीस+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम मे पैंतीस और वस्तुओं के उपरांत हो। क्रम में जिसका स्थान छत्तीस पर हो।

छत्तीसा¹—संज्ञा पुं० [हिं० छत्तीस] (छत्तीस जातियों की सेवा करनेवाला या जिसे छत्तीस बुद्धि हो) नाई। हज्जाम।

छत्तीसा²—वि० [वि० स्त्री० छत्तीस] धूर्त। चालाक। चतुर।

छत्तीसी—वि० [हिं० छत्तीस+ई (प्रत्य०)] १. गहरे छल छंदवाली (स्त्री)। उ०—अरे यह छिनाल बड़ी छत्तीसी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३१। २. छिनाल।

छत्तुर†—संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त+उअ, उर (प्रत्य०)] १. छाता। २. वह गोबर जो कंडों के ढेर (कंडौर) की चोटी पर थोपा जाता है। ३. वह गोबर जो खलियान में अनाज की राशि के सिर पर चोरी या नजर से बचाने के लिये रख या थोप दिया जाता है। ४. वह छप्पर जो भूसे की राशि के ऊपर छाया या रखा जाता है। ५. छोटा छाता। दे० 'छतरी'।

छत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाता। छतरी। २ राजाओं का छाता जो राजचिह्नों में से एक है। उ०—तिय बदलें तेरो कियो, मीर भंग सिर छत्र।—हम्मीर, पृ० ३८।

विशेष—यह छाता बहुमूल्य स्वर्णदंड आदि से युक्त रत्नजटित तथा मोती की झालरों आदि से अलंकृत होता है। भोजराजकृत युक्तिकल्पतरु' नामक ग्रंथ में छत्रों के परिमाण, वर्ण आदि का विस्तृत विवरण है। जिस छत्र का कपड़ा सफेद हो और जिसके सिरे पर सोने का कलश हो, उसका नाम कनकदंड है। जिसका डंडा, कमानी, कील आदि विशुद्ध सोने की हों, कपड़ा और डोरी कृष्ण वर्ण हो, जिसमें बत्तीस बत्तीस मोतियों की बत्तीस लड़ों की झालरें लटकती हों और जिसमें अनेक रत्न जड़े हों, उस छत्र का नाम 'नवदंड' है। इसी नवदंड छत्र के ऊपर यदि आठ अंगुल की एक पताका लगा दी जाय तो यह 'दिग्विजयी' छत्र हो जाता है।

यौ०—छत्रछाँह छत्रछाया=रक्षा। शरण।

मुहा०—किसी की छत्रछाँह में होना किसी की संरक्षा में रहना।

३. खुमी। भूफोड़। कुकुरमुत्ता। ४. बन की तरह का एक पेड़। ५. छतरिया विष। खर विष। अतिच्छत्र। ६. गुरु के दोष का गोपन। बड़ों के दोष छिपाना।

छत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खुमी। भूफोड़। कुकुरमुत्ता। २. छाता। ३. तालमखाने की जाति का एक पौधा जिसके पत्ते और फल ललाई लिए होते हैं। ४. कौड़िल्ला नाम की चिड़िया। मछरंग। ५. शिव के पूजार्थ निर्मित मंदिर। मंडप। देवमंदिर। ६. शहद का छत्ता। ७. मिस्री का कूजा।

छत्रकदेही—संज्ञा पुं० [सं० छत्रकदेहिन्] रावण चाकी नामक जलजंतु जिसके शरीर के ऊपर एक गोल छाता सा रहता है। यह समुद्र में होता है।

छत्रचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुभाशुभ फल निकालने के लिये फलित ज्योतिष का एक चक्र।

विशेष—इसमें नौ नौ घरों की तीन पंक्तियाँ बनाते हैं जिनमें क्रमशः अश्विनी से लेकर अश्लेषा तक, मघा से लेकर ज्येष्ठा तक और मूल से रेवती तक नौ नक्षत्रों के नाम रखते हैं। फिर नक्षत्र के नाम के अनुसार शुभाशुभ की गणना करते हैं।

छत्रछाँह—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र+हिं० छाँह] रक्षा। शरण। उ०—या की छत्रछाँह सुख बसियत सकल समाधा है।—घनानंद०, पृ० ५४९।

छत्रछाया—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्रच्छाया] दे० 'छत्रछाँह'। उ०—व्यापारी निगमों की आर्थिक शक्ति उनकी छत्रछाया में उलटा बढ़ी ही दीखती है।—भा० इ० रू०, पृ० ६२८।

छत्रधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. छत्र धारण करनेवाला व्यक्ति। २. राजा। ३. वह सेवक जो राजा के ऊपर छाता लगाता है।

छत्रधार—संज्ञा पुं० [सं०] 'छत्रधारी'। उ०—छत्रधार देखत ढहि जाइ। अधिक गरब थैं खाक मिलाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २०६।

छत्रधारी¹—वि० [सं० छत्रधारिन्] [वि० स्त्री० छत्रधारिणी] जो छत्र धारण करे। जैसे,छत्रधारी राजा।

छत्रधारी²—संज्ञा पुं० [सं०] १. छत्र धारण करनेवाला, राजा। २. वह सेवक जो राजाओं के ऊपर छाता लगावे।

छत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] छत्र का अधिपति, राजा। उ०—जस निर्मल थिर चिर जिवे छत्रपति साहि सलेमु।—अकबरी०, पृ० ६८। २. जंबूद्वीप का एक नरेश (को०) ३. शिवाजी की उपाधि।

छत्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थलपद्म। २. भोजपत्र का वृक्ष। पदुम। ३. मानपत्ता। मानकच्चू। मान। ४. छतिवन।

छत्रपुत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्र+पुत्र] क्षत्रिय का पुत्र। राजपूत। उ०—तोहिं बुध कीन्ह छत्रपुत भारी। सुनहु दुःख जो सहै दुखारी।—हिंदी प्रेम० पृ० २७१।

छत्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक पुष्प।

छत्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रबन्धु] नीच कुल का क्षत्रिय। क्षत्रियाधम। उ०—छत्रबंधु तैं विप्र बोलाई। घालै लिये सहित समुदाई।—मानस, १।१७४।

छत्रभंग—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का नाश। २. ज्योतिष का एक योग जो राजा का नाशक माना गया है। ३. स्त्री की पति द्वारा परित्यक्तावस्था। वैधव्य। विधवपन। ४. अराजकता। ५. हाथी का एक दोष जो उसके दोनों दाँतों के कुछ नीचे ऊपर होने के कारण माना जाता है। ६. परनिर्भरता। पराधीनता। पराश्रयता (को०)।

छत्रमहाराज—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार आकाशस्थ चार दिक्पाल।

विशेष—ये एक एक दिशाओं के अधिपति माने जाते हैं। इनके नाम और क्रम इस प्रकार हैं—प्रथम वीणाराज जो पूर्व दिशा के अधिपति हैं और हाथ में वीणा लिए रहते हैं; दूसरे खड्गराज जो पश्चिम दिशा के अधिपति हैं और हाथ में खड्ग लिए रहते हैं; तीसरे ध्वजराज जो उत्तर दिशा के अधिपति हैं और हाथ में ध्वजा लिए रहते हैं; चौथे चैत्यराज जो दक्षिण दिशा के अधिपति हैं और हाथ में चैत्य धारण करते हैं। बौद्ध मंदिरों में प्रायः इनकी मूर्तियाँ रहती हैं।

छत्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन राज्य जो पांचाल के उत्तर पड़ता था। इसे अहिच्छत्र या अहिक्षेत्र भी कहते थे। महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण इत्यादि में इसका उल्लेख है।

छत्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मुचकुंद का पेड़।

छत्रांग—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्राङ्ग] गोदंती हरताल।

छत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खुमी। ढिंगरी। २. धनियाँ। ३. सोवा। सोआ। ४. मजीठ। ५. रास्ना। रासन। सुश्रुत के अनुसार एक रसायन ओषधि।

छत्राक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खुमी। ढिंगरी। २. कुकुरमुत्ता। ३. जलबबूल।

छत्राकार—वि० [सं०] छाते के समान। उ०—अद्भुत कर्म कान्ह जब करयो। छत्राकार महागिरि धरयो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१२।

छत्राकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रास्ना नाम की ओषधि। २. सर्पाक्षी। ३. छत्रिका (को०)।

छत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] छाता लेकर चलनेवाला व्यक्ति (को०)।

छत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खुमी। ढिंगरी।

छत्री¹—वि० [सं० छत्रिन्] [वि० स्त्री० छत्रिणी] छत्र धारण करनेवाला। छत्रयुक्त।

छत्री²—संज्ञा पुं० नापित। नाई।

छत्री³—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय] दे० 'क्षत्रिय'।

छत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर। २. कुंज।

छदंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षत+अङ्ग] गंडस्थल। उ०—पद लंगर जंजीर जरि, कज्जल गिरवर अग। दिग्ध दंत बग घन बरन, झरत मदंग छदंग।—पृ० रा०, ८।४०।

छदंव(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० छद्म] दे० 'छद्म'।

छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढकनेवाली वस्तु। आवरण (चादर, ढक्कन, छाल इत्यादि)। जैसे,—रदच्छद। उ० चारु विधु मंडल में विद्रुम विराजैं, छद मोतिन से छाजैं ते छपाए छपते नहीं।—(शब्द०)। २. चिड़ियों का पंख। पक्ष। ३. पत्ता। पत्र। पर्ण।—अनेकार्थ०, पृ० ५२। ४. ग्रंथिपर्णी वृक्ष। गंठिवन। ५. तमाल वृक्ष। ६. तेजपत्ता। ७. म्यान। खोल (को०)।

छदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आवरण। आच्छादन। ढक्कन। २. पत्ता। उ०—अमल कमल सा वदन अहा। अधर छबीले छदन अहा। उ०—साकेत, पृ० ७६। ३. चिड़ियों का पंख। ४. तमालपत्र। ५. तेजपत्ता।

छदपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'छदपद' (को०)।

छदपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता। २. भोजपत्र।

छदम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० छद्म] दे० 'छद्म'।

छदाम—संज्ञा पुं० [हिं० छ+दाम] पैसे का चौथाई भाग।

छदि, छदिस्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गाड़ी के ऊपर की छत। उ०—वह युद्ध या सवारी के लिये रथ, माल ढोने के लिये छकड़े बनाता था, जिनकी छत छदिस् कहलाती थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ७८। २. मकान की छत (को०)।

विशेष—संस्कृत में छदि स्त्रीलिंग और छदिस् नपुंसक लिंग है।

छद्दर‡—संज्ञा पुं० [हिं० छ+सं० रद या हिं० दाँत] १. वह पशु जो छह दाँत तोड़ चुका हो। २. नटखट लड़का। शरीर लड़का।

छद्म—संज्ञा पुं० [सं० छद्मन्] १. छिपाव। गोपन। २. व्याज। बहाना। हीला। ३. छल। कपट। धोखा। जैसे, छद्मवेश। ४. मकान की छत या छाजन (को०)।

छद्मतापस—संज्ञा पुं० [सं०] छली तपस्वी। बना हुआ तापस। कपटी साधु (को०)।

छद्मवेश—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरों को धोखा देने के लिये बनाया हुआ वेश। बदला हुआ वेश। कृत्रिम वेश।

छद्मवेशी—वि० [सं० छद्मवेशिन्] जो वेश बदले हो। जो अपना असली रूप छिपाए हो।

छद्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच। गिलोय।

छद्मी—वि० [सं० छद्मिन्] [वि० स्त्री० छद्मिनी] १. बनावटी वेश

धारण करनेवाला। अपना असली रूप छिपानेवाला। छली। कपटी।

छन२(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] १. पर्व का समय। पुण्यकाल। उ०—सागर उजागर की बहु वाहिनी को पति छन दान प्रिय किधौं सूरज अमल है।—केशव (शब्द०)। २. उत्सव। ३. नियम। नेम। ४. मुहूर्त। उ०—छन उत्सव छन नेम पुनि छन मुहूर्त कहियंत।—अनेकार्थ०, पृ० ५३। ५. काल। समय। क्षण। उ०—सो को कबि जो छवि कहि सकै ता छन जमुना तीर—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५५।

छन३—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] जलती या तपती वस्तु पर पानी पड़ने से उत्पन्न शब्द। छनक।

छनंकना१(पु)†—क्रि० स० [अनु०] किसी वस्तु को वेग से फेंकना। सनकाना। उ०—(क) करषि मुट्ठी कम्मान। तानि कन बान छनंकिय।—पृ० रा०, १। ६३६।

छनंकना२(पु)—क्रि० अ० छन छन शब्द करना। छनकना। उ०—खनंकत सेल बखत्तर तोर। छनंकत तेग जँजीरनु मोर।—सूदन (शब्द०)।

छनक१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छन छन करने का शब्द। झनझनाहट झनकार। उ०—कवि मतिराम भूषननि की छनक सुनि चौंद भो चपल चित रसिक रसाल की।—मतिराम (शब्द०)। २. जलती या तपती हुई वस्तु पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन होने का शब्द।

छनक२—संज्ञा स्त्री० [सं० शङ्का या हिं० सनक] किसी आशंका से चौंककर भागने की क्रिया। भड़क।

छनक३—संज्ञा पुं० [सं० क्षण, हिं० छन+एक] एक क्षण। उ०—अरि छोटो गनिए नहीं, जातें होत विगार। तृन समूह को छनक में, जारत तनिक अँगार।—वृंद (शब्द०)।

छनकना१—क्रि० अ० [अनु० छन् छन्] १. किसी तपती हुई धातु (जैसे गरम तवा) पर से पानी आदि की बूँद का छन् छन् शब्द करके उड़ जाना। उ० मैं लै दयो लयो सु कर, छुवत छनिक गो नीर। लाल तुम्हारो अरगजा उर ह्वै लग्यो अबीर।—बिहारी (शब्द०)। २. छन छन शब्द करना। झनकार करना। झनझनाना।

झनकना। जैसे—यह गाय पास जाते ही छनकती है।

छनकना२—क्रि० अ० [सं० शङ्कन] चौकन्ना होकर भागना। भड़कना। जैसे,—यह गाय पास जाते ही छनकती है।

छनक मनक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. गहनों के बजने का शब्द। आभूषणों की झनकार। २. साज बाज। ठसक। जैसे—न्योते में स्त्रियाँ बड़ी छनकमनक से जाती हैं। ३. दे० 'छगनमगन'।

छनकाना१—क्रि० स० [हिं० छनकना] १. पानी को आँच पर रखकर भाप बनाकर उड़ाना जिससे उसका परिमाण कुछ कम हो जाय। २. तपे हुए बरतन में पानी या और कोई द्रव पदार्थ डालकर गरम करना। बलकाना। ३. फेंकना। छोड़ना। छटकाना। ४. पैसे रुपए जैसी वस्तु को हिला डुलाकर छन् छन्, झन् झन् शब्द उत्पन्न करना। उ०—जाने किस किस की माताएँ जेबों में पैसे छनकाएँ।—बंदन०, पृ० ६२।

छनकाना२—क्रि० स० [हिं० छनकना (=शंका करना)] चौंकाना। चौकन्ना करना। भड़काना।

छनकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० छनकना] १. छन् छन् की आवाज। छनछनाहट। २. वर्षा की रिमझिम। उ०—बिंदुओं की छनती छनकार, दादुरों के वे दुहरे स्वर।—पल्लव, पृ० २१।

छनछनाना१—क्रि० अ० [अनु०] १. किसी तपी हुई धातु (जैसे गरम तवा) पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन शब्द होना। २. खौलते हुए घी, तेल आदि में किसी गीली वस्तु (जैसे, आटे की लोई, तरकारी आदि) के पड़ने के कारण छन् छन् शब्द होना। छन्न छन्न शब्द होना। ३. झनझनाना। झनकार होना। †४. जलन होना। चुनचुनाना। लगना।

छनछनाना२—क्रि० स० १. छन छन का शब्द उत्पन्न करना। २. झनकार करना।

छनछवि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणछवि] क्षणप्रभा। बिजली। उ०—केसौदास ऐसें प्रीति छिपावति छलनि में जैसे छनछवि छटै छिपै जाइ घन में।—केशव ग्रं०, पृ० ७८।

छनछेप—संज्ञा पुं० [सं० संक्षेप] थोड़े में कोई बात कहना। सारांश। निष्कर्ष। समास। उ०—गीता पुरान का बेद भने छनछेप में चीत चैतन्य हुआ।—सं० दरिया, पृ० ६६।

छनदा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणदा] १. रात। रात्रि। उ०—तज संक सकुचति न चित, बोलति बाकु कुबाकु। छिन छनदा छाकी रहत, छुटत न छिन छवि छाकु।—बिहारी र०, दो० २१८। २. बिजली। विद्युत्। उ०—नभमंडल ह्वै छितिमंडल ह्वै, छनदा की छटा छहरान लगी।—मतिराम (शब्द०)।

छननमनन—संज्ञा पुं० [अनु०] कड़ाह के खौलते घी या तेल में किसी तली जानेवाली गीली वस्तु के पड़ने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—छनन मनन होना=कड़ाह में पूरी कचौरी आदि निकलना। पूरी, पकवान आदि बनना।

छनना—क्रि० अ० [सं० क्षरण] १. किसी चूर्ण (जैसे आटा) या द्रव पदार्थ (जैसे, दूध, पानी आदि) का किसी कपड़े या जाली के महीन छेदों में से होकर इस प्रकार नीचे गिरना कि मैल, खूद, सीठी आदि अलग होकर ऊपर रह जाय। छननी से साफ होना। २. छोटे छोटे छेदों से होकर आना। जैसे,—पेड़ की पत्तियों के बीच से धूप छनछनकर आ रही है। ३. किसी नशे का पिया जाना। जैसे,—भाँग छनना, शराब छनना।

मुहा०—गहरी छनना=(१) खूब मेल जोल होना। गाढ़ी मैत्री होना (२) परस्पर रहस्य की बातें होना। खूब घुट घुटकर बात होना। (३) आपस में चलना। बिगाड़ होना। लड़ाई होना। एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न होना। जैसे—उन दोनों में आजकल गहरी छन रही है।

४. बहुत से छेदों से युक्त होना। स्थान स्थान पर छिद जाना। छलनी हो जाना। जैसे,—इस कपड़े में अब क्या र गया है,

बिलकुल छन गया है। ५. बिध जाना। अनेक स्थानों पर चोट खाना। जैसे,—उसका सारा शरीर तीरों से छन गया है। ६. छानबीन होना। निर्णय होना। सच्ची और झूठी बातों का पता चलना। जैसे, मामला छनना। ७. कड़ाह में से पूरी पकवान आदि तलकर निकलना। जैसे, पूरी छनना।

छनना[2]—संज्ञा पुं० छनने की वस्तु। किसी वस्तु को छानने का साधन। जैसे, महीन छनना (कपड़ा)।

छननी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षरण] वह छेददार वस्तु जिसमें कोई चीज छानी जाय। चलनी। उ०—भस्मीभूत अस्थियों के अनगिन, स्तर की छननी में छनकर। एक मनोमोहक उन्मादक झिलमिल निर्झर रूप ग्रहण कर।—इत्यलम्, पृ० ६८।

छनपरभा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणप्रभा] बिजली। उ०—छनपरभा के छल रही चमकि मार करवार।—स० सप्तम, पृ० २७२।

छनभंगु(पु)—वि० [सं० क्षणभङ्गु] नाशवान्। अनित्य। उ०—राम बिरह तनु तजि छनभंगू।—मानस, २। २१०।

छनभंगुर(पु)—वि० [सं० क्षणभङ्गुर] अनित्य। नाशवान्। क्षणस्थायी। उ०—तनु मिथ्या छनभंगुर जानो। चेतन जीव सदा थिर मानो।—सूर०, ५। ४।

छनभर—क्रि० वि० [हिं०] थोड़ी देर। लहमा भर।

छनरुचि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षण + रुचि (= कांति, प्रभा)] क्षणप्रभा। बिजली। उ०—छनरुचि छटा अकाल की तड़ित चंचला होइ।—अनेकार्थ०, पृ० ३८।

छनवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'छनाना'।

छनाका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. खनाका। ठनाका। झनकार। २. रुपयों के बजने का शब्द।

छनाना—क्रि० स० [हिं० छानना] १. किसी दूसरे से छानने का काम कराना। २. नशा आदि पिलाना। जैसे, भाँग छनाना। ३. कड़ाह में पकवान तलवाना।

छनिक[1](पु) वि० [सं० क्षणिक] दे० 'क्षणिक'।

छनिक[2]—संज्ञा पुं० [हिं० छन + एक] एक क्षण। अल्प काल।

छनिक[3]—क्रि० वि० दे० 'छन भर'।

छन्न[1]—वि० [सं०] १. ढका हुआ। आवृत। आच्छादित। २. लुप्त। गायब।

छन्न[2]—संज्ञा पुं० १. एकांत स्थान। निर्जन स्थान। गुप्त स्थान।

छन्न[3]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. किसी तपी हुई चीज पर पानी आदि पड़ने से उत्पन्न शब्द। २. तड़कड़ाते हुए तेल या घी में तलने की वस्तु पड़ने का शब्द।

मुहा०—छन्न होना = सूख जाना। उड़ जाना।

३. धातुओं के पत्तरों की परस्पर टक्कर से उत्पन्न शब्द। छनकार। ठनकार। छोटी छोटी ककड़ियाँ। बजरी।

छन्न[4]—संज्ञा पुं० [सं० छन्द] [स्त्री० छन्नी] छँद नाम का गहना। हाथ का एक आभूषण। उ०—चाहे उसके लिये माँ के हाथों के छन्न ककना ही क्यों न गिरवी रखने पड़े।—ज्ञानदान, पृ० ६७।

छन्नमति—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि पर परदा पड़ा हो। जड़। मूर्ख।

छन्ना—संज्ञा पुं० [हिं० छन्ना] दे० 'छनना'।

छप[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पानी में किसी वस्तु के एकबारगी जोर से गिरने का शब्द। २. पानी के एकाबारगी पड़ने का शब्द। पानी के छींटों के जोर से पड़ने का शब्द।

यौ०—छपछप, छपाछप = (१) भरपूर। (२) छप् छप् की लगातार आवाज। (३) छप् छप् की ध्वनि के साथ।

छप—वि० [हिं० छिपन, छपन] गायब। लुप्त। अदृष्ट।

यौ०—छपलोक = अदृष्ट जगत्। उ०—तब तोहि जानो पंडिता, मुक्ता कहि देहु आय। छपलोक की बात कहु तब मोर मन पतियाय।—संतवाणी०, भा० १, पृ० १२५।

छपक[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. तलवार आदि के चलने की आवाज। २. छप छप की आवाज। दे० 'छप'।

छपक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिपना] छिपने या दुबकने की स्थिति।

छपकना—क्रि० अ० [हिं० छिपना] दे० 'छिपना'। उ०—दबकत छपकत चीता आवै तीनु जने धरि खावै।—सं० दरिया, पृ० १२६।

छपकना[2]—क्रि० स० [हिं० छप से अनु०] १. पतली कमची से किसी को मारना। पतली लचीली छड़ी से किसी को पीटना। २. कटारी या तलवार के आघात से किसी वस्तु को काट डालना। छिन्न करना। ३. थोड़े जल में छपछप की आवाज करना। थोड़े पानी में हाथ पैर चलाना।

छपकली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छिपकली'। उ०—छपकली से, चोर से, भूत से वह बहुत डरती है।—सुनीता, पृ० ११३।

छपका[1]—संज्ञा पुं० [हिं० चपकना] सिर में पहनने का एक गहना जिसे लखनऊ में मुसलमान स्त्रियाँ पहनती हैं।

छपका[2]—संज्ञा पुं० [हिं० छपकना] पतली कमची। सोंटा।

छपका[3]—संज्ञा पुं० [हिं० चार + पका] खुरवाले पशुओं का एक रोग जिसमें पशुओं के खुर पक जाते हैं। खुरपका।

छपका[4]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. पानी का भरपूर छींटा। २. एक प्रकार का जाल जिसमें कबूतर फँसाए जाते हैं। ३. लकड़ी के संदूक में ऊपर का वह पटरा जिसमें कुंडे की जंजीर लगी रहती है। ४. पानी हाथ पैर मारने की क्रिया या भावी। ५. दाग। धब्बा। ६. छापा।

क्रि० प्र०—मारना।—लेना।

छपछपाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] १. पानी पर कोई वस्तु जोर से पटककर छप छप शब्द उत्पन्न करना। पानी पर हाथ पाँव पटकना। २. कुछ तैर लेना। जैसे,—वे तैरते क्या हैं, यों ही पानी पर छपछपाते हैं।

छपछपाना[2]—क्रि० स० [अनु०] छड़ी या हाथ आदि पटककर पानी को इस प्रकार हिलाना जिसमें छप छप शब्द उत्पन्न हो।

छपटना[1]—क्रि० अ० [सं० चिपिट, हिं० चिपटना] १. चिपकना। किसी वस्तु से लगना या सटना। २. आलिंगित होना।

छपटना[2](पु)—क्रि० अ० [हिं० झपटना] दे० 'झपटना'।

छपटाना†—क्रि० स० [हिं० छपटना] १. चिपकाना। चिमटाना। २. छाती से लगाना। आलिंगन करना।

छपटी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छपटना] लकड़ी का टुकड़ा जो छीलने से निकले। चैली।

छपटी²—वि० पतला। दुबला। कृश।

छपड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का भुजंगा पक्षी।

छपद—संज्ञा पुं० [सं० षट, प्रा० छ+सं० पद] भ्रमर। भौंरा। उ०—(क) उलटि तहाँ पग धारिये जासों मन मान्यो। छपद कंज तजि वेलि सों लटि प्रेम न जान्यो।—सूर (शब्द०)। (ख) छपद सुनहि वर बचन हमारे। बिनु ब्रजनाथ ताप नैनन की कौन हरै हरि अंतर कारे।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सिंधुर मदझर सिद्धरा ऊखेडै वगराय। तजकावेरी कमलवन छपदाँ लीधा छाय।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६६।

छपन‡¹—वि० [हिं० छिपना] १. गुप्त। गायब। लुप्त। (पश्चिम में प्रयुक्त)। उ०—न जाने कहाँ छपन हो गई।—श्रद्धाराम (शब्द०)।

छपन²Ⓟ†—वि० [सं० षट्पञ्चाशत्, प्रा०छप्पन्न] दे० 'छप्पन'। उ० —क्रोध काल प्रत्यक्ष ही कियो सकलको नास। सुंदर कौरव पांडुवा छपन कोटि परभास।—सुंदर ग्रं०, भा० पृ० ७०६।

यौ०—छपनकोट, छपनकोटि=छप्पन करोड़। उ०—सागर कोट जाके कलसार। छपन कोट जाके पनिहार।—दरिया० बानी, पृ० ४३।

छपन³—संज्ञा पुं० [सं० क्षपण] विनाश। नाश। संहार। उ०— छोनी में न छाँड़यो छप्यो, छोनिप को छौना छोटो छोनिप छपन बाँको बिरुद कहतु हौं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६०।

छपनहार—वि० [हिं० छपन+हार (प्रत्य०)] विध्वंसकर्ता। विनाशक। उ०— कीन्हीं छोनी छत्री बिनु छोनिप छपनहार। कठिन कुठारपानि बीर बानि जानि कै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १८८।

छपना¹—क्रि० अ० [हिं० चपना (= दबना)] १. छापा जाना। चिह्न या दाब पड़ना। २. चिह्नित होना। अंकित होना। ३. मुद्रित होना। जैसे,—पुस्तक छपना। ४. शीतला का टीका लगना।

छपना²Ⓟ‡—क्रि० अ० [हिं० छिपना] दे० 'छिपना'। उ०—मारतंड छपि अंधकार छायो दिसानु दस।—हम्मीर०, पृ० ४३।

छपर†—संज्ञा पुं० [हिं०] छप्पर। जैसे, चपरखट, छपरबंद, छपरिया।

छपरखट—संज्ञा स्त्री० [हिं० छप्पर+खाट] वह पलंग जिसके ऊपर डंडों के सहारे कपड़ा तना हो। मसहरीदार पलंग।

छपरखाट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छपरखट'।

छपरछपर¹—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'छप', 'छपछप'।

छपर छपर²—तर। भींगा हुआ या गीला।

छपरबंद¹—वि० [हिं० छप्पर+बंद] [संज्ञा छपरबंदी] १. जिनका घर बना हो। आबाद। बसे हुए। पाही का उलटा। जैसे, छपरबंद असामी, छपरबंद बाशिंदा। २. छप्पर छाने का काम करनेवाला। छप्पर छानेवाला।

छपरबंद²—संज्ञा पुं० [देश०] पूना के आसपास बसनेवाली एक जाति जो अपने को राजपूत कुल से उत्पन्न बतलाती है।

छपरबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छपरबंद+ई (प्रत्य०)] १. छप्पर छाने का काम। छवाई। २. छाने की मजदूरी। छवाई।

छपरा†—संज्ञा पुं० [हिं० छप्पर] १. बाँस का टोकरा जो पत्तों से मढ़ा होता है और जिसमें तमोली पान रखते हैं। २. दे० 'छप्पर'। ३. बिहार का एक जिला और नगर जिसको सारन भी कहते हैं।

छपरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छप्पर+इया (प्रत्य०)] छोटा छप्पर। दे० 'छपरी'।

छपरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छप्पर] झोपड़ी। मढ़ी। उ०— चंदन की कुटकी भली, बँबूर की अवराँउँ। बैश्नों की छपरी भली, ना सापत का बड गाँउँ। कबीर ग्रं०, पृ० ५२।

छपवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छापना] दे० 'छपाई'।

छपवाना—क्रि० स० [हिं० छपाना] दे० 'छपाना'।

छपवैया†—संज्ञा पुं०, वि० [हिं० छापना] १. छापनेवाला। २. छपानेवाला। ३. मुद्रित करानेवाला (प्रकाशक)। उ०— मंगल सदाहीं करैं राम ह्वै प्रसन्न सदा राम रसिकावली या ग्रंथ छपवैया को।—जुगलेश (शब्द०)।

छपहीं‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने या चाँदी का एक गहना जिसे स्त्रियाँ हाथ की उँगलियों में पहनती हैं।

छपाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षपा] १. रात्रि। रात। उ०—छपन छपा के, रवि इव भा के, दंड उतंग उड़ाके। विविध कता के, बँधे पताके, छुवैं जे रवि रथ चाके। - रघुराज (शब्द०)। २. हरिद्रा। हलदी।

छपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छापना] १. छापने का काम। मुद्रण। अंकन। २. छापने का ढंग। ३. छापने की मजदूरी।

छपाकर—संज्ञा पुं० [सं० क्षपाकर] १. चंद्रमा। चाँद। उ०—छिप्यो छपाकर छितिज छीरनिधि छगुन छंद छल छीन्हो।—श्यामा०, पृ० १२०। २. कर्पूर। कपूर।

छपाका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. पानी पर किसी वस्तु के जोर से पड़ने का शब्द। २. जोर से उछाला या फेंका हुआ पानी या तरल वस्तु का छींटा।

क्रि० प्र०—मारना।

छपाना¹—क्रि० स० [हिं० छापना का प्रे० रूप] १. छापने का काम कराना। २. चिह्नित कराना। अंकित कराना। ३. छापेखाने में पुस्तक आदि अंकित कराना। मुद्रित कराना। ४. शीतला का टीका लगवाना।

छपाना²—क्रि० स० [हिं० छिपाना] दे० 'छिपाना'। उ०—जाहि लय गेलहुं, से चल आयल, तैं तरु रहसि छपाइ।—विद्यापति, पृ० ३५७।

छपाना³—क्रि० अ० [अनु० छपछप या हिं० छोपना] जोतने के लिये खेत को सींचना।

छपानाथⓅ—संज्ञा पुं० [सं० क्षपानाथ] दे० 'क्षपानाथ'।

छपावⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छिपाव'।

छप्पन¹—वि० [सं० षट्पंचाशत्, प्रा० छप्पण्ण, छप्पन] जो गिनती में पचास और छह हो। पचास से छह अधिक।

छप्पन²—संज्ञा पुं० १. पचास और छह की संख्या । २. इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५६ ।

मुहा०—छप्पन टके का खर्च=अधिक खर्च । उ० पूछो, रोटी दाल में ऐसा कौन सा छप्पन टके का खर्च है ।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ७०२ ।

यौ०—छप्पन भोग=(१) छप्पन प्रकार के व्यंजन । (२) मंदिरों में होनेवाला एक उत्सव जिसमें छप्पन प्रकार के भोज्य पदार्थ भगवान् को अर्पण किए जाते हैं । उ०—व्यंजन चार प्रकार के छप्पन भोग विलास । रामा एकाण भाव में जाएँ हरि के दास ।—राम० धर्म०, पृ० २४ ।

छप्पय—संज्ञा पुं० [सं० षट्पद, प्रा० छप्पय] एक मात्रिक छंद जिसमें छह चरण होते हैं ।

विशेष—इस छंद में पहले रोला के चार पद, फिर उल्लाला के दो पद होते हैं । लघु गुरु के क्रम से इस छंद के ७१ भेद होते हैं । जैसे - अजय विजय बलकर्ण वीर बैताल विहकर । मर्कट हरि हर ब्रह्म इंद्र चंदन जु शुभंकर । श्वान सिंह शार्दूल कच्छ कोकिल खर कुंजर । मदन मत्स्य ताटंक शेष सारंग पयोधर । शुभकमल कंद वारण शलभ, भवन अजंगम सर सरस । गणि समर सु सारस मेरु कहि, मकर अली सिद्धिहि सरस ।

छप्पर—संज्ञा पुं० [हिं० छोपना] १. बाँस या लकड़ी की फट्टियों और फूस आदि की बनी हुई छाजन जो मकान के ऊपर छाई जाती है । छाजन । छान ।

क्रि० प्र०—छाना ।—डालना ।—पड़ना ।—रखना ।

यौ०—छप्परबंद ।

मुहा०—छप्पर पर रखना=दूर रखना । अलग रखना । रहने देना । छोड़ देना । चर्चा न करना । जिक्र न करना । जैसे,—तुम अपनी घड़ी छप्पर पर रखो, लाओ हमारा रुपया दो । छप्पर पर फूस न होना=अत्यंत निर्धन होना । कंगाल होना । अकिंचन होना । छप्पर फाड़कर देना=अनायास देना । विना परिश्रम प्रदान करना । बैठे बैठाए अकस्मात् देना । घर बैठे पहुँचाना । जैसे,- जब देना होता है तो ईश्वर छप्पर फाड़कर देता है । छप्पर रखना=(१) एहसान रखना । बोझ रखना । निहोरा लगाना । उपकृत करना । (२) दोषारोपण करना । दोष लगाना । कलंक लगाना ।

२. छोटा ताल या गड्ढा जिसमें बरसाती पानी इकट्ठा रहता है । डाबर । पोखर । तलैया ।

छप्परबंद¹—संज्ञा पुं० [हिं० छप्पर+फा० बंद] १. छप्पर छानेवाला । २. पूना के आसपास बसनेवाली एक जाति जो अपने को राजपूत कुल से उत्पन्न बतलाती है ।

छप्परबंद²—वि० जिसने घर बना लिया हो । जो बस गया हो । बसा हुआ । आबाद । जैसे,—छप्परबंद असामी ।

छप्परबंध—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छप्परबंद' । उ०—चितेरा बिधेरा बारी लखेरा ठठेरा राज, पटवा छप्परबंध नाई भारभुनिया ।—अर्ध०, पृ० ४ ।

छब†—संज्ञा स्त्री० [सं० छवि] दे० 'छवि' । उ०—जर इस बजम छब की उकसी दिखाय । तो जोहर हो ज्यों दिप मने जल्वागाय । दक्खिनी, पृ० १३८ ।

छबकाल—संज्ञा पुं० [डिं०] एक प्रकार का काव्यदोष । डिंगल काव्य में जब डिंगल भाषा से भिन्न और भी भाषाएँ प्रयुक्त हों, तब वहाँ छबकाल दोष होता है । उ०—दर्स उकतरो रूप, ग्रंथ सो नाम उचारै । कहे सले छबकाल, विविध भाषा विसतारै ।—रघु० रू०, पृ० १४ ।

छबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० छबड़ी] १. टोकरा । दला । झाबा । छितना । २. खाँचा ।

छबतखती‍Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० छवि+अ० तख्तीअ] शरीर की सुंदर बनावट । सुंदरता । सज धज ।

छबतख्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छबतखती' ।

छबरा—संज्ञा पुं० [देश०] छबड़ा । डलिया । पिटारी । उ०—जैसे काहू सर्प को छबरे पकरि धरयो सु ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ७३ ।

छबि—संज्ञा स्त्री० [सं० छवि] शोभा । कांति । दे० 'छवि' । उ०—सो को कवि जो छबि कहि सकै ता छन जमुना नीर की ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४४ ।

यौ०—छबिकंद=शोभा का पुंज । अत्यंत सुंदर । उ०—पिथत भए सुंदर नंदनंद । मुसकत जात मंद छबिकंद ।—नंद ग्रं०, पृ० २३८ । छबिरास=दे० 'छबिकंद' । उ० रोवत आँसू रकत को, इंद्रावति छबिरास ।—इंद्रा०, पृ० ८६ ।

छबिलवा†—वि० [हिं०] दे० 'छबीला' ।—उ०—मोरा मन बाँधि लो, तोरे गुन छैल छबिलवा रसिक रसिलवा ।—घनानंद, पृ० ४११ ।

छबीला—वि० [हिं० छवि+ईला (प्रत्य०) या सं० छविमत्, प्रा० छबिल्ल] [वि० स्त्री० छबीली] शोभायुक्त । सुहावना । सुंदर सजधज का । बाँका । उ०—(क) छला छबीले लाल को, नवल नेह लहि नारि । चूँबति चाहति, लाइ उर, पहिरति धरति उतारि ।—बिहारी र०, दो० १२३ । (ख) मनु रे छबीली तोहि छबि लागी । नैन गुलाल कंत संग जागी,—जायसी ग्रं०, पृ० १४३ ।

छबुँदकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छबुंदा' ।

छबुँदा—संज्ञा पुं० [हिं० छह+बुंदकी] गुबरैले की तरह का एक कीड़ा ।

विशेष इसकी पीठ पर छह काली बुंदकियाँ होती हैं । यह बड़ा विषैला होता है । कहते हैं, इसका काटा नहीं जीता ।

छब्बी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छवि] दलालों की बोली में पैसा ।

छब्बीस¹—वि० [सं० षड्विंश, प्रा० छब्बीसा] जो गिनती में बीस और छह हो ।

छब्बीस²—संज्ञा पुं० १. बीस से छह अधिक की संख्या । २. इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२६ ।

छब्बीसवाँ—वि० [हिं० छब्बीस+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में पचीस अंक और वस्तुओं के उपरांत हो । जिसका स्थान छब्बीस पर हो ।

छब्बीसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छब्बीस] १. छब्बीस वस्तुओं का समूह। २. फलों की बिक्री का सैकड़ा जो प्राय: छब्बीस गाहीं या १३० का होता है।

छमंड—संज्ञा पुं० [सं० छमरड] वह बालक जिसका पिता मर गया हो। पितृविहीन बालक।

छम¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. घुँघरू आदि के बजने का शब्द। २. पानी बरसने का शब्द।

यौ०—छमाछम।

छम²(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्षम] दे० 'क्षम'।

छम³—वि० क्षमयुक्त। शक्तियुक्त। समर्थ।

छमक—संज्ञा स्त्री० [हिं० छम] चाल ढाल की बनावट। ठसक। ठाटबाट।—(स्त्रियों के लिये)।

छमकना—क्रि० अ० [हिं० छम+क] १. घुँघरू आदि हिलाकर छमछम करना। २. गहने आदि बजाना। गहनों की झनकार करना। ठसक दिखाना (स्त्रियों के लिये)। ३. दे० 'छौंकना'।

छमच्छर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० संवत्सर] संवत्सर। संवत्। उ०—संमत मेक सयत्त मिले गुणसठौ छमच्छर।—रा० रू०, पृ० ३७१।

छमछम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह शब्द जो चलने में पैर में पहने हुए गहनों के बजने से होता है। नूपुर, पायल, घुँघरू आदि के बजने का शब्द। उ०—छमछम करि छिति चलति छटी पायल दोउ छाजी।—सुकवि (शब्द०)। २. पानी बरसने का शब्द।

छमछम—²—क्रि० वि० छम छम शब्द के साथ।

छमछमाना—क्रि० अ० [अनु] १ छम छम शब्द करना। २. छम छम शब्द करके चलना।

छमना†—क्रि० स० [सं० क्षमन, प्रा० छमन] क्षमा करना। उ०—छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई। सुनिहहिं बाल वचन मन लाई।—मानस, १। ८।

छमनीय(पु)—वि० [सं० क्षम] सामर्थ्यवान्। क्षम। उपयुक्त।

छमवाना(पु)†—क्रि० स० [सं० क्षमापन] दे० 'छमाना'। उ० बहुरि विधि जाइ छमवाइ कै रुद्र कौ बिस्नु विधि रुद्र तहँ तुरत आए।—सूर०, ४।६।

छमसी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ+मास] दे० 'छमासी'।

छमा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० छमा, प्रा० छमा] दे० 'क्षमा'।

छमा²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्मा] पृथिवी। धरती। अवनि। उ०—संत समाज पयोधि रमा सी। विश्व भार भर अचल छमा सी।—मानस, १। ३१।

छमाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा] दे० 'क्षमापन'।

छमाछम¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. गहनों के बजने का शब्द। २. पानी बरसने का शब्द।

छमाछम²—क्रि० वि० लगातार छम छम शब्द के साथ। जैसे,—छमाछम पानी बरसना।

छमापन संज्ञा पुं० [सं० क्षमापन] दे० 'क्षमापन'।

छमावान—वि० [सं० क्षमावत्] दे० 'क्षमावान'।

छमाशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ+माशा] छह माशे का बाट।

छमासी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ+सं० मास] वह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु से छह महीने पर उसके संबंधी करते हैं।

छमासी²—वि० छह मास की। छह महीने की अवधिवाली। उ०—एक टकटकी पंथ निहारू, भई छमासी रैन।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ७२।

छमिच्छा†—संज्ञा स्त्री० [सं० समस्या] १. समस्या। २. इशारा। संकेत।

छमी¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० शमी] एक वृक्ष। शमी। उ०—समिध पलास छमी न्याइय।—संतवाणी०, भा० १, पृ० २३।

छमी²(पु)—वि० [सं० क्षमिन्] क्षमाशील। समर्थ। उ०—सुर हरिभक्त असुर हरिद्रोही। सुर अति छमी असुर अति कोही।—सूर०, ३। ६।

छमुख—संज्ञा पुं० [हिं० छ+मुख] षडानन। कार्तिकेय।

छय(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्षय] नाश। विनाश। उ०—जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बश न जान कछु राऊ।—मानस, १। १७०।

विशेष—दे० 'क्षय'।

छयना¹(पु)†—क्रि० अ० [सं० क्षयण] क्षय होना। नाश होना।

छयना²(पु)—क्रि० अ० [सं० आच्छादन] १. छा जाना। घिर जाना। उ०—मायामद उनमद ह्वै गयौ। सझ न कछू अंध तम छयौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७०। २. शोभित होना। छाजना। उ०—पट सत रथ कंचन के नए। गज सत चारि मत्त छवि छए।—नंद० ग्रं०, पृ० २२१।

छयल(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० छयल्ल] दे० 'छैल'। उ०—तिन्ह सब छयल भए असवारा। भरत सरिस वय राजकुमारा।—मानस, १। २९८।

छयल्ल(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० छविमत्, प्रा० छइल्ल, छविल्ल, छयल्ल] १ विदग्ध। चतुर। दे० 'छैल' या 'छैला'। उ०—छुटत गिलोला हथ्थ तें पारत चोट पयल्ल। कमल नयन जनु कामिनी करत कटाछ छयल्ल।—पृ० रा०, १। ७२८।

छयल्ल(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० छेलक] अज। बकरा। छाग। उ०—वह व्रषभ गाय महिपीन तुंग। छेली चयल्ल गडरन्न पुंग।—पृ० रा०, १७। ३३।

छर¹—संज्ञा पुं० [सं० छल] दे० 'छल'। उ०—(क) पहिचानिय कवि चंद बीर बावंन सूर वर। महाकाय मदमत्त अंत जनु अहित दनुज छर।—पृ० रा०, ६। ८३। (ख) सहचरि चतुर तुरत लै आई, बाँह बोल दै करिकै वहु छर।—सूर०, १०।२४५५।

छर²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छर्रों या कणों के वेग से निकलने या गिरने का शब्द। जैसे,—छरछर कंकड़ियाँ गिर रही हैं।

यौ०—छरछर।

छर³—संज्ञा पुं० [सं० क्षर] दे० 'क्षर'।

छर⁴(पु)—वि० [सं० क्षर] नश्वर। नाशवान्। उ०—छर ही नाद वेद अरु पंडित छर ज्ञानी अज्ञानी।—चरण० बानी, पृ० १२७।

छरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक तरह का ठप्पा।

छरकना¹—क्रि० अ० [अनु० छर छर] १ छर छर करके छिटकना या बिखरना। २. किसी पदार्थ का कभी तल को स्पर्श करते हुए और कभी उछलते हुए वेग से किसी ओर जाना।

छरकना²—क्रि० अ० दे० 'छलकना'।

छरकायल(पु)—वि० [हिं० छरकना] बिखरा हुआ। उ०—पाय लगों छोरो न अब हायल नंद कुमार। छूटत ही घायल करें छरकायल ये बार।—म० सप्तक, पृ० २६६।

छरकीला†—वि० [हिं०√छरक+ईला (प्रत्य०)] छिटकनेवाला। दूर रहनेवाला। उ०—वे स्वभाव से ही छरकीले होते हैं और अपनी बातें छिपाने की व्याधि उनमें अधिक है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, (विविध) पृ० ३९।

छरछंद(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० छलछद] दे० 'छलछंद'। उ०—इक अंबर के टूक कौं निसि मैं ओढ़त चंद। दिन मैं ओढ़त ताहि रवि तू क्यों कर छरछद।—ब्रज ग्रं०, पृ० १०६।

छरछंदी†—वि० [हिं० छरछंद+ई (प्रत्य०)] दे० 'छरछंदी'।

छरछर—संज्ञा पुं० [अनु० छर] १. कणों या छर्रों के वेग से निकलने और दूसरी वस्तुओं पर गिरने का शब्द। उ०—तिहि फिर मंडल बीच परी गोली झर झर झर। तहँ फुट्टिय कर गोर श्रोन छुट्टिय छत छर छर।—सूदन (शब्द०)। २. पतली लचीली छड़ी के लगने का शब्द। सट सट। उ०—काहे कौं हरि इतनौ त्रास्यौ। सुनि री मैया मेरैं भैया कितनौ गोरस नास्यौ। जब रजु सौं कर गाढ़े बाँधे छर छर मारी साँटी। सूने घर बाबा नँद नाहीं, ऐसैं करि हरि डाँटी।—सूर०, १०।३७५।

छरछराना¹—क्रि० अ० [सं० क्षार, हिं० छार से आम्रेडित नामिक धातु] १. नमक या क्षार आदि लगने से शरीर के घाव या छिले हुए स्थान में पीड़ा होना। जैसे, हाथ छरछरा रहा है। २. क्षार, नमक आदि का शरीर के घाव या कटे हुए स्थान पर लगकर पीड़ा उत्पन्न करना। जैसे—नमक घाव पर छरछराता है।

छरछराना²—क्रि० अ० [अनु० छर छर] कणों का वेग से किसी वस्तु पर गिरना या बिखरना।

छरछराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं०√ छरछरा+हट (प्रत्य०)] १. छर्रों या कणों के वेगपूर्वक एक साथ निकलने और गिरने का भाव। २. घाव में नमक आदि लगने से उत्पन्न पीड़ा। उ०—छरछराहट जब कलेजे में हुई। मुस्कराहट होंठ पर कैसे रहे।—चोखे० पृ० ५६।

छरद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० छर्द] दे० 'छर्द'। उ०—जो छिया छरद करि सकल संतनि तजी तासु तें मूकमति प्रीति ठानी।—सूर०, १।१९०।

छरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षरण] विनाश। नाश। क्षरण। उ०—तवही छरन जान अपछरा। भूपन लाग न बाँधे छरा।—चित्रा०, पृ० ७४।

छरना¹—क्रि० अ० [सं० क्षरण, प्रा० छरण] १. चूना। बहना। टपकना। झरना। उ०—ऊँची अटा घटा इव राजहिं छरति छटा छिति छोरें।—रघुराज (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

२. चकचकाना। चुचुवाना। उ०—बिथुरी अलक, शिथिल कटि डोरी नखछत छरितु मरालगामिनी।—सूर (शब्द०)। ३. छँटना। दूर होना। न रह जाना। उ०—जब हरि मुरली अधर धरत। थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं जमुना जल न बहत खग। मोहैं, मृगजूथ भुलाहीं, निरखि बदन छवि छरत।—सूर०, १०।६०। ४. चावल का फटककर साफ किया जाना। ५. छँटकर अलग होना। दूर होना। उ०—जेहि जेहि मग सिय राम लषन गए तहँ तहँ नर नारि बिनु छट छरिगे।—तुलसी (शब्द०)।

छरना²†—क्रि० स० [सं० क्षरण] कन्ना अलग करने के लिये चावल को फटककर साफ करना। दे० 'छड़ना'।

छरना³—क्रि० अ० [हिं० छलना] भूत प्रेत आदि द्वारा मोहित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

छरना(पु)⁴—क्रि० स० [हिं० छलना] १. छलना। धोखा देना। ठगना। उ०—जोगी कौन बड़ो संकर तें, ताकौं काम छरै।—सूर० ९।३५। २. मोहित करना। लुभाना। उ०—तूँ काँवरू परा बस टोना। भूला योग छरा तोहि सोना।—जायसी (शब्द०)।

छरपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० शैल+हिं० फूल] १. छरीला। २. एक पुड़िया जिसमें छरपुरी आदि सुगंधित द्रव्य होते हैं जो विवाहों में चढ़ाए जाते हैं।

छरभार(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० सार+भार] १ प्रबंध या कार्य का बोझ। कार्य भार। उ०—(क) देस कोस परिजन परिवारू। गुरु पद रजहिं लाग छरभारू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लखि अपने सिर सब छरभारू। कहि न सकहिं कछ करहिं बिचारू।—तुलसी (शब्द०)। २. झंझट। बखेड़ा।

छररा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० छर्रा] दे० छर्रा'। उ०—डारति भरि भरि मूठि छूटि छररा ज्यों लागत। सबही अंग अनग पीर प्रानन मैं जागत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १७।

छरहरा¹—वि० [हिं० छल+हारा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० छरहरी, संज्ञा छरहरापन] १. क्षीणांग। सुबुक। छलका। जो मोटा या भद्दा न हो। जैसे, छरहरा बदन। उ०—राधिका मग मिलि गोप नारी। जुवति आनंद भरी, भई जुरि कै खरी. नई छरहरी सुठि बैस थोरी। सूर प्रभु सुनि स्रवन, तहाँ कीन्हौ गवन, तरुनि मन रवन सब ब्रज किसोरी।—सूर० १०।१७५१। २. चुस्त। चालाक। तेज। फुरतीला।

छरहरा²—वि० [हिं० छर (=छड़)+हारा (प्रत्य०) (=छड़) या सं० क्षीर-भार] बहुरूपिया।

छरहरापन—संज्ञा पुं० [हिं० छरहरा+पन] १. क्षीणांगता। सुबुकपना। २. चुस्ती। फुरती।

छरा—संज्ञा पुं० [सं० शर, हिं० छड़] १. छड़ा। उ०—कंचन पट

पद्किनि के छरा । सुंदर गजमोतिन के हरा ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३५ । २. लर । लड़ी । उ० — गुंजहरा के छरा उर में पेट पितंबर की छवि न्यारी ।—(शब्द०) । ३. रस्सी । ४. नारा । इजारबंद । नीवी । उ०—(क) कहै पद्माकर नवीन अधनीवी खुली अधखुले छहरि छरा के छोर छलकै ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) तहँ प्रीतम ढीठ भए रस के बस हाथ चलावत जोरी करें । गिरि जच्छवधून के वस्त्र कछू खिचि, छोर छरान की डोरी परें ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

छराना(पु)—क्रि० स० [हिं० छलना] छलना । डराना । मुग्ध करना । भुलाना । आविष्ट करना । उ०—टूटि तार अंगार बगावै । कामभूत जनु मोहि छरावै ।—नंद० ग्रं०, पृ० १३४ ।

छरिंदा—वि० [अ० जरीदह्, हिं० छरीदा] दे० 'छरीदा' ।

छरिया—संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी+इया (प्रत्य०) छड़िया । छड़ीबरदार । चोबदार ।

छरिला - संज्ञा पुं० [हिं० छरीला] दे० 'छरीला' ।

छरी(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छड़] दे० 'छड़ी' ।

छरी²—वि० [हिं० छाँड़ना] दे० 'छड़ो²' ।

छरी³—वि० [सं० छलिन > छली] दे० 'छली' ।

छरीदा—वि० [अ० जरीदह्] १. अकेला । तने तनहा । बिना किसी संगी साथी का । २. बिना कोई बोझ या असबाब लिए ।

विशेष—यात्रा के संबंध में इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है ।

छरीदार(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० छड़ीदार] दे० 'छड़ीदार' । उ०—(क) छरीदार वैराग विनोदी भिटकि बाहिरै कीन्हें ।—सूर०, १।४० । (ख) इकइस पोंरि ठाढ़ जब भयऊ । छरीदार तब पूछन लयऊ ।—कबीर सा०, पृ० २५७ ।

छरीला—संज्ञा पुं० [सं० शैलेय] काई की तरह का एक पौधा जिसमें केसर या फूल नहीं लगते । पथरफूल । बुढना ।

विशेष—यह पौधा वास्तव में खुमी के समान परांगभक्षी (पारासाइट) पौधा है जो भिन्न भिन्न प्रकार की काइयों पर जमकर उन्हीं के साथ मिलकर अपनी वृद्धि करता है । यह सीड़वाली जमीन यथा कड़ी से कड़ी चट्टानों पर उमड़े हुए चकत्तों या बाल के लच्छों के रूप में फैलता है और कुछ भूरापन लिए होता है । यह पौधा अधिक से अधिक गर्मी या सर्दी सह सकता है; यहाँ तक कि जहाँ और कोई वनस्पति नहीं हो सकती, वहाँ भी यह पाया जाता है । सूखने पर इसमें से एक प्रकार की मीठी सुगंध आती है जिसके कारण यह मसालों में पड़ता है । औषध में भी इसका प्रयोग होता है । वैद्यक में यह चरपरा, कड़ुआ, कफ और वात का नाशक और तृष्णा या दाह को दूर करनेवाला माना जाता है तथा खाज, कोढ़, पथरी आदि रोगों में दिया जाता है । इसे पथरफूल और बुढ़ना भी कहते हैं । हिमालय पर यह चट्टानों, पेड़ों आदि पर बहुत दिखाई देता है ।

पर्या०—शैलेय । शैलाख्य । वृद्ध । शिलापुष्प । गिरिपुष्पक । शिलासन । शैलज । शिलेय । कालानुसार्य । गृह । पलित । जीर्ण । शिलादद्रु ।

छरेरा—वि० [हिं० छरहरा][वि० स्त्री० छरेरी] दे० 'छरहरा' । उ०—बदन छरेरा है या दुहरा ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५२ ।

छरोर†, छरोरा†—संज्ञा पुं० [सं० क्षुर, पू० हिं० छिलोर, छिछोरवा, छिलोरा (=छिलना)] शरीर में काँटे या और किसी नुकीली वस्तु के चुभकर कुछ दूर तक खिंच जाने के कारण पड़ी हुई लकीर । खरोच । उ०—पैहौं छरोर जो पात को फटिहैं पटके हूँ तो हौं न डरैहौं ।—(शब्द०) ।

छर्द—संज्ञा पुं० [सं०] उलटी । कै । वमन [को०] ।

छर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] वमन । कै करना ।

छर्दि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वमन । कै । उलटी । २. एक रोग जिसमें रोगी के मुँह से पानी छूटता है और उसे मचली आती है और वमन होता है ।

विशेष—वैद्यक में इस रोग के दो भेद माने गए हैं—एक साधारण जो कड़ुई, नमकीन, पतली या तेल की चीजें अधिक खाने तथा अधिक और अकाल भोजन करने से हो जाता है । अन्य रोगों के समान इसके भी चार भेद हैं—वातज, पित्तज, श्लेष्मज और त्रिदोषज । दूसरा आगंतुक जो अत्यंत श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण आदि के कारण उत्पन्न होता है । वैद्यक में यह पाँच प्रकार का माना गया है—वीभत्स, दौहृदज, आमज, असात्म्यज और क्रमिज । इस रोग से कास, श्वास, ज्वर आदि भी हो जाने हैं ।

पर्या०—प्रच्छर्दिका । छर्द । वमन । वमि । छर्दिका । वांति । उद्गार । छर्दन । उत्कासिका ।

छर्दि²—संज्ञा स्त्री० [सं० छर्दिस्] १. घर । २. आच्छादनयुक्त स्थान । सुरक्षित स्थान (को०) । ३. तेज । ४. उद्गार । वमन ।

छर्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वमन । २. विष्णुक्रांता ।

छर्दिकारिपु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची ।

छर्दिघ्न¹—वि० [सं०] वमनरोधक । मिचली का नाशक ।

छर्दिघ्न²—संज्ञा पुं० [सं०] महानिंब । बकायन ।

छर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० छरना, झरना, या अनु० छरछर] [स्त्री० छर्री] १. छोटी कंकड़ी । कंकड़ आदि का छोटा टुकड़ा । २. लोहे या सीसे के छोटे छोटे टुकड़ों का समूह जो बंदूक में भरकर चलाया जाता है । ३. वेग में फेंके हुए पानी के छोटे छोटे छींटों या कणों का समूह ।

छलंक†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छलाँग] दे० 'छलाँग' । उ०—चंचलता वे चखन सी झपनहूँ माहि हरी न । ऐसे कौन हरीन हैं जासु छलंक हरी न ।—स० सप्तक, पृ० २६६ ।

छलग(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छलाँग' ।

छल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वास्तविक रूप को छिपाने का कार्य जिससे कोई वस्तु या कोई बात और की और देख पड़े । वह व्यवहार जो दूसरे को धोखा देने या बहलाने के लिये किया जाता है । २. व्याज । मिस । बहाना । ३. धूर्तता । वंचना । ठगपन ।

यौ०—छलकपट । छलछद्म । छलछिद्र । छलछात । छलछेव । छलबल । छलविद्या=छलछिद्र ।

४. कपट। दंभ। ५. युद्ध के नियम के विरुद्ध शत्रु पर शस्त्र-प्रहार। ६. न्याय शास्त्र के सोलह पदार्थों में से चौदहवाँ पदार्थ जिसके द्वारा प्रतिवादी वक्ता की बात का वाक्य के अर्थविकल्प द्वारा विधान या खंडन करता है।

विशेष—न्याय में यह तीन प्रकार का माना गया है—वाक्छल, सामान्यछल और उपचारछल। जिसमें साधारणतः कहे हुए किसी वाक्य का वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ कल्पित किया जाता है, वह वाक्छल कहलाता है; जैसे किसी ने कहा कि 'यह बालक नव कंबल लिए है'। इसपर प्रतिवादी या छलवादी नव शब्द का वक्ता के अभिमत अर्थ से भिन्न अर्थ कल्पित करके खंडन करता है और कहता है कि 'बालक नव कंबल कहाँ लिए है, उसके पास तो एक ही है'। जिसमें संभावित अर्थ का अति सामान्य के योग से असंभूत अर्थ कल्पित किया जाय वह सामान्य छल है। जैसे, किसी ने कहा कि 'ब्राह्मण विद्याचरण संपन्न होता है'। इसपर छलवादी कहता है—'हाँ विद्याचरण संपन्न होना तो ब्राह्मण का गुण ही है; पर यदि यह गुण ब्राह्मण का है तो व्रात्य भी विद्याचरण संपन्न होगा; क्योंकि वह भी ब्राह्मण ही है।' धर्मविकल्प (मुहाविरा, अलंकार, लक्षणा व्यंजना आदि) द्वारा सूचित अभिप्रेत अर्थ का जहाँ शब्दों के मूल आदि को लेकर निषेध किया जाय, वहाँ उपचार छल होता है। जैसे, किसी ने कहा 'सारा घर गया है'। इसपर प्रतिवादी कहता है कि 'घर कैसे जायगा? वह तो जड़ है'।

छल[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] जल के छींटों के गिरने का शब्द। पानी की धार जो पथिकों को ऊपर से पानी पिलाने में बँध जाती है।

मुहा०—छल पिलाना=कटोरे बजा बजाकर राह चलते पथिकों को पानी पिलाना।

छलक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० छलकना] छलकने का भाव या क्रिया। उ०—गिरें करारे टूट के नदी छलक मारें।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८६।

छलक[2]—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] छल करनेवाला।

छलकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० छलकना] १. छलकने का भाव। पानी आदि की उछाल। पानी या और किसी पतले पदार्थ के हिलने और डोलने के कारण उछलकर बरतन मे बाहर आने का भाव। २. उद्गार। स्फुरण। उ०—छवि छलकन भरी पीक पलकन त्योंही श्रम जलकन अधिकाने व्वै।—पद्माकर (शब्द०)।

छलकना—क्रि० अ० [अनु०] १. पानी या और किसी पतली चीज का हिलने डुलने आदि के कारण बरतन से उछलकर बाहर गिरना। आघात के कारण पानी आदि का बरतन से ऊपर उठकर बाहर आना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग पात्र और पात्र में भरे हुए जल आदि दोनों के लिये होता है। जैसे, अधजल गगरी छलकत जाय।

२. उमड़ना। बाहर प्रकट होना। उद्गारित होना। उ०—(क) मनहुँ उमगि अँग अँग छवि छलकैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गोकुल में गोपिन गोविंद संग खेली फाग राति भरि, प्रात समय ऐसी छवि छलकैं।—पद्माकर (शब्द०)।

छलकाना—क्रि० स० [हिं० छलकना] किसी पात्र में भरे हुए जल आदि को हिला डुलाकर बाहर उछालना।

छलछंद—संज्ञा पुं० [हिं० छल+छंद] [वि० छलछंदी] कपट का जाल। कपट का व्यवहार। चालबाजी। धूर्तता।

छलछंदी—वि० [हिं० छलछंद] कपटी। धूर्त। चालबाज। धोखेबाज।

छलछद्म—संज्ञा पुं० [सं० छल+छद्म] छल कपट। छल का बाना।

छलछल—संज्ञा पुं० [अनु०] छलछल का शब्द। जल के छिलकने की ध्वनि। छलकने का भाव। उ०—कल कल छलछल सरिता बहती छिन छिन।—मधुज्वाल, पृ० ४१।

छलछलाना—क्रि० अ० [अनु०] १. आँखों में आँसू आ जाना। आँखें भर आना। २. छल छल शब्द करना। पानी आदि थोड़ा थोड़ा करके गिराना जिसमें छल छल शब्द उत्पन्न हो।

छलछाया†—संज्ञा पुं० [सं० छल+छाया] मायाजाल। छलावा। उ०—कोऊ छली छलौंही मूरति छलछाया सो गयौ दिखाइ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६२।

छलछिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपट व्यवहार। धूर्तता। धोखेबाजी। उ०—मोहि सपनेहु छलछिद्र न भावा।—तुलसी (शब्द०)।

छलछिद्री—संज्ञा पुं० [हिं० छलछिद्र] धोखेबाज। छली। कपटी।

छलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छलित] छल करने का कार्य। उ०—बिहरत पास पलास बास नहिं मोहत कामै। निरस कठोर छलीक छलन की लाली जामै।—दीन० ग्रं०, पृ० २०५।

छलना[1]—क्रि० स० [सं० छल] किसी को धोखा देना। भुलावे में डालना। दगा देना। प्रतारित करना।

छलना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] धोखा। छल। प्रतारणा। उ०—किंतु वह छलना थी, मिथ्या अधिकार की।—लहर, पृ० ७८।

छलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चालनी, हिं० चालना या सं० क्षालिनी] महीन कपड़े या छेददार चमड़े से मढ़ा हुआ एक मँडरेदार बरतन जिसमें चोकर, भूसी आदि अलग करने के लिये आटा छानते हैं। आटा चालने का बरतन। चलनी।

मुहा०—(किसी वस्तु को) छलनी कर डालना या कर देना=(१) किसी वस्तु में बहुत से छेद कर डालना। (२) किसी वस्तु को बहुत से स्थानों पर फाड़कर बेकाम कर डालना। (किसी वस्तु का) छलनी हो जाना=(१) किसी वस्तु में बहुत से छेद हो जाना। (२) किसी वस्तु का स्थान स्थान पर फटकर बेकाम हो जाना। छलनी में डाल छाज में उड़ाना=बात का बतंगड़ करना। थोड़ी सी बुराई या दोष को बहुत बढ़ाकर कहना। थोड़ी सी बात को लेकर चारों ओर बढ़ा चढ़ाकर कहते फिरना। (स्त्रियाँ) कलेजा छलनी होना=(१) दुख या झंझट सहते सहते हृदय जर्जर हो जाना। निरंतर कष्ट से जी ऊब जाना। (२) जी दुखानेवाली बात सुनते सुनते घबरा जाना।

छलबल—संज्ञा पुं० [सं० छल+बल] दे० 'छलछंद'। उ०—महामत्त

या प्रेम को जब तिय करत उदोत। तब वाके छलबल निरखि, विधि हूँ कायर होत। ब्रज० ग्रं०, पृ० १०५।

छलमलाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'छलकना' उ०—वंसी धुनि घनघोर रूप जल छलमलै।—घनानंद, पृ० १७६।

छलविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० छल+विद्या] मायाजाल। जादू। उ०—कोउ कहैं अहो दरस देत पुनि लेत दुराई। यह छलविद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १७९।

छलहाई¹(पु)—वि० स्त्री० [सं० छल+हा (प्रत्य०)] छली। कपटी। चालवाज। धूर्त। उ०—ये छलहाई लुगाई सबै निसि द्यौस निवाज हमें दहती हैं।—निवाज (शब्द०)।

छलहाई²†—संज्ञा स्त्री० छल। कपट।

छलाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० उछल+अंग] पैरों को एकबारगी दूर तक फेंककर वेग के साथ आगे बढ़ने का कार्य। कुदान। फलाँग। चौकड़ी।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।

छलाँगना†—क्रि० अ० [हिं० छलाँग] चौकड़ी भरना। कूदकर आगे बढ़ना। फलाँग मारना।

छला¹(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० छल्ली (=लता)]छल्ला उँगली में पहनने का गहना। उ०—छला परोसिनि हाथ तें छल करि लियो पिछानि। पियहिं दिखायो लखि बिलखि रिससूचक मुसकानि।—बिहारी र०, दो ३७६।

छला²—संज्ञा स्त्री० [छटा] आभा। चमक। दीप्ति। झलक।

छलाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० छल+आई (प्रत्य०)] छल का भाव। कपट। उ०—पंडु के पूत कपूत सपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई।—तुलसी (शब्द०)।

छलाना, छलावना(पु)—क्रि० स० [हिं० छलना का प्रे० रूप] धोखे में डलवाना। धोखा दिलाना। प्रतारित करना। उ०—कुमुदिनि तुइ बैरिनि नहीं धाई। मोहि मसि बोलि छलावसि आई।—जायसी (शब्द०)।

छलाव—संज्ञा पुं० [हिं० छल+आव (प्रत्य०)] दे० 'छलावा'। उ०—सिर तें द्वै अधसिर करै सिर सिर चहुँ चहुँ पाँव। ऐसे सिर चालीस हैं मन कहिये क छलाव—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३०।

छलावा—संज्ञा पुं० [हिं० छल] १. भूत प्रेत आदि की छाया जो एक बार दिखाई पड़कर फिर झट से अदृश्य हो जाती है। मायादृश्य। उ०—छलावे की तरह भासित हुए उस रूपक को 'छायादृश्य' (फैन्टज्मेटा) कहते हैं।—चितामणि भा० २, पृ० २००।

मुहा०—छलावा सा=बहुत चंचल। उ०—कर तें छटकि छुटी छलकि छलावा सी।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

२. वह प्रकाश या लुक जो दलदलों के किनारे या जंगलों में रह रहकर दिखाई पड़ता और गायब हो जाता है। अगिया बैताल। उल्कामुख प्रेत।

मुहा०—छलावा खेलना=अगिया बैताल का इधर उधर दिखाई पड़ना। इधर उधर लुक फिरता हुआ दिखाई देना।

३. चपल। चंचल। शोख। ४. इंद्रजाल। जादू।

छलिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटच शास्त्र में रूपक का एक भेद।

छलित—वि० [सं०] जिसे धोखा दिया गया हो। छला हुआ। प्रतारित। वंचित।

छलितक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक का एक भेद।

छलिया—वि० [सं० छल+हिं० इया (प्रत्य०)] छल करनेवाला। कपटी। धोखेबाज। उ०—(क) यह छलिया सपने मिलि मोसों। गयो पराय कहाँ सति तोसों।—रघुराज (शब्द०)। (ख) या छलिया ने बनाय के खासो पठायो है याहि न जाने कहाँ सों।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

छलिहारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० छल+हारी (प्रत्य०)] दे० 'छलहाई'। उ०—लाख बात तक धरो करो पन लाख दूर, और को सिखा के देखी केती छलिहारी है।—शुक्ल अभि० ग्रं० (सा०) पृ० ३१।

छली—वि० [सं० छलिन्] छल करनेवाला। कपटी। धोखेबाज। उ०—व्याजी बंचक कुटिल सठ छद्मी धूर्त छली जु।—अनेकार्थ०, पृ० ४८।

छलीक(पु)—वि० [हिं० छली] दे० 'छली'। उ०—विहरत पास पलास बास नहिं मोहत कामी। निरस कठोर छलीक छलन की लाली जामी।—दीन० ग्रं०, पृ० २०५।

छलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाला] एक रोग जिसमें उँगलियों के नाखून के भीतर छाला पड़ जाता है।

विशेष—लोगों में यह प्रवाद है कि यह रोग उस मिट्टी के लगने से होता है जिसपर साँप का मद गिरा रहता है। इस रोग में उँगलियों में पीड़ा होने लगती है और कभी कभी नाखून पक भी जाता है।

छलौंही—वि० [हिं० छल+औंही (प्रत्य०)] छलनेवाली। उ०—कोऊ छली छलौंहीं मूरति छलछाया सी गयो दिखाइ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६२।

छल्ला—संज्ञा पुं० [सं० छल्ली(=लता)] १. वह सादी अँगूठी जो धातु के तार के टुकड़े को मोड़कर बनाई जाती है और हाथ पैर की उँगलियों में पहनी जाती है। मुँदरी। उ०—अँगूठी लाल की करती कयामत आज गर होती। जिन्हें की आन पहुँची लड़ मुए वह एक छल्ले पर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६। २. अँगूठी की तरह की कोई मंडलाकार वस्तु। कड़ा। कुंडली। ३. नैचे की बंदिश में वे गोल चिह्न जो रेशम या तार लपेटकर बनाए जाते हैं। ४. वह पक्की पतली दीवार जो ऊपर से दिखाने या रक्षा के लिये कच्ची दीवार से लगाकर बनाई गई हो। ५. तेल की बूँदें जो नीबू आदि की अर्क की बोतल में ऊपर से इसलिये डाल दी जाती है जिससे अर्क बिगड़ने न पावे। ६. एक प्रकार का पंजाबी गीत या तुकबंदी जिसे गा गाकर हिजड़े भीख माँगते हैं।

छल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'छल्ली'।

छल्ली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छल्ला] कच्ची दीवार की रक्षा के लिये उससे लगाकर उठाई हुई पक्की दीवार।

छल्ली²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छाल। २. लता। ३. संतति। ४. एक प्रकार का फूल।

छल्लेदार—वि० [हिं० छल्ला+फ़ा० दार] १. जिसमें छल्ले लगे हों। २. घुँघराला या पेंचदार (बाल)। ३. जिसमें मंडलाकार चिह्न या घेरे बने हों।

छव‡—संज्ञा पुं० [सं० छवि] रूप। छवि। उ०—घर कामची उरधाक, अपछर छव धरे, हावां भावकर मृदु हरे बोली सुण हरे।—रघु० रू०, पृ० १२८।

छवना¹†—संज्ञा पुं० [सं० शाव, शावक] [स्त्री० छवनी] १. बच्चा। छौना। उ०—भई हैं प्रकट अति दिव्य देह धरि मानो त्रिभुवन छवि छवनी।—तुलसी (शब्द०)। २. सूअर का बच्चा।

छवना²(पु)—क्रि० स० [सं० श्रवण, प्रा० सवण, माग० सवन] सुनना। उ०—गुरु मुखि भवना, गुरुमुखि छवना, गुरुमुखि रवना रे।—दादू०, पृ० ५००।

छवा¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्र० सावय] किसी पशु का बच्चा। बछड़ा। उ०—(क) तें रन केहरि केहरी के बिदले अरि कुंजर छैल छवा से।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हय हंकि घमंकि उठाइ रनं। जिमि सिंह छवा कढ़ि सेन वनं।—सूदन (शब्द०)।

छवा²—संज्ञा पुं० [देश०] एँड़ी। उ०—(क) छवान की छुई न जाति शुभ साधु माधुरी।—केशव (शब्द०)। (ख) ऐसे दुराज दुहूँ वय के सब ही को लगे अब चौचंद सूझन। लूटन लागी प्रभा कढ़ि कै बढ़ि केस छवान सों लागे अरूझन।—रस कुसुमाकर (शब्द०)।

छवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाना, छावना] १. छाने का काम। २. छाने की मजदूरी।

छवाना—क्रि० स० [हिं० छाना का प्रे० रूप] छाने का काम कराना। उ०—पूछैं आनि लोग कौने छाई हो ? छवाई लीजै, दीजै जोइ भावै. तन मन प्राण वरियै।—भक्तमाल (प्रि०), पृ० ४६२।

छवाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ+वाला] छोटी जठवाली जो पत्थर आदि उठाने के काम मे आती है।

छवि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० छबीला] १. शोभा। सौंदर्य। २. कांति। प्रभा। चमक। ३. त्वचा। चमड़ी। खाल (को)। ४. त्वचा का रंग (को०)। ५. सामान्यत: कोई भी रंग (को०)। ६. प्रकाश की किरण (को०)।

छवि²—संज्ञा स्त्री० [अ० शबीह] चित्र। फोटो। प्रतिकृति।

छवैया—संज्ञा पुं० [हिं० छाना] वह जो छप्पर आदि छाए। छानेवाला।

छहाँ—वि०, संज्ञा पुं० [सं० षट् > षष् प्रा० छ, अप छह] दे० 'छ'। उ०—तब श्री गुसाईं जी रामदास को आज्ञा करी जो तू 'दंडवती सिला' आगें बैठि छह महीना ताईं अष्टाक्षर मंत्र को जप करचो करि।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ५६।

छहत्तर—वि० संज्ञा पुं० [सं० षट्सप्तति, प्रा० छस्सयरि, छहत्तर] दे० 'छिहत्तर'। उ०—ताके दम की छहत्तर हजार की हुंडी भई।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६३।

छहर, छहरन—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षरण अथवा देश०] बिखरने का भाव

छहरना(पु)—क्रि० अ० [सं० क्षरण, प्रा० खरण, छरण अथवा देश०] छितराना। बिखरना। छिटकना। फैलना। उ०—(क) छवि केसरि की छहरै तन तें कढ़ि बाहर से तन चोलिन पै।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। (ख) जनु इंदु उयो अवनीतल ते चहुँ ओर छटा छवि की छहरी।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

छहरा‡—वि० [हिं० छ+हरा (प्रत्य०)] १. छह परत का। छह पल्लेवाला। २. उपज का छठा (भाग)।

छहराना¹(पु)—क्रि० अ० क्षरण, हिं० छहरना अथवा हिं० छहरना का प्रे० रूप] छितराना। बिखरना। चारों ओर फैलना। उ०—(क) कंचुकि चूर चूर भइ तानी। टूटे हार मोति छहरानी।—जायसी (शब्द०)। (ख) नीरज तें कढ़ि नीर नदी छवि छीजत छीरधि पै छहरानी। (ग) जेहि पहिरे छगुनी अरी, छिगुनी छवि छहराहि (शब्द०)।

छहराना²—क्रि० स० बिखराना। छितराना। फैलाना। उ०—सीखलै संग सखी सुमुखी छवि कोटि छपाकर को छहरावनि।—देव (शब्द०)।

छहराना³—क्रि० स० [सं० क्षार] क्षार करना। भस्म करना। उ०—न्योछावर कै तन छहरावहुँ। छार होहुँ संग बहुरि न आवहुँ।—जायसी (शब्द०)।

छहरीला—वि० [हिं० छरहरा] [वि० स्त्री० छहरीली] १. छरहरा। हलका। २. फुरतीला। चुस्त। ३. छहरनेवाला। बिखरने या फैलनेवाला।

छहलना†(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'छहरना'। उ०—रहो छवि छाए एह छके मुनि देखि के रूप छहलत मनि कौन हेरा।—सं० दरिया, पृ० ७६।

छहियाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँहीं] छाँह। छाया। उ०—दशरथ कौशल्या के आगे लसत सुमन की छहियाँ। मानो चारि हंस सरवर ते बैठे आइ सदहियाँ।—सूर (शब्द०)।

छही—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह चिड़िया (प्रायः कबूतर) जो अपने अड्डे से उड़कर दूसरे के अड्डे पर जा रहे और फिर कुछ दिनों में वहाँ की कुछ चिड़ियों को बहकाकर अपने अड्डे पर ले आए। कुट्टा। मुल्लाँ।

छांदस¹—वि० [सं० छान्दस] [वि० स्त्री० छांदसी] १. वेदपाठी। वेदज्ञ। २. वेद संबंधी। वैदिक। ३. छंद या वृत्त संबंधी। ४. रट्टू। रटनेवाला। ५. मूर्ख।

छांदस²—संज्ञा पुं० १. वेद। २. वेद में निष्णात ब्राह्मण [को०]।

छांदसीय—वि० [सं० छान्दसीय] छंदशास्त्र का ज्ञाता। पिंगल का जानकार [को०]।

छांदिक—वि० [सं० छान्दिक] छंद संबंधी। छंद के अनुरूप। उ०—यह हमारे अनुभव की बात है कि निरर्थक शब्दों के प्रवाह से कवि ऐसी छांदिक गति पैदा कर देता है।—पा० स० सि०, पृ० ६।

छांदोग्य—संज्ञा पुं० [सं० छान्दोग्य] १. सामवेद का एक ब्राह्मण जिसके प्रथम दो भागों में विवाह आदि का वर्णन है और अंतिम आठ प्रपाठकों में उपनिषद् है। २. छांदोग्य ब्राह्मण का उपनिषद्।

विशेष—इस उपनिषद् के प्रथम प्रपाठक (ब्राह्मण के तृतीय) में १३ खंड हैं जिसमें प्रायः ओ३म् का ही वर्णन है। दूसरे में २४ खंड हैं जिनमें यज्ञों की विधि और मंत्रों के गायन की शिक्षा बड़े विस्तार से है। तीसरे प्रपाठक के १९ खंड हैं जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन तथा ब्रह्म विद्या का सूक्ष्म विचार है। त्रिकाल संध्या और सूर्य के जप आदि का भी विवरण है। चौथे प्रपाठक में १७ खंड हैं जिनमें सत्यकाम जाबालि के प्रति उपदेश हैं, यज्ञों की विधियाँ बताई गई हैं और ऋक्, यजु, साम के भूः, भुवः, स्वः यथाक्रम तीन देवता मानकर तप के विधान का प्रतिपादन है। पाँचवें प्रपाठक के २४ खंड हैं। इसी में प्राण और इंद्रियों का वर्णन है और गाथा द्वारा यह बतलाया गया है कि अग्निहोत्र से सृष्टि की वृष्टि होती है, उसी से मेघ होता है, मेघ से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है, अन्न से रस होता है और रस से संतान आदि की वृद्धि होती है। छठे प्रपाठक में १६ खंड हैं जिनमें उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन करके कहा—'हे श्वेतकेतु ! तू ही ब्रह्म है'। इस प्रपाठक में वेदांत का महावाक्य 'तत्त्वमसि' कई बार आया है। सातवें प्रपाठक में, जिसमें २६ खंड हैं, सनत्कुमारों ने नारद को आतुर देख उन्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश किया है। नारदजी ने कहा है कि मैंने वेद, इतिहास, पुराण, राशिविद्या, दैवविद्या, निधिविद्या, वाकोवाक्य विद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजनविद्या इत्यादि बहुत सी विद्याएँ सीखी हैं। इन विद्याओं से आजकल लोग भिन्न अभिप्राय निकालते हैं। आठवें प्रपाठक में ब्रह्मविद्या का स्पष्टता और विस्तार के साथ उपदेश देकर कहा गया है कि ब्रह्मज्ञान के पश्चात् जन्म नहीं होता।

छाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया, हिं० छाँह] दे० 'छाँह'।

छाँक—संज्ञा पुं० [फ़ा० चाक] खंड। टुकड़ा। जैसे,—बदली का छाँक।—(लश०)।

छाँई—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] परछाँहीं। छाया। उ०—बन्यो है मंजुल मोर चंद्र चलत देखत छाँई।—नंद ग्रं०, पृ० ३६५।

छाँगना—क्रि० स० [सं० देश० अथवा हिं० छत+करना] काटना। छाँटना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः कुल्हाड़ी आदि से पेड की डाल, टहनी आदि के काटने के अर्थ में होता है। पूरबी हिंदी में इसे 'छिनगाना' कहते हैं।

छाँगुर—संज्ञा पुं० [हिं० छ+अंगुल] वह मनुष्य जिसके पंजे में छह उँगलियाँ हों। छह उँगलियोंवाला।

छाँछ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छाछ'

छाँट[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] १. छाँटने की क्रिया। छिन्न करने की क्रिया। काटने या कतरने की क्रिया।

यौ०—काट छाँट।

२. काटने या कतरने का ढंग। ३. बेकाम टुकड़े जो किसी वस्तु के विशेष रूप से कटने पर निकलते हैं। कतरन। ४. भूसी या कना जो अनाज छाँटने पर निकलता है। ५. अलग की हुई निकम्मी वस्तु।

छाँट[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० छर्दि, प्रा० छड्डि] वमन। कै।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

छाँटन—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] १. वह वस्तु जो छाँट दी जाय। कतरन। २. अलग की हुई निकम्मी वस्तु।

छाँटना—क्रि० स० [सं० खण्डन] १. किसी पदार्थ से उसके किसी अंश को काटकर अलग करना। जैसे, कलम छाँटना, पेड़ छाँटना, सिर के बाल छाँटना। उ०—जे छाँटत, अरिमुंड समर महँ पैठि सिंह सम।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५५।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अंग और अंगी दोनों के लिये होता है। जैसे,—डाल छाँटना, पेड़ छाँटना।

२. किसी वस्तु को किसी विशेष आकार में लाने के लिये काटना या कतरना। जैसे, कपड़ा छाँटना।—(दरजी)।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. अनाज में से कन या भूसी कूट फटकारकर अलग करना। अनाज को साफ करने के लिये कूटना फटकना। जैसे,—चावल छाँटना, तिल छाँटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

४. बहुत सी वस्तुओं में से कुछ को प्रयोजनीय या निकम्मी समझकर अलग करना। लेने के लिये चुनना या निकालने के लिये पृथक् करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

विशेष—चुनने के अर्थ में संयो० क्रि० 'लेना' का प्रयोग होता है और निकालने के अर्थ में संयो० क्रि० 'देना' का प्रयोग होता है। जैसे (क) हम अच्छे अच्छे आम छाँट लेंगे। (ख) हम सड़े आम छाँट देंगे, आदि; पर जहाँ दूसरे के द्वारा छाँटने का काम कराना होना है, वहाँ संयो० क्रि० 'देना' का प्रयोग चुनने या ग्रहण करने के अर्थ में भी होता है। जैसे, मेरे लिये अच्छे अच्छे आम छाँट दो।

५. गंदी या बुरी वस्तु निकालना। दूर करना। हटाना। जैसे—(क) यह दवा खूब कफ छाँटती है। (ख) यह साबुन खूब मैल छाँटता है। ६. गंदी या निकम्मी वस्तुओं को निकालकर शुद्ध करना। साफ करना। जैसे,—कूआँ छाँटना। उस दवा ने खूब पेट छाँटा। ७. किसी वस्तु का कुछ अंश निकालकर उसे छोटा या संक्षिप्त करना। ८. गढ़ गढ़कर बातें करना। हिंदी की चिंदी निकालना। जैसे,—कानून छाँटना, बातें छाँटना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता, कुछ शब्दों के साथ ही होता है।

९. अलग रखना। दूर रखना। संमिलित न करना। जैसे,—तुम समय पर हमें इसी तरह छाँट दिया करते हो।

छाँटा[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छींटा'। उ०—दादू सबही मृतक

समान हैं, जीया तबही जाणि। दादू छांटा अमी का, को साधू बाहैं आपि।—दादू०, पृ० ३०।

छांटा[३]†—संज्ञा पुं० [हिं० छांटना] धोखा।
क्रि० प्र०—देना।

छांड़ चिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छांड़ना + चिट्ठी] वह पत्र या परवाना जिसे देखकर उसके रखनेवाले व्यक्ति को कोई रोक न सके। रवन्ना।

छांड़ना(पु)†—क्रि० स० [सं० छर्दन, प्रा० छड्डन] छोड़ना। त्यागना। उ०—सप्त दीप भुज बल बस कीन्हें। लेइ लेइ दंड छांड़ि सब दीन्हें।—तुलसी (शब्द०)।

छांद—संज्ञा स्त्री० [सं० छन्द (=बंधन)] १. छोटी रस्सी जिससे घोड़े गदहे आदि के दो पैरों को एक दूसरे से सटाकर बांध देते हैं जिसमें वे दूर तक भाग न सकें, केवल कूद कूदकर इधर उधर चरते रहें। उ०—जो मन घेरि बेन्हिए बांधो, भाजै छांद तुराई।—धरनी०, पृ० ५। २. वह रस्सी जिससे अहीर गाय दुहते समय गाय के पैर बांध देते हैं। नोई। नोइड़ा।

छांदना—क्रि० स० [सं० छन्दन] १. रस्सी आदि से बांधना। जकड़ना। कसना।
यौ०—बांधना छांदना=बांधना। जैसे—असबाब बांध छांदकर रख दो।
२. घोड़े या गदहे के पिछले पैरों को एक दूसरे से सटाकर बांध देना जिसमें वह दूर तक भाग न सके, आस ही पास चरता रहे। ३. किसी के पैरों को दोनों हाथों से जकड़कर बैठ जाना और उसे जाने न देना। जैसे—वह स्त्री अपने स्वामी का पैर छांदकर बैठ गई और रोने लगी।
मुहा०—पैर छांदना=जाने से रोकना।

छांदा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० छांटना] हिस्सा। बखरा। भाग।

छांदा[२]†—संज्ञा पुं० [हिं० छानना] उत्तम भोजन। पकवान।
क्रि० प्र० उड़ाना।

छांनी‡(पु)—वि० [हिं० छाना] छिपी हुई। ढँकी हुई। दबाई हुई (बात)। उ०—केड़ें पड़ी रहै आनदघन छानी बात उघाड़ै छै।—घनानंद, पृ० ३२५।

छांम—वि० [सं० क्षाम] दे० 'छाम'। उ०—पैहलें मुसकाइ लजाइ कछू क्यों चितै मुरि मों तन छांम कियो।—पोद्दार, अभि० ग्रं०, पृ० ४६५।

छांवँ—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] दे० 'छांह'।

छांवड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० छावअ + ड़ा (स्वा० प्रत्य०) तुलनीय हिं० छौना] [स्त्री० छांवड़ी, छौड़ी] १. जानवर का बच्चा। किसी पशु का छोटा बच्चा। उ०—धरिये नपाँव बलि जांव राधे चंद्रमुखी वारौ गतिमंद पै गयंदपति छांवड़े।—देव (शब्द०)। २. छोटा बच्चा। बालक। शिशु

छांस—संज्ञा स्त्री० [हिं० छांटना] १. भूसी या कन जो अनाज चांटने से निकलता है। २. कूड़ा करकट।

छांह—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] १. वह स्थान जहां आड़ या रोक के कारण धूप या चांदनी न पड़ती हो। छाया जैसे, पेड़ की छांह। उ०—हरषित भये नँदलाल बैठि तरु छांह में।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—छांह करना=आड़ करना। ओट करना। छांह में होना=ओट में होना। छिपना। उ०—पंथ अति कठिन पथिक कोउ संग नहिं तेज भए तारागन छांह भयो रवि है।—(शब्द०)। छांह धूप न गिनना=आराम और तकलीफ न विचारना। उ०—ऐसो अनूप मृदुला मरोरि मारे सुमन मुख सुवास मृगमद कदन। तिय रूप लखि छांह धूप नहिं गिनत मन।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६१।

२. ऐसा स्थान जिसके ऊपर मेंह आदि रोकने के लिये कोई वस्तु हो। ऊपर से आवृत या छाया हुआ स्थान। जैसे—पानी बरस रहा है, छांह में चलो। ३. बचाव या निर्वाह का स्थान। शरण। संरक्षा। जैसे—अब तो तुम्हारी छांह में आ गए हैं; जो चाहो सो करो।
यौ०—छत्रछांह।
४. पदार्थों का छायारूप आकार जो उनके पिंडों पर प्रकाश रुकने के कारण धूम, चांदनी या प्रकाश में दिखाई पड़ता है। परछाईं। उ०—आँगन में आई पछताई ठाढ़ी देहली में, छांह देखै अपती औ राह देखै पिय की।—(शब्द०)।
मुहा०—छांह न छूने देना=पास न फटकने देना। निकट तक न आने देना। छांह बचाना=दूर दूर रहना। पास न जाना। अलग रहना। छांह छूना=पास जाना। पास फटकना। उ०—मुँह माहीं लगी जक नाहीं मुबारक, छांहीं छुइ छरकै उछलै।—मुबारक (शब्द०)।
५. पदार्थों का आकार जो पानी, शीशे आदि में दिखाई पड़ता है। प्रतिबिंब। उ०—केहि मग प्रविसति जाति हूँ क्यों दरपन महँ छांह। तुलसी त्यों जगजीव गति करी जीव के नांह।—तुलसी (शब्द०)। ६ भूत प्रेत आदि का प्रभाव। आसेब। बाधा। उ०—भाल की, कि काल की, कि रोष की, त्रिदोष की है, वेदना विषम पाप ताप छल छांह की।—तुलसी (शब्द०)।

छांहगीर—संज्ञा पुं० [हिं० छांह + फा० गीर] १. छत्र। राजछत्र। उ०—उयो सरद राका ससी करति क्यों न चित चेत। मनों मदन छितिपाल की छांहगीर छबि देत।—बिहारी (शब्द०)। २. दर्पण। आइना। ३. छड़ी के सिरे पर बँधा हुआ एक आइना जिसके चारों ओर पान के आकार की किरनें लगी रहती हैं और जो विवाह में दुलहे के साथ आसा आदि की तरह चलता है।

छांहड़ी†—संज्ञा, स्त्री० [हिं० छांह + ड़ी, (प्रत्य०)] दे० 'छांह'। उ०—बासुरि गमि न रैंणि गमि, नां सुपनैंतर गम। कबीर तहां बिलंबिया जहां छांहड़ी न घंम।—कबीर ग्रं०, पृ० ५४।

छांहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाह + री (प्रत्य०)] दे० 'छांह'। (ख) सुंदर यों अभिमान करि भूलि गयौं निज रूप। कबहूँ बैठे छांहरी कबहुँ बैठे धूप।—सुंदर ग्रं०, भा० २. पृ० ७७४।

छांहीं‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० छांह] दे० 'छांह'। उ०—प्रभु सिय लखन बैठि बट छांहीं। प्रिय परिजन वियोग बिलखाहीं।—मानस, २। ३२०।

छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आच्छादन। छिपाना। २. शावक। छौना। शिशु। ३. पारा। ४. चिह्न (को०)।

छाई†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षार] १. राख। उ० काहे को शिरि छाई पाई।—प्राण०, पृ० ८३। २. पाँस। खाद। ३. बॉयलर में पूरी तरह जलने के बाद निकला हुआ कोयले का छर्रा जिसे महीन करके ईंटों की जोड़ाई की जाती है।

छाक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छकना] १. तुष्टि। इच्छापूर्ति। जैसे, छाक भर खाना, प्यास भर पीना। २. वह भोजन जो काम करनेवाले दोपहर को करते हैं। दुपहरिया। उ० (क) बलदाऊ देखियत दूर ते आवत छाक पठाई मेरी मैया। तुलसी (शब्द०)। (ख) सुनो महाराज प्रात ही एक दिन श्रीकृष्ण बछड़े चरावने बन को चले, जिनके साथ सब ग्वालबाल भी अपने अपने घर से छाक ले ले हो लिए।—लल्लू० (शब्द०)। (ग) आई छाक बुलायो श्याम।—सूर (शब्द०)। ३. नशा। मस्ती। मद। उ० (क) सज्जणा मिलिया सज्जणाँ, तन मन नयन परत। अंगणीअइ पाणग ज्यूँ नयणे छाक चढ़ंत।—ढोला०, दू० ५३४। (ख) उर न टरै नींद न परै, हरै न काल बिपाक। छिन छाकै उछकै न फिर खरी बिषम छवि छाक।—बिहारी (शब्द०)। (ग) तजी संक सकुचति न चित बोलति वाक कुवाक। दिन छनदा छाकी रहति छुटति न छिन छवि छाक।—बिहारी (शब्द०)। ४. मैदे के बने हुए बड़े बड़े सुहाल जो विवाहों में जाते हैं। माठ।

छाकना¹(५)†—क्रि० अ० [हिं० छकना] १. खा पीकर तृप्त होना। अघाना। अफरना। उ०—खटरस भोजन नाना विधि के करत महल के माहीं। छाके खात ग्वाल मंडल में वैसो तो सुख नाहीं।—सूर (शब्द०)। २. शराब आदि पीकर मस्त होना। उ०—सुख के निधान पाए हिय के पिधान लिए ठग के से लाड़ू खाए प्रेम मधु छाके हैं।—तुलसी (शब्द०)।

छाकना²—क्रि० अ० [हिं० छकना (=हैरान होना)] चकित होना। भौचक्का रह जाना। हैरान होना। उ०—विविध कला के जिन्हैं ताके सुर वृंद छाके, वासव धनुष उपमा के तुंगता के हैं। रघुराज (शब्द०)।

छाग—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छागी] १. बकरा।

विशेष—भावप्रकाश में इसके मांस को बलवर्धक और त्रिदोषनाशक कहा है। भोजराज के युक्तिकल्पतरु में वर्ण के अनुसार इनका परीक्षण है तथा बृहत्संहिता के ६५ वें अध्याय में इनके शुभाशुभ लक्षण हैं। वि० दे० 'बकरा'।

२. मेष राशि (को०)। ३. वह घोड़ा जो चल न सके। छिन्नगमन अश्व (को०)। ४. बकरी का दूध (को०)। ५. आहुति। पुरोडाश (को०)।

छागण, छागन—संज्ञा पुं० [सं०] कंडी या उपली की आग।

छागभोजी—संज्ञा पुं० [सं० छागभोजिन्] १. वह जो बकरे का मांस खाता हो। २. भेड़िया।

छागमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो (आकृति आदि में) बकरे के समान हो, बकरा जैसा। २. कार्तिकेय का छठा मुख।

छागमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।

छागमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय का छठा मुख जो बकरे का सा था। २. कार्तिकेय का एक अनुचर।

छागर†—संज्ञा स्त्री० [सं० छागल] बकरी। उ०—छागर एक साधु ने खाया ब्राह्मन खाया गाई।—दु० दरिया, पृ० ११२।

छागरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

छागल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बकरा। बकरे के खाल की बनी हुई चीज। ३. एक प्रकार का मत्स्य (को०)।

छागल²—संज्ञा स्त्री० १. चमड़े का डोल या छोटी मशक जिसमें पानी भरा या रखा जाता है। यह प्रायः बकरे के चमड़े का बनता है। २. मिट्टी का करवा।

छागल³—संज्ञा स्त्री० [हिं० साँकल] एक गहना जिसे स्त्रियाँ पैरों में पहनती हैं। चाँदी की पटरी का गोलकड़ा जिसमें घुँघरू लगे रहते हैं। झाँजन।

छागवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक नाम (को०)।

छागिका, छागी संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरी (को०)।

छाछ—संज्ञा स्त्री० [सं० छच्छिका] १. वह पनीला दही या दूध जिसका घी या मक्खन निकाल लिया गया हो। मथा हुआ दही। मठा। मही। सारहीन तक्र। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावें।—रसखान (शब्द०)। २. वह मट्ठा जो घी या मक्खन तपाने पर नीचे बैठ जाता है।

छाछठ†—वि० [हिं०] दे० 'छासठ'।

छाछि‡—स्त्री० [हिं०] दे० 'छाछ'।

छाज—संज्ञा पुं० [सं० छाद] १. अनाज फटकने का सींक का बरतन। सूप।

मुहा०—छाज सी दाढ़ी=बड़ी और चौड़ी दाढ़ी। छाजों मेंह बरसना=बहुत पानी बरसना। मूसलधार पानी बरसना।

२. छाजन। छप्पर। ३. गाड़ी या बग्घी के आगे छज्जे की तरह निकला हुआ वह भाग जिसपर कोचवान के पैर रहते हैं।

छाजन¹—संज्ञा पुं० [सं० छादन] आच्छादन। वस्त्र। कपड़ा। उ०—छाजन भोजन प्रीति सों दीजै साधु बुलाय। जीवत जस हो जगत में अंत परमपद पाय।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—भोजन छाजन=खाना कपड़ा।

छाजन²—संज्ञा स्त्री० १. छप्पर। छान। खपरैल। उ०—तपै लाग जब जेठ अषाढ़ी। भइ मोकहँ यह छाजन गाढ़ी।—जायसी (शब्द०)। २. छाने का काम या ढंग। छवाई। ३. कोढ़ की तरह का एक रोग जिसमें उँगलियों के जोड़ के पास तलवा चिड़चिड़ाकर फटता है और उसमें घाव हो जाता है। यह रोग हाथियों को भी होता है। अपरस।

छाजना—क्रि० अ० [सं० छादन] [वि० छाजित] १. शोभा देना। अच्छा लगना। भला लगना। फबना। उपयुक्त जान पड़ना। उ०—(क) ओही छाज छत्र औ पाटू। सब राजन भुइँ धरा ललाटू।—जायसी (शब्द०)। (ख) जो कछु कहहु तुमहि सब छाजा।—तुलसी (शब्द०)। २. शोभा के सहित

विद्यमान होना। विराजना। सुशोभित होना। उ०—मुकुट मोर पर पुंज मंजु सुरधनुष विराजत। पीत बसन छिन छिन नवीन छिनछवि छवि छाजत।—मतिराम (शब्द०)।

छाजा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० छाद] १. छज्जा। उ०—ऊँचे भवन मनोहर छाजा, मणि कंचन की भीति।—सूर (शब्द०)। २. छाजन।

छाजित(पु)—वि० [हिं० छाजना] शोभित।

छाडना, छाड़ना¹†—क्रि० अ० [सं० छर्दि] कै करना। उलटी करना। वमन करना।

छाडना, छाड़ना²—क्रि० स० [हिं०] 'दे०छांड़ना', 'छोड़ना'।

छात¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] १. छाता। छतरी। २. राजछत्र उ०—रूपवंत मनि दिए ललाटा। माथे छात बैठ सब पाटा।—जायसी (शब्द०)। ३. आश्रय। आधार। उ०. हम से ओछ कै पावा छातू। मूल गए सँग रहा न पातू।—जायसी (शब्द०)।

छात²—वि० [सं०] १. कटा हुआ। छिन्न। २. दुर्बल। कृश।

छात³†—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र, प्रा० छत्त, हिं० छत] दे० 'छत'। उ०—सेवरा हराए वादी, आए नृप पास, ऊँचे छात पर बैठि एक माया फंद डारचो है।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४६६।

छाता—संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] १. लोहे, बाँस आदि की तीलियों पर कपड़ा चढ़ाकर बनाया हुआ आच्छादन जिसे मनुष्य धूप, मेंह आदि से बचने के लिये काम में लाते हैं। बड़ी छतरी। उ० —फूला कँवल रहा होइ राता। सहस सहस पखुरिन कर छाता।—जायसी ग्रं०, पृ० १२।

मुहा०—छाता देना या लगाना=(१) छाते का व्यवहार करना। (२) छाता ऊपर तानना।

२. छत्ता। खुमी। ३. चौड़ी छाती। विशाल वक्षस्थल। ४. वक्षस्थल की चौडाई की नाप।

छाती—संज्ञा स्त्री० [सं० छादिन्, छादी (= आच्छादन करनेवाला)] १. हड्डी की ठठरियों का पल्ला जो कलेजे के ऊपर पेट तक फैला होता है। पेट के ऊपर का भाग जो गरदन तक होता हैं। सीना। वक्षस्थल।

विशेष—छाती की पसलियां पीछे की ओर रीढ़ और आगे की ओर एक मध्यवर्ती अस्थिदंड से लगी रहती हैं। इनके अंदर के कोठे में फुफ्फुस और कलेजा रहता है। दूध पिलानेवाले जीवों में यह कोठा पेट के कोठे से, जिसमें अँतड़ी आदि रहती है, परदे के द्वारा बिलकुल अलग रहता है। पक्षियों और सरीसृपों में यह विभाग उतना स्पष्ट नहीं रहता। जलचरों तथा रेंगनेवाले जीवों में तो यह विभाग होता ही नहीं।

मुहा०—**छाती का जम**=(१) दुःखदायक वस्तु या व्यक्ति। हर घड़ी कष्ट पहुँचानेवाला आदमी या वस्तु। (२) कष्ट पहुँचाने के लिये सदा घेरे रहनेवाला आदमी। (३) धृष्ट मनुष्य। ढीठ आदमी। **छाती पर का पत्थर या पहाड़**=(१) ऐसी वस्तु जिसका खटका सदा बना रहता हो। चिंता उत्पन्न करनेवाली वस्तु। जैसे,—कुआँरी लड़की, जिसके विवाह की चिंता सदा बनी रहती है। (२) सदा कष्ट देनेवाली वस्तु। दुःख से दबाए रहनेवाली वस्तु। **छाती कूटना**=दे० 'छाती पीटना'। उ०—कूटते हैं तो वदों को कूट दें। कट मरें, क्यों कूटते छाती रहें।—चुभते० पृ० ३६। **छाती के किवाड़**=छाती का पंजर। छाती का परदा या विस्तार। **छाती का किवाड़ खुलना**=(१) छाती फटना। (२) कंठ से चीत्कार निकलना। गहरी चीख निकलना। जैसे,—मैं तो आता ही था; तेरी छाती के किवाड़ क्या खुल गए। (३) हृदय के कपाट खुलना। हिए की आँख खुलना। हृदय में ज्ञान का उदय होना। अंतर्बोध होना। तत्व बोध का होना। (४) बहुत आनंद होना। **छाती के किवाड़ खोलना**=(१) कलेजा टुकड़े टुकड़े करना। (२) जी खोलकर बातें करना। हृदय की बात स्पष्ट कहना। मन में कुछ गुप्त न रखना। (३) हृदय का अंधकार दूर करना। अज्ञान मिटाना। अंतर्बोध करना। **छाती खोलना**=बातों द्वारा हृदय को वेधना। अपने कथन से किसी को पीड़ा पहुँचाना। उ०—आकबाक बकि और भी वृथा न छाती छोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३६। **छाती तले रखना**=(१) पास से अलग न होने देना। सदा अपने समीप या अपनी रक्षा में रखना। (२) अत्यंत प्रिय करके रखना। **छाती तले रहना**=(१) पास रहना। आँखों के सामने रहना। (२) अत्यंत प्रिय होकर रहना। **छाती दरकना**=दे० 'छाती फटना'। **छाती दरना**=सताना। क्लेश देना। उ०—ब्रजवास ते ऊधौ प्रवास करो, अब खूब ही छाती दरी सो दरी।—नट०, पृ० २६। **छाती निकालकर चलना**=तनकर चलना। अकड़कर चलना। ऐंठकर चलना। **छाती पत्थर की करना**=भारी दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना। **छाती पर मूँग या कोदो दलना**=(१) किसी के सामने ही ऐसी बात करना जिससे उसका जी दुखे। किसी को दिखा दिखाकर ऐसा काम करना जिससे उसे क्रोध या संताप हो। किसी के आँख के सामने ही उसकी हानि या बुराई करना। जैसे,—यह स्त्री बड़ी कुलटा है; अपने पति की छाती पर कोदो दलती है (अर्थात् अन्य पुरुष से बातचीत करती है)। (२) अत्यंत कष्ट पहुँचाना। खूब पीड़ित करना। (स्त्रियाँ प्रायः 'तेरी छाती पर मूँग दलूँ' कहकर गाली भी देती हैं)। **छाती पर चढ़ना**=कष्ट पहुँचाने के लिये पास जाना। **छाती पर चढ़कर ढाई चुल्लू लहू पीना**=कठिन दंड देना। प्राणदंड देना। **छाती पर धरकर ले जाना**=अपने साथ परलोक में ले जाना। —(धन आदि के विषय में लोग बोलते हैं कि 'क्या छाती पर धरकर ले जाओगे ?')। **छाती पर पत्थर रखना**=किसी भारी शोक या दुःख का आघात सहना। दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना। **छाती पर बाल होना**=उदारता, न्यायशीलता आदि के लक्षण होना।—लोगों में प्रवाद है कि सूम या विश्वासघातक की छाती पर बाल नहीं होते)। **छाती पर साँप लोटना या फिरना**=(१) दुःख से कलेजा दहल जाना। हृदय पर दुःख शोक आदि का आघात पहुँचना। मन मसोसना। मानसिक व्यथा होना। (२) ईर्ष्या से हृदय व्यथित होना। डाह होना। जलन होना। **छाती पर होना**=

छाती पर चढ़ जाना। उ०—अगर एक लफ्ज एक कलमा भी तेरी जबान से निकला तो छाती पर हूँगा।—फिसाना०, भा० ३ पृ० ४७४। **छाती पिलाकर पालना**=मनोयोग से पालना। कष्ट सहकर पालन पोषण करना। उ०—जान को वारकर जिलाती है, पालती है पिला पिला छाती।—चोखे०, पृ०५। **छाती पीटना**=(१)छाती पर जोर जोर से हाथ पटकना। (२) दुःख या शोक से व्याकुल होकर छाती पर हाथ पटकना। शोक के आवेग में हृदय पर आघात करना। (छाती पर हाथ पटकना शोक प्रकट करने का चिह्न है)। जैसे छाती पीट पीटकर रोना। **छाती फटना**=(१) दुःख से हृदय व्यथित होना। दुःख शोक आदि से चित्त व्याकुल होना। अत्यंत मानसिक क्लेश होना। अत्यंत संताप होना। (२) ईर्ष्या से हृदय व्यथित होना। चित्त में डाह होना। जी जलना। कुढ़न होना। जैसे,—दूसरे की बढ़ती देखकर तुम्हारी छाती क्यों फटती है। **छाती फाटना**(पु)=भय आदि से दहलना। काँपना। उ०—गरजनि तरजनि अनु अनु भाँती। फूटै कान अरु फाटै छाती।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१। **छाती फाड़ना**=जी तोड़ मेहनत करना। उ०—अब भी छाती फाड़ती हूँ, तब भी छाती फाड़ूँगी।—मान०, भा० ५, पृ० १६७। **छाती फुलाना**=(१) अकड़कर चलना। तनकर चलना। इतराकर चलना। (२) घमंड करना। अभिमान दिखलाना। (किसी की) **छाती लोन से मीजना**(पु)=कष्ट पर और कष्ट देना। किसी की पीड़ा को और बढ़ाना। उ०—नाँचै मोर कोलाहल कीजै। इंद्र की छाती लौंन सौं मींजै।—नंद० ग्रं०, पृ० १६२। **छाती से पत्थर टलना**=(१) किसी ऐसे भारी काम का हो जाना जिसका भार अपने ऊपर रहा हो। किसी कठिन वा बड़े काम के पूरे होने पर चित्त निश्चित होना। किसी ऐसे कार्य का पूरा हो जाना जिसका खटका सदा बना रहता हो। (२) बेटी का व्याह हो जाना। **छाती से लगना**=आलिंगन होना। गले लगना। हृदय से लिपटना। **छाती से लगाना**=आलिंगन करना। गले लगाना। प्यार करना। प्रेम से दोनों भुजाओं के बीच दबाना। **छाती से लगा रखना**=(१) अपने पास से जाने न देना। प्रेमपूर्वक सदा अपने समीप रखना। २. अत्यंत प्रिय करके रखना। अपनी देखरेख और रक्षा में रखना। **वज्र की छाती**=ऐसा कठोर हृदय जो दुःख सह सके। अत्यंत सहिष्णु हृदय।

२. कलेजा। हृदय। मन। जी।

मुहा०—**छाती उड़ी जाना**=दुःख या आशंका से चित्त व्याकुल होना। कलेजा दहलना। जी घबराना। **छाती उमड़ आना**=प्रेम या करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना। प्रेम या करुणा से गद्गद होना। **छाती छलनी होना**=कष्ट या अपमान सहते सहते हृदय जर्जर हो जाना। बार बार दुःख या कुढ़न से चित्त का अत्यंत व्यथित होना। दुःख झेलते झेलते या कुढ़ते कुढ़ते जी ऊब जाना। जैसे—तुम्हारी बातें सुनते सुनते तो छाती छलनी हो गई। **छाती जलना**=(१) कलेजे पर गरमी मालूम होना। अजीर्ण आदि के कारण हृदय में जलन मालूम होना। (२) शोक से हृदय व्यथित होना। हृदय दग्ध होना। मानसिक व्यथा होना। संताप होना। (३) ईर्ष्या या क्रोध से चित्त संतप्त होना। डाह होना। जलन होना। उ०—जो वह भली नेक हू होती तौ मिलि सत्रनि बताती। वह पापिनी दाहि कुल आई देखि जरत मोरि छाती।—सूर (शब्द०)। **छाती जलाना**=(१) हृदय संतप्त करना। संताप देना। मानसिक व्यथा पहुँचाना। जी जलाना। कष्ट पहुँचाना। (२) कुढ़ाना। चिढ़ाना। †**छाती जुड़ाना**=(१) [क्रि० अ०] दे० 'छाती ठंढी होना'। (२) [क्रि० स०] छाती ठंढी करना। हृदय शीतल करना। चित्त शांत और प्रसन्न करना। हृदय संतुष्ट और प्रफुल्लित करना। इच्छा या हौसला पूरा करना। कामना पूर्ण करना। मन का आवेग संग्रह करना। उ०—(क) लेहि परस्पर अति प्रिय पाती। हृदय लगाय जुड़ावहि छाती।—तुलसी (शब्द०)। (ख) खोजत रहेउँ तोहि सुत घाती। आजु निपाति जुड़ावहुँ छाती।—तुलसी (शब्द०)। **छाती ठंढी करना**=हृदय शीतल करना। चित्त शांत और प्रफुल्लित करना। मन का आवेग शांत करना। मन की अभिलाषा पूर्ण करना। हौसला पूरा करना। **छाती ठंढी होना**=हृदय शीतल होना। चित्त शांत और प्रफुल्लि होना। मन का आवेग शांत होना। कामना पूर्ण होना। हौसला पूरा होना। **छाती ठुकना**=हिम्मत बँधना। साहस बँधना। चित्त में दृढ़ता होना। जैसे,—मुंशी चुन्नीलाल और बाबू बैजनाथ ने इनको हिम्मत बँधाने में कसर नहीं रखी; परंतु इनका मन कमजोर है, इससे इनकी छाती नहीं ठुकती।—परीक्षागुरु (शब्द०)। **छाती ठोकना**=किसी कठिन कार्य के करने की साहसपूर्वक प्रतिज्ञा करना। किसी भारी या कठिन कार्य को करने का दृढ़तापूर्वक निश्चय दिलाना। कोई दुष्कर कार्य करने का साहस प्रकट करना। हिम्मत बाँधना। जैसे,—मैं छाती ठोककर कहता हूँ कि उसे आज पकड़ लाऊँगा। **छाती धड़कना**=भय या आशंका से हृदय कंपित होना। कलेजा धक धक करना। खटके या डर से कलेजा जल्दी जल्दी उछलना। जी दहलना। **छाती थामकर रह जाना**=ऐसा भारी शोक या दुःख अनुभव करना जो प्रकट न किया जा सके। कोई भारी मानसिक आघात सहकर स्तब्ध हो जाना। शोक से ठक रह जाना। **छाती पकड़कर रह जाना या बैठ जाना**=दे० 'छाती थामकर रह जाना'। **छाती पक जाना**=दे० 'छाती छलनी होना'। **छाती पत्थर की करना**=अत्यंत शोक या दुःख सहने के लिये जी कड़ा करना। भारी कष्ट या संताप सह लेना या सहने के लिये प्रस्तुत होना। **छाती पत्थर की होना**=अत्यंत शोक या दुःख सहने के लिये जी कड़ा होना। हृदय इतना कठोर होना कि वह शोक या दुःख का आघात सह ले। **छाती पर फिरना**=घड़ी घड़ी ध्यान में आना। बार बार स्मरण होना। **छाती भर आना**=प्रेम या करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना। प्रेम या करुणा से गद्गद् होना। उ०—बारि विलोचन बाँचत पाती। पुलकि गात भरि आई छाती।—तुलसी (शब्द०)। **छाती मसोसना**=चुपचाप हृदय में

ऐसा घोर दुःख होना जो प्रकट न किया जा सके। मन ही मन संतप्त होना। **छाती में छेद होना या पड़ना**=कष्ट या अपमान सहते सहते हृदय जर्जर होना। बार बार के दुःख या कुढ़न से चित्त अत्यंत व्यथित होना। कुढ़ते कुढ़ते या दुःख झेलते झेलते जी ऊब जाना। उ०—भेदिया सो भेद कहिबो छेद सो छाती परो।—सूर (शब्द०)।

३. स्तन। कुच। उ०—छाइ रहे छद छाती कपोलनि आनन ऊपर ओप चढ़ाई।—कविराज (शब्द०)।

मुहा०—**छाती उमरना**=युवावस्था आरंभ होने पर स्त्रियों के स्तन का उठना या बढ़ना। **छाती देना**=बच्चे के मुँह में पीने के लिये स्तन डालना। दूध पिलाना। **छाती पकना**=स्तनों पर क्षत होना। स्तनों पर घाव होना। **छाती भर आना**=(१) छाती में दूध भर आना। दूध उतरना। (२) दे० 'छाती उभड़ना'। (३) अत्यंत दुःख होना। आँखों में आँसू भर आना। **छाती में दूध छलकना**=प्यार से छाती भर आना या छाती में दूध उतरना। उ०—प्यार से छाती उछलती ही रही, दूध छाती में छलकता ही मिला।—चोखे०, पृ० ७। **छाती मसलना**=छाती मलना। स्तन दबाना या मरोड़ना (संभोग का एक अंग)।

४. हिम्मत। साहस। दृढ़ता। जैसे,—किसी की छाती है जो उसका सामना करे। ५. एक प्रकार की कसरत जो दुबगली के ढंग की होती है। उ०—एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी दोनों ओर से हाथ कमर पर ले जाकर कमर बाँधकर झोंका देना चाहता है। इसमें विपक्षी के हाथ को ऊपर से लपेटते हुए खेलाड़ी अपने हाथ मजबूत बाँधकर बाहरी या बगली टाँग मारता है।

छात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिष्य। चेला। विद्यार्थी। अंतेवासी। २. मधु। ३. छतया नामक मधुमक्खी जो कुछ पीले और कपिल वर्ण की होती है। सरघा। ३. छतया नामक मधुमक्खी का मधु।

छात्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छतया या सरघा नामक मधुमक्खी का बनाया हुआ मधु। २. विद्यार्थी। छात्र।

छात्रगंड—संज्ञा पुं० [सं० छात्रगण्ड] वह शिष्य जो श्लोक का एक चरण मात्र सुनकर सारे श्लोक का भाव समझ जाय। तीक्ष्ण बुद्धिवाला शिष्य। १. अल्पज्ञ छात्र (को०)।

छात्रदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] ताजा मक्खन।

छात्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वृत्ति या धन जो विद्यार्थी को विद्याभ्यास की दशा में सहायतार्थ मिला करे। स्कालरशिप।

छात्रालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ विद्यार्थियों के ठहरने का प्रबंध हो। बोर्डिंग हाउस।

छात्रावास—संज्ञा पुं० [सं० छात्र+आवास] दे० 'छात्रालय'।

छाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाजन। छप्पर। २. छत (को०)।

छादक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. छाननेवाला। आच्छादन करनेवाला। २. खपरैल या छप्पर छानेवाला। छपरबंद। ३. कपड़ा लत्ता देनेवाला।

छादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छादित] १. छाने या ढकने का काम। २. वह जिससे छाया या ढका जाय। आवरण। आच्छादन। ३. नीला म्लान वृक्ष। नीला कोरैया। ४. छिपाव। गोपन। ५. पत्ता। पत्र (को०)।

छादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा। खाल (को०)।

छादित—वि० [सं०] ढका हुआ। छाया हुआ। आच्छादित।

छादी—वि० [सं० छादिन्] [वि० स्त्री० छादिनी] छादक। आवरणकारी। आच्छादन करनेवाला।

छाद्मिक[1]—वि० [सं०] १. जो वेश छिपाए हो। छद्मरूपधारी। २. पाखंडी। मक्कार। ३. बहुरूपिया।

छाद्मिक[2]—संज्ञा पुं० ठग (को०)।

छान—संज्ञा स्त्री० [सं० छादन, छाजन, प्रा० छायण छान] छप्पर। घास फूस की छाजन। उ०—टूटी छान मेघ जल बरसै टूटै पलँग बिछाइए।—सूर (शब्द०)।

यौ०—**छान छप्पर**=छाजन। खपरैल।

छान[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० छन्द] वह रस्सी जिससे किसी पशु के पैर बाँधे जायँ। बंधन।

छान[3]—संज्ञा पुं० [हिं० छानना] छानना का समास में प्रयुक्त रूप। जैसे, छानपछोर छानफटक, छानबीन आदि।

छानना[1]—क्रि० स० [सं० चालन या क्षारण] १. किसी चूर्ण या तरल पदार्थ को महीन कपड़े या और किसी छेददार वस्तु के पार निकालना जिसमें उसका कूड़ा करकट अथवा खुरदुरा या मोटा अंश निकल जाय। जैसे, पानी छानना, शरबत छानना, आटा छानना।

संयो० क्रि०—**डालना**।—**देना**।—**लेना**।

२. मिली जुली वस्तुओं को एक दूसरे से अलग करना। भली और बुरी अथवा ग्राह्य और त्याज्य वस्तुओं को परस्पर पृथक् करना। बिलगाना। उ०—(क) जामि कै अनजान हुआ तत्व न लिया छानि।—कबीर (शब्द०)। (ख) मज्जन पानि कियो को सुरसरि कर्मनाश जल छानि?—तुलसी (शब्द०)। ३. विवेक करना। अन्वीक्षण करना। जाँचना। पड़तालना। ४. देखभाल करना। ढूँढ़ना। अनुसंधान करना। अन्वेषण करना। तलाश करना। खोज करना। जैसे,—सारा घर छान डाला, पर कागज न मिला।

संयो० क्रि०—**डालना**।—**मारना**।

५. भेदकर पार करना। किसी वस्तु को छेदकर इस पार से उस पार निकालना। उ०—जब ही मारचो खैंचि के तब मैं मूवा जानि। लागी चोट जो सबद की गई करेजे छानि।—कबीर (शब्द०)। ६. नशा पीना। जैसे,—भाँग छानना, शराब छानना। ७. घृत या तेल आदि में कोई खाद्यपदार्थ तलना।

छानना[2]—क्रि० स० [सं० छन्दन, हिं० छावना] १. रस्सी से बाँधना। रस्सी आदि से कसना। जकड़ना।

यौ०—**बाँधना छानना**। जैसे, असबाब बाँध छानकर पहले से रख दो।

२. घोड़े, गदहे आदि के पैरों को रस्सी से जकड़कर बाँधना। उ०—कबीर प्रगटहि रामकहि छाने राम न गाय। फूस के जोड़ी दूर करु बहुरि न लागै लाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) वहि चलत भयो है मंद पौन। मनु गदहा को छान्यो पैर।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३७५।

छानबीन—संज्ञा स्त्री० [हिं० छानना+बीनना] १. पूर्ण अनुसंधान या अन्वेषण। जाँच पड़ताल। गहरी खोज। २. पूर्ण विवेचना। विस्तृत विचार। पूर्ण समीक्षा।

क्रि० प्र० करना। होना।

छानवे¹—वि० [सं० षण्णवति, प्रा० छण्णवइ, अप० छाण्णवई > हिं० छानबे] जो संख्या में नब्बे और छह हो। नब्बे से छह अधिक।

छानवे²—संज्ञा पुं० छानवे की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है। ९६।

छाना¹—क्रि० स० [सं० छादन] १. किसी वस्तु के सिरे या ऊपर के भाग पर कोई दूसरी वस्तु इस प्रकार रखना या फैलाना जिसमें वह पूरा ढक जाय। ऊपर से आच्छादित करना।

संयो० क्रि० - देना।—लेना।

२. पानी, धूप आदि से बचाव के लिये किसी स्थान के ऊपर कोई वस्तु तानना या फैलाना। जैसे,—छप्पर छाना, मंडप छाना, घर छाना। उ०—जायसी (शब्द०)।

(ख) ऊपर राता चँदवा छावा। औ भुँइ सुरँग बिछाव बिछावा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग आच्छादन और आच्छादित दोनों के लिये होता है। जैसे; छप्पर छाना, घर छाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

३. बिछाना। फैलाना। उ०—मायके की सखी सों मँगाय फूल मालती के चादर सों ढाँपे छाय तोसक पहल में।—रघुनाथ (शब्द०)। ४. शरण में लेना। रक्षा करना। उ०—छत्रहिं अछत, अछत्रहिं छावा। दूसर नाहिं जो सरिवरि पावा।—जायसी (शब्द०)।

छाना²—क्रि० अ० १. फैलना। पसरना। बिछजाना। भर जाना। जैसे, बादल छाना, हरियाली छाना। उ०—(क) फूले कास सकल महि छाई।—मानस, ४।१६। (ख) बरषा काल मेघ नभ छाए। गर्जत लागत परम सुहाए।—मानस, ४।१३। (ग) कैसे धरों धीर वीर धीर पावस प्रबल आयो, छाई हरियाई छिति, नभ बग पाँती है।—घासीराम (शब्द०)।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

२. डेरा डालना। बसना। रहना। टिकना। उ०—(क) जब सुग्रीव भवन फिरि आए। राम प्रवर्षन गिरि पर छाए—मानस, ४।१२। (ख) हम तो इतने ही सचु पायो। सुंदर स्याम कमलदल लोचन बहुरी दरस दिखायो। कहा भयो जो लोग कहत हैं कान्ह द्वारिका छायो। सुनि कै बिरह दसा गोकुल की अति आतुर ह्वै धायो।—सूर० १०।४२९६।

छाना³—वि० [सं० छन्न प्रा० छण्ण] [वि० स्त्री० छानी] छिपा हुआ। गुप्त। उ०—(क) सुंदर छाना क्यों रहै जग में जाहर होइ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८९। (ख) कस्तूरी कपूर छिपावै कैसे छानी रहै सुबास।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १५६।

यौ०—छाने छाने=गुप्त रूप से। चुपके। लुक छिपकर।

छानि(पु), छानी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० छादन, हिं० छान] १. ईख के रस की नाँद के ऊपर का ढक्कन जो सरकंडे या बाँस की पतली फट्टियों का बनता है। २. छान। छप्पर। उ०—(क) कलि मैं नामा प्रकट ताकि छानि छवावै।—सूर०, ११४। (ख) या घर में हरि सो बिसरे सु तू बारि दे बाघरु बार ते बोरे। छानि बरेडि औ पाट पछीनि मयारि कहा किहि काम के कोरे।—अकबरी०, पृ० ३५४।

छाप¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छापना] १. वह चिह्न जो किसी रंग पुते हुए साँचे को किसी वस्तु पर दबाकर बनाया जाय। खुदे या उभरे हुए ठप्पे का निशान। जैसे, चंदन या गेरू की छाप, बूटी की छाप, हथेली की छाप। २. असर। प्रभाव।

क्रि० प्र०—डालना।-पड़ना।—लगना।—लगना।

३. मुहर का चिह्न। मुद्रा। उ०—दान किए बिनु जान न पैहो। माँगत छाप कहा दिखराओ को नहिं हमको जानत। सूर श्याम तब कह्यो ग्वारि सों तुम मोकों क्यों मानत।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।—लगाना।

४. शंख, चक्र आदि के चिह्न जिन्हें वैष्णव अपने अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं। मुद्रा। उ०-(क) द्वारका छाप लगे भुज मूल पुरानन गाहि महातम भौंन हैं।—(शब्द०)। (ख) मेटे क्यों हूँ न मिटति छाप परी टटकी। सूरदास प्रभु की छवि हृदय मों अटकी।—सूर (शब्द०)। ५. वह निशान जो साँचे में अन्न की राशि के ऊपर मिट्टी डालकर लगाया जाता है। चाँक। ६. एक प्रकार की अँगूठी जिसमें नगीने की जगह पर अक्षर आदि खुदा हुआ ठप्पा रहता है। उ०—विद्रुम अँगुरि पानि चरै रँग सुंदरता सरसानो। छाप छला मुँदरी झलकें, दमकें पहुँची गजरा मिलि मानो।—गुमान (शब्द०)। ७. कवियों का उपनाम।

छाप²—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेप (=क्षेप)] १. काँटे या लकड़ी का बोझ जिसे लकड़िहारे जंगल से सिर पर उठाकर लाते हैं। २. बाँस की बनी हुई टोकरी जिससे सिंचाई के लिये जलाशय से पानी उलीचकर ऊपर चढ़ाते हैं।

छापना—क्रि० स० [सं० चपन] १. किसी ऐसी वस्तु को जिस पर स्याही, गीला रंग आदि पुता हो, दूसरी वस्तु पर रखकर या छुलाकर उसकी आकृति चिह्नित करना। २. किसी साँचे को किसी वस्तु पर इस प्रकार दबाना कि उसकी, अथवा उसपर के खुदे या उभरे हुए चिह्नों की आकृति उस वस्तु पर उतर आवे। ठप्पे से निशान डालना। मुद्रित करना। अंकित करना। जैसे,—पुस्तक छापना, अखबार छापना। ४. टीका लगाना (विशेषतः चेचक का)।

छापा—संज्ञा पुं० [हिं० छापना] १.ऐसा साँचा जिसपर गीला रंग या स्याही आदि पोतकर किसी वस्तु पर उसकी अथवा उसपर खुदे या उभरे हुए चिह्नों की आकृति उतारते हैं। ठप्पा। जैसे, छीपियों का छापा, तिलक लगाने का छापा। २. मुहर। मुद्रा ३. ठप्पे या मुहर से दबाकर डाला हुआ चिह्न या अक्षर। ४. व्यापार के माल पर डाला हुआ चिह्न। मारका। ५. शंख, चक्र आदि का चिह्न जिसे वैष्णव अपने बाहु आदि अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं। उ०—जप माला छापा तिलक सरे न एको काम।—बिहारी (शब्द०)। ६. पंजे का वह चिह्न जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर हलदी आदि से छापकर (दीवार, कपड़े आदि पर) डाला जाता है। ७. वह कल जिससे पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। छापे की कल। मुद्रा यंत्र। प्रेस। वि० दे० 'प्रेस'।

यौ०—छापाकल। छापाखाना।

८. एक प्रकार का ठप्पा जिससे खलिहानों में राशि पर राख रखकर चिह्न डाला जाता है। यह ठप्पा गोल या चौकोर होता है जिसमें डेढ़ दो हाथ का डंडा लगा रहता है। ९. किसी वस्तु की ठीक ठीक नकल। प्रतिकृति। १. रात में सोते हुए या बेखबर लोगों पर सहसा आक्रमण। रात्रि में असावधान शत्रु पर धावा या वार।

क्रि० प्र०—मारना।

छापाकल—संज्ञा स्त्री० [हिं० छापा+कल] छापने या मुद्रण का कार्य करने की मशीन।

छापाखाना—संज्ञा पुं० [हिं० छापा+फ़ा० खाना] वह स्थान जहाँ पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। मुद्रणालय। प्रेस।

छापामार—वि० [हिं०] अचानक बेखबर दुश्मन पर आक्रमण करनेवाला। छापा मारनेवाला (सैनिक)।

यौ०—छापामार लड़ाई। छापामार युद्ध=गुरिल्ला युद्ध।

छापित(पु)—वि० [हिं० छाप+इत (प्रत्य०)] छापों से भरा हुआ छापा हुआ। उ०—तन भीजि सारी रंग रंग के वारि बहुत उदोत। सब रंग मिलि के वसन छापित मैं प्रगट मुख जोत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ११०।

छाब—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छबड़ा'। उ०—फूलन छाब भरी हुई चारी। नाना विधि के फूल अपारी।—कबीर सा०, पृ० ५४४।

छाबड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छबड़ा'। उ०—नैंडो आवै नाग पकड़ीजै, छाबड़ पड़े।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६७।

छाम(पु)—वि० [सं० क्षाम] क्षीण। पतला। कृश। उ०—सीस फूल सरकि सुहावने ललाट लाग्यो लाँबी लटैं लटकि परी हैं कटि छाम पै।—द्विजदेव (शब्द०)।

छामोदरी(पु)—वि० [सं० क्षामोदरी] छोटे पेटवाली। कृशोदरी। उ०—तैं हैं सूच्छम छामोदरी कटि केहरि की हरि लक ना ऐसी।—अत (शब्द०)।

विशेष—छोटा पेट सौंदर्य का चिह्न माना जाता है।

छायल†—संज्ञा पुं० [हिं० छाना] स्त्रियों का एक पहरावा। उ०—भय कटाव कस अँगिया राती। छायल बँद लाए गुजराती।—जायसी (शब्द०)।

छायांक—संज्ञा पुं० [सं० छायाङ्क] चंद्रमा।

छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकाश का अभाव जो उसकी किरणों के व्यवधान के कारण किसी स्थान पर होता है। उजाला डालनेवाली वस्तु और किसी स्थान के बीच कोई दूसरी वस्तु पड़ जाने के कारण उत्पन्न कुछ अंधकार या कालिमा। वह थोड़ी थोड़ी दूर तक फैला हुआ अँधेरा जिसके आस पास का स्थान प्रकाशित हो। साया। जैसे,पेड़ की छाया, मंडप की छाया।

२. वह स्थान जहाँ किसी प्रकार की आड़ या व्यवधान के कारण सूर्य, चंद्रमा, दीपक या और किसी आलोकप्रद वस्तु का उजाला न पड़ता हो। ३ फैले हुए प्रकाश को कुछ दूर तक रोकनेवाली वस्तु की आकृति जो किसी दूसरी ओर अंधकार के रूप में दिखाई पड़ती है। परछाईं। जैसे, खंभे की छाया। वि० दे० 'छाँह'। ४. जल, दर्पण आदि में दिखाई पड़नेवाली वस्तुओं की आकृति। अक्स। ५. तद्रूप वस्तु। प्रतिकृति। अनुहार। सदृश वस्तु। पटतर। उ०—कहहु सप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई।—तुलसी (शब्द०)। ६. अनुकरण। नकल। जैसे,—यह पुस्तक एक बँगला उपन्यास की छाया है। ७. सूर्य की एक पत्नी का नाम।

विशेष—इसकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। विवस्वान् सूर्य की पत्नी संज्ञा थी जिसके गर्भ से वैवस्वत, श्राद्ध देव, यम और यमुना का जन्म हुआ। सूर्य का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा ने अपनी छाया से अपनी ही ऐसी एक स्त्री उत्पन्न की और उससे यह कहकर कि तुम हमारे स्थान पर इन पुत्रों का पालन करना और यह भेद सूर्य पर न खोलना, वह अपने पिता विश्वकर्मा के घर चली गई। सूर्य ने छाया को ही संज्ञा समझकर उससे सावर्णि और शनैश्चर नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। छाया इन दोनों पुत्रों को संज्ञा की संतति की अपेक्षा अधिक चाहने लगी। इसपर यम क्रुद्ध होकर छाया को लात मारने चले। छाया ने शाप दिया कि तुम्हारा पैर कटकर गिर जाय। जब सूर्य ने यह सुना तब उन्होंने छाया से इस भेदभाव का कारण पूछा, पर उसने कुछ न बताया। अंत में सूर्य ने समाधि द्वारा सब बातें जान लीं और छाया ने भी सारी व्यवस्था ठीक ठीक बतला दी। जब सूर्य क्रुद्ध होकर विश्वकर्मा के यहाँ गए, तब उन्होंने कहा—'संज्ञा तुम्हारा तेज न सह सकने के कारण ही यहाँ चली आई थी और अब एक घोड़ी का रूप धारण करके तप कर रही है। इसपर सूर्य संज्ञा के पास गए और उसने अपना रूप परिवर्तित किया

८. कांति। दीप्ति। ९. शरण। रक्षा। जैसे—अब तुम्हारी छाया के नीचे आ गए हैं; जो चाहे सो करो। १०. उत्कोच। घूस। रिशवत। ११. पंक्ति। ११. कात्यायनी। १३. अंधकार। १४. आर्या छंद का भेद जिसमें १७ गुरु और लघु होते हैं। १५. एक रागिनी।

विशेष—संगीतसार के मत से यह हम्मीर और शुद्ध नट के योग से उत्पन्न रागिनी है। इसमें पंचम वादी, ऋषभ संवादी और अवरोहण में तीव्र मध्यम लगता है। दामोदर के मत से यह ओड़व है जिसका सरगम है—नि ध म ग सा।

१६. भूत प्रेत का प्रभाव। आसेव। जैसे,—इसपर किसी की छाया है।

छायाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाया करनेवाला। किसी के लिये छाता लेकर चलनेवाला। २. एक छंद [को०]।

छायागणित—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें छाया के सहारे ग्रहों की गति, अयनांश का गमनागमन आदि निरूपित किया जाता है। इसमें एक शंकु के द्वारा विषुवन्मंडल स्थिर करके छायाकर्ण निर्धारित किया जाता है।

छायाग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। आइना।

छायाग्राहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसने फाँदते हुए हनुमान की छाया पकड़कर उन्हें खींच लिया था।

छायाग्राहिनी(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं०छायाग्राहिणी] दे० 'छायाग्राहिणी'। उ०—या भव पारावार कौं उलँघि पार की जाय। तिय छवि छायाग्राहिनी ग्रहैं बीच हीं आय।—बिहारी र०, दो० ६३३।

छायाचित्र—संज्ञा पुं० [सं० छाया + चित्र] आलोक चित्र। अक्सी तसवीर। फोटो।

छायातनय—संज्ञा पुं० [सं०] शनैश्चर।

छायातप—संज्ञा पुं० [छाया+आतप] १. छाया और धूप। उ०—और बदलते रहते चलपट छायातप के।—रजत०, पृ० १०।

छायातरु—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपुन्नाग। छतिवन। २. वह वृक्ष जिसकी छाया घनी और विस्तृत हो। छायादार वृक्ष। उ०—जीवन के मरु का छायातरु, लहराया, उत्कल जल निर्झर।—बेला, पृ० ३७।

छायात्मज संज्ञा पुं० [सं०] छाया का पुत्र। शनैश्चर।

छायात्मा—संज्ञा पुं० [सं० छायात्मन्] परछाईं। प्रतिबिंब [को०]।

छायादान—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहजन्य अरिष्ट के निवारणार्थ एक प्रकार का दान।

विशेष—छायादान करनेवाला घी या तेल से भरे काँसे के कटोरे में अपनी छाया या परछाईं देख और उसमें कुछ दक्षिणा डालकर दान करता है। यह दान ग्रहजनित शरीर के अरिष्ट की शांति के निमित्त किया जाता है और इसे कुलीन ब्राह्मण नहीं ग्रहण करते।

छायादेह—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना शरीर की मूर्ति। काल्पनिक मूर्ति।

छायाद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'छायातरु' [को०]।

छायाद्वितीय—वि० [सं०] एकाकी। अकेला। जिसके साथ केवल अपनी छाया ही हो।

छायानट—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक राग।

विशेष—यह राग छाया और नट के योग से उत्पन्न है तथा केदार नट, कल्याण नट आदि नौ नटों के अंतर्गत है। इसमें सा वादी और ग संवादी है और अवरोहण में तीव्र मध्यम लगता है। संगीतसार के मत से यह संपूर्ण जाति का राग है और इसका ग्रह तथा अंश और न्यास धैवत है। यह संध्या के समय एक दंड से पाँच दंड तक गाया जाता है। इसकी स्वरलिपि इस प्रकार है—ध स स रे ग म प ध स नि ध प म म म रे ध ध प म प म म म म रे ध प स म म रे स रे स स स।

छायान्वित—वि० [सं०] छायायुक्त। सायादार।

छायापथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाशगंगा। हाथी की डहर। आकाश जनेऊ। २. देवपथ। उ०—नील नभोमंडल सा जलनिधि, पुल था छायापथ सा ठीक। खींच दी गई एक अमिट सी पानी पर भी प्रभु की लीक।—साकेत, पृ० ३६०। ३. आकाश। उ०—छायापथ में नव तुषार का सघन मिलन होता जितना।—कामायनी, पृ० ८।

छायापद—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक यंत्र। इसमें बारह अंगुल का शंकु होता था जिसकी छाया से काल का ज्ञान होता था।

छायापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शनैश्चर। उ०—छायापुत्र सहोदर छाकै, छोह न तापर छेलै।—रघु० रू०, पृ० २५।

छायापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] हठयोग के अनुसार मनुष्य की छायारूप आकृति जो आकाश की ओर स्थिर दृष्टि से बहुत देर तक देखते रहने की साधना करने से दिखाई पड़ती है।

विशेष—तंत्र में लिखा है कि इस छायारूप आकृति के दर्शन से छह महीने के भीतर होनेवाली भविष्य बातों का पता लग जाता है। यदि पुरुष की आकृति पूरी पूरी दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छह महीने के भीतर मृत्यु नहीं हो सकती। यदि आकृति मस्तकशून्य दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छह महीने के भीतर अवश्य मृत्यु होगी। यदि चरण न दिखाई पड़े तो भार्या की मृत्यु और यदि हाथ न दिखाई पड़ें तो भाई की मृत्यु निकट समझनी चाहिए। यदि छायापुरुष की आकृति रक्तवर्ण दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि धन की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार की और बहुत सी कल्पनाएँ हैं।

छायाभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

छायामय—वि० [सं०] छायायुक्त। छायादार [को०]।

छायामान—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. छाया की माप (को०)।

छायामित्र—संज्ञा पुं० [सं०] छाता। छतरी।

छायामृगधर—संज्ञा पुं० [सं०] मृगलांछन। चंद्रमा [को०]।

छायायंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह यंत्र जिससे छाया द्वारा काल का ज्ञान हो। सूर्यसिद्धांत में शंकु, धनु, चक्र आदि इसके अनेक प्रकार बतलाए गए हैं। २. धूपघड़ी।

छायालोक—संज्ञा पुं० [सं०] काल्पनिक जगत्।

छायावाद—संज्ञा पुं० [सं० छाया+वाद] आधुनिक हिंदी की एक काव्यगत शैली।

विशेष—सन् १९१८ ई० के आसपास द्विवेदी युग की काव्यधारा

के बीच रीतिकालीन काव्यप्रवृत्तियों के विरोध में इस नवीन काव्यधारा का जन्म हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार पुराने ईसाई संतों के छायाभास (फैंटज्मैटा) तथा यूरोपी काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिंबालिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगीं। इस धारा का हिंदी काव्य अँगरेजी के रोमांटिक कवियों तथा बँगला के रवींद्र काव्य से प्रभावित था। अतः हिंदी में भी इस नई काव्यधारा के लिये 'छायावाद' नाम प्रचलित हो गया। इस धारा के प्रमुख कवि प्रसाद, निराला और पंत आदि माने जाते हैं। बाद में स्वच्छंदतावाद का नाम भी अनेक हिंदी आलोचकों ने दिया।

छायावेष्टित—वि० [सं० छाया+आवेष्टित] अस्पष्ट। धुँधला। उ०—कौन उसमें ऐसे छायावेष्टित रहः स्थल हैं।—नदी०, पृ० ८।

छायावान्—वि० [सं० छायावत्] [वि० स्त्री० छायावती] १. छायायुक्त। सायादार। छाँहवाला। २. शांतियुक्त।

छायाविप्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद का एक प्रकरण जिसके अनुसार रोगी की कांति, आभा, चेष्टा आदि में उलट-फेर या परिवर्तन देखकर यह निश्चय किया जाता है कि अब यह आसन्नमरण है या नहीं अच्छा होगा।

छायासुत—संज्ञा पुं० [सं०] छाया के पुत्र शनैश्चर।

छार—संज्ञा पुं० [सं० क्षार] कुछ जली हुई वनस्पतियों या रासायनिक क्रिया से घुली धातुओं की राख का नमक। क्षार। २. खारी नमक। ३. खारी पदार्थ। ४. भस्म। राख। खाक। उ०—(क) जो निग्रान तन होइहि छारा। माटी पोखि मरइ को भारा।—जायसी (शब्द०)। (ख) तुरतहि काम भयो जरि छारा।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—छार खार करना=भस्म करना। नष्ट भ्रष्ट करना। सत्यानाश करना। उ०—उपजा ईश्वर कोप ते आया भारत बीच। छार खार सब हिंद करूँ मैं तो उत्तम नहिं नीच।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ५. धूल। गर्द। रेणु। उ०—(क) गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करति पब्वै ते छार, छार पब्वै सो उपलक ही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मूढ़ छार डारे गजराजऊ पुकार करें, पुंडरीक बूड्यो री, कपूर खायो कदली।—केशव (शब्द०)।

छारकर्दम—संज्ञा पुं० [सं० क्षारकर्दम] एक नरक। दे० 'क्षारकर्दम'।

छारछबीला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छरीला'।

छाल—संज्ञा स्त्री० [सं० छल्ल, छाल अथवा सं० शल्क] १. पेड़ों के धड़ शाखा, टहनी और जड़ के ऊपर का आवरण जो किसी किसी में मोटा और कड़ा होता है और किसी में पतला और मुलायम। वृक्ष की त्वचा। वक्कल। जैसे, नीम की छाल। वल्कल। बबूल की छाल। २. छाल का वस्त्र, ३. त्वचा। चमड़ा। ४. एक प्रकार की मिठाई। उ०—भई मिठाई कही न जाई। मुख खन मेलत जाइ बिलाई। मतलडु, छाल और मरकोरी। माठ पिराकें और बुँदौरी।—जायसी (शब्द०)। ५. चीनी जो खूब साफ न की गई हो।

छालटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाल+टी] १. छाल का बना हुआ वस्त्र। सन या पाट का बना हुआ कपड़ा।

विशेष—यह पहले अलसी की छाल का बनता था और इसी को फारसी में कतां कहते थे। २. सन या पाट का बना हुआ एक प्रकार का चिकना और फूलदार कपड़ा जो देखने में रेशम की तरह जान पड़ता है।

छालना¹—क्रि० स० [सं० चालन] १. छलनी में रखकर (आटा आदि) साफ करना। चालना। छानना। २. छेद करना। छलनी की तरह छिद्रमय करना। झँझरा करना।

छालना²—क्रि० स० [सं० क्षालन] धोना। साफ करना। पखारना।

छाला—संज्ञा पुं० [सं० छाल] १. छाल या चमड़ा। चर्म। जिल्द। जैसे, मृगछाला। उ०—(क) जरहि मिरिग बनखँड तेहि ज्वाला। आते जरहिं बैठ तेहि छाला।—जायसी ग्रं०, पृ० ८६। (ख) सेस नाग जाके कँठ माला। तनु भभूति हस्ती कर छाला।—जायसी ग्रं०, पृ० ९०। २. किसी स्थान पर जलने, रगड़ खाने या और किसी कारण से उत्पन्न चमड़े की ऊपरी झिल्ली का फूलकर उभरा हुआ तल जिसके भीतर एक प्रकार का चेप या पानी भरा रहता है। फफोला। आबला। झलका। उ०—पांयन में छाले परे,बाँधिवे को नाले परे, तऊ, लाल, लाले परे रावरे दरस को।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

३. वह उभरा हुआ दाग जो लोहे या शीशे आदि में पड़ जाता है।

छालित(पु)—वि० [सं० क्षालित] धोया हुआ। प्रक्षालित।

छालियो—संज्ञा पुं० [सं० स्थाली हिं० थाली] काँसे का एक बरतन जिसमे घी तेल आदि भरकर छायादान दिया जाता है। छाया-पात्र। छायादान की कटोरी।

छालिया²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छाली'।

छाली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाला] १. कटी हुई सुपारी का चिपटा टुकड़ा। सुपारी का फल। २. सुपारी। पूगीफल।

छालो(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० छागल, प्रा० छाअलो, हिं० छेलो] [स्त्री० छाली] बकरा। उ०—छाखी हदा कांनडा, एवालां आधीन।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५५।

छावँ—संज्ञा स्त्री० [सं०छाया] १. छाया। साया। जैसे,—बैठ जाता हूँ जैसे,—जहाँ छाँव घनी होती है। २. शरण। पनाह। जैसे—अब तो हम तुम्हारी छावँ में आ गए हैं, जो चाहो सो करो। ३. प्रतिबिंब। अक्स। वि० दे० 'छाँह'।

छावन—संज्ञा पुं० [सं० छादन, प्रा० छायण, छावण] १. छाजन। छप्पर। उ०—सुन्न गुफा घरि छावन छाया।—प्राण०, पृ० ५६। २. डेरा। आवास। निवास। उ०—दोय मास इत छावन किज्जय।—प० रासो, पृ० १८१।

छावना(पु)†—क्रि० स० [हिं० छाना] दे० 'छाना'। उ०—चरण

घोइ चरणोदक लीनों माँगि देउ मनभावन । तीन पेंड़ बसुधा हौं चाहौं परणकुटी को छावन ।—सूर (शब्द०) ।

छावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाना अथवा देशी छायणिया,छायणो] १. छप्पर । छाना ।

क्रि० प्र०—छाना ।

२. डेरा । पड़ाव ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।

३. सेना के ठहरने का स्थान । फौज की बारिक ।

छावद—संज्ञा पुं० [सं० शावक] मछलियों के छोटे छोटे बच्चे जो झुंड बाँधकर एक साथ तैरते हैं ।

छावरा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० शावक] [स्त्री० छावरी] छौना । जानवर का बच्चा । उ० भूषन भनत कीजै उत्तरी भुवाल बस पूरब के लीजिए रसाल गज छावदे ।—भूषन (शब्द०) ।

छावला†—वि० [प्रा० छविल्ल, छइल्ल हिं० छैला] सुरूप । सुडौल । रूपवान । उ०—देह इसकी गोरी—मानो छोटे छावले की छोरी हो ।—श्याम०, पृ० ३१ ।

छावा—संज्ञा पुं० [सं० शावक] १. बच्चा । शिशु । २. पुत्र । बेटा—(डिं०) । ३. १० से २० वर्ष तक का हाथी । जवान हाथी ।

छासठ¹—वि० [सं० षटषष्टि, प्रा० छछठि] जो गिनती में साठ और छह हो ।

छासठ²—संज्ञा पुं० साठ और छह की संख्या तथा उसका सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६६ ।

छाह¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छाछ' ।

छाह²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छाँह' । उ०—माह छाह ककरो नहि भावय ग्रीसम प्रान पियारा ।—विद्यापति, पृ० १०० ।

छाहर¹—संज्ञा पुं० [सं० छाया] छाया । उ०—चाहने छाहर आवहि वाहर गालिम गगएग पारीआ ।—कीर्ति०, पृ० ४६ ।

छाहर²—वि० [सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह+ड़ (प्रत्य०)] मत्त । मतवाला । उ०—हय हथ्थिन घन हंकि बीर छूट्यौ छकि छाहर । मरदन सों मिलि मरद मरद बुल्ल्यो मुख नाहर।—पृ० रा०, ७ । ११५ ।

छाहाँगीर†(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० छाह+फ़ा० गीर (प्रत्य०)] छत्र । छाता । उ०—मुकुट को छाहाँगीर कियैं ब्रजनिधि । ठ.ढ़ो, मुख की छटा की छवि छाकनि छकै रह्यौ ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १४७ ।

छिछ, छिछि(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छींटा । धार । फौवारा । उ०—(क) स्रोनित छिछ उछरि आकासहिं गज बाजिनि सिर लागि ।—सूर०, ६।१५८ । (ख) शोन छिछि छूटत वदन भीम भई तेहि काल । मानो कृत्या कुटिलयुत पावन ज्वाल कराल ।—केशव (शब्द०) । (ग) अति उच्छलि छिछि त्रिकूट छायो । पुर रावण के जल जोर भयो ।—केशव (शब्द०) ।

छिँकना—क्रि० अ० [हिं० छेंकना] छेंका जाना । रोका जाना । उ०—जो छिके जी की कचाई से नहीं । छेकने से छींक के वे कब छिके ।—चुभते०, पृ० ४१ ।

छिँकाना—क्रि० स० [हिं० छींकना का प्रे० रूप] छींकने की क्रिया कराना । छींक लाना ।

छिँगुनिया,छिँगुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० छिगुनी' ।

छिँगुलिया, छिँगुली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छिगुनी' ।

छिँटुआ, छिँटुवा—संज्ञा पुं० [हिं० छींटना] बीज बोने का एक ढंग जिसमें बीज को हाथों में लेकर खेत में बिखराते हैं । छींटा ।

छिँड़ाना—क्रि० स० [हिं० छीनना] जबरदस्ती ले लेना । छीनना । उ०—(क) श्याम सखन सों कहेउ टेर दै घेरौ सब अब जाय । बहुत ढीठ यह भई ग्वालिनी मटुकी लेहु छिड़ाय ।—सूर (शब्द०) । (ख) गोरस लेहु री कोउ आय । ....डरनि तुम्हरे जाति नाहीं लेत दहिउ छिड़ाय ।—सूर (शब्द०) ।

छिः, छि—अव्य० [अनु०] १. घृणासूचक शब्द । घिन जताने का शब्द । जैसे, छि, छि ! देखो तो तुम्हारे हाथ मे कितनी मैल लगी है । २. तिरस्कार या अरुचिसूचक शब्द । जैसे,—छि! तुम्हे माँगते लज्जा नहीं आती ।

छिउँकहा—वि० [हिं० छिउँका] [स्त्री० छिउँकही] लकड़ी, पेड़, पेड़ की डाल आदि जिसमें छिउँके लगे हों या जिसे छिउँकों ने खा लिया हो ।

छिउँका—संज्ञा पुं० [हिं० चिउँटा] [स्त्री० छिउँकी, वि० छिउँकहा] एक प्रकार का चिउँटा जो साधारण चिउँटे से छोटा और पतला तथा भूरे रंग का होता है और बड़े जोर से काटता है । यह प्रायः पेड़ों पर होता है ।

छिउँकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिउँटी] १. एक प्रकार की छोटी चींटी जो बड़े जोर से काटती है । २. एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा जिसके काटने से बड़ी जलन होती है । ३. लोहे का एक औजार जो छवाली से छोटा होता है और धंधार में लगाया जाता है । यह लकड़ी उठाने के काम में आता है । ४. रस्सी की वह मुद्धी जो बोरों में इसलिये लगी रहती है कि घोड़े की पीठ पर लादने पर उनमें एक लकड़ी फँसा दी जाय ।

छिउल—संज्ञा पुं० [देश०] पलाश । छीउल । ढाक ।

छिउला—संज्ञा पुं० [सं० क्षुप, हिं० छुप+ला (प्रत्य०)] छोटा पेड़ । पौधा ।

छिकनी—संज्ञा स्त्री० [सं० छिक्कनी] एक प्रकार की बहुत छोटी घास या बूटी का फूल जिसे सूँघने से छींक आती है ।

विशेष—यह जमीन ही पर फैलती है, ऊपर नहीं बढ़ती । इसमें छोटी छोटी घुड़ियों की तरह के मूँग के दाने के बराबर गोल फूल लगते हैं जिन्हें सूँघने से बहुत छींक आती हैं यह घास प्रायः ऐसे स्थानों पर अधिक होती है जहाँ कुछ दिनों तक पानी जमा रहकर सूख गया हो; जैसे छिछले ताल आदि । यह औषध के काम में आती है और वैद्यक में गरम, रुचिकारक अग्नि दीपक तथा श्वेत कुष्ठ आदि त्वचा के रोगों

को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे नकछिकनी भी कहते हैं।

पर्या०—छिक्कनी। क्षवकृत। तीक्ष्णा। उग्रा। उग्रगंधा। क्षवक। क्रूरनासा। घ्राणदु:खदा।

छिकरा—संज्ञा पुं० [सं० छिक्कर] हिरन की जाति का एक जानवर जो बहुत तेज होता है। बृहत्संहिता के अनुसार ऐसे मृग का दाहिनी ओर से निकलना शुभ है।

छिकार—संज्ञा पुं० [सं० छिक्कार] दे० 'छिक्कार' उ०—मिरगो एक पाँच है हरिणी जामें तीन छिकार। अपने अपने रस के लोभी चरत हैं न्यारा न्यार।—राम० धर्म०, पृ० ४२।

छिकुला—संज्ञा पुं० [हिं० छिलका] छिलका। उ०—प्रेम विकल, अति आनँद उर धरि कदली छिकुला खाए।—सूर०, १।१३।

छिक्कर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग। छिकरा।

छिक्कनी संज्ञा स्त्री० [सं०] नकछिकनी बूटी। वि० दे० 'छिकनी'।

छिक्का[1]—संज्ञा पुं० [सं०] छींक (को०)।

छिक्का[2]—संज्ञा पुं० [हिं छींका] दे० 'छींका'। उ०—छिक्के पर छोटी सी हँडिया टँग रही थी, कोने में।—नई०, पृ० १२६।

छिक्कार—संज्ञा पुं० [सं०] छिक्कर नामक मृग।

छिक्काका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिकनी। नकछिकनी।

छिगुनना‡—क्रि० अ० [देश०] मसोसना। खिन्न होना। उ०—शेखर की याद सताती है वह छिगुन छिगुन रह जाती है।—रेणुका, पृ० ५७।

छिगुनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिगुनी] दे० 'छिगुनी'।

छिगुनी - संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्र अङ्गुली] सबसे छोटी उँगली। कनिष्ठिका। उ—(क) गोरी छिगुनी नख अरुन छला श्याम छबि देइ। लहत मुकति रति छिनेक यह नैन त्रिवेनी सेइ।—बिहारी (शब्द०)। (ख) आपे आप भली करो मेट न मान मरोर। करो दूर यह देखिहै छाल छिगुनियाँ छोर।—बिहारी (शब्द०)।

छिगुली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छिगुनी'।

छिचोरा†—वि० [हिं० छिछला] दे० 'छिछोरा'। उ०—जिन छिचोरों की तरफ कोई स्त्री प्रीति से नहीं देखती वो अपने संगतियों में बैठकर झूठी बातें बनाने में अपनी बड़ाई समझते हैं।—श्रीनिवास ग्रं० ६४।

छिच्छ (पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बूँद। छींटा। सीकर। उ०—(क) राम शर लागि मनु आगि गिरि पर जरी उछलि छिच्छनि शरनि भानु छाए।—सूर (शब्द०)। (ख) कहुँ श्रोन छिच्छ अति लाल लाल। मनु इंदुवधू करि रहिय जाल।—सूदन (शब्द०)।

छिछकारना†—क्रि० स० [अनु०] छिड़कना।

छिछड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुच्छ, प्रा० छुच्छ] दे० 'छीछड़ा'।

छिछड़ो—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिछड़ा] लिंगेंद्रिय के ऊपर का वह अगला आवरण जो बाहर की ओर कुछ बढ़ा हुआ होता है और जो मुसलमानों में खतने या मुसलमानी के समय काट दिया जाता है।

छिछियाना†—क्रि० स० [अनु० छि छि] कुत्सा करना। निंदा करना। घिन करना।

छिछलना—क्रि० अ० [हिं० छिछला] फिसलना। छटकना। छूते हुए निकल जाना। उ०—आजाद ने एक अनी लगाई, छिछलती हुई चोट पड़ी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३६।

छिछला—वि० [हिं० छूछा+ला (प्रत्य०) अथवा देश०] वि० स्त्री० छिछली] (पानी की सतह) जो गहरी न हो। उथला। जैसे,—छिछला पानी, छिछला घाट, छिछली नदी। २. निम्न स्तर का। अगंभीर। क्षुद्र। छिछोरा। जैसे,—वह छिछले स्वभाव का आदमी है।

छिछिला—वि० [हिं०] दे० 'छिछला'।

छिछिलाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिछिला] छिछला होने का भाव।

छिछिली[1]—वि० स्त्री० [हिं० छिछिला] दे० 'छिछला'।

छिछली[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] लड़कों का एक खेल जिसमें वे एक पतले ठीकरे को पानी पर इस तरह फेंकते हैं कि वह दूर तक उछलता हुआ चला जाता है।

क्रि० प्र०—खेलना।

छिछोर†—वि० [हिं० छिछोरा] दे० 'छिछोर'। जैसे, चोरछिछोर।

छिछोरपन—संज्ञा पुं० [हिं० छिछोरा+पन] छिछोरा होने का भाव। क्षुद्रता। ओछापन। नीचता।

छिछोरा—वि० [हिं० छिछला] [वि० स्त्री० छिछोरी] क्षुद्र। ओछा। जो गंभीर या सौम्य न हो। नीच प्रकृति का।

छिछोरापन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छिछोरपन'।

छिज-ना†—क्रि० अ० [सं० विकरणविशिष्ट रूप क्षिय] दे० 'छीजना'।

छिजाना—क्रि० स० [हिं० छीजना] किसी वस्तु को ऐसा करना कि वह छीज जाय। छीजने या नष्ट होने देना।

छिटकना—क्रि० अ० [सं० क्षिप्त, प्रा० खित्त, या सं० छित्त+करण] १ इधर उधर पड़कर फैलना। चारों ओर बिखरना। छितराना। बगरना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. प्रकाश की किरणों का चारों ओर फैलना। प्रकाश का व्याप्त होना। उजाला छाना। जैसे, चाँदनी छिटकना, तारे छिटकना। उ०—(क) जहँ जहँ बिहँसि सभा‍हिं महँ हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।—जायसी (शब्द०)। (ख) नखत सुमन नभ विटप बौंड़ि मनो छपा छिटकि छबि छाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७७। ३. छटकना। दूर भागना। अलग हो जाना। उ०—अब मत छिटको दूर, प्राणघन; देखो, होता है घन गर्जन।—क्वासि, पृ० १८।

छिटकनी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] अर्गल। चटकनी। सिटकिनी।

छिटका‡—संज्ञा पुं० [हिं० छिटकना] पालकी के ओहार का वह भाग जो दरवाजे के सामने रहता है और जिसे उठाकर लोग पालकी में घुसते, निकलते या उसमें से बाहर देखते हैं। परदा।

छिटकाना—क्रि० स० [हिं० छिटकना] चारों ओर फैलाना। इधर उधर डालना। बिखराना। २. छटकाना। दूर करना।

छिटकी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'छींट', 'छींटा'।

छिटकुनी†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पतली छड़ी। कमची।

छिटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० शिक्य या हिं० छेंटना] बाँस की फट्टियों या पेड़ के डंठलों आदि की बनी हुई छोटी टोकरी। झौवा। डलिया।

छिटवा—संज्ञा पुं० [सं० शिक्य या हिं० छिटनी] [स्त्री० अल्पा० छिटनी] बाँस की फट्टियों आदि का टोकरा।

छिटाका—संज्ञा पुं० [हिं० छिटकाना] एक बालिश्त लंबी मोटी लकड़ी जिसे धुनिए पैर के अँगूठे और उसके पास की उँगली से दबाकर और उसमें फटके की ताँत फँसाकर रूई धुनते हैं।

छिट्टीं संज्ञा स्त्री० [हिं० छींटा] छोटा छींटा। सीकर। सूक्ष्म जलकरण।

छिड़कना—क्रि० स० [हिं० छींटा+करना] १. पानी या किसी और द्रव पदार्थ को इस प्रकार फेंकना कि उसके महीन छींटे फैलकर इधर उधर पड़ें। पानी आदि के छींटे डालना। भिगोने या तर करने के लिये किसी वस्तु पर जल बिखराना। जैसे, पानी छिड़कना, रंग छिड़कना, गुलाबजल छिड़कना। उ०—पानी छिड़क दो तो यहाँ की धूल बैठ जाय।—(शब्द०)। २. न्योछावर करना। जैसे, जान छिड़कना (स्त्री)। ३. भुरकना। भुरभुराना।

छिड़कवाना—क्रि० स० [हिं० छिड़कना] छिड़कने का काम कराना।

छिड़काई संज्ञा स्त्री० [हिं० छिड़कना] १. छिड़कने की क्रिया या भाव। छिड़काव। २. छिड़कने की मजदूरी।

छिड़काना—क्रि० स० [हिं० छिड़कना का प्रे० रूप] दे० 'छिड़कवाना'।

छिड़काव—संज्ञा पुं० [हिं० छिड़कना] पानी आदि छिड़कने की क्रिया। छींटों से तर करने का काम। जैसे,—यहाँ सड़कों पर छिड़काव नहीं होता। उ०—सड़क सफाई होत करि छिड़काव। बग्गी बैठि हवा खाते आवैं उमराव।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६८९।

छिड़ना—क्रि० अ० [हिं० छेड़ना] आरंभ होना। शुरू होना। चल पड़ना। जैसे, बात छिड़ना, झगड़ा छिड़ना, चर्चा छिड़ना, सितार छिड़ना।

छिड़ाना—क्रि० स० [सं० √छिद्] १. मुक्त करना। छुड़ाना। छुड़ा देना। उ०-दृढ़ बंधन संसार तें गुह्यक दिए छिड़ाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५४। २. छुड़ा लेना। छीन लेना। उ०—देखि सखी हरि को मुख चारु। मनहु छिड़ाइ लियो नंदनंदन, वा ससि को सत सारु।—सूर०, १०। १७६६।

छिड़िआना(पु)—क्रि० अ० [देश०] छितरा जाना। बिखरना। विकीर्ण होना। उ०—करतल काँपु कुसुम छिड़िआउ। विपुल पुलक तनु बसन झँपाउ।—विद्यापति, पृ० ५१३।

छिण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] दे० 'क्षण'।

छित¹—वि० [सं०] १. विभक्त। २. कृश। दुर्बल (को०)।

छित(पु)²—वि० [सं० सित] श्वेत। धवल।

छित³—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति] पृथ्वी। धरती। उ०—मध्यम हित आरात छित, बाल नारि इमि जानि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३४।

यौ०—छितनायक=राजा। उ०—छाडा धरतीडौ छितनायक। सबलां धायक प्रजा सहायक।—रा० रू०, पृ० १३।

छितना—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० छितनी] छिछला और बड़ा टोकरा।

छितनार†—वि० [हिं० छतनार] छितराया हुआ। फैला हुआ। उ०—चिव्या चारि डाहँ छितनारा। सुर नर मुनि महि खोजनहारा।—सं० दरिया, पृ० ६६।

छितनी—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र, प्रा० छत] छोटी और छिछली टोकरी।

छितरना—क्रि० अ० [हिं०] दे० छितराना'।

छितरबितर—वि० [हिं०] दे० 'तितरबितर'।

छितराना¹—क्रि० अ० [सं० क्षिप्त+करण, प्रा० छित्तकरण, छित्तरण अथवा सं० संस्तरण] खंडों या कणों का गिरकर इधर उधर फैलना। बहुत सी वस्तुओं का बिना किसी क्रम के इधर उधर पड़ना। तितर बितर होना। बिखरना। जैसे,—(क) हाथ से गिरकर सब चने जमीन पर छितरा गए (ख) सब चीजें इधर उधर छितराई पड़ी हैं, उठाकर ठिकाने से रख दो।

छितराना²—क्रि० स० १. खंडों या कणों को गिराकर इधर उधर फैलाना। बहुत सी वस्तुओं को बिना किसी क्रम के इधर उधर डालना। बिखराना। छींटना। २. सटी हुई वस्तुओं को अलग अलग करना। दूर दूर करना। घनी वस्तुओं को विरल करना।

मुहा०—टाँग छितराना=दोनों टाँगों को बगल की ओर दूर दूर रखना। टाँगों को बगल या पार्श्व की ओर फैलाना। जैसे, टाँग छितराकर चलना।

छितराव—संज्ञा पुं० [हिं० छितराना] छितराने का भाव। बिखरने का भाव।

छिति(पु) संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति] १. भूमि। पृथ्वी। उ०—सुंदरि मनि मंदिर खरी छिति छलकत छवि जाल। लसत मंजु महँदी नखनि चखनि विलोकहु लाल।—स० सप्तक, पृ० ३६०। २. एक का अंक। उ०—संवत् ग्रहु ससि जलधि छिति छठ तिथि बासर चंद। चैत मास पछ कृष्ण में पूरन आनंदकंद।—बिहारी (शब्द०)।

छितिकांत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिकान्त] भूपति। राजा।

छितिज—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिज] दे० 'क्षितिज'। उ०—छिप्यो छपाकर छितिज छीरनिधि छगुन छंद छल छीन्हो।—श्यामा०, पृ० १२०।

छितिनाथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिनाथ] भूपति। राजा।

छितिपाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिपाल] दे० 'छितिनाथ'। उ०—छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४५।

छितिराना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'छितराना'। उ०—मानुष मरि धरती मों जाई। माटी होय हाड़ छितिराई।—इंद्रा०, पृ० १६१।

छितिरुह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिरुह] पेड़। वृक्ष।

छितीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षितीश] राजा।

छित्ति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] काटना। छेदन करना। विभाजित करना। खंड खंड करना [को०]।

छित्ति(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति, प्रा० छित्ति] दे० 'क्षिति'। उ०—तेग भारि पंमार जैत जग हथ्थ वत्त किय। मंगि हैल सुगल्ह तात अविवेक छित्ति दिय।—पृ० रा०, १२। ३८।

छित्वर—वि० [सं०] १. छेदक। २. धूर्त। ३. वैरी।

छिद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० छिद्र] दे० 'छेद'। उ०—पंच सरन छिद डारि किए मनमथ को वेझा।—नंद० ग्रं०, पृ० २१०।

छिदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र का आयुध। वज्र। २. हीरा। [को०]।

छिदना¹—क्रि० अ० [हिं० छेदना] १. छेद से युक्त होना। सूराखदार होना। भिदना। बिधना। जैसे,—इस पतली सुई से यह कागज नहीं छिदेगा। २. क्षतपूर्ण होना। घायल होना। जख्मी होना। जैसे,—सारा शरीर तीरों से छिद गया था।

छिदना²—क्रि० स० १. थाम लेना। सहारे के लिये पकड़ लेना। २. छेदना। छेद करना। उ०—लटनि तें चुवति जु जलकन जोती। जनु ससि छिदि छिदि डारत मोती।—नंद० ग्रं०, पृ० २६८।

छिदना³†—संज्ञा पुं० [सं० छन्द(=नियंत्रण)] वरच्छा। फलदान। मँगनी।

छिदरा¹—वि० [सं० छिद्र] [वि० स्त्री० छिदरी] १. छितराया हुआ। जो घना न हो। विरल। उ०—इस तेरी छिदरी छाया में दो बँधे हुए मन देखे हैं।—दीप ज०, पृ० १४६। २. झँझरीदार। छेददार। ३. फटा हुआ। जर्जर।

छिदरा²—वि० [सं० क्षुद्र] ओछा।

छिदवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'छेदाना'।

छिदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छेदने या काटने की क्रिया [को०]।

छिदाना²—क्रि० स० [हिं०] दे० 'छेदाना'।

छिदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुल्हाड़ी। २. वज्र। ३. उच्छेदन। काटना [को०]।

छिदिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुल्हाड़ा। कुठार। २. तलवार। असि। ३. अनल। अग्नि। पावक। ४. रस्सा। डोरी [को०]।

छिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छिद्रित] १. छेद। सूराख। २. गड्ढा। विवर। बिल। ३. अवकाश। जगह। ४. दोष। त्रुटि। जैसे, छिद्रान्वेषण।

यौ०—छल छिद्र। छिद्रानुजीवी, छिद्रानुसंधानी, छिद्रानुसारी = दे० 'छिद्रान्वेषी'।

५. फलित ज्योतिष के अनुसार लग्न से आठवाँ घर। ६. नौ की संख्या। राजनीति में शत्रु का भेद्य या दुर्बल पक्ष। कमी। कमजोरी (को०)। ८. आकाश (को०)।

छिद्रकर्ण—वि० [सं०] छिदे या बिंधे कानवाला। जिसके कान छिदे हों [को०]।

छिद्रता—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिद्र+ता प्रत्य०] कलंक। दोष। हीनता। उ०—समुँद खार गंगा गदल, जल गुनवंता सीत। रवी तेज ससि छिद्रता, दरिया संता रीत।—दरिया० बानी, पृ० ३६।

छिद्रदर्शी¹—वि० [सं० छिद्रदर्शिन्] [वि० स्त्री० छिद्रदर्शिनी] पराया दोष देखनेवाला। नुक्स निकालनेवाला। खुचर निकालनेवाला।

छिद्रदर्शी²—संज्ञा पुं० एक योगभ्रष्ट ब्राह्मण का नाम जो हरिवंश के अनुसार बाभ्रव्य का पुत्र था।

छिद्रपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'छिद्रवैदेही' [को०]।

छिद्रवैदेही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली। गजपीपल।

छिद्रांतर—संज्ञा पुं० [सं० छिद्र+अन्तर] बेंत। सरकंडा। नरकुल [को०]।

छिद्रांश—संज्ञा पुं० [सं०] सरकंडा। नरकुल [को०]।

छिद्रात्मा—वि० [सं० छिद्रात्मन्] १. खलस्वभाव। कुटिल। खल। २ अपनी त्रुटि कहनेवाला। दूसरों से अपना दोष व्यक्त करनेवाला (को०)।

छिद्रान्वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छिद्रान्वेषी] दोष ढूँढना। नुक्स निकालना। खुचर करना। उ०—इस छिद्रान्वेषण रत जग में सभी छिद्र लखते हैं, प्रियतम।—अपलक, पृ० ६६।

छिद्रान्वेषी—वि० [सं० छिद्रान्वेषिन्] [वि० स्त्री० छिद्रान्वेषिणी] छिद्र ढूँढ़नेवाला। पराया दोष ढूँढनेवाला। खुचर निकालनेवाला।

छिद्राफल—संज्ञा पुं० [सं०] माजूफल।

छिद्रित—वि० [सं०] १. छेदा हुआ। वेधा हुआ। २. जिसमें दोष लगा हो। दूषित। ऐबी।

छिद्रोदर—संज्ञा पुं० [सं०] क्षतोदर नामक पेट का रोग।

छिन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] दे० 'क्षण'। उ० सखि, छिन धूप और छिन छाया। यह सब चौमासे की माया।—साकेत, पृ० २७६।

छिनक(पु)—क्रि० वि० [सं० क्षण+एक] एक क्षण। दम भर। थोड़ी देर। उ०—तृन समूह को छिनक में जारत तनिक अँगार।—(शब्द०)।

छिनकना¹—क्रि० स० [हिं० छिड़कना] नाम का मल जोर से साँस बाहर करके निकालना। जैसे,—नाम छिनकना।

छिनकना²—क्रि० अ० [हिं० चमकना] १. भड़ककर भागना। चमकना। दे० 'छनकना'। २. रंजक चाट जाना (बंदूक)।

छिनछवि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षण+छवि] बिजली।

छिनता(पु)--संज्ञा पुं० [सं० क्षीण+ता (प्रत्य०)] क्षीणता। दुर्बलता। कमजोरी। उ०--छिनता तन में बहुतै लावै। कबहीं सुख नाहीं दुख पावै।--सं० दरिया, पृ० ४१।

छिनदा(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणदा] दे० 'क्षणदा'।

छिनना१--क्रि० अ० [हिं० छीनना] छीन लिया जाना। हरण होना।

संयो० क्रि०--जाना।

छिनना२--क्रि० स० [सं० छिन्न या हिं० छेनी] १. पत्थर का छेनी या टाँकी के आघात से कटना। २. सिल, चक्की आदि का छेनी के आघात से खुरदरी या गड्ढेदार होना। कुटना।

छिनभंग(पु)--वि० [सं० क्षणभङ्ग] नश्वर। क्षणभंगुर। उ०--तप तीरथ तरुनी रमन विद्या बहुत प्रसंग। कहाँ कहाँ मुनि रुचि करैं पायौ तन छिनभंग।--ब्रज० ग्रं०, पृ० ११४।

छिनभिन्न(पु)--वि० [सं० छिन्नभिन्न] दे० 'छिन्न भिन्न'। उ०--तिन अग्ग परिग पहुँमान वीर। छिनभिन्न होय धारा सरीर।--पृ० रा०, १।६६४।

छिनरा--वि० पुं० [देशी छिएणाल, हिं० छिनार] [वि० स्त्री० छिनरी, छिनार, छिनाल] परस्त्रीगामी (पुरुष)। लंपट। वृषल।

छिनवाना१--क्रि० स० [हिं० 'छीनना] का प्रे० रूप] छीनने का काम कराना।

छिनवाना२--क्रि० स० [सं० छिन्न] १. पत्थर की छेनी से कटवाना। २. सिल, चक्की आदि को छेनी से खुरदरी कराना। कुटाना।

छिनहरा(पु)--[सं० छिन्नगृह, प्रा० छिनहर; या सं० छिद्र+हिं०+हर (प्रत्य०)] छिन्न भिन्न। टूटा फूटा। जीर्ण शीर्ण। उ०--छिनहर घर अरु झिरहर टाटी। घन गरजत कंपै मेरा छाती।--कबीर ग्रं०, पृ० १८१।

छिनाना१--क्रि० स० [हिं० छीनना का प्रे० रूप] छीनने का काम कराना।

छिनाना२†--क्रि० स० छीनना। हरण करना। उ०--कामधेनु जमदग्नि की लै गयो नृपति छिनाय। सूर (शब्द०)।

छिनाना३--क्रि० स० [सं० छिन्न] १. टाँकी या छेनी से पत्थर आदि कटाना। २. टाँकी या छेनी से सिल, चक्की आदि को खुरदुरी कराना।

छिनार--वि० स्त्री० [हिं० छिनाल] दे० 'छिनाल'।

छिनाल१--वि० स्त्री० [सं० छिन्ना+नारी; देशी छिएणालिआ, छिएणाली पू० हिं० छिनारि] व्यभिचारिणी। कुलटा। परपुरुषगामिनी। उ०--अरे यह छिनाल बड़ी छतीसी है।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३१।

छिनाल२--संज्ञा स्त्री० व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा स्त्री।

छिनालपन, छिनालपना--संज्ञा पुं० [हिं० छिनाल+पन] व्यभिचार। छिनाला।

छिनाला--संज्ञा पुं० [हिं० छिनाल] स्त्री पुरुष का अनुचित सहवास। व्यभिचार।

छिनु(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० छिन] दे० 'छन'। उ०--छिनु छिनु बाढ़ै छवि कैसे कहै कोउ कवि तन के छिलर मानों भए हैं काम रहित।--नंद० ग्रं०, पृ० ३७७।

छिनौछवि(पु)†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छिनछवि'।

छिन्न१--वि० [सं०] १. जो कटकर अलग हो गया हो। जो काटकर पृथक् कर दिया गया हो। खंडित।

यौ०--छिन्नकर्ण=कनकटा (पशु)। छिन्नकेश=जिसके वाल काटे गए हों। मुंडित। छिन्नद्रुम=कटा हुआ वृक्ष। छिन्ननासछिन्ननासिक=नासिकाविहीन। नकटा। छिन्नभिन्न। छिन्नमस्त, छिन्नमस्तक=जिसका सिर कट गया हो। कटे सिरवाला।

२. थका हुआ। क्लांत (को०)। ३. दूर किया हुआ। नष्टभ्रष्ट (को०)। ४. ह्रासोन्मुख। क्षीण (को०)।

छिन्न२--संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का मंत्र। १. वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का फोड़ा।

विशेष--इसका क्षत सीधी या टेढ़ी लकीर के रूप में होता है और इसमें मनुष्य का अंग गलने लगता है।

छिन्नक--वि० [सं०] अंशतः कटा। जिसका कुछ अंश कटा हो (को०)।

छिन्नग्रंथिका--संज्ञा स्त्री० [सं० छिन्नग्रन्थिका] एक प्रकार का कंद। त्रिपर्णिका (को०)।

छिन्नद्वैध--वि० [सं०] जिसकी द्विविधा मिट गई हो। जिसे असमंजस न हो (को०)।

छिन्नधान्य (सैन्य)--संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसके पास धान्य न पहुँच सकता हो।

विशेष--कौटिल्य ने लिखा है कि छिन्नधान्य तथा छिन्नपुरुषवीवध (जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो) सैन्य में छिन्नधान्य उत्तम है; क्योंकि वह दूसरे स्थान से धान्य लाकर या स्थावर तथा जंगम (तरकारी तथा मांस) आहार कर लड़ाई लड़ सकता है। सहायता न मिलने के कारण छिन्नपुरुषवीवध यह नहीं कर सकता।

छिन्ननास्य--वि० [सं०] (पशु) जिसकी नाथ टूट गई हो (को०)।

छिन्नपक्ष--वि० [सं०] (पक्षी) जिसके डैने टूट या कट गए हों।

छिन्नपत्री--संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा। पाढ़ा।

छिन्नपुरुषवीवध (सैन्य)--संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह सेना जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो।

छिन्नपुष्प--संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष।

छिन्नबंधन--वि० [सं० छिन्नबन्ध] जिसके बंधन कट गए हों। बंधनमुक्त (को०)।

छिन्नभक्त--वि० [सं०] १. जिसके भोजन में बाधा आ पड़े। २. भूखों मरनेवाला। जिसे खाने का ठिकाना न हो (को०)।

छिन्नभिन्न--वि० [सं०] १. कटाकुटा। खंडित। टूटा फूटा। नष्टभ्रष्ट। २. जिसका क्रम खंडित हो गया हो। अस्तव्यस्त। तितर बितर। उ०--संकेत किया मैंने अखिन्न जिस ओर कुंडली छिन्न भिन्न।--अनामिका, पृ० १२५।

छिन्नमस्तका--वि०, संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'छिन्नमस्ता'।

छिन्नमस्ता¹—वि० [सं०] जिसका माथा कटा हो।

छिन्नमस्ता²—संज्ञा स्त्री० एक देवी जो महाविद्याओं में छठी हैं।

विशेष—इनका ध्यान इस प्रकार है—अपना ही कटा हुआ सिर अपने बाएँ हाथ में लिए, मुँह खोले और जीभ निकाले हुए अपने ही गले से निकली हुई रक्तधारा को चाटती हुई, हाथ में खड्ग लिए, मुंडों की माला धारण किए और दिगंबरा। इनका नाम प्रचंड चंडिका और प्रचंडिका भी है। तंत्रसार में इनका पूरा विवरण लिखा है।

छिन्नमूल—वि० [सं०] मूलोच्छेद किया हुआ। जड़ से काटा हुआ। [को०]।

छिन्नरुह—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष। पुन्नाग।

छिन्नरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच। गिलोय।

छिन्नवेशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

छिन्नव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी शस्त्र से कटा हुआ घाव। २. वह फोड़ा जो किसी ऐसे घाव पर हो जो शस्त्र से लगा हो।

छिन्नश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जो श्वास का भेद माना जाता है।

विशेष—इस रोग में रोगी का पेट फूलता है, पसीना आता है और साँस रुकता है तथा शरीर का रंग बदल जाता है।

छिन्नसंशय—वि० [सं०] जिसका संदेह दूर हो गया हो। संशयरहित [को०]।

छिन्नांत्र—संज्ञा पुं० [सं० छिन्नान्त्र] कोष्ठभेद नामक एक उदररोग [को०]।

छिन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुडुच। गिलोय। २. पुंश्चली। छिनाल। कुलटा।

छिन्नोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच। गिलोय [को०]।

छिपकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपकना या देश०] १. पेट जमीन पर रखकर पंजों के बल चलनेवाला एक सरीसृप या जंतु।

विशेष—यह एक बित्ते के लगभग लंबा होता है और मकान की दीवार आदि पर प्रायः दिखाई पड़ता है। यह जंतु गोधा या गोह की जाति का है और छोटे छोटे कीड़े पकड़कर खाता है। छिपकली चिकनी से चिकनी खड़ी सतह पर सुगमता से दौड़ सकती है।

पर्या०—पलभी। मुपली। गृहगोधा। विशंबरी। ज्येष्ठा। कुडचमत्स्य। गृहगोलिका। माणिक्या। भित्तिका। गृहोलिका।

२. दुबली पतली स्त्री। कृश शरीर की औरत।

विशेष—प्रायः दुबली पतली स्त्री को भी लोग विनोदवश छिपकली कह देते हैं।

३. कान का एक गहना।

छिपका Ⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं० छिपकली] गृहगोधा। बिसतुइया। छिपकली। उ०—माछर पखारी काँठे छाँड़ि दे हमारो धाम नीर रु बिलाव छिपकाहू अपनायो है।—राम धर्म०, पृ० ६६।

छिपना—क्रि० अ० [सं० क्षिप+डालना] १. आवरण या ओट में होना। ऐसी स्थिति में होना जहाँ से दिखाई न पड़े। जैसे,—(क) वह लड़का हमें देखकर छिपने का यत्न करता है। (ख) यहाँ न जाने कितने अथरत्न छिपे पड़े हैं। २. आवरण या ओट में होने के कारण दिखाई न देना। अदृश्य होना। देखने में न आना। जैसे, सूर्य का छिपना। ३. जो प्रकट न हो। जो स्पष्ट न हो। गुप्त। जैसे,—इसमें उनका कुछ छिपा हुआ मतलब तो नहीं है।

छिपली†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली] दे० छोटी थाली। रकाबी। उ०—चाची ने फूल की उसी चमचमाती छिपली में खाना परोस रखा था।—रति०, पृ० ५७।

छिपाछिपी—क्रि० वि० [हिं० छिपना] चुपके से। छिपाकर। गुप्त रीति से। चुपचाप। गुपचुप।

छिपाधिप Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० क्षपाधिप] रात्रि का स्वामी। चंद्रमा। निशापति। उ०—रत नकिय पाइ कमल्ल भ्रुअं : छिति मित्त छिपाधिप चित्त ध्रुअं।—पृ० रा०, १८। १०१।

छिपाना—क्रि० स० [सं० क्षिप+डालना] [संज्ञा छिपाव] १. आवरण या ओट में करना। ऐसी स्थिति में करना जिसमें किसी को दिखाई न पड़े या पता न चले। ढाँकना। आड़ में करना। दृष्टि से ओझल करना। गोपन करना। २. प्रकट न करना। सूचित न करना। गुप्त रखना। जैसे, बात छिपाना, दोष छिपाना।

छिपारुस्तम—संज्ञा पुं० [हिं० छिपना+फ़ा० रुस्तम] १. वह व्यक्ति जो अपने गुण में पूर्ण हो, परंतु प्रख्यात न हो। उ०—अरी, तू तो छिपी रुस्तम है। आज तक हमको अपना गाना नहीं सुनाया था।—सैर०, पृ० २६। २. ऐसा दुष्ट जिसकी दुष्टता लोगों पर प्रकट न हो। गुप्त गुंडा। उ०—क्यों मियाँ, यह कहिए छिपे रुस्तम निकले मियाँ खलील।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६६।

छिपाव—संज्ञा सं० [हिं० छिपना] किसी बात या भेद को छिपाने का भाव। बातों को एक दूसरे से गुप्त रखने का भाव। परस्पर के व्यवहार में हृदय के भावों का गोपन। दुराव।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

छिपावना Ⓤ—क्रि० स० [हिं० छिपाया] गोपन करना। गुप्त रखना। छिपाना। उ०—तो सों न छिपावति हौं, एरी भटू, अपराध इतनो कीन्हो मैं जो कही हँसि के।—रघुराज (शब्द०)।

छिपी Ⓤ—संज्ञा पुं० [देश०] १. छींट छापनेवाला। छीपी। †२. दर्जी। सीवक।

छिपे छिपे—क्रि० वि० [हिं० छिपाना] अप्रकट रूप से। गुप्त रूप से।

छिप्र¹ Ⓤ—क्रि० वि० [सं० क्षिप्र] दे० 'क्षिप्र'। उ०—सत्त सेर नृप लोह मगायव। लोहकार दह छिप्र बुलायव।—प० रासो, पृ० ३।

छिप्र²—संज्ञा पुं० [सं० क्षिप्र] एक मर्म स्थान जो पैर के अँगूठे और उसके पास की उँगलियों के बीच में होता है।

छिबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'छबड़ा'।

छिबड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० शिविरथ] खटोली के आकार की एक डोली जिसपर रेतीले मैदानों में यात्रा करते हैं।

छवड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिवड़ा] १. छोटा टोकरा । २. खाँचा ।

छिवना[1]—क्रि० अ० [सं० स्पर्शन, प्रा० छिवण, हिं० छूना] लगना । स्पर्श करना । छूना । उ०—(क) श्रै भाटी छिवता असमांणी । किलवाँ सु जूटा केवांणी ।—रा रू०, पृ० २७७ । (ख) इंद्र-भांण मुकनेस री, अह केवांण तरस्स । आसमांन छिव आखियो, भाई भांण सरस्स ।—रा० रू०, पृ० ७५ ।

छिमा(पु) संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा] दे० 'क्षमा' । उ०—छिमा करवाल है विसाल धीर कर बीच, दरनै दयाल कोप नीच कों नसायो है ।—दीन० ग्रं०, पृ० १३४ ।

छिमाछिम(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा से हिं० छिमा की द्विरुक्ति] क्षमा का आदर । क्षमा करने का अदब या आभार । तात्कालिक शांति । उ०— छिन एक छिमाछिम रष्षकें । चावद्दिसि नृप विटयो ।—पृ० रा०, । १० । १७ ।

छिय छिय—अव्य० [अनु०] घृणासूचक उक्ति । तिरस्कार का शब्द । दे० 'छि' । उ०—क्षीर सिंधु तेजि कूपे बिलास । छिय छिय तोहार रभसमय भास ।—विद्यापति, पृ० ५८७ ।

छियना(पु)†—क्रि० स० [सं० स्पर्श] दे० 'छूना' ।

छिया[1]-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप्त, प्रा० छिव, हिं० छि: छि:] १. वह जिसे देखकर लोग छी छी करें । घृणित वस्तु । घिनौनी चीज । २. मल । गलीज । मैला । उ०—हौं समुझत, सांईं द्रोह की गति छार छिया रे - तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—छिया छरद करना=छी छी करना । मल और वमन के समान घृणित समझना । घिनाना । उ०—जो छिया छरद करि सकल संतन तजी तासु मतिमूढ़ रस प्रीति ठानी ।—सूर (शब्द०) । छिया छार होना=घिनौना होना । घृणित एवं मैला होना । घृणित और नष्ट होना । उ०—सो तन छिया छार होय जैहै, नाम न लेहैं कोई ।—कबीर श०, पृ० ४३ ।

छिया[2]—वि० मैला । मलिन । घृणित ।

छिया[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बछिया] छोकरी । लड़की । उ०—कौन की छाँह छिपैगी छिया छहिया तजि नाह की माह निसा में —सुंदर सर्व० (शब्द०) ।

छियाछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना+छिपाना] छूने और छिपने का खेल । आँख मिचौनी । उ०—चलो छिया छी हो अंतर में ! तुम चदा मैं रात सुहागन । चमक चमक उट्टें आँगन में । चलो छिया छी हो अंतर में ।—हिम०, पृ० ११ ।

छियाज—संज्ञा पुं० [सं० क्षण+व्याज] कटुआ व्याज ।

छियानबे† वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छानवे' ।

छियालिस—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० छियालीस] दे० 'छियालीस' ।

छियालीस[1]—वि०[सं० षट्चत्वारिंश, हिं०छह+चालीस] जो संख्या में चालीस और छह हो ।

छियालीस[2]—संज्ञा पुं० १. छह और चालीस की संख्या । २. उक्त संख्या का द्योतक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४६ ।

छिआसी[1]—वि० [सं० षडशीति, प्रा० छासीति, प्रा० छासी] छह और अस्सी । जो गिनती में अस्सी से छह अधिक हो ।

छियासी[2]— संज्ञा पुं० १. छह और अस्सी की संख्या । २. उक्त संख्या का द्योतक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८६ ।

छिरकना—क्रि० स० [हिं० छिड़कना] दे० 'छिड़कना' । उ०—एकादशी एक सखि आई डारयो सुभग अबीर । एक हाथ पीतांबर पकरयो छिरकत कुंकुम नीर ।—सूर (शब्द०) ।

छिरकाना—क्रि० स० [हिं० छिड़काना] दे० 'छिड़काना' ।

छिरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० छिलना] दे० 'छिलना' । उ०—मकरि क तार तेहि कर चीरू । सो पहिरे छिरि जाइ सरीरू ।—जायसी (शब्द०) ।

छिरहटा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छिरेटा' ।

छिरहा‡—वि० [हिं० छेड़ना] हठी । जिद्दी ।

छिरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० छिरहिंड] [स्त्री० अल्पा० छिरेटी] एक छोटी बेल जो मैदानों, नदी के करारों आदि पर होती है ।

विशेष इसकी पत्तियों का कटाव सींके की ओर कुछ पान सा होता है, पर थोड़ी ही दूर चलकर पत्तियों की चौड़ाई एकबारगी कम हो जाती है और वे दूर तक लंबी बढ़ती जाती है । यह चौड़ाई सिरे पर भी उतनी ही बनी रहती है । इन पत्तियों की लंबाई ढाई तीन अंगुल से अधिक नहीं होती और इनका रस निचोड़कर जल, दूध आदि में डालने से जल या दूध गाढ़ा होकर जम जाता है । इस बेल में बहुत छोटे छोटे फल गुच्छों में लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं । वैद्यक में छिरेटा मधुर, वीर्यवर्धक, रुचिकारक तथा पित्त, दाह और विष को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—छिरहिंड । पातालगरुड़ । महामूल । वत्सादिनी । विक्तांगा । मोचकाभिद्या । दार्क्षी । सौपर्णी । गारुडी । दीर्घकांडा । महाबला । दीर्घवल्ली । दृढ़लता ।

छिलकना(पु)—क्रि० स० [हिं० छिड़कना] दे० 'छिड़कना' ।

छिलका—संज्ञा पुं० [सं० छल्क (=वल्कल, छाल), देशी छल्ली (=छाल)] फलों, कदों तथा इसी प्रकार की और वस्तुओं के ऊपर का कोश या बाहर आवरण जो छीलने, काटने या तोड़ने से सहज में अलग हो सकता है । फलों की त्वचा या ऊपरी झिल्ली । एक परत की खोल जो फलों, बीजों आदि के ऊपर होती है । जैसे, सेब का छिलका, कटहल का छिलका, गन्ने का छिलका, अंडे का छिलका ।

विशेष—छाल, छिलका और भूसी में अंतर है । छाल पेड़ों के धड़, डाल और टहनियों के ऊपरी आवरण को कहते हैं, जो काटने, छीलने आदि से जल्दी अलग हो जाता है । भूसी महीन दानों के सूखे हुए आवरण को कहते हैं जो कूटने से अलग होता है ।

छिलछिल—वि० [हिं०] दे० 'छिछिला' । उ०—जहँ नहिं नीर गंभीर तहाँ भल भँवरी परई । छिलछिल सलिल न परै परै तौ छवि नहिं करई ।—नंद० ग्रं०, पृ० १३ ।

छिलछिला(पु) वि० [देश] हिलता डुलता हुआ । जो जमा न हो । ढीला । उ०—औरन कों दह्यो छिलछिलो लागत मैंने तो औटाइ जमायो रुचि रुचि भरि कै तमी ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६१ ।

छिलना क्रि० अ० [हिं० छीलना] १. इस प्रकार कटना जिसमें ऊपरी सतह या आवरण निकल जाय। छिलके या चमड़े का कटकर अलग होना। उधड़ना। २. रगड़ या आघात से ऊपरी चमड़े का कुछ भाग कटकर अलग हो जाना। खरोंच जाना। जैसे,—पैर में जरा सा छिल गया है। ३. गले के भीतर चुनचुनाहट या खुजली सी होना। जैसे,— सूरन से सारा गला छिल गया।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

छिलर‡—वि० [हिं० छिछला या सं० क्षीण] कृश। दुर्बल। उ०—छिनु छिनु बाढ़ै छवि, कैसे कहैं कोउ कवि, तन के छिलर मानों भए हैं कामरहित।—नंद ग्रं०, पृ० ३५७।

छिलवा—संज्ञा पुं० [हिं० छीलना] वह मनुष्य जो ईख के खेतों में ईख काटकर उसकी पत्तियों को छीलकर दूर करता है।

छिलवाना—क्रि० स० [हिं० 'छिलना' का प्रे० रूप] छीलने के लिये प्रेरित करना। छीलने का काम कराना जैसे, घास छिलवाना।

छिलहिंड—संज्ञा पुं० [सं० छिलहिण्ड] छिरहटा। छिरेटा।

छिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छीलन] १. छीलने का काम। २. छीलने की मजदूरी।

छिलाना—क्रि० स० [हिं० छिलना] दे० 'छिलवाना'।

छिलाव—संज्ञा पुं० [हिं० छीलना] छीलने का भाव या क्रिया। छिलाई।

छिलावट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छिलाव'।

छिलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाला] छोटा छाला। आबला।

क्रि० प्र०—पड़ना।

छिल्लड़‡ संज्ञा पुं० [हिं० छिलका] छिलका। भूसी।

छिहत्तर¹—वि० [सं० षटसप्तति, प्रा० छसत्तत्ति, पा० छसत्तरि, छहत्तरि] जो गिनती में सत्तर से छह अधिक हो। छह और सत्तर।

छिहत्तर²—संज्ञा स्त्री० १. छह और सत्तर की संख्या। २. उक्त संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७६।

छिहरना—क्रि० अ० [हिं० छितरना] बिखरना। फैलना। छितराना। वि० दे० 'छहराना'।

छिहराना—क्रि० स० [हिं० छहराना] दे० 'छहराना'।

छिहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिहाना] १. छिहाने का काम। २. चिता। सरा। ३. मरघट।

छिहाना‡—क्रि० स० [सं० चयन] [संज्ञा छिहानी] किसी वस्तु को तले ऊपर रखकर राशि या ढेर लगाना। गाँजना। ढेर लगाना।

छिहानी संज्ञा पुं० [हिं० छिहाना] श्मशान। मशान। मरघट।

छिहारना—क्रि० स० [सं० क्षरण; क्षार] दे० छहराना'।

छींक—संज्ञा स्त्री० [सं० छिक्का] नाक और मुँह से वेग के साथ सहसा निकलनेवाला वायु का झोंका या स्फोट।

विशेष—यह स्फोट नाक की झिल्ली में चुनचुनाहट होने से, या आँख में तीक्ष्ण प्रकाश पड़ने के कारण तिलमिलाहट होने से होता है। इसमें कभी कभी नाक और मुँह से पानी या श्लेष्मा भी निकलता है। हिंदुओं में एक प्राचीन रीति है कि जब कोई छींकता है तब कहते हैं 'शतं जीव' या 'चिरं जीव'। यह प्रथा यूनानियों, रोमनों और यहूदियों में भी थी। अँगरेजों में भी जब कोई छींकता है. तब पुरानी परिपाटी के लोग कहते हैं कि 'ईश्वर कल्याण करे'। हिंदुओं में किसी कार्य के आरंभ में छींक होना अशुभ माना जाता है।

क्रि० प्र०—आना।—होना।—मारना।—लेना।

मुहा०—छींक होना=बुरा शकुन होना।

छींकना—क्रि० अ० [हिं० छींक] नाक और मुँह से वेग के साथ वायु निकालना जिससे शब्द होता है। उ०—जसुमति चली रसोई भीतर तबहिं ग्वालि इक छींकी।—सूर०, १०। ५४०।

मुहा०—छींकते नाक काटना=थोड़ी थोड़ी बात पर चिढ़ना या दंड देना। अत्याचार करना।

छींका—संज्ञा पुं० [हिं० छीका] दे० 'छीका'। उ०—कैसे कहति लियो छींकै तें ग्वाल कंध दै लात।—सूर०, १०। २६०।

छींट—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ की महीन बूँद। जलकण। सीकर। उ०—राधे छिरकति छींट छबीली। कुच कुंकुम कंचुकि बँद टूटे, लटकि रही लट गीली।—सूर (शब्द०)। २. पानी आदि की पड़ी हुई बूँद या कण का चिह्न जो किसी वस्तु पर पड़ जाय। ३. वह कपड़ा जिसपर रंग बिरंग के बेल बूटे रंगों से छापकर बनाए गए हों। उ० - संध्या घनमाला की सुंदर ओढ़े रंग बिरंगी छींट।—कामायनी, पृ० ३०।

विशेष—प्राचीन काल में कपड़े पर रंग बिरंग के छीटे डालकर छींट बनाते थे।

यौ०—मोमी छींट = एक प्रकार का छपा हुआ कपड़ा जो स्त्रियों के पहरावे के काम में आता है।

छींटना‡—क्रि० स० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त+हिं० ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु के कणों को इधर उधर गिराकर फैलाना। बिखराना। छितराना।

संयो० क्रि०—देना।

छींटा—संज्ञा पुं० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त, हिं० छींटना] १. पानी (या और किसी द्रव पदार्थ) की महीन बूँद जो पानी को उछालने या जोर से फेंकने से इधर उधर पड़े। जलकण। सीकर।

क्रि० प्र०—उड़ना।—पड़ना।

यौ०—छींटा गोला=तोप का गोला, जिसके भीतर बहुत सी छोटी छोटी गोलियाँ या कील काँटे आदि भरे होते हैं।

२. महीन महीन बूँदों की हलकी वृष्टि। झड़ी। जैसे,—मेंह का एक छींटा आया था। ३. किसी द्रव पदार्थ की पड़ी हुई बूँद का चिह्न। जैसे,—इन स्याही के छींटों को धोकर छुड़ा लो। ४. मदक या चंडू की एक मात्रा। दम। ५. व्यंगपूर्ण उक्ति

जो किसी को लक्ष्य करके कही गई हो। हलका आक्षेप। छिपा हुआ ताना।

क्रि० प्र०—कसना।—छोड़ना।—देना।

यौ०—छींटाकसी।

६. किसी चीज पर पड़ा हुआ कोई छोटा दाग। जैसे,—इस नग पर कुछ छींटे हैं।

छींटाकसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छींटा+कसना] आक्षेप करने की क्रिया। छिपा हुआ ताना देने की बान।

छींद†—संज्ञा पुं० [सं० छिद्र, हिं० छेद] छिद्र। छेद। सूराख। उ०—हुकुम तुम्हार जहाँन जहाँ ले काल कुबुद्धिहि कीन्हो छींद।—सं० दरिया पृ० ११८।

छींदा संज्ञा स्त्री० [सं० शिम्बी, हिं० छीमी] छीमी। फली।

छी'—अव्य० [सं० छिः] घृणासूचक शब्द। घिन प्रकट करने का शब्द। अनादर या अरुचिव्यंजक शब्द। जैसे,—छी ! तुम्हें ऐसा करते लज्जा नहीं आती।

मुहा०—छी छी करना=घिनाना। अनादर, अरुचि या घृणा प्रगट करना। उ०—बेष भये विष भावे न भूषन भोजन की कछु ही नहि ईछी। मीच के साधन सोंध सुधा, दधि दूध औ माखन आदिहु छी ! छी।—(शब्द०)।

छी²—संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो घाट पर कपड़ा धोते समय धोबियों के मुँह से निकलता है। उ० –घाट पर ठाढ़ी बाट पारति बटोहिन की चेटकी सी डीठ मन काको न हरति है। लटकि लटकि 'छी' करति खुले भुजमूल झुकि झुकि स्वेद कण फूल से झरति है।—देव (शब्द०)।

छीउल†—संज्ञा पुं० [देश०] पलाश। ढाक।

छीका संज्ञा पुं० [सं० शिक्य, हिं० सीका] १. गोल पात्र के आकार का रस्सियों का बुना हुआ जाल जो छत में इसलिये लटकाया जाता है कि उसपर रखी हुई खाने पीने की चीजों (जैसे, दूध, दही आदि) को कुत्ते, बिल्ली आदि न पा सकें। सीका सिकहर।—अब कहि देउ कहत किन यों कहि माँगत दही धरचो जो है छीके। सूर (शब्द०)।

मुहा०—छीका टूटना=अनायास ऐसी घटना होना जिससे किसी को कुछ लाभ हो जाय। जैसे-बिल्ली के भाग से छीका टूटा।

२. जालीदार खिड़की या झरोखा। ३. रस्सियों का जाल जो काम लेते समय बैलों के मुँह में इसलिये पहनाया जाता है जिससे वे कुछ खाने के लिये इधर उधर मुँह न चला सकें। जाबा। मुसका।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

४. रस्सियों का बना हुआ झूलनेवाला पुल। झूला। ५. बाँस या पतली टहनियों को बुनकर बनाया हुआ टोकरा जिसमें बड़े बड़े छेद छूटे रहते हैं। छिटनी। खँचिया।

छीछड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुच्छ, प्रा० छुछ] १. मांस का तुच्छ और निकम्मा टुकड़ा। मांसका बेकाम लच्छा। जैसे, –बिल्ली को छीछड़े ही भाते हैं। २. पशुओं की अँतड़ी का वह भाग जिसमें मल भरा रहता है। मल की थैली।

छीछला—वि० [हिं०] दे० 'छिछला'।

छीछालेदर—संज्ञा स्त्री० [हिं० छी छी] दुर्दशा। दुर्गति। खराबी। फजीहत।

क्रि० प्र०—करना।– होना।

छीछी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] मल। गू। विष्ठा। छिया। उ०—धाएँ बच्चों को कमरों और आँगनों के फर्श पर जहाँ तहाँ छीछी करा देती थीं।—जनानी०, पृ० १४७।

छीज—संज्ञा स्त्री० [हिं० छीजना] ह्रास। घटाव। घाटा। कमी। उ०—रातहि दिवस रहै सब भीजा। लाभ न देखत देखी छीजा।—जायसी (शब्द०)।

छीजन—संज्ञा स्त्री० [हिं० छीजना] दे० 'छीज'।

छीजना —क्रि० अ० [सं० क्षयण या क्षीण] क्षीण होना। घटना। कम होना। ह्रास होना। अवनत होना। उ०—(क) छीजहिं निशिचर दिन औ राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती।—तुलसी (शब्द०) (ख) लहर झकोर उड़हिं जल भीजा। तौहू रूप रंग नहिं छीजा।—जायसी (शब्द०)। (ग) सखि ! जा दिन तें परदेस गए पिय ता दिन ते तन छीजत हैं।— सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

संयो० क्रि० जाना।

छीट —संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छींट'।

छीटना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'छींटना'।

छीटा—संज्ञा पुं० [सं० शिक्य, हिं० छीका] [स्त्री० अल्पा० छिटनी] १. बाँस की कमचियों या पतली टहनियों को परस्पर जाल की तरह बुनकर बनाया हुआ टोकरा। खाँचा।

यौ०—छीटा गोला=ढोल या पीपे के आकार का बना हुआ टोकरा।

२. चिलमन।

छीड़†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीण] आदमियों की कमी। भीड़ का अभाव।

छीत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति] दे० 'छति'। उ०—तब नहिं छीत न सेस महेसू।—द० सागर, पृ० ६३।

छीतना—क्रि० स० [सं० छिद+हिं० ना (प्रत्य०)] १. बिच्छू, भिड़ आदि का डंक मारना। २. मारना। कूटना।

छीतस्वामी—संज्ञा पुं० [हिं०] अष्टछाप के एक वैष्णव भक्त। ये वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। इनके कृष्ण संबंधी रचे पद इनके संप्रदाय के लोग अबतक गाते हैं।

छीता—संज्ञा पुं० [देश०] बहू के मायके या ससुराल जाने की साइत।

छीति(पु)–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षति] १. हानि। घाटा। २. बुराई। उ०–तेरो तन धन रूप महागुन सुंदर श्याम सुनी यह कीति। सु करि सूर जिहि भाँति रहै पति, जनि बल बाँधि बढ़ावहु छीति।—सूर०, १०। २७७५।

छीतीछान—वि० [सं० क्षति+छिन्न या छन्न] छिन्न भिन्न। तितर बितर। उ०—वह सब सेना असुरों की छीतीछान हो वहीं की वहीं बिलाय गई।—लल्लू (शब्द०)।

छीदा—वि० [सं० छिद्र] १. जिसमें बहुत से छेद हों। जिसके तंतु दूर दूर पर हों। जिसकी बुनावट घनी न हो। झाँझरा।

छिदरा । २. जो दूर दूर पर हो । जो घना न हो । विरल । उ०—ताल कई समवड़ घूँघरी । माँहिली माँड़ली छीदा होइ ।—बी० रासो, पृ० ५ ।

छीन¹—वि० [सं० क्षीण] १. दुबला । पतला । कृश । २. शिथिल । मंद । मलिन । उ०—पूँछ को तजि असुर दौरि कै मुख गह्यौ सुरन तब पूँछ की ओर लीन्हौ । मथत भए छीन, तब बहुरि बिनती करी श्री महाराज निज सक्ति दीनी ।—सूर०, ८ । ८ ।

छीन²—संज्ञा पुं० [सं० क्षण, हिं० छिन] क्षण । क्षण भर का समय । उ०—पलटू बरस और दिन पहर घड़ी पल छीन । ज्यों ज्यों सूखै ताल है त्यों त्यों मीन मलीन ।—पलटू०, पृ० २५ ।

छीनचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० क्षीणचन्द्र] द्वितीया का चंद्रमा ।

छीनता—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'क्षीणता' ।

छीनना—क्रि० स० [सं० छिन्न+हिं० ना (प्रत्य०)] १. छिन्न करना । काटकर अलग करना । उ०—नोर हू तें न्यारो कीनो चक्र चक्र सीस छीनो देवकी के प्यारे लाल ऐंचि लाए थल में ।—सूर०, ८ । ५ । २. किसी दूसरे की वस्तु जबरदस्ती ले लेना । किसी वस्तु के दूसरे के अधिकार से बलात् अपने अधिकार में कर लेना । हरण करना । उ०—काक कंक लै भुजा उड़ाहीं । एक ते एक छीनि लै खाहीं ।—मानस, ६ । ८७ ।

यौ०—छीनाखसोटी । छीना झपटी । छीनाछीनी ।

३. अनुचित रूप से अधिकार करना । उ० बलि जब बहु जज्ञ किए इंद्र सुनि सकायौ । छल करि लइ छीनि मही, वामन है धायौ ।—सूर०, ६ । ११८ । ४. सिल, चक्की आदि को छेनी से खुरदुरा करना । कूटना । रेहाना । ५ छेनी से पत्थर आदि काटना या बराबर करना । ६. दे० 'छेना' ।

छीना¹†—क्रि० स० [सं० छुप (=छूना) या सं० स्पृश, प्रा० छिव (=छूना)] छूना । स्पर्श करना । उ० (क) ग्वालि वचन सुनि कहति जसोमति भले भूमि पर बादर छीवो । तुलसी (शब्द०) । (ख) हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सो हाथ छिए ।—केशव (शब्द०) ।

छीना²—संज्ञा पुं० [सं० छिन्न] १. घड़े के नीचे का कपाल या गोल भाग जो फोड़कर अलग कर दिया गया हो । २. मिट्टी का वह साँचा जिसपर कुम्हार घड़े कुंडे आदि की पेंदी या कपाल को रखकर थापी से पीटते हैं ।

छीनाखसोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छीनना+खसोटना] दे० 'छीना झपटी' ।

छीनाछीनी- संज्ञा स्त्री० [हिं छीनना की द्विरुक्ति] दे० 'छीना-झपटी' ।

छीनाझपटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिनना+झपटना] जबरदस्ती या झाड़ झपट के साथ किसी वस्तु को ले लेने की क्रिया ।

छीन्ह—संज्ञा पुं०[सं० क्षीण, हिं० छीन] दे० 'क्षीण' । उ०—छिप्यो छपाकर छितिज छीरनिधि छगुन छद छल छीन्हो ।—श्यामा०, पृ० १२० ।

छीप¹—वि० [सं० क्षिप्र] तेज । वेगवान् । उ०—सात दीप नृप दीप छीप गति चहत समर सरि ।—गोपाल (शब्द०) ।

छीप²—संज्ञा स्त्री० [सं० शुक्ति, हिं० सीप] दे० 'सीप' । उ०— (क) सब तरवर चंदन नहीं सब कदली न कपूर । सब छीपन मुकता नहीं, सब दल नाहिन सूर ।—रस र०, पृ० २२३ । (ख) छीप रूपहि करी परकासा । स्वाति रूप इच्छा नीवासा । —कबीर सा०, पृ० ८९३ ।

छीप³—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाप] १. छाप । चिह्न । दाग । ३. वह दाग या धब्बा जो छोटी छोटी बिंदियों के रूप में शरीर पर पड़ जाता है । सेहुआँ । एक प्रकार का चर्म रोग ।

छीप†⁴—संज्ञा पुं० [सं० क्षप, या क्षय] आक्रमण । नाश । विनाश । उ०—छीप करै दल दुज्जणां जीप खड़ो रण जंग ।—रा० रू०, पृ० २३२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

छीप⁵—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह छड़ी जिसमें डोरी बाँधकर मछली फँसाने की कँटिया लगाई जाती है । डगन । बंसी । २. एक पेड़ का नाम जिसके फल की तरकारी होती है । इसे खीप और चीप भी कहते हैं ।

छीपक†—वि० [हिं० छाप] छपी हुई । छींटदार । उ०—धरीं तीर सब छीपक सारी । सरवर मँह पैठी सब बारी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६० ।

छीपना¹—क्रि० स० [सं० क्षिप] कँटिया में मछली फँसने पर उसे बंसी के द्वारा खींचकर बाहर फेंकना ।

छीपना²†—क्रि० स० [सं० स्पर्शन, प्रा० छिवण] दे० 'छूना' । उ०—रैदास तूँ कावँच फली; तुझे न छीपै कोइ ।—रै० बानी, पृ० १ ।

छीपा†—संज्ञा पुं० [सं० क्षेप] १. तंग मुँह का मिट्टी का एक बरतन जिसमें अहीर दूध दुहकर डालते जाते हैं । २. दे० छीपी' । उ०—बनिया मोदी सगरे धाये, छीपा सेठ चौधरी आये ।—कबीर सा०, पृ० ६५७ ।

छीपिअरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छीपी' । उ०—ए भैना, काँहर के छीपिअरा बुलाऊँ काँहर बैठि रँगाइए ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१४ ।

छिपी¹—संज्ञा पुं० [हिं० छिप [स्त्री० छीपिन] वह व्यक्ति जो कपड़े पर बेलबूटे छापता हो । छींट छापनेवाला । रँगरेज ।

छीपी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. वह लंबी छड़ी जिससे लोग कबूतर आदि उड़ाते हैं । इसके सिरे पर कपड़ा बँधा रहता है । २. धातु आदि की छोटी तश्तरी ।

छीबर—संज्ञा स्त्री० [देश०, हिं० छापना] मोटी छींट । वह कपड़ा जिसपर बेल बूटे छपे हों । उ०—हा हा हमारी सौं साँची कहौ वह को हुती छोहरी छीबर वारी ।—(शब्द०) ।

छीमर(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० छीप (=बूँद) दे० 'छीबर' । उ०—छीमर वह छीमर पहिरि लूमर मदन अरेर । चितहि चुरावत चाहि के बेचत बेर सुरेर ।—स० सप्तक०, पृ० ३८१ ।

छीमी—संज्ञा स्त्री० [सं० शिम्बी] १. फली । जैसे—मटर की छीमी ।

उ०—मखमली पेटियों सी लटकीं छीमियाँ, छिपाए बीज लड़ी।—ग्राम्या, पृ० ३५। ३. गाय भैंस आदि के स्तन के चूचुक जो फली की तरह होते हैं। स्तनों का चूचुक। स्तनाग्र। कुचाग्र।—(ग्रशिष्ट)।

छीर¹—संज्ञा पुं० [सं० क्षीर, प्रा० छीर]। उ०—(क) माता अछत छीर बिन सुत मरै, अजा कंठ कुच सेई।—सूर०, १।२००। (ख) छीर बही भूतल नदी त्रिविध चले पवमान।—प० रासो, पृ० १३।

छीर²—संज्ञा स्त्री० [सं० शिरा, प्रा० छिरा, हिं० छोर] १. कपड़े आदि का वह किनारा जहाँ लंबाई समाप्त हो। छोर।

मुहा०—छीर डालना=धोती आदि में किनारे का तागा निकालकर झालर बनाना।

२. वह चिह्न जो कपड़े पर डाला जाय। ३. कपड़े के फटने का चिह्न।

क्रि० प्र०—पड़ना।

छीरज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरज] दधि। दही।

छीरधि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरधि] क्षीरसागर। दूध का समुद्र। उ०—क्षय रही 'मतिराम' कहै छिति छोरनि छीरधि की छवि छाजै।—मति० ग्रं०, पृ० ४११।

छीरनिधि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरनिधि] क्षीरसागर। दूध का समुद्र। उ०—जब वृत्रासुर के भय सों सुर सब भागे, तब छीरनिधि के निकट जाइके यह कहत भए।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४९२।

छीरप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरप] दुधमुहाँ बालक। दूधपीता बच्चा।

छीरफेन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरफेन] दूध की मलाई। उ०—विविध बसन उपधान तुराई। छीरफेन मृदु बिसद सुहाई।—मानस, १।९१।

छीरसागर—(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरसागर] दे० 'क्षीरसागर'।

छीरसिंधु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीर+सिन्धु] क्षीरसागर। दूध का समुद्र। उ०—क्षीरसिंधु गवने मुनिनाथा।—मानस, १।१२८।

छीलक(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं० छिलका] दे० 'छिलका'। उ०—दीन हुतौ बिललात फिरै नित इंद्रिन कै बस छीलक छोले।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ५८७।

छीलना—क्रि० अ० [हिं० छाल] १. किसी वस्तु का छिलका या छाल उतारना। लगी हुई छाल या ऊपरी आवरण को काट कर अलग करना। ऊपरी सतह की मोटाई काटकर अलग करना। जैसे, सेब छीलना, गन्ना छीलना, लकड़ी छीलना, पेंसिल छीलना। २. ऊपर लगी हुई या जमी हुई वस्तु को खुरचकर अलग करना। जैसे, चाकू से हरफ छीलना, घास छीलना। ३. खुरोचना। खरोंटना। ४. गले के भीतर चुनचुनाहट या खुजली सी उत्पन्न करना। जैसे,—सूरन ने गला छील डाला।

छीलर—संज्ञा पुं० [प्रा० छिल्लर, हिं० छिछला अथवा सं० क्षीण] १. एक छोटा गड्ढा जो कुएँ पर इसलिये बना रहता है कि मोट का पानी उसमें डाला जाय। छिउला। लिलारी। २. छोटा छिछला गड्ढा। तलैया। उ०—(क) कबिरा राम रिझाइ ले जिह्वा सो करि मित्त। हरि सागर जनि बीसरै छीलर देखि अनित्त।—कबीर (शब्द०)। (ख) अब न सुहात विषय रस छीलर वा समुद्र की आस।—सूर (शब्द०)।

छीलरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० छिल्लर] दे० 'छीलर'। उ०—दादू हंस मोती चुगैं, मानसरोवर जाइ। बगुला छोलरी बापुड़ा, चुणि चुणि मछली खाइ।—दादू०, पृ० ३२३।

छीव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षीव] दे० 'क्षीव'।

छींवना(पु)—क्रि० स० [सं० स्पर्शन, प्रा० छवण, छिवण] दे० 'छूना'। उ०—प्रथिराज दिष्ट आवै नहीं चिकट कुंभ ज्यों जल अभिद। लग्गै न नीर पत्रह कमल। भिदै न मति छीवै उछिद।—पृ० रा०, २४।४८४।

छुंद्र—वि० [सं० क्षुद्र] दे० 'क्षुद्र'। उ०—ये जो छुंद्र जलाशयों के बचे बचाए यत्किंचित् शेष जल।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ९।

छुँगली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० छँगुली] एक प्रकार की अंगूठी जिसमें घुँघरू लगे होते हैं। यह छोटी उँगली में पहनी जाती है।

छुआना†—क्रि० स० [सं० स्पृश, प्रा० छिव, छुव] १. स्पर्श करना। छूना। २. चूना करना। सफेदी करना।

छुआई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] छूने, स्पर्श करने का भाव।

छुआछूत—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] १. अछूत को छूने की क्रिया। अस्पृश्य स्पर्श। अशुचि संसर्ग। जैसे,—यहाँ छुआछूत मत करो। २. स्पृश्य अस्पृश्य का विचार। छूत का विचार। जैसे,—वहाँ छुआछूत का बखेड़ा नहीं है।

छुआना—क्रि० स० [हिं० छुलाना] १. दे० 'छुलाना'। २. दे० 'छुहाना'।

छुई मुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना+मुवना] एक छोटा कँटीला पौधा जिसकी पत्तियाँ बबूल की सी होती हैं। इसमें यह विशेषता है कि जहाँ पत्तियों को किसी ने छुआ कि वे बंद हो जाती हैं और उनके सींके लटक जाते हैं। लज्जालु। लज्जावंती। लजाधुर। लजारो। वि० दे० 'लज्जावंती'। २. अत्यंत कमजोर कोई चीज। ३. लजाधुर की तरह स्वभाव-वाला व्यक्ति। नाजुकमिजाज।

मुहा०—छुई मुई बनना=संकुचित होना। कायल होना। मौन हो जाना। उ०—सब बातों में खोज तुम्हारी रट सी लगी हुई है। किंतु स्पर्श से तर्क करों के बनता छुई मुई है।—कामायनी, पृ० १११।

छुगुनू†—संज्ञा पुं० [अनु० छुनछुन] घुँघरू। उ०—कटि करधन छुगुनू छजत श्यामल बदन सुहाय। मनहु नीलमणि मंदिर बसेउ बासुकी आय।—शृं० सत० (शब्द०)।

छुग्गर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० छत्रदण्ड] छाता। छत्र। उ०—पान सु पात तुम्है गर बल्लिय। भट्ट कहै कर छुग्गर झल्लिय।—पृ० रा०, ६१।८१८।

छुच्छा†—वि० [सं० तुच्छ, प्रा० छुच्छ] १. थोड़ा। स्वल्प। कम। उ०—राम किसन कित्ती सरस कहत लगै बहु बार। छुच्छ ग्राव कवि चंद की सिर चहुग्राना भार।—पृ० रा०, २। ५८५। २. दे० 'छूँछा'। उ०—गरजै छुच्छ होर सुख मारा।—कबीर सा०, पृ० १५८७।

छुच्छा†—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० छुच्छी] दे० 'छूँछा'।

छुच्छी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूँछा] १ पतली पोली छोटी नली। २. नरकट की चार पाँच अंगुल लंबी नली जिसमें जोलाहे तागा लपेटकर उसे ढरकी में लगाकर बुनते हैं। नरी। ३. नाक में पहनने का एक गहना। नाक की कील। लौंग।

विशेष—यह लौंग की तरह का होता है, पर इसमें फूल की जगह चारों ओर उभड़े हुए रवे अथवा चंदक रहती है जिसपर *नग जड़े जाते हैं। इसके बीच में एक छेद भी होता है* जिसमें नथ डालकर पहनी जाती है।

४. एक पतली नली जो एक तिकोनिए पर लगी होती है और जिसमें बत्ती लगाकर गिलास में जलाई जाती है। ५. वह पतली नली जिसका एक छोर गिलास की तरह चौड़ा होता है और जिसे लगाकर एक बरतन से दूसरे बरतन में तेल आदि ढालते हैं। कीप।

छुछंद(पु)—वि० [सं० स्वच्छन्द, हिं० सुछंद] स्वच्छद। स्वतंत्र। मुक्त। उ०—जे बांध्या ते छुछंद मुकता बांधनहार बांध्या।—कबीर ग्रं०, पृ० १४६।

छुछका†—वि० [सं० तुच्छ, प्रा० छुछ] १. वह जो रिक्त हो। दे० २. स्वल्प। तुच्छ। छूँछा।

छुछकारना—क्रि० स० [अनु०] १. कुत्ते को शिकार आदि के पीछे लगाना। ललकारना। २. झिड़कना। डाँट फटकार बताना।

छुछमछरी†—वि०, संज्ञा स्त्री० [हिं० छुछमछली] दे० 'छुछमछली'।

छुछमछली—संज्ञा स्त्री० [सं० सूक्ष्म, पु० हिं० छूछम+मछली अथवा सं० तुच्छ, प्रा० छुछ+हिं० मछली] मेढक के बच्चे का एक आरंभिक रूप जो लंबी पूँछवाले कीड़े या मछली के बच्चे का सा होता है। इसके उपरांत कई रूपांतर होने पर तब यह अपने असली चतुष्पद रूप में आता है।

छुछमछली²—वि० अस्थिर। चंचल।

छुछहँड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूछी+हंडी] छूछी हाँड़ी।

मुहा०—छुछहँड़ दिखाना=(१) माँगने पर किसी वस्तु को देने से इनकार करना या उसका अभाव बतलाना। (२) छुछहँड़ मिलना=यात्रा के समय खाली घड़ा सामने दिखाई पड़ना। अपशकुन होना।

छुछुंदर—संज्ञा पुं० [सं० छुछुन्दर] [स्त्री० छुछंदरी] छछूँदर।

छुछुआना—क्रि० अ० [अनु० छुछु] छछूँदर की तरहँ छू छू करते फिरना। व्यर्थ इधर उधर घूमते फिरना।

छुछुमुक्ता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] हठयोगियों के अनुसार वह सिद्धि जिसे *प्राप्त कर लेने पर मनुष्य हलका या सूक्ष्म हो जाता है।* लघिमा नाम की सिद्धि। उ०—छुछुमुक्ता सिधि ताको लछिन, मन माने वहाँ शरीर छाडै।—गोरख०, पृ० २४८।

छुट¹(पु)—अव्य० [हिं० छूटना] छोड़कर। सिवाय। अतिरिक्त। उ०—जब ते जन्म पाय जीव है कहायो। तब ते छुट अवगुण इक नाम न कहि आयो।—सूर (शब्द०)।

छुट²—वि० [हिं० छोटा] हिंदी छोटा का समासगत रूप। जैसे, छुटपन, छुटभैया।

छुटका, छुटका¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छुटकारा'। उ०—काम क्रोध अरु लोभ यह त्रिगुन बसे मन माँहि। सत्य नाम पाए बिना जम ते छुटको नाहिं।—कबीर सा०, पृ० ४५६।

छुटका†²—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० छुटकी] दे० 'छोटा'।

छुटकाना(पु)—क्रि० स० [हिं० छुटना] [संज्ञा छुटकारा] १. *छोड़ना। अलग करना। पकड़े न रहना। उ०—किलकि* किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाए।—तुलसी (शब्द०)। २. छोड़ना। साथ न लेना। उ०—माधव जू गज ग्राह ते छुड़ायो। चितवत चित ही में चितामणि चक्र लए कर धायो। अति करुणा कारि करुणामय हरि गरूड़हि हूँ छुटकायो।—सूर (शब्द०)। ३. छुड़ाना। मुक्त करना। छुटकारा देना। उ०—(क) लागि पुकार तुरत छुटकायो काटचो बंधन वाको।—सूर (शब्द०)। (ख) हौं बसि के बन भूपति को सुनु, कैकयि के ऋण ते छुटकाऊँ।—हनुमान (शब्द०)। ४. खोलना। फैलाना। डालना। उ०—द्वार झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ।—घनानंद, पृ० ३१३।

छुटकारा—संज्ञा पुं० [हिं० छुटकाना या छूट] १. किसी बंधन आदि से छूटने का भाव या क्रिया। मुक्ति। रिहाई। २. किसी बाधा, आपत्ति या चिंता आदि से रक्षा। निस्तार। जैसे, ऋण से छुटकारा, विपत्ति से छुटकारा।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।—मिलना।—होना।

३. किसी काम से छुट्टी। किसी कार्यभार से मुक्ति।

क्रि० प्र०—देना।—होना।

छुटना¹(पु)—क्रि० अ० [हिं० छूटना] दे० 'छूटना'।

छुटना²(पु)—वि० [हिं०] छोटा। लघु उ०—देखत को तो छुटनो वाल। ऐ परि आहि काल कौ काल—नंद० ग्रं०, पृ० २३८।

छुटपन†—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा+पन (प्रत्य०)] १. छोटाई। लघुता। २. बचपन। लड़कपन।

छुटभैया†—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा+भैया] साधारण हैसियत का आदमी। छोटे दरजे का या निम्नवर्गीय व्यक्ति।

छुटवाना†—क्रि० स० [हिं० छोड़ना] दे० 'छोड़वाना'।

छुटाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा] दे० 'छोटाई'।

यौ०—छुटाई बड़ाई।

छुटाना¹†—क्रि० स० [सं० छूट (=काटकर अलग करना)] छुड़ाना। उ०—(क) तब गज हरि की शरण आयो। सूरदास प्रभु ताहि छुटायो।—सूर (शब्द०)। (ख) छुटे छुटावें जगत

तें सटकारे सुकुमार। मन बाँधत बेनी बघे नील छबीले बार। —बिहारी (शब्द०)।

छुटाना²—क्रि० अ० गाय या भैंस का दूध देना या बंद कर देना।

छुटानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुटना] दे० 'छूट'। उ०—सत गुरु मिलै तो होय छुटानो।—कबीर सा०, पृ० १५८६।

छुटारा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० छूट] दे० 'छुटकारा'। उ०—यमराज ते भए छुटारा। निर्भय हंसा लोक सिधारा।—कबीर सा०, पृ० ४५३।

छुटैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] भाँड़ों और स्वाँग करनेवालों के चुटकुले।

छुटौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] १. वह सूद या लगान जो छोड़ दिया जाय। छँड़ुआ। २. छोड़ने या छुड़ाने के कार्य के एवज में दिया गया धन।

छुट्टा—वि० [हिं० छूटना] [वि० स्त्री० छुट्टी] १. जो बँधा न हो।

यौ०—छुट्टा पान=बिना लगा हुआ पान। पान का पत्ता। छुट्टा साँड़=(१) निर्बंध बैल। (२) बंधनविहीन व्यक्ति। बिना जोरू जाँता का आदमी।

(२) एकाएकी एकाकी। अकेला। (३) जिसके साथ कुछ माल असबाव न हो।

मुहा०—छुट्टा छरिंद=एकाकी। अकेला। जिसके साथ यात्रा में माल असबाव या साथी न हो। छुट्टे हाथ=खाली हाथ। हाथ में बिना छड़ी या हथियार आदि लिए।

छुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] १. छुटकारा। मुक्ति। रिहाई। जैसे,—बिना लगान दिए छुट्टी नहीं है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

मुहा०—छुट्टी पाना=झंझट से बचना। पीछा छुड़ाना। जवाबदेही या जिम्मेदारी से अलग होना। जैसे,—तुम तो यह कहकर छुट्टी पा जाओगे, तंग होंगे हम। छुट्टी होना=झंझट दूर होना। काम निबटना या समाप्त होना।

२. वह समय जिसमें कोई कार्य न हो। काम से खाली वक्त या समय। अवकाश। फुरसत। जैसे—(क) आजकल मेरे सिर इतना काम है कि खाने पीने तक की छुट्टी नहीं। (ख) उसने तीन महीने की छुट्टी ली है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

मुहा०—छुट्टी पर जाना या होना=नियत कार्य से अवकाश ग्रहण करना।

३. वह दिन जिसमें नियत कार्य बंद रहे। कार्यालय या स्कूल के बंद रहने का दिन। तातील। जैसे,—आज स्कूल में छुट्टी है।

मुहा०—छुट्टी मनाना=अवकाश का दिन आनंद से बिताना। छुट्टी लेना=कार्य से अवकाश लेना।

४. काम से छुड़ाए जाने की क्रिया। मौकूफी। ५. प्रस्थान करने की अनुमति। जाने की आज्ञा। जैसे—अब छुट्टी दीजिए, बहुत देर हो रही है। ६. भाँड़ों का चुटकुला।

छुड़वाना—क्रि० स० [हिं० छोड़ना का प्रे० रूप] छोड़ने का काम कराना। छोड़ने के लिये प्रेरित या उद्यत करना। जैसे,—बहेलिए से नीलकंठ छुड़वाना।

छुड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुड़ाना] १. छोड़ने की क्रिया।

यौ०—छोड़ छुड़ाई=माफी।

२. वह धन जो किसी व्यक्ति या वस्तु के छोड़ने के बदले में दिया या लिया जाय। जैसे,—पशुओं की छुड़ाई, नीलकंठ की छुड़ाई। ३. वह कनकौए को दूर ले जाकर ऊपर उछालना जिससे कि पतंग ऊपर उड़ जाय। छुड़ैया।—(पतंग)।

क्रि० प्र०—करना। देना।

छुड़ाना¹—क्रि० स० [हिं० छोड़ना] १. किसी वस्तु को ऐसा करना जिसमें वह छूट जाय। दूसरे की पकड़ से अलग करना। बँधी, फँसी उलझी या लगी हुई वस्तु को पृथक् करना। जैसे, वह हाथ छुड़ाकर भागा; लड़के का पैर चारपाई में फँस गया है, छुड़ा दो;, गाँठ छुड़ाना आदि। उ०—बाँह छुड़ाए जात हो निबल जानि के मोहि। हिरदय में से जाइयो मरद बदूँगी तोहि।—(शब्द०)। २. दूसरे के अधिकार से अलग करना जैसे,—रेहन रखा हुआ खेत छुड़ाना, माल छुड़ाना, बिल्टी छुड़ाना आदि।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. किसी वस्तु पर पुती हुई वस्तु को दूर करना। जैसे,—रंग छुड़ाना। दाग छुड़ाना, मैल छुड़ाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

४. कार्य से अलग करना। नौकरी से हटाना। बरखास्त करना। जैसे,—उसने उस पुराने नौकर को छुड़ा दिया।

संयो० क्रि०—देना।

५. किसी नियमित क्रिया का त्याग कराना। किसी प्रवृत्ति को दूर कराना। जैसे, अभ्यास छुड़ाना, मुक्त कराना। जैसे—हम उसका आना जाना छुड़ा देंगे।

छुड़ाना²—क्रि० स० [छोड़ना का प्रे० रूप] छोड़ने का काम कराना। दे० 'छुड़वाना'।

छुड़ैया¹—वि० [हिं० छुड़ाना+ऐया (प्रत्य०)] छुड़ानेवाला। बचानेवाला। रक्षक।

छुड़ैया²—संज्ञा [हिं० छोड़ना+ऐया (प्रत्य०)] किसी को गुड्डी या पतंग को उड़ाने के लिये कुछ दूर पर लाकर, दोनों हाथों से पकड़कर ऊपर आकाश की ओर छोड़ना या हवा में उड़ाना।

क्रि० प्र०—देना।

विशेष—जिस समय हवा कम होती है और गुड्डी या पतंग आदि के उड़ने में कुछ कठिनता होती है, उस समय एक दूसरा आदमी पतंग या गुड्डी को पकड़कर कुछ दूर ले जाता है; और तब वहाँ से उसे ऊपर की ओर छोड़ता या उड़ाता है; जिससे वह सहज में और जल्दी उड़ने लगती है।

छुड़ौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुड़ाना] १. देनदार या असामी से पावना छोड़ देने की क्रिया। २. वह रुपया जो असामी या

देनदार से दयावश या और किसी कारण से न लिया जाय, सब दिन के लिये छोड़ दिया जाय। छूट। २. वह धन जो किसी को बंधक मुक्त करने के लिये दिया जाय।

छुत्(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुत्] क्षुधा। भूख।

छुतहा†—वि० [हिं० छुत] दे० 'छुतिहा'।

यौ०—छुतहा अस्पताल=वह चिकित्सालय जहाँ छूत से उत्पन्न और फैलनेवाले रोगों का इलाज होता है।

छुतिया(पु)—वि० [हिं० छूत+इया (प्रत्य०)] १. दे० 'छुतिहा'। २. स्पर्श से रहित। उ०—यहि विधि पिंड ब्रह्मंड समाना। ताको तुम छुतिहा कर जाना।—घट०, पृ० २२६।

छुतिहर†—संज्ञा पुं० [हिं० छूत+हंडी] १. वह घड़ा या बरतन जो किसी अशुचि वस्तु के संसर्ग से अशुद्ध हो गया हो और जिसमें खाने पीने की वस्तु न रखी जाती हो। २. कुपात्र। निंदनीय। तिरस्कार्य व्यक्ति। नीच आदमी।

छुतिहा¹†—वि० [हिं० छूत+हा (प्रत्य०)] १. छूतवाला। जिसमें छूत लगी हो। जो छूने योग्य न हो। अस्पृश्य। २. कलंकित। दूषित। पतित। निकृष्ट।

छुतिहा²—संज्ञा पुं० वह नमक जो नोनी मिट्टी से निकाला जाता है। शोरे का नमक।

छुतेरिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुतिहर] अस्पृश्य। छूतवाली। छोटी जाति की स्त्री। उ०—यह किन छुतेरिनों को साथ लाई हैं आप ?—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३।

छुद्धित(पु)—वि० [सं० क्षुधित प्रा० छुधिय] दे० 'क्षुधित'। उ०—खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत। खोजत व्याकुल सरित सर जल बिनु भएउ अचेत।—मानस, १। १५७।

छुद्र(पु)—वि० [सं० क्षुद्र] दे० 'क्षुद्र'। उ०—छुद्र पतित तुम तारि रमापति अब न करौ जिय गारौ।—सूर०, १।१३१।

छुद्रघंटि (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्र+घण्टिका] दे० 'क्षुद्रघंटिका'। उ०—छुद्रघंटि मोहहि नर राजा। इंद्र अखार आइ जनु साजा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७।

छुद्रघंटिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्रघण्टिका] दे० 'क्षुद्रघंटिका'। उ०—छुद्र घंटिका पायल बाजै रतन जड़ाऊँ। रितु बसंत की आनी मोतिन माँग भराऊँ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८८।

छुद्रा(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्रा] दे० 'क्षुद्रा'।—अनेकार्थ०, पृ० १३०।

छुद्रावलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'क्षुद्रघटिका'। उ०—कटि क्षुद्रावलि अभरन पूरा। पायन्ह पहिरे पायल चूरा।—जायसी (शब्द०)।

छुद्रावली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छुद्रघटिका'।

छुध(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० छुधा, प्रा० क्षुध] भूख। बुभुक्षा। उ०—निद्रा पियास छुध मोह तजि, दुष्प सुप्प इवक न गनै।—पृ० रा०, १२। ५१।

छुधा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुधा] [वि० छुधित] क्षुधा। भूख। उ०—देखि छुधा तें मुख कुम्हिलानौ अति कोमल तन स्याम।—सूर०, १०। ३६१।

छुधित(पु)—वि० [सं० क्षुधित] भूखा। उ०—खेलहिं हलधर संग रंग रुचि नैन निरखि सुख पाऊँ। छिन छिन छुधित जानि पय कारन हँसि हँसि निकट बुलाऊँ।—सूर०, १०। ७५।

छुनछुनाना—क्रि० अ० [अनु०] 'छुन छुन' शब्द करना। झनकार के साथ बजना।

छुननमुनन—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दे० 'छुनमुन'।

छुनमुन—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दे० 'छनन मनन'। २. बच्चों के पैर के आभूषण का शब्द।

छुप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्पर्श। २. झाड़ी। क्षप। ३. वायु। ४. संघर्ष। युद्ध (को०)।

छुप²—वि० चंचल।

छुपना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'छिपना'।

छुपाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'छिपाना'।

छुबुक—संज्ञा पुं० [सं०] चिबुक। ठुड्डी।

छुभित(पु)—वि० [सं० क्षुभित] १. विचलित। चंचल। उ०—चलत कटकु दिगसिंधुर डिगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं।—मानस, ६। ७८। २. घबराया हुआ।

छुभिराना(पु)—क्रि० अ० [हिं० क्षोभ] क्षोभ को प्राप्त होना। क्षुब्ध होना। चंचल होना। उ०—चैयाँ चैयाँ गहो चैयाँ नैयाँ ऐसे बोलो बढ़ि दैया करो दया हमें काहे छुभिराने हो।—सूदन (शब्द०)।

छुमकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'छमकना'। उ०—अब क्या रुमझुम से छुमकेगा, आँगन ग्वालिनियों का।—हिम त०, पृ० ४२।

छुरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लेपन। लेप करना। लेप लगाना। २. पसारना। फैलाना। (को०)।

छुरधार(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुरधार] छुरे की धार। पतली धार जिससे छू जाते ही कोई वस्तु कट जाय। उ०—देव विकट तर वक्र छुरधार प्रमदा तीव्र दर्प कंदर्प खर खड्ग धारा।—तुलसी (शब्द०)।

छुरहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुरा+धरना] नाऊ की पेटी जिसमें वह छुरे रखता है। किसवत।

छुरा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुर] [स्त्री० अल्पा० छुरी] १. वह हथियार जिसमें एक बेंट में लोहे का एक धारदार लंबा टुकड़ा लगा रहता है। यह आक्रमण करने या मारने के काम में आता है।

यौ०—छुरेबाज=(१) छुरे द्वारा किसी की हत्या करनेवाला। छुरेबाजी=छुरा भोंकना। छुरा भोंकने का काम। (२) छुरा भोंकने की घटना।

२. वह हथियार जिससे नाई बाल मूँड़ते हैं। उस्तरा।

छुरा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] चूना। एक प्रकार का तीक्ष्ण क्षार भस्म। वि० दे० 'चूना'।

छुरिका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'छुरी'।

छुरिकार†—संज्ञा पुं० [सं० क्षुरि+कार] नाई। नापित उ०—गंधकार छुरिकार मल्ल आम्नायिक।—वर्णरत्नाकर, पृ० ६।

छुरित¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. लास्य नामक नृत्य का एक भेद।

वह नृत्य जिसमें नायक और नायिका दोनों रसपूर्ण हो परस्पर प्रेमप्रदर्शनपूर्वक चुंबनादि करते हुए नृत्य करते हैं। २. बिजली की चमक। ३. कटाव। क्षत (को०)।

छुरित²—वि० १. खचित। जड़ित। खुदा हुआ। २. लेप किया हुआ। पोता हुआ। लेपित (को०)। मिला हुआ (को०)। ४. कटा हुआ (को०)।

छुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काटने या चीरने फाड़ने का छोटा हथियार जिसमें एक बेंट में लोहे का लंबा धारदार टुकड़ा लगा रहता है। इससे नित्य प्रति के व्यवहार की वस्तु जैसे, फल, तरकारी, कमल आदि काटते हैं। २. लोहे का एक धारदार हथियार जिसमें बेंट लगा रहता है।

मुहा०—छुरी चलना=(१) छुरी की लड़ाई होना। (२) चीरने आदि के लिये छुरी का प्रयोग होना। (किसी पर) छुरी चलाना=घोर कष्ट पहुँचाना। घोर दुःख देना। भारी हानि पहुँचाना। घोर अनिष्ट करना। बुराई करना। अहित साधन करना। छुरी देना=मारना। गला काटना। (किसी पर) छुरी तेज होना=अनिष्ट करने या हानि पहुँचाने की तैयारी होना। (किसी पर) छुरी फेरना=किसी का अनिष्ट करना। किसी को भारी हानि पहुँचाना। (किसी के) गले पर छुरी फेरना=दे० 'छुरी फेरना'। छुरी कटारी रहना=लड़ाई झगड़ा रहना। बिगाड़ रहना। वैर रहना। (किसी के) छुरियाँ कटावन पड़ना=(१) किसी के कारण या उसके द्वारा किसी वस्तु का नष्ट या खर्च होना। कट्टे लगना। जैसे,—यहाँ आम रखे थे, न जाने किसके छुरियाँ कटावन पड़े (अर्थात् न जाने किसने ले लिए या खा लिए)। यह वाक्य प्रायः स्त्रियाँ क्रोध में शाप के रूप में बोलती हैं। (२) रक्तातिसार होना। लोहू गिरना।

छुरीधार—संज्ञा स्त्री० [सं० छुरी+धार] छुरे के आकार का हाथीदाँत का एक औजार जिसमें जाली कटी रहती है।

छुलकना—क्रि० अ० [अनु० छुल छुल] थोड़ा थोड़ा करके मूतना।

छुलकी संज्ञा स्त्री० [अनु०] थोड़ा थोड़ा करके पेशाब करने की क्रिया।

छुलछुल—संज्ञा पुं० [अनु०] थोड़ा थोड़ा करके मूतने से निकला हुआ शब्द।

छुलछुलाना—क्रि० अ० [अनु० छुल छुल] थोड़ा थोड़ा करके मूतना। २. थोड़ा थोड़ा करके पानी डालना। ३. इतराना। इठलाना।

छुलाना—क्रि० स० [हिं० छूना] एक वस्तु को दूसरी वस्तु के इतने पास ले जाना कि एक दूसरे से लग या मिल जाय। स्पर्श कराना। छुवाना।

छुलिक्का—संज्ञा स्त्री० [सं० छुरिका, प्रा० छुरिया] की तरह का एक अस्त्र। छुरी। चाकू। उ०—जमंदड्ढ प्राहार छेदं छुलिक्का। उरा पार फुट्टे हबक्के कसक्का।—पृ० रा, ९। १५१।

छुवना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'छूना'।

छुवाछूत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छूआछूत'।

छुवाना—क्रि० स० [हिं० का छूना का सक० रूप] स्पर्श करना। छुलाना। उ०—चितई ललचौहैं चखनि डटि घूँघट पट माँहि। छल सों चली छुवाय कै छिनुक छबीली छाँहि।—बिहारी र०, दो०, १२।

छुवाव†—संज्ञा पुं० [हिं० छुवाना] लगाव। संबंध। संसर्ग।

यौ०—छुवाव लगाव। लगाव छुवाव।

छुवारो अजवायन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छुहारी अजवायन'।

छुहना¹(पु)—क्रि० अ० [हिं० छुवना] १. छू जाना। २. रँगा जाना। लिपना। पुतना। रंजित होना। उ०—कवि देव कह्यो किन काहू कछु जब ते उनके अनुराग छुही।—देव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

छुहना²—क्रि० स० दे० 'छूना'। उ०—जयमाल गुलाल बनाइ गुही। घसि केसर कुंकुम मंडि छुही।—रस र०, पृ०, १७९।

छुहाना¹—क्रि० अ० [हिं० छोह] दे० 'छोहाना'।

छुहाना²—क्रि० स० [हिं० छुहना] सफेदी कराना। पोतवाना। रँगाना।

छुहारबेर—संज्ञा पुं० [हिं० छुहारा] पका हुआ बेर।

छुहारा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुत+हार ?] १. एक प्रकार का खजूर जिसका फल खाने में अधिक मीठा होता है। खुरमा। पिंड खजूर। खरिक खुरमा।

विशेष—इसका पेड़ अरब, सिंध आदि मरु स्थानों में होता है। वैद्यक में यह पुष्टिकारक, शुक्र और बल को बढ़ानेवाला, तथा मूर्छा और वात पित्त का नाश करनेवाला माना गया है।

२. पिंड खजूर का फल।

विशेष—दे० 'खजूर'।

छुहारी—संज्ञा स्त्री० [देश० छुहारा] छोटी और निकृष्ट जाति का छुहारा। उ०—कोइ कमरख कोइ गुवा छुहारी।—जायसी ग्रं०, पृ० २४७।

छुहारी अजवायन—संज्ञा स्त्री० [सं० चौहार+यवानी] फारस से आनेवाली अजमोदा।

छुही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] खरिया। सफेद मिट्टी।

छूँछा(पु)—वि० [हिं० छूँछा] दे० 'छूँछा'। उ०—आप छूँछ औरन व्रत टारै, वेद शास्त्र जिन नाहिं उचारे।—कबीर सा०, पृ० ४६५।

छूँछना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दरी आदि की छोर पर निकला हुआ लंबा रेशा।

छूँछा—वि० [सं० तुच्छ, प्रा० चुच्छ, छूँच्छ] [वि० स्त्री० छूँछी] १. जिसके भीतर कोई वस्तु न हो। खाली। रीता। रिक्त। जैसे, छूँछा घड़ा, छूँछी नली, छूँछा हाथ। उ०—(क) पैठे सखिन सहित घर सूने माखन दधि सब खाई। छूँछी छाँड़ि मटुकिया दधि की हँसि सब बाहिर आई।—सूर (शब्द०)। (ख) जब विन प्रान पिंड है छूँछा। धर्म लाग कहिए जो पूँछा।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—छूँछा हाथ=(१) द्रव्य से खाली हाथ। (२) बिना हथियार का हाथ। हाथ जिसमें छड़ी या डंडा आदि न हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः छोटी वस्तुओं के लिये होता

है, मकान आदि की बड़ी वस्तुओं के लिये नहीं; पर कहीं कहीं मकान के लिये भी इसका प्रयोग प्राप्त होता है ।

२. जिसके भीतर कुछ तत्व या सार न हो । निःसार । ३. जिसके पास रुपया पैसा न हो । निर्धन । जैसे,—छूछे को कौन पूछे ? ।

छूँछि‡(पु)—वि० स्त्री० [हिं०] निष्फल । कोरा । बेकार । उ०—अब सुठि मरौं छूँछि गै पाती पेम पियारे हाथ । भेंट होत दुख रोइ सुनावत जीउ जात जौं साथ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७१ ।

छूँछी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छुच्छी' ।

छू—संज्ञा पुं० [अनु०] मंत्र पढ़कर फूँक मारने का शब्द । मंत्र की फूँक ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—छू बनना या होना—चलता बनना । चंपत होना । गायब होना । उड़ जाना । जाता रहना । न रहना । छू छू बनाना= उल्लू बनाना । बेवकूफ बनाना । छू मंतर=मंत्र की फूँक । छू मंतर होना=चट पट दूर होना । मिट जाना । गायब होना । जाता रहना । न रहना । जैसे, दर्द का छू मंतर होना ।

विशेष—इंद्रजालिक या बाजीगर प्रायः मंत्र पढ़ते हुए छू कहकर वस्तुओं को गायब कर देते हैं ।

छूचक‡—संज्ञा पुं० [सं० सूतक] १. अशौच । सूतक । २. बच्चा उत्पन्न होने पर छह दिन का काल ।

छूछा—वि० [हिं०] [वि०स्त्री० छूछी] दे० 'छूँछा' । उ०—नृप ने सशंक जो कुछ पूछा, बस उत्तर हुआ वही छूछा ।—साकेत, पृ० १५७ । (ख) तेरी बात लगत मुहि छूछी ।—ह० रासो, पृ० ११५ ।

छूछू[1]—वि० [सं० तुच्छ, हिं० छूछा] मूर्ख । जड़ । अहमक ।

क्रि० प्र०—बनना ।—बनाना ।

छूछू[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बच्चों को खेलानेवाली स्त्री । दाई ।

छूट—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूटना] १. छूटने का भाव । छुटकारा ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।—होना ।

२. अवकाश । फुरसत ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।—लेना ।—होना ।

३. देनदारों या असामियों के ऋण या लगान की माफी । उस रुपए या धन को अपनी इच्छा से छोड़ देना जो किसी के यहाँ चाहता हो । छुड़ौती । ४. किसी कार्य या उसके किसी अंग को भूल से न करने का भाव । किसी कार्य से संबंध रखनेवाली किसी बात पर ध्यान न जाने का भाव । उ०—करि स्नान अन्न दै दाना । एको तासैं नाम बखाना । यहि के माँहि छूट जो होई । एकादसि बिसरावा सोई ।—सबल (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—मिलना ।—पाना ।

५. वह धन या रुपया जो किसी के यहाँ चाहता या बकाया हो पर किसी कारण से जमींदार या महाजन जिसे छोड़ दे । वह देना जो माफ हो जाय । ६. स्वतंत्रता । स्वच्छंदता । आजादी । ७. वह उपहास की बात जो किसी पर लक्ष्य करके निःसंकोच कही जाय । वह उक्ति जो बिना शिष्टता आदि का विचार किए किसी पर कही जाय । गाली गलौज ।

क्रि० प्र०—चलना ।—होना ।

८. पटेत, फेंकैत बंकैत आदि की वह लड़ाई जिसमें जहाँ जिसे दाँव मिले वह बेधड़क वार करे ।

क्रि० प्र०—लड़ना ।

९. स्त्री पुरुष का परस्पर संबंधत्याग । तिलाक । १०. वह स्थान जहाँ से कबूतरबाज शर्त बदकर कबूतर छोड़ें । ११. बौछार । छींटा । १२. मालखंभ की एक कसरत जिसमें कोई पकड़ करके हाथों के थपेड़े देकर नीचे कूदते हैं ।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है, एक 'दो हत्थी' दूसरी 'उलटी' । दो हत्थी में दोनों हाथों से बेंत पकड़ते हैं फिर जिस प्रकार उड़ान की थी उसी प्रकार पैरों को पीठ के पास ले जाकर उलटा उतारते हैं ।

छूटछुटाव—संज्ञा पुं० [हिं०] संबंधविच्छेद ।

छूटनहार—वि० [सं० √छुट् (=छेद), प्रा० छुट्टण, हिं० छूटन+हार (प्रत्य०)] छूटनेवाला । उ०—तातें यह ग्रंथ दिए आपुन छूटनहार नहीं ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २०२ ।

छूटना—क्रि० अ० [सं० छुट√ (=बंधनादि काटना)] १. किसी बँधी, लगी, फँसी, उलझी या पकड़ी हुई वस्तु का अलग होना । लगाव में न रहना । संलग्न न रहना । दूर होना । जैसे, (खूँटे से) घोड़ा छूटना, छिलका छूटना, (चिपका हुआ) टिकट छूटना, गाँठ छूटना, (पकड़ा हुआ) हाथ छूटना, आदि । उ०—सखि, सरद निसा विधुवदनि वधूटी । ऐसी ललना सलोनी न भई, न है होनी । रतिहु रची विधि जो छोलत छवि छूटी ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—शरीर छूटना=मृत्यु होना । प्राण छूटना=मृत्यु होना । साहस या हिम्मत छूटना=साहस न रहना । छूट पड़ना=किसी पकड़ी या बँधी हुई वस्तु का अलग होकर नीचे गिर जाना । जैसे,—गिलास हाथ से छूट पड़ा और फूट गया ।

२. किसी बाँधने या पकड़नेवाली वस्तु का ढीला पड़ना या अलग होना । जैसे, रस्सी छूटना, बंधन छूटना । ३. किसी पुती या लगी हुई वस्तु का अलग होना या दूर होना । जैसे,—रंग छूटना, मैल छूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

४. किसी बंधन से मुक्त होना । छुटकारा होना । रिहाई होना । किसी ऐसी स्थिति से दूर होना जिसमें स्वच्छंद गति आदि का अवरोध हो । जैसे,—कैद से छूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. प्रस्थान करना । रवाना होना । चल पड़ना । चला जाना । जैसे,—चोरों को पकड़ने के लिये चारों ओर सिपाही छूटे हैं । ६. किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान का अपने से दूर पड़ जाना ।

वियुक्त होना। बिछड़ना। जैसे, घर छूटना, भाई बंधु छूटना। जैसे,—वह दूकान तो पीछे छूट गई।

संयो० क्रि० -जाना।

मुहा०—बंदूक छूटना=बंदूक से गोली निकलना और शब्द होना। बंदूक चलाना।

विशेष—बंदूक, पडाके आदि के संबंध में केवल शब्द होने के अर्थ में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है।

८. किसी बात का, जो रह रहकर बराबर होती रहे, बंद होना। किसी क्रिया का, जो समय समय पर बराबर होती रहे, दूर होना। न रह जाना। जैसे, आना जाना छूटना, आदत छूटना, अभ्यास छूटना, शराब (अर्थात् शराबी का पीना) छूटना, दम छूटना, बुखार छूटना, रोग छूटना, चौथिया छूटना।

विशेष—फोड़ा, बवासीर, फीलपाव आदि बाहरी शरीर पर स्थायी लक्षण रखनेवाले रोगों के लिये इस क्रिया का व्यवहार प्रायः नहीं होता। इसी प्रकार समय समय पर होनेवाली बात का किसी एक विशेष समय में न होना छूटना नहीं कहलाता। जैसे, यदि किसी को बुखार चढ़ा है या सिर में दर्द है और वह दवा देने से उस समय दूर हो गया तो उसे 'छूटना' नहीं कहेंगे 'उतरना' या 'दूर होना' ही कहेंगे।

मुहा०—नाड़ी छूटना=(१) नाड़ी का चलना बंद हो जाना। (२) नाड़ी की गति का अपने स्थान पर न मिलना।

९. किसी वस्तु में से वेग के साथ निकलना। जैसे,—रक्त की धार छूटना। १०. रस रस कर (पानी) निकलना। जैसे,—इस तरकारी में से पकाते वक्त पानी बहुत छूटता है। ११. किसी ऐसी वस्तु का अपनी क्रिया में तत्पर होना जिसमें से कोई वस्तु कणों या छींटों के रूप में वेग से बाहर निकले। जैसे, पिचकारी छूटना, फौवारा छूटना, आतिशबाजी छूटना।

मुहा०—पेट छूटना=दस्त जारी होना।

१२. काम आने से बचना। शेष रहना। बाकी रहना। जैसे,—उसके आगे जो छूटा है तुम खा लो। १३. किसी काम का या उसके किसी अंग का, भूल से न किया जाना। कोई काम करते समय उससे संबंध रखनेवाली किसी बात या वस्तु पर ध्यान न जाना। भूल या प्रमाद से किसी वस्तु का कहीं पर प्रयुक्त न होना, रखा न जाना या लिया न जाना। रह जाना। जैसे, लिखने में अक्षर छूटना, इकट्ठा करने में कोई वस्तु छूटना, रेल पर छाता छूट जाना, आदि।

संयो० क्रि०—जाना।

१४. किसी कार्य से हटाया जाना। नौकरी से अलग किया जाना। बरखास्त होना। जैसे, नौकरी से छूटना। १५. किसी वृत्ति या जीविका का बंद होना। रोजी या जीविका का न रह जाना। जैसे, नौकरी छूटना, बँधा हुआ सीधा छूटना। १६. पशुओं का अपनी मादा से संयोग करना।

मुहा०—किसी पर छूटना=किसी मादा से संयोग करना।

छूटिक(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० छूट] बंधन से मुक्ति। छुटकारा। उ०—जिन बातिन तेरो छूटिक नाहीं सोइ मन तेरे भायो। कामी ह्वै बिषिया सँगि लाग्यो रोम रोम लपटायो।—दादू०, पृ० ५८८।

छूत—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] १. छूने का भाव। स्पर्श। संसर्ग। छुवाव।

यौ० छुआ छूत। छूत छात।

२. गंदी अशुचि या रोगसंचारक वस्तु का स्पर्श। अस्पृश्य का संसर्ग। जैसे,—(क) बहुत से रोग छूत से फैलते हैं। (ख) शीतला में लोग छूत बचाते हैं।

यौ०—छूत का रोग, छूत की बीमारी=वह रोग जो किसी से छू जाने से हो। स्पर्शजन्य रोग।

३. अशुचि वस्तु के छूने का दोष या दूषण। जैसे,—इस बरतन में कौन सी छूत लगी है?

मुहा०—छूत उतारना=अशुचि स्पर्श का दोष दूर होना।

४. किसी मनहूस आदमी या भूत प्रेत की छाया। भूत आदि लगने का बुरा प्रभाव।

मुहा०—छूत उतारना=भूत प्रेत की छाया का प्रभाव मंत्र से दूर करना। छूत झाड़ना=दे० 'छूत उतारना'।

छूति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूत] भूत प्रेत या मनहूस अथवा कापालिक आदि की छाया। छूत। उ०—देखि भभूति छूति मोहिं लागै। काँपै चाँद, सूर सौं भागै।—जायसी ग्रं०, पृ० १३४।

क्रि० प्र०—लगना।

छूना१—क्रि० अ० [सं० छुप, प्रा० छुव+हिं० ना (प्रत्य०), पूर्वी हिं० छुवना] एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास पहुँचना कि दोनों के कुछ अंश एक दूसरे से लग जायँ। एक वस्तु के किसी अंश का दूसरी वस्तु के किसी अंश से इस प्रकार मिलना कि दोनों के बीच कुछ अंतर या अवकाश न रह जाय। स्पर्श होना। आंशिक संयोग होना। जैसे,—चारपाई ऐसे ढंग से बिछाओ कि कहीं दीवार से न छू जाय।

संयो० क्रि०—जाना।

छूना२—क्रि० स० १. किसी वस्तु तक पहुँचकर उसके किसी अंग को अपने किसी अंग से सटाना या लगाना। किसी वस्तु की ओर आप बढ़कर उसे इतना निकट करना कि बीच में कुछ अवकाश या अंतर न रह जाय। स्पर्श करना। संसर्ग में लाना। जैसे,—धीरे धीरे यह डाल छत को छू लेगी।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—आकाश छूना=बहुत ऊँचे तक जाना। बहुत ऊँचा होना।

२. हाथ बढ़ाकर उँगलियों के संसर्ग में लाना। हाथ लगाना। त्वगिंद्रिय द्वारा अनुभव करना। जैसे,—(क) इसे छूकर देखो कितना कड़ा है। (ख) इस पुस्तक को मत छूओ।

मुहा०—छूने से होना या छूने को होना=रजस्वला होना।

३. दान के लिये किसी वस्तु को स्पर्श करना। दान देना। जैसे, खिचड़ी छूना, बछिया छूना या छूकर देना। सोना छूना।

विशेष—दान देने के समय वस्तु को मंत्र पढ़कर स्पर्श करने का विधान है।

४. दौड़ की बाजी में किसी को पकड़ना। ५. उन्नति का समान श्रेणी में पहुँचना। जैसे,—यह लड़का अभी छठे दरजे में है पर दो बरस में तुम्हें छू लेगा। ६. धीरे से मारना। जैसे, तुम जरा सा छूने से रोने लगते हो। ७. थोड़ा व्यवहार करना। बहुत कम काम में लाना। जैसे, छुट्टी में तुमने कभी किताब छुई है। ८. पोतना। लगाना। जैसे,—चूना छूना, रंग छूना।

छूही¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोई] सीठी। खोई। छोई। उ०—छानत द्वार फिरै निस बासर कौड़ी को सब भू ही। अमृत छाड़ि निलज्ज मूढ़ मति पकरत नीरस छूही।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८४०।

छूही²†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तूप ?] १. मिट्टी या ईंट की छोटी दीवाल। २. कुएँ की जगत पर कच्ची मिट्टी के बने स्तूप।

छूरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छुरा'।

छूरो†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुरा] दे० 'छुरी'।

छेंक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] छेंकने का भाव।

यौ०—छेंक छांक। रोक छेंक।

छेंकना—क्रि० स० [सं०√छद् (=ढाँकना)+करण अथवा सं० छेवक (=काटनेवाला, ला० रोकना, घेरना, बाधक होना), प्रा०* छेअक > छेक > हिं० √छेंक+ना (प्रत्य०)] १. आच्छादित करना। स्थान घेरना। जगह लेना। जैसे,—(क) कितनी जगह तो यह पेड़ छेंके है। (ख) इस रोग की दवा करो नहीं तो यह सारा चेहरा छेंक लेगा। २. घेरना। रोकना। गति का अवरोध करना। रास्ता बंद करना। जाने न देना। उ०—(क) प्रभु करुणामय परम विवेकी। तनु तजि रहत छाँह किमि छेंकी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मेघनाद सुनि स्रवन अस गढ़ पुनि छेका आइ। उतरि दुर्ग ते बीर वर सम्मुख चलेउ बजाइ।—तुलसी (शब्द०)। ३. लकीरों से घेरना। रेखा के भीतर डालना। ४. लिखे हुए अक्षर को लकीर से काटना। मिटाना। जैसे,—इस पोथी में जहाँ जहाँ अशुद्ध हो छेंक दो। उ०—सोइ गोसाई विधि गति जेइ छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी (शब्द०)।

छेंवर—संज्ञा पुं० [देश०] एक घास जो चारे के काम आती है। घंटील।

छेक¹—वि० [सं०] १. पालतू। घरेलू। २. नागर। विदग्ध। ३. शहरी। नागरिक (को०)।

छेक²—संज्ञा पुं० १. घर के पालतू पशु पक्षी। २. नागर व्यक्ति। ३ छेकानुप्रास।

छेक³—संज्ञा पुं० [हिं० छेद] १. छेद। सूराख। उ०—सत गुरु साँचा सूरमा शब्द जो मारा एक। लागत ही भय मिट गया परा कलेजे छेक।—कबीर (शब्द०)। २. कटाव। विभाग। उ०—कबिरा सपने रैन में परा जीव में छेक। जैसे हुत्तो दुइ जना जो जागूँ तो एक।—कबीर (शब्द०)।

छेकनी†—वि० [हिं० छेंकना] छेकनेवाली। रोकनेवाली। उ०—यहै इस्क की रीति ऊँच नीच कह देखनी। कई स्याम सों प्रीति लोक लाज सब छेकनी।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३५।

छेकानुप्रास—संज्ञा पुं० [सं०] एक शब्दालंकार। अनुप्रास अलंकार के पाँच भेदों में एक जिसमें एक ही चरण में दो या अधिक वर्णों की आवृत्ति कुछ अंतर पर होती है। जैसे—अभोज अंवक अंबु उमगि सुअग पुलकावलि छई।—मानस, १।३१८।

छेकापह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें दूसरे के ठीक अनुमान या अटकल का अयथार्थ उक्ति से खंडन किया जाता है। जैसे—सीसी कर न सिखात है करत अधर छत पीर। कहा मिल्यो नागर पिया ? नहिं सखि सिसिर समीर। यहाँ नायिका के अधर पर क्षत देखकर सखी अपना अनुमान प्रकट करती है कि क्या नायक मिला था? इसपर नायिका ने यह कहकर कि 'नहीं शिशिर की हवा लगती है', उसके अनुमान का खंडन किया।

छेकाल, छेकिल—वि० [सं०] दे० 'छेक'।

छेकोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लोकोक्ति जो अर्थांतरगर्भित हो अर्थात् जिससे अन्य अर्थ की भी ध्वनि निकले। जैसे,—जानत सबे भुजंग ही जग में चरण भुजंग।—(शब्द०)।

छेटा†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त] बाधा। रुकावट। उ०—कह्यो कुलिंद भूप कर बेटा। ढाँड़ देत में डारत छेटा।—रघुराज (शब्द०)।

छेड़¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेद] १. छू या खोद खादकर तंग करने की क्रिया। २. व्यंग्य, उपहास आदि के द्वारा किसी को चिढ़ाने या तंग करने की क्रिया। हँसी ठठोली करके कुढ़ाने का काम। चुटकी।

यौ०—छेड़खानी। छेड़छाड़=हँसी ठठोली। चुटकी।

३. ऐसी बात या क्रिया जिससे दूसरा कोई चिढ़े। चिढ़ानेवाली बात।

मुहा०—छेड़ निकालना=चिढ़ानेवाली बात स्थिर करना। जैसे,—उसे चिढ़ाने के लिये तुमने अच्छी छेड़ निकाली है।

४. रगड़ा। झगड़ा। परस्पर की चोटें। एक दूसरे के विरुद्ध दाँवपेच। विरोध। जैसे,—उन दोनों में खूब छेड़ चली है। ५. बाजे में गति या शब्द उत्पन्न करने के लिये उसे छूने की क्रिया। बजाने के लिये किसी (विशेषतः तारवाले, जैसे; सितार) वाद्ययंत्र का स्पर्श।

छेड़²†—संज्ञा पुं० छेद। सूराख।

छेड़ना—क्रि० स० [हिं० छेदना] १. छूना या खोदना खादना। दबाना। कोंचना। जैसे,—इस फोड़े को छेड़ना मत, दवा लगाकर छोड़ देना। २. छू या खोद खादकर भड़काना या तंग करना। जैसे,—कुत्ते को मत छेड़ो, काट खायगा। ३. किसी को उत्तेजित करने या चिढ़ाने के लिये उसके विरुद्ध कोई ऐसा कार्य करना जिससे वह बदला लेने के लिये तैयार हो। जैसे,—तुम पहले उसे न छेड़ते तो वह तुम्हारे पीछे क्यों पड़ता। ४. व्यंग्य, उपहास आदि द्वारा किसी को चिढ़ाना या तंग करना। हँसी ठठोली करके कुढ़ना। चुटकी लेना। दिल्लगी करना। ५. कोई बात या कार्य आरंभ करना। उठाना। शुरू करना। जैसे, काम छेड़ना, बात छेड़ना, चर्चा छेड़ना, राग छेड़ना, आदि। ६. बाजे (विशेषतः तारवाले)

में शब्द या गति उत्पन्न करने के लिये उसे छूना। वाद्ययंत्र में क्रिया या शब्द उत्पन्न करने के लिये स्पर्श करना। बजाने के लिये बाजे में हाथ लगाना। जैसे, सितार छेड़ना, सारंगी छेड़ना। ७. छेद करना। †८. नश्तर से फोड़ा चीरना।

छेड़वाना—क्रि० स० [हिं० छेड़ना का प्रे० रूप] छेड़ने का काम कराना।

छेड़ा—संज्ञा पुं० रस्सी। सांट।—(लश०)। जैसे, वारीक छेड़ा।

छेतर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्र] दे० 'क्षेत्र'। उ०—राजस तामस सातुकी, छेतर तीनहिं भाँति। छेत्रक आतम देव है सबको महिं ये क्रांति।—चरण० बानी, भा० २, पृ० २२०।

छेतरना(पु)—क्रि० स० [सं० छिद्√दिर् (=विदारण, छेत्तृ)] १. दुःख देना। पीड़ा पहुँचाना। उ०—(क) हित विण प्यारा सज्जणा, छल करि छेतरियाह। पहिली लाड लडाइ करि, पाछइ परिहरियाह।—ढोला०, दू० ४७१। (ख) आवि विदेसी वल्लहा छल करि छेतरियाह।—ढोला०, दू० ४१८। (ग) सोहणा, थे मने छेतरी बीजी भीजी खेल।—ढोला०, दू० ५११।

छेती—संज्ञा स्त्री० [प्रा० छित्ती] १. विच्छेद। बिलगाव। रुकाव। उ०—तीरभूमि निहारि हिय तें जाति जड़ता चेति। द्रवित आनँदघन निरंतर परति नाहिन छेति।—घनानंद, पृ० ४६२। २. अंतर। फासला। दूरी। उ०—ऊँमर विच छेती घणी घाते गयउ जिहाज। चारण ढोलइ साँमुहउ, आइ कियउ सुभ राज।—ढोला० दू० ६४३।

छेत्ता—वि० [सं० छेत्तृ] १. काटनेवाला। छेदन करनेवाला। २. नष्ट करनेवाला। निवारण करनेवाला। दूर करनेवाला। (भ्रमादि) ३. लकड़ी काटनेवाला [को०]।

छेत्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्र] दे० 'क्षेत्र'।

छेत्रक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रज्ञ] दे० 'क्षेत्रज्ञ'²। उ०—राजस तामस सातुकी छेतर तीनहिं भाँति। छेत्रक आतमदेव है, सबको महिं ये क्रांति।—चरण० बानी, भा० २, पृ० २२०।

छेद¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. छेदन। काटने का काम। २. नाश। ध्वंस। जैसे, उच्छेद, वंशच्छेद। ३. छेदन करनेवाला। ४. गणित में भाजक। ५. खंड। टुकड़ा। ६. श्वेतांबर जैन संप्रदाय के ग्रंथों का एक भेद। ७. विराम। अवसान। समाप्ति (को०)। ८. कोई परिचयात्मक चिह्न। लक्षण (को०)। ९. कटने का घाव या चिह्न (को०)।

छेद²—संज्ञा पुं० [सं० छिद्र] १. किसी वस्तु में वह खाली स्थान जो फटने या सुई, काँटे हथियार आदि के आरपार चुभने से होता है। किसी वस्तु में वह शून्य या खुला स्थान जिसमें होकर कोई वस्तु इस पार उस पार जा सके। सूराख। छिद्र। रंध्र। जैसे, छलनी के छेद, कपड़े में छेद, सुई का छेद। जैसे,—दीवार के छेद में से बाहर की चीजें दिखाई पड़ती हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. वह खाली स्थान जो (खुदने, कटने, फटने या और किसी कारण से) किसी वस्तु में कुछ दूर तक पड़ा हो। बिल। दरज। खोखला। विवर। कुहर। ३. दोष। दूषण। ऐब।

क्रि० प्र०—ढूँढना।—मिलना।

छेदक—वि० [सं०] १. छेदनेवाला। काटनेवाला। २. नाश करनेवाला। ३. विभाजक। भाजक। छेद।

छेदकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी काटनेवाला। बढ़ई [को०]।

छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. काटने या आरपार चुभाने की क्रिया या भाव। काटकर अलग करने का काम। चीरफाड़।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. नाश। ध्वंस। ३. छेदक। काटने या छेदने का अस्त्र। ४. वह औषध जो कफ आदि को छाँटकर निकाल दे।

छेदनहार†—वि० [हिं० छेदन+हार (प्रत्य०)] छेदने या काटनेवाला।

छेदना¹—क्रि० स० [सं० छेदन] १. किसी वस्तु को सुई, काँटे, भाले, बरछी आदि से इस प्रकार दबाना कि उसमें आरपार छेद हो जाय। सुई, कील या और कोई नुकीली वस्तु एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व तक चुभाकर किसी वस्तु को छिद्रयुक्त करना। वेधना। भेदना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

विशेष—यदि कैंची से कतरकर, या और किसी ढंग से किसी वस्तु में छेद बनाए जाएँ तो यह कार्य उस वस्तु को 'छेदना' नहीं कहलाएगा।

२. क्षत करना। घाव करना। जैसे,—तीरों ने उसका सारा शरीर छेद डाला। ३. काटना। छिन्न करना।

छेदना²—संज्ञा पुं० वह औजार जिससे छेद किया जाय। जैसे, सूआ, सुतारी, आदि।

छेदनिहार(पु)—वि० [हिं] दे० 'छेदनहार'। उ०—सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा।—मानस, १।२७२।

छेदनीय—वि० [सं०] छेदने के योग्य। छेद्य।

छेदा—संज्ञा पुं० [हिं० छेदना] १. घुन नाम का कीड़ा। २. अन्न में वह विकार जो इस कीड़े के कारण पैदा होता है। घुन द्वारा खाए जाने के कारण अनाज के खोखला होने का दोष। ३. छेद। सूराख। छिद्र।

छेदि¹—वि० [सं०] १. काटने या छेदन करनेवाला। २. तोड़नेवाला। नष्ट करनेवाला [को०]।

छेदि²—संज्ञा पुं० १. बढ़ई। २. इंद्र का वज्र [को०]।

छेदित—वि० [सं०] काटा हुआ। विभक्त। छिन्न [को०]।

छेदी—वि० [सं० छेदिन्] १. काटनेवाला। विभाजन करनेवाला। २. नष्ट करनेवाला। हटानेवाला [को०]।

छेदोपस्थानिकचारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] गणाधिप के दिए हुए प्राणातिपातादि पाँच महाव्रतों का पालन। छेदोपस्थानीय। (जैन)।

छेद्य¹—वि० [सं०] छेदन करने योग्य। छेदनीय।

छेद्य²—संज्ञा पुं० १. परेवा। कबूतर। २. वैद्यक में आँख के रोगों की

चिकित्सा का एक ढंग । इसमें आँख में नमक का चूर्ण डालते हैं तथा कभी कभी शस्त्रचिकित्सा भी करते हैं । ३. अंगच्छेदन । चीरफाड़ । शल्य क्रिया (को०) ।

छेद्यकंठ—संज्ञा पुं० [सं० छेद्यकण्ठ] कबूतर । परेवा ।

छेना[1]—संज्ञा पुं० [सं० छेदन] १. फाड़ा हुआ दूध जिसका पानी निचोड़कर निकाल दिया गया हो । फटे दूध का खोया । पनीर ।

विशेष—इसके बनाने की रीति यह है कि खौलते हुए दूध में खटाई या फिटकरी डाल देते हैं जिससे वह फट जाता है अर्थात् उसके पानी का अंश सफेद भुरभुरे अंश से अलग हो जाता है । फिर फटे हुए दूध को एक कपड़े में रखकर निचोड़ते हैं जिससे पानी निकल जाता है और दूध का सफेद भुरभुरा अंश बच रहता है जो छेना कहलाता है । इस छेने से बंगाल अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनती हैं । दही गरम करके भी एक प्रकार का छेना बनाया जाता है ।

२. कंडा । उपला । गोइँठा । गोहरी ।

छेना[2]—क्रि० स० १. कुल्हाड़ी आदि से काटना या घाव करना । छिनगाना । २. छीजना । दे० 'छैना' ।

छेनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेना] १. लोहे का वह औजार जिससे धातु, पत्थर आदि काटे या नकाशे जाते हैं । टाँकी ।

विशेष—यह पाँच छह अंगुल लंबा लोहे का टुकड़ा होता है जिसके एक ओर चौड़ी धार होती है । नक्काशी करते समय इसे नोक के बल रखकर ऊपर ठोंकते हैं । नक्काशी करने की छेनी के सोलह भेद हैं—(१) खेरना । इससे गोल लकीर बनाई जाती है । (२) चेरना । इससे सीधी लकीर बनाई जाती है । (३) पगेरना । इससे लहर बनाई जाती है । (४) गुलसुम । इससे गोल गोल दाने बनाए जाते हैं । (५) फुलना । इससे फूल और पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (६) बलिस्त । इससे बड़ी बडी पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (७) दोन्नर्द । इससे छोटी पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (८) तिलरा । (९) डिगा । इन दोनों से गोल महराब काटा जाता है । (१०) किर्रा । इससे बेल और पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (११) मलकरना । इससे दोहरी लकीर बनती है । (१२) सूतदार पगेरना । इससे एक बार में दोहरी लहर बनती है । (१३) गोटरा । इससे गोल नक्काशी बनाई जाती है । (१४) पनदार गोटरा । इससे पान बनाया जाता है । (१५) चौकोना गुलसुम । (१६) तिकोना गुलसुम । इन दोनों से चौकोनी और तिकोनी नक्काशी बनाई जाती है ।

२. वह नहरनी जिससे पोस्ते से अफीम पोछकर निकाली जाती है ।

छेमंड—संज्ञा पुं० [सं० छेमण्ड] बिना माँ बाप का लड़का । अनाथ या यतीम बच्चा ।

छेम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्षेम] दे० 'क्षेम' । उ०—(क) जाय कहब करतूति बिनु जाय जोग बिनु छेम । तुलसी जाय उपासब बिना राम पद प्रेम ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बड़ि प्रतीति गठबंध ते बड़ो जोग ते छेम । बड़ो सुसेवक साइँ ते बड़ो नाम ते प्रेम ।—तुलसी (शब्द०) ।

छेमकरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेमकरी] सफेद चील । उ०—(क) छेमकरी कह छेम बिसेखी । स्यामा बाम सुतरु पर देखी । मानस, १ । ३०३ । (ख) लाभ लाभ लोवा कहत छेमकरी कह छेम । चलत बिभीषनु सगुन सुनि तुलसी पुलकत प्रेम—तुलसी (शब्द०) ।

छेमा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा, पुं० हिं० छिमा] दे० 'क्षमा' । उ०—छेमा कपाट का ताला, कुंजी सुरत निरत का तीर ।—रामानंद०, पृ० ३२ ।

छेरना†—क्रि० अ० [सं० क्षरण] अपच के कारण बार बार पाखाना फिरना ।

छेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छेलिका] बकरी । अजा ।

छेल(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छैल' । उ०—तरतम तजेकर दूरे छेल इछहि छोड़ह मोर चीर ।—विद्यापति, पृ० २०३ ।

छेलक—संज्ञा पुं० [सं०] बकरा (को०) ।

छेल चिकनिया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छैलचिकनिया' । उ०—तब चाचा हरिवंस जी ने कही जो यहाँ कहूँ वह छेल चिकनिया आयो होइगो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ५७ ।

छेली‡—संज्ञा स्त्री० [सं० छेलिका] दे० 'छेरी' । उ०—बहु अप्पम गाय महिषीन तुंग । छेली छयल्ल गड़रन्न पुंग । पृ० रा०, १७।३३ ।

छेव[1]—संज्ञा पुं० [सं० छेद, प्रा० छेव] १. काटने, छीलने आदि के लिये किया हुआ आघात । वार । चोट । उ०—तबै मेव यह कही बीर ठाढ़ी रहु ठाढ़ो । अब नहिं जीवत जाइ लोह करिहौं रन गाढ़ो । सुनत राव ह्वै क्रुद्ध जुद्ध में तेगहि भारी । तहो मेव गहि छेव तुरंगम ते गहि डारी । भू परयो परी ह्वै तीन असि बड़गूजर के अंग पर । लियो सीस काटि साथी सहित राव रुंड सोयो समर ।—सूदन (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—मारना ।—लगना ।—लगाना ।

२. वह चिह्न जो काटने छीलने आदि से पड़े । जखम । घाव । जैसे,—उसने इस पेड़ में कुल्हाड़ी से कई छेव लगाए हैं । उ० अरिन के उर माँहि कीन्ह्यो इमि छेव है ।—भूषण (शब्द०)

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।—पड़ना ।

मुहा०—छल छेव=कपट व्यवहार । कुटिलता का दाँव पेंच । छल छिद्र । उ०—जानत नहीं कहाँ ते सीखे चोरी के छल छेव ।—सूर (शब्द०) ।

३. आनेवाली आपत्ति । होनहार । दुःख । ४. किसी दुष्कर्म या क्रूर ग्रह आदि के प्रभाव से होनेवाला अनिष्ट ।

क्रि० प्र०—उतरना ।—छूटना ।—टलना ।—मिटना ।

छेव[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टेव' ।

छेव[3]—संज्ञा पुं० [देशी छेअ] अंत । समाप्ति । पर्यंत । छोर ।

छेवन—संज्ञा पुं० [हिं० छेवना,=काटना,] वह तागा जिससे कुम्हार चाक पर के बरतन को काटकर अलग करते हैं ।

छेवना¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेना] ताड़ी ।

छेवना² —क्रि० स० [सं० छेदन] १. काटना । छिन्न करना । छिनगाना । २. चिह्नित करना । चिह्न लगाना ।

छेवना³(पु)—क्रि० स० [क्षेपण] १. फेंकना । मिलाना । उ०—अंत भयो प्रारब्ध को पायो निश्चल गेह । आतम परमातम मिल्यो देह खेत महँ छेव ।—निश्चल (शब्द०) । २. ऊपर डालना ।

मुहा०—जी पर छेवना=अपने ऊपर विपत्ति डालना । जी पर खेलना । उ०—जो अस कोई जिउ पर छेवा। देवता आइ करहिं नित सेवा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) भौंर खोजि जस पावैं केवा । तुम्ह कारन मैं जिय पर छेवा ।—जायसी (शब्द०) ।

छेवनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेना (=काटना)] दे० 'छेनी' ।

छेवर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेवना] १. छाल । वक्कल । २. छिलका । ३. चमड़ा । त्वचा ।

क्रि० प्र०— उघड़ना ।—उधेड़ना ।

छेवरा†—संज्ञा पुं० [हिं० छेवर] दे० 'छेवर' ।

छेवा†—संज्ञा पुं० [हिं० छेव] १. छीलने या काटने का काम । २. वह आघात जो छीलने या काटने के लिये किया जाय । चोट । छीलने या काटने का चिह्न । घाव । जखम । ४. अत्यंत वेग से बहने वाला जल ।—(मल्लाह) ।

छेह(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० छेव] १. दे० 'छेव' । २. खंडन । नाश । उ० ब्रह्म भिन्न मिथ्या सब भाख्यो । तिनको भेद हेत कहि राख्यो । उपजो यह मोको संदेहा । प्रभु ताको अब कीजे छेहा ।—निश्चल (शब्द०) ।

छेह² (पु)—वि० १. टुकड़े टुकड़े किया हुआ । खंडित। २. न्यून । कम । उ०—पूरा सहजै गुण करे गुण ना आवै छेह। सायर पोसे सर भरे दामन भीगे मेह ।—कबीर (शब्द०) ।

छेह³(पु) —संज्ञा पुं० [सं०क्षिप्] नृत्य का एक भेद ।

छेह⁴(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षार] मिट्टी । राख। छार। वि० दे० 'खेह' ।

छेह⁵†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाया या छाँह] दे० 'छाया' ।

छेह⁶(पु)†—वि० [अप० छेह] छह । उ०—जलहि तत्व ऐ सूर्य सवारा। छेह मास आनंद विचारा ।—कबीर सा०, पृ० ८७६ ।

छेह⁷(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० छेअ] अंत । समाप्ति । प्रांत । पर्यंत । किनारा । उ०—(क) साइधण हल्लण सांभलइ, ऊभी आंगण छेह। काजल जल भेला करी, नाखी नांख भरेह ।—ढोला०, दू०, ३३७ । (ख) खेता पूछो जीव सनेही । गिनत गिनत ना आवै छेही ।—कबीर सा०, पृ० ५४६ ।

छेहड़ा(पु)†—वि० [हिं० छेह+ड़ (प्रत्य०)] न्यून । कम । दे० 'छेह' । उ०—सौदा सतगुरु सूँ दिया राम नाम धन काज । लाभ न कोई छेहड़ो तोटा सबही भाज ।—राम० धर्म०, पृ० ५८ ।

छेहरा†—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] छाया । साया ।

छेहरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० छाया] अलगाव । व्यवधान । विच्छेद । विरह । उ०—कह्यौ न परत कछु रह्यौ न परत है सह्यौ न परत छिन छेहरा ।—घनानंद, पृ० ३३८ ।

छै¹†—वि०, संज्ञा पुं० [सं० षट्] दे० 'छ' ।

छै²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षय] दे० 'क्षय', 'छय' । उ०—यह कहि पारथ हरि पुर गए । सुन्यो सकल जादव छै भए ।—सूर०, १ । २८६ ।

छैऊ(पु)†—वि० [हिं०] छहों । उ०—सार वेद चारौ कौ जोइ । छैऊ सास्त्र सार पुनि सोइ ।—सूर०, ७ । २ ।

छकार†—संज्ञा पुं० [हिं० छय, छै] क्षय । विनाश । उ०—होवे दुरमति वंश तुम्हारा । ताते होवे विंद छैकारा ।—कबीर सा०, पृ० ३१० ।

छैना(पु)—क्रि० अ० [सं०√क्षि > क्षयण; हिं० छय + ना < प्रत्य०)] १. छीजना । क्षीण होना । कम होना । २. नष्ट होना ।

मुहा०—छै जाना=छेद का फट जाना । किसी छेद का फैलकर इतना बढ़ जाना कि उसके आसपास का स्थान फट जाय । जैसे, कान छै जाना; अर्थात् कान में किए हुए छेद का इतना फैल जाना कि लौ फट जाना ।

छैयाँ¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छावँ' । उ०—(क) जाति पाँति हम तें बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ ।—सूर० १०। २४५ । (ख) माई आजु तो हिंडोर झूलैं छैयाँ कदम की । गोपी सब ठाढ़ी मानों चित्र सी सदन की ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७८ ।

छैया²(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० शावक, हिं० छावना] बच्चा । वत्स । (प्यार का शब्द) । उ०—(क) कहत मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया—तुलसी ग्रं०, पृ० २७७ ।(ख) विसकर्मा सूतहार, रच्यो काम ह्वै सुनार, मनिगन लागे अपार काज महर छैया ।—सूर०, पृ० १० । ४१ ।

छैया†(पु)—वि० [सं०] १. क्षय होनेवाला । छोजनेवाला । २. नष्ट करनेवाला ।

छैल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० छवि + प्रा० इल्ला (प्रत्य०), प्रा० छबिल्ल, छयल्ल, छइल्ल] सुंदर और बना ठना आदमी । सुंदर वेशविन्यासयुक्त पुरुष । वह पुरुष जो अपना अंग खूब सजाए हो । बाँका । शौकीन । रँगीला । उ०—छरे छबीले छैल सब सूर सुजान नवीन । जुग पदचर असवार प्रति जे असिकला प्रवीन । —मानस, १ । २९८ ।

यौ०—छैल चिकनियाँ । छैल छबीला ।

छैल चिकनियाँ—संज्ञा पुं० [देश०] शौकीन । बना ठना आदमी । उ०—छैल चिकनिया उभै घनेरे ।—कबीर० सा०, पृ० ३१ ।

छैलछबीला—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० छैलछबीली] १. सजाबजा और युवा पुरुष । रँगीला पुरुष । बाँका । उ०—उत नव नागरि राधिका, छैलछबीली सोय । फाग रंग रस रंग मैं, तामस और न कोय ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २३ । २. । छरीला नाम का पौधा ।

छैलपन—संज्ञा पु० [हिं० छैल+पन (प्रत्य०)] बाँकापन । सजीलापन । उ०—हमें अबला थिक अलप गेआन । तोहर छैलपन निदत आन ।—विद्यापति. पृ० २८४ ।

छैला—संज्ञा पुं० [सं० छवि + प्रा० इल्ल (प्रत्य०), प्रा० छविल्ल, छयल्ल, छइल्ल] सुंदर और बना ठना आदमी। सुंदर वेशविन्यासयुक्त पुरुष। जो अपना अंग खूब सजाए हो। सजीला। बाँका। रँगीला। शौकीन।

छोंकर—संज्ञा पुं० [सं० शङ्कुरा] शमी का वृक्ष। सफेद कीकर। उ०—छोंकर के वृक्ष वटुआ झुलाइ दियो, कियो जाय दरशन सुख भयो भारिए।—भक्तमाल, पृ० ५६६।

छोंकरा—संज्ञा पुं० [सं० शङ्कुरा] दे० 'छोंकर'।

छोंड़ा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्ष्वेड] वह लकड़ी जिससे दही मथा जाता है। मथानी।

छोंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० शावक] [स्त्री० छोंड़ि, छोंड़ी] दे० 'छौंड़ा'।

छोंड़ि¹—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्वेडिका] मथानी।

छोंड़ि²—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोणि] बड़ा बरतन।

छोंत†—संज्ञा पुं० [हिं०] छिलका। उ०—ओगण सह कर एकठा, विदर वणाया वेह। ज्यां मझ कांदा छोंत जिम, छिदरां रो नहि छेह।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६१।

छो-संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ, हिं० छोह] १. छोह। प्रेम। प्रीति। चाह। २. दया। कृपा ३. क्रोधजनित दुःख। क्षोभ। कोप। गुस्सा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रखना।

छोइआ†—संज्ञा स्त्री० [देशी०] दे० 'छोई'।

छोई‡—संज्ञा स्त्री० [देशी छोइया, अथवा हिं० छोलना] १. ईख की पत्तियाँ जो उसमें से छीलकर फेंक दी जाती हैं। २. गन्ने की वह गड़ेरी या गन्ना जिसका रस चूसकर या पेरकर निकाल लिया गया हो। बिना रसकी गड़ेरी। सीठी। खोई। उ०—गाँड़े की सी छोई करडाले, रहन न देत मिठाई।—कबीर० श०, पृ० ७।

छोकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० छावक + रा (प्रत्य०)] [स्त्री० छोकड़ी] लड़का। बालक। अनुभवशून्य या अपरिपक्व बुद्धि का युवक। लौंडा। (प्रायः बुरे भाव से)।

छोकड़ापन—संज्ञा पुं० [हिं० छोकड़ा + पन (प्रत्य०)] १. लड़कपन २. छिछोरापन। नादानी।

छोकड़िया† - संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छोकड़ी'।

छोकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोकड़ा] लड़की। कन्या। बेटी।

छोकर(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'छोकड़ा'।

छोकरा—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० छोकरी] दे० 'छोकड़ा'।

छोकरिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० छोकरी'।

छोकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छोकड़ी'।

छोकला†—संज्ञा पुं० [सं० छल्ल] छोल। छिलका। वक्कल।

छोगाल†—वि० [देश०] छैला। उ०—विदर बुराई वीटिया, विदर वड़ वाचाल। विदर पटा लावै सुरत, छोगाला चिरताल।—बाँकी० ग्रं०, भा०२, पृ० ८५।

छोट‡-वि० [सं० क्षुद्र हिं० छोटा, अथवा देशी छुट्ट]। दे० 'छोटा'। उ०—को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू।—मानस, १। २१।

छोटका‡—वि० [हिं० छोटा + का (प्रत्य०) [वि० स्त्री० छोटकी] छोटा।

विशेष—पूरबी प्रत्यय (का. की,) ऐसी विशेष वस्तुओं के लिये आता है जो सामने होती है, जिनका उल्लेख पहले हो चुका रहता है, या जिनका परिचय सुननेवाले को कुछ रहता है।

छोटपन†—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पन (प्रत्य०)] छोटापन। छोटाई

छोटफन्नी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + फन] कम चौड़े मुँहवाली मटकी। छोटे मुँह की ठिलिया। तंग मुँह की गगरी।

छोटभैया—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + भाई] पद या मान मर्यादा में छोटा आदमी। कम हैसियत का आदमी।

छोटा—वि० [सं० क्षुद्र या देशी छुट्ट, छुट] वि० स्त्री० छोटी] १. जो बड़ाई या विस्तार में कम हो। आकार में लघु या न्यून। डीलडौल में कम। जैसे—छोटा घोड़ा. छोटा घर, छोटा पेड़, छोटा हाथ।

यौ०—छोटा मोटा=छोटा। जैसे, छोटा मोटा घर।

२. जो विस्तार या परिधि में भी कम हो। जिसमें फैलाव न हो। उ०—असवार चलंते पाय घलंते पुहवी भए जा छोटी।—कीर्ति०, पृ० ६४। ३. जो अवस्था में कम हो। जिसका वय अल्प हो। जो थोड़ी उम्र का हो। जैसे, छोटा भाई। उ०—हम तुमसे तीन बरस छोटे हैं।३. जो पद और प्रतिष्ठा में कम हो। जो शक्ति, गुण, योग्यता मानमर्यादा आदि में न्यून हो। जैसे, बड़े आदमियों के सामने छोटे आदमियों को कौन पूछता है? उ०—अरि छोटो गनिए नहीं जातें होत बिगार। तिन समूह को छिनक में जारत तनक अँगार।—वृंद (शब्द०)।

यौ०—छोटा मोटा।

४. जो महत्व का न हो। जिसमें कुछ सार या गौरव न हो। सामान्य। जैसे,—इतनी छोटी बात के लिये लड़ना ठीक नहीं। ५. जिसमें गंभीरता, उदारता या शिष्टता न हो। जिसका आशय महत् या उच्च न हो। ओछा। क्षुद्र। जैसे,—(क) किसी से कुछ माँगना बड़ी छोटी बात है। (ख) वह बड़े छोटे जी का आदमी है।

मुहा०—छोटे मुँह बड़ी बात—साधारण या ओछे व्यक्ति द्वारा किसी श्रेष्ठ या शिष्ट के प्रति अनुचित एवं निंदात्मक बातें कहना।

यौ०—छोटा आदमी—ओछा व्यक्ति।

छोटाई· संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + ई (प्रत्य०)] १. छोटापन। लघुता। २. नीचता। क्षुद्रता।

यौ०—छोटाई बड़ाई।

छोटा कचूर—संज्ञा पुं०[हिं० छोटा + कचूर] कपूर कचरी। गंधपाली।

छोटा कपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + कपड़ा] अँगिया। चोली।

छोटा कुवार—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + सं० कुमारी] एक जाति का घीकुआर।

विशेष—इसके पत्ते छोटे होते हैं और चीनी में मिलाकर दस्त की बीमारी में खाए जाते हैं। यह मैसूर प्रांत से अधिक होता है।

छोटा चाँद—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + चाँद] एक लता. जिसकी जड़ [illegible] जाती है। इस लता की जड़

को सुखाकर और चूर्ण करके साँप के काटे हुए स्थान पर लगाते और उसका काढ़ा करके २४ घंटे में डेढ़ पाव तक पिलाते हैं।

छोटापन—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा+पन (प्रत्य०)] १. छोटा होने का भाव। छोटाई। लघुता। २. बचपन। बालपन। लड़कपन।

छोटा पाट—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा+पाट] रेशम के कीड़े का एक भेद।

छोटा पीलू—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा+पीलू] रेशम के कीड़े का एक भेद।

छोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगूठा तथा मध्यमा अँगुली को परस्पर मिलाकर ध्वनि करना। चुटकी (को०)।

छोटी[1]—संज्ञा पुं० [सं० छोटिन्] मछली फँसानेवाला। मछुआ (को०)।

छोटी[2]—वि० स्त्री० [देशी० छुट्ट] दे० 'छोटा'।

यौ०=छोटी जात, छोटी जाति=समाज की निम्न जाति। नीची कौम। छोटी बात=ओछी बात। अभद्र वार्ता।

छोटी इलायची=संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी+इलायची] सफेद या गुजराती इलायची। वि० दे० 'इलायची'।

छोटी मैल=संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

छोटी रकरिया=संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी+रकरिया] एक घास जो पंजाब के हिसार आदि स्थानों में मिलती है। यह पाँच चार साल तक रहती है और इसे घोड़े चाव से खाते हैं।

छोटी सहेली=संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी+सहेली] एक छोटी चिड़िया का नाम जो देखने में बड़ी सुंदर होती है।

छोटी हाजिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी+हाजिरी] भारत में रहनेवाले अंग्रेजों या यूरोपियनों का प्रातःकाल का कलेवा (खानसामा)।

छोड़—वि० [सं० छोरण, हिं० छोड़ना] (प्रायः समासांत में) छोड़नेवाला। त्यागनेवाला। जैसे,='रणछोड़ राय का मंदिर' में 'छोड़' शब्द।

छोड़चिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना+चिट्ठी] वह लेख या कागज जिसके कारण कोई व्यक्ति किसी प्रकार के ऋण या बंधन से मुक्त समझा जाय। फारखती।

छोड़ छुट्टी=संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना+छुट्टी] नाता टूटना या संबंध-त्याग।

क्रि० प्र०—करना।—बोलना।—होना।

छोड़ना—क्रि० स० [सं० छोरण] १. किसी पकड़ी हुई वस्तु को पृथक् करना। पकड़ से अलग करना। जैसे,—हमारा हाथ क्यों पकड़े हो; छोड़ दो।

संयो० क्रि०-देना।

२. किसी लगी या चिपकी हुई वस्तु का उस वस्तु से अलग हो जाना जिससे वह लगी या चिपकी हो। उ०—बिना आँच दिखाए यह पट्टी चमड़े को न छोड़ेगी। ३. किसी जीव या व्यक्ति को बंधन आदि से मुक्त करना। छुटकारा देना। रिहाई देना। जैसे, कैदियों को छोड़ना, चौपायों को छोड़ना। ४. दंड आदि न देना। अपराध क्षमा करना। मुआफ करना। जैसे,=(क) इस बार तो हम छोड़ देते हैं; फिर कभी ऐसा न करना। (ख) जज ने अभियुक्तों को छोड़ दिया। ५. न ग्रहण करना। न लेना। हाथ से जाने देना। जैसे,—मिलता हुआ धन क्यों छोड़ते हो। ६. उस धन को दयावश या और किसी कारण से न लेना जो किसी के यहाँ बाकी हो। देना। मुआफ करना। ऋणी या देनदार को ऋण से मुक्त करना। छूट देना। जैसे,=(क) महाजन ने सूद छोड़ दिया है, केवल मूल चाहता है। (ख) हम एक पैसा न छोड़ेंगे सब वसूल करेंगे। ७. अपने से दूर या अलग करना। त्यागना। परित्याग करना। पास न रखना। जैसे,—वह घर बार, लड़के बाले छोड़कर साधु हो गया। ८. साथ न लेना। किसी स्थान पर पड़ा रहने देना। न उठाना या लेना। जैसे,—(क) तुम हमें वहाँ अकेले छोड़कर कहाँ चले गए। (ख) वहाँ एक भी चीज न छोड़ना, सब उठा लाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—स्थान (घर, गाँव, नगर आदि) छोड़ना=स्थान से चला जाना या गमन करना। जैसे,—हमें घर छोड़े आज तीन दिन हुए।

९. प्रस्थान कराना। गमन कराना। चलाना। दौड़ाना। जैसे,—गाड़ी छोड़ना, घोड़ा छोड़ना, सिपाही छोड़ना, सवार छोड़ना।

मुहा०=किसी पर किसी को छोड़ना=किसी के पीछे किसी को दौड़ाना। किसी को पकड़ने, तंग करने या चोट पहुँचाने के लिये उसके पीछे किसी को लगा देना। जैसे,=हिरन पर कुत्ते छोड़ना, चिड़िया पर बाज छोड़ना। मादा (पशु) पर नर (पशु) छोड़ना=जोड़ा खाने के लिये नर को मादा के सामने करना।

१०. किसी दूर तक जानेवाले अस्त्र को चलाना या फेंकना। क्षेपण करना। जैसे,=गोली छोड़ना, तीर छोड़ना।

विशेष=बंदूक, पड़ाके आदि के संबंध में केवल शब्द करने के अर्थ में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है।

११. किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान से आगे बढ़ जाना। जैसे.—उसका घर तो तुम पीछे छोड़ आए।

संयो० क्रि०—जाना।

१२. किसी काम को बंद कर देना। किसी हाथ में लिए हुए कार्य को न करना। किसी कार्य में अलग होना। त्याग देना। जैसे,—काम छोड़ना, आदत छोड़ना, अभ्यास छोड़ना, आना जाना छोड़ना। जैसे,—(क) सब काम छोड़कर तुम इसे लिख डालो। (ख) उसने नौकरी छोड़ दी। १३. किसी रोग या व्याधि का दूर होना। जैसे,—बुखार नहीं छोड़ता है। १४. भीतर से वेग के साथ बाहर निकलना। जैसे,—ह्वेल अपने मुँह से पानी की धार छोड़ती है। १५. किसी ऐसी वस्तु को चलाना या अपने कार्य में लगाना जिसमें से कोई वस्तु कणों या छीटों के रूप में वेग से बाहर निकले। जैसे,—पिचकारी छोड़ना, फौवारा छोड़ना, आतशबाजी छोड़ना। १६. बचाना। शेष रखना। बाकी रखना। व्यवहार या उपयोग में न लाना। जैसे—(क) उसने अपने आगे कुछ भी नहीं छोड़ा, सब खा गया। (ख) उसने किसी को नहीं छोड़ा है; सबकी दिल्लगी उड़ाई है।

मुहा०—(किसी को) छोड़ या छोड़कर=(किसी के) अतिरिक्त। सिवाय। जैसे,—तुम्हें छोड़ और कौन हमारा सहायक है।

१७. किसी कार्य को या उसके किसी अंग को भूल से न करना। कोई काम करते समय उससे संबंध रखनेवाली किसी बात या वस्तु पर ध्यान न देना। भूल या विस्मृति से किसी वस्तु को कहीं से न लेना, न रखना या न प्रयुक्त करना। जैसे,—लिखने में अक्षर छोड़ना इकट्ठा करने में कोई वस्तु छोड़ना, रेल पर छाता छोड़ना। १८. ऊपर से गिराना या डालना। जैसे,—(क) हाथ पर थोड़ा पानी तो छोड़ दो। (ख) इसपर थोड़ी राख छोड़ दो।

छोड़वाना¹—क्रि० स० [हिं० छोड़ना का प्रे० रूप] छोड़ने का काम कराना।

छोड़वाना²—क्रि० स० [हिं० छुड़ाना का प्रे० रूप] छुड़ाने का काम कराना।

छोड़ाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'छुड़ाना'।

छोत, छोति†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूत] दे० 'छूत'। उ०—(क) पाप पुन्य नहिं तागे छोत।—कबीर श०, पृ० १११। (ख) जाकी छोति जगत कौं लागै तापरि तूँ ही धरै। अमर आप ले करे गुसांई माखो हूँ न मरै।—दादू०, पृ० ६०७।

छोतीⓅ—वि० [हिं०] छूतवाला। अपवित्र। उ०—गिनै आन छोती इसै हेत तासी।—राम० धर्म०, पृ० १८१।

छोना¹Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छौना'। उ०—मानो नाग छोना उड़ै होड मंडी।—ह० रासो, पृ० १३१।

छोना Ⓟ क्रि० स० [सं० क्षेप, प्रा० छोह] काटना। फेंकना। छोड़ना। उ०—धरनी मन मनिया, इक ताग में परोई। आपन करि जान लेहु, कर्म फंद छोई।—संतवानी०, पृ० १२६।

छोनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [क्षोणि] दे० 'छोनी'।

छोनिपⓅ—संज्ञा पुं० [सं० क्षोणिप] राजा। उ०—रहे असुर छल छोनिप वेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।—मानस, १। २४१।

छोनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोणी] पृथ्वी। भूमि। उ०—सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी विमल गुन गन जग जोनी।—मानस, २। २९६।

छोप—संज्ञा पुं० [सं० क्षेप, हिं० खेप] १. किसी गाढ़ी या गीली वस्तु की मोटी तह जो किसी वस्तु पर चढ़ाई जाय। मोटा लेप।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

२. गाढ़ी या गीली वस्तु को मोटी तह चढ़ाने का कार्य। ३. गीली मिट्टी या पानी में सनी हुई और किसी वस्तु का लोंदा जो दीवार अथवा और किसी वस्तु पर गड्ढे मूँदने या सतह बराबर करने आदि के लिये रखा और फैलाया जाय।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—रखना।

यौ०—छोप छाप=मरम्मत।

४. आघात। वार। प्रहार। उ०—जहाँ जात जूटि तहाँ टूटि परै बादर, त्यों ऊटि बल भट, सीस फूटि डारैं छोप सों।—गोपाल (शब्द०)। ५. छिपाव। बचाव।

यौ०—छोप छाप(१) दोष आदि का छिपाव। (२) बचाव। रक्षा। (३) देख रेख।

छोपना—क्रि० स० [हिं० छुपाना या हिं० छोप+ना (प्रत्य०)] १. किसी गीली या गाढ़ी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस प्रकार रखकर फैलाना कि उसकी मोटी तह चढ़ जाय। गाढ़ा लेप करना। जैसे,—नीम की पत्ती पीसकर फोड़े पर छोप दो।

संयो० क्रि०—देना।

२. गीली मिट्टी या पानी में सनी हुई और किसी वस्तु के लोंदे को किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैलाकर रखना कि वह उससे चिपक जाय। गिलावा लगाना। थोपना। जैसे,—दीवार में जहाँ जहाँ गड्ढे हैं, वहाँ मिट्टी छोप दो।

यौ०—छोपना छापना=गड्ढे आदि मूँदकर मरम्मत करना। फटे या गिरे पड़े को दुरुस्त करना।

संयो० क्रि०—देना।

३. किसी वस्तु पर इस प्रकार पड़ना कि वह बिलकुल ढक जाय। किसी पर इस प्रकार चढ़ बैठना कि वह इधर उधर अंग न हिला सके। धर दबाना। ग्रसना। जैसे,—शेर बकरी को छोपकर बैठा रहा।

संयो० क्रि०—लेना।

४. आच्छादित करना। ढकना। छेंकना। ५.† किसी बात को छिपाना। परदा डालना। ६. किसी को वार या आघात से बचाना। आक्रमण आदि से रक्षा करना।†७ कोई वस्तु किसी के मत्थे थोपना या बाध्य करके उसे दे देना।

छोपा—संज्ञा पुं० [हिं० छोपना] पाल के चारों कोनों पर बँधी हुई रस्सियाँ जिनसे उसे ऊपर चढ़ाते हैं।

छोपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोपना] १. छोपने का भाव। २. छोपने की क्रिया। ३. छोपने की मजदूरी।

छोभ—संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ] [वि० छोभित] १. चित्त की विचलता जो दुःख, क्रोध, मोह, करुणा आदि मनोवेगों के कारण होती है। जी की खलबली। उ०—तात तीनि अति प्रबल ये काम क्रोध अरु लोभ। मुनि विज्ञान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ।—मानस, ३। ३२। २. नदी, तालाब आदि का भरकर उमड़ना।

छोभनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० छोभ+ना (प्रत्य०)] चित्त का विचलित होना। करुणा, दुःख, शंका, मोह, लोभ आदि के कारण चित्त का चंचल होना। जी में खलबली होना। क्षुब्ध होना। उ०—(क) जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा।—मानस, १। २३१। (ख) नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पन सुमिरि बहुरि मनु छोभा।—मानस, १। २५८।

छोभितⓅ—वि० [सं० क्षोभित] क्षोभित। चंचल। विचलित। उ०—(क) छोभित सिंधु से सिर कंपित पवन भयो गति पंग। इंद्र हँस्यो हर हिय बिलखान्यो, जानि बचन को भंग।—सूर०,

६। १५८। (ख) हे हरि छोभित करि दई पयन पयन सर मारि। हरिहि हरिननयनी लगी हेरनहार निहारि।—शृं० सत० (शब्द०)।

छोम(पु)—[सं० क्षोम (=अलसी का बना चिकना कपड़ा)] १. चिकना। २. कोमल। उ०—भीम सरिस मन छोम, खरे करि रोम भजहिं भट।—गोपाल (शब्द०)।

छोर—संज्ञा पुं० [हिं० छोड़ना] १. किसी वस्तु का वह किनारा जहाँ उसकी लंबाई का अंत होता हो। आयत विस्तार की सीमा। चौड़ाई का हाशिया। जैसे,—दुपट्टे का छोर, तागे का छोर। उ०—काननि कनफूल उपवीत अनुकूल पियरे दुकूल विलसत आछे छोर हैं।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ओर छोर=आदि अंत।

२. विस्तार की सीमा। हद। ३. किनारे पर का सूक्ष्म भाग। नोक। कोर। कोना। उ०—सिला छोर छुवत अहल्या भई दिव्य देह गुन पेखु पारस पंकरुह पाय के।—तुलसी (शब्द०)।

छोर छुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'छोड़ छुट्टी'।

छोरटी, छोरड़ी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरा+टी (प्रत्य०)] दे० 'छोरी'।

छोरण—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ना। त्यागना [को०]।

छोरदार वि० [हिं० छोर (=किनारा, कोर)+दार (प्रत्य०)] छोरयुक्त। संपूर्ण। पूरा। उ०—'उरदाँम' सिसुता सहर चढ़ि लूटि लीन्हों, सरंम धरंम, रह्यो एकहू न छोरदार।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५७३।

छोरना† क्रि० स० [सं० छोरण (=परित्याग)] १. बंधन आदि अलग करना। उलझन या फँसाव आदि दूर करना। २. बंधन से मुक्त करना। उ०—जरासिंधु को जोर उघारयो, फारि कियो द्वै फाँको। छोरी बंदि विदा किए राजा, राजा ह्वै गए रांको।—सूर०, १। ११३। ३. हरण करना। छीनना। उ०—जोरि अंजलि मिले, छोरि तंदुल लए, इंद्र के विभव तें अधिक बाढ़ो।—सूर०, १। ५।

संयो० क्रि०—देना। लेना।

छोरा[1]†—संज्ञा पुं० [सं० शावक, हिं० छावक+रा (प्रत्य०)] [स्त्री० छोरी] छोकड़ा। लड़का। बालक।

छोरा[2] संज्ञा पुं० [देश०] एक नाव को दूसरी नाव के साथ बाँधकर ले जाने का कार्य।

छोराछोरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरना] १. छीनखसोट। छीना-छीनी। २. झगड़ा। बखेड़ा। झंझट। उ०—आतम देवराम नित विहरत यामें नहिं कछु छोराछोरी।—देवस्वामी (शब्द०)।

छोरावना(पु)—[हिं० छोड़ना का प्रे० रूप] अलग कराना। गुथी या मिली चीज को अलग अलग कराना। छोड़वाना। उ०—तव भैरव भूवाल वीर वर। कीन हुकम कालीय ऊँच कर। छोरावहु गजराज पानि गहि। बहुरि जरौ जंजीर थान कहि।—पृ० रा०, ६। १६३।

छोरि[2]—संज्ञा पुं० [हिं० छोर] किनारा। कोर छोर। उ०—बसन छोरि तें छोरि, बिप्र श्रीधर कर दीनों।—नंद० ग्रं०, पृ० २०४।

छोरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरा] लड़की। छोकड़ी।

छोलंग—संज्ञा पुं० [सं० छोलङ्ग] नीबू [को०]।

छोल[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोलना] १ छिल जाने का चिह्न या घाव। २. साँप के काटने में उसके दाँत लगने का एक भेद जिसमें केवल चमड़े में खरोंच लग जाता है।

छोल[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. आवरण। घेरा। उ०—आठहू पहर मस्तान माता रहै, ब्रह्म की छोल में साध जीवै।—तुरसी०, श०, पृ० ६५। २. क्रीड़ा। खेल। उ०—सीता वरी जनक पण साँचव, सुपह किया अपसोसै। छाता खलाँ उतोले छोलाँ, भ्राता तुझ भरोसै।—रघु० रू०, पृ० १६१। ३. तरंग। लहर। उ०—इण विध आभरणांहि मनूं मुकता मिली। छक तरुणाई छोल पयोनिध ज्यों छिली।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ४०।

छोलदारी संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरना+धरना=छोरधरी। या अं० सोलजरी (=सेना)] एक प्रकार का छोटा खेमा। छोटा तंबू।

छोलना[1]—क्रि० स० [हिं० छाल] १. छीलना। सतह का ऊपरी हिस्सा काटना। उ० सखि सरद विमल विधुबदनि बधूटी। ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी, रत्यो रची विधि जो छोलत छवि छूटी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३३४। २. खुरचना। जैसे,—कलेजा छोलना अर्थात् हृदय को अत्यंत व्यथित करना।

छोलना[2]—संज्ञा पुं० [स्त्री० छोलनी] लोहे का एक औजार जिससे सिकलीगर हथियारों का मुरचा खुरचते हैं।

छोलनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोलना] १. छोलने का औजार। २. ईख छीलने का औजार। ३. चिलम में छेद बनाने का औजार। ४. हलवाइयों का कड़ाही खुरचने का औजार जो खुरपी के आकार का होता है। खुरचनी।

छोला—संज्ञा पुं० [हिं० छोलना] १. वह पुरुष जो ईख को काटता और छीलता है। २. चना। बूट।

छोवन संज्ञा पुं० [हिं० छेवना] कुम्हारों का वह डोरा जिससे वे चाक पर चढ़े हुए बरतन को अलग करते हैं।

विशेष—कुम्हार लोग इस डोरे को एक सरकंडे में बाँधकर पानी में रखे रहते हैं। चाक पर सामान तैयार हो जाने के बाद इसी डोरे से उसे काटकर अलग करते और फिर उसी पानी में छोड़ देते हैं।

छोवना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] सोना। नींद लेना। उ०—दादू गाफिल छोवतौं, मझे रब निहारि। मंझेई पिय पाण जो मंझेई बिचार।—दादू०, पृ० ८७।

छोवा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० शावक] दे० 'छावा'। उ०—एहि वन बहुत जंतु सुख खोवा। औ बिग खाँहि जो मानुप छोवा।—चित्रा०, पृ० ३२०।

छोह[1]—संज्ञा पुं० [हिं० क्षोभ] १. ममता। प्रेम। स्नेह। उ०—तजब छोभ जनि छाँड़िय छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न

मोहू।—मानस, २। ६६। २. दया। अनुग्रह। कृपा। उ०—पारबती सम पति प्रिय होहू। देवि न हम पर छाँड़ब छोहू।—मानस, २। ११८।

छोह²—संज्ञा पुं० [देशी] १ समूह। यूथ। जत्था। उ०—आरास सुभ्रन बनि कान छोह। देषंत नैन मुनि मगन मोह।—पृ० रा०, १८। ६२।

छोहगर¹—वि० [हिं० छोह+गर (प्रत्य०)] प्रेमी। स्नेही। ममता रखनेवाला।

छोहगर†²—वि० [देश०] कम। थोड़ा।

छोहना(पु)¹—क्रि० अ० [हिं० छोह+ना (प्रत्य०)] विचलित होना। चंचल होना। क्षुब्ध होना। उ०—बड़गूजरहूँ कोह्यो। पंचानन ज्यों छोह्यो।—सूदन (शब्द०)।

छोहना²†—क्रि० अ० [हिं० छोह (=प्रेम+) ना (प्रत्य०)] प्रेम करना। अनुराग करना।

छोहनार†—वि० [देश०] कम। थोड़ा। अल्प।

छोहनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] दे० 'छोहिनी'। उ०—ज्ञान दल छोहनी भालु बानर लिहें।—पलटू०, भा० २, पृ० १५।

छोहरा†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० छावक, छाव+रा (प्रत्य०)] [स्त्री० छोहरी] लड़का। बालक। छोकड़ा। उ०—आपुस ही में कहत हँसत है प्रभु हिरदै यह सालत। तनक तनक से ग्वाल छोहरन कंस अबहिं बधि घालत।—सूर (शब्द०)।

छोहरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोहरी] दे० 'छोहरी'।

छोहरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोहरा] लड़की। बालिका। छोकड़ी। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं।—रसखान (शब्द०)।

छोहाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० छोह] १. मुहब्बत करना। प्रेम दिखाना उ०—मग गोहूँ कर हिया चराना। पै सो पिता हिए छोहाना।—जायसी (शब्द०)। २. अनुग्रह करना। दया करना। उ०—तुलसी तिहारे विद्यमान युवराज आज कोपि पाउँ रोपि बसि कै छोहाय छाड़िगो।—तुलसी (शब्द०)

मुहा०—किसी पर छोहाना=(१) किसी पर स्नेह प्रकट करना। (२) किसी पर दया या अनुग्रह करना।

छोहारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'छुहारा'।

छोहिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] दे० 'अक्षौहिणी'।

छोही(पु)¹†—वि० [हिं० छोह] प्रेमी। स्नेही। ममता रखनेवाला। अनुरागी। उ०—कियो नैव यह वैष्णवद्रोही। राजा अहै साधु को छोही।—रघुराज (शब्द०)।

छोही²—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोलना] चोइया। चूसी हुई गँड़ेरी की सीठी। उ०—रस छाँड़ि छोही गहै कोल्हू पेरत देख। गहै असार असार को हिरदे नाहि विवेक।—कबीर (शब्द०)।

छौंक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बघार। तड़का।

यौ०—छौंक बघार।

छौंकना—क्रि० स० [अनु० छायँ छायँ (=तपी हुई वस्तु पर पानी पड़ने का शब्द०)] १, हींग, मिरचा, जीरा, राई, लहसुन आदि से मिले हुए कड़कड़ाते घी को दाल आदि में डालना जिसमें वह सोंधी या सुगंधित हो जाय। बघारना। जैसे, दाल छौंकना। २. मेथी, मिरचा, हींग आदि से मिले हुए कड़कड़ाते घी में कच्ची तरकारी, अन्न के दले या भीगे दाने आदि को भूनने के लिये डालना। तड़का देना। जैसे,—तरकारी छौंकना।

छौंड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० चुण्डा (=गड्ढा)] जमीन में खोदा हुआ वह गड्ढा जिसमें अनाज रखते हैं। खत्ता। गाड़।

छौंड़ा²†—संज्ञा पुं० [सं० सूनु या शावक, हिं० छौना] [स्त्री० छौंड़ी] लड़का। बालक।

छौंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] लड़की। बालिका। उ०—छीलन की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति, कीन्ही लीन आपु में सुनारी भोंडे भील की।—तुलसी (शब्द०)।

छौंह, छौंहा—वि० [सं० छाया (=कांति, सादृश्य)] सदृश। समान। (समासांत में प्रयुक्त) जैसे. करछौंह। ललछौंहा।

छौकना†—क्रि० अ० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक्क] किसी जानवर (शेर, बिल्ली आदि) का चारों पैर उठाकर किसी की ओर कूदना या झपटना। चौकड़ी के साथ झपटना।

छौना—संज्ञा पुं० [सं० सूनु (=पुत्र अथवा सं० शावक, प्रा० छाव+ औना (प्रत्य०)] [स्त्री० छौनी] १. पशु का बच्चा। किसी जानवर का बच्चा जैसे—मृगछौना, सूअर का छौना। २. बालक। शिशु। छोटा बच्चा। उ०—बाछरू छबीले छौना छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई।—तुलसी (शब्द०)।

छौनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोणि] दे० 'क्षोणी'। उ०—पृथ्वी, छिति, छौनी, छिमा, धरनी, धात्री, गाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ६४।

छौर¹—संज्ञा पुं० [सं० क्षार, हिं० छौरा] दे० 'छौरा'।

छौर²—संज्ञा पुं० [सं० क्षौर] दे० 'क्षौर'।

छौर³—संज्ञा पुं० [हिं० छँवर (=चमड़ा)] पुराने समय में सरहद के झगड़ों के संबंध में शपथ खाने की एक रीति।

विशेष—शपथ खाने की इस रीति में वादी प्रतिवादी या किसी तीसरे व्यक्ति को, जिसके सत्यकथन पर झगड़े का निपटेरा छोड़ दिया जाता था, गाय का चमड़ा सिर पर रखकर उसे सरहद या सिवान पर घूमना पड़ता था।

छौरना† क्रि० अ० [हिं० छोड़ना] दे० 'छोड़ना'। उ०—अपनो घर छौरि कै उहाँ क्यों पधारे हते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६२।

छौरा—संज्ञा पुं० [सं० क्षर (=नाशवान्, नष्ट)] १. ज्वार या बाजरे का डंठल जो चारे के काम में आता है। डाँठ। कोयर। गर्री। खरई। २. कपास का डंठल।

छौल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [देशी] दे० 'छोल¹'। उ०—करत कलोला दरियाव के बीच में ब्रह्म की छौल में हंस झूलै।—संतवाणी०, भा० २, पृ० १६।

छ्वाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० छुआना] छुलाना। स्पर्श करना। उ०—ह्वै कपूर मनिमय रही मिलि तन-दुति मुकुतालि। छिन छिन खरी बिचच्छिनौ लखति छ्वाइ तिनु आलि।—बिहारी (शब्द०)